



# सामवेद

( अर्थ व स्पष्टीकरण सहित )

लेखक

ब्रह्मर्षि स. म. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर  
साहित्य-वाचस्पति, बीजापुरकार, विद्यामार्ग

स्नाय्याय-मण्डल, पारडी ( जि. धरत )

प्रकाशक :

वसंत श्रीपाद सातबलेकर, बी. ए ,  
स्वाध्याय-मण्डल,  
पोस्ट— ' स्वाध्याय मण्डल ( पारडी ) ',  
पारडी ( जि. सुरत )

भाषान्तरकार :

श्री. ध्रुतिशील दामा,  
तर्क विरोधनि, शास्त्री, एम्. ए



शक १८८५, संवत् २०२०, ई. सन १९६३



मूल्य १५ ) रुपये

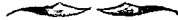


मुद्रक :

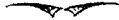
वसंत श्रीपाद सातबलेकर, बी. ए ,  
भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय-मण्डल,  
पोस्ट— ' स्वाध्याय मण्डल ( पारडी ) ',  
पारडी ( जि. सुरत )



# सामवेदका सुबोध अनुवाद



## भूमिका



वेद चार हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद । ऋग्वेदमें देवताओंके गुणोंका वर्णन है, यजुर्वेदमें माना प्रकारके यज्ञोंकी क्रियाप्रकार बरता चाहिए यह बताया है, सामवेदमें अनेक मंत्रोंका गायन क्रियाप्रकार होना चाहिए यह बताया है और अथर्ववेदमें ब्रह्मज्ञान है । इसप्रकार चारों वेदोंकी विषय-व्यवस्था है ।

### वेदत्रयी व वेदचतुष्टयी

“ वेद-त्रयी ” भी कई स्थानोंपर लाया है जिसका अर्थ है, पद्य, गद्य और गायन । “ पाद्वन्द्वन्यउस्था ” वाले मंत्र ऋग्वेद, “ गद्य भाग्य ” यजुर्वेद और पाद्वन्द्व मंत्रोंका गायन सामवेद है । यह वेदत्रयी है । अथर्ववेद मंत्रोंके पाद्वन्द्व होनेके कारण उनका अन्तर्भाव ऋग्वेदमें ही हो जाता है । वेदत्रयोंके धार होवेपर भी उनका समावेश ( १ ) पद्य, ( २ ) गद्य और ( ३ ) गायन इन तीन विभागोंमें हो सकता है । इसलिये “ वेद-त्रयी ” और “ वेद-चतुष्टयी ” के मंत्रोंकी संख्यामें कोई फरक नहीं है । वेदत्रयी कहनेके कारण अथर्ववेद छोड़ते बना यह नहीं समझना चाहिए । क्योंकि यज्ञोंके यज्ञोंमें “ ब्रह्मा ” अथर्ववेदी ही होता है, और “ ब्रह्मा ” की यज्ञमें आवश्यकता होती ही है, तब अथर्ववेद छोड़ते बना यह कैसे कहा जा सकता है ?

पद्य, गद्य और गायन यह ही वेद-त्रयी है । सभी भाषाओंके शास्त्रमयमें ये तीन विभाग होते ही हैं । इससे यह

स्पष्ट हो जाएगा, कि वेद-त्रयी और वेद-चतुष्टयीमें कोई भेद नहीं है । और वेद-त्रयीके कारण जो अथर्ववेदको छोड़ते बना हुआ मानते हैं, वे भी समझ जायेंगे कि उनको यह धारणा गलत है ।

यजुर्वेदमें जो पाद्वन्द्वमंत्र ऋग्वेद या अथर्ववेदसे लिए गए हैं, वे पद्यके समान नहीं बोले जाते, अपितु गद्य जैसे बोले जाते हैं, अर्थात् वे ही मंत्र ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेदमें पद्यके अनुसार उद्योगोंसे बोले जाते हैं और वे ही मंत्र यजुर्वेदमें योक्तोंके समान पद्यके समान बोले जाते हैं । क्योंकि षाठकी यह परिपाटी पुरानी है ।

वेद-त्रयी अथवा वेद-चतुष्टयीके अनुसार मंत्र गणनामें कोई फरक नहीं पड़ता । वेद-त्रयीमें भाषाओंकी रचना मुख्य है और वेद चतुष्टयीमें प्रतिपाद्य विषयकी मुख्यता है । इसकी और स्पष्ट करनेके लिए नीचे एक तालिका प्रस्तुत है—

१ वेद-त्रयी- पद्यमंत्र, गद्यमंत्र और गानके मंत्र ।

२ वेद-चतुष्टयी- गण वर्णवके मंत्र, पद्यमंत्रके मंत्र, गानके मंत्र और ब्रह्मज्ञानके मंत्र ।

इन दोनों प्रकारकी गणनाओंमें मन्त्रसंख्यामें कोई भेद नहीं आता ।

### सामवेदका विभूतिमंत्र

भगवान श्री कृष्णने पीताम्बे भगवान्की विभूतिर्षाका वर्णन करते हुए “ वेदानां सामवेदोऽसि ” ऐसा कहा

है। चारों वेदोंमें सामवेद भगवान्की विभूति है। पशु, गध और गायनमें मन पर "गायन" का विशेष प्रभाव पड़ता है इसका अनुभव सबको होगा। यही सामगानका विभूतिमत्त्व है। भाषाके तीन प्रकारमें गायनका प्रकार मन पर अधिक प्रभाव डालता है। सामभारण मनुष्यके मन पर गायनके आनन्दका प्रभाव ज्यादा होता है। रोगिके मन पर भी गायनका प्रभाव पड़ता है और वह शीघ्र स्वस्थ होता है। गायनका परिणाम वेदों, बाण और पौषोंपर भी होता है। खेतमें यदि गायन किया जाए तो अनाज अधिक उपजता है, रोगियोंके अस्पतालमें यदि गानेके रिकॉर्ड्स लगाये जाएँ तो उनके कारण रोगी जल्दी ही स्वस्थ बन जाता है। दुष्पथ गायको दूधसे समथ यदि उसे गाना सुनाया जाए तो वह ज्यादा दूध देता है। इसप्रकार गायनका प्रभाव पड़ता है।

इस सामगानकी पद्धतिमें और आधुनिक पद्धतिमें थोड़ासा अन्तर है, उसका भी विचार यहां आवश्यक है, सामगानमें स्वरही ऊंचे आलापसे शुरु करके उसे धीरे धीरे नीचे आलाप पर लाया जाता है, उसके कारण मनको शान्ति मिलती है और भयका हृसा मन सामगानकी सुनकर शान्त हो जाता है। इसप्रकार सामगानसे शान्ति मिल सकती है।

आधुनिक पद्धतिके गानमें ऊंचे और नीचे तानोंके मिश्रण होनेके कारण उस गानसे मन शान्त होनेके बजाय और अधिक विकारवश होता है। दोनों प्रकारके गानोंकी पद्धतियोंमें यह भेद है। इसलिए मनको शान्त करनेके लिए सामगानका उपयोग लाभप्रद है।

यही सामवेदका गीतोक्त विभूतिमत्त्व है। उक्तुंशल मनको शांत करनेका काम सामगान कर सकता है।

महाभारतके अनुशासनपर्वमें भी कहा है—

सामवेदस्य वेदान्तोऽनुनासोऽतःकद्रियम् ।

( म. भा. १४।३।७ )

चारों वेदोंमें "सामवेद" और यजुर्वेदमें "शतसत्रिय" विशेष महत्वके पंथ हैं। गीतामें कहा है—

प्रजयः सर्वयेदेषु ॥ ( गी ७।८ )

तथा महाभारतमें भी—

यौषादः सधेवेदानाम् ॥ ( महा भयस्मेप. ४४।६ )

औंकारकी श्रेष्ठता बताई है। इस औंकारकी प्रशंसासे सामवेदके महात्ममें स्पृन्ता क्षामाए, ऐषी वात नहीं। क्योंकि "औंकार" य "उत्तरीय" दोनों सामान्यक हैं और उत्तरीय सामवेदका गार है।

छान्दोग्य—उपनिषदमें कहा है—

सास्रः उद्गीथो रसः ॥ ( छां. उ. १।१२ )

"सामकः रस उद्गीथ है" इसप्रकार सामवेदका महत्त्व दर्शित है। यह सामवेद ही भगवान्की विभूति क्यों है? इसके अन्तर कौनसी विशेषता है; इसका सब विचार करते हैं—

यद्यद्विभूतिमत्तत्त्वं धीमवुर्जितमेव वा ।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम् ॥

( गी. १०।४१ )

विभूतिका यह लक्षण गीतामें कहा है। जहां जहां विशेष विभूतिकर तत्व होगा, धीमत्त्व वहीला, ऊर्जित-भवना अनुभवमें आएगी, वहां वहां भगवान्को विभूति है, यह सामगान काहिम्। इस लक्षणके आधार पर सामवेद वेदोंमें निःसन्देह एक विभूति है। सामवेद गायनरूप होनेके कारण "शब्द-ब्रह्म" की गायनरूपी विभूति है। तान अथवा आलापसे सामवेदकी शोभा दीपती है, यही इसकी शोभा अथवा धीमत्त्व है। उत्तरीप्रकार इस सामवेदका सामुचित्य विकार - विश्लेषण - शन्यास - विराम - स्तोत्र इन भावोंकी योजनासे श्रोताओंकी अनुभवमें आयेगा। साधारण गद्यकी अपेक्षा छन्द, छन्दकी अपेक्षा काव्य, काव्यकी अपेक्षा गान और गानमें तानोंका आलाप विशेष प्रभावशाली होता है। इसीकारण सामवेदकी विशेष पहचान है। यह ही छान्दोग्य—उपनिषदमें कहा है—

वाचः क्षप्रसः, ध्रुवः सामरसः ।

सास्र उद्गीथो रसः ॥ ( छां. उ. १।१२ )

"वाणीका रस शब्दा है, शब्दाका रस साम है, और सामका रस उत्तरीय है। और भी कहा है—

सामयेदं यथ पुण्यम् । ( छां. उ. ३।३।१ )

"जैसे दुसरे पत्ते और फूलोंमें फूल विशेष शोभादायक होते हैं, उसीप्रकार गायनरूप होनेके कारण सामवेद देव-पुत्रका फूल है।

### सामवेदका अर्थ

सामवेदका अर्थ और उसका स्वरूप क्या है? इस पर सब विचार करते हैं। सामवेदका अर्थ केवल मंत्रसंग्रह ही है अथवा गान भी है, यह अब देखते हैं। छान्दोग्य उपनिषद्का रूप है—

या श्रुकु तत्साम । ( छां. उ. १।१।४ )

"श्रुचाओंका संग्रह ही साम है।" और भी—

उद्गीथं यद्व्युत्तं साम । ( छां. उ. १।१।१ )

"साम शब्दा पर आधारित होते हैं।" साम शब्दको छोड़कर और किसीके सामसे नहीं रहता। शब्देर और



सामवेदका " स्त्री - युक्त " के समान एक जोड़ा है, ऐसा भी कहा है—

अमोऽहमस्मि सा त्वं, सामाहमस्मि ऋक् त्वं ।  
घौरहं पृथिवी रणे । ताविह संभवाय, प्रजा-  
माजययावहै ।

( अथर्व. १५।२।७१; ऐत. ब्रा. ८।२७; मू. उ. ६।४।२० )

ये पति " अम " हैं और स्रु स्त्री " अहमा " है, " साम " में हूं और " अहमा " स्रु है, " घो " में हूं और " पृथिवी " स्रु है, इन दोनों मिलकर यहां उत्पन्न होते रहें, प्रजा उत्पन्न करें ।

इसमें साम शब्दकी व्युत्पत्ति दो है । " साम+अमः " = सामः । " सा " मतलब " अहमा " और " अम " मतलब आलाप, अतः " साम " का अर्थ है अहमाके आचार पर किया गया गान ।

### पादयजुर्मंत्रोंका गान

अध्वेद और अवधेदमें पादयजुर्मंत्र हैं, और उनका गान होता है । " अहमा " रूपी स्त्री और " सामगान " रूपी पुरुषका विवाह हुआ हुआ है । " पति - पत्नी " के समान साम और अहमाका सम्बन्ध है । उपनिषदोंमें इनका एक और भी सम्बन्ध विद्यमान है, यह इसप्रकार है—

" वाक् च प्राणश्च, ऋक् च साम च ।

( छां. उ. १।१।५ )

" वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥ ( छां. उ. १।७।१ )

" वाणी और प्राण क्रमशः अह्क और साम हैं । वाणी अहमा है और प्राण साम है । " वाणी और प्राणका जैसा सम्बन्ध है वैसा ही सम्बन्ध अहमा और सामका है ।

### स्वर-मण्डल

अहमाका मंत्र है चरणयुक्त-मंत्र । इन मंत्रोंका पढ़ना, मध्यम आदि स्वरोंमें आलाप होता है । इसलिये कहा है—

गतिषु सामाख्या ॥ ( जे. सू. २।१।२६ )

" वेदमंत्रोंके गानकी संज्ञा " साम " है । न केवल मंत्र-पाठकी ही " साम " संज्ञा है और न केवल गानकी ही, अपितु इन दोनोंके मिश्रण की ही " साम " संज्ञा है । शालाघात बाल्म्यके संवाकमें कहा है—

फा सास्रो गतिरिति । स्वर इति शोवाच ।

( छां. उ. १।८।५ )

" सामकी गति क्या है ? स्वर - आलाप - ही सामकी गति है । स्वर अथवा आलापके बिना साम नहीं होता तथा-तस्य हेतस्य सास्रो यः स्वं वेद्, भवति हास्यं स्वं, तस्य स्वर एव स्यात् । ( मू. उ. १।३।२५ )

" सामका स्वरूप आलाप है । " इस सामके स्वरमण्डलोंकी गणना नारदीय - शिक्षामें इसप्रकारकी गई है—

सप्तस्वराः त्रयो ग्रामाः मूर्च्छनास्वेकविंशतिः ।  
ताना एकोनपंचाशत् इत्येतस्वरमण्डलम् ॥

और भी कहा है—

यः सामगानां प्रथमः स शेणोर्मध्यमः स्वरः ।  
यो द्वितीयः स गांधारः, तृतीयस्तुपमः स्मृतः ।  
चतुर्थः पद्म इत्याहुः पंचमो धैवतो भवेत् ।  
षष्ठो निगादो धिषोयः, सप्तमः पंचमः स्मृतः ॥

( नारदीय - शिक्षा )

इस नारदीय - शिक्षामें पंचत और निगादका स्थान - परि-यर्तन शैलता है, उसका विचार संगीत में करें । ये स्वर सामिकके अनुसार ऐसे होते हैं—

अतिक्रुष्टः	( धेणोः )	पंचमः । प ।
१ प्रथमः	( धेणोः )	मध्यमः । म ।
२ द्वितीयः		गांधारः । ग ।
३ तृतीयः		ऋषभः । रे ।
४ चतुर्थः		पद्मः । स ।
५ पंचमः	( मध्यः )	निगादः । नि ।
६ षष्ठः	( अतिस्वार्थः )	धैवतः । ध ।
७ सप्तमः		पंचमः । प ।

( क्रुष्टः ) तद्योसौ क्रुष्टतम इय साप्तः स्वरस्तं रेया उपजीवन्ति । प ।

१ योऽध्वर्योर्षां प्रथमस्तं मनुष्या उपजीवन्ति । म ।

२ यो द्वितीयस्तं गन्धर्वाप्तरसः उपजीवन्ति । ग ।

३ यो तृतीयस्तं पशवः ( तुपमः ऋषभः )

उपजीवन्ति । रे ।

४ यश्चतुर्थस्तं पितरो ये चाण्डेपुशोरते । स ।

५ यः पंचमस्तमसुररक्षांसि ( निगादः ) उपजी-

वन्ति । नि ।

( अन्वयः ) योऽन्वयस्तमोपधयो धनस्पतयथा-

न्यज्यात् ( सामविधान ग्रहणैः ) । घ ।

सामगतके ये स्वरमण्डल हैं । उद्गाता इन स्वरोंमें साम-

गान करते हैं। छँ सामविकार होते हैं, वे दशमकार हैं—  
विकार - विलेपण - विकर्षण - अभ्यास - विराम - स्तोम ।

१ विकार- “ अग्ने ” का “ ओसायि ” होता है ।

२ विलेपण- “ वीतये ” का “ वोयि तोया-  
रधि ” होता है ।

३ विकर्षण- “ ये ” का “ या२रधि ” होता है ।

४ अभ्यास- बार बार बोलना, जैसे “ तोयारधि ।  
तोयारधि है ।

५ विराम- जैसे “ गृणानो हव्यदातये ” को  
“ गृणानोह । वपदातये ” ऐसा बोलते हैं, यद्यपि मूल  
मन्त्र में “ गृणानोह वपदातये ” ऐसा रूप नहीं है, किन्तु  
भी गानके लीकर्वकें लिए बीचमें ही तोड़ दिया जाता है, इसे  
विराम कहते हैं ।

६ स्तोम- ऋचाओंमें न आये हुए अक्षरोंको बोलना ।  
जैसे “ ओ होवा । हाऊ ” इत्यादि ।

सामवेद गानरूप निस्त-रेतु है, पर सामवेद जो आज  
पुस्तकके रूपमें है, वह तोकेवल ऋचाओंका संग्रह है । इनमें  
एक भी सामगान नहीं है । जिन मंत्रोंके आधार पर गान  
होते हैं, वे “ योनिर्मन्त्र ” हैं । अर्थात् सामवेदके ये मन्त्र  
गाने नहीं जाते हैं, अपितु इनके आधार पर बने हुए जो गाने  
हैं, वे गाने जाते हैं । ऋषियोंने इन योनिर्मन्त्रोंके आधार पर  
हजारों गाने बनाये हैं । वे आज सामगान कहे जाते हैं ।

सामवेदमें १८७५ मन्त्र हैं, उन मंत्रों पर करीब करीब  
५००० सामगान बने हैं । “ कौथुमी ” शाखाका यह  
सामवेद है और इस पर ही चार हजार गाने बने हैं, दूसरी  
“ राण्ययणी ” शाखाका सामवेद दूसरा है, और उन पर  
भी ५००० गाने पुष्कल बने हैं । इस प्रकार सामवेद अनेक है  
और उसके गाने भी अनेक हैं । वे सामगान जिस ऋषिने  
बनाये उसके नामसे वे गाने आज भी प्रसिद्ध हैं, जैसे  
“ गोतमस्य पर्कम्, वद्व्यपस्य वार्हपि ” इत्यादि । ये सब  
“ आमगान, आरण्यकगान, उद्भागान, उद्भागान ”  
आदि नामसे प्रसिद्ध हैं ।

सामवेदके मंत्र सत्र ऋषेयदेवते ही लिए हुए हैं और करीब  
१० मन्त्र भी ऋषेयदेवकी आश्वलायन शाखामें नहीं मिलते  
घांस्वायण शाखामें मिलते हैं । सामवेद यह कि सामवेद  
ऋषेयदेवके मंत्रोंका ही संग्रह है । अतः सामवेदके जो मन्त्र हैं  
उन्में अलावा जो ऋषेयदेव या ऋषेयदेवोंके मन्त्र हैं, उनका भी  
गान किया जा सकता है अर्थात् जितने पावबद्धमन्त्र हैं उन  
सब पर सामगान बन सकते हैं ।

## मंत्र और सामगान

ऋषेयदेवके मन्त्र जो सामवेदमें आये हैं, उन पर किस तरहके  
गान बने हैं, वह यहाँ बिलाले हैं—

ऋषेयदेवका मन्त्र—

अग्ने आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

नि होता सस्ति वर्हिषि ॥ ( ऋ. ६।१।१० )

सामवेदका मन्त्र ( सामयेति )

अग्ने आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

नि होता सस्ति वर्हिषि ॥ ( ऋ. ६।१।१० )

इस मन्त्रके सामगान—

( १ ) गोतमस्य पर्कम् ।

आयाहि । आयाहीऽऽ । वोइतोयाऽऽऽ ।

तोयाऽऽऽ । गृणाना ह । वपदातोयाऽऽऽ ।

तो याऽऽऽ । नाइ होवासाऽऽऽ । रसाऽऽऽ ।

वाऽऽऽऽ आँ होवा । हाँऽऽऽऽऽऽ ॥ १ ॥

( २ ) वद्व्यपस्य वार्हपिम्—

अग्ने आयाहि वी । तयाइ । गृणानो हव्यदाताऽ

ऽऽयाइ । नि होता सस्ति वर्हीऽऽऽऽऽऽ । वर्हीऽऽ

इपाऽऽऽऽ आँ होवा । वर्हीऽऽऽऽऽऽऽऽऽ ॥ २ ॥

( ३ ) गोतमस्य पर्कम् ।

अग्ने आयाहि । वाऽऽऽऽऽऽऽऽ । गृणानो हव्य-

दाऽऽ ताऽऽऽऽ । नि हीताऽऽऽऽऽऽ । त्साऽ-

ऽऽऽऽ इवाऽऽ । हाऽऽऽऽऽ इपाऽऽऽऽऽऽ ।

यहाँ प्रथम ऋषेयदेवका एक मन्त्र दिया है, वही मंत्र साम-  
वेदमें गानेके लिए लिखा गया है । यहाँ सामवेदके अक्षरोंपर  
जो अंक हैं, वे अक्षरोंके, अनुवाकके आधार पर लिखे गये  
हैं । ऋषेयदेवमें जो स्वर नीचे और ऊपर हैं, उन्हींकी  
सामवेदमें अक्षरोंके द्वारा बिलाला गया है । जो ऋषेयदेवमें  
अनुवाकका निर्वाह नीचेकी लपेट (-) है, उसके लिए

सामवेदमें ३ अंक है। ऋग्वेदमें उदात्तके लिए कोई चिह्न नहीं है, सामवेदमें उसके लिए १ का अंक है। ऋग्वेदमें ह्यदितके लिए लट्टी देता ( १ ) होता है, उसके लिए सामवेदमें २ अंक है, जैसे—

अग्र आ याहि वीतये  
 १३ १ १ ३ १ १  
 अग्र आ याहि वीतये

उ अ उ स्व प्र अ उ सु

“ उ ”— उदात्त, “ अ ”— अनुदात्त, “ स्व ”— स्वरित, “ प्र ”— प्रचय “ सु ”— सप्रत्यय के स्वर है। ऋग्वेदमें जो स्वर नीचे भी ऊपरकी देखाते दिसाये गये हैं, जहाँको सामवेदमें अंकों द्वारा दिखाया गया है। चिह्नमें करक होने पर भी उच्चतारपमें कोई करक नहीं है। सामवेदके अंक गानके अंक नहीं हैं, यह यहाँ ध्यान देने योग्य बात है।

ऊपर गीतमके वी और कश्यपका एक ऐसे तीन सामगान बिधे हैं। सामगान तान बालाय आवि स्वरोंमें गाये जाते हैं। भूतमंत्र गानोंमें विद्वत हो जाते हैं, इसलिये उनका अर्थ, भाषार्थ वीर स्पष्टीकरण नहीं हो सकता।

### सामगानके अनेक भेद

“ सहस्रवर्मा सामवेदः ” इस प्रकार पतंजलिने अपने व्याकरण महाभाष्यमें कहा है। सामगानके हजारों भेद हैं। गायक प्रवीण होनेके बाद अपने गायनका नया रंगतैय्यार करता है। ऐसे अनेक उत्तम गायक उसके अनेक प्रकार बनाते हैं। इसीलिये सामवेदको “ सहस्रवर्मा ” कहा है। उसके प्रकार “ गीतमस्य पक्के, कदपपस्य पादिपं ” आदि नामसे दिखाये हैं। गीतमका सामगान पुषप् और कश्यपका सामगान पुषप् है। इस प्रकार अनेक गान हो सकते हैं।

### सामवेदकी शाखा

सामगानके प्रकार बनेके होनेके कारण उसकी शाखायें भी बहुत हैं और अति प्राचीनकालसे इन अनन्त शाखाओंका प्रचलन होता आया है। चरणल्यूहमें शाखाके नियममें इस प्रकार लिखा है—

- १ सप्त सामवेदस्य शाखासहस्रं आसीत् ।
- २ राणायणीयः, सात्यमुषयाः, कालापः, महाकालापः, कौथुमाः, लांगलिकादचेति । कौथुमानां षट् भेदाः भवन्ति—साराणायणीयाः, यात-

रायणीयाः, धैपृताः, प्राचीनाः, तजसा, अनिष्टकादचेति ।

इस तरह सामगानके पहले हजार भेद थे, पर वे सब धीरे धीरे नष्ट होते चले गए और अब केवल उसके २-३ भेद ही उपलब्ध हैं। और उक्त सामगान करनेवाले ती उंचलियों पर गिने जा सकते हैं। बलिग भारतमें विशेषकर मंसूरकी तरफ षोडशे रह गए हैं।

सामवेदकी तेरह शाखायें हैं, यह “ साम - तर्पण - विधि ” में लिखा है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

- १ राणायण, २ दादपुमुष्य, ३ व्याल, ४ भाशुरि, ५ औलुण्डी, ६ मौत्सुलवी, ७ भानुमान-बीवमन्वय, ८ काराटि, ९ मशकगार्य, १० चार्पगव्य, ११ कुयुम, १२ दालिहोच, १३ जैमिनी।

इन तेरह शाखाओंमेंसे आज, “ राणायणी, कौथुमी और जैमिनीय ” ये तीन शाखायें उपलब्ध हैं। चरणल्यूहमें सामवेदकी जो हजार शाखायें कही गई हैं, वे साम्य नहीं हैं, यह बात थंयलके प्रसिद्ध विद्वान् सत्यवत सामभमीने सिद्ध करके दिखाई है। पुराणोंमें वीर भी सामकी शाखाओंके नाम मिलते हैं, वे विचारणीय हैं—

इन शाखाओंके गानोंमें बहुत भेद है। जैसे—

कौथुमी	राणायणी
हाउ	हापु
राड	रापि
वानेपु नो	वापेपु नो

यह पाठभेद इन दोनों शाखाओंके गानोंमें मिलता है।

सामवेदमें ऋग्वेदके बालिलियमेंसे भी कुछ मंत्र आए हैं, उन परसे ऐसा दीखता है कि बालिलियके मंत्रोंका समानता ऋग्वेदमें होनेके बाद इस सामवेदका संरक्षण हुआ है।

### ऋग्वेदमें सामका उल्लेख

ऋग्वेदमें सामका उल्लेख अनेकबार आया है—

- १ अंगिरसां सामभिः स्तुयमानाः । ( देवाः ) ।  
( ऋ. १।१०७।२ )
- २ अंगिरसो न सामभिः । ( ऋ. १।०७।५ )
- ३ उभौ वाचो वदति सामगा इव गायत्रं च र्दुमं चानुराजति ।
- ४ उद्गातेषु शकुने नाम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु दांससि । ( ऋ. २।४३।२-२ )

“ वह पक्षी सामगानेवालेके समान गायत्री और त्रिष्टुभ् इन बोधो छन्दोंमें साम गाता है और उसके कारण वह बोधित होता है । हे शकुने ! तू उड़वाताके समान सामगान करता है । तू ब्रह्मपुत्रके समान दत्तके सदनमें गाता है ”

५ यो जागार तनु सामानि यन्ति ।

( ऋ ५।४५।१४ )

“ जागृत रहनेवालेके पास ही साम जाते हैं ” ।

६ तमेव ऋषिं तमु प्रह्लाणमाहु- यश्चान्यं सामगां उफथशासम् ।

( ऋ १०।१०७।६ )

“ उसीको ऋषि, उसीको ब्रह्मा, उसीको वत करनेवाला, उसीको सामगायक और स्तोत्र बोलनेवाला कहते हैं । ”

७ उपगासिप्रत् श्रवस्त्वाम गीयमानम् ।

( ऋ ८।८।१।५ )

८ यूय ऋषि अवथ सामधिप्रम् । ( ऋ ५।५।१।४ )

“ सामगान करो, और सामगान सुनने दो । सामगानमें कुशल ब्राह्मण ऋषिको तुम रखा करो ” ।

९ एतो न्विन्द्र स्तवाम शुद्ध शुद्धेन साक्षा ।

( ऋ ८।९।५।७ )

१० इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते वृहत् ।

( ऋ ८।९।८।१ )

“ शुद्ध साम गाकर तेरी हम स्तुति करते हैं । तानी इन्द्रको बृहत् नामक सामका गान करके दिखाओ ” ।

११ वृहस्पति सामभिः ऋचो अर्चतु ।

( ऋ १०।३६।५ )

१२ अर्चन्त एके महि साम मन्वत ।

( ऋ ८।२९।१० )

“ सामगानके पुत्रयनोय बृहस्पतिकी पूजा हो । कोई महान् सामका गान करते हैं । ”

१३ आगूष्य शवसानाय साम । ( ऋ १।६।२।२ )

१४ ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः । ( ऋ १।१४।७।१ )

१५ गायत्रेण भति मिर्मति अर्कं अर्केण साम त्रेष्टुमेन चावम् । ( ऋ १।१६।५।४ )

१६ ये न पर- साम्नो विदुः । ( ऋ १।२३।१।६ )

“ महा बलवान् इन्द्रके लिए आगूष्य सामका गान करो । यज्ञमें सामगानको सुनकर देव शान्तिवत् हो गए । गायत्रीके

अर्कं बनाते हैं, अर्कते साम और मंत्रधृते यात्री उत्तम होती है । ये सामकी अपेक्षा और किस्तीकी धेठनहीं समझते ” ।

१७ त्वष्ट्राजन्त् साम्न- साम्नः कविः ।

( ऋ २।२३।१७ )

१८ साम कृष्वन् सामन्यो विपाथित् ऋव्धेति ।

( ऋ २।९६।२२ )

१९ परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।

( ऋ १।११।१२ )

२० स हि द्युता निद्युता वेति साम ।

( ऋ १।१९।२ )

२१ तस्मात् यद्वात् सर्वदुत् ऋच- सामानि जक्षिरे । ( ऋ १।१९।१९ )

“ स्वपदाने तुमे सामका तानी बनाया है । सामका निर्माण करते हुए सामगायनमें भ्रष्टान् तानी गान करता हुआ आगे होता है । सामगान जिससे दूर तक सुनाई पड़े, इस तरहले तानी जोरसे स्तोत्र बोलते हैं । यह इन्द्र प्रकाशमान् विद्युत्के समान आगूष्य लेकर साम सुननेके लिए आता है । उस सर्व द्युत यतसे आका और साम उत्पन्न हुए ।

२२ अशीतिभिः तिसृभिः सामगेभिः इष्टापूर्तं

अवतु- नः । ( अथर्व २।११।४ )

२३ ऋच साम यजामहे याम्या फर्माणि कुर्वते ।

( अथर्व ७।५।५।१ )

२४ वृहत् परित्सामानि पष्टात् पंचाधि निर्मिता ।

( अ ८।९।४ )

२५ वहु सामानि यदहं वदन्ति । ( अ ८।९।१।६ )

२६ सामानि बस्य लोमानि । ( अ ९।६।२ )

“ ८०×३ = २४० गायत्रीके साथ इष्टापूर्तं हपारी रखा करें । ऋचा और सामके-हृष यजन करते हैं, जिससे हम कर्म करते हैं । छडे बृहत्के आधार पर पांच प्रकारके साम हमने बनाये हैं । छे साम छे दिनके यज्ञमें चलते हैं । साम जिसके सोम है । ”

२७ सपानह ऋक्सशितः सामतेजा ।

( अ १०।५।३० )

२८ यत्र ऋचयः प्रथमजा ऋच- साम यजुर्मही ।

( अ १०।७।१४ )

२९ साम्ना ये साम संधिदु- अजास्ताद्वृष्टो क्व ।

( अ १०।८।४।१ )

२० यदा ससुद्रे मानुस्यश् ऋचः सामानि विभ्रती ।

( अ. १०।१०।१४ )

२१ ब्रह्मणा परिहृता नाम्ना पर्युटा ।

( अ. ११।३।१५ )

“ शत्रुओंको मारनेवाला, श्रद्धाओं द्वारा तीक्ष्ण किया गया व सामनें तेजस्वी यह यनाया गया है । जिसमें प्रथम जन्मे हुए ऋषि, श्रद्धा, साम, यजु व पृथिवी आश्रित हैं । सामने सामको जो अच्छी तरह जानते हैं, उन्होंने अजन्माको भला कहा देखा ? धमा ( पाप ) श्रद्धा और सामको धारण करने भय समूहमें नृत्य करने लगी । ब्रह्मते उसे चारों ओरसे पराङ्ग लिया और सामने उसे घेर लिया । ”

२२ ऋचसामयजुर्विद्यु उज्जीथ प्रस्तुतं स्तुतम् ।

उच्छिष्टे स्वरसाम्नो भेदिद्वच सन्मयि ॥

( अ. ११।७।५ )

२३ ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।

( अ. ११।७।४ )

२४ शरीरं ब्रह्म मायिदश्व ऋचः सामायो यजुः ।

( अ. ११।८।२१ )

२५ ब्रह्मणो यस्यामर्चन्ति ऋग्भिः सामना यजुर्विदं ।

( अ. १२।१।३८ )

२६ तमूचद्वच सामानि च यजुषी च ब्रह्म चाजु-  
व्यचलन् ।

( अ. १५।६।८ )

२७ ऋचां च ये स साम्नां च यजुषां च प्रक्षणश्च  
त्रियं धाम मघति ।

( अ. १५।६।९ )

“ श्रद्धा, साम, यजु, उज्जीथ, प्रस्ताप, स्तोत्र, स्वर और सामके आलाप उच्छिष्टमें हैं । ये मूत्रमें आर्षे । श्रद्धा, साम, छव और पुराण मनुष्यके साथ उच्छिष्टमें उत्पन्न हुए । श्रद्धा साम और यजु ये ब्रह्मजान शरीरमें प्रस्थित हुए । जिस भूमिपर श्रद्धा, साम और यजु जाननेवाले ब्राह्मण पतकर्म करते हैं । उसके पीछे श्रद्धा, साम, यजु और ब्रह्म चले । यह श्रद्धा, साम, यजु और ब्रह्मका त्रिप धाम होता है । ”

इन मंत्रोंमें ऋचा, साम, यजु और ब्रह्म ये चार वेदके वाचक शब्द आये हैं । इनमें कुछ मंत्रोंमें ये वेदोंके वाचक हैं, सो कुछ मंत्रोंमें ये शब्द उन उन वेदमंत्रोंके वाचक हैं । हमारा प्रस्तुत विषय सामवेद और सामगान है । ऊपरके कुछ मंत्रोंमें सामवेद ऐसा भी अर्थ है ।

तत्साचञ्चत्सर्वस्तुतः ऋचः सामानि जशिरे ।

( अ. १५।६।१३; अ. १०।१०।६; यजु ३।१७ )

२ । साम. हिचो भूमिका ]

सामानि यस्य लोमानि । ( अ. १०।७।२० )

ऋचः सामानि छन्दांसि । ( अ. ११।७।४ )

इन मंत्रोंमें “ साम ” का “ अर्थ ” सामवेद ” है ऐसा प्रतीत होता है । बाकीके मंत्रोंमें सामगानके वाचक “ साम ” अथवा “ सामानि ” से पर है । इन मंत्रोंमें यह स्पष्ट होता है कि श्रद्धाओंके आधारसे सामगान करनेकी पद्धति वैदिककालमें धारु थी और सामवेद भी बन गया था । यज्ञमें जो ऋचवेदके मंत्र गाये जाते हैं, उनका संग्रह यह सामवेद है । सामवेदकी शनैक आलाप प्रचलित थीं और उनकी संहितायें भी पुरातन बनी हुई थीं ।

ऋचवेदमंत्रोंमें सामगानके नाम “ वैरुषं, वृहत्, गौर-  
वीति, रैवतं, अर्कं, गायत्रं, इलोकं, भद्रं ” इत्यादि आये हैं, इसप्रकार अथर्ववेदके मंत्रोंमें भी सामगानके नाम मिलते हैं, यजुर्वेदमें रथन्तरं ( यजु. १०।१० ) ; वृहत् ( य. १०।११ ) ; वैरुषं ( य. १०।१२ ) ; वैराजं ( य. १०।१३ ) ; वैखानसं, धामदेवं, यज्ञायज्ञियं ( य. १२।४ ) शाफ्यरं, रैवतं ( य. १०।४ ) ; गायत्रं, गौरिचीतं, अभा-  
यतं, क्रौंदां, सन्नस्थापं, प्रजापतेरुदयं, इलोकं, अजु-  
इलोकं, भद्रं, राजन्, अर्ष्यं, इलान्दं, इत्यादि साम-  
गानके नाम आये हैं,

वैतरेय शाक्षणमें, ‘ वृहत्, रथन्तरं, वैरुषं, वैराजं, शाफ्यरं, रैवतं, गायत्रं, इयैतं, नोघलं, वीरयं, यौथा-  
जयं, अग्निष्टोमीयं, भासं, विकर्णं ” इत्यादि नाम भी मिलते हैं ।

ये नाम उस उस सामगानकी विशिष्टता दिखाते हैं । ऋचवेद आदि में आये हुए वर्णोंमें यह निश्चय होता है कि सामगानकी देवीकी प्रार्थना की जाती थी । यज्ञमें सोमरस निकालकर, उसमें पानी मिलाकर छानकर व दूधके साथ, मिलाकर वह पीनेके लायक होने तक सामगान चलता था और वह धरते सुनाई पड़ता था । पापन निरसवेह उत्तम होता था । कुछ लोगोंकी धारणा है कि सामगानकी पद्धति शर्वाचीन है, पर यह उबकी धारणा गलत है ।

### सामवेदकी स्वरगणना

सामवेदकी स्वरगणना बहुत उत्तमतासे की गई है । उसमें सावधानीसे गणना कहीं और नहीं बिलाई देती है । यह गणना कैसी है, वैदिक—



उपनिषद् मिलकर " ताण्ड्य महाब्राह्मण " होता है। यद्विद्याब्राह्मणमें अद्वय कर्माओंका संग्रह होनेके कारण उसे " अद्भुतब्राह्मण " भी कहते हैं। सामवेदके दूसरे षाहणोंका दूसरा नाम " अनु ब्राह्मण " भी है। शंभुनीय उपनिषद् ब्राह्मणमें " केनोपनिषद् " है। इस शंभुनीय शाखाका दूसरा नाम " तयस्कार शाखा " भी है, इसलिये केनोपनिषद्को तयस्कारोप केनोपनिषद् भी कहते हैं।

### सामवेदके सूत्रग्रंथ

( १ ) मद्राकण्डोपसूत्र, ( २ ) श्रुद्रसूत्र, ( ३ ) छाद-  
यायन श्रौतसूत्र, ( ४ ) गोभिलोप गृह्यसूत्र। और राधा-  
यणोप शाखाके ( १ ) द्राह्यायण श्रौतसूत्र, ( २ )  
खादिरगृह्यसूत्र, ( ३ ) पुष्पसूत्र । ये सामवेदके सूत्रग्रंथ  
" प्रातिशाख्य " के नामसे भी प्रसिद्ध हैं।

### वेदमंत्रोंके अर्थ

वेदमंत्रोंके अर्थके सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। शास्त्रवर्गमें वेदोंको एक अपनी भिन्न शैली है। यह शैली या प्रक्रिया सामग्र्यमें आजाय तो फिर मतभेदका कोई कारण नहीं रहता। तब प्रथम वेदमंत्रोंने ही कहा है कि साथ साथ एक है। और कवियोंने उस एक तत्वके अनेक गुणोंको देखकर उसके अनेक नाम रख दिए हैं। उदाहरणार्थ—

इन्द्रं मित्रं यरुणं अग्निमाहुः अथो दिव्यः स  
सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सत्त्वं त्रिधा यहुधा वदन्ति  
अग्निं धर्मं मातरिदधानमाहुः ॥ ( ऋ. १।१६४।१७ )

( एकं सत्त्वं ) एक ही सद्गुण है, उस एक ही वस्तुका ( त्रिधाः यहुधा वदन्ति ) ज्ञानी लोग अनेक नाम देकर वर्णन करते हैं। उसी एक तद्गुणको ज्ञानी इन्द्र, मित्र, यरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, धर्म, मातरित्वा आदि नामोंसे वर्णित करते हैं।

इस मंत्रने वेदकी प्रक्रियाका यथायं वर्णन किया है। अर्थात् अग्नि, वायु, इन्द्र, यम आदि नाम उस एक परमेश्वरके हैं और इन नामोंसे उनके गुणोंका वर्णन हुआ है।

मत्र अग्नि देवताका ही, अथवा इन्द्र देवताका ही, उन मंत्रोंका मुख्य भाव परमात्मा परक ही है, यह यहाँ ध्यान देने योग्य है। अग्निको " विश्वयेन्द्राः " कहा है। " विश्व-  
येन्द्राः " का अर्थ है " सर्वज्ञ "। अग्नि सर्वज्ञ ग हीकर " परमात्मा सर्वज्ञ है " यह ऊपरके मंत्रमें कहा है।

सर्वे वेदा यत्प्रमामनान्ति तर्षानि सर्वाणि च  
यद्गन्ति । यद्विच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत् ते  
पदं संग्रहेण धर्षामि ओम् इत्येनम् ॥

( ऋ. उ. २।१५ )

" सब वेद जिस परका वर्णन करते हैं, सब प्रकारके तप जिसके लिए किए जाते हैं, ब्रह्मचर्यका पालन जिसकी प्राप्तिकी इच्छासे किया जाता है, उस परको मैं संक्षेपसे तेरे लिए कहता हूँ कि यह " ओम् " है "। अर्थात् " ओम् " शब्दसे जिस तत्वका संकेत है उसी परमात्माका वर्णन सब वेद करते हैं। सब तपधर्मों उसीके लिए की जाती हैं और ब्रह्मचर्यका पालन भी उसीके लिए किया जाता है। यही धार्यके मंत्रमें प्रतिपादित है—

तदेवाग्निः तदादित्यः तद्वायुः तद्ब्रह्ममाः ।  
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः सः प्रजापतिः ॥

( यजु. ३२।१ )

( तत् एव अग्निः ) वह ब्रह्म ही अग्नि, आदित्य, वायु, ब्रह्ममा, शुक्र, ब्रह्म, आप और प्रजापतिपदोंसे वेदमंत्रोंमें वर्णित है "। अर्थात् अग्नि, आदित्य, वायु आदि नाम यद्यपि भिन्न भिन्न, हैं तथापि उन विभिन्न नामोंसे उस एक ही ब्रह्मका वर्णन वेदोंमें किया गया है। यही मंत्राणोपनिषद्में भी स्पष्ट किया है—

एष खलु आत्मा ईशानः शंभुर्भयो रुद्रः ।  
प्रजापतिर्ब्रह्मसूद्र हिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो  
हंसः शान्तो विष्णुः नारायणोऽर्कः मन्विता  
धाता स्रष्टा इन्द्र इन्द्ररिति ॥ ( मंत्राणोप. ५।८ )

" यही आत्मा ईश्वर, शंभु, अर्क, स्रष्टा, प्रजापति, विश्व-  
स्रष्टा, हिरण्यगर्भ, सत्य, प्राण, हंस, शान्त, विष्णु, नारायण, अर्क, मन्विता, धाता, स्रष्टा, इन्द्र, इन्द्र आदि नामोंसे वर्णित है। " इस विवेचनासे स्पष्ट है कि अग्नि, इन्द्र आदि नामोंसे मुख्यतः एक आत्मा अर्थात् परमेश्वरका ही वर्णन किया जाता है। यह ही श्री यास्कान्वयं अनेके निवेदनमें करते हैं।

महाभाष्योद्देश्यतायाः एक आत्मा यहुधा स्तूयते ।  
एकस्य आत्मनः अन्ये देवा प्रशंगानि भवन्ति ॥

...आत्मा एव एषां रथो भवति, अहमा अश्वः,  
आत्मा आधुयं, आत्मा इपयः, आत्मा रुचं देवस्य  
( निरुक्त )

" देवोंके महान् भाव्यके कारण, महान् सामर्थ्यके कारण एक ही आत्माको अनेक प्रकारसे स्तुति होती है। एक

आत्माके इतरे देव अण होते हैं । आत्मा हीं इतका रथ, अश्व, अस्त्र, धान और सब कुछ आत्मा ही है । ”

इस प्रकार वेवके वर्णनोंका तात्पर्य समझना चाहिए । वेवमंत्रोंमें जो रथ, घोड़े आदिकोंका वर्णन है, वे सब आलंकारिक हैं । आत्माकी शक्ति बहुत बड़ी है, और यह उन उन रथोंमें प्रकट होती है, ऐसा समझना चाहिए ।

इन्द्र घोड़ोंके रथके अणक यत्नोंमें पट्टया, ऐसा वर्णन यदि कहेंगे है तो इन्द्र अर्थात् आत्मा ही वहाँ पट्टया, यही सत्यार्थ है और उसके रथ, घोड़े, चाचूक तारखों आदि सब उसकी शक्तिके आलंकारिक वर्णन हैं । उसी प्रकार आत्मा कहीं जाता जाता नहीं, वह तो सर्वत्र है, इसलिए उसका जाना जाना भी आलंकारिक ही है ।

### अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत

अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि देव विश्वमें कार्य करते हैं । उनका वर्णन वेवमंत्रोंमें है । ये देव उस धर्मव्यापक विश्वात्माके विराट् देहमें उसके अवयव बन कर रह रहे हैं । सूर्य उसकी आस है, वायु उसका प्राण है, पृथ्वी उसका पाँव, अन्तरिक्ष पेट और शूलोम उसका मस्तक है । इस प्रकार यह विराट् पुण्य है । और उसके अवयव अग्नि, वायु, इन्द्र आदि देव हैं । इससे यह समझमें आजाएगा कि वेव मंत्रोंमें अग्नि आदि देवोंका वर्णन न होकर विश्वात्मा विराट् पुण्यके अवयवोंका ही वर्णन है ।

फितीकी आस अथवा फानका वर्णन जिसप्रकार किसी अवयवका न होकर उस पूर्णपुण्य का ही वर्णन होता है, उसी प्रकार अग्नि, वायु, इन्द्रादि देवोंका वर्णन उसी विश्वात्मा विराट् पुण्यके विराट् शरीरका वर्णन है । यह विराट् पुण्यका वर्णन आधिवैवत वर्णन है । यह विश्व देवका वर्णन है । प्रत्येक देवता सब देहमें कहा रहते हैं, यह समझना चाहिए और उस भाषका यह वर्णन है यह जानें ।

ये सभी देव मानव शरीरमें अशरूपमें हैं—

सदाँ शस्त्रिभन्देधता गावो गोष्ठ इवासते ॥

( अथर्व. ११।८।१२ )

“ सब देवता इस मानवी देहमें रहते हैं, जिसप्रकार गावें गोशालामें रहती हैं । ” सूर्य आँखमें, वायु नाकमें, विश्वमें जानमें, अग्नि मुँहमें, इन्द्र भुजा और छातीमें, चन्द्रमा दृष्यमें, अन्तरिक्ष उदरमें, पृथ्वी जल सान्धन और मृत्यु नाशमें इसप्रकार सब देव मानव शरीरमें अशरूपमें रहते हैं और इस देहमें कार्य करते हैं । अंति विश्वमें सब सब

देवताओंका रायण है, बिलकुल वंते ही इस मानव शरीरमें उन देवताओंके अशरूप देवोंका रायण है । देव चाहे बड़े हों या अशरूप उनके देवत्वमें कोई फरक नहीं पड़ता । यह वहाँ ध्यानमें रखने योग्य है ।

वायानल घडा होता है और उसकी चिन्तारी छोटी होती है । पर दोनोंमें अग्निका अंश समान है । उसीप्रकार अग्नि इन्द्र आदि विश्वाल वेव विश्वमें ही और उनका अंश शरीरमें ही । दोनों स्थानों पर वेवत्वका अंश समान है । इस प्रकार अध्यात्म - मानवीय - शरीरमें वे ही वेव अशरूपमें ही और अधिदैवत - विश्व - में वे ही देव महान् आकारमें हैं ।

शरीरमें इन देवोंका ज्ञान पूर्णोंके कारण होता है और समान अथवा राष्ट्रमें ये सुनी मनुष्यके रूपमें वीसते हैं, अहं समझनेके लिए गोवे तर्जिका ही है—

अध्यात्ममें	अधिभूतमें	अधिदैवतमें
वाणी	धक्ता	अग्नि
शीर्ष	दूर	इन्द्र
पुत्रेण्य	सैनिक	चरत्
प्राण	प्राणी	वायु
कारोपरी	कारोपार	श्वेटा
ज्ञान	ज्ञानी	ब्रह्मणस्पति
चिकित्ता	चिकित्सक	अश्विनी
पाँव	गुद्	पृथ्वी
रक्तपाहिनियाँ (रात्रियाँ)	नर्दियाँ	आर्य, जलप्रबह
भाष्य	भाषयान्	भग

इस प्रकार व्यक्तियोंमें गुणरूपमें, समाज और राष्ट्रमें गुणों-रूपमें और विश्वमें देवताके रूपमें वे देवता रहते हैं । उनका ज्ञान अत्यावश्यक है ।

वेवमंत्रोंमें जो वर्णन है वे आधिवैवत वर्णन है । ये ही वर्णन अशरूपमें - व्यक्तियों - में गुणरूपमें देवताके व्यक्तियों और व्यक्तियों-भौतिकमें अर्थात् समाज और राष्ट्रमें गुणी मनुष्योंके रूपमें देवताके हैं । इससे वेवमंत्रोंका सत्यार्थ समझमें आ जाएगा । इन हीनों स्थानोंमें अर्जुन हयक्षर वंते देवता चाहिए, उसे विचार करके निश्चित करना चाहिए । मंत्रोंमें पदोंके अर्थ इस दृष्टिसे देखने योग्य हैं । उदाहरणार्थ—

इन्द्रकः अर्थ

अध्यात्ममें “ इन्द्र ” का अर्थ “ लीघारम्भ ” है । इस आत्माकी शक्ति इन्द्रियमें है । इन्द्रकी शक्ति बिलालेके लिए यह इन्द्रिय दाव बना है । “ इवेंद्र ” इत शरीरमें



आत्माने छिद्र बनाये हैं । " मं देवता चाहता हूँ " आत्माके इस संकल्पके साथ ही मेरुकी जगह दो छेद हो गए । " मं दवातीच्छ्वासा कर्त्तव्या " इस संकल्पके कारण माथके स्थान पर छेद हो गए । इसप्रकार इसने इस शरीरमें अनेक छिद्र बनाये । इसलिये इसका नाम " इन्द्र-शुक्र " हुआ । उसका संक्षेप " इन्द्र " है । इस प्रकार यह इन्द्र शरीरमें जीवात्माके रूपमें है ।

अधिभूतमें अर्थात् समान जगत्वा राश्ट्रमें इन्द्र सुक्रके लिये, राश्ट्रकी स्वतंत्रताकी रक्षा करनेके लिये होनेवाली युद्धोंमें भाग लेनेवाला अतुल्य पराक्रमी वीर है । यह " इन्द्र-शुक्र " अर्थात् " शत्रुओंको फाड़नेवाला " पराक्रमी वीर है । यह सेनाको तैय्यार रखता है । शत्रुको हलचल पर मजर रखता है और उनका नाश करनेके लिये जो कार्य आवश्यक होते, हैं उन्हें करता है ।

आधिदेवतमें इन्द्र अण्यस्थानीय देवता बिजली है । यह मेघोंकी फौदभर पानी भरसाता है । जहाँ बिजली गिरती है वहाँ अण्यके गिरनेके समान शब्द होता है ।

इसप्रकार देवमंत्रोंके अर्थ अण्यस्थ, अधिभूत और अधि-देवत इन तीन क्षेत्रोंमें होते हैं । अण्यस्थका मतलब मान-बोध शरीरका वर्णन, अधिभूतका अर्थ मानवसमान अथवा राश्ट्रपरक वर्णन है । यहाँ " भूत " शब्दका अर्थ " प्राणी " सेना चाहिए । " भूत " का अर्थ " पंच महाभूत " नहीं । अधिदेवतका अर्थ है विद्वत् । देवोंके मंत्रोंमें आधिदेविक अर्थात् विद्वत्परक वर्णन है । इस वर्णनमें ही अण्य दोनों भाव समझने चाहिए—

### सोमदेवता

तम एक सता है । उतका मंत्र इसप्रकार है ।

१२७ सोमः पयते जनिता मतीनां

जनिता द्वियो जनिता पृथिव्याः ।

जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य

जनितेन्द्रस्य जनितोत् विष्णोः ॥ (श्व. १।१६।५)

" सोम सुद्व किया जाता है । वह बुद्धिमेंकी पैदा करने-वाला धूलोकी, पृथिवीकी, अग्निकी, सूर्यको, इन्द्रको और विष्णुको भी पैदा करनेवाला है " इस मंत्र पर वाक्क अपने निरुक्तमें इसप्रकार कहते हैं—

अथेतं महान्तमात्मानं पतानि सूक्तानि

पता क्रचोऽनु प्रवदन्ति ।

अथाध्यात्मं । सोम आत्मा अपि पतस्मादेव ।

- इन्द्रियाणां जनिता इत्यर्थः ॥ ( निरुक्त )

" इस महान् आत्माका हो वर्णन में सुक्त करते हैं । अण्यस्थ प्रकरणमें " सोम " आत्मा " है । वह इन्द्रियोंको पैदा करनेवाला है " और आगे स्पष्ट करते हैं—

महिषो मृगाणामिति अयमपि महान् भवति मृगाणां मार्गजकर्मणामिन्द्रियाणां । इयेनो मृधाणामिति इयेन आत्मा भवति श्यायते शान-कर्मणः । मृधाणि इन्द्रियाणि मृध्यतेशान-कर्मणः ॥ ( निरुक्त )

" मृगोंमें महिष बड़ा है । मृग अर्थात् खोजनेवाली इन्द्रियों, उन इन्द्रियोंमें यह आत्मा बड़ा है । इयेन मृगोंमें बड़ा है । मृगका अर्थ है शानके साथ इन्द्रियों, उनमें इयेन आत्मा है क्योंकि यह शान प्राप्त करता है । "

इसप्रकार मंत्रोंका अर्थ समझना चाहिए ।

### देवताओंका गुणवर्णन

अब सामवेदमें देवताओंको गुणवर्णन किया गया है । उसे बिल्लते हैं—

### इन्द्रके गुण

१ प्रचेताः [ १४१२ ]- शान्ती, विद्यास्थान, विशेष-चित्तन करनेवाला ।

२ शुक्रः [ १४१२ ]- बुद्ध, निर्दोषी ।

३ विश्वर्षणिः [ १४८७ ]- विश्वोप श्रेष्ठ ।

४ अशस्ति-हा [ १६३७ ]- विपत्ति दूर करनेवाला ।

५ सुगोपाः [ १७२० ]- उत्तम संरक्षण करनेवाला ।

६ नामधृतः [ १७९८ ]- नामसे सुप्रसिद्ध ।

७ क्रतिवयः [ १७९८ ]- श्रुत्यके अनुसार उन्नति करनेवाला ।

८ लोकेन्द्रवृत् [ १८०१ ]- जनताका कल्याण करनेवाला ।

९ अदाधुः [ १८०२ ]- जो स्वयं किसीसे शत्रुता नहीं करता ।

१० शिर्वणः [ १४३१ ]- स्तुत्य, प्रशंसनीय ।

११ महान् [ १३५९ ]- महान्, बड़ा ।

१२ महिष्ठः [ १३५१ ]- महान् ।

१३ जुनुया अश्रासुव्यः [ १३८९ ]- जगत्में ही शत्रुता न करनेवाला ।

१४ यदाः [ १४११ ]- पशुकी, विजयी ।

१५ चर्षणीधृतिः [ १४११ ]- मानवजातिकी धारण-बोध करनेवाला ।

१६ धाधुधानः [ १४११ ]- अपनी वास्तवसे बड़नेवाला ।

- १४ वृषभः [ १३६१ ] - बलवान्, बलके समान सशक्त ।  
 १८ वज्रवाद्युः [ १२२६ ] - वज्रके समान कठोर भुजाओंवाला ।  
 १९ भूर्योजः [ १४८४ ] - बहुत सामर्थ्यवान् ।  
 २० र्ययिः वृद्धः [ १४८७ ] - पराक्रमसे महान् ।  
 २१ श्रुपत् [ १४४२ ] - शत्रुओंको हरानेवाला ।  
 २२ महिषः तुविशुष्मः [ १४४६ ] - भैसेके समान पुष्ट और महान् शक्तिमान् ।  
 २३ शचीपतिः [ १५७४ ] - शक्तिमान् ।  
 २४ वृषा [ १३६० ] - बलवान्, महतोंकी कामनापूर्ण करनेवाला ।  
 २५ अमंयकरः [ १३६१ ] - अमय देनेवाला ।  
 २६ शयसः पतिः [ १४११ ] - सामर्थ्ययुक्त ।  
 २७ अनुसः [ १४११ ] - अपराजित ।  
 २८ असु-रः [ १४११ ] - बलवान्, शरीरसे दृष्टपुष्ट ।  
 २९ जनानां राजा [ १३५६ ] - लोगोंका राजा ।  
 ३० संवननः [ १३६१ ] - सेवाके योग्य ।  
 ३१ मयया [ १४५९ ] - धनवान् ।  
 ३२ अश्ववान्, गोमान्, यवमान् [ १४५२ ] - घोड़े, वाघ और गौ वातमें रखनेवाला ।  
 ३३ स्वपतिः गोपतिः [ १४८९ ] - सज्जनोंका पालक, गायोंका पालन करनेवाला ।  
 ३४ हरीणां पतिः [ १५१० ] - घोड़े पालनेवाला ।  
 ३५ अश्वस्य पौरः [ १५८० ] - घोड़ोंका उत्तम पोषण करनेवाला ।  
 ३६ गवां पुरुकृत् [ १५८० ] - गायोंका उत्तम पालन करनेवाला ।  
 ३७ ऋचीपमः [ १६४४ ] - बर्धनीय ।  
 ३८ मयः [ १६५७ ] - प्रसन्नवृत्ति धारण करनेवाला ।  
 ३९ सरखा [ १६६६ ] - बलवान् ।  
 ४० शाकी [ १६६६ ] - सामर्थ्यवान् ।  
 ४१ सक्षुब्धः धीरः [ १६८४ ] - सदा वृद्धनेवाला धीर ।  
 ४२ शिमी [ १६९६ ] - शिरस्त्राण धारण करनेवाला ।  
 ४३ तुविशुष्मः [ १७७२ ] - शत्रु बलवान् ।  
 ४४ तुविशुष्मः [ १७७२ ] - बड़े बड़े कार्य करनेवाला ।  
 ४५ शचीयः [ १७७२ ] - शक्तिवाली ।  
 ४६ श्विष्ठः [ १७७२ ] - शक्तिवाली ।  
 ४७ विदेपी [ १३६१ ] - शत्रुओंके द्वेष करनेवाला ।  
 ४८ अयकशी [ १३६१ ] - शत्रुओंकी शक्ति करनेवाला ।

- ४९ शत्रुः [ १३६१ ] - दुष्टोंका शत्रु ।  
 ५० मृधः सासृतिः [ १४८७ ] - शत्रुओंको हरानेवाला ।  
 ५१ वीरतरः नहि [ १५११ ] - जिससे बड़कर धीर कोई दूसरा नहीं है ।  
 ५२ अद्रिवः [ १३५४ ] - वज्रधारी, शस्त्रास्त्रधारी ।  
 ५३ चर्षणीसहः [ १३६१ ] - शत्रुसेनाको हरानेवाला ।  
 ५४ पृतनापाद् [ १४३३ ] - शत्रुसेनाका नाश करनेवाला ।  
 ५५ अग्निन्ः [ १४३० ] - शत्रुको हरानेवाला ।  
 ५६ शूरः [ १४३४ ] - वीर ।  
 ५७ सहावान् [ १४३४ ] - शत्रुको हरानेका सामर्थ्य अपने पास रखनेवाला ।  
 ५८ अमर्तं वस्युं शोषः [ १४३४ ] - निवर्तमें न चलने-वाले शत्रुओंको नष्ट करनेवाला ।  
 ५९ विश्वासु पृतनासु हव्यः [ १४९२ ] - सब युद्धोंमें सहायताके लिए चलने योग्य ।  
 ६० उन्नः [ १६०५ ] - उन्नधारी ।  
 ६१ सहस्रकृतः [ १६०८ ] - साहसके साथ करनेवाला ।  
 ६२ चर्षणि-प्रः [ १७९३ ] - सौम्यताका पोषण करनेवाला ।  
 ६३ अद्रयः वीरः [ १८५५ ] - शत्रुपर दया न करने-वाला वीर ।  
 ६४ शतमग्न्युः [ १८५५ ] - शत्रुपर सैकड़ों प्रकारसे क्रोध करनेवाला ।  
 ६५ अनुध्यः [ १८५५ ] - जिसके साथ युद्ध करना कठिन है ।  
 ६६ दुदृच्यवनः [ १८५५ ] - अपने स्वान परसे कठिन-तासे हिलनेवाला घोड़ा ।  
 ६७ अग्रतिष्कृतः [ १६२२ ] - जिसका प्रतिकार करना अशक्य है ।  
 ६८ प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः भमि अस्ति [ १६३७ ] - युद्धमें सब स्वर्ण करनेवाले शत्रुओंको मारनेवाला ।  
 ६९ सहस्रपन् [ १६३७ ] - शत्रुओंको धूर करनेवाला ।  
 ७० अनवीणाः [ १६४१ ] - युद्ध करनेमें कुशल ।  
 ७१ अनपच्युतः [ १६४३ ] - पराभूत न होनेवाला ।  
 ७२ अवार्यकनुः नरः [ १६४३ ] - जिसको कोई रोक नहीं सकता ।  
 ७३ वस्यु-हा [ १६६८ ] - दुष्टोंका नाश करनेवाला ।  
 ७४ वज्री [ १६६१ ] - वज्रधारी, शस्त्रधारी ।  
 ७५ स्विरः रणाथ संसृष्टः [ १६९८ ] - युद्धमें स्विर रहनेवाला, युद्ध करनेमें कुशल ।

- ७६ समूहसि [ १३९० ]- संगठन करनेवाला ।  
 ७७ ईशानकृत [ १४९३ ]- शासक निर्माण करनेवाला ।  
 ७८ तुविद्युम्नः [ १४९३ ]- अत्यन्त तेजस्वी ।  
 ७९ परमजया [ १४९२ ]- जिसके धनुषकी डोरी उत्तम है ।  
 ८० उमयाधी [ १३९१ ]- भौतिक और आध्यात्मिक ऐश्वर्य देनेवाला ।  
 ८१ वृत्रहा अहि अवधीत् [ १४५१ ]- वृत्रघातक इन्द्रने अहिका वध किया ।  
 ८२ नघनवर्ति पुरः बाह्योजसा यिमेद [ १४५१ ]- शत्रुके निष्पानके नगरकी इन्द्रने अपने बाहुबलसे तोड़ा ।  
 ८३ अग्रतीनि पुरुवृत्राणि हंसि [ १४५१ ]- बहुते वसिष्ठ शत्रुओंकी मारता है ।  
 ८४ चित्राभिः ऊतिभिः अघतात् [ १४५१ ]- अपने विश्वरूप रक्षणके साधनसे इन्द्र रक्षा करता है ।  
 ८५ सुम्नेषु नः आयामयः [ १४५१ ]- सुल और समृद्धिमें हमें बढा ।  
 ८६ ओजसा ऊर्वि युधा अभ्यवत् [ १४८८ ]- इन्द्र अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंकी युद्धमें जीतता है ।  
 ८७ शतक्रतुः [ १४५९ ]- सैकड़ महत्वपूर्ण कार्य करनेवाला ।  
 ८८ पुरां वर्चा [ १७१९ ]- शत्रुके नष्ट तोड़नेवाला ।  
 ८९ वृदा चित् आरुजः [ १७१९ ]- सुदृढ़ शत्रुओंकी भी उखाड़ फेंकनेवाला ।  
 ९० ते ध्रुवं तुरयन्ते [ १६३८ ]- तेरे बल शत्रुओंका नाश करते हैं ।  
 ९१ गोत्रमित् वषत्राहुः अजं जयन् ओजसा प्रमुद्यन्त [ १८५४ ]- शत्रुओंके किले तोड़नेवाला, वषत्रके समान शत्रु शत्रुओंवाला ही युद्धमें विजयी होता है और शत्रुओंकी नष्ट करता है ।  
 ९२ सप्रा राजा [ १७९५ ]- सभों पर एक साथ शासन करनेवाला ।  
 ९३ अनुत्तमन्मुः [ १७९५ ]- जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं होता ।  
 ९४ राधानां पतिः [ १६०० ]- धर्मका स्वामी ।  
 ९५ घट्टिध्रः [ १५७९ ]- निवातके सापन पात करनेवाला ।

- ९६ इन्द्रे विश्वा भूतानि येमिरे [ १५८८ ]- इन्द्रके आश्रयसे सब प्राणी रहते हैं ।  
 ९७ तुविर्कूर्मिः [ १७७१ ]- महान् कार्य करनेवाला ।  
 ९८ कर्तापहः [ १७७१ ]- शत्रुकी वृत्र करनेवाला, प्रलोभनोंमें न फँसनेवाला ।  
 ९९ त्विपीमान् [ १४८८ ]- तेजस्वी ।  
 १०० सप्रावाचन् [ १६२१ ]- एकदम फल देनेवाला ।  
 ये इन्द्रके गुण दाघक देखें। इन्हे मन्त्रसे धारण करनेपर ही शरीरमें बल बढता है और मनकी शक्ति बढती है ।

### अग्निके गुण

- १ अग्निः [ १३४३ ]- अपनी " अग्निः कस्मात् ? अग्रणीर्भवति " ( निरुक्त )  
 २ पावक [ १३४३ ]- पवित्र करनेवाला ।  
 ३ होता [ १३४३ ]- हवन करनेवाला, देवोंकी युसने-वाला ।  
 ४ कविः [ १३४६ ]- ज्ञाने, वृत्तवाँ ।  
 ५ मधुजितः [ १३४६ ]- मधुरभाषी ।  
 ६ प्रियः [ १३४९ ]- सत्करी प्रिय लगनेवाला ।  
 ७ नराशंसः [ १३४९ ]- सब अनुष्यों द्वारा प्रशंसित होनेवाला ।  
 ८ मनुर्हितः [ १३५० ]- मनुष्योंका हित करनेवाला ।  
 ९ प्रशस्तः [ १३७४ ]- प्रशंसित ।  
 १० सुरे द्यु [ १३७४ ]- वृत्ते बोलनेवाला, वृत्तवाँ ।  
 ११ श्रुहपतिः [ १३७४ ]- गृहस्वामी ।  
 १२ अयव्युः [ १३७४ ]- प्रगतिशील ।  
 १३ सु प्रतिच्छद्यः [ १३७४ ]- अत्यन्त धर्माधीप ।  
 १४ यविष्ठयः [ १३७५ ]- तपण ।  
 १५ दृश्यायः [ १३७५ ]- बल बढानेवाला ।  
 १६ शीतमा [ १३८१ ]- क्षान्ति सुल देनेवाला ।  
 १७ ओहसः पातु [ १३८१ ]- धारणसे रक्षा करनेवाला ।  
 १८ रणे रणे धनंजयः [ १३८२ ]- प्रत्येक युद्धमें विजयी ।  
 १९ भारतः [ १३८५ ]- नरग धोषण करनेवाला ।  
 २० अजरः [ १३८५ ]- कभी मृद न होनेवाला, हनेवाला तप्य रहनेवाला ।  
 २१ द्विष्टुतव् [ १३८५ ]- तेजस्वी ।  
 २२ द्रुमत् [ १३८५ ]- प्रकाशयुक्त ।

- २३ वृत्राणि अघनत् [ १२९६ ]- शत्रुको मारनेवाला ।  
 २४ सहस्र्यः [ १४१७ ]- शत्रुको हरानेवाला ।  
 २५ विश्वचर्षणिः [ १४१७ ]- सब जनोका हित करनेवाला ।  
 २६ सुभगः [ १४१७ ]- उत्तम भाग्यवान् ।  
 २७ सुदीदितिः [ १४१७ ]- उत्तम तेजस्वी ।  
 २८ श्रेष्ठशाचीः [ १४१७ ]- विशेष प्रकाशमान् ।  
 २९ प्रजायत् ध्रुव आभर . [ १३९८ ]- पुत्रपौत्रोत्से यून शप्त वे ।  
 ३० अपां-न-पात् [ १४१४ ]- जलोंको नीचे गिरने न देनेवाला ।  
 ३१ तनू-न-पात् [ १३४६ ]- शरीरको गिरने न देनेवाला ।  
 ३२ ऊर्जां-न-पात् [ १७१२ ]- बल कम न करनेवाला ।  
 ३३ द्विजग्ना [ १७७६ ]- द्विज, वे अरणिषोमं जप करनेवाला ।  
 ३४ ब्रुहंतार [ १०१५ ]- बुद्धोंको जानसे मारनेवाला ।  
 ३५ मातृपे जने हितः [ १४७४ ]- मनुष्योंका हित करनेवाला ।  
 ३६ घेषः [ १४७६ ]- विशेष कर्म करनेवाला ।  
 ३७ सुक्रतु [ १४७६ ]- उत्तम रीतिसे कर्म करनेवाला ।  
 ३८ चित्रमालुः [ १४९८ ]- उत्तम तेजस्वी ।  
 ३९ सहस्रकृता [ १५०३ ]- बल बढ़ानेवाला ।  
 ४० प्रचेताम [ १५१४ ]- विनोद शानी ।  
 ४१ गातुविचमः [ १५१६ ]- उत्तम रीतिसे मार्ग जाननेवाला ।  
 ४२ आर्यस्य वर्धनः [ १५१५ ]- शान्तिको बढ़ानेवाला ।  
 ४३ पांचजग्याः [ १५१९ ]- पाँचों जनोका कल्याण करनेवाला ।  
 ४४ ज्ञापिः [ १५१९ ]- जानी, श्रद्धा ।  
 ४५ पयमानः [ १५१९ ]- दृढता करनेवाला ।  
 ४६ घुरोहितः [ १५१९ ]- नेता, आगे रहनेवाला, आगे स्थापित किया हुआ ।  
 ४७ महागयः [ १५१९ ]- महान् घरवाला ।  
 ४८ स्वर्हक् [ १५१९ ]- आत्मबुद्धिवाला आत्मज्ञानी ।  
 ४९ स्वपतिः [ १५३३ ]- स्वयंशासित ।  
 ५० भूपणः [ १५४० ]- बलवान् ।  
 ५१ जातयेदाः [ १५६६ ]- जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है, उत्पन्न हुआको जाननेवाला ।

- ५२ शुचिः [ १५६७ ]- दृढ, पवित्र ।  
 ५३ ध्रुयः [ १५६७ ]- स्थिर ।  
 ५४ अमृतः [ १५६८ ]- अमर ।  
 ५५ जागृषिः [ १५६८ ]- जागृत रहनेवाला ।  
 ५६ विभुः [ १५६८ ]- व्यापक ।  
 ५७ विदपतिः [ १५६८ ]- प्रजाका पालन करनेवाला ।  
 ५८ जनानां जामिः मित्रः प्रियः [ १५१६ ]- लोगोंका प्रिय मित्र ।  
 ५९ दर्शतः [ १५३८ ]- सुखर, वर्तनीय ।  
 ६० मग्नाः [ १५४३ ]- आनन्दित, प्रिय ।  
 ६१ विमावसुः [ १५४३ ]- तेजस्वी ।  
 ६२ रौद्रः [ १५४६ ]- भयकर ।  
 ६३ भद्रः [ १५४६ ]- कल्याण करनेवाला ।  
 ६४ विश्वा साहान् अमृतः [ १५५८ ]- सब शत्रुओंको हरानेवाला, विजयी, न हरानेवाला ।  
 ६५ स्वामसु स्वासहिः [ १५६० ]- पुत्रमें विजयी ।  
 ६६ वरेण्यः [ १६१९ ]- श्रेष्ठ, ज्येष्ठ ।  
 ६७ अमित्रं अर्दय [ १४४८ ]- शत्रुका नाश कर ।  
 ६८ उरुहृत् [ १६४९ ]- बहुत कर्म करनेवाला ।  
 ६९ अरायोध [ १६६३ ]- शत्रुतिसे प्रबद्ध होनेवाला ।  
 ७० द्रुस [ १६९० ]- सुखर, वर्तनीय ।  
 ७१ अतया [ १७०८ ]- सत्यनिष्ठ ।  
 ७२ वैश्वानरः [ १७०८ ]- सबका नेतृत्व करनेवाला ।  
 ७३ वशी [ १७०९ ]- सबको अपने अधीन रखनेवाला ।  
 ७४ पावकयोधिः [ १७१२ ]- जिसका प्रकाश पवित्रता करनेवाला है ।  
 ७५ स्निहितिषु कृष्टिषु जग्मनासु दाशुपे गयं अरक्षत् [ १३८० ]- शत्रुके आक्रमण करने पर क्षातिके धरती रक्षा करता है ।  
 ये लिनके गुण भी अत्यन्त बोधप्रद हैं । मनुष्यको ये गुण अपने अन्तर बढ़ाने चाहिए ।
- सोमके गुण**
- १ जागृषि [ १३५७ ]- जागृत रहनेवाला ।  
 २ सक्षणिः वृत्राणि परि [ १३५७ ]- क्षाति करनेवाला वीर शत्रुको कुचलता जाता है ।  
 ३ भुक्तः [ १३५७ ]- वीर्य बढ़ानेवाला ।  
 ४ दिव्यः [ १३५७ ]- द्यूलोकमें रहनेवाला, पर्वतपर उपनेवाला ।

- ५ पौषुपः [ १३५७ ]- अमृतरूप ।  
 ६ स्तोमः आरः [ १३५८ ]- सोम रक्षण करता है ।  
 ७ बधेनः [ १३५९ ]- बल बढ़ानेवाला ।  
 ८ दक्षसाधनः [ १३६० ]- बल बढ़ानेका साधन ।  
 ९ वीरः [ १३६५ ]- धूरवीर ।  
 १० हरिः [ १३६५ ]- कुर्जोंका हरण करनेवाला ।  
 ११ प्रियः [ १३६५ ]- सर्वोंको प्रिय ।  
 १२ कवि [ १४०० ] शानी, बुरावर्ती ।  
 १३ रत्नघा [ १४०८ ]- रत्नोंको धारण करनेवाला ।  
 १४ दूरप्राम' [ १४०९ ]- शूरोंका समुदाय अपने साथ रखनेवाला ।  
 १५ सवैवीर' [ १४०९ ]- सब प्रकारसे वीर ।  
 १६ सहाजान् [ १४०९ ]- शत्रुको हराने की शक्तिते युक्त ।  
 १७ जेता [ १४०९ ]- युद्ध जीतनेवाला ।  
 १८ तिग्मामुधः [ १४०९ ]- तीक्ष्ण शस्त्र अपने पात रखनेवाला ।  
 १९ क्षिप्रधन्वा [ १४०९ ]- घनुषको बहुत शीघ्र चलानेवाला ।  
 २० समस्तु अपाल्हा [ १४०९ ]- युद्धमें शत्रुओंके लिए अग्रह ।  
 २१ घृततासु शत्रुन् सादान् [ १४०९ ]- युद्धमें शत्रुओंको हटानेवाला ।  
 २२ युवा [ १४१९ ]- बलवान् ।  
 २३ सुमेधा- [ १४२० ]- उत्तम बुद्धिमान् ।  
 २४ तेजिष्ठा- [ १४२४ ]- तेजस्वी ।  
 २५ यदासा यदास्तरः [ १४०३ ]- यगले यगत्स्वी ।  
 २६ दधुः [ १४४४ ]- भूरे रगका ।  
 २७ स्वतया [ १४४४ ]- अपनी शक्तिते शक्तिमान् ।  
 २८ अरुणः [ १४४४ ]- चमकनेवाला ।  
 २९ मनसः पतिः [ १४४४ ]- मनका स्वामी ।  
 ३० शुर्पा [ १४४४ ]- बलवान् ।

- ३१ सुमतिः [ १४४४ ]- उत्तम बुद्धिमान् ।  
 ३२ रक्षांसि अपघ्नन् [ १४३९ ]- राक्षसोंको मारने-वाला ।  
 ३३ अग्निग्रहा [ १४४७ ]- शत्रुओंको मारनेवाला ।  
 ३४ विष्य-चर्षणि- [ १४४७ ]- सज लोगोंका हित करनेवाला ।  
 ऐसा यह सोम है । सोमके ये गुण तोषरत पीनेवालोंमें बीजते हैं । वे गुण सोमके कारण मनुष्योंमें उपपन्न होते हैं, इसलिए ये गुण सोमके ही समझे जाते हैं ।  
 अन्य देवताओंका वर्णन सामवेदमें षोडश षोडश है इसलिए उनका विचार करनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं है ।

### अनुनासिक-सहित मुद्रण

सामवेदका मुद्रण अनुनासिक सहित परम्परासे होता आ रहा है । र, य, ष, ल, ह इन अक्षरोंसे पहले यदि मनुस्वार आ जाये तो उससे अनुनासिक हो जाता है । जैसे—

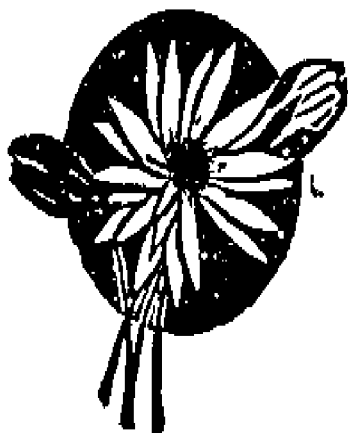
मन्त्रांक	अनुनासिकरहित	अनुनासिकसहित
१५	स्तोम वराय	स्तोमँवराय
२७	अपां रैतासि	अपाँरैतासि
२७८	शत शत	शतँशत
२	यसाया होना	यसायाँहोता

इसप्रकार अनुनासिक-सहित सामवेदका मुद्रण होना चाहिए ।

इसप्रकार सामवेदके विषयमें षोडशा परिचय यहाँ किया है । उसका वित्तार बहुत बड़ा हो जायगा । इसलिए इसका विचार करके यहाँ षोडशता ही परिचयव्यक्त विवरण प्रस्तुत किया है ।

निवेदन

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर  
 कम्पल-स्नाय्याय मण्डल, वारणे





# सामवेदका सुबोध अनुवाद

पूर्वार्चिकः ( छन्द आर्चिकः )

अग्नेयं कण्डूम् ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमपाठके प्रथमोऽर्धः ।

[ १ ]

( १-१० ) १, २, ४, ७, ९ भारद्वाजो बार्हस्पत्य, ३ मेघातिथि काण्व, ५ उशाना वाव्य, ६ धुवीतिपुष्टिमदा-  
वाद्दिग्दर्शी, तयोर्वाग्यतर, ८ यत्न काण्व, १० वामदेव ॥ अग्नि ॥ गायत्री ॥

- १ अग्ने आ याहि वीतये गृणानौ हव्यदातये । नि होता सस्ति वरिहिषि ॥ १ ॥ ( ऋ ६।१६।१० )
- २ स्वमये यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ २ ॥ ( ऋ ६।१६।११ )
- ३ अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुकतुम् ॥ ३ ॥ ( ऋ १।१२।११ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १ ] हे अग्ने ! ( वीतये आ याहि ) हवि भक्षण करनेके लिए तू आ, देवोंको ( हव्य-दातये गृणान् ) हवि देनेके लिए जिसको स्तुति की जाती है, ऐसा तू ( होता ) यगमें ऋत्विज होता हुआ ( वरिहिषि नि सस्ति ) यगमें आसन पर बैठ ॥ १ ॥

( १ ) वीति-— जाना, गति करना, उत्पन्न करना, उपभोग करना, खाना, साफ करना, बाटना ।

( २ ) हव्यदाति-— देवोंको हवि पढ़वाना, हवि देना । ( ३ ) होता-— बुलानेवाला, देवोंको अपने पास लानेवाला, । ( ४ ) वरिहि-— आसन, अन्तरिक्ष, जल, यज्ञ ।

[ २ ] हे अग्ने ! तू ( विश्वेषां यज्ञानां त्व होता ) सब यगोंमें देवोंको बुलानेवाला है, और ( देवेभि ) देवोंने ही तुझे (मानुषे जने हित ) मानवी जनोंके बीचमें स्थापित किया है ॥ २ ॥

[ ३ ] हम ( वृणीमहे-वृणुस्व ) सबको जाननेवाले, ( होतारं ) देवोंको बुलानेवाले ( अस्म्य यज्ञस्य सुकतुम् ) इस यगको उत्तम रीतिसे करनेवाले इस ( अग्निं ) अग्निको ( दूतं वृणीमहे ) दूत मानकर स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

- ४ अग्निर्वृत्राणि जह्वन्द् व्रियिणस्स्युर्विष्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।१६।२४ )
- ५ प्रेष्ठं वा अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।८।११ )
- ६ त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।११।११ )
- ७ एह्यु घृ व्रवाणि तेऽस इत्येतरा गिरः । एमिर्वर्षास इन्दुभिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ६।१६।१६ )
- ८ आ ते वस्ता मनो यमत्परमाचित्तवस्थात् । अग्न त्वां कामये गिरां ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।११।१० )
- ९ त्वामग्ने पुष्करादभ्यथवा निरमन्थत । सूर्ध्वं विश्वस्य वाधतः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।१६।१३ )
- १० अग्ने विवस्वदा भ्रामरभ्यमृतये महे । देवो हासि नो द्युधे ॥ १० ॥ ( ऋग्वेदे भाषि )

इति प्रथमा वसतिः ॥ १ ॥ प्रथमः काण्डः ॥ १ ॥ [ स्वरिता ९ । उ० ना० । पा० ३७ । ( वे ) ॥ ]

[ २ ]

( १-१० ) १ आयुःश्राद्धि ( ऋ. विपत् आचिरतः ) २ कामदेवो गौतमः ; ३, ८-९ प्रमोषो भाग्यः ; ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः ; ५, ७ सुषोप आजोगतिः ; ६ मेधातिथि कर्मणः ; १० वत्स काण्वः ॥ अग्नि ॥ वायवो ॥

११ नमस्ते अग्न औजसे घृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरभिन्नमर्दय ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।१० )

[ ४ ] ( विपत्-न्यया ) कितोय प्रकारकी स्तुतिसे प्रसन्न हुआ हुआ, ( व्रियिण-स्युः ) उपासकोंको धन देनेकी इच्छा वाला ( समिद्धः ) अच्छे तरहसे प्रकाशित ( शुक्रः ) शुद्ध और ( आहुतः ) सत्कार्य बुझाया गया यह अग्नि ( घृवाणि जंघन्द् ) घेरनेवाले दानुर्वीणा नाम करता है ॥ ४ ॥

[ ५ ] ( वाः प्रेष्ठं ) सुगृहारे अत्यन्त प्रिय ( मियं मित्रे इव ) प्रिय मित्रके समान प्रेम करनेवाले, ( अतिथिं ) अतिथिने समान पूज्य अनिही ( वेद्यं रथं न ) धन देने वाले रथकी जैसे स्तुति को जाती है, उसी प्रकार ( स्तुषे ) मैं स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

[ ६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं ) तू ( विश्वस्याः अरातेः ) सभी दानुर्वीणा ( उत ) और ( द्विषः मर्त्यस्य ) ईष करनेवाले मनुष्यों ( महोभिः ) बड़े बड़े साधकोंसे ( नः पाहि ) हमारा संरक्षण कर ॥ ६ ॥

[ ७ ] हे अग्ने ! तू ( पाहि उ ) आ, ( ने ) तेरे लिये ही ( इत्या ) इस प्रकारकी ( इतरा गिरः ) दूसरी स्तुतियों में ( तु घृवाणि ) अच्छी तरहसे कर रहा हूँ, ( एभिः इन्दुभिः वर्षासः ) इन सोमरसोंसे तू बर, महान हो ॥ ७ ॥

[ ८ ] हे अग्ने ! ( यस्तः ) यह देवा पुत्र ( ते मनः ) तेरे मनकी ( परमात् सधस्यात् ) बहुत श्रेष्ठ स्थानसे भी ( आ यमत् ) अपने बचन करता है। हे अग्ने ! ( गिरां त्वां कामये ) अपनी स्तुतिसे तेरी भाँति की इच्छा करता हूँ ॥ ८ ॥

[ ९ ] हे अग्ने ! ( अधर्षां ) अन्वर्षने ( त्वां ) तुझे ( विश्वस्य वाधतः सूर्ध्वः ) सब दिशासे आघात, भूत परम श्रेष्ठ ( पुष्करात् ) सुन्दरसे ( निरमन्थत ) धक्क करके प्रकाशित किया ॥ ९ ॥

[ १० ] हे अग्ने ! ( अस्मभ्यं महे ऊतये ) हमारी उसमें आने लिये ( विवस्वत् ) निवसत करनेसे योग्य घर ( आ भर ) हमें दे, ( नः द्युधे ) हमें मार्गकी दिशानेवाला तू ही ( देवः हि हासि ) देव है ॥ १० ॥

॥ यदां पहिल्या द्येऽ नमासत हुभा ॥

[ १० ] द्वितीयः काण्डः ।

११ हे अग्ने ! हे देव ! ( कृष्टयः ) मनुष्य ( ते औजसे ) तुझे बलने लिये ( नमः घृणन्ति ) नमस्कार करते हैं । तू ( अग्नेः ) अपनी भाँतिसे ( अभिन्नं अर्दय ) दानुवा भला करता है ॥ १ ॥

( १ ) कृष्टिः-- मनुष्य, निवसत । ( २ ) अम- बल, भाँति ।



- १२ दूतं वा विश्वेदसश्च हव्यवाहममर्यम् । यज्ञिष्ठमुञ्जसे गिरा ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।१ )  
 १३ उप त्वा जामयां गिरां देदिशतीतिविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥३॥ ( ऋ. ८।१०२।१३ )  
 १४ उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्षिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१।७ )  
 १५ जरायोध तद्विविद्धि विश्वेदिवे यज्ञियाय । स्तोमश्चद्राय दशीकम् ॥५॥ ( ऋ. १।२७।१० )  
 १६ प्रति त्वं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र ह्यसे । मरुद्भिरग्र आ गहि ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।१९।१ )  
 १७ अश्व न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सत्राजन्तमध्वराणाम् ॥७॥ ( ऋ. १।२७।१ )  
 १८ और्वभृगुचक्षुचिममवानचदा बुधे । अग्निं ससुद्रवाससम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१०२।१४ )  
 १९ अग्निमन्धानो मनसा धियश्सचेत मस्यैः । अग्निमन्धे विवस्वभिः ॥९॥ ( ऋ. ८।१०२।२२ )  
 २० आदित्प्रसस्य रेतसा ज्योतिः पदयन्ति वासरम् । परां यदिध्वते दिवि ॥१०॥ ( ऋ. ८।६।३० )

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [ स्व० ६ । उ० २ । पा० ५२ । (पा) ॥ ]

[ १२ ] हे अग्ने ! ( विश्व-वेदसं ) सय घनोके स्वामी ( हव्य-वाहं ) हविको ले जानेवाले, ( अमर्यं ) अमर ( दूतं ) दूत तथा ( यज्ञिष्ठं ) अव्ययिक यज्ञ करनेवाले अग्निको ( वाः ) तुम्हारे लिए में ( गिरा ऋजसे ) अपनी प्रार्थनासे अनुमूल बनाता हूँ ॥ २ ॥

[ १३ ] हे अग्ने ! ( हविष्कृतः ) हवन करनेवालेको ( जामयः गिराः ) वह्निके समान प्रिय स्तुति ( देदिशतीः ) तेरे गुणोंको प्रकट करती हुई ( वायोः अनीके ) वायुके पास ले जाकर ( उप अस्थिरन् ) स्थापित करती है ॥ ३ ॥

[ १४ ] हे अग्ने ! ( दिवेदिवे ) प्रति दिन ( दोषावस्तः ) रातदिन ( वयं ) हम ( तर्षिया नमो भरन्तः ) बुद्धि पूर्वक नमस्कार करते हुए ( त्वा उप एमसि ) तेरे पास आते हैं ॥ ४ ॥

[ १५ ] हे ( जरा-योध ) स्तुतिसे ज्ञात होनेवाले अग्ने ! ( चिदो विश्वे ) प्रत्येक मनुष्यके हितके लिये ( यज्ञियाय ) प्रणय, ( चद्राय ) दुष्टोंको क्लान्तवाले तेरे लिए ( दशीकं स्तोमं ) सुन्दर स्तोत्र गायें जाते हैं, ( तत् विविद्धि ) उन्हें सू जान ॥ ५ ॥

( १ ) जरा- स्तुति, ( २ ) जरा-योध- स्तुतिसे जितके गुणोंका ज्ञान होता है, ( ३ ) यज्ञिय- प्रणय, ( ४ ) चद्र- मनुष्यो क्लान्तवाला, ( ५ ) दशीक- दर्शनोय, सुन्दर ।

[ १६ ] हे अग्ने ! ( त्वं चारुः अध्वरं प्रति ) उस उत्तम-हिंसा रहित यज्ञमें ( गोपीथाय प्रह्यसे ) सरक्षणके लिए तुझे बुलाया जाता हूँ, हे अग्ने ! तू ( मरुद्भिः आ गहि ) मरुतोंके साथ आ ॥ ६ ॥

[ १७ ] ( वारवन्तं अश्वं न ) अयालवाले घोड़ोंके समान जो ( अ-ध्वराणां सत्राजन्तं ) हिंसा रहित यज्ञमें उत्तम प्रकार प्रकटित होनेवाले ( त्वा अग्निं ) बुझ अग्निसी ( नमोभिः ) वन्दधिये ) नमस्कारोंसे हूय यन्दना करते हैं ॥ ७ ॥

[ १८ ] ( मसुद्रवाससं ) मनुष्यों रहनेवाले ( शुक्तिं यज्ञि ) शुद्ध अग्निकी ( और्वं भृगुचक्षुं ) और्वभृगुके समान तथा ( अमवानचदां ) अमवानके समान ( आ बुधे ) में स्तुति करता हूँ ॥ ८ ॥

[ १९ ] ( मनसा अग्निं इन्धानः ) मन लगाकर अग्निको जलानेवाला ( प्रयैः ) मनुष्य ( धियं सचेत ) अपनी ध्यानाके प्रयोजन करता है और ( विवस्वभिः अग्निं इन्द्ये ) त्वयं किरणोंके साथ अग्निको भी मन्त्रवित्त करता है ॥ ९ ॥

[ २० ] ( परो दिवि ) शूलोकमें ( यत् इध्वते ) जो प्रकटित होता है, ( याव इत् ) उसी ( मन्सस्य रेतसा ) प्राचीन वस्त्रसे युक्त ( वासरं ज्योतिः ) दिवके प्रकाशको ( पदयन्ति ) सोप धेवते हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ दुसरा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ]

(१-१४) १ प्रयोगो भार्गव, २, ५ भरद्वाजो बार्हस्पत्य, ३, १० वामदेवो गौतम, ४, ६ वसिष्ठो मित्रावरुण, ७ विश्व आदित्यरत्न, ८ द्युमन्त शोभ आशोपति, ९ गोपवन ज्ञानेय, ११ प्रसकष्य काण्व, १२ मेघातिथि काण्व, १३ सित्युद्वीष आम्बरौष, त्रित आत्पो वा, १४ उग्रना काण्व ॥ अग्नि ॥ गायत्री ॥

- २१ अग्निं वो वृषन्तमध्वराणां पुरुतमम् । अञ्छा नग्ने सहस्वते ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१०१।७)
- २२ अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यश्सद्विश्यं न्यरेत्रिणम् । अग्निर्नो वृशसते रयिम् ॥ २ ॥ (ऋ. ६।१६।२८)
- २३ अग्ने मृष्ट महाश् अस्यय आ देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिंरासदम् ॥ ३ ॥ (ऋ. ४।१।१)
- २४ अग्ने रक्षा षो अश्सतः प्रति स देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।१।१।२)
- २५ अग्ने युह्स्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याग्भवः ॥ ५ ॥ (ऋ. ६।१६।४२)
- २६ नि त्वा नक्ष्य विशपते द्युमन्तं धीमहे वयम् । सुवीरमथ आहुत ॥ ६ ॥ (ऋ. ७।१।५।७)

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ २१ ] (व.) तुम्हारे (अध्वराणां) अहिता पूर्ण पत्तिका (नग्ने) नाश न करनेवाले (पुरुतमं) अतिशेष्ठ (सहस्वते) बलवान् (वृषन्त) सबको बझानेवाले (अग्नि अञ्छा) अग्निके पास [ सेवा करनेके लिये ] जा ॥ १ ॥

(१) अ-ध्वर-हिता रहित पत्त, (२) अध्व-र-मार्ग दिखानेवाला, (३) नस्त (न-पत्ता)-न गिराने-वाला, सरसक, (४) सहस्वान्-शत्रुको हरानेवाला ।

[ २२ ] (अग्निः) अग्नि (तिग्मेन शोचिषा) अपने तीव्र तेजसे (विश्व अत्रिणं) सब [ स्वयं ] खानेवाले शत्रुको (नि यसत्) नष्ट करता है, वह अग्नि (नः रयिं यसते) हमें धन देता है ॥ २ ॥

(१) अग्नि- (अद्) — स्वयं खानेवाला, अत्यधिक खानेवाला शत्रु ।

[ २३ ] हे अग्ने ! तू (मृष्ट) हमें सुखी कर (महान् अस्ति) तू महान् है, (देव-युं जन्त आ अयः) ईश्वरकी उपासना करनेवाले मनुष्यके पास जा, और (बर्हिं- आसद्) आसन पर बैठनेके लिये तू (इयेथ) जा ॥ ३ ॥

(१) देवयु- (देव-युं) — ईश्वरकी उपासना करनेवाला, ईश्वरसे अपना सम्बन्ध जोड़नेवाला ।

[ २४ ] हे अग्ने ! (अंशतः) पापी और (रीषत) हितकर शत्रुसे (न) हमारा (रक्ष) सरक्षण कर, और (अ-जरो) बुझापाके रहित तू (तपिष्ठै- प्रति दह स्म) अपने तेजसे [ शत्रुको ] जला दे ॥ ४ ॥

(१) अद्-पाप, पापी, दुष्ट । (२) रीषत्-हितकर शत्रु, तोड़फोड़ करनेवाला शत्रु ।

(३) अजर-जरारहित, तटण ।

[ २५ ] हे अग्नि देव ! (ये) जो (तत्र साधय अग्यात्) तेरे उत्तम घोड़े हैं, जो (आदाय अरं वहन्ति) वेगसे घुमें होकर तुमसे लै जाते हैं, उनको [ अपने रथमें ] (युह्स्व हि) जोड़ ॥ ५ ॥

(१) आहुत-वेगसे जानेवाले घोड़े ।

[ २६ ] हे (नक्ष्य) शरणमें जाने योग्य, (विश्व-पते) प्रजामेंबे पालक, (आहुत) सबके सहायके लिये बुलाये गये हे (अग्ने) अग्ने ! (यय) हम (द्युमन्त सुवीरं) तेजस्वी, उत्तमवीर तेरा ही (धीमहि) ध्यान करते हैं ॥ ६ ॥

(१) नक्ष्य- (नक्ष्) — पास जाना, पास जाने योग्य, (२) द्युमान्-प्रजामेंबे, तेजस्वी ।

(३) सुवीर-उत्तम वीर, मोटा ।

- २७ अग्निमूर्धा दिवः ककुत्पतिः पथिव्या अपम् । अपा रेताश्सि जिन्वति ॥७॥ (ऋ. ८।४।१६)
- २८ इमं मूषु त्वमसाकथं सति गायत्रं नव्याश्सम् । अत्र देवेषु प्र वोचः ॥ ८ ॥ (ऋ. १।२।७४)
- २९ तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदमे अक्षिरः । स पावक शुची इवम् ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।७।११)
- ३० परि वाजपतिः कविरभिर्देव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥ (ऋ. ४।१।५१)
- ३१ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दशे विश्वाप सूर्यम् ॥ ११ ॥ (ऋ. १।२।०।१५। यजु. ७।४१)
- ३२ कविमग्निशुषं स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥ १२ ॥ (ऋ. १।१।१।७)
- ३३ शं नो देवीरभिष्टयै शं नो भवन्तु पीतयै । शं योरभि सवन्तु नः ॥ १३ ॥ (ऋ. १।०।१४; यजु. ३६।१२)

[ १७ ] (अयं अग्निः) यह अग्नि (सूर्य) सपते मुख्य स्थानपर रहनेवाला है, वह (दिशः फलुत्) धूलोत्पादा उच्च भाग है, और (पृथिव्याः पतिः) पृथिवीका पालन करनेवाला है, वही (अपां रेतांसि जिन्वति) कनोत्पाद फल देकर सबको प्रसन्न करता है ॥ ७ ॥

(१) आप— जल, कर्म, जीवन । (२) जिन्व्— सन्तुष्ट करना ।

[ १८ ] हे जने ! (त्वं) तू (अस्माकं इमं नव्यांसं) हमारे इस नवीन (सतिं) अन्नको और (गायत्रं) गायत्री छन्दमें किए गए स्तोत्रको (देवेषु सु प्रवोचः) देवोंमें पढ़वा ॥ ८ ॥

(१) सतिः— अन्न 'सण्-दाने', (२) गायत्रं— गायत्री छन्दमें गाय गयो साम-गान ।

[ २९ ] (तं त्वा) उस तुझे (गोपवनः) गोपवन ऋषिने (गिरा जनिष्ठत्) अपनी स्तुतिते उत्पन्न किया, हे (अंगिरः) शरीरके अगोंमें रस रूपमें रहनेवाले (पावक) पवित्र करनेवाले जने ! (सः) वह तू (दशे शुधि) हमारी प्रार्थना सुन ॥ ९ ॥

(१) अंगिराः— एक ऋषि, अगोंमें रसरूपमें रहनेवालो अग्नि (अग्नि-रस्),

(२) पावक— पवित्र करनेवाला ।

[ ३० ] (वाजपतिः कविः) अश्विना स्वाभो, शानी, अति (दधद्रत्नानि परि अक्रमीत्) हवनीय पदार्थोंको स्वीकार करता है, और (दाशुषे रत्नानि दधत्) दानवील मनुष्यको रत्न देता है ॥ १० ॥

[ ३१ ] (विश्वाप सूर्यं दशे) विश्वको सूर्य दिलावनेके लिए उसको (केतवः) किरणे (जातवेदसं देवं) जितने वेद उत्पन्न हुए हैं, उस देवको (उत् तं वहन्ति) अच्छी तरह पारण करती हैं ॥ ११ ॥

(१) जात-वेदाः— जिससे ज्ञान प्रवृत्त होता है, जिससे वेद प्रकट होते हैं, किरणें सूर्यको आकाशमें इसी लिए पारण करते हैं, कि जिससे वह सबको दिलायें ।

[ ३२ ] (अध्वरे) हिसारहित यकमें (सत्यधर्मांजं) सत्य धर्मसे युक्त (कविं अग्निं) गान्धी अग्निको (उप स्तुहि) स्तुति कर, वह (देवं) देव (अमीव-चातनं) रोम नष्ट करनेवाला है ॥ १२ ॥

(१) अमीव-चातनः— कर्मसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको दूर करनेवाला ।

[ ३३ ] (नः) हमें (अभिष्टयै) इच्छित सुख देनेके लिए (देवीः शं) विषय जल कल्याणकारी हों । (नः पीतयै शं) हमारे पीनेके लिए शुद्धपानी हों । (नः) हमें (शं योः अभिश्चवन्तु) सुख और दान्ति देते हुए जल प्रवाह बहें ॥ १३ ॥

(१) अभिष्टि— इच्छित सुख, (२) पीति— पानी पीना ।

३४ कस्य नूनं परीणासि धियो जिन्यसि सत्पते । गोपाता यस्य ते गिरः ॥ १४ ॥ (ऋ. ८।८।७)  
इति तृतीयो वसति ॥ ३ ॥ तृतीयो खण्ड ॥ ३ ॥ [ स्व० ९।३० २।१० ५७ (ये) ॥ ]

[ ४ ]

(१-१०) १,३,७ अनुबर्हिस्पत्य (७ तृणपाणि), २,५,८-९ भयं प्रागाय; ४ वसिष्ठो मंत्रायतनि; ६ प्रकण्वः काण्व; १० सोभतिः काण्वः ॥ अग्निः ॥ बृहती ॥

- ३५ यज्ञायज्ञा वो अग्रये गिरागिरा च दक्षसे ।  
प्रम व्यममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न श्वसिपम् ॥ १ ॥ (ऋ. ६।४।१)
- ३६ पाहि नो अग्न एकया पाह्युश्च द्वितीया ।  
पाहि गीमिस्तिस्मिर्गुजां पते पाहि चतसृभिर्वसे ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६।१९)
- ३७ वृहद्भिरे अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।  
भरद्वाजे समिधानो यविष्य रेवत्पावक दीदिदि ॥ ३ ॥ (ऋ. ६।४।१०)
- ३८ त्वे अग्रे स्वाहुत प्रियासः सन्तु धरयः ।  
यन्तारो ये भगवानो जनानामूर्वे दयन्त गोनाम् ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।१।६।७)

[ ३४ ] हे ( सत्पते ) सत्यके पालन करनेवाले ! ( नूनं कस्य धियः ) विश्ववते कितनी बुद्धि ( परिणासि जिन्यसि ) समिलित होकर तू आनन्दित होता है ? ( यस्य ते गिरः ) जिसके कारण तेरी स्तुति ( गो-पाता ) ज्ञानका दर्शन करनेवाली होती है ॥ १४ ॥

(१) गो-पाता- शायका पालन करना, इन्द्रियोंका पालन करना, ज्ञानका दर्शन करना ।

॥ यहाँ तृतीय खंड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ३५ ] ( वः ) तुम ( यज्ञा यज्ञा ) प्रत्येक यज्ञमें और ( गिरा गिरा ) प्रत्येक स्तोत्रमें ( दक्षसे अग्रये ) बलवान् अग्निको प्रशंसते करो, ( यत् ) हेतु ( जातवेदसं अमृतं ) सबसे ज्ञाननेवाले अमर अग्निरो ( प्रियं मित्रं न ) प्रिय मित्रके समान ( प्रयोजियधम् ) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ३६ ] हे अग्ने ! ( एकया नः पाहि ) एक प्रार्थनासे हमारा सरक्षण कर, ( उत द्वितीया पादि ) और दूसरी प्रार्थनासे भी हमारा रक्षा कर, हे ( अग्रेण पते ) अग्रसे स्वामी ! ( त्विस्मिः गीमिः पाहि ) तीसरी प्रार्थनासे हमारा रक्षण कर, हे ( यतो ) सबको यज्ञानेवाले अग्ने ! ( चतसृभिः पादि ) चौथी प्रार्थनासे भी हमारा पालन कर ॥ २ ॥

[ ३७ ] हे अग्नि देव ! ( वृहद्भिः अर्चिभिः ) बड़ी बड़ी उपासनासे तू प्रशंसित है, ( शुक्रेण शोचिषा ) शुद्ध तेजो तू प्रशंसित हो, हे ( यविष्य रेवन् पावक ) सत्य, यतवान् और यवित्र करनेवाले देव ! ( भरद्वाजे समिधानः ) भरद्वाजेके लिए अच्छी तरह प्रवीण होकर तू ( दीदिदि ) प्रशंसित हो ॥ ३ ॥

[ ३८ ] हे अग्ने ! ( त्वे ) तुममें ( स्वाहुत ) उत्तम रीतिसे हुषण करनेवाले ( स्तृयः ) विद्वान् ( मियासः सन्तु ) तुने प्रिय हों, ( ये भगवानः ) जो धनवान् ( जनानां यन्तारः ) प्रजाजनोंपर शासन करते हैं, वे ( गोनां ऊर्वे दयन्तः ) गोपोंके समूहका पालन करते हैं ॥ ४ ॥

- ३९ अग्ने अरितार्विस्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।  
अग्नेोपिवान् गृहपते महाश् असि दिवस्पायुर्दुरोग्युः ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।६०।१६)
- ४० अग्ने विवस्वदुपसश्चित्रश् राधां अमर्त्यम् ।  
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमथा देवाश् उपशुषुः ॥ ६ ॥ (ऋ. १।४४।१)
- ४१ त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधाश्सि चोदय ।  
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाघं तुचे तु नः ॥ ७ ॥ (ऋ. ६।४८।१९)
- ४२ त्वमित्सप्रया अस्यग्ने प्रातश्नतः कविः ।  
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वैधसः ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६०।१९)
- ४३ आ नो अग्ने वयोवृषश् रथि पावक श्शस्वम् ।  
राधा च न उपमाते पुरुस्पृहश् सुनीती सुयश्वास्तरम् ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।६०।११)

[ ३९ ] हे (जस्तिः) अग्ने देव ! तू (विस्पतिः) प्रजापति पालक है, (रक्षसः) तपान् (राक्षसोंको) सताप देनेवाला है। हे (गृहपते) घरके स्वामी ! तू (अ-ग्नेोपिवान्) बाहर कहीं न जानेवाला (दुरोग्युः) घरमें ही रहनेवाला (महान् असि) महान् है, और (दिवस्पायुः) द्युनीरुका रक्षण करनेवाला है ॥ ५ ॥

[ ४० ] हे (अमर्त्ये अग्ने) अमर अग्नि देव ! (उपसः विवस्वत्) उपासे प्राप्त होनेवाले (चित्र राधा) विलक्षण धनको (दाशुषे आ वहा) दानशील आदमीको दे, हे (जातवेदो) सर्वत्र अग्ने ! (त्व अथा) तू आज (उप-शुषुः) देवान् प्रातः काल उदनेवाले देवोंको (आ वहा) ले आ ॥ ६ ॥

[ ४१ ] हे (वसो अग्ने) सबको चसानेवाले अग्नि देव ! (त्वं चित्र) तू अद्भुत शक्तिवाला है, (उ स्या राधाश्सि) तू अपने सारकारके सामर्थ्यसे धनकों (नः चोदय) हमारे पास पहुंचा, (त्वं) तू (अस्य रायः) इस धनको (रथीः असि) रथके द्वारा लानेवाला है, तू (नः तुचे) हमारे पुत्र आदियोंके लिए (गाघं तु विदाः) प्रतिपदा दे ॥ ७ ॥

[ ४२ ] हे अग्ने ! हे (प्रातः) रक्षण करनेवाले ! (त्वं कवि) तू निश्चयसे (स-प्रथाः) बहुत प्रसिद्ध है, इसी लिए तू (कतः कविः) सत्य और ज्ञानी है, हे (दीदिवः) तेजस्वी अग्ने ! (त्वां समिधाने) तेरे प्रवर्धित हो जानेके बाद (वैधसः विप्रासः) शानी विप्र तेरे (आ विवासन्ति) सेवा करते हैं ॥ ८ ॥

[ ४३ ] हे (पावक अग्ने) पवित्र करनेवाले अग्ने ! तू (नः) हमें (वंशं वयोवृषश् रथि रास्य) प्रजासनीय बनानेवाले धनको दे। हे (उपमाते) जान सम्भर ! (सुनीती) उत्तम नीतिके भांगसे (पुव-स्पृहं) जिसको बहुतसे लोग प्रार्थना करते हैं, उसे (सुयश्वास्तरं) उत्तम यज्ञ देनेवाले धनको (नः) हमें दे ॥ ९ ॥

४४ <sup>२१</sup> यो विश्वा <sup>३</sup> दधते <sup>१२३</sup> वसु <sup>२३</sup> होता <sup>१२</sup> मन्द्रो <sup>३१</sup> जनानाम् ।  
<sup>१३३</sup> मधोर्न <sup>२३</sup> पात्रा <sup>२३</sup> प्रथमान्यसै <sup>२८</sup> प्र <sup>३१</sup> स्तोमा <sup>३१</sup> यन्त्ववस्ये ॥ १० ॥ (ऋ. ८।१०३।६)

इति ऋषीं दशति. ॥ ४ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [ ख० ९। उ० ३। पा० ८३। (दो) ॥ ]

[ ५ ]

( १-१० ) १ वसिष्ठो मंत्रावरणः; २ भर्गः प्रागाथः; ३, ७ सौभरिः काण्वः; ४ मनुर्वेवत्यतः; ५ गुर्वेतिपुरुको-  
 ङ्गावागिरसो; ६ प्ररकण्वः काण्वः; ७ भेषातिभेष्यातिषी काण्वो; ९ विष्वामित्रो गावितः; १० काण्वो घोरः

॥ अग्निः, ८ इन्द्रः ॥ बृहती ॥

४५ <sup>३१</sup> एना <sup>३</sup> वो <sup>३१</sup> अग्नि <sup>१२३</sup> नमसोर्जा <sup>२३</sup> नपातमा <sup>२८</sup> हुवे ।  
<sup>२३</sup> प्रियं <sup>२८</sup> चेतित्ठमरति <sup>३१</sup> स्वधरं <sup>३१</sup> विश्वस्य <sup>२८</sup> दूतममृत्वम् ॥ १ ॥ (ऋ. ७।६।१)

४६ <sup>२३</sup> शेषे <sup>३१</sup> वनेषु <sup>३२३</sup> मातृषु <sup>३</sup> सं <sup>३</sup> त्वा <sup>३१</sup> मतीस <sup>३१</sup> इन्धते ।  
<sup>१२</sup> अतन्द्रो <sup>३३</sup> हृष्ये <sup>३</sup> वहसि <sup>३३</sup> हविष्कृत <sup>२८</sup> आदिदेवेषु <sup>३३</sup> राजसि ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६०।१९)

४७ <sup>३१</sup> अदर्शि <sup>३१</sup> गातुवित्तमो <sup>३१</sup> यसिन्प्रवान्पादधुः ।  
<sup>१३</sup> उषा <sup>३३</sup> पु जातमायस्य <sup>३३</sup> वर्धनमग्निं <sup>३</sup> नक्षन्तु <sup>३३</sup> नो गिरः ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१०३।१)

[ ४४ ] ( यः ) जो ( विश्वा वसु दधते ) सब धन देता है, जो ( जनानां ) मनुष्योंमें ( होता मन्द्रः ) देवोंको बुराकर उन्हें आनन्द देनेवाला है, ( अस्मि अग्नेय ) इत अग्निके लिए ( मधोः ) प्रथमानि पाषा न ) स्तोमके पाल जैसे प्रथम विषे जाते हैं, उसी प्रकार ( स्तोमाः यन्तु ) स्तोत्र लिए जाते हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ चौथा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ४५ ] ( एना नमसा ) इस अग्ने ( ऊर्जा-न-पाते ) बलको क्षीण न होने देनेवाले, ( प्रियं चेतित्ठ ) प्रिय और चेतनाके देनेवाले ( अरति, स्वधरं ) मृत्यु, उत्तम और हितकारहित यज्ञ करनेवाले, ( विश्वस्य दूतं ) सबको हाथ देने-वाले, ( अमृतं अग्नि ) अमर अग्निको ( आतुवे ) धे बुलाता है, उसकी मे प्रार्थना करता है ॥ १ ॥

[ ४६ ] हे अग्ने ! तु ( वनेषु ) जंगलोंमें ( मातृषु ) भूमिमें अबवा माताके गर्भमें ( शेषे ) गुप्त रूपसे रहता है ( मतीसः त्वा सं इन्धते ) मृत्यु मृते उत्तम रीतिसे प्रतीप्त करते हैं, ( अ-तन्द्रः ) आलस्यको छोड़कर ( हविष्कृतः ) हृष्यं यदस्ति ) हवन करनेवालेको हविषोंके तु देवोंको पढ़नाता है, ( आत् इत् ) और ( देवेषु राजसि ) देवोंमें तु प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

[ ४७ ] ( गातु-वित्तमः ) धर्मके फलोंकी उत्तम प्रकारसे जाननेवाला, अग्नि ( अदर्शि ) सोलने लगा है, ( यसिन्प्र-वानि आत्पुः ) जिसमें सब निवृत्त निषे जाते हैं, ( नुजाते ) उत्तम प्रकारसे प्रबट हुए ( आयस्य वर्धने ) आर्वाको बढ़ानेवाले ( अग्निं ) अग्निको ( नः गिरः नक्षन्तु ) हमको वसुतियें प्राप्त हों ॥ ३ ॥

- ४८ <sup>३ १ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १</sup> अशिरुक्थं पुरोहितो प्राचाणो वहिरध्वरे ।  
<sup>३ १ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १</sup> अत्रचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवा वरेण्यम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।२७।१ )
- ४९ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अदिमीडिष्वावस्स रायाभिः शीरयोश्चिपम् ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अग्निं रायं पुरुमीडं श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।७।११४ )
- ५० <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> श्रुधिं श्रुत्कर्णं वह्निभिर्देवैरग्रे सयावभिः ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आ सीदतु वह्निं मित्रो अयमा प्रातयावभिरध्वरे ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।४४।२२ )
- ५१ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्र देवोदासो अग्निदेव इन्द्रो न मज्जना ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अनु मातरं पृथिवीं वि वायुवे तस्यो नाकस्य शर्मणि ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१०३।२ )
- ५२ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अथ अमा अथ वा दिवा बृहता रोचनादधि ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अया वधस्य तन्वा गिरा ममा जाता मुकतो पूण ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१।१८ )
- ५३ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> कायमानो वना स्वं यन्मातरजमन्नपः ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> न तत्र अग्रे प्रभृपं निवर्तनं यद् दूरं सन्निहामुपः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ३।९।२ )

[ ४८ ] (उपथे अग्निः पुरोहितः) उपथे पत्रमं अग्निको मरुते पहले स्थापित किया जाता है । (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञमें (प्राचाणः) सोम ब्रह्मणके पत्वर रहते हैं, तथा (यहिः) आसन भी फँसते जाते हैं । (मरुतः) हे मरुतो ( ब्रह्मणस्पते ) हे ब्रह्मणस्पते ! (देवाः) हे देवो ! (ऋचा) वेदमंत्रोंके द्वारा मैं तुमसे (वरेण्यं अथः यामि) श्रेष्ठ संरक्षण माँगता हूँ ॥ ४ ॥

[ ४९ ] (शीर-श्रोत्रिचिपं) जिसकी ज्वालायें प्रज्वलित हो चुकी हैं, ऐसे (अग्निं) अग्निकी (अवासे) अपने रदागके लिए (गाथाभिः इडिष्वा) स्तोत्रोंसे स्तुति कर, (पुरु-मीडः) स्तोत्रा (अग्निं) अग्निकी (राये) पनकी प्रार्थितके लिए प्रार्थना करता है, (श्रुतं अग्निं) इस मसिद्ध अग्निकी (नरः) मन्व्य (सुदीतये छर्दिः) उत्तम प्रकारस्युक्त घरकी प्राणितके लिए प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

[ ५० ] हे (श्रुत्कर्णं) प्रार्थना सुननेवाले अग्ने ! (श्रुधिं) हमारी प्रार्थना सुन (सयावभिः) समान गतिसे युक्त (देवैः वह्निभिः) दिव्य अग्निके साथ ( मित्रः अयमा ) मित्र और अयमा (प्रातयावभिः) सधरे जागेवाले देवोंके साथ (अग्रैर अग्निं आग्निदत्तु) पत्रमं आसनपर आकर बैठे ॥ ६ ॥

[ ५१ ] (मज्जना इन्द्रः न) शक्तिमें इन्द्रके समान, (देवोदासः अग्निः देवः) दिव्योदासन अग्निदेव (प्रातरं पृथिवीं) पृथ्वी मत्स्यार (अनु प्र वायुते) अनुभूलासे प्रकाशित हुआ, उसके बाद वह अपनी श्रेष्ठताके कारण (नाकस्य शर्मणि तस्यो) स्वयंके आश्रयमें रहने लगा ॥ ७ ॥

[ ५२ ] हे अग्ने ! (अप्रममः) पृथ्वीपर (अधवा) अधवा (बृहता रोचनात् दिव्यः अधि) अत्यन्त तेजस्वी द्युलोकपर (अया तन्वा धर्षस्य) अपने तेजसे बढ । हे (सु-मतो) उत्तम यज्ञ करनेवाले अग्ने ! (गिरा) अग्नी वाणीसे (ममा जाता पूण) मेरे सम्बन्धी जनकोंका पोषण कर ॥ ८ ॥

[ ५३ ] हे अग्ने ! (त्वं) तू (वना कायमानः) वनकी इच्छा करनेवाला है, तू (यद् मातृः अपः) जो माताके समान जलके पास गया, (तत् ते निवर्तनं) वह तेरा जाना हमसे (न प्रभृपे) नहीं रहा गया (यत्) यहाँके (दूरे सन्) तू दूर होता हुआ भी (इह आभुयः) यहीं रहता है ॥ ९ ॥

५४ नि त्वामग्ने मनुर्देधे ज्योतिर्जनाय शुश्रुवे ।  
 दीदेधे कण्ये श्रुतजात उक्षितो धं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।१६।१९ )

इति पञ्चमो वसतिः ॥ ५ ॥ धरुचनः खण्डः ॥ ५ ॥ { स्व० उ० ६ । धा० उ१ । ( वा ) ॥ }

इति प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १-८ ) १, ७ वसिष्ठो मंत्रावहनिः; २, ३, ५ कण्वो धीरः; ४ सौमरिः फण्यः; ६ उत्कालः कात्यः; ८ विश्वामित्रो गायितः ॥ अग्निः; २ मह्यणस्पतिः; ३ मूषः ॥ बृहती ॥

अथ प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥ १ ॥

५५ देवां वा द्रविषादाः पूर्णां विषष्टासिचम् ।  
 उद्रा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्भि देव ओहते ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१६।११ )

५६ प्रतुं ब्रह्मणस्पतिः प्र देष्यतु सुनुता ।  
 अच्छा यीरं नयं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नपन्तु नः ॥ २ ॥ ऋ. १।४०।१९ )

५७ ऊर्ध्वं ऊ पु ष ऊतये विष्टा देवा न सविता ।  
 ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदङ्घ्रिभिर्वावङ्घ्रिविह्वयामहे ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१६।१२ )

[ ५४ ] हे अग्ने ! ( मनुः त्वां नि दधे ) मननशील मनुष्य तुझे धारण करता है, ( शुश्रुवे जनाय ज्योतिः ) प्राचीनकालसे आनेवाले मनुष्योंके लिए तेरी ज्योति प्रकाशित है, ( कण्ये दीदेधे ) ज्ञानवान् ऋषिके आभयमें तू प्रकाशित होता है, ( श्रुत-जातः उक्षितः ) यत्के लिए उत्पन्न होनेपर तू और अग्निके प्रवृत्तित किया जाता है, ( धं कृष्टयः नमस्यन्ति ) जिसको मनुष्य नमन करते हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ पञ्चम खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ ५५ ] ( वाः देवः ) तुम्हारा देव ( द्रविषादाः-दाः ) यन देनेवाला है, अतः वह ( पूर्णां विषष्टासिचम् विष्टुम् ) अच्छी तरह अग्ने हुए सुवर्णको स्वीकार करे, और तुम ( उद्रा सिञ्चध्वं ) ऊपरसे धी डालो, ( या उप पृणध्वं ) धीर धार धार सुधा भर भर कर आगुति दो, ( आत् इत् ) इससे वाद ही ( देवः यः ओहते ) वह देव तुम्हें उग्रतिके मार्ग पर से जाएगा ॥ १ ॥

[ ५६ ] ( ब्रह्मणस्पतिः ) ज्ञानवा स्वामी वह देव ( प्र देष्यतु ) हमारे पास आवे, ( सुनुता देवी प्र पत्तु ) साथ लपवाग्ने मारसती देवी हमारे पास आवे, ( नः यज्ञं ) हमारे यज्ञमें ( देवाः ) सब देव ( नयं पङ्क्ति-राधसं यीरं ) मानव जातिके हित करनेवाले, [ अपनी तेलाची ] पश्तकी पसारकी बचानेवाले धीरकी ( अच्छा नपन्तु ) उत्तम मार्गसे से जावे ॥ २ ॥

[ ५७ ] हे अग्ने ! ( नः ऊतये ) हमारे मंत्रजमने लिए ( ऊर्ध्वः सुनुता ) ऊंचे स्थानपर उत्तम रीतिसे स्थित हो, ( सविता देवः नः ) मूषं देवके सहाय ( ऊर्ध्वः ) उत्तम होकर ( याजस्य सनिता ) अन्नको देनेवाला हो, ( यत् अङ्घ्रिभिः ) जिस कारण स्तोत्रोंके ( याचद्भिः विह्वयामहे ) स्तुति करते हुए हम तुमों को बुलावे ॥ ३ ॥



- ५८ प्र वो राये निनीपोषि मर्ता यस्ते वसां दाशत ।  
स वीरं धत्ते अन्न उक्थशसिने त्मना सहस्रपोषिणाम् ॥ ४ ॥ ( ऋ ८।१०१।४ )
- ५९ प्र वो यद्दे पुरुषां विशां देवयतीनाम् ।  
अग्निं सुक्तीभवेनाभिष्टृणीमहे यस्मिन्दन्य इन्धते ॥ ५ ॥ ( ऋ १।३६।१ )
- ६० अयमाग्निः सुवीर्यस्यैव हि सोमगस्य ।  
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ ६ ॥ ( ऋ ३।१६।१ )
- ६१ त्वमग्ने गृहपतिस्त्वयं होता नो अघ्नरे ।  
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥ ७ ॥ ( ऋ ७।१६।५ )
- ६२ सत्रायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तां ऊतये ।  
अपां नपातं सुभगं सुदं समं सुप्रतृतिर्मनेहसम् ॥ ८ ॥ ( ऋ ३।१।१ )

इति षष्ठी दशति ॥ ६ ॥ षष्ठं सण्ड ॥ ६ ॥ [ स्व० ११ । उ० २ । पा० ५७ । (क) ॥ ]

। ५८ ] हे ( घत्ते ) सबको धतनेवाले अग्नि देव ! ( य. मर्तं ) जो मनुष्य ( राये निनीपोषि ) पन प्राप्तिके लिए तेरी उपासना करता है, ( यः ते दाशत ) जो तुझे हवि देता है, ( स ) वह ( उक्थशसिने ) स्तुति करनेवाले, ( सहस्रपोषिणं ) हजारों मनुष्योंका पोषण करनेवाले ( वीर ) वीर पुत्रको ( त्मना धत्ते ) अपने सामर्थ्यसे उत्पन्न करता है ॥ ४ ॥

[ ५९ ] ( य अग्ने स-इन्धते ) जिस अग्निको हृत्तरे पुरुष उत्सयतासे प्रज्वलित करते हैं, उस ! देवयतीनां पुरुषां विशां ) शैबलकी प्राप्त करनेवाली नागरिक प्रजाभोको ( यद्दे ) महान् भक्तिका ( सुक्तेभिः ) यचोभिः ) सुक्तीके वाच्यसे ( पूणीमहे ) हम वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

[ ६० ] ( अयं अग्निः ) यह अग्नि ( सुवीर्यस्य ) उत्तम पराक्रमका और ( सोमगस्य ) उत्तम प्राणका ( हि ईशे ) स्वामी है, ( रायं ईशे ) वह धनका स्वामी है, ( स्वपत्यस्य गोमत ईशे ) वह अपने पुत्र गोत्र और गयोसका स्वामी है ( वृत्रहथानां ) घेरनेवाले शत्रुको मारनेवालेका भी यह स्वामी है ॥ ६ ॥

[ ६१ ] हे अग्ने ! ( त्वं गृहपतिः ) तू घरोका स्वामी है, ( न-अघ्नरे तं होता ) हमारे हितारहित यज्ञमें तू होता है, हे ( विश्ववार ) सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य अग्ने ! ( न्य पोता ) तू पवित्रता करनेवाला है, ( प्रचेता ) तू उत्तम ज्ञानी है, ( वार्यं यक्षि ) तू स्वीकार करने योग्य धनोंको देता है, ( यासि च ) और वह धन प्राप्त भी करता है ॥ ७ ॥

[ ६२ ] हे अग्ने ! ( सत्राय. मर्तांसः ) हम सभी समान विचारवाले मनुष्य ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए ( सु-भगं ) उत्तम ऐश्वर्यवाले, ( सु-दंससं ) उत्तम कर्म करनेवाले ( सु-प्रतृतिं ) प्राणोंका नाश करनेवाले ( अनेहसं ) पापरहित ( अपां-न-पातं ) पानीको न गिरानेवाले ( त्वा देव ) तुझ देवको ( ववृमहे ) प्राप्त करनेको इच्छा करते हैं ॥ ८ ॥

१ अपा-न-पात.- पानीको नीचे न गिरानेवाला, मैथैकि अन्धर अग्नि रहनेके कारण मैथैकि न पिपलाने पानी नहीं बरसता, ( अपा-नपात ) पानीका पीन, पानीके पुत्र श्वोशी वरस्वर रयइते ध्वांका पुत्र अग्नि पंदा होता है ।

॥ यहाँ छठा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ]

( १-१० ) १ स्वावावो वाग्देवो वा, २ उपस्तुतो ब्राह्मिष्यथ, ३ बृहदुक्थो वाग्देव्य, ४ कुस्त आगिरस,  
५-६ भरद्वाजो ब्राह्मिष्यथ, ७ वाग्देवो गीतम, ८, १० वसिष्ठो भेनावर्षणि, ९ तिसिरास्तवाप्यु ॥  
१,३,५,९ विष्टुन्, २, ४ जगती, १० विपाहिराद्वागमी ॥

- ६३ आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृह्णति दधिध्वम् ।  
इत्थपदे नमसा रातह्वयं सपयंता यजसं पस्त्यानाम् ॥ १ ॥ ( ऋग्वेदे नास्ति )
- ६४ चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातराण्वन्वेति धातवे ।  
अनुधा यदुजोअनदधा चिदा चवक्षत्सद्यो महि दूर्याश् चरन् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१५।१ )
- ६५ इदं त एकं पर उ त एकं तृतीयं ज्योतिषा सं विश्वस्य ।  
संविशनस्तन्वेदे चासुरेभि प्रिया देवानां परमं जनित्रे ॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।१६।१ )
- ६६ इमं स्तोममर्हते जातवेदसं स्थामिव सं मह्येमा मनीषया ।  
भद्रा हि ना प्रमातिरस्य सन्सद्यसे सरुये मा रिषामा जयं तव ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।१७।१ )

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ ६३ ] ( हविषा आ जुहोत ) हे मनुष्यो ! हवि द्रव्योति हवन करो, ( मर्जयध्वं ) तपत्रं द्रव्यता करो, ( होतारं गृह्णति ) हवन करनेवाले घरके स्वामी अग्निको ( नि दधिध्वं ) स्थापित करो, ( इत्थ. पदे ) पृथ्वीके मत्त-स्थानमें ( पस्त्यानां रातह्वयं ) प्रारम्भ हुए हुए यज्ञमें दृक्नीय गदावीको देनेके साथ साथ ( नमसा समर्पय ) नमस्कार पूर्वक अग्निका सत्कार करो ॥ १ ॥

[ ६४ ] ( शिशोः तरुणस्य ) इस तरुण बालक अग्निका ( वक्षथः चित्रः ) जीवन यज्ञ ही विधि है, ( या ) जो ( धातवे ) दूध पीनेके लिये ( मानरो अवि न एति ) दोनों ही माताओंके पास नहीं जाता, ( अनु-ऊधः ) स्तन रहित माताआपे ( यदि अजीजनत् ) यदि यह उत्पन्न हुआ है, तो ठीक है, ( अध च ) उत्पन्न होनेके बाद यह अग्नि ( महि दूर्यं चरन् ) घड़े मछे दूतके कामही करते हुए ( वक्षस ) देवोंको हवि पठुछाना है ॥ २ ॥

दो अरणिगणके सपयंते अग्नि उत्पन्न होती है, पर पीरा होनेके बाद यह माताके पास दूध पीने नहीं जाती, यद्यपि उसकी माताके स्तन ही नहीं होते, पर यह उत्पन्न होती ही देवोंको हवि पठुछाने रूप दूतके काम करते स्मरती है । यह आश्चर्य है ।

[ ६५ ] ( ते इदं धर्मः ) तेरा यह एव अग्नि रूप शरीर है, ( ते पर. पदं ) तेरा दूसरा वायुरूप शरीर है, ( स्तोत्रियेन ज्योतिषा ) तोसरे सुव्यंथ तेजसे ( सं चिदास्य ) तू मित जा, ( तन्व्यः सं पेदासे ) शरीरसे इस प्रकार वायुपर हो जातेपर ( न्यार. पधि ) तू गुजर होकर बड़, ( परमे जनित्रे देवाना प्रियाः ) परम थेंड उत्पति स्थानमें तू देवोंका प्रिय होकर रह ॥ ३ ॥

मरनेके बाद मृतकको क्या अवस्था होगी है, यह महां बनाया गया है, इसका एव स्तूल शरीर अग्निसे निकल जाता है, दूसरा शरीर वायुसे निकल जाता है । यहाँते ज्ञेयमें पठुचरद यह कस्यापमव विपत्तिमें रहता है, इस थेंड स्थानमें यह देवोंका प्रिय होकर रहता है । यह आश्चर्यको विपत्ति होगी है ।

[ ६६ ] ( अर्हते जातवेदसं ) पूज्य जानवेद अग्निसे लिए ( इमं स्तोमं ) इस स्तोत्ररूपी यज्ञको ( रभं इव ) रम्भे समान ( मनीषया ) बुद्धिपूर्वक ( सं ग्राह्ये ) उत्पन्न प्रकार संभार करते हैं ( अस्य संतोदं ) इस अग्निसे यह स्थानमें ( न भद्रा प्रमति. ) हमारी कस्यापमव बुद्धि कायं करती है । ( धयं तव स्तये ) हम तेरी भिन्नतामें ( आ रिषाम ) जनी बन्द न हों ॥ ४ ॥

- ६७ मूर्धानं दिवा अरतिं पृथिव्या वैश्वानरसुत आ जातमग्निम् ।  
कविं सन्नाजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ६।७।१ )
- ६८ वि त्वदापो न परंतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः ।  
तं त्वा गिरः स्तुष्टृतयो वाजयन्त्याजि न गिर्ववाहा जिग्मुरश्वाः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।२।१६ )
- ६९ आ वां राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।  
अग्निं पुरा सनायैस्तारचिच्चिद्भिरुष्परूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ४।३।१ )
- ७० इन्धे राजा समयां नमोभिपसा प्रवीकमाहुतं घृतेन ।  
नरो हव्येभिरिडते सचाध आग्निप्रभृषपसामशोचि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।८।१ )
- ७१ प्र केतुना मृहता यात्यागिरा रोदसी वृषमा रोरवीति ।  
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थं महिषा ववधे ॥ ९ ॥ ( ऋ. १०।८।१ )

[ ६७ ] ( दिवः मूर्धानं ) क्षुलीकके गिर स्वामीय ( पृथिव्या अरतिं ) पृथ्वीके स्वामी ( श्रुते आजत ) यत्नमे उत्पन्न हृष्ट ( वैश्वानरं ) तत्र विरक्तके नेता ( कविं सन्नाजं ) शान्ति और प्रकाशमान ( जगतां अतिथिं ) मनुष्यमें अतिथिके समान पूज्य ( आसन्नं ) मुखके समान मुख्य ( पात्रं ) योग्य ( अग्निं ) अग्निको ( देवाः जनयन्त ) देवोंने उत्पन्न किया हैं ॥ ५ ॥

[ ६८ ] हे अग्ने ! ( परंतस्य घृष्टान् आपः न ) परंतकी पीठसे जैसे जल प्रवाह रहते हैं, उसी प्रकार ( देवाः उक्थेभिः ) एक कर्ता विद्वान् स्तोत्रोंके द्वारा ( वि जनयन्त ) अनेक प्रकारसे तुझे उत्पन्न करते हैं, हे ( गिर्ववाहाः ) वाणीसे-स्तुतिते जानने योग्य अग्ने ! ( अश्वाः आजि न ) घोड़े जैसे सभामयें जते हैं और ( जिग्मुः ) विजय मिलती हैं, उसी प्रकार ( स्तुष्टृतयः गिरः ) उत्तम स्तुतिते युक्त हमारी वाणी ( त्वं त्वा वाजयन्ति ) उस तुमें बलवान् बनाती हैं ॥ ६ ॥

[ ६९ ] ( अ-ध्वरस्य राजानं ) हिंसा रहित यत्नके राजा ( रुद्रं ) घोषणा करते हुए ( रोदस्योः सत्य यजं ) छाया पृथिवीमें सत्य रूपसे यत्न करनेवाले ( होतारं हिरण्यरूपं अग्निं ) होता, सुवर्ण रूप अग्निको ( अचिच्चात् ) स्वाभाविक रूपसे ( स्तनयितोः ) विद्युत्से ( पुरा अग्नेसे कृणुध्वं ) पहले अपने सरक्षणके लिए उत्पन्न किया ॥ ७ ॥

१- पहले विद्युत् अग्निके इस अग्निको उत्पन्न किया या ।

[ ७० ] ( अर्थः राजा अग्निः ) यह श्रेष्ठ राजा अग्नि ( नमोभिः स इन्धे ) अन्नोंके प्रशंसित किया जाता है, ( यस्य शर्तकं ) निश्चय रूप ( घृतेन आहुतं ) घृतके हवनसे बड़ाया जाता है, ( नरः सचाध- हव्येभिः ईडते ) तब मनुष्य मिलकर हवनसे इसको पूजा करते हैं, ( अग्निः उचसां अग्ने अशोचि ) इन प्रकार यह अग्नि उपा कालसे पहले ही प्रशंसित हुई है ॥ ८ ॥

[ ७१ ] अग्नि ( घृहता केतुना ) महीना प्रकाशके साथ ( प्रयाति ) प्रकट होता है, ( रोदसी ) छाया पृथ्वीमें ( वृषमः रोरवीति ) यह बलवान् अग्नि गर्जन करता है, ( दिवः अन्तात् चित् ) अन्तरिक्ष लोकेके एक ( उपमां उद् आनन् ) पासके भागसे वह प्रथम प्रकट हुआ, और ( अपां उपस्थे ) जलोके बीचमें-बीचके बीचमें ( महिषा ववधं ) यह सामर्थ्यशाली अग्नि बड़ने लगा ॥ ९ ॥

७२ अग्निं नरो दीधितिभिररथो हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।

दूरदृशं गृहपतिमथच्युम्

॥ १० ॥ ( ऋ. ७।१।१ )

इति सप्तमी दशति ॥ ७ ॥ सप्तम सण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १५ । उ० ८ । पा० १०५। (बो) ॥ ]

[ ८ ]

( १-८ ) १ वृषगण्डिरावापेयो; २, ५ वत्सप्रिमौल्यन्व; ३ भरद्वाजो बार्हस्पत्य; ४, ७ विद्वामिनो पाथिनः;

६ वसिष्ठो मंत्रावहनिः; ८ पापुर्भारद्वाजः ॥ अग्नि, ३ पूषा ॥ सिद्ध्यु ॥

७३ अयोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुपासम् ।

यद्वा इव प्र वयामुजिज्जहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ

॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।१ )

७४ प्र भूर्जयन्तं महान् विपोधां मूरैर्मूरं पुरां दमाणम् ।

नयन्तं गीर्भवेना धियं धा हरिश्मश्रुं न वमणा धनर्चिम्

॥ २ ॥ ( ऋ. १।१४।६ )

[ ७२ ] ( नरः ) यत् करनेवाले नेता मनुष्योंने ( दीधितिभिः ) अपनी अंगुलिपिंते ( अरथयोः ) दो अरथियोंके बीचमें ( हस्तच्युतं ) हाथोंके चलते उत्पन्न हुए ( प्रशस्तं दूरदृशं ) प्रशंसित तथा दूरसे ही देखनेवाले ( गृहपतिं ) परके स्वामी ( अथच्युं धामिं जनयन्त ) गतिशील जिनकी उत्पन्न किया ॥ १० ॥

एक अरथीमें दूसरी आककर वे अरथिया घिसी जाती है, इस धर्यंगते अग्नि उत्पन्न होती है, और इस प्रकार यह पतगृहवा स्वामी प्रशंसित होता है ।

॥ यहाँ सान्नायं खंड समाप्त हुआ ॥

[ ८ ] अध्यायः खण्डः ।

[ ७३ ] यह ( अग्निः ) अग्नि ( जनानां समिधा ) यज्ञकर्ता मनुष्योंकी समिधाभंति ( अयोधि ) प्रज्वलित हुआ है । ( धेनु इव ) [ अग्निहोत्रके लिए पात्री हुई ] माय जिन प्रकार [ प्रातः काल जागती है ] उसी प्रकार ( आयतीं उवासें प्रति ) आनेवाली उवासें [ उठकर इस अग्निको प्रज्वलित करे ] उस अग्निकी ( भानवः ) ज्वालायें ( वयां प्रोजिज्जहानाः ) शक्तियोंकी फैलानेवाले महान् वृक्षके समान ( अच्छ नाकं प्रसस्रते ) उत्तम रीतिसे आकाशमें फैलती हैं ॥ १ ॥

( १ ) वयां प्रोजिज्जहानाः यद्वाः- शाखाओंको फैलानेवाले महान् वृक्षके समान ।

( २ ) भानवः अच्छ नाकं प्रसस्रते- अग्निको किरणें अन्तरिक्षमें फैलती हैं ।

( ३ ) अग्निः जनानां समिधा अयोधि- अग्नि यत् करनेवालोंकी समिधाभंति प्रज्वलित हुआ है ।

( ४ ) धेनु इव आयतीं उवासें प्रति- मायके पास जैसे मनुष्य सबेरे जाता है, उसी प्रकार आनेवाली उवासें मनुष्य अग्निके पास जाकर उसे जलाते हैं ।

[ ७४ ] हे मनुष्य ! ( जयन्तं ) अनुशोको जीतनेवाले ( महान् विपोधां ) महान् बुद्धिमानोंकी धारण करनेवाले ( मूरैः पुरां दमाणं ) मूर्तियोंकी नर्परीको नाम करनेवाले ( अमूरं ) भानो अग्निकी स्तुति करनेके लिए ( प्रभूः ) समर्थ हो, ( गीर्भिः ) यना नयन्तं स्तुतिपिंते धनकी तरफ से जानेवाले ( वामणा म ) बन्धवके समान रहनेवाले ( हरिश्मश्रुं ) सुगहरे रथकी ज्वालाभंति वृक्ष ( धनर्चिं ) मिलने लिए श्लोक किए जाते हैं ऐसी अग्निकी ( धियं धाः ) स्तुति कर ।

- ७५ शुक्रं ते अन्यद्यजते ते अन्यद्विपुरुषे अहनी यीरिवासि ।  
विश्वा हि माया अवसि म्बधान्भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ३ ॥ ( ऋ. ६।२।१ )
- ७६ इवामग्ने पुरुद्वसं सनि गोः शश्वत्तम इवमानाय साध ।  
स्यान्नः सनुस्तनया विजावाये सा ते सुमतिभृत्यस्मे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ३।६।१ )
- ७७ प्र होतो जातो महान्नभोविन्मुपधा सीददपां विधते ।  
दधवो धायी सुवे वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।४।१ )
- ७८ प्र सघ्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।  
इन्द्रस्यैव प्र तवसस्कृतानि यन्दद्वारा यन्दमाना विचष्टु ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।६।१ )

[ ७५ ] हे ( पूषन् ) पूषा देव ! ( ते शुक्रं अन्यत् ) तेरा तेजस्वी वर्णवाला विच पूषक् हूँ, ( ते यजते अन्यत् ) जगो प्रकार तेरी कृष्ण वर्णकी राज्ञी पूषक् हूँ, इस प्रकार ( वि-पु-रूपे अहनी ) आपसमें एक दूसरेसे निम्न विचसके ये दो भाग तेरी महिमासे होते हैं, तु ( धीः इध अंसि हि ) चुलोकके समान प्रकाशित होता हूँ, हे ( स्वधायन् ) अन्नवान् देवता ! तु ( विश्वाः मायाः अवसि ) सब प्रजाशोका संरक्षण करता हूँ, ( ते भद्रा रातिः ) तेरे कल्याण करनेवाले दान ( इह अस्तु ) यहाँ हमें प्राप्त हों ॥ ३ ॥

- ( १ ) पूषा- सूर्य, ( २ ) यजते- विचससे सम्बन्धित, कृष्णवर्ण, ( ३ ) स्वधा-अन्न, अपनेको धारण शक्ति ।  
( ४ ) मायाः- दुःखलतासे काम करनेवाली प्रजा, कष्टका प्रयोग ।

[ ७६ ] हे अग्ने ! ( पुरु-द्वसं ) बहुत कार्योंमें उपयोगी ( गोः सनि इडां ) गायोंको देनेवाली शश्वो ( शश्वत्तम इव आनाय ) निरन्तर हवन करनेवाले पशुमानके लिए ( साध ) दे, ( नः सुनुः तनायः स्यात् ) हमारे पुत्र और गोव होवें, ऐगो जो ( ते सुमतिः ) तेरी उत्तम मुक्ति हूँ, यह ( अस्मे विजावा भूतु ) हमारे लिए शफल हों ॥ ४ ॥

- ( १ ) विजावा- शक्य, सकल, ।

[ ७७ ] ( यः नृपघ्ना ) जो मनुष्योंके धर्मोंमें रहनेवाला अग्नि ( अयां विधते ) पानीसे भरे हुए अन्नरिषभमें विद्युत् रूपसे रहता हूँ, वह इस समय ( होता जातः ) यत् करनेवाला हो गया हूँ, यह ( महान् नभोविन् ) महान् तथा अन्तरिक्षको आननेवाला अग्नि ( प्रसीदतु ) धेविमें प्रत्यक्षित हो गया हूँ, वह ( दधतु ) हविष्योंको धारण करनेवाला ( सुधायी ) धेविमें उत्तम रीतिसे रहनेवाला हूँ, हे स्तुति करनेवाले उपासक ! वह अग्नि ( विधते ते ) उपासना करनेवाले तेरे लिए ( ययांसि ) अन्न और ( वसूनि ) पत्नोंकी ( यन्ता ) देनेवाला ( तनू-पाः भवतु ) और शरीरका संरक्षण करनेवाला होने ॥ ५ ॥

[ ७८ ] ( असुरस्य पुंसः ) बलवान् बोरके और ( कृष्टीनां अनुमाद्यस्य ) मनुष्यों द्वारा स्तुतिके घोष ( तद्यसः इन्द्रस्य इध ) अलग इन्द्रके समान उस अग्निके ( प्रशस्तं सघ्राजं ) प्रशंसनीय उत्तम तेजस्वी ( प्रसीतु ) स्तुति करो । ( यन्दद्वारा यन्दमाना ) स्तुति और वन्दन आदि कर्मोंसे ( प्र विचष्टु ) उसको उपासना करो ॥ ६ ॥

७९ अरण्योर्निहिता जातवदा गर्भे इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः ।

दिवेदिव इव्यो जाशुवद्विहविष्मद्विर्भनुष्येभिरग्निः ॥ ७ ॥ ( ऋ ३।१९।२ )

८० सनादये मृणसि यातुघानान् त्वा रक्षा रसि पृतनाशु जिग्मुः ।

अनु दह सहभूरांकयादा मा त हेत्वा सुसुत देव्यायाः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।८।१९ )

इति अष्टमी दशति ॥ ८ ॥ अष्टम लण्ड ॥ ८ ॥ [ स्व० १३ । उ० १ । पा० ६ । (टी) ॥ ]

[ ९ ]

( १-१० ) १ मय आग्नेय, २ वामदेव, ३, ४ भरद्वाजो बाहुस्पत्य; ५ द्वितो मुक्तवाहा आग्नेय, ६ वसुव्य आग्नेया; ७, ९ पौषवन आग्नेय, ८ पूररात्रेय, १० वामदेव, कश्यपो वा मारीचो, अनुवा वैवस्वत, उभो वा ॥ अग्नि ॥ अनुष्टुप् ॥

८१ अग्र ओजिष्ठमा भर घृभ्नमसभ्यमग्निगो ।

प्र नो रायं पनीयसे रस्ति वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )

८२ यदि धीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्येः ।

आजुह्वद्व्यमानुपकृ श्रमे भक्षीत दैव्यम् ॥ २ ॥ ( ऋवेदे नास्ति )

[ ७९ ] ( जातवेदा- अग्निः ) सब सामो मुक्त्वा यह अग्नि ( गर्भिणीभिः सुभृतः गर्भे इव ) गर्भे धारण करने वाली स्त्रियों द्वारा उत्तम रीतिसे धारण किए हुए गर्भके समान ( अरण्योः निहित- ) अरण्योर्भोगे रहता है, यह अग्नि ( हविष्मद्विः जाशुवद्विः मनुष्येभिः ) हवि तैव्यार करने हेतुसा जागृत रहनेवाले मनुष्यों द्वारा ( दिवे दिवे ईड्य- ) प्रतिदिन स्तुतिसे योग्य है ॥ ७ ॥

[ ८० ] हे अग्ने ! तू ( मनात् ) हमेसा ( यातुघानान् मृणसि ) बण्ड और पोडा देनेवाले दानुओंको मारता है ( त्वा पृतनाशु ) तुझे पाषाणमें ( रक्षासि न जिग्मुः ) रक्षास जोत नहीं तकने, इस प्रकार तू ( सहभूरात् ) समूह ( प्र-यादः ) मात भक्षण शालवीको ( अनुदह ) जला डाल ( ते देव्याया- देव्या ) तेरे दिव्य हविष्यारोके कोई भी दानु ( मा सुसुत ) न छूटे ॥ ८ ॥

( १ ) सहभूरा-— जड़ सहित । ( २ ) प्र-यादः— मात देनेवाले ।

॥ यद्वां भाट्टां रवेड ममास दुश्या ॥

[ ९ ] नवम वण्ड ।

[ ८१ ] हे अग्ने ! ( ओजिष्ठ घृभ्नं ) बलवर्धक दान ( असभ्य आभर ) हमें भरपूर दे । हे ( अग्नि-गो ) बिना रोके दोर गतिजाले अग्ने ! ( पनीयसे श्रमे ) प्रसन्ननीय धनके मिलनेके मांगी ( नः प्र ) हमें विष्णु, उत्तम प्रकार ( वाजाय ) अन्न मिलने तथा बल बढ़ानेके ( पन्थां रस्ति ) मांगें विष्णु ॥ १ ॥

[ ८२ ] ( यदि धीरः स्यात् ) यदि वीर पुत्र उत्पन्न हो, तो ( मर्ये- अग्नि इन्धीत ) वह मनुष्य अग्निको प्रसन्न करे और ( अनु ) शरणमें ( ष्यादग्निं ) शरणनीय पदापीना तथा हवन करे, और ( दैव्यं श्रमे भक्षणं ) दिव्य मूल प्राप्त करे ॥ २ ॥

- ८३ त्वेपस्ते धूम ऋण्वति दिवि सं स्त्रुक् आततः ।  
सुरो न हि ध्रुवा त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ३ ॥ ( ऋ. ६।१।६ )
- ८४ त्वं हि क्षैतवद्यज्ञोऽन्न मित्रो न पत्यसे ।  
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।१।१ )
- ८५ प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश्व स्तवेसातिथिः ।  
विश्वे यसिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥ ५ ॥ ( ऋ. ६।१।८।१ )
- ८६ यद्वाहिष्ठं तदग्रये बृहदचे विभाषसो ।  
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।१।१७ )
- ८७ विश्वोविश्वो वा अतिथि वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।  
अग्निं वा दुयं वचः स्तुपे शूपस्य मन्माभिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।७।४।१ )

[ ८३ ] ( त्वेपः स्ते ) प्रणयित होनेके बाद तेरा ( शुक्रः धूमः ) साफ धुआ ( दिवि आततः ) अन्तरिक्षमें फैलता है, और ( ऋण्वति ) शरीरे यह चीजने लपटा है, हे ( पावक ) पवित्रता करनेवाले अग्ने ! ( स्त्रुः स ) सूयके समान ( कृपा ) स्तुतिके ( ध्रुवा ) प्रकाशने ( हि रोचसे ) तू प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

[ ८४ ] हे अग्ने ! ( हि ) निश्चयसे ( त्वं ) तू ( क्षैतवत् यदाः ) सूखी समिधाखण्ड अन्न ( मित्रः न ) धूमके समान ( पत्यसे ) प्राप्त करता है, हे ( विचर्षणे ) सर्व इष्टा ( यज्ञो ) अन्नको बसानेवाले अग्ने ! ( त्वं श्रवः ) तू अन्नको और ( पुष्टिं न पुष्यसि ) पुष्टीको बढ़ाता है ॥ ४ ॥

( १ ) क्षैत— सूखी लकड़ी, ( २ ) यदाः— अन्न, यज्ञ.

[ ८५ ] ( पुरु-प्रियः ) अनेकैको प्रिय लगानेवाले ( विदाः अतिथिः ) मनुष्योंके घरमें अतिथिने समान जानेवाले ( अग्निः ) अग्निको ( प्रातः स्तवेत् ) प्रातः काल स्तुति की जाती है, ( यस्मिन् नमर्त्ये ) जिस अन्न अग्निमें ( विश्वे मर्तासः ) सब मनुष्य ( हव्यं इन्धते ) हवनोय पदार्थोंका हवन करते हैं ॥ ५ ॥

[ ८६ ] ( वाहिष्ठं यत् ) अति शीघ्र पहुँचनेवाला जो स्तोत्र है ( तत् अग्रये ) यह अग्निके लिए बिचा जाता है, ( विभाषसो ) हे तेजस्वी अग्ने ! ( बृहत्तया पत्न ओर अन्न हव्यं दे, ( त्वत् ) तुमसे ( महिषी रयिः ) बृहत्त पत्न और ( त्वत् ) तुमसे ही ( वाजा उदीरते ) अन्न मिलता है ॥ ६ ॥

[ ८७ ] हे मनुष्यो ! तुम ( वाजयन्तः ) अन्न और बलको इच्छा करते हुए ( विदाः विदाः ) सब प्रजाओंके ( पुरु-प्रियं ) शतान्त प्रिय ( अतिथिं अग्निं ) इस धूम्य अग्निकी स्तुति करो, मैं ( यः दुयं ) तुम्हारे लिए घरोंमें रहनेवाले अग्निकी ( शूपस्य मन्माभिः ) सुल देनेवाले स्तोत्रोंसे और ( वचः स्तुपे ) अपनी वाणीसे स्तुति करता हूँ ॥ ७ ॥

- ८८ <sup>३२४ ३ २ ३१ २६ ३ २ ३ १ २</sup> बृहदयो हि मानवेऽचा देवायाम्ये ।  
<sup>२ ३ ३ २ २ ३ १ २ ३ ३ २</sup> ये मित्रे न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥ ८ ॥ (ऋ. १।१६।१)
- ८९ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमाग्निमानवम् ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> य स श्रुतवेन्नाक्षये बृहदनीक इध्यते ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।७।४)
- ९० <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> जातः परेण धर्मेणा यत्सवृद्धिः सहाभुवः ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥ १० ॥

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ नवम खण्डः ॥ ९ ॥ [स्व० १४। उ० ७। पा० ५१। (४) ॥]

[१०]

(१-६) १ अग्निस्तापता, २, ३ वामदेव कश्यप, अग्नितो देवतो वा, ४ सोमामृतिमांगवः, ५ पापुर्माष्टाग, ६ प्रस्वण्य काण्य ॥ अग्निः; १ विश्वेदेवा, २ अदिगरा ॥ अनुष्टुप् ॥

- ९१ <sup>३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> सोमं राजानं वरुणमभिमन्वारमामहे ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ १ ॥ (ऋ. १०।१४।१९)
- ९२ <sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इत एत उदारुहन्दिबः पृथान्पा रुहन् ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्र भुजेयो यथा पथाधामद्भिरसो ययुः ॥ २ ॥

[८८] (मानवे अग्ने) तेजस्वो अग्निके लिए (बृहद् ययुः) बृहत्ता हृदिका अत्र विद्या जाता है, (हि) क्योंकि सुम (देवाय अर्च्यं) प्रजापत्युक्त अग्निकी ही पूजा करते हो । (मर्तासः) मनुष्य (य मित्रं न) जित अग्निकी मित्रके समान (प्रशस्तये पुरः दधिरे) उत्तम स्तुति करनेके लिए आगे स्थापित करते हैं ॥ ८ ॥

[८९] (वृत्रहन्तमं) बुधको मारनेवाले (ज्येष्ठ जानवः) श्रेष्ठ मनुष्योंके हित करनेवाले (अग्निं शरान्म) अग्निको हम प्राप्त करते हैं (यः) जो अग्नि (आर्षे श्रुतवेन्) श्रेष्ठ पुत्र धृतवकिए लिए (बृहद् अनीकः) बौद्धी बौद्धी पबालाभोंने साथ (इध्यते रुम) प्रशंसित विद्या जाता है ॥ ९ ॥

[९०] हे अग्ने ! (यत् सवृद्धिः सह अभुवः) जो यत् अतिशक्तिके साथ उत्पन्न होता है, जग (परेण धर्मेणा) उत्तम धर्मके साथ तू (जातः) उत्पन्न हुआ है, (यत्) जित अग्निका (कश्यपस्य पिता) कश्यप पिता, (श्रद्धा माता) धृष्टा माता और (मनुः कविः) मनु कवि है ॥ १० ॥

॥ यहाँ नवम खंड समाप्त हुआ ॥

[१०] दशमः खण्डः ।

[९१] हम (राजानं सोम) सोमराजाको तथा वरुण, अग्नि, आदित्य, सूर्य, बृहस्पति, विष्णु और बृहस्पतिके (अग्मारामामहे) बार बार याद करते हुए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[९२] (एते भुजेयोः) आदित्यः (यथा) जैसे (पां) उत्पन्नययुः) बृहस्पतिके ययुः, (पथाः इत उदारुहन्) उत्तम मार्गके यहाँ बसे ययु और (दियः) पृथानि उदारुहन्) बृहस्पतिके शीघ्रतर आकर चर पाए ॥ २ ॥



- ९३ <sup>३१ २ ३३ ३ ३ २ ३ ३ १</sup> राधे अग्ने महि त्वा दानाय समिधीमहि ।  
<sup>१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इडिष्वा हि महि वृष घावा होत्राय पृथिवी ॥ ३ ॥
- ९४ <sup>३ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> दधन्वे वा यदीमनु वोचद्भूमिं वैरु तत् ।  
<sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> परि विश्वानि काठ्या नेमिश्चक्रमिवाधुयत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. २।१।३ )
- ९५ <sup>१ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ १ ३ १ २</sup> प्रत्यग्ने हरसा हरः शृण्वाहि विश्वत्स्परि ।  
<sup>३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २</sup> यातुधानस्य रक्षसा बलं न्युञ्जवीयम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।८।१५ )
- ९६ <sup>१ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २</sup> त्वमग्ने वसुधिरिह रुद्राः आदित्याः उत ।  
<sup>१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> यजा स्वध्वरं जने मनुजातं घृतभुषम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।४।११ )

इति दशमो वृत्तः ॥ १० ॥ दशमः खण्डः ॥ १० ॥ [ स्त० ४ । उ० ३ । धा० २० । (श्री) ॥ ]

इति प्रथमप्राठके द्वितीयोऽर्धः प्रथमः प्राठकश्च समाप्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयप्राठके प्रथमोऽर्धः ॥

( १ )

- ( १-१० ) वीर्यतमा औषधः; २, ४ विश्वामिनो गाधिनः; ३ सोमनो रक्षणः; ५ नित आप्त्यः; ६ हरिन्मिडिः काण्डः; ७, ८, १० विश्वमना वंशवः; ९ ऋजिष्वा भारद्वाजः ॥ जनिः; ५ पवमानः सोमः; ६ धरितिः; ९ विदने देवाः ॥ उष्णिक् ॥

- ९७ <sup>३१ २ ३ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १</sup> पुरु त्वा दाशिवाध्वोचिरिरी तव सिवदा ।  
<sup>३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २</sup> तादस्यैव शरण आ महस्य ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१५।१ )

[ ९३ ] हे अग्ने ! (त्वा) तुम (महे) राधे दानाय अधिक पन देनेके लिए हम (समिधीमहि) प्रवेष्ट करते हैं । हे (पृथिवी) बलवान् अग्ने ! (महे) होत्राय महान् अग्नि होत्रके लिए (घावा पृथिवी) सुलोक और पृथ्वीलोककी (ईडिष्वा) स्तुति कर ॥ ३ ॥

[ ९४ ] (वा) अथवा (इं) अनु दधन्वे इत जिनको लक्ष्य करके अण्वर्णुं आदि लोण (प्रक्ष अनुचोचत्) स्त्रोण कहते हैं, (तत् वेः उ) उन सबको यह जानना है, यह अग्नि (विश्वानि काठ्या) सब काष्ठोंको, सब क्रमोंको (नेमिः चर्धः इव) नामि बनको जैसे धारण करती है, उसी प्रकार (परि अनुयत्) धारण करता है ॥ ४ ॥

[ ९५ ] हे अग्ने ! (हरसा) अपने तेजसे (यातुधानस्य हरः) यातना कष्ट देनेवाले शालसेके सुपका हरण करनेवाला तू उनके (यलं) बलको (विश्वतः) सब प्रकारसे (परि प्रति शृण्वाहि) चारों तरफसे नष्ट कर, (रक्षसाः वीर्यं) राक्षसीके पराक्रमको (न्युञ्ज) नष्ट कर ॥ ५ ॥

[ ९६ ] हे अग्ने ! (त्वं इह) तू यहां (वसुध रुद्रान् उत आदित्यान्) धनु, रुद्र और आदित्य इन देवोंके लिए (यज) यत्न कर, उसी प्रकार (मनुजातं) मनुष्ये उत्पन्न हुए (घृत-भुषं) प्लुतका तिलन करनेवाले (स्यध्वरं जने यज) उत्तम यत्न करनेवाले मनुष्यका संस्कार कर ॥ ६ ॥

॥ यहाँ दशम खंड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] एकान्दाः खण्डः ।

[ ९७ ] हे अग्ने ! (त्वा पुरु दाशिवा) तूने बहुतसी हवि देता हुआ (ध्वोचै) मैं कहता हूँ, कि (महस्य सोदस्य इव) मैंने धनवान्को (शरणे वा) शरणमें आये हुए सेवकके समान मैं (तव सिवदा वा अरिः) तेरा ही सेवक हूँ ॥ १ ॥

- ९८ प्र होत्रे पूष्यं वचोऽग्रये भरता वृहत् ।  
विषां ज्योतीषि विभ्रते न वेधसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१०१ )
- ९९ अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यदो ।  
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७९।४ )
- १०० अग्ने यज्ञिष्ठो अघ्यरे देवां देवयते यज्ञ ।  
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्त्रिषः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ३।१०० )
- १०१ जज्ञानः सप्त मातृभिर्मघामाशासत श्रिये ।  
अयं भ्रुवा रयीणां चिकेतदा ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१०२।४ )
- १०२ उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्याममत् ।  
सा शन्ताति मयस्करदप स्त्रिषः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।१८।० )
- १०३ ईडिप्वा हि प्रतीग्याः यज्ञस्य जातवेदसम् ।  
चरिष्णुधूममगृमीतशोचिषम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२१।१ )

[ ९८ ] (विषां ज्योतीषि विभ्रते) ज्ञानियोंके तैजोंको धारण करनेवाले (वेधसे हेत्रि न) विघाता और देवोंको बुलानेवालेके समान (अग्रये) जिनके लिए (वृहत् पूष्यं वचः) महान् और प्राचीन स्तोत्रोंके (प्र भरता) कहो ॥ २ ॥

[ ९९ ] (सहसो यदो अग्ने) हे बलसे उत्पन्न हुए अग्ने ! (गोमत वाजस्य ईशानः) गायंसि उत्पन्न होनेवाले अथवा तू स्वामी है, इस कारण हे (जात-वेदः) ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले अग्ने ! (अस्मे महि श्रवः देहि) हमें बहुतसा धन दे ॥ ३ ॥

[ १०० ] हे अग्ने ! तू ही (अघ्यरे यज्ञिष्ठः) यज्ञमें पूजाके योग्य है, (देवयते) यज्ञकर्ताके लिए (देवान् यज्ञ) देवोंके लिए यज्ञ कर, तू (होता मन्द्रः) देवोंकी बुलाकर लानेवाला अग्नि (वि अति स्त्रिषः) यज्ञोंको पराजित करके (राजसि) मोहित होता है ॥ ४ ॥

[ १०१ ] (सप्त मातृभिः जज्ञानः) सात माताओं-नवियों की सहायतासे उत्पन्न होनेवाला, (मेघां श्रिये अशासत) धन करनेवाले सौम्योंकी शोभाके लिए प्रमत्त करनेवाला (अयं भ्रुवा) यह स्थिर अग्नि (रयीणां चिकेतद्) धनोंको उत्तम रीतसे जानता है ॥ ५ ॥

[ १०२ ] (उत स्या मतिः) और यह सुद्धि (श्र-दिति) न लक्षित होनेकी स्थितिमें (ऊत्या) संरक्षणकी शक्तिसे साथ (दिवा न आगमत्) आजके दिन हमें प्राप्त होके, (सा) यह (शन्ताति मयः) शान्ति और सुखको हमारे लिए (करत्) प्रदान करे, और (स्त्रिषः अप) यज्ञोंको ब्रू करे ॥ ६ ॥

[ १०३ ] (प्रतीग्याः ईडिप्वा हि) यज्ञको पराजित करनेवाले अग्निकी स्तुति कर, (अ-धूमित-भोचिष) जिनके प्रधानको कोई भी नहीं रोके सकता, (चरिष्णु-धूम) जिसका धुआ धारों विघातोंमें फैलता है, ऐसे (जात वेदस) धनको जाननेवाले अग्निको (यज्ञस्य) पूजा कर ॥ ७ ॥

- १०४ न तस्य मायया च न रिपुरीचीत मर्त्यः ।  
 यो अग्रये ददाश हृष्यदातये ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।१३।१५)
- १०५ अप स्यं वृजिन रिपुस्स्तेनमग्ने दुराप्यम् ।  
 दविष्ठमस्य सत्पते कृषीं सुगाम् ॥ ९ ॥ (ऋ. ६।११।१३)
- १०६ श्रुद्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्वपते ।  
 नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥ १० ॥ (ऋ. ८।११।१४)

इति प्रथमा दशति ॥ १ ॥ एकवचन खण्ड ॥ ११ ॥ [ स्व० ९। उ० ३। पा० ४२। (वा) ॥ ]

[ २ ]

(१-८) १ प्रयोगी भागव २ ( ऋ० सीनरि काव्यः ), २, ३, ५-७ सीनरि काव्य, ४ प्रयोगी भागव, सीनरि काव्यो वा, ८ विश्वमना वैपद्य ॥ क्षिति ॥ उज्जिक

- १०७ प्र महिष्ठाय गायत ऋताग्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।  
 उपस्तुतासो अग्रये ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१०।१८)
- १०८ प्र सो अग्ने त्रिधातिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।  
 यस्य त्वस्सख्यमाविध ॥ २ ॥ (ऋ. ८।११।१०)

[ १०४ ] ( य ) जो ( हृष्य-दातये अग्रये ) हृष्योप पदायोको देववाले अग्नि के लिए ( ददाश ) हवि देता है, ( तस्य ) उसके ऊपर ( मर्त्य रिपु ) कोई भी शत्रु ( मायया चन ) कपटसे भी ( न ईचीत ) शासन नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

[ १०५ ] हे अग्ने ! ( त्व ) उस ( वृजिन रिपु ) कपटी शत्रु और ( दुराप्य स्तेन ) कठिनतासे बशमें आने योग्य चोरको ( दृनिष्ठ अपाश्रय ) दूर कर, हे ( सत्पते ) सत्यके पालक अग्ने ! हमारे लिए ( सुगामि ) मायको शासनीसे जाने योग्य बना ॥ ९ ॥

[ १०६ ] हे ( वीर ) वीर ( विश्वपते ) हे प्रजाक पालक अग्ने ! इत ( मे नवस्य स्तोमस्य ) मेरे नव स्तोत्रको ( श्रुयी ) सुनकर ( मायिनः रक्षस ) छली, कपटी राक्षसोंको ( तपसा निदह ) अपने तेजसे जला दे ॥ १० ॥

॥ यहा ग्यारहवा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] द्वादश खण्ड ।

[ १०७ ] हे ( उपस्तुतासः ) स्तुति करनेवाले उषानको ! तुम ( महिष्ठाय ) महान् ( ऋताग्ने ) सत्यके पालक, यत्ने पालक, ( बृहते ) महान् ( शुक्र शोचिषे ) स्वच्छ प्रकाशसे युक्त ( अग्रये ) अग्नि के लिए ( प्रगायत ) स्तोत्रोंका गाव करो ॥ १ ॥

[ १०८ ] हे अग्ने ! ( त्व यस्य सख्य आविध ) तू जिसका मित्र हो जाता है ( स ) वह ( तव ) तेरे ( सुवीराभिः ) उत्तम वीरोंसे युक्त ( वाज-कर्मभिः ) अश्व देनेवाले और पुरुषायते प्राप्त होनेवाले ( ऊतिभिः ) सरसणसे साधनेसे ( प्रतरति ) बुझाते पार हो जाता है ॥ २ ॥

- १०९ तं गृधेषा स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।  
देवना हव्यमृहिये ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१९।१ )
- ११० मा नो हृणीया अतिथिं वसुरभिः पुरुप्रदास्त एषः ।  
यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१०३।११ )
- १११ भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।  
भद्रा उत प्रदास्तयः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१९।१२ )
- ११२ यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवना होतारममर्त्यम् ।  
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।१९।१३ )
- ११३ उदमे द्युन्नमा भर यस्तासाहा सदाने कं चिदग्निष्मम् ।  
मन्युं जनस्य दृढ्यम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१९।१४ )

[ १०९ ] हे उपासक ! ( स्वः नरं तं गृह्णति ) स्वर्णको हवि पहंचानेवाले अग्निकी स्तुति कर, ( देवासः ) ऋत्विग् गण ( देव्यं ) जिस देवको ( अरतिं दधन्विरे ) स्वामी मानकर उपासना करते हैं, उस अग्निकी सहायतासे ( देवना ) देवोंको ( हव्यं आ ऊहिये ) हवनीय द्रव्य तू पहंचाता है ॥ ३ ॥

[ ११० ] ( नः अतिथिं ) हमारे यज्ञसे अतिथिके सामान श्रेय अग्निकी दूर ( मा हृणीयाः ) मत लेना, ( यः सुहोता ) जो अग्नि देवोंको उत्तम रीतिते बलानेवाला, ( स्वध्वरः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला, ( एषः ) यह ( पुरु-प्रदास्तः वसुः ) अनेकानि प्रदासित होनेवाला तथा सबको यज्ञाने वाला है ॥ ४ ॥

[ १११ ] ( आहुतः ) जिसमें हवन किया गया है, ऐसा ( अग्निः ) यह अग्नि ( नः भद्राः ) हमारा कल्याण करने वाला होवे, हे ( सुभग ) उत्तम ऐश्वर्यवाले हमें ( भद्रा रातिः ) कल्याणकारी घने प्राण होवे, ( अध्वरः भद्र ) हमारा यज्ञ कल्याण करनेवाला होवे, ( उत ) और ( प्रदास्तयः भद्राः ) स्तुतियों हमारा कल्याण करनेवाली होवें ॥ ५ ॥

[ ११२ ] हे आने ! ( यजिष्ठं ) यज्ञ करनेवाले, ( देवया देवं ) देवोंमें प्रमूख देव ( अमर्त्यं होतारं ) अमर होता, ( अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ) इस यज्ञमें उत्तम रीतिते करनेवाले ( त्वा ववृमहे ) तुम्हारा हम संस्कार करते हैं ॥ ६ ॥

[ ११३ ] हे आने ! ( तत् द्युन्नं व्याभर ) उस तेजस्वी यज्ञको हमें दे, ( यत् ) जो ( सदाने ) यज्ञ स्थान अथवा घरमें ( कंचित् अग्निष्मं ) कितनी भी अल्पविध स्थानवाले यज्ञको ( आ यस्तासाहा ) क्या तब, उतनी प्रकार ( दृढ्यं ) दृढ्य मन्त्र और ( जनस्य मन्युं ) लोगोंके श्रेयको दूर कर ॥ ७ ॥

११४ यद्वा उ विदपतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।

विश्वेदमिः प्रति रक्षांसि सेवति

॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१३।१३ )

इति द्वितीया वसतिः ॥ २ ॥ द्वाव्याः लण्डः ॥ १२ ॥ [ त्य० १२ । उ० २ । धा० ४४ । (छी) ॥ ]

इत्यान्वयं पर्वं काण्डम् वा ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥ इति प्रथमं पर्वं ॥

अग्नेयकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११४

माधय्य.	३४	( १-३४ )
गृह्यः	२८	( ३५-६२ )
विष्टुम.	१८	( ६३-८० )
अनुष्टुम.	१६	( ८१-९६ )
उपनिषद्.	१८	( ९७-११४ )
	११४	

[ ११४ ] ( यत् वै ) जप (विदपतिः शितः) पत्रपानोंका पावन करनेवाला अग्नि हविसे प्रयत्नित होता है. तब वह अग्नि (सुप्रीतः) अच्छी तरह प्रसन्न होकर (मनुष्यः विशे) मनुष्यके घर जाता है, तब वह अग्नि (विश्वेद रक्षांसि इत्) सब राक्षसोंको (प्रतिपेधति उ) नष्ट करता है ॥ ८ ॥

॥ यद्वा यारह्वायं खंड समाप्त हुआ ॥

॥ इति अग्नेयं काण्डं समाप्तम् ॥

## अग्निका स्वरूप

सामवेदके प्रथम काण्ड ' अग्नेय काण्ड ' में ११४ मंत्र हैं, यथापि इनमें कहीं कहीं दूसरे देवताओंके भी मंत्र हैं, पर इस काण्डका मुख्य देवता ' अग्नि ' है । लोग देवताओंका वर्णन पर्व, पडकर लनके गुणोंको अपने अन्दर धारण कर, धारण करके उन्हें यथावै और मनुष्यसे ' देव ' बननेके लिए वैदिक सभ्यता और स्तुति है । ' देव ' बननेकी इच्छा प्रत्येक स्तुति करनेवालेके मनमें होती चाहिए । मैं देवताकी स्तुति करता हूँ मैं इस देवताके गुणका वर्णन करता हूँ, इसका उद्देश्य है कि इस देवताके गुण मेरे अन्दर आवें, और इन गुण गुणोंमें मुझमें हों ।

यत् देवाः अनुष्यन् तत् फरवाणि । शतपथ ब्राह्मण ।  
' जो देवीने दिया, वह मैं हूँ ' । इस प्रकार करके मनुष्य देवताको प्राप्त करे और देव बनकर समाजमें खोसित हो । यही-को अग्नेय काण्डमें इस प्रकार कहा है,

देव-युं जन्मं वा अयः । अ. ५।१।१३, साम. २३

' हे अग्ने ! देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंकी तू प्राप्त हो । गुण प्राप्त करनेका अर्थ है उपासकको देवत्वकी प्राप्ति, अर्थात् लनका उद्धार । यह देवत्व प्राप्त करना है, इसी-को मुख्य रूपसे करनेके लिए वेदने कहा है, उसे वैदिक धर्मियोंको करना चाहिए ।

आज हम सामवेदके ' अग्नेय काण्ड ' का विवेचन करते हैं, इस काण्डका मुख्य प्रतिपाद देवता अग्नि है । इस काण्डमें प्रथम अग्निके स्वरूप पर विचार करते हैं—

### आग्निके गुण

इस अग्नेय काण्डमें निम्न गुणोंका वर्णन है—

१ विश्व-वेदा- ( विश्व ) धर्मको ( वेदा ) आनने वाला, सर्वज्ञानी, विशेषज्ञान युक्त ( मं. ३ ) ' सग धम युक्त ' यह भी इस शब्दका अर्थ है, क्योंकि वेद सगको भी कहते हैं । ' वेदस् इति धम नाम ' ( निषे. १।१०।१ )

२ जात-वेदाः ( मं. ३१ )- ( जातं वेत्ति ) वष उत्पन्न हुआको जाननेवाला ।

३ कविः ( मं. ३० )- ज्ञानी, ज्ञानदर्शी, दूरदर्शी ।

४ पुरोहितः ( मं. ४८ )- आगे रहनेवाला, पुरोहित, मनुष्योंका सबसे पहले दितकरनेवाला ।

५ प्र-चेताः ( मं. ६१ )- विशेष बुद्धिमान्, विशेषज्ञानी ।  
६ अतिथिः ( मं. ५ )- अतिथिके समान व्यवसरकार-के योग्य ।

७ जरा-योधः ( मं. १५ )- स्तुतिसे ज्ञात होनेवाला, प्रियकी स्तुति होती है ।

८ रुद्रः ( मं. १५ )- ( स्तु-रुः ) बोलने वाला, वक्ता ( रुद्र-रः ) शत्रुको धमनेवाला ।

९ पावकः- ( मं. २८ ) पवित्रता करनेवाला, शुद्धि करने-वाला,

१० चेतिष्ठः ( मं. ४५ )- चेतना देनेवाला, प्रेरणा देने-वाला, ज्ञानी,

११ गालु-विद्-तमः ( मं. ४७ )- मालाँ जाननेवालोंमें सर्व श्रेष्ठ, उत्तम मार्गको जाननेवाला ।

१२ आर्यस्य धर्मनः ( मं. ४६ )- आर्योंको- श्रेष्ठ पुरु-षोंको- धरने वाला,

१३ श्रुत-कर्णः ( मं. ५० )- मर्कोंको प्रार्थना सुनकर उनकी कामनाधी पूर्ति करनेवाला ।

१४ पोता ( मं. ६१ )- स्वपत्न्या करनेवाला, एक अपत्यु

१५ विषो-धाः ( मं. ७४ )- विशेष ज्ञानी जोगीको महारा देनेवाला । ज्ञानियोंका आश्रयदाता ।

१६ अ-मूरः ( मं. ७४ )- जो पूर्ण नहीं अपूर्ण ज्ञानी ।

१७ सु-भगः ( मं. ६९ )- उत्तम देवर्षिवाला ।

१८ धर्मस्य सु-प्रतुः ( मं. ३ )- दमनका धर्म उत्तम विधिसे करनेवाला ।

१९ सत्य-धर्मा ( मं. ३३ )- धर्मका उल्लंघन करनेवाला, धर्मका पालन करनेवाला ।

२० सत्यपतिः ( मं. ३४ )- धर्मकोंका पालन करनेवाला ।

२१ धिदपतिः ( मं. ३५ )- प्रजाओंका उत्तम रीतिसे पालन करनेवाला ।

२२ प्राता ( मं. ४३ )- संरक्षण करनेवाला, उत्तम संरक्षक,

२३ धृताः ( मं. ४२ )- धरता, योग्य, दत्त, पूज्य ।

२४ वीश्वार-भृता ( मं. ६० )- सब मनुष्योंका दितकरने-वाला, धार्मिक दितकरती ।

२५ अ-तमः ( मं. ४६ )- आत्मरक्ष रहित, प्रकृती रहित, धरता अथवा पुत्र्य ।

२६ दक्षाः ( मं. ३५ )- चट्टा, कर्मोंमें हदा नियुक्त,  
२७ होता ( मं. १,२ )- देवोंकी युवाधर लानेवाला,  
सत्युक्तोंको अपने साथ लानेवाला, हवन करनेवाला ।

२८ प्रेषुः ( मं. ५ )- सबका प्रिय, सबको चाहनेवाला

२९ म्रियः ( मं. ५ )- सबका प्रिय, सबके द्वारा वादने योग्य,

३० वाजपतिः ( मं. ३० )-अज और बलश अपिपति ।  
३१ विवस्वत् ( मं. १० )- ( विवः ) ज्ञानसे ( वस् )  
पुरु. ज्ञानी, सबको बजानेवाला,

३२ घृचन् ( मं. २१ )-बढ़ानेवाला, संवर्धन करनेवाला ।

३३ सुधीरः ( मं. २६ )-उत्तम वीर, महायुद्ध

३४ घृणाणि जघनन् ( मं. ४ )- धरनेवाले शत्रुओंको मारनेवाला,

३५ सु-वीर्यस्य ईरो ( मं. ६० )-उत्तम वीर्यका साथी,

३६ पुरां-दर्माणं ( मं. ७४ )-शत्रुके नगरोंको तोड़ने-वाला,

३७ वृत्रहृत्तमः ( मं. ८१ )- शत्रुओंको मारनेवाला,  
३८ ऊर्जा न-पातः ( मं. ४५ )- बलको कम न करने-वाला, बल बजानेवाला ।

३९ ऊर्जा पति ( मं. ३६ )- बल और शक्ति का पालक ।  
४० जघर् ( मं. ७४ )- विजयी

४१ प्रतनः ( मं. २० )- शत्रुओं, धननि

४२ अमृतः ( मं. ३५ )- अमर  
४३ मूषभः ( मं. ७१ )- बलवान्, सामर्थ्यशाली, श्रेष्ठ करनेवाला,

४४ पुष्ट-प्रियः ( मं. ८७ )- बहुओंकी प्रिय, ' प्रिय ' ( मं. ४५ )

४५ स्वध्वरः ( मं. ४५ )- ( शु-अध्वरः ) हिंसा रहित यह करनेवाला ।

४६ पुष्ट-प्रदासं ( मं. ११० )- बहुओं द्वारा प्रसन्नित  
४७ द्रविणस्तुः ( मं. ४ )- धनदाता, बलदाता, ( निषं ११०,११५ वन, ११५,११६ वन )

४८ सौमनस्य ईरो रायः ईरो ( मं. ६० )- सौमनस्य और धनका साथी ।

४९ दासुसे रत्नानि क्षुधत् ( मं. ३० )- दान देने-बले मनुष्योंको दान देनेवाला ।

५० द्रविणोदाः ( मं. ५५ )- धन देनेवाला,  
५१ देवानां म्रियः ( मं. ६५ )- देवोंकी प्रिय, विश्वासोंका चाहनेवाला,

५२ देवेषु राजति ( मं. ५६ )- देवोंमें प्रथमकेन होनेवाला, विद्वानोंमें तेजस्वी ।

- ५१ गृहपतिः ( मं. ६१ )- गृहस्थ, परीक्षा खात्री,  
 ५२ अनेहस् ( मं. ६२ )- पारहित,  
 ५५ नृपशोचीः ( मं. १०७ )- तेजस्वी, प्रकाशित  
 होनेवाला ।  
 ५३ सहस्वान् ( मं. २१ )- बलवान्, शत्रुको पराजित  
 करनेवाला ।  
 ५७ भरतिः ( मं. ६० )- प्रगतिशील,  
 ५८ ज्ञाते जातः ( मं. ६० )- सत्यके लिए प्रयत्न करने-  
 वाला, यज्ञके लिए उत्सव हुआ ।  
 ५९ अर्थः राजा- ( मं. ७० )- श्रेष्ठ राजा,  
 ६० परेषा धर्मणा जाताः ( मं. ९० ) श्रेष्ठ धर्मोंके साथ  
 उत्पन्न हुआ, श्रेष्ठ धर्मोंका पालन करनेवाला ।  
 ६१ सत्पते सुसं कृषि ( मं. १०५ )- हे सज्जनोंके  
 पालन करनेवाले ! हमारे मार्ग सरलतासे जाने योग्य बना,  
 अग्नि मार्गको सरलतासे जाने योग्य बनवाओ ।  
 ६२ अध्वरणां सघ्राट् ( १७ )- हिला रहित धर्मोंका  
 सघ्राट् ।  
 ६३ सत्य-यज्ञः ( मं. ६७ )- सत्य यज्ञ करनेवाला, उत्तम  
 यज्ञ करनेवाला ।  
 ६४ अयुसीत-शोचिः ( मं. १०३ )- जिसका तेज  
 कम नहीं होता, जिसका तेज रोकना या दबाया नहीं जा सकता ।  
 ६५ रिपुः न हंघात ( मं. १०४ )- जिस पर शत्रु घातन  
 नहीं कर सकता, शत्रुको हरा देनेवाला ।  
 ६६ तनु-प्राः ( मं. ७७ )- शरीरका संरक्षण करनेवाला,  
 ६७ नृ-पत्न्या ( मं. ७७ )- मानवीय परी और शरीरोंमें  
 रहनेवाला ।  
 ६८ मानुषे जने देवेभिः हित ( मं. २ )- मनुष्योंके  
 शरीरोंमें देवोंद्वारा स्थापित किया हुआ ।  
 ६९ वसु ( मं. ३६ )- धनके बण्डारेवाला, निवाध  
 करनेवाला ।  
 ७० धर्मोद्य-व्यातनः ( मं. १२ )- लोगोंको दर करनेवाला ।  
 ७१ सहस्र-पोषिणं वीरं तमसा घृते ( मं. ५८ )-  
 हजारों मनुष्योंका पोषण करनेवाले वीरों-वीर पुत्रको स्वयं  
 पालन करना है ।  
 ७२ अनानां सघ्राट् ( मं. ६७ )- लोगोंका सघ्राट् ।  
 ७३ दिदृष्यरूप- ( मं. १९ )- सोनेके समान तेजस्वी,  
 बलवन्नेवाला ।  
 अग्निहे इत्त गुणोका वर्णन इव आमेय काण्वेमे है । इसमें  
 वही अग्निहे काण्वका वर्णन है, वही उलके बल और धारोत्ताका  
 घ ( घाम. द्विटी )

वर्णन है । ये गुण यदि मनुष्य अपने अन्दर पावाले, तो उनको  
 योग्यता नि सन्देह बंधनों । पाठक इस दृष्टिके इन गुणोंका  
 विचार करें, और जो गुण अपने अन्दर ला सकते हैं, उनको  
 स्वयं और उन्हें पढावे । मनुष्य इन गुणोंके युक्त हो इधलिए  
 वेदके ये मंत्र हैं ।

### अंगिका सामर्थ्य

अंगिका सामर्थ्य बहुत महान् है, इधलिए इधको 'पुरुतमः'  
 ( २१ )- सर्वमें श्रेष्ठ कहा है । शक्तिमें यह सबसे महान् है,  
 इधलिए कहा है, कि 'महान् अस्ति' ( २२ )- व बहुत  
 बड़ा है, तेथे बाबरी करनेवाला कोई दूसरा नहीं है, तुम जेघा  
 महान् कोई नहीं है ।

छुट्टयः जोजसे ये नमः शृणुमि ( मं. ११ )- एक  
 मनुष्य शक्तिके लिए तुमसे नमन करते हैं, और तेरी स्तुति  
 करते हैं ।

इव प्रकारकी अंगिकी शक्ति है ।

### आर्षोका संवर्धन

सु-जाते भार्यस्य संवर्धनं न गिरा नशान्तु ( ४७ )-  
 उत्तम रीतियों उत्पन्न हुए और श्रेष्ठ पुरुषोंको बचानेवाले अग्निहा  
 वर्जन हमारा शायी करती है ।

यसके तीन अर्थ हैं, ( १ ) देव-पूजा, ( २ ) सगति-करण  
 और ( ३ ) दान, इनसे मनुष्योंकी शक्ति बढ़ती है । वैचि ? इव  
 प्रकार कि समाजमें रहनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंका धरकर होनेसे श्रेष्ठ  
 पुरुषोंको संख्या बढ़ती है, उगते उगना श्रेष्ठ होता है । उसके  
 बाद संगति-करणकी आवश्यकता होती है, संगति-करणका अर्थ  
 है, संघटन, समाजमें संगठन होनेका अर्थ है समाजकी शक्तिका  
 विस्तार । वीरका पथ है दान । दानका अर्थ वैचक पत्र देना ही  
 नहीं है, अविद्वि श्रिकके पाद जो वीर नहीं है, वह वीर उसके  
 देकर उत्तम सहाय करना भी दान ही है ।

यह दान चार प्रकारका है- ( १ ) विद्या दान, ( २ ) बल-  
 दान, ( ३ ) धनदान और ( ४ ) धर्मदान । इन चार प्रकारके  
 दानोंसे राष्ट्रकी उत्पत्ति होती है । अग्निागोंको विद्याका दान  
 करनेसे वे ज्ञानवान् होकर उत्तम होते हैं । जो निर्बल हैं, उनके  
 बलकी बढाकर उन्हें बलवान् बनाना यह दूसरा कार्य है ।  
 धनका दान देकर देवोंमें धन उत्पन्न करनेके साधनोंको बचाना  
 यह राष्ट्रकी उत्पत्तिमें तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है । चौथा काम  
 है, नेक-रीतोंका दान देकर उन्हें धन मिले ऐसा प्रवृत्त करना ।  
 इन चार प्रकारके दानोंसे देशकी उत्पत्ति ही संभवी है ।

यन्के ये तीन पञ्च उत्तम रीतियों राष्ट्रकी उत्पत्ति करनेवाले

है। इस कारण यज्ञके राष्ट्र और समाजकी उन्नति होती है। यह हमारा विचार बिल्कुल ठीक है।

### गृहपति

यद्यपि यह अग्नि घरके हवन-कुण्डमें ही रहता है, पर तो भी उसे वहाँ 'गृह-पति' परका गणित कहा गया है। यज्ञका अग्नि निश्चयके परका स्वामी है।

गृहपते ! अ-प्रोषितवान् महान् अस्ति ( ३५ )

'हे गृहस्वामी अग्नि ! तू कहीं दूसरी जगह नहीं घूमता, तू निश्चयके महान् है।' ( अ-प्रोषितवान् ) तू बाहर इधर उपर बिना कारण नहीं घूमता। घरमें ही रहते हुए तथा परका हित करते हुए तू अपना समय बिताता है, इसलिए तू ( महान् अस्ति ) महान् है। अपने परका सब प्रकारके कल्याण करना गृहस्वामीका मुख्य कर्तव्य है। सब गृहस्वामी इससे बहुतसा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

### गायोंके पाठना

गायोंके पाठना यह स्थिरयोग एक मुख्य कर्तव्य है। घरमें गायें आनन्द आनन्दमें हैं। परोंमें बच्चोंके वापका दूध, घी, नखलन आदि प्राप्त होना उत्तम ऐश्वर्यका लक्षण है। इससे मनुष्य कर्म्यी उन्नत होते हैं—

मधयानतः जनानां यन्तारः भोनां ऊर्वं द्यतः ( ३८ )-

'श्री मनुष्यों पर उत्तम प्रकार शयन करते हैं, वे भवनात् गायोंके हृण्डका भी संरक्षण करते हैं। वे लोगोंके गायें देते हैं, और गायोंके लोगोंकी सहायता करते हैं।

पुनर्दंस्ते गो-न्सनि इदां शश्वत्तमं ह्ययमानाय साध ( ३९ )-

स्तुति करनेवालेको अनेक प्रकारके भक्ष देनेवाले सब प्रकारके भक्ष देने वाले हे अग्नि ! तू पापका दान कर।

गायोंका दान यज्ञ करनेवालोंके करे। गाय भी यज्ञका मुख्य धामन है। हवन गायके दूध और घीसे होता है। गायके पीना भी अग्निमें आहुति देनेके वह विषको मष्ट करके इवां शब्द करता है।

ऋतुसंधिषु ये व्याधिर्जान्यते।

ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते।

— गोपय ब्राह्मण

ऋतुओंके संधि कालमें आग्नेय एक ऋतुके समाप्त होनेपर जब दूसरी ऋतु आरम्भ होता है, तब इन्हींके बदलनेके रोग पैदा होते हैं। इन्होंने ऋतुओंके संधि कालमें यज्ञ किए जाने देना। इन बच्चोंमें गायके भी तथा रोगोंके शांत करनेवाले अन्नान्य औषधियोंका हवन किया जाना है, यज्ञके रोग दूर होते हैं।

मनुष्यका रोग इस प्रकार दूर हो सकता है, कि मनुष्य जिस रोगसे पीकित है, उस रोगके शांत करनेवाली औषधियोंके कूटकर उचका तथा गायके घीका हवन यदि उस रोगके कमरेमें किया जाए तो घरमें उठी गयीं छामरी अग्निमें बलकर सुप्त हो जाती है, और वह सुप्त अन्न खाद्य द्वारा रोगीके अन्दर जाकर रक्तमें मिल जाता है, और इस प्रकार वह रोगीके रोगको दूर करता है।

अग्निको 'हृत्पयाह्व' कहा है, क्योंकि यह हवनमें काले गए पदार्थोंको जहाँ पहुँचना होता है, वहाँ पहुँचा कर इच्छित कार्यको सिद्ध करता है।

किञ्च ऋतुमें किन औषधियोंका हवन किया जाए यह संशोधनीय विषय है। यदि इसका संशोधन कर उसके अनुसार हवन किया जाए तो वैयक्तिक और सामुदायिक आरोग्यका लाभ होगा, इसमें कोई संशय नहीं। संशोधकोंका कर्तव्य है कि इस महत्त्वपूर्ण विषयका संशोधन अवश्य करें।

### ज्ञानी अग्नि

अग्नि ज्ञानी है, यह पहले ही दिखनाया है। अग्निमें यदि अग्निको जलाया जाए तो वह उस स्थानका उत्तम ज्ञान का देता है। कौनसा मार्ग है, और वह मार्ग कहीं कहीं और पर्यवेष्टि मरा हुआ तो नहीं है, कहीं मार्गमें गूठे तो नहीं हैं, इन सबका ज्ञान अग्नि करा देता है। मनुष्योंको इसका अनुभव कर्तव्य परमिता है। इसीलिए इसे 'विश्ववेद्याः' ( ३ ) यज्ञको जाननेवाला कहा गया है।

घाजपतिः कथिं हृत्पयानि परि अग्रमीत् ( ३० )

यह अन्न या कलका स्वामी और दूरदर्शी है, और वह घरमें काले गए पदार्थोंको जहाँ दिशाओंमें फैलाता है। अग्निमें किञ्च कालेपर आनयण बैठे हुए मनुष्योंको छोड़ आने लगती है, उसी प्रकार सुगंधित पदार्थोंका हवन करनेपर घाघमें बैठे हुए मनुष्योंको सुगंध आने लगती है। इस प्रकार यह अग्नि हवनमें काले गए पदार्थोंके वह ( पर्यन्तमीत् ) जहाँ दिशाओंमें फैलाता है। इसलिए इसे—

यमस्य सुप्रतुः ( ३ ) - दूरको उत्तम रीतिमें धर्मपत्त करनेवाला बताया गया है। जिन यज्ञोंय पदार्थोंकी हवनमें आहुति दी जाती है, उन पदार्थोंको यह अग्नि जहाँ दिशाओंमें फैलाकर लपके उत्तम परिणामको सब हवन कर्त्तव्योंको प्राप्त करता है। यह उत्तम परिणाम मनुष्योंके अस्तुमयमें जाता है। इसलिए इन पदार्थोंका हवन इन ऋतुमें करना चाहिये और इस ऋतुमें नहीं, इसका विचार पूर्वक संशोधन करना चाहिये।

बसोधि—



अयं अग्निः सूर्यार्यस्य ईशो ( ६० )

यह अग्नि उत्पन्न बनका स्वामी है। इसलिए स्वमें त्रिज परायणोका हवन किया जाए उन पर पहले विचार कर लेना-बाहिए।

पते भूर्गुण्यः आगिरस्सः धां उत्प्रययुः, इत उदा-  
हरन्, दिचः पृष्ठानि आरुहन् ( ६१ )

'ये उत्पन्न यज्ञ करनेवाले आगिरस ऋषि युलोकर बड़े, यहूषि और चष स्थानपर पहुंचे, फिर युलोकरकी पीठपर जाकर वहाँ वे विराजमान हुए'।

यह वरुणकी शक्ति है। इसलिए यज्ञ सदा धारणावाह होना चाहिए। 'अंग-रस' अंगमें जो जीवन रस रहता है, उसे अंगरस कहते हैं, यह रस सब अंगमें रहता है। यह रस केंद्र तैमार होता है, केंद्र रहता है, और केंद्र निर्दोष बनाया जा सकता है, इस विद्याको जो जानते हैं, वे 'आगिरस' होते हैं। अंगके जीवन रसकी विद्या जो क्षति जानते हैं, वे आगिरस ऋषि कहते हैं। आगिरसले इस विद्याका संशोधन करके उसे बढ़ाया, और यज्ञस्य होनेवाले परिणामोंकी सामर्थ्यके समाने शिद्ध करके दिखलाया, इस कारण ये आगिरस ऋषि श्रेष्ठ बने।

### देवत्व प्राप्त करना

सभी यज्ञोंका यदि कोई संरक्षक है, तो केवल देवत्व प्राप्त करना ही है। देवोंके जो गुण मंत्रोंमें बताये हैं, उन्हें अपने अन्दर धारण करके उन्हें बढ़ाना यह साधन है, यह कर्मात्म्य कर्म है, यह मनुष्यों द्वारा करने योग्य है।

देवयुं जन्ं वा अयः ( २३ )

देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छावाले और उसके साधनोंका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्योंके पाप क्षमि जाता है। इस 'आयम्य काश्च' में अग्निं जो गुण बताये हैं, वे युग अपने अन्दर बढ़ानेका जो प्रयत्न करते हैं, और सरुका यह अनुष्ठान प्रितना बढ़ता है, उत्तना ही उनके अन्दर अग्नि बढ़ती है और वे अग्निंके समान तेजस्वी होते हैं।

उपयुं धः देवाः न मा यह ( १० )— उप-कालमें आगनेवाले देवोंको इस यज्ञमें ले आ। 'उप-युपः' उपा-कालमें उठना, छीत न रहना यह देवत्वका एक विन्द है। सबसे छोटे चार ब्रह्मे उठना भावार्थमें ही सकता है। धींच, सुंद मोला, ज्ञान, संघ्या उपासना करके ७ ब्रह्मे जो अपने काममें लग जाता है, सबको, प्रातःकाल उठनेसे देवा उरुवाह प्राप्त होता है, यह अनुभव होगा। और इसके विपरीत आठ भी ब्रह्मचरि ब्रह्मचरमें पढ़ा रहनेवाला ब्रह्मना उरुका होन होता

है, यह बात मनुष्यने योग्य है। 'उपा-युपः' उपा कालमें उठकर अपने कार्यमें लग जाना यह देवत्वका एक लक्षण है।

'देवेषु राजसिं ( २६ )— यह देवोंमें तेजस्वी होता है। देवोंके गुण अपने अन्दर धारण करनेके मनुष्य देवोंमें बनकने लगता है। देवोंमें केवल बहना ही नहीं अपितु देवोंके धींच तेमकी होना ही विशेष महत्वकी बात है। सभी देव तेजस्वी हैं, उनके शक्तिमें जो विशेष तेजस्वी होता है, वही देवोंमें श्रेष्ठ-वता है। विशेष तेजस्विता प्राप्त करना ही इच्छा तात्पर्य है।

सयाधमिः देवैः घनिहभिः प्रातर्यायभिः अघ्वरे  
घर्हिणि नासीदन्तु ( ५० )— 'साध साध चलनेवाले आगे ले आनेवाले तथा प्रातःकाल उठकर काममें लगनेवाले देवोंके साथ यज्ञमें आधनपर बैठ'। (स-यायभिः) समान रीतिसे प्रगति करनेवाले (प्रातः यायभिः) प्रातःकाल उठकर उद्यति-कारक काममें लगनेवाले और (घनिहः) आगे ले आनेवाले देवोंके साथ यज्ञमें आधनपर बैठनेकी योग्यता प्राप्त हो, इसलिए इस प्रकारके गुण अपने अन्दर धारण करने बाहिए। मित मिलकर साधुसाधिक प्रगति करना, प्रातःकाल उठकर काममें लगना, और उद्यतिशील मार्गधे जाना ये तीन गुण अग्निमें हू। यज्ञकी अग्नि प्रातःकाल प्रज्वलित होती है, सब ऋषिजन मिलकर उद्यती उपासना करते हैं, और सब उद्यतिके मार्गपर जाते हैं, अर्थात् निर्दोष यज्ञ करते हैं। इन गुणोंकी अन्तःकरण ही मनुष्योंकी उद्यति हो सकती है। इस प्रकार यह अग्नि देव मार्गको दिखानेवाला है, इसलिए कहा है—

नः हरो देवः अग्नि ( १० )

'हमको मार्ग-दिखानेवाला तू देव है'। अग्नि देव इस प्रकार लोगोंको मार्ग दिखानेवाला है। अन्धकारमें अग्नि अपने प्रकाशसे जोकोको मार्ग दिखाना है, यह सबके अनुभवमें आने-वाली बात है। 'अग्निः कस्मात्, अग्रणीः भवति' ( निष्ठा ), इसे अग्नि इसीलिए कहते हैं, क्योंकि यह अग्र-णी होता है, अर्थात् ( अग्र-नी ) आगेके आगमें रहनेवाला, आगे ले आनेवाला यह अग्नि देव है। वह सबको उद्यतिके मार्गधे ले आता है, इसलिए उरुका पूरा नाम 'अग्र-पी' है, त्रिपदा संक्षिप्त रूप 'अग्र' हो गया है।

अग्र-नी— अग्र-नी

अग्र-नी— अग्नि

यह यज्ञाग्नि भी लवी प्रकार अग्र-नी है, क्योंकि वह अपने उपासकोंको प्रगतिके मार्गधे आगे ले आता है—

मिष्यं मिषं इष ( ५ )— त्रिप मिषके समान उदाहर देकर अपने अर्थाको आगे ले आता है—

ते मनः परमात् सपस्यात् आयमत् (८)- जो तेरे मनको लक्ष्मि स्थानसे अपने पास बुझ लेता है, तेरे मनको अपने अनुकूल बना लेता है, वह भ्रष्ट बनता है। देवताके मनको अपने अनुकूल बनानेके लिए देवताके गुणोंको अपने हृन्दर लानेको आवश्यकता है। नहीं तो यदि अपना भावराग देवताके गुणके विरुद्ध होगा, तो निश्चयसे देवता हमपर क्रोधित होगी। इसलिये देवताके कौन कौनसे गुण हैं, इनको जानकर उन्हें अपने हृन्दर मनुष्य चाराण करें, और देवताके मनको अपने अनुकूल बनायें।

**शत्रुनाशक अग्नि**

अग्निके कुछ गुण पहले दिखाये। अब 'आग्नेय काण्ड' में अग्निकी कुछ कुशलताका जो वर्णन है, उसपर विचार करते हैं- अग्निः पृत्राणि जघनत् (४)- अग्नि शत्रुओंको मारता है। पृत्रका अर्थ है, चारों ओरसे घेरनेवाला शत्रु। पृत्रका अर्थ है, मेघ, शत्रुका अर्थ है उस प्रकारके शत्रु। इस शत्रुओंको अग्नि नष्ट कर देता है।

अयं अग्निः वृत्रहृधानां हंसि (१०)- यह अग्नि वृत्रको मारनेवाले शूरीरोंमें प्रथम है।

वृत्रहृदन्तमं ज्येष्ठं आनयं अग्निः अथग्म (८९)- घेरनेवाले शत्रुओंको नष्ट करनेवालीमें प्रसुक्त शूरीरोंमें जो मुख्य - उस अग्निको मैं प्रथम होता हूँ, उसको मैं न्यासना करता हूँ। उससे मैं मित्रता करता हूँ, उसके पास आकर मैं रहता हूँ, उसके आश्रयमें मैं रहता हूँ।

विश्वस्य अरातः महोभिः पाहि (६)- सभी शत्रुओंसे अपनी महती शक्ति द्वारा हमारा संरक्षण कर।

मरुस्य द्विपः पाहि (६)- देव करनेवाले मनुष्यों और शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर।

अग्निः अग्निभं अर्द्धप (११)- अपनी शक्तिये हमारे शत्रुओंको नष्ट कर दे।

मृदुः (१५)- मृदु शत्रुओंको, स्तम्भेभ्यश्च, दे।

अग्निः तिग्मेन शोचिषा विश्वं अग्निर्णं नियंसत् (११)- अग्नि अपनी शोचन प्रकृतिओंसे सब अशुभके साने वाले शत्रुओंको मारता है। 'अग्निः'- अत्यधिक शानेवाला शत्रु (असि इति अग्निः)।

मः अहसः रीपतः स्त (१४)- हमारा चापी हितक शत्रुओंसे संरक्षण कर।

अजगः तविष्टैः प्रतिबृद्ध (१४)- बुढापिये रीतत चढा तरण रहनेवाला मू अपने तेजसे शत्रुओंको जला दे।

विद्वपतिः रक्षसः तपानः (१९)- अज्ञाओंका पालन करनेवाला अग्नि शत्रुओंको तप्तकर नष्ट करता है।

सनात् यातुधाना मृणसि (६०)- हमारा शत्रु पाषा देनेवाले शत्रुको मू नष्ट करता है।

त्या पृतनासु रक्षांसि न जिग्युः (८०)- तुझे तुझमें राक्षस जीव नहीं सकते।

सहमूरान् क्रव्यादा अनुवृद्ध (८०)- शूरीके साथ रहनेवाले और कषा मीस खानेवाले जो शत्रु हैं, उन्हें नष्ट दे।

ते वैव्याथाः हेस्याः मा सुहृत् (८०)- वे शत्रु [तेरे] मित्र शत्रुओंसे न हूँते।

हरसा यातुधानस्य हरः बलं विश्वतः परि प्रतिभृत्पाहि (१५)- अपनी शक्तिये तुझे सबके संहर करनेवाले बलको सब तरहसे नष्ट कर।

रक्षसः बलं श्युञ्ज (१५)- राक्षसोंका बल नष्ट कर।

अिघः अपकरत् (१०२)- शत्रुको दूर कर।

तस्य मरुस्यः रिपुः मापया चन न ईशते (१०४)- उसको मारनेवाला शत्रु अपनी चतुरतासे फिर शक्तिशाली न बने।

स्यं पृजिनं रिपुं हुराभ्यं स्तेमं दृषिष्टं अषास्य (१०५)- उस पापी और कठिनतासे बर्णमें करने वैभ्य पौर शत्रुको पूर चूँक दे।

मायितः रक्षसः तपसा निदंद् (१०६)- अपनी शक्तिसे अग्नि तेजसे जला दे।

सवने कंचित् अग्निं वा सासहाम (१११)- अपने परमें अपना राष्ट्रमें कोई शत्रु शत्रु आ जाने तो उसे हम पराजित करें।

विश्व्वा रक्षांसि प्रतिवेद्यति (११४)- सब शत्रुओंको नष्ट मारता है।

इस प्रकार अपने सब शत्रुओंके वैयक्तिक और राष्ट्रीय शत्रुओंके नाश करनेका विचार इस आग्नेय काण्डमें किया गया है। जो सब सत्य और सब स्थानमें शत्रुओंके नाशके लिये शूरी, प्रथम रही इच्छा प्रकट की जाती है। मनुष्य इस प्रकार अपने शत्रुओंको दूर करनेका प्रयत्न करें। अपनी शक्ति बढावें, अपने संघटनका बल बढावें, अपने शस्त्रास्त्रोंको और घेनामोंका बल बढावें और अपने शत्रुओंके शत्रुके घेनामोंको दूर करें।

**घोडे**

अग्नि अपने रथमें बेगने सौक्यनेवाले घोड़ोंको जोतकर भागता है। इस विषयमें कहा है-

ये तव साधयः आघायः अभ्यासः अर्तं दहग्ति शुक्य दि (१५)-

जो तेरे चतम प्रकारचे शिक्षित और बेगले जानेवाले बोटें हैं, जो तुझे बहुत धीरे बोटें ले जाते हैं, उन बोटोंको तू अपने रथमें जोड़कर शीघ्र आ ।

यह बोटोंका वर्णन आलेखारिक है, यहाँ बोटोंका तारक्य अमित्री किरणोंसे है, क्योंकि यह अति पौबोवाले रथमें बैठकर बही जाता नहीं ।

शरीर रूपी रथमें बैठकर आत्मा रूपी अति इष्ट पृथ्वी पर उतरती है, और इष्ट रथमें धर्म देव अंध रूपसे आकर बैठती है । यह वर्णन चित्रक ठीक है । इसके सम्बन्धमें आगे विस्तारसे कहेंगे ।

इस प्रकार अमित्री रथके पौबोवा वर्णन आलेखारिक है ।

### संरक्षण

अभि अपने मर्कोंका संरक्षण करनेके लिए बुद्ध करता है, यह स्पष्ट है । अपने मर्कोंके चतुर्भोंके दूर करने और उनको सुरक्षित रखनेके आतिरिक्त चषका और कोई उद्देश्य नहीं है । नक्षण इष्टको अपनी इष्टिमें रखकर अपनी शक्ति बढ़ावे और निर्भय होकर रहे ।

रथं वाता सप्रयाः ( ५२ )- हे अग्नि ! तू हमारा संरक्षण करनेवाला प्रियद है ।

अज्ञा चरेपर्यं मयाः यामि- वेदमंत्रोंको सदाबताये मैं चतम संरक्षण प्राप्त करता हूँ । वेदमंत्रोंमें कैसे कहा है, उधके अनुसार धर्मी अपना बल स्वयं बढ़ावे, सब अपना संरक्षण स्वयं करे । यही 'चरेपर्यं मयाः' श्रेष्ठ संरक्षण है ।

शीर-श्रीचिर्यं अग्निं अयसे माद्याभिः इंदिष्य ( ५४ ) विशेष तेजस्वी अमित्री अपने संरक्षणके लिए वेदमंत्रोंसे स्तुति करो । इन वेदमंत्रोंकी स्तुति करते हुए अमित्री गुण धीनवे है, यह देखे, उन्हें अपने आकर पारण करे, इस प्रकारकी चतम बुद्धि सपाधकी हो, वह अपने संरक्षणके लिए प्रयत्न करे और श्रेष्ठ रहे ।

अग्ने ! नः ऊतये ऊर्ध्वः सुतिष्ठ ( ५५ )- हे अग्नि ! हमारे संरक्षणके लिए बसा रह । ( अग्नेः ऊर्ध्व-उचलनं ) अमित्री ज्वालामें हमेशा ऊपर ही जाती है पानी हमेशा नीचेकी ओर बहता है, पर अग्नि कभी भी नीचेकी ओर नहीं अगती, उधकी ज्वालामें सर्वदा यकी रहती है । हमेशा स्थिर और सदा रहना शीरताका लक्षण है । 'संसे कायाशिरोमीयं चारयन् अचलं स्थिरः' ( गीता ) अग्ने चारी, गर्जन और शिरकी शीपा ( लहर ) बधे हैं, बैठे और चलें, यह शीरताका चोत्क है, और यह शीरगुण कारण होता है ।

रथं पश्य स्वयं जायिय, स तय सुवीर्यभिः वाज कर्मभिः ऊतिभिः प्रतरति- जो तुझसे मिलता करता है, वह तेरे उचम, शीरतागुण, बलसे युक्त संरक्षणोंके कारण दुःखोंसे पार हो जाता है ।

ययं तय स्वयं मा रिपाम ( ५६ )- हम तेरी मित्रतामें नष्ट न हों ।

विश्वः माथा अघस्ति ( ५७ )- शत्रुओंके सब रूपट आलोंको दूर करता हुआ तू हमारा संरक्षण करता है ।

मतिः अदितिः ऊत्या दिवा नः आ रामत्, सा शीरताभिः भयः करत् ( सं. १०२ )- दीनतासे रहित होकर, मनन शक्ति और संरक्षण शक्तिके साम दिन आज हमारे पास भाया है, उधने हमारे लिए सुख और शान्तिका निर्माण किया है ।

यह संरक्षणकी शक्ति है । 'अ-दिति' का अर्थ है 'अ-दीनता' अपनी बुद्धि कभी भी दीनताको भावनासे युक्त नहीं करनी चाहिए । अपनेमें कभी दीनताकी भावना ( Inferiority Complex ) नहीं आने देनी चाहिए । उच दीनतासे रहित होकर मनुष्य सर्वदा सत्तासे युक्त रहे । संरक्षण शक्ति शीरताके साथ कभी शरी नहीं सक्ती । अशीनता और संरक्षण शक्तिकी ओची रहती है । यह दीनता रहित संरक्षणका सामर्थ्य हमें आज प्राप्त हुआ है । दिनोंमें इस चयोग चर्चोंमें संलग्न रहते हैं, उच धमय सत्तासे युक्त संरक्षण शक्ति हमारे पास आगत रहती है, इस प्रकारकी असाहयुक्त संरक्षणकी शक्ति हमारा संरक्षण करती है । 'मतिः-अदितिः-ऊतिः' बुद्धि, अशीनता और संरक्षण शक्ति ये तीनों ही मनुष्यकी उन्नति करनेवाले होते हैं ।

### धनकी प्राप्ति

यमुष्योको धनकी भावप्रकला रहती है । मलेक कार्यमें धनही अहल होती है । अग्नि इष्ट धनकी देवेकला है । इष्ट किए उधे ' इधिय-स्तु ! ' ( ४ ) कहा है । इष्टके उपाधक धन प्राप्त है ।

अस्तथसे मग्ने ऊतये धियस्यत् आ मर ( १० )- हमारे मज्ञा संरक्षणके लिए हमें मरुत् धन दे ।

नः रथिं चेतते ( १२ )- वह अग्नि हमें धन देता है ।

दानुये ररानि दधत् ( १० )- वह दानयोग मनुष्यको रत्न देता है ।

उचसः धियस्यत् चिन्नं दायः दस्तुये आ घह ( ४ )- उचः धर्मोंमें तेजस्वी और अद्भुत धन दाताके दे ।

घसो । त्वं विश्वः । ऊत्या राधांसि नः चोद  
( ५१ )— हे सबको बचानेवाले । तू विश्वभूषण सामधर्मवाला है । हमारे संरक्षणके साथ अनेक प्रकारके धर्मोंको हमारे पास भेज ।

त्वं अस्य रायः रथीः भालि ( ५१ )— तू इस धनवा  
रथी है, इस धनका सन्नेवाला है ।

हे पावक ! नः शंस्यं ययोवृषं रथिं रास्य ( ५३ )—  
हे पवित्रता करनेवाले अग्नि देव ! हमें प्रशंसनीय, आयु बढ़ाने-  
वाला अथवा यशको बढ़ानेवाला धन दे ।

सुनीतां पुष्टस्पृहं सुयशस्ततं नः रास्य ( ५३ )—  
उत्तम मार्गसे, उत्तम प्रशंसनीय तथा यशको बढ़ानेवाला धन  
हमें दो ।

विश्व्या घस्तु दीयते ( ५४ )— वह सब तरफके धन  
देता है ।

धुतं अग्निं नरः सुदीतये छर्दिः ( ५५ )— इस सुप्र-  
सिद्ध अग्निसे लोग प्रकाश युक्त घर मांगते हैं ।

यः मर्तः राये निनीयति ( ५६ )— जो मनुष्य धनके  
लिए तेरी उपासना करते हैं ।

अयं अग्निः सौभाग्यस्य राय ईशो ( ६० )— यह अग्नि  
उत्तम देशके और धनका स्वामी है ।

स्वपश्यस्य गोमतः ईशो ( ६१ )— उत्तम सन्तान और  
गौप्यका स्वामी है ।

यार्यं यक्षि यासि च ( ६१ )— स्त्रोकार करने योग्य  
धन देते हो और सर्व आ प्राप्त करते हो ।

ते भद्रा रातिः इह अस्तु ( ७५ )— तेरे कल्याण करने-  
वाले धन हमें यहाँ मिलें ।

विघ्नघ्ने ते पर्यासि घन्तानि यन्ता तनुपा भवतु  
( ७७ )— तु आगने उपासकको भक्षण और धन देनेवाला और  
उसके शत्रुहर्ता भरती प्रकाश संरक्षण करनेवाला हो ।

ओजिष्ठं पुम्नं असम्प्यं मामार ( ८१ )— बल बढ़ा-  
नेवाले तेजसी धन हमें माए दे ।

पृष्टद्वयं रथन् महिषी रथिः स्वदू याजा उदीरले  
( ८५ )— बहुत चारा धन हमें दे । तुमसे बहुत चारा धन  
और भक्षण हमें मिले ।

स्या महे राये स्वमिधीमहि ( ९१ )— अग्नि धन  
प्राप्त करनेके लिए हम तेरी स्तुति करते हैं ।

भस्मे मदि धयः ददि ( ९९ )— हमें बहुतसा यशसो  
धन दे ।

भद्रा रातिः ( १११ )— तेरे धन कल्याण करनेवाले हैं ।  
तत् पुम्नं मामार ( ११२ )— उस तेजसी धनको  
हमें दे ।

अय भूयः रथीणां आचिकेतत् ( १०१ )— यह अचल  
अग्नि धनोंको आनता है, धन देते प्रसन्न होता है, यह आनता  
है ।

धनके लिए मनुष्य अग्निही उपासना करते हैं, क्योंकि धन  
प्राप्तिके उत्तम मार्गको वह जानता है ।

### बडवाग्नि

बडवाग्निका वर्णन जो इस आग्नेय काण्वमें है, वह इस  
प्रकार है ।

समुद्रयासत्सं अग्निं माहुवे ( १८ )— समुद्रके अन्दर  
निवास करनेवाले अग्निही मैं स्तुति करता हूँ । समुद्रमें बडवाग्नि  
रहती है ।

### सूर्य और अग्नि

सूर्य शुक्लेकमें रहता है । उसका आग्नेय रूप है, उसका  
वर्णन सामवेदके इस अग्नि काण्वमें इस प्रकार है—

परो दिवि यत् इष्यते, आवदित् प्रनस्य रेतस-  
यासरे ज्योतिः पदयन्ति ( २० )— सुतोषमें जो भग्न है,  
वह प्राचीन वीर्यका तेज प्रकाशित होता है, उसे मनुष्य देखते  
हैं । सूर्यके उदय होनेपर जो सूर्यका तेज चमकता है, वह  
महान् तेज है, उसीको षष् मनुष्य आकाशमें देखते हैं ।

विश्वया सूर्ये ह्यो केतवः जातवेदस देयं उन्न-  
दन्ति ( ३१ )— सर्गको सूर्यका दर्शन हो, इसलिये प्रकाशके  
किरणें ज्ञानी देवको-सूर्य रूपी अग्निको-आकाशमें धारण करती  
हैं ।

वह आकाशमें दीसनेवाला सूर्य अग्निका ही रूप है ।

### अग्निमन्थन

यहमें अग्नि आगिका प्रयोग होता है, वह दो अग्निवीरके  
संपर्कसे उत्पन्न होती है । और उगीक्षा प्रयोग किया जाता है ।  
जिनकी और स्वरही इस प्रकार दो अग्निवां होती हैं । उन  
दोनोंको मथ करके यह अग्नि उत्पन्न की जाती है, और उसका  
यश पुण्यमें स्थापन किया जाता है, फिर उसमें इसनेके योग्य  
पदार्थको आहुतियां दी जाती हैं । इस क्रियाका वर्णन इस  
आग्नेय काण्वमें इस प्रकार है ।

अथार्यो ह्यो विश्वस्य यापतः सूर्यः पुनरारत्त् निर-  
मथयत् ( ९ )— अथार्यने तुम अग्निही स्तुति करनेवाले



**अतिथिका आसन**

अथपरे षष्टिः ( २८ )— यज्ञमें आसन फैलाया हुआ है।

षष्टिः आसदं इत्येष ( २२ )— आसनपर बैठनेके लिए था।

यज्ञमें अग्निके समान सब देवोंके लिए इसी प्रकार आसन फैलाकर रख दिए जाते हैं, और देव गण आकर उनपर बैठते हैं।

**वीर पुत्र**

यदि घोरः स्वात् मर्त्यं अग्निं इग्धीत ( ८२ )— यदि वीर अपना पुत्र होता है, तो मनुष्य अग्निमें प्रकलित करके उसमें दहन करते हैं।

**अग्नि की स्तुति**

आग्निमेति अग्नि उच्यते इति है। उसे यज्ञ कुण्डमें स्थापित करके उसमें धमिपामें बालकर प्रक्षीत करते हैं और आरविमग्न वस्त्रकी स्तुति करते हैं। इस स्तुतिके ' विषम्या ' कहते हैं। इस स्तुतिके विषयमें अग्नि काण्डमें इस प्रकार लिखा है—

प्रेष्ठे अतिथिं स्तुपे ( ५ )— मैं इस अग्नि की स्तुति करता हूँ।

इतरा गिरा सु प्रवाणि ( ७ )— मैं अधिक स्तुति करता हूँ।

एषां गिरा कामये ( ८ )— अपनी वाग्विषे दुष्ट प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ।

यजित्वं गिरा अज्ञसं ( १२ )— १२ पृथ्व अग्नि की अपनी वाग्विषे स्तुति करता है।

विशो विशो यज्ञियाय वस्राय ह्यशोकं स्तोम ( १५ ) प्रलेक मनुष्यके हितके लिए पूजनीय तथा समुदायके कलनेवाले अग्नि की स्तुतिके ये श्लोक लोच्य हैं।

अथि वस्यधर्माण अमपिघासतं देव्यं उपस्तुहि ( ३३ )— अग्नी, अग्नेके पात्र, अग्नेके, और देवके, पूजा करनेवाले अग्नि देवकी स्तुति कर।

यद्यं जातयेदसं अमृत, मिथं मित्र म, अमृत्सिपम् ( ३५ )— इस ज्ञानी, अमर अग्नि की, त्रिप मित्रके समान, स्तुति करने है।

यथा ममसा, ऊजांसपत्तं पियं येतिष्ठं अरति स्वभ्यरं विश्वस्य दूतं अग्निं धादुषे ( ४५ )— ममसापे यज्ञको लोचन करनेवाले, त्रिप और ऊजाके देनेवाले अग्नि-देव, अमर मर करनेवाले, विश्वके दूत अग्नि की मैं स्तुति मान हूँ।

यं अग्ने इग्घने, देषयतीनां पुत्रानां पिशां यदं

स्त्वैमि, यशोभिः वृणीमहे ( ५९ )— अग्नि देवके अतिम प्रकलित करते हैं, सब सब देवत्वको प्राप्त करनेवाले प्रभुओंके त्रिप अग्नि की हम सुकोसे और आपनोंसे स्तुति करते हैं।

अहंते जातयेदसं इमं स्तोम, रथं इष, मनीषया र्त्सं महिम ( ६६ ) पृथ्व अग्नि के लिए ये स्तोम, रथके तपान, अपना बुद्धि मन्त्रि पूर्वक कहते हैं।

सुसुतपः गिराः स्या स्रज्यन्ति ( ६८ )— उत्तम स्तुतिके बचनेसे तेरा वर्धन करते है।

प्रशस्तं स्रज्यां प्रस्तौतु ( ७८ )— प्रशक्ति समाप्त अग्नि की स्तुति करो।

युक्प्रियः विशः अतिथिः अग्निः प्रशतः स्तवैत ( ८५ )— सबके त्रिप, और प्रभुओंके लिए अतिथिके तपान पूज्य, अग्नि की प्रातःकाल स्तुति करती चाहिए।

यः सुयं शूषस्य मग्मभि यचः स्तुपे ( ८७ )— अपने यज्ञमें रहनेवाले अग्नि की उत्तम मुखकारक स्तोत्रोक्ति और भाषणोंमें स्तुति करता हूँ।

विषां ज्योतीषि विधत्ते येद्यत्ते अप्रये वृहत्स पूर्यं यचः प्र मरत ( ९८ )— ज्योतीषीके ज्योतिषीके कारण करनेवाले तथा वह करनेवाले अग्नि के लिए, महात् और अद्भुत स्तोत्र करो।

प्रतीर्यां इतिथ्य ( १०१ )— समुदाय प्रतीकार करनेवाले अग्नि की स्तुति कर।

मंदिष्टाय स्युताग्ने शुद्धते मुक्तयोचिषे अग्नेये प्रशा-यत् ( १०७ )— महात्, यह करनेवाले, बड़े, शुद्ध प्रशा-याने, अग्नि के लिए स्तोत्रोक्त मान कर।

यजित्वं देषया देषं अमर्यं होतारं यद्वस्य सुकनु तथा ययुमहे ( ११२ )— यह करनेवाले, देवोंमें रहनेवाले, अमर होना, यज्ञके कर्म तपान ( त्रिपिने करनेवाले दुष्ट अग्नि देवकी मैं स्तुति करता हूँ।

इस प्रकार अग्नि की स्तुतिके वर्णन करनेवाले मंत्र इस अग्नि काण्डमें हैं। अग्नि के अपने और सामूहिक रूपमें इस प्रकार अग्नि की स्तुति की जाती है।

**अग्नि दूत**

इसमें अग्नि ही दूतन किया जाना है, उसे ही स्वयंवर पहुंचानेवा काम अग्नि करता है, इस प्रकार यह अग्नि अमर दूत है—

दूतं अग्निं वृणीमहे ( ३ )— इस दूतका कार्य करनेवाले अग्नि की हम स्तोत्र करता हूँ।

विश्वयेदसं अमर्यं दूतं ( १३ )— यह अग्नि हमको आनेवाला और अमर दूत है।

इसमें जो कुछ भी उल्ला जाता है, उसे यह जहाँ पहुँचाना होता है, पहुँचा देता है । इस कारण अग्निमें किया हुआ हवन अनेक प्रकारसे उपयोगी होता है । व्यक्ति और समाज दोनोंका लाभ इस प्रकार हो सकता है । यज्ञसे यही लाभ होता है ।

**यज्ञ**

यज्ञाग्निमें अनेक पदार्थोंके हवन किए जाते हैं, यह क्षमिकोंके मातृस्य है । मनुभक्तोंके बीच कालम रोग उत्पन्न होते हैं, उन रोगोंके नाशके लिए यज्ञ किया जाता है । ऐसा भोग्य मातृस्यमें कहा है । आरोग्य यज्ञानेके लिए यज्ञ करने होते हैं । इस यज्ञके विषयमें इस काण्डमें इस प्रकार कहा है—

१ वाय्वराणां न-सा ( २१ )— आदिष्टाणां कर्मणो ब्रह्मदेवाणां । न-सा-न गिरिदेवाणां, उषत ब्रह्मदेवाणां, विंश रश्मिर्वा उषत ब्रह्मदेवाणां ।

२ न यज्ञं देवाः नयं पंकिराघवं वीरं शरच्छ नयन्तु ( ५६ )— हमारे यज्ञमें शन देव, मानवीश दित करने-वाले, मनुष्योंका यह ब्रह्मदेवाके वीर अग्निमें यज्ञों के हैं ।

३ एवं गृहपतिः, नः अघोरं एवं होता, पीता प्रवेत्ताः ( ६१ )— तू घरका स्वामी है, हमारे यज्ञमें तू देवोंको बुलाकर करनेवाला, पवित्रता करनेवाला और उषत प्रकारसे चेतना देनेवाला है ।

४ शिशोः तरुणस्य घक्षयः चित्रः यः घातये मातरौ वापि न एति ( ६४ )— इस तरुण अग्रिकुल बालकका चित्रित जीवन क्रम है । यह अपने योग्यके लिए अपनी माता-अपनी-के पास जाता तक नहीं है ।

५ महि दृत्यं चरन् घषक्ष ( ६५ )— उत्पन्न होनेके बाद ही महान् दत्तके कामको करते हुए हम देवोंको पहुँचाता है । इस प्रकार यह यज्ञ करनेवाला है । इस अग्निमें हवन किया जाता है । उष विषयक भ्रंश इस प्रकार है—

**हवन**

यज्ञोंमें हवन मुख्य है । हवन करनेके पहले अग्निमें स्तुति की जाती है । इन स्तुतियोंमें-अग्निमें प्रारम्भ होनेपर अग्नि प्रज्वलित की जाती है, फिर बादमें उषमें हवन किया जाता है । इसका वर्णन इस काण्डमें इस प्रकार है—

१ घीतये हृद्यदातये पुणानां आयाहि ( १ )— हवि मशुण तथा देवोंको हवि पहुँचानेके लिए दुःश अग्निमें स्तुति की जाती है, तू हमारे पास आ ।

२ विश्वेषां यज्ञानां होता ( २ )— सब यज्ञोंमें तू होता बनता है ।

३ देवोभिः मानुषेभ्यो हितः ( ३ )— देवोंके द्वारा मनुष्योंमें यह अग्नि स्थापित की जाती है ।

५ ( धाम, हिरी )

४ समिद्धः शुक्रः आहुतः ( ४ )— प्रज्वलित करके शुद्ध अग्निमें आहुति दी जाती है ।

५ हृद्यवाहः ( १२ )— हवि जहाँ पहुँचानी होती है वहाँ पहुँचाता है ।

६ मनसा अग्निं हृद्यानो मर्यः धियं सखेत ( १५ )— मन लगाकर अग्निमें अग्निदेवाला मनुष्य अपनी प्रज्ञा चखता है ।

७ स्याहुतः सूरयः से प्रियासः सन्तु ( २० )— उषत आहुति देनेवाले शान्ति गुण श्रेष्ठ होते हैं ।

८ हे दीदियः ! त्वा समिधानं घेषसः विप्रसः अविद्यासम्ति ( २२ )— हे प्रजासमान अग्नि ! तुझे प्रदीत करके शान्ति विष तेरी देवा करते हैं ।

९ भद्रा अघरः ( १११ )— यज्ञ करवाया करनेवाला है ।

१० मतांस त्वा समिन्धते ( १६ )— मनुष्य तुझे उषत गीतोंसे प्रदीत करते हैं ।

११ अग्ने ! बृहतः रोचनास्य सधि अया तन्वा यधंस ( ५२ )— हे अग्ने ! तुलोक पर इस तेजस्वी शरीरको बड़ा ।

१२ हे सुक्रतो ! गिरा मम जाता पुष ( ५२ )— हे उषत कर्म करनेवाले अग्ने ! अपनी शक्तिसे मेरे पुत्र, यज्ञोंका गीतण कर ।

१३ पूर्णो आसिचं विषष्टु ( ५५ )— पूर्ण भरे हुए तुम्हारे इस अर्पणको स्वीकार कर ।

१४ उस् सिचम्यं, उष पूणम्यं, आदिस् देवः यः ओहते ( ५५ )— मर करके आहुति दो, फिर मरकर आहुति दो, इस प्रकार करनेसे अग्नि देव दुर्घट उषत करेंगे ।

१५ दधिया मा आहुतान ( ६२ )— हवि दम्योका हवन करो ।

१६ इह पदे पस्पानां रातद्वयं नमपा समर्षय ( ६२ )— पृथ्वी पर यज्ञ स्थानमें यज्ञमें हवि देनेवालेको नमस्कार करो ।

१७ अमस्यं विश्वे मतांसः हृद्ये हृद्यते ( ८५ )— अमर अग्निमें सब यज्ञ करनेवाले मनुष्य हवनमें पदार्थोंका हवन करते हैं ।

१८ भानये अग्ने बृहद्वयः ( ८८ )— तेजस्वी अग्निमें बृहत्से अग्निका हवन किया जाता है ।

१९ हृद्य-दातये अग्ने य द्वासा ( १०४ )— हृद्य पदार्थोंका जिसमें हवन किया जाता है, उष अग्निमें अर्पण करो ।

२० स्वतरे ते गृष्य ( १०५ )— स्वर्गकी हवि कृत्वाले-वाले अग्निमें स्तुति कर ।

२१ देवप्रजा हृष्यं ध्वा ऊह्रिये ( १०९ )— तू देवोंका हृदि पहुँचाता है ।

२२ सु होता स्व-पचरः पुदप्रशस्तः वसुः ( ११० )— जिसमें उत्तम दहन किया जाता है, जिसमें उत्तम यज्ञ होता है, ऐसा यह अग्नि बहुतोते प्रशंसित और तनकी धरानेवाला है ।

२३ आहुतः अग्निः नः भद्रः ( १११ )— जिसमें दहन होता है ऐसा वह अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला है ।

दन हवन मंत्रोक्ता उत्तम रीतिसे विचार हो गया, अर्थात् यज्ञ भवया यशसि हमारा ( भद्रः ) कल्याण करनेवाला किस प्रकार है, यह समझमें आ गया होगा ।

सर्वे २५म अग्निहो अरिगणोंको विघ्नकर उत्पन्न किया जाता है, उसे पुष्कलमें स्थापित कर उसमें समिधा तथा घीकी आहुति देकर उषे जलाया जाता है । अग्नि जल करके आसपासकी हवाको गर्म कर देता है । यह गरम हवा ऊपर चली जाती है, और वहाँ चारों ओरकी हवा आ जाती है । यह किया अग्निके अजलेते रहने तक रहती है । यह जबतक चालू रहता है, तबतक पासकी हवा गरम होकर ऊपर आती है, और दूसरी हवा उसका स्थान ले लेती है । हवा शुद्ध होनेका यह एक लक्षण मन्त्रसे होता है ।

पहले हर घरमें दहन होता था । समझो, यदि एक घंटा भर भी घरकी अग्नि जलती रहती, तो घरकी हवाके ऊपर जाने और बाहरकी हवाके अन्दर आनेसे घरकी हवा शुद्ध हो जाती थी । प्रत्येक घरमें अग्नि जलानेसे प्रत्येक घरकी यह हवा-पलट-नेकी क्रिया समझमें आ जायगी ।

पहले हर वीरसे भयना शहरके मध्यमें बड़ी बड़ी गृह-पालायें होती थीं । उनमें बड़े बड़े यज्ञ होते थे । उषसे पहली घुंटी हवाके ऊपर जाने तथा बाहरकी शुद्ध हवाके वहाँ आनेकी क्रिया चलती रहती थी । इस प्रकार यज्ञाग्निके रहनेसे वायु-परिवर्तन होता था, और वह लाभदायक था ।

गृहमें ब्रेवल अग्नि ही नहीं जलायी जाती, अपितु ब्रह्मणं गामश्च भी आहुतिके रूपमें दाता जाता है । यह गायका धो अग्निमें जलता है और उषको ग्रहण हवामें फैलती है, और उषसे हवामें रहनेवाले रोगके कीटाणु नष्ट होते हैं । गायके धोमें हवामें रहनेवाले रोगके कीटाणुओंको नष्ट करनेका उपाय गुण है । यद्यपि इस प्रकार वायुकी रोगाणुओंसे रक्षित करने वाला है ।

द्वके अलावा यज्ञमें ऋतुओंके अनुसार हवनीय प्रण्य भी दत्त ज्योते हैं । त्रिम ऋतुमें हवाके बदलनेसे त्रिम रोगोंका दोष गमनाय है, उन रोगोंको नष्ट करनेवाली वनरशक्तिसे भयना वन वनरशक्तिसे चाहेते तैत्वार दिव्य गायके धोका

हवन किया जाता है और इस प्रकार यज्ञाग्नि रोग दूर करने-वाली और आरोग्य बढ़ानेवाली है ।

ऋतु संधिषु वै व्याधिर्जायते ।

ऋतु संधिषु यथाः क्रियन्ते न रोगेष प्राण्यः ।

' ऋतुओंके अग्निहोतमें रोग उत्पन्न होते हैं, उन रोगोंको

नष्ट करनेके लिए यज्ञ क्रिये जाते हैं ' यह गोपच ब्राह्मणका यह कथन इस प्रसंगमें देखने योग्य है । इस प्रकार यज्ञ शास्त्रीय दृष्टिसे बहुत महत्वका है । यह अग्नि और अगामिक आरोग्य बढ़ानेवाला है ।

ऊपर यज्ञ-विषयक और दहन-विषयक मंत्रोंमें ' यह अग्नि हमारा सबसे उत्तम कल्याण करनेवाला है ' यह भी वर्णन है, यह केवल दृष्टिहीन दृष्टिसे ही नहीं बल्कि शास्त्रीय दृष्टिसे भी सत्य है । यह बात पाठकोंकी ध्यानमें रखनी चाहिए ।

इस दृष्टिसे रोगमें बीमारी वनरशक्तिोंका हवन लाभ-दायक होगा, इसकी शास्त्रीय दृष्टिसे खोज करके तथा अनुभव करके नियमित करना चाहिए । अतः वैद्यों और संशोधकोंकी चाहिए कि वे इस विषयमें खोज करें ।

इसके अलावा यज्ञ करनेवाले यज्ञतानोंकी, श्रद्धिगणोंकी ओ झुमेव्या और सद्गुणवन्ना इसके पीछे है, तथा मंत्रोच्चारणसे जो पवित्रता मिलती है, यह अत्यधिक होती है । सबको किसी भी मापसे माप नहीं जा सकता ।

इस प्रकार यज्ञ और उषके अन्दर हवन करना कल्याणकारी है । इसलिए यज्ञ कर सकनेवाले लोगोंको इस तरह ध्यान देना चाहिए ।

### उपमा

१ मित्रे ह्य मिये ( ५ )— मित्र मित्रके समान ( अतीव अमिठी स्तुति कर ) । ( मं. ३५ )

२ रथं न चर्यं ( ५ )— जैसे घन देनेवाले रथकी स्तुति की जाती है ( उसी प्रकार अग्निकी स्तुति की जाती है ) ।

३ साहसन्तं स्वयं न ( १० )— ब्रह्मण अयाल ( गर्हनेके नास )के युक्त घोड़ेके समान ( जो जगत्सामंते युक्त है उस अग्निमें मैं नमस्कार करता हूँ ) वहाँ घोड़ेके अयाल और अग्निहीन जगत्सामंती समानता देखने योग्य है ।

४ सधोः प्रथमानि पात्रा न ( ४५ )— जैसे मनु ( होमरथ )के सबसे प्रथम दिए जानेवाले पात्र होते हैं ( उसी प्रकार अग्निहीन सबसे पहले स्तुति की जाती है ) ।

५ स्वधिता देवः न ( ५५ )— सूर्यके समान ( कर्त्तव्ये स्थान पर रहकर अन्नका दान करनेवाला यह अग्नि है )

६ रथं ह्य ( ६६ )— रथके समान ( सुदिगुणैकस्त्रीय कर ) ७ पर्यत्तस्य पृष्टात्त वप. न ( ६८ )— जिस प्रकार



पर्वतसे जल बहते हैं, (उसी प्रकार अग्निके लिए स्तोत्र बड़े आते हैं )

८ अथवा आग्नि न जिग्मथुः ( १८ )- जिस प्रकार घोड़े भीतते हैं (उसी प्रकार तैरी स्तुति तैरा बगने करके पशुखी होती है )

९ धेनुं हव ( ७३ )- गायके समान (अग्नि सबरे प्रज्वलित होता है )

१० यद्वा इह प्र चर्यां उल्लिहानाः ( ७३ )- बड़ा वृक्ष जैसे अपनी शाखाओंको फैलाता है, (उस प्रकार अग्नि अपनी पशुलाओंको फैलाता है ) ।

११ द्यौः इव अस्ति ( ७५ )- सुलोकके समान (अग्नि प्रकाशित होता है )

१२ गर्भिणीभिः सु-भृतः गर्भं हव ( ७५ )- गर्भिणी स्त्रियाँ जिस प्रकार गर्भ धारण करती हैं (उस प्रकार दी अग्निमेंके भाँचमें अग्नि रहती है ) ।

१३ सूरः न ( ८३ )- सूर्यके समान (अग्नि तेजस्व अग्नि प्रकाशित होता है )

१४ मित्रं न ( ८४ )- सूर्यके समान (अग्नि यज्ञको प्राप्त करता है )

१५ मित्रं न ( ९९ )- मित्रके समान (अग्निको आगे स्थापित करते हैं )

१६ नैमिः चक्र न ( ९४ )- श्रेष्ठ (रथकी) नामि चक्रको धारण करते हैं, उसी प्रकार (सब स्तोत्र अग्निके आधारके रहते हैं )

१७ महस्य तोदस्य शरण इव ( ९७ )- बड़े धनवा-रके सेवकके समान ( मैं अग्निसे शरण हूँ )

ये उपमायें आग्नि-कावचमें आर्द्र हैं । इनमें ' न ' यह शब्द उपमायैक है, और ' हव ' (समान) के समान उसका अर्थ होता है ।

### आग्नेय काण्डके सुभाषित

१ सप्तिहः शुक्रः पृथापि जघनत् ( ४ )- प्रज्वलित हुआ अग्नि पृथीको मारता है । पुत्र- दोष, रोगोंको पैदा करने मारि क्रीडायु ।

२ हे अग्ने विश्वस्य अरतोः, उत द्विपः मर्त्यस्य महोमिः नः पाहि ( ६ )- हे अग्ने । सब मनुष्यों और देव करनेवाले मनुष्योंके अपने महान् कामर्थके हमारा संरक्षण कर ।

३ अथर्था रथां निरमन्थत ( ९ )- अथर्वामि वृषे मय चरके उत्पन्न किया ।

४ अक्षत्रयं महे ऊतये विषस्वत् वा भर ( १० )- हमारे उपाय संरक्षणके लिए निषाध करने योग्य धर दे ।

५ नः द्यो देवः अस्ति ( १० )- तू हमें मार्ग दिखाने-वाला देव है ।

६ हे अग्ने देव ! कृपयः ते शोत्रसे नमः कृपयन्ति ( ११ )- मनुष्य तेरे पलके लिए तुझ नमस्कार करते हैं ।

७ अस्मि अग्निर्न अदया ( ११ )- इसके लिए तू मनुष्यका नाश कर ।

८ विश्वमेदसे अमर्त्यं दूतं गिरा क्रंजसे ( १२ )- सर्वज्ञ अथवा सब धनोंके स्वामी, अगर दूत अग्निको अपने अशुक्रूल बनाता हू ।

९ दिवे दिवे द्यौपावस्ता धिया नमः भरुतः धयं त्वा एमसि ( १४ )- प्रति रात्रि और प्रतिदिन बुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हुए हम तेरे पास आते हैं ।

१० जरा-बोध ! विश्वे विश्वे यद्यियाय रद्राय द्यौकं स्तोम, तत् विविष्टि ( १५ )- हे स्तुतिसे ज्ञात होनेवाले अग्ने ! प्रत्येक प्रजाजनके हितके लिए पृथक् और शत्रुको खलनेवाले अग्निके लिए ये स्तोत्र बड़े आते हैं, उन्हें तू जान ।

११ अग्निः तिम्रेन तेजसा विश्वे अजण नि यस्तु ( २३ )- अग्नि अपने तीक्ष्ण तेजसे सब साज शत्रुओंको नष्ट करता है । अग्नि- आत्म, रोगहरादक क्रीडायु ।

१२ नः रयिं वसते ( २३ )- अग्नि हमें भंग देता है ।

१३ हे अग्ने ! मृड ( २३ )- हे अग्ने ! हमें सुखी कर ।

१४ महान् अस्ति ( २३ )- तू महान् है ।

१५ देवयु जने वा अयः ( २३ )- ईश्वरकी उपासना करनेवाले मनुष्यके पास सबकी उपायताके लिए वा ।

१६ अग्ने ! नः अहसः रोपतः रक्ष ( २४ )- हे अग्ने ! हमारा पाप और दैतिक शत्रुओंके संरक्षण कर ।

१७ अञ्जर- प्रतिष्ठेः प्रतिवृद् ( २४ )- बुद्धिसे रहित तू अपनी ज्वालाओंसे शत्रुको जला दे ।

१८ नक्ष्य विश्वते अग्ने । चयं सुमन्तं तु घोर घामदि ( २६ )- हे क्षरणमें जाने योग्य, प्रजापालक अग्ने ! हम तेजस्वी तथा उतम बार तेरा स्थान करते हैं ।

१९ याजपतिः कथिः दानुष्ये रत्नानि वधन् ( ३० )- अक्षरका स्वामी और स्वामी यह आग्नि दानपीन मनुष्यको रक्ष देता है ।

२० अघ्यरे सत्यघर्माण कवि आग्ने उप स्तुति ( ३२ )- हिता रहित वहने वल्ल धर्मका प्रचार करनेवाले अग्निही स्तुति करो ।

२१ देयं अमोघ-चातनं ( ३३ )- नद अग्नि देव रोग दूर करता है ।

१९ नः पीतये जं ( ३३ )- यामो पीनेके लिए दूधपाण-  
कारी हो ।

२३ नः क्षंयोः अभिस्त्रवन्तु ( ३३ )- हे प्रभो ! हमें  
सामित और दुल दो ।

२४ चयं जातयेदसं अमृतं प्रदोसिपम् ( ३५ )- हम  
सर्वत्र और भस्मर अभिस्त्री प्रसाध करते हैं ।

२५ दृहद्भिः अर्चिभिः शुकेण शोचिषा वीदिधि  
( ३७ )- यहाँ उशलाओं और दृहद तेजसे प्रकाशित हो ।

२६ विद्यपतिः रक्षसः तपानः ( ३९ )- तू प्रजाओंका  
पालक और राक्षसोंकी सन्तार देनेवाला है ।

२७ हे जातयेद ! त्वं अथ उपर्युषः देवान् आ वद  
( ४० )- हे ज्ञानी अमे ! तू आज खीरे उठनेवाले देवोंकी  
ले आ ।

२८ त्वं विश्वः ऊत्या रामांसि नः चोदथ ( ४१ )-  
तू विश्वण शक्तिवाला है । संरक्षकोंके साथ पत्नीको हमारे  
पाश मेज ।

२९ नः तुचे गाधं विदाः ( ४१ )- हमारे सन्तानोंको  
बधा दे ।

३० हे प्रातः ! त्वं स-प्रधाः क्षतः कथिः ( ४२ )-  
हे रक्षक अमे ! तू प्रसिद्ध, सख और ज्ञानी है ।

३१ हे पायक ! नः दास्यं चपोपृषं रथि वास्य  
( ४३ )- हे पवित्र करनेवाले अमे ! हमें प्रशंसित तथा आशुकी  
बढानेवाला बन दे ।

३२ सुनीतिः पुत्रस्पृहं सुयशस्तरं नः रास्य ( ४३ )-  
उत्तम नीतिके मार्गसे मिलनेवाले, बहुवैद्वान् प्रशंसित, उत्तम  
यशको बढानेवाले बनको हमें दे ।

३३ यः विश्वा वसु दयते ( ४४ )- जो धन प्रदाकरे  
धन देता है ।

३४ आर्यस्य वर्धनं भाद्रं नः गिरः नदान्तु ( ४० )-  
आर्योंका संवर्धन करनेवाले अग्निनी स्तुति हमारी वाणी  
करती है ।

३५ ऋचा घरेण्यं अथः यामि ( ४८ )- वेदमंत्रोंसे मैं  
सोच संरक्षण मांगता हूँ ।

३६ धृतं अग्निं नरः सुवीतये छर्दिः ( ४९ )- इय  
प्रसिद्ध आग्नेसे लोग उत्तम प्रदास वृत्तः घर मांगते हैं ।

३७ देवाः नमं पंकिराधसं वीरं मच्छा मयशु  
( ५६ )- सब देव मानव अतिका दित करनेवाले, समृद्धकी  
परास्त्री बनानेवाले वीरको सत्त्व और सज्जतिके नामसे ले  
प्रति है ।

३८ हे अग्ने ! ऊर्ध्वः सुविष्ठ ( ५७ )- हे अमे ! तू  
ऊँचे स्थान पर रह ।

३९ यः ते दायात् स अथयशंसिनं सहस्रपोषिणं

वीरं तन्ना घचे ( ५८ )- जो दूसरे हाथ देवा है, वह खीन  
करनेवाले, ह्जारोंका पोषण करनेवाले वीर पुत्रको स्वयं धारण  
करता है, अन्न देता है ।

४० अथः अग्निः सुवीर्यस्य सौममस्य ईशे ( ६० )-  
वह अग्नि उत्तम पराक्रम और उत्तम ऐश्वर्यका स्वामी है ।

४१ सु-अपत्यस्य ईशे ( ६० )- उत्तम सन्तानोंका  
स्वामी है ।

४२ वृष्ट-दधानां ईशे ( ६० )- घेरनेवाले वसुओंको  
मारनेवालोंमें वह सभसे मुख्य वीर है ।

४३ प्रचेतः वार्यं यक्षि ( ६१ )- तू ज्ञानी उत्तम धन  
देनेवाला है ।

४४ ऊतये सुमगं सुदंससं सु प्रतृप्तिं अनेहसं  
त्वा देवं चवृमहे ( ६२ )- अपने संरक्षणके लिए उत्तम  
भाग्यवान्, उत्तम कर्म करनेवाले, पाषिणोंका नाश करनेवाले,  
पापरहित तुम देवको हम प्राप्त करते हैं ।

४५ हृषिषा आ जुहोति, मज्यध्वं ( ६३ )- हृषीव  
प्रभोंसे हवन करी, दृढ़ता करी ।

४६ चयं तव सखेयं मा रिपाम ( ६६ )- हम तेरी  
मित्रतामें गह न होंगे ।

४७ अग्निं स्तनयित्नाः पुरा अथसे कृणुष्वं ( ६९ )-  
पहले अपने संरक्षणके लिए अग्निसे मित्रकीये उत्पन्न किया ।

४८ अग्निः उयसां अग्रे अशोचि ( ७० )- अग्नि उषा  
बालके भी पहले प्रज्वलित हुआ ।

४९ नरः अरण्याः इस्तन्नुतं शुद्रपतिं अग्निं जन-  
यन्त ( ७२ )- मनुष्य आणियोंकी एक दूसरेके ऊपर रथ-  
वर हाथोंसे मथकर धरके स्वामी अग्निही उत्पन्न करते हैं ।

५० विश्वाः मायाः अचसि ( ७५ )- सभ प्रजाओंकी  
रक्षा करता है ।

५१ ते रातिः यद्वा ( ७५ )- तेरे शान कल्याण करने-  
वाले हैं ।

५२ नः सुसु-हनयः स्यात्, ते सुमतिः अस्मे  
पिजाया भूतु ( ७६ )- हमारे पुत्र पंडित होंगे, वह तुम्हारे  
इच्छा हमारे लिए सफल होंगे ।

५३ सनात् यातुधानात् सृषासि ( ८० )- वरा तू  
पीडा देनेवाले वसुओंका नाश करता है ।

५४ त्वा पुतनासु रक्षांसि न जिग्मुः ( ८० )- तुम  
दुदमें राक्षस और नहीं सकते ।

५५ सहनूरात् अण्पादः अनुदह ( ८० )- मूत्र  
सहित कथे यौष्णे खातेखीये जला दाल ।

५६ ते देवधायाः देवाः मा सुक्षत ( ८० )- तेरे दिग्भ  
शस्त्रोंसे शीर्ष न हूँ ।

५७ भोजिते धूमं अस्मभ्यं सा मर ( ८१ )- धन  
बढानेकति तेरकी धन हमें मार दे ।

५८ पानीयसे राये नः प्र ( ८१ )- प्रसवित घन मिलनेका प्राण होने बता ।

५९ वाजाय पन्था राखिस ( ८१ )- अन्न मिलनेके मार्गको शिक्षा ।

६० यदि वीरः स्यात् मर्याः अग्निं इन्धीत ( ८२ )- यदि पुत्र हो तो मनुष्य अग्निको प्रज्वलित करे ।

६१ अस्मिन् अमर्ये विश्वे मर्तासः हव्यं इन्धते ( ८५ )- इस अमर अग्निमें सब मनुष्य इवनीय पदार्थोंका दहन करते हैं ।

६२ वृत्र-हन्तमं ज्येष्ठं खानचं अग्निं अग्नम् ( ८५ )- वृत्रको मारनेवाले, योष्ठ मानसोंका दित करनेवाले, अग्निके पास हम जाते हैं ।

६३ हे अग्ने ! हरसा याशुघ्नानस्य पक्षं विश्वताः परि प्रति श्रणीहि ( ९५ )- हे अग्ने ! अपने तेजसे दुर्गता-कष्ट देनेवाले राक्षसोंके पक्षको सब ओरसे नष्ट कर ।

६४ रक्षसः वीर्यं ग्नुञ्ज ( ९५ )- राक्षसोंकी शक्ति नष्ट कर ।

६५ मन्द्रः वि अतिस्त्रिघाः राजसि ( १०० )- आतन्द्रित अति शत्रुओंको हटाकर घोषित होता है ।

६६ सा श्रुतातिः मयाः करत् स्त्रिघाः अप ( १०२ )- वह शक्ति और युद्ध देनेवाला अग्नि हमें युद्ध देने और शत्रुओंको दूर करे ।

६७ प्रतीवयां हृदिष्य ( १०३ )- शत्रुको पराजित करनेवालोंकी स्तुति कर ।

६८ अशुभीत-शोचिषं जातयेदसं यजस्व ( १०३ )-

जिसके प्रज्वलणको कोई भी रोक नहीं सकता ऐसे इस अग्निमें यज्ञ कर ।

६९ तस्य मर्येः रिपुः मायया चन ईशोत ( १०४ )- उसपर कोई भी मनुष्य शत्रु कपटसे भी शासन नहीं कर सकता ।

७० त्वं वृजिनं रिपुं, दुरार्षं स्तेमं दधिष्ठि मयास्य ( १०५ )- त्वं कपटी शत्रु और कठिनतासे वशमें आनेवाले वीरको दूर कर ।

७१ सुगं रुधि ( १०५ )- हमारे मार्गको हृणन कर ।

७२ हे वीर ! मायिनः रक्षसः तपसा नि दह ( १०६ )- हे वीर ! कपटी राक्षसोंको अपनी ज्वालासे जला दे ।

७३ हे अग्ने ! त्वं यस्य सख्ये अविद्यथ, स तव सुवीर्याग्निः ऊतिभिः प्र तरति ( १०८ )- हे अग्ने ! दुर्भिक्षक मित्र होता है, वह तेरे उत्तम वीरोंसे युक्त संरक्षकोंके दुःखोंके पार हो जाता है ।

७४ अग्निः नः सद्ः ( १११ )- अग्नि हमारा करवाण करनेवाला है ।

७५ तस्य पुत्रमं वा भर ( ११३ )- त्वं तेजस्वी धनको हमें भरपूर दे ।

७६ सक्ते फीचिद् अग्निं आ सासहा ( ११३ )- हमारे परमें कोई भी शत्रु हो उसे दूर कर ।

७७ दृष्ट्य जनस्य मन्सुं- सुपं हृदिताले मनुष्योंका कोष भी दूर कर ।

७८ सु-प्रीताः मनुष्य विभे विश्वा रक्षसि प्रति-पेघति ( ११४ )- मनुष्य दुष्ठा अग्नि मनुष्यके परमें तप राक्षसोंकी दूर करता है ।

## आग्नेय काण्डके ऋषि और देवताओंकी सूची

( १ )

मंत्र-संख्या	ऋग्वेदस्थान	ऋषि	देवता	छन्दः
१	६।१६।१०	मरद्वाओ बाह्वृषयः	अग्नि	वायवी
२	६।१६।१	मरद्वाओ बाह्वृषयः	"	"
३	१।११।१	मेधागिरिभिः वृषभ-	"	"
४	६।१६।१४	मरद्वाओ बाह्वृषयः	"	"
५	८।८४।१	उपमनः शरष्यः	"	"
६	८।७१।१	सुदीतिपुदीवी आगिरिओ	"	"
७	६।१६।१६	मरद्वाओ बाह्वृषयः	"	"
८	८।११।७	वसवः वसवः	"	"
९	६।१६।१३	मरद्वाओ बाह्वृषयः	"	"
१०	—	शानदेवः	"	"

( २ )

११	८।७५।१०	आयुर्वृत्वादिः	"	"
१२	४।१।१	वामदेवो योतमः	"	"

मंत्र-संख्या	श्रावणस्थानं	श्रावण	देवता	उन्दः
१३	८।१०२।१३	प्रयोगो मार्गवः	"	शाकती
१४	१।११७	मयुरछन्दा वैश्वामित्रः	"	"
१५	१।१७।१०	शुनश्चोप आर्वागीतिः	"	"
१६	१।१९।१	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१७	१।१७।१	शुनः शोप आर्वागीतिः	"	"
१८	८।१०२।१४	प्रयोगो मार्गवः	"	"
१९	८।१०२।१५	प्रयोगो मार्गवः	"	"
२०	८।१।१०	वराहः काण्वः	"	"
( ३ )				
२१	८।१०२।१७	प्रयोगो मार्गवः	"	"
२२	६।१६।१८	मरद्वाजो वार्हस्पत्यः	"	"
२३	४।१।१	वामदेवो गौतमः	"	"
२४	७।१५।१३	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"
२५	६।१६।१३	मरद्वाजो वार्हस्पत्यः	"	"
२६	७।१५।१७	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"
२७	८।१४।१६	विक्रम आगिरसः	"	"
२८	१।१७।१४	शुनश्चोप आर्वागीतिः	"	"
२९	८।१७।११	शोपवदन आश्विनः	"	"
३०	४।१६।१३	वामदेवो गौतमः	"	"
३१	१।५०।१	प्रस्कम्बः काण्वः	"	"
३२	१।१२।५७	मेघातिथिः काण्वः	"	"
३३	१०।१।१४	विष्णुश्रीप आम्बरीषः दित आश्विनो वा	"	"
३४	८।८४।७	उदानी काण्वः	"	"
( ४ )				
३५	६।१४।११	शुशुबर्हस्पत्यः	"	बृहती
३६	८।६।०।९	मर्गः प्रागायः	"	"
३७	६।१४।०।७	शुशुबर्हस्पत्यः	"	"
३८	७।१६।१७	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"
३९	८।६।०।१९	मर्गः प्रागायः	"	"
४०	१।१४।१।१	प्रस्कम्बः काण्वः	"	"
४१	६।१४।०।१	शुशुबर्हस्पत्यः	"	"
४२	८।६।०।५	मर्गः प्रागायः	"	"
४३	८।६।०।११	मर्गः प्रागायः	"	"
४४	८।१०२।६	श्रीगिरिः काण्वः	"	"
( ५ )				
४५	७।१६।१	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"
४६	८।६।०।१५	मर्गः प्रागायः	"	"

संन-संख्या	शक्तिदेवतानं	शक्ति	देवता	छन्दः
४७	८११०३११	सोमरिः काश्व	"	बृहती
४८	८११०३१२	मनुवैवलता	"	"
४९	११४४११४४	सुदीतिपुरुमीळाबागिरवाँ	"	"
५०	११४४११४३	प्रस्कण्वः काश्वः	"	"
५१	८११०३११९	सोमरिः काश्वः	"	"
५२	८११०३१८	मेघातिषिमेध्यातिथी काश्वी	इन्द्रः	"
५३	३१९१२	विष्णामित्रो गायिनः	शक्ति	"
५४	११३६११९	कण्वो घौरः	"	"
( ६ )				
५५	७११६१११	विषिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"
५६	११४०१३	कण्वो घौरः	सद्भाग्यवतिः	"
५७	११३६११३	कण्वो घौरः	सूर्यः	"
५८	८११०३१४	सोमरिः काश्व	शक्तिः	"
५९	११३६११	कण्वो घौरः	"	"
६०	३१३६११	रत्नीलः काश्वः	"	"
६१	७११६१५	विषिष्ठो मैत्रावरुणि	"	"
६२	३१२११	विष्णामित्रो गायिनः	"	"
( ७ )				
६३	—	इयावाधोः वामदेवो वा	"	त्रिष्टुप्
६४	१०१११५११	उपस्तुतो वार्हिष्ठस्यः	"	अगती
६५	१०१५६११	बृहदुक्तयो वामदेव्यः	"	त्रिष्टुप्
६६	११९७११	कुरुष आगिरुषः	"	अगती
६७	६१४७११	मरद्धानो वार्हिष्ठस्यः	"	त्रिष्टुप्
६८	६११६७१६	मरद्धानो वार्हिष्ठस्यः	"	"
६९	४११६११	वामदेवो गोतमः	"	"
७०	७१८११	विषिष्ठो मैत्रावरुणि	"	"
७१	१०१८११	त्रिदिरस्त्याष्टू-	"	"
७२	५११११	विषिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	विषाद् विषाद् गायत्री
( ८ )				
७३	५११११	बुधगविष्ठरावात्रेयो	"	त्रिष्टुप्
७४	१०१७६१५	वस्वयिमर्दिदनः	"	"
७५	६१५८११	मरद्धानो वार्हिष्ठस्य	पृथा	"
७६	३१६१११	विष्णामित्रो गायिनः	शक्तिः	"
७७	१०१७६११	वापत्रिर्नौलदनः	"	"
७८	७१६११	विषिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"
७९	३१३६११	विष्णामित्रो गायिनः	"	"
८०	१०१८७११९	वापुर्नोऽश्विनः	"	"

# अथ ऐन्द्रं काण्डम् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

[ ३ ]

( १-१० ) १ शंयुर्बाह्विस्तप्यः; २ धृतकक्षः सुकक्षो वा आगिरसः; ३ हर्षतः प्रागायः; ४, ५ भृतकक्षः ( ऋ० सुकक्षो वा, ५ सुकक्षः ) आगिरसः; ६ देवजामय इन्द्रमातरः श्रयिकाः; ७, ८ गोपृक्त्वद्वयसूक्तित्वात् काण्डायत्नी;  
९, १० मेघातिथिः काण्डः प्रियमेघधर्मानिरताः ॥ इन्द्रः ( ऋ० ३ अग्निहोर्विष वा ) ॥ गायत्री ॥

११५ तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सरवने । श्रे यद्भवे न शक्तिने ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४।२२ )

११६ यस्ते नून श्वतक्रवविन्द्रं धुम्भितमो मदः । तेन नूनं मदं मदेः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९।१६ )

११७ गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।७।११; वा. यजु. ३।१।९ )

११८ अरमश्याय गायत श्रुतकक्षारं मधे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।९।२।२५ )

११९ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृषाय हन्तवे । स वृषा वृषमो सुवत् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९।३।७ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ११५ ] हे स्तुति करनेवाले उपासको ! ( यः सुते ) तुम्हारे सोम तप्यार करनेके बाद ( पुरु-हूताय सत्वने ) अनेकों जिसको स्तुति करते हैं, ऐसे इस मलयान् इन्द्रके लिए ( तत् सचा गाय ) उन स्तोत्रोंको एक स्थान पर बँट करके गाओ । ( यत् ) जो स्तोत्र ( गवे न ) गायको बँटे घाल सुल बैठे हैं, उसी प्रकार ( शक्तिने शं ) शक्तिमान् इन्द्रको सुल बैठे हैं ॥ १ ॥

१ पुरु-हूताय सत्वने सचा गाय— अनेकोंति प्रसन्न प्रवितवाली इन्द्रके पुणोंका गान करो ।

[ ११६ ] हे ( शत-प्रातो ) संकशों प्रकारके कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( यः धुम्भि-तमः मदेः ) जो तेवस्वो सोमरत ( नूनं ते ) निरिच्छत रूपसे तेरे लिये संधार किया गया था, ( तेन नूनं ) उस रससे निरिच्छते तू ( मदे ) जानवित हुआ, उस कारण हमें भी ( मदेः ) बनादि देकर तू जानवित कर ॥ २ ॥

[ ११७ ] हे ( गायः ) गौबो ! तुम ( अयटे ) यज्ञके स्थानको ( उप वद् ) जाओ, तुम ( यज्ञस्य मही रप्सुदा ) यज्ञके लिए बहुतसा दूध रूपी भन्न देनेवाली हो । तुम्हारे ( उभा कर्णा हिरण्यया ) दोनों ही कान सोनेके सम्भूषणोंसे शोभित हैं ॥ ३ ॥

१ गायः । अयटे यज्ञस्य मही रप्सुदा— हे गायो ! तुम यज्ञमें बहुतसा अन्न देती हो ।

[ ११८ ] हे ( श्रुतकक्ष ) भूत-कक्ष ऋषे ! ( अभ्याय अरं ) मोझेके लिए ( मधे अरं ) गायके लिए, ( इन्द्रस्य घास्ते अरं ) इन्द्रके स्थानके लिए पर्याप्त सामाग्य ( गायत ) स्तोत्रोंका गान कर ॥ ४ ॥

[ ११९ ] ( महे वृषाय हन्तवे ) उस महान् वृषको मारनेके लिए ( तं इन्द्रं ) उस इन्द्रको हम ( वाजयामसि ) मर्गता करते हैं, स्तुति करते हैं । ( सः वृषा ) यह बलवान् इन्द्र ( वृषमः सुवत् ) हमें पन देनेवाला होवे ॥ ५ ॥

१ वृषमः— बलवान्, अपनी वृष्टि करनेवाला, कामना पूर्ण करनेवाला ।

२ मदे वृषाय हन्तवे इन्द्रं वाजयामसि— महान् शक्तिमान् इन्द्रके यज्ञ करनेके लिए हम इन्द्रको मर्गता करते हैं ।

५ ( गाय, दिशि )

१२० त्वमिन्द्र बलाद्धि सहसो जात ओजसः । त्वत्सन्वृण्वृपेदासि ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।१५३।९ )

१२१ यद् इन्द्रमवर्षेयवभूमिं वषवर्षयत् । चक्राण ओपशो दिवि ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१४।५ )

१२२ यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीयं वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्वात् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१४।१ )

१२३ पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मधाय । सोमं वीराय शूराय ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।२।२५ )

१२४ इदं वसो सुतमन्धः पिवा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्नरिमा ते ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।२।१ )

इति सुतोपा वसतिः ॥ २ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ त्व० १०। ३० ४ । पा० ४६। ( भृ ) ॥ ]

[ ४ ]

( १-१० ) १, २ सुकशाभुतकशी ( ऋ० सुकशा जागिरतः ) ; ३ भारद्वाजः ( ऋ० शंयुर्वाहृत्पत्यः ) ; ४ भुतकशाः ( ऋ० सुकशी वा जागिरतः ) । ५, ६ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः ; ७, ९, १० मित्रोक्तः काण्वः ; ८ वसिष्ठो

मैत्रायणः ॥ इन्द्रः ( १ ऋ० आग्नीश्री ) ॥ गाथीय ॥

१२५ उद्धेदामि श्रुतामघं नृपमं नर्यापसम् । अस्तारमेपि धर्म ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१३।१ )

[ १२० ] हे इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( सहस्रः बलात् ) सन्वृके पराभव करनेवाले बलसे तथा ( ओजसः ) सामर्थ्यसे ( अधिजातः ) प्रसिद्ध हूँ ; हे ( पृणम् ) बलवान् इन्द्र ! तू ( सन् ) बलवान् होते हुए भी ( पृषा इत् जसि ) इच्छित्तव पदायको देने वाला हूँ ॥ ६ ॥

१ हे इन्द्र ! त्वं सहस्रः बलात् ओजसः अधिजातः— हे इन्द्र ! तू साहस, बल और सामर्थ्यके कारण सबसे श्रेष्ठ हूँ ।

[ १२१ ] ( यत् ) जिस यज्ञने ( दिवि ) आकाशमें ( ओपशो चक्राणः ) छटकाकर ( भूमिं चि अवर्षयत् ) भूमिको घुमाते हुए रखा है, उस ( यज्ञः ) यज्ञने ( इन्द्रं अवर्षयत् ) इन्द्रका यज्ञ बढाया ॥ ७ ॥

[ १२२ ] हे इन्द्र ! ( यथा त्वं ) जैसे तू ( एकः इत् ) अकेला ही ( वस्वः ) घनोंका स्वामी है, उस प्रकार ( अहं ) मैं भी ( यत् वैशीयं ) मदि घनोंका स्वामी हो जाऊँ, तो ( मे स्तोता ) मेरी स्तुति करनेवाला ( गो-सखा स्वात् ) गाणोंका मित्र हो जायें ॥ ८ ॥

[ १२३ ] हे ( सोतारः ) सोमयज्ञ करनेवाले यज्ञको ! ( मधाय शूराय वीराय ) आगन्वित, शूरवीर इन्द्रके लिए ( पन्यं पन्यं इत् ) प्रशंसके योग्य ( सोमं आ धायन ) सोमरसका अर्पण करो ॥ ९ ॥

१ वीराय शूराय पन्यं सोमं अध्यावत— शूरवीर इन्द्रके लिए प्रशंसनीय सोमरस हो ।

[ १२४ ] हे ( यसो ) सजको बसानेवाले इन्द्र ! ( इदं सुतं मन्धः ) इस सोमरस रुपी बदनकी ( पियं ) पी, निरसते ( उदरं सुपूर्णं ) तेरा पेट भरा भर जाय । हे ( अनाभयिन् ) निर्भय इन्द्र ! ( ते ररिम ) तेरे आनन्दके लिए यह सोमरस हम देते हैं ॥ १० ॥

१ अनाभयिन् । ते ररिम— हे निर्भय इन्द्र ! सुते आनन्द हो, इसलिये ये-सोमरस हम देते हैं ।

॥ यहाँ पहिला खंड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १२५ ] हे ( सूर्ये ) सूर्यकी इन्द्र ! तू ( श्रुता-मघं ) प्रसिद्ध धनवान् ( पृणम् ) बलवान् ( नर्यं-अपसं ) मान-धके हितके लिए काम करनेवाला और ( अस्तारं ) शत्रु फेंकनेवाला हूँ ( इदं उदेपि ध ) ऐसा तू अब उदय हो रहा है ॥ १ ॥

१ श्रुतामघं पृणमं नर्यापसं अस्तारं— प्रसिद्ध, धनवान्, बलवान्, मानवोंका हित करनेवाले और शत्रुपर शत्रु फेंकनेवाले इन्द्रकी प्रशंसा कर ।

- १२६ यदथ कच वृषहनुदगा अभि ह्ये । सर्वं तदिन्द्र ते वयो ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१६।४ )
- १२७ य आनथपरावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ३ ॥ ( ऋ. ६।७५।१ )
- १२८ मा न इन्द्राम्पारि दिव्यः स्रो अवतुष्वा यमत् । त्वा युजा वनेम तत् ॥४॥ ( ऋ. ८।१२।१२ )
- १२९ एन्द्र सानसि श्रयि षसजित्वान षसदासहम् । परिष्मृतये मर ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८।१ )
- १३० इन्द्रं वयं महाधने इन्द्रममं हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।७।२ )
- १३१ अपिबत्कद्रुवः सुवामिन्द्रः सहस्रबाह्वे । तत्राददित् पाँश्यम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१५।२६ )

[ १२६ ] हे ( वृष-हनु ) शत्रुको मारनेवाले ( सूर्य ) सूर्यरूपी इन्द्र ! ( अथ ) आज ( अभि उदगाः ) तू कवय हुआ है, हे इन्द्र ! ( तत् सर्वे ) वह सब ( ते घशे ) तेरे अर्पण है ॥ २ ॥

१ ते घशे तत् सर्वं— तेरे अर्पण सब कुछ है ।

[ १२७ ] ( यः ) जो इन्द्र शत्रु द्वारा हार किये हुए ( तुर्वशं यदुम् ) तुर्वश और यदुको ( सु-नीती ) उत्तम नीतिते ( परावतः आनयत् ) हार स्मानते भी पास के आया ( युवा सः इन्द्रः ) ऐसा वह तक्षण इन्द्र ( नः सखा ) हमारा मित्र है ॥ ३ ॥

१ यः सुनीती तुर्वशं यदुं परावतः आनयत्, युवा सः नः सखा— जो इन्द्र तुर्वश और यदुको उत्तम मार्गसे सुलसे के आया, ऐसा वह इन्द्र हमारा मित्र है ।

[ १२८ ] हे इन्द्र ! ( आदिशः ) चारों विद्यामंति शस्त्रोंको फेंकनेवाला ( सूरः ) विरलतर चलनेवाला राक्षस ( अफुत्तु ) रात्रिमोमें ( नः मा अभ्यपयमत् ) हमारे ऊपर आक्रमण करनेकी इच्छासे न आवे, और यदि वह आ भी जाये तो ( तत् त्वा युजा ) तेरी सहायता ( वनेम ) जगको हम मार दें ॥ ४ ॥

१ आदिशः सूरः अफुत्तु नः मा अभ्यपयमत्, तत् त्वा युजा वनेम— चारों विद्यामंति शस्त्रोंको फेंकते हुए राक्षस चारोंके समय हम पर आक्रमण न करे, और यदि वह करे भी तो तेरी सहायतासे हम उसे मार दें ।

[ १२९ ] हे इन्द्र ! ( ऊवये ) हमारे संरक्षणके लिए ( सानसि ) उत्तम उपभोग देनेवाले ( स-जित्वाने ) शत्रु पर विजय दिलानेवाले ( सदा-सहं ) सदा शत्रुको हारनेवाले ( परिष्मृतं रयिं ) श्रेष्ठ धनले ( आमर ) हमें मर दें ॥ ५ ॥

( १ ) ऊवये सानसि सजित्वाने सदासहं परिष्मृतं रयिं आमर— हमारे संरक्षणके लिए उपभोगके शय, शत्रुपर विजय प्राप्त करनेवाले, हमेशा शत्रुओंको हारनेवाले श्रेष्ठ धनसे हमें मर दें ।

[ १३० ] ( वयं ) हम ( महाधने ) बड़े संघाममें ( इन्द्रं ) इन्द्रको बुलाते हैं, ( अमं इन्द्रं हवामहे ) छोटे पुढमें भी इन्द्रको बुलाते हैं, ( वृत्रेषु ) वृत्रके साथ होनेवाले युद्धोंमें भी ( युजं वज्रिणं ) सहायता करनेवाले तथा वज्र धारण करनेवाले इन्द्रको हम बुलाते हैं ॥ ६ ॥

( १ ) वयं महाधने, अमं, वृत्रेषु युजं वज्रिणं हवामहे— हम बड़े तथा छोटे संघामोंमें तथा वृत्रके आक्रमणोंमें सहायता करनेवाले तथा वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

[ १३१ ] ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( कद्रुवः ) कद्रु ऋषिके ( सुते अपिबत् ) सोमरसको पी लिया, ( सहस्रबाह्वे ) हजारों भुजाओंवाले शत्रुको युद्धमें मारा ( सत्र ) पतनमें इन्द्रणा ( पाँश्यं आददित् ) सामर्थ्य प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

( १ ) सहस्र-बाहुः— हजारों संनिर्णोंके रखनेवाला । ( २ ) सहस्रबाह्वे तत्र पाँश्यं आददित्— सहस्र-बाहु नामक शत्रुको मारा उससे इन्द्रको शक्ति चमकी ।



१३२ वयमिन्द्र त्वायवाऽभि प्र नोनुमो वृषन् । विद्धी त्वा ३३ स्य नो वसो ॥ ८ ॥

( ऋ. ७३११४ )

१३३ आ धा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बहिरानुपक् । येपामिन्द्रो युवा सखा ॥ ९ ॥

( ऋ. ८१४११ )

१३४ मिन्धि विश्वा अप द्विषः परि वाधो जही मूधः । वसु स्वाहै तदा भर ॥ १० ॥

( ऋ. ८१४१४० )

इति ऋषीं वदति ॥ ४ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [ स्व० ८ । उ० ३ । पा० ३२ । ( ऋ ) ॥ ]

[ ५ ]

( १-१० ) १ कण्वो घोरः; २ त्रिगोकः काण्वः; ३ वत्सः काण्वः; ४ कुसीरो काण्वः; ५ मेघातिथिः काण्वः;  
६ श्रुतवासाः ( ऋ० मुण्वतः ) जागिरतः ७ श्यावाश्व आग्नेयः; ८ त्रगायः काण्वः; ९ वरता काण्वः;  
१० हरिविधिः काण्वः ॥ इन्द्रः ॥ ( ऋ० १ मरुतः; ४ विश्वे देवाः; ५ ब्रह्मणस्पतिः; ७ सविता ) ॥ गायत्री ॥

१३५ इह्येय मृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्भदान् । नि यामं चित्रमृञ्जते ॥ १ ॥ ( ऋ. ११७३१ )

१३६ इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः । पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ २ ॥

[ १३२ ] हे ( वृषन् ऐन्द्र ) बलवान् इन्द्र ! ( त्वायवः ) तुमो पानेको इच्छा करनेवाले हम तुमो ( अभि नोनुमः ) सामनेसे नमस्कार करते हैं, हे ( वसो ) तबको निवास देनेवाले इन्द्र ! ( अस्य नः विद्धि ) इस हमारे स्तोत्रके भावको समझ ॥ ८ ॥

[ १३३ ] ( ये ) जो ऋत्विज ( आ धा ) आगे होकर ( अग्निं इन्धते ) अग्निको जलाते हैं, ( येपां ) जिनका ( युवा इन्द्रः सखा ) तबका इन्द्र मित्र है, निम्नके लिए वे ( धानुपक् वाहिः स्तृणन्ति ) क्रमसे आसनको फैलाते हैं ॥ ९ ॥

[ १३४ ] ( विश्वाः द्विषः ) सब शत्रुओंका ( अप मिन्धि ) नाश कर, ( वाधः मूधः परि जहि ) विष्णु बालनेवाले शत्रुओंको हरा, उसके बाद ( स्वाहै तव वसु ) चाहने योग्य धन ( आ भर ) हमें भरपूर दे ॥ १० ॥

( १ ) विश्वाः द्विषः अपमिन्धि— सब शत्रुओंका नाश कर । ( २ ) वाधः मूधः परि जहि— विष्णु बालनेवाले शत्रुओंको हरा । ( ३ ) स्वाहै वसु आभर— चाहने योग्य धनको हमें भरपूर दे ।

॥ यहाँ दूसरा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १३५ ] ( एषां हस्तेषु कशाः ) इन मस्तकके हाथोंमें चाबूक हैं, वे ( यद् यद्भदान् ) जो शब्द करते हैं उनको मैं ( इह इव मृण्वे ) यहाँ होनेके समान सुनता हूँ, वह ध्वनि ( यामं ) युद्धमें ( चित्रं मृञ्जते ) अवभूत शक्तिको दिखाता है ॥ १ ॥

१ यामं चित्रं मृञ्जते— युद्धमें आत्संयन्तक सामर्थ्य दिखाता है ।

[ १३६ ] हे इन्द्र ! ( इमे सोमिनः सखायः ) ये सोमयाग करनेवाले मित्र ( पुष्टावन्तः यथा पशुम् ) जालको हाथमें लिए हुए निकारी जैसे पशुको देखते हैं, जती तरह एकाग्र चित्त होकर ( त्वा विचक्षते ) तुमो विशेष करके देखते हैं ॥ २ ॥

१३७ समस्य मन्यवे विश्वो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायैव सिन्धवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६।४ )

१३८ देवानामिदं महत्तदा वृणीमहे वधम् । वृष्णामसभ्यमृतये ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।८।३।१ )

१३९ सोमानां स्ववर्णं कृणुहि ब्रह्मणस्पत । कक्षीयन्तं य औजिजः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१।८।१ )

१४० बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यास्तुतिः । शृणोतु शक्र आशिपम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।९।३।१८ )

१४१ अद्य नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सोमगम् । परा दुःश्वन्प्यस्सुवा ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।८।२।४ )

१४२ क्वश्स्य वृषभो युवा तुविर्मीयं अनानतः । ब्रह्मा कस्तश्सपयति ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६।१।७ )

१४३ उपहरे गिरिणां स्वसङ्गमं च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।६।१८ )

[ १३७ ] ( विश्वाः कृष्टयः धियाः ) सब प्रजायें ( अस्य मन्यवे ) इसके स्तोत्रको मुनिके लिए ( समुद्राय सिन्धवः दूध ) जिस प्रकार समुद्रकी ओर नदिया बोजती हैं, उस प्रकार ( सं नमन्त ) सब मिलकर नम्र होकर बजती हैं ॥ ३ ॥

मन्यु— जोय, स्तोत्र, मन्तोय वचन

[ १३८ ] ( देवानां अयः इत् महत् ) देवोंके ये तरक्षण निश्चयसे महान् हैं । ( वृष्णां तत् ) कतमानाओंको पूर्ण करनेवाले उन देवोंसे मिलनेवाले सरक्षणोंको ( अस्मभ्य ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए ( वयं आवृष्णीमहे ) हम स्वोकार करते हैं ॥ ४ ॥

( १ ) देवानां अयः महत् इत्— देवोंके मिलनेवाले सरक्षण निश्चयसे महान् हैं ।

( २ ) वृष्णां तत् अस्मभ्य ऊतये वयं आवृष्णीमहे— हमारी इच्छा पूर्ण करनेवाले सरक्षणसे साधनोंको अपनी रक्षाके लिए हम स्वोकार करते हैं ।

[ १३९ ] हे ब्रह्मणस्पते ! ( सोमानां ) सोमपत्र करनेवाले ( कक्षीयन्तं ) कक्षीयान्को ( यः औजिजः ) जो उजियन पुत्र है, ( स्ववर्णं कृणुहि ) प्रकाशमान कर ॥ ५ ॥

[ १४० ] ( वृत्रहा ) वृत्र राक्षसको मारनेवाला, ( भूरि—आस्तुतिः ) जिसके लिए बहुतेके लोग सोमरस लेयाकर करते हैं, वह इन्द्र ( नः ) हमारी ( बोधन्—मनाः ) इच्छाकी जाननेवाला ( इह अस्तु ) पहा होये । वह ( शक्रः ) साम-ध्वंशान् इन्द्र ( आशिपं शृणोतु ) हमारी स्तुति सुने ॥ ६ ॥

[ १४१ ] हे ( सविनः देव ) धर्म देव । ( नः ) हमें ( अद्य ) आज ( प्रजायत् सोमगं ) पुत्र पीथेति युक्त पेश्वभं-धन ( सवीः ) दे ( दुष्पन्त्ये परा सुव ) दु सारथक स्थानोंको जानेवाले भूर्मीयको हमसे दूर कर ॥ ७ ॥

( १ ) हे सवितः देव ! नः अद्य प्रजायत् सोमगं सावीः— हे सविता देव ! हमें आज पुत्र पीथेति युक्त मन दे ।

( २ ) दुष्पन्त्ये परा सुव— दुष्ट देनेवाले स्वर्णोंको दूर कर ।

[ १४२ ] ( सः भूयभः ) वह सामध्वंशान् ( युवा ) मन्थ ( तुवि—श्रीयः ) मनद्वन गर्दनवाला ( अनानतः ) कभी भी किलीसे न झुकनेवाला ( कः ) कहा है ? ( कः ब्रह्मा ) कौन जानी ( तं सपयति ) उसको पूजा करता है ? ॥ ८ ॥

( १ ) सः भूयभः युवा तुविर्मीयः अनानतः कः— वह तरुण, बलवान्, मनबल गर्दनवाला, किलीसे न झुकना जाननेवाला इन्द्र कहाँ है ? ( २ ) तुविर्मीयः— गर्दन जिसको घरो है ।

( ३ ) अनानतः— किलीसे न झुकना या सबनेवाला ।

[ १४३ ] ( गिरिणां उपहरे ) पर्वतोंकी उपसर्गानं ( च ) और ( नदीनां संगमै ) नदियोंके संगमपर ( धिया ) अपनी बुद्धिसे—मानी स्तुतिनीके ( विप्रः अजायत ) मन्युप्य विप्रो सानो होता है ॥ ९ ॥

१४४ प्र संम्राज चर्षणीनामिन्द्रस्तोता नव्य गीभिः । नर नृपाह म० महिष्ठम् ॥ १० ॥

( ऋ ८।१६।१ )

इति पञ्चमी दणति ॥ ५ ॥ तृतीय खण्ड ॥ ३ ॥ [ स्व० १ । उ० ता० । पा० ४४ । ली । ]

इति द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १-१० ) १ श्रुतकक्ष ( ऋ० सुकक्ष ) आङ्गिरस, २ मेयातिथि ( ऋ० श्युतकक्षस्य ) काण्व, ३ गोतमो रङ्गुण, ४ भरद्वाजो वाहस्पत्य ५ बिन्दु वृत्तकरो वा आङ्गिरस, ६, ७ श्रुतकक्ष सुकक्षो वा ( ऋ० सुकक्ष ) आङ्गिरस, ८ यत्स काण्व, ९ मून् शय आजीगति १० मून् शयो आजीगति, वामदेवो वा ॥ इन्द्र, ( ऋ० इन्द्रापूर्वयो ) ५ मल्ल ॥ गायत्री ॥

१४५ अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोपिणः । इन्द्रारिन्द्रो यवाशिरः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।१६।४ )

१४६ इमा उ र्ना पुरूजसोऽभि प्र नोनुनयुगिरः । गावा यत्स न धेनवः ॥ २ ॥ ( ऋ ६।४९।२९ )

१४७ अत्राह गौरमन्वत नाम त्वन्दुरपीच्यम् । इन्धा चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥ ( ऋ १।८४।१६ )

१४८ यदिन्द्रो अनयद्रितो महोरपो धृपन्तमः । तत्र पूषाभरतचा ॥ ४ ॥ ( ऋ ६।९।७।४ )

[ १४४ ] ( चर्षणीना सम्राज ) मनुष्योंमें उत्तम रीतिसे प्रकाशमान होनवाले ( गीभिः नव्ये ) स्तोत्रोक्ति स्तुति करणके योग्य ( नृ पाह नरे ) शत्रुओंको पराजित करनेवाले यता ( महिष्ठ इन्द्र ) महान इन्द्रको ( प्रस्तोत ) स्तुति कर ॥ १० ॥

( १ ) चर्षणीना सम्राज नृपाह नर महिष्ठ इन्द्र प्रस्तोत— मनुष्योंमें सम्राट शत्रुओंको हरातवाने यता महान इन्द्रको स्तुति करो ।

॥ यहा तीसरा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] अनुर्थ खण्ड ।

[ १४५ ] ( शिप्रो इन्द्र ) गिरव्राण धारण करनेवाले इन्द्रने ( प्र-होपिण सुदक्षस्य ) विशय हवन करनेवाले उपरले ( अपादुशिर ) जोके जाह अरे रूपने धिप्रित ( इन्द्रो अन्धरस ) शिप्रिल रूपने अप्रलो ( अपादु ) जायरा ॥ १ ॥

[ १४६ ] हे ( पुरू-वसो ) यतको प्रकारके धन रत्नवाले इन्द्र ! ( गाव धेनय यत्स न ) जिस प्रकार दूध देन वाली गायें अपने बछड़ोंके पास जाती है उसी प्रकार ( त्वा ) तुम ( इमा गिर ) मनेोनयु ) य स्तोत्र बार बार प्राप्त होते है तेरी बार बार स्तुति करते है ॥ २ ॥

[ १४७ ] ( अथा ह ) इस ( गोः चन्द्रमस ) गतिमान् च इके ( गृहे ) घरमें-च इमण्डलमें ( त्वयु ) त्वय्या इत सूयका ( अ-पीच्य नाम ) रात्रोके समय छिप जानेवाला प्रसिद्ध तेज है ( इन्धा अग्रमन्वत ) ऐसा लोग मानते है ॥ ३ ॥

[ १४८ ] ( यत् धृपन्तम इन्द्र ) जब बहुत धनवाला इन्द्र ( मही रित ) बड़ बड़ प्रवाहोंके रूपमें बहनेवाले ( अथ ) यवति आये हुए जलोंको ( अनयत् ) बहाता है ( तत्र ) तब ( पूषा सचा भुवत् ) पूषा उसका महामुक्त होता है ॥ ४ ॥

१४९ गौर्धिवति मरुतांश्चभ्रवस्युमीता मघानाम् । युक्ता वक्षी रघानाम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९।४।९ )

१५० उप नो हरिभिः सुतं याद्वि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।९।२।२१ )

१५१ इष्टा होत्रा असृषतेन्द्रं वृधन्तां अघ्वरं । अरुणवभृथमोजसा ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।९।२।२९ )

१५२ अहमिद्वि पितृषपरि मेघामृतस्य जग्रह । अहश्छयं ह्वाजनि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६।१० )

१५३ रेवतीनां सधमाद इन्द्रं सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।३०।१० )

१५४ सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासांश्सुक्षितानाम् । देवत्रा रथयोर्हिवा ॥ १० ॥

इति पद्यो धरातिः ॥ ६ ॥ षतुर्धः पण्डः ॥ ४ ॥ [ स्थ० ८ । उ० ५ । पा० ४४ । (शो) ॥ ]

( ७ )

( १-१० ) १. ४ धृतपदाः युक्तो वा जाद्विगताः; २ प्रसिद्धो मंत्रावर्णयः; ३ मेघातिथिः काण्यः; प्रियमेघमन्त्रांगिरसः;  
५ हरिभिः शिः काण्यः; ६. १० मधुच्छन्ना बंधवामिगः ७ त्रिसोकः काण्यः; ८ कुतोरी काण्यः; ९ सुतः शेष आगी-  
गतिः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

१५५ पान्तमा वां अन्धस इन्द्रमभि प्र गापत । विश्वासाहश्चतक्रतुं मश्द्विष्टं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।९।२।१ )

[ १४९ ] ( मघानां मरुतां ) पनयाम् मरुतीकी ( माता ) माता ( रघानां युक्ता वक्षिः ) रघीयें जोड़ी हुई शीर जनको लॉवनेवाली ( गौः ) गाय ( अघ्वस्युः ) अन्न देनेकी इच्छा करती हुई ( धवति ) दूध देती है ॥ ५ ॥

[ १५० ] हे ( मदानां पते ) सोमरसोंके स्वामी इन्द्र ! ( हरिभिः ) अपने घोड़ोंके ( नः सुतं उप याद्वि ) हमारे सोम यज्ञमें आ । ( हरिभिः नः सुतं उपयाद्वि ) घोड़ोंके हमारे यज्ञमें आ ॥ ६ ॥

[ १५१ ] ( अघ्वरे वृधन्ताः ) हमारे यज्ञमें इन्द्रकी मदीसा करते हुए ( इष्टाः होत्राः ) यज्ञ करनेवाले होत्रा गण ( अरुणवभृथं अरुणवभृथं ) अवभृथ स्नान होनेतक ( ओजसा ) अपने दलमें ( इन्द्रं असृषतुः ) इन्द्रके लिए आहुति देते हैं ॥ ७ ॥

[ १५२ ] ( अहं इत् ) मैंने ( पितुः श्रतस्य मेघां ) पालन करनेवाले पतरुपी इन्द्रकी मुद्रिकों ( परि जग्रह ) अपनी ओर मोड़ लिया है । ( हि ) इस कारण मैं ( सूर्यः इव अजनि ) सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ ॥ ८ ॥

[ १५३ ] ( याभिः क्षु-मन्तः मदेम ) जितकी सहायतासे हम अन्न युक्त होकर आनन्दित होते हैं; ( सधमादे इन्द्रं ) इन्द्रके साथ हमें युक्त होकर ( नः ) हमारी यह गाय ( रेवतीः ) दूध और घी देनेवाली होकर ( तुवि-वाजाः सन्तु ) अधिक बल देनेवाली हो ॥ ९ ॥

[ १५४ ] ( देवत्रा ) देवोंमें ( रथयः अर्हिवा ) रथपर बंठने योग्य ( सोमः ) सोम ( पूषा च ) और पूषा ( विश्वासां सुक्षितानां चेततुः ) सब मनुष्योंको उत्साह देने वाले हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ चौथा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १५५ ] ( वाः ) तुम ( विश्वा-साहं ) सब मनुष्योंके नाश करनेवाले ( शतक्रतुं ) संकटों कर्म करनेवाले ( चर्षणीनां मदिष्टं ) मनुष्योंमें बहान् सामर्थ्यवाली ( अन्धसः अतपन्तं ) सोमरस पीनेवाले ( इन्द्रं अभि प्र गापत ) इन्द्रका विशेष स्तुतिसे नाश करो ॥ १ ॥

१ विश्वासाहं शतक्रतुं चर्षणीनां मदिष्टं इन्द्रं अभि प्रगापत— सब मनुष्योंके नाश करनेवाले, संकटों कर्म करनेवाले, प्रजाओंमें सर्वाधिक अहितकारी, इन्द्रके पुण्यका स्तुतिसे घात करो ।

- १५६ प्र व इन्द्राय मादन<sup>१</sup>श्चक्षाय<sup>२</sup> मायत । सखायः सोमपात्रे<sup>३</sup> ॥ २ ॥ (ऋ. ७।१।१)
- १५७ वयमु<sup>१</sup> त्वा तदिदथा<sup>२</sup> इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१।१६)
- १५८ इन्द्राय मद्भने सुतं परि<sup>१</sup> शोभन्तु नो गिरः । अर्कमचन्तु कारवः<sup>२</sup> ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।१।१९)
- १५९ अयं त इन्द्र सोमो निपूतो<sup>१</sup> अधि चर्हिषि । एक्षीमस्य द्रवा पिय<sup>२</sup> ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।१।७।१)
- १६० सुरूपकृत्सुमृतये सुदुवामिव गोदुहे । जुहूमसि घविघवि<sup>१</sup> ॥ ६ ॥ (ऋ. १।१।१)
- १६१ अभि त्वा वृषभा सुते सुतश्चुजामि पीतथे । वृम्पा च्यश्नुही मदम् ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।१५।२२)
- १६२ य इन्द्र चमसन्वा सोमक्षपूषु ते सुतः । पिवेदस्य त्वमीक्षिये<sup>१</sup> ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।८।१७)

[ १५६ ] हे (सखायः) मित्रो ! (यः) तुय (हर्यभ्याय) हरि नामके घोड़ोंको रखनेवाले (सोम-पात्रे) सोम पीनेवाले (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (मादन प्रगायत) आनन्द देनेवाले स्तोत्रोंको गाओ ॥ २ ॥

[ १५७ ] हे (इन्द्र) इन्द्र (त्वायन्तः सखायः) वर्यं तुमसे मित्रता करनेकी इच्छावाले और तेरे मित्र हम (तत्-इत्-अर्थाः) तेरी स्तुति करनेकी इच्छा रखनेवाले (कण्वाः उ) कण्व भी (उक्थेभिः त्वा जरन्ते) स्तोत्रोंसे तेरी प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

[ १५८ ] (मद्भने इन्द्राय) आनन्दके स्वभाव वाले इन्द्रके लिए (सुतं) निकाले गए सोमरसकी (नः गिरः परि-स्तोभन्तु) हमारी वाणिया प्रशंसा करें । (कारवः) स्तुति करनेवाले (अर्कं अचन्तु) इस पुत्र्य सोमकी अर्चना करें ॥ ४ ॥

[ १५९ ] हे इन्द्र ! (अयं सोमः) यह सोम रस (से) तेरे लिए (चर्हिषि अधि) बेबिबर रखे गए आसन पर (निपूतः) झुड़ करके रखा हुआ है । (ए चर्हि) इसके पास आ, (द्रव) बीड़कर आ और (पिय) पी ॥ ५ ॥

[ १६० ] (ऊतये) हमारे सरक्षणके लिए (सु-रूपकृत्सुं) सुन्दर रूपको बनानेवाले इन्द्रको (घवि-घवि) प्रतिबिम्ब (गोदुहे सुदुवां इव) जिस प्रकार दूध बहनेके समय उत्तम दूध देनेवाली गायकी मुलाया जाता है, उसी प्रकार (जुहूमसि) हम भुलते हैं ॥ ६ ॥

१ ऊतये सुरूपकृत्सुं घवि घवि जुहूमसि— अपने सरक्षणके लिए सुन्दर रूप बनानेवाले इन्द्रके लिए हम प्रतिबिम्ब स्तुति करते हैं ।

[ १६१ ] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! (त्वा) तुम (सुते) सोमयज्ञमें (सुतं पीतथे) सोमरस पीनेके लिए (अभि चुजामि) मैं सोमरसका अपेण करता हूँ, उस समय (वृम्पा मद् द्यश्नुहि) तुल करनेवाले या आनन्द देनेवाले सोमरसको स्वीकार करो ॥ ७ ॥

[ १६२ ] हे इन्द्र ! (से) तेरे लिए (सुतः सोमः) तैय्यार किया हुआ सोमरस (चमसेषु चमपु आ) बड़े और छोटे बर्तनोंमें बरा हुआ रखा है । (अस्य त्वं पिय इत्) इसकी तू पी, हे इन्द्र ! (त्वं ईक्षिये) तू सामान्य-भाषी है ॥ ८ ॥

३ त्वं ईक्षिये— तू सबका स्वामी है ।

१६३ योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमृतये ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।३०।७ )  
 १६४ आ खेतो नि गीद्वेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।१।१ )

इति सप्तमो वसतिः ॥ ७ ॥ पञ्चमः सङ्घः ॥ ५ ॥ [ स्व० ५।७० २।४० ३९। ( ऋ. ) ]

[ ८ ]

( १-१० ) १ विद्वानित्रो गायित्, २ मधुकन्वा वेश्यामित्रः, ३ कुसुवी काण्वः, ४ प्रियमेघ आगिरसः;  
 ५, ८ घागदेवो गौतमः, ६, ९ श्रुतकसः सुरकोः वा आगिरसः, ( ९ ऋ० सुकल आगिरसः );  
 ७ मेधातिमिः काण्वः, १० विन्दुः पूतवसो वा आगिरसः ॥ इन्द्रः ( ऋ० ७ सारसत्पतिः;  
 १० मध्वः ) ॥ गायत्री ॥

१६५ इदं ह्यन्योजसा सुतं श्रामानां पते । पिचा त्वाशस्य निर्वेणः ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।१।१० )  
 १६६ महा इन्द्रः पुरथ नो महिस्वमस्तु वज्रिण । द्यौं प्रथिना शवः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।१६ )  
 १६७ आ तु न इन्द्र क्षुमन्ते चित्रे प्राभश्सं शृमाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।८।११ )  
 १६८ अभि प्र गोपतिं गिरन्द्रमचं यथा विदे । सूनुसत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।६।९४ )

[ १६३ ] ( योगे योगे ) प्रत्येकं कार्यं ( वाजे वाजे ) प्रत्येकं संपादनं ( उक्तये ) अपने संरक्षणके लिए ( तवस्तरं इन्द्रं ) अति बलवान् इन्द्रको ( सखायः ) मित्रके समान व्यवहार करनेवाले हम ( हवामहे ) बुलाते हैं ॥ १॥

१ योगेयोगे वाजेवाजे उक्तये तवस्तरं इन्द्रं हवामहे— प्रत्येकं कार्यं और संपादनं अपना संरक्षण हो इसके लिए इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

[ १६४ ] हे ( स्तोम-वाहसः ) यज्ञ करनेवालो ! ( सखायः ) हे मित्रो ! ( आ तु आ इत ) शीघ्र यहां आओ और ( निपीदत ) यहाँ बैठो, और ( इन्द्रं अभि प्रगायत ) इन्द्रके स्तोत्रोंका गान करो ॥ १० ॥

॥ यहाँ पांचवा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पद्यः सङ्घः ।

[ १६५ ] हे ( श्रामानां पते ) पत्नीके स्वामी ! हे ( निर्वेणः ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( अोजसा ) बलसे संहार किय गए ( इदं सुतं ) इस सोमरसको ( अन्य तु अनु पिय हि ) तू शीघ्र ही अनुपूल होकर धी ॥ १ ॥

[ १६६ ] ( नः इन्द्रः महात् ) हमारा यह इन्द्र महान् है, और ( परः च ) श्रेष्ठ भी है, ( वज्रिणे महिस्वं मस्तु ) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रका यज्ञ बड़े, ( द्यौः न ) ध्रुवकोके समान ( शवः प्रथिना ) उसका बल बढ़ता है ॥ २ ॥

[ १६७ ] हे इन्द्र ! ( महा-हस्ती ) बड़े बड़े हाथोंवाला तू ( नः तु ) हमें देनेके लिए ( क्षुमन्तं चित्रं प्राभं ) प्रसन्नमयी और अनेक प्रकारसे स्वीकार करने योग्य धन ( दक्षिणेन आ संशृमाय ) बायें हाथोंसे ले ॥ ३ ॥

[ १६८ ] ( गो-पतिं ) गायोंका पालन करनेवाले ( सत्यस्य सूनुं ) सत्यके प्रचारक ( सत्-पतिं ) सज्जनोंके पालन करनेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( गिरा अभि प्र अर्चं ) वाणीसे प्रार्थना कर ( यथा विदे ) जिससे कि उतली सहायतासे यज्ञका और उस इन्द्रका गान हो ॥ ४ ॥

७ ( साम. हिंदा )

१६५ कया नक्षिण आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ५ ॥  
( ऋ. ४।२।१; यजु. ३।७।२९ )

१७० त्वमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्वाणयतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥ ६ ॥

१७१ सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिपम् ॥ ७ ॥  
( ऋ. १।१।८६; यजु. २।१।१; )

१७२ ये ते पन्था अषो दिवो येभिर्व्यश्वमेरयः । उत श्रोपन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥

१७३ भद्रंभद्रं न आ भरेपमूर्जं श्वतक्रतो । यदिन्द्रं मृळयासि नः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।९।३।८ )

१७४ अस्ति सोमो अयश्सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।९।३।४ )

इति अष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ पठः षष्ठः ॥ ६ ॥ स्व० १२। उ० १। घा० ४०। ( षो ) ॥

[ ९ ]

( १-१० ) १ देवनामय इन्द्रमातरः, २ गौया ऋषिका; ३ दध्यद्दद्यायर्षणा; ४ ऋक्पठः काण्वः; ५ गौतमो रक्षुण्णः;  
६ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ व्यामदेवो गौतमः; ८ वत्सः काण्वः; ९ शुन सोप अश्विनातिः; १० उजो वातायनः ॥

इन्द्रः ( ऋ० ४ अश्विनी; १० वायुः ) ॥ गायत्री ॥

१७५ इच्छन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । वन्वानासः सुर्वीर्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१६।१ )

[ १६९ ] ( सत्रा-पृथः ) तवा बढनेवाला ( चित्रः सखा ) विसक्षण भेट् मित्र यह इन्द्र ( कया ऊति ) कौतसे संरक्षणको शक्तिसे युक्त होकर ( नः वा भुवत् ) हमारे पास आवेगा ? उसी प्रकार ( कया शचिष्ठया वृता ) कौतसी शक्तिसे युक्त व्यवहार वाला होकर वह हमारे पास आएगा ? ॥ ५ ॥

[ १७० ] ( सत्रा-साहं ) बहुतसे सत्राओंकी हरानेवाले ( यः ) तुम्हारी ( विश्वासु गीर्षु ) धायते । सब श्रुतिमेंमें वर्णित ( त्वं उ ) उस इन्द्रको ( उतये ) अपने संरक्षणके लिए तुम ( आच्ययाचयसि ) अपने पास बुलायो ॥ ६ ॥

[ १७१ ] ( मेधो ) बुद्धि बढ़ानेके लिए ( मद्भुतं ) अपूर्व ( इन्द्रस्य प्रियं ) इन्द्रको प्रिय ( काम्यं ) इच्छा करनेके योग्य पदके ( सनिं ) दान देनेवाले ( सदसस्पति ) सदसस्पति देवको ( अयासिपं ) मने प्राप्त किया है ॥ ७ ॥

[ १७२ ] हे इन्द्र ! ( ये ते पन्थाः ) जो तेरे मार्ग ( दिवः अधः ) सुलोज्जित नीचे हैं ( येभिः विश्वं येरयः ) जिन मार्गसे सब विश्वोंको तू चलाता है, ( ते ) वे मार्ग ( नः भुवः उत श्रोपन्तु ) हमारे पत स्वानतमें पहुँचते हैं, उन मार्गोंसे हमारे पत स्थानको आ ॥ ८ ॥

[ १७३ ] हे ( श्वतक्रतो ) शंकरों कार्य करनेवाले इन्द्र ! ( भद्रं भद्रं ) अत्यन्त कार्य करनेवाले ( एवं ऊजो ) भद्र और बलको बढ़ानेवाले धन ( नः आ भर ) हमें भरपूर दे । ( यत् ) क्योंकि ( नः मृळयासि ) तू हमें सुखी करता है ॥ ९ ॥

१ हे श्वतक्रतो ! भद्रं एवं ऊजो नः आभर— हे शंकरों उतम काम करनेवाले इन्द्र ! बन्धान करने वाले, अन्न और बलको हमें भरपूर दे । २ नः मृळयासि— हमें तू सुखी करता है ।

[ १७४ ] ( अयश् सोमः सुनः अस्ति ) यह सोमरस हमने तीव्यार करके रखा हुआ है । ( अस्य ) इति ( स्वराजः मरुतः ) देवगमी मध्व गण ( पिबन्ति ) पीते हैं । ( उत अभिवना ) और अश्विना देव भी पीते हैं ॥ १० ॥

॥ पदां छत्रा खंष्ट खमात् बुधा ॥

[ ७ ] सप्तमः पत्रकः ।

[ १७५ ] ( सु-वीर्यं वन्वानासः ) उतम बल प्राप्त करनेकी इच्छावाली ( इन्द्रयन्तीः ) इन्द्रके पास ( अपस्युव ) उतम कार्य करनेकी इच्छा वाली इन्द्रकी माता ( जाते ते उपासते ) प्रकट हुए उत इन्द्रकी सेवा करती हैं ॥ १ ॥

- १७६ नकि देवा इनीमसि न वया योपयामसि । मन्त्रधुन्व चरामसि ॥ २ ॥ (ऋ. १०।१३४।७)
- १७७ दोषा अगात् वृहद्राय द्युमद्रामन्नाद्यर्वेण । स्तुहि देव एसवितारम् ॥ ३ ॥ (अथर्व. ६।१।१)
- १७८ एषो उपा अपूर्व्या व्युच्छति मिया दिवः । स्तुपे वामधिना वृहत् ॥ ४ ॥ (ऋ. १।४६।१)
- १७९ इन्द्रो दधीचो अस्मिधुन्वापप्रतिष्कृतः । जधान नवतीर्नव ॥ ५ ॥ (ऋ. १।८४।१३)
- १८० इन्द्रेहि मत्सन्धतो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महान् अभिष्टिरोजसा ॥ ६ ॥ (ऋ. १।९।१)
- १८१ आ तु न इन्द्र वृत्रहन्साकमधेमा गहि । महान्महीमिरुतिभिः ॥ ७ ॥ (ऋ. ४।२२।१)
- १८२ ओजस्तदस्य तित्विप उभे यत्समवतैवत् । इन्द्रश्चर्मैव रोदसी ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६।९)

[ १७६ ] हे (देवाः) देवो ! (न कि इनीमसि) हम कोई हानि नहीं करते और (न कि आयोपयामसि) हम कोई बिरुद्ध कार्य नहीं करते (मन्त्र-धुन्व चरामसि) वेद-मन्त्रों में जो कहा है, उसके अनुसार हम आचरण करते हैं ॥२॥

१ न कि इनीमसि— हम किसीको हानि नहीं करते । २ न कि आयोपयामसि— हम कोई बिरुद्ध कार्य नहीं करते । ३ मन्त्रधुन्व चरामसि— वेदमन्त्रों में जो कहा है, उसके अनुसार हम आचरण करते हैं ।

[ १७७ ] हे (वृहद् गाय) वृहत् नामक सामका गायन करनेवाले, हे (द्युमद्-गामन्) प्रथमके सांगसे जानेवाले (साद्यर्वेण) अथर्ववेदों काज्ञाण ! (दोषः अगात्) यत्कर्ममें जो दोष हों उन्हें दूर करनेके लिए (देवसवितारं स्तुहि) सविता देवकी स्तुति कर ॥ ३ ॥

१ दोषः अगात्, देवं सवितारं स्तुहि— दोष होनेपर सविता देवकी स्तुति कर ।

[ १७८ ] (एषा मिया) यह म्रिय (अपूर्व्या उपा) अपूर्व उपा (दिवः व्युच्छति) पुलोकसे प्रकाशित होती है, हे (अधिपानो) अधिपदेवो ! (यां वृहत् स्तुपे) तुम्हारी हम बहुत बड़ी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

[ १७९ ] (अ-प्रतिष्कृतः) जिसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता ऐसे इस इन्द्रने (दधीचः अस्मिभिः) बधोपिकी हृष्टियेति (नव नवतीः) आठ सौ दस (वृत्राणि) धुशुकी (जधान) मारा ॥५॥

१ नव नवतीः— नौ गुना नब्बे, ९०×९ = ८१० ।

[ १८० ] हे इन्द्र ! (पहि) आ (अभ्यस्तः) अन्न रूपी (विश्वेभिः सोमपर्वभिः) सब सोमरसोंसे (मत्सि) तु भान्वित होता है, अब (ओजसा) अपने बलसे (महान् अभिष्टिः) बड़ेसे बड़े शत्रुको भी हराने वाला हौ ॥ ६ ॥

१ ओजसा महान् अभिष्टिः— सामर्थ्यसे यह महान् शत्रुको भी हरानेवाला है ।

[ १८१ ] हे (वृत्र-हन्) वृत्ररूपी शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! तु (नः) हमारे पास (महान् आ तु) महान् होकर आ । (महीभिः ऊतिभिः) महान् सरसणके साधनोंके साथ (अस्माकं अर्थं अगाहि) हमारे पास आ ॥ ७ ॥

१ महीभिः ऊतिभिः अस्माकं अर्थं अगाहि— महान् सरसणके साधनोंके साथ हमारे पास आ ।

[ १८२ ] (अस्य तत् ओजः) इस इन्द्रका वह सामर्थ्य (तित्विपे) चमकने लगा है, (यत्) जिससे कारण यह इन्द्र (उभे रोदसी) धुशुकी और भूलोकको 'चर्म इव समवर्तयत्' चमड़के समान फँकता है ॥ ८ ॥



१८३ अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भेषिम् । वचस्ताच्चित्र ओहसे ॥ ९ ॥ ( ऋ १।३०।४ )

१८४ वात आ वातु मेपजश्शम्भु मयोभु ना हृदे । प्र न आयूषि तारिपत् ॥ १० ॥

( ऋ. १०।१८६।१ )

इति नवमी वयति ॥ ९ ॥ सप्तम खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १० । उ० २ । धा० ४५ । ( ऋ ) ॥ ]

[ १० ]

( १-९ ) १ कपोतो योतः; २, ३, ९ वत्स. ( ऋ० २, ९ वयोऽय्यः ) काण्यः; ४ भूतवचः सुकपो वा आदिपरसः;  
५ मधुच्छत्वा बंधवामिनः; ६ वागदेवो गौतमः; ७ इरिम्बिदिः काण्यः; ८ सत्यवृतिर्वाणि ॥ इन्द्रः ( ऋ०  
१ वरुणनिवायमणः; ८ आदित्यः ) वायव्ये ॥

१८५ यः रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अयमा । न किः स दभ्यते जनः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।४१।१ )

१८६ गव्यो पु णो यथा पुराशयोत रथया । वरिवस्या महोनाम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।४६।१० )

१८७ इमास्त इन्द्र पृश्रयो घृतं दुहते आशिरम् । एनामृतस्य पिप्पुयुरीः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।६।१९ )

१८८ अया धिया च गव्यया पुरुषामनुकृणुत । यरसामेसाम आभुवः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।९१।१७ )

[ १८३ ] हे इन्द्र ! ( अथै उ ) यह सोमरस निष्कल्पते ( ते ) तेरे लिए तैयार किया गया है, उसके पास ( सम-  
तसि ) तू जाता है ( कपोतः गर्भेषि इव ) जैसे बच्चातर गर्भको धारण करनेमें समर्थ बच्चातीके पास जाता है ( तत्  
चित् ) उजो प्रकार ( नः यचः ) हमारी स्तुति ( ओहसे ) तू सुनता है ॥ ९ ॥

[ १८४ ] ( वातः ) यह वायु ( नः हृदे शंसु मयोभु ) हमारे हृदयको जगति और मुल देनेवाली ( मेपजं ) औष-  
धियोंको ( आ वातु ) लाकरके देवे, वे औषधियों ( नः आयूषि प्रतारिपत् ) हमारी आयुको लम्बो करें ॥ १० ॥

१ वातः नः हृदे शंसु मयोभु मेपजं आ वातु— यह वायु हमारे हृदयको मुल और आरोग्य देनेवाली  
औषधियोंको लाकर देवे । २ नः आयूषि प्र तारिपत्— हमारी उम्र लम्बो करे ।

॥ यद्यं सातवो रजं समात हुभा ॥

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ १८५ ] ( प्र-चेतसः ) ज्ञानी ( यं रक्षन्ति ) जिसका धारण करते हैं ( सः जनः ) वह मनुष्य ( न किः  
दभ्यते ) किसीसे भी नहीं बंधाया जा सकता ॥ १ ॥

१ प्रचेतसः यं रक्षन्ति स जनः न किः दभ्यते— ज्ञानी देव जिसको रक्षा करते हैं, उसे कोई भी नहीं  
बंधा सकता ।

[ १८६ ] हे इन्द्र ! ( यथा पुरा ) पहलेके समान ( नः ) हमें ( तु गव्यः ) उत्तम गावोंके समूह ( उ अश्वया ) उत्तम  
घोरे ( उत रथया ) और रथ तथा ( महोनां ) बड़ा देनेवाले घन देनेकी इच्छाके ( वरिवस्य ) हमारे पास आ ॥ २ ॥

[ १८७ ] हे इन्द्र ! ( ते इमाः पृश्रयो ) तेरी ये गावें ( एनामृतस्य पिप्पुयुरीः ) पतरी बढानेवाली हैं, और ( घृतं  
दुहते ) घी देनेवाले दूधको ( दुहते ) दुहती हैं ॥ ३ ॥

[ १८८ ] हे ( पुरु-नामन ) अनेक नामोंवाले और ( पुर-पुत ) बहुतोंके प्रसंगित इन्द्र ! ( सोमे सोमे ) प्रायिक  
सोमपानमें ( यन् आभुवः ) जहाँ तू जाता है, वहाँ ( अया गव्यया धिया ) इस गावकी इच्छा करनेवाली स्तुतिसे तू  
तेरी लुप्त करने है ॥ ४ ॥

- १८९ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१।१० )  
 १९० क इमं नाहुपीष्वो इन्द्रं सोमस्य वर्षयात् । स नो वधून्या भरात् ॥ ६ ॥  
 १९१ आ याहि सुयुमा हि त इन्द्रं सोमं पित्रा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१।७।१ )  
 १९२ महि त्रीणामवरस्तु बुध्नि मित्रस्याधिष्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।१८।१।१ )  
 १९३ त्वावतः पुरुवसो वयमिन्द्रं प्रणेतः । ससिं स्यातर्हीणाम् ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।३।६।१ )

इति स्तानी दशतिः ॥ १० ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ ख० ६ । उ० ४ । पा० ३५ । (घ) । ]

इति द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्थः ; द्वितीयः प्रपाठकस्य समाप्तः ।

अथ तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्थः ।

[ १ ]

- ( १-१० ) १ प्रणयः काण्वः ; २ विश्वामित्रो गायिनः ; ३, १० वामदेवो गीतमः ; ४, ६ श्रुतकक्षः आङ्गिरसः  
 ( ऋ० ४ मुखोः वा ; ६ तुकस्य आगिरसः ) ; ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः ; ७ मूलमदः शौनकः ; ८, ९ भरद्वाजः  
 ( ऋ० -८ बर्हिः ) बर्हिस्त्वयः ॥ इन्द्रः ( ९ ऋ० इन्द्रापूर्वणी ) ॥ गायत्री ॥

१९४ उचवा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधा अद्रिवैः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।४।१ )

[ १८९ ] ( पावका ) पवित्रता करनेवाली ( याजिनीयती ) अन्न देनेवाली ( धिया वसुः ) बुद्धिको सहायता  
 धन देनेवाली ( सरस्वती ) विद्या देवो ( याजेभिः ) अर्पिते ( नः यज्ञं वष्टु ) हमारे यज्ञको पूर्ण करे ॥ ६ ॥

[ १९० ] ( नाहुपीषु ) मजाननोंमें ( इमं इन्द्रं ) इस इन्द्रको ( कः वर्षयात् ) कौन भला वृत्त करता है ? ( सः )  
 वह इन्द्र ( नः वसुनि आ भरत् ) हमें भरपूर धन देवे ॥ ६ ॥

[ १९१ ] हे इन्द्र ! ( आयाहि ) तू आ, हमने ( ते ) तेरे लिए ( सुयुमा हि ) सोमस्य उत्तम रीतिले तैय्यार  
 किया है, ( इमं सोमं पित् ) इस सोमस्यको तू पी, ( मम ) मेरे ( इदं बर्हिः ) इस आसनपर ( व्यासद्ः ) बैठ ॥ ७ ॥

[ १९२ ] ( मित्रस्य, अधिष्णः वरुणस्य ) मित्र अर्पणा और वरुण इन ( त्रीणां ) तीनोंसे मिलनेवाले ( बुध्निं )  
 तेजस्वी ( दुराधर्षं ) दुस्तरोंके द्वारा सहनेमें कठिन ऐसे ( महि अवः ) अहान् संरक्षण ( अस्तु ) हमारे लिए हों ॥ ८ ॥

१ बुध्निं दुराधर्षं महि अवः अस्तु— तेजस्वी, हमरोंको हरानेमें समर्थ, महान् संरक्षण हमें मिले ।

[ १९३ ] हे (पुरु-वसो) बहुते धनको अपने पास रखनेवाले, (म-नेतः) उत्तम कर्म करनेवाले, (हरीणां  
 स्यातः) घोषोपर बैठनेवाले इन्द्र ! (त्वावनः वयं ससिं) तुमसे संबन्धित होकर हम सुरक्षित रहें ॥ ९ ॥

॥ यहाँ आठवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नयमः खण्डः ।

[ १९४ ] हे इन्द्र ! (त्या) तुम (सोमाः) ये सोमस्य (उत् मन्दन्तु) उत्तम आनन्द देवें, हे (अद्रि-वः)  
 बलको धारण करनेवाले इन्द्र ! तू हमें (राधा कृणुष्व) धन दे और (ब्रह्म-द्विषः) शत्रुसे डैव करनेवाले शत्रुओंको  
 (अव जहि) तू मार ॥ १ ॥

१ राधाः कृणुष्व— हमें धन दे ।

२ ब्रह्मद्विषः अवजहि— शत्रुसे डैव करनेवालोंको तू मार ।

१९५ गिर्वेणः पाहि नः सुतं मघाभारभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यसः ॥ २ ॥ (ऋ. ३।४।०६)

१९६ सदा व इन्द्रश्चक्रुपदा उपो लु स सपर्यन् । न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥ ३ ॥

१९७ आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिध सिन्धवः । न स्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ ४ ॥

(ऋ. ८।९१।१२)

१९८ इन्द्रमिद्राधिनां वृहदिन्द्रमकेभिरकिणः । इन्द्रं वाणीरनुपत ॥ ५ ॥ (ऋ. १।७।१)

१९९ इन्द्र इपे ददातु न क्रमुक्षणमृधुशरपिम् । वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।९३।१४)

२०० इन्द्रो अक्र महद्रथममो पदप चुच्यवत् । स हि स्थिरा विचर्षणिः ॥ ७ ॥ (ऋ. २।४।१।१०)

२०१ इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वेणो गिरः । गावो वरसे न धेनवः ॥ ८ ॥ (ऋ. ६।४९।१८)

[ १९५ ] हे (गिर्वेणः) स्तुतिके योग्य इन्द्र । (नः सुतं पाहि) हमारे द्वारा निकाले गए सोमरसोंको पी, क्योंकि तू इस (मघोः धाराभिः अज्यसे) सोमरसकी धाराभोजे मीचा जाता है, और हे इन्द्र । (त्वादातं इत् यशः) तेरी सहायतासे यश मिलता है ॥ २ ॥

१ त्वादात यशः इत्— तेरी सहायतासे यश मिलता है ।

[ १९६ ] (इन्द्रः) यह इन्द्र (सदा उपो लु) सदा तुम्हारे पास है, (सः सपर्यन्) यह पूजित होता हुआ (वः आचरुष्यत्) तुम्हारे यत्नकी ओर आकर्षित होता है, (नः वृतः इन्द्रः देवः शूरः) हमारे द्वारा स्वीकार किया गया इन्द्र देव महान् शूर है ॥ ३ ॥

१ नः वृतः इन्द्रः देवः शूरः— हमारे द्वारा स्वीकार किया गया इन्द्र देव बहुत शूर है ।

[ १९७ ] हे इन्द्र । (सिन्धव समुद्र न) जिस प्रकार नदियाँ समुद्रसे मिलती हैं, उसी प्रकार वे (इन्दुवः) सोमरस (त्वा आविशन्तु) तुममें प्रविष्ट हों, हे (इन्द्र) इन्द्र । (त्यां) तुमसे बढकर (न अतिरिच्यते) और कोई महान् नहीं है ॥ ४ ॥

१ हे इन्द्र । त्यां न अतिरिच्यते— हे इन्द्र । तुमसे बढकर और कोई महान् नहीं है ।

[ १९८ ] (पाधिनाः) सामयान करनेवाले मनुष्य (इन्द्रं इत्) इन्द्रसे ही (वृहत् अनुपत) बृहत्लामकी शक्ति प्राप्त करते हैं । (अकिणः अकेभिः) पूजा करनेवाले मनुष्य स्तोत्रसे उसीकी पूजा करते हैं, (वाजीः इन्द्रं अनुपत) हमारी वाणी इन्द्रका ही गान करती है ॥ ५ ॥

[ १९९ ] इन्द्रः (ऋभुक्षण रथि) श्रेष्ठ पन हमें देवे (ऋभु नः इपे ददातु) हमें अपने लिए कारीगर देवे (वाजी वाजिनं ददातु) मलयान् इन्द्र हमें पन देवे ॥ ७ ॥

१ ऋभु-क्षण रथि ददातु— इन्द्र कारीगरोंका प्राप्त करनेवाले पन हमें देवे ।

२ नः इपे ऋभु ददातु— हमें अन्न मिलानेके लिए कारीगर देवे ।

३ वाजी वाजिनं ददातु— मलयान् इन्द्र बल देवे ।

[ २०० ] (स्थिरः विचर्षणिः) स्थिर, अचञ्चल यह जानी इन्द्र (महत् भय) महान् भयको (अं हि इम्री यम्) धीर ही डर करता है, और उन भयोंकी (अप-सुच्यवत्) स्वान्ते हटा देता है ॥ ७ ॥

१ स्थिरः विचर्षणिः महत् भय अर्भीयत् अपसुच्यवत्— मुझमें स्थिर रहनेवाला और जानी यह इन्द्र महान् भयको डर करता है और उन्हें स्वान्ते हटा भी देता है ।

[ २०१ ] हे (गिर्वेणः) स्तुतिके योग्य इन्द्र । (रुते रुते) प्रायश्च वसतं (इमा गिरः) वे हमारी स्तुतियाँ (त्यां) तुमसे ही (यान धेनवः गावः न) जिस प्रकार बढकरने हुए देनेवाली गाँवें प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार (नक्षन्ते) प्राप्त होती हैं ॥ ८ ॥

२०२ इन्द्रा तु पूषणा वयस्सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसावये ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१।१ )

२०३ न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्याया अस्ति वृत्रहन् । न वयं यथा त्वम् ॥ १० ॥

( ऋ. ४।१०।१ )

इति प्रथमा वसतिः ॥ १ ॥ नवमः लघुः ॥ १ ॥ [ स्त० ८ । उ० ७ । पा० ३५ । ( ४ ) ]

[ २ ]

( १-१० ) १, ४ त्रिमोकः काण्वः; २ मधुच्छन्दा वंदवामिनः; ३ वसतः काण्वः; ( ऋ० यदोऽभ्यः ); ५ मुकल आदिपरतः; ६, ९ वामदेवो गौतमः, ७ विश्वामित्रो गाथिनः । ८ गोपृथ्वरथवृत्तिकी वाज्यायनी; १० श्रुतकलः मुकलो वा आदिपरतः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

२०४ तराणि वा जनानां व्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र श्वसिपम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४।१२८ )

२०५ असुप्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । सजोषा वृषमं पतिम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।४ )

२०६ सुनीथो धा स मर्त्या ये मरुतो यमयमा । मिश्रास्पान्यद्रुहः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।४।६।४ )

२०७ पदीडोविन्द्र यस्स्थिर यस्पशनि पराभृत्म् । यसु स्पादं तदा भर ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।४।४।१ )

[ २०२ ] ( इन्द्रा पूषणा ) इन्द्र और पूषा इन देवताओंके ( नु वयं ) हम ( स्वस्तये ) अपने कल्याणके लिए ( सख्याय ) मित्रताके लिए और ( वाज-सावये ) अथवा प्राणिके लिए ( हुवेम ) प्रार्थना करते मुकले हैं ॥ १ ॥

[ २०३ ] हे ( वृत्र-हन् इन्द्र ) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! ( त्वत् उत्तरं न कि अस्ति ) तुमसे श्वाका थेल और कोई नहीं है, और ( ज्यायान् ) महान् भी कोई नहीं है ( यथा त्वं ) जैसा तू है, ( वयं ) वैंसा ( न कि ) इतरा कोई नहीं है ॥ १० ॥

१ हे वृत्रहन् इन्द्र ! त्वत् उत्तरं न कि अस्ति— हे वृत्र नाशक इन्द्र ! तुमसे शत्रुकर थेल कोई भी नहीं है ।

॥ यहाँ नवयं खंड समाप्त हुआ ॥

[ १० ] दशमः लघुः ।

[ २०४ ] ( वा जनानां तराणि ) तुम लोगोंको [ वृत्तं ] पार करनेवाले ( व्रदं ) शत्रुको भय विहानेवाले ( गोमतः वाजस्य ) गाथीके मिलनेवाले अथवा दान करनेवाले ( समानं उ ) और सदा उन्नत रहनेवाले इन्द्रको ( प्रश्वसिपम् ) में प्रशंसा करता हूँ ॥ १ ॥

१ जनानां तराणि, व्रदं, समानं प्रश्वसिपम्— सबका तराण करनेवाले और शत्रुको भय देनेवाले इन्द्रको हम सदा स्तुति करते हैं ।

[ २०५ ] हे इन्द्र ! ( ते गिरः असुप्रं ) तेरो स्तुतिके लिए शत्रुओंको मैंने संप्यार किया है । वे स्तुतिवां ( वृषमं पतिं त्या ) बलवान् और सबका धातन करनेवाले तुम ( प्रति उदहासत ) प्रान्त हुई है, और उनका तुने ( स-जोषा ) शेषन किया है ॥ २ ॥

[ २०६ ] ( य-द्रुहः ) श्रेह न करनेवाले मरुत, मित्र और अयंता ( ये पान्ति ) मित्रको रक्षा करते हैं, ( सः मर्त्याः ) वह मनुष्य ( सु-नीथः य ) विश्वयते उत्तम मार्गपर धातनेवाला होता है ॥ ३ ॥

१ ये अद्रुहः पान्ति स मर्त्याः सुनीथः— मित्रका श्रेह न करनेवाले वैश तराण करते हैं, वह मनुष्य उत्तम मार्गसे जानेवाला होता है ।

[ २०७ ] हे इन्द्र ! ( यत् पशानि पराभृत्म् ) मजबूत शकानेमें रक्षा हुआ है, ( यत् स्थिरे ) जो बन विषय स्थानमें रक्षा हुआ है, ( यत् पशानि पराभृत्म् ) जो भूमिमें रक्षा हुआ है, ( तत् स्पादं यसु ) उस उत्तम शकके ( भाग्यं ) हमें भरपूर है ॥ ४ ॥

- २०८ श्रुतं वां वृत्रहन्तमं प्र शधिं चर्षणीनाम् । आशिषे राधसे महे ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९।३।६)
- २०९ अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः । अरश्शक्र परमणि ॥ ६ ॥
- २१० घानापन्तं करश्मिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातलुपस्व नः ॥ ७ ॥ (३।१।२।१)
- २११ अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।११।१२)
- २१२ इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥ ९ ॥
- २१३ तुभ्यश्सुतासः सोमाः स्तोत्रिणं बर्हिर्विभावसो । स्तोतुभ्य इन्द्र मृडया ॥ १० ॥  
(ऋ. ८।९।३।९।)

इति द्वितीया वसति ॥ २ ॥ वसयः सप्त ॥ १० ॥ [ स्व० ८। ७० २। ५० ३३। (वि) । ]

[ २०८ ] ( वृत्र-हन्तमं शधिं ) शत्रुके मारनेवाले बलकी सुमने ( श्रुतं ) सुना ही है, ( चर्षणीनां ) मनुष्योंके ( महे राधसे ) महान् धनको प्रातिके लिए उस बलको ( प्र आशिषे ) उपभोगके लिए ( यः ) सुन्दे केता है ॥ ५ ॥

[ २०९ ] हे ( शूर इन्द्र ) वीर इन्द्र ! ( ते श्रवसे ) तेरा यश सुननेके लिए ( अरं गमेम ) बहुतसे सबतर हमें मिले, हे ( शक्र ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! ( त्वावतः परमणि ) तेरे सामान धेड़ बेचताके तरक्षणमें ( अरं ) अतन्वित होनेके लिए हमें पर्याप्त अवसर मिले ॥ ६ ॥

[ २१० ] हे इन्द्र ! ( घानापन्तं ) भुजे हुए, ( करश्मिणं ) बही और शत्रुके मिथित ( अपूपवन्तं ) पुत्रोंके साथ तथा ( उक्थिनं ) स्तोत्र जिकके साथ छोटे जाते हैं, ऐसे ( नः ) हमारे सोमरसको ( प्रातः लुपस्व ) सबेरे सेवन कर ॥ ७ ॥

[ २११ ] ( यत् ) जब ( विश्वाः स्पृधः ) सब शत्रुकी तेजाओंको हरा दिया, सब ( इन्द्रः ) दारने ( अपां फेनेन ) जलके भागसे ( नमुचेः शिरः ) उद्वर्तयः ) मनुष्यके सिरकी तोडा ॥ ८ ॥

१ अपां फेन— पानीका भाग, शत्रुकी भाग ।

२ नमुचिः— वीर अरुण न होनेवाला रोग, वीर अरुण न होनेवाला रोग शत्रुकी भागसे अनुपलते रोग हो जाता है ।

[ २१२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए ( इमे सोमाः ) ये सोमरस ( सुतासः ) विशालरस तैय्यार किए गए हैं ( च ये सोत्वाः ) और जो रस विशालरस तैय्यार किए गए हैं, हे ( प्रभू-यसो ) बहुत सारा धन प्राप्तमें रखनेवाले इन्द्र ! ( तेषां मत्स्व ) उन सोमरसके तु भागदित हो ॥ ९ ॥

[ २१३ ] हे ( विश्वायसो ) तेजावी धन प्राप्तमें रखनेवाले इन्द्र ! ( तुभ्यं सोमाः सुतासः ) तेरे लिए ये सोमरस विशालरस तैय्यार किए हैं, और ( बर्हिः स्तोत्रिणं ) आसन्न वंशार रसा हुआ है, हे इन्द्र ! इस वृत्तामन्तर बंध और वीर वी, तथा ( उक्थिनं ) उपभोगके ( मृडया ) सुधी कर ॥ १० ॥

॥ यदां इतरयां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ]

( १-९ ) १ ध्रुव रोप आग्नीर्गति, २ ध्रुवकथ आगिरस ( ऋ० सुवसो आगिरसो या, ) ३ विशोक. काण्व ;  
४ निपातियि. काण्व ; ५ गीतसो राहृणणः ; ६ ब्रह्मातिवि. काण्व, ७ विरुवाभिरो यायिनो जनदग्निर्वा ;  
८ प्रस्यन्व. काण्व ( ऋ० कण्वो घोर. ) ; ९ निपातियि. काण्व ॥ इन्द्र. ( ऋ० ५ विश्वेदेवा ),  
६ अश्विनो; मित्राववणो; ८ मरुत., ९ विष्यु ) ॥ गायत्री ॥

२१४ आ व इन्द्रं कृवि यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । म० हिष्टुश्सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥  
( ऋ १३०१९ )

२१५ अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥ ( ऋ ८९२११० )

२१६ आ बुन्दे वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम् । फ उग्राः के ह शुण्डिरे ॥ ३ ॥  
( ऋ. ८१४१४ )

२१७ वृषदुक्थ० हवामहे सुप्रकरस्नमृतये । साधः कृष्यन्तमयसे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८१३२१०० )

२१८ ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् । अयंमा देवैः सज्जोपा ॥ ५ ॥ ( ऋ. १९०१६ )

२१९ दूरादिदेव यत्सतोऽरुणपुत्रशिञ्चित् । वि भानुं विश्वयातनत् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८१५१९ )

[ ११ ] पक्षादन्नाः खण्डः ।

[ २१४ ] ( वाजयन्तः ) अथवाले ह्य यनयान ( शतक्रतुं ) संकडों उसम काम करनेवाले ( महिष्टं ) महान् ( यः इन्द्रं ) पुष्टारे इन्द्रको ( कृवि यथा ) लोको जेते पानीसे छियेले हं, उसो प्रकार ( इन्दुभिः आ सिञ्चै ) सोमरसति तींचेले हं ॥ १ ॥

[ २१५ ] हे इन्द्र ! ( अतः चित् ) इस ध्रुवोपने ( शत-वाजया ) संकडों प्रकारके बलमे तथा ( सहस्र-वाजया ) हजारों तरहके अग्रेसे युक्त होकर ( इषा ) रत्नके साथ ( नः ) हमारे पास ( उपा याहि ) या ॥ २ ॥

[ २१६ ] ( जातः वृत्रहा ) उत्पन्न होते ही वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने ( बुन्दे व्यादे ) वाण हाथमें ले लिया और ( मातरं पृच्छात् ) अपनी मातासे पूछा कि ( के के उग्राः इह शुण्डिरे ) कौन कौन मरान् घोर यहाँ प्रसिद्ध हं ॥ ३ ॥

[ २१७ ] ( ऊतये ) सभोंके धरलणके लिए ( सुप्रकरस्नं ) हाथोंके फलनेवाले, ( अयसे ) सरलगात्रे लिए ( साधः कृष्यन्तं ) साथनोंको देनेवाले, भीर ( वृषदुक्थं ) जिसकी बहुत स्तुति की जाती है, ऐसे उस इन्द्रको ( हवामहे ) हम बुलाते हं ॥ ४ ॥

[ २१८ ] ( मित्रः वरुणः ) मित्र और वरुण ये ( विद्वान् ) ज्ञानी देव ( नः ) हमें ( ऋजु-नीती नयति ) सरल मोनिके मार्गसे लेजाते हं । ( देवैः सज्जोपाः अयंमा ) देवोंने साथ समान रीतिते रहनेवाला अयंमा भी हमें सरल मार्गसे उपतिको पहुँचाये ॥ ५ ॥

[ २१९ ] ( दूरात् ) दूर आकाशको पुर्व दिशावासी ( इह सतः एव ) मानीं यहाँ है ऐंगी रिषाई देनेवाली तथा ( अरुणपुत्रः ) अरुण प्रजापति के फलनेवाली उपा ( यत् आशिञ्चित् ) लक्ष प्रजापित होने लगी, तथा ( भानुं ) प्रजापति ( विश्वया व्यतनत् ) धरतीं छोड़ फलने लगी ॥ ६ ॥

८ ( भाष, हिरी )

- २२० आ नो मित्रावरुणा घृतेमध्वृतिमुक्षतम् । मध्वा रवांसि सुकृत् ॥ ७ ॥ (ऋ ३।२।१६)  
 २२१ उदु त्व सूनुवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत । वाश्रा अभिजु यातवे ॥ ८ ॥ (ऋ ३।३।१०)  
 २२२ इदं विष्णुर्वि चक्रमे श्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पाशुले ॥ ९ ॥ (ऋ. ३।२।१७)  
 इति तृतीया वसति ॥ ३ ॥ एकाश खण्ड ॥ ११ ॥ [ स्व० ६ । उ० १ । पा० ३९ । (को) ॥ ]

[ ४ ]

( १-१० ) १,७,८ मेधातिथि काण्व, २ माधमेदो गौतम, ३, ५ मेधातिथि काण्व, त्रिमेषश्चादिरस, ४ त्रिधा-  
 मित्रो गायित्र, ६ दुनित्र ( सुनिमो धा ) कोत्स, ९ विश्वामित्रो गायित्रोऽभीपाद उवलो वा, १० धृतकञ्ज  
 ( ऋ० सुकसो वा ) आगिरस ॥ इन्द्र ॥ गायत्रो ॥

- २२३ अतीहि मन्युपाविणश्सुबुवाशसमुपेरय । अस्य रातौ सुवो पिय ॥ १ ॥ (ऋ. ८।२।२१)  
 २२४ कदु प्रचेतसे महे चर्षो देवाय शस्यते । तदिध्यस्य वर्धनम् ॥ २ ॥  
 २२५ उक्थं च न शस्यमानं नाभो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥ (ऋ ८।२।१४)  
 २२६ इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्टो वाजानां च वाजपतिः । हरिर्वास्तुतानां श्लथा ॥ ४ ॥

[ २२० ] ( सु-कृत् मित्रा-वरुणा ) उत्तम कर्म करनेवाले मित्र और वरुण ( न. ग-व्यूतिं ) हमारे गौ-समूहकी ( घृते आ उक्षत ) घीसे अथवा घी उत्पन्न करनेवाले ब्रूषते भरपूर करे, अर्थात् हमें बहुतसा ब्रूष देनेवाली गर्भ दे, ( रजांसि ) छोकोको ( मध्वा ) मधुर रससे सिंचित करे ॥ ७ ॥

[ २२१ ] ( त्ये सूनुव गिरः ) तेरे पुत्र मत्त राजन्ता करते हुए ( यजेयु ) धर्म ( काष्ठा उ उदु अतले ) विश्वामित्रे ष्वालाओंके समान फैलते हैं इस कारण ( वाश्रा. ) रमाती हुई गायोंको ( अभिजु यातवे ) घृत्नेतक भरे पानीमें जाना पड़ता है ॥ ८ ॥

[ २२२ ] ( विष्णु ) व्यापक ईश्वरने ( इव विचक्रमे ) इस विचरमें ऐसा पराक्रम किया है, कि यहाँ ( श्रेधा पद निदधे ) तीन प्रकारसे अपने पैरोंको इतने रखा है । ( अस्य पाशुले ) इसके घुलते भरे एक कदमके स्थानमें सब जगत् ( समूढ ) समा गया है ॥ ९ ॥

॥ यद्वा स्यादह्वां खड समात् हुआ ॥

[ १२ ] द्वादश खण्ड ।

[ २२३ ] हे इन्द्र ! ( मन्यु-पाविण ) कोषित होकर सोमरसोंकी निकालनेवाले यज्ञमानको ( अतीहि ) छोड़ दे, ( सु-सुबुवाश उपेरय ) और उत्तम रीतिसे सोमरस निकालनेवालेके पास जा, और ( अस्य रातौ ) इसके धर्ममें ( सुव पिय ) सोमरस पी ॥ १ ॥

[ २२४ ] ( महे प्रचेतसे देवाय ) महान् सानी इन्द्र देवके लिए ( कदु यव शस्यते ) बुच्छता दिखाई देनेवाला हमारा शत्रु भी प्रशमित होता है, क्योंकि ( तदु इदु अस्थ चर्षेत् ) वे शत्रु इन्द्रके गुणोंका वर्णन करनेवाले ही हैं ॥ २ ॥

[ २२५ ] ( अ-गौ ) स्तुति न करनेवालेका ( अयि ) यान् इन्द्र ( शस्यमान उक्थं यन ) कहे जातवाले स्तोत्रोंको ( न आचिषेत् ) नहीं जलता है, वैसे बात नहीं, और ( गीयमान गायत्र न ) गाये जानेवाले गायत्र सामको नहीं सुनता, ऐसा भी नहीं, वह अवश्य जलता और सुनता है ॥ ३ ॥

[ २२६ ] ( वाजानां वाजपति ) बसवानोंमें भी सबसे अधिक बलवान् ( हरिवान् इन्द्र ) घोड़ोंको पाल इतने बाला इन्द्र ( उक्थेभिः मन्दिष्ट- ) स्तोत्रोंसे प्रभाव होकर ( सुशाना श्लथा ) सोमपत्त करनेवालोंका मित्र होता है ॥ ४ ॥

२२७ आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः । महा इव युवजानि ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।२।१९ )

२२८ कदा वसो स्तोत्रं हयते आ अव इमशा रुषद्वाः । दीधे सुतं वाताप्याय ॥ ६ ॥  
( ऋ. १०।१०५।१ )

२२९ ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिवा सोममृत्वृक्षरु । तवेदं सख्यमस्तृत्वम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।१५।५ )

२३० नयं घा ते अपि ससि स्तोतार इन्द्र गिर्वेणः । त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ८ ॥  
( ऋ. ८।३२।७ )

२३१ इन्द्र पृक्षु कासु चिक्मृणं तनुषु घेहि नः । सत्राजिदुष पौंस्प्यम् ॥ ९ ॥

२३२ एवा घसि वीरयुरा व शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१२।२८ )

इति ऋषीर्षो दशति ॥ ४ ॥ इन्द्राः सप्तः ॥ १२ ॥ [ स्व० १२ । उ० ना । घा० ३० । घी ॥ ]

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इत्येकस्मिन् समाप्तम् ॥

[ २२७ ] हे इन्द्र ! हमारे ( सुतं उप आ याहि ) सोमपत्रमें आ, ( वाजेभिः मा हृणीयथाः ) ब्रह्मरक्षि द्वारा दिए गए हविष्यात् पर वृष्टि भी मत डाल, ( युवजानिः महान् इव ) जवान स्त्री रहनेवाला तबका पुत्रव अपनी स्त्रीकी ओर जिस प्रकार गजर रहता है, उस प्रकार तू कर ॥ ५ ॥

[ २२८ ] हे ( वसो ) व्यापक इन्द्र ! ( स्तोत्रं हयते ) स्तोत्रोंकी सुननेकी इच्छा करनेवाले तुझे ( दीधि सुतं ) विशेष रूपसे निकाले गए सोमरसोंमें ( वाताप्याय इमशा ) जल मिलानेके लिए जैसे नहरें रोकेते हैं, उसी प्रकार ( कदा अवारुयत् वा ) तुझे कब रोके और तुझे धरना करे ॥ ६ ॥

[ २२९ ] हे इन्द्र ! ( ब्राह्मणात् राधसः ) ब्राह्मण पर्वोंकी बोलनेवालेके यज्ञ पात्रसे ( सोमं मृत्वृक्षरु यिवा ) सोमरसोंकी श्रुतुओंके अनुसार पी, क्योंकि ( तव इदं सख्यं ) तेरी यह मित्रता ( अस्तृत्वम् ) कभी न टूटनेवाली है ॥ ७ ॥  
१ तव सख्यं अस्तृत्वम्— तेरी मित्रता कभी टूटती नहीं है ।

[ २३० ] हे ( गिर्वेणः इन्द्र ) प्रशस्तीय इन्द्र ! ( ते ) तेरी ( नये घ ) हम ( स्तोतारः स्मसि ) स्तुति करनेवाले हैं, हे ( सोम-पाः ) सोम पीनेवाले इन्द्र ! ( त्वं नः जिन्व ) तू हमें सतृप्त कर ॥ ८ ॥

[ २३१ ] हे इन्द्र ! ( पृक्षु कासुचित् ) सम्बन्धमें आये हुए किहीं ( नः तनुषु ) हमारे अंगोंमें ( नु-मणं आघेहि ) बल स्थापन कर, हे ( उत्र ) वीर इन्द्र ! ( सत्रा-जित् पौंस्य ) तव शत्रुओंकी जितते हम एक साथ जीत सें और हमें स्थापित कर ॥ ९ ॥

१ पृक्षु नः तनुषु नृम्यं आघेहि— हमारे सम्बन्धियोंमें नेतृत्वके गुणों और बलोंके बढाने

२ सत्राजित् पौंस्यं आघेहि— तव शत्रुको एक साथ जितानेवाले बलको हमें दे ।

[ २३२ ] हे इन्द्र ! ( वीर-युः पव असि ) बलशाली शत्रुओंके साथ भी तू युद्ध करनेवाला है । ( हि ) क्योंकि तू ( शूरः उत स्थिरः ) शूर है और युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला है । इसलिए ( ते मनः ) तेरा मन ( राध्यं ) स्तुतिके योग्य है ॥ १० ॥

१ वीरयुः अस्ति— शत्रुओंके साथ तू युद्ध करनेवाला है, अथवा वीरोंकी सभुक्त करने उन्हें तू लाने-वाला है ।

२ शूरः उत स्थिरः अस्ति— तू शूरवीर और युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला है ।

३ ते मनः राध्यं— तेरा मन स्तुति और पूजाने योग्य है ।

॥ यहाँ धारद्वयों खंड समाप्त हुआ ॥



अथ तृतीयोऽध्यायः ।

[ ५ ]

( १-१० ) १, ६, ९ वसिष्ठो मंत्रायवृत्तिः, २ भरद्वाजः ( ऋ० शयु ) बाहुस्पत्यः, ३ प्रत्यग्व्य काण्व, ४ नोपा गीतमः  
५ कृत्विः प्रामाय, ६ वेधातिवि काण्व, ८ गार्गी प्रामाय, १० प्रमायो घोरः काण्व ॥ इन्द्र, ९ मरत ॥ वृहती ॥

२३३ अग्निं त्वा शूर नोनुमाऽदुग्धा इव धेनवः ।

ईशानमस्य जगतः स्वदेशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥ ( ऋ ७३२।२२ )

२३४ त्वामिद्धि इवामहे सातो वाजस्य कारवः ।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्षतः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।४६।१ )

२३५ अग्निं प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्चं यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मधया पुरुवसुः सहस्रेणैव शिक्षति ॥ ३ ॥ ( ऋ ८।४९।१ )

२३६ तं वा दसमृतीपह वसोमन्दानमन्धसः ।

अग्निं वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्र गीभिर्नवामहे ॥ ४ ॥ ( ऋ ८।८८।१ )

[ १३ ] अथोदशः खण्डः ।

[ २३३ ] हे ( शूर इन्द्र ) शूर इन्द्र ! ( अस्य जगतः तस्थुषः, ईशानं ) इत जगम और त्यावर जगत्के स्वामी तथा ( स्वर-हटां त्वा ) शयोको देखनेवाले तुझे हम ( अ-दुग्धाः धेनवः इव ) दूध न डूरी हुई गाँवोंके सभाम ( अग्निं नोनुमः ) प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

१ अस्य जगतः तस्थुषः ईशानं स्वदेवं त्वा अभिनोनुमः— इत चलनेवाले और स्थिर जगत्का प्र स्वामी हैं, तू सनीको देखनेवाला है, तुझे हम नमस्कार करते हैं ।

[ २३४ ] ( कारवः ) स्तुति करनेवाले हम ( वाजस्य सातो ) सभका धान होनेके समय हे इन्द्र ! ( त्वां इव हि इवामहे ) तुझे ही बूलाते हैं ( सत्पतिं ) सज्जनोंके पालन करनेवाले तुझे ( नरः वृत्रेषु ह्यन्ते ) सब मनुष्य पुत्रके साथ होनेवाले युद्धमें सहायताके लिए मुलाते हैं, उसी प्रकार ( अर्घतः ) घोटोंके कारण होनेवाले ( काष्ठासु ) युद्धोंमें भी तुझें ही सहायताके लिए मुलाते हैं ॥ २ ॥

१ सत्पतिं त्वा नरः वृत्रेषु ह्यन्ते— सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाले तुझे लोभ युद्धोंमें भवदके लिए मुलाते हैं ।

२ वाष्ठासु त्वा ह्यन्ते— अन्य युद्धोंमें भी तुझे ही मुलाते हैं ।

[ २३५ ] ( वः पुरु-वसुः मधया ) जो बहुतसा धन अपने पास रखनेवाला इन्द्र ( जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति ) स्तुति करनेवाले हमारे लिए हजारों प्रकारसे धन देता है, ( यथा-विदे ) जैसे जैसे तुम जानते हो, उस प्रकार हे यज्ञ करनेवाले ! ( वः ) तुम ( सु-पुधसं इन्द्रं ) उत्तम धन देनेवाले इन्द्रकी ( अग्निं अर्चं ) पूजा करो ॥ ३ ॥

१ पुरुवसुः मधया सहस्रेण शिक्षति— बहुत धनवाला वह इन्द्र हजारों प्रकारसे धन देता है ।

[ २३६ ] हे पनमानो ! ( दसम-पह ) दवावट पंदा करनेवाले दानुकी मारनेवाले ( वसो ) अन्धसः अन्धानं ) सबको जीवन देनेवाले सोमरस रूपी अन्नको पीकर आनन्दित होनेवाले ( वः ) तुम्हारे पूज्य इन्द्रकी ( स्वसरेषु ) गौमालमें ( धेनवः धरं न ) गाँव जैसे मछरोंके पास जाते हैं, उसी प्रकार ( गीभिः अभिनवामहे ) स्तुति करते हुए हम प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

१ अतीपहं गीभिः अग्निं नवामहे— बाधा करनेवाले दानुकीको मारनेवाले इन्द्रको हम नमस्कार करते हैं ।

- २३७ <sup>१३</sup> तरोभिर्वो <sup>३१२३१२</sup> विदद्भुसुमिन्द्रं <sup>३१२</sup> उत्तये ।  
<sup>३१</sup> बृहद्गायन्तः <sup>३१३</sup> सुतसोमे <sup>३२</sup> अध्वरे <sup>३३</sup> हुवे <sup>३४</sup> भरं <sup>३५</sup> न कारिणम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।६६।१ )
- २३८ <sup>३१</sup> तरणिरिस्त्रिषासति <sup>३२</sup> वाजं <sup>३३</sup> पुरन्ध्या <sup>३४</sup> युजा ।  
<sup>३५</sup> आ व इन्द्रं <sup>३६</sup> पुरुहूतं <sup>३७</sup> नमे <sup>३८</sup> गिरा <sup>३९</sup> नैमि <sup>४०</sup> तष्टेव <sup>४१</sup> सुद्रुवम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।३२।२० )
- २३९ <sup>१३</sup> पिषा <sup>३४</sup> सुतस्य <sup>३५</sup> रसिनो <sup>३६</sup> मत्स्वा <sup>३७</sup> न इन्द्रं <sup>३८</sup> गोमतः ।  
<sup>३९</sup> आपिनो <sup>४०</sup> वोधि <sup>४१</sup> सधमाद्ये <sup>४२</sup> वृधेरेऽस्मात् <sup>४३</sup> अवन्तु <sup>४४</sup> ते धियः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।३।१ )
- २४० <sup>३४</sup> स्वश्चोहि <sup>३५</sup> चेरवे <sup>३६</sup> विदा <sup>३७</sup> भगं <sup>३८</sup> वसुत्तये ।  
<sup>३९</sup> उद्गावृषवस्व <sup>४०</sup> मघयन् <sup>४१</sup> गाविष्टय <sup>४२</sup> उदिन्द्राद्यभिष्टये ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६६।७ )

[ २३७ ] हे ऋत्विगो ! ( घः ) तुम ( तरोभिः ) तेज बौद्धनेवाले घोडोसे युक्त ( विदद्भु वसुं ) धनवान् ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( स्व-याद्यः ) राक्षसों ( उत्तये ) सरक्षणके लिए ( बृहत् गायन्तः ) बृहत् ताम पाते हुए पूजा करो, में भी ( सुत-सोमे अध्वरे ) सोम यज्ञमें ( भरं कारिणं न ) भरपूर पोषण करनेवाले इन्द्रकी ( हुवे ) बुलता हूँ ॥ ५ ॥

१ विदद्भुसुं इन्द्रं उत्तये बृहत् गायन्तः हुवे— धनवान इन्द्रकी अपने सरक्षणके लिए बृहत् तामका गान करते हुए सहायताके लिए हम बुलते हैं ।

[ २३८ ] ( तरणिः इत् ) युद्धोंमें तारनेवाला वीर ( युजा पुरन्ध्या ) उत्तम बुद्धिसे जैते ( वाजं त्रिषासति ) नाम प्राप्त करना चाहता है, और ( सुद्रुधं नैमि ) उत्तम लकड़ीकी धुराकरे ( स्वष्टा इव ) जैसे बड़ई ठीक करता है, उसी तरह ( पुट-हृतं ) अनेकोंके द्वारा प्रजित होनेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( गिरा घः आ नमे ) पाणोसे गणत्कार करके अपने अनुकूल बनाते हैं ॥ ६ ॥

[ २३९ ] हे इन्द्र ! ( रसिनः गोमतः ) रसवाले तथा मीठुप्यते मिश्रित द्रव्य ( नः सुतस्य पित्र ) हमारे द्वारा निचोडे गए सोमरसोंकी पी, और ( मत्स्व ) आनन्दित हो, ( सधमाद्ये ) एक साथ बँटकर जितमें आनन्दित होने हैं, ऐसे द्रव्य यज्ञमें ( आपिः ) तू हमारा भाई होता है, इसलिए ( नः वृधे वोधि ) हमारे उत्पत्तिके मार्गको दिखा, ( ते धियः अवन्तु ) तेरी बुद्धि हम सजोका सरक्षण करे ॥ ७ ॥

१ सधमाद्ये आपिः नः वृधे वोधि— एकत्र बँटकर जहाँ कर्म किया जाता है, उस काममें तू हमारा मित्र हो, वीर हमारी उत्पत्तिके मार्ग हमें बता ।

२ ते धियः अवन्तु— तेरी बुद्धि हमारा सरक्षण करे ।

[ २४० ] हे इन्द्र ! ( हि त्वं ) निश्चयसे तू ( वसुत्तये पदि ) पत्र देनेके लिए जा, और आकर ( चेरवे ) उत्तम आचरण करनेवाले मुझे ( भगं विदाः ) पत्र दे, हे ( मघयन् ) धनवान् इन्द्र ! ( गाविष्टये उत्तं धावृषवस्व ) गायोंकी इष्टय करनेवाले भूतों काय दे, हे इन्द्र ! ( इष्टये ) इच्छा करनेवाले मुझे ( अर्भ्य उत्तं ) गोत्र भी दे ॥ ८ ॥

१ त्वं वसुत्तये पदि— तू पत्र देनेके लिए जा ।

२ चेरवे भगं विदाः— उत्तम आचरण करनेवाले मनुष्योंको पत्र दे ।

२४१ न हि वधरमं च न वसिष्ठः परिमंस्सते ।  
<sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००</sup>  
 असाकमध मरुतः सुते सचा विश्वे पिपन्तु कामिनः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ७१९१९ )

२४२ मा चिदन्वधि शंसत सखायो मा रिपण्यत ।  
 इन्द्रमितस्तोता वृषणसचा सुते मुहुर्कथा च शंसत ॥ १० ॥ ( ऋ. ८१११ )

इति पञ्चमी वसति. ॥ ५ ॥ प्रथम लण्ड ॥ १ ॥ [ स्व० १२ । उ० ५ । पा० ७३ । ( त्रि ) ॥ ]  
 इति तृतीय प्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १-१० ) १ पुरुहमा आधिरसः; २, ३ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी; ४ विश्वामिधो माधिनः; ५ मोतमो ( मोतमो वा ) राहूगणः; ६ नमेधयुरुमेध्यावाधिरसो; ७, ८, ९ मेधातिथिभेध्यातिथिर्वा ( ऋ० मेध्यातिथि ) काण्वः; १० देवातिथी काण्व ॥ इन्द्रः ॥ वृहती ॥

२४३ नकिष्ट क्रमणा नशद्यधकार सदावधम् ।  
 इन्द्रं न यमैर्विश्वसते मूम्बसमवृष्टं धृष्णुमोजसा ॥ १ ॥ ( ऋ. ८१००११ )

२४४ य ऋते चिदमिधिपः पुरा जनुम्य आतृदः ।  
 सन्धाता सन्धि मघवा पुरूबसुनिष्कतो विद्भुतं पुनः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८१११११ )

[ २४१ ] हे ( मरुतः ) मरुतो ! ( वसिष्ठः घः ) वसिष्ठ ऋषि तुममेते ( चरमं चम ) छोटेको भी ( नहि परिमंस्सते ) छोड़कर स्तुति नहीं करता, अपितु सभीको स्तुति करता है, ( अथ ) आज ( अस्माकं सुते ) हमारे यज्ञमें ( विश्वे मरुतः ) सब मरुत ( सचा ) एक स्थानपर बैठकर सोमरस ( पिपन्तु ) पीयें ॥ ९ ॥

[ २४२ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( अन्वत् मा चित् विशंसत ) इन्द्रके सिवाय और किसीकी स्तुति न करो, ( मा रिपण्यत ) बेकार परिश्रम मत करो, ( सुते ) सोम यज्ञमें ( वृषणं इन्द्रं इत् ) बलवान् इन्द्रकी हो ( सचा स्तोत ) एक साथ बैठकर स्तुति करो, ( उफया च ) और स्तोत्रोंकी ( मुहुः शंसत ) बार बार कहो ॥ १० ॥

१ सचा स्तोत—एक जगह बैठकर स्तुति करो ।  
 ॥ यहाँ तेरेयहाँ खंड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] 'चतुर्दशः खण्डः'

[ २४३ ] ( यः ) जो यजमान ( सदा-मूर्धे ) सदा वृद्धिको प्राप्त होनेवाले ( विश्व-यज्ञं ) सभीसे प्रशंसित होनेवाले ( ऋध्वसं ) महान् ( ओजसा वाधुष्टं ) धरुके कारण जिससे न बलनेवाले ( धृष्णुं ) धातुको बलानेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रको मं ( यमैः न चकार ) मरुते अपना अनुकूल बनाता है । ( तं ) उस यजमानकी ( परमेषा न विः नशात् ) बर्तनी कोई रवा नहीं करता ॥ १ ॥

म—समान, अनुकूल, नहीं ।

[ २४४ ] ( यः ) जो इन्द्र ( अग्नि-धिपः ) जोइन्द्रके नायकीके ( ऋते चित् ) बिना भी ( जनुम्यः आतृदः ) गलेकी स्थापनासे रक्त निरगनेपर भी ( पुरा सन्धि सन्धाता ) फिर संधियोंको जोड़ देता है, वह ( मघवा पुरवण्यं ) यजमान और बहुरते इन्द्रोंको धाममें रखनेवाला इन्द्र ( चिन्धुतं पुनः निष्कतो ) बड़े हुए भागोंको फिर जोड़ देता है ॥ २ ॥

१ पुरा सन्धि सन्धाता— फिर संधियोंको जोड़ता है ।  
 २ चिन्धुतं पुनः निष्कतो— बड़े हुए भागोंको जोड़ता है ।

- २४५ आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथं हिरण्यये ।  
ब्रह्मयुजा हरय इन्द्रं फेतिशो वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१।२४ )
- २४६ आ मन्द्रैरिन्द्रं हरिभिर्वाहि मयूररोमभिः ।  
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव तांश्दहि ॥ ४ ॥ ( ऋ. ३।४५।१ )
- २४७ त्वमङ्ग प्र शशसिषो देवः श्विष्ट मर्त्यम् ।  
न त्वदन्यो मधवन्नस्ति मर्दितेन्द्रं प्रवीमि ते वचः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८४।१२ )
- २४८ त्वमिन्द्र यशा अस्यजीषी श्वसस्पतिः ।  
त्वं वृत्राणि हृत्स्वप्रवीन्त्येक इत्पूर्वतुत्तर्षणीधृतिः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।९।०।५ )
- २४९ इन्द्रमिदेषतातये इन्द्रं प्रयत्यधरे ।  
इन्द्रश्सभीके वनिनो हवामह इन्द्रं घनस्य सातये ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।३।५ )

[ २४५ ] हे इन्द्र ! ( ब्रह्म-युजाः फेतिशः ) मय बोलते ही जुड़ जानेवाले, अर्थात् वालोंवाले ( हिरण्यये रथे ) सोनेके रथमें ( युक्ताः ) जुड़े हुए ( आ सहस्रं शतं ) सैकड़ों और हजारों ( हरयः ) घोड़े ( त्वा ) तुम ( सोमपीतये ) सोम पीनेके लिए ( आवहन्तु ) ले आवे ॥ ३ ॥

शतं सहस्रं हरयः— सैकड़ों और हजारों घोड़े, किरण ।

[ २४६ ] हे इन्द्र ! ( मन्द्रैः ) आनन्ददायक ( मयूर-रोमभिः ) मोरके समान बेशीसे युक्त ( हरिभिः ) घोड़ोंसे पाशों जैसे ( धन्या इव ) देगितालको पार कर जाता है, उसी प्रकार ( तां अति वायाहि ) बीचमें आनेवाली रक्षावर्तोंको हट करके हुए आ, ( इत् ) और ( पाशिनः न ) हावमें जालकी केकर शिकारों जैसे पक्षियोंको पकड़ता है, उस प्रकार ( त्वा मा तियेसुः ) तुमसे पकड़कर तेरे बीचमें कोई रक्षावट बंधा न करे, ( पश्चि ) तू आ ॥ ४ ॥

[ २४७ ] ( अङ्ग श्विष्ट ) हे त्रिय और बलवान् इन्द्र ! ( देवः ) प्रकाशित होनेवाला तू ( मर्त्यं प्रशसिष्यः ) उपासक मनुष्योंकी प्रशंसा करता है, हे ( मधवन् इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( त्वदन्यः ) तेरे सिवाय दूसरा कोई भी ( मर्दिता नास्ति ) मुझ देनेवाला नहीं है, तेरे लिए ही ( वचः प्रवीमि ) ये सुलिया करता हू ॥ ५ ॥

१ त्वद् अन्यः मर्दिता नास्ति— तेरे अलावा और कोई मुझ देनेवाला नहीं है ।

[ २४८ ] ( इन्द्र ) हे इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( श्वसः पतिः ) बलवान् ( ऋजीषी ) सोमरस पीनेवाला वीर ( यशाः ) यशास्वी ( मतिः ) है, तू ( अ-प्रतीति पुर वृत्राणि ) अत्यधिक बलशाली बहुतसे मित्रोंकी ( अनुसः ) किसीकी प्रेरणाके बिना ही ( चर्षणी-धृतिः ) लोगोंके सरसणके लिए ( एकः इत् ) अकेले ही ( हंसि ) मारता है ॥ ६ ॥

१ अप्रतीति पुर वृत्राणि अनुसः, चर्षणी-धृतिः एक इत् हंसि— पीछे न हटनेवाले बहुतसे शत्रुओंको हूतरे बिलोकी प्रेरणाके बिना, सब मनुष्योंके हित करनेके लिए अकेले ही मार देता है ।

[ २४९ ] ( देवतातये ) देवोंके लिए लिए गए यज्ञमें ( इन्द्रं इत् हवामहे ) इन्द्रको ही हम बुलाते हैं, ( प्रयते अधरे इन्द्रं ) यज्ञके प्राग्भ हो जानेपर इन्द्रको ही बुलाते हैं ( समीपे वनिनः इन्द्रं ) यज्ञके सामान्य हो जानेपर भी हम उपासक इन्द्रको बुलाते हैं, उसी प्रकार ( घनस्य सातये इन्द्रं ) घनकी प्राप्तिके लिए भी इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ७ ॥

- २५० हमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।  
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तेभिरनूपत ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।३।९ )
- २५१ उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।  
सत्राजितो धनसा अक्षितोऽयो वाजयन्तो रथा इव ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।३।९ )
- २५२ यथा गौरौ अपा कृतं तुष्यन्त्येत्पवेरिणम् ।  
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिय ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।३।९ )  
इति षष्ठी श्वातिः ॥ ६ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [ खण्ड ११।२० ७। पा० ७२। (शा) ॥ ]  
[ ७ ]
- ( १-१० ) १ भर्गः प्रागायः; २, ८ देवः काश्यपः; ३ जमदग्निर्भर्षवः; ४, ९ मेधातिथिः काण्वः; ( ऋ० वेष्वा-  
तिथिः काण्वः ); ५, ६ नृमेघपुष्टमेवावागिरसी; ७ वसिष्ठो मेधावक्त्रिः; १० भरद्वाजः ( ऋ० घादु ) बाह-  
स्पत्यः ॥ इन्द्रः; ३ मित्रावरुणावित्याः ॥ बृहती ॥
- २५३ श्वघृशेषु द्राघीपते इन्द्र विश्वाभिरुतिभिः ।  
भर्गो न हि त्वा यशसं वसुविदमसु शूर चरामसि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।१६ )
- २५४ या इन्द्र भुज आभरः स्वयाँऽअसुरेभ्यः ।  
स्तोतारिभिमघवन्नस्य वर्धये ये च स्वे वृक्तवर्हिणः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९।७ )

[ २५० ] हे ( पुरू-वसो ) बृहत् धनवान् इन्द्र ! ( मम हमाः याः गिरः ) मेरी ये जो स्तुतियाँ हैं, ये ( त्वा ) वर्धन्तु ) तेरे यहाँको बढ़ावे, ( पावक-वर्णाः ) अग्निके समान तेजस्वी ( शुचयः विपश्चितः ) पवित्र विद्वान् लोग तेरे ( स्तोमैः अभ्यनूपत ) स्तोत्रोंके स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

[ २५१ ] ( सत्रा-जितः ) सदा नानुभोको जीतनेवाले ( धन-सा ) धन देनेवाले ( अक्षित-ऊतयः ) शीघ्र न होनेवाले शरणाधीन करनेवाले, ( वाजयन्तः ) बलवान् ( रथाः इव ) रथके समान ( त्ये मधुमत्तमाः गिरः ) उन बृहत् उत्तम स्तुति और ( स्तोमासः ) स्तोत्रोंको ( उदु ईरते ) बोलो जाता हूँ ॥ ९ ॥

[ २५२ ] ( यथा गौरः ) जैसे घोर मूग ( तुष्यन् ) प्यासा होकर ( अपा कृतं इरिणं ) पानीके भरे हुए काल-बने पास ( अर्पति ) आना है, उसी प्रकार ( आपित्वे प्रपित्वे ) भाई कारेको पाव करने के हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः सुपं आगहि ) हमारे पास जल्दी आ, और ( कण्वेषु सचा सु पिय ) कण्वके यतमें बँटकर उत्तम रीतिसे सोम भी ॥ १० ॥

॥ यहाँ स्यादहवां पंड समस्त हुआ ॥

[ १५ ] पञ्चदशः खण्डः ।

[ २५३ ] हे ( द्राघीपते शूर इन्द्र ) शक्ति तान्त्र शूर इन्द्र ! ( विश्वाभिः ऊतिभिः ) सब संरक्षणके तापनोंके साथ ( शक्ति ) शक्ति कर हूँ वे, ( भर्गो न ) ऐश्वर्यवान्के समान ( यशसं ) यशस्वी और ( घसु-विदं ) धन देने-वाले ( त्वा ) तेरी ( अनुचरामसि ) आराधना हम करते हैं ॥ १ ॥

[ २५४ ] हे इन्द्र ! ( स्वयाँ ) आत्म शक्तिसे भुज मू ( याः भुजः ) जो भोग ( असुरेभ्यः भाभरः ) असुरोंके से भाव है, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( अस्य ) इस यतके ( स्तोतारि वर्धये ) तेरी स्तुति करनेवालोंका संरक्षण कर, ( च ) और ( ये त्ये वृक्त-वर्हिणः ) जो तेरे लिए यतमें आनाको संभालते हैं, उनको बचा ॥ २ ॥

- २५५ प्र मित्राय प्रार्थम्णे सचध्यमृतावसो ।  
चरुध्यैश्चरुणं लुन्ध्यं वचः स्तोत्रं श्राजसु गायत ॥ ३ ॥ (श्र. ८।१०।१५)
- २५६ अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।  
समीचीनास ऋभवः समस्वरज्जुद्रा गृणन्त पूर्यम् ॥ ४ ॥ (श्र. ८।१।७)
- २५७ प्र व इन्द्राय वृहते मरुतो ब्रह्माचत ।  
वृत्रं हन्ति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ५ ॥ (श्र. ८।८९।३)
- २५८ बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।  
येन ज्योतिरज्जनयन्नृतावुषो देवं देवाय जागृवि ॥ ६ ॥ (श्र. ८।८९।१)
- २५९ इन्द्रं क्रतुं न आ भर पिता पुत्रभ्यो यथा ।  
शिक्षा णो असिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरश्रीमहि ॥ ७ ॥ (श्र. ७।३१।२६)

१ स्वर्वाङ्गं याम् भुजः असुरेभ्यः आभरः, अस्थ स्तोत्रार्थं वर्धय— अपनी शक्तिते पुत्र रहनेवाला तू जो धन अगुर्वीते ले आया है, उस धनको सहायतासे उपासकोंको बढ़ा ।

[ २५५ ] हे ( मित्रा-वसो ) पहले के लिए अपने पास धन रखनेवाले यज्ञ करनेवाले ! ( मित्राय ) मित्रके लिए ( अर्धम्णे ) अर्धमके लिए और ( चरुध्यै वरुणो ) यज्ञ शालामें बंधे हुए वरुणके लिए ( सचध्यं लुन्ध्यं वचः ) पानेके योग्य, छन्दोबद्ध स्तोत्रोंको ( श्राजसु प्रगायत ) उनके विराजमान होजानेके बाद गाओ ॥ ३ ॥

[ २५६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( आयवः ) शक्तिरूप धन ( पूर्व-पीतये ) सबसे पहले तोम पीनेके लिए ( स्तोमेभिः रवां अभि ) स्तोमोंसे तेरी स्तुति करने हे, ( समीचीनासः ऋभवः ) एकत्रित हुए ऋषियोंके ( समस्वरज्जुः ) तेरी स्तुति की, ( रज्जुः ) छत्रके पुत्र मरुतोंमें भी ( पूर्यं गृणन्त ) पहलेके पुत्रोंके समान तेरी स्तुति की ॥ ४ ॥

[ २५७ ] हे ( मरुतः ) मरुतो ! ( वृहते ) महान् इन्द्रके लिए ( वः ) तुम ( ब्रह्माचत ) स्तोत्रोंको कहो, उसके अनन्तर ( वृत्र-हा ) वृत्रका नाश करनेवाला ( शत-क्रतुः ) संकड़ों काम करनेवाला ( शत-पर्वणा वज्रेण ) संकड़ों धाराओंवाले वज्रसे ( वृत्रं हन्ति ) वृत्रको मारता है ॥ ५ ॥

१ मरुतः— मरुत् गण, स्तुति करनेवाले, यज्ञ करनेवाले ।

२ वृत्रहा शतक्रतुः शतपर्वणा वज्रेण वृत्रं हन्ति— वृत्रको मारनेवाला तथा संकड़ों काम करनेवाला इन्द्र संकड़ों धारावाले वज्रसे वृत्रको मारता है ।

[ २५८ ] हे ( मरुतः ) यज्ञ कर्त्ताओ ! ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( वृत्र-हन्तम् वृहत् गायत ) वृत्रको नष्ट करनेवाले बृहत् नामक सामका गान करो, ( भ्रता-वृधः ) पहलेके बढ़ानेवाले लोगोंके ( देवाय ) इन्द्र देवके लिए ( देवं जागृवि ज्योतिः ) दिव्य जागृतिके करनेवाली सूर्यकी ज्योति ( येन अज्जनयत् ) उसकी सहायतासे उत्पन्न की है ॥ ६ ॥

[ २५९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः क्रतुं आभर ) हमें यज्ञ काम करनेका नाम दे, ( यथा पिता पुत्रेभ्यः ) जिस प्रकार पिता पुत्रको शिक्षा देता है, उसी प्रकार ( नः शिक्ष ) हमें शिक्षा दे, हे ( पुर-हूत ) बहुतेद्वारा युद्धमें जानेवाले इन्द्र ! ( यामनि ) यज्ञमें ( जीवाः ) हम लोग ( ज्योतिः अश्रीमहि ) सूर्यकी ज्योति प्रतिदिन देखें ॥ ७ ॥

१ नः क्रतुं आभर— हमें सुबुद्धि दे, उत्तम काम करनेकी बुद्धि दे ।

२ यथा पुत्रेभ्यः पिता, नः शिक्ष— जैसे पिता लड़कोंको शिक्षा देता है, उस प्रकार तू हमें शिक्षा दे ।

३ यामनि जीवाः ज्योतिः अश्रीमहि— यज्ञमें जीवित रहकर हम तेज प्राप्त करें ।

- २६० मा न इन्द्र परा वृणमवा नः सधमाद्ये ।  
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परावृणक् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१७।७ )
- २६१ वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तवर्हिषः ।  
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।१३।१ )
- २६२ यदिन्द्र नाहुपीष्वा ओजां नृम्यं च कृष्टिषु ।  
यदा पञ्चक्षितीनां द्युम्ना मर सत्रा विश्वानि पौंस्र्या ॥ १० ॥ ( ऋ. ६।४६।० )  
इति सप्तमी दशति ॥ ७ ॥ तृतीय लण्ड ॥ ३ ॥ [ स्व० १० । उ० १ । पा० ६२ । ( पा० ) ॥ ]

[ &lt; ]

( १-१० ) १ मेघातिथिः ( ऋ० मेघातिथिः ) काण्ड ; २ देव काश्यपः ; ३ वसन् ( ऋ० वशोऽश्व ) ;  
४ भरद्वाज ( अथ ) बार्हस्पत्य ; ५ नृमेघ आगिरस , ६ पुरहन्ता आगिरस ; ७ नृमेघ-पुरमेघागिरसी,  
८ पत्तिष्ठो वैत्रावणि , ९ मेघातिथि-मेघातिथि काण्वी , १० कलि प्रापाय ॥ इन्द्र ॥ बृहती ॥

- २६३ सत्यमितथा वृषदसि वृषज्जतिर्नोऽविता ।  
वृषा सुप्र शृण्विषं परावति वृषा अर्वावति श्रुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१३।१० )

[ २६० ] हे इन्द्र ! ( नः मा परावृणक् ) हमें दूर मत कर, ( नः सधमाद्ये भव ) हमारे यज्ञमें भा, हे इन्द्र !  
( त्वं नः ऊती ) तू हमारा रक्षक है, ( त्वं इत् नः आप्यं ) तू ही हमारा भाई है, हे इन्द्र ! ( नः मा परावृणक् )  
हमें दूर मत कर ॥ ८ ॥

- १ हे इन्द्र ! नः मा परा वृणक्— हे इन्द्र ! तू हमें दूर मत कर ।  
२ नः सधमाद्ये भव— हमारे यज्ञमें भा और सबके साथ बैठ ।  
३ त्वं नः ऊती— तू हमारी रक्षा करनेवाला है ।  
४ त्वं नः आप्यं— तू हमारा भाई है ।

[ २६१ ] हे ( वृत्रहन् ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! ( त्वा ) तुझे ( वयं घ सुतावन्तः ) सोमरस संव्यार करनेवाले हम सोमवज्रने ( आपः न ) जल प्रवाहीके समान प्राप्त होते हैं, ( पवित्रस्य प्रस्रवणेषु ) पवित्र यज्ञोंमें ( वृक्त-वर्हिष-स्तोतार- ) आसन फँलाकर स्तुति करनेवाले ( परि आसते ) एकत्र बैठते हैं, उसी प्रकार हम बैठते हैं ॥ ९ ॥

[ २६२ ] हे इन्द्र ! ( नाहुपीषु कृष्टिषु ) मानवी प्रजाओंमें ( ओजः नृम्यं च ) जो बल और पौष्ट्य है, ( यद् या ) भयवा जो ( पञ्चक्षितीनां द्युम्नं ) पाच जनोंमें जो धन है, उस प्रकारके धन ( आ भर ) हमें भरपूर दे, उसी प्रकार ( सत्रा ) एकतासे बचनेवाला ( विश्वानि पौंस्र्या ) सब बल हमें दे ॥ १० ॥

- १ पञ्चक्षितीनां द्युम्नं आभर— पञ्चजनोंकी एकतासे उत्पन्न होनेवाले तेज हमें प्राप्त हों ।  
२ सत्रा विश्वानि पौंस्र्या आभर— एकतासे उत्पन्न होनेवाले सब बल हमें प्राप्त हों ।

॥ यदा पंद्रहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १६ ] पौंडराः खण्डः ।

[ २६३ ] हे ( उग्र ) नीर इन्द्र ! तू ( इत्या ) इस प्रकार ( सत्यं वृषा इत् अस्ति ) निश्चयसे बलवान् है, ( वृष-जति नः अविता ) सोमयज्ञ करनेवालों द्वारा रक्षके लिए बलानेके कारण तू हमारा रक्षक कर । तू ( वृषा दि शृण्विषे ) बलवान् सुना जाता है, ( परावति वृषा ) दूर देशमें भी तू बलवान् है और ( अर्वावति श्रुतः ) पातमें भी तू ही बलवान् सुना जाता है ॥ १ ॥

- २६४ यच्छक्रासि परावति यदवावति वृत्रहन् ।  
अतस्त्वा गीर्भियुगादिन्द्रं केशिभिः सुतावाश्वा विवासति ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९७।४)
- २६५ आभि वो वीरमन्वसो मदेपु गाय गिरा महा विचेतसम् ।  
इन्द्रं नाम श्रुत्यश्वाकिनं वचो यथा ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।४६।४)
- २६६ इन्द्रं त्रिधातु शरणं त्रिवरुथश्स्वस्तये ।  
छर्दिष्यच्छ मघवद्भयथ महं च यावया दिद्युमैर्यः ॥ ४ ॥ (ऋ. ६।४६।९)
- २६७ श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।  
यसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९९।३)

१ घृष्या— बलवान्, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला,

२ घृष्या शृण्विये— तू बलवान् प्रसिद्ध है ।

३ परावति अर्वावति घृष्या श्रुतः— तू दूर और पासके देशोंमें शक्तिमान् प्रसिद्ध है ।

[ २६४ ] हे (शक्र) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! (यत् परावति अस्ति) जब तू दूर देशमें रहता है, और हे (वृत्र-हन्) पुत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (यत् अर्वावति) जब तू पासके देशमें रहता है, हे इन्द्र ! (अतः) इस स्थानसे (केशिभिः गीर्भिः) अश्वाल बलके पीठके समान क्षीप्रगामो स्तुतिबलि (सुतावान्) सोमपथा करनेवाला (त्वा विवासति) तुझे घृष्याता है ॥ २ ॥

१ शक्र ! परावति अस्ति, अर्वावति अस्ति— हे इन्द्र ! जैसा तू दूर है, वैसा ही तू पास भी शक्तिमान् है ।

२ अश्वाल— गर्वनेके शाल ।

[ २६५ ] हे उद्गाता ! (घः) तुम अपने हितके लिए (अग्धस्तः मदेपु) सोमरसके आनन्दमें (घीरे नाम) स्वयं घोर रहते हुए शत्रुको मुकनेवाले (विचेतसं श्रुत्यं) ज्ञानी और सुप्रसिद्ध (शाकिनं इन्द्रं) इन्द्रकी शक्तिशाली (महा गिरा यचः यथा) विजय स्तुतिके स्तोत्रोंको जैसे ही बंते (गाय) गाओ ॥ ३ ॥

[ २६६ ] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्रि-धातु त्रिवरुथं) तीन मजिष्ठवाला तथा तीनों ऋतुओंमें सुख देनेवाला (स्वस्तये छर्दिः शरणं) सुखसे रहने योग्य उत्तम घर (मघवद्भयः) भयवान् यजमानकी (महं च) और मुझे भी दे (पृथ्यः दिद्युं यावय) और इनसे शत्रुओंको दूर कर ॥ ४ ॥

१ त्रि-धातु त्रिवरुथं छर्दिः शरणं स्वस्तये— तीन मजिष्ठवाले और तीनों ऋतुओंमें सुख देनेवाले घर रहनेके लिए प्राप्त हो ।

[ २६७ ] (सूर्यं श्रायन्तः इव) जिस प्रकार किरणें सूर्यका आश्रय लेकर रहती हैं, उसी प्रकार (विश्वं इत्) सब जगत् (इन्द्रस्य भक्षत) इन्द्रके ही आश्रयसे रहता है क्योंकि यह इन्द्र (जातः जनिमानि) उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवालोंको (ओजसा करोति) बलसे भाग देता है जैसे पुत्रको अपने (भागं न) पिताके घनमेंसे भाग प्राप्त होता है, उस प्रकार (प्रति दीधिमः) हम अपने भागकी इच्छा करते हैं ॥ ५ ॥

१ विश्वं इन्द्रस्य भक्षत— सब जगत् इन्द्रके आश्रयसे रहता है ।

२ जातः जनिमानि ओजसा करोति— उत्पन्न हुए और होनेवाले सबको यह अपने शक्तिसे बनाता है ।



- २६८ न सीमदेव आप तदिष दीर्घायो मर्येः ।  
एतम्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।७।७ )
- २६९ आ ना विश्वासु हृष्यमिन्द्रस्समत्सु भूपत ।  
उप ब्रह्माणि सवनानि धृत्रहन्परमज्या ऋचीपम ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।९।१ )
- २७० तथेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमसु ।  
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्वा गोपु वृषवते ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।३।१६ )
- २७१ क्वेयथ क्वेदसि पुष्वना चिद्वि ते मनः ।  
अलपि युध्म खजकृत्पुरंदर प्र गायात्रा अमासिपुः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।१।७ )

[ २६८ ] हे ( दीर्घायो ) लम्बी आयुवाले इन्द्र ! ( अ-देवः मर्येः ) ईश्वरकी उपासना न करनेवाला मनुष्य ( सी तत् ) उस प्रसिद्ध अन्नको ( न आप ) नहीं पा सकता, ( यः ) जो ( एतम्वा चिद्य ) वहाँ जानेकी इच्छा करते हुए ( एतशः युयोजते ) घोड़े जोड़ता है, उसी प्रकार ( इन्द्रः हरी युयोजते ) इन्द्र भी अपने घोड़ोंकी मत्के स्थानकी जलनेके लिए जोड़ता है ॥ ६ ॥

१ अदेवः मर्येः सीं न आप— ईश्वरकी उपासना न करनेवाला उस प्रसिद्ध धनकी प्राप्त नहीं कर सकता ।

[ २६९ ] [ विश्वासु समत्सु ] सब युद्धोंमें ( हृष्यं इन्द्रं ) सहायताके लिए बुलाने योग्य इन्द्रको ( नः ब्रह्माणि उप भूपत ) हमारे स्तोत्र सुशोभित करते हैं, इन्द्रकी स्तुति करते हैं । हे ( धृत्र-हन् ) धृत्रकी मारनेवाले ( परम-ज्याः ) जिसके धनुषकी डोरी उत्तम है ऐसे ( ऋची-पम ) भद्रोंसे स्तुति करनेके योग्य इन्द्र । ( सवनानि ब्रह्माणि उप ) हमारे तीन सवनों और स्तोत्रोंकी अलकृत कर ॥ ७ ॥

[ २७० ] हे इन्द्र ! ( अवमं वसु तव इत् ) सबसे निम्न कोटिका धन तेरा ही है, ( त्वं मध्यमं पुष्यसि ) तू ही मध्यम कोटिके धनका पोषण करता है, ( परमस्य विश्वस्य सत्रा राजसि ) और तू ही सबसे उत्तम धनका भी अकेला ही स्वामी है, ( त्या ) तुझे ( गोपु नः किः वृषवते ) वाप आदि देते हुए कोई भी रोग नहीं सत्ता ॥ ८ ॥

१ हे इन्द्र अयम् वसु तव इत्— निम्न धन तेरा ही है ।

२ त्वं मध्यमं पुष्यसि— तू ही मध्यम धनको बढ़ाता है ।

३ परमस्य विश्वस्य सत्रा राजसि— तू सबसे उत्तम धनका भी अकेला ही स्वामी है ।

[ २७१ ] हे इन्द्र ! ( क्व इयथ ) तू कहा गया था ? ( क इत् अस्मि ) अब तू कहा है ? ( पुष्व-ना चिद्य वि ते मनः ) बहुतसे स्थानोंपर तेरा मन जाता है, हे ( युध्म ) युद्ध करनेमें कुशल, ( खज-कृत् ) युद्ध करनेवाले ( पुरं-दर ) दानुकी नगरीका नाश करनेवाले इन्द्र ! ( अलपि ) आ ( गायात्राः प्रमासिपुः ) हमारे गलनें कुशल लोग स्तोत्रोंका मान करते हैं ॥ ९ ॥

१ हे युध्म, खजकृत्, पुरंदर, अलपि— हे युद्धमें कुशल, युद्ध करनेवाले, दानुके नगर तोड़नेवाले इन्द्र ! आ ।

२७२ वयमेनमिदा होऽपीमेह वज्रिणम् ।

तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते

॥ १० ॥ ( ऋ ८।६।७ )

इति अष्टमी वसतिः ॥ ८ ॥ वसुधैः ऋषः ॥ ४ ॥ [ त्व० १४ । उ० १ । पा० ७४ । (ती) ॥ ]

[ ९ ]

( १-१० ) १,६ पुब्रह्मा आगिरताः; २ भगः प्रागायः; ३ इरिन्विदि-वाग्यः; ४ जमदग्निर्भाषः; ५, ७ वेवा-  
तिवि-काग्यः; ८ वसिष्ठो मंधावदग्निः; ९ भद्राज्ञो माहूर्यपत्यः; १० वेपथः वाच्यः ॥ इन्द्रः

( ऋ० ३ चास्तोष्यतिर्वा; ४ वसुधैः; ९ इन्द्राग्नी ) ॥ वृहती ॥

२७३ यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरग्निगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे

॥ १ ॥ ( ऋ ८।७०।१ )

२७४ यत इन्द्र भयामहे तवा नो अभयं कृधि ।

मधवच्छग्निं तव तन्न ऊतये वि द्विषां वि मृधो जहि

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६।१।३ )

२७५ चास्तोष्यते ध्रुवा स्फूणाऽसत्रं सोम्यानाम् ।

द्रष्टाः पुरां भेत्ता द्वाश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा

॥ ३ ॥ ( ऋ ८।१७।१४ )

[ २७२ ] ( वयं ) हम मजमानोंने ( वनं वज्रिणं ) इत वज्रधारो इन्द्रको ( इदा ) इत समय और ( ह्यः ) कल ( अपीम ) सोमरस पिलाकर वृत्त किया, ( तस्मा उ ) इतोलिए ( अद्य सवने ) आजके पतने भी ( सुतं भर ) सोमरस भरकर उसे दे, ( नूनं श्रुते श्मभूषत ) निश्चयसे इत समय स्तोत्र सुननेके बाद उसको अलङ्कृत कर ॥ १० ॥

॥ यहाँ सोलहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १७ ] सप्तदशः खण्डः ।

[ २७३ ] ( यः चर्षणीनां राजा ) जो इन्द्र मानवोक्ता राजा है, ( रथेभिः अग्नि-गुः याता ) रथसे शीघ्रतासे जो जाता है, ( विश्वासां पृतनानां तरुता ) सब धनु सेनाओंका जो नाश करता है, ( यः वृत्र-हा ) जो वृत्रको मारने-वाला है ( ज्येष्ठं गृणे ) उस श्रेष्ठ इन्द्रको नें स्तुति करता है ॥ १ ॥

[ २७४ ] हे इन्द्र ! ( यतः भयामहे ) जहासे हम डरते हैं, ( ततः नः अभयं कृधि ) वहासे हमें निश्चय पतओ, है ( मधवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( शग्निं ) तू समर्थ है, ( तत् ) इसलिए ( तव ) अपने सामर्थ्यसे ( नः ऊतये ) हमारे शरक्षणके लिए ( द्विषां विजहि ) धनुओंका नाश कर और ( मृधः विजहि ) द्विषणोंको नष्ट कर ॥ २ ॥

१ यतः भयामहे ततः नः अभयं कृधि— जहासे हम डरते हैं, वहासे हमें भयरहित करो ।

२ नः ऊतये द्विषः विजहि, मृधः विजहि— हमारे शरक्षणके लिए अनुओं और द्विषणोंकी नष्ट कर ।

३ शग्निं— तू सामर्थ्यवाली है ।

[ २७५ ] हे ( चास्तोष्यते ) पुब्रह्मानी ! ( स्फूणा ध्रुवा ) धरके लम्बे दृढ़ हों, ( सोम्यानां अंतत्रं ) सोमरस करनेवालोंमें अन्नका बल उत्तम हो, ( द्रष्टाः ) सोम पीनेवाला ( द्वाश्वतीनां पुरां भेत्ता ) अशुर्वीकी बहुतली नागरियोंकी तोड़नेवाला ( इन्द्रः ) इन्द्र ( मुनीनां सखा ) ऋषियोंका मित्र है ॥ ३ ॥

१ द्वाश्वतीनां पुरां भेत्ता मुनीनां सखा इन्द्रः— अशुर्वीकी बहुतली नागरियोंको तोड़नेवाला इन्द्र मुनी-  
योंका मित्र है ।

- २७६ <sup>१ ३ १</sup> यणमहा९ <sup>१</sup> असि <sup>३ १ २</sup> सूर्ध्वं <sup>३ १ २</sup> वडादित्य <sup>३ १ २</sup> महा९ <sup>३ १ २</sup> असि ।  
<sup>३ १ २</sup> महस्ते <sup>३ १ २</sup> सतो <sup>३ १ २</sup> महिमा <sup>३ १ २</sup> पनिष्टम <sup>३ १ २</sup> महा <sup>३ १ २</sup> देव <sup>३ १ २</sup> महा९ <sup>३ १ २</sup> असि ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१०।१।१ )
- २७७ <sup>३ १ २</sup> अश्वी <sup>३ १ २</sup> रथी <sup>३ १ २</sup> सुरुप <sup>३ १ २</sup> इद्रोमा९ <sup>३ १ २</sup> यदिन्द्र <sup>३ १ २</sup> ते <sup>३ १ २</sup> सखा ।  
<sup>३ १ २</sup> श्वात्रमाजा <sup>३ १ २</sup> वयसा <sup>३ १ २</sup> सचते <sup>३ १ २</sup> सदा <sup>३ १ २</sup> चन्द्रैर्याति <sup>३ १ २</sup> समाद्युप ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१।९ )
- २७८ <sup>३ १ २</sup> यद्वाव <sup>३ १ २</sup> इन्द्र <sup>३ १ २</sup> ते <sup>३ १ २</sup> शत९ <sup>३ १ २</sup> शतं <sup>३ १ २</sup> भूमिकृत <sup>३ १ २</sup> स्युः ।  
<sup>३ १ २</sup> न <sup>३ १ २</sup> त्वा <sup>३ १ २</sup> वज्रिन्त्सहस्र <sup>३ १ २</sup> सूयो <sup>३ १ २</sup> अनु <sup>३ १ २</sup> न <sup>३ १ २</sup> जातमष्ट <sup>३ १ २</sup> रोदसी ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।७।९ )
- २७९ <sup>३ १ २</sup> यदिन्द्र <sup>३ १ २</sup> प्रामपामुदग्न्यग्वा <sup>३ १ २</sup> ह्यसे <sup>३ १ २</sup> नृभिः ।  
<sup>३ १ २</sup> सिमा <sup>३ १ २</sup> पुरु <sup>३ १ २</sup> नृपूतो <sup>३ १ २</sup> अस्थानवेऽसि <sup>३ १ २</sup> प्रशार्धं <sup>३ १ २</sup> तुर्वशे ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१।१ )
- २८० <sup>३ १ २</sup> कस्त्वमिन्द्र <sup>३ १ २</sup> त्वा <sup>३ १ २</sup> वसवा <sup>३ १ २</sup> मर्त्या <sup>३ १ २</sup> द्षर्षति ।  
<sup>३ १ २</sup> अद्वा <sup>३ १ २</sup> हि <sup>३ १ २</sup> ते <sup>३ १ २</sup> मघवन्पाये <sup>३ १ २</sup> दिवि <sup>३ १ २</sup> वाजी <sup>३ १ २</sup> वाज९ <sup>३ १ २</sup> सिपासति ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।२१।१४ )

[ २७६ ] हे ( सूर्य ) मेरक इन्द्र ! ( महान् असि ) तू महान् है, ( यद् ) यह तत्त्व है, हे ( आदित्य ) अदितिके पुत्र इन्द्र ! तू ( महान् असि ) महान् है यह ( यद् ) सत्य है, ( महः ) ते स्वतः महिमा महान् होनेवाले तेरी महिमाका ( पनिष्टम ) वर्णन हम करते हैं, हे ( देव ) देव ! तू ( अद्वा महान् असि ) अपने बलसे तू महान् है ॥ ४ ॥

[ २७७ ] हे इन्द्र ! ( यत् ते सखा ) जब तेरा मित्र कोई मनुष्य होता है, तब ( इत् ) वह ( अश्वी ) घोसेले युक्त ( रथी ) रथ रखनेवाला, ( सुरुपः ) उत्तम रूपवाला ( गोमान् ) बहुत भाग्य रखनेवाला, ( श्वात्र-भाजा ) धनवान् ( वयसा सदा सचते ) अपने सदा उमतिगोल होता है, तथा वह हमेशा ( चन्द्रैः सभां उप याति ) उत्तम भूतगोल युक्त होकर समामे जाता है ॥ ५ ॥

[ २७८ ] हे इन्द्र ! ( यत् वावः शतं स्युः ) यदि श्लोक सौ गुना हो जाये तब भी ( त्वा न अनु-अष्ट ) तुझे घेर नहीं सकते, ( उत भूमि शतं स्युः ) पृथ्वी सौ गुनी हो जाये, तो भी वह तुझे आधार नहीं दे सकती, हे ( यदिन्द्र ) वज्रपात्री इन्द्र ! ( सहस्रं सूयोः ) यदि हजारों सूर्य हो जायें, तो भी ( त्वा न ) तुझे प्रकाशित नहीं कर सकते, ( अनु-जातं न अष्ट ) तेरे पीछे हुए में सब तुवें व्याप नहीं सकते, में ( रोदसी ) श्लोक और पृथ्वी लोक तुझे व्याप नहीं सकते ॥ ६ ॥

[ २७९ ] हे इन्द्र ! ( यत् प्राम् ) क्योंकि पूर्वं दिशासे ( अपाक् ) पश्चिमसे ( उदक् न्यक् ) उत्तर दिशा अपना दक्षिण दिशासे ( नृभिः ह्यसे ) तू मनुष्योंद्वारा सहायताके लिए बुलाया जाता है, इस कारण हे ( त्वि ) इन्द्र ! ( आनवे पुरु नृपूतः असि ) भन्नेके लिए बहुत प्रकारसे तेरी प्रार्थना होती है, हे ( प्रशार्धं ) अनुशासक इन्द्र ! ( तुर्वशे ) तुर्वशके लिए भी उतरी प्रकार तुझे बुलाया जाता है ॥ ७ ॥

[ २८० ] ( वयो इन्द्र ) हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! ( ते त्वा कः मर्त्या आदृष्यति ) उस तुझे कौन मनुष्य मत्ता भय दिलाता है ? हे ( मघवन् ) पतकान् इन्द्र ! ( ते अद्वा ) तुमपर अद्वा रखनेवाला ( वाजी ) बलवान् होता है, और वह तु जसि ( पायेंं दिवि ) पार होनेके दिनमें भी ( वाजं सिपासति ) अपना कान् बन करनेकी इच्छा करता है ॥ ८ ॥

१ ते अद्वा वाजी— तुमपर यद्वा करनेवाला मनुष्य बलवान् होता है ।

२८१ इन्द्राग्नी अगादियं पूर्वाग्नात्पद्मतीभ्यः ।

द्वित्वा शिरा जिह्वया सारपचरत्विश्यात्पदा न्यक्रमीत् ॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।१९।६ )

२८२ इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।

आ ज्ञतम शतमाभिरभित्तिभिरा स्वापि स्वापिभिः ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१३।५ )

इति मयसो वसतिः ॥ ९ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ [ स्व० १६। उ० ५। पा ७२ । (श) ॥ ]

[ १० ]

( १-१० ) १ मूषेय आगिरतः; २,३ वसित्यो मेधावसिः, ४ भरद्वाज. ( ऋ० शयुः ) बाहुत्पत्यः; ५ पदच्छेपो वसो-  
वसिः; ६ यामवेदो गीतमः; ७ मेधातिवि. काव्यः; ८ भगं प्रागायः; ९, १० मेधातिवि-मेधातिवि कण्ठी ॥

इन्द्रः ( ५ ऋ० आदिपनी ) ॥ बृहती ॥

२८३ इत ऊती वा अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।

आशु जेतारश्चेतारश्च रथीतमामतूतं तुप्रियावृषम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१९।७ )

२८४ मा धु त्वा वाघतश्च नारे असाञ्जि रीरमन् ।

आराचाद्वा सधमादं न आ गहीह वा सञ्जुप भुधि ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।३२।१ )

[ २८१ ] हे इन्द्र और अग्नि ! ( अ-पाद् इयं ) बिना परंतेवाली यह उवा ( पद्मतीभ्यः ) परंतेले युक्त, सोई हुई प्रजापति ( पूर्वा अगात् ) पहले ही आ गई है, ( शिरः द्वित्वा ) तिरके छोकर ( जिह्वया सारपत् ) जीभसे प्रेरणा करती हुई यह ( चरत् ) आगे जाती हुई ( जिह्वात् पदानि अक्रमीत् ) तीस कवच-तीस मूहल एक दिनमें चलती है ॥ ९ ॥

[ २८२ ] हे इन्द्र ! ( नेदीयः ) पास ही हमारी यज्ञमाला है, इस कारण तू ( आ इत् इहि ) आ, ( मित-  
मेधाभिः ऊतिभिः ) बुद्धिमान्, और सरक्षणकी इच्छा करनेवालोंके साथ आ, हे ( शान्तम ) अत्यन्त शान्त स्वभाववाले इन्द्र ! ( शान्तमभिः अभित्तिभिः वा ) अत्यन्त मृग देनेवाली महिलायाओंके साथ आ, हे ( सु-आपे ) उत्तम बन्धो ! ( स्वापिभिः आ ) उत्तम भाइयोंके साथ आ ॥ १० ॥

॥ यहाँ सत्रहवाँ खंड समाप्त हुआ ॥

[ १८ ] अष्टादशः खण्डः ।

[ २८३ ] ( चः ) तुम ( अ-जरं ) बुढ़ावा रहित ( अ-हेतारं ) शत्रुपर पहार करनेवाले, ( अ-प्रहितं ) कोई भी जिसे प्रेरणा नहीं दे सकता, ऐसे ( आशु जेतारं ) शीघ्र विजय प्राप्त करनेवाले, ( हेतारं ) यत्नमें जानेवाले ( रथीतमं ) उत्तम रथवाले ( अ-तूतं ) किसीसे भी न मारे जानेवाले ( तुप्रिया-वृषं ) जलोंकी बुद्धि करनेवाले इन्द्रको ( ऊतये ) सरक्षणके लिए ( इतः ) यहाँ से आओ ॥ १ ॥

[ २८४ ] हे इन्द्र ! ( त्वा ) तुझे ( वाघतः वन ) यज्ञमान ( अस्मत् आरे ) हमसे दूर ( मा उ निरमन् ) केजाकर आनन्दित न होवे, इसलिये तू ( आराचात् वा ) पास रहकर ( नः सधमादं ) हमारे पतनमें ( सु आगहि ) उत्तम रीतिसे आ, ( वा इह सन् ) उसी प्रकार यहाँ रहकर ( उपभुधि ) हमारी स्तुतियोंको पास्ते मुन ॥ २ ॥

- २८५ सुनोत सोमपात्रे सोममिन्द्राय वज्रिणे ।  
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पूणन्नित्पूणते मयः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ७।३।२८ )
- २८६ यः सत्राहा विश्वर्षणिरिन्द्रं तं ह्रमहे वयम् ।  
सहस्रमन्यो नुविनृष्ण सत्पते भवा समस्तु नो वृधे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।४।३१ )
- २८७ शचीभिर्नः शचीवधु दिवा नक्तं दिशस्पतम् ।  
मा चां रातिरुपदसत्कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१।२९।९ )
- २८८ यदा कदा च भीक्षुपे स्तोता जरेत मर्त्यः ।  
आदिद्वन्देत वरुणं विषा गिरा घर्त्तारं विप्रतानाम् ॥ ६ ॥
- २८९ पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेघ्यातिथे ।  
यः संमिष्टा ह्यौषो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।३।३४ )

[ २८५ ] हे मानकी ! ( वज्रिणे सोमपात्रे इन्द्राय ) वस्त्रको धारण करनेवाले और सोमरसको पीनेवाले इन्द्रके लिए ( सोमं सुनोत ) सोमरस निकालो, ( अवसे ) अपने सरसणके लिए अथवा उसकी प्रसन्नताके लिए ( पक्तीः पचत ) पुरोडाता पकाओ, ( कृणुध्वं इत् ) इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए दान करो, शक्योकि इन्द्र ( मयः पूणन् इत् ) पनपानकी मुल देते हुए ( पूणते ) स्वयं भी हवि ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

[ २८६ ] ( यः सत्राहा ) जो एक साथ शत्रुओंको मारता और ( विश्व चर्षणिः ) सबको देवता है, ( तं इन्द्रं-पर्यं ह्रमहे ) उस इन्द्रको हम बुलाते हैं, हे ( सहस्र-मन्यो ) हजारों उस्ताहोते युक्त ( नुवि-नृष्ण ) बहुत धनवाएँ ( सत्पते ) सज्जनके वालक इन्द्र ! ( समस्तु ) युद्धमें ( नः वृधे भव ) हमारे ऐश्वर्यकी वृद्धिमें सहायता करने-वाला हो ॥ ४ ॥

१ यः सत्राहा विश्व-चर्षणिः तं इन्द्रं पर्यं ह्रमहे— जो शत्रुओंको एक साथ मारता और मानवीक कल्याण करता है, उस इन्द्रको सहायताके लिए हम बुलाते हैं ।

२ हे सहस्र-मन्यो नुविनृष्ण सत्पते ! समस्तु नः वृधे भव— हे हजारों उस्ताहोते युक्त, बहुत धनवान् भीत शत्रुओंके वालक इन्द्र ! युद्धमें हमारा पक्ष बढ़े देता कर ।

[ २८७ ] ( शची-वधु ) कर्म करने पर प्राप्त करनेवाले अश्विनीकुमारों । तुम ( शचीभिः ) अपनी शक्तिसे ( दिवा-नक्तं दिशस्पतं ) रात दिन हमें इच्छित धन दो, ( चां रातिः कदाचन ) तुम्हारे दान कभी भी ( मा उपदसत् ) कम नहीं होले, ( अस्मत् रातिः कदाचन ) हमारे दान भी कभी कम न हों ॥ ५ ॥

[ २८८ ] ( यदा कदा च ) जिस समय ( भीक्षुपे ) यज्ञ करनेवालेके लिए ( मर्त्यः ) मनुष्य ( स्तोता जरेत ) स्तुति करे, ( आत् इत् ) उस समय वह ( विप्रतानां घर्त्तारं घर्त्तं ) विशेष रूपसे अनेक कर्मोंको धारण करनेवाले सज्जनकी ( विषा गिरा मन्देत ) विशेष रक्षण करनेवाली स्तुतिसे बन्धना करे ॥ ६ ॥

[ २८९ ] हे मेघ्यातिथे ! ( यः इन्द्र- ) जो इन्द्र ( ह्यौषोः संमिष्टः ) दो घोंघोंकी अपने रथमें ओढ़ता है, और जो ( वज्री ) बल धारण करता है, और जो ( हिरण्ययः ) रमणीय है, तथा जो ( हिरण्ययः ) सोनेके रथमें बैठता है ऐसे ( इन्द्राय ) इन्द्रकी ( अन्धसः भवे ) सोमान्तसे उस्ताह प्राप्त होनेके धार ( गाः पाहि ) अपनी मायका संरक्षण कर ॥ ७ ॥

- २९० उभयं च भृणवच्च न इन्द्रो अर्धागिदं वचः ।  
 सत्राच्या मघवान्सोमपीतये धिया अविष्ट आ गमत् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६।१२ )
- २९१ महं च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।  
 न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय अतामघ ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।१।६ )
- २९२ वसांश्चन्द्रासि मे पितुरुत आतुरमुञ्जतः ।  
 माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१।६ )

इति दशमो वसतिः ॥ १० ॥ पृष्ठ सप्त ॥ ६ ॥ [ ऋ० १५ । उ० ४ । पा० ७६ । ( मृ. ) ॥ ]

इति तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धे, तृतीय प्रपाठकञ्च समाप्त ॥

[ २९० ] ( नः इदं उभयं वचः ) हमारे इन दोनों ही प्रकारके स्तोत्रोक्तो ( अर्धाक् इन्द्रः भृणवत् ) पात आकर इन्द्र मुने, ( च ) और ( सत्राच्या धिया ) एक ह्यानपर बैठकर गाये जानेवाले स्तोत्रोक्तो मुनिकर ( शनिप्रः मघवान् ) वज्रवान् और वनवान् इन्द्र यहाँ ( सोम-पीतये आगमत् ) सोम पीनेके लिए जाये ॥ ८ ॥

[ २९१ ] हे ( अद्रि-व ) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! ( महे च शुल्काय ) बहुततो पनके बदलेमें भी ( त्या ) तुम ( न परा दीयसे ) देना नहीं जा सकता, हे ( वज्रि-वः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( सहस्राय न ) हजारके बदलेमें भी नहीं देना जा सकता, हे ( शता-मघ ) बहुत धनेंसि युक्त इन्द्र ! ( न शताय ) न सौके ( अयुताय न ) और न दस हजारके बदलेमें ही तुम देना जा सकता है ॥ ९ ॥

१ हे अ-द्रियः ! महे शुल्काय त्या न परा दीयसे— हे वज्रधारी इन्द्र ! बहुतसा धन मिलनेपर भी न तुम नहीं दूगा ।

२ हे वज्रि-वः ! सहस्राय न— हे वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! हजारमें भी तुम नहीं दूगा ।

३ हे शतामघ ! शताय न— हे धनवान् ! सौमें भी नहीं दूगा ।

४ न अयुताय— दस हजारमें भी मैं तुम नहीं दूँगा ।

[ २९२ ] हे इन्द्र ! मे पितुः वस्यान् मेरे पितासे भी अधिक धनवान् हूँ, ( उत अशुंजतः आतुः ) और भोजनको न देनेवाले मेरे भाईकी अपेक्षा भी तू महान् हूँ, हे ( पत्नी ) सबकी बतानेवाले इन्द्र ! ( मे माता च समा ) मेरी माता और तू समान है, तू ( वसुत्वनाय राधसे ) धनवान् और धनवान् होनेके लिए मुझे धरती देना ॥ १० ॥

१ हे इन्द्र ! मे पितुः वस्यान्— हे इन्द्र ! मेरे पिताकी अपेक्षा तू अधिक धनवान् है ।

२ अशुंजतः आतुः— न खानेवाले भाईकी अपेक्षा तू महान् है ।

३ मे माता समा— मेरी माता तेरे समान है ।

४ वसुत्वनाय राधसे— धनवान् और धनवान् होनेके लिए मुझे धरती देना ।

॥ यहाँ अष्टादशवां खंड समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ।

[ १ ]

( १-१० ) १ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २, ६, ७ वादेवो गीतमः; ३ मेधातिथि-मेध्यातियो काण्वो, विदवामित्र इत्येके;  
४ नोपा गीतमः; ५ मेधातिथिः ( ऋ० मेध्यातिथिः ) काण्वः; ८ श्रुष्टिगुः काण्वः; ९ मेध्यातिथिः  
( मेधातिथिर्वा ) काण्वः; १० नृमेघ आगिरसः ॥ इन्द्रः; ७ बभ्रुः ॥ बृहती ॥

२९३ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।

ता<sup>१</sup>आ<sup>२</sup> मदाय<sup>३</sup> वज्रहस्त<sup>४</sup> पीतय<sup>५</sup> हरिभ्यां<sup>६</sup> याद्वोक<sup>७</sup> आ<sup>८</sup> ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।२।४ )

२९४ इम इन्द्र मदाय ते सोमाधिकिप्र उक्थिनः ।

मधोः<sup>१</sup> पपान<sup>२</sup> उप<sup>३</sup> नो गिरः<sup>४</sup> शृणु<sup>५</sup> रास्व<sup>६</sup> स्तोत्राय<sup>७</sup> गिर्वेणः<sup>८</sup> ॥ २ ॥

२९५ आ त्वारिध सषट्पुषा ह्रुवे गायत्रवेपसम् ।

इन्द्र<sup>१</sup> धेनु<sup>२</sup> सुदुषामन्यामिप<sup>३</sup> मुरुधारामरु<sup>४</sup> तम्<sup>५</sup> ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१।१० )

२९६ न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडयः ।

याच्छिक्षसि<sup>१</sup> स्तुवते<sup>२</sup> मायते<sup>३</sup> वसु न<sup>४</sup> कियदा<sup>५</sup> मिनाति<sup>६</sup> ते<sup>७</sup> ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।८।१ )

२९७ क ई वेद सुते सत्त्वा पिबन्ते कद्रयो दधे ।

अयं यः<sup>१</sup> पुरा<sup>२</sup> विभिन्नत्योजसा<sup>३</sup> मन्दानः<sup>४</sup> शिष्यन्धसः<sup>५</sup> ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१३।७ )

[ १९ ] एकोनविंशः खण्डः ।

[ २९३ ] हे ( वज्र-हस्त ) वज्रको हाथमें धारण करनेवाले इन्द्र ! ( दध्याशिरः इमे सोमासः ) वही मिले हुए ये सोमरस तुम ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( सुन्विरे ) तैय्यार किये गये हैं, ( मदाय ) जानन प्राप्त करनेके लिए तथा ( तान् ) उन सोमरसोंको ( पीतये ) पीनेके लिए ( ओकः आ ) बलपण्डपको ( हरिभ्यां आ याद्वि ) घोड़ोंके द्वारा आ ॥ १ ॥

[ २९४ ] हे इन्द्र ! ( ते मदाय ) तेरे आनन्दके लिए ( उक्थिनः ) बरकतार्जिन ( इमे सोमाः चिकिप्र ) में सोमरस बुद्धिपूर्वक तैय्यार किये हैं, ( मधोः पिपानः ) इन बभ्रु रसोंको पीकर ( नः गिरः उपशृणु ) हमारो स्तुति पाससे सुन, हे ( गिर्वेणः ) प्रयत्नित इन्द्र ! ( स्तोत्राय रास्व ) स्तुति करनेवालेके लिए यन् दे ॥ २ ॥

[ २९५ ] हे इन्द्र ! ( अथ ) आज ( सषट्पुषां ) अधिक दूध देनेवाली ( गायत्र-वेपसं ) प्रथमकीय वेगवाली ( सु-दुषां ) सुवते दूध देनेवाली ( अन्यां ऊरुधारां ) विलक्षण रीतिते बहुत सा दूध देनेवाली ( हर्ष धेनु ) गायमें रखने योग्य गायके समान तुम ( अरे कृतं तु आह्रुये ) अकम्बत इन्द्रको नं घुलता हूँ ॥ ३ ॥

[ २९६ ] हे इन्द्र ! ( बृहन्तो वीडयः अद्रयोः ) महान् दूध पमेंत भी ( त्वा न वरन्ते ) तुमो अपने कर्तव्यते बिना नहीं सकते, ( स्तुवते मायते ) स्तुति करनेवाले तुम जंते पुष्पको ( यत् वासु शिक्षसि ) त्र ओ पन देता हूँ, ( ते तद् ) उस तेरे बलको ( न किः आ मिनाति ) कोई भी रोक नहीं सकता ॥ ४ ॥

[ २९७ ] ( सुते ) सोमयज्ञमें ( सत्त्वा पिबन्ते ई ) एक जगह पंडकर सोमरस पीनेवाले इस इन्द्रको ( कः वेद ) भला कीय जानता हूँ ? तथा वह ( कर्तुः दधे ) दितना अन्न धारण करता हूँ इसे भी कौन जानता हूँ ? ( यः अयं शिनी ) जो यह इन्द्र गिरसत्राय धारण करके ( शिष्यन्धसः मन्दानः ) सोमरसते जलाहित होकर ( ओजसा पुरः विभिन्नाय ) अपने सामर्थ्यसे दानुओंके नगदोंको तोड़ता हूँ ॥ ५ ॥

- २९८ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००</sup> यदिन्द्र आसो अग्रते च्यावया सदसस्पति ।  
 असाकमश्नु मधवन्पुरुस्पृह वसच्ये आधि बर्हय ॥ ६ ॥
- २९९ स्वष्टा नो देव्य वचः पर्जन्या ब्रह्मणस्पतिः ।  
 पुत्रेभ्रातृभिरदितिनं पातु नो दुष्टरं ब्रामणं वचः ॥ ७ ॥
- ३०० कदा चन स्वरीरसि नेन्द्र सधसि दाशुषे ।  
 उपोषेक्षु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१९।७ )
- ३०१ युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।  
 अर्वाचीनो मघवन्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।२।७ )
- ३०२ त्वामिदा ह्यो नरोऽपीच्यन्वज्जिन्भूर्णयः ।  
 सं इन्द्र स्तोमवाहस इह शुच्युप स्वसरमा गहि ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१९।१ )
- इति प्रथमा वसतिः ॥ १ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १३ । उ० २ । पा ८२ । ( ङि ) ॥ ]

[ २९८ ] हे इन्द्र ! ( यत् दासः ) निज शरण अपराधियोंको तू बण्ड देता है, इतलिए ( स्वदसः यदि अग्रते च्यावय ) हमारे यज्ञस्थानके चारों ओरसे यज्ञ न करनेवालोंको दूर कर, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( पुत्र-स्पृह अस्माकं अंशुं ) हमारे प्रशंसनीय सोमरसको ( वसच्ये अधि बर्हय ) यज्ञ स्थानमें बढा ॥ ६ ॥

[ २९९ ] ( स्वष्टा ) देवीका कारीगर त्वष्टा देव ( पर्जन्यः ) वृष्टीका देव, ( ब्रह्मणस्पतिः ) ब्रह्मणस्पति ( पुत्रेः भ्रातृभिः अदितिः ) अपने पुत्र लौह भाइयोंके साथ अदिति-देवमाता, ये सब देवता ( दुष्टरं ब्रामणं न वच ) दुष्टलोगोंके पार करानेवालों और रक्षा करनेवालों हमारी स्तुतियोंसे सन्तुष्ट होकर ( उ पातु ) निश्चयसे हमारी रक्षा करें ॥ ७ ॥

[ ३०० ] हे इन्द्र ! तू ( कदाचन ) कभी भी ( स्वरीरसि ) सत्पान उल्लस न करनेवाली [ यन्व्या ] बायके समान नहीं है ( दाशुषे सधसि ) हवि देनेवाले यज्ञमानसे तू मिला हुआ रहता है, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( देवस्य ते ) प्रकाशस्वरूप तेरे ( भूयः दानं ) बहुते दान ( उपोषेक्षु पृच्यते ) हमारे पास आकर पढ़ते हैं ॥ ८ ॥

[ ३०१ ] हे ( वृत्र-हन्तम ) युद्धके राज करनेमें कुशल इन्द्र ! ( हि हरी युक्ष्व ) निश्चयसे अपने घोड़े स्वर्धे शोड, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( उग्रः अर्वाचीनः ) बलवान् होकर सामने ( परावतः ) दूखे देशसे ( ऋष्वेभिः ) युद्धर मल्लोंके साथ ( आ गहि ) आ ॥ ९ ॥

[ ३०२ ] हे ( अजिन् ) बलको पारण करनेवाले इन्द्र ! ( त्वां ) तुझे ( भूर्णयः नरः ) यज्ञकर्ता यज्ञमानोंमें ( इदा ह्यः अपीच्यन् ) आज और पहलेके दिनोंमें भी सोमरस पीनेके लिए दिया, हे इन्द्र ! ( स्वः ) वह तू ( इह ) इस यज्ञमें ( स्तोमवाहसः शुचि ) स्तोत्र कहनेवाले याज्ञिकोंके स्तोत्रोंको सुन, और इनके लिए ( स्वसरं उग्र आ गहि ) यज्ञ मण्डपमें आ ॥ १० ॥

॥ यहाँ उशीसवां खंड समाप्त हुआ ॥



[ २ ]

( १-१० ) १, २, ६ वसिष्ठो मंत्रावर्यणि, ३ गानुदायेय, ४ पुषर्वेन्य, ५ सप्तमूरगिरत्न, ७ गीरिवीति शारत्थ, ८ वेनो नागं, ९ बृहस्पतिर्निकुलो वा, १० सुहोत्रो भाउडाज इन्द्र, ( ऋ० ५ इन्द्रो वसुष्प )  
८ वेन ॥ त्रिष्टुप् ॥

३१३ अससि देवं गोऋजीकमन्थो न्यसिचिन्द्रो जनुपेष्टुवोच ।

• घोषामसि त्वा हर्यश्च यज्ञैर्वोधा न स्तोममन्वसो मदेपु ॥ १ ॥ ( ऋ ७२११ )

३१४ योनिष्ट इन्द्र सदेने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।

असो यथा नोऽविता वृषक्षिद्दो वसुनि ममदश्च स्तोमः ॥ २ ॥ ( ऋ ७२११ )

३१५ अददरुत्समसृजा वि खानि त्वमणवान्मद्रधानाऽ अरम्णाः ।

महान्तमिन्द्र पर्वत वि यद्रः सृजद्द्वारा अय यद्दानवान्दृन् ॥ ३ ॥ ( ऋ ९१२१ )

३१६ सुप्याणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चिपुविनुम्य वाजम् ।

आ नो भर सुचितं यस्य कोना तना त्मना सक्षाम स्वोताः ॥ ४ ॥ ( ऋ १०१४८१ )

[ २ ] एकविंशः खण्ड ।

[ ३१३ ] ( देवं गो-ऋजीकं अन्धः ) दिव्य तेजस्वी गायकं दूषसे मिथित सोमरूपी अन्ध ( अससि ) तैव्या किया है, ( ई इन्द्रः ) यह इन्द्र ( अस्मिन् जनुपा नी उचोच ) इस सोमरसमें स्वभावत ही प्रेम करता है, हे ( हरी अन्ध ) घोड़ोंको पालनेवाले इन्द्र ! ( त्वा यज्ञैः वौषामसि ) तुमने इस यज्ञके द्वारा कहते है, कि ( अन्वसः मदेपु ) सोमरसके आनन्दमें ( न. स्तोमं योध ) हमारी इन स्तुतियोंपर ध्यान दे ॥ १ ॥

[ ३१४ ] ( ते सदेने योनिः अकारि ) तेरे बैठनेके लिए हमने स्थान बनाया है, हे ( पुर-हूत ) बहुमति प्राप्त तित इन्द्र ! ( ते नृभिः आ प्र याहि ) उस स्थानपर अपने मनुष्यके साथ तू जा, और ( न. यथा अविता ) हमारी रक्षा करनेवाला बन और ( वृषे च अस ) हमारा सर्वपन करनेके लिए तैयार रह, हमें ( यस्मिन् च वदः ) अदरु प्रकारके धन दे और ( स्तोमं ममदः च ) सोमरसमें अलज्जित हो ॥ २ ॥

[ ३१५ ] हे इन्द्र ! ( त्व उरसं अददः ) तुने मेवोंको छोडा, और ( खानि वि असृजः ) पानी निकलनेके बरवा वोंको खोला ( वद्रधानान् अर्णवान् अरम्णाः ) शृंख्य होनेवाले महान् समुद्रोंको आनवित किया, और ( महान्त पर्वत ) महान् बादलोंको काडा, और ( धाराः स्यसृजम् ) जलकी धाराओंको बहाया, और ( यत् दानवान् अयवहन् ) तब वृं दानवोंको बिलप्ट किया ॥ ३ ॥

[ ३१६ ] हे इन्द्र ! ( सुप्याणास ) सोमरस तैयार करनेवाले यज्ञकर्ता ( त्वा स्तुमसि ) तेरी स्तुति करते हैं, हे ( सुचितं-नुम्य ) बहुत धनवान् इन्द्र ! ( वाज सनिष्यन्तः ) पुरोकास तैयार करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं, इत्तलमें ( न. सुचितं आ भर ) हमें उत्तम धन भरपूर दे, ( यस्य कोना ) जिस धनकी हम इच्छा करते हैं, वह धन हमें दे, ( त्वा ऊताः ) तुझसे अच्छी प्रकार रक्षित हुए हम लोग ( तना ) बहुत धन ( त्मना सक्षाम ) अपनी शक्तिसे प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

- ३१७ जगृह्णा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसुपयो वसुपते वद्वान्म ।  
विद्या हि त्वा गोपतिश्शूर गोनामसभ्यं चित्रं वृषणश्चरथि दाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।४।१ )
- ३१८ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पायां युनजते धियस्ताः ।  
शूरो नृपाता श्रवसश्च काम आ गोमति प्रजे भजा त्वे नः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।२।१ )
- ३१९ वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋपयो नाधमानाः ।  
अप ध्वान्तमूर्धुहि पृथि चक्षुर्मुमुक्ष्याइस्मान्निघयेव वद्वान् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १०।३।१ )
- ३२० नाके सुपर्णमुप यत्पतन्त हृदा येनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।  
हिरण्यपर्शं वरुणस्य दूर्तं यमस्य योनां शकुनं भुरण्यम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।२।१६ )
- ३२१ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्दि सीमतः सुरुषो वेन आवः ।  
स बुध्या उपमा अस्य विद्याः सतश्च योनिमतश्च विवः ॥ ९ ॥

अपर्व. ९।६।१; यजु १।३।३

[ ३१७ ] हे ( घस्तां घसुपते इन्द्र ) बहूतते धनोक्तिरवानो इन्द्र ! ( ते दक्षिणं हस्तं ) तेरे दायं हाथको ( घसुयवः जगृह्णा ) धनकी इच्छा करनेवाले हम पकडते हैं, हे ( शूर ) वीर बहू ! हम ( त्वा ) तुम ( गोनां गोपतिं विद्या ) गोपति पालन करनेवालेके रूपमें जाते हैं, इसलिए ( चित्रं वृषणं रथि अस्मभ्यं दाः ) अनेक प्रकारसे बल बढ़ानेवाले धन तू हमें दे ॥ ५ ॥

[ ३१८ ] ( यत् ) जब ( ताः पायाः धियः युनजते ) संकटसे बचनेके लिए शक्तिपूर्वक कर्म किए जाते हैं, तब ( नरः नेमधिता ) नेतापण युवके समय ( इन्द्रं हवन्ते ) इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं, इस प्रकार ( त्वं शूरः नृपाता ) तू शूर वीर मनुष्योंको धन देनेवाला है, ( श्रवसः चकामः ) बल बढ़ानेकी इच्छा करनेवाला ( त्वं ) तू ( गोमति प्रजे ) गोपति के घाड़ें ( नः आ भजा ) हमें पहुंचा ॥ ६ ॥

[ ३१९ ] ( सुपर्णाः वयः ) उत्तम पंखवाली चिड़ियोंके समान ( प्रिय-मेधा, ऋपयोः नाधमानाः ) गहरे प्रेम करनेवाली, सबंदशी, प्रतापुद्धिको पानेकी इच्छा करनेवालीं सुपंगी किरमै ( इन्द्रं उपसेदुः ) इन्द्रको प्राप्त हुईं, जब हे इन्द्र ! तू ( ध्वान्तं अपोर्णुहि ) श्रमकार दूर कर, ( चक्षुः पृथि ) तेजसे आजोंको भर दे, ( निघया वद्वान् इव ) पगाति बंधे हुए ( अस्मान् मुमुक्षि ) हमें मुक्त कर ॥ ७ ॥

१ निघया वद्वान् अस्मान् मुमुक्षि— पगाति बंधे हुए हमें मुक्त कर ।

[ ३२० ] ( सुपर्णं पतन्तं ) उत्तम पंखसे युक्त वीर आकाशमें अच्छी तरह उड़नेवाले ( हिरण्यपर्शं ) सुनहरे पंखोंवाले ( वरुणस्य दूर्तं ) वरुणके दूत ( यमस्य योनां ) अग्निके उत्पति स्थान-अन्तरिक्षमें ( शकुनं ) पक्षी रूपमें रहने वाले, ( भुरण्यम् ) सबका पोषण करनेवाले ( त्वा ) तुम ( हृदा येनन्ता ) लीग हृदयसे जानते हैं, तब वे ( नाके अभ्यचक्षत ) अन्तरिक्षमें तुझे देखते हैं ॥ ८ ॥

[ ३२१ ] ( येन ) तेने ( पुरस्ताद्दि जज्ञानं ब्रह्म ) अपनेते प्रथम उत्पन्न हुए ब्रह्म तेजका ( प्रथमं विसीं ) पहलेसे उपदेश करते हुए ( अतः सुरुवः आवः ) अपने उत्तम तेजसे सबका रक्षण करते हुए सबको कानियुक्त किया ( सः बुध्या ) यह अन्तरिक्षमें ( अस्य उपमाः ) इस ब्रह्मकी उपमा देने योग्य कान्तिको ( विद्याः ) विज्ञेय रूपसे स्थापित करता है, ( सतः असतः च योनिं ) पहले उत्पन्न हुए और आगे उत्पन्न होनेवाले विद्वत्की उत्पत्तिके कारणको बहो ( वि वः ) उत्पन्न करता है ॥ ९ ॥



- ३२६ त्वं ह त्वत्सप्तम्यो जायमानोऽशुभ्रुभ्यो अभवः शुभ्रुन्द्र ।  
 गृहे धावापृथिवी अन्वविन्दो विशुभ्रुभ्यो भुवनेभ्यो रणं वाः ॥ ४ ॥ (ऋ ८।९।६।६)
- ३२७ मेडि न त्वा वाजिणं भृष्टिमन्तं पुरुषसानं वृषमश्चिरम्नुम् ।  
 करीष्यपेस्तरुपीर्दिवस्पुरिन्द्रं युषं वृत्रहणं गृणीषे ॥ ५ ॥
- ३२८ प्र वो महे महे वृधे भरष्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुष्वम् ।  
 विशाः पूर्वाः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ ६ ॥ (ऋ. ७।२।१०)
- ३२९ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्मरे नूतमं वाजसार्ता ।  
 शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु भ्रन्तं वृत्राणि संजितं घनानि ॥ ७ ॥ (ऋ ३।१०।२२)
- ३३० उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समये महया वसिष्ठ ।  
 आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म इवतो वचाश्चि ॥ ८ ॥ (ऋ ७।२।११)

[ ३२६ ] हे इन्द्र ! ( त्वं स्वतः जायमानः ) तू जन्म होते ही ( अ-शुभ्रुभ्यः स्वसभ्यः ) अत्यन्त दुःखोंसे रहित कृष्ण-सुभ्रु-नमुषि-शम्बर आदि त्वा अनुभूत ( शशुः अभवः ) शशु होया, हे इन्द्र ! तू ( गृहे धावापृथिवी ) अन्वकारमें बड़े हुए तू और पृथ्वी लोकको ( अन्वविन्दः ) प्रकाशमें ले आया और अब तू ( विशुभ्रुभ्यः भुवनेभ्यः ) बंधवशास्ते भुवनोंमें ( रणं ध्या ) मुन्दरतासे स्थापित इन लोकोंको और अधिक रमणीय बनाता है ॥ ४ ॥

[ ३२७ ] हे इन्द्र ! ( दुवस्सुः ) प्रशस्तनीय ( अयैः ) शत्रुनाशक तू हमें ( सरुपीः ) विजयी करता है, ( मेडि न ) जिस प्रकार प्रशस्तनीय मनुष्योंकी स्तुति की जाती है, उसी प्रकार मैं ( वृष-दुर्षा ) वृषकी मारनेवाले ( शु-क्षं ) शूलोक्षमें रहनेवाले ( पुष्ट-धरमानं ) अनेक शत्रुओंके नाश करनेवाले ( युषभं ) बलवान् ( स्थिर-म्नुम् ) युद्धमें स्थिर रहनेवाले ( वाजिणं ) बलधारी ( भृष्टि-मन्तं ) वधुनाशक ( त्या गृणीषे ) तुझ इन्द्रकी स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

[ ३२८ ] हे मनुष्यो ! ( यः ) तुम ( महे वृधे महे प्रमरष्वं ) बड़े बड़े काम करनेवाले महान् इन्द्रको भरपूर सोम दो, ( प्रचेतसे सुमतिं कृणुष्वं ) विशेष शान्ति इन्द्रकी उत्तम स्तुति करो, हे इन्द्र ! ( चर्षणि-प्राः ) प्रजाओंकी इच्छा पूरी करनेवाला तू ( पूर्वी विशाः प्रचर ) हीब देनेवाले हूँ प्रजाजनोंकी सहायता कर ॥ ६ ॥

[ ३२९ ] ( वाज-सार्ता अस्मिन् मरे ) लक्ष्मी प्राप्ति होनेवाले इस युद्धमें ( शुनं ) उल्लाही ( मघवानं नूतमं ) पवनान्, सौरीमें श्रेष्ठ ( शृण्वन्तं ) प्रार्थनाओंकी सुननेवाले, ( उग्रं ) भूरभोर ( समत्सु वृत्राणि घनानि ) युद्धमें शत्रु-ओंकी मारनेवाले, ( घनानि संजितं इन्द्रं ) धनीयो जीतनेवाले इन्द्रकी हार ( उतये हुवेम ) अग्ने संरक्षकके लिए युक्तता है ॥ ७ ॥

[ ३३० ] ( श्रवस्या ) शत्रुकी पानेकी इच्छासे ( ब्रह्माणि उदु पेरयन् ) स्तोत्रोंकी बहो, हे ( वसिष्ठ ) इन्द्रियोंकी शोतनेवाले श्रेयो ! ( यः विश्वानि ) जो सब लोगोंकी ( श्रवसा आतनान ) अग्नेसे अन्नका पदार्थ ब्रह्मा है, और जो ( ईषतः मे ) उपासना करनेवाले वैरी ( वचाश्चि उप श्रोता ) प्रार्थनाओंकी सुनता है ऐसे ( इन्द्रं ) इन्द्रकी महिमारा ( समये महय ) यत्नमें बर्नन कर ॥ ८ ॥

३३१ चक्रं यदस्याप्स्वा निपत्तमतो तदस्मि मध्विञ्चच्छ्रयात् ।

पृथिव्यामातिषित यद्दूधः पयो गावदधा औपधीपु

॥ ९ ॥ ( ऋ. १०७८/९ )

इति वसुर्वी वसतिः ॥ ४ ॥ वसामः खण्डः ॥ १० ॥ [ स्व० १६ । उ० ६ । घा० ७३ । कि ॥ ]

[ ५ ]

( १-१० ) १ अरिष्टनेमिस्तास्यैः; २ भरद्वाजः ( ऋ० गर्गो भरद्वाजः ); ३ विमद ऐन्द्रः, वसुहृद्वा वासुकः ( ऋ० प्राजापरयो वा ) ४-६, ९ वामदेवो गोतमः ( ९ ऋ० यमो यवस्थतो ) ७ विश्वामित्रो माघिनः; ८ रेणु-वंशवामिनः; १० गोतमो राहृणः ॥ इन्द्रः; ( ऋ० १ तास्यैः; ७ पवन्तेन्द्रो; ९ यमो यवस्थतः ) ॥ निवृत् ॥

३३२ ल्यम् पु वाजिनं देवजूवत् सहावानं वरुतरं रथानाम् ।

अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशु स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा ह्रुवेम

॥ १ ॥ ( ऋ. १०१७/१० )

३३३ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं ह्रुवे ह्रुवे सुह्रुवे शूरमिन्द्रम् ।

ह्रुवे सु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं ह्रुविमघवा वेत्विन्द्रः

॥ २ ॥ ( ऋ. ६१७/११ )

३३४ यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यां रथिव्रतानाम् ।

प्र इमश्रुमिदो ध्रुवदध्वेषा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो वि राघसा

॥ ३ ॥ ( ऋ. १०१२/११ )

[ ३३१ ] ( अस्य चक्रं ) इह इन्द्रका वज्र ( अप्सु वा निषत्तं ) अन्तरिक्षमें धमकता है, ( उत उ ) और वह ( अस्य मधु इत् चच्छ्रयात् ) इत अपासकके लिए मोटा जल भेजता है, उसी प्रकार ( पृथिव्यां अतिषितं यत् ऊधः ) पृथ्वीपर जो जल बहता है, ( गोपुः पयः ) उन्हें गापोंमें दूधके रूपमें और ( औपधीपु अवद्धाः ) औपधीयोंमें रस रूपसे रखता है ॥ ९ ॥

॥ यहाँ वाहसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २३ ] अयोविंशः खण्डः ।

[ ३३२ ] ( ल्यं वाजिनं ) उस बलवान् ( देव-जूतं सहोघानं ) देवोंके द्वारा सेवित, शक्तिमान्, ( रथानां तर तारं ) रथोंके संधाममें तारनेवाले ( अ-रिष्ट-नेमिं ) तीक्ष्ण शस्त्र अपने पास रखनेवाले ( पृतनाजं ) शत्रुको सेनापर विजय प्राप्त करनेवाले, ( आशुं तार्क्ष्यं ) शीघ्र उड़नेवाले सुपर्णको हम ( स्वस्तये इह ह्रुवेम ) अपने कल्याणके लिए यहाँ बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ३३३ ] ( त्रातारं इन्द्रं ह्रुवे ) संरक्षण करनेवाले इन्द्रको मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ, ( अवितारं इन्द्रं ) सहायक इन्द्रको मैं बुलाता हूँ, ( ह्रुवे ह्रुवे सुह्रुवे ) प्रत्येक युद्धमें बुलाने योग्य ( शूरं शक्रं पुरुहूतं इन्द्रं ) शूर, सामर्थ्य-वान् और बहुशक्ति द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्रको सहायताके लिए बुलाता हूँ, ( मघवात् ) इन्द्र ( इदं ह्रुवि वेत्तु ) इस ह्रुवियात्रको लाते ॥ २ ॥

[ ३३४ ] ( वज्र-दक्षिणं ) अपने दायाँ हाथमें वज्रको पारण करनेवाले ( विप्रुतानां हरीणां रथ्यां ) वेपत्ते बौधने वाले घोड़ोंके रथमें बैठनेवाले ( इन्द्रं यजामहे ) इन्द्रके लिए हम यज्ञ करते हैं, वह इन्द्र ( इमश्रुभिः दोधुवत् ) अपनी दाही और मूठके द्वारा हमें सबको कपाता है, वह ( ऊर्ध्वधा विभुवत् ) सबको अपेक्षा श्रेष्ठ है, ( सेनाभिः भयमानः ) अपनी सेनासे शत्रुओंको भयभीत करता हुआ वह ( राघसा वि ) अपासकोंको पन देता है ॥ ३ ॥

- ३३५ सत्राहणं दाधृषिं तुभमिन्द्रं महापवारं वृषभश्चसुवज्रम् ।  
 हन्ता यो वृशश्च सनिता वाज दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १.१.१८ )
- ३३६ यो नो वनुष्यन्मिदाति मते उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।  
 क्षिधी युषा ऋषसा वा तमिन्द्राभी ध्याम वृषमणस्त्वोताः ॥ ५ ॥
- ३३७ यं वृत्रेषु क्षितय स्पधेमाना य युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।  
 यश्च शूरसातो यमपामुपज्मन्यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥ ६ ॥
- ३३८ इन्द्रापर्वता वृहता रयेन वामोरिष आ वहतश्सुवीराः ।  
 वीतश्चक्ष्यान्यध्वरेषु देवा धर्षयां गीभिरिदया मदन्ता ॥ ७ ॥ ( ऋ. ३.१.३१ )
- ३३९ इन्द्राय गिरा अनिशितसर्गा अपः प्रेरयत्सगरस्थं पुष्पात् ।  
 या अक्षणेव चाक्रियां शचीभिविध्वक्तस्तम्भ पृथिवीमृतं धाम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. १.०८.९४ )

[ ३३५ ] हम (सत्रा-साहं) एक साथ अनेक शत्रुओंको मारनेवाले, (दाधृषिं) शत्रुको भयभीत करनेवाले, (तुभं) शत्रुको भगानेवाले (महा अपारं वृषभं) महान् अत्यधिक शक्तिशाली (सु-वर्ज इन्द्रं) उत्तम वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं, (यः पुष्टे हन्ता) जो वृशका वध करता है, (उत वाजं सनिता) धीर अन्न देता है, यही (सु-राधाः मघवा) उत्तम धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र (मघानि दाता) भवतोंको धन देनेवाला है ॥ ४ ॥

[ ३३६ ] (यः मतेः) जो शत्रु मनुष्य (न वनुष्यन्) हमें जानते मारनेकी इच्छा करते हुए (अभि दासति) हमपर घसा घसा आता है, और जो (मन्यमानः) धर्मही (क्षिधी युषा शरसा) सहाय करनेवाले हविमात्रको लेकर बहुत वेगसे (उगणाः तुरः) सेनाओंके साथ हम पर घसाई करता हुआ चला आता है, उसको हम (न्या ऊताः) तुमसे रक्षित होकर तथा (पुष-मणः) बलवान् मनसे युक्त होकर (अभिप्याम) हरायें ॥ ५ ॥

[ ३३७ ] (वृत्रेषु स्पधेमानाः क्षितयः) शत्रुओंके साथ युद्ध करनेवाली प्रजायें, (यं हवन्ते) जिसको सहायताके लिए बुलाते हैं, (युक्तेषु तुरयन्तः यं) शत्रुओंको हारमें लेकर जल्दी ही मारफाट करनेवाले धीर जिसको बुकते हैं, (शूर-सातो यं) शूरोंके युद्धोंमें जिसे बुलाया जाता है (अप्रां यं) पानीके लिए जिसे पुकारते हैं, (उपज्मन् यं) वर्षा होनेके लिए जिसको प्रार्थना की जाती है, (विप्रासः वाजयन्ते) शान्ति प्राप्त करनेवाले जिसके लिए हवि देते हैं, (सः इन्द्रः) वह इन्द्र है ॥ ६ ॥

[ ३३८ ] हे (इन्द्रा पर्वता) इन्द्र और पर्वत ! (वृहता रयेन) महान् रथसे आकर (गामी-सुवीराः) स्तुतिके योग्य, उत्तम धीर पुत्रोंसे युक्त (इयः आजहृत) अन्न लाकर हमें दो, हे (देयाः) देवी ! (अध्वरेषु ह्ययानि वीत) हमारे यज्ञोंमें हविको लाओ, (इडया मदन्ता) हमारे द्वारा नित्य नए अन्नके आगमन होनेवाले तुम्हारे मन (पृथिवी-धर्षयां) हमारी स्तुतियोंसे बड़े ॥ ७ ॥

[ ३३९ ] (यः) जो इन्द्र (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे (पृथिवीं उत धां) पृथ्वी और धूलोकको (चाक्रियां) अक्षेण इत्यं जिस प्रकार धर्मोंको हल थामता है, उसी प्रकार (विध्वक् तस्तम्भ) चारों ओरसे धारण करता है । (इन्द्राय अनिशित सर्गा गिरः) ऐसे इन्द्रको जन्मे स्वर्गसे लगे जानेवाली स्तुतियां (सगरस्य पुष्पात् अपः प्रेरयत्) अतरिक्तके स्थानसे जलोंको बहाते हैं ॥ ८ ॥

- ३४० आ त्वा सखायः सख्या ववृत्स्युस्तिरः पुरू चिदणवा जगम्याः ।  
पितुनेपातमा दधीत वेधा अस्मिन्क्षये प्रतरा दीधानः ॥ १ ॥ ( ऋ १०।१०।१ )
- ३४१ को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य श्चिमीवतो भामिनो दुहृणायून् ।  
आसन्नेपामसुवाहो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १० ॥  
इति षष्ठमी वसति ॥ ५ ॥ एकादशः खण्ड ॥ ११ ॥ { स्व० १८। उ० ४। वा ८६। (इ) ॥ }  
इति त्रिष्टुप् समाप्ता ॥ इति षतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ११ ॥

[ ६ ]

( १-१० ) १ भवृत्स्यवा वेदवाग्निः, २ वेता वापृच्छन्तः, ३, ६ गोतमो राहृणः; ४ अग्निर्भूमि, ५, ८ तिर-  
हचोरागिरस, ७ मोवातिथि काश्च, ९ विश्वाभिरो गायिन, १० तिरहचोरागिरस दायुर्बाहृस्पयो वा ॥  
॥ इन्द्र ॥ अनुष्टुप् ॥

- ३४२ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।  
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्धृशमिव येमिरे ॥ १ ॥ ( ऋ ११।०।१ )
- ३४३ इन्द्र विश्वा अवीवृषन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।  
रथीतमश्चरथीनां वाजानां चस्यति पतिम् ॥ २ ॥ ( ऋ ११।१।१ )

[ ३४० ] हे इन्द्र ! ( सखायः ) मित्र जन ( सख्या त्वा आयुस्त्यु ) उत्तम स्तोत्रैः तुभे अपने सामने बुलाते हैं, तू तिरः पुत्र अणीये जगम्या ) ऊपर जाकर विस्तृत अन्तरिक्षमें पहुँच गया है । ( अस्मिन् क्षये ) इस काममें ( प्र तरां दीघ्यानां ) अत्यधिक प्रकाशित होकरके ( वेधाः ) बहू इन्द्र ( पितुः नपातं आदधीत ) पितरोंके मागे पीते सर्वात् भेदे लक्षकेना लक्षका हो ऐसा करे ॥ १ ॥

[ ३४१ ] ( अद्य ) आज ( ऋतस्य धुरिः ) यत्तमें जानेवाले इन्द्रके रथकी घुरतमें ( गाः ) रीहनेवाले ( शिमीयतः भामिनः ) बौर और सेजस्वी ( दु-हृणायून् ) दायुपर अत्यधिक श्रेय करनेवाले ( मयोभून्य ) सुखदायक घोडोंके ( आसन्ने ) भुक्तके कहे जानेवाले स्तोत्रोंकी सहायतासे ( कः युङ्क्ते ) भक्त कीज सोइता है ? ( यः एषां भृत्यां प्रणयत् ) जो इनके ( घोडोंके ) भरण पोषणके कार्य करता है, ( सः जीवात् ) यही जीवित रहता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ तेइसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २४ ] चतुर्विंशः खण्ड ।

[ ३४२ ] हे ( शत-प्रतो ) संघर्षों उत्तम कार्य करनेवाले इन्द्र ! ( त्वा गायत्रिणः गायन्ति ) उबगता तेरा यथेन करते हैं, ( अर्कः अर्चन्ति ) स्तुति करनेवाले पूजनीय इन्द्रका सत्कार करते हैं, ( ब्रह्माणः ) ब्राह्मण ( त्वा ) ब्राह्मण ( शतः ) तुम ( यद्वा इयं ) जिस प्रकार तब शीघ्र जातरी ऊपर लया रखते ह उसी प्रकार ( उद्धृ येमिरे ) ऊपर उपाहित करते हैं, अर्थात् तेरो प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ३४३ ] ( विश्वाः गिरः ) सब स्तुतियां ( समुद्रव्यचसं ) समुद्रके समान विस्तृत ( रथीनां रथीतम् ) रथोंमें बँटनेवाले घोडोंमें योद्ध बौर ( याजानां पति ) यानी बौर अत्रोरे स्वामी ( चस्यति इन्द्र ) सत्कारोंसे पालन करनेवाले इन्द्रकी मददका करता है ॥ २ ॥

- ३४४ इममिन्द्र सुत पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।  
शुकस्य त्वाम्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।८४।४ )
- ३४५ यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमाद्रिवः ।  
राधस्तक्रो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ ४ ॥ ( ऋ. ५।३२।१ )
- ३४६ श्रुषो हवं तिरिदच्या इन्द्र यस्त्या सपयति ।  
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाऽअसि ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९५।४ )
- ३४७ असावि सोम इन्द्र तं शविष्ठ घृष्णावा गहि ।  
आ त्वा पणक्स्विन्द्रियधरजः सूर्यो न रदिमभिः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८४।१ )
- ३४८ पुन्द्र यदि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१४।१ )
- ३४९ आ त्वा गिरा रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वेणः ।  
अभि त्वा समनूषत गावा वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।९५।१ )

[ ३४४ ] हे इन्द्र ! ( इमं ज्येष्ठं मदं ) इस घेष्ठ और आनन्द बढ़ानेवाले ( अमर्त्यं सुतं पिब ) अमर सोम रसोंको पी, यहीकि ( ऋतस्य सादने ) यत्के मण्यपमें ( शुकस्य धाराः ) शुद्ध सोमरसको धारा ( त्वा अभ्यक्षरन् ) तेरी तरफ बह रही है ॥ ३ ॥

[ ३४५ ] हे ( चित्रमः अद्रियः ) बिलक्षण और बखको धारण करनेवाले ( विदद्वसो इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( यत् त्वादातं राधः ) जो तेरे देने योग्य धन ( इह न नास्ति ) यहा मेरे, पास नहीं है, ( नत् नः ) उस धनको हमें ( उभया हस्त्या आभर ) दोनों हाथोंपर भरपूर दे ॥ ४ ॥

[ ३४६ ] हे इन्द्र ! ( यः त्वा सपयति ) जो तेरी उपासना करता है, ऐसे उस ( तिरिदच्याः हवं श्रुषि ) तिरिचि च्छिको प्रार्थना युक्त, और तू ( सुवीर्यस्य गोमतः रायः ) उत्तम बल युक्त और गाय युक्त धन देकर ( पूर्धि ) हमें पूर्ण कर, ( महान् असि ) तू महात् है ॥ ५ ॥

[ ३४७ ] हे इन्द्र ! ( ते स्वामः असावि ) तेरे लिए सोमरस निजान्ता हैं, हे ( शविष्ठ ) बलवान् ( घृष्णा ) दायु-ओंको हटानेवाले इन्द्र ! ( आ गहि ) आ, ( इन्द्रियं त्वा ) सोमपासने तेरे अन्दर स्थित ( सूर्यः रदिमभिः रजः न ) जिस प्रकार सूर्य अपनी चिरमंभि अन्तःस्थितो भर देता है, उसी प्रकार ( आ घृष्णक्तु ) भर जाय ॥ ६ ॥

[ ३४८ ] हे इन्द्र ! ( कण्वस्य सुष्टुतिं ) कण्वरी उत्तम स्तुतिके पास ( हरिभिः उप याहि ) घोड़ोंके द्वारा आ, ( अमुष्य ) इसके ( दिवः शासतः ) सुलोचने शासनमें हमें गुल मिलता है, इसलिये हे ( दिवावसो ) तेजसे साथ रहने-वाले इन्द्र ! ( दिवं यय ) सुलोचन कर जा ॥ ७ ॥

[ ३४९ ] हे ( गिर्वेणः ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( सुतेषु ) सोम यत्में ( गिरः ) हमारी स्तुतियों ( रथीः इव ) रथमें घेठनेवाले घोरे जिस प्रकार अपनी ठीक स्थान पर पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार ( रथा अस्थुः ) तेरे पास पहुँचनी है, हे इन्द्र ! ( यत्सं धेनवः गावः न ) यत्केने पास संते दुपाव गाय पहुँचनी है, उसी प्रकार हमारी स्तुति ( त्वा अभि समनूषत ) तेरे पास पहुँचनी है ॥ ८ ॥



३५० एवो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साक्षा ।

शुद्धैरुक्थैर्विवृष्वामसं शुद्धैराशीर्वात्ममत्सु

॥ ९ ॥ ( ऋ ८।९१।७ )

३५१ यो रयिं वो रयिन्तमो यो सुसुसुसुवत्तमः ।

सामः सुतः स इन्द्रं वेदस्ति स्वधापते मदः

॥ १० ॥ ( ऋ ६।४४।१ )

इति षष्ठी वसति ॥ ६ ॥ द्रावय. लण्ड ॥ १२ ॥ [ स्व० ४ । उ० ४ । षा० ५४ । (मो) ॥ ]

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

[ ७ ]

( १-१० ) १ भरद्वाजो बर्हस्पत्यः ; २ वामदेवो गौतमः, शाकल्यो वा, ३ श्रियनेष आगिरसः, ४ प्रयागः काण्वः ;  
५ श्यावाश्व आश्रियः, ६ शमुर्वर्हस्पत्यः, ७ वामदेवो गौतमः, जैता माधुचाण्डसा ॥ इन्द्रः ; ५ महतः,  
७ रथिवा वा ॥ अनुष्टुप् ॥

३५२ प्रत्यस्मै पिपीपते विश्वानि विदुषे भर । अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥ १ ॥

( ऋ ६।४२।१ )

३५३ आ नो वयो वयाःशयं महान्तं गह्वरंश्रां महान्तं पूषिणंश्राम् । उग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥

[ ३५० ] ( सु पते उ ) जलो वा. ( शुद्धेन साक्षा ) शुद्ध साम और ( शुद्धं. उक्थैः ) शुद्ध मन्त्रों द्वारा हम  
( शुद्धं इन्द्रं स्तवाम ) शुद्ध इन्द्रकी स्तुति करते हैं, ( विवृष्वामसं ) दक्षिणकी यज्ञानेवाके इन्द्रको ( शुद्धैः ) शुद्ध मन्त्रों  
केसाय लिए गए ( आशीर्वात्. ममत्सु ) जो रूपसे मिले हुए सोम आनन्द देवें ॥ ९ ॥

[ ३५१ ] हे इन्द्र ! ( य. रयिन्तम. ) जो अत्यन्त शोभायुक्त है, और ( य. सुसुसुः सुसुवत्तमः ) जो तेजसे  
अत्यन्त तेजस्वी है, ( स. सोमः ) वह सोम ( य. ) तेरे उपलब्धकों ( रयिं ) धन देता है, हे ( स्वधापते ) अपनी पारणा  
दक्षिणसे युक्त इन्द्र ! ( सुत ते मदः अस्ति ) यह सोमरस तुझे आनन्द देनेवाला हो ॥ १० ॥

॥ यहाँ चौथीसर्वा र्ण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २५ ] पंचविंशः अण्डः ।

[ ३५२ ] हे याज्ञकी ! ( नर ) यज्ञको जाये ले जानेवाले हुए यज्ञकर्ता ( अग्नें पिपीपते ) इस सोम पीनेको  
इच्छा करनेवाले ( विश्वानि विदुषे ) शक्यो जाननेवाले ( अरं गमाय ) उजिन समय पर हीन हवान पर पहुँचानेवाले  
( जग्मये ) प्राप्त करनेवाले ( अपश्चात्-अध्वने ) सबसे पहले पहुँचनेवाले ( प्रति भर ) इन्द्रको इच्छानुसार  
सोम को ॥ १ ॥

[ ३५३ ] ( महान्तं गह्वरंश्रां वयाः शयं ) महान् पर्वतपर रहनेवाले और तब जगह मिलनेवाले ( वयाः ) सोमकी  
धरको ( न. ) हमारे लिए ( आ भर ) भरदूर ले आ । ( महान्तं पूषिणंश्रां ) बहुत तारे प्रगिष्ठ होनेवाले ( उग्रं वचः  
अपावधी ) बन्दो भाषणोंको दूर कर, दूरे दूर हवासे पाता न आने देता कर ॥ २ ॥

- ३५४ आ त्वा रथे यथोतये सुन्नाय वर्तयामसि ।  
तुविर्कूर्मिमृतीपद्मामिन्द्रं शविष्ठं सत्यतिम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६।८।१ )
- ३५५ स पूष्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे ।  
यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।६।९।१ )
- ३५६ यदा वहन्त्याश्रवां भ्राजमाना रथेषुवा ।  
पिचन्तो मादिरं मधु तत्र श्रवाश्सि कृष्वते ॥ ५ ॥
- ३५७ त्वमु वो अप्रहर्णं गुणोपि श्वससस्पतिम् ।  
इन्द्रं विश्वासाहं नरश्च शविष्ठं विश्ववेदसम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।४।४।४ )
- ३५८ दधिक्वाणो अकारिपं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।  
सुरभि नो मुखो करस्म ण आयूश्चि तारिषत् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ४।३।९।६ )

[ ३५४ ] हे ( शविष्ठ ) बलवान् इन्द्र ! ( ऊतये सुन्नाय ) संरक्षण और मुक्तके लिए ( रथं यथा ) जैते रथको घुमाते है, उसी प्रकार ( तुवि-कूर्मि ) बहुत पराक्रमी ( मृती-पद्म ) शत्रुओंको हरानेवाले ( सत्यति त्या इन्द्रं ) सज्जनोके पालन करनेवाले तुम इन्द्रको ( वर्तयामसि ) हम लाते है ॥ ३ ॥

१ तुवि-कूर्मि मृती-पद्मं सत्यति त्या इन्द्रं वर्तयामसि— अत्यन्त पराक्रमी, शत्रुओंको हरानेवाले सज्जनोका पालन करनेवाले इन्द्रको हम पास लाते है ।

[ ३५५ ] ( सः पूष्यः ) वह इन्द्र मुख्य है, ( महानां क्रतुभिः ) महान् यज्ञमन्त्रके यज्ञकी सहस्यताते ( वेनः आनजे ) हविष्याप्रकी इच्छा करते हुए वह इन्द्र यज्ञमें जाता है, ( यस्य द्वारा ) जिस यज्ञके द्वारा ( धियः ) कर्मोंको करते हुए ( देवेषु पिता मनुः आनजे ) देवोंमें सबका पालन करनेवाला मनन्धील वह इन्द्र प्रकट होता है ॥ ४ ॥

[ ३५६ ] ( यदि ) जहां जिस यज्ञमें ( भ्राजमानः आश्रयः ) तेजस्वी और शीघ्र जानेवाले मत्सु ( व्याघ्रहति ) तुम पहुंचाते है, ( तत्र ) उस यज्ञमें मे ( मादिरं मधु पिचन्तः ) अत्यन्त बढानेवाले उस मधु संभारसको पीते है, और ( श्रवांसि कृष्वते ) अन्न उत्पन्न करते है, अर्थात् पानी द्रव्यकार अन्न उत्पन्न करते है ॥ ५ ॥

[ ३५७ ] ( वः ) तुम्हारे हितके लिए ( त्वं उ अप्रहर्णं ) उस उपकार करनेवाले-हिंसा न करनेवाले ( श्वसः सति ) बलके स्वामी, अप्रको स्वामी ( विश्वा-साहं ) सब शत्रुओंको हरानेवाले ( नरं शविष्ठं ) नेता और शक्तिमान् ( विश्ववेदसं ) सर्वज्ञ इन्द्रकी ( गुणोपि ) में स्तुति करता है ॥ ६ ॥

[ ३५८ ] ( जिष्णोः ) विजयी ( अश्वस्य वाजिनः ) अश्वरथी वेगवान् ( दधिक्वाणः ) दधिचाबकी स्तुति ( अकारिपं ) मने की, यह ( नः ) मुखो सुभि करत् ) हमारे मुखारि अंगोंको शक्तिताम्पन्न करता है, ( नः ) आयूषि प्रतारिषत् ) और हमारी आयु बढाता है ॥ ७ ॥

३५९ पुरां भिन्दुर्बुवा कविरमितौजा अजायत ।

इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वञ्जी पुरुद्रुतः

॥ ८ ॥ ( ऋ. १।१।४ )

इति सप्तमो वसति ॥ ७ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ स्व० ५। उ० २। पा० ५५१ (ब्रु) ॥ ]

[ ८ ]

( १-१० ) १, ३, ५ प्रियमेव आगिरसः, २, १० वासदेवो योतमः; ४ मयुच्छन्दा बहवामिन्द्रः; ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ७ अत्रिर्मौमः; ८ प्रस्कण्वः काण्वः; ९ वित् आण्वः ( अ० आगिरसो वा ) ॥ इन्द्रः; ( ६ ऋ० अग्निः )

८ उषा, ९ विश्वेदेवाः ॥ अनुष्टुप् ॥

३६० प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्दीरायेन्दवे ।

धिया वो मेघसतये पुरन्ध्या विवासति

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६९।१ )

३६१ कश्यपस्य स्वविदो यावाहुः सयुजाविति ।

ययाविश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचारय

॥ २ ॥

३६२ अर्चेत् प्राचेत् नरः प्रियमेधासो अर्चेत् ।

अर्चेन्तु पुत्रका उत पुरमिदं धृष्ण्यर्चेत्

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६९।८ )

३६३ उक्थमिन्द्राय शशस्यं वर्धने पुरुनिःषिधे ।

शक्रो यथा सुतेषु नो शरज्जर्मरुषेषु च

॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१।१५ )

[ ३५९ ] ( पुरां भिन्दुः ) शत्रुके नगरीको तोडनेवाला, ( युवाः कविः ) तरुण, ज्ञानी ( अ-मित-ओजाः ) अपरिमित फलवान्, ( विश्वस्य कर्मणः धर्ता ) सब दुःख कर्मोंको धारण करनेवाला ( पुरु-द्रुतः इन्द्रः अजायत ) अनेकोंके द्वारा प्रपतित यह इन्द्र उत्पन्न हुआ है ॥ ८ ॥

॥ यद्यं पृच्छीस्यं संड समाप्त हुआ ॥

[ २६ ] पद्विंशः खण्डः ।

[ ३६० ] हे यावको ! ( यः ) तुम ( चिन्द्रुमं इव ) तीन स्तोत्रोंके तेंगार किया गया अत्र ( वन्दद् दीराय इन्दवे ) प्रगतनीय और इन्द्रके पास ( प्र प्र ) पहुंचाओ, वह इन्द्र ( यः ) तुम्हें ( मेघसतये ) धारके अनुष्ठानके लिए ( पुरन्ध्या धिया ) निजके मुक्तिके लिए गए कर्मोंके ( आ विवासति ) इच्छ फल लेकर तुम्हारा सत्कार करता है ॥ १ ॥

[ ३६१ ] ( कश्यपस्य ) शश्वरुद्र इन्द्रके ( यी ) जो दोनों घोड़े हैं, ( ययोः ) निजके ( विश्वे अपि व्रतं ) सब धर्मों ( यज्ञं इति ) पर ही है, ऐसा ( निचारय ) निश्चय करके ( सयुजां ) के दोनों घोड़े रखने जोड़े जाने हैं, ऐसा ( स्वविदुः धीराः आहुः ) ज्ञानी और बुद्धियान् हुए बहते हैं ॥ २ ॥

[ ३६२ ] हे ( नरः ) मनुष्यों ! तुम ( अर्चेत् ) इन्द्रका सत्कार करो, ( प्र अर्चेत् ) प्रियेव रूपसे सत्कार करो, हे ( मित-ओधासः ) परम प्रेम करनेवालों ! ( अर्चेत् ) इन्द्रका सत्कार करो, हे ( पुत्रकाः ) पुत्रों ! ( पुरं इत् धृष्ण्यं ) भरनौत इन्द्रका पुत्रं करनेवाले, शत्रुको हरातेवाले इन्द्रका ( अर्चेन्तु, अर्चेत् ) सोच माया कर दें और तुम भी सत्कार करो ॥ ३ ॥

[ ३६३ ] ( पुरु-निः-षिधे इन्द्राय ) बहुतने शत्रुओंके मारा करनेवाले इन्द्रके लिए ( वर्धने उक्थं ) उत्तमं बढानेवाले शोक ( शशस्यं ) शक्रे, वह : शक्रः ) सामन्तं शत्रु इन्द्र ! ( नः ) हमारे ( सुतेषु वा शर्मणेषु ) पुत्रोंके और पित्रोंके ( यथा शरज्जर्मरुषु ) जित रीतिने उत्पन्न होते, वगैरे प्रपतते इतरे लिए शोकोंके बहो ॥ ४ ॥

- ३६४ विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य श्वसः ।  
एवंश्च चर्षणीनामृती हुक् रयानाम् ॥ ५ ॥ ( ऋ ८।६।१४ )
- ३६५ स या शस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य श्रमतः ।  
ऊती म बृहतो दिवो द्विषो अश्वो न तरति ॥ ६ ॥ ( ऋ ६।२।१४ )
- ३६६ विभोष्ट इन्द्र राधमो विम्बी रातिः श्रतक्रतो ।  
अया नो विश्वचर्षणे पुन्नश्सुदश मश्रय ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।२।८।१ )
- ३६७ वयश्चित् पत्त्रिणो द्विषाचतुष्पादजुनि ।  
उपः प्रारक्षन्धनु दिवा अन्तेभ्यस्परि ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।४।२।२ )
- ३६८ अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिव ।  
कद्र श्रतं कद्रमृतं का प्रतना व आहुतिः ॥ ९ ॥ ( ऋ १।१०।११ )

[ ३६४ ] ( विश्वानरस्य ) सब शत्रुओंके सैनिकोंपर आक्रमण करनेवाले अथवा विश्वके नेता (अनामतस्य ) शत्रुके आगे बभी न शुकनेवाले ( शत्रुसः पति ) बलके स्वामी इन्द्रको, हे शस्ते ! ( यः ) तुम्हारे ( चर्षणीनां पथेः ) सैनिकोंके आक्रमणके लिए होनेवाले गोरके सम्य ( रथानां ऊती हुये ) रथोंके सरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ॥ ५ ॥

[ ३६५ ] ( यः ) जो ( श्रमतः मर्तस्य ) शान्त मनुष्यकी ( धियः ते धिया ) तेजसकी धीकनेवाली उस मृतिकी सहायकके ( नरः स्वरा ) मनुष्य भिन्न होता है, ( सः ) यह मनुष्य ( बृहतः दिवः ऊती ) महान् दिव्य सरक्षणके पुत्र होकर ( अंशः न ) पार्श्वे सुरक्षित होनेके सम्य ( द्विषः तरति ) शत्रुओंके सुरक्षित होता है ॥ ६ ॥

१ सः बृहतः दिवः ऊती, अंशः न, द्विषः तरति— जो मनुष्य इस विद्याल सरक्षणके पुत्र होता है, यह जैसे पारसे सुरक्षित होता है उसी प्रकार शत्रुओंके भी सुरक्षित होता है ॥ ६ ॥

[ ३६६ ] हे ( श्रतक्रतो इन्द्र ) हे संकडों पराक्रम करनेवाले इन्द्र ! ( विभोः राधमः ) बहुताये पथोंके ( ते रातिः विम्बी ) तेरे बान महान् हैं, ( अथ ) इसके बाद ( विश्व-चर्षणे सु-दश ) हे सर्वदृष्टा और उत्तम बान देनेवाले इन्द्र ! ( नः पुन्न-मंश्रय ) हमें यव देकर महान् कर ॥ ७ ॥

[ ३६७ ] हे ( अजुनि उपः ) सुभ यगंकी उपे ! ( ते कतन्धनु ) तेरे आगेके बाध ( द्विषाद् चतुष्पाद् ) मनुष्य और पशु ( पत्त्रिणः वयः चित् ) तथा पक्षीवाले पक्षी भी ( दिवः अन्तेभ्यः ) आकाशके अन्ततक ( परि प्रारन् ) ऊपर इच्छानुसार उड़ते हैं ॥ ८ ॥

[ ३६८ ] हे ( देवा ) देवी ! ( ये अमी ) जो इन ( दिव आरोचने ) दिनोंके प्रकाशित होनेपर ( मध्ये स्थन ) तुम उस आकाशमें रहते हो, ( यः श्रतं कद्र ) तुम्हें वहा क्या क्या प्राप्त होता है ? अथवा क्या ( यः प्रतना आहुतिः का ) वहा तुम्हें पहलेके समान कोई आहुति भी मिलती है ? ॥ ९ ॥

३६९ ऋच५ साम यजामहे धाम्यां कर्माणि कृण्वते ।

वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः

॥ १० ॥

इति अष्टमी दशति ॥ ८ ॥ द्वितीयं खण्ड ॥ २ ॥ इत्यनुष्टुभ ॥ [ स्व० ७ । उ० ३ । पा० ५४ । जो ॥ ]

[ ९ ]

( १-११ ) १ रेम काश्यप, २ सुवेदा शैलूषि, ३ वामदेवो गौतम, ४, ७, ८ सव्य आङ्गिरस, ५ विश्वामित्रो गाविन, ६ ऋण आङ्गिरस, ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्य, १० मेधातिथि काण्व ( ऋ० मान्वाता यौवनाश्व ), ११ कुत्स आङ्गिरस ॥ इन्द्र, ९ धावपृथिवी ॥ जगती, १ अति जगती, १० महापृथिवी ॥

३७० विश्वाः पृतना अभिभूतं नरः सजुस्त्वत्क्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजस ।

ऋत्वं वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरस तरस्विनम् ॥ १ ॥ ( ऋ ८।१७।१० )

३७१ अत्रे दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्दस्यु नये विवेरपः ।

उमे यत्वा रोदसी धावतामनु स्यसात् शुष्मात्पृथिवीं चिदद्रिवः ॥ २ ॥ ( ऋ १०।१४।१ )

३७२ समेत विश्वा आजसा पतिं दिवो य एक इन्द्ररतिविजिज्जनाम् ।

स पूर्यो नूतनमाजिगीष त वत्सनीरनु वावृत एक इत् ॥ ३ ॥

[ ३६८ ] ( याभ्या कर्माणि कृण्वते ) जिसकी सहायतासे यज्ञादि कर्म किए जाते हैं, ( ऋच साम यजामहे ) उस ऋचा और सामको गाकर हम यज्ञ करते हैं, ( ते ) वे ऋच मंत्र और साम मंत्र ( सदसि विराजत ) यज्ञ मन्थर्यसे विराजमान हैं, और वे ही ( देवेषु यज्ञ वक्षत ) देवोंने यज्ञको वृक्षते हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ छन्दोसर्षा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २७ ] सप्तविंदा खण्ड ।

[ ३७० ] ( विश्वा पृतना. नरः ) सब दायुसेनाके नेता और सन्धके साथ ( सजु ) एकमत होनेके बाद वे ( अभि-भू-तर इन्द्र ततश्चु ) दायुको घुरी तरह हरानेवाले इन्द्रको शस्त्रास्त्राति युक्त करते हैं, ( च राजसे जजनुः ) और अधिक प्रशंसित करते हैं ( उत ) और ( पत्ये वरे स्थेमनि ) धनमें श्रेष्ठ स्थानपर ऋत्विग् बंधकर ( आसुरी ) दायुको माननेवाले उग्र ओजिष्ठ तरस तरस्विन ) उग्र, वीर, सामन्थवान्, प्रतपी और शीघ्रतासे कार्य करनेवाले इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[ ३७१ ] हे ( अद्रि-य ) पृथ्वारी इन्द्र ! ( ते प्रथमाय मन्यवे ) तेरे यहाँ प्रथम म ( अत् दधामि ) धरकर जाता हूँ ( यत् दस्यु अहन्य ) क्योंकि वह योग दुष्टोंको मारता है, और ( नये शप तिने ) मनुष्योंके सिग् हित करी पानीकी प्रवाहित करता हूँ, ( उमे रोदसी ) रोनें ही सुलोक और पृथिवीकी ( यत्वा अनु धावता ) अब तेरे अनुकूल होकर गति करते हैं और ( पृथिवीं चिदद्रिवः ) पृथिवी भी ( ते शुष्मात् भ्यसात् ) तेरे बलसे भरपूर कांपने लगती है ॥ २ ॥

[ ३७२ ] हे ( विश्वा ) सब प्रजाओ ! ( आजसा दिवः पतिं ) अपने पतिको इन्द्र सुलोका स्वामी हैं । उसकी ( स्तमेन ) सब एक स्थानपर मिलकर स्तुति करी, ( य एक इत् ) जो अकेला ही ( जनाना वसतिविः भू ) मनुष्योंका धर्मिकने स्थान ग्रहण है, ( पूर्यः स्वः ) यह पुराण पुरण इन्द्र ( आजिगीष त नूतन ) अपने दायुओंकी औततरी इन्द्र को मने चोरोंकी ( एक इत् ) अकेला ही ( वत्सनीः अनुवापृते ) शिष्यके भाग्ये आने से जाता है ॥ ३ ॥

- ३७३ इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभुवसो ।  
 न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सवत्क्षणीरिव प्रति तद्दयं नो वच ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१७।४ )
- ३७४ चर्यणीश्रुतं मघवानमुक्थयाश्मिन्द्र गिरो बृहतीरभ्यनूपत ।  
 वानुधानं पुरुहूतं सुवृत्तिभिरमर्यै जरमाणं दिवेदिवे ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।२।१।१ )
- ३७५ अच्छा च इन्द्रं मतयः स्वयुवः सप्रीचीर्विश्वा उशतीरनूपत ।  
 परि ध्वजन्त जनया यथा पतिं मयं न शुन्धुं मघवानंमृत्यये ॥ ६ ॥ ऋ. १।०।४।२।१ )
- ३७६ अमि त्वं मेपं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गोभिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।  
 यसा धापो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।२।१।१ )
- ३७७ त्वंसु मेपं महया स्वाविदंशतं यस्य सुयुवः साममीरते ।  
 अत्यं न वाजं ह्वनस्यदं रथमिन्द्रं ववृत्त्यामवसे सुवृत्तिभिः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।२।१।१ )

[ ३७३ ] ( प्रभुवसो पुरुष्टुत इन्द्र ) हे अत्यधिक धनवान् और बहुतेसे प्रशंसित इन्द्र ! ( ये ) जो हय ( त्या आरभ्य चरामसि ) तेरा आश्रय लेकर कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, ( ते इमे वयं ते ) वे ये हम तेरे ही हैं, हे ( गिर्वणः ) प्रशसनीय इन्द्र ! ( त्वद-अन्यः ) तुझने निज और कोई दूसरा ( गिरः न हि स्वयत् ) स्तुतिके योग्य नहीं है, ( तव् ) इतलिए ( नः वचः ) हमारी स्तुतिवाली ( क्षोणीः इव ) पुण्यो जैसे सबको स्वीकार करती है, उस प्रकार ( प्रति हयं ) स्वीकार कर ॥ ४ ॥

[ ३७४ ] ( गृहती गिरः ) हमारी बहुत स्तुति ( चर्यणी-श्रुतं ) सब मनुष्योंका भरणपोषण करनेवाले ( मघवानं उन्नय्यं ) धनवान् और प्रशसनीय (वानुधानं पुरुहूतं ) सब अर्थनोंको बढ़ानेवाले और बहुतेसे प्रशंसित ( अमर्यै ) अमर, और ( सुवृत्तिभिः दिवे दिवे ) उत्तम स्तोत्रोंसे प्रतिदिन ( जरमाणं ) प्रशंसित ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( अमि अनुपत ) प्रशसा करती है ॥ ५ ॥

[ ३७५ ] ( यथा जनयः मयं पतिं न ) जैसे स्त्रियों अपने पतिका ( परिध्वजन्त ) आलिंगन करती हैं, उसी प्रकार ( ऊतये ) अपने सरसणके लिये ( शुन्धुं मघवानं इन्द्रं ) गृह और धनवान् इन्द्रको ( स्वा-युवः ) आत्माकी शक्तिको बढ़ानेवाली ( सप्रीचीः ) एकजति हुई हुई ( विश्वाः उशती मतयः ) सब उन्नतिको इच्छा करनेवाली हमारी स्तुतिवा ( अच्छा अनुपत ) प्रशसा करती हैं ॥ ६ ॥

[ ३७६ ] ( त्वं मेपं ) उस शत्रुकी हारनेवाले ( पुरु-हूतं क्रुग्मियं ) बहुतेके द्वारा प्रशंसित, वेद भजोसे जिसकी स्तुति को जानी है, ऐसे ( यसाः अर्णवं ) धनके समुद्र ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( गोभिः अमि मदत ) स्तुतिसे आनन्दित करो, ( यसा मानुषं ) जिसके मनुष्योंके लिए हितकारी कार्य ( धापो न ) छुलोकसे समान ( विचरन्ति ) चारों ही ओरसे प्रभावशाली होते हैं, अतः ( भुजे ) भोग मिलें इतलिए ( मंहिष्ठं विप्रं ) महान् सन्तः इन्द्रकी ( अमि अर्चत ) पूजा करो ॥ ७ ॥

[ ३७७ ] ( यसा सुयुवः ) जिसके उत्तम स्थान ( दातं साकं ईरते ) सैकड़ों एक समयमें ही उत्पत्ति करते हैं, ( त्वं मेपं स्वाविदं रथं ) उस शत्रुओंसे स्वर्ण करनेवाले, धन देनेवाले रथके समान इच्छित स्थानमें पहुँचनेवाले ( अत्यं धानं ) वेगसे दौड़नेवाले घोड़के समान ( ह्वन-स्यदं ) बढ़ने स्थानपर जानेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रके पशुको ( अवसे ) अपने सरसणके लिए ( सु-वृत्तिभिः महय ) उत्तम स्तोत्रोंसे प्रकट करो, और ( दात आश्रयवृत्त्यां ) स्तुति संकटो वार करो ॥ ८ ॥

- ३७८ घृतवतीं सुवनानामभिधियावीं पृथ्वीं मधुदुधे सुपेक्षसा ।  
 द्यावापृथिवीं वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजर भूरिरेतसा ॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।७०।१ )
- ३७९ उमे यदिन्द्र रोदसी आपमाथोपा इव ।  
 महान्तं त्वा महीनां च सम्राजं चर्षणीनाम् ।  
 देवीं जानित्र्यजीवनद्रुद्रा जानित्र्यजीवनम् ॥ १० ॥ ( ऋ. १०।१३।१ )
- ३८० प्र मग्दिने पितृमदचैता वचो यः कृष्णममीं निरहन्नुजिघ्रसा ।  
 अवस्मयो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥ ११ ॥ ( ऋ. १।१०।१।१ )
- इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ स्व० १४ । उ० ७ । पा० ९३ । पि ॥ ]  
 ॥ इति जगत्यः ॥

[ १० ]

( १-१० ) १ नारदः काण्वः; २,३ गोदृक्त्वववृषितनी काण्वायनी; ४ पर्वतः काण्वः; ५-७, १० विरघमना वैषम्यः;  
 ८ नृपेय आर्गिरसः; ९ गीतमो रद्रूपणः ॥ इन्द्रः ॥ उजिष्क ॥

- ३८१ इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीप उक्थयस् ।  
 विद वृषस्य दक्षस्य महाश्हि यः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।१ )

[ ३७८ ] ( द्यावापृथिवी ) ये सुलोक और पृथिवीलोक ( घृतवती ) जलवाले, ( सुवनानां अभिधिया ) तब प्राणिपौत्रो आथय देनेवाले ( उर्चीं पृथ्वीं ) महान् और विलीर्ष ( मधु दुधे ) मीठा जल देनेवाले ( सु-पेक्षसा ) उत्तम रूपसे युक्त ( वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते ) ईश्वरको पारकषाभितो रहनेवाले ( अजर भूरि रेतसा ) जरारहित, मिल और उत्तम शौर्यसे सम्पन्न हैं ॥ ९ ॥

[ ३७९ ] हे इन्द्र ! ( उमे रोदसीं ) सुलोक और पृथिवीलोक इन दोनोंको ( यम् ) जो तू ( उपा इव ) उपाने तमाम धरने तेजसे ( आ पमाथ ) भर देता है ऐसे ( महीनां महान्तं ) महावृषे भी महान् ( चर्षणीनां सम्राजं ) मनुष्योंमें सम्राट् ( त्या इन्द्रं ) तुम इन्द्रको ( देवीं जानित्रीं ) देवमाता अदितिनै ( अजीजनन् ) उत्पन्न किया, ( भद्रा जानित्रीं अजीजनन् ) बन्ध्याण करनेवाली देवीने उत्पन्न किया ॥ १० ॥

( वेधं ) हे ऋत्विगो ! ( मग्दिने ) मत्सिनय इन्द्रको ( पितृमन् वज्रः अ चर्षितं ) हाथियाप्रणे वृषणं रज्जुं बरो, ( यः ) जिस इन्द्रने ( क्रान्तिभयना ) ऋत्विग्बरो सहायतासे ( कृष्ण-ममीः ) कृष्ण अगुप्तने गर्भवती त्रिपरीने इच्छते साध ( निरहन् ) जानते मार दिया, उम ( वज्र-दक्षिणं ) बायें हाथमें वज्र धारण करनेवाले ( अवस्मन्ते ) मरुतींको सेताने साथ रहनेवाले ( वृषणं ) बलवान् इन्द्रको अवश्ययः ) अने संरक्षणको इच्छा करनेवाले हम ( मन्ध्याय हुवेम ) मित्रतासे सिद्ध बुझाते हैं ॥ ११ ॥

॥ यहाँ सखाइन्द्रयां वज्रद सम्रात हुआ ॥

[ ३८० ] मग्दिनाः स्वण्डः

[ ३८१ ] हे इन्द्र ! ( सोमेषु सुतेषु ) सोमरसोंको निष्कारनेके बाद ( वृषमथ दक्षस्य वृषे ) बहानेवाले बगवो प्राल करनेके लिए ( क्रतुं उक्थयं पुनीपे ) यत् और साम गान मुदकर उठे प्र पवित्र करना है, क्योंकि हे इन्द्र ! ( ता महान् हि ) बह वृ महान् हैं ॥ १ ॥

- ३८२ तमु<sup>३२ ३१</sup> अमि<sup>२९</sup> प्र गायत<sup>३१ ३ ३२</sup> पुरुहूतं<sup>३१</sup> पुरुष्टुतम् ।  
इन्द्रं<sup>३१</sup> गीभिस्तापिपमा<sup>३१ ३ ३२</sup> विवासत ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१५।१ )
- ३८३ तं<sup>३१</sup> ते<sup>३१</sup> मर्दं<sup>३१</sup> गृणीमसि<sup>३१</sup> वृषणं<sup>३१</sup> पृशु<sup>३१</sup> सासहिम् ।  
उ लोककृत्नुमद्रिवो<sup>३१</sup> हरिश्रियम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१५।४ )
- ३८४ यत्सोममिन्द्र<sup>३१</sup> विष्णवि<sup>३१</sup> यद्वा<sup>३१</sup> घ वित आप्त्ये ।  
यद्वा मरुत्सु<sup>३१</sup> मन्दसे<sup>३१</sup> समिन्दुभिः<sup>३१</sup> ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१२।१६ )
- ३८५ यद्दु<sup>३१</sup> मधोमोदिन्तरं<sup>३१</sup> सिञ्चाध्वषो<sup>३१</sup> अन्धसः ।  
एषा हि<sup>३१</sup> वीरस्तवते<sup>३१</sup> सदाविधः<sup>३१</sup> ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१४।६ )
- ३८६ एन्दुमिन्द्राय<sup>३१</sup> सिञ्चत<sup>३१</sup> पिपाति<sup>३१</sup> सोम्यं<sup>३१</sup> मधु ।  
प्र राधांसि<sup>३१</sup> चोदयते<sup>३१</sup> महित्वना<sup>३१</sup> ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।१४।३ )
- ३८७ एतो<sup>३१</sup> निन्द्रं<sup>३१</sup> स्तवाम<sup>३१</sup> सखायः<sup>३१</sup> स्तोम्यं<sup>३१</sup> नरम् ।  
कृषीषीं<sup>३१</sup> विश्वा<sup>३१</sup> अभ्यस्त्येक<sup>३१</sup> इत् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१४।१९ )

। ३८२ ] हे स्तुति करनेवाले ! ( पुर-इतं ) अनेकीति गुनाये जानेवाले ( पुर-स्तुतं ) ओर अनेकीते प्रशंसित होनेवाले ( तं उ अमि प्रगायत ) उस इन्द्रकी ही बार बार स्तुति करो, ( तवियं इन्द्रं ) महान् इत इन्द्रकी ( गीभिः वा विवासत ) मनोसे आराधना करो ॥ २ ॥

[ ३८३ ] हे ( आद्रि-यः ) बलपारी इन्द्र ! ( ते ) तेरे ( तं ) उस ( वृषणं ) बलवान् ( पृशु सासहिं ) संधामने शत्रुको हारनेवाले ( लोक कृत्नुं ) मनुष्यके लिए हितकर काम करनेवाले ( हरि-श्रियं उ ) योडे नितके पास शोभित होते हैं, ऐसे ( मर्दं ) सोमपानसे उत्पन्न हुए इत उत्साहकी ( गृणीमसि ) हम प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

[ ३८४ ] हे इन्द्र ! यद्यपि ( विष्णवि ) विष्णुके अन्तरे बाध होनेवाले यतमें ( यत् सोमं ) जो सोमरस तुने पिना ( यद् वा ) अथवा ( आप्त्ये ) आप्त्ये मिले : आप्त्ये मिलने यतमें ( यद्वा मरुत्सु ) भयवा मरुतके साथ अथवा ( मन्वसे ) अन्य यतीर्षे सोम पीकर आवन्तित होना है, तो भी तू ( इन्दुभिः स ) हमारे सोमरस पीकर प्रसन्न हो ॥ ४ ॥

[ ३८५ ] हे ( अध्वर्यो ) ऋत्विजो ! ( मधोः अन्धसः ) मोठे सोमके इत ( मर्दि-तरं इत् ) मान्य देनेवाले रसको ( वा सिञ्च ) इन्द्रको अर्पण करो क्योंकि वह ( वीरः सदा-बुधः ) पराक्रमी और सदा बड़ाजाना इन्द्र ( एष हि स्तवते ) ही स्तोत्र पढ़नेवालोंके द्वारा प्रशंसित होता है ॥ ५ ॥

[ ३८६ ] हे ऋत्विजो ! ( इन्द्राय इन्दुं सिञ्चत ) इन्द्रके लिए सोमरस दो, उसने बाध ( सोम्यं मधु पिपाति ) मोठा सोमरस बहु पीता है, और बहु अयनी ( महित्वना ) महलालसे ( राधांसि प्र चोदयते ) धन देता है ॥ ६ ॥

[ ३८७ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( तु एतं ) दीप्रभाओ, ( तं स्तोम्यं नरं स्तवाम ) उस प्रशंसनीय नेता इन्द्रकी स्तुति करें, ( ए. एकः इत् ) जो अकेला ही ( विश्वा-सृष्टीः अभि भस्वि ) सब शत्रुतेजसोंकी हरता है ॥ ७ ॥



- ३८८ इन्द्राय साम मायते विप्राय बृहते बृहत् ।  
 ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ८ ॥ ( ऋ ८।९।८।९ )
- ३८९ य एक इद्विदयते वसु मताय दाशुषे ।  
 ईशानो अप्रतिष्कृत इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥ ( ऋ १।८।१।७ )
- ३९० सखाय आ शिपामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।  
 स्तुप ऊ पु वो नृत्तमाय धृष्यावे ॥ १० ॥ ( ऋ ८।९।४।९ )
- इति यशामो वराति ॥ १० ॥ इति षतुषं सप्त ॥ ४ ॥ [ १ब० १०। उ० ४। पा० ६२। ला ॥ ]  
 इति षतुषप्रपाठके द्वितीयोऽर्थे, षतुष प्रपाठकश्च समाप्त ॥

मन् पञ्चमः प्रपाठकः ।

[ १ ]

- ( १-८ ) १ प्रयाथो धीर काण्व, २ भरद्वाजो ब्राह्मस्यत्, ३ नृमेघ अष्टगिरिस, ४ पर्वत काण्व, ५ ७ इतिन्विकि काण्व, ६ विद्वमना वेपथय, ८ कतिप्यो मेम्रावर्षणि ॥ इन्द्र, ५, ७ आदित्या ॥ उरिणक ८ विरादुणिक् ॥
- ३९१ गुणे तदिन्द्र ते ष्वष उपमां देवतातये ।  
 यद्वक्षसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥ १ ॥ ( ऋ ८।९।१।८ )
- ३९२ यस्य त्यच्छम्बर मदे दिवांदासाय रन्धयन् ।  
 अयक्षसोम इन्द्र ते सुतः पिप ॥ २ ॥ ( ऋ ६।१२।१ )

[ ३८८ ] हे उवगातामो ! ( विप्राय ) शानी ( बृहते ब्रह्मकृते ) महान् स्तुति जितके लिए की जाती है ऐसे ( विपश्चिते ) विद्वान् और ( पनस्यते ) स्तुतिके योग्य ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( बृहत् साम मायते ) बहुत सामके सामना मान करते ॥ ८ ॥

[ ३८९ ] ( य एक इत् ) जो जनेला ही ( दाशुषे मताय ) बानगोल वसुध्वने ( वसु विदयते ) वन देता है ( अप्रतिष्कृत इन्द्र ) जितकर प्रतिहार कोई कर नहीं सकता, एसा यह इन्द्र ( अङ्ग ईशान ) हे शिप ! शमीका स्वामी है ॥ ९ ॥

[ ३९० ] हे ( सखाय ) मित्रो ( वज्रिणे ) ध्वजपारी इन्द्रको ( ब्रह्मेन्द्रायामहे ) स्तोत्रोक्ति स्तुति करते हुं, इससे हम आगोत्रीय मांगते हैं ( य ) तुम सबके लिए ( नृत्तमाय धृष्यावे स्तुस्तुपे ) धव्य बीर और नम्रुषीका वरापत्र करनेवाले इन्द्रको मैं स्तुति करता हूँ ॥ १० ॥

॥ यथा अट्टाहसया शब्द समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] एकोनर्षिंश स्तुण्ड ।

[ ३९१ ] हे इन्द्र ! ( ते सत् दाय ) उस तेरे सामर्थ्यको ( उपमा देवतातये गुणे ) पानके यज्ञमें स्तुति करत है ( शचीपते ) इन्द्र ! तू ( ओजसा वृत्र हंसि ) अपने सामर्थ्यके वृत्रको मारता है ॥ १ ॥

[ ३९२ ] हे इन्द्र ! ( यस्य मदे ) जित सोमरगको पीकर उसका प्राण होनेपर ( दिवांदासाय ) त्रिवेदात्मके लिए ( यन् शम्बरं ) पात शम्बरगुरुको ( अरन्धयन् ) जानते मार वाला ( स अयं वष्ट मह सोम ) सोमर ( ते स्तुत ) तेरे लिए तय्यार किया है उसे तू की ॥ २ ॥

- ३९३ इन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदशोद्य ।  
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।९।८।४ )
- ३९४ य इन्द्र सोमपातसो मदः शविष्ठ चेतति ।  
येन हृत्सि न्याश्त्रिण तमीमहे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।९।९।१ )
- ३९५ तुचे तुनाय वरसु नो द्रावीथ आयुर्जीवसे ।  
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९।८।१८ )
- ३९६ वेत्था हि निर्र्क्रीतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।  
अहरहः शुन्ध्युः परिपदागिव ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।९।१०।२४ )
- ३९७ अपामीवामप सिधमप सेधत दुर्मतिम् ।  
आदित्यासो युवातना नो अंहसः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।९।८।१० )
- ३९८ पिषा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुपाव हर्षमाद्रिः ।  
सातुवाहुभ्यां सुयता नावां ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।२।१।१ )
- इति प्रथमा वसति ॥ १ ॥ पञ्चमः खण्ड ॥ ५॥ इत्युष्णिह । ख० ५ । उ० २ । ष० ९१ । क ॥ ]

[ ३९३ ] ( प्रिय ) हे सवके प्रिय । ( सत्राजिद् ) एक साथ प्रयुक्तोंको जोतनेवाले ( अ-भ्येद्य ) किसीसे न हारनेवाले इन्द्र । ( गिरिः न ) पर्वतके समान ( विश्वतः पृथु ) चारों ओरसे विगत ( दिवः पतिः ) द्युलोकका स्वामी तु ( नः आगदि ) हमारे पास आ ॥ ३ ॥

[ ३९४ ] हे इन्द्र । ( यः सोमपात-सोमः ) तू अत्यधिक सोम पीनेवाला और ( शविष्ठः ) बसवान् है, वह तेरा ( यः मदः ) उल्लाह तुझे ( चेतति ) जगता है, ( येन ) जिस उल्लाहते ( अत्रिणं नि हंसि ) काज राधातीकी मारता है, ( तं ईमहे ) उस तेरी हम प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

[ ३९५ ] हे ( सुमहसः आदित्यासः ) महान् आविलयो ! ( नः तुचे ) हमारे बुचके और ( तुनाय ) पीनेके ( जीवसे ) शीर्षजीवनके लिए ( तद् द्रावीथ आयुः ) यह शीर्ष आयु प्राप्त हो, ऐसा ( तु कृणोतन ) बचो ॥ ५ ॥

[ ३९६ ] हे ( वज्र-हस्त ) हाथमें बज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! ( निर्र्क्रीतीनां परिवृजम् ) विज्र करनेवालोंकी दूर करनेका मार्ग तू । ( वेत्था हि ) जानता ही है, इसलिये ( अहः अहः शुन्ध्युः ) प्रतिदिन स्वर्गकी शृङ्ख रत्ननेवाला मनुष्य जिस प्रकार ( परि-पदां ह्य ) आपसियोंको-दोगदिकोंको-दूर करता है, उसी प्रकार तू विपत्तियोंको दूर करता है ॥ ६ ॥

[ ३९७ ] हे ( आदित्यासः ) आदित्यो ! ( अमीनां अप सेधत ) हमारे दोगोंको दूर करो, ( दुर्मतिम् ) मनुष्योंकी दूर करो, ( युवातना ) बुद्धयुक्तको दूर करो, और ( नः अंहसः ) हमें पापति दूर रखो ॥ ७ ॥

[ ३९८ ] हे इन्द्र । ( सोम पिषा ) सोमरस पी, वे सोमरस ( त्वा मन्दतु ) तुझे आनन्दित करो, हे ( हर्ष-माद्रिः ) पीछे पासमें रखनेवाले इन्द्र । ( ते सातुः ) तेरे लिए सोमरस निकालनेवालेका ( याहुभ्यां अयां न सुयतः ) रस्तीसे पीनेके समान अच्छी तरह रचना हुआ ( अयं माद्रिः ) यह पाथर तेरे लिए ( सुपाव ) सोमरस निकालता है ॥ ८ ॥

[ २ ]

( १-२० ) सोमरिः काण्वः ; ७, ८ नृमेध आधिरस ॥ इन्द्र, ३, ६ मरुत ॥ ककुप् ॥

३९९ अ॒भ्रातृ॒व्यो अना त्वमनापि॒रिन्द्र॑ जनुपा सनादासि । युध॑दापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

( ऋ. ८।२।१२ )

४०० यो न इ॒दमि॒दं पुरा॑ प्र यस्य आ॒निनाय॑ तस्य व स्तु॒पे । सखाय॑ इन्द्र॒मृत॑पे ॥ २ ॥

( ऋ. ८।२।१९ )

४०१ आ गन्ता॑ मा रिप॒ण्यत॑ प्रस्था॒वाना॑ माप॒ स्थात॑ समन्यवः । दृढा॑ चि॒द्यमथि॑ष्णवः ॥ ३ ॥

( ऋ. ८।२।०१ )

४०२ आ पा॒शय॑मिन्द्र॒वेऽश्व॑पते॒ भोप॑ते उ॒वरा॑पते । सोम॑श्च सोमपते॒ विष ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।२।१२ )

४०३ त्वया॑ इ॒ श्विद्यु॑जा वयं प्रति॒ श्वसन्ते॑ घृ॒षभ॑ शु॒वीमहि॑ । स॒धस्य॑ जनस्य॒ गोमतः॑ ॥ ५ ॥

( ऋ. ८।२।११ )

४०४ गा॒वाधि॑द्वा समन्यवः सजा॒त्येन॑ मरुतः स॒न्यवः । रि॒हते॑ ककु॒भो मि॑धः ॥ ६ ॥

( ऋ. ८।२।१९ )

[ ३० ] शिवाः खण्डः ।

[ ३९९ ] हे इन्द्र ! ( त्वं जनुपा अ॒भ्रातृ॒व्यः ) तू जन्मसे ही अनुपहित है, ( अ-ना ) तुमपर शासन करनेवाला कोई नहीं है, ( सनात् अनापिः ) सदाते ही भाईरहित है, ( युधा हव् ) युद्धसे तू ( आपित्वं इच्छसे ) भाइयोंको पानेकी इच्छा करता है, भक्त हो ऐसी इच्छा करता है ॥ १ ॥

१ अ-भ्रातृव्य — भाईचन्मोंके श्रापदेते मुक्त ।

२ अनापिः — अकेला, जिसकी सहायताके लिए कोई भी भाई नहीं है ।

[ ४०० ] हे ( सखायः ) मित्रों ! ( य ) जिस इन्द्रने ( पुरा ) पहले ( इदं वस्यः ) यह धन ( नः प्र आनिनाय ) हमें दिया, ( तं उ इन्द्र ) उसी इन्द्रकी ( यः उतये स्तुपे ) तुम्हारे सरक्षणके लिए मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[ ४०१ ] हे ( प्रस्थावानः ) गतिमान् मन्त्रों ! ( अगन्त ) हमारे पास आओ, ( मा रिपण्यत् ) हमें हानि मत पहुँचाओ, ( स-मन्यवः ) हे उदात्तों कीपते ! ( दृढा चित् यमथिष्णवः ) बलवान् शत्रुओंको भी तपानेवाले मन्त्रों ! ( मा अपस्थात ) हानिसे दूर मत रहो ॥ ३ ॥

[ ४०२ ] हे ( श्वय-पते ) घोसोंके स्वामी ! ( गो-पते ) गोपोंके स्वामी ! और हे ( उवरा-पते ) भूमिके पालक इन्द्र ! ( इन्द्रवे ) सोमरस पीनेके लिए ( अयं ) यह सोमरस निकाला है, ( आयासि ) आ और हे ( सोम-पते ) सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! ( सोमं विष ) सोमरस पी ॥ ४ ॥

[ ४०३ ] ( घृषभ ) धलवान् इन्द्र ! ( गोमतः जनस्य संख्ये ) गाव पालन करनेवाले लोगोंके समूहमें ( श्वसन्तं ) कूर कर्म करनेके कारण लम्बी लम्बी तास लेनेवाले शत्रुओं ( स्यया युजा ) तेरी सहायतासे ( इ श्वित् ) ही ( प्रति शुषीमहि ) भीष्य उत्तर देकर उल्लेख हूँ ॥ ५ ॥

[ ४०४ ] ( समन्यवः ) समान चीतिते उदात्त मन्त्रों ! ( गायः चित् ह ) वे गायें भी ( स-जात्येन स्वगन्धः ) एक जातीय होनेके कारण परस्पर बहिनें हैं, मैं ( ककुभः ) अनेक विद्याओं में घूमती हुई ( मिध रिहते ) परस्पर एक दूसरेकी चाटती हूँ ॥ ६ ॥

१ गायः सजात्येन सवन्धय ककुभः मिधः रिहते — गायें सजातीय होनेके कारण एक दूसरेकी बहिन हैं, वे नापा देवोंमें घूमती हुई परस्पर एक दूसरेकी चाटती हैं, उसी प्रकार मनुष्योंकी भी एक दूसरेसे प्रेम करना चाहिए ।



- ४१० इत्या हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।  
श्विष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमचेन्नतु स्वराज्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।१ )
- ४११ इन्द्रो मदाय वावृधे अन्वसे वृत्रहा नृभिः ।  
तमिन्महरस्वाजिपूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविपत् ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।८।१ )
- ४१२ इन्द्र तुभ्यमिदद्विवाणुर्त्तं वज्रिन्वीर्यम् ।  
यद्द्वं स्य मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधीरचेन्नतु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।८।१ )
- ४१३ प्रेष्ठमीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यश्सते ।  
इन्द्र नृग्नश्चि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽचक्रतु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८।१ )
- ४१४ यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।  
युह्र्वा मद्व्युता हरी कश्हनः कं वसो दधोऽस्माद्इन्द्र वसो दधः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८।१ )

[ ४१० ] हे ( श्विष्ठ वज्रिन् ) बलवान् और वज्रधारी इन्द्र ! ( इत्या हि ) इस प्रकार ( सोमे मद् ) सोम-रताने उस्ताह ब्रह्मनेवाले गुण हैं, इसलिए उनके ( वर्धनं ब्रह्म चकार ) गुणवर्धन करनेवाले ये स्तोत्र बनाये हैं, ( स्वराज्यं अनु अर्चन् ) स्वराज्यको लक्ष्य करके ( पृथिव्याः अ-हिं ) पृथिवीपर कम न होनेवाले शत्रु ( निः शशाः ) बिल्कुल बन्ध हो जायें, ऐसे करना चाहिए ॥ २ ॥

[ ४११ ] ( वृत्र-हा इन्द्रः ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रका यश ( मदाय शब्दसे ) आनन्द और उस्ताहको प्राप्त करनेके लिए ( नृभिः वावृधे ) मनुष्यके द्वारा बढाया जाता है, इस कारण ( ते नृति इत् ) उस रक्षण करनेवाले इन्द्रको ही हम ( महत्सु भाजिषु ) महान् मुर्दोंमें और ( अर्भे ) छोटे मुर्दोंमें ( हवामहे ) बुलाते हैं, ( सः वाजेषु नः प्राविपत् ) यह मुर्दोंमें हमारा सत्पण करे ॥ ३ ॥

[ ४१२ ] हे ( अग्नि-यः वज्रिन् इन्द्र ) परबतपर रहनेवाले वज्रधारी इन्द्र ! ( तुभ्यं इत् वीर्यं अनुर्त्तं ) तेरा ही सामर्थ्य शत्रुओंसे पराजित नहीं हो पाता, ( यत् ह ) जो निश्चयसे ( स्वराज्यं अर्चन् अनु ) स्वराज्यकी अर्चना करने-वालोंको उपयोगी है ऐसे सामर्थ्यसे ( मायिनं मृगं स्यं ) कपटसे लड़नेवाले, धोखे करके मारने योग्य वृत्रको हूँ ( तव मायया अवृधे ) अपने छल और कपटके प्रयोगसे ही मारता हूँ ॥ ४ ॥

[ ४१३ ] हे इन्द्र ! ( प्रेष्ठि ) शत्रुपर चढाई कर ( अमीहि ) चारों ओरसे हमला कर, ( धृष्णुहि ) शत्रुओंका नाश कर ( ते वज्रः न नियेसते ) तेरा वज्र कम दक्षितवाला नहीं है, ( ते शयः नृग्नं ) तेरा बल शत्रुओंको मुकाने-वाला है, ( हि स्व-राज्य अनु अर्चन् ) स्वराज्यकी अर्चना अनुकूलतासे करते हुए ( वृत्र हनः ) वृत्रको मार ( अपः जय ) और जलोंको जीत ॥ ५ ॥

[ ४१४ ] ( यत् आजयः उदीरते ) जब युद्ध शुरू हो जाते हैं, उस समय ( धृष्णवे धनं धीयते ) शत्रुको जीतने-वालेको ही धन मिलते हैं, हे इन्द्र ! इस प्रकार युद्धके शुरू होनेपर ( मद्व्युता हरी युह्र्धयः ) मर चुकानेवाले अपने घोड़ोंकी रथमें जोड़, ( कं हनः ) वृ किते मारे और ( कं वसो दधः ) किते धन दे, यह तेरे आधीन हैं, इसलिए हे इन्द्र ! ( अस्मान् वसो दधः ) हमें यथोक्त स्थापित कर, हमें बहुत सारा धन दे ॥ ६ ॥

२. यत् आजयः उदीरते धृष्णवे धनं धीयते— जब युद्ध शुरू हो जाते हैं, तब शत्रुओंको परांसे कुचलने-वालेको ही धन मिलता है ।

४१५ अक्षन्मीमदन्त इव प्रिया अधूपत ।

अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्टया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।८२।२ )

४१६ उपो पु श्रुषुहि गिरा मघनमातथा इव ।

कदा नः क्षुतावतः कर इदधेयास इयोजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।८२।१ )

४१७ चन्द्रमा अप्त्वाऽन्तरा सुपर्णा धावते दिवि ।

न वो हिरण्यनेमयः पदं चिन्दन्ति विद्युतो विस्रं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।९०।१ )

४१८ प्रति प्रियतमं रथं सुपर्णं वसुधाहनम् ।

स्तोता वामभिनोवृषि स्तोमभिर्भूषति प्रति मार्घ्या मम श्रुतध्वम् ॥ १० ॥ ( ऋ. १।७९।१ )

इति तृतीयो वसति. ॥ ३ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ त्व० १३ । उ० ५ । पा० ७५ । वृ ॥ ]

[ ४ ]

( १-८ ) १, ७ वसुधुत आश्रयः; २, ४ विमद योगः ( ऋ० प्राजापत्यो वा, वसुधुदा वायुः ) ; ३ सत्यधवा आश्रयः; ५, ६ गौतमो राष्ट्रमणः; ८ अहोमुग्धामदेव्यः; ( ऋ० कुन्मल्लवृहियः शैल्यिर्वा; ) ॥ अग्निः; ३ उपाः; ४ सोमः; ५, ६ इन्द्रः; ८ विरयेवाः ॥ पतितः; ८ बृहती ॥

४१९ आ ते अग्र इधीमाहि धुमन्तं देवाजरम् ।

यद् स्या तं पनीयसी समिदीदयति धवीषं स्तोतुम्य आ भर ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।४ )

[ ४१५ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! यजमानोने ( अक्षन् ) अग्र वा प्रिया ओर ( हि अमीमदन्त ) मे तुल्य हो गए ( प्रियाः अय अधूपत ) आनन्वित होकर उगहोंने अपने सिर आनन्दते हिलाये, उनके बाद ( स्व-भानवः विप्राः ) स्वयं तेजस्वी बोलनेवाले उन ब्राह्मणोंने ( नविष्टया मती अस्तोषत ) नवीन स्तोत्रों स्तुति की, अब तू इस वसुधुत जायने लिए ( ते हरी सु योज ) अपने घोड़े ओर ॥ ७ ॥

[ ४१६ ] ( मघनम् इन्द्र ) हे घनवान् इन्द्र ! ( गिरः उप उ सु श्रुषुहि ) हमारे स्तोत्र पात भाकर सुन, ( अ-तथा इव मा ) पहलेके विद्वद् व्यवहार मत कर, ( नः क्षुतावतः कदा करः ) हमें सत्यभाषण करनेवाला बच कराया ? तू ( अर्ययासे इव ) हमारी स्तुति जाननेको इच्छा करता है, इसलिये ( ते हरी सु योज ) तू अपने घोड़े ओर ॥ ८ ॥

[ ४१७ ] ( अप्त्वा अन्तः ) अन्तर्हितमें रहनेवाला ( सु-पर्णा चन्द्रमाः ) उत्तम किरणोंवाला चन्द्रमा ( दिवि आधावते ) आकाशमें बौधता है, ( हिरण्यनेमयः विद्युतः ) हे सोनेके समान चमकनेवाले विजलीस्यो तेजो ! ( यः पदं ) तुम्हारे चरणरूपी किरणोंको मेरी इन्द्रिये ( न चिन्दन्ति ) नहीं पा सकतो, हे ( रोदसी ) धावतुषियियो ! ( मे अस्य विस्रं ) मेरी इस स्तुतिको तुम जानो ॥ ९ ॥

[ ४१८ ] हे ( अग्निवो ) अग्निनी देको ! ( यां प्रियतमं ) तुम्हारे अत्यन्त प्रिय, ( सुपर्णं वसु-धाहनं ) मजबूत ओर घनको ओकर ले जानेवाले, ( रथं ) रथको ( स्तोता अग्निः ) स्तुति करनेवाला अग्नि ( स्तोमभिः प्रति भूषति ) स्तोत्रोंके सुशोभित करता है, हे ( मार्घ्या ) मनुषिदाको जाननेवाले अग्निनीकुमारो ! ( मम हयं श्रुतं ) मेरी प्रायना सुनो ॥ १० ॥

॥ यद्वा इवनीसयां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३२ ] द्वाभिदाः खण्डः ।

[ ४१९ ] हे ( अग्रे वेय ) अग्निदेव ! ( धुमन्तं अजरं ते ) तेजस्वी ओर बुझायेते रहित तुमने ( आ इधीमाहि ) हम जगते है, ( यद् इ ) निरवयते । ( ते स्या पनीयसी समिद् ) मेरी यह प्रशस्तनीय ज्योति ( धवि दीदयति ) सुशोभनें चमकतो है, ( स्तोतुम्य इपं आ भर ) तू स्तोताओंको अग्र भयूर है ॥ १ ॥

- ४२० आग्निं न स्ववृक्तिभिर्हीतारं त्वा वृणीमहे ।  
शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णवर्हिषं विवक्षसे ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।२।१।१ )
- ४२१ महे नो अद्य बोधयोपो राये दिवित्मती ।  
यथा चित्रो अवोधयः सत्यश्रवसि वाच्ये सुजाते अश्वसूनुते ॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।२।१।१ )
- ४२२ यद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत् क्रतुम् ।  
अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।२।१।१ )
- ४२३ क्रत्या महाऽ अनुष्वर्ष भीम आ वावृते श्वः ।  
श्रिय ऋष्य उपाकषामि शिप्रो हरिवां दधे हस्तपोर्वज्रमायसम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।२।१।४ )
- ४२४ स धा सं वृषणऽ रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।  
यः पात्रऽ हरियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा निवन्द्र ते हरी ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।२।१।४ )

[ ४२० ] ( न ) इस समय ( सु-वृक्तिभिः ) उत्तम स्तुतियोंके ( होतारं ) हवन करनेवाले ( वः यज्ञेषु ) तुम्हारे यज्ञमें निम्नके लिए ( स्तीर्ण-वर्हिषं ) आसन फैलाये गये हैं, ऐसे ( शीरं पावक-शोचिषं ) व्यापक, पवित्र करनेवाले तेजसे युक्त ( त्वा आग्निं ) तुम आगिकी ( वि-मदे भावृणीमहे ) विशेष आनन्द प्राप्त करनेके लिए हम आराधना करते हैं, ( विवक्षसे ) तु महान् है ॥ २ ॥

[ ४२१ ] ( उपाः ) हे उपादेवी ! ( अद्य ) आज ( दिवित्मती ) तू प्रकाशित होकर ( नः महे राये बोधय ) हमें धरनी प्राप्तिके लिए उसी प्रकार जगा, ( यथा चित्र नः अवोधयः ) जैसे हमें पहले जगती थी, हे ( सुजाते ) उत्तम रीतिसे प्रकट हुई उबे ! ( अश्व-सूनुते ) हे सत्यप्रिय उबे ! ( वाच्ये सख्यश्रवसि ) मैं बयका पुत्र सत्यश्रवा हूँ अतः सुश्रव कृपा कर ॥ ३ ॥

[ ४२२ ] हे सोम ! ( विवक्षसे ) महान् होनेके लिए ( अन्धसः विमदे ) सोमरसके आनन्दमें ( नः मनः ) हमारा मन ( दक्षं उत क्रतु ) बलकी, कर्म करनेकी तथा ( भद्रं वातय ) कल्याण करनेकी शक्ति प्राप्त करे ऐसी प्रेरणा कर, ( अथा ते सख्ये ) और वेरी मित्रता प्राप्त हो, ऐसा कर, ( यवसे रणाः गावः न ) जिस प्रकार घासकी सुन्दर घाँसे प्राप्त करतीं हैं, उसी प्रकार हम तेरी मित्रताकी प्राप्त हो ॥ ४ ॥

[ ४२३ ] ( ऋष्या ) सामर्थ्यसे ( महान् भीमः ) बहुत भयकर इन्द्र ( अनु-ष्वर्षे श्वः आ वावृते ) सोमरस पीकर अपनी बल बढ़ाता है, उसके बाद ( ऋष्यः ) मुन्दर, ( शिप्रो ) उत्तम तिरस्त्राय धारण करनेवाला और हरि-यान् ) रथमें घोड़े जोड़नेवाला वह ( उपाकषो हस्तयोः ) बाँधे हाथमें ( आयत्तं वज्रं ) फौलदारते बने बघकी ( श्रियो निदधे ) शीमाके लिए धारण करता है ॥ ५ ॥

[ ४२४ ] ( यः ) जो रथ ( हारि-योजनं पूर्णं पात्रं ) चील और सोमसे भरे हुए पात्र धारण करता है, ऐसे ( वृषणं गोविदं रथं ) मन्वन्त और मानवी प्राप्त करनेवाले रथपर ( स धा ) यह इन्द्र ( अधि तिष्ठाति ) चढ़कर बैठता है, तथा ( सं चिकेतति ) उस रथको जानता है । इसलिये हे इन्द्र ! ( ते हरी नु योज ) अपने घोड़े रथमें तू जोड़ ॥ ६ ॥

४२५ अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

अस्तमर्थन्त आशवांसस्तं नित्यासो वाजिन इपुः स्तोत्रम्य आ भर ॥ ७ ॥ ( ऋ १६११ )

४२६ न तमश्नो न दुरितं देवासो अष्ट मर्यम् ।

सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ॥ ८ ॥ ( ऋ १०१२६११ )

इति चतुर्थो व्रतति. ॥ ४ ॥ अष्टम. खण्ड. ॥ ८ ॥ [ स्व० ७ । उ० ३ । पा० ५७ । जे ॥ ]

इति पंचतमः ॥

[ ५ ]

( १-१० ) ऋण प्रसवस्युः ( १, २-५, १० आन्वयो ऐश्वरा ; २, ६ स्वराणस्त्रैवृण, यमस्यु पौरकुलस )  
७ बसिष्ठो मंत्रावदधि ; ८ वामदेवो गीतम् ॥ यमदानः सोम ; ७ मरुत ; ८ अग्नि, ९ वाजिन. ॥

द्विषदा पिताः ८ पदवसितः ; ९ पुरजगिण्, २, ६ त्रिषदा अनुष्टुप्त्रिषोक्तिकामध्या ॥

४२७ परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुमित्राय पूषे भगाय ॥ १ ॥ ( ऋ १११०२११ )

४२८ पयू पु प्र धन्व वाजसातये परि वृथाणि सक्षणिः ।

द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ २ ॥ ( ऋ १११०१११ )

४२९ पवस्व सोम महान्तसमुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ ३ ॥ ( ऋ १११०११४ )

[ ४२५ ] ( यः वसुः अस्तं ) जो वसुहो अग्नि घरने हे, ( यं धेनवः यन्ति ) जित अग्निके पास गाये जाती हे, ( अस्तं आशवः अर्थन्तः ) जित यत्के घरको ओर वेगवान् घोडे जाते हे, ( अस्तं नित्यासः वाजिनः ) जित यत्पायन-को ओर अश्वको पासमें रखनेवाले यत्पाय जाने हे, ( त अग्निं मन्ये ) उस अग्निको में स्तुति करता हूँ, ( त स्तोत्रम्यः इयं आ भर ) स्तोत्राओंके लिए भरपूर अन्न दे ॥ ७ ॥

[ ४२६ ] ( देवासः ) हे देवो ! ( स-जोषसः ) एक विचारेते रहनेवाले ( अर्यमा, मित्रः, वरुणः ) अर्यमा, मित्र और वरुण ( अति-द्विषः ) शत्रुको दूर करके ( यं नयति ) नितको उन्नतिको ओर ले जाते हे, ( तं मर्यं ) उस मनुष्यको ( अंहः न ) पाप नहीं लगाता और ( दुरितं न अष्ट ) दुर्गति उसे दूरपातक नहीं ॥ ८ ॥

॥ यहाँ वसोसयां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३३ ] अथस्त्रिंशः खण्डः ।

[ ४२७ ] हे सोम ! ( स्वादुः ) स्वादिष्ट तू ( इन्द्राय मित्राय पूषे ) इन्द्र, मित्र और पूषके लिए और ( भगाय ) भगके लिए ( परि प्र धन्व ) अस्तमर्थे मरुत रह ॥ १ ॥

[ ४२८ ] हे सोम ! तू ( वाज-सातये ) अश्वको प्राप्तिके लिए ( सु परि प्रधन्व ) उत्तम रीतिते अस्तमर्थे मरुत रह, ( सक्षणिः वृथाणि परि ) क्षम्यवान् होकर तू शत्रुपर हमला कर, ( नः ऋणया ) हमारे ऋणोंको नष्ट करनेवाला तू ( द्विषः तरध्या ) शत्रुओंके पार होनेके लिए ( ईरसे ) उन शत्रुओंपर चडाई करनेके लिए जाता हूँ ॥ २ ॥

[ ४२९ ] हे सोम ! ( महान् समुद्रः ) महान् समुद्रके समान ( पिता ) पावन करनेवाला तू ( देवानां विश्वा धाम ) देवोंके सब स्थानोंमें-पानीमें-( अभि पवस्व ) मरुत रह ॥ ३ ॥



- ४३० पवस्व सोम महे दक्षायशो न निक्तो वाजी वनाय ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१०९।१० )
- ४३१ इन्दुः पविष्ट चारुमदायापामुपस्थे कविर्ममाय ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१०९।११ )
- ४३२ अनु हि त्वा सुतं सोम मद्रामसि महे समपराजपे ।  
वाजां अग्निं पवमानं प्र गाहसे ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।११०।१२ )
- ४३३ क इ व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मया अथा स्वश्याः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ७।१६।१ )
- ४३४ अद्य तमघासं न स्तोमैः कर्तुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।  
श्रद्धयामा त ओहिः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ४।१०।१ )
- ४३५ आविर्मया आ वाजं वाजिनो अगं देवस्य सवितुः सवम् । स्वर्गो अवेन्तो जयत ॥ ९ ॥
- ४३६ पवस्व सोम द्युम्नी सुधारां महां अवीनामनुपूर्वैः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।१०९।१० )

इति पञ्चमी वसतिः ॥ ५ ॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [ स्त० ८।७०२। पा ३५।६ ॥ ]

इति पञ्चमप्रपाठकस्य प्रथमोऽंशः ॥ १ ॥

[ ४३० ] हे सोम ! ( अश्वः न ) घोड़ेके समान ( निक्तः ) पानीसे साफ किया हुआ ( वाजी ) बल बढ़ानेवाला वृ ( महे दक्षाय ) महान् बल और ( वनाय ) पशुको आश्रितिके लिए ( पवस्व ) बर्तनमें भरा रह ॥ ४ ॥

[ ४३१ ] ( चारुः कविः ) सुन्दर जानी ( इन्दुः ) मह सोम ( अपां उपस्थे ) पानीके पास ( भगाय मदाय ) ऐश्वर्ययुक्त आनन्दके लिए ( पविष्ट ) पहुँचता है, पानीमें गिराया जाता है ॥ ५ ॥

[ ४३२ ] हे सोम ! ( सुतं त्वा ) रस निकालनेके बाद तेरी ( अनु मद्रामसि हि ) हम उत्तम प्रकारसे तृप्ति करते हैं । हे ( पवमान ) पवित्र सोम ! ( महे समपराजपे ) महान् श्रेष्ठ राजके संरक्षणके लिए ( वाजानं अग्निं प्रगाहसे ) अपने बलसे युक्त होकर दानुतेनापर तू हमला करनेके लिए जाता है ॥ ६ ॥

[ ४३३ ] ( व्यक्ताः नरः ) हे प्रसिद्ध नेताओ ! ( स-नीडाः मयाः ) एक धरम रहनेवाले ( अथा स्वश्याः ) उत्तम घोड़े पासमें रखनेवाले मरुतु ( इं रुद्रस्य ये ) इत रुद्रके कौन लगते है ? ॥ ७ ॥

और मरुदाप इस रुद्रके पुत्र है ।

[ ४३४ ] हे अग्ने ! ( अद्य ) आज हम इत यत्नेके अतिवचन ( ओहिः स्तोमैः ) ओह नामक स्तोत्रोत्ते ( अश्वं न ) घोड़ेके समान और ( कर्तुं न ) यत्नरहितके समान ( भद्रं हृदि-स्पृशं ) कल्याण करनेवाले और हृदयको छूनेवाले अर्थात् अत्यन्त मिय ( ते श्रद्धया ) तेरे पशुको बढानेवासी स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

१ अश्वं न— जैसे घोडा यशस्वानको पहुँचाता है उसी प्रकार तू उन्नतिके स्थानपर पहुँचाता है ।

२ कर्तुं न— यत्नरहित जैसे उपकार करते हैं, उसी प्रकार तू उपकार करता है ।

[ ४३५ ] ( मयाः ) मनुष्योंका हित करनेवाले तथा ( अग्निः वाजिनः ) प्रजापति हुए इस बलवान् देवताके ( सवितुः सव्यं वाजं ) शक्तिदायिकके लिए तैय्यार किए गए सोमरसरूपी अन्नको ( अगं ) प्राप्त किया है, इसलिये है यज्ञमालो । तुम ( सव्यं ) स्वर्गको और ( अवेन्तोः जयत ) घोड़ोंको विजयके लिए प्राप्त करो ॥ ९ ॥

[ ४३६ ] हे सोम ! तू ( द्युम्नी ) तेजस्वी, ( सु-धाराः ) उत्तम प्रकारसे पार बंधकर बर्तनमें गिरनेवाला ( अशु-पूर्वैः महान् ) पहलके समान ही महान् रहनेवाला है, अतः तू ( अवीनां अनु पवस्व ) रक्षे जानेवाले बर्तनमें ठीक प्रकारसे भर जा । बर्तनमें सोमरस भरा जाता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ तैत्तिरीयों खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ]

( १-१० ) ब्रह्मस्तुः; ७ संयतं आंगिरसः ॥ इन्द्रः; ६ विप्रदेवेवाः; ७ जयाः ॥

द्विषदा विराट् ॥

४३७	विश्वतोदायन्विश्वतो न आ भर य स्वा श्विष्टमीमहे	॥ १ ॥
४३८	एष ब्रह्मा य ऋत्विष इन्द्रो नाम श्रुतो गृणो	॥ २ ॥
४३९	ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अकैरवर्षयश्चहय हन्तवा उ	॥ ३ ॥ ( ऋ. १।३।१४ )
४४०	अनवस्ते रयमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूतं युमन्तम्	॥ ४ ॥ ( ऋ. १।३।१४ )
४४१	शो पदं मघं रयीषिणो न काममब्रवो हिनोति न स्पृशद्रयिम्	॥ ५ ॥
४४२	सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः	॥ ६ ॥
४४३	आ याहि वनसा सह गावः सचन्त व्रतानि यद्गभिः	॥ ७ ॥ ( ऋ. १।३।७१।१ )

[ ३४ ] श्वतुस्त्रिधाः स्वष्टः ।

[ ४३७ ] हे ( विश्वतो दायन् ) राम तरफती श्वतुओंकी नष्ट करनेवाले इन्द्र ! ( विश्वतः नः आ भर ) तू सब धोरते हमें इच्छित मन भरकर दे, ( यं श्विष्टं त्वा ईमहे ) जिस अत्यन्त ब्रह्मान् तेरी हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[ ४३८ ] ( ऋत्विषः यः इन्द्रः ) श्वतुओंके अनुसार काम करनेवाला जो यह इन्द्र ( नाम श्रुतः ) नामसे प्रसिद्ध है, ( एषः ब्रह्मा ) यह बहुत ज्ञानी है, उसकी भेंट ( गृणो ) स्तुति करता है ॥ २ ॥

[ ४३९ ] ( अहये हन्तव्ये ) अहि अगुरको मारनेके लिए ( अकैः महयन्ताः ब्रह्माणः ) स्तोत्रोंसे स्तुति करनेवाले सानो ( इन्द्रं अवर्षयन् ) इन्द्रके पसको बढाते हैं ॥ ३ ॥

[ ४४० ] हे इन्द्र ! ( अनवः ) मनुष्यरूपी ऋभु देवताओंने ( ते अभ्याय ) तेरे घोड़ोंके लिए ( रथं तक्षुः ) रथ तैयार किया, हे ( पुरु-हूत ) अनेकोंसे मुलायं जानेवाले इन्द्र ! ( त्वष्टा ) त्वष्टाने ( युमन्तं वज्रं ) तेराको वज्रको तेरे लिए बनाया ॥ ४ ॥

१ अनवः अभ्याय रथं तक्षुः— मनुष्यरूपी ऋभुदेवता या कारीगरोंने इन्द्रके घोड़ोंके लिए उत्तम रथ तैयार किया ।

२ त्वष्टा युमन्तं वज्रं— त्वष्टाने तेजस्वी वज्र बनाया ।

[ ४४१ ] ( रयीषिणः ) धनको अर्पण करनेवाले पात्रक सोय ( शो पदं मघं ) सुख, उत्तम रथान और धन प्राप्त करते हैं, ( अ-व्रतः ) धन न करनेवाला, ( न हिनोति ) कुछ भी प्राप्त नहीं करता, और ( कामं रयिं न स्पृशत् ) अपने इच्छित धनको तो यह छू भी नहीं सकता ॥ ५ ॥

१ रयीषिणः शो पदं मघं— धनको देनेवाले पात्रक सोय, उत्तम रथान और धन प्राप्त करते हैं ।

२ अ-व्रतः न हिनोति— जो व्रतका आचरण नहीं करता, उसको कुछ भी नहीं मिलता ।

[ ४४२ ] ( गावः ) गायें ( स्वदा गुचयः ) हमेशा सुख रहती हैं, ( विश्व-धायसः ) सभीका धोषण करनेवाली और ( सदा देवा अ-रेपसः ) हमेशा उन्नत और निष्पाप रहती हैं ॥ ६ ॥

[ ४४३ ] हे जय ! ( वनसा सह भायाहि ) इच्छित तेजसे साथ आ, ( यद् ऊषभिः ) जो भरे हुए पनबानी हैं, वे ( गावः ) गायें ( व्रतानि स्वचन्ते ) तेरे मार्गमें चलती हैं ॥ ७ ॥

४४४ उप प्रश्ने मधुमति क्षिपन्तः पुष्येम रथि भीमहे त इन्द्र ॥ ८ ॥

४४५ अर्चन्त्यर्कं महतः स्वकी आ स्तोभति श्रुता युवा स इन्द्रः ॥ ९ ॥

४४६ प्र न इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गार्थं गायत ये जुजोपते ॥ १० ॥

इति षष्ठी वसतिः ॥ ६ ॥ दशमं खण्डः ॥ १० ॥ [ स्व० ७ । उ० २ । धा० ४२ । प्ठा ॥ ]

[ ७ ]

( १-१० ) १ मधुम प्र काण्वः; २, ३, ४ वन्युः सुषण्युः श्रुतवन्मुविप्रवन्पुन्य क्रमेण गोपायना लोपायना वा; ५ संवतं आगिरत्सः; ६ भुवन आययः; सायनी वा भोवनः; ७ कचय ऐलूयः; ८ भरद्वाजो बाह्लेत्पत्यः; ९ आश्रये; १० वसिष्ठी मेयावर्णिः ॥ अग्निः; ५ उपाः; ६, ७, ९ विरवेदेवाः; ३, ५, ८, १० इन्द्रः ॥

क्षिपदा विराट्: १० एकपवा ॥

४४७ अर्चन्त्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाद् न सुमद्रथाः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।१६।१ )

४४८ अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवा वरुध्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२४।१; यजु. ३।१९ )

४४९ भगो न चित्रो अग्निर्महानो दधाति रत्नम् ॥ ३ ॥

४५० विश्वस्व प्र स्तोभ पुरो वा सन्यादि वेद नूनम् ॥ ४ ॥

[ ४४७ ] ( मधुमति प्रश्ने ) मधुरसते भरे हृष्ट धमन्नेपे हविको रथकर ( ते क्षिपन्तः ) तेरे पास रहनेवाले हग, हे इन्द्र ! ( रथि पुष्येम ) धन प्राप्त करे, और तेरा ( भीमहे ) ध्यान करे ॥ ८ ॥

[ ४४५ ] ( स्वकीः महतः ) उत्तम तेजस्वी महतगण ( अर्कं अर्चन्ति ) पूजनीय इन्द्रकी पूजा करते हैं, ( स- ) यह ( युवा ) तरुण ( श्रुतः ) प्रसिद्ध ( इन्द्रः ) इन्द्र ( आ स्तोभति ) तब शत्रुओंको मारता है ॥ ९ ॥

१ युवा श्रुतः आ स्तोभति— तरुण प्रसिद्ध और सब शत्रुओंको मारता है ।

[ ४४६ ] हे तानी लीगो ! ( वृत्र-हन्तमाय विप्राय इन्द्राय ) वृत्रको मारनेमें निपुण, शानी इन्द्रके लिए ( गार्थं गायत ) स्तोत्रोंका गान करो, ( ये जुजोपते ) जिनको वह ध्यानन्दते सुनता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ चोर्तासचां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३५ ] पंचविंशः खण्डः ।

[ ४४७ ] ( हव्य-वाद् ) हविको वेपताके पास पहुंचानेवाला, ( चिकितिः ) विभेय बुद्धिमान् ( सुमद्र्थ ) उत्तम हविते जो भरा हुआ है, वह ( रथः न ) रथके समान इच्छितस्थानकी पहुंचानेवाला ( अग्निः अर्चति ) अग्नि सब जानता है ॥ १ ॥

[ ४४८ ] हे ( अग्ने ) अग्नि ! ( वरुध्यः ) तेरा करनेके योग्य ( त्वं ) तू ( नः अन्तमः ) हमारे समीप ( उत शिवाः त्राता ) और कल्याण करनेवाला संरक्षक ( भुवः ) हो गया है ॥ २ ॥

[ ४४९ ] ( महानो भगः न ) बड़ोंमें सर्वके समान ( चित्रः अग्निः ) पूज्य अग्नि याजकोंको ( रत्नं दधाति ) वह देता है ॥ ३ ॥

[ ४५० ] ( विश्वस्व्य प्रस्तोभ ) वह सारे शत्रुओंका नाश करता है, ( यदि वा इदं नूनं ) और इस यज्ञमें निःशक्ती वह ( पुरो वा सन् ) पूर्ण रीतिसे निभास करता है ॥ ४ ॥

- ४५१ उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्तनिः सुजातता ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।१०२।४ )
- ४५२ इमा नु कं भुवना सीपथमन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।१५।१ )
- ४५३ वि स्तृतया यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥ ७ ॥
- ४५४ अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ६।१७।१५ )
- ४५५ ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिष कृणुही न इन्द्र ॥ ९ ॥
- ४५६ इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ १० ॥ ( वा. य. ३६।८ )

इति सप्तमो वसतिः ॥ ७ ॥ एकादश. खण्डः ॥ ११ ॥ । स्व० ५ । उ० ४ । पा० ४१ । अ ॥ ]

[ ८ ]

( १-१० ) १, १० गृह्यमदः शीतकः; २ गीरागिरसः; ३, ५, ९ परच्छेपो दीवोदासिः; ४ देवः कायपयः; ६ यथापराश्रयोः; ७ अनागतः पारच्छेपिः; ८ नकुलः ॥ १, ३, ५, १० इन्द्रः; २ गुणः; ५ विश्वेदेवाः; ६ महताः; ७ पवमानः शोमः; ८ सविता; ९ अग्निः ॥ १, १० अष्टिः ( १० अतिप्रपरी वा ) ; ३, ५, ७-९ अत्यष्टिः; २, ५, ६ अतिजानो ( अष्टिषो ? ) ॥

- ४५७ त्रिकटुकेषु महिषा यथाशिरं तुविशुध्मस्तुपत्सोममपिवाद्रिष्णुना सुतं यथावदाम् ।  
स ई ममाद् महि कमे कर्तये महासुरुः सैनसथदेवो देवस्य इन्द्रुः सत्यमिन्द्रम् ॥१॥  
( ऋ. २।२।१ )

[ ४५१ ] ( उषा ) उषा ( स्वसुः तमः ) अपनी कहिन रात्रीके अन्धकारको ( अप सं वर्तयति ) नष्ट करती है, और ( सु-जातता ) अपने उत्तम प्रकारको ( वर्तनि ) अपने मार्गको प्रकाशित करती है ॥ ५ ॥

[ ४५२ ] ( इमा सुवना ) इन सब भूवनोंको ( नु कं ) निदमयमे मुख प्राणिके लिए ( सीपथेम ) सं नियमोंके बलाता हैं, ( इन्द्रः च विश्वेदेवा च ) इन्द्र और सब अन्य देव इस काममें मेरी सहायता करते हैं ॥ ६ ॥

[ ४५३ ] ( त्वत् रातयः ) तुमसे मिलनेवाले बान ( पथा स्तृतयः यथा ) बड़े राजमार्गमें जैसे हमारे छोटे-छोटे रातले मिल जाते हैं, उसी प्रकार ( वि यन्तु ) सबको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

[ ४५४ ] ( अया देवहितं वाजं सनेम ) इस स्तुतिसे देवोंके द्वारा किए गए अप्र थयवा बल प्राप्त रहें, और ( सु-वीराः शत-हिमाः मदेम ) उत्तम वीर पुत्रोंमें युक्त होकर सौ धर्मक आनन्दमें रहें ॥ ८ ॥

[ ४५५ ] ( इन्द्रः शतहिमाः मदेम ) उत्तम वीर पुत्रोंमें युक्त होकर हम सौ धर्मक आनन्दमें रहें ॥

[ ४५६ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( मित्र वरुणः ) मित्र और वरुण देव ( ऊर्जाः इत्याः पिन्वते ) बल बढ़ानेवाले अन्न दूध देने हैं, दू ( नः इयं ) हमारे अन्नको ( पीवरी कृणुहि ) और अधिक बुष्ट करनेवाला बना ॥ ९ ॥

[ ४५७ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( विश्वस्य राजति ) सब भूवनोंपर शासन करता है ॥ १० ॥  
॥ यद्गो पीतीसवो खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३६ ] यदग्निदाः खण्डः ।

[ ४५७ ] ( महिषः सुवि-शुष्माः ) बलवान् और सर्वत्र सामर्थ्यशाली ( सुदम् ) युक्त होनेवाले इन्द्र ( त्रिकटुकेषु सुते ) तीन पात्रोंमें रने हुए सोमरसमें ( यथाशिरं ) जोका आटा मिलकर ( सीमं ) उग मोमको ( विष्णुना ) विष्णुके साथ ( यथा-पुर्वा ) इच्छानुसार ( अपियद् ) दिया, ( स्वः ) उम मोमके ( महि कर्मे कर्तये ) महान् काम करनेके लिए ( आद्गो उर्गे ई ) महान् श्रेष्ठ इन्द्रको ( ममाद् ) उत्साहित किया, ( सत्यः इन्द्रुः देव-सः ) उत्तम, बहु शोभरूपी प्रजाजान् रत ( सत्यं यन् देव्य इन्द्रं ) उत्तम गुणोंमें युक्त इस इन्द्र देवको ( राजद्म् ) शासन हुआ ॥ १॥

- ४५८ अथ॑ सहस्रमानयो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।  
 ब्रध्नः समीचीरपसः समैरयदरेवसः सचेतसः स्वसरे मन्मुमन्तश्चिता गोः ॥ २ ॥
- ४५९ ऐन्द्रं याद्युप नः परावतो नायमच्छा विदधानीव सपरितरस्ता राजिव सत्पतिः ।  
 हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासा न पितर वाजसातये मरुद्विष्टे वाजसातये ॥ ३ ॥  
 ( अ ११३०१ )
- ४६० तमिन्द्रं जोहवीमि मधवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कृतं श्रवांसि भूरि ।  
 मरुद्विष्टो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त राये नो विश्वा सुपया कृणोतु वज्रो ॥ ४ ॥  
 ( अ ११३०१२ )
- ४६१ अस्तु श्रौपद पुरो अग्नि धिया दध आ नु त्यच्छर्षो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायु वृणीमहे ।  
 यद् क्राणा विवस्वते नामा सन्दाय नव्यसे ।  
 अथ प्र नूनमुष यन्ति धीतयो देवाश्चच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥ ( अ ११३०११ )

[ ४५८ ] ( सहस्र-मानवः ) हजारों मनुष्योंका हित करनेवाला ( दृश ) दर्शनीय ( कवीना मतिः ) बुद्धिमानों द्वारा सम्मानके योग्य ( विधर्म-ज्योतिः ) विशेष धर्मसे युक्त और तेजस्वल्प ( अयं ब्रध्नः ) यह ब्रध्न ( समीचीन अ-रेपसः ) निर्मल और अत्यस्वारहित ( सचेतसः उपसः ) तेजस्वी उपाओंको ( समैरयत् ) प्रीति करता है, उसके बाद ( स्वसरे ) दिनमें ( मन्मुमन्त ) तेजस्वी दोखनेवाले चन्द्र आदि ( गोः ) सूर्यके तेजके साथ ( चिता ) तेजरहित फीके हो जाते हैं ॥ २ ॥

[ ४५९ ] हे इन्द्र ! ( परावत न अच्युता उप आयाहि ) दूरदेससे तु हमारे पास आ, ( अयं न ) जैसे यह अग्नि ( सत्पति ) उत्पन्नोंका पालन करनेवाला होकर ( विदधानि इव ) यत्नात्मक आता है, और जैसे ( अस्ता सत्पतिः ) राजा ( इव ) समुद्र दास कर्कनेवाला उत्तम बालक राजा अपने घर आता है, उसी प्रकार आ । ( प्रयस्वन्तः सुतेषु त्वा हवामहे ) हृदय्याध लेकर हम सोमयज्ञमें तुझे बुलाते हैं, ( पुत्रासः वाजसातये पितरं न ) पुत्र जैसे अन्न पानेके लिए पिताको बुलाते हैं, और जैसे ( मरुद्विष्ट वाज-सातये ) महान् शीतको महायुद्धमें बुलाते हैं, उसी प्रकार हम तुझे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ ४६० ] ( मधवान ) धनवान् ( उग्र ) शीर ( सत्रा भूरि अर्वांसि दधान ) एक साथ बहुताता धन धारण करनेवाले तथा ( अ-प्रतिष्कृतं त इन्द्रं ) धनुर्मति कर्म भी पराजित न होनेवाले उस इन्द्रको ( जोहवीमि ) सहायताके लिए बुलाता हूँ, ( मरुद्विष्ट यज्ञियः ) ब्रह्म और यज्ञोंमें सत्कारके योग्य इन्द्रको ( गीर्भिर आ पयते ) लोभसे स्तुति की जाती है, इस प्रकार ( यज्ञी ) यज्ञको धारण करनेवाला इन्द्र ( राये ) धनको प्राप्तिके लिए ( नः विश्वा सुपया कृणोतु ) हमारे सब आर्ग्य ग्राम करे ॥ ४ ॥

[ ४६१ ] ( पुर अग्नि ) उत्तरवेदोंमें अग्निको ( धिया आद्यधे ) मानवुषंके मने स्थापित किया, ( त्यच्छर्षो शर्षः ) उस विषय मन्वान् अग्निको ( आ वृणीमहे ) हम आराधना करते हैं, ( इन्द्रवायु ) इन्द्र और वायुको ( वृणीमहे ) हम प्रार्थना करते हैं । ( यद् इ ) जो ( वि-पश्यते नव्यसे ) धनवान् और नवीन यत्नसे यत्नमानने ( नामा ) धनधारणके मुख्य स्थानपर ( सन्दाय प्राणा ) एक जगह आकर मनोरथको पूरा करते हैं । ( धीरद अभुत ) उन स्तुतिपूर्ण अर्थक होते हैं । ( अथ ) इसके बाद ( नः धीनियः ) हमारी स्तुतियों ( प्र नून उपयन्ति ) निरन्तरमें तेरी ओर जाएँगे, ( देवान् अच्युता नः ) देवोंको और बहूँमानेके लिए हमारे ( धीतयः ) ये धर्म बल रहे हूँ ॥ ५ ॥

४६२ प्र वो महे मत्पा यन्तु विष्णवे भरुवते गिरिजा एवयामरुत् ।  
 प्र शर्षाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददित्ये धुनिव्रताय श्वसे ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८७। )

४६३ अया रुचा हरिण्या पुनाना विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः स्रो न सयुग्वभिः ।  
 धारा पृष्टस्य रोचते पुनानो अरुषा हरिः ।  
 विश्वा यद्रूपा परियास्यकभिः सप्तास्येभिश्चकभिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।११। )

४६४ अभि तय देवसंवितारमण्योः कविक्रतुमचामि सत्यतन रत्नवामभि प्रियं मवित्म् ।  
 ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतस्वीमनि हिरण्यपाणिरामिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ ८ ॥  
 ( वाय ४।१९ )

४६५ अभिश्चोतारं मण्ये दास्यन्ते वताः स्रुः सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।  
 य ऊर्ध्वा स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।  
 घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशचिप आजुहानस्य सर्पिणः ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१७। )

[ ४६२ ] ( एवया मरुत् ) एवया मरुत् नामने ऋषिने द्वारा अपनी ( गिरिजाः मतयः ) वाणीसे की हुई स्तुतियां ( भरुवते विष्णवे ) मन्तोंके साथ पहनेवाले विष्णुकी ओर ( महे यः प्रयन्तु ) महान् तुल्य इन्द्रको प्राप्त हो, उसी प्रकार ( प्र-यज्यवे ) विशेष यत् करनेवाले ( सु-खादये ) उत्तम आभूषण पहनेवाले ( तवसे ) बलवान् ( भन्ददित्ये ) स्तुतिरूपी यत् करनेवाले ( धुनि-व्रताय ) शत्रुको डूब कराना जितका यत् है, ऐसे ( श्वसे शर्षाय ) उस उपनिदायक मन्तोंके बलको ( प्र ) प्राप्त हो ॥ ६ ॥

[ ४६३ ] ( पुनानः ) छाननीसे छानाजानेवाला सोमरस ( हरिण्या अया रुचा ) हरे रमके अपने इस तेजसे ( विश्वा द्वेषांसि तरति ) सब शत्रुओंको डूब करता है, ( स्रुः सयुग्वभिः न ) सूर्य अपनी निरर्थांसे जैसे अन्धकारको मूढ करता है, उसीप्रकार ( पृष्टस्य धारा रोचते ) उत्तम शीलनेवाले इस सोमरसकी धार धमकती है, ( पुनानः हरिः ) अरुष- ) छानाजानेवाला हरे रमका यह सोमरस धमकता है, ( यत् ) जो ( सप्तास्येभिश्चकभिः ) तेजसे सात भुवों तथा सोमोभि ओर ( आश्रयिभिः ) तेजसे ( विश्वा रूपाणि परियासि ) अनेक रूप धारण करता है ॥ ७ ॥

[ ४६४ ] ( यस्य माः ) जिसका प्रजात ( ऊर्ध्वा ओष्योः अदिद्युतम् ) उच्चपतिते इन पृथिवी और ध्रुवोके बीचमें फैलता है ऐसे उस ( कवि-यानुं ) ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाले ( सत्य-मन्त्रं ) सत्यकी प्रेरणा देनेवाले ( रत्न-धां ) धन देनेवाले ( अभि-प्रियं ) अत्यन्त प्रिय ( मति तयं सवितारं देवं ) बुद्धिमान् उस सवितारदेवकी ( अचामि ) मैं आराधन करता हूँ, ( सचीमनि अमतिः ) उत्पन्न होनेके बाद इसका प्रकाश फैलता है, ( सु-क्रतुः हिरण्य-पाणिः ) उत्तम पना करता हूँ, ( स्वामीनि अमतिः ) उत्पन्न होनेके समय धमकनेवाला सविता ( कृपा स्वः अमिमीत ) इषामे अपना प्रजात फैलता है ॥ ८ ॥

[ ४६५ ] ( होतारं ) जिसमें हवन किया जाता है, ऐसे ( दास्यन्ते ) धन देनेवाले ( घसोः सहस्रः ) निवासरक बलसे ( स्रुः ) पुत्र अर्थात् पाल बढ़ानेवाले, ( जात-वेदसं विप्रं न ) विद्वान् ब्राह्मणके समान ( जातवेदसं विप्रं मण्ये ) निवासरक परम पुत्र्य अर्निनी मे स्तुति करता हूँ, ( यः देवः ) जो अर्निदेव ( सु-शध्वरः ) उत्तम यत्नवाले ( ऊर्ध्वा देवाच्या कृपा ) उच्च वेधोंकी इषा हो इय इजामे ( शुक्र-शचिपः ) शुद्ध तेजस्वी ( आजुहानस्य ) जितसे हवन किया जाता है, ऐसे उत्त ( सर्पिणः ) मुम्हारी धीकी ( विभ्राष्टि ) आहुतिके बाद प्रसन्न होता है ॥ ९ ॥

४६६ तव त्यक्तयं नृतांसप इन्द्र प्रथमं पूज्यं दिवि प्रयाज्यं कृतम् ।

यो देवस्य श्वसा प्राणिना असु रिणन्नपः ।

भुवा विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्ध्वं शतक्रतुर्विदेद्विपुम् ॥ १० ॥ ( ऋ २।२२।४ )

इति अष्टमो वसति ॥ ८ ॥ द्वादश खण्ड ॥ १२ ॥ इत्येन्द्र पर्वे काण्ड वा समाप्तम् ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ऐन्द्रकाण्डे ।

आशय	११५-२३२	( ११८ )
तत्र १५५ ' पान्तं ' इत्यनुष्टुप् ।		
बृहत्	२३३-२१२	( ८० )
विश्वम्	३१३-३४१	( २९ )
तत्र ३२८ ' प्र यो ' इति त्रिपदादिराट् ।		
अनुष्टुभ	३४२-३६९	( २८ )
जगत्य	३७०-३८०	( ११ )
तत्र ३७९ ' उमे यदिन्द्रे ' ति महापठितः ।		
उणिह	३८१-३९८	( १८ )
तत्र ३९८ ' पिये ' ति विराट् ।		

ककुभ	३९९-४०८	( १० )
पक्तय	४०९-४२६	( १८ )
तत्र ४२६ ' नतमि ' त्वुपत्पिडाङ्गुहो ।		
द्विपदा	४२७-४५५	( २६ )
[ ४२८, ४३२, ४३४, ४३५ अनुष्टुभादपस्तमैवोक्ता ]		
अत्यष्टय	४५६-४६६	( ११ )
तत्र ४५६ ' इन्द्रो विश्वस्यै ' त्येकपदा ।		

३५२

ऐन्द्रकाण्डस्य मन्वसंख्या ३५२  
आश्लेषकाण्डस्य मन्वसंख्या ११४

सर्वयोगः ४६६

[ ४६६ ] हे ( नृतां इन्द्र ) तवको अपनी इच्छति चलानेवाले इन्द्र ! ( नर्यै ) तव मनुष्योंका हित करनेवाले ( प्रथम पूज्यं ) सर्व प्रथम, मुख्य ( तव त्यक्तु अपः ) तेरे वे कर्म ( दिवि प्रयाज्यं कृत ) शूलोकमें प्रसंगनीय हुए हैं, यह मल यह है कि ( देवस्य असु ) राक्षसोंके प्राणोंकी तूने ( श्वसा रिणन् ) अपने बलसे मल किया, और ( अपः अरिण ) जलोंको बहाया। उस तूने ( विश्व अदेव ) तब अशुओंको ( ओजसा अभिपुत्र ) अपने बलसे हराया; इसलिए ( शत-प्रतुः ) संकरो कर्म करनेवाला इन्द्र ( ऊर्ध्वं श्व यिदेव् ) बलवान् होने और उसको हविष्याय प्राप्त होये ॥ १० ॥

॥ यहाँ छत्तीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ ऐन्द्र काण्ड समाप्त ॥

## ऐन्द्र काण्ड

सामवेदके इस ऐन्द्र काण्डमें ३५२ मंत्र हैं, यह काण्ड यद्यपि " ऐन्द्र-काण्ड " के नामसे प्रसिद्ध है तो भी उसमें " अग्नि, अरत् " आदि अन्य देवताओंके भी मंत्र भाये हैं। यह हूय देवताओंकी शूचीमें स्पष्ट बनें। इस काण्डमें इन्द्र देवताके अतिब मंत्र होनेके कारण इस काण्डका नाम " ऐन्द्र-काण्ड " रखा गया है। इसमें विनोदकायने इन्द्रका ही वर्णन है, इसलिए पहले इन्द्रके गुणोंका अध्ययन

करके फिर बाह्यमें यह देखेंगे, कि उन अध्ययनमें हर्ष क्या गिला मिलती है।

### इन्द्रके गुण

यह इन्द्र अंग शूर है, बेगा ही लागो भी है। इतने ताज और गुणको प्रकट करनेवाले ये विनोदकायने इस काण्डमें भाये हैं—

१ युवा कविः ( ३५९ )-यह इन्द्र तक्षण कवि है, कविका अर्थ है, कान्दर्शा, ब्रूते ही देखनेवाला, ब्रूटर्मा, जानी ।

२ एयः ब्रह्मा ( ४२८ )-यह जानी ही, ब्रह्मको जानने-वाला है ।

३ विप्रः ( ३८८ )-विशेष बुद्धिमान्, विशेष जानी ।

४ विपदिचक्षुः, बृहत् ब्रह्मण्युः ( ३८८ )-जानो, ब्रह्मजानका प्रसार करनेवाला ।

५ ध्रुतः इन्द्रः ( ४४५ )-जानके लिए विशेष प्रसिद्ध ।

६ माम ध्रुतः ( ४३८ )- नामते ही जानी प्रसिद्ध ।

७ कश्यपः ( पश्यकः ) ( ३६१ )-द्रव्य, ठोक ठोक रिपति जाननेवाला ।

८ विश्वानि विदुषे ( ३५२ )-सभी ज्ञानोंको जाननेवाला ।

९ विद्वन्सु चित्रः ( ३४५ )-विद्वान्निमित्तं विलक्षण, भेद जानी ।

१० वि-वेता. ( २६५ )-विशेष बुद्धिमान्, विचार करनेवाला ।

११ विचर्यणिः ( १९९ )-विशेष जानी ।

१२ मुनीनां सखा ( २७५ )-ऋषि-मुनियोंका मित्र, उनका हित करनेवाला ।

१३ देवस्य महिम्वा काव्यं पश्य ( ३२५ )-इत इन्द्रके महत्वके काव्य देख ।

१४ कंचित् रथुरं न अवस्यथः त्वां घृणीमहे ( ४०८ )-जैसे मनुष्य विद्वान्के पास सलाह लेने और विचार करने जाते हैं, उसी प्रकार अपने सरसणके लिए इन्द्रके पास हस जाते हैं ।

१५ सुरूप-कृत्युः ( १६० )-उत्तम सुन्दर रूपको इन्द्र बनाता है, वह उत्तम भारीतर है ।

१६ युवा ( १२७ )-वह मध्ययुवकके समान उस्ताही और विचार करनेवाला है ।

१७ सखा, मित्रः ( १२७ )-यह बराबरके मित्रके समान है ।

१८ मित्रः सखा ( १६९ )-वह विलक्षण और हित करनेवाला मित्र है ।

१९ पतिः ( २०५ )-उत्तम पालक, उत्तम अधिकारी, स्वामी ।

२० सगपतिः ( १६८ )-सज्जनोंका उत्तम पालक करनेवाला है ।

२१ गोपति ( १६८ ) गार्थोंका उत्तम रीतिसे पालक करनेवाला है ।

२२ सत्यस्य सनु ( १६८ )-सत्यका प्रचारक है ।

२३ ध्रुवः ( ४२३ )-महान्, सुन्दर है ।

२४ शिषी ( १४५ )-गिरपर गिरतराज पारण करनेवाला है ।

२५ व अचरुषत् ( १९६ )-वह इन्द्र अपने ज्ञानसे और चतुराईसे तुम्हें अपने पास आकर्षित करता है ।

२६ चन्द्रः सदा उपो सु ( १९६ )-इन्द्र हमेशा पास ही रहता है। सबके पास जाकर निरीक्षण करता है ।

२७ स्य नः ऊती ( २६० )-तू हमारा उत्तम सरसक है ।

२८ त्वं न. आप्य. ( २६० )-तू हमारा मित्र है ।

२९ नः सधमादे भव ( २६० )-हमारे पृथक् साथ बैठनेके स्थानपर आकर बैठ ।

३० न परा वृषक् ( २६० )-हमारा स्वाम्य मत कर ।

इस प्रकार इन्द्रके जानी और आकर्षक गुण सम्बन्धी विशेषण हैं, और उसके सार्वजनिक हित करनेवाले गुण ये हैं—

१ सु-नीती ( १२७ )-इन्द्र उत्तम नीतिके साथसे चलनेवाला है, और लोगोंकी भी उत्तम नीतिसे चलाता है ।

२ नर्य-अपस् ( १२५ )-सब लोगोंके हितकारी कार्य करनेवाला ।

३ सत्य मानुषं चाव न विचरन्ति ( ३७६ )-जितने सार्वजनिक हितके कार्योंमें कोई भी रोग नहीं अटक सकता ।

४ चर्यणीनां सग्राह ( १४४ )-मनुष्योंका सग्राह ।

५ दात-क्रतुः ( ११६ )-संकटों प्रवाररके कर्म करने-वाला, संकटों प्रकारकी बुद्धि और मुश्किलोंवाला, जिनको सहायतासे वह जगने ही उत्तम हित कर सकता है ।

### इन्द्रका पल

इन्द्र जेता विद्वान् है, वेता ही वह सखवान् भी है—

१ सखा ( ११५ )-सत्यवान्, कल्याण ।

२ शाकिन् ( ११५ )-शानिवान् ।

३ दात्रः ( १४० )-सामर्थ्यवान् ।

४ वृषगन्तमः ( १४८ )-अत्यन्त सामर्थ्यवान्, सबको बलवान् ।



- ५ वृषभ, घृषा (११९)-बलवान्, शर्वा गिरानेवाला ।  
 ६ तुवि-श्रीयः ( १४२ ) मज्जुत गर्दनवाला, अर्थात् उसका सिर नहीं कापता ।  
 ७ मंहिष्ठः ( १४४ )- महान्, शक्तितले महान् ।  
 ८ इन्द्रः महान् परः ( १६६ )- इन्द्र महान् और श्रेष्ठ है ।  
 ९ वज्रिणे महत्यं अस्तु ( १६६ )- वज्रपातो इन्द्रका महत्व है ।  
 १० महा-इस्ती ( १६७ )- इन्द्रके हाथ मज्जुत और शक्तिशाली ह् ।  
 ११ त्वन्तः उत्तर ज्यायान् न कि अस्ति ( २०३ )- तुमसे अधिक बलवान् कोई दूसरा नहीं है ।  
 १२ यथा त्वं पर्यं न कि ( २०३ )- जैसा तू है, वैसे दूसरा कोई नहीं है ।  
 १३ अमित-ओजाः ( ३५९ )-अपरिमित सामर्थ्यसे युक्त ।  
 १४ शची-पतिः ( २५३ )-शक्तिका स्वामी, सामर्थ्यवान् ।  
 १५ स्वर्चान् ( २५४ )- आत्मशक्तितले युक्त ।  
 १६ शशिष्ठः धृष्णाः ( ३४७ )- बलवान् और शत्रुपर आक्रमण करनेवाला ।  
 १७ इन्द्रियं त्या आधुणक्तु ( ३४७ )- इन्द्रियोंकी उत्तम शक्ति तेरे पास भरपूर है ।  
 १८ सहस्रः घटात् ओजसा अधिजातः ( १२० )- साहस, बल और सामर्थ्यके कारण जन्मते ही यह प्रसिद्ध है ।  
 १९ सर्व्यं ते घयो ( १२६ )- सब कुछ तेरे आधीन है ।  
 २० ऊन्ये तवस्तर इन्द्रं हवामहे ( १६३ )- अपने सरक्षणके लिए हम महान् बलवान् इन्द्रको घुलाने ह् ।  
 २१ शवः प्रथिना ( १६६ )- उसका बल बढ़ता ही रहता है ।  
 २२ त्वां न अतिरिच्यते ( १९७ )- तेरी अपेक्षा कोई भी अधिक बलवान् नहीं है ।  
 २३ चन्द्रहीरः ( ३६० )- चौर पुण्य जितका हमेशा चन्दन करते हैं ।  
 २४ चाजी पात्रिनं दृशतु- ( १९९ ) बलवान् इन्द्र हूँ बल देवे, हूँ बलवान् बरे, हूँ बलवान् कौरीकी सहायता प्राप्त हो ।  
 २५ मृद्धानि चिभ्या गौम्या आ भर ( २६२ ) सब सामर्थ्य हूँ एक ही मन्व्य प्राप्त हूँ ।  
 २६ मस्य नम् भोज- निरिच्ये यन् उभे रोदसी

- चर्म इव समवर्तयत् ( १८२ )- इसका वह सामर्थ्य चमकता है कि जितकी सहायतासे यह दोनों छाया-पुत्रियोंको चमड़के समान लपेट देता है ।  
 २७ त्वावतः परे मणिः अरं गमेम ( २०९ )- तेरी सहायतासे सुरक्षित होकर और तेरे आश्रयमें रहकर हम कृतकृत्य हों ।  
 २८ शग्धि ( २७४ )- तू सामर्थ्यवाला है ।  
 २९ वीरं नाम धृत्यं शाकिन् इन्द्रं गाय ( २६५ )- इन्द्र वीर है, शत्रुको मुकानेवाला है, प्रसिद्ध बलवान् है, इसलिए उसके घुणोंका गान करो ।  
 ३० परावति घृषा, अर्वावति घृषा, वृषा हि शृषिष्ये, सत्यं घृषा अस्ति, पुत्रजुतिः नः अयिता ( २६३ )- तू दूर देशमें बलवान् है, पासके देशमें भी बलवान् है, तेरी बलवान् कीर्ति में सुनता हूँ, निश्चयसे तू बलवान् है, मन्व्ये तू हमारा सरंक्षण करता है ।  
 घृषा- इसका दूसरा अर्थ है, वामनाओंको पूर्ण करनेवाला ।  
 ३१ अ-देवः मर्त्यः सीं सं न आप ( २६८ )- ईश्वरकी उपासना न करनेवाला अन्न नहीं पसकता, अर्थात् इन्द्रकी उपासना करनेवाला ही उस योग्य अन्नको प्राप्त कर सकता है ।  
 ३२ विश्वास्तु समस्तु इव्यः ( २६९ )- सब युद्धोंमें इन्द्र सहायताके लिए बुलाने योग्य है । ऐसा वह शक्तिमान् है ।  
 ३३ युष्मः खज-रुत्, पुत्न्द्र- जलार्पि ( २७१ )- इन्द्र युद्ध करनेमें कुशल, युद्ध करनेवाला, शत्रुके मगरोंकी तोड़नेवाला है, वह हमारी सहायताके लिए आवे ।  
 ३४ शश्वतीनां पुरां भेत्ता ( २७५ )- चञ्चल नने हुए शत्रुओंके नखदंभोंमें भी तोड़नेवाला है ।  
 ३५ चर्षणीनां राजा, रथेभिः अधिगुप्ता, याता, विश्वासां धृतनानां तवन्ता, घृष्यहा, ज्येष्ठः घृणे ( २७३ )- सब मनुष्योंका शत्रु करनेवाला राजा, रथोंमें आगे जानेवाला, सबने आगे जानेवाला, शत्रुपर आक्रमण करनेवाला, शत्रु-तेजाज गाय करनेवाला, वृषको मारनेवाला, श्रेया श्रेष्ठ इन्द्र है, मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ ।  
 ३६ छाया-गृधिजी जगं ह्युः, भूमिः जगं ह्युः, महर्द्रं ह्युः, न त्या अनु अष्ट, अनु जगं न अनु अष्ट, रोदसी न अनु अष्ट ( २७८ )- छायापुत्रियों,

भूमि ये संकटों हो जाए, हजारों मृत हो जाए, वे सभी भी तेरी बराबरी नहीं कर सकते । पीछेसे होनेवाले पदार्थ तेरी बराबरी नहीं कर सकते ।

३७ यतः इन्द्र भयामहे, ततः नः अभयं दृष्टि ( २७४ ) - हे इन्द्र ! जहासे हमें भय हो, वहासे हमें निर्भय कर ।

३८ न ऊनये द्विष-विजाहि, मृधः विजाहि ( २७५ ) - हमारे सरसभके लिए शत्रुओंको जीत, दुष्टोंको हरा ।

३९ से सखा अश्वी, रथी, गोमान्, सुरूप, श्वाप्रः मागः वपसा सदा सचते । चन्द्रेः सर्भा उपपति ( २७७ ) - तेरा मित्र इन्द्र घोड़े रखनेवाला, रथमें बँडोवाला, गाय रखनेवाला, सुन्दर, शीघ्र ही कर्म करनेवाला, वपसे-ताक्यसे मुक्त रहता है, वह आभूषण पहनकरके सभामें जाता है ।

४० इन्द्र हरी युयोजते ( २९८ ) - इन्द्र घोड़ोंको अपने रथमें जोड़ता है ।

४१ इन्द्रः हयोंः संमिदल, यज्ञी हिरण्यय ( २८९ ) - इन्द्र घोड़े रखता है, मन्त्र धारण करनेवाला भीतर रखती है ।

४२ सत्रा-हा विश्व-चरपिषः तं ययं हुम्हे ( २८९ ) - इन्द्र सब शत्रुओंको एक साथ मारता है । सब मनुष्योंका कल्याण करता है, इसलिये हम उसको सहायतामें बुलाते हैं ।

४३ प्रशर्षाः ( २७९ ) - शत्रुनाशक बलसे मुक्त इन्द्र हैं ।

४४ अनये पुढ नृपूत-वसि ( २७९ ) - सब मनुष्योंका हित करनेके लिए लोग तेरी बहुत प्रार्थना करते हैं ।

४५ एवा कः मर्तः आदधर्पति ( २८० ) - तुम कौन मनुष्य बटा सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं ।

४६ ते भद्रा घाजी पायं दिवि घाजं सिपासति ( २८० ) - तेरे ऊपर भद्रा रखनेवाला बलवान् होता है और अन्तिम विनतक भी दान कर सकता है ।

४७ अ-जर्दं, प्रहेतारं, अ-प्रदितं, आयुजेतारं, शीतारं, रथीतमं, अ-वृत्तं, ऊतये इत ( २८१ ) - जरा-रहित, मेरना देनेवाले, पीछे न रहनेवाले, शत्रुको शीघ्र जीतनेवाले, दान देनेवाले, रथमें बँडनेवाले, किंगीसे भी न हारनेवाले, इन्द्रको यही हमारे पास बुलाओ, सहायताके लिए उठे अपने पास बुलाओ ।

४८ तु आपे ! स्वापिभिः आ ( २८२ ) - हे उत्तम मित्र इन्द्र ! अपने उत्तम मित्रोंके साथ यहाँ आ, हमारे पास हमारी सहायताके लिए आ ।

४९ सहस्रमग्यो तुधि-नृग्ण, सत्यते ! समस्तु नः दृष्टे भव ( २८६ ) - हे हजारों उल्लाहीति मुक्त, बहुत बलवान्, सज्जनोके पालक, इन्द्र ! तू युद्धमें हमारी उन्नति करने-वाला हो ।

५० त्वा वाघत अस्मत् आरे मा निरमत् ( २८४ ) - तेरी स्तुति करनेवाले भक्त तुम हमसे दूर न लेजायें ।

५१ आरात्तात् न सधमादे सु आगहि ( २८४ ) - हमारे यज्ञमें हमारे पास ठीक तरह आ ।

५२ महे शुक्लाय त्वा न परा देयां, न शताय न सहस्राय न अयुताय परा देयां ( २९१ ) - बहुत साथ मिलनेपर भी मैं तुमसे दूर नहीं करूँ, सौ, हजार या दसहजारके बदलेमें भी तुमसे न दू ।

### इन्द्रका शौर्य

इस प्रकार इन्द्रके बलका वर्णन है, जब उसके शौर्यका वर्णन देखिए—

१ मघ शूरः वीरः ( १२३ ) - इन्द्र आत्म बनेवाला शूर और वीर है ।

२ अनामद्यन् ( १२४ ) - निर्भय, भयरहित ।

३ अनानत ( १४२ ) - किसीके भी आगे न झुकनेवाला ।

४ अस्ता ( १२५ ) - दास, शत्रुपर शासन करनेवाला ।

५ नरा ( १४४ ) प्रनेता- ( १९३ ) - नेता, शौर्यके साथ आगे लेजानेवाला ।

६ त्वं ईशिये ( १६२ ) - तू सबपर शासन करता है ।

७ अ-प्रति-प्लुतः ( १७९ ) - जिसका विरोध कोई भी नहीं कर सकता ।

८ सदा-बुधः ( १६९ ) - हमेशा बढनेवाला ।

९ स्थिरः ( २०० ) - युद्धोंमें हमेशा स्थिर रहनेवाला ।

१० विद्रा-साढं चरपिनीतं मीहिष्ठं इन्द्रं अग्नि प्रगायत ( १५५ ) - सब शत्रुओंको हारनेवाले, सब लोगोंमें श्रेष्ठ इन्द्रके गुणोंका गान करो ।

११ महद् भयं अभीपत् अप चुञ्चुवत् ( २०० ) - महान् भयंति हमें दूर करो ।

१२ धुयहर्मं, पुढ धस्मानं, पुषम, स्थिर-स्तुं, घञिर्षं, मृधिमन्तं शूणे ( ३२७ ) - युद्धको मारनेवाले, बहुतों द्वारा पूजित, बलवान्, हमेशा दुष्टोंका नाश करनेवाले, बस-धारी, शत्रुनाशक इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ।

१३ त्व्यद् जायमानः, अ-शानुभ्यः सतभ्यः शानुः त्वं अभयाः ( ३३६ ) - उत्पन्न होते हो, निन्ता कोई भी शत्रु

नहीं पा, ऐसे सात शत्रु राक्षसोंका वृ अकेला ही शत्रु हुआ ।

१५ यद्गतां यद्ग्राणं युवानं पण्डितं जगार ( ३२५ ) -  
बहुतोंको मारनेवाले जवान शत्रुको सफेद बालोंवाला बड़ा योद  
भी पराजित करता है । ( यदि इन्द्र जनको सहायता करे । )

१६ याजसातो अस्मिन् भरे नृतमं इन्द्रं हुयेम  
( ३२९ ) - बलसे लड़े जानेवाले इस युद्धमें मनुष्योंमें श्रेष्ठ  
इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१७ शृण्वन्तं उग्रं समस्तु वृत्राणि प्रन्तं इन्द्रं हुये  
( ३२९ ) भक्नकी प्रार्थना सुननेवाले, योद, युद्धोंमें शत्रुओंको  
मारनेवाले, इन्द्रको सहायताके लिए मैं बुलाता हूँ ।

१७ प्रतारं अचितारं ह्वे ह्वे सुह्वं शक्रं इन्द्रं  
हुये ( ३३२ ) - सरक्षण करनेवाले और प्रत्येक युद्धमें सहायताके  
लिए बुलाये जानेवाले, सामर्थ्यवान् इन्द्रको मैं बुलाता हूँ ।

१८ वज्र-वक्षिणं विवृतानां हरिणां रथ्यं इन्द्रं  
यजामहे ( ३३४ ) - अपने दाये हाथमें वज्रको धारण  
करनेवाले, भेगवान् घोड़ोंके रथमें बँडनेवाले इन्द्रको मैं पूजा  
करता हूँ ।

१९ सनासाहं वापुर्षि तुघ्नं महां अपारं घुषभं  
सुचर्मं ( ३३५ ) शत्रुओंका एक साथ नाश करनेवाले,  
शत्रुको डरानेवाले, शत्रुको दूर करनेवाले, महान् अपार  
भक्तिसे पचघारी इन्द्रको प्रणाम करता हूँ ।

२० इन्द्रा-पर्यता यामी सु-धीर ( ३३८ ) - इन्द्र  
और पर्यंत वे प्रसन्ननीय उत्तम योद हैं ।

२१ अयं शिमी ओन्नता पुरः विभिन्सि ( ३९७ ) -  
यह शिरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र अपने प्रलसे शत्रुके  
नगरोंको तोड़ता है ।

२२ अहे धीराय तत्रमे तुषाय त्रिष्येने यस्मिणे  
स्थिराय असे अपूर्वा पुष्टमानानि दांतमानि पचांसि  
ताशुः ( ३२२ ) - महान् योद, बलवान्, प्रीतिप्रसे कार्य करने-  
वाले, बड़े बख्शारी, मुद ऐसे इस इन्द्रके लिए अपूर्व, बहुत  
और शक्ति ब्रह्मनेवाले शीघ्र कहे जाते हैं ।

२३ इमाः पिब्याः वृतनाः जयासि ( ३२४ ) - इन  
साथे शत्रुओं पर वृ विजय प्राप्त करता है ।

२४ द्रप्सः दशभिः सहर्षी इयानः सृणाः अंगु-  
भर्तां मथानिष्टवृ, दाच्या धमन्तं तं इन्द्रः स्यायत्  
नुमथा. सिन्हासि अधद्राः ( ३२३ ) - आत्मण्य करनेवाला  
इन्द्र शत्रु अपने बमहजार सैनिकोंके साथ अंगुप्रति शत्रु  
पर शत्रुके गथा, अपने आत्मण्यसे लब्धी लब्धी भागमें देनेवाले

जस अशुरको घेरकर, मनुष्योंका हित करनेकी इच्छासे इन्द्रने  
जस हितक सेनाको मर्द कर डाला ।

२५ यत् पार्वं धिय. सुभजते, नरः नेमधिता इन्द्रं  
हुयन्ते ( ३१८ ) जब सकटसे पार होनेकी बुद्धि होती है,  
तब सपाममें सजनेवाले लोग इन्द्रको अपनी सहायताके लिए  
बुलाते हैं ।

नेमधिता सपाम ।

२६ यत् शासः सद्स परि अग्रतं च्यायथ  
( २९८ ) - वृ शासक है, इसलिए हमारे सन्मुखसे प्रत न  
पालन करनेवाले अधार्मिकोंको दूर कर ।

२७ भरे भरे हृष्य. ( ३०९ ) - प्रत्येक युद्धमें सहायताके  
लिए इन्द्र बुलानेके योग्य है ।

२८ दिवाः सद्योभ्य ओजासा प्र रिरिक्षे ( ३१२ ) -  
शुलोकसे भी तू श्रेष्ठ है ।

२९ नः अथिता घृषे च अस. ( ३१४ ) - तू हमारी  
रक्षा और बुद्धि करनेवाला है ।

३० त्वं यावतः ईशिये पतापत् अहं ईशीय ( ३१० ) -  
तेरा जितनेके ऊपर अधिकार है, जतनेपर मेरा भी अधिकार हो ।

३१ न पापश्रयाय रक्षिषम् ( ३१० ) - पापोंमें हम न  
रपे, ऐसा कर ।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन सामवेदमें आया है । ये गुण  
मनुष्य देवों और इन्हें अपने अन्दर धारण करते उन्हें  
बढ़ायें । " यद्देवाः अपुन्यन्स्तत्करवाणि " अंता आचरण  
देवोंने किया, उसी प्रकार मैं भी कहूँ । यह उद्देश्य मनुष्य  
रसकर उसने अनुसार आचरण कर्ते, इन्द्रके इन गुणोंको  
यहाँ इतं सप्रसंगमें इसलिये कहा है कि मनुष्य भी इन्द्रके  
समान दूर, बोर, उत्साही, सतत परिश्रमी, युद्धमें कुशल,  
उदार, प्रजाभोके पालक और सरसक हों ।

इन्द्रके यदि वो धार मनोपर हूँ ध्यान दिया जाए और  
जनको अपने अन्दर धारण करनेका प्रयत्न किया जाए, तो  
जनता भी मनुष्यकी उत्पत्ति अत्यन्त होगी, ऐसे वे गुण हैं ।

अब इन्द्रकी युद्धमें कुशलता बित्त प्रकाशने है, उत्तम  
विचार करते हैं ।

इन्द्रकी युद्ध कुशलता

इन्द्र विजयप्राप्तमें संरक्षण-मयी अपना युद्ध-अंगी है ।  
इस कारण उत्तम शत्रुओंके साथ युद्ध बराबर होता रहता  
है । अतः वह युद्ध नते करता है, उत्तरे अन्दर युद्ध कुशलता  
जाता है, इसका विचार सब करते हैं ।

- १ नु-पाहः ( १४४ )- शत्रुके घोरोंको हरानेवाला ।  
 २ अद्रिचः ( १९४ )- वस्त्रधारण करने लड़नेवाला,  
 ( अद्रि-च ) पहाड़ोंके किलोंमें रहनेवाला, अथवा किलोंमें  
 रहकर लड़नेवाला ।  
 ३ पूतनासहः घोरः ( ४०९ )- शत्रुका सेनाको हराने-  
 वाला घोर ।

४ स्वराज्यं अनु अर्चन्त्यं मायिनं मृगं घृन् मायया  
 अन्धी. ( ४१२ )- स्वराज्यको वृद्ध बनानेके लिए उस  
 मायावी वृथागुर और मायावी पणिका बध किया । वृथागुर  
 कपटसे लड़ता था, उसे इन्द्रने कपटसे ही मारा । कपटिणीके  
 कपटका ही व्यवहार करें, यह बोध महा मितता है, और  
 अपने स्वतन्त्र्य-संरक्षण और प्रजाओंके संरक्षणके लिए  
 कपटसे शत्रुओंका नाश करनेका उपदेश इसमें है ।

५ यः प्रकः इत् विश्वाः कृष्टी अभ्यस्यति ( ३८७ )-  
 यह इन्द्र अकेले ही सब शत्रुके संनिकोंको हरा देता है । इसका  
 इतना सामर्थ्य और धृष्ट-कीर्तित्व है ।

६ विश्वतोवाङ्म ( ४३७ )- सब शत्रुओंका नाश  
 करता है ।

७ विश्वस्य प्रस्तोम. ( ४५० )- सब शत्रुओंका इन्द्र  
 प्रथम करता है ।

८ यः कृष्णगर्भाः निरहन् ( ३८० )- कृष्ण नामके  
 अगुरको गर्भवती पत्नियोंका भी इन्द्रने नाश किया । कृष्ण  
 नामका एक अगुर था, वह लोगोंकी बहुत कष्ट देता था,  
 दस-दस-हजार राज्योंकी सेना लेकर वह आक्रमण करता  
 था, इन्द्रने सब सेनाके माय कृष्णका बध किया, और जिससे  
 जाने कबका धरा भी न रहे, इसलिए उसकी गर्भवती स्त्रियों-  
 को भी मार डाला ।

९ घृन् इन्द्रस्य शर्षं श्रुतं, चर्षणीनां महे राघते प्र  
 स्वाशिये ( २०८ )- घृन्नामक अगुरके नाश करनेमें इन्द्र-  
 का जो बल प्रसिद्ध हुआ, उसे सभीने सुना । यह सब इन्द्रने  
 इसलिए किया कि इससे प्रजाजनोंका महान् कल्याण हो ।  
 घृन्नागुर प्रजाओंको कष्ट देता था, वे कष्ट दूर हों इसलिए  
 उसका इन्द्रने बध किया, उससे प्रजाओंकी महान् उपति,  
 प्रजाओंकी साधिवन्विति उत्पन्न हुई और प्रजाओंका  
 सुख बढ़ा ।

१० घृष्टु सासर्दि लोकरुत्तुं मद्रं हरिश्चिष्यं सुष्णी-  
 मसि ( ३८९ )- मुझमें शत्रुओंकी हरानेवाले, प्रजाओंका  
 १५ ( साम हिन्दी )

कल्याण करने उन्हें भारीबल करनेवाले, प्रजाओंकी सम्पत्ति  
 बढ़ानेवाले इन्द्रकी हृम प्रशंसा करते हैं । " हरि " पदका अर्थ  
 मनुष्य है, " हरिरिति मनुष्य नाम " ( निघ १।३।१० ) ।  
 लोगोंकी शोभा बढ़ानेवाला इन्द्र है ।

११ ते महत्सु आचिषु अर्भं चित् ऊर्ति हवामहे  
 ( ४११ )- उन इन्द्रकी महान् जोर छोटे पुत्रोंमें अपने  
 संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

१२ सः वाजेषु नाः प्राविषत् ( ४११ )- यह इन्द्र मुझमें  
 हमारा उत्तम संरक्षण करता है । ऐसा वह पराक्रमी है ।

१३ ते शत्रुः सुष्णम ( ४१३ )- तु हमें शत्रुओंकी शुकाने-  
 वाला बल भरपूर दे ।

१४ उष्णकयोः हस्तयोः मायस वज्रं श्रिये तिवधे  
 ( ४२३ )- अपने हाथोंमें फौजारी शस्त्रको कल्याणके लिए  
 धारण करता है ।

१५ प्रेहि, अर्भाहि, घृष्णुहि न ते वज्रो नियंसते  
 ( ४१३ )- शत्रुपर आक्रमण कर, चारोंओरसे आक्रमण कर,  
 शत्रुका नाश कर, तेरा वज्र किसीते पराजित होनेवाला नहीं  
 है । इस स्वागणपर ' प्रेहि, अर्भाहि, घृष्णुहि ' ये तीन  
 शब्द युद्धका वणन करनेवाले हैं । " प्रेहि " का अर्थ है,  
 शत्रुपर चढ़ाई करना, " अर्भाहि " का अर्थ है चारों ओर-  
 से शत्रुको घेरकर उन्हें चक्करमें डालकर फिर उनपर  
 आक्रमण करना, और " घृष्णुहि " का अर्थ है शत्रुओंका  
 धर्षण करना, शत्रुओंका बध करना और क्षय पतितसे उसका  
 नाश करना । इन्द्र इन सब युद्ध प्रणालियोंमें कुशल है ।

१६ अरंगमाय जग्मने अपद्वाद्वाग्ने ( ३५२ )-  
 इन्द्र पूर्ण रीतिसे शत्रुपर आक्रमण करता है, शत्रुओंको कुच-  
 लता चला जाता है । शत्रुओंको कुचलनेमें यह देर नहीं करता ।  
 समुपपर जहा पड़ना होता है, वहाँ पड़प जाता है । में  
 तीनों ही युग कीरोंमें आक्रमण है । शत्रुपर चढ़ाई करना,  
 शत्रुका पूर्णतया नाश करना और उचित समय पर आक्रमण  
 करना ये आवश्यक तत्त्व हैं ।

१७ पुरां भिन्दुः, गुवा कविः, व्यभित्तंजा, विश्वस्य  
 कर्मणः धर्षति, अज्यापत ( ३५९ )- शत्रुके कर्तोंको  
 तोड़नेवाला, संरण, शत्रुको, अर्थात्सम सामर्थ्यवाला, सब  
 कर्मोंको धारण करनेवाला यह इन्द्र है, ऐसा यह घोर है ।

१८ पुरं घृष्णं अर्चत ( ३६२ )- शत्रुके कर्तोंके नाश  
 करनेवाले इन्द्रकी अर्चना करो ।

१९. इन्द्रो विश्वस्य राजति ( ४५६ )- इन्द्र विश्वका राजा है, विश्वका आविपत्य इन्द्रके पास है, इतना वह सामर्थ्यवान् है ।

२०. उतथे सुम्नाय तुवि-कूर्मिं प्रतीपहं सत्पतिं इन्द्रं वतेशामसि ( ३५४ )- हमारा सरक्षण ही इसलिए सुलपायी, विविध सामर्थ्योका कार्य करनेवाले, हिंसक शत्रु-ओंको हरा देनेवाले, सज्जनोका पालन करनेवाले, इन्द्रको हम यहा लाते हैं ।

२१. पुस-निःपधे इन्द्राय उक्थं शंस्यम् ( ३६३ )- बहुतसे शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्रकी प्रशंसाके स्तोत्र कहो ।

२२. विश्वानरस्य अनानतस्य शयसः पतिं ह्ये ( ३६४ )- विश्वका नेता, जिसको आगे अपना सिर न झुकानेवाला, बलका स्वामी इन्द्र है, उसे मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ ।

२३. चरणीनां स्थानां पदैः ऊती ह्ये ( ३६५ )- गन्धर्वोंके रथोंके संरक्षणके साधनेसे हमारा रक्षण हो, इस-लिए इन्द्रको हय बुलाते हैं ।

२४. विश्वाः पृतनाः नरः अभिभूतरे आसुरि उमं ओजिष्ठे तरसं तरसिदं इन्द्रं राजते तवजुः ( ३७० )- सब गन्धर्वोंके नेताओंने दुराचारो शत्रुओंको हरानेवाले, शत्रु-को मारनेवाले, उप, बलवान्, बुलाते पार करनेवाले इन्द्रको राजा बनानेके लिए प्रकट किया ।

२५. यः सदाशुधे, विश्वगृते, श्रभ्यपसं, ओजसा शशुष्टे ध्रुषुं इन्द्रं यदाः चकार ( २४३ )- जो हमेशा बढनेवाले, सबसे प्रशंसित, महाबुद्धिमान्, महान् सामर्थ्यके कारण जिसका शत्रु भी पराभव नहीं होता, ऐसे शत्रुओंको हरानेवाले इन्द्रकी वरसे भक्ति करता है, ( वह महान् रोजा है ) ।

२६. तं चर्मणा न किः जडात् ( २४३ )- जिसकी भी चर्मसे उसका शारा नहीं हो सकता ।

२७. शृनु नः तनुषु रुम्णं आपेहि, सप्रजित् पंस्यं आपेहि ( २३१ )- हे इन्द्र ! हमारे प्रजाओंके शरीरमें बहुतसा बल दे, और गन्धर्वोंकी एषताय मारने-का बल भी द्यत ।

२८. वारयः वाजसातो ग्वां ह्यामहे ( २३४ )- हम बर्ष करनेवाले मुझमें तुम ही सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२९. वृषेपु सत्पतिं नरः ह्यन्ते, अर्थतः काष्ठासु त्वा ह्यन्ते ( २३४ )- वृषादि असुरोंके साथ मुझ करनेके समय नेता लोग सज्जनोका पालन करनेवाले तुम इन्द्रकी ही बुलाते हैं । प्रथमको अर्थधिक करनेके बाद अपनी सहायताके लिए तुम ही बुलाते हैं ।

३०. उभे रोदसी त्वा अनुघाघतां ( ३७१ )- दोनों ही धूमके और धूमके तरे अनुकूल ही पक्षों हैं ।

३१. पृथिवी ते शुष्माद् अभ्यसते ( ३७१ )- पृथिवी तरे बलसे भयभीत है । इस प्रकार इन्द्रका बल है ।

३२. सघाजितः शक्षित-ऊतयः, चाजयन्तः रथाः ह्य, गिरः उदीरते ( २५१ )- एकताय सब शत्रुओंको हरानेवाले, जिसके संरक्षणके साधन कभी दीर्घ नहीं होते, ऐसे तेरे भक्त, बलवान् रथके समान, स्तोत्र कहते हैं । तुम इन्द्रके यशका गान करते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रकी मुझ कुशलताका ध्यान सामवेदमें किया गया है । इसको देखनेसे इन्द्रकी शक्तिकी विस्तार तास्ति थी इसको कल्पना हो सकती है ।

यहां इन्द्रके ध्यान करनेका यही उद्देश्य है, कि इन्द्रके समान अपने भी और अपने राष्ट्रकी तैयारी करें, और अपने राष्ट्रको सफल बनायें ।

इन्द्र अपने पास बरख रखता है, उसी प्रकार हम भी संकड़ों पारानोंवाले फीलादी बरख तैयार करें और उनका उपयोग करें यह उद्देश्य यहां नहीं है, अर्थात् जैसे उसके पास तीक्ष्ण बरख है, उसी प्रकार हमारे पास भी हमेशा तीक्ष्ण शस्त्र रहें, यह उपदेश यहां प्रथमोप है ।

इसी प्रकार दूसरे उपदेशोंके विषयमें भी सामर्थ्य । इन्द्र अपने शत्रुओंका नाश करता है, उसी प्रकार हम भी अपने शत्रुओंका नाश करें । शत्रुनाशके साधन शास्त्रास्त्र समय समयपर बदलते हैं । पहलेसे जमानेमें धनुष-बाणसे मुझ होते थे, पर आज धनु शस्त्र है । पर दोनों बलाओंमें उद्देश्य एक ही है शत्रुका नाश करना । यह उद्देश्य जित तापनेमें भी पूरा हो, उन तापनोंका उपयोग करने समयानुसार धनु इतरा वंश निग जानेवाले बन्दोंके बुर करें ।

### पृथुका नश

इन्द्रका मुझ कार्य सब प्रजाओंका उपाय संरक्षण करना है । जो शत्रु आने हैं, उनका सम्यक् नाश कर प्रजाओंका

संरक्षण करना यह कार्य इन्द्र करता है । उसीको घेदमंत्रोंमें कहा है—

१ महे वृत्राय हन्तये इन्द्र वाजायामसि ( ११९ )— महान् वृत्रका वध करनेके लिए हम इन्द्रके यत्नको गाते हैं । वृत्रका अर्थ है ( आघृणोति इति वृत्र ) चारों ओरसे घेरनेवाला शत्रु । ऐसे शत्रुके आनेपर उसके लिए इन्द्रकी बुलते हैं ।

२ वृत्र-हा ( १२६ )— वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र है । इन्द्रका यह नाम ही है ।

३ वयं महाघने अभे इन्द्रं हवामहे ( १३० )— हम महान् युद्धमें और छोटे युद्धमें अपनी सहायताके लिए इन्द्रकी बुलते हैं ।

४ मुनेषु युजं वरिष्णं हवामहे ( १३० )— वृत्रके साथ होनेवाले सभामें वरिष्णारी इन्द्रकी मित्र समक्षकर सहायता के लिए बुलते हैं । यद्वा “ मुनेषु ” इस प्रकार यद्वचनका प्रयोग हुआ है । अनेक युजं हैं । वृत्रका अर्थ केवल एक शत्रु नहीं, अपितु घेरनेवाले अनेक शत्रु । ऐसे सब शत्रुओंका इन्द्रने नाश किया ।

५ तत् त्वा युजा वनेम ( १२८ )— इस प्रकार तेरे साथ रहकर तेरी सहायतामें सब शत्रुओंको मार दें । इन्द्रके साथसे और उसकी सहायतामें हमारी शक्ति बढ़ती है ।

६ आदिशः सूरः अस्तुषु नः मा अभ्यापमत् ( १२८ )— जाता करनेवाले ऋषितमान् राक्षस वधका शत्रु राजीमें हमारे ऊपर आक्रमण न करें । “ आदिशः ” जाता देनेवाले, ऐसा कर और ऐसा न कर ऐसेजा जाता देनेवाले शत्रु । ‘ सूरः ’ ( सु-उरः ) जिसकी छाती विशाल है । ऐसे बलवत् होनेवाले शत्रु राजीके समय हमपर आक्रमण न करें, इसलिए हे इन्द्र ! हमारी रक्षा कर ।

आदिशः— आदेश देनेवाले, शत्रु फँकनेवाले ।

सूरः— हमेशा बलनेवाले, विशाल छातीवाले ।

७ सध्व-साधे तत्र पौंस्यं आद्विष्टि ( १२१ )—हजारों सैनिकोंको साथ लेकर आक्रमण करनेवाले शत्रुपर जब इन्द्र धलकर गया, तब उसका सामर्थ्य प्रकट हुआ ।

८ विश्वाः द्विपः अप भिन्धि ( १३४ )— सब शत्रुओंको मार ।

९ वाघः मृधः परिजहि ( १३४ )— रक्षावट लपट करनेवाले जो शत्रु है, उनका पराभव कर ।

१० इन्द्रः दधीचो अस्थभिः नयनवतीः पुथाणि

जघान ( १७९ )— इन्द्रने दधीचिकी हड्डियोंमें नो घुना गन्धे घृतीकी मार। ९×९०=८१० शत्रुओंका इन्द्रने नाश किया ।

दधीचः अस्थभिः— दधीचिकी हड्डि; दधीचिने अपनी हड्डि की, और उससे बने हुए शत्रुओंके इतने रत्नसोंबेना नाश हुआ, यह आलंकारिक कथा है ।

११ ओजसा महान् अभिष्टिः ( १८० )— अपने सामर्थ्यमें महान् शत्रुओंका पराभव करनेवाला ।

१२ ब्रह्मद्विपः अवजहि ( १९४ )— जानते द्वेष करने-पालेका पराभव कर ।

१३ विश्वाः सृष्टाः अजघः, इन्द्रः अपां फेनेत शिरः उद्वर्तयः ( २११ )— सब शत्रुओंको हराया, और इन्द्रने पानीके झालसे मनुषिका सिर तोड़ा ।

“ अपां फेनः ”—यह समुद्री झाग है, “ न-सुचिः ” तीव्र दूर न होनेवाला रोग, ऐसे रोग पर समुद्री झाग उत्तम औषध है, यह कथा आलंकारिक है ।

१४ अप्रतीनि पुरु-पृथाणि अनुत्तः, चर्यणीधृतिः, एक इत् हंसि- ( २४८ )— अत्यधिक शक्तिवाले बहुतसे शत्रुओंको स्वयं पराभूत न होनेवाले इन्द्रने सब प्रजाओंके कल्याणके लिए अनेके ही मारा ।

१५ वृत्र-हा शतक्रतुः शतपर्येणा चक्षेण घृनं हृगति ( २५७ )— वृत्रको मारनेवाले, संकड़ों कार्य करने-वाले, इन्द्रने संकड़ों कार्योंवाले बन्धके वृत्रको मारा ।

१६ इन्द्राय घृनहन्तमं वृहत् गायन ( २५८ )— इन्द्रके लिए वृत्रको मारनेवाले बृहत् नामके सागका गान करो ।

१७ त्वं प्रगृप्तिषु त्रिभ्याः सृष्टाः अस्थसि ( ३११ )— तू युद्धमें सब शत्रुओंका नाश करता है ।

१८ तूर्यः ( ३११ )— शत्रुका विनाश करनेवाला ।

१९ अशस्ति-हा ( ३११ )— अपराधमनीषोन्म नाश करनेवाला ।

२० जानिता ( ३११ )— शत्रुओंपर आपत्ति सानेवाला ।

२१ तक्षप्यत-घृत्र-भृः अस्ति ( ३११ )— विजय करने-वालोंका विनाशक है ।

२२ ते प्रथमाथ गन्धये श्वं दधामि, यत् वरुणं बहन् ( ३७१ )— तेरे प्रथम साथे हुए जलाहपर में धड़ा करता हूँ, क्योंकि तूने उमते शत्रुको मारा ।

२३ द्विचोदासाय त्वत् शम्भरं अरंधयन् ( ३९२ )—द्विचोदासाके हितके लिए तूने उस शम्भर राक्षसको मारा ।

२४ येन अत्रिणं नि हंसि ( ३१४ )- जिससे तुने केवल स्वयं खायेवाले शत्रुओंको मारा ।

२५ वृधेषु सर्धमानाः क्षितयः यं हवन्ते ( ३१७ )- युद्धोंमें लड़नेवाले मनुष्य जिसको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२६ युक्तेषु तुर्यन्तः यं हवन्ते ( ३२७ )- युद्धके प्रारम्भ होनेपर युद्ध करनेवाले जिसको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२७ शूरस्रातौ यं हवन्ते ( ३३७ )- शूरोसे जिसमें लड़ाई होती है, ऐसे युद्धोंमें लड़नेवाले लोच जिसको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं । वह श्रेष्ठ इन्द्र है ।

२८ यः मर्तः नः वतुष्यन्, अभिद्राति, मन्थमानः, क्षिप्यी युधा, शवसा उगणाः, तुरः त्वोता, वृषमणः अभिप्याम ( ३३६ )- जो शत्रु हमारी हिंसा करनेको इच्छासे हमपर चढ़ा चला जाता है, अपनेको बहुत शक्तिशाली समझता है, तथा विनाशक शस्त्रोंसे आक्रमण करता हुआ चला जाता है, उन सबको, प्रीतिपूर्वक कामें करनेवाले हुए सब जन तेरे संरक्षणसे सुरक्षित होकर तथा बलवान् मनसे युक्त होकर मरें ।

२९ एवं उरखं अर्द्धैः ( ३१५ )- तूने मेवोंको फोडा ।

३० खानि व्यरुजः ( ३१५ )- पानीके द्वारोंको खोल दिया ।

३१ महान् पर्यंत धारा अख्यजत् ( ३१५ )- महान् पर्वतके ऊपरसे पानीकी धाराये छोडी ।

३२ यद्भयान् अर्णयान् अरमणाः ( ३१५ )- उफनते हुए मनुष्योंको आतंकित किया ।

३३ यत् दानवान् अवहन् ( ३१५ )- जब तूने वानदोंको मारा । यह वर्णन मेघोंसे पानी बरतानेका है । आलंकारिक रूपमें मेघ यह रासस है, और उसे इन्द्रने मारा यह ध्वनि किया है ।

३४ गोमनः जतस्य संस्थे व्यसन्तं त्या युजा प्रति वृषीमिहि ( ४०३ ) नाथ पात रक्षनेवाले, लोगोंके स्वार्थोंपर आक्रमण करनेवाले, लम्बी लम्बी सात लेनेवाले शत्रुको तेरी सहायतासे हुए उत्तम उत्तर हैं ।

३५ इन्द्राज्ये वसु अर्चन् वृधेभ्याः आहि निः प्राशाः ( ४१० )- स्वराज्यका संरक्षण करनेके लिए पृथिवीपर आये हुए अहि नामक शत्रुपर तूने शासन किया ।

३६ राक्षसिः वृषाणे परि, नः क्रयणा द्विः, सरथैः ईरसे ( ४२८ )- तू उल्लाससे युक्त है, इसलिए

तू शत्रुओंको मारनेके लिए अपने शत्रुनाशक सामर्थ्यसे द्वेष करनेवालोंको दूर करनेका प्रयत्न करता है ।

इन्द्र शत्रुओंको मारता है, और इस प्रकार वह शत्रुहित होता है । इसलिए वह प्रबल शक्तियोंसे सम्पन्न है । यह सब बातें इन वचनोंमें पाठकोंको मिलेंगी । इसलिए पाठक इन वचनोंको ध्यानसे पढ़ें और स्वयं शक्तिसम्पन्न केंसे हों, यह विचार करें । पाठक इस दृष्टिसे इसका अध्ययन करें और उससे बोध प्राप्त करें । जो इस रीतिसे अध्ययन करेगा, वह इन्द्रके समान शूरवीर और शत्रुको जीतनेवाला होगा ।

### संरक्षण करनेवाला इन्द्र

सभी देवता मनुष्योंका संरक्षण करते हैं, पर उनमें भी इन्द्रका संरक्षण विशेष महत्त्वका है, इस विषयमें निम्न पत्रोंको देखो—

१ देवानां महत्त अयः ऊतये पयं आ वृषीमिहे ( १३८ )- देवोंका महान् संरक्षण हम अपने रक्षणके लिए मागते हैं ।

२ कथा ऊनी, कथा शचिष्ठया पुता, नः आमुवत् ( १६९ )- कौन्ती संरक्षणको शान्तके साथ, और कौन्ती सामर्थ्यके साथ यह इन्द्र हमारे पास आये ?

३ ऊतये सना-साहं, थिभ्यासु गाँतु, आयतं, आष्यावयसि ( १७० )- अपने संरक्षणके लिए, सब शत्रुओंको एक साथ मारनेवाले, सब स्तुतियोंसे वर्णनके योग्य इन्द्रको अपने पास बुलाओ ।

४ महींमिः ऊतिभिः वससां कथं वागाहि ( १८१ )- महान् संरक्षणके साथगोंके साथ तू हमारे पास आ ।

५ प्रचेतसः ये रश्मिनि, सः जनः न किः वृष्यते ( १८५ )- शानी जिसका संरक्षण करते हैं, उस मनुष्योंको कोई भी बना नहीं सबता ।

६ शुभ्रैः उराध्वैर् महि अयः अस्तु ( १९२ )- तेजस्वी, दूसरे जिगपर आक्रमण नहीं कर सकते, ऐसे संरक्षणके महान् साधन हमें प्राप्त हों ।

७ त्वायतः ययं ससि ( १९३ )- तेरे संरक्षणसे हम सुरक्षित रहें ।

८ जनानां तराणि यद् गोमतः याजम्य ममानं प्रदीमिषम् ( २०४ )- लोगोंकी तु भूमि तारनेवाला, शत्रुको भय दिवानेवाला, नामोंके मिलनेवाले अर्द्धोंका राजा इन्द्र है, उनको मैं प्रसादा करता हूँ ।

९ ऊतये रश्मकरत्नं, धयमे साधः एण्यन्ते,

सुवदुस्वयं हवामहे ( २१७ )- सरक्षणके लिए अपना हाथ सागे धरानेवाले, सुरक्षितताके लिए साधनको तैयार रखनेवाले सब जिसको प्रशंसा करते हैं, ऐसे इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१० तराभिः रिद्वद्रुतं इन्द्रं ऊतये वृहत् गावन्तः ( २१७ ) अनेक धनीसे युक्त, सब प्रकारके जान जिससे होते हैं, ऐसे इन्द्रके लिए बृहत् नामके सामको हम अपने रक्षणके लिए पाते हैं ।

११ ते प्रियः नः अयन्तु ( २१९ )- तेरो बुद्धि हमारा तरक्षण करे ।

१२ त्रिभ्याभिः ऊतिभिः शग्धि ( २५३ )- सब सरक्षणके साधनसे तू सामम्यवान् है ।

१३ मदिपः तुभि शुष्मः ( ४५७ )- तू सामम्यवान् और भयविक बलवान् है ।

१४ सना भूरि ध्यांसि दधानं अप्रतिप्लुतं इन्द्रं जोहवीभि ( ४६० )- एकसाथ बहुतसा पशु प्राप्त करनेवाले, जिसका मुखावला कोई भी बर नहीं सकता ऐसे इन्द्रको हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१५ चत्री राये त्रिभवा सुगया फरत् ( ४६० )- बज्रधारी इन्द्र धन प्रादिके सब मालाको ररल करता है ।

इस तरह इन्द्र सरक्षण करता है, इस विषयके उत्तम वचन विचार करनेके योग्य है । उनका विचार पाठक करें, और अपनेमें ऐसी सरक्षणकी शक्ति पढ़ायें ।

### चनवान् और धनदाता इन्द्र

इन्द्र स्वयं पनवान् है और वह धन दूसरोंको देकर उनकी सहायता करनेवाला भी है । इत त्रियमं निम्न वचन श्रद्धय हैं—

१ धृता-मघः ( १२५ )- प्रसिद्ध पनवान् ।

२ वसुः ( १३२ )- सबको चानेवाला, पनवान् ।

३ राधानां-पतिः ( १६५ )- अनेक प्रकारके धनीका स्वामी ।

४ पुर-वसुः ( १४६ )- बहुतसा धन जिसके पास है ।

५ त्रिभा-वसुः ( २१३ )- तेजस्वी धन रखनेवाला ।

६ प्रभु-वसुः ( ३७३ )- प्रमुख करनेवाले धन जिसके पास है ।

७ दिवा-वसुः ( ३४८ )- दिव्य धनीको रखनेवाला ।

८ सुवि-वसुः ( ३१६ )- बहुततो धनीके मुक्त ।

९ त्वं एतः इत् वस्यः ईशियः ( १२२ )- तू अनेका ही धनीका स्वामी है ।

१० धन-सा ( २५१ )- धनीका दान करनेवाला ।

११ धनस्य सातये इन्द्रं हवामहे ( २४९ )- धनके दानके लिए हम इन्द्रको बुलाते हैं ।

१२ पांच धितीनां शुष्मं आ भर ( २६२ )- पांच प्रकारके जनके तेजस्यो धन हमें भरपूर दे ।

१३ नः सुवितं आ भर ( ३१६ )- हमें उत्तम धन दे ।

१४ धनानि संजितं ऊतये ह्येम ( ३२९ )- धनीको जीतकर लानेवाले इन्द्रको अपने सरक्षणके लिए हम अपने पास बुलाते हैं ।

१५ मायते स्तुयते यत् वसु शिक्शि, तत् न किः ग्रामिनाति ( २९६ )- मेरे बंसे स्तुति करनेवालेको जो धन तू देता है, उसे कोई भी रोक नहीं सकता ।

१६ देवस्य ते भूयः दानं उपोषेत् पृच्यते ( ३०० )- तू इन्द्रदेव है, तेरे लिए हुए धन पास आनेपर बढते हैं ।

१७ उषायः इन्द्रः, इषतः जनीयसः तत् आ भर ( ३०९ )- हे इन्द्र ! तू श्रेष्ठ है, धन इच्छा करनेवाले और तेरी अपेक्षा छोटे मुझे वह धन भरपूर दे ।

१८ वसुनि वदः ( ३१४ )- अनेक प्रकारके धन दे ।

१९ त्वं मेघ ऋग्भिर्, वस्वः अण्येभिः अग्नि-प्लुत ( ३७६ )- उत प्रसतनीय, मर्षिते स्तुतिके योग्य, धनीके समूह इन्द्रको स्वोपार्थसे स्तुति करते ।

२० मंदिष्टं इन्द्रं अर्घ्यं चत ( ३७६ )- महान् इन्द्रको पूजा करो ।

२१ मे पितुः वस्यान् ( २९२ )- मेरे पिताकी अपेक्षा तू धनवान् है ।

२२ अमुंजतः भ्रातुः वस्यान् ( २९२ )- धनीका उपभोग न करनेवाले भाईकी अपेक्षा भी तू धनवान् है ।

२३ मे माता समा ( २९२ )- मेरी माँ तेरे समान् है ।

२४ वसुत्यनय राधसे छद्मधमः ( २९२ )- धन-प्राप्ति और सिद्धिके लिए हमारा सरक्षण कर ।

२५ स्वोताः तना रमना सङ्ग्राम ( ३१६ )- तेरे पासते सरक्षण प्राप्त होनेके बाद हम पनते युगपत्त हैं ।

२६ ऊतये सामानि संजित्वानं सदागहं चयिष्ठं रथि आ भर ( १२९ )- हमारे सरक्षणके लिए, उपभोगके योग्य, शत्रुको पराजित करनेवाले, हमेशा विजय प्राप्त करनेवाले, श्रेष्ठ धन हमें भरपूर दे ।

२७ हे शतक्रतो ! भद्रं इपं ऊर्जनः नः आ भर ( १७३ ) - हे शतश्रीं कर्न करनेवाले इन्द्र ! कल्याण करनेवाले भद्र और सामम्य हवें दे ।



२८ ऋषु-क्षणं रायं वदातु ( १९९ )- कारीगरोंके संरक्षण करनेवाले धन हमें इन्द्र देवे ।

२९ यत् धीर्धी, यत्स्थिरं, यत् पशानि पराभृतं तत् स्प्राहं यमु आ भर ( २०० ) जो धन मजबूत खजानेमें रखा हुआ है, जो धन स्थिर रूपमें रखा हुआ है, जो धन कठिन स्थानपर भूमिमें गाड़ा गया है, उसा सुन्दर धनको हमें भरपूर दे ।

३० पुन-यसुः मधया जरितुभ्यः सहस्रेण शिक्षति ( २३५ )- बहुतसे मनोंकी पासमें रखनेवाला, इन्द्र अपने उपासकोंको अनेक प्रकारके धन देता है ।

३१ हे इन्द्र ! धातुधत्ते पाहि, चेरवे भानं धिदा, गविप्रये धावृषस ( २४० )- हे इन्द्र ! धन देनेके लिए आ, शत्रुवारो मनुष्योंको धन दे, मार्गोंकी अपने पास रखनेकी इच्छावालेको गाय देकर बलवान् कर ।

३२ दाशुपे रत्नानि धत्तं ( ३०६ )- दानशीलके लिए रख दे, अर्थात् धन दे ।

३३ याः भुजाः मसुरेभ्य आ भर, अस्य स्तोतां चर्षय, ये च त्वे वृकवर्षिष- ( २५४ )- जो उपभोगके योग्य धन हैं, उन्हें अमुरोंके पासमें ले आ, उनकी सहायतामें उपासकोंको महान् कर, जो तेरे लिए आसन फैलाते हैं, उन्हें भी महान् कर ।

३४ अयमं यमु तव, मध्यमं त्वं पुष्यसि, परमस्य चिध्वस्य सप्रा राजसि, त्या गोपु न किः वृषजते ( २७० )- निद्रुष्ट धन तेरा है, मध्यम धनका वृष योग्य करता है, परम श्रेष्ठ धनोपर भी तेरा ही अधिकार है, गाय देनेवाले हैरा कोई भी प्रतिकार नहीं कर सकता ।

३५ अस्य वतिः कदाप्यन मा उपदस्य ( २८७ )- हमारा धन कभी भी नष्ट न होवे ।

३६ चित्रं धुपमं रायि दाः ( ३१७ )- विलक्षण और बल श्यांवाले धन हमें दे ।

३७ ते दक्षिणं हस्ते चमूषयः जगृह्या ( ३१७ )- धन प्राणिकी इच्छा करनेवाले हम तेरे शायं हाथकी पकड़ते हैं, ( तू उन हाथों धन देता है ) ।

३८ त्या गोर्नां गोपार्ति पित्र ( ३१७ )- तू मार्गोंका स्वामी है, यह हम जानते हैं, इसलिए तू गाय दे ।

३९ अहं स्वदा याचन् आनुमुधं ( ३०७ )- मेरे हमेगा मीठे रहनेके श्या तू मुझसे हो गयी है ?

४० नः ईशानं न याचिषत् ( ३०७ )- अपने स्वामीते

कोन भला नहीं मागता ? सब अपने स्वामीसे ही मागते हैं, उसी प्रकार मैं मांगता हूँ, अतः शोध न करते हुए मुझे धन दे ।

४१ सुवाधाः मधया मयानि दाता ( ३३५ )- उत्तम धनसे युक्त इन्द्र धन देता है ।

४२ यत् त्वा आदातं राघः मे नास्ति, तत् नः उभया हस्त्या भर ( ३४५ )- तेरे लिए गए धन अब मेरे पास नहीं रहे, इसलिए दोनों हाथोंसे मुझे भरपूर धन दे ।

४३ सुवीर्यस्य गोमतः रायः पूर्धिं ( ३४६ )- उत्तम वीर्यसे युक्त मार्गोंवाले धन हमें भरपूर दे ।

४४ विश्वचर्षणे सुदत्र ! नः शुभ्रं मंहय ( ३६६ )- हे सभ लोगोंके हित करनेवाले, उत्तम धान देनेवाले इन्द्र ! हमें धन देकर महान् बना ।

४५ महित्यना राधांसि प्रचोदयते ( ३८६ )- हे इन्द्र ! तू अपनी धनके अनुरूप ही धन देता है ।

४६ यः पुरा इदं चस्य न प्र आ मिताय, तं इन्द्रं ऊतये स्तुवे ( ४०० )- जो इन्द्र पहलेसे ही हमें धन देता आया है उस इन्द्रको हम अपने संरक्षणके लिए स्तुति करते हैं ।

४७ यत् आजयः उदीरते, धृष्णजे धनं वीयते ( ४१४ )- जब युद्ध शुरू होते हैं, उसा समग्र शक्तिशाली वीरोंको धन प्राप्त होता है ।

४८ कं हतः ? क यसौ कृषः ? असान् यसौ दधः ( ४१४ )- तु विहाको मारता है ? किसको धन देता है ? यह सब तेरे ऊपर है, पर हमें धन दे ।

इन्द्र धन प्राप्त करता है और उन्हें अपने उपासकोंको देता है, उन धनोंको लेकर उपासक उत्तम तिपतिमें रहते हैं, धनका अर्थ है गाय, घोड़े, रथ, भूमि, सोना, रत्न और इतने भी पदार्थ जिनकी सहायतासे मनुष्य सुखमंगलाली होता है । सो, हजारा, अल्प-वस्तुकार आदि धन्य भी मनोंमें प्रमुक्त हुए हैं । जैसे—

४९ माधवा सहस्रेण शिक्षति ( २३५ )- इन्द्र हजारों धान देता है ।

५० धीर्धी, स्थिरं, पशानि पराभृतं ( २०० )- निद्रुष्टीमें रखे, स्थिर और भूमिमेंमें गड़े हुए ये तीन प्रकारके धन होते हैं, देता बड़ा है ।

ये धन मोहर, रथके इत प्रकार कुछ होंगे ऐसे सामान्य धनका है । सो, हजारा, वस्तुकार इत संख्यामेंमें मिले जाते हैं, ऐसी कोई चीज होगी । यह विचारणीय है ।

यह पन ऐसा होना चाहिए जो तिजोरीमें रखा जा सके, बैकमें निरप रक्षणमें रखा जा सके, और भूमिमें घतनमें दण्ड करके भाड़ा जा सके। सोनेके मोहरके रक्षणमें ये पन होंगे ऐसा कुछ प्रतीत होता है।

आनकक ही, हज़ार, दसहज़ार तकके कागजके नोट प्रयोगमें आते हैं, पर उस समय इसप्रकार कागजके नोटोंका प्रचलन नहीं था। रत्नोंका प्रयोग या पहले, पर उन्हें भी हज़ार, दसहज़ारोंकी संख्यामें देना सम्भव नहीं था, इसलिए सोने, चांदीकी ही मुद्रायें होगी ऐसा प्रतीत होता है। पर यह विचारणीय है।

### यदि मैं धनवान् हो जाऊं तो ?

यदि मैं धनवान् हो जाऊं तो मेरी प्रतिष्ठा बढ़ेगी, यह विचार प्रायिके धनूप्यका स्वाभाविक है। इस प्रकारका एक वाक्य विभ्न मंत्रमें आया हुआ है—

१ अहं यत् चस्यः ईशिया, मे स्तोता गोपस्ता स्यात् ( १२२ )— यदि मैं बन्का स्वामी हो जाऊं तो मेरी स्तुति करनेवाला पापका मित्र हो जाए। मैं धनवान् हो जाऊं तो मेरी स्तुति होती रहेगी, ऐसा यहाँ कहा है। धनवान्-को सब जगह स्तुति होती है। इन्द्र धनवान् है, इसलिए उसकी सब लोग स्तुति करते हैं। उसी प्रकार जो धनवान् होगा, उसकी स्तुति सभी करते रहेंगे। क्योंकि स्तुतिमें प्रसन्न होकर यह पन देना। यहाँ प्रयुक्त हुआ धन ' वस्तु ' गौर्बिके रूपमें नहीं है, यह व्यवहारमें आने योग्य कोई वस्तु ही पन है, जो हजारोंकी संख्यामें वस्तुओंकी विद्या जाता था।

२ स्याईं वस्तु आ भर ( १३४ )— सुन्दर वस्तु प्राप्त पन हूँ भरपूर वे।

३ सः नः यस्तुनि आ भर ( १९० )— यह इन्द्र हूँ धनप्राप्त पन देवे।

४ राधः उय्युव्य ( १९४ )— हूँ पन वे।

५ ध्रुमन्तं चित्रं प्रामिं दक्षिणेन आ संयुम्याय ( १६७ )— शब्द करनेवाले, लेने योग्य, विलक्षण धन वामे हाथसे संप्रह करनेके हूँ वे।

इसमें " चित्रं, प्रामिं, ध्रुमन्तं " ये तीन धनके विशेषण हैं। यहाँ उनका योभा सा विचार करते हैं।

चित्रं— विलक्षण, चमकनेवाले, तेजस्वी।

प्रामिं— हाथमें लेने योग्य।

ध्रु-मन्तं— शब्द करनेवाले, अन्न देनेवाले।

इन शब्दोंके विचारसे यह ज्ञात होता है कि ये पन धनप्राप्तके अर्थात् सोने, चांदीके, हाथोंमें अनेक संख्यामें लेने योग्य और शब्द करनेवाले, आवाज करनेवाले होते होंगे। धातुके सिक्के अथवा विशिष्ट प्रकारके टुकड़े ही ये हो सकते हैं। ' आ संयुम्याय ' यह शब्द यह बताता है, कि लोग इनका संप्रह करते थे। इससे, ये सिक्के छोटे छोटे टुकड़ोंके रूपमें थे, यह भी प्रतीत होता है।

६ नः सुमग्न्या अश्वया रथया महोनां वरिचस्य ( १८६ )— हमें उत्तम गाय, उत्तम घोड़े और उत्तम रथोंसे सम्पन्न कर। इसमें गाय, घोड़े और रथ भी संपत्ति हैं ऐसा कहा है, पर यह पन ' प्रामिं ' अनेक संख्याओंमें हाथमें प्रहण करने योग्य, ' ध्रु-मन्तं ' आवाज देनेवाले, और ' चित्रं ' चमकनेवाले नहीं है। इस लिए गाय, घोड़े और रथोंकी सम्पत्ति हजारोंकी संख्यामें दिए जानेवाले धनसे भिन्न है।

इस प्रकारका पन वैदिक कालमें उपयोगमें आता था। यह विषय और भी विचारणीय है।

### रथ और घोड़े

इन्द्रके रथ में और रथ चलानेके लिए उत्तम विशिष्ट घोड़े भी उसके पास थे।

१ मन्द्रैः मयूर-रोमभिः हस्तिभिः आवाहि ( २४६ )— सुन्दर सौरके रथके समान अयालवाले घोड़ोंसे हे इन्द्र ! तू महर्षि आ।

२ उरीणां स्याता ( १९३ )— घोड़ोंके रथमें बैठने-वाला इन्द्र।

३ ध्रुपन्मा हृषी उप युयुजे-युप्रहा आ जगाम ( ३०८ )— बलवान् घोड़ों पीछे उसने रथमें जोड़ लिए हैं, और वृत्रकी मारनेवाला इन्द्र आ गया है।

४ प्रक्षयुजः केसिनः क्षिण्यये रथे युक्तः आ सहर्षं शार्तं ह्यरयः त्वा आ वदन्तु ( २४५ )— कहने मात्रसे ही रथमें बुद्ध करनेवाले सुन्दर अयालवाले, सुनहरे रथमें जोड़े जानेवाले हजारों और सैकड़ों घोड़े इन्द्रकी जहाँ जाता होता है, वहाँ पहुँचते हैं। इस धनमें इन्द्रके घोड़े कैसे सुशिक्षित थे, यह बताया गया है।

इन्द्र-युजः— सुचकारके शब्द सुनकर ही उठकर पड़े हो जानेवाले, मंत्र बोलते ही रथमें बुद्ध जानेवाले। यह उत्तम

सुनिहित घोड़ेका लक्षण है। इसारा होते ही खूब-ब खूब जायकर खड़े हो जातेवाले। अत्यन्त सुनिहित घोड़े ही ऐसा कर सकते हैं।

कौशिकः- उत्तम अयाल ( गर्दन के बाल ) वाले।

हिरण्यथे रथे युक्ताः- सोनेके रथमें जोड़े जानेवाले।

सहस्रं शतं हृदय- हजारो अथवा सौ घोड़े।

एक रथमें हजार अथवा सौ घोड़ोका जोड़ा जाना सम्भव नहीं। इन्धके साथ दूसरे अधिकारी भी होंगे, ये घोड़े उन्हींके होंगे। बड़े सोनीके रथके साथ अनेक पुडसवार होते हैं, उसी प्रकार इन्धके साथ भी होंगे। अथवा आल्फारिक भाषामें यह " किरणों " का वर्णन होगा क्योंकि अनेक स्थलपर " हरी " दो घोड़ोंके जोड़े जानेका वर्णन है। दो घोड़ोका रथमें जोड़ा जाना सम्भव है। अतः हजार और सौ यह वर्णन आलकारिक होना चाहिए अथवा किरणोका वाचक होना चाहिए।

### गाय

इन्द्रका सम्बन्ध जैसा घोड़ोंके साथ है, वैसा ही गायोंके साथ भी है। जैसे—

१ यत्तस्य मही रप्सुदा ( ११७ )- यज्ञके लिए बहुतसा दूध देनेवाली गायकी आवश्यकता होती है, क्योंकि यज्ञमें इन्द्रको बुलगाया जाता है।

२ उभा कर्णा हिरण्यया ( ११७ )- गायके दोनों फाज सोनेके किन्हेसे सुसोभित होते हैं।

३ नः रेयतीः तुधि-चाजाः सन्तु ( १५३ )- हमारी गायें बहुत दूध देनेवाली हों।

४ अयलः नः कामः गोमति वजे नः आ भज ( ३१८ )- बल अथवा अन्नकी इच्छा करनेवाला तू हमें गायोंके गोष्ठको दे। गायोंके गोष्ठमें हथ पड़े।

५ सवर्जुषां सुदुग्धां उरुधारां इपे धेन्तु इन्द्रं ब्राह्मणे ( २१५ )- दूध देनेवाली, सरलतारो बुढ़नेवाली, बहुत दूध देनेवाली, बसहथी गायके लिए इन्द्रकी भे प्रार्थना करता हूँ।

६ नः गव्यूर्ति धृतेः अग उदरतं ( २२० )- हमारे गायोंके स्थानीपर धोकी बग्य हो, हमें धी बहुत मिले।

७ धैतयः गायः वलत ( २०१ )- दुबाल गायें अपने पछड़ेके पाल जाती हैं।

यह गायोका वर्णन इस ऐन्द्र काण्डमें है। बहुतसी गायें हमारे पास रहे, और दूध ध धी दूध मिले, यह तात्पर्य है।

### इन्द्रकी माता

१ इन्द्रं त्वा देवीं जनिनी अर्जीजनत् ( ३७५ )- तुम इन्द्रकी सबको उत्पन्न करनेवाली धाधधंपिचो इन देविमें उत्पन्न किया। इस इन्द्रकी दो मातायें हैं।

२ घन्यानासः ईख्यन्तीः ख्वस्युवाः जातं त उपासते ( १७५ )- तुतिके बोध, पति करनेवाली, निरन्तर कार्य करनेवाली उस माताका यह बलवाली पुत्र उत्पन्न हुआ, उस पुत्रकी वह उपासना करने लगी, उसके पास रहकर उसकी सेवा करने लगी।

### एक स्थानपर बैठकर स्तुति करना

एक स्थानपर बैठकर, सब संगठित होकर इन्द्र परसेवर की उपासना आद्य लोग करते थे।

१ तत् सचा गाय ( ११५ )- एक स्तोत्रोंको एक स्थानपर बैठकर गावो।

२ आ इत्, नियीदत्, इन्द्रं अभिप्र गायत ( ११५ )- आओ, बैठो और, सब मिलकर इन्द्रके स्तोत्र गाओ।

३ इन्द्रं इत् सचा स्तोत, मुद्रेः शंसत ( २४२ )- इन्द्रकी एक जगह बैठकर स्तुति करो और उसकी बातका स्तुति करो।

४ याम्नि जीवाः ज्योतिः अशीमहि ( २५९ )- यज्ञमें एक जगह मिलकर स्तोत्र गावें और तेज प्राप्त करें।

५ सत्राच्या धिया मधयान् आगमत् ( २९० )- एकत्र बैठकर गावें गवे स्तोत्रोंको सुननेके लिए इन्द्र आता है।

६ दिभ्यां वोजसा दिवः पतिं समेत ( १७२ )- अपने वस्त्रके धूलोकके स्वामी इन्द्रकी एक जगह इन्द्रके होकर बैठकर स्तुति करो।

७ दयो धया, त्वा स्तीदन्त अभिनोनुमः ( ४०७ )- पशो जैसे एक जगह इन्द्रके होते हैं, उसी प्रकार हम भी एक जगह इन्द्रके होकर सबे नमस्कार करते हैं।

८ सधमाद्ये आधि नाः वृधे भय ( २३९ )- यह स्थानमें एकत्र बैठकर तू इन्द्र। हमारा मित्र हो, और हमारी उन्नतिमें सहायक हो।

जहाँ मद्य होता था, वहाँ सब आर्य माते थे, एक जगह

इकट्ठे होकर बँठते थे और सब मिलकर इन्द्रकी प्रार्थना, स्तुति और उपासना करते थे और एकजगह बैठकर प्रार्थना करनेके कारण उनमें एकता थी । एक जगह इकट्ठे होनेका यह नाम है ।

**ज्ञानी कैसे होता है ?**

१ कः प्रह्ला तं इन्द्रं स्वर्षति ( १४२ )—कौन ज्ञानी उस इन्द्रकी उपासना करता है ? एक स्वानपर बँठकर उसकी प्रार्थना करनेसे ज्ञानकी वृद्धि और सामर्थ्य प्राप्त होता है ।

२ उपहारे गिरिष्वां संगमे च नदीनां धिया निप्रो अजापत ( १४३ )—पर्वतकी उपासका और नदीके संगम पर बैठकर अपना मन उस परमात्माने लगानेसे महाज्ञानी बनता है ।

ज्ञानी बननेके लिए ऐसी तपस्या करनेकी चाहिए । पर्वतपर और नदीके संगमपर मनकी एकाग्रताके लिए अनुकूल वातावरण मिलता है । घरमें भी यदि एकाग्र स्थान मिले तो मन एकाग्र हो इसके लिए आवश्यक तैयारी करके साधना प्रारम्भ होनेपर मन एकाग्र होनेसे जो लाभ होने सम्भव है, वे लाभ हो सकते हैं । शीघ्र अधिक कष्ट होंगे, उस इतना ही है, पर लाभ होगा अवश्य ।

**इन्द्रका रथ और वज्र**

१ जनघः (अमघः) ते अध्याय रथं ततश्चु, त्यद्रा सुमन्तं घञं ( ४४० )—मनुष्य भारीकर शम्भुमाने इन्द्रके पीछेके लिए रथ बनाया, और देखके कारीगर त्वष्टाने इन्द्रके लिए तेजस्वी वज्र तैयार किया ।

उत्तमसे उत्तम रथ और वज्र लेकर इन्द्र उत्तम प्रकारसे तैयार हो जाता था, और शम्भु रथ इत्यादि बनाते थे और त्वष्टा फौजवाके वज्र बनाकर इन्द्रको देता था । मुट्ट करनेवाले कारीगरो उत्तमसे उत्तम शस्त्रास्त्र बनाना आवश्यक है, यही तो मुट्टमें विनय मिलना अत्यन्त कठिन हो जाता है । इन्द्रके पास शम्भु, त्वष्टा आदि उत्तम कारीगर हैं, और मुट्टके लिए आवश्यक शस्त्रोंका उत्तम रीतिसे निर्माण करते हैं । इस कारण इन्द्र सदा ही विजयी होता है ।

**इन्द्र जलम ठीक करता है**

१ यः अग्निधियः श्नते चित् जुभुष्यः आवदः पुरा सधि संधाता, मधया पुरु-पयुः चित्तुं पुनः निष्कतो

१६ ( नाम हनेको )

( २४४ )—यह इन्द्र जोडनेका कोई साधन न होते हुए भी किसी साधके दूट जानेपर तीव्र जोड़ देता है, और घनधान, बहुत ऐश्वर्यवान् इन्द्र दूटे हुए भागीकी उत्तम रीतिसे फिर जोड़ देता है, और धानोंको ठीक करता है ।

अस्त्रास्त्रैस्ते मुट्ट करनेवाले धोरोंको इतना ज्ञान आवश्यक है । मुट्टमें शस्त्रोंके जलम तो होने ही हैं, पर उनको तीव्र हो ठीक करनेका ज्ञान होना आवश्यक है । इन्द्र इस विद्यामें कुशल है, इसे उबरोक्त वचन स्पष्ट करता है । अन्य देवोंमें अश्विनोत्तम इन्द्र नाममें निपुण हैं, पर इन्द्र वीर होते हुए भी धानोंको ठीक करनेमें बह कुशल है । यह यहाँ इच्छ्य है ।

**दुःख दूर करना**

इन्द्र इसरीके कुल दूर करता है । इस विषयमें निम्न पत्र है—

१ दुष्मन्त्रं परासुव ( १४१ )—गुरे स्वप्नोंको और उनके कार्योंको दूर कर । दुष्ट देवोंवाले स्वप्न आवे हो म ऐसा कर ।

२ निर्मतीनां परिकृञं वेत्थ ( १५६ )—दुष्टोंको दूर कैसे किया जाए यह दु जानता है ।

३ अहः धहः मुन्धु परिपदांश्च ( १५७ )—प्रतिदिन अपनी मुट्टता करनेवाला अपनी अनिष्ट व्यवस्था दूर करता है । उसी प्रकार रोज साफ रहनेसे विपत्तिमा दूर होती है ।

४ अमीनां अप दुर्मतिं अप, नः बंहस्रः अप युपोतन ( १५७ )—रोग दूर करो, दुर्बुद्धि दूर करो और हमसे होनेवाले पाप दूर करो । दुष्ट बुद्धि दूर होनेका अर्थ है, पाप दूर होना और पाप दूर होनेका मतलब है रोगोंका दूर होना ।

५ ये द्विपः अति नपति, तं मय्ये अंहः न, दुर्हितं न अष्ट ( ४२६ )—जिते शत्रुसे दूर के जाया जाता है, उस मनुष्यको पाप नहीं लगता और दुष्ट नाय भी उसके पास नहीं आते ।

पापके कारण दुःख उत्पन्न होने हैं, इसलिए अपनेमें पापको प्रवृत्ति न हो, मन-साधधान करना चाहिए । अपना शरीर, मन, इन्द्रियें मुट्ट रहें, पापको प्रवृत्ति दूर हो । इन सबके होनेसे हमसे दुःख स्वयं ही दूर हो जायेंगे, और हम सुखी होंगे । वासते दूर होनेका यह प्रथम प्रयत्नके करना चाहिए ।

## विरुद्ध आचरण न करना

हम विरुद्ध आचरण न करे, इस विषयमें आगेके मंत्र देखें—

१ न कि इनीमसि ( १७६ )— हम कोई हानिकारक काम नहीं करते ।

२ न कि आयोपयामसि ( १७६ )— हम कोई विकृत धर्म नहीं करते ।

३ मंत्रश्रुत्यं चरामसि ( १७६ )— भ्रमोंमें जो उपदेश किया है । उसीका हम आचरण करते हैं ।

४ हे आधवेण ! दोषः आगात्, सवितारं देवं स्तुहि ( १७७ )— हे अग्निदेवके अध्ययन करनेवाले ! यदि तेरे आचरणमें कोई दोष हो गया हो तो जगत्के उत्पन्न करनेवाले देवकी स्तुति कर ।

“ सविता चै सर्वस्य प्रसविता ” सविता यह सब जगत्का उत्पन्न करनेवाला देव है । उसकी स्तुतिसे सब दोष दूर होते हैं ।

५ उग्रं वचः अपायधीः ( २५३ )— श्रेययुक्त बातें न कर, इससे बहुत कष्ट होते हैं ।

६ अमतः न हिमोति, कामं रथिं न स्पृशते ( ४४१ )— शूद्र आचरण न करनेवाला मनुष्य उस उच्च स्थानको नहीं पा सकता । जितना चाहिए उतना पल नहीं पासवता ।

७ विद्वान् मित्रः नः ऋजुनीती नयति ( २१८ )— ज्ञानी मित्र हमें सरल मार्गसे ले जाता है ।

८ यं अद्रुहः पान्ति स्वः मर्यैः सुनीयं च ( २०६ )— जिसकी क्रोध न करनेवाले श्रेय रक्षा करते हैं, वह मनुष्य सुनीतिसे चलनेवाला होता है । उचित मार्गसे चलनेवाले मनुष्यको देवोंके सरक्षण मिलते हैं, इसलिए सदाचारसे प्रतीति करें, यह वेदमें कहा है ।

९ वि-भ्रतानां भ्रतारं वरुण यथा गिरा चन्द्रेत ( २८८ )— विशेष शूद्र नियमोंके पालन करनेवाले धरणीकी स्तुतिपूर्वक वन्दना करें, और उसके समान स्वयं भी उचित नियमोंका पालन करें ।

## पुष्टिकारक अन्न खावें

१ नः इयं पीवरीं वृणुहि ( ४५५ )— हमारे अन्न अधिक पोषण करनेवाले कर, और ऐसे अन्न तू खा ।

## भाईबन्ध कोई नहीं

१ त्वं जनुया अभातृष्य, अ-ना, सनात् अनापि, युधा इत् आपित्यं इच्छसे ( ३९९ )— हे इन्द्र ! तू जन्मसे

ही शत्रुरहित है, तेरे ऊपर शासन करनेवाला कोई नहीं है, तेरा भाई कोई नहीं, युद्धसे तू भाईपनेकी इच्छा करता है ।

इन्द्रका कोई भाई नहीं, इस कारण भाईबन्धका समझ उसके लिए कुल ही नहीं । इन्द्र पर शासन करनेवाला भी कोई दूसरा नहीं है, क्योंकि यह ही सब पर अधिकार करता है । इसीको किसी मित्रकी भी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह इतना सामर्थ्यवान् है, कि यह अकेला ही सारे शत्रुओंका नाश कर सकता है । यह युद्ध द्वारा सब शत्रुओंको दूर करता है, इस कारण जिसके शत्रु दूर होते हैं, वह इतने प्रेम करता है । इस प्रकार इसके चाहनेवाले मित्र बहुत हैं, पर वे इन्द्रकी युद्ध कुशलताके कारण ही मिले हैं ।

## घर कैसे हों

१ त्रिधातु त्रियकथं ह्यस्तये छदिः दिव्यं शरणं मारं [ देहि ] ( २६६ )— तीन मन्त्रिक, तीन छपरवाले, रहनेवालोंका कल्याण करनेवाले, आश्रमके योग्य और उत्तम प्रकारयुक्त घर मुझे दे ।

घर तीन मन्त्रियोंवाले हों, तीन भागवाले हों, उत्तमबहुत प्रकार्य आगे रहनेवालोंका कल्याण हो, उत्तम लोगोंकी रहनेकी इच्छा हो, ऐसे सुखकारक घर हों ।

## दीर्घायु हों

१ चातः नः हृदे शंसुः मयोभुः भेपजं आवातु, नः वार्युषि प्रतारिपत् ( १८४ )— आयु हमारे घरमें हृदयको सुख और धारोग्य देनेवाले औषध जपने साथ लाये, इससे हमारी आयु लम्बी हो । घरमें शूद्र वायु आवे, उसके साथ आरोग्य देनेवाले, क्षुभ गुण हमारे घरमें मनुष्योंकी प्राण हों, और इस कारण हम सब दीर्घायु हों ।

२ नः तुचे तुमाय जीवसे द्रायीयः आयु छु छुप्योतन ( ३९५ )— हमारे पुत्र पौत्रोंकी दीर्घजीवन उत्तम रीतिसे प्राप्त हो ।

३ सुवीराः शतहिमाः मदेम ( ४५४ )— उत्तम वीर सन्तान हमारे हों, और ये सब तीर्थ यथं तक आनन्दते रहें ।

## यज्ञ प्राप्त हो

१ त्याद्वातं इत् यशः ( १९५ )— तेरी सहायतासे यज्ञ मिले ।

२ श्वसः पाति यशः अस्ति ( २४८ )— तू श्वसक स्वामी है, और यशस्वी है ।

इसलिए हम यशस्वी हों, ऐसा कर ।

### भूमि घूमती है

भूमि घूमती है, इस विषयका आगेके मन्त्रभागमें उल्लेख है—

१ भूमिं व्यवर्तयत् ( १२१ )— उसने भूमिकी किरने-बाली बनाया ।

चन्द्रको धर्मकी किरणें प्रकाशित करती है

१ गो चन्द्रमसः गृहे त्वष्ट्रु अपीच्यं नाम अमन्वत ( १४७ )— प्रकाशित होनेवाले चन्द्रके मण्डलमें धूपकी गुत्त किरणें बिलीन होकर उसे प्रकाशित करती हैं, ऐसा माना जाता है ।

### विद्यादेवी

१ पावका वाजिनीवती धियावसुः सरस्वती ( १८९ )— पवित्र करनेवाली, अन्न और वस्त्र देनेवाली, बुद्धि बढाकर पान देनेवाली, सरस्वतीदेवी है ।

### सौभाग्य प्राप्त हो

१ अथ नः प्रजावत् सौभगं सार्थीः ( १४१ )— वाज हमें उत्तम सत्ताओंके साथ सौभाग्य दे ।

२ नः मृळयसि ( १७२ )— हमें ब्र सुखी करता है ।

३ स्तोत्रभ्यः मृळय ( २१३ )— स्तुति करनेवालोंकी सुखी कर ।

४ इन्द्रावृषणा धर्मं स्वस्तये सख्याय वाजसातये हुवेम ( २०२ )— हम इन्द्र और वृषाकी अपने कल्पाणके लिए, अपने साथ मित्रताके लिए, वास और वस्त्र बढ़ानेके लिए बुलाते हैं ।

### सोमरस

इन्द्रकी यज्ञमें बुलाया जाता है, वन जाता है और शासन पर बैठता है, उसके बाद उसे सोमरस दिया जाता है । उन सोमरसोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ अन्धः ( १२४ )— सोमरस यह अन्ध है ।

२ युष्टितमः ( ११६ )— सोमरस तेजस्वी है, वह घमकता है ।

३ इन्द्रुः ( १४५ )— चन्द्रके समान वह घमकता है ।

४ तेन नूनं मद् ( ११६ )— उसने उताहू और आनन्द निकला है ।

५ यथा शिरः ( १४५ )— जोरन भाडा और द्रुप निकालकर उसे पिया जाता है ।

६ सोमः विश्वासां सुक्षितीनां चेततुः ( १५४ )— सोम सब उत्तम मनुष्योंका उत्साह बढ़ानेवाला है ।

७ नि पूत ( १५९ )— सोमरस छानकर शुद्ध किया जाता है ।

८ दध्याशिरः सोमामः ( २९३ )— सोमरसमें दही मिलाकर बहू किया जाता है ।

९ आदीर्घान् ममत्तु ( ३५० )— द्रुप आदि जितमें मिलाया जाता है, ऐसा वह सोमरस हमारा जसाहू बढ़ाता है ।

१० रायिन्मः द्युस्रवन्मः सोमः ( ३५१ )— शोभावाला और तेजस्वी सोमरस है ।

११ पुनानः हरिण्या रुचा विदया क्षेपांषि तरति ( ४६३ )— सोम शुद्ध होकर अपने हरे रंगके तेजसे सभी शत्रुओंकी मारता है । उसके पीनेसे इतना बल भागमें बढ़ता है ।

१२ भारत रोचते । पुनमः हरिः अरुपः ( ४६३ )— इस सोमरसको पारा घमकती है । छाननेके बाद यह सोमरस चमकता है ।

१३ रसिनः गोमतः सुतरुप पित्र ( २३९ )— मायके रूपमें मिश्रित सोमको पी ।

१४ सोमं सुनोत । पन्ती पन्त ( २८५ )— सोमरस निकाली और पुरोडासको चमकी ।

१५ धानावन्तं करमिभणं वापुष्वन्तं उन्धियं नः प्रातः सुपस्य ( २१० )— धानकी लीसे मिश्रित, पुरोडासके तथा स्तोत्रोंसे पुनः हमारे इस सोमरसको सबदे पी । ( पाना-वन्त ) धानकी भूजकर उसका बादा सोमरसमें मिलाते हैं, ( करम्भ ) हात्तु मिला हूए दहीकी करम्भ कहते हैं, ( वापुष ) द्रुप और धानके धीरे सोमके साथ लाये जाते हैं । यह इन्द्रवर त्वरेकेका पाता है ।

१६ अद्मया धता अंशुला क्षपमाणः, यथा आदन्, हृद्यं उ ( ३०५ )— पाचरीसे सोम पीतनेके कारण पचमान भद्र जानेंपर भी बहुताता अन्न पानेवाले रामाके सामान, धानम्यंवान् ही होता है, निर्बल नहीं होता ।

सोमरसता यह एक वनस्पति हिमालयके मौजवान् शिखर पर उबती थी । १०—१२ हजार फीटकी ऊंचाईपर निकले-वाला सोम अत्युत्तम माना जाता था, यत्रमें यह सोमरसता छाई जाती थी, अबका गाववालोंसे परोसी जाती थी । यह फल पत्थरीसे कूटी जाती थी, और हाथकी अगुनियोंसे बचाकर उत्तम रस निकाला जाता था, उसके बाद उसे थारीव् छलनीसे छान कर उसमें पानी, दूध, दही मिलाया जाता था, गहद भी उसमें मिलाया जाता था, सब यह पीने

लायक होता था । केवल रस तोता होता था, उममें पानी, बहो अमवा दूध मिलाकर थोडा इष्टद मिलातेते वह पीनेके योग्य होता था ।

यह रस अन्वेषमें समकता था । इसके साथ पुआ, बडे, लोले और पुटोढाम आदि खातेके लिए दिया जाता था । इतनेको पीनेके बाद शूरपुष्टयोमें महान् उत्साह उत्पन्न होता था, और उन उत्साहमें वीर पुष्ट्य महान् शौर्यके काम करते थे ।

इन्द्र यह रस पैद भरकर पोता था, दूसरे लोग भी इसे पीते थे । आनन्द बढ़ानेवाला उत्साह बढ़ानेवाला यह पेय होता था । पत्रमें यह पेय तैय्यार किया जाता था । हवनके करनेके बाद यह पिया जाता था । यह सोमरसका वर्णन है ।

### इन्द्र स्तुत्य है

इन्द्र बहुत पराक्रमी है, इसलिए उसकी चारों ओरसे स्तुति की जाती है । देखिए—

१ पुर-हृतः ( ११५ )- बहुत लोग जिसको स्तुति करते हैं ।

२ गिर्वाणः ( १५५ )- प्रसन्ननीय ।

३ त्वदन्व- गिरः न हि सद्यत् ( ३७३ )- तुम इन्द्रके सिवाय और किसीकी स्तुति नहीं होती ।

४ ये न्या आरभ्य चरामसि, ते इमे वयं ते ( ३७३ )- जो तुमसे स्तुति करना प्रारम्भ करते हैं, वे थे हम तेरे ही हैं, तेरे भक्त हैं ।

५ महान् असि ( ३४६ )- इन्द्र ' तू महान् है ।

६ सिध्वा गिरः समुद्र-व्यचसं, रथीनां रथीतमं, पाजामां पतिं, सत्पतिं इन्द्रं अवीशुष्यन् ( ३४३ )- सब स्तुतियां, समुद्रके समान वित्तोणं, रथियोंमें मुख्य, बलोंके स्वामी, भयजनके पालनकर्ता इन्द्रके यशकी बढाती है ।

७ आजानां वाजपतिः, हरिद्यान् इन्द्रः उपधेभिः मन्दिष्ट ( २२६ ) बलोंके और अशोकें स्वामी, घोड़ोंके रक्षनेवाला इन्द्र स्तोत्रमें प्रशंसित होता है ।

८ तव इदं सग्यं अस्तुतं ( २२९ )-तेरो यह मित्रता अष्ट है ।

९ त्वदन्व- सार्डिता न अस्ति ( ३४७ )- तेरे सिवाय स्तुतिके योग्य और कोई भी नहीं है ।

१० जाघी-पमः ( १६९ )- वेदमंत्रोंके इत इन्द्रकी स्तुति की जाती है ।

### इन्द्रकी स्तुति

१ योधन्मना शक्रः आशिषं शृणोतु ( १४० )- हमारे मनको इच्छा जाननेवाला सामर्थ्यवान् इन्द्र हमारी स्तुति सुने ।

२ चरपणीनां सन्नाजं, गीभिः नव्यं, शूपाहं तरं मंहिष्ठं इन्द्रं प्रस्तोत ( १४४ )- मनुष्योंके सन्नाद, स्तोत्रोंके स्तुति करने योग्य, शत्रुका परानव करनेवाले, नेता महान् इन्द्रकी स्तुति करो ।

३ ऊतये सुरूप-वृत्तुं धवि धवि जुहमसि ( १६० )- हमारे सत्क्षणके लिए, उत्तम रूप करनेवाले इन्द्रको हम प्रतिदिन बुलाते हैं ।

४ इन्द्रं गिरा अभि प्र अर्चं ( १६८ )- इन्द्रकी स्तुति करो ।

५ इन्द्रं वाणां अनुपत ( १९८ )- इन्द्रको हमारी वाणा स्तुति करती है ।

६ ते गिरः अष्टमं, वृषमं पतिं त्वाप्रति उवहामत् ( २०५ )- तेरो स्तुति हगने की, बहु धनवान् स्वामी तुम इन्द्रकी पूजक गई है ।

७ महे प्रवेत्से देवाय कदु वचः शस्यते, तत् इत् अस्य वर्धनम् ( २२४ )- महान् शायी इन्द्रकी साधारण स्तुति भी उसके महत्त्वका वर्धन करती है ।

८ यथा विदे सु-राघसं इन्द्रं अभि अर्चं ( २३५ )- जैसा जानते हो, वैसा ही इन्द्रकी आराधना करो ।

९ अन्यत् मा चित् विशंसत, मा रिपण्यत्, वृषणं इत् स्तोत ( २४२ ) हमारा कुछ न करो, बेशर प्रयत्न मत करो, बलवान् इन्द्रकी ही स्तुति करो ।

१० इमा गिर एवा धर्षन्तु ( २५० )- यह स्तुति तेरा प्रभाव बढाते हैं ।

११ पायकवर्णाः शुचयः विपादिचतः स्तोमं- अन्धनूपत ( २५० )- अशोकें सामान तेजस्वी सुद शक्ती स्तोत्रमें इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

१२ शूदते प्रल्ल अर्चतं ( २५७ )- महान् इन्द्रके लिए स्तोत्र कहो ।

१३ इन्द्रं नः प्रहाणि उप भूयत ( २६७ )- इन्द्रकी हमारे लोच अलङ्कृत करते हैं ।

१४ गायत्रिणः एवा गायन्ति, आर्केण- अर्चंन्ति, प्रहाण्यः त्वा उपेभिरे ( ३४२ )- गावण करनेवाले मनुष्य तेरे स्तोत्र गाते हैं, उपासक तेरी उपासना

करते हैं, और बाह्य तुम इन्द्रका यह सबसे श्रेष्ठ है, ऐसा वर्णन करते हैं ।

१५ मुद्गेन खान्ना मुद्गेः उपधैः, शुद्धं इन्द्रं स्तवाम् ( ३५० )- शुद्ध सामगणतः, शुद्ध स्तोत्राणि शुद्ध इन्द्रको स्तुति करते हैं ।

१६ अग्रहणं शयसः पतिं विद्वत्साहं नरं शचिष्ठं विद्वत्वेदम् इन्द्रं गृणामि ( ३५७ )- धार्मिकोंका सरक्षण करनेवाले, वलके स्वामी, सब प्रभुओंका नाम करनेवाले, नेता, सामर्थ्यवान्, सर्वतः इन्द्रकी स्तुति करो ।

१७ विद्या ओजसा दिवः पतिं समेन ( ३७२ )- सब सामर्थ्यसे तुल्योक्तः पालक इन्द्रकी एक स्वानुपपन्न वंशज उपासना करो ।

१८ यः एक इव जनानां अतिथिः भूः ( ३७२ )- जो अकेला ही इन्द्र अतिथिके समान लोगोंका प्रभु है ।

१९ मृत्तीः गिरः चरणी-धूनं इन्द्रं अभ्यनूयत ( ३७४ )- धूलत स्तुतियां मनुष्योंके पुण्य इन्द्रकी स्तुति करती है ।

२० अयसे इन्द्रं सुदुष्किभिः मंहय ( ३७७ )- अपने संरक्षणके लिए इन्द्रके महत्त्वको उत्तम वर्णनसे बढ़ाओ ।

२१ शतं आयवृष्ट्याम् ( ३७७ )- इन्द्रकी स्तुति संकरों समथ करो ।

इस प्रकार इन्द्रकी स्तुति की जाय, यह इस वर्णनका उद्देश्य है । इन्द्रके गुण मानेवाले, सुननेवाले और इगरे लोग जो समाप्त हैं, उन सबका लाभ इस स्तुतिके श्रवणसे होता है । अंते—

“ वज्रधारी, भूरवीर, पराजित न होनेवाला, हमेशा विजयी, सब शत्रुओंको एक साथ मारनेवाला, युद्धमें कित्तोंके भागे न झुकनेवाला इन्द्र है । ”

यही इन्द्रकी स्तुति है । बारवार यह कहा गया है । बार-बार सुननेसे अपने मनपर उसका परिणाम क्या होगा इसका विचार पाठक करें । इस स्तुतिके करनेवालेमें और सुननेवालेमें, भेदे अन्तर ये गुण अर्थ, ऐसा भाव उत्पन्न होता है, और यदि वह यत्न करे तो कुछ दिनोंके अनुकूलनसे उसमें ये गुण ला जायेंगे और तब वह धूर्त बन सकेगा । स्तुतिसे यह लाभ होता है देवीके गुण पृथक् भावें गुंसे विचार आनेका मतलब है कि उन्नति प्रारम्भ हो गई । उसके आगे उन गुणोंको अपने अन्तर लानेका यत्न करना चाहिए । ऐसा भी यत्न करेना यह थोड़ा होगा इसमें कोई शंका ही नहीं है ।

## उपमा

वेदोंमें उपमायें देकर विषय समझाया जाता है, ये उपमायें ऐन्द्र-काण्डमें इस प्रकार हैं—

१ गये नं न ( ११५ )- गायको जैसे घास सन्तोष देते हैं, उसी प्रकार ये स्तोत्र ( शाक्लिनो इन्द्राय नं ) शक्तिमान् इन्द्रको सन्तोष देते हैं ।

२ पुष्टावन्तः यथा धनुं ( १३६ )- जाल हाथमें लिए शिकारी जैसे पक्षको खोजते हैं, उसी प्रकार हम ( त्वा विचक्षते ) तुम इन्द्रको खोजते हैं ।

३ सिन्धवः समुद्राय इव ( १४७ )- नदियां जैसे समुद्रको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार ( त्वाया कृष्टयः विशः अस्य मन्यसे सं नमन्त ) सब प्रजायें इस इन्द्रके उत्साहके भागे झुकती हैं ।

४ गायः धेनुवः वारुसं न ( १४६ ) जैसे गायक गाय बछड़ेके पास जाती हैं, उसी तरह हमारे ( इनाः गिरः स्वा अग्नि प्रनोयुयः ) ये स्तुतियां तुम इन्द्रके पास जाती हैं ।

५ सुदुधां गोदुधे इव ( १६० )- उत्तम दूध देनेवाली गायकी जित प्रकार दूध-डुधके समथ बूलते हैं, उस तरह ( ऊतये सुरुपकृतुं घावि घावि जुहमसि ) अपने सरक्षणके लिए उत्तम रूप करनेवाले इन्द्रको रोज बूलते हैं ।

६ द्यौः न ( १६६ )- जित प्रकार ध्रुवके विस्तीर्ण है, उस प्रकार ( शयः प्रथिना ) इस इन्द्रका बल विस्तृत है ।

७ कपोतः गर्गीधि इव ( १८३ )- जिस प्रकार कबूतर कबूतरके पास जाता है, उसी प्रकार ( अयं ते ) यह तेरे पास आता है ।

८ सिन्धवः समुद्रं न ( १९७ )- जित प्रकार नदियां समुद्रको प्राप्त होती हैं, उस प्रकार ( इन्द्रवः त्वा आधि-शन्तु ) ये सोमरस तुझे प्राप्त होते हैं ।

९ शशुं अशुक्ष्णं रधिं न ( १९९ )- कारीगरको जिस प्रकार पोषण करनेवाले अन्न मिलते हैं, उसी प्रकार ( वाजी वासिन्तं ददातु नः ) बलवान् इन्द्र हमें धन देवे ।

१० वाजयन्तः श्रुवि यथा ( २१४ )- अन्न उत्पन्न करनेवाले जिस प्रकार बूँदके पानीसे बौतकी तीषते हैं, उसी प्रकार ( मंहिष्टं इन्द्रुभिः सिन्ध ) महान् इन्द्रको सोमरसोंसे खींचो ।

११ युवजानिः महान् इव ( २२७ )- तपण स्त्रीका पति जित प्रकार स्त्रीके पास जाता है, उसी प्रकार ( स्तुतं



उप याहि) इस सोमने पास तु जा। इसमें समान मनके आह्वयणका वर्णन है।

१२ सुतं याताप्याय इमशा (१२८)- सोमरसमें पानी मिलानेके लिए लोग जिस प्रकार पानीके नहरोंके पास जाने हैं, उसी तरह ( दीर्घं सुतं फडा अघारुध्यात् ) इस महान् यज्ञमें सुतों लानेके लिए तैरे पास बज आयें ?

१३ अदुग्धा. घेनञ. न ( १३३ )- जिस तरह लोग न डूही मायने पास जाते हैं, उसी तरह ( अम्य जगतः तस्युपः ईशानं स्वहृदं तथा अभिभोजुमः ) इस स्वावर व जगम जगत्के स्वामी और आभक्तानो हम तुझे नम्र होकर कब मिले ?

१४ स्वतरेषु घेनवः परसं न ( १३६ )- बीनालामें बुधाव गाय जिस तरह अपने बछड़ेके पास जाती हैं, उसी प्रकार ( नसं मनीषह इन्द्रं गीभिः अभि नचामहे ) सुन्दर और धनुकी ह्रानेवाले इन्द्रके पास स्तुति करते हुए जाती हैं।

१५ सुद्रव्यं नेमिं स्वष्टा इव ( १३८ )- उत्तम लक्ष्मीकी पुराणो बर्द्ध जिस प्रकार उत्तम बनाता है, उसी तरह ( पुग्दुतं गिरा आ नमे ) बहुश्री द्वारा प्रसूतित इन्द्रको में प्रणाम करनेके अनुरूप बनाता हूँ।

१६ पादिनः धन्वा इव तान् श्रुति व्यायाहि ( १४६ )- ज्ञान हमीमें धारण करनेवाले मित्रको जिस तरह देविस्तानको पार करने जाते हैं, उस प्रकार तू सुद्वीको पार करने आ।

१७ पादिनः न, मा त्वा तिपेसुः, पदि ( १४६ )- ज्ञान लिए हुए मित्रको जिस प्रकार बशिर्षोको बज्जते हैं, उस प्रकार तुझे बीचमें कोई भी न पकड़े, तू हमारे पास आ।

१८ घाजयन्तः रथाः इव ( १५१ )- अत्र लेजर जानेवाले रथके तमाम ( मयुमनामाः विराः त्वा उदर्शते ) मयूर स्तोर तैरे लिए पीले जाते हैं, ये तुम्हारे पर्वणके हैं।

१९ यथा गौरः ( मृगाः ) घृष्यन् अपाटते हरिषं भर्गनि ( १५२ )- जिस प्रकार म्यागा हिरण पानीमें भरे हुए तामाबने घाग जाता है, उसी प्रकार तू ( नः ) मृषं आगहि ) हमारे पास जखी आ।

२० भगं न ( १५३ )- भाग्यशून्ये समान ( यजगं यगुविद् त्वा पराशरामि ) यजगं, यजगन् तैरी हम आशाना करते हैं।

२१ यथा पुत्रेऽया पिता ( १५९ )- जैसे पुत्रोंकी पिता

गिहा देता है, वैसे ही ( नः शिङ्ग ) तू हमें भी गिहा दे।

२२ आप. न ( १६१ )- जैसे पानी सोममें मिलाया जाता है, वैसे ही हम तुझे प्राप्त करते हैं।

२३ सूर्यं आयन्तः इव ( १६७ ) जिस प्रकार बिरुमें सूर्यका सहाय लेती हैं, उसी प्रकार ( विदवेव इन्द्रस्य मक्षत ) सब विदव इन्द्रका आशय लेता है।

२४ भगं न ( १६७ )- पिताके पनने भागको जिस तरह पुत्र पानेकी इच्छा करता है, उसी तरह ( प्रति दीधिमः ) हम अपने पितारे पननेसे हिरसा मिले ऐसा चाहते हैं।

२५ निययाय पद्वान् इव ( १६९ )- मयनमें पडे हुएकी जैसे मुक्त किया जाता है, उसी तरह ( अस्मान् सुमुग्धि ) हमें मुक्त कर।

२६ चक्रिर्वा अक्षेण इव ( १३९ )- जैसे बज्ज मुर्खे आघारपर रहते हैं, उसी तरह ( पृथिवीं उत घां विपद्गु तसम्भं ) पृथिवी और घृ पें दोनों ही क्षीरको यह आघार देता है।

२७ यंशं इव तथा उद्येमिरे ( १५२ )- वाश जैसे उन्नर उठाते हैं, उस तरह तुझे उन्नत करते हैं। इन्द्रकी स्तुति पाकर इन्द्रने यज्ञको बज्जते हैं।

२८ सूर्यः रदिमभिः रजाः न ( १५७ )- जैसे सूर्य अपनी विरपति यन्तारो नर देता है। उस प्रकार ( इन्द्रियं त्वा आ पूणपतु ) तैरी इन्द्रियको सक्ति तुमें नर दे।

२९ रथीः इव ( १४९ )- रथमें बैठनेवाले वीर जैसे अपने इन्द्रिय स्थानपर पहुच जाते हैं, उसी प्रकार हमारी ( विराः ) स्तुतियां तुमें पहुचती हैं।

३० परसं घेनवः गायः इव ( १५१ )- बछड़ेके पाग जैसे बुधाव गाय जाती हैं, उस तरह ( त्वा अभि अनुजन् ) तैरे पाग हमारी स्तुति पहुचती है।

३१ रथे यथा ( १५४ )- रथको जैसे हम पताचन मयने इन्द्रिय स्थानपर ले जाते हैं, उसी तरह ( इन्द्रं मा धर्मनामसि ) इन्द्रको हम धर्ममें लाने हैं।

३२ अंहः न ( १६५ )- हम पागने जैसे बचने हैं, उसी तरह ( टिषः तरनि ) धनुमंभि भी अपना बचाव करते हैं।

३३ क्षीणीः इव ( १७३ )- लूणको जैसे तखी आघार देती है, ( नः घवः प्रति ह्ययं ) उसी तरह हमारी स्तुति स्वीकार कर।

३४ यथा जनयः मयें पानि न यस्मिन्पुनः ( १७५ )- जैसे पित्रो अपने बशिवा आत्मन बरती है, उस तरह

( अतये इन्द्रं स्मर-युवः मतमः अच्छा अनुपत ) अपने घररक्षणके लिए इन्द्रको वातमहानयुक्त अपनी स्तुतिसे प्राप्त होते हैं ।

३५ उवा इव ( ३७९ )- उवा जिस प्रकार प्रकाशने दिव्यको भर देती है, उस प्रकार वृ ( उभे चौदसी आ प्रमाय ) पृथ्वी और द्युलोककी अपने तेजसे भर देता है ।

३६ गिरिः न ( ३९३ )- पर्वतके समान ( विदमतः पृथुः दिवस्पतिः ) सबी महान् वृ द्युलोकका स्वामी है ।

३७ उद्दा समन्ताः उद्भिः इव ( ४०६ )- पानी लेकर जानेवाले मित्र जिस प्रकार पानीसे खेचते हैं, उसी तरह हम ( त्वा उप ससृग्महे ) तेरे पास आते हैं ।

३८ यवसे रणा गायः न ( ४२२ )- जिस प्रकार पासको मुन्दर नायें प्राप्त करती हैं, उसी तरह ( ते सस्ये ) तेरी मित्रताके लिए हम तेरे पास आते हैं ।

३९ पुनासः पाज सातये पितरं न ( ४५९ )- पुत्र वज्र प्राणिके लिए जैसे वित्तके पास जाते हैं, वैसे ही हम तेरे पास आते हैं ।

४० महिषं शिरं पाज-सातये ( ४५९ )- जिस प्रकार महान् शीरकी युद्धमें दूलाते हैं, उसी तरह तुझे अपने सरलाणके लिए बुलाते हैं ।

४१ सूरः सयुगिः न ( ४६३ )- सूर्य जैसे अपनी निरपेक्षि चमकता है, उसी प्रकार सोमरस ( पृथुस्य धारा रोचते ) अपने तेजसे चमकता है ।

४२ नूत- ! नयं प्रथमं पूर्यं तव तत् अपः दिवि प्रवाक्यं ( ४६६ )- हे इन्द्र ! मनुष्योंका हित करनेवाले तेरे ये अपूर्व कर्म द्युलोकमें प्रबलतम हो गए हैं ।

४३ देवस्य अनुः सहसा रिणत् ( ४६६ )- राक्षसोंके प्राण नू मष्ट करता है । ( देवः- राक्षस )

४४ विश्वं अ-देवं सहसा अभिभुवः ( ४६९ )- सभी द्युलोककी तुने अपने सामर्थ्यसे पराजित किया ।

### सुभाषित

१ सत्यने सत्या गाय ( ११५ )- सामर्थ्यशाली इन्द्रकी एका साय स्तुति करो ।

२ दाकिने शो ( ११५ )- दक्षितमानकी मुक्त प्राप्त होता है ।

३ हे शतमती ! ते धुम्निमतमः ( ११६ )- हे शिकरी कर्म करनेवाले शीर ! तेरा आनन्द निरचयते तेजकी बजायेबाका है ।

४ त्वं सहराः बलात् शोचसः अधिजानः ( १२० )- तू शत्रुको हरानेवाले बल और श्रेष्ठ सामर्थ्यसे जलभ हुआ है ।

५ भूमिं व्यपतयत् ( १२१ )- जलने भूमिको घुमलते हुए स्थापित किया है ।

६ त्वं एक इत् वस्य ( १२२ )- तू अकेला ही पर्याप्त स्वामी है ।

७ हे अनाभयिन् ! तेररिम ( १२४ )- हे निर्भयशीर ! तुझे हम आनन्दित करते हैं ।

८ नर्यापस वृषमं अस्तारं ( १२५ )- सार्वजनिक हितके काम करनेवाले, बलवान् और शत्रुघ्न शस्त्रकी फेंकनेवालेकी भं प्रशंसा करता हूँ ।

९ हे इन्द्र ! तत् सर्वं ते दशे ( १२६ )- इन्द्र ! ये सब तेरे शायीन हैं ।

१० युवा सखा सुमीती आनयत् ( १२७ )- शीर तलज मित्र है, वह सुनोतिसे मुक्त करता है ।

११ आदिश सूरः अस्तु पु नः मा अभ्यायमत ( १२८ )- धारों ओरसे शस्त्रोंकी मार करनेवाला शत्रु हमारे ऊपर शत्रुके समय चढाई न करे ।

१२ तर्त्वा युजा वनेम ( १२८ )- यदि यथा शत्रु आवे भी तो हम तेरी सहायतासे उसे दूर करें ।

१३ ऊतये सावसिं सजित्वानं सदासहं वरिष्ठं रयिं आभर ( १२९ ) हमारे सरक्षणके लिए, उपभोगके योग्य, शत्रुघ्न विजय प्राप्त करनेवाले, हमेशा शत्रुकी हारनेवाले, श्रेष्ठ पनते हमें भर दे ।

१४ वय महाधने वामं वृषेषु जुजं वसिष्ण इन्द्रं ह्यवामहे ( १३० ) हम वडे तथा छोटे युद्धोंमें शीर घेरनेवाले शत्रुसे साथ होनेवाले छोटे युद्धमें सहायताके लिए मित्रके समान इन्द्रकी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१५ सहस्रपादे पौंस्यं आददिष्ट ( १३१ )- हजारों भुजाओंवाले रातोंमें साथ होनेवाले युद्धमें इन्द्रका भल प्रबट होता है ।

१६ विश्वा द्विष-अपभिन्धि ( १३४ ) सब शत्रुओंका नाश कर ।

१७ वाघः मूषः परिजहि ( १३४ )- वाघा करनेवाले शत्रुओंकी मष्ट कर ।

१८ स्याह तत् वसु आभर ( १३४ )- मुन्दर पन हमें भररूप दे ।

१९ यामं चित्रं मृज्यते ( १३५ )- युद्धमें शत्रुघ्न शत्रुघोरता वह विपत्ता है ।

२० विद्मवाः कुप्यः विशः अह्य मन्यये सं नमन्त  
( १३७ ) - सब प्रजायें इसके क्रोधके आगे झुकती हैं ।

२१ देवानां भवः इत् महत् ( १३८ ) देवोत्ते प्राप्त  
होनेवाले सरक्षण निश्चयसे महान् हैं ।

२२ तत् अस्माक उत्तये ययं आम्बुषीमहे ( १३८ ) -  
उन सरक्षकोंको हम अपनी रक्षाके लिए स्वीकार करते हैं ।

२३ न प्रजाघत् सौभगं स्यावीः ( १४१ ) हमें पुत्र  
प्राप्तिकी प्राप्त करानेवाले सौभाग्य दे ।

२४ दुष्यन्त्य परासुव ( १४१ ) - दु लकारक स्वप्न  
दूर हों ।

२५ सः वृषभः युवा सुवि प्रीयः अनानत क ?  
( १४२ ) - यह बलवान्, तरुण, मजबूत गर्वनेवाला, और  
कितोंके आगे न झुकनेवाला इन्द्र कहा है ?

२६ गिरिणां उपहरे च नदीनां संगमे धिया चिप्रः  
भजायत ( १४३ ) - पर्वतोंकी उपरफका और नदियोंके संगम  
पर घंटकर बुद्धि स्थिर करके मनुष्य जानी होता है ।

२७ चर्यणीनां सप्राज्ञं नृपाहं महिष्ठं नरं इन्द्रं  
प्रस्तौत ( १४४ ) - मनुष्योंके सप्राज्ञके समान, शत्रुका  
पराभव करनेवाले, श्रेष्ठ नेता इन्द्रकी स्तुति करो ।

२८ चन्द्रमसः शुभे त्वष्टुः अर्षीचर्यं नाम ( १४७ ) -  
चन्द्रके मण्डलमें सूर्यका प्रकाश धमकता है ।

२९ अहं पितुः ऋतस्य मेघा परिजग्रह सूर्यः इव  
अजनि ( १५२ ) - मैंने पालन करनेवाली तत्वकी मुक्ति  
स्वीकार करली है, इस कारण मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो  
गया हूँ ।

३० नः रेवतीः सुवि-वाजः सन्तु ( १५३ ) -  
हमारी भायें बहुत द्रुप देनेवाली होंगें ।

३१ पिथ्वासां सुक्षितानां चेततुः ( १५४ ) - सब  
उत्तम मनुष्योंको उत्तम प्रेरणा मिले ।

३२ विश्वासांसाहं शतक्रतुं चर्यणीनां महिष्ठं इन्द्रं  
अभि प्र नायत ( १५५ ) - सब शत्रुओंके नाम बहने-  
वाले, संकड़ों कायें करनेवाले, सब प्रजाओंमें श्रेष्ठ इन्द्रकी  
स्तुति करो ।

३३ उतये सुरुपयत्तुं धावि धावि सुहृमसि ( १६० )  
- उतये सरक्षणके लिए सुदूर रूप बनानेवाले इन्द्रको तोत  
हम बुझते हैं ।

३४ तयं ईशिये ( १६२ ) - तू कभीका रक्षायो है ।

३५ योगे योगे पाजे पाजे उतये तयसतरं इन्द्र  
ह्यामहे ( १६३ ) - प्रत्येक कार्यमें अपनी रक्षाके लिए  
इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं ।

३६ इन्द्रः महात् परः च ( १६६ ) - इन्द्र महान् और  
श्रेष्ठ है ।

३७ वक्षिणे महत्वं अस्तु ( १६६ ) - वक्षपारी इन्द्रकी  
यज्ञ प्राप्त हो ।

३८ धीः न शवः प्रथिना ( १६६ ) - धुलोकेके समान  
उसका यज्ञ विद्याल है ।

३९ क्षुमन्ते चित्रं ब्राभं वक्षिणेन आ संशुभाप  
( १६७ ) - तेजस्वी, विलक्षण और ब्रह्मण करने योग्य बन  
हमें रायें हाथसे दे ।

४० सत्रासाहं उतये आच्यावयामसि ( १७० ) -  
सब शत्रुओंको एक साथ मारनेवाले इन्द्रकी अपने सरक्षणके  
लिए अपने पास बुलाते हैं ।

४१ हे दातकतो ! भद्रं भद्रं इयं ऊर्जन आ भर  
( १७३ ) - हे संकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! हमें बरपाप-  
कारक अन्न और बल भरपूर दे ।

४१ नः सुष्ठयासि ( १७३ ) - हमें तू ही सुखी करता है ।  
४२ न कि इनीमसि ( १७६ ) - हम कोई हानिनाशक  
कार्य नहीं करते ।

४३ न कि आयोपयामसि ( १७६ ) - हम कोई भी  
बिच्छेद काम नहीं करते ।

४५ मंत्रधुर्यं चरामसि ( १७६ ) - वेदमंत्रोंमें जो  
कहा है, वही हम करते हैं ।

४६ हे आर्यण ! द्यौष अमाग्न देवं तदितार  
स्तुधि ( १७७ ) - हे अर्यवा ! यदि कोई श्रेय हो गया है  
तो तदितारदेवकी स्तुति कर ।

४७ अमतिष्कृता इन्द्रः दधीचाः अस्यभिः नय  
नयतीः वृत्राणि जघान ( १७९ ) - जिताका कोई मुकलता  
नहीं कर सकता ऐसे इन्द्रने दधीचिकी हृदयोंसे ८१० वृत्रोंकी  
मारा ।

४८ ओजसा महान् यमिधिः ( १८० ) - तू अपने  
सामर्थ्यसे शत्रुको हराता है ।

४९ मह्यभिः ऊतिभिः अस्माकं अर्थे धामादि ( १८१ )  
- महान् सरक्षणके साथनेके साथ हमारे पास आ ।

५० घातः नः हृदे दामु मयोमुभेयजं आघातु, नः  
आर्युर्भिः प्रतारिपार ( १८४ ) - यह शत्रु तारिनी और मुक-  
नारक अर्यवके हमारे पास लाने और हमारी शत्रु बढाने ।

५१ पाचका वाणिनीचरती भिया वसुः सरस्वती ( १८९ )- पवित्र करनेवाली, अन्न देनेवाली और वृद्धि देने देनेवाली यह विद्याकी देवी है ।

५२ सः नः वसुनि आभरात् ( १९० )- वह हमें भरपूर धन दे ।

५३ सुप्तं दुराधर्षं माहि अन्नः अस्तु ( १९२ )- तैजसवी और वसु जिस पर आक्रमण नहीं कर सकते, ऐसे महान् संरक्षण हमें मिले ।

५४ हे अद्रिचः । राधः कृणुष्व ( १९४ )- हे वज्र-पायी इन्द्र ! हमें धन दे ।

५५ ब्रह्म-द्विपः अजगहि ( १९४ )- ज्ञानसे द्वेप करने-वालोंको मार ।

५६ त्वादातं इव यथाः ( १९५ )- तेरी सहृदयतासे ही यथा मिलता है ।

५७ नः वृताः देवा इन्द्र शूरः ( १९६ ) हमारे द्वारा बरण किया हुआ इन्द्र देव शूर है ।

५८ हे इन्द्र ! त्वां न अतिरिच्यते ( १९७ )- हे इन्द्र ! तेरी अपेक्षा कोई भी महान् नहीं है ।

५९ क्रमुक्ष्णं रथि वदातु ( १९९ )- कारीगरोंका रखण करनेवाला धन हमें दे ।

६० नः इपे क्रमुं वदातु ( १९९ )- हमें अन्न प्राप्त हो इसलिये कारीगरी दे ।

६१ याजी याजिनं वदातु ( १९९ )- बलवान् इन्द्र हमें बल देवे ।

६२ स्थिरः विचर्यणिः महत् भय अभीषत्, अशु-च्युवत् ( २०० )- जो युद्धोंमें स्थिर रहता है तथा महान्तो है, वह महान् भयको डर करता है ।

६३ हे वृत्रहन् ! त्वत् उत्तरं न किः अस्ति ( २०३ )- हे वृत्रनाशक इन्द्र ! तुझसे महान् कोई नहीं है ।

६४ जनामां तरणिं, प्रदं, समानं प्रदोसिषम् ( २०४ )- सब लोगोंको सारनेवाले, शत्रुको बध् देनेवाले, सबको समान मुक्त देनेवाले, इन्द्रको मैं प्रशंसा करता हूँ ।

६५ नं अधुहः पान्ति, स मर्त्यः सुनीय ( २०५ )- जिसका संरक्षण ब्रह्म न करनेवाले देव करते हैं, वह मनुष्य जन्म और नीतिवाला होता है ।

६६ विश्वाः स्पृधः अजय ( २११ )- सब स्वर्षा करने-वाले शत्रुओंपर जय प्राप्त हो ।

६७ अर्षां फिनेन नमुषेः दिरः उद्वर्तयः ( २११ )- इन्द्रने पानीके भागते नमुषिके सिरको फोड़ ।

१७ ( साम हिन्वी )

६८ ज्ञातः घृत्रहा वृन्दं आददे, के के उग्रः श्रुणिप्रे, मातरं वि घृच्छात् ( २१६ )- उपपन्न होते ही इन्द्रने बाण हाथमें लिया और अपनी मातासे पूछा कि कौन कौनसे वीर सुने जाते हैं ।

६९ उतये स्मृकरस्नं, साधः कृण्वन्तं हवामहे ( २१७ )- हमारे संरक्षणके लिए जो वाहुओंको फँसता है, और जो संरक्षणके क्षयनोंको तैयार करता है, उन इन्द्रको हम अपनी सहृदयताके लिए बुलाते हैं ।

७० तव इत् सख्यं अस्तुतं ( २२१ )- तेरी ही मित्रता न हटनेवाली है ।

७१ नः पृश्नु तनुषु नृष्णं आधेहि ( २३१ )- हम लोगोंमें सेतुव करनेवाले बलको मदा ।

७२ सत्राजित्पांस्यं आधेहि ( २३१ )- सब शत्रुओंको एकसाथ जीतनेवाला सामर्थ्य हमें दे ।

७३ वीर्यु अग्नि ( २३२ )- शत्रुके साथ लड़नेवाला तू है ।

७४ शूरः उत स्थिरः अग्नि ( २३२ )- तू शूर वीर और युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला है ।

७५ ते मनः राधयं ( २३२ )- तेरा मन आराधनाके योग्य है ।

७६ अस्य तरथुयः जगतः ईशानं स्वर्धदं त्वा अभिनोतुम् ( २३३ ) इस स्थावर और जगम जगन्ने स्वामी और आत्मतन्वी तुझे हम नमस्कार करते हैं ।

७७ सत्यनिं त्वा नरः वृषेणु ह्यन्ते ( २३४ )- सत्यनोंके उत्तम पालन करनेवाले तुझे युद्धमें सहृदयताके लिए हम बुलाते हैं ।

७८ काष्ठात् त्वा ह्यन्ते- ( २३४ ) छोटे युद्धोंमें भी तुझे बुलाते हैं ।

७९ पुत्रसुः मधवा सदन्नेण शिश्रति ( २३५ )- बहुत पनवान् इन्द्र हतारों प्रवारणे पन देता है ।

८० जतीयहं गीभिः अग्नि नवामहे ( २३६ )- वायक शत्रुको हरानेवाले इन्द्रको हम नमस्कार करते हैं ।

८१ चिदद्रक्षुं इन्द्रं उतये ह्ये ( २३७ )- पनवान् इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ।

८२ सधमादे आधिः नः घृधे योधि ( २३९ )- एक जगह संश्रर जहाँ कमं किए जाते हैं, वहाँ इन्द्र हमारा मित्र और उपरति करनेवाला हो ।

८३ ते स्थियः अवरुत् ( २३९ )- तेरो वृद्धियां हमारा संरक्षण करें ।

८४ सखा स्तोत, मुहुः शंसत ( २४२ )- एक रमान पर बँठकर स्तुति करो, बारबार स्तुति करो ।

८५ यः सदावृधे विश्वगूर्तिं, ओजसा अधृष्टं, धूर्णुं इन्द्रं चकार, ते नक्तिः कर्मणा नशात् ( २४३ )- जो सदा बढानेवाले, सबने द्वारा स्तुति किए जानेवाले, सामय्यके कारण जो किसी देवामा नहीं जा सकता, जो धनुओंको मारता है, उस इन्द्रकी जो उपासना करता है, उसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ।

८६ संधिं सन्धाता ( २४४ )- दूटो हुई सन्धिपोंको जोडनेवाला ।

८७ विन्दुतं पुनः निष्कर्त्ता ( २४५ )- कटे हुए भागोंको फिर ठोक करता है ।

८८ त्वदन्यः मर्हिता नास्ति ( २४७ )- तेरे सिवाय दूसरा कोई भी मुख देनेवाला नहीं है ।

८९ अमतीनि पुरचुनाणि अनुत्तः चर्षणी-धृतिः एष इत् क्षंसि ( २४८ )- बहुत बलवाली बहुतसे वृत्तोंकी खब ही, केवल सब लोगोंके हित करनेके लिए अकेलाहो तु मारता है ।

९० हे शचीपते दूर इन्द्र ! विश्वामि ऊतिभिः शग्धि ( २५३ )- हे सामर्थवान् इन्द्र ! सब सरक्षणके साधनोंके साथ तू सामर्थ्यवाला है ।

९१ भगं यशसं धनुर्विदं त्वा परिचरामि ( २५३ )- ऐश्वर्यवान्, यशस्वी और धनवान् तेरी आराधना हम करते हैं ।

९२ याः भुजः अमुरेभ्यः आ भरः अस्य चर्षप ( २५४ )- ओ धन तू अमुरोंके डीनकर साथ, उनसे हमें घटा ।

९३ नः कर्तुं आ भर ( २५५ )- हमें अच्छी बुद्धि दे ।

९४ यथा पुनरेभ्य पिता, नः शिक्ष ( २५६ )- जैसे पिता अपने लड़कोंको शिक्षा देता है, उसी प्रकार तू हमें शिक्षा दे ।

९५ जीघाः ज्योतिः यशोमाहि ( २५६ )- हम जोवित रहकर तेजस्विता प्राप्त करें ।

९६ नः आ परावृणक् ( २६० )- हमें दूर मतकर ।

९७ रवं नः ऊती । २६० )- तू हमारा संरक्षक है ।

९८ रवं न आण्यः ( २६० )- तू हमारा भाई है ।

९९ नः मन्धमाद्ये भय ( २६० )- तू हमारे साथ बँड ।

१०० सखा विश्वानि पीसया आ भर ( २६२ )- रक्षताप सब बल हवे दे ।

१०१- पंच क्षितीनां धूमं आ भर ( २६२ )- पांच जनोंकी एकतासे उत्पन्न होनेवाले तेज हमें दे ।

१०२ परावति अर्वायति धुपा धृतः ( २६३ )- दूर और धातके देशोंमें तू ही शक्तिके लिए प्रसिद्ध है ।

१०३ शक्रः परावति आसि, अर्वायति अक्षि ( २६४ )- हे इन्द्र ! तू दूर है और पास भी है ।

१०४ त्रिधातु निचरुयं स्वस्तये छर्दि- शरण महा ( २६६ )- तीन मजिबोंवाला और तीनो ऋतुओंमें सुल-कारक, हमारे कल्याणके लिए उत्तम आशय देनेवाला घर दे ।

१०५ विश्वा इन्द्रस्य भक्षत ( २६७ )- सब जगत् इन्द्रके आश्रयसे रहता है ।

१०६ जातः जनिमानि ओजसा करोति ( २६७ )- उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवाले सभी देवायोंको अपनी शक्तिके धनाता है ।

१०७ अदेयः मर्त्यैः सीन धापः ( २६८ )- ईश्वरकी उपासना न करनेवाला उस धनको प्राप्त नहीं कर सकता ।

१०८ हे इन्द्र ! अयमं मध्यमं पुष्यसि, गरमस्य विश्वस्य सत्रा राजसि ( २७० )- हे इन्द्र ! कल्प और मध्यम धन तेरे ही हैं, श्रेष्ठ धनका तू भलेका ही स्वामी है ।

१०९ हे सुधम, राजशत, पुरन्दर ! अलर्षि ( २७१ )- हे घोडा, सपाम करनेवाले और धनुओंके नगरोंको तोरने-वाले और इन्द्र ! तू यहाँ आ ।

११० याः चर्षणानि राजा, रघेभिः अभिमुः याना, विश्वासां पृतनानां तरता, युध-हा ज्येष्ठ गृणे ( २७३ )- जो सब मनुष्योंके राजा, रघेसे शीघ्र ही भाग जानेवाला, सब धनुसेनाका नाम करनेवाला, और दूधको मारनेवाला है, उस इन्द्रको मैं स्तुति करता हूँ ।

१११ यतः भवामहे, सन. न. अभयं दधि ( २७४ )- जहाँ जहाँसे हम डरते हैं, वहाँसे हमें निर्भय कर ।

११२ नः ऊतये द्विषः पित्रादि, मृधः पित्रादि ( २७५ )- हमारे संरक्षणके लिए धनुओंको दूर कर और डूब करने-वालोंका भाग कर ।

११३ शग्धि ( २७४ )- वह सामर्थ्यवान् है ।

११४ नद्यतीनां पुत्रां भेत्ता, सुनीनां मरया इन्द्रः ( २७५ )- अनुत्तरीं बहुतनी नगरियोंका नाम करनेवाला और सुनियोंका विध इन्द्र है ।

११५ महः सतः ते महिमा पनिष्टम ( २७६ )- तेरे जैसे महा पुष्टयकी महिमाका ही वर्णन किया जाता है ।

११६ महा महान् अक्षि ( २७६ )- तू अपने यशसे महान् है ।

११७ यः अश्वी रथी सुहृत्पः गोमान्, इवामभाजो वयसा, सदा सचते, चन्द्रः स्वर्गं उपयाति ( २७७ ) जो घोड़े रखता है, रथमें बैठता है, उत्तम स्ववाला है, यावोंकी पालता है, धन और अन्नसे मुक्त है, ऐसा वह इन्द्र आभूषणोंकी पहनकर सभामें आकर बैठता है ।

११८ यत् श्रावः शतं स्युः, उत भूमौ शतं स्युः, सहस्रं सूर्याः, अनुजातं त्वा न अष्ट ( २७८ )- सैकड़ों घुनोक, सैकड़ों पृथिवी, हजारों सूर्यअथवा जो कुछ भी पीछे उत्पन्न हुए पदार्थ हैं, वे सब भी तेरी यरायरी नहीं कर सकते ।

११९ वसो इन्द्र ! तं त्वा कः मर्तः आदधर्षति ( २८० )- हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! उस तुममें कौनसा मनुष्य भय दिखान सकता है ?

१२० ते श्रद्धा याजी ( २८० )- तू पर श्रद्धा रखने-वाला बलवान् होता है ।

१२१ तु धाये ! स्वापिभिः आ ( २८२ )- हे उत्तम मित्र ! उत्तम मित्रोंके साथ आ ।

१२२ अ-जर्, प्र-हेतारं अ-प्रहितं माशुं जेतारं हेतारं रथीतमं अन्तं उतये इत ( २८३ )- जराहिल, पायुपर प्रहार करनेवाले, कोई भी जिसका विरोध नहीं कर सकता, घोष विनय प्राप्त करनेवाले, प्रेरणा करनेवाले, रथियोंमें श्रेष्ठ, जिसे कोई भी मार नहीं सकता, ऐसे इन्द्रको पढ़ो ला ।

१२३ यः नम्राहा विश्वयर्षणिः, तं इन्द्रं वयं हमहे ( २८६ )- अशुओंकी एकसाथ मारनेवाले, और सब मनुष्योंका हित करनेवाले उस इन्द्रको हम सहाय्यार्थं बुलाते हैं ।

१२४ हे सहस्रमयो ! सुविनुष्ण सत्पते ! समस्तसु नः वृषे भव ( २८६ )- हे हजारों उस्ताहूँसे कार्य करनेवाले ! बहुत धनवान्, और मज्जतेकि पालक इन्द्र ! मुझमें हमारस यश यहै ऐसा कर ।

१२५ शचीभिः दिवानकतं दिशस्यतं ( २८७ )- तू अपनी शक्तिमें हमें रातदिन धर दे ।

१२६ यां रातिः कदाचन मा उपदसत् ( २८७ )- तेरा रात कभी भी कम न हो ।

१२७ अस्तत् रातिः कदाचन मा उपदसत् ( २८७ )- हमारा रात भी कभी कम न हो ।

१२८ विप्रतामां धर्चारं वयणं वपा गिरा वन्देत् ( २८८ )- विनोद अनेक कर्मोंको धारण करनेवाले बहणकी विशेष सरसायके लिए स्तुति करने केवन्दना करते हैं ।

१२९ गाः पाहिः ( २८९ )- गायोंका रक्षण कर ।

१३० इन्द्रः सूर्योः सैमिन्द्रः वज्री हिरण्ययः ( २८९ )- इन्द्र अपने रथमें घोड़े जोड़ता है, वज्र धारण करता है, और सुनहरे रथमें बैठता है ।

१३१ हे आद्रिचः ! महे शुक्काय त्वा न परादीधमे ( २९१ ) हे वज्रधारी इन्द्र ! यदि बहुत धन प्राप्त हो तो भी मैं तुमसे दूसरोंको देनेको तैय्यार नहीं ।

१३२ हे वज्रिचः ! न अयुताय, न सहस्राय, न शताय ( २९१ )- इस हजार, एक हजार अथवा भी मिले तो भी मैं तुमसे छोड़नेवाला नहीं ।

१३३ हे इन्द्र ! मे पितुः वस्यान् ( २९२ )- हे इन्द्र मेरे पिताके अथवा तू अधिक धनवान् है ।

१३४ मे अनुजतः आतुः वस्यान् ( २९२ )- भोग न भोगनेवाले मेरे भाईसे भी तू अधिक धनवान् है ।

१३५ मे माता समा ( २९२ )- मेरी माता मेरे तमान है ।

१३६ चतुर्वन्ताय राधसे छन्दयः ( २९२ )- धन और अन्नके लिए महान् बना ।

१३७ नृदन्तः वीजयः अद्रयः त्वा न वरन्ते ( २९६ )- बहुत बड़े बड़े पर्वत भी तुमसे अपने कर्तव्यसे डिगा नहीं सकते ।

१३८ यत् वसु शिषासि, तत् न किः आ गिनति ( २९६ )- तू भी धन देनेकी इच्छा करता है, उस तेरे बानकी कोई भी रोक नहीं सकता ।

१३९ यः अयं शिप्री ओजसा पुष्ट विमिनति ( २९७ )- यह निरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र अपनी शक्तिसे शत्रुके मर्गोंकी तोड़ता है ।

१४० यन् शासः सद्रसः परि अमत्तं ज्यायय ( २९८ )- तू शासन करता है, इतलिय हमारे स्थानसे दुष्टचारियोंको दूर कर ।

१४१ कदाचन स्तरीः नः अमि ( ३०७ )- तू कभी भी बंधा मायके तपान नहीं होता ।

१४२ देवस्य ते दानं भूयः उपोपेतं पृक्यते ( ३०० )- तेरे जैसे देवों का बहुत होकर हमारे पास आकर बरते हैं ।

१४३ शची-वसु ( ३०४ )- यह इन्द्र अपनी शक्तिसे धन प्राप्त करनेवाला है ।

१४४ दानुये रत्नानि धत्तं ( ३०६ )- दानगील्लो रत्न व धन दे ।

१४५ अहं सदा याचन् अनुमुद्य ( ३०७ )- क्या हमेशा मागते रहनेके कारण तू मुझसे नाराज हो गया है ?

१४६ वः ईद्वानं न याचिषत् ( ३०७ )- अपने स्वामीसे भला कीय नहीं मागता ।

१४७ वृषणा हरी उपयुयुजे, वृजहा आ जगाम ( ३०८ )- बलवान् घोड़ोंको रथमें जोड़ लिया है, और वृजवीं मारनेवाला आ गया है ।

१४८ ज्यायः इन्द्रः ईपतः तत् धनीयसः अभि आ भर ( ३०९ )- महान् इन्द्र इच्छा करनेवाले छोटेको भी वह धन भरपूर दे ।

१४९ पुर-प्रसुः भरे भरे हृद्यः ( ३०९ )- बहुत धनवान् वह इन्द्र प्रत्येक युद्धमें सहायताके लिए बुलाये योग्य है ।

१५० यत् त्व यावतः ईद्विगे पतायत् अहं ईद्विय ( ३१० )- तू जितने धनीका स्वामी है, उतने मुझे मिले, ऐसी मैं इच्छा करता हूँ ।

१५१ पापव्याय न रंसिषं ( ३१० )- पापी होनेको मैं तेंप्यार नहीं ।

१५२ त्वं प्रनृतिषु विद्या, स्पृघा अग्यसि ( ३११ )- तू युद्धमें सभी शत्रुओंका नाश करता है ।

१५३ त्वं अशस्त्रिहा ( ३११ )- तू डुल्लोबा नाश करता है ।

१५४ जनिता ( ३११ )- शत्रुके लिए आपत्तिोंको पैदा करनेवाला है ।

१५५ तदप्यतः मृधनुः अग्नि ( ३११ )- तू विजय करनेवालोंको नष्ट करता है ।

१५६ विदधं अति यजधिय ( ३१२ )- तू सब विद्वयों ध्याय है ।

१५७ नः अग्निता मृधे च अयः ( ३१४ )- तू हमारा रक्षक और हमें बढ़ानेवाला है ।

१५८ यमृनि दधुः ( ३१४ )- धन दे ।

१५९ यत् दानवान् अपदन् ( ३१५ )- जब तूने दानवीं मारा ।

१६० नः मुगित्त आ भर ( ३१६ )- हमें उत्तम धन दे ।

१६१ रतोनाः नना ग्मना स्वरागा ( ३१६ )- तुमसे संरक्षित हुए हम स्वयं ही धन कमायें ।

१६२ हे यत्नानं यत्सुपते । यत्सुयथा ते दक्षिणं हस्तं जगृह्य ( ३१७ )- हे धनोके स्वामी ! धनको इच्छा करने वाले हम तुम्हें दायाँ हाथसे पकड़ते हैं ।

१६३ हे शूर ! चित्रं वृषणं रथि वाः ( ३१६ )- हे शूर ! अनेक प्रकारके बल बढ़ानेवाले धन दे ।

१६४ यत् पार्याः धियः युनजते नरः नेमिधिता इन्द्रं ह्यन्ये ( ३१८ )- जब मकड़से पार होनेके लिए बुद्धिके काम किए जाते हैं, तब युद्धके समय लोग इन्द्रको पबबके लिए बुलाते हैं ।

१६५ त्वं शूरः नृपाता शायसः चकानः ( ३१५ )- तू शूर, मनुष्योंको धन देनेवाला, बलसे तेजस्वी है ।

१६६ निधया यद्वान् अरमान् मुमुग्धि ( ३१८ )- पानोसे बचे हुए हमें मुक्त कर ।

१६७ महे घोराय तवसे तुराय विरिदिने यज्ञिणे स्वयिराय असे अपूर्णा यज्ञांनि नक्षु- ( ३२२ )- महान्, मोर, शक्तिवान्, मोर दोषप्र कार्य करनेवाले, बख-धारी, विश्व रसें इस इन्द्रके लिए अबधुत स्तुति करो ।

१६८ द्रुमः दशभिः सहर्षः इयानः कृष्णः अंशुमती अवतिष्ठत्, दाध्या धमन्ते तं इन्द्रः आश्वत्, अथ द्रुमणाः स्नीहिर्ति अघटाः ( ३२३ )- आक्रमण करनेवाला कृष्ण अशुभ बल हजार संनिर्भोरे ताप अशुमती नदी पर आया पर अपने बलसे जाको भय देनेवाले उस अशुभ पर इन्द्रने आक्रमण किया और उसकी हितक मेनाको भी मार डाला ।

१६९ इमाः विद्याः पूतनाः जयासि ( ३२४ )- सब शत्रुसेनाओं पर तू अय प्राप्त करता है ।

१७० देयस्य महिन्या काश्यं पद्य ( ३२५ )- देवों याको प्रकट करनेवाले काश्यको देव ।

१७१ अथ ममार स इ समान ( ३२५ ) ओ आश भर गया, वही बल पहरोके समान कार्य करने लगता है ।

१७२ त्वं तत् जायमानः अशानुभ्य मशयः शत्रुः अमयः ( ३२६ )- तू उत्पन्न होने ही शत्रुअग्नि रहित उन मात अपुरोबा धनु हुआ ।

१७३ शूटे चायागृधिजी मयधियुः ( ३२६ )- तू ही अंधकारमें पड़े हुए दाका बुधिवीरोंको प्रकृतमें लाया ।

१७४ विश्वमद्रुम्य भयनेभ्यः रणे ध्याः ( ३२६ )- अंधकारकी भुवनीं और अंधक शूरवर बनाया ।

चतुर्थ अध्याय ]

१७५ वृषस्तुः अर्थः तरपीः ( ३२७ )- प्रसक्तनीय और शत्रुनाशक वृ हन् विजयी करता है ।

१७६ वृषहृणं वृषं पुष-धस्मानं वृषमं स्थिररज्जुं वज्रिणं सुधिमन्तं त्वा गृणीये ( ३२७ )- वृषको मारने-वाले तेजस्वी, अनेक शत्रुओंका नाश करनेवाले, बलवान् युद्धमें स्थिर रहनेवाले, बख्खारी, शत्रुनाशक ऐसे वृष इन्द्रको मं स्तुति करता है ।

१७७ वाजस्रतो अस्मिन् भरे शुनं मघमानं इन्द्रं हुवेम ( ३२९ )- घन प्राप्त होनेवाले इस युद्धमें उत्साही भववान् इन्द्रको अपने मदके लिए बुलाते हैं ।

१७८ द्रुपवन्तं उग्रं समस्तु वृत्राणि चरन्तं धनानि संजिन्तं ऊतये हुवेम ( ३२९ )- प्रार्थना सुननेवाले, उग्र-वीर, युद्धमें वृषका नाश करनेवाले, पत्नोंको लीतनेवाले इन्द्रको अपने सरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

१७९ वाजिन्तं देवजृत्तं स्रोहोचानं रथानां तरनारं अरिपुमेमिं पृतनान्यं, आशुं ताशुं स्वस्तये हुवेम ( ३३१ )- बलवान्, देवोंसे तेजित, सामर्थ्यवान्, रथोंको सपथामें पार करनेवाले, तेज अत्र प्राप्त करनेवाले, शत्रु सेनापर विजय प्राप्त करनेवाले, वीरप्रणामी सुपर्णको अपने रक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

१८० जतारं अत्रितारं, हृवे हृवे सुहृव्यं, दारं शर्म इन्द्रं हुवे ( ३३३ )- दुर्लभते पार करनेवाले, सरक्षण करनेवाले प्रत्येक युद्धमें सहायार्थ बुलाने योग्य इस शूरवीर बलवान् इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

१८१ वज्र-वज्रिणं, धि मतानां हरीणां, रथ्यं इन्द्र यजामहे ( ३३४ )- दार्यं हावमें वज्रको धारण करनेवाले, तेज वीर्यवाले घोड़ोंके रथमें बंठनेवाले इन्द्रको हम यज्ञमें बुलाते हैं ।

१८२ इमथुभिः दोधुवत्, ऊर्ध्वया पि सुवत् ( ३३४ )- वह अपनी बाड़ी और भूशोंकी हिलाते हुए ताके धेनु हुआ है ।

१८३ सेनाभिः भयमान, रायसा चि ( ३३४ )- अपनी सेनाते शत्रुको भय दिखलाकर घन होता है ।

१८४ सत्रामाहं वाभूर्धिं तुघं महां अपारं वृषमं सुवयं इन्द्रं ( ३३५ )- हम एकताय अनेक शत्रुओंकी मारनेवाले, शत्रुको भयभीत करनेवाले, शत्रुओंको भयानेवाले, महान्, अपार बलवान्, उत्तम बख्खारी इन्द्रको प्रार्थना करते हैं ।

१८५ य वृषं हन्ता, वाजं सनिता, सुराघाः मघवा, मघानि दाता ( ३३५ )- वह इन्द्र वृषकी मारने-वाला, अत्र देनेवाला, उत्तम भववान् है, वह भक्तीकी घन देता है ।

१८६ यः मर्ता नः वनुष्यन् अभिवाति, मन्यमानः क्षिप्रि सुधा शवसा उगणाः सुपः, त्वोताः वृष-मणाः अभिष्याम ( ३३६ )- जो शत्रु हमें मारनेकी इच्छा करता हुआ हम पर चढ़ाई करता हुआ जाता है, जो घमण्डी विनाशक शत्रुओंको लेकर तेजसे तेजाके साथ चढ़ाई करता है उसे हम तेरे सरक्षणसे रक्षित होकर बलवान् मनते सुस्त होकर प्रार्थनित करें ।

१८७ विश्वानि विशुपे अरं गमाय जगमे अपदचा-टघ्वने प्रति भर ( ३५२ )- सर्व ज्ञानी, ठीक समय पर पहुंचनेवाले, सबसे पहले पहुंचनेवाले इन्द्रकी भरपूर सोम है ।

१८८ उग्रं वचः अपावधीः ( ३५३ )- शरीर भावण मत करो ।

१८९ तृपि-वृमिं नृनीपिहं खरतिं त्वा इन्द्रं वर्तयामसि ( ३५४ )- बहुत पराक्रमी, शत्रुओंका पराभव करनेवाले, सज्जनोंके पालक इन्द्रको हम लाते हैं ।

१९० त्वं अ-प्रहृणं श्रवसः पनि निभ्यासाहं दधिप्रेष्ठिं विश्वेदेसं नरं गृणीये ( ३५७ )- उस उपकार करनेवाले घलके स्वामी, सब शत्रुओंकी हरानेवाले, शक्तिमान्, सर्वत्र नेताकी मं स्तुति करता है ।

१९१ सुरां भिन्दुः युवा कविः अमितीजाः विश्वस्व कर्मणः धर्ता, पुरुषुतः इन्द्रः अजायत ( ३५९ )- शत्रुके नगरोंकी तोड़नेवाला, सज्ज, ब्रह्मि, अर्पणित सामर्थ्यवाला, सब वनोंकी धारण करनेवाला, षडुतीति प्रसन्नित इन्द्र है ।

१९२ हे नरः ! अर्घत, प्रार्घत, भृषुं अर्चन्तु ( ३६२ )- हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रका सकार करो, तुम्हें सकार करो, शत्रुकी हरानेवाले इन्द्रका सकार सभी करें ।

१९३ पुरु-नि-पिपे इन्द्राय धर्मं उपधे नमिं ( ३६३ )- बहुलते शत्रुओंकी हरानेवाले इन्द्रके यज्ञ प्रकट करनेवाले स्तोत्र गाओ ।

१९४ निभ्यासरस्य अनानतस्य रायमः पनि हुपे ( ३६४ )- सब शत्रुनेनाओंपर आक्रमण करनेवाले, शत्रुके आगे बन्धी न झुकनेवाले, सामर्थ्यके स्वामीकी मं बुलाता है ।

१९५ साः वृहतः दिवः ऊती द्विपः तरति ( ३६५ )-



वह महान् विद्य सरक्षणोति युक्त होकर सब शत्रुओंको दूर करता है ।

१९६ शतक्रतो ! विभोः राघसः ते रतिः विभ्वी ( ३६६ ) - हे सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! बहुत धनोके तेरे दान बहुत महान् और विशाल है ।

१९७ विश्वचरणे सुद्वह ! नः शुभ्रं मंहय ( ३६६ ) - हे सर्व द्रष्टा, उत्तम दान देनेवाले इन्द्र ! हमें धन देकर महान् कर ।

१९८ आसुरिं उग्रं ओजिष्ठं तरसं तरसिनं ( ३७० ) - हन शत्रुको मारनेवाले, उग्रवीर, सामर्थ्यवान्, प्रतापी और शीघ्रतासे कार्य करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

१९९ पुर्यः सः आ जिगीषन्तं नूतनं एकः इत् यर्नर्मा अनु वाहते ( ३७२ ) - वह पुराण पुरुष इन्द्र शत्रुओंको जीतनेकी इच्छावाले नये योरीको अकेला ही विजयके मानस लेआता है ।

२०० वृहती गिरः चरणाधृतं वायुधानं अमर्यं इन्द्रं अयनुपत ( ३७४ ) - हमारी बहुतसी स्तुतिपा मनुष्योका धारणपोषण करनेवाले, बढ़ानेवाले अमर इन्द्रकी प्रशंसा करती है ।

२०१ उतये शुभ्र्यु इन्द्रं क्यथुवः उशतीः मलयः अच्छ अनुपत ( ३७५ ) - हमारे सरक्षणके लिए पवित्र करनेवाले इन्द्रकी, अलमरहित बढ़ानेवाली, उन्नतिकी इच्छा करनेवाली, हमारी स्तुति प्रशंसा करती है ।

२०२ त्वं मेघं वरुचः अर्णवं इन्द्रं गीभिः अभि-मदत ( ३७६ ) - उस शत्रुका पराभव करनेवाले धनके समुद्र इन्द्रको स्तुतिसे आगन्तित करो ।

२०३ षस्य मानुषं दायः न विचरन्ति ( ३७६ ) - जिसके मनुष्योके लिए हितकारी कार्य श्लोकके समान सब अणुह करके हुए हैं ।

२०४ भुजे मँदिष्टं विषं अयन्वत ( ३७६ ) - भोग प्राणिके लिए महान् शत्रुको इन्द्रकी वरामयता करो ।

२०५ यः कृष्णगर्भाः निरहन् ( ३८० ) - जिस इन्द्रने कृष्णकी गर्भवती स्त्रियोंको मारा ।

२०६ वसुदक्षिणं धृपणं अवस्यवे हुयेम ( ३८० ) - बायें शत्रुके वस्त्र धारण करनेवाले घलवान् इन्द्रको अपने - हाथकी इच्छा करनेवाले हम बुलाते हैं ।

• २०७ दे धञ्जिचः ! ते नं धृपणं पृथु रासादि लोकः गनुं मदे शुणीमसि ( ३८१ ) - हे बख्यकारी इन्द्र ! तेरे

उस बलवान्, युद्धमें शत्रुओंका पराभव करनेवाले, सब लोभोंका हित करनेवाले आनन्दकी मे प्रशंसा करता हूँ ।

२०८ यः एकः इत् विद्वा कृष्टीः अभ्यस्यति ( ३८७ ) - जो अकेला ही इन्द्र तम शत्रुतेनाओंका विनाश करता है ।

२०९ यः एकः इत् वासुपे मर्ताय वसु विदपते ( ३८९ ) - जो अकेला ही दान देनेवाले मनुष्यको धन देता है ।

२१० अग्रतिष्कृतः इन्द्रः ईशानः ( ३८९ ) - जिसका कोई भी प्रतिस्कार नहीं कर सकता ऐसा इन्द्र सबका ईश्वर है ।

२११ नृतमाय धृष्णये सुस्तुपे ( ३९० ) में श्रेष्ठ-वीर और शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करता हूँ ।

२१२ ओजसा त्वं धृषं हंसि ( ३९१ ) - अपने सामर्थ्यसे तू धृषको मारता है ।

२१३ सभ्राजित् अगोह्य ! विद्वतः पृथु दिव्यः पतिः, नः आगहि ( ३९३ ) - हे सब शत्रुओंको जीतनेवाले, जिसे कोई भी हरा नहीं सकता ऐसे इन्द्र ! तू सब ओरसे विशाल और बुलोकका स्वामी है । तू हमारे पास आ ।

२१४ अत्रिणं निहंसि, तं ईमहे ( ३९४ ) - शत्रु शत्रुओंकी तू मारता है, अत तेरो हम प्रार्थना करते हैं ।

२१५ समहसः आदिस्थासः नः तुये तुनाय जीवसे द्राघीयः आयुः सुकृणोतम ( ३९५ ) - महान् आदित्य हमारे पुत्रयोरीको जीनेके लिए दीर्घायु करें ।

२१६ वज्रहस्त ! निर्मरीनां परिमजं घेत्य ( ३९६ ) - हे वज्रधारी इन्द्र ! विज्र दूरकरनेके भाग तू जानता है !

२१७ अहः अहः शुभ्र्युः परिपदां ( ३९६ ) - प्रति-दिन त्यच्छता रखनेवाला रोषोंको दूर करता है ।

२१८ हे आदिस्थासः ! अमीवां, स्रष्टं, दुर्मनिं अंदुसः नः जप युयोनन ( ३९७ ) - हूँ आदित्यो ! रोग, अन्न, दुःखबुद्धि, पाप इन सबकी हानिसे दूर करो ।

२१९ त्वं जनुया भक्षावृत्त्यः, अ-नाग, अनानिः ( ३९९ ) - हे इन्द्र ! तू अन्नमे ही शत्रुवहित है, तेरा नेता कोई नहीं है, और भाई भी कोई नहीं है ।

२२० युधा इत् आदित्यं इच्छसे ( ३९९ ) - तू युद्धो ही कोई भाई मिले ऐसी इच्छा करता है ।

२२१ या पुरा घययः नः प्र आग्निनाय सं इष्टं उतये स्तुपे ( ४०० ) - जिसने हमें परते भी धन दिया, उस इन्द्रकी अं स्तुति करता हूँ ।

२२२ दृढा चित् यमपिप्रायः मा अग्रस्थात् (४०१)  
- बलमान् और शत्रुको सुकानेवाले बीरो ! हमसे दूर मत  
रहो ।

२२३ श्वसन्तं त्वया युजा प्रति सुर्वामहि ( ४०३ )  
- दूर कर्म करनेके कारण लम्बी साँसे लेते हुए शत्रुको तेरी  
महापताते हम ठीक जवाब दे ।

२१४ त्वं नः शोचः नृम्यं आ भर, घृतनासहं धीरं  
आ भर ( ४०५ ) - तू हमें सामर्थ्य और धन भरपूर दे,  
और शत्रुसेनाको पराजित करनेवाला पराक्रम भी हमें दे ।

२२५ स्वराज्यं अनु अर्चन् पृथिव्याः अर्हि निः  
शासा ( ४१० ) - स्वराज्यके संरक्षणकी दृष्टिसे पृथिवीके  
अर्हि नामक शत्रुपर तुने शासन किया ।

२२६ तं महर्षु शाजिपु अर्भे च उर्ति हयामडे  
( ४११ ) - उससे बड़े और छोटे संघर्षोंमें संरक्षणके साधन  
मांगने हैं ।

२२७ सः चाजेयु नः प्राथिपत् ( ४११ ) - वह युद्धोंमें  
हमारा संरक्षण करे ।

२२८ अद्रिचन् वज्रिन् इन्द्र ! तुभ्यं इत् धीयं  
धनुत्तं ( ४१२ ) - हे वज्रधारी इन्द्र ! तेरा पराक्रम  
अत्रेय है ।

२२९ स्वराज्यं अनु अर्चन् मायिनं मृगं वृमं मायया  
अययीः ( ४१२ ) - अपने स्वराज्यको रक्षाके लिए कपटी  
पुत्रको तुने बचदसे ही मारा ।

२३० मेहि अग्निहि भृष्टणुहि ( ४१३ ) - शत्रुपर आक्रमण  
कर, धारों औरसे आक्रमण कर और उनका नाश कर ।

२३१ ते वज्रः न निर्यसते ( ४१३ ) - तेरा वज्र  
विजोते भी रोका नहीं जा सकता ।

२३२ ते शवः नृम्यं ( ४१३ ) - तेरे बल शत्रुको  
सुकानेवाले हैं ।

२३३ स्वराज्यं अनु अर्चन् पूत्रं हनः अपः जय  
( ४१३ ) - स्वराज्यको अर्चना करनेके लिए शत्रुको मार  
और बल जोतकर अपने अधिकारमें ले ।

२३४ यत् श्राजयः उदीरते, घृण्यये धनं धीयते  
( ४१४ ) - जब युद्ध मुफ होता है, तब शत्रुको जीतनेवालेको  
धन मिलता है ।

२३५ कं हनः ( ४१४ ) - तू विनाशो मारता है ।

२३६ कं घटी दृघः ( ४१४ ) - किनको धनमें स्थापित  
करता है अर्थात् किने धन देता है ।

२३७ नः स्नुतायतः कदा करः ( ४१६ ) - हमें  
एतबोलनेवाला कब करेगा, कब धन दान देगा ।

२३८ स्तोत्रभ्यः इयं आ भर ( ४१९ ) - स्तुति करने-  
वालोंको भरपूर धन दे ।

२३९ नः मनः दक्षं उत क्रतुं भद्रं चातय ( ४२२ )  
- हमारे मन, बल, कर्म और कल्याण प्राप्त हों इसलिये  
मंत्रित कर ।

२४० दिग्भी उपाकयोः हस्तयोः आयसं चञ्चं  
निदूये ( ४२३ ) - निरतम्राण धारण करनेवाले इन्द्रने अपने  
दोनों हाथोंमें कौलादके बखको धारण किया ।

२४१ यं सजोषसः द्विपः अति नयन्ति, तं मय्यं  
अंहः न, दुरिते न अष्ट ( ४२६ ) - जिसको समान विचार  
और मनवाले देव शत्रुओंके दूर करके उन्नतिके रास्ते लेजाते  
हैं, उस मनुष्यको दण नहीं लागता और दुर्गति उसके पास  
फटकती भी नहीं ।

२४२ सद्गुणिः घृणाणि परि, नः कृणया द्विपः  
तरधे ईरसे ( ४२५ ) - सामर्थ्यशाली तू शत्रुपर घडाई  
करनेके लिए जा, हमारे शत्रुओंको दूर करनेवाला तू शत्रु-  
ओंके पार होनेके लिए शत्रुपर घडाई करनेके लिए जाता है ।

२४३ हे विद्वतो-दापन् ! विद्वतः नः आ भर  
( ४३७ ) - हे धारों औरसे शत्रुओंको नष्ट करनेवाले इन्द्र !  
धारों औरसे हमें भरपूर धन दे ।

२४४ पर व्रता ( ४३८ ) - वह इन्द्र शानी है ।

२४५ त्वया घुमान्तं घञ्चं ( ४४० ) - त्वष्टाने तेजस्यो  
वज्र तंभार किया ।

२४६ त्वयिपिनाः शो पदं मयं ( ४४१ ) - धनते वज्र  
करनेवाले प्राणि, उत्तम स्थान और धन प्राप्ति करते हैं ।

२४७ अ-व्रतः नः हिनोति ( ४४२ ) - जो व्रतका  
पालन नहीं करता उसे कुछ भी नहीं मिलता ।

२४८ शायः सदा सुजयः ( ४४२ ) - नाश होनेवा युद्ध  
रहती है ।

२४९ युया धुता इन्द्रः आ स्तोभति - ( ४४५ ) -  
तपण और प्रसिद्ध वज्र सब शत्रुओंको मारता है ।

२५० हे अग्ने ! त्वं नः अन्तमः शिवाः धाना भुषः  
( ४४८ ) - हे अग्ने ! तू हमारे पास कल्याण करनेवाला  
और संरक्षक है ।

२५१ विभ्यस्य प्रस्नोमः ( ४५० ) - सब शत्रुओंका  
नाश करनेवाला वह इन्द्र है ।

२५२ सु घौरा शतहिमा मदेम ( ४५४ ) उत्तम घोर  
पुत्रोसे युक्त होकर हय सौ वर्ष तक आनन्दसे रहे ।

२५३ न इषं पीयरीं वृणुहि ( ४५५ ) - हमारे  
अन्नको पुष्टिकारक बना ।

२५४ इन्द्रं विश्वस्य राजति ( ४५६ ) इन्द्र सब  
विश्वपर राज्य करता है ।

२५५ मघवान उग्र सत्रा भूरि यथासि दधान

अप्रतिभुत तं इन्द्रं जोहवीमि ( ४६० ) - हम धनवान,  
उपवीर, बहुत बल धारण करनेवाले, शत्रुसे कभी पराजित  
न होनेवाले, उस इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२५६ वज्रीं राये विश्वा सुपथां करव ( ४६० ) -  
वज्रधारी इन्द्र धन प्राप्तिके सब मार्ग सुगम करता है ।

इस प्रकार इस ऐन्द्र काण्डमें सुभाषित हैं । ये ध्याएयान,  
लेख अथवा पुस्तकमें प्रयोग करनेके लिए उपयोगी और  
शिक्षाप्रद हैं ।

### ऐन्द्रकाण्डान्तर्गत ऋषि-देवता सूची

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदसंख्या	ऋषि	देवता	छन्द
		( ३ )		
११५	६।४५।१२	शुक्रबाहस्पत्य	इन्द्र	गायत्री
११६	८।१२।१६	भृत्कक्ष सुक्रो वा आगिरत	"	"
११७	८।११।१९	हयत प्रागाय	इन्द्र ( ऋ अग्निहोवीषि वा )	"
११८	८।१२।१५	भृत्कक्ष आगिरत	इन्द्र	"
११९	८।१३।७	भृत्कक्ष आगिरत	"	"
१२०	१०।१५।३१	देवजामय इन्द्रमत्तर ऋषिको	"	"
१२१	८।१३।५	गोपूवत्यश्वसूतितनो काण्वायनो	"	"
१२२	८।१३।१	गोपूवत्यश्वसूतितनो काण्वायनो	"	"
१२३	८।१३।५	मेधातिथि काण्वः, प्रियनेधश्चागिरत	"	"
१२४	८।१३।१	मेधातिथि काण्वः प्रियनेधश्चागिरत	"	"
		( ४ )		
१२५	८।१३।१	सुकसाभृतकसो	"	"
१२६	८।१३।४	सुकसाभृतकसो	"	"
१२७	६।४५।१	भारद्वाज	"	"
१२८	८।१५।३१	भृत्कक्ष	"	"
१२९	१।८।१	मधुच्छन्दा संश्यामित्र	"	"
१३०	१।७।५	मधुच्छन्दा संश्यामित्र	"	"
१३१	८।४५।१६	त्रिशीरु काण्व	"	"
१३२	७।३१।४	वसिष्ठी संजावरणि	"	"
१३३	८।४५।१	त्रिशीरु काण्व	"	"
१३४	८।४५।४०	त्रिशीरु काण्व	"	"
		( ५ )		
१३५	१।३।३	रश्मो घोर	"	"
१३६	८।४५।१६	त्रिशीरु काण्व	"	"

## सतुर्थ अध्याय ]

## सामवेदका सुमोघ अनुवाद

सप्ततल्पा	ऋग्वेदत्वानं	ऋषि	देवत	छन्द
१३७	८१६।४	वसतः काण्वः	इन्द्रः	गायत्री
१३८	८१८३।१	कुसीदो काण्वः	"	"
१३९	१।१८।१	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१४०	८१९३।१८	भूतकक्षः आगिरस	"	"
१४१	५।८२।४	श्यावारवः आमेघ	"	"
१४२	८१६।३।७	प्रगायः काण्व	"	"
१४३	८१६।१०८	वसतः काण्व	"	"
१४४	८।१६।१	इरिन्दिः काण्व	"	"
		( ६ )		
१४५	८।९०।४	भूतकक्ष आगिरस	"	"
१४६	६।४५।१५	मेघातिथि काण्व	"	"
१४७	१।८४।१५	गौतमो राहृमण	"	"
१४८	६।५७।४	भृशानो बार्हस्पत्य	"	"
१४९	८।९।१	बिन्दु पूतदसो वा आगिरस	मरुतः	"
१५०	८।९३।३।१	भूतकक्ष सुक्लो वा	इन्द्रः	"
१५१	८।९३।१३	भूतकक्ष सुक्लो वा	"	"
१५२	८।६।१०	वसत काण्व	"	"
१५३	१।३०।३	शुन शेष आजीर्गति	"	"
१५४	—	शुन शेष आजीर्गति वामदेवो वा	"	"
		( ७ )		
१५५	८।९३।१	भूतकक्ष सुक्लो वा आगिरस	"	"
१५६	७।३।१।१	वशिष्ठो मेघावसणि	"	"
१५७	८।१।१६	मेघातिथि काण्व प्रियमेघश्चादिगिरस	"	"
१५८	८।९३।१९	भूतकक्ष सुक्लो वा आगिरस	"	"
१५९	८।१७।१।१	इरिन्दिः काण्व	"	"
१६०	१।४।१	मधुच्छन्वा वैश्वामित्र	"	"
१६१	८।४५।१९	त्रिशोक काण्वः	"	"
१६२	८।८९।७	कुसीदो काण्व	"	"
१६३	१।३०।७	शुन शेष आजीर्गति	"	"
१६४	१।५।१	मधुच्छन्वा वैश्वामित्र	"	"
		( ८ )		
१६५	१।५।१।२०	विश्वामित्रो वाचितः	"	"
१६६	१।८।५	मधुच्छन्वा वैश्वामित्र	"	"
१६७	८।८१।१	कुसीदो काण्व	"	"
१६८	८।६९।४	प्रियमेघ आगिरस	"	"
१६९	४।३।१।१	वामदेवो गौतम	"	"
१७०	८।९३।७	भूतकक्ष सुक्लो वा आगिरस	"	"

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदस्थान	ऋषि	देवता	छन्द
१७१	१।१८।६	मेघतिथि काण्व	इन्द्र	वायवी
१७२	—	वामदेवो गीतम	"	"
१७३	८।९३।१८	श्रुतकल मुकुक्षो वा आगिरस	"	"
१७४	८।९४।४	बिन्दु प्रतदक्षो वा आगिरस	"	"
( ९ )				
१७५	१०।१५३।१	देवनामय इन्द्रमातर	"	"
१७६	१०।१६४।७	गोधा ऋषिका	"	"
१७७	—	दम्भड्डायर्षय	"	"
१७८	१।४६।१	प्रकण्व काण्व	"	"
१७९	१।८४।१३	गीतमो दाहृगण	"	"
१८०	१।९।१	मधुचन्द्रा वेदवामित्र	"	"
१८१	४।३१।१	वामदेवो गीतम	"	"
१८२	८।६।५	वस काण्व	"	"
१८३	१।३०।४	शुन डेप आजीगति	"	"
१८४	१०।१८६।१	उलो वातायन	"	"
( १० )				
१८५	१।४३।१	कण्वो घोर	"	"
१८६	८।४६।१०	वस काण्व	"	"
१८७	८।६।११	वस काण्व	"	"
१८८	८।९३।१७	श्रुतकल मुकुक्षो वा आगिरस	"	"
१८९	१।३०।१	मधुचन्द्रा वेदवामित्र	"	"
१९०	—	वामदेवो गीतम	"	"
१९१	८।१७।१	इरिन्विष्टि काण्व	"	"
१९२	१०।१८५।३	सत्यघृतिर्वादिणि	"	"
१९३	८।४६।१	वस काण्व	"	"
( ११ )				
१९४	८।६४।१	प्रणव काण्व	"	"
१९५	३।४०।६	विदवामित्रो गाधिनि	"	"
१९६	—	वामदेवो गीतम	"	"
१९७	८।९३।१९	श्रुतकल आगिरस	"	"
१९८	१।३।१	मधुचन्द्रा वेदवामित्र	"	"
१९९	८।९३।३४	श्रुतकल आगिरस	"	"
२००	३।४१।१०	मृगमव दीवक	"	"
२०१	६।४५।१८	भरद्वाज बाहृहाय	"	"
२०२	६।५७।१	भरद्वाज बाहृहाय	"	"
२०३	४।३०।१	वामदेवो गीतम	"	"

संज्ञकस्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १२ )				
१०४	८।४।५।२८	त्रिसोक काण्व	इन्द्र	गायत्री
१०५	१।१।४	मयुक्छन्दा वंदवामित्रः	"	"
१०६	८।४।१।४	वत्स काण्व	"	"
१०७	८।४।५।१	त्रिसोकः काण्व	"	"
१०८	८।११।१।६	सुकस आगिरस	"	"
१०९	—	वामदेवो गौतम	"	"
११०	१।५।२।१	विश्वामित्रो गायत्रि	"	"
१११	८।११।१।३	योयक्यद्वजसूविपनी काण्ववत्यी	"	"
११२	—	वामदेवो गौतम	"	"
११३	८।११।१।५	धृतकस सुवसो वा आगिरस	"	"
( १३ )				
११४	१।३।०।१	धूम शेष आसीपति	"	"
११५	८।११।१।०	धृतकस आगिरस.	"	"
११६	८।४।५।४	त्रिसोकः काण्वः	"	"
११७	८।३।२।१०	मेघातिथिः काण्वः	"	"
११८	१।१०।१	योतोमो राहुमया	"	"
११९	८।५।१	ब्रह्मातिथिः काण्वः	अश्विनो मित्रावरुणौ	"
१२०	३।६।२।१६	विश्वामित्रो गायत्रियो जसदमितर्वा	इन्द्रः	"
१२१	१।३।४।१०	प्रसन्नस्य काण्व	सपता	"
१२२	१।२।२।१७	मेघातिथिः काण्वः	विष्णुः	"
( १४ )				
१२३	८।३।२।०१	मेघातिथिः काण्वः	इन्द्रः	"
१२४	—	वामदेवो गौतम	"	"
१२५	८।२।१।४	मेघातिथिः काण्वः मित्रमेघदवागिरस	"	"
१२६	—	विश्वामित्रो गायत्रि	"	"
१२७	८।२।१।९	मेघान्दिथिः काण्वः मित्रमेघदवागिरसः	"	"
१२८	१।०।१।०।५।१	सुमित्र ( सुमित्रो वा ) गौतम.	"	"
१२९	१।१।५।५	मेघातिथिः काण्वः.	"	"
१३०	८।३।०।४	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१३१	—	विश्वामित्रो गायत्रियोऽभीपात् उवलो वा	"	"
१३२	८।११।२।८	धृतकस आगिरसः	"	"
( १५ )				
१३३	७।३।२।२२	वामिष्ठो मंत्रावरुणिः	"	सूर्यो
१३४	४।४।६।१	भगडाजः चार्त्विष्यः	"	"
१३५	८।४।२।१	प्रसन्नस्यः काण्वः	"	"

संख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
२३६	८१८८१	मोषा गौतमः	इन्द्रः	बृहती
२३७	८१६६१	कलिः प्रागायः	"	"
२३८	७३६११०	वसिष्ठो मंत्रावरणि.	"	"
२३९	८१३११	मेधातिथिः काण्व	"	"
२४०	८१६११७	भर्गः प्रागायः	"	"
२४१	७५५१३	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	भरतीः	"
२४२	८११११	प्रगायो घोः काण्वः	इन्द्रः	"

( १६ )

२४३	८१७०३	पुरुहन्ता आगिरसः	"	"
२४४	८१११२	मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी	"	"
२४५	८११५४	मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी	"	"
२४६	३४५११	विश्वामित्रो ऋषिः	"	"
२४७	११८४११९	गौतमो ब्राह्मणः	"	"
२४८	८१७०५	नुमेधपुरुमेधावागिरसी	"	"
२४९	८१३१५	मेधातिथिमेध्यातिथिर्वा काण्वः	"	"
२५०	८१३१३	मेधातिथिमेध्यातिथिर्वा काण्वः	"	"
२५१	८१३१५	मेधातिथिमेध्यातिथिर्वा काण्वः	"	"
२५२	८१४१३	देवातिथिः काण्वः	"	"

( १७ )

२५३	८१६१५	भर्गः प्रागायः	"	"
२५४	८१७०१	रेभः काण्वः	"	"
२५५	८११०१५	जमदग्निर्भर्गवः	"	"
२५६	८१३१७	मेधातिथिः काण्वः	"	"
२५७	८१८२१३	नुमेधपुरुमेधावागिरसी	"	"
२५८	८१८५१	नुमेधपुरुमेधावागिरसी	"	"
२५९	७३६११६	वसिष्ठो मंत्रावरणि	"	"
२६०	८१७०७	रेभ काण्वः	"	"
२६१	८१३३१	मेधातिथिः काण्व	"	"
२६२	६१४६७	भरद्वाज बाह्वृत्पथ	"	"

( १८ )

२६३	८१३३१०	मेधातिथि काण्व.	"	"
२६४	८१७०४	रेभः काण्वः	"	"
२६५	८१५६१४	वत्स	"	"
२६६	६१४६७	भरद्वाज बाह्वृत्पथ	"	"
२६७	८१७०३	नुमेध आगिरस	"	"
२६८	८१७०७	पुरुहन्ता आगिरस	"	"
२६९	८१७०१	नुमेधपुरुमेधावागिरसी	"	"

चतुर्थ अध्याय ]

सामवेदका सुबोध अनुवाद

संख्या	सूत्रसंख्या	श्रुति	श्रुतता	छन्द
५७०	७।३१।१६	वसिष्ठो मंत्रावरणि	इन्द्र	बृहती
५७१	८।१।७	मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी	"	"
५७२	८।६६।७	कलि प्रागाय	"	"
( १९ )				
५७३	८।७०।१	पुरुहमा आंगिरस	"	"
५७४	८।६१।१३	भग प्रागाय	"	"
५७५	८।१७।१४	इरिभिन्धि काण्व	"	"
५७६	८।१०।१।११	जयवनिर्गम	"	"
५७७	८।४९	मेधातिथि काण्व	"	"
५७८	८।७०।५	पुरुहमा आंगिरस	"	"
५७९	८।४।१	देवातिथि काण्व	"	"
५८०	७।३५।१४	वसिष्ठो मंत्रावरणि	"	"
५८१	६।५९।६	भ रत्नानो बार्हस्पत्य	"	"
५८२	८।५३।५	मेध्व काण्व	"	"
( २० )				
५८३	८।९९।७	नूमेध आंगिरस	"	"
५८४	७।३५।१	वसिष्ठो मंत्रावरणि	"	"
५८५	७।३५।८	वसिष्ठो मंत्रावरणि	"	"
५८६	६।४६।३	भ रत्नान बार्हस्पत्य	"	"
५८७	१।१३९।५	वसिष्ठो मंत्रावरणि	"	"
५८८	—	वामदेवो गीतम	"	"
५८९	८।३३।४	मेध्यातिथि काण्व	"	"
५९०	८।६१।११	भग प्रागाय	"	"
५९१	८।१।५	मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी	"	"
५९२	८।१।६	मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी	"	"
( २१ )				
५९३	७।३५।४	वसिष्ठो मंत्रावरणि	"	"
५९४	—	वामदेवो गीतम	"	"
५९५	८।१।१०	मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी विश्वामित्र इत्यके	"	"
५९६	८।८८।३	तोषा गीतम	"	"
५९७	८।३३।७	मेधातिथि काण्व	"	"
५९८	—	वामदेवो गीतम	"	"
५९९	—	वामदेवो गीतम	"	"
६००	८।५१।७	-शुष्टियु काण्व	इन्द्र	"
६०१	८।३५।७	मेधातिथि काण्व	"	"
६०२	८।९९।१	नूमेध आंगिरस	"	"



मन्त्रसंख्या	श्राव्येदस्थान	श्राव्यः	देवता	छन्दः
		( २२ )		
३०३	७।८१।१	वसिष्ठो मंत्रावरुणि	जया	बृहती
३०४	७।७४।१	वसिष्ठो मंत्रावरुणि	अश्विनी	"
३०५	—	अश्विनी संवत्सती	"	"
३०६	१।४७।१	प्रसकण्व काण्व	इन्द्रः	"
३०७	८।१।१०	मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वो	"	"
३०८	८।४।१	देवातिथि-काण्वः	"	"
३०९	७।३५।०४	वसिष्ठो मंत्रावरुणि	"	"
३१०	७।३५।१८	वसिष्ठो मंत्रावरुणिः	"	"
३११	८।११।०	सुमेध आगिरसः	"	"
३१२	८।८।५	सोमः गीतम.	"	"
		( २३ )		
३१३	७।११।१	वसिष्ठो मंत्रावरुणि	"	त्रिष्टुप्
३१४	७।११।१	वसिष्ठो मंत्रावरुणि	"	"
३१५	५।३१।१	मातुरायेयः	"	"
३१६	१०।१४।८।१	पुषुबन्धः	"	"
३१७	१०।१४।७।१	सन्तपुर्वागिरसः	"	"
३१८	७।१७।१	वसिष्ठो मंत्रावरुणि	"	"
३१९	१०।७३।११	गोरिवीति शाकल्य	"	"
३२०	१०।१११।३।६	वेनो भागंव.	वेनः	"
३२१	—	बृहस्पतिर्महुलो वा	इन्द्रः	"
३२२	६।३१।१	सुहोमो भारद्वाज	"	"
		( २४ )		
३२३	८।११।११	धृतानो मासत.	"	"
३२४	८।११।७	धृतानो मासत	"	"
३२५	१०।१५।५	बृहदुवयो वामदेव्य	"	"
३२६	८।११।११	धृतानो मासत	"	"
३२७	—	वामदेवो गीतम	"	"
३२८	७।३१।१०	वसिष्ठो मंत्रावरुणि	"	"
३२९	३।३०।११	विद्वानिमो गायिन	"	"
३३०	७।१३।१	वसिष्ठो मंत्रावरुणि	"	"
३३१	१०।७३।११	गोरिवीति शाकल्यः -	"	"
		( २५ )		
३३२	१०।१७।८।१	अरिष्टनेमिस्तस्यै	"	"
३३३	६।४।७।१	भरद्वाज	"	"
३३४	१०।११।१	विमर ऐन्द्रः, बसुहृद्वा वासुक्	"	"
३३५	४।१७।८	वामदेवो गीतमः	"	"

समुर्ध अर्पणाय ]

सामवेदको सुबोध अनुयाय

मंत्रसंख्या	श्रव्यदेवस्वार्ण	श्रव्यः	देवता	छन्दः
३३६	—	वामदेवो गीतमः	इन्द्रः	श्रित्युप्
३३७	—	वामदेवो गीतमः	"	"
३३८	३।५३।२	विश्वामित्रो गाविम	"	"
३३९	२।०८२।४	रेणुर्वेश्वामित्रः	"	"
३४०	२।०२०।२	वामदेवो गीतमः	"	"
३४१	२।८४।२६	गीतमो राहूगणः	"	"
( २६ )				
३४२	२।२०।२	समुच्छन्दा वेद्वामित्रः	"	मनुच्छुप्
३४३	२।२२।२	जेता सामुच्छन्दाः	"	"
३४४	२।८४।४	गीतमो राहूगणः	"	"
३४५	५।३२।२	अग्निर्गोमः	"	"
३४६	८।९५।४	तिररन्वीरागिरसः	"	"
३४७	२।८४।२	गीतमो राहूगणः	"	"
३४८	८।३४।२	नीपातिभिः काण्वः	"	"
३४९	८।९५।२	तिररन्वीरागिरसः	"	"
३५०	८।९५।४	विश्वामित्रो गाविमः	"	"
३५१	६।४४।२	तिररन्वीरागिरसः शंभुर्वर्हिस्पत्यो वा	"	"
( २७ )				
३५२	६।४४।२	भरद्वाजो वर्हिस्पत्यः	"	"
३५३	—	वामदेवो गीतमः, माहूगणो वा	"	"
३५४	८।६८।२	त्रियमेघः आगिरसः	"	"
३५५	८।६३।२	प्रगाथ काण्व	वसतः	"
३५६	—	इपावादेव आग्नेय	इन्द्र	"
३५७	६।४४।४	शंभुर्वर्हिस्पत्यः	वसिष्ठा	"
३५८	४।३९।६	वामदेवो गीतम	इन्द्रः	"
३५९	२।२२।४	जेता सामुच्छन्दाः	"	"
( २८ )				
३६०	८।६९।२	त्रियमेघः आगिरस	"	"
३६१	—	वामदेवो गीतमः	"	"
३६२	८।६९।८	त्रियमेघः आगिरसः	"	"
३६३	२।२०।५	समुच्छन्दा वेद्वामित्रः	"	"
३६४	८।६८।४	त्रियमेघः आगिरसः	"	"
३६५	६।२।४	भरद्वाजो वर्हिस्पत्यः	"	"
३६६	५।३२।२	अग्निर्गोमः	उषा	"
३६७	२।६९।३	प्रसन्नः काण्वः	विन्दवेदेवाः	"
३६८	२।२०।५	त्रिय आग्नेयः	इन्द्रः	"
३६९	—	वामदेवो गीतमः	"	"

मन्त्रसंख्या	श्रुत्येवहरणानं	श्राव्यः	श्रेयता	छन्दः
( २९ )				
३७०	८५७।१०	रेभः काश्यपः	"	अति षगती
३७१	१०।१४७।१	सुयेराः शैलुष्यिः	"	षगती
३७२	—	यामवेवो गीतमः	"	"
३७३	१।५७।४	सभ्य आगिरसः	"	"
३७४	३।५१।१	विश्वामित्रो गामिनः	"	"
३७५	१०।४३।१	कृष्य आगिरसः	"	"
३७६	१।५१।१	सभ्य आगिरसः	"	"
३७७	१।५१।१	सभ्य आगिरसः	"	"
३७८	६।७०।१	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	शाकाण्डिकी	"
३७९	१०।१३४।१	मेघातिथि काण्वः	इन्द्रः	महर्षितः
३८०	१।१०१।१	कुस्त आगिरसः	"	जगती
( ३० )				
३८१	८।१३।१	नारव काण्वः	"	उष्णिक्
३८२	८।१५।१	शोषुष्यस्वसृष्टित्तो काण्वायनो	"	"
३८३	८।१५।४	शोषुष्यस्वसृष्टित्तो काण्वायनो	"	"
३८४	८।१२।१६६	पर्यन्तः काण्वः	"	"
३८५	८।१४।१६	विश्वमना वेषश्वः	"	"
३८६	८।१४।१२	विश्वमना वेषश्वः	"	"
३८७	८।१४।१२	विश्वमना वेषश्वः	"	"
३८८	८।१८।१	नृमेघ आगिरस	"	"
३८९	१।८४।७	पोतनो राहूयगः	"	"
३९०	८।१४।१	विश्वमना वेषश्व	"	"
( ३१ )				
३९१	८।६१।८	प्रगायो धीरः काण्व	"	"
३९२	६।४३।१	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
३९३	८।१८।४	नृमेघ आगिरस	"	"
३९४	८।११।१	पर्यन्तः काण्व	"	"
३९५	८।१८।१८	इरिभिन्दि काण्वः	आदित्या	"
३९६	८।१४।५४	विश्वमना वेषश्वः	इन्द्र	"
३९७	८।१८।१०	इरिभिन्दि काण्व	आदित्या	"
३९८	७।१२।१	वसिष्ठो मंत्राधरणि	इन्द्रः	विराडुष्णिक्
( ३२ )				
३९९	८।११।१३	सौभरि काण्वः	"	ककुप्
४००	८।११।९	सौभरि काण्व	"	"
४०१	८।१०।१	सौभरि काण्वः	अस्त	"
४०२	८।११।३	सौभरि काण्वः	इन्द्र	"

## चतुर्थ अध्याय ]

## सामवेदका सुबोध अनुवाद

संख्या	श्लोकरूपान्तं	श्रुतिः	वेद्यता	छन्दः
४०३	८।२।१।१	सौभरि काण्व	इन्द्र	शतुष्प
४०४	८।२।०।१	सौभरिः काण्वः	मदतः	"
४०५	८।२।०।२	सुमेध आश्रितः	इन्द्रः	"
४०६	८।२।०।३	सुमेध आश्रितः	"	"
४०७	८।२।१।५	सौभरिः काण्वः	"	"
४०८	८।२।१।१	सौभरिः काण्वः	"	"
( ३३ )				
४०९	१।८।४।१०	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	पंक्तिः
४१०	१।८।०।१	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४११	१।८।१।१	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४१२	१।८।०।७	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४१३	१।८।०।३	गोतमी ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४१४	१।८।१।३	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४१५	१।८।१।२	गोतमी ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४१६	१।८।१।१	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४१७	१।१०।५।२	त्रित आश्रयः	विश्वेदेवाः	"
४१८	५।७।५।१	अजामुदाश्रयः	अदित्यौ	"
( ३४ )				
४१९	५।६।४	वसुधुत आश्रयः	अग्निः	"
४२०	१।२।१।१	विमद ऐन्द्रः	"	"
४२१	५।७।१।१	सत्यधवा आश्रयः	उषा	"
४२२	१।०।१।५।२	त्रिमद ऐन्द्रः	सोमः	"
४२३	१।८।१।४	गोतमी राहूगणः	इन्द्रः	"
४२४	१।८।१।४	गोतमी राहूगणः	"	"
४२५	५।६।१	वसुधुत आश्रयः	अग्निः	"
४२६	१।०।१।१।१	अहोमुखागदेव्यः	विश्वेदेवाः	सूची
( ३५ )				
४२७	१।१।०।१।१	श्रुच प्रसरत्सु	पञ्चमानः सोमः	द्विपरा विराट्
४२८	१।१।१।०।१	श्रुच प्रसरत्सु	"	विपरा अनुष्टुप्पिपी- विवागम्या
४२९	१।१।०।१।३	श्रुच प्रसरत्सु	"	द्विपरा विराट्
४३०	१।१।०।१।१।०	श्रुच प्रसरत्सु	"	"
४३१	१।१।०।१।१।३	श्रुच प्रसरत्सु	"	"
४३२	१।१।१।०।१	श्रुच प्रसरत्सु	"	विपरा अनुष्टुप् स्त्रिप्रीतिष्ठा मय्या
४३३	७।५।६।१	वृत्तिलो मंत्रावरणिः	मदतः	द्विपरा विराट्
४३४	७।१।०।१	कामदेवो गौगमः	अग्निः	परश्रिः
४३५	—	श्रुच प्रसरत्सु	वाजिनः	पुर प्रश्रिः

मन्त्रसंख्या	मन्त्रवेदस्थान	श्रुति	वेद्यता	छन्द
४२६	२।१०९।७	श्रुणु प्रसवस्युः ( ३६ )	पथमान सोम	द्विपदा विराट्
४३७	—	प्रसवस्युः	इन्द्र	द्विपदा विराट्
४३८	—	प्रसवस्युः	"	"
४३९	५।३।१।४	प्रसवस्युः	"	"
४४०	५।३।१।४	प्रसवस्युः	"	"
४४१	—	प्रसवस्युः	"	"
४४२	—	प्रसवस्युः	विश्वेदेवा	"
४४३	१०।१७९।१	सवर्तं अंगिरसा	जघा	"
४४४	—	प्रसवस्युः	इन्द्रः	"
४४५	—	प्रसवस्युः	"	"
४४६	—	प्रसवस्युः	"	"
( ३७ )				
४४७	८।५६।५	पुपुश्र काव्य	भस्ति	"
४४८	५।१४।१	बन्धु सुवन्धु धृतबन्धु विप्र- बन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा	"	"
४४९	—	बन्धु सुवन्धु धृतबन्धु विप्र- बन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा	इन्द्र	"
४५०	—	बन्धु सुवन्धु धृतबन्धु विप्र- बन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा	"	"
४५१	१०।१७९।४	सवर्तं अंगिरसा	जघा	"
४५२	१०।१५७।१	मुचन आस्य सापमो वा भौवन	विश्वेदेवा	"
४५३	—	कवय ऐलूय	"	"
४५४	६।१७।१।५	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	इन्द्र	"
४५५	—	आश्रेय	विश्वेदेवा	"
४५६	बन्धु ३६।८	वसिष्ठो भेन्नावरणि ( ३८ )	इन्द्र	एकपदा
४५७	२।५२।१	गूत्समव शीनक	इन्द्र	अष्टि
४५८	—	गौरागिरसा	सुपं	वसिष्ठमती
४५९	१।१३।०।१	पदच्छेपो वैवोवाति	इन्द्र	अत्यष्टि
४६०	८।१७।१।३	रेन काव्य	"	अतिजगती
४६१	१।१३।५।१	पदच्छेपो वैवोवाति	विश्वेदेवा	अत्यष्टि
४६२	५।५७।१	एवमासक्यामेव	मघत	अतिजगती
४६३	९।११।१।१	अनागत षादच्छेपि	पथमान सोम	अत्यष्टि
४६४	—	भकुल	सधिता	"
४६५	१।१२७।१	पदच्छेपो वैवोवाति	भस्ति	"
४६६	२।१२।४	गूत्समव शीनक	इन्द्र	अष्टि



- ४७१ तिष्ठो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्कदत् ॥ ५ ॥ ( ऋ ९।२।१४ )  
 ४७२ इन्द्रायेंद्रो मरुन्वते पयस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥ ( ऋ ९।६।४।२२ )  
 ४७३ असान्यश्शुभंदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदम् ॥ ७ ॥ ( ऋ ९।६।२।१४ )  
 ४७४ पयस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ ८ ॥ ( ऋ ९।२।९।१ )

१ देवार्थीः ( देव-आधी )— देवोंकी प्रिय, देव जिते पीते हैं ।

२ अद्य-शंस-ह्रा— पापी और दुष्टोंका नाश करनेवाला ।

३ धरेण्यः मदः— धेठ आनन्द देनेवाला ।

४ पयस्य— स्पष्ट होनेके लिए बर्तनमें डाला जाता है, साफ होकर बर्तनमें गिर ।

[ ४७१ ] ( तिष्ठ वाचः उदीरते ) अश्वेद, यशुर्वेद और सामवेद इन तीन वेदोंके पथ बोले जाते हैं । ( धेनवः गायः मिमन्ति ) दुग्धाव गायें दूध दुहनेके लिए शब्द करती हैं, ( हरिः कनिक्कदत् पति ) हरे रथका सोम शब्द करता हुआ छाना जाता है ॥ ५ ॥

१ तिष्ठः वाचः उदीरते— तीन वेदोंके मंत्र बोले जाते हैं ।

२ धेनवः गायः मिमन्ति— दुग्धाव गायें अपना दूध जलती ही दुहानेके लिए शब्द करती हैं ।

३ हरि कनिक्कदत् पति— हरे रथका सोम शब्द करता हुआ छाना जाता है ।

सबसे यज्ञशालामें रथा होता है, उसका यह वर्णन है ।

[ ४७२ ] हे ( इन्द्रो ) सोमरस ! ( मधुमत्तमः ) अत्यन्त मीठा तू ( अर्कस्य योनिं ) यज्ञके मध्य भागमें ( आसदं ) घँठनेके लिए ( मरुन्वते इन्द्राय ) मधु जितही सहायता करते हैं, उस इन्द्रके लिए ( पयस्य ) कलशमें जा ॥ ६ ॥

१ मधु-मत्-तमः— अत्यन्त मीठा ।

२ अर्कस्य योनिः— पूजनोप यज्ञ जहाँ होते हैं, अर्क-वृक्ष ।

३ पयस्य— रस छाननेके लिए एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें डाला जाता है ।

[ ४७३ ] ( गिरि-ष्ठाः अंशुः ) पर्वत पर होनेवाले सोमका रस ( मद्दाय अस्सायि ) आनन्द प्राप्तिके लिए निबोझ है, ( अन्सु दक्षः ) पानीमें मिलकर यह बड़ा है, ( श्येनः न ) श्येन पक्षीके समान ( योनिं आसदत् ) अपने स्थान पर वह जाकर बँधा है ॥ ७ ॥

१ गिरि-ष्ठाः अंशुः— पर्वत पर सोमलता होती है ।

२ अस्सायि— उबला, रस, निष्कान्त, ई ।

३ अन्सु दक्षः— पानीमें मिलकर यह बड़ा है । यह बस बढानेवाला ही गया है ।

४ श्येनः न योनिं आसदत्— श्येन पक्षी जैसे पर्वतसे उड़कर अपने स्थान पर आता है, उसी प्रकार यह सोम पर्वतसे यहाँ यज्ञशालामें आया है ।

[ ४७४ ] हे ( हरे ) हरे रथके सोम ! ( दक्ष-साधनः ) बल बढानेका साधन तू ( मद्दा ) आनन्ददायक ( देवेभ्यः मरुद्भ्यः पीतये ) देवों और मन्त्रोंके पीनेके लिए ( पयस्य ) इस बर्तनमें आ ॥ ८ ॥

१ हरिः— सोम हरे रथका होता है ।

२ दक्ष-साधनः— बल बढानेका यह साधन है ।

३ मद्दा— आनन्द बढानेवाला सोमरस है ।

४ देवेभ्यः पीतये— यह देवोंके पीनेमें आता है ।

५ पयस्य— यह छाना जाता है ।

४७५ परि स्वानो गिरिष्ठाः पत्रिरे सोमो अस्तात् । मदेधु सर्वथा असि ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१।८।१ )

४७६ परि प्रिया दिवः कविर्वया क्षसि नप्योहितः । स्वानैर्पाति कविक्रतुः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।१।९ )

इति नवमो वसतिः ॥ ९ ॥ प्रथम एव ॥ १ ॥ [ स्व० ६ । उ० ३ पा० । ४२ । का ॥ ]

[ १० ]

( १-१० ) १ ( कविर्नपयो ) श्यावाश्व आत्रेयः, २ त्रित आत्रेय, ३, ८ अमहोपुरादिगता, ४ भृगुर्वाङ्मिर्नग-  
मिर्नगो वा, ५, ६ कश्यपो मारोच, ७ विधुवि काश्यपः, ९, १० अतित वाश्यपो देवलो वा ॥  
पद्यमान सोम ॥ गायत्री ॥

४७७ प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मधानाम् । सुता विदधे अक्रमुः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१२।१ )

४७८ प्र सोमासो विपश्चिदोऽपो नयन्त ऊर्मयः । यनानि महिषा इव ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१२।१ )

[ ४७५ ] ( सोमः पत्रिरे पर्यश्रत् ) सोमस्त छलनीते नीचे गिरता है, ( गिरि-ष्ठा- स्वानः ) यह सोम पर्यन्तपर होना है, यहाँही साकर इतका रस निकाला जाता है । ( मदेधु सर्वथा असि ) आनन्द देनेवालोंमें से तू सबसे श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

- १ स्वानः— उतका रस निकाला जाता है ।
- २ सोमः पत्रिरे परि-अश्रत्— सोमस्त छलनीमेंसे छाना जाता है, और धू नीचे बर्तनमें गिरता है ।
- ३ मदेधु सर्व-धा असि— आनन्द देनेवाले पदापीमें यह सबसे अधिक आनन्द देनेवाला है ।

[ ४७६ ] ( कवि-क्रतुः कविः ) बुद्धिको बढ़ानेवाला तथा स्वयं आनन्दान् यह सोम ( नप्योः हितः ) सोमस्त निकालनेके दो तल्लोके बीचमें रखा गया है, ( दिवः प्रिया ययांसि ) वे लोकोके प्रिय पत्नी जवान् महादने पत्थर ( स्वानैः ) रस निकालनेके लिए ( परिप्याति ) उसके ऊपर धलते हैं, सोम पत्थरोंसे पीसा जाता है ॥ १० ॥

- १ कवि-क्रतुः— सोम बुद्धि और धार्य करनेकी शक्ति बढ़ाता है ।
- २ नप्योः हितः— दो तल्लोके वृद्धिके बीचमें सोम रखा जाता है, और दवाकर उसका रस निकाला जाता है ।
- ३ दिवः ययांसि— महादने पत्थर, लोकोके पत्नी ।
- ४ स्वानैः परिप्याति— ( स्वानै-सुवानैः ) रस निकालनेवाले यातक पत्थरोंसे सोम पीसकर उसका रस निकालते हैं ।

॥ यहाँ प्रथम उपखंड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ४७७ ] ( मद्-च्युतः सोमासः ) आनन्द बढ़ानेवाले सोमस्त ( सुताः ) निचोटे गए हैं । ( मघोर्नां नः विदधे ) हवि देनेवाले हमारे इत धरम ( श्रवसे आम्रमुः ) मद्य और पशुके लिए वे रस पाममें भरे गए हैं ॥ १ ॥

- १ सोमासः मद्-च्युताः— सोमस्त आनन्द बढ़ानेवाले हैं ।
- २ मघोर्नां नः विदधे— हविष्यान्न तैव्यार करके हम धत करते हैं ।
- ३ श्रवसे आम्रमु— सोमस्तहवी अक्षरत पीनेके लिए उन रसोंको पानोंमें भरा है ।

[ ४७८ ] ( विपश्चितः सोमासः ) बुद्धिको बढ़ानेवाले सोमस्त ( अपः ऊर्मयः ) पानीके लहरोंके साथ मिलाये जाते हैं, ( महिषाः यनानि इव ) भैंसे जैसे पशुमें जाते हैं, उत तथैव वे सोमस्त ( प्र नयन्तः ) पानीमें मिलाये जाते हैं ॥ २ ॥

२० ( साम हिवो )



- ४७९ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥ ( ऋ. २।६।१२८ )
- ४८० वृषा अस्मि भानुना द्युमन्त त्वा हवामहे । पवमान स्वर्द्वयम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. २।६।१४ )
- ४८१ इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः । सृजदश्वरयीरिव ॥ ५ ॥ ( ऋ. २।६।१।० )
- ४८२ असृक्षत प्र याजिनो गन्ध्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाश्वः ॥ ६ ॥ ( ऋ. २।६।१४ )

१ सोमासः विपश्चितः— सोमरस मुद्धि और उत्साह बढानेवाला है ।

२ अपः ऊर्मयः— पानीकी लहर । पानीमें वे रस मिलाये जाते हैं ।

३ महिषाः घनानि इव— पशु जैसे धनमें जाते हैं, उसी तरह वे रस पानीमें जाते हैं ।

४ प्र-नयन्त— विशेष पद्धतिये वे पानीमें मिलाये जाते हैं ।

[ ४७९ ] हे ( इन्दु ) सोम ! ( सुतः ) निचोडा गमा और ( वृषा ) बल बढानेवाला तू ( पवस्व ) पवित्र हो, ( जने नः यशसः कृधि ) लोगोंमें हमें यशस्वी कर, और ( विश्वाः द्विषः अप जहि ) सब शत्रुओंको हार ॥ ३ ॥

१ हे इन्दु ! सुतः— हे सोम ! तेरा रस निकाला है ।

२ वृषा पवस्व— तू बल बढानेवाला है, तू इस पात्रमें छागा जाता है ।

३ जने नः यशसः कृधि— लोगोंमें तू हमें यशस्वी कर ।

४ विश्वाः द्विषः अप जहि— सब शत्रुओंको पराभूत कर, दूर कर ।

[ ४८० ] हे सोम ! ( हि वृषा अस्मि ) निरुचयमे तू बल बढानेवाला है । हे ( पवमान ) पवित्र होनेवाले सोम ! ( स्व-द्वैष्टं ) सबको बेलनेवाले ( भानुना द्युमन्तं ) तेजसे धमकनेवाले ( त्वा हवामहे ) तुमे हम बुलाते हैं ॥ ४ ॥

१ हि वृषा अस्मि— निरुचयमे तू बल बढानेवाला है ।

२ पवमानः— छत्रकर पवित्र होनेवाला, छाननेके बाद यह साफ होता है ।

३ स्वः-द्वैष्टं— अपने आप धमकनेवाला ।

४ भानुना द्युमन्त त्वा हवामहे— तेजसे धमकनेवाले तुझे हम बुलाते हैं, तेरा धर्मन करते हैं ।

[ ४८१ ] ( चेतनः प्रियः इन्दुः ) उत्साह बढानेवाला प्रिय सोमरस ( कवीनां मतिः ) बानी लोगोंकी स्तुतिके साथ ( पविष्ट ) बर्तन में छागा जाता है, ( शयीः अश्वे इव ) रथका स्वामी जैसे घोड़ेकी चलाता है, उसी प्रकार ( सृजत् ) यह पात्रमें भरा जाता है, ॥ ५ ॥

१ चेतन प्रियः इन्दुः— उत्साह बढानेवाला होनेके कारण यह सोमरस सभीको अच्छा लगता है ।

२ कवीनां मतिः पविष्ट— बानी लोगोंके स्तुतिके साथ-साथ यह छागा जाता है, और बर्तनमें भरा जाता है ।

३ शयीः अश्वे इव सृजत्— रथमें बंठनेवाला जिस प्रकार घोड़ोंको हाकता है, उसी प्रकार यह सोमरस पात्रमें भरा जाता है ।

[ ४८२ ] ( याजिनः ) बल बढानेवाले ( गन्ध्याः ) और उत्साह बढानेवाले, और ( शुक्रासः सोमासः ) धमकनेवाले सोमरस ( गन्ध्या अश्वया वीरया ) गाय, घोड़े और वीर पुत्रोंकी इच्छा करनेवालेके द्वारा ( प्रासृक्षत ) निचोड़े जाते हैं ॥ ६ ॥

१ याजिनः आश्वयः सोमासः— ये सोमरस बल और उत्साह बढानेवाले हैं ।

२ गन्ध्या अश्वया शीरया प्रासृक्षत्— गाय, घोड़े और वीर पुत्र प्राप्त हों, इस इच्छासे धमकाने द्वारा रस निकाला जाता है ।

४८३ पवस्व देव आयुषमिन्द्रं गच्छतु ते मद्रः । वायुमा रोह धर्मणा ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।६।१।२२ )

४८४ पवमानो अजीजनद्विषद्विषं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानर वृहत् ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।६।१।१६ )

४८५ परि स्वानास इन्द्रवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्पन्ति धारया ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१।०।४ )

४८६ परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरुर्माविधि श्रितः । कारुं विअप्सुसुपुहम् ॥ १० ॥ ( ऋ. १।१।४।१ )

इति वसमी वसति. ॥ १० ॥ द्वितीय सप्त्. ॥ २ ॥ ( स्व० ११।३० मा। धा० ४९। हो ॥ )

इति पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्ध, पञ्चम- प्रपाठकस्य समाप्तः ॥ ५ ॥

[ ४८३ ] हे सोम ! ( देवः पवस्व ) तू पवस्वनेवासा है, अब पावनमें छाननेके लिए जा, ( ते मद्रः ) तेरा यह आनन्द बढ़ानेवाला रस ( आयुषम् इन्द्रं गच्छतु ) सबके साथ इन्द्रके पास जाये, ( धर्मणा ) अपनी धारकभावितते ( वायुं आरोह ) वायुमें मिल ॥ ७ ॥

१ देवः पवस्व— तू पवस्वनेवासा है ।

२ ते मद्रः आयुषम् इन्द्रं गच्छतु— तेरा यह आनन्द बढ़ानेवाला रस सबके साथ इन्द्रको प्राप्त हो ।

३ धर्मणा वायुं आरोह— अपनी धारकभावितते यह वायुको प्राप्त होवे ।

सोमरस शुद्ध होनेके बाद इन्द्र और वायुको दिया जाता है ।

[ ४८४ ] ( पवमानः ) पवित्र हुए इस सोमरसने ( द्विषः चित्रं ) सुलोचनें सोलनेवाले ( वृहत् वैश्वानरं ज्योतिः ) महान् वैश्वानर तेजको ( तन्यतुं न ) विकलीके समान ( अजीजनत् ) उत्पन्न किया ॥ ८ ॥

सोमरस छानकर शुद्ध हो जानेपर पवस्वने लगता है, उसको देखकर देखनेवाले समझते हैं कि मानों विकली हो चमक रही है ।

[ ४८५ ] ( स्वानासः इन्द्रवः ) निकोडे जानेके बाद ये सोमरस ( बर्हणा गिरा ) स्पष्ट स्तोत्रोंके साथ तथा ( मधोः धारया ) इस मोठे रसकी धाराके साथ ( मदाय ) आनन्द बढ़ानेके लिए ( परि अर्पन्ति ) छाननीसे छाने जाते हैं ॥ ९ ॥

१ स्वानासः—सुवानासः इन्द्रवः— सोमरस निकालते हुए ( बर्हणा गिरा ) ऊर्ध्व आर्वाजते स्तोत्र बोलें जाते हैं, और उस समय यह मोठे रसकी धारा, पीनेवालोंका आनन्द बढ़ानेके लिए बर्तनमें छोड़ी जाती है, और छाननीसे छानो जाती है ।

[ ४८६ ] ( कविः ) ज्ञान वर्षक, ( सिन्धोः ऊर्मो ) सिन्धु नदीके लहरमें ( अविधित ) मिला हुआ ( पुर-सुहं कारुं विअत् ) अनेकोंसे प्रसन्नवीच, स्तुति करनेवाले यज्ञकर्तृजनोंके कारण कलनेवाला यह सोम ( परि प्रासिष्यदत् ) पावनमें उपकृता है ॥ १० ॥

१ कविः सिन्धोः ऊर्मो अविधितः— ज्ञान बढ़ानेवाला यह सोमरस नदीके पानीमें निकाया जाता है । इसमें पानी मिलाया जाता है ।

२ पुरसुहं कारुं विअत्— प्रसन्नवीच पात्रक एक स्थानपर बैठते हैं । यज्ञपत्रमें सभी पात्रक बैठते हैं ।

३ परि प्रासिष्यदत्— यह सोम छाननीसे छाना जाता है । छाननीका नाम " दशापवित्र " है, इस दशा-पवित्रमें यह रस नीचे बर्तनमें पड़ता है ।

[ १ ]

मय दष्टप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्गः ॥ ६ ॥

( १-१० ) १, ८, ९ अमहीपुरागिरस, २ बृहन्मतिराद्गिरसः; ३ जमदनिर्मर्गयः; ४ प्रभूवसुरागिरसः; ५ सेष्या-

तिभिः कण्व, ६, ७ निद्रुभिः कात्यय; १० उषष्य जागिरसः ॥ पयनातः सोमः ॥ तायपी ॥

४८७ उपा पु जातमपुत्रं गोभिर्मङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अपासिपुः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।।१३ )

४८८ पुनानो अक्रमीदामि विश्वा मृषो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विमं धीतिभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।।१४ )

४८९ आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नामि श्रियः । इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।६।।१५ )

४९० असाजिं रथो यथा पवित्रे चर्मोः सुतः । काण्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।६।।१६ )

४९१ प्र यद्वातो न भूर्णयस्त्वेषा आषासो अक्रमुः । मन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ ५ ॥

( ऋ. १।६।।१७ )

४९२ अपमन्पवसे मुधः क्रतुवित्साम मरसरः । नुदस्वादिवसुं जनम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।६।।१८ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ४८७ ] ( सु-जातं ) उत्तम पीतिते तंयार किये हुए ( अपुत्रं ) पानोमें मिलाये हुए ( अंगं ) दायुको मारने-  
पाते ( गोभिः परिष्कृतं ) गायके दूधमें मिले हुए ( इन्दुं ) सोमरसके पास ( देवाः उप अपासिपुः ) देव पढ़वे ॥ १ ॥सोमरस निकालनेके बाद ( अपु-त्रं ) उत्तम पानो मिलाया जाता है, ( गोभिः परिष्कृतं ) उसमें गायका  
दूध मिलाया जाता है, और यह ( अङ्गं ) दायुको मारनेवालोंका उताहा घटानेवाला होता है । उसके पास सोमरस  
पीनेको इच्छासे देव आते हैं ।[ ४८८ ] ( विचर्षणिः ) मान बढानेवाला ( पुनानः ) पवित्र हुआ सोमरस ( विश्वाः मृषः अभ्यक्रमीत् )  
सब दायुओंपर आक्रमण करता है, ( श्रियं ) उस मान बढानेवाले सोमको श्रविकृ ( धीतिभिः शुम्भन्ति ) लोभप्रति  
सुगोभित करते हैं ॥ २ ॥सोमरस पीनेके बाद उताहा बढता है, उस रसको छानकर पीनेसे सब दायुओंपर आक्रमण करनेका बल  
पडता है । उस सोमरसके निकालनेके समय मन्त बोले आते हैं इस कारण वे और अधिक सुगोभित होने हैं ।[ ४८९ ] ( सुतः ) सोमरस निकालनेके बाद ( कलशं आविशन् ) बलामें भरनेके समय ( विश्वाः धियः  
अभ्यर्षन् ) सब सोमकोंके बढानेवाला ( इ-न्दुः ) यह सोमरस ( इन्द्राय धीयते ) इन्द्रके लिए बिपद जाता है ॥ ३ ॥[ ४९० ] ( यथा रथोः ) जिस प्रकार रथका घोडा छोडा जाता है, उस प्रकार ( चर्मोः सुतः ) को लकड़ियोंके  
पट्टीसे निघोडा गया यह सोमरस ( पवित्रे असाजिं ) छाननेके बर्तनमें छोडा जाता है, इस प्रकार यह ( याजी )  
बलवान् सोमरस ( काण्मन् न्यक्रमीत् ) देवोंको आशयित करने लगता है और बर्तनमें भरा रहता है ॥ ४ ॥[ ४९१ ] ( यद् भूर्णयः ) जो पीछला करनेवाले ( त्वेषाः अपासः ) तेराथो और मान करनेवाले सोम भवतो  
( काण्मन् त्वचं ) बानी चर्मोंको ( अपमन्पवसे ) दूर करते हुए मनुको ( प्र अभ्यसुः ) आक्रमण करते हैं । ( गायः न )  
गायें जिस प्रकार बार्सेमें जाती हैं, उनी प्रकार सोमरस यकमें जाता है और यह करता है ॥ ५ ॥सोमरसके ऊपरको बानी पण्डो पाएगे छाननेसे दूर हो जायेंगे, और यह सोमरस छाननेके मोर्चे रसे बर्तनमें  
छाना जाता है । घट्टीके यह पण्डासामें जला है, और धाजरीको आये भावें करनेके लिए प्रवृत्त करता है ।[ ४९२ ] हे सोम ! ( मन्-सतः ) आग्रह बढानेवाला और ( क्रतु-विद् ) कामकी पण्डित जलनेवाला तू ( मृषः  
अपमन् ) दायुओंको दूर करते हुए ( पयसे ) पवित्र होगा है, तू ( मन्-देव-सुं ) जन्म सुदरय्य देवकी पवित्र न  
करनेवाले मनुष्योंको दूर कर ॥ ६ ॥

४९३ अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचया । हिन्वानो मातुपीरपः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।६।६ )  
 ४९४ स पवस्व य आविष्येन्द्र वृषाय इन्तवे । वमिवा ससं महोरपः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।६।१२ )  
 ४९५ अया वीती परि स्व यस्त इन्द्रा मदेध्या । अवाइवतीनेव ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।६।११ )  
 ४९६ परि सुक्ष्म सनद्रमि भरद्वाजो नो अन्वसा । खानो अपे पवित्र आ ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।६।११ )  
 इति प्रथमा वसतिः ॥ १ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ ख० ९।७०६।पा० ३५।तु ॥ ]

[ २ ]

( १-१४ ) १ मेधातिथिः काण्यः; २, ७ भृगुर्वाचिर्जनमग्निर्मान्वा वा; ३ उच्यते माङ्गिरसः; ४ अवाइवः काश्यपः ।  
 निभूयिः काश्यपः; ५, १० अतितः काश्यपो देवलो वा; ८, ९ काश्यपो भारोचः; ११ कविर्मान्वा;  
 १२ जमवन्निर्मान्वा; १३ जयाम्य आगिरसः; १४ अमहोयुतागिरतः ॥ पवमानः सोमः ॥ पाथ्यो ॥

४९७ अचिक्रद्द्रुषा हरिमैहान्मित्रो न दक्षतः । स सूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२।६ )

१ अद्यैद्युं जनें सुदस्य — देवको भक्ति त करनेवाले मनुष्यको दूर कर ।

२ सुद्यः अपच्यन् — प्रायुको नष्ट कर ।

३ प्रवसे — तुझे शुद्ध किया जाता है, तुझे छाता जाता है ।

[ ४९३ ] हे सोम ! ( मातुपीः अपः हिन्वानः ) मनुष्योंके लिए हितकारी पानीको प्रेरणा देते हुए ( यया सूर्य अरोच्यः ) जित प्रकार तूने सूर्यको प्रकाशित किया, ( अया पवस्य ) उतरी पाराले नीचेके बर्तनमें छनता हुआ तू जा ॥ ७ ॥

पानी मनुष्योंका हित करनेवाला है, उस पानीको सोमरसमें मिलाया जाता है; तब वह रस और अधिक धमकने लगता है, ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वह सूर्यको भी प्रकाशित करता हो, ऐसा यह सोमरस नीचेके पात्रमें छाना जाता और भरा जाता है ।

[ ४९४ ] हे सोम ! ( महीः अपः वमिवांस् ) महान् जल प्रवाहोंको अपने अधिकारमें रखनेवाले ( वृषाय इन्तवे ) वृषको भारनेके लिए ( इन्द्रो आविष्य ) इन्द्रको उत्साहित कर और ( सः पवस्य ) वह तू नीचे बर्तनमें छनता जा ॥ ८ ॥

वृषने जल प्रवाहोंको रोक दिया था, इन्द्रने वृषको भारकर जल बहाया । इस इन्द्रका उत्साह सोम पीनेसे ही बढ़ा था । वृषका अर्थ है मेघ । इन्द्र मेघोंको तोड़ता है और पानी बहाता है । भरसात होती है ।

[ ४९५ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( अया वीती परि स्वय ) इस प्रकार इन्द्रकी सोम पिलानेके लिए तू कलयने छन । ( ते यः ) तेरा यह रस ( मदेधु ) सज्जाममें ( जयतीः नय अवाइव ) प्रायुके निष्पलने तबर्तनको तोड़नेके लिए इन्द्रको क्षामय्यांकी बनाता है ॥ ९ ॥

[ ४९६ ] ( सुक्ष्मं ) तीजरी और ( सनद्रमि ) देने योग्य पत्तोंकी और ( वाजं ) बलनी ( अन्वसा नः परि भरद् ) अपने अंगरूपी रससे हममें बड़ा तप ( खानाः पवित्रे आ अपे ) रस निष्पलनेके बाद ताक होकर पात्रमें भरा रह ॥ १० ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ४९७ ] ( वृषा इति ) बलवान् और हरे रंगका तथा ( महान् मित्रः न ) महान् मित्रके समान ( दक्षतः ) दक्षनीय सोम ( अचिक्रद्द्रु ) शब्द करता है, ( सूर्येण सं दिद्युते ) और सूर्यके समान प्रकाशित होता है ॥ १ ॥  
 सोमरस धमकता है और उसके रस निष्पलनेका शब्द भी होता है ।

- ४९८ आ त दक्षं मयोभुवं वद्विमघा वृषीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १६११८ )
- ४९९ अध्वर्यो अग्निभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातये ॥ ३ ॥ ( ऋ. १६११९ )
- ५०० तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ( ऋ. १६१२१ )
- ५०१ आ पवस्व सहस्रिणं रथिं सोम सुवीर्यम् । अस्मे अर्वांसि धारय ॥ ५ ॥ ( ऋ. १६३११ )
- ५०२ अनु प्रज्ञास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १६३१२ )
- ५०३ अया सोम द्युमत्समाऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्त्योनौ वनेष्वा ॥ ७ ॥ ( ऋ. १६१११९ )
- ५०४ वृषा सोम द्युमां अंसि वृषा देव वृषम्रतः । वृषा धर्माणि दग्धिषे ॥ ८ ॥ ( ऋ. १६३११ )
- ५०५ इयं पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्द्रो रुचाभि गा इहि ॥ ९ ॥ ( ऋ. १६३११३ )

[ ४९८ ] हे सोम ! ( ते ) तेरे ( मयो-भुवं ) मुख देनेवाले ( वद्विं ) घन यदि देनेवाले, ( पान्ते ) सन्तुष्टि रक्षा करनेवाले और ( पुर-स्पृहं ) अनेक लोगों द्वारा पाहने योग्य ( दक्षं ) बलको हम ( अध आवृषीमहे ) धान धारण करते हैं ॥ २ ॥

[ ४९९ ] हे ( अध्वर्यो ) अश्वर्यु ! ( अग्निभिः सुतं सोमं ) पत्परीति कूलकर निकाले गए सोमरसको ( पवित्रे आनय ) छाननेके बनेके पास ला ( इन्द्राय पातये ) इन्द्रको मिलानके लिए ( पुनाहि ) उसे छानकर पवित्र कर ॥ ३ ॥

[ ५०० ] ( सुतस्य अन्धसः धारा ) सोमरसरूपी अम्ररसको धारा ( मन्दी ) आनन्द देनेवाली है, ( सः तरत् ) वह सोम नीचभावके दूर रहता है और वह ( धावति ) प्रगति करता है ॥ ४ ॥

सोमरसको पीनेके बाद उत्साह बढ़ता है और उस कारण यह उत्तम काम करने लगता है ।

[ ५०१ ] ( सोम ) हे सोम ! ( सहस्रिणं सुवीर्यं रथिं ) हजारों प्रकारके उत्तम शक्ति बढ़ानेवाले धन ( आ पवस्व ) हमें दे, और ( अस्मे ) हमें ( अर्वांसि धारय ) अन्न दे ॥ ५ ॥

[ ५०२ ] ( प्रज्ञासः आयवः ) प्राचीन लोगोंके ( नवीयः पदं ) नवीन उत्तम स्थान ( अनु अक्रमुः ) प्राप्त किया और ( रुचे ) तेजको प्राप्त करनेके लिए ( सूर्यं ) सूर्यके समान तेजस्वी सोमको ( जनन्त ) उत्पन्न किया ॥ ६ ॥

सूर्य— सूर्यके समान तेजस्वी दीखनेवाले सोमरसको निवाता ।

[ ५०३ ] हे ( सोम ) सोम ! ( द्युमत्समाऽभि द्रोणानि ) पारस्ये ( रोरुवत् ) अर्धे क्षम्य करता हुआ छलता जा, ( वनेषु योनौ आसीदन् ) और तू वनमें और घनसालमें रह ॥ ७ ॥

सोमरसको छानते समय शब्द होता है, उस समय वह बहुत क्षमकला है, जनोंमें घनसालमें बनते हैं, उत्तम यह सोमरस तैम्पार किया जाता है ।

[ ५०४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृषा द्युमान् अंसि ) तू बलवान् और तेजस्वी है, हे ( देव ) सोमदेव ! तू ( वृषा वृषम्रतः ) बलवान् और बल बढ़ानेके मतका पालन करनेवाला है । ( वृषा धर्माणि दग्धिषे ) बल बढ़ानेवाले पशुको तू धारण करता है ॥ ८ ॥

[ ५०५ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( मनीषिभिः मृज्यमानः ) सान्नी शक्तिवर्ती द्वारा छाना जाता हुआ तू ( इये धारया पवस्व ) अमररसको प्राणिके लिए धारये छलता जा, ( रुचा ) तेजसे ( गाः अग्नि इहि ) गव्योंको शान्त हो ॥ ९ ॥

श्रद्धिज रस निकालते हैं, और यह रस छाया जाता है, बादमें—

१ गाः अग्नि इहि— गायको प्राप्त हो । गायका दूध उत्तम मिलता है । गायको प्राप्त होनेका कर्म है, सोममें गायका दूध मिलाना । ( रुचा ) यह सोमरस क्षमकला है ।

- ५०६ मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अद्या वारिभिरस्मयुः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।६।१ )  
 ५०७ अया सोम सुकृत्यया महान्सन्नम्यवर्षयाः । मन्द्रान् इद्रुपापसे ॥ ११ ॥ ( ऋ. १।४।१ )  
 ५०८ अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान् आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥ ( ऋ. १।६२।१० )  
 ५०९ प्र न इन्दो महं तु न ऊर्मि न बिभ्रदर्षसि । अभि देवा अयास्यः ॥ १३ ॥ ( ऋ. १।४४।१ )  
 ५१० अपघ्नन्पवते मृषोऽप सामा अराण्यः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १४ ॥ ( ऋ. १।६।१२९ )  
 इति त्रितीया इति ॥ २ ॥ अतुषेः खण्डः ॥ ४ ॥ [ ख० १५ । उ० २ । पा० ५७ । को ॥ ]

इति पापय्य ॥

[ ३ ]

( १-१२ ) सवर्षयः ( १ मन्द्रानो बार्हेत्यय, २ मन्द्रयो भारीय, ३ मोततो राहूयण, ४ अग्निर्भूमि; ५ विश्वा-  
 मिथो गार्गिन; ६ जमदग्निर्भार्गिभ्यः; ७ वृत्तिवो मंत्राधर्षण ) ॥ पवमान सोम ॥ बृहती ॥

५११ पुनानः सोम धारयापो पतानो अर्षसि ।

आ रत्तधा योनिमृत्स्य सीदस्वस्तो देवो हिरण्ययः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०७।४ )

[ ५०६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृषा ) बल बढ़ानेवाला ( देव-युः ) देवताओंको प्राप्त होनेवाला ( असा-  
 युः ) हमें मिलनेवाला ( अद्यया ) सरलण करनेवाला तू ( धारैभिः ) बालोंको छाननीसे ( मन्द्रया धारया पवस्व )  
 सानन्द देनेवाली धारसे शुद्ध हो ॥ १० ॥

१ धारैभिः— बालोंको छाननी, बगपवित्र, इस छलनीसे सोमरस छाना जाता है ।

२ देव-युः— छान कर देवोंको पीनेके लिए दिया जाता है ।

३ असायुः— बारम्बे श्रावित भी पीते हैं ।

[ ५०७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अया सुकृत्यया ) इस उत्तम कार्यसे तू ( महान् सन्न ) सम्मानके योग्य  
 होकर ( अम्य-वर्षयाः ) महान् होता है, ( मन्द्रानः इत् ) अजान् शेर ( वृषापसे ) बल बढ़ाता है ॥ ११ ॥

सोम स्वयं सम्माननीय है, और यह इतरोंको भी अधिक बलवान् करता है ।

[ ५०८ ] ( वि-चर्षणिः ) विशेष जान बढ़ानेवाला ( हितः पवमानः ) पावमें भरा हुआ और शुद्ध किया  
 हुआ ( अयं ) यह सोमरस ( आप्यं ) जलसे किञ्चित् होकर ( बृहत् हिन्वान् ) बहुत अन्न बैठा हुआ ( सचेतति )  
 प्रसिद्ध होता है ॥ १२ ॥

[ ५०९ ] ( इन्दो ) हे सोम ! ( नः ) महे तु न ) हमें बहुत धन मिले, इसके लिए ( प्र अर्षसि ) तू कलशमें  
 छाना जाता है । ( अयास्यः न ) अयास्य श्रावित ( ऊर्मि विभ्रत् ) तेरी लहरोंको घाटन करते हुए ( देवान्  
 अभिः ) देवोंको पूजा करनेके लिए जाता है ॥ १३ ॥

अयास्य श्राविते सोमरस छान लिया है, और अब वह अपने पराक्रम करनेके लिए जाता है ।

[ ५१० ] ( सोमः मृधः अपघ्नन् ) सोम बगुनोंको मारता है, ( अराण्यः ) रान न देनेवालोंको भी मारता है,  
 और ( इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् ) इन्द्रके स्वामिके पास जाता हुआ ( पधते ) छनता है ॥ १४ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ५११ ] हे ( सोम ) सोम ! ( पुनानः ) पवित्र होते हुए ( अपः यसानः ) पानीसे मिलते हुए ( धारया  
 अर्षसि ) धारसे तू नीचेके चर्तनमें गिरता है, ( रत्त-धा ) रत्न-धान-देनेवाला तू ( मृत्स्य योनि ) यत्नके स्थानपर  
 ( आसीदसि ) आकर बैठता है, और ( देवः ) प्रकाशित होकर ( हिरण्ययः ) उत्सव ) भगवती हुए बहता है ॥ १ ॥

- ५१२ परीतो विञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।  
दधन्वां यो नर्यो अप्सवारैन्तरा सुपाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१ )
- ५१३ आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यप्यथा ।  
जनां न पुरि चम्प्योविशद्भिरिः सदा घनेषु दध्रिये ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१० )
- ५१४ प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अणसा ।  
अश्रोः पयसा मदिरां न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१२ )
- ५१५ सोम उ व्वाणः सौवृभिरधि ष्णुभिरवीनायु ।  
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०७।८ )
- ५१६ तवाहं साम रारण सख्ये इन्द्रो दिवेदिवे ।  
पुरूणि घञो नि चरन्ति मामघ परिधींश्चरति तांश्इहि ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१९ )

[ ५१२ ] ( यः सोमः उत्तमं हविः ) जो यह सोम है, वह उत्तम हवि है । ( नर्यः ) वह मनुष्योंका हित करनेवाला है, ( यः अप्सु अन्तः दधन्वान् ) जो पानीमें मिला हुआ है, ऐसा ( सोमं अद्रिभिः सुपाव ) यह सोमका रस पत्थरसे कूटकर घनमान द्वारा निकाला गया है । हे ऋत्विजो ! इस ( सुतं इतः परिञ्चत ) सोमरसमें पानी मिलाओ ॥ २ ॥

[ ५१३ ] हे ( सोम ) सोम ! तेरा ( अद्रिभिः स्वानः ) पत्थरसे कूटकर निकाला हुआ रस ( अन्यथा वाराणि तिरः ) भेड़ोंके बालोंकी छलनीसे नीचेके पायमें छाना जाता है, ( हरिः चम्प्योः ) हरे रणका यह रस घनमें ( पुरि जनः न ) नगरीमें मुख्य जंगे प्रवेश करते हैं, उस प्रकार ( विशाव् ) प्रविष्ट होता है, और ( घनेषु सदा दध्रिये ) लकड़ीके बर्तनमें अपने स्थान पर रहता है ॥ ३ ॥

१ घन—जागल, जगलमें होनेवाले घुनोंकी लकड़ी, लकड़ीके बर्तन ।

[ ५१४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( त्वं देव-वीतये ) तू देवोंके पीनेके लिए ( सिन्धुः न ) सिन्धु नदीके समान ( अणसा अपिप्ये ) पानीसे मिश्रित किया जाता है । ( मदिरा न जागृधिः ) तू आनन्ददायक होनेके साथ साथ जागृति उत्पन्न करनेवाला भी है, तू ( अश्रोः पयसा ) बर्तनमें पानीसे मिलाकर ( मधुश्चुतं कोशं अच्छ ) नीचे रणको उदकनेवाले बर्तनमें जा ॥ ४ ॥

[ ५१५ ] ( सौवृभिः स्वानः ) रस निचोड़नेवाले पात्रकोंके द्वारा निचोड़ा गया ( सोमः ) सोमरस ( अवीनां स्तुभिः ) धरतीके बालोंकी बनी छलनीसे शुद्ध होकर ( अधि याति ) नीचे बर्तनमें पड़ता है, ( उ ) यह सत्य है, ( अश्वया इव ) घोड़ोंके समान ( हरिता धारया याति ) हरे रणकी धारसे यह सोम बर्तनमें जाता है, ( मन्द्रया धारया याति ) मानन्ददायक धारसे यह बर्तनमें जाता है ॥ ५ ॥

[ ५१६ ] हे ( इन्द्रो सोम ) सोमरस ! ( त्व ) तेरी ( सख्ये ) मित्रतामें ( दिवे दिवे अहं ) प्रतिरिक्त मैं ( रारण ) आनन्दित होऊँ, ( घञो ) हे सोम ! ( पुरूणि प्रां न्यचरन्ति ) बहुतसे दुष्ट मनुष्य मुझे कष्ट देते हैं, ( तान् परिधीन् अतोहि ) उन दुष्टोंको नष्ट कर ॥ ६ ॥

- ५१७ मज्जमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।  
रयि पिशङ्गं बहुलं पुरुषग्रहं पवमानाम्यर्षति ॥ ७ ॥ ( ऋ २।१०७।२१ )
- ५१८ अभि सोमास आयवः पवन्ते मघं मदम् ।  
समुद्रस्त्राधि विष्टये मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ ८ ॥ ( ऋ २।१०७।१४ )
- ५१९ पुनानः सोम जागृविरव्या वारिः परि भियः ।  
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मघ्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥ ९ ॥ ( ऋ २।१०७।६ )
- ५२० इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुतव्ये सुतः ।  
सहस्रधारो अत्यव्यर्षति तमो मृजन्त्यायवः ॥ १० ॥ ( ऋ. २।१०७।१७ )
- ५२१ पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि धार्यो ।  
त्वष्टं समुद्रः प्रथमं विश्वमं देवेभ्यः सोम मत्सरः । ॥ ११ ॥ ( ऋ २।१०७।२१ )

[ ५१७ ] हे ( सु-हस्त्या ) उत्तम हाथोंकी अगुलिते निकलते गये सोम ! ( मज्जमानः ) पवित्र करनेवाला तू ( समुद्रे वाचं इन्वसि ) नीचे पानीके यत्नमें पकता हुआ शब्द करता है, हे ( पवमानः ) शुद्ध होनेवाले सोम ! तू ( पिशंगं ) पीले रंगके ( बहुलं पुरु-ग्रहं रयिं ) बहुत बाहने योग्य धन ( अभ्यर्षति ) देता है ॥ ७ ॥

१ समुद्रः— पानीके भरे हुए यत्न ।

२ पिशंगं रयिं— पीले रंगका सोना, सोनेके निकले ।

[ ५१८ ] ( आयवः मनीषिणः ) मनुष्योंका हित करनेवाले, ज्ञान बढ़ानेवाले ( मत्सरासो मदच्युतः सोमासः ) आनन्द देनेवाले, छाननीसे पीचे बिरनेवाले सोमरस ( समुद्रस्य विष्टये अधि ) पानीके भरे हुए शक्तसे ( मघं मदं ) आनन्द देनेवाले अपने रसको ( अभि पवन्ते ) साफ करके छोड़ते हैं ॥ ८ ॥

[ ५१९ ] ( जागृविः भियः पुनानः ) उस्ताही, धिय और शुद्ध होनेवाला तू ( मघ्वाः धारिः परि ) धरतीके बालोंकी छलनीसे पीचे गिरता है, हे ( अंगिरस्तम ) अंगिरसोंमें श्रेष्ठ सोम ! तू ( विप्रः ) ज्ञानो, ( अभयः ) ड्रया है, अत अब तू ( नः धर्मं ) हमारे यत्नको ( मघ्वा मिमिक्ष ) मयूर रसके पवित्र कर ॥ ९ ॥

[ ५२० ] ( मदः सुतः सोम ) आनन्ददायक निबोडा हुआ सोम ( मरुतव्ये इन्द्राय पवते ) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रके लिए शुद्ध होता है, आइये यद ( सहस्र-धारः ) अनेक पारामीसे ( अत्यं अत्यर्षति ) धरतीके छलनीसे छनता है, ( तं ) उसे ( आयवः मृजन्ति ) ऋत्विज शुद्ध करते हैं ॥ १० ॥

[ ५२१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( विश्वानि धार्यो ) सब स्तोत्रोंमें पवित्र हुआ और ( अभि ) मुझ रूपसे ( वाज-सातमः ) अत्र प्राप्त करनेवाला तू ( पवस्व ) शुद्ध हो, हे सोम ! ( देवेभ्यः मत्सरः ) देवताओंसे आनन्द देनेवाला तू ( समुद्रः ) पानीके शीघ्रमें निकलकर ( विधर्मन् ) विशेष मृगयामें मूकत होकर ( प्रथमे ) श्रेष्ठ यत्नमें पवित्र हो ॥ ११ ॥

२१ ( साम हिर्यो )



५२२ पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।

मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया ह्या मेधामभि प्रयाशसि च ॥ १२ ॥ ( ऋ १।१०।७।२९ )

इति तृतीया दशति ॥ ३ ॥ पञ्चम खण्ड । ५ ॥ इति बृहस्प ॥ स्व० १९।३० ३ । पा ९१।१ व ॥

[ ४ ]

( १-१० ) १, ९ उजाना काण्ड, २ यूपगणो वासिष्ठः; ३, ७ पराशर शाकल्यः; ४, ६ यतिष्ठी मंत्रावरुणि; ५, १० प्रतर्दनी देवीदासि; ८ प्रस्कन्व काण्ड ॥ पवमान सोमः ॥ विष्टुप् ॥

५२३ म तु द्रव परि कोशे नि पीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्प ।

अथ न त्वा वाजिनं मज्जयन्तोऽच्छा वेदीं रशनाभिनेयन्ति ॥ १ ॥ ( ऋ १।८।७।१ )

५२४ म काण्यमुशनेव जुवाणा देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

महिध्रतः शुचिचन्द्रुः पावकः पदा वराहो अश्मति रेगन् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।७।७ )

५२५ तिष्ठो वाच ईरयति प्र वहिर्भ्रतस्य धीति ब्रह्मणो मनीषाम् ।

मावो यन्ति सोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।९।७।३४ )

[ ५२२ ] ( मरुत्वन्तः ) मरुतोति युक्त ( मत्सराः ) जलान् वेनेवाले ( इन्द्रियाः ) इन्द्रको वाहनेवाले, ( मेधां प्रयासि ) स्तुति और अन्नको ( अभि ) सामने रखनेवाले ( ह्याः पपमानाः ) यज्ञमें जानेवाले और शुद्ध होनेवाले सोमरस ( धारया पवित्रं असृक्षत ) धारके रूपमें छाननीमेंसे नीचे गिरने लगते हैं ॥ १२ ॥

॥ यहाँ पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ ५२३ ] हे सोम ! ( तु द्रव्य ) तू शीघ्र जा, और ( कोश परि निपीद ) बर्तनमें जाकर रह, ( नृभिः पुनानः ) याजकीं द्वारा शुद्ध किए जानेके बाद ( वाजं अभ्यर्प ) अन्न यजमानको दे, ( वाजिनं अथ न ) बलवान् पीडेको जैसे दूध करते हैं, उसी प्रकार ( त्वा मज्जयन्तः ) तुझे शुद्ध करनेवाले अतिव्रत ( रशनाभिः वेदीं अच्छ नयन्ति ) अगुलियेति यज्ञ स्थानके पास तुझे छिजते हैं ॥ १ ॥

[ ५२४ ] ( उजाना इव ) उजाना ऋषिके समान ( काण्यं जुवाणः ) स्तोत्र बोलनेवाला ( देवः ) स्तोत्र ( देवानां जनिमा प्र विवक्ति ) देवोंके जन्म वृत्तान्तोंका वर्णन करता है । ( महिध्रतः शुचिचन्द्रुः पावकः ) महान् धत करनेवाला, शुद्ध तेजसे युक्त और शुद्ध करनेवाला ( वराहः ) उतार अष्ट विनमें निकाला हुआ सोमरस ( रेगन् यदा अभ्येति ) शब्द करते हुए यात्रमें जाता है ॥ २ ॥

[ ५२५ ] ( वाचि- ) हवि लेजानेवाला यजमान ( तिष्ठः वाच- ) ऋक्, यजु, साम इन तीनोंसे स्तुति ( प्रेरयति ) करता है, ( भ्रतस्य धीति ) यज्ञको धारण करनेवाली ( ब्रह्मणः मनीषां ) ज्ञानसे की गई स्तुति वह बोलता है, ( सोपतिं वाच यन्ति ) बेलके पास जैसे गावें जाती हैं, उसी प्रकार ( पृच्छमानाः वाचयानाः ) पृच्छा करनेवाले, इच्छा करनेवाले तथा ( मतयः ) स्तुति करनेवाले ( सोमं यन्ति ) सोमके पास जाते हैं ॥ ३ ॥

१ पृच्छमानाः— श्रेष्ठताका विचार करनेवाले ।

२ वाचयानाः— मुलकी इच्छा करनेवाले ।

३ मतयः— बुद्धिमान्, स्तुति करनेवाले ।

४ सोमं यन्ति— सोमयागमें जाते हैं ।

- ५२६ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।  
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेष सद्य पशुमन्ति होता ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।९।७।१ )
- ५२७ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवा जनिता पृथिव्याः ।  
जनितामजनिता ह्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितीत विष्णोः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९।६।९ )
- ५२८ अग्निं त्रिपुष्टं वृषणं व्योषामह्नापियमवावशन्त वाषीः ।  
वना वसानो घृणा न सिन्धुवि रक्षधा दयते चायीणि ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।९।०।२ )
- ५२९ अक्रांसमुद्रः प्रथमं विधर्मं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।  
पृषा पवित्रं अग्निं सानो अघ्यं वृहत्सोमो वावृषे स्वानो अद्रिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।९।७।४० )

[ ५२६ ] ( अस्य प्रेषा ) इस यज्ञका प्रेरक ( हेमना पूयमानः ) सुवर्णसे पवित्र हुआ ( देवः रसं ) दिव्य सोमरस ( देवेभिः समपृक्त ) देवोंसे दिया जाता है, ( सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति ) निचोमा हुआ यह सोमरस छाननेसे वर्तनमें निरस्ता है । ( होता मितः ) हवन और मत करनेवाला तथा ( पशुमन्ति सद्य इव ) गोपोंको रखनेवाला जैसे यज्ञयागमें जाता है, उसी तरह सोमरस वर्तनमें छाना जाता है ॥ ४ ॥

१ द्विरण्यपायिः अभिपुणोति— ( सा० भा० ) सोनेकी अपूर्णो पहने हुए हाथसे सोमरस निचाला जाता है ।

[ ५२७ ] ( मतीनां जनिता ) बुद्धिको उत्पन्न करनेवाला ( दिवः जनिता ) घुनीचकी उत्पन्न करनेवाला ( पृथिव्याः जनिता ) पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाला ( अग्नेः जनिता ) अग्निको उत्पन्न करनेवाला ( सूर्यस्य जनिता ) सूर्यको उत्पन्न करनेवाला ( इन्द्रस्य जनिता ) इन्द्रको उत्पन्न करनेवाला । उन विष्णोः जनिता और विष्णुको उत्पन्न करनेवाला ( सोमः पवते ) सोम पवित्र किया जा रहा है । छाना जा रहा है ॥ ५ ॥

सोमयाग प्रारम्भ होनेपर देव आते हैं । इसलिए सोमको यहाँ देवोंका छानेवाला या प्रेरक बताया है, उसीकी आलंकारिक भावामें देवोंको उत्पन्न करनेवाला कहा है ।

[ ५२८ ] ( त्रि-पुष्टं ) तीन स्थानोंमें रहनेवाले, ( वृषणं व्योष-धां ) मलवान् और अन्नदाता सोमकी ( अंगो-पिणं ) ऊँचे स्वरसे ( वाषीः वाटशान्त ) स्तोत्राकी वाणियों स्तुति करती है । ( सिन्धुः दारुणः न ) जैसे पानीमें घरण रहता है, उसी तरह ( वना वसानः ) पानीमें मिला हुआ सोम ( रक्ष-धा ) रक्ष और ( चायीणि दयते ) पन स्तोत्राओंकी देता है ॥ ६ ॥

[ ५२९ ] ( ससमुद्रः ) जलमें मिला हुआ ( यो-धाः ) गोपोंका पालन करनेवाला, ( पृषा ) बल बढ़ानेवाला ( स्वान ) रस निकाला हुआ सोम ( प्रथमं ) पहलें ( भुवनस्य विधर्मन् ) प्रजाओंको उत्साह देते हुए ( प्रजाः जनयन् ) प्रजाजननी उन्नति करते हुए ( अक्रान् ) सखसे बँट हो गया है ॥ ७ ॥

१ गोपाः— गायका पालन करनेवाला, सोमरसमें गो दूध मिलाते हैं, इसलिए सोम गोपोंकी पालनेवाला है ।

२ भुवनस्य विधर्मन्— भूवतमें प्राणियोंका उत्साह बढ़ाता है ।

३ प्रजाः जनयन्— प्रजाओंमें उत्साह बढ़ाता है ।

- ५३० कनिक्कन्ति हरिरा सज्यमानः सीदन्वचस जठरे पुनानः ।  
 नुमियतः कृणुते निर्गिजे गामता मति जनयत स्वधाभिः ॥ ८ ॥ ( ऋ ९।१९।१ )
- ५३१ एष स्य ते मधुमां इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः ।  
 सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बहिरा वाजयस्थात् ॥ ९ ॥ ( ऋ ९।८।७४ )
- ५३२ पवस्व सोम मधुमां ऋतावापां चसानां अधि सानो अव्यं ।  
 अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ १० ॥ ( ऋ ९।१६।११ )
- इति चतुर्थो दशति ॥ ४ ॥ षष्ठं खण्ड ॥ ६ ॥ [ स्व० १८। उ० ३। पा० ८७। के ॥ ]

[ ५ ]

( १-१२ ) १ प्रतदंनो देवोवाप्ति, २, १० परासार. शाक्य, ३ इन्द्रप्रपतिर्वासिष्ठ, ४ वसिष्ठो मंत्राववधि, ५ कण्वधुद्रासिष्ठ, ६ गोपा मोतम, ७ कण्वो घोर, ८ मन्वृवासिष्ठ, ९ कुस्त आङ्गिरसा, ११ कश्यपो मारीच ;  
 १२ प्रसक्य काण्व ॥ पवमान सोम ॥ विष्टुम् ॥

- ५३३ प्र सेनानीः शूरा अग्रे रथानां गन्वन्तेति हृषते अव्यं सेना ।  
 भद्रान् कृष्णन्निन्द्रहर्वांसिस्त्रियम् आ सामो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१९।१ )

[ ५३० ] ( आ सृज्यमानः ) रस निकाले जानेवाला ( हरिः ) हरे रणका सोम ( वसिष्ठमिति ) शब्द करता है, छात्रते गाम्य उसका शब्द होता है, ( पुनानः ) पवित्र किया जाता हुआ ( वनस्य जठरे सीदन् ) वनकी लकड़ीसे तैय्यार किए गए बर्तनमें पड़ता हुआ ( नुभिः यतः ) मनुष्यों द्वारा दयाकर निकाला गया सोम ( गां निर्गिजे कृणुते ) गायके दूधका रूप धारण करता है। गो दुग्धमें वह मिलाया जाता है। इसकी ( मतिं स्वधाभिः जनयत ) स्तुति हविष्यारुके साथ यज्ञकर्ता करते हैं ॥ ८ ॥

[ ५३१ ] हे इन्द्र ! ( वृष्ण. ते ) बल बढ़ानेवाले तेरा ( एषः स्य ) यह वह सोम ( मधुमान् वृषा ) मोठा और बलवान् होकर ( पवित्रे पर्यक्षाः ) बर्तनमें टपकता है, उसी प्रकार वह ( सहस्रदा शतदा ) हजारों और सैकड़ों और ( भूरिदावा ) बहुतता धन देनेवाला ( चाजी ) बलवान् सोम ( शश्वत्तमं बहिः ) निरंतर चलनवाले यज्ञमें जाकर ( वस्थात् ) पड़ता है ॥ ९ ॥

[ ५३२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमान् ) मोठा वृ ( अप. वलान ) पानीमें भिलकर ( अधि सानोः ) अग्रे पवस्व ) ऊचे स्थानपर रणे हुए बकरीके घालकी छलनीसे छनता जा, उसके बाद ( मदिन्तम. ) आनन्ददायक और ( इन्द्र पान ) इन्द्रके पीने योग्य ( मत्सर ) आनन्द देनेवाला यह सोम, घृतवन्ति द्रोणानि ) जलयुक्त पात्रमें ( अघरोह ) जाकर रहता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमं खण्डः ।

[ ५३३ ] ( सेनानी. ) सेनको बलानेवाला ( शूरा सोम. ) शूर सोम ( गन्वन् ) गायको इच्छा करते हुए ( रथाना अग्रे ) रणके आगे ( प्रैति ) जाता है, ( अव्यं सेना हृषते ) इसकी सेना आनन्दित होती है । ( सस्त्रिय. ) मिश्रके लिए-पात्रकोके लिए ( इन्द्र-हवान् भद्रान् कृष्णन् ) इन्द्रकी आर्षनाको कल्याणकारी याते हुए ( रभसानि यत्रा आदत्ते ) तेजस्वी बर्तनोंको धारण करता है ॥ १ ॥

१ सेनानी — सेना, याजकोंका समूह ।

२ सोम गन्वन्- सोम गायकी इच्छा करता है। सोम कपनेमें गायका दूध मिलाया जाय, ऐसी इच्छा करता है ।

३ अरय सेना हृषते— सब याजकोंको आनन्द होता है ।

४ रभसानि यत्रा आदत्ते— तेजस्वी बर्तनोंको धारण करता है। दूध मिलानेके कारण वह तेजस्वी होता है ।

- ५३४ प्र ते धारा मधुमतीरसुमन्वारि पत्पूता अत्यस्पव्यम् ।  
पवमान पवसे धाम गोनी जनयस्स्येमपिन्वो अकेः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।३१ )
- ५३५ प्र गायताभ्यचाम देवात्सोमं हिनीत महते धनाय ।  
स्वादुः पवतामति चारमन्पमा सोदतु कलशे देव इन्दुः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।९।७४ )
- ५३६ प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाञ्छ सनिपन्नपासीत् ।  
इन्द्रं गच्छन्नायुषा सञ्शिशानो विश्वा वसु इस्तपोरादधानः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।९।०१ )
- ५३७ तक्षधदी मनसा वेनता वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं घृष्टारनीके ।  
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पति कलशे गात्र इन्दुम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।९।१२ )
- ५३८ साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धोरस्य धीतया धनुषीः ।  
हरिः पर्यद्रवज्जाा सूर्यस्य द्राघीं ननक्षे अत्थो न वाञ्छो ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१३।१ )

[ ५३४ ] ( यत् पूतः अर्घ्यं धारं अत्योषि ) जयं पवित्र होनेके लिए बकराके बालोंकी छलनीसे भीषे वर्तनमें गिरता है, तब ( ते मधुमतीः धाराः प्रासृजन् ) तेरी सीधी धारामें बहती है । हे ( पवमान ) पवित्र सोम ! ( धाम पवसे ) धूममें तू पवित्र होता है । ( जनयन् ) उत्पन्न होनेके बाद मानीं ( अर्कैः सूर्ये अल्पिन्यः ) तू जनने तेजसे सूर्यको घमकाता है ॥ २ ॥

१ धाम पवसे— अपने स्वानसे पवित्र होता है । तूय सोमना स्यात् है । सोममें तूय मिलाया जाता है ।

२ अर्कैः सूर्ये अल्पिन्यः— तेजसे सूर्यको पूर्ण करता है । सोमरत्न विशेष चमकने लगता है ।

[ ५३५ ] ( प्र गायत ) सोमको स्तुति करो, ( देवान् अभि अर्चामः ) देवोंको हम पूजा करें ( महते धनाय सोमं हिनीत ) बहुत धनकी प्राप्तिके लिए सोमको प्रेरित करो । ( स्वादुः अर्घ्यं धारं अति पवतां ) पवतात् यह मीठा रस बकातीने बालोंकी छलनीसे छाना गये ( देवः इन्दुः ) यह तेजस्वी सोमरत्न ( कलशं अति आसीदतु ) कलशमें भर रहे ॥ ३ ॥

[ ५३६ ] ( प्र हिन्वानः ) गति करनेवाला या यज्ञेवाला ( रोदस्योः जनिता ) धारापृषिकीका उपाहारक वह सोम ( इन्द्रं गच्छन् ) इन्द्रके पास जाता हुआ ( वाञ्छं सनिपन् ) अमकी सेवा है । ( आयुषा स शिशानः ) धारकोंको उत्तम रीतिसे तीक्ष्ण करता हुआ यह सोम ( विश्वा वसु इस्तपोरादधानः ) सब धन अर्पण रीतों द्वारासे पारण करता हुआ ( प्र अयासीत् ) हमें देनेके लिए आया है ॥ ४ ॥

[ ५३७ ] ( वेनतः मनसाः वाग् ) उच्चतमो इच्छा करनेवालेने मनमें विचारों द्वारा प्रेरित स्तुति ( यत् तक्षध् ) निस्सक्तों तैय्यार करती है, उस ( धर्मं ज्येष्ठस्य घृष्टोः अनानेः ) यज्ञके श्रेष्ठ हविषे पास सोमको प्रसंसा होती है, ( आ परं जुष्टं ) इतके बाद अगली तरह तैय्यार किए गए ( प्रति ) गालक बीर ( कलशे ) कलशमें रहनेवाले ( इ इन्दुः ) इस सोमके पास ( वावशानाः गात्रः आयन् ) इच्छा करनेवाली गर्भे आती है ॥ ५ ॥

यद्योर्षे सोमोर्षा गान होता है, सोम कुरुर उत्तमा रत्न निजालते है, वह बरतमें छाना जाता है, और अत्थं अत्थमें गात्रका रूप मिलाया जाता है । इस विधिवा यह आर्चकारिक वर्णन है ।

[ ५३८ ] ( साकं उक्षः स्वसारः ) एक जगह रहकर जायं करनेवाली बहिन-अभुषिणी ( मर्जयन्तः ) सोमको पृथक् करती हैं, वे ( दश धीतयः ) दश अभुषिणी ( धोरस्य घनुषीः ) दशधर्मवायु सोमको पारण करती और हिलती हैं । यह ( हरिः ) हरे रत्नय सोम ( सूर्यस्य जाः पर्यद्रव्यन् ) सूर्यके द्वारा उत्पन्न विद्यार्थियोंमें घुमाया जाता है । ( वत्यः यार्शी न ) वेगले सोमनेवाले धीरके सहाय यह सोम ( द्रोणं ननक्षे ) बलसेमें गिरता है ॥ ६ ॥

५३९ अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सुरं न विशाः ।

अपा वृषानः पवते कर्षीयान्ब्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।९४।१ )

५४० इन्दुवोजी पवते गान्योषा इन्द्रे सोमः सह इन्धन्मदाय ।

हन्ति रक्षो वाधते परिरति वरिवस्कृषन्वृजनस्य राजा ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।९७।१० )

५४१ अया पवा पवस्वेना वधुनि मा रक्षन्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।

ब्रध्नक्षिद्यस्य वातो न जूति पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।९७।१२ )

[ ५३९ ] ( अस्मिन् वाजिनि इव शुभः ) जिस प्रकार घोड़ोंको जेवर पहनाकर उसे सजाते हैं, उसी प्रकार ( सुरे विशाः न ) सुर्पकी किरणें उक्त सोमको शोभा बढ़ाती हैं, ( धियः अधि स्पर्धन्ते ) बुद्धिपूर्वक अगुलियां रस निकालनेमें स्पर्धा करती हैं, ( अपाः वृषानः ) पानीमें मिलाते हुए और ( कर्षीयान् पवते ) स्तोत्रोंको सुनते हुए सोम छनता जाता है, जिस प्रकार ( पशुवर्धनाय मन्म ब्रजं न ) पशुसंवर्धनके लिए गोपाल उत्तम गोशालामें जाता है ॥ ७ ॥

१ वाजिनि शुभः— जैसे घोड़ोंको जेवरसे सजाते हैं, उसी प्रकार सोममें दूध आदि मिलाकर उसकी शोभा बढ़ाते हैं ।

२ सुरे विशाः— सुर्पमें जैसे किरणें चमकती हैं, उसी तरह सोमका तेज चमकता है ।

३ धियः अधि स्पर्धन्ते— बुद्धिपूर्वक अगुलिया रस निकालनेकी स्पर्धा करती हैं । इस तरह रस बढ़ता है ।

४ कर्षीयान्— रस निकालते हुए स्तोत्रोंका पाठ किया जाता है ।

५ पवते— सोमरस छाना जाता है ।

६ पशुवर्धनाय मन्म ब्रजं— पशुसंवर्धनके लिए जैसे गोपाल गोशालामें जाता है, वैसे ही सोम वर्तनमें छाना जाता है ।

[ ५४० ] ( वाजी इन्दुः ) बलवान् ( गान्योषा ) गोधे रणे वर्तनमें छाना जानेवाला ( इन्द्रे सहः इन्धन् ) इन्द्रका बल बढ़ानेवाला ( वरिवः कृषन् ) यानकोंको धन देता हुआ ( वृजनस्य राजा सोम ) बलका राजा सोम ( मदाय ) आनन्द बढ़ानेके लिए ( पवते ) छाना जाता है । वह ( रक्षः हन्ति ) राक्षसोंको मारता है, और ( अ-रसि परि वाधते ) दुष्टोंको दूर करता है ॥ ८ ॥

[ ५४१ ] हे सोम ! ( अया पवा ) इस शुद्ध हुई धारसे ( पवा वधुनि पवस्व ) ये धन हमें दे, हे ( इन्दो ) सोम ! ( मांश्चत्ये ) सम्मानको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले ( सरसि ) पानीके कलसेमें ( प्र धन्व ) जा । ( यस्य ब्रध्नक्षिद्यत् ) जिसका मूल आधार आविश्य ( यस न ) जिस प्रकार धामुको प्रेरित करता है, उसी तरह ( नर जूति धात् ) नेतासे धेनुको यह सोम धारण करता है, और वह सोम ( पुरु-मेधाः चिद् ) बहुत बुद्धिमान् इन्द्रको दिया जाता है ( तज्ये ) प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

१ अया पवा— एक धारसे सोम छाना जाता है । बावमें—

२ सरसि प्र धन्व— पानीके कलसेमें पकृषता है । छाननेके बाद उसे पानीमें मिलाया जाता है ।

३ ब्रध्नः वातः न— सुर्प जैसे धामुको प्रेरित करता है, उस तरह छाननेवाला सोमको पति देता है, और वह ( पुरु-मेधाः तज्ये ) बुद्धिमान् इन्द्रको दिया जाता है ।

४ मांश्चत्ये सरसि प्र धन्व— जैसे सोम समाननीय लोगोंके पास जाते हैं, उसी प्रकार पानी सम्मानके योग्य सोममें मिलाया जाता है ।

- ५४२ महृचस्तोमो महिषथकारापां यद्गर्भोवृणीत देवान् ।  
 अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयस्त्वय् ज्योतिरिन्दुः ॥ १० ॥ ( ऋ. २।९।७४१ )
- ५४३ असर्जि वक्त्रा रथ्ये यथाज्ञी धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।  
 दश स्वसारां अधि सानो अध्ये मज्जन्ति वाङ्मिदनेष्वच्छ ॥ ११ ॥ ( ऋ. २।९।१११ )
- ५४४ अपामिवद्दूर्मयस्त्वराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।  
 नमस्यन्तीषु च यन्ति सं चाच विशन्त्युश्वतीरुशन्तम् ॥ १२ ॥ ( ऋ. २।९।११२ )

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १९ । उ० ३ । पा० ८२ । श ॥ ]

इति त्रिष्टुभः ॥ इति षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ६ ॥

[ ५४२ ] ( महिषः स्तोमः ) महत्त्वं यत्कृत्वा सोम ( महत्त्वं तात् स्वकार ) जन महत्त्वं कार्योको करता है । उतको कार्य वे हे—( यत् अर्पां गर्भः ) पानीको अपने गर्भमें धारण किया, बादमें ( देवान् अनुवृणीत ) देवोंको प्राप्त किया ( पवमानः इन्द्रे ओजः ग्यथात् ) शूद्र हुए सोमने इन्द्रमें सामर्थ्यको स्थापित किया और ( इन्दुः सूर्यं ज्योतिः ) सोमने सूर्यमें तेज ( अजनयत् ) उत्पन्न किया ॥ १० ॥

- १ अर्पां गर्भः— पानीको अपने गर्भमें धारण किया । सोममें पानी मिलाया जाता है ।
- २ देवान् अनुवृणीत— देवोंको धारण किया । देवोंको सोमके लिए सोम दिया जाता है ।
- ३ इन्द्रमें बल बढ़ाया, सूर्यमें तेज बढ़ाया । सोमरस पीनेके कारण देवोंका सामर्थ्य बढ़ा ।

[ ५४३ ] ( मन ऊता ) सप्रथम मन जिसमें सलम है, ( प्रथमा मनीषा ) पहले ही जिसकी स्तुति की है, वह ( धक्त्रा ) शब्द करनेवाला सोम ( आजी धिया ) मनमें स्तोत्र पाठके साथ ( रथ्ये यथा ) जिस प्रकार संपादनमें पीड़े भेजे जाते हैं, उस तरह ( अधि सानो ) पानीमें मिलाया जाता है ( दश स्वसाराः ) दश अंगुलियां ( मज्जन्ति वाङ्मिदनेषु वाङ्मिद ) यज्ञ स्थानमें पहुँचनेवाले सोमको ( सानो अधि ) उच्च स्थानपर ( अध्ये अच्छ मृज्जन्ति ) बकरीके बालोंकी छानतीसे उत्तम रीतिसे शूद्र करते हैं ॥ ११ ॥

- १ मनोता— मन जिस पर लग गया है, वह सोम ।
- २ प्रथमा मनीषा— प्रथम जिसकी स्तुति की है, ऐसा सोम ।
- ३ धक्त्रा— शब्द करनेवाला; छाने जाते हुए वह शब्द करता है ।
- ४ आजी धिया अस्सर्जि— यज्ञमें स्तोत्र पाठ करते हुए सोमरस पानीमें मिलाया जाता है ।
- ५ अध्ये मृज्जन्ति— बकरीके बालकी छानतीसे छाना जाता है ।

[ ५४४ ] ( अर्पां ऊर्मयः इय ) पानीकी सहृदें जिस प्रकार जलदी बलती हैं, उस प्रकार ( तर्तुंरप्याः इय ) शीघ्रता करनेवाले ऋत्विज ( मनीषाः ) स्तुतियोंको ( सोमं अच्छ प्र ईरते ) सोमके पास शीघ्र प्रेषित करते हैं । ( उशतीः नमस्यन्तीः ) उत्पत्तिकी इच्छा करनेवाली और नमस्कार करनेवाली स्तुतियां ( उशन्ते ते उययन्ति च ) इच्छा करनेवाले सोमके पास पहुँचती हैं । ( सं आविशन्ति च ) और उसमें प्रवेश करती हैं ॥ १२ ॥

सय ऋत्विज सोमको एकदम स्तुति करते हैं ।

[ ६ ]

( १-९ ) १ अश्वीनु इयावाशिव; २ महृयो मानव, ३ ययातिर्नाहुयः, ४ मनुः सावरण, ५, ६, अन्वरीयो वाष्णीगरः  
ऋजिष्वा भारद्वाजश्च, ६, ७ देवसूनु काश्यपो, ९ प्रजापतिर्वेदामित्रो वाच्यो वा ॥ पचमानः सोम ॥ अनुष्टुप्; ७ मूहती ॥  
अथ षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्थः ॥ ६ ॥

- ५४५ पुरोजिती वा अन्धसः सुताय मादयित्स्ववे ।  
अप स्नानञ्चयिष्टन सखायो दीर्घविह्वयम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।११ )
- ५४६ अयं पूषा रयिभगः सोमः पुनानो अर्पति ।  
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यस्यद्रोदसी उभे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।१० )
- ५४७ सुतासां मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।  
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वा मदाः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१०।१४ )
- ५४८ सोमाः पवन्त इन्द्रोऽस्मभ्यं मातृविचमाः ।  
मित्राः स्वाना अरिपसः स्वाध्यः स्वविदः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०।१० )
- ५४९ अमी नो वाजसातमरपिमर्षं शतस्पृहम् ।  
इन्दो सहस्रमणसं तुविद्युम् विभासदम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०।११ )

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ ५४५ ] ( सखायः ) शर्तुनि करनेवाले काजको । ( यः ) तुष ( पुरोजिती अन्धसः ) आगे रले हुए सोमरूपो  
अमके ( मादयिष्णवे सुताय ) आनन्द देनेवाले इस रसके पात ( दीर्घ-विह्वयं देवानं अपदनयिष्टन ) जानेकी इच्छा-  
वाले बड़ी जीम वाले कुत्तेको डूर हटावो ॥ १ ॥

कुत्ते सोमरस न चाहे ऐसा करो ।

[ ५४६ ] ( पूषा भगः रयिः अयं सोमः ) पोषण करनेवाला, लेकन करने योग्य, शोभावान् ऐसा यह सोमरस  
( पुनानः अर्पति ) छाना जाता हुआ तीथेके अर्चनमें गिरता है । ( पतिर्विश्वस्य भूमनः पतिः सोमः ) सब प्राणियोंका  
पालन करनेवाला यह सोमरस ( उभे रोदसी व्यस्यत् ) दोनों ही सुतीक और पृथ्वीकोकको अपने तेजसे प्रकाशित  
करता है ॥ २ ॥

सोमरस चमकता है, इसलिए आलंकारिक भाषामें उसे दोनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाला बताया है ।

[ ५४७ ] ( मधुमत्तमाः मन्दिनः ) मोटे और आनन्द बढ़ानेवाले ( सुतासाः ) सोमरस ( पवित्रवन्तः )  
छानते हुए इन्द्रके लिए तैय्यार होते हैं, हे सोम ! ( यः ) तुम्हारे ( मदाः ) ये आनन्दबन्धक रस ( देवान् गच्छन्तु )  
देवोंके पास पहुँचें ॥ ३ ॥

[ ५४८ ] ( मातृ-वित्-तमाः ) माताँकी उत्तमरीजिसे जाननेवाले ( मित्राः ) मित्रके समान ( स्वानाः ) रस  
निकाले हुए ( अ-रिपसः ) निर्व्याध ( स्वाध्यः ) सतको उत्तमतासे एकत्र करनेवाले ( स्व-विदः इन्द्र्यः ) आत्प-  
शास्त्री ये ( सोमाः ) सोमरस ( व्यस्यभ्यं पचरते ) हमारे लिए पवित्र होते हैं, छाने जाते हैं ॥ ४ ॥

[ ५४९ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( शत-स्पृहं ) तेकई जितकी प्रशंसा करते हैं ( सहस्र-मणसं ) हजारोंका  
जो पोषण करता है ( तुविद्युम् ) बहुत तेजस्वी ( विभा-सदं ) विशेष प्रकाशकी अपेक्षा भी अधिक प्रकाशमान ( वाज-  
सातमं ) सब बढ़ानेवाले ( रयिं ) पन ( नः ) अभ्यर्थे ) हमें दे ॥ ५ ॥

१ विभा-सदं— विशेष तेजस्वी लीकति भी यह सोम अधिक तेजस्वी है ।

- ५५० अमी नवन्ते अद्रुहः प्रियामिन्द्रस्य काम्यम् ।  
वत्सं न पूषे आयुनि जातश्चिहन्ति मातरः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )
- ५५१ आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्त्वन्ति पौंस्यम् ।  
शुक्रा वि वन्त्यसुराय निर्णिजे विषामग्रे महीयुवः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।९।१ )
- ५५२ परि त्यह्येत हरिं वभ्रुं पुनन्ति वारेण ।  
यो देवान्विश्वाश्चिह्नुति मदेन सह गच्छति ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।९।७ )
- ५५३ प्र सुन्वानायान्वसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।  
अप खानमराधसहृता मखे न भृगवः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।१०।१३ )

इति षष्ठी वसतिः ॥ ६ ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ स्व० १०। उ० ५। पा० ६१। म ॥ ]

इत्यनुष्टुभः ( एका बृहती ) ॥

[ ५५० ] ( मातरः ) गीमातायै ( पूर्वं आयुनि जातं वत्सं ) पहली आयुमें उत्पन्न हुए मापके ( रिहन्ति न ) बाळती हैं, उस प्रकार ( अ-द्रुहः ) दोह न करनेवाले जल ( इन्द्रस्य प्रियं काम्यं ) इन्द्रके प्रिय और चाहने योग्य सोमकी ( अभि नवन्ते ) प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

१ अ-द्रुहः इन्द्रस्य प्रियं व्यभि नवन्ते— दोह न करनेवाले जल, इन्द्रको प्रिय लगनेवाले सोमको प्राप्त होते हैं । जल सोमरसमें मिलाया जाता है ।

[ ५५१ ] ( हर्यताय ) सर्वोसे पूजनीय और ( धृष्णवे ) शायक परोक्ष करनेवाले होमको ( पौंस्यं धनुः ) आतन्वन्ति ) जैसे पुरुषार्थ प्रवृत्त करनेवाले धनुष लेकर उत्तर डोरी चढ़ाते हैं, उसी प्रकार शक्तिजन छाननेके लिए तैयार करते हैं । ( विषां अग्रे ) विद्वानोंके आगे ( महीयुवः शुक्राः ) पृथ्वीपर पूजित होनेवाले अश्वर्ष्व स्वच्छ गायके बृषको ( असुराय निर्णिजे ) बलवान् सोमके रूपको धमकानेके लिए ( वयन्ति ) आच्छादित करते हैं ॥ ७ ॥

१ शत्रिय जिल प्रकार धनुषपर डोरी चढ़ाकर युद्धकी तैयारी करते हैं, उसी प्रकार शक्तिजन सोम छाननेकी तैयारी करते हैं ।

२ स्वच्छ गायके बृषको सोमरसको ढक वेते हैं । अर्थात् सोमरसमें गायका दूध मिलाते हैं ।

[ ५५२ ] ( हर्येत हरिं ) सुन्दर हरे रंगके और ( वभ्रुं त्यं ) मूरे रंगके उस सोमको ( वारेण परि पुनन्ति ) ऊनकी छाननीसे छाना जाता है । ( यः ) यह सोम ( विभ्रान् देवान् इव ) सब देवोंके पास ( मदेन सह परि गच्छति ) अपने आनन्ददायक गुणोंके साथ जाता है ॥ ८ ॥

[ ५५३ ] ( सुन्वानाय अग्न्यसः ) सोमका रस निकालनेके बाद उस अग्निको ( तत् वच. ) यह वचन ( मर्तोः न प्रवष्ट ) धनी मनुष्य न सुनें, ( अ-राधत्सं मखे भृगवः न ) जैसे बाव-बलिवाते रहित पत्नीसे भृगुशक्तिने दूर कर दिया उसी प्रकार ( श्यांसं अप हत ) कुत्तोंको दूर करो ॥ ९ ॥

१ अग्न्यसः तत् वच. मर्तोः न प्रवष्ट— सोमरसके उस वर्णनकी तन्वी आदमी न सुनें । केवल विज्ञेय योग्यतावाले ही उसे सुनें ।

॥ यहां आठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ७ ]

( १-१५ ) १-३, ५ कविर्भाष्यः; ४, ६ सिकता निवाचरी; ७ देवुर्वैश्वामिनः; ८ वैशो भाष्यः; ९ वसुभरिद्वानः;  
१० पशुभिर्भाल्पः; ११ गुणमदः; शौभकः; १२ पवित्र आङ्गिरसः ॥ पशमानः सोमः ॥ अगते ॥

५५४ अभि त्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यद्वा अधि येषु वर्धते ।

आ सूर्यस्य बृहती बृहन्नाभि रथं विष्वञ्चमरुद्विचक्षणः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७५।१ )

५५५ अचोदसो नो धन्यन्तिवन्दवः प्र स्वानासो बृहद्देवेषु हरयः ।

वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽयो नः सन्तु सनिपन्तु नो धियः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७६।१ )

५५६ एष प्र कोशे मधुमाऽअचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।

अभृष्टस्य सदुषा घृतश्चुतो वाश्रा अपन्ति पयसा च धेनवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७७।१ )

५५७ प्रो अयासादिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतऽसखा संरघुनि प्र भिनाति सङ्गिरम् ।

मयं इव युवतिभिः समर्पति सोमः फलशो श्रुतयामना पथा ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।७८।६ )

[ ९ ] नचमः खण्डः ।

[ ५५४ ] ( चनो-हितः ) अथ अर्वाभू हितकारक सोम ( त्रियाणि नामानि अभि पवते ) धिय जलोंमें मिलाकर छाया जाता है । ( येषु यद्वाः अभि वर्धते ) उन जलोंमें वह मिलाकर बढता है, बादमें ( बृहन् ) महान् होकर ( बृहते ) सूर्यस्य महान् सूर्यके ( विष्वञ्चं रथं अधि ) सब अगह जानेवाले रथपर ( विचक्षणः आरुहत् ) विश्वको देखनेवाला सोमदेव चढता है ॥ १ ॥

[ ५५५ ] ( अ-चोदसः ) किसी दूसरेके द्वारा प्रेरित न होनेवाले ( हरयः स्वानासः ) हरे रथके उत्तम रीतिसे निकाले गये ( इन्द्रयः ) सोमरस ( नः बृहद्देवेषु प्र धन्यन्तु ) हमारे यत्नमें हमें प्राप्त हों । ( अ-रातयः ) दान न करनेवाले ( नः अरयः ) हमारे शत्रु ( इषयः ) अथकी इच्छा करते हुए ( अदनानाः वि चित् ) भूधे-अथ न पाने-वाले ( सन्तु ) होके, ( नः धिया सनिपन्तु ) हमारे शत्रोत्र देवोंको प्राप्त होके ॥ २ ॥

१ अ-रातयः नः अरयः इषयः अश्नानाः धि चित्— हमारे शत्रुओंको पानेके लिए अन्न न मिले, वे पनेही बिना अन्नके भूके रहें ।

[ ५५६ ] ( इन्द्रस्य यज्ञः ) इन्द्रका यज्ञ पालों यही है, ऐसा ( वपुषा वपुष्टमः ) बलके बहुत बलशाली ( एषः मधुमा ) यह सोम भोग्य ( कोशे, प्र अचिक्रदत् ) कर्ममें यज्ञ करत है । ( वज्रो वपुष्टमः ) यज्ञके लिए, ( वपुष्टमः घृतश्चुतः ) उत्तम रूपसे दूध देनेवाली, और धी चुबानेवाली ( वाश्राः पयसा धेनवः च ) रंभाती हुई दुधद गायें ( अभि अपन्ति ) पाल आती है ॥ ३ ॥

१ सोमके पास दुधद गायें आती हैं, सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है ।

[ ५५७ ] ( इन्द्रुः ) यह सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं ) इन्द्रके स्पातने-वेदमें ( म अयासीत् ) जाता है और यहाँ जाकर ( सदा ) निगरूपी यह सोम ( संरघुः संगिरं ) निगरूपी इन्द्रके वेदमें ( न प्र भिनाति ) कोई भी कष्ट नहीं देता, ( सुवतीभिः मयं इव ) जिस प्रकार तरण युवक अनेक स्त्रियोंके साथ रहता है, उस प्रकार सोम अनेक साथ ( स्वं अपन्ति ) मिलाकर रहता है । यह सोम ( श्रुत-यामना पथा ) धी देववाले छलनीके रास्ते ( फलशो ) कलशमें छना जाता है ॥ ४ ॥

१ सुवतीभिः मयं इव स्वं अपन्ति— अनेक स्त्रियोंके साथ जैसे एक पति मिलाकर रहता है, उस प्रकार सोम जलोंमें मिलाया जाता है अपन्ति सोमरस बहुत सारे जलोंमें मिलाया जाता है ।

- ५५८ धर्ता दिवः पयते कृत्वा रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।  
हरिः सृजानो अत्यां न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृष्ये नदीष्व ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।७६।१ )
- ५५९ वृषा मतीनां पयते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतापसांश्चिदिवः ।  
प्राणा सिन्धूनां चकलाश्च अचिक्रददिन्द्रस्य हाधाविश्वमनीषिभिः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८६।१ )
- ५६० त्रिरस्मै सप्त धेनवा दुदुहिरि सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।  
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारुणि चक्र पटवैरवधत् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।१०० । )
- ५६१ इन्द्राय सोम सुपुतः परि स्रवापामोवा भवतु रक्षसा सह ।  
मा ते रसस्य मत्सव द्रवाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्निन्दधः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।८५।१ )
- ५६२ असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजव दस्मां अभि गा अभिक्रदत् ।  
पुनानो वारमत्येष्यव्ययश्च्येनो न योनि धृतवन्तमासदत् ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।८१।१ )

[ ५५८ ] ( धर्तां कृतव्यः रसः ) धारणाशक्तिते युक्त कर्म करनेवाला यह सोमरस ( देवतानां दक्षः ) देवताओंका बल बढ़ानेवाला ( नृभिः अनुमाद्यः ) ऋत्विजों द्वारा प्रदात ( हरिः ) हरे रणका सोम ( दिवः पयते ) उपरके बतनते छाता हुआ नौथेके कलशमें गिरता है । ( सत्वभिः सृजानः ) कलयन् ऋत्विजों द्वारा निकाला गया यह रस ( अन्ध न ) पीथेके समान ( वृथा ) सरलतासे ही ( पाजांसि ) अपनी शक्तिते ( नदीषु कृष्यते ) नदीके जलमें अपनेको गिराता है ॥ ५ ॥

[ ५५९ ] ( मतीनां वृषा ) स्तुति करनेवालोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाला ( वि-चक्षणः ) विद्यो ज्ञानी ( अह्नां उपसांश्चिदिवः ) दिन, रात्र और सूर्यके चलने ( प्रतरीता ) पढ़ानेवाला ( सोमः पयते ) सोम छाता जाता है । ( सिन्धूनां प्राणाः ) नदीके प्राणरूपी जलमें गिराया गया ( मनीषिभिः ) ज्ञानी ऋत्विजों द्वारा निकाला गया यह सोमरस ( इन्द्रस्य हाधांश्चिदिवः ) इन्द्रके पेटमें जानेके लिए ( चकलाश्च अभि ) कलयामें ( अचिक्रदत् ) दाख करता हुआ जाता है ॥ ६ ॥

[ ५६० ] ( परमे व्योमनि ) श्रेष्ठ यज्ञमें उल्लेखले ( अस्मै ) इस सोमरसके लिए ( वि- सप्त धेनवः ) इषकोत गावें ( सत्यां आशिरं दुदुहिरि ) निरचयते ब्रह्म देती हैं, और यह सोम ( यत् क्रतैः अचर्यत ) जब यज्ञसे बढ़ाना जाता है तब ( अन्या चत्वारि भुवना ) इन्द्रे वार भुवनोंमें जलके चार बतनोंमें निर्णिजे छानकर शुद्ध करनेके लिए ( चारुणि चक्रे ) छतन कल्याणकारी पद्धतिसे शुद्ध किया जाता है ॥ ७ ॥

बाह्य भाग, पांच ऋतु, तीन लोक और यह आवित्य मिलकर २१ गावें हैं, यह भाग यहा दिखाया है ।

[ ५६१ ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( सु-पुतः ) उत्तम प्रकारसे रस निकालनेके बाद ( इन्द्राय परिश्रय इन्द्रे लिए प्रदाहित हो, ) अमीचा रक्षसा सह अप भवतु ) रोग दासकोंके साथ दूर ही जाय ( ते रसस्य ) तेरे रसकी पीकर ( हया चित्तः ) सत्य और असत्य दोनोंका आचरण करनेवाले बृष्ट आनन्दित न हों । ऐसे बृष्टोंको सोमरस पीनेको न मिले । ( इन्द्राय ) सोमरस ( इह ) इस यज्ञमें ( द्रविणस्वन्तः सन्तु ) पतपुष्ट होये ॥ ८ ॥

[ ५६२ ] ( अरुषः वृषा ) मेजकची, बलबर्धक ( हरिः सोमः ) हरे रणका सोमरस ( असावि ) निकाला है । यह ( राजा इय द्रुम ) राजाके समान सुन्दर है । ( गाः अभि ) गायका रूप मिलानेके बाद ( अचिक्रदत् ) शब्द करता हुआ वह ( पुनानः ) छाते जाते हुए ( अर्थे वारं अत्येषि ) बकरीके बालोंको कसे छाननेसे छाया करता है, छाया जानेके बाद ( च्येनः न ) इधेन पक्षीके समान ( धृतवन्तं योनिं वा सवत् ) जलयुक्त कलशमें वह जाकर पड़ता है ॥ ९ ॥

५७४ गोमत्र इन्द्रो अश्ववस्तुतः सुदक्ष धनिव । श्रुचिं च वर्णमभि गोपु धारय ॥ ९ ॥  
( ऋ. ९।१०५।४ )

५७५ असभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनुपत । गोभिरे वर्णमभि वासयामसि ॥ १० ॥  
( ऋ. ९।१०४।४ )

५७६ पवते हर्षतो हरिरति हुरात्सि रथ्या । अभ्यर्ष स्तोत्रम्यो वीरवद्यज्ञः ॥ ११ ॥  
( ऋ. ९।१०६।१३ )

५७७ परि कोशं मधुश्नुतथ सोमः पुनानो अर्षति । अभि वाणीश्रीषीपाथ सप्ता नूपत ॥ १२ ॥  
( ऋ. ९।१०२।२ )

इत्याप्तमो दक्षतिः ॥ ८ ॥ वशमः सग्नः ॥ १० ॥ ( स्व० ८।३०३। पा० ४६। ४ )

[ ९ ]

( १-८ ) १ गौरवति. श्रावत्यः; २ उर्ध्वसपा आगिरसः; ३, ८ ऋत्विजा भारद्वाज; ४ इत्यपशा आगिरसः;  
५ ऋणवयो राजर्षिः; ६ शक्तिर्वातिष्ठः; ७ ऊररागिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥ ककुपु, ५ पवमप्या गायत्री ॥

५७८ पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुविद्यमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥  
( ऋ. ९।१०८।९ )

[ ५७४ ] ( सुदक्ष इन्द्रो ) है बलवान् सोम ! ( वस्तुतः ) रस निकालनेके बाद ( नः ) हमें ( गोमत्र अश्ववस्तु धनिव ) गाय, पौडेंसि युक्त पन दे। उसके बाद तू ( श्रुचिं वर्णं ) शुद्ध वर्णको ( गोपु आधि धारय ) गायके रूपमें प्रान्त कर ॥ ९ ॥

गोद्वयमें सोमरस मिलाया जाता है, फिर उसका तेजस्वी वर्ण चमकता है।

[ ५७५ ] है सोम ! ( वसु-विदं त्वा ) धन देनेवाले तेरी ( असभ्यं वाणीः अभि अनुपत ) हमें पन मिलें इतलिये हमारी वाणी बहुत स्तुति करती है। उसी प्रकार हम ( ते वर्णं ) तेरे वर्णको ( गोभिः अभिवासयामसि ) गायके रूपमें अलगावित करते हैं ॥ १० ॥

[ ५७६ ] ( हर्षतः हरिः ) प्रशंसनीय हरे रंगका सोम ( इन्द्रा हुरात्सि अति पद्यते ) वेगसे बुरे भागीको बुर करता हुआ नीचेके पात्रमें आता है। शराव हिस्सेको बुर करता हुआ छनता जाता है। है सोम ! तू ( स्तोत्रम्यः ) स्तोत्रार्थको ( वीरवद्यज्ञः ) पुत्रपुत्रा कौति ( अभ्यर्ष ) दे ॥ ११ ॥

[ ५७७ ] ( पुनानः सोमः ) छाना जानेवाला सोम ( मधुश्नुतं कोशं परि अर्षति ) मोठे रसको कलशमें छोडता है। ( क्षयिणां सप्त वाणीः ) ऋत्विगीको सप्त वर्षोंवाली वाणी इत सोमरी ( अभि अनुपत ) स्तुति करती है ॥ १२ ॥

॥ यहाँ दसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] पकादशः खण्डः ॥

[ ५७८ ] है सोम ! ( मधुमत्तमः ) बहुत मोठा ( क्रतु विद्यमः ) पयके सम्बन्धमें सब कुछ जानेवाला, ( महि पद्युक्षतमः ) महान् तेजस्वी और ( मदः ) हर्ष बढानेवाला तू ( इन्द्राय मदः पद्यस्व ) इन्द्रको आनन्द देनेके लिये पिय हो ॥ १ ॥

- ५७९ अ॒भि धु॒म्ने वृ॒हद्य॒ इप॒स्पते॒ दि॒वो॒हि दे॒व दे॒वपु॒म् । वि॒ को॒शं म॑ध्य॒मं यु॒व ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।१०।१९ )
- ५८० आ॒ सो॒ता परि॑ पि॒ञ्जिता॑श्वं न॒ स्तोम॑म॒प्तुर॑श्च॒रज॑स्तुरम् । ध॒नप्र॑क्ष॒मुद॑प्रु॒वम् ॥ ३ ॥  
( ऋ. ९।१०।१७ )
- ५८१ ए॒तमु॒ त्वं म॑द॒च्युत॑ सह॒स्रधा॑रं वृ॒षम॑ दि॒वो॒द्बु॒हम् । वि॒श्वा च॑स॒न्नि वि॑भ्र॒तम् ॥ ४ ॥  
( ऋ. ९।१०।११ )
- ५८२ स॒ सु॒न्वे यो॑ च॒स्रता॑ यो॒ राया॑माने॒ता य॒ इडा॑नाम् । सो॒मो यः॑ सु॒क्षि॒ता॑नाम् ॥ ५ ॥  
( ऋ. ९।१०।१२ )
- ५८३ त्वं॒ शा॒शे॒ङ्ग दे॒व्य प॑व॒मान॑ ज॒निमा॑नि धु॒मत्त॑मः । अ॒मृ॒त॒त्वाय॑ घो॒षय॑न् ॥ ६ ॥  
( ऋ. ९।१०।१६ )
- ५८४ ए॒ष स्य॑ धा॒रया॑ सु॒तो॒ऽऽद्या॑ चो॒रिभिः॑ प॒वते॑ मो॒दि॒न्त॑मः । क्रो॒डन्नु॑रि॒रपा॑नि॒व ॥ ७ ॥  
( ऋ. ९।१०।१५ )

[ ५७९ ] हे ( इपस्पते ) अरके स्वामी ( देव ) प्रकाशमान देव सोम ! ( देवपुं ) तू देवोंको प्राप्त होनेवाला है, तू हव्यं ( धुम्ने वृहद् यजः ) तेजस्वी और श्रेष्ठ यज्ञ ( अभि दीदिहि ) दे, और ( मध्यमं कोशं ) शहदके कलत्रमें ( वि युव ) जाकर भर जा ॥ २ ॥

[ ५८० ] हे श्वत्विजो ! ( अश्वं न ) घोड़ोंके समान वेगवान् ( स्तोमं ) स्तुतिके योग्य ( अप्तुरं ) जलके समान वेगवान् ( रजस्तुरं ) प्रकाशकी किरणके समान शीघ्रता करनेवाले ( धन-प्रक्षं ) जलसे मिश्रित ( उद-प्लुतं ) जलके स्नान मिले हुए सोमका ( सोत ) रस निबोरो, ( परि पिञ्जित ) और उत्तम रूप मिलाओ ॥ ३ ॥

[ ५८१ ] ( दिवः ) तेजस्वी श्वत्विज ( मद्च्युत सहस्रधार ) आनन्दके श्रेष्ठ और हजारों पाराभक्ति धर्ममें गिरनेवाले ( वृषम ) बलवर्धक ( विश्वा चसन्नि विभ्रतं ) सब धर्मोंके धारण करनेवाले ( एत त्व उ ) इस उस सोमका ( बुहं ) रस निकालते हैं ॥ ४ ॥

[ ५८२ ] ( यः चस्रतां ) जो धर्मोंका ( य रायां ) जो रूप आदि पदार्थोंका ( य इडानां ) जो भूमियोंका ( यः सुक्षितानां ) जो उत्तम शान्तियोंका ( आनेता ) देनेवाला है, ( सः ) उस सोमका रस ( सुन्वे ) निकाल लिया है ॥ ५ ॥

[ ५८३ ] हे ( पवमान ) शूद्र होनेवाले सोम ! ( धुमत्तमः ) अत्यन्त तेजस्वी ( त्वं हि ) तू ( देव्यं जनिमानि ) दिव्य जन्मोंको जानता है, और हे ( अंग ) प्रिय सोम ! तू ( अमृतत्वाय घोषयन् ) अनरताकी घोषणा करता है ॥ ६ ॥

[ ५८४ ] ( मदिन्तमः ) अत्यन्त आनन्द देनेवाला ( अपां ऊर्मि इच प्रीडन् ) जलके सहृदके समान लोल करते हुए ( स्यः एषः सुतः ) यह सोमरस ( अज्या चारिभिः ) नरकोंके यालसि बने हुए छानवीसे ( धारया पवते ) धार घोषकर कलत्रमें छाता जाता है ॥ ७ ॥

५८५ य उच्चिया अपि या अन्तरश्मनि निगा अकृन्तदोजसा ।

अभि व्रज तत्पि गव्यमद्वयं वर्मीव धृष्णवा रुज । ओश्मू वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ८ ॥

( ऋ- ११०८१६ )

इति नवमो दशतिः ॥ ९ ॥ एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ [ स्व० ७ । उ० १ । वा० ४३ । वि ॥ ] इत्युपनिषत्सुखः ॥

इति षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्थः, षष्ठप्रपाठकस्य समाप्तः ॥ ६ ॥ इति षष्ठप्रपाठकस्यः ॥ ५ ॥

इति छन्दोगप्रकृतिकस्य समाप्ता ॥ इति तीर्थं पावमानं वनस्पदं पवं वा समाप्तम् ॥

॥ इति पूर्वार्चिकः ( छन्द आर्चिकः ) समाप्तः ॥ पावमानकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११९

तत्र गायत्र्यः ४६७—५१० ( ४४ ), बृहत्याः ५११—५२२ ( १२ ), त्रिष्टुभः ५२३—

५४४ ( २२ ), अनुष्टुभः ५४५—५५३ ( ९ ), [ तत्र ' आहर्गत ' इति ५५१ बृहती ],

जागत्याः ५५४—५६५ ( १२ ), उष्णिक्काण्डः ५६६—५८५ ( २० ), ११९

पेन्द्रवाराण्डस्य मन्त्रसंख्या ३५२

आग्नेयकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११४

सर्वयोगः ५८५

[ ५८५ ] ( यः ) जो ( उच्चियाः अपि याः ) जलनेवाले और जलोको धारण करनेवाले ( अश्मनि अग्निः ) मेघोंमें ( गाः ) जलोंको ( ओजसा निरकृन्तन् ) बलसे छिन्नभिन्न करने हुए तू ( गव्यं अद्वयं वर्जं ) गाय और घोड़ोंके समूहको ( अभि तत्पि ) बाहरों औरलेघेइता है । हे ( धृष्णो ) मनुष्यको धारनेवाले सोम ! ( वर्मी इव आद्वज ) कवच धारण करनेवाले बीरोंके समान तू शत्रुओंका नाश कर ॥ ८ ॥

॥ यद्वा ग्यारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पावमानं काण्डम् ॥

## पवमान काण्ड

“ पवमान ” का अर्थ है, ' बहनेवाला, उल्ला जाननेवाला, छानकर जिसका कूड़ा बाहर निकाल देते हैं, इस प्रकार “ पवमान ” का अर्थ हुआ वह सूक्ष्म जिसमें सोमकी छाननेका वर्णन है । पवमान सूक्ष्मका अर्थ है सोमरस छान कर स्वच्छ करनेका वर्णन करनेवाला सूक्ष्म । “ पवमान ” इस पर्वके कारण ही सामवेदके इस काण्डका नाम “ पवमान काण्ड ” है । ऋग्वेदके नवम षष्ठसर्गमें “ पवमान सूक्ष्म ” ही हैं । उनमेंसे कहीं कहींसे मात्र लेकर सामवेदके पवमान काण्डकी रचना की है । इस पवमान काण्डमें सोमरस छाननेके, उसे

इन्द्रको देनेके और ऋत्विजों द्वारा स्वयं पीनेके वर्णन करनेवाले मंत्र हैं ।

सोम यह एक बेल है उसका रंग हरा होता है । उसके रसको निकालकर उसे देवोंकी पिलाकर बादमें ऋत्विज लोग स्वयं पीते हैं ।

सोमका उत्पत्ति स्थान

सोमका उत्पत्ति स्थान पर्वतका अंघा प्रदेश है । इसका उल्लेख—

१ गिरि-घ्राः अंशुः ( ४७३ )- ' पर्वत पर होनेवाली सोम बेल है', ऐसा कहा है ।

२ ते अन्धसः जाते उच्चा दिवि ( ४६७ )- "अन्ध-रूप सोमका स्थान ऊंचे प्रदेशे घुलनेमें है।" इससे यह मालूम पड़ता है कि पर्वतके ऊंचे स्थान पर सोम उगता था । यहासे यह मंत्रालोमें लाया जाता था । देखिए—

१ सव् उर्मं शर्म भूम्या ददे ( ४६७ )- " मे सुव देनेवाले उर्म अर्ध भूमिपर लामे दमे " पर्वतके ऊंचे भाग पर उगनेवाली यह सोमबल्ली बहूँसे घसके लिए भूमिपर काई गई । श्रुवेदमें इस सोमको "मोजवान्" कहा गया है ।

सोमस्येव मोजवतस्य भक्षः ॥ श्रु ( १०१३४१ )

"मोजवान् पर्वतपर होनेवाले सोमरसरूपी अन्न अत्यन्त मिय है," इस मयमें "मोजवान्" पर्वत पर होनेवाले सोमको उत्तम माना गया है । मोजवान् हिमालयका एक जिल्ला है । उसपर १२ हजार फीटकी ऊंचाई पर पाया जानेवाला सोम उत्तम माना जाता है । ऊपर 'उच्चा दिवि' ऊंचे घुलनेमें यह सोमरूपी अन्न उत्पन्न होता है, ऐसा कहा है । हिमालय पर्वतपर १२ हजार फीट या उससे अधिककी ऊंचाईके स्थानको घुलके समझा जाता है । "त्रिविष्टिप्" इस शब्दका अर्थभ्रदा होकर "तिव्यत" शब्द बना है । यह "तिव्यत" हिमालय पर्वतमें १२ हजार फीटकी ऊंचाईपर है । त्रिविष्टिप् ही घुलके या स्वर्गलीक है ।

गंगा नदीका नाम "त्रिपथ्या" है । स्वर्ग, भूलोक और पृथाङ्ग लोक इन तीनों स्थानोंपर यह बहती है । यह हिमालयसे निरुत्सकर, भूमिपर बहती हुई ओके जाकर समुद्रसे मिलती है । इससे भी यह मान होता है कि हिमालयका ऊंचा प्रदेश ही स्वर्ग है । और घुलकेपर उगनेवाली सोमबल्ली भेष्ट होती है ।

यह करनेवाले लोग इस मोजवान् पर्वतसे सोमबल्ली लाते थे, अबका यहासे लाकर ब्रंचनेवाले लोगोंसे वे खरीदते थे । सोमकी माय बेकर खरीदते थे । इस सोमबल्लीकी गुच्छमें बांधकर लाते थे । उन्हें लकड़ियाँके से तस्तेके धीधमें रखते थे—

१ नपयोः वित्. ( ४७६ )- ये तहतोके धीधमें उसे रखा जाता था, इन लकड़ोकी प्रहियोंके "अभिययन करक" कहते थे । इसका अर्थ "सोमरस निकालनेको बट्टे" है । ये पट्टियाँ भी होती थीं । अत्येव पट्टीको लम्बाई और चौड़ाई ३६×१८ अंगुल होती थी । दोनों पट्टियोंको मिलाकर रखनेसे २३ ( दाम हिनो )

३६ अंगुली वर्गकार पट्टियाँ ही जानी थीं । इन पट्टियोंपर काले हिरणको छाल बिछाते थे । उसपर सोमबल्ली रखकर पत्थरोंसे कूटते थे ।

चम्पयोः सुतः ( ४९० )- दोनों पट्टियों पर रखकर और सोमका रस निकालकर उसे बर्तनोंमें भरकर रखते थे ।

### पदथरोंसे कूटना

रस निकालनेके लिए सोमको पत्थरोंसे अच्छी तरह कूटते थे । इन पत्थरोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ कथिक्कतु, नपयोः वित्त, दिचः प्रियाः घयांसि, स्वानैः परिव्याति ( ४७६ )- शानी और कर्ममें कुशल इस सोमके पट्टियोंपर रखे जानेके बाद घुलनेके प्रियपत्नी गर्भात् कूटनेके पत्थर रस निकालनेवाले अग्न्युंके द्वारा इतकर किराये जाते थे । अग्न्युंका मतलब है दस करनेवाले । ये उन पत्थरोंसे सोमबल्ली कूटते थे और उसका रस निकालते थे । यहा पत्थरोंको "प्रिया घयांसि" मिय पत्नी कहा है । पर्वतसे अंसे सोमबल्ली लाते थे, बंते ही पत्थर भी पहाड़ोंसे ही लाये जाते थे । इसलिए पत्थर ऊपर बंधनेवाले पत्थी ही हैं, यह अलकारमें कहा है ।

स्वानैः ( सुवानैः )- रस निकालनेवाले श्रुविम् सोम कूटते थे, उसके बाद उनका रस निरालते थे ।

२ सोमं अद्रिमि सुयाव ( ५१२ )- सोमरस पत्थरोंसे कूटकर निकाला गया । यहाँ "अद्रि" पत्थर "पर्वत" का वाचक है और यह पत्थर यहाँ पर्वतपर होनेवाले पत्थरोंका वाचक है । यह पत्थरकी अपनी विशेष शक्ति है । उस शक्तिको समझानेके लिए यहाँ कुछ उदाहरण दिये हैं ।

### अंशुके लिए पृष्ठाका प्रयोग

पत्थर पर्वतका अंग है । उन अंगरूपी पत्थरके लिए पृष्ठा पर्वतका प्रयोग किया गया है । "पथत" का अर्थ पर्वतका अंग "पत्थर" है । इस प्रयोगके और भी उदाहरण हैं, जैसे—

१ अद्रिमि सुतः ( ४९९ )-

२ अद्रिमिः स्वान् ( ५१३ )- ( अद्रि ) पर्वतोंके अर्थात् पहाड़के पत्थरोंसे कूटकर सोमबल्लीका रस निकाला जाता था, यह रस लकड़ोके बर्तनोंमें रखा जाता था । उसका वर्णन इस प्रकार किया है ।

३ वनेषु सद्मं द्रिषे ( ५१३ )-

४ श्राव्युज्यमानः द्रिषि वनिवन्ति, वतस्य जटरे

सीदन् ( ५३० )—वनको अपना घर बनाया है। सोमका हरे रंगका रस पाब्ब करता हुआ वनके देतमें जाता है। “ वनेषु सद्- ” और “ वनस्य अठरे ” इन वाचर्थोका अर्थ है, पात्र-‘वनमें वृक्ष होते हैं, उन वृक्षोंसे लकड़ी बनती है, और उस लकड़ीसे वर्तन बनते हैं, इसलिये पात्र अग है और वृक्ष अथवा वन पूर्ण है। इस अशके लिए पूर्णका प्रयोग यहा हुआ है। इस कारण “ वनेषु सद्- दधिरे ”, अथवा ‘ वनस्य अठरे सीदन् ’ इसका अर्थ है, कि लकड़ीके वर्तनमें सोमरसका रस जाता। यह वैदिक-वर्णनकी शैली है। “ वन ” का अर्थ है, “ लकड़ीके वर्तन ” यह वैदकी परिभाषा है। यह शैली ठीक तरह समझ लेनी चाहिए, नहीं तो वेदमंत्रोंका अर्थ ठीक तरहसे ध्यानमें नहीं आएगा और अर्थके अन्तर्भूत होनेके फलितार्थ भी नहीं होंगे। इस शैलीके दूसरे उदाहरण भी यहा देलने योग्य है—

५ कविः सिन्धोः उर्मो अधिधितः ( ४८६ )—जानी सिन्धुके लहरीमें रहता है। ( कविः ) जानी, ज्ञान बढ़ाने-वाला सोम नदीके पानीमें मिलाया जाता है।

६ सोमावः अप ऊर्मयः प्र नयन्त ( ४७८ )—सोमरस पानीके लहरे पार लाया गया। सोमरस पानीमें मिलाये जाते हैं।

७ सृज्यमानः समुद्रे चार्च इन्वसि ( ५१७ )—मुद्ग होता हुआ यह सोमरस समुद्रमें शब्ब करता हुआ जाता है। सोमरस छनते समय पानीके वर्तनमें शब्ब करते हुए पड़ता है। नीचे पानीके वर्तन है, उसका निर्देश यहा “ समुद्र ” पदसे किया है।

८ सोमावः समुद्रस्य विष्टये अग्नि पवन्ते ( ५१८ )—सोमरस समुद्रके ऊपरके भागमें छाने जाते हैं। सोमरस पानीके वर्तनमें छाने जाते हैं।

९ देवेभ्यः मत्सरः समुद्रः ( ५२१ )— देवोंके लिए आनन्द देनेवाला यह सोमरस-समुद्रमें मिलाया जाता है, अथवा सोमरसका समुद्र लहता रहा है। अर्थात् सोमरस पानीमें मिलाया जाता है।

१० अत्यः न शृषा पात्रांसि नदीषु दृष्टुम् ( ५५८ )—पौडा जैसे सरलतापूर्वक अपनी शक्तिसे रवाना करता है, उसी प्रकार ये सोमरस नदीमें स्नान करते हैं। अर्थात् सोमरस पानीमें मिलाया जाता है। इस स्थानपर “ नदीषु ” ( नदियोंमें ) यह पद शृषावर्तनमें प्रयुक्त हुआ है। अनेक नदियोंमें स्नान करता है। सोमरस पानीमें मिलाया जाता

है यह कहनेके बजाय सोम नदियोंमें स्नान करता है, ऐसा कहा है।

११ सिन्धुनां प्राणाः फलशान् अग्नि अचिक्रदत् ( ५५९ )— नदीके प्राण वर्तनमें शब्ब करते हुए जाते हैं। इसका अर्थ है कि नदीके प्राणहृषी पानी वर्तनमें भरे जाते समय शब्ब करते हैं।

१२ सिन्धोः उच्छ्रयासे पतयन्तं उक्षणां हिरण्य-पायः पशुं गृभ्णते ( ५६४ )— नदीके पानीमें पड़े हुए बेलको सोनेके आभूषणको पहने हुए हाथोंसे पशु सामझकर पकड़ते हैं। “ उक्ष्णा ”— बेल, सोमरस; पशु, जानवर, देवनेवाला, चमकनेवाला, नदीके पानीमें सोम मिलाया जाता है, और यह वहा चमकने लगता है, और वह सोनेकी अगुडी पहने हुए हाथोंसे छाना जाता है। यहा “ सिन्धोः उच्छ्रयासे ” ( नदीके भवरमें ) यह शब्ब नदीके पानीसे भरे हुए वर्तनके लिए प्रयुक्त हुआ है। “ पशु ” शब्बका अर्थ है, चमकने-वाला सोमरस।

“ पश्यति इति पशुः ” जो देखता है यह पशु है। देखनेका अर्थ है धक्कना। रस धक्कता है, यह अपने तेजसे सबको देखता है। उक्ष्णा— बेल, बल बढ़ानेवाला सोम।

इस प्रकार “ अंदाके लिए पूर्णका प्रयोग ” शब्बमें संकटों स्थानपर आता है। उन्हीं समय लेना अत्यावश्यक है। इसके घोड़ेसे और भी उदाहरण देखिए—

### दूषमें सोमरसका मिलाना

गायके दूषमें सोम मिलाया जाता है। इसका वर्णन वेदमें इस प्रकार है—

१ सुजातं अप्सुरं गोभिः परिप्लृतं इन्दुं ( ४८७ )— उत्तम प्रकारसे तैयार किया गया और शीघ्रतासे पानीमें मिलाया गया सोमरस ( गोभिः परिप्लृतं ) गायके दूषमें मिलाया जाता है। “ गायसे मिश्रित ” का अर्थ है “ गायके दूषसे मिश्रित ”। दूष गायका अंग है, इस अशके लिए पूर्ण “ गाय ” का प्रयोग किया है। और भी देखिए—

२ हे इन्दो ! गा-अग्नि इहि ( ५०५ )— हे सोमरस ! तू गायके पास जा, अर्थात् तू गायके दूषमें मिल जा ! यहाँ पर “ गाः ” अनेक गायोंका प्रयोग “ गायके दूष ” के लिए किया है। उसी प्रकार—

३ नृभिः यतः गाः निर्णिजं धुरते ( ५३० )— मनुष्यों-द्वारा बन्धन द्वारा बन्धनर निष्कांडा मया सोमरस गायका रूप

धारण करता है, अर्थात् सोमरस गायके रूपमें मिलाया जाता है। " गाः निषिञ्जं " गायके रूपका मतलब है " गायके रूपका रूप "। यो शब्द गायके रूपका वाचक है। अतःके लिए पूर्णका प्रयोग वेदमें इस प्रकार होता है। और भी देखिए—

४ कलशो इन्द्रं वायसानाः गाः आयन् ( ५३७ )- कलशमें सोमके पास इच्छा करती हुई गायें आईं। इसका अर्थ है कि कलशमें भरे हुए सोमरसमें गायोंका रूच मिलाया जाता है। कलशमें पाम जा ही नहीं सकती। जब एक ही नहीं जा सकती तो फिर अनेक कैसे जा सकती हैं। अतः यहाँ गायको रूपका वाचक मानना पड़ेगा।

५ शुचिं वर्णं गोषु अथि धारय ( ५७५ )- शुद्ध वर्णको गायमें स्थापित कर। सोमरसके शुद्ध वर्णको गायके रूपमें मिला। सोमरस और गायके रूपका मिश्रण कर।

६ ते वर्णं गोभिः अमियासवामसि ( ५७५ )- तेरे सोमके रंगको गायसे आच्छादित करते हैं। सोमरसमें गायका रूच मिलाकर उत्तम रूपका सत्कथन हम करते हैं।

७ रसः हृदि दिव पयसे ( ५७८ )- हरे रंगका सोमरस धूलोकसे छाना जाता है। " ऊपरके वर्तनसे " सोमरस छाननासे छाना जाता है। " ऊपरके वर्तनसे " बहनेके बजाय " दिव। " धूलोकसे बह दिया। धूलोक हमेशा ऊपर ही है, इसलिए ऊपरसे वर्तनको " सु " लोणका सूचक पत्रमें माना गया।

इस प्रकार " अतःके लिए पूर्णके प्रयोग " को संदिग्ध शैली देखने योग्य है। यह वैदिक भवोंकी विशेषता मननीय है।

### सोमको सोनेसे छाना

सोमबल्ली पावरसे कूटी जाती थी। ये पावर कूटनेसे सतक पकड़नेके लिए ऊपर पातके और नीचेकी भीर पीत और मोटे होते थे। कूटनेके बाद हाथकी अगुलियोंसे बधाकर रस वर्तनमें भरते थे। उस हाथमें सोनेकी अगुड़ी पहनते थे। इस सोनेके उस रसके साथ लपनेसे रसाने विशेष गुण उत्पन्न होते थे। इसलिए कहा भी है—

१ हेमना प्यमानः देयः रसः देधेभिः समष्टुस्त ( ५२६ )- सोनेसे पबित्र होनेवाला यह दिव्यरस देवोंको मिलाया जाता है।

२ हिरण्य-पायः ( ५२७ )- सोनेसे पबित्र होनेवाला यह रस है।

इस प्रकार हाथमें पहनी हुई सोनेकी अगुड़ी सोमरससे छूती थी। इससे सोनेसे उत्तम कुछ विशेष गुणोंका आना स्वाभाविक है।

इस कूटे हुए सोमका रस हाथकी अगुलियोंसे बधाकर निकाला जाता था। उसका वर्णन इस प्रकार है—

१ साकं उक्षः स्वसारः मर्जयन्तः, वश धीतयः धीरस्य धनुः ( ५३८ )- एक जगह रहकर कार्य करने वाली बहनें-हाथकी अगुलियाँ सोमको शुद्ध करती हैं, सोमको पीसकर उसका रस निकालती हैं। ये वस अगुलियाँ धर्मवान सोमको धारण करती हैं, हाथसे रस निकालती हैं। इस प्रकार सोमबल्लीसे रस निकलता था।

### सोमरसमें पानी मिलाया

ऊपर लिखे हुएके अनुसार सोमका रस निकालनेसे बाद जो छरार हिस्सा हाथसे बघता उसे " नृजीय " कहते थे। यह छरार हिस्सा एक तरफ करके रस निकाला जाता था। फिर यह रस छलनीसे छाना जाता था। इसे छाननेके पहले इसमें पानी मिलाते थे। पानीको मिलानेसे सम्म्यगमें वर्णन इस प्रकार है—

१ धनुष दक्षः ( ४७३ )- पानीमें मिला हुआ सोमरस बल बढ़ानेवाला होता है।

२ कचि सिन्धोः ऊर्मौ अधिध्रितः ( ४८६ )- पट शान बढ़ानेवाला सोमरस नदीके पानीमें मिलाया गया है।

३ मानुषीः अपः हिन्दानः ( ४९३ )- मनुष्योंका हित करनेवाले पानीमें सोमरस मिलाया गया है।

४ महीः अपः यधियास ( ४९४ )- महत्त्ववाले जलोमें सोमरस मिलाया गया है।

५ विचपंथिः हितः पयमानः अयं आप्यं वृष्ट् हिन्द्यासः स चेतति ( ५०८ )- बानी, हितकारी, शुद्ध बिया जानेवाला यह सोमरस महान् जलोंमें मिलानेके बाद द्रवितको बढ़ानेवाला होता है। इससे मेधा प्रतीत होता है कि सोमरस डूबने या तिकुने पानीमें मिलाया जाता था।

" वृष्ट् आप्य हिन्द्यासः " अथि पानीमें यह मिलाया जाता था।

६ अन्वु अन्तः द्धन्वान् ( ५१२ )- पानीमें सोमरस मिलाया जाता है।

७ सुतं परि विचत ( ५१२ )- सोमरसमें पानी डालो। इससे भी मान्य पड़ता है कि सोमरसमें पानी अधिक होता था।



८ अर्णसा प्रपिये ( ५१४ )- पानीमें सोम मिलाया जाता है, " अर्णस् " का अर्थ है पानीका समुद्र । समुद्रमें मिलानेका अर्थ है, बहुतसे पानीमें मिलाना ।

९ देवेभ्यः मत्तरः समुद्र पिघर्मव ( ५२१ )- देवोंको देनेके लिए आनन्दवर्धक सोम पानीमें मिलाया जाता है । इसे मिलानेके बाद वह विदोष गुणोंसे मुक्त होता है, अर्थात् पीनेके लायक होता है ।

१० यना चलानः रत्न-पा ( ५२८ )- पानीमें मिला हुआ सोम रत्नोंकी धारण करता है । वह घमकता है ।

११ मधुमान् अपः चलानः ( ५३२ )- मीठा सोम पानीमें मिलाया जाता है ।

१२ सरसि प्रघ-व ( ५४१ )- पानीमें जाकर मिला जा ।

१३ अयं गर्भः सोम मत्तियः ( ५४२ )- पानीमें मिला हुआ सोम बलवान् है । पानीके गर्भमें सोम रहता है, अर्थात् पानी अधिक और सोम थोड़ा रहता है ।

१४ रथ्ये यथा असर्जि ( ५४३ )- युद्धमें जिस प्रकार घोड़ा भेजा जाता है, उसी प्रकार सोम पानीमें छोड़ा जाता है ।

१५ अ-मुहः प्रियं काम्यं अमि नवन्ते ( ५५० )- द्योह न करनेवाले पानी मित्र और चाहने योग्य सोमसे मिलानेके लिए जाता है । अर्थात् यह मित्रण पुत्र और उत्सम होता है ।

१६ सिन्धुनां प्राणा इन्द्रस्य दार्दि आधिदान् ( ५५९ )- तबोने प्राण इन्द्रके प्रिय सोममें मिल गए । इन्द्रकी सोमरस बहुत शक्ति लयता है, उसमें नबोके प्राण अर्थात् पानी मिलाया जाता है ।

१७ अदनेन अपतुरं घनप्रक्षं उद्ग्रुतं सोस परि पिचत ( ५८० )- घोड़ेके समान पानीमें जानेवाला, पानीमें मिश्रण होनेवाला सोम है । उसका रस निरालकर उसमें पानी मिलाओ ।

१८ मदिन्ममः अपां ऊर्मिः द्य श्रीटन् ( ५८४ )- माता देनेवाला सोम पानीमें हट्टोके साथ खेलता है । सोमरस पानीमें मिलाया जाता है ।

१९ मसुद्रः गोपाः वृषा रुमानः ( ५२९ )- पानीमें और गायके दूधमें मिलानेके बाद वह बल बढानेवाला होता है ।

२० अयः घमानः पुनानः धारया अर्धति ( ५११ )- पानी मिलाके बाद छाया जाता हुआ सोम धारसे पीनेके लिये चिरता है ।

२१ भंजो पयसा मसुरनुं कोशं मच्छ ( ५१४ )-

सोमका दूधसे मिश्रण होनेके बाद वह शहरसे भरे बर्तनमें सीधा जाता है ।

इस प्रकार सोमरसमें पहले पानी मिलाकर वह छाया जाता था । हाथोंसे दबाकर निकाला गया सोमरस पाया होता था, उसमें पानी मिलानेसे वह पतला होता था । उसके बाद वह दसापवित्र अर्थात् बकरीके बालोंसे बनी छलनीसे वह छाया जाता था, उससे छननेसे सोमबत्तीका मोटा-थोटा भाग उसमें नहीं जाता था, और वह पीनेलायक होता था ।

### सोमरसकी छलनी

सोमरस छाननेकी छलनी बकरीके बालोंसे बुनी हुई होती थी । उस छलनीका वर्णन इस प्रकार है—

१ वृषा देवयु-अव्या धारोभिः मंत्रया धारया पयस्य ( ५०६ )- बल बढानेवाला देवोंके पास जानेवाला सोमरस बकरीके बालोंकी छलनीसे धीरे-धीरे छाया जाता है ।

२ सोवृषि स्वान अव्यनां स्तुभिः अभिप्राति ( ५१५ )- रस निकालनेके लिये बालोंके द्वारा निषोडा गया सोमरस बकरीके बालोंसे छाया जाता है ।

३ अव्या धारैः परि पुनानः ( ५१९ )- बकरीके बालोंसे छानकर वह रस पीचे चिरता है ।

४ पुनानः अय्य धारैः अयेपि ( ५६२ )- छाया जाता हुआ वह रस भेरेकी बालोंकी छलनीसे पीचे चिरता है ।

५ पुनान सोम ऊर्मिणा अव्यं धारैः पिपापति ( ५७२ )- छाया जाता हुआ सोमरस सहरोसे मुक्त होकर भेरेके बालोंकी छलनीमें शोधकर जाता है । जराही पीचे छाया जाता है ।

६ सुतः मन्वा धारोभिः धारया पयसे ( ५८४ )- सोमरस निचालनेके बाद वह भेरेके बालोंकी छलनीमें गुड़ होता है ।

७ सोमः पवित्रे पयंशरत् ( ४७५ )- सोमरस छलनीमें पीचे चला है ।

८ सहस्रधारः अव्यं अय्यंमि ( ५२० )- हजारों धाराओंमें, भेरेके बालोंकी छलनीमें पीचे चिरता है ।

९ वृषः अय्यं धारैः मन्वेपि ( ५३४ )- गुड़ होता हुआ वृष भेरेके बालोंकी छलनीमें पीचे चिरता है ।

१० म्नापु अय्यं धारैः अति पयसा ( ५१५ )- पीछा यह सोमरस भेरेके बालोंकी छलनीमें छाया जाता है ।

११ हरिं त्वं चारेण परि पुनन्ति ( ५५२ )- हरे रगके उस सोमको छलनीमें छानते हैं ।

१२ हरिः रंथा हरसिं आति पवते ( ५७६ )- हरे रंगका यह सोमरस अपनेसे खरब हिस्सेको दूर करते हुए शूद्ध होता है ।

इन पवनसे सोमरस छाननेकी वत्पना अच्छी तरह की जा सकती है । भेड़के बालोंकी बुनी हुई वह छलनी होती है, वह वर्तनके ऊपर बांधी जाती है, और ऊपरसे एक धतनमे धार बांधकर उस छाननीपर पानी मिश्रित सोमरस डाला जाता है । जो कुछ सोममें कूड़ा कारकट होता है, वह रस छाननीपर रह जाता है, और नीचे वर्तनमें शूद्ध रस भर जाता है । छाननीसे छाने बिना रसको किसी भी वेवताके लिए नहीं दिया जाता । इन्द्रादि देवोंको देनेके लिए, कुछ कुछ सोमरसमें न रहने पायें, इसलिए यदी ही सावधानीसे छाना जाता था । इस प्रकार यह सोमरस छाना जाता था, उसके बाद उसमें दूध आदि मिलाया जाता था । इसलिए पहले इस छाननेके सम्बन्धमें मयमें क्या कहा है, वह द्रष्टव्य है ।

### सोमरस छानते हुए शब्द होना है

कोई द्रव पदार्थ जब दूतरे द्रव पदार्थमें डाला जाता है, तब शब्द होता है । उभी प्रकार सोमरसको छानते हुए शब्द होता था । नीचेके वर्तनमें पानी होता था । उसमें छलनीके द्वारा सोमरस छाना जाता था । इस कारण आवाज होती थी । उसका वर्णन वेदमन्त्रमें इस प्रकार है—

१ हरिः कनिष्कद्वयं पति ( ४७१ )- हरे रगका सोमरस शब्द करता हुआ नीचेके वर्तनमें जाता है ।

२ सुतासाः श्वसे प्राप्रमुः ( ४७७ )- सोमरस पवनसे लिपु शब्द करते हुए नीचेके वर्तनमें जाता है ।

३ सोमासः अपः ऊर्मयः प्र नयन्त ( ४७८ )- सोमरस पानीके लहरोंमें सेजाया जाता है । पानीमें मिलाया जाता है ।

४ सुताः श्रुया पवस्व ( ४७९ )- रस निकालनेके बाद बल बढ़ानेके लिए छेनता जा ।

५ पवमान, ( ४८० )- छाना जानेवाला सोम ।

६ स्वानासः इन्द्रवः मधोः धारया मदाय परि अर्पति ( ४८५ )- रस निकाला हुआ सोम मीठे धारसे आगद बढ़ानेके लिए छाना जाता है ।

७ कविः सिन्धोः ऊर्मौ अधिधित, परि प्रासिष्यत्

( ४८६ ) मान बढ़ानेवाला सोमरस नदीके पानीमें मिलावनेके बाद नीचे वर्तनमें गिरता है ।

८ सुता, कलदां अधिशात् ( ४८९ ) सोमरस बलशतमें गिरता है ।

९ सुतः पवित्रे अस्वर्जि न्यक्रमीत् ( ४९० )- सोमरस छाननीसे छाना जाता है ।

१० भूर्पयः त्वेषा अपातः कृष्णां त्वचं अपप्रन्त-प्राप्रमुः ( ४९१ )- जल्दीसे जानेवाले तेजस्वी, पवित्रशाल सोमरस अपने हरे रगके बालको उतार कर वर्तनमें छनते हुए जाते हैं ।

११ अया पवस्व ( ४९२ )- इस धारासे छन जा ।

१२ अया चीती पवस्व ( ४९५ )- इस रीतिसे शूद्ध हो ।

१३ स्वानः पवित्रे वा धार्य ( ४९६ )- रस निकालनेके बाद छाननीसे छन ।

१४ श्रुया हरिः कनिष्कद्वयं ( ४९७ )- बल बढ़ाने-वाला यह हरे रगका सोम शब्द करता हुआ छनता जाता है ।

१५ पवित्रे आनय, इन्द्राय पातये पुनीति ( ४९९ )- छलनीमें सोमरस डाल । इसके पीनेके लिए पवित्र कर ।

१६ द्रोणाग्निं रोरयत् व्यं ( ५०३ )- वर्तनमें शब्द करता हुआ जा ।

१७ मनीषिभिः सृज्यमानः धारया पवस्व ( ५०५ )- बुद्धिमान् ऋषिगणों द्वारा शूद्ध होनेवाला सोमरस शूद्ध होता है ।

१८ इन्द्रस्य सिष्कृतं गच्छन् पयते ( ५१० )- इन्द्रके पास जानेके लिए शूद्ध होता है ।

१९ अव्यया वाराणि तिर आ पवसे ( ५१३ )- नेडके बालोंको बनी छलनीसे सोमरस शूद्ध होता है ।

२० हरिः चम्बोः, पुरि जनः न, विशत् ( ५१३ )- हरे रगका सोमरस वर्तनमें, जिस प्रकार नगरमें मनुष्य जाते हैं, उसी प्रकार जाता है ।

२१ सुहस्वया सृज्यमानः समुद्रे धार्य इन्वति ( ५१७ )- उत्तम हाथसे निकाला गया और छाना गया यह सोमरस समुद्रमें शब्द करता हुआ प्रविष्ट होता है । नीचे वर्तनमें रखे हुए पानीमें सोमरस मिलाया जाता है ।

२२ धारया पवित्रं अस्वस्त ( ५२२ )- धार बांधकर छलनीसे नीचे सोमरस जाता है ।

२३ प्रद्वय कौय परि निर्पिदं ( ५२३ )- वर्तनमें भर था ।

२४ वराह रेभन् पदा अभ्येति ( ५२४ ) उत्तम दिनमें शब्द करता हुआ वर्तनमें जाता है ।

२५ सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति ( ५२५ ) सोमरस शब्द करते हुए छाननीसे नीचे आता है ।

२६ मधुमान् वृष्या पवित्रं पर्येक्षाः ( ५३१ )- मोठा और बल बढ़ानेवाला सोमरस छाननीसे टपकता है ।

२७ अधिस्तानौ अच्ये पवस्व ( ५३२ )- ऊचे स्थान-पर भेड़के बालकी छलनीसे छनता जा ।

२८ मत्सरः घृतवन्ति द्रोणानि अयरोह ( ५३२ )- आगन्ध देनेवाला सोमरस जलके पासमें उतरता है ।

२९ मधुमतीः धाराः प्रानृद्रतं ( ५३४ )- मीठी धारा बहती है ।

३० दूधः इन्दुः कलशं मति आसीदतु ( ५३५ )- तेजस्वी सोमरस कलशमें जाकर बँठता है ।

३१ प्रियः अधिरुपर्धते ( ५३९ )- अयुक्तिया रस निकाल-नेके लिए पत्थर स्पर्श करती है ।

३२ सोम पुनानः अर्पति ( ५४६ )- सोम छानता जाता हुआ वर्तनमें जाता है ।

३३ स्थानाः स्वर्दिन्दुः इन्दुः सोमा पयस्ते ( ५४८ )- रस निकालनेके बाद से तेजस्वी सोमरस छाने जाते हैं ।

३४ चनोहितः प्रियाणि नामानि अभि पयस्ते ( ५५४ )- अन्नके समान हितकारी सोम मिय जलोंमें मिला-कर छाना जाता है ।

३५ येषु यक्षः अभिघर्षते ( ५५४ )- इन जलोंमें मिलानेके कारण सोमरस बढ़ता है ।

३६ पय फोशे प्र आचिन्द्रत् ( ५५६ )- यह सोम-रस वर्तनमें शब्द करता है ।

३७ शतयामना पथा कलशे सं अर्पति ( ५५७ )- ती छिन्नोवाली घलनीके दासते यह सोमरस कलशमें जाता है ।

३८ पयमानः कनिऋद्त् ( ५७२ )- सोम छानते समय शब्द करता है ।

३९ पुनानः सोमः मधुद्सुतं कोशं परि अर्पति ( ५७७ )- छाना जाता हुआ सोमरस बीठे रस छाननेवाले बर्तनमें जाता है ।

४० मध्यमं फोशं धि शुप ( ५७९ )- शहरके बर्तनमें मिल ।

इग प्रकार सोम छाना जाता है । ऊपरके बर्तनसे सोम-

रस भेड़के बालोंसे मनो छलनीसे नीचेके पानीके बर्तनमें छाना जाता है, तब उसका शब्द होता था । ये वर्णन ऊपरके श्लोकोंमें अनेक प्रकारसे किये हैं । उनको देखनेसे छाननेकी क्रिया अच्छी तरह शात होगी ।

### सोमका दूधमें मिलाना

सोमरसकी पानीमें मिलाकर छाननेके बाद वह दूधमें मिलाया जाता था । इस सम्बन्धमें वर्णन इस प्रकार है—

१ सु-जातं अन्तुरं गोभिः परिप्लृतं इन्दुं देवाः उप अयासिषुः ( ४८७ )- उत्तम प्रकारसे तैयार किये गये सोमरसमें पानी मिलावनेके बाद पायका दूध मिलाते हैं, और फिर तब वेच सोमके पास जाते हैं । इससे तब प्रक्रियाका ज्ञान हो जाता है, प्रथम सोमरस निकालना, फिर उसमें पानी मिलाकर उसे छानना, उसके बाद उसमें दूध और दाहद मिलाया फिर अन्तमें पीना यह सोमरसकी प्रक्रिया थी ।

२ रुधा गाः अभि इद्वि ( ५०५ )- धनकनेवाला सोमरस पायके दूधके पास आता है, अर्थात् वह पायके दूधमें मिलाया जाता है ।

३ सोमः गव्यन् ( ५३३ )- सोम पायके दूधमें मिलाया जाता है ।

४ हे पर्यमान ! धाम पवसे ( ५३४ )- हे सोमरस ! तू दूधमें मिलाया जाता है, अपना स्थान पवित्र करता है । दूध मिलानेके बाद सोमका घर पवित्र होता है ।

५ कलशे इन्दुं यायशानः गावः आयन् ( ५३७ )- कलशमें सोमरसको इच्छा करती हुईं गायें आईं, अर्थात् सोमरसमें पायका दूध मिलाया गया ।

६ शुक्लाः अनुराय निर्णिजे वयन्ति ( ५५१ )- सफेद रंगका पायका दूध बलवान् सोमके रूपको साफ करनेके लिए आच्छादित करता है । दूधमें सोम मिलाया जाता है ।

७ सुदुधः घृतद्व्युतः वाध्राः पयसा धेतयः अभि अर्पन्ति ( ५५६ )- उत्तम दूध देनेवाली, घी छाननेवाली, रभाती हुईं गायें सोमके पास आती हैं । अर्थात् सोममें पाय-का दूध मिलाया जाता है ।

८ अस्मि धिसस धेतयः आ शिरं दुदुहिरे ( ५६० )- इस सोमके लिए ३१ गायें दूध देती हैं । इन गायोंका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है ।

९ धेतय वचनयन्तः उध्रियाः ऊधभिः परिस्तुतं निर्णिजे धिरे ( ५६३ )- गायें रभाती हुईं अपने पनते

द्वयनेवाले द्रूपते सोमके लक्ष्मी पारण करती हैं, अर्थात् द्रूपमें सोम मिलाकर उसे सफेद बनाती हैं ।

१० शुक्ति वर्णं गोषु अधिचारय ( ५७४ )- शुद्ध रंगकी गोशर्मों स्थापित कर । सोमरस गायके द्रूपमें मिलाकर श्वेत रंगका हो जाता है ।

११ ते वर्णं गोभिः अग्निास्यामसि ( ५७५ )- तेरे सोमके रंगकी हम गायके द्रूपमें आच्छादित करते हैं । अर्थात् सोमरसका हवा रंग गायके द्रूपमें आच्छादित होनेपर सफेद रंगका बोलने लगता है ।

इस प्रकार गायका द्रूप सोमरसमें मिलातेके बाद वह हरे रंगका सोमरस सफेद बोलने लगता था और पचकने लगता था । इसके बाद वह पिया जाता था । पीनेके पहले उसमें गूद डाला जाता था, जीरा आटा आदि इच्छा हो तो मिलाया जाता था, जो भूखर उरका आटा बनाकर मिलाते थे और फिर उसे पीते थे ।

यह चमकता भी था, उसके विषयमें इस प्रकार वर्णन है—

### सोमरस चमकता है

सोमरस पानी और द्रूपमें मिलाके बाद चमकने लगता था, और इनके बिना भी यह चमकता था । इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि उसमें फास्फोरसकी मात्रा अधिक होती होगी । उसके चमकनेका यह गुण बहुत महत्वका है, इसी कारण उसे बुद्धिपूर्वक, उस्ताहयमक और आनन्दवर्षक कहा है । अब उसके चमकनेके विषयमें बगन देसिए—

१ स्वर्दशो भानुना शुमन्त इयामहे ( ४८० )- स्वर्ण तेजस्वी और अपने तेजसे चमकनेवाये सोमरसकी हम मन्त्राते हैं, हम उसकी स्तुति करते हैं ।

२ देव पयस्व ( ४८२ ) चमकनवाला सोम शुद्ध होते, दू छनता जा ।

३ पयमानः वैभयानर ज्योतिः दिवः चित्र अजी-जनत् ( ४८४ ) छाना जानेवाला यह सोमरस सब मनुष्योंका हित करनेवाला, तेजस्वी, सुकीर्णमें चमकनेवाला उत्पन्न हुआ ।

४ आययः एवे सूर्ये जनन्त ( ५०२ )- मनुष्योंने-श्रुतिगोत्रों तेजके लिए सूर्य-सोम-उत्पन्न किया है ।

५ शुमन्तम ( ५०३ )- सोम बहुत तेजस्वी है ।

६ हे देव ! भृषा शुमान् असि ( ५०४ )-हे प्रकाशमान् सोम ! दू रस बढ़ानेवाला और तेजस्वी है ।

७ हिरण्ययः देव ( ५११ )- यह सोमके समान चमकता है ।

८ रभसानि यस्मा आदत्ते ( ५३३ )- यह सोम तेजस्वी वस्त्र पहनता है ।

९ अर्कः सूर्ये अपिन्व ( ५३४ )- तेजसे सूर्यको भरता है । सूर्यको भी तेज देता है, इतना यह सोमरस तेजस्वी है ।

१० सोम उभो रोदसी च्यरयत् ( ५४६ )- सोमरस दोनों ही लोकों-छायापुत्रियोंको-तेजस्वी करता है ।

११ त्रिच्छापाः सूर्यस्य रथ अधि आरुहत् ( ५५४ )- यह सानी सोमरस सूर्यके रथपर चढ़ गया है, अर्थात् इससे सूर्यका तेज बढ़ा है, अर्थात् यह स्वयं तेजस्वी है ।

१२ राजा ह्य दस ( ५६२ )- राजाके समान यह तेजस्वी बोलता है ।

इस प्रकार सोमरस अपने तेजसे चमकता है । इस विषयमें यह बगन उपरोक्त मन्त्रोंमें आया है । अब इसका एक दूसरा गुण देसिए—

### उस्ताह बढ़ानेवाला सोम

सोमरस चमकता है, अर्थात् उसमें स्वाभाविक तेज है । ऐसा कोई पदार्थ उसमें है, जिसके कारण यह चमकता है । अपने चमकनेवाले गुणके कारण ही यह उस्ताह बढ़ानेवाला है । देसिए—

१ श्वेतन प्रिय इन्द्र ( ४८१ )- यह सोमरस श्वेतना बढानेवाला है, इस कारण यह सभीको प्यार है ।

२ वाजिन आशय सोमास प्रास्वहत ( ४८२ )- बलपूर्वक और उस्ताह बढ़ानेवाले सोमरस छाने जाते हैं ।

३ मरिचः जाशुवि ( ५१४ )- आनन्द बढ़ानेवाला और उस्ताह बढ़ानेवाला, सबको क्षाप्रत रखनेवाला यह सोम है ।

४ मदाय पयने ( ५४० )- आनन्द बढ़ानेवाला यह सोम शुद्ध किया जाता है ।

इस प्रकार सोमरस उस्ताह बढ़ानेवाला है, ये इस सम्बन्धमें बगन हैं । जिस कारण यह चमकता है इसीलिए यह उस्ताह बढ़ानेवाला है । अब उसके आनन्द बढ़ानेवाले गुणोंका बगन देसिए—

### आनन्द बढ़ानेवाला सोम

१ मदेनु सार्वधा असि ( ४७५ )- आनन्द देनेवाले रसोंमें सोमरस सबसे अधिक आनन्द देनेवाला है ।

२ ते मद्ः इन्द्रं गच्छतु ( ४७८ )- तेरा जानव बढ़ाने-  
वाला गुण इन्द्रको प्राप्त हो ।

३ मत्सरः क्रतुवित् पयसे ( ४९२ )- जानव बढ़ाने  
वाला और यज्ञमें जानवाला सोमरस छाता जाता है ।

४ सुतस्य अग्नयः धारा मग्दी ( ५०० )- सोमरस  
रूपी अग्निकी धारा जानव देनेवाली है ।

५ मन्दानः वृषापसे ( ५०७ )- हे सोम ! तू जानव  
और बल बढ़ानेवाला है ।

इस प्रकार यह सोमरस जानव बढ़ानेवाला है ।

### बुद्धिबर्धक सोम

अब सोमके बुद्धिबर्धक गुण बतें—

१ कथिः ( ४८६ )- ज्ञानी, बुद्धिमान्, कान्तदर्शी ।

२ कथीनां मतिः ( ४८९ )- ज्ञानी लोगोंकी बुद्धि  
बढ़ानेवाला ।

३ कथिकर्तुः ( ४७६ )- ज्ञानी और कर्म जाननेवाला ।

४ विमः अभवः ( ५१९ )- सोम ज्ञानका बढ़ानेवाला है ।

५ पुरमेधाः ( ५१४ )- बहुत बुद्धिमान् ।

६ सोमासः विपश्चित्तः ( ४७६ )- सोमरस बुद्धि  
बढ़ानेवाला है ।

७ मनोपिणः सोमासः ( ५१८ )- बुद्धि बढ़ानेवाले  
सोमरस है ।

इस प्रकार सोम बुद्धिबर्धक है ।

### बलबर्धक सोम

सोम पीनेके बाद बल बढ़ाता है ।

१ दक्षसाधनः ( ४७४ )- सोमरस बल बढ़ानेवाला है ।

२ वृषा बसि ( ४८० )- तू बलवान् है ।

३ वृषा वृषप्रसः ( ५०४ )- सोम बलवान् है, और  
पीनेवालेके अत और बल बढ़ानेवाले है ।

४ ते दक्षं वलं आपुणीमहि ( ४९८ )- तेरे सामर्थ्य  
और बल हम ग्रहण करते हैं ।

इस प्रकार उसके बल बढ़ानेवाले गुणका वर्णन है ।

### स्वादिष्ट और मीठा सोम

सोम स्वादिष्ट और हृद्य बढ़ानेवाला है ।

१ स्वादिष्टया मदिष्टया धारया पयस्य ( ४६८ )-  
स्वादिष्ट और जस्ताबर्धक धारते सोमरस धारण करता है ।

इस यज्ञमें सोमरस अत्यन्त स्वादिष्ट और हृद्य बढ़ानेवाला है,  
यह कहा है ।

२ तेन अन्धसा पयस्य ( ४७० )- सोममें अग्निक  
सत्व हैं और यह सुसहायक हैं ।

३ मधुमत्तमः ( ४७२ )- यह अत्यन्त मीठा है ।

४ पय मधुमान् ( ५५६ )- यह मीठा है ।

इस प्रकारका यह सोमरस है, स्वादिष्ट और मीठा होता  
था । इस कारण वह लोकप्रिय हो गया था ।

### मनुष्योंका हित करनेवाला सोम

सोम मनुष्योंका हित करनेवाला है, यह मं. ५१२ में  
“ नयं. ” शब्दसे प्रगट किया है ।

### दुष्टोंका नाश करनेवाला सोम

सोम शूरवीरोंका उत्साह बढ़ानेवाला है । उससे बल और  
शीघ्र बढ़ता है, इस कारण शूर सोमरसका पान करते हैं, और  
वे शूर-वीरताके काम करने लगते हैं । इस कारण दुष्टोंका  
नाश होता है । इस विषयमें निम्न मंत्र हैं—

१ अघ-शंस-हा ( ४७० )- पापकर्मोंके लिए प्रसिद्ध  
मनुष्योंका नाश करनेवाला है । सोमरस पीनेसे वीरोंमें  
उत्साह बढ़ता है, और वह उत्साह पापीलोगोंका नाश करता है ।

२ अ-राद्यण अपश्यन् ( ५१० )- जान न देनेवाले  
कजूसोंका सोम नाश करनेवाला है ।

३ विदवाः द्विपः अय जाहि ( ४७९ )- सब द्वेष करने-  
वालोंका नाश करनेवाला है ।

४ विदवाः मृधः अभ्यक्रीमिन् ( ४८८ )- सब दुष्टोंका  
नाश कर ।

५ मृधः अपध्नन् ( ४९२ )- वह दम्रुजोंको मारता है ।

६ अवेद्ययुं जानं जुदस्य ( ४९२ )- बेबोकी भ्रित न  
करनेवाले दुष्टोंको दूर कर ।

७ ते मदेयु नयतीः नय अयाहन् ( ४९५ )- तेरे  
पीनेसे उत्साह बढ़नेके कारण धीरोंने शत्रुके निम्नानवे नगरों-  
को तोड़ा ।

८ सोमानीः शूरः सोमः रथानां शत्रे प्रीति, अथ  
सोमा हर्षते ( ५२२ )- तेनाका तथालक करनेवाला शूर  
सोम रथके शत्रुभागमें जाता है और इतनी तेजा हविष  
होती है । सोमरस पीनेसे इस प्रकार बल बढ़ता है ।

९ रक्षः हन्ति, अरताः परि पाथते ( ५४० )-

पाससोंको मारता और कुट्टोंकी पीडा देता है। ऐसा यह सोम है।

१० बुधाय इन्द्रो अविद्य ( ४९४ )- बुधको मारनेके लिए इन्द्रका बल बढ़ाया। सोमरस पीनेके कारण बुधको मारनेका बल इन्द्रमें बढा।

सोम पीकर धूर सैनिक ऐसा कार्य कर सकते हैं।

### इन्द्रके लिए सोमरस

इन्द्रमें सोमपानसे शोभ बढ़ता है और यह राक्षसोंका बध करनेमें समर्थ होता है। इसलिये इन्द्रको सोम देनेकी परिपाटी है, वैलिये—

१ इन्द्राय पातवे सुतः ( ४६८ )-इन्द्रको पिलानेके लिए यह सोम तैय्यार किया गया है।

२ इन्द्रु इन्द्राय धीयते ( ४८९ )- सोमरस इन्द्रके लिए है।

३ मधुमुत्तमः शुश्रूतमः मद्ः इन्द्राय पयस्य ( ४७८ )- अत्यन्त मोठा, तेजस्वी और आनन्द बढ़ानेवाला यह सोमरस इन्द्रके लिए छान।

४ मरुत्वते इन्द्राय पयस्य ( ४७२ )- मरुतोंकी सेनाके साथ इन्द्रको यह सोमरस छानकर दे। इन्द्रको पिलानेके साथ उसके सैनिकोंकी भी रस पीनेके लिए दिया जाता है। अर्थात् सब उस्ताहित होकर शत्रुओंका नाश करते हैं।

५ सुतासः पथिववन्तः इन्द्राय क्षरन् ( ५४७ )- सोमरस छाना जानेके बाद इन्द्रको दिया जाता है।

६ इन्द्रुः इन्द्रस्य निष्कृतं प्र अयासीत्, स्वस्युः संगिरं न प्रामिनाति ( ५५७ )-सोमरस इन्द्रके घेठमें जाता है, और वहा अपने मित्रके घेठमें कुछ भी फट नहीं देता। सोमरसको पीनेसे इन्द्रको कोई कष्ट नहीं होता।

सोमरस अकेले इन्द्रको ही दिया जाता हो ऐसी बात नहीं, अपितु सभी देवोंको दिया जाता है। वैलिये—

७ देधेभ्यः पीतये पयस्य ( ४७४ )- देवोंको पिलाने योग्य सोमरस छान।

८ मद्मः देवान् गच्छन्तु ( ५४७ )- सोमरस देवोंको दो।

९ यिद्वयान् देवान् मदेन सह परि गच्छति ( ५५२ )- सब देवोंके पास यह सोमरस अपने आनन्द बढ़ानेवाले गुणके साथ जाता है।

इस प्रकार सब देव सोमरस पीते हैं और उता कारण वे जस्ताह और आनन्द युक्त होते हैं।

२४ ( साम. हिंवी )

### सोम घन देता है

सोम पानको भी देनेवाला है। इस विषयमें निम्न मंत्र हैं—

१ रतनधाः ( ५११ )- सोम रत्न देनेवाला है।

२ वायिणि द्यते ( ५२९ )- सोम घन देता है।

३ सहस्रदाः शतदाः भूरिदाया वाजी ( ५३१ )- हजारों, तीकड़ों और बहुतसा घन देनेवाला सोम है।

४ शतस्युः, सहस्रभणसं सुविद्युमं रयिं न अभ्यर्षि ( ५४९ )- सैकड़ोंके द्वारा चाहने योग्य हजारोंका पोषण करनेवाले, तेजस्वी घन हमें दे।

५ पिशानं बहुलं पुरस्यूहं रयिं अभ्यर्षसि ( ५१७ )- पीते रंगके बहुताके द्वारा चाहने योग्य बहुतसे घनको सु देता है।

६ सहस्रिणं सुवीर्यं रयिं भा पयस्य ( ५०१ )- हजारों प्रकारके उत्तम पराक्रम करनेवाले घन हमें दे।

७ नः मते तुने प्र अर्षसि ( ५०९ )- हमें बहुत घन प्राप्त हो इसलिये तु छाना जाता है।

सोम घन देता है, अर्थात् सोमपान करनेवाले यज्ञमानको लोगसि धन मिलता है। यज्ञ पान महान् पवित्र कार्य है। उत्तमं बढा धनं होता है। यह धानिकोंते दानरूपमें मिलता है।

### वेदमंत्रोंका गान

सोमरस निकालते हुए मंत्रोंका पाठ भी साथ-साथ चलता है, उसके सम्बन्धमें ये निम्न हैं—

१ तित्रः वाचः उदीरते ( ४७१ )- सोम जेठोंका पाठ होता है।

२ पुनासाय प्रगायत ( ५६८ )- सोमरसको छानते समय वेद मंत्रोंका गान करो।

३ पुनातं तं अभिगायत ( ५६८ )- सोमरस छानते हुए वेद मंत्रोंका गान करो।

४ ऋषीणां सासवाणिः अभि अनुयत ( ५७७ )- ऋषियोंकी सात छन्दोंवाली धारणी-वेद कहे।

५ इन्द्रवाहान् मद्रान् रुण्यन् ( ५३३ )- इन्द्रकी कन्यापण करनेवाली स्तुतिक गान करो।

६ विमं धीतिभिः शुम्भन्ते ( ४८८ )- शानी सोमको छाननेके समय स्तोत्रोंकी तोषा बढाई जाती है।

७ बर्हणा गिर्य ( ४८५ )- महान् स्तोत्रोंसे मंत्र बोले जाते हैं।

इस प्रकार वेदपाठ करते हुए सोमरस छाना जाता है।

### यज्ञ कर्ताओंका संगठन

सोम यज्ञकर्ताओंका संगठन करनेवाला है। इस विषयमें मंत्र देखिए—

१ पृच्छस्युहं कालं विभृत् ( ४८६ )— अनेक जिसकी प्रशंसा करते हैं, उन यज्ञ कर्ताओंको यह सोम संगठित करता है। यज्ञ करनेवाले महान् संगठन होता है। यज्ञ संगतिकरणका एक महान् साधन है।

### कुत्तेको दूर करो

यज्ञमें कुत्तेको आने नहीं देना चाहिए। मंत्र भी कहता है—

१ श्वानं अप हत ( ५५३ )— कुत्तेको दूर करो।  
२ सुताय दीर्घाजिह्वं श्वानं अपश्राविष्टम ( ५५५ )— सोमरातके पास लम्बी जीभवाले कुत्तेको मत जाने दो।  
इस प्रकार यज्ञ मण्डपमें कुत्तेको, सोमरसके पास नहीं आने देना चाहिए यह स्पष्ट कहा है।

### उपमा

इस पाचमान काण्डमें जो उपमामें आई हैं, और उन उपमाओं द्वारा जो मान दिया गया है, वह उनके ज्योंको देखकर समझमें आएगा—

१ श्वेनः न गिरिष्ठाः अंशुः योनिं आ सवत् ( ४७३ )— श्वेन पक्षीके समान पर्वत पर रहनेवाला सोम यज्ञशालामें जाकर बैठता है। श्वेनके समान सोम भी पर्वत पर रहता है, और वहासे जैसे श्वेन पक्षी उड़कर अपने स्थानपर जाता है, उसी प्रकार सोम यज्ञशालामें जाता है।

२ महिषा घनानि इव, सोमासः अप ऊर्मयः प्र नथन्त ( ४७८ )— भैसे जिस प्रकार वनमें जाकर पानी पीते हैं, उसी प्रकार सोम पानीमें मिलाया जाता है, और जिस प्रकार भैसे मलवान् होते हैं, उसी प्रकार सोमभी मलवान् होता है।

३ रथीः अश्वं इव इन्द्रः पयिष्ट अरुजत् ( ४८१ )— जिस प्रकार रथमें बैठनेवाला घोड़ेको हाँकता है उसी प्रकार सोम छाना जाता हुआ नीचेके बर्तनमें जाता है।

४ पचमानः दिवः चित्रं उपोतिः, तन्यतुं न, अजी-जन्तु ( ४८४ )— छाना जानेवाला सोम, धूलिकीमें चमकने लिये बिजलीके समान, चमकता है।

५ यथा रथ्यः, चम्प्योः सुतः पवित्रे असाजि

( ४९० )— जिस प्रकार रथके घोड़े छोड़े जाते हैं, उसी प्रकार बर्तनमें सोमरस छलनीसे छाने जाते हैं, नीचे छोड़े जाते हैं।

६ रवेयाः अयासाः, गाद्यः न प्र अक्रमुः ( ४९१ )— तेजस्वी प्रमगनशील सोमरस, जिस प्रकार गावें गोळमें जाती हैं, उसी प्रकार यज्ञ-मण्डपमें जाता है।

७ यथा सूर्ये अरोचयः, अपः हिन्दवानः ( ४९३ )— जिस प्रकार सूर्यको प्रकाशित किया, उसी प्रकार पानीमें जाकर तू भी तेजस्वी हो गया।

८ महान् भिवो न दशत, सूर्येण सं दिवुते ( ४९७ )— महान् भिवके समान दशतीय सोमरस सूर्यके समान चमकता है।

९ हरि चम्प्योः, पुरि जनः न, विशत् ( ५१३ )— हरे रंगका सोम बर्तनमें, नगरमें जिस प्रकार मनुष्य जाते हैं, उसी प्रकार जाता है।

१० मद्रिः न जाग्रुविः ( ५१४ )— आर्णवित होनेके समान तू जाग्रत है।

११ अश्वया इव हरिता धारया याति ( ५१६ )— घोड़ेके समान, यह सोम हरे रंगकी धारसे बर्तनमें जाता है। घोड़ी जिस प्रकार एक छगामते चबती है, उसी प्रकार यह सोमरस एक धारसे बर्तनमें पड़ता है।

१२ ह्याः पवमानाः, मत्सराः धारया पविर्षं अशु-क्षत् ( ५२२ )— घोड़ेजैसे घोये जाते हैं, उसी प्रकार सोमरस एक धारसे छानकर शुद्ध किया जाता है।

१३ वाजिनं अश्वं न, रया मर्जयन्तः ( ५२३ )— जिस प्रकार मलवान् घोड़ेको पीते हैं, उसी प्रकार सोमको छानकर शुद्ध करते हैं।

१४ अत्यः वाजी न, हरिद्रोषं ननक्षे ( ५३८ )— पूछ बीड़में बीड़नेवाले घोड़ेके समान, हरे रंगका सोम बर्तनमें जाता है।

१५ वाजिनि इव शुभ्रः, सूरे विद्राः, पशुवर्धनाय पञ्चं न मग्म ( ५३९ )— जिस प्रकार घोड़ेको खेवरीति सजाते हैं, सूर्यमें किरणें चमकती हैं, जिस प्रकार पशुओंके संवर्धनके लिये श्वाला विचारशील होकर गावोंके बाड़ेमें जाता है, उसी प्रकार सोमरस बर्तनमें छाना जाता है, तब वह चमकने लगता है।

१६ मातरः सूर्यं व्यायुनि जातं पारसं रिदन्ति न, अग्रुष्टः इन्द्रस्य काम्यं अभिनयन्ते ( ५५० )— जिता प्रकार गाय पहले पहलके बच्चेको घातती है, उसी प्रकार

द्रोह न करनेवाले अत इन्द्रको प्रिय लगनेवाले सोममें मिलाये जाते हैं ।

१७ अराधसं मत्तं भृगवाः न, श्वानं अप उत ( ५५३ )- जिस प्रकार वान वक्षिणासे रहित यतको भृगुश्रुति-ने त्याग दिया था अर्थात् दूर कर दिया था, उसी प्रकार मत्त भूमिमें शुकुतेको दूर करो ।

१८ युवातिभिः मर्यं इव, इन्द्रः सं अर्षति ( ५५७ )- अनेक रित्रियोंके साथ जैसे एक पुण्य रहता है, उसी प्रकार सोमरस जलके साथ मिलाता है ।

१९ अत्यः न, घृथा रसः नदीयं कृणुते ( ५५८ )- जैसे घुडबोझका घोडा बोझता है, उसी प्रकार सरकृतासे ही सोमरस नदीके पानीमें मिलाया जाता है ।

२० इयेन न, सोमः धृतवर्गं योनिं आ सद्त् ( ५६२ )- इयेनके समान सोमरस जलसे भरे हुए बर्तनमें जाकर बँडता है । पानीमें मिलाया जाता है ।

२१ शिमुं न, श्रिये परिभूयत ( ५६८ )- जिस प्रकार बालकको जेवरसे सजाते हैं, उसी प्रकार सोमरसको घोभासे लिए पायके रूपमें मिलाते हैं ।

२२ शिमुं न, हव्येः मूर्तेभिः स्वद्यन्त ( ५६९ )- जिस प्रकार बालकको जेवरसे सजाते हैं, उसी प्रकार हव्य पत्थरोंमें अर्थात् रूप आदि पदार्थोंके और स्तुतिपंक्ति स्वारिष्ट करते हैं ।

२३ भृति न, सोमाय वचः प्रोच्यते ( ५७३ )- गौकरको जैसे पत्र देते हैं, उसी प्रकार घोभाकी स्तुति करते हैं, यहाँ प्राचीनकालमें भी गौकर वेतन देकर रखे जाते थे, और उन्हें पालिक अथवा बैलिक वेतन धनके रूपमें दिया जाता था ऐसा प्रतीत होता है ।

### सुभाषित

१ तत् उग्रं शर्मं, महि श्रवः भूयसा ददे ( ४६७ )- वे शर्मसे मिलनेवाले सुख और महान् धरा अथवा अन्न भूमिपर हमें मिले ।

२ विद्या ओजसा दधानः मत्सरः ( ४६९ )- सब सामर्थ्यसे युक्त होकर आनन्द बढ़ानेवाला वह सोम ही ।

३ ते देवावीः अघशंलक्ष यरेण्यः मद्- ( ४७० )- तेरा मानव्य देवोंके पास बढ़ानेवाला, धारियोंका नाश करनेवाला और धैर्य ।

४ दक्षसाधनः मद्- ( ४७४ )- तेरा यह आनन्द बल बढ़ानेवाला है ।

५ मदेतु सर्वथा अस्ति ( ४७५ )- आनन्द देनेवाले पदार्थोंमें तू सबसे अधिक आनन्द देनेवाला है ।

६ जने नः यरासः दृष्टि ( ४७९ )- तू लोगोंमें हमें परतस्यो कर ।

७ विद्या द्विपः अप जाद्वि ( ४७९ )- तब शत्रुओंको हरा ।

८ स्वर्दशं मानुना सुमर्गं त्वा हरामहे ( ४८० )- निरोक्षण करनेवाले और अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाले तुमों हम वृत्ताते हैं ।

९ चेतनः प्रियः कवीनां मतिः पविष्ट ( ४८१ )- मान देनेवाला, प्रिय और तानियोंकी बुद्धि देनेवाला शूद्र होता है ।

१० देवः परस्व ( ४८१ )- तू तेजस्यो और शुद्ध हो ।

११ पद्यमानः धेद्रानरं ज्योतिः अनीजन्तु ( ४८७ )- शूद्र होनेके वाद सब मनुष्योंका हित करनेवाले तेज प्रकट होते हैं ।

१२ पुरस्पृहं कागं विभ्रतु ( ४८६ )- बहुतेजसे प्रस- तित कारीगरको धारण करता है । " काग " = कारीगर पात्रक ।

१३ भगं देवाः उप अयाम्बिषु ( ४८७ )- शत्रुका नाश करनेवाले औरके देव प्राप्त होते हैं ।

१४ विच्यपंशिः विद्याः मृधः अभ्यनमिन् ( ४८८ )- विद्वेय ज्ञानी सब शत्रुओंको हराता है ।

१५ विद्याः धियः अभ्यर्गन् ( ४८९ )- सब घोभाको बढ़ाओ ।

१६ मत्सरः मृधः अपमन् ( ४९२ )- घोभाका मानव्य शत्रुको दूर करनेवाला है ।

१७ अ-देव-सुं जनें सुदस्य ( ४९२ )- देवकी अहित न करनेवाले मनुष्यको दूर कर ।

१८ ते यः मदेतु नयनीः नयः अशाहन् ( ४९५ )- तेरा यह उत्साह बुद्धमें शत्रुके ९९ शत्रुओंको तोडता है ।

१९ सुखं सनत् रयिं अन्धसा नः परिभरन् ( ४९६ )- तेजस्यो और देने योग्य धन अन्नके साथ हमें दे ।

२० ते दर्शं यत् अय आनृणामिदे ( ४९८ )- तेरे बल और सामर्थ्यकी आज हम ग्रहण करते हैं ।

२१ ते यत् अयम्योभुयं यन्निह पान्तं पूरस्पृहं ( ४९८ )- तेरे बल बुद्धिकी, धन देनेवाले, रक्षा करनेवाले और बहूतों द्वारा प्रसंगित होते हैं ।

२२ सहस्रिणां सुवीर्यं रयिं अस्मै ध्यांसि धारय



( ५०१ )- हजारों प्रकारसे बल बढ़ानेवाले और उत्तम पराक्रम करनेवाले धन दे, और इसे अन्न अथवा धन दे ।

२३ वृषा युमान् अस्मि ( ५०४ )- तू बलवान् और तेजस्वी है ।

२४ वृषतमः धर्माणि वृधिये ( ५०४ )- तू अत्यन्त बलवान् है और बल बढ़ानेवाले सब गुणधर्मोंको धारण करता है ।

२५ वृषा देवयुः ( ५०६ )- तू बलवान् और देवोंको प्राप्त करनेवाला है ।

२६ अया सुकृतयया महान् अभ्यवर्धयाः ( ५०७ )- इस उत्तम शुभ कर्मसे तू महान् होता है ।

२७ मन्दानः वृषापत्ये ( ५०७ )- तू आनन्वित होकर बलवान् होता है ।

२८ विचर्यणिः हितः स चेतति ( ५०८ )- ज्ञानी हितकारक होकर ज्ञान देते है ।

२९ मृधः अरण्यः अपघ्नन् ( ५०९ )- मनुष्यों और जान न देनेवालोंको बहूँ मारता है ।

३० रत्नघा व्रतस्वयं योनिं आसीद्वि ( ५११ )- रत्नोंको धारण करके तपके आचारसे यह रहता है ।

३१ नर्यः ( ५१२ )- मानवोंका हित करनेवाला है ।

३२ मदिदः न जायतिः ( ५१४ )- तू आनन्द देनेवाला और जायत रहनेवाला है ।

३३ पुरुणि मां न्यययरन्ति, तान् परिधीन् अतीदि ( ५१६ )- बहूँते कुल मुझे कष्ट देते हैं, उन कुलोंका तु नाश कर ।

३४ पिशंगं बहुलं पुरस्वृहं रयिं अभ्यर्षि ( ५१७ )- पीले सोनेके रंगवाले बहूँते दास्य प्रशस्तनीय बहूँते धन तू देता है ।

३५ आथयः मृजन्ति ( ५२० )- मनुष्य मृदु होते हैं ।

३६ देवः देवानां जनिता प्र विचरिः ( ५२४ )- देव देवोंके जन्मोका वर्णन करता है ।

३७ रत्नघाः धार्याणि द्यते ( ५२८ )- रत्नोंको धारण करनेवाला धर्मोंको धारण करता है ।

३८ सहस्रदाः शतदाः भूरिदाया दानी द्राभ्यक्षमं पाहिः अस्यान् ( ५३१ )- हजारों, सौहों और बहुत सामान देनेवाला सामर्थ्यवान् धीर निष्प आत्मनवर बंधता है ।

३९ सेनातीः पूरः स्थानां अये प्रीति ( ५३३ )- सेनाका शासक सुरक्षोर रथके आगे बंधता है ।

४० अस्य सेना हर्षते ( ५३४ )- इसकी सेना आनन्दित होती है ।

४१ धाम पवसे ( ५३४ )- अपना घर स्वच्छ रखता है ।

४२ देवान् अभि अर्चामि ( ५३५ )- देवोंकी हम पूजा करते हैं ।

४३ महते हिनोति ( ५३५ )- महान् कार्यके लिए प्रेरित करता है ।

४४ आमुघा संदाशानः ( ५३६ )- धर्मोंको तीक्ष्ण करता है ।

४५ विश्वा वसु हस्तयो आदधानः प्रायासीत् ( ५३६ )- सब धनोंकी अपने दोनोंही हाथोंमें रखकर यह आता है ।

४६ अरातोः परि वाधते ( ५४० )- यह शत्रुओंकी डूर करता है ।

४७ शतस्पृहं सहस्रमणसे तुविधुमन् विभासहं पाञ्जसालमं रयिं नः अभ्यर्षे ( ५४१ )- सौहों निसकी स्तुति करते हैं, हजारों मनुष्योंका जो तोषण करता है, जो तेजस्वी है, जो विषय प्रकाशमान है, जो बल मंडाला है वह धन हमें दे ।

४८ अ-रातयः नः अरयः इययः अशन्तः वि चिन्त् सन्तु ( ५५५ )- दान न देनेवाले हमारे शत्रु, अपकी इच्छा करते हुए भी अन्न न मिलनेसे भूखे ही रहे ।

४९ युयतिभिः मर्यं सं अर्पति ( ५५७ )- धनके दियोंके साथ एक पुण्य आनन्दते रहता है ।

५० अमीवा रस्वसा सह अप मंत्रतु ( ५३१ )- योगके कौटानु रासतोंके साथ बुर जायें ।

५१ ह्ययिनिः मा मस्वत् ( ५६१ )- वो ताहृवा आचरण करनेवाले ( सनतो और आचरणशी और ) आनन्वित न होंवें ।

५२ राजा इव द्यस् ( ५६२ )- राजाके समान सुन्दर है ।

५३ अ-तत्-तनुः तत् शामः न अदनुते ( ५६६ )- तप न करनेवाला उस सुगर्भो प्राप्त नहीं कर सकता ।

५४ श्रुतासः इत् तत् समादाते ( ५६६ )- तपते तथा हुआही उस मानवकी या सकता है ।

५५ युग्मते स्वर्षिदं युग्मं या मर ( ५९७ )- तेजस्वी ज्ञान बढ़ानेवाले बल हमें दे ।

५६ सृतिं न प्रमर ( ५६२ )- नीचरको जिन प्रकार वेतन देते हैं, उस प्रकार हमें धन दें ।

- ५७ वीरवत् यदा अभ्यर्ष ( ५७६ )- वीर पुत्रोति ( ५७८ )- सेरा क्षान्द अत्यन्त मीठा, बर्भं करनेकी पद्धति जाननेवाला, वीर अत्यधिक तेजस्वी है ।
- ५८ ऋषीणां स्वस्रयाणी अभि अनूपत् ( ५७७ )- ६० देवयु पुम्नां वृहद् यदा अभि दिदीहि ( ५७९ )  
 ऋषियोंकी तात छर्दोवाली याणी बहो-वेदमत्र बोली । -देवोंको प्राण करनेवाली तेजस्वी और महान् यदा हर्षे है ।
- ५९ मधुमन्तम क्रतुत्तमम मदि लुक्षत्तमः मदः

पवमानकाण्डान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदसंख्या	ऋषि	देवता	छन्दः
		( ३९ )		
४६७	९।६१।१०	अहमोपुरागिरस	पथमत्त सोम	गायत्री
४६८	९।६।१	मधुच्छन्दा वंदयामि	" "	" "
४६९	९।६५।१०	भृगुर्वाहगिरसमवनिर्भांगो वा	" "	" "
४७०	९।६१।१९	अहमोपुरागिरस	" "	" "
४७१	९।३३।४	त्रित आत्य	" "	" "
४७२	९।६४।२९	वश्यपो मारीच	" "	" "
४७३	९।६९।४	जमदग्निर्भांग	" "	" "
४७४	९।६५।१	सुदन्मृत आगस्त्य	" "	" "
४७५	९।१८।१	असित वाश्यपो देवलो वा	" "	" "
४७६	९।९।१	असित काश्यपो देवलो वा	" "	" "
		( ४० )		
४७७	९।३२।१	दयावाश्च वाश्रेय	" "	" "
४७८	९।३३।२	त्रित आत्य	" "	" "
४७९	९।६१।१८	अमहोपुरागिरस	" "	" "
४८०	९।६५।४	भृगुर्वाहगिरसमवनिर्भांगो वा	" "	" "
४८१	९।६४।१०	वश्यपो मारीच	" "	" "
४८२	९।६४।४	काश्यपो मारीच	" "	" "
४८३	९।६३।२२	निभृति काश्यप	" "	" "
४८४	९।६१।१६	अमहोपुरागिरस	" "	" "
४८५	९।१०।४	असित काश्यपो देवलो वा	" "	" "
४८६	९।१४।१	असित काश्यपो देवलो वा	" "	" "
		( ४१ )		
४८७	९।६१।१३	अमहोपुरागिरस	" "	" "
४८८	९।४०।१	बृह मतिर्गिरस	" "	" "
४८९	९।६२।१९	जमदग्निर्भांग	" "	" "

मंत्रसंख्या	श्रव्यदेश्यान्तं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
४२०	१३३११	प्रभुवत्परागिरतः	पद्ममानः सीम	श्यामनी
४२१	२१४११	मेघपातिभिः काण्वः	"	"
४२२	१३३३१४	निष्पुत्रिः काश्यपः	"	"
४२३	१३३३१५	निष्पुत्रिः काश्यपः	"	"
४२४	१३३३१६	अमहीयुतागिरतः	"	"
४२५	१३३३१७	अमहीयुतागिरतः	"	"
४२६	२११२१२	उच्चथ्व आगिरतः	"	"
( ४२ )				
४२७	१३३३१	मेघपातिभिः काण्वः	"	"
४२८	२१६५१२८	भूमूर्वादिजर्मदनिर्भागवो वा	"	"
४२९	१३३३१३	उच्चथ्व आगिरतः	"	"
५००	१३३३१४	अवतारः काश्यपः	"	"
५०१	१३३३१५	निष्पुत्रिः काश्यपः	"	"
५०२	१३३३१६	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
५०३	१३३३१७	भूमूर्वादिजर्मदनिर्भागवो वा	"	"
५०४	१३३३१८	कश्यपो सारीषः	"	"
५०५	१३३३१९	कश्यपो सारीषः	"	"
५०६	१३३३२०	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
५०७	१३३३२१	कश्यपो सारीषः	"	"
५०८	१३३३२२	जमदग्निर्भागवः	"	"
५०९	२१४३१३	अपात्य आगिरतः	"	"
५१०	१३३३२५	अमहीयुतागिरतः	"	"
( ४३ )				
५११	१३३३२६	सप्तर्षयः [ १ अश्विनो ब्राह्मण्यः; २ कश्यपो सारीषः; ३ गौतमो राजगणः; ४ अग्निर्भागवः; ५ विश्वामित्रो गार्ग्यः; ६ जमदग्निर्भागवः; ७ वसिष्ठो मंत्राक्षरणिः ]	"	मूर्ती
५१२	१३३३२७	सप्तर्षयः	"	"
५१३	१३३३२८	सप्तर्षयः	"	"
५१४	१३३३२९	सप्तर्षयः	"	"
५१५	१३३३३०	सप्तर्षयः	"	"
५१६	१३३३३१	सप्तर्षयः	"	"
५१७	१३३३३२	सप्तर्षयः	"	"
५१८	१३३३३३	सप्तर्षयः	"	"
५१९	१३३३३४	सप्तर्षयः	"	"
५२०	१३३३३५	सप्तर्षयः	"	"
५२१	१३३३३६	सप्तर्षयः	"	"
५२२	१३३३३७	सप्तर्षयः	"	"
५२३	१३३३३८	सप्तर्षयः	"	"
५२४	१३३३३९	सप्तर्षयः	"	"
५२५	१३३३४०	सप्तर्षयः	"	"
५२६	१३३३४१	सप्तर्षयः	"	"
५२७	१३३३४२	सप्तर्षयः	"	"
५२८	१३३३४३	सप्तर्षयः	"	"
५२९	१३३३४४	सप्तर्षयः	"	"
५३०	१३३३४५	सप्तर्षयः	"	"

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋचिः	वेदतः	छन्दः
		( ४४ )		
५२३	१।८७।१	उदाना काण्वः	पवमान. सोमः	बृहती
५२४	१।९७।७	बृषणो वासिष्ठिः	"	"
५२५	१।९७।३४	परामारः शाक्यः	"	"
५२६	१।९७।१	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"
५२७	१।९९।५	प्रतर्दो वैशोदासि	"	"
५२८	१।९७।१	वसिष्ठो मंत्रावहनि	"	"
५२९	१।९७।४०	परामारः शाक्यः	"	"
५३०	१।९५।१	प्रत्क्व्यः काण्वः	"	त्रिष्टुप्
५३१	१।८७।४	उदाना काण्वः	"	"
५३२	१।९९।१३	प्रतर्दो वैशोदासिः	"	"
		( ४५ )		
५३३	१।९९।१	प्रतर्दो वैशोदासिः	"	"
५३४	१।९७।३१	परामारः शाक्यः	"	"
५३५	१।२७।४	इन्द्रप्रमतिवसिष्ठः	"	"
५३६	१।९७।१	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"
५३७	१।९७।२२	कर्णभृदासिष्ठः	"	"
५३८	१।९३।१	तोषा गौतम.	"	"
५३९	१।९४।१	कण्वो घोरः	"	"
५४०	१।९७।१०	गन्धुर्वसिष्ठः	"	"
५४१	१।३७।५२	कुत्त आगिरसः	"	"
५४२	१।९७।४१	परामारः शाक्यः	"	"
५४३	१।९९।१	कट्यपी मारीचः	"	"
५४४	१।९५।३	प्रत्क्व्यः काण्वः	"	"
		( ४६ )		
५४५	१।१०१।१	अश्वीगुः श्यावासि	"	मनुष्टुप्
५४६	१।१०१।८	नट्टयो मानव	"	"
५४७	१।१०१।४	धयसिर्वसिष्ठः	"	"
५४८	१।१०१।१०	मनु सांबरण	"	"
५४९	१।९८।१	अश्वीरीयो वार्यागिरः ऋजिष्या भारद्वाजश्च	"	"
५५०	१।१००।१	रेवसुनु काण्वपी	"	"
५५१	१।९९।१	रेवसुनु काण्वपी	"	बृहती
५५२	१।१८।७	अश्वरीयो वार्यागिर ऋजिष्या भारद्वाजश्च	"	मनुष्टुप्
५५३	१।१०१।१३	प्रजापतिर्वेदवाभिन्नो वाक्यो वा	"	"
		( ४७ )		
५५४	१।९५।१	कविर्भागव	"	जागती
५५५	१।७९।१	कविर्भागव.	"	"

( १८८ )

सामवेदका हुयोघ अनुवाद

[ पायमानं काण्डम् ]

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदस्थान	ऋषिः	देवता	छन्दः
५५६	१७७।१	कविर्भाग्य	पवमान सोम	जयती
५५७	१७८।१	सिक्ता निवायरी	"	"
५५८	१७९।१	कविर्भाग्य	"	"
५५९	१८०।१	सिक्ता निवायरी	"	"
५६०	१८०।१	रेणुषेदवामित्र	"	"
५६१	१८५।१	वेतोर्भाग्य	"	"
५६२	१८६।१	वसुर्भाद्रानः	"	"
५६३	१८६।१	वत्सप्रिर्भालम्ब.	"	"
५६४	१८६।३	गृत्समद. शौमक.	"	"
५६५	१८६।१	पवित्र आगिरसः	"	"
( ४८ )				
५६६	१९०।१	अग्निश्चानुपः	"	उष्णिष्
५६७	१९०।३	घक्षुर्मानव	"	"
५६८	१९०।३	पर्वतनारदो काण्वो	"	"
५६९	१९०।५	पर्वतनारदो काण्वो	"	"
५७०	१९०।१	नित आण्यः	"	"
५७१	१९०।३	मनुराप्तयः	"	"
५७२	१९०।१	अग्नेन्दचानुपः	"	"
५७३	१९०।१	द्वित आण्यः	"	"
५७४	१९०।३	पर्वतनारदो काण्वो	"	"
५७५	१९०।५	पर्वतनारदो काण्वो	"	"
५७६	१९०।१	अग्निश्चानुपः	"	"
५७७	१९०।३	द्वित आण्यः	"	"
( ४९ )				
५७८	१९०।१	गौरवीतिः साक्यः	"	ककुप्
५७९	१९०।१	ऊर्ध्वसद्या आगिरसः	"	"
५८०	१९०।३	ऋजिश्वा भारद्वाजः	"	"
५८१	१९०।१	कृतपसा आगिरसः	"	"
५८२	१९०।१	ऋणंस्यो राजयिः	"	यवमन्वा यावन्वी
५८३	१९०।३	शक्तिर्वातिष्ठः	"	ककुप्
५८४	१९०।५	ऊररागिरसः	"	"
५८५	१९०।६	ऋजिश्वा भारद्वाजः	"	"

## अथ आरण्यकं काण्डम् ।

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

[ १ ]

( १-९ ) १ शंखहोमवाक्यः ( भरद्वाज ) ; २ यसिद्धो यन्नावदग्निः ; ३, ६ वामदेवो गौतमः ; ४ शुन.सोम आतोमतिः  
 कृत्रिमो देवरातो वंशवर्तिनो वा ; ५ कुल आगिरसः ( तुलसपत्रः ) ; ७, ८ क्षमहीपुरागिरसः ; ९ आत्मा ॥  
 इन्द्रः ; ४ वरुणः ; ५, ७, ८ पवमान. सोमः ; ६ विर्ये देवाः ; ९ अन्नम् ॥ गृह्णी ; २, ४, ५, ९ मिष्ट्युः  
 ३, ७-८ वायवीः ; ६ एकपायनातो ॥

५८६ इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि ध्रुवः ।

यदिष्टुसेम वज्रहस्त रोदसी उमे सुशिप्र पत्राः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४६।९ )

५८७ इन्द्रो राजा जगतशर्पणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य ।

ततो ददाति दाशुषे यस्मिन् चोदद्राध उपस्तुतं विदवाक् ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।२७।३ )

५८८ यस्वदमा रजाद्युजस्तुजे जने वनस्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं वृहत् ॥ ३ ॥ ( अथर्व. ६।३।१।१ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ५८६ ] हे ( वज्र-हस्त ) हाथमें वज्र धारण करनेवाले तथा ( सु-शिप्र ) सुन्दर ओंसेवाले इन्द्र ! ( ज्येष्ठं ओजिष्ठं ) श्रेष्ठ और बल यशनेवाले ( पुपुरि ध्रुवः ) इच्छा पूर्ण करनेवाले अन्न ( नः आभर ) हमें भरपूर दे । ( यत् ) जो अन्न हम ( दिष्टुसेम ) पासमें रखनेको इच्छा करते हैं, और ओ ( उमे रोदसी ) सुलोक और पुम्बोकोक दोनोंको हो ( वा पत्राः ) पूर्ण करते हैं, उसे हमें दे ॥ १ ॥

१ ज्येष्ठं ओजिष्ठं पुपुरि ध्रुवः नः आभर— सबसे उत्तम और सामर्थ्य यशनेवाले तथा इच्छा पूर्ण करनेवाले अन्न हमें भरपूर दे ।

२ यत् दिष्टुसेम— जिसको हम अपने पास रखनेको इच्छा करते हैं, उसे हमें दे ।

[ ५८७ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( जगतः शर्पणीनां राजा ) चलनेवाले वज्रों और मनुष्योंका राजा है, उसी प्रकार ( अधि क्षमा ) इस पृथ्वीपर ( विदवरुपं यत् ) अनेक रूपोंवाले जो कुछ है ( अस्य ) इन सबका वही राजा है । ( ततः दाशुषे यस्मिन् ददाति ) इसलिए दानशीलको वह धन देता है, उसी प्रकार ( उप-स्तुतं ) पासमें उत्तम स्तुति करनेवालेको ( राधः ) धन ( अर्घ्याक् चोदत् ) लाकर देता है ॥ २ ॥

१ इन्द्रः जगतः शर्पणीनां, अधिक्षमा विदवरुपं यत् अस्य राजा— इन्द्र इस स्थावर जगत्, मनुष्य और इस पृथ्वीपर अनेक रूपोंवाले जितने प्रकार हैं, उन सबका अकेला ही राजा है ।

२ दाशुषे यस्मिन् ददाति— दानशीलको वह धन देता है ।

३ उपस्तुतं अर्घ्याक् राधः चोदत्— उत्तम स्तुति करनेवालेके पास वह धन भेजता है ।

[ ५८८ ] ( यस्व रजो युजा ) जिस अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रका ( इन्द्रं ) यह वान ( स्वः तुजे जने वने ) स्वर्गमें और वान देनेवाले जनोंमें प्रशस्तनीय है, इसलिए ( इन्द्रस्य वृहत् रन्त्यं ) इन्द्रके दान महान् और रमणीय है ॥ ३ ॥

२५ ( सात. हिंवी )

- ५८९ उ<sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००</sup> उत्तमं वरुण पाशमसदवाधमं वि मध्यमं श्रयाय ।  
अथादित्य व्रते वयं तवानागती अदितये स्याम ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।२४।१९ )
- ५९० त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम श्वश्व ।  
तश्चा मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उव घोः ॥ ५ ॥
- ५९१ इमं वृषणं कृणुतेकमिन्नाम् ॥ ६ ॥
- ५९२ स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय भुरुद्भयः वरिवोविस्परिस्व ॥ ७ ॥  
( ऋ. १।६।११२; वा. य. २६।२९ )
- ५९३ एना विश्वान्ययं आ धुमानि मानुषाणाम् । सिपासन्तो वनामहे ॥ ८ ॥  
( ऋ. ७२।६।१११; वा. य. २६।१९ )

[ ५८९ ] हे ( वरुण ) उत्तम देव ! ( उत्तमं पाशं अस्त्वत् उव श्रयाय ) उत्तम वस्त्रोंकी हमसे हूँ कर, ( अधमं पाशं अवश्रयाय ) अधम पाश तिमिल कर और ( मध्यमं पाशं विश्रयाय ) मध्यम पाशकी डोला कर, ( अथ ) इसके बाद हे ( आदित्य ) अवित्तिके पुत्र वरुण ! ( तव व्रते ) तेरे कार्योंमें ( वयं ) हम ( अ-दितये ) हमारा नात न हो इसलिए ( अनामसः स्याम ) पापरहित होकर रहें ॥ ४ ॥

१ वरुणः— उत्तम देव, श्रेष्ठ ईश्वर ।

२ उत्तम, मध्यम और अधम पाश-युद्धि, मूल और इन्द्रियोंके बंधन, इनके कारण होनेवाले विघ्न हूँ कर ( अव-श्रयाय, उच्छ्रयाय, विश्रयाय ) डोले कर ।

३ अदितिः— अपराधीव्रता, स्वतंत्रता, अविनाश ।

४ अदितये अनामसः स्याम— मुक्त होनेके लिए निष्पाप होऊँ ।

५ तव व्रते— तेरे नियमके अनुसार मैं रहूँ, तेरे नियमोंका पालन करूँ ।

[ ५९० ] हे ( सोम ) घोष ! ( पवमानेन त्वया ) शृङ्ग होनेवाले तेरी सहायतासे ( भरे ) सप्राप्तमें ( शश्वत् कृतं ) हमेशा किए जानेवाले कर्तव्य ( वयं वि चिनुयाम ) हम विशेष सावधानीसे करें, ( तव ) इसलिए वरुण, अविति, सिन्धु, पृथिवी ( उव घोः ) और धूलोक ये ( मा महन्तां ) मुझे मर प्रदान करें ॥ ५ ॥

१ भरे शश्वत् कृतं वयं चिनुयाम— युद्धमें किए जानेवाले कर्मोंकी हम सावधानीसे करें ।

२ तव मा महन्तां— उत्तमी सहायतासे मुझे मर प्राप्त होवे ।

[ ५९१ ] हे देवो ! ( इमं ध्रुमं ) इस गुरुकी ( वृषणं कृणुत ) तुम बलवान् करो, उरवी प्रकार ( मां ) मुझे भी अपने कार्योंमें सफल करो ॥ ६ ॥

[ ५९२ ] हे सोम ! ( सः धरियो वित् ) धनको अपने पास रखनेवाला वह तू ( नः यज्यवे इन्द्राय ) हमारे द्वारा जितके लिए यज्ञ किया जाता है, उस वृष्य इन्द्रके लिए ( वधुणाय मरुद्भयः ) वरुण और मरुतोंके लिए ( परिस्वय ) उत्तम प्रकारसे छलता जा ॥ ७ ॥

[ ५९३ ] ( एना ) इस सोमकी सहायतासे ( मानुषाणां ) मनुष्योंके ( विश्वानि धुमानि ) सब अश्रोंके ( अयः ) पात जाकर ( सिपासन्ताः ) उनके उपभोगकी इच्छा करनेवाले हम ( वनामहे ) उस अश्रोंको प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

५९४ अहमासि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवभ्या अमृतस्य नाम ।

यो मा ददाति स इदेवमावदहमक्षमक्षमदन्तमसि ॥ १ ॥

इति प्रथमा वराति ॥ १ ॥ प्रथम खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

( १-७ ) अमृतस्य आगिरसः ; २ पवित्र आगिरसः ; ३, ४ मधुचञ्चला वंश्यामिष, ५ प्रयो वासिष्ठ, ६ गृत्समद-  
शाक, ७ नृमेघपुष्पेयावागिरतो ॥ इन्द्र, २ पवमान सोम, ५ विजये देवा, ६ वायु ॥ गायत्री, जगती,  
५ त्रिष्टुप्, ७ अनुष्टुप् ॥

५९५ स्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुद्राण्ययः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१३।१२ )

५९६ अरुरुचदुपसः पृथिराग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजसुः ।

मायायिनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमाद्भुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८।१६ )

[ ५९४ ] ( देवेभ्यः पूर्वं ) देवोति पहले ( अहं ) मैं अन्नरूपी देवता ( अमृतस्य ऋतस्य प्रथमजा असि नाम ) विनाशरहित यत्नमें प्रथम उत्पन्न हुआ है । ( य. मां ददाति ) जो मुझे दानमें देता है ( सः इत् एवं आवत् ) वह विश्वपूर्वक इत दानसे सर्वोत्तम उत्पन्न करता है । ( अन्नं अदन्तं ) अन्नको स्वयं खानेवाले लोभो मनुष्यको ( अहं अन्नं असि ) मैं अन्न देवता ही था जाता हूँ ॥ १ ॥

१ देवेभ्यः पूर्वं अहं अन्न — सब देवोति पहले उत्पन्न हुए आवरणक यह अन्न उत्पन्न हुआ । प्रागिवोरे उत्पन्न होनेके पहले ही उनका पोषण करनेवाला अन्न उत्पन्न हुआ ।

२ अमृतस्य ऋतस्य प्रथमजा असि — अमर यत्नके पहले ही यह अन्न उत्पन्न हुआ । उस अन्नके उत्पन्न होनेके बाद अन्न किया गया ।

३ यः मां ददाति स आवत् — जो अन्नका दान करता है, यह इस दानसे सबका संरक्षण करता है ।

४ अहं अदन्तं अहं अन्न अस्मि — अन्नका दान न करते हुए जो स्वयं ही अन्नको खाता है, उस स्वयं ही मनुष्यको वह अन्न देवता ही था जाता है, नष्ट कर देता है ।

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीय. खण्डः ।

[ ५९५ ] हे इन्द्र ! ( कृष्णासु ) कालो ( रोहिणीषु ) काल ( परुष्णीषु ) और अनेक रणोपाली भार्योमें ( रुद्राण्ययः पतत् पयः ) तेजस्वी सफेद रंगका दूध ( त्व अधारयः ) तुने रखा है, यह तेरा अद्भुत सामर्थ्य है ॥ १ ॥

[ ५९६ ] उपसः पृथिः ) जगत्के सम्बन्ध रखनेवाला सूर्य ( अग्रियः ) यहाँ मुख्य है । वही ( अरुरुचत् धमकता है । ( उक्षा ) बरसत निरालेवाला मेघ आकाशमें ( मिमेति ) पडगडाहटका शब्द करता है । ( भुवनेषु वाजसुः ) प्राणियोंमें अन्नको इच्छा उत्पन्न करके ( मायायिनः ) कर्मोंमें कुशलता विधानेवाले देवोंने ( अस्य मायया ममिरे ) इस अपनी कुशलतासे जगत्का निर्माण किया । ( नृचक्षसः पितरः ) मनुष्योका निरोक्षण करनेवाले पितरोने माताके पेटमें ( गर्भं आद्भुः ) गर्भं स्थापित किया । इस प्रकार सृष्टि उत्पन्न हुई ॥ २ ॥

१ उपसः पृथिः. अग्रियः अरुरुचत् — उप कालके बाद उत्पन्न होनेवाला सूर्य इस स्थानपर मुख्य है और वह उक्षय होनेके बाद प्रकाशित होने लगता है ।

२ उक्षा मिमेति — जलोंसे भूमिको सींचनेवाला मेघ आकाशमें घर्जन करता है ।

३ भुवनेषु वाजसुः — प्राणियोंमें अन्न खानेको इच्छा उत्पन्न होती है ।

४ मायायिनः अस्य मायया ममिरे — जो कुशल है वे अपनी कुशलतासे सृष्टिका निर्माण करते हैं ।

५ नृचक्षसः पितरः गर्भं आद्भुः — खानेके कर्मोका निरोक्षण करनेवाले पितर माताके पेटमें गर्भ स्थापित करते हैं, जिससे सृष्टि होती है ।



- ५९७ इन्द्र इन्द्रयोः सचा समिन्दल आ यचोयुजा । इन्द्रो वजी हिरण्ययः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७।१ )
- ५९८ इन्द्र वाजेषु नोऽय सहस्रपधनेषु च । उग्र उग्रामिभिरुतिभिः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।७।४ )
- ५९९ प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्पत् ।  
धातुधुतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जमारा वसिष्ठः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।१८।११ )
- ६०० नियुत्वाभ्यायवा गक्षयन् शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो युद्धम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. २।४।१२ )
- ६०१ यजायथा अपृष्ये मघवनृत्रहत्याय । तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभा उतो दिवम् ॥ ७ ॥

( ऋ. ८।८९।५ )

इति द्वितीया वराति ॥ २ ॥ द्वितीया खण्ड ॥ २ ॥

[ ३ ]

( १-२३ ) १, ५, ७, १० सामवेद्यो गीतम, २, ३, गीतमो राहूगण, ४ मनुच्छदा वैश्वामिष, ६ गुत्सव हीनक  
८ भरद्वाजो वाहृष्य, ९ अजिन्वा भारद्वाज, ११ हिरण्यस्तुप प्रागिरस, १२, १३ विश्वामिषो गायिन ( १२ बहः ) ॥

१ प्रजापति, २, ३ सोम, ४, ५, ८, १३ अग्नि, ६ अयातपात, ७ रात्रि, ९ विश्वेदेवा, १० लिंगोक्ता,

११ इन्द्र, १२ आत्मा अग्निर्वा ॥ अष्टुप, १, ७ अनुष्टुप, ४ गायत्री, ८, ९ जगती, १० महापति ॥

६०२ मयि वचो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः । परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि धामिव दहत् ॥ ११ ॥

[ ५९७ ] ( इन्द्र इत् ) इन्द्र ही ( ह्यो ) दो घोडोंको अपन रथमें ( सचा समिन्दल ) एक साथ जोड़नेवाला है । ये घोडे ( यचो-युजा ) सकेतते ही रथमें जुड़ जानेवाले ह इस प्रकार यह ( इन्द्र- वजी हिरण्ययः ) इन्द्र वज्र धारण करनेवाला और सोमके आभूषण धारण करनेवाला है ॥ ३ ॥

[ ५९८ ] त् ( उग्र ) वीर है, इसलिये ( उग्रामि अतिमि ) वीरतासे युक्त तरभगोसे ( वाजेषु ) छोटे मुर्झोंमें ( सहस्र-पधनेषु च ) हजारों प्रकारके पथ प्राप्त होनेवाले बड़े बड़े तरभगोंमें ( न अय ) हमारा सप्रेमण कर ॥ ४ ॥

१ सहस्र प्र-धन— शत्रुको हरायके बाद उसे सूटकर अन्कों तरहके धन जिसमें मिलते ह, उसे बड़े सप्रेम ।

२ उग्र अति — वीरतासे निप गये तरभग ।

[ ५९९ ] ( यस्य प्रथ च स-प्रथ च नाम ) जिसके प्रथ और सप्रथ ये नाम ह जिनके लिए ( अनुष्टुभस्य हविष हवि यत् ) अनुष्टुभ छन्दमें मन्त्रका पाठकर हविका अणव किया जाता है । उन ( धुतानात् धातु ) तबज्यो धाता, सगिता, विष्णुके पाससे वसिष्ठने ( रथन्तर व्याजमात् ) रथन्तर नाम प्राप्त किया ॥ ५ ॥

[ ६०० ] हे ( चाथो ) आग्नेय ! त् ( नियुत्वात् ) नियुक्त नामक रथसे ( आ गहि ) आ । ( अय शुभ्र ) यह कमकनवाला सोमरस ( ते अयामि ) तब लिए तम्पार किया गया ह ( सु-वत गृह ) तू सोम पत्र करनेवालेके घरको ( गन्ता अस्ति ) जाता है ॥ ६ ॥

[ ६०१ ] हे ( अ-पृष्ये मघवन् ) अर्धभुत धनवाले इन्द्र ! ( वृत्रहत्याय ) वृत्रके वध करनेके लिए ( यत् जायया ) जब तू तम्पार हुआ ( तत्पृथिवीं अप्रथय ) तब तूने पृथिवीको वित्तुत किया ( उतो उ दिव अस्तभना ) और पृथिवीको ऊपर स्थिर किया ॥ ७ ॥

॥ यहा दुसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीय खण्ड ।

[ ६०२ ] ( परमेष्ठी प्रजापति ) श्रेष्ठ स्वानपर रहनेवाला प्रजाओंका पालक परमेश्वर ( मयि ) मृतमें ( यचं सच अयो यदा ) और मग ( अथो यक्षस्य यत्पय ) और यज्ञमें प्रयुक्त होनेवाला जो रूप ह, उन्हें ( दिवि धां ह्य ) पृथिवीमें जित प्रकार तेज होता है उसी प्रकार ( दहत् ) बढाते ॥ १ ॥

६०३ सं ते पर्यास्तिसं सप्तु यन्तु वाजाः सं वृष्णापान्यमिमाविपादः ।

आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाश्स्वमुत्तमानि धिष्व ॥ २ ॥ ( ऋ. १११।१८ )

६०४ त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपी अजनयस्त्वं गाः ।

त्वमावनीरुर्वाश्न्वारिखं त्वं ज्योतिषा वि त्मां नवर्थ ॥ ३ ॥ ( ऋ. १११।२२ )

६०५ अग्निमीहे पुराहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारश्स्तघातमम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १११।१ )

६०६ ते भन्वत प्रथमं नाम गोर्नां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।

ता जानतीरभ्यनूपत क्षा आविभुवन्नरुणीयंशसा गावः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ४।१।१६ )

परमेश्वर मुझे तेज, यज्ञ और रूप आदि अनेके पदार्थ भरपूर देवे, आकाश जिस प्रकार तेजस्वी है, उसी प्रकार मैं भी तेजस्वी होऊँ ।

[ ६०३ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अग्निमाति-पादः ) वायुका पराभव करनेवाले ( ते ) तेरे पात ( पर्यास्तिसं यन्तु ) रूप हो, ( वाजाः सं यन्तु ) अन्न तेरे पात हैं और ( वृष्णाणि सं ) यन्तुमें प्राप्त होवें । ( अमृताय आप्यायमानः ) अमरत्व प्राप्त करनेके लिए बढ़ते हुए ( दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व ) सुखीकर्म उत्तम अर्थात् प्राप्त कर ॥ २ ॥

१ ते पर्यास्तिसं सं यन्तु— तेरे पात रूप हो, तेरे अन्दर रूप मिलाया जाए । सोमरसमें रूप मिलाने हैं ।

[ ६०४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( त्वं ) तूने ( इमा विश्वाः ओषधीः अजनयः ) इन सभी औषधियोंको उत्पन्न किया, ( त्वं षपः ) तूने जल उत्पन्न किया, ( त्वं गाः ) तूने गायोंको उत्पन्न किया, ( त्वं उदः अन्वारिखं आ तनोः ) तूने ही विस्तृत अन्तरिक्षको फैलाया ( त्वं तमः ज्योतिषा वि चवर्थ ) तूने अन्वकारका तेजसे नाम किया ॥ ३ ॥

[ ६०५ ] ( पुरा-हितं ) आगे रहनेवाले ( यज्ञस्य देवं ) यज्ञके प्रकाशक ( ऋत्विजं ) ऋतुओंके अनुसार हवन करनेवाले ( होतारं ) देवोंको बुलाकर आनेवाले ( रत्न-घातमं ) रत्नोंको धारण करनेवाले ( अग्निं देवे ) अग्निकी मं स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

यज्ञमें अग्निका सामने स्थापन किया जाता है, उसमें हवन किया जाता है । ऋतुओंके अनुसार यज्ञ होता है, यह सब देवोंको बुलकर लाता है, यज्ञकोंके शरीरपर धारण करनेके लिए यह रत्नोंको देता है, देवे अग्नि देवकी हम स्तुति करते हैं ।

[ ६०६ ] ( ते ) उन ऋषिभोंने ( गोर्नां नाम ) वाणिके शब्द ( प्रथमं अमन्वत ) स्तुति रूपके घोष हैं, यह प्रथम समता, फिर ( त्रि सप्त परमं नाम जानन् ) तीन गुना सात अर्थात् २१ छंदोंमें स्तोत्र होते हैं, यह जाना इसके बाद उन्होंने साययानीसे ( ता जानतीः क्षा अभ्यनूपत ) उस वाणीसे उपाकी स्तुति की, उस ( यशसा ) तेजसे ( अरुणीः गावः आविभुवन् ) अरुण रंगकी गायें-किरणें-प्रकट हुईं ॥ ५ ॥

१ ऋषिभोंने भाषाके शब्द स्तुतिके घोष हैं, यह प्रथम समता ।

२ उसके बाद २१ छंदोंमें स्तोत्र हो सकते हैं, यह जाना ।

३ उससे उपा वेदताके स्तोत्र बनाने और उनका गान किया ।

४ तब सूर्यकी किरणें बाह्य निकलीं, सूर्यका उदय हुआ ।

- ६०७ समन्या यन्स्वुपयन्त्वन्याः समानमुर्वे नद्यस्पृणन्ति ।  
 तम् शुचिं शुचयो दीदिवाः समपान्नावातमुप यन्त्यापः ॥ ६ ॥ ( ऋ. २।२५।२ )
- ६०८ आ प्रागाद्भद्रा युवतिरहः कर्तृसमोर्त्सति ।  
 अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥ ७ ॥
- ६०९ प्रक्षस्य वृष्णो अरुणस्य नू महः प्र नो वचो विद्या जातवेदसे ।  
 वैश्वानराय मतिनेव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुप्रथे ॥ ८ ॥ ( ऋ. ६।८।१ )
- ६१० विश्वे देवा मम शृष्वन्तु यज्ञस्य भे रोदसी अपा नपास्य मनम ।  
 मा वो वचाःसि परिचक्ष्याणि वोचः सुम्रिष्विद्रो अन्तमा मुदेम ॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।९।१।४ )
- ६११ यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रघृहस्पती । यशो भगस्य विदन्तु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।  
 यशसा देव्याः सःसदाऽहं प्रवदिता स्याम् । ॥ १० ॥

[ ६०७ ] (अन्याः स्तंयन्ति) इतरे वर्णके जल मिल जाते हैं, (अन्याः उपयन्ति) इतरे पानी भी इनमें मिलाये जाते हैं, वे सब पानी (समान नद्यः) एक साथ मिलकर नदीके रूपसे (उर्वे पृणन्ति) धाड़वातल-भागकी अग्नि-को आनन्दित करते हैं, (ते उ शुचिं दीदिवासां अपा नपातं) उस शुद्ध तेजस्वी जलके पीवणकी अग्निके पास (आपः उपयन्ति) साथ जलप्रवाह पहुँचते हैं ॥ ६ ॥

१ अपा न-पातः— अर्धको गोषे न गिरने देनेवाला मेघ, (अपां नपातः) जलोंका घोर-अग्नि ।

२ सब पानी मिलकर नदीके रूपमें सागरमें मिल जाते हैं, उसी प्रकार सोमरसमें पानी मिलाया जाता है, दोनों ही तरहके पानी सोमरसमें मिलाये जाते हैं ।

[ ६०८ ] (भद्रा सुवति.) कल्याण करनेवाली स्त्री (प्रगात्) रात्री आगदं है, (अहः केतू) दिवसकी किरणोंका (स ईर्त्सति) यह प्रतिष्ण्य करनेकी इच्छा करता है, (विश्वस्य जगतः निवेशनी) सब जगत्की विधाय केनेवाली यह (रात्री भद्रा अभूत्) रात्री कल्याण करनेवाली है ॥ ७ ॥

[ ६०९ ] (प्रक्षस्य वृष्णः) व्यापक, बलवान् (अरुणस्य) और तेजस्वी अग्निके (महः) तेजकी में (नू) स्तुति करता है, वे (नः वचः) हमारे स्तोत्र (विदुया) यज्ञमें (जातवेदसे) अग्निके लिए (प्र) बोले जाते हैं, (नव्यसे वैश्वानराय अग्रथे) नवीन, सब मनुष्योंका हितकरनेवाले अग्निके पास वे (शुचिः चारुः मतिः) शुद्ध सुन्दर स्तोत्र (सोमः इव पवते) सोमके समान जाते हैं ॥ ८ ॥

[ ६१० ] (विष्टे देवाः) सब देव (मम यज्ञं मनम) मेरे पूज्य स्तोत्र (शृष्वन्तु) सुनें, (उभे रोदसी) दोनों कुलोक और पृथ्वीलोक (अपां नपात्) और अग्नि मेरे स्तोत्र सुनें, हे (देवाः) देवो ! (यः परिचक्ष्याणि) सुन्दरें द्वारा न सुनने योग्य (वचांसि मा वोचं) स्तोत्रोंकी में न बोड़ । इतील्लिए (यः अन्तमाः सुम्रेषु इत् मुदेम) सुन्दरें पास जाकर सुन्दरें द्वारा लिए गए कुलोंमें आनन्दित होऊँ ॥ ९ ॥

[ ६११ ] (द्यावा-पृथिवी) कुलोक और पृथ्वीलोकके (यशः सा) यश मुझे प्राप्त हों, (इन्द्रघृहस्पती मा याः) इन्द्र और घृहापतिसे भी मुझे यश मिले (भगस्य यशः मा विदन्तु) भग देवका यश मुझे प्राप्त हो, मुझे यशः (यः मा मति सुच्यताम्) जोइन्द्र दूर न जाए, (अस्या. संसदाः यशसा) हम सबतरे यशसे ही दूर । होऊँ (अहं प्रवदिता स्यां) मैं सभामें भाषण करनेवाला बनूँ ॥ १० ॥

६१२ इन्द्रस्य तु वीर्याणि प्रबोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।

अहन्नहिमन्वपस्ततदे प्र वक्षणा अभिनत्वर्वतानाम् ॥ ११ ॥ ( ऋ १२२।१ )

६१३ अधिरसि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरसुतं म आसन् ।

त्रिधातुरको रजसो विमानोजस ज्योतिर्द्विरसि सवैम् ॥ १२ ॥ ( ऋ १२२।७ )

६१४ पात्यमिर्विषो अग्रं पदे वेः पाति यद्द्व्यरणं सुयेस ।

पाति नाभा सप्तशोषाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥ १३ ॥ ( ऋ. १२।१६ )

इति तृतीया दशति ॥ ३ ॥ तृतीय खण्ड ॥ ३ ॥

[ ४ ]

( १-१२ ) वागदेवो गौतम ३-७ नारायणः ॥ १-२ अग्नि, ३-७ पुरुष, ८ छागामृषी, ९-११ इन्द्र, १२ शिव ॥ अनुष्टुप्, १-२ पङ्क्ति, ८, ११, १२ छन्दुप् ॥

६१५ आजन्त्यग्रे सभिधान दीदिवो जिह्वा चरत्पन्तरासनि ।

स त्वं नो अग्रे पयसा वसुविद्रमिं वचो दग्नेऽदाः ॥ १ ॥

[ ६१२ ] ( वज्री ) वज्र पारण करनेवाले इन्द्रने ( यानि प्रथमानि ) जित सुयुध ( वीर्याणि छकार ) पराक्रमके कार्यों किए, उस ( इन्द्रस्य ) इन्द्रके उन पराक्रमके कार्योंका ( तु प्रबोचं ) में वर्णन करता है, ( अर्थात् अहन् ) अहि मेंपाँसके उसने मारा, ( अनु अपः ) उसके बाद उनसे पानी बहाया, और ( पर्वतानां वक्षणां प्र अभिनत् ) पर्वतपरकी मढियोंको बहने योग्य बनवाया ॥ ११ ॥

[ ६१३ ] ( जन्मना अग्निः अस्मि ) मैं जन्मसे ही अग्नि हूँ, मैं ( जात-वेदाः ) सबको जाननेवाला हूँ ( मे चक्षुः घृतं ) मेरे आँसू प्रकाशके साधन भी है, ( अघृते मे आसन् ) अमरत्व मेरे मुक्तमें है, ( त्रिधातु अर्कः ) प्राण, अपान और व्यान इन तीनोंमें रहनेवाला प्राण मैं हूँ ( रजस- विमानः ) अन्तरिक्षको साधनेवाला वायु मैं हूँ, ( स-जघ्ने ज्योतिः ) हमेशा तेजसे युक्त रहनेवाला सूर्य मैं हूँ ( स्वयं द्विः अस्मि ) सभी प्रत्यक्षका हृदि मैं हूँ ॥ १२ ॥

मैं जन्मसे ही अग्नि-तेजजटप हूँ, मैं सर्वात्ता हूँ, घृतके हृदयने जो प्रकाश होता है, उसको देखनेवाला मैं हूँ । अमरत्व देनेवाली वाणी मेरे मुक्तमें है, मैं प्राण हूँ, वायु मैं हूँ, सूर्य मैं हूँ, हृदि भी मेरा ही रूप है ।

अग्निका अर्थ है अग्रणी, शरीरमें अग्रणी जाता है, और वही शान स्वरूप है, सभीमें वही है ।

[ ६१४ ] ( अग्निः ) यह अग्नि ( वेः विप. ) गति करनेवाली भूमिके ( अग्रं पदं पाति ) मुख्य स्थानका रक्षण करती है ( यद्द्व्यः सुयेस चरत्पन्तरासनि ) अहन् अग्नि सुयेसके जानेके कारणोंका रक्षण करती है ( नाभा ) अन्तरिक्षमें ( सप्त शोषाणं ) सात गणोंमें रहनेवाले मच्छीका ( पाति ) रक्षण करती है, ( ऋष्यः अग्निः ) बर्धनीय यह अग्नि ( देवानां उपमादं पाति ) देवोंको मानव देनेवाले यज्ञका रक्षण करती है ॥ १३ ॥

अग्नि, अग्नि, अन्तरिक्ष और धूलोष्णका सरक्षण करती है । भूमि पर अग्नि रूपते, अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपते और धूलोष्णमें सूर्यरूपसे यह अग्नि रहती है । मरुत् वायु है, बह्वा विद्युत् अग्नि है, और पतयें अग्नि जो होती है वह हृदयके द्वारा सब देवोंका सरक्षण करती है ।

॥ यद्वां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ६१५ ] ( सभिधान अग्ने ) हे प्रबोचन हुए अग्नि देव ! तेरे ( आजगती आसनि ) वैजन्वी मुक्तमें तेरो ( जिह्वा ) जीभ ब्याला ( चरति ) हृदिका रक्षण करती है, हे ( अग्रे वसुविद् ) पतयुक्त जाने ! ( स्वः स्व ) वह त्वं ( नः ) हमें ( पयसा ) रूपरूपी अग्रसे युक्त ( रयिं ) धन और ( दग्ने अर्धं. ) बर्धनीय तेज ( ददाः ) दे ॥ १

- ६१६ वसन्त इन्तु रन्त्योः श्रीष्म इन्तु रन्त्यः ।  
 वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्तु रन्त्यः ॥ २ ॥
- ६१७ सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।  
 स भूमिः सती वृत्वात्यतिष्ठद्दशङ्गुलम् ॥ ३ ॥ ( ऋ १०९०११ )
- ६१८ त्रिपादस्य उदैत्पुरुषः पादोऽस्यैहामवत्पुनः ।  
 तथा विष्वद् व्यक्रामदशानानशने अमि ॥ ४ ॥ ( ऋ १०९०१४ )
- ६१९ पुरुष एवेदः सर्वं यद्धूतं यच्च भाष्यम् ।  
 पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ५ ॥ ( ऋ १०९०१२ )
- ६२० तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।  
 उतामृतस्त्वपेक्षानां यदभिनानतिरोहति ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०९०१२ )
- ६२१ ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।  
 स जातो अत्यविक्रयत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ७ ॥ ( ऋ १०९०१३ )

[ ६१६ ] ( वसन्तः इत्तु रन्त्यः ) वसन्तऋतु निरवपते रमणीय है, ( श्रीष्मः इत्तु रन्त्यः ) शीष्मऋतु भी रमणीय है, ( वर्षाणि शरदः हेमन्तः शिशिरः ) वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर ये ऋतुयें भी ( इत्तु रन्त्यः ) रमणीय है ॥ २ ॥

[ ६१७ ] ( सहस्रशीर्षाः ) हजारों शिरवाला, ( सहस्र-अक्षः ) हजारों नाजोंवाला और ( सहस्रपात् ) हजारों पैरवाला एक पुरुष है, ( सः भूमिं सतीत्या ) वह भूमिको सब ओरते घेर कर ( दशङ्गुलं अत्यतिष्ठत् ) वस इतिष्ठति भोगने योग्य इस जगत्की घेरकर भी योग्य बना हुआ है ॥ ३ ॥

[ ६१८ ] ( त्रिपाद् पुरुषः ) तीन भागोंवाला यह पुरुष ( ऊर्ध्वं उदैत् ) ऊचे स्वानवर रहता है, ( अस्य पादः पुनः इह अवपत् ) इसका चौथा भाग इस समारमें फिर फिर प्रकट होता है, ( सादान-भनशने अमि ) अन्न खानेवाले और अन्न न खानेवालेके धारों और ( तथा विष्वद् व्यक्रामद् ) विभिन्न रूपोंवाला वह व्याप्त है ॥ ४ ॥

[ ६१९ ] ( यत् भूतं ) जो उत्पन्न हुआ ( यत् स भव्यं ) और जो उत्पन्न होनेवाला है, ( इदं सर्वं पुरुषः पद्य ) यह सब पुरुष ही है, ( अस्य पादः सर्वा भूतानि ) इसका चौथा भाग में सब प्राणी हैं, और ( अस्य त्रिपाद् दिवि अमृतं ) इसके तीन भाग सुलोकमें अमर हैं ॥ ५ ॥

[ ६२० ] ( अस्य तावान महिमा ) इस पुरुषकी ऐसी महिमा है, बालकमें वह ( पुरुषः ) पुरुष ( ततः उजायान् ) उसको अपेक्षा भी बना है, ( उता अमृतस्त्वपेक्षानां यदभिनानतिरोहति ) और वह अमरत्वका स्वामी है, ( यत् अत्रेन अति रोहति ) जो अत्रेन बढ़ते हैं, उनका भी वह स्वामी है ॥ ६ ॥

[ ६२१ ] ( ततो विराट् अजायत ) उस पुरुषकी विराट् पुरुष हुआ, ( विराजो अधि पूरुषः ) उस विराट् पुरुषका विशेषण करनेवाला एक पुरुष है, ( स जातो ) वह उत्पन्न होते ही ( अति अरिच्यतः ) सबसे भेद हुआ, उत्तरे सबसे पहले ( भूमिं ) पृथ्वी उत्पन्न की और ( पश्चाद् भूमिमथो पुरः ) बादमें धरती उत्पन्न किए ॥ ७ ॥

- ६२२ मन्वे वां घावापृथिवी सुभोजसो ये अप्रथथाममितमभि योजनम् ।  
 घावापृथिवी भवतश्च स्योने ते नो भुञ्जतमश्हसः ॥ ८ ॥ (अथर्व. ४।२।६।१)
- ६२३ हरीं त इन्द्र इमध्रूपृथुवां वे हरितो हरी । तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गावः ॥९॥
- ६२४ यद्बर्चो हिरण्यस्य यद्वा वचो गवाभुत । सत्यस्य प्रदक्षणां वचस्तेन मा तश्छुजामसि ॥१०॥
- ६२५ सहस्रञ्च इन्द्र ददध्र्योज ईषो ह्यस्य महतो विरिषिधुन् ।  
 क्रतुं न नृम्यश्च्यविरं च वाज वृत्रेषु श्यून्त्सहना कृषी नः ॥ ११ ॥
- ६२६ सहस्रमाः सहस्रसा उदेत विश्वा रूपाणि विभ्रतीद्भृष्णीः ।  
 उरुः पृथुरय वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त ॥ १२ ॥

इति ऋग्वेदे दशमि ॥ ४ ॥ ऋग्वेदे अष्टम ॥ ४ ॥

[ ६२२ ] हे ( घावा-पृथिवी ) मूलोक और पृथ्वी लोको ! ( वा सु-भोजसो ) तुम उत्तम भोजन देनेवाले हो, इस प्रकार ( मन्वे ) में मानता हूँ ( ये ) जो वे रीनों लोक हूँ, वे ( अभितं योजनं ) अपरमित पन भारि ( अभि अप्रथेधां ) हर्ष देवे, हे ( घावा-पृथिवी ) हे मूलोक और पृथ्वी लोको ! तुम ( स्योने भवत ) हमारे लिए सुखवायो होवो, ( ते नः अंहसाः मुञ्चत ) मे हर्ष पापसे छुड़ावें ॥ ८ ॥

[ ६२३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते इमध्रूणि हरी ) तेरी भूर्धे हरे रंगकी हो गईं हं, ( उत ते हरितो हरी ) और तेरे बीनों धोहे पीले रंगके हूँ, ( वनर्गावः ) उत्तम गायोंको पालनेवाले ( कवयः पुरुषासः ) शान्ति पुत्रय ( तं त्वा स्तुवन्ति ) उस तेरी स्तुति करते हूँ ॥ ९ ॥

१ ते इमध्रूणि हरी— शीमरत हरे रंगका होता है, उसे पीनेके कारण तेरो भूर्धे हरे रंगकी हो गईं हं ।

[ ६२४ ] ( हिरण्यस्य यद् वचं ) सोनेका जो तेज है, ( यद् वा गवा यद् वचं ) जो गायोंका तेज है, ( उत ) और ( सत्यस्य प्रदक्षणाः वचं ) सात्त्विकता जो तेज है, ( तेन मा तश्छुजामसि ) उस तेजसे मैं पकत होता हूँ ॥ १० ॥

[ ६२५ ] हे ( विरिषिधुन् इन्द्र ) बहुतना धन अपने पास रखनेवाले इन्द्र ! ( तत् सद्भ्यः भोजः न ददधि ) वह बल और सामर्थ्य हर्ष दे, ( ईषो अस्थ महतः ईषो ) क्योंकि तू इतना महान् बलका स्वामी है, हे इन्द्र ! ( नः ) हमारे ( क्रतुं न ) धतके समान ( नृम्यं च्यविरं वाज ) धन और महान् सामर्थ्य ( नः पृथि ) हर्ष दे, और ( श्यून्त्सहना कृषी नः ) पुत्रेषु सहान् सहना पृथि ) पुत्रोंमें शत्रुओंको हरानेका बल हर्ष दे ॥ ११ ॥

[ ६२६ ] हे ( सह-ऋपमाः ) ब्रह्मिण साप रहनेवाली, ( सह-यत्साः ) ऋषिके साप रहनेवाली, ( श्यूष्णीः ) दुग्धने बर्धे दुग्धाशयवाली ( विश्वा रूपाणि विभ्रतीः ) मनोक रूपोंको धारण करनेवाली गायो ! तुम ( उदेत ) हमारे पास आधो, ( उरुः पृथुः अयं लोकः वः अश्नु ) महान् और विशाल यह लोक तुम्हारे लिए हो, ( इमाः आपः ) वे बल प्रवाह ( सु-प्र-पाणाः इह स्त ) सुखसे पीने योग्य होकर तुम्हें यहाँ मिलें ॥ १२ ॥

॥ यद्वां चौघा एषज समस्त भूधा ॥

[ ५ ]

( १-१४ ) १ सत वीतानसा, २ विभ्राद् सोमं, ३ कुस्त आगिरस, ४-६ सारंपरती, ७-१४ प्रस्थव्य काण्व ॥  
सूर्यं, १ अग्नि पयमान, ४-६ आत्मा वा ॥ गायत्रो, २ जगती, ३ त्रिष्टुप् ॥

६२७ अन्न आयुश्चि पचस आसुवो जमिपं च नः । आरं वाधस्य दुच्छुनाम् ॥ १ ॥ ( ऋ १५६६।१९ )

६२८ विभ्राद् वृक्षिपियतु सोम्य मध्वायुर्दधघञपताविहुतम् ।

वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपति बहुधा वि राजति ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।७०।१ )

६२९ चित्र देवानामुदगादनीके चक्षुमिदस्य वरुणस्याभिः ।

आप्रा धावापृथिवी अन्तरिक्षस्य आत्मा जगतस्तस्थुपथ ॥ ३ ॥ ( ऋ १।१।९।१ )

६३० आर्यं गौः पृथिरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्वस्यः ॥ ४ ॥

( ऋ. १०।१८९।१; वा. व २।६ )

६३१ अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादवानती । व्यरूपन्मादिषा दिवम् ॥ ५ ॥

( ऋ १०।१८९।२; मृ ३।७ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ६२७ ] ( अग्ने ) अग्ने ! ( आयुषि पचसे ) वीधं आयु ह्ये दे, ( नः ऊर्जे इपं च आसुव ) ह्ये वल और  
अन्न दे, और ( दुच्छुनां आरे वाधस्य ) राक्षसोंको डूट कर ॥ १ ॥  
१ दुच्छुनां— ( सु-शुनां ) फाल कुले, राक्षस, कुर्वे, वृत्तवाच ।

[ ६२८ ] ( वि-भ्राद् ) विशेष प्रकारमान् सूर्यं ( वृक्षत् सोम्य मधु पियतु ) बहुत गोमस्त पीये, ( यन्न-पती )  
यात बत्नेपतिके ( अ-वि-दृष्टत आयुः दधत् ) कुटिलनारहित आयुष्य प्राप्त हो, ( वात-जूत यः ) वायुो पुत्र  
यद् सूर्यं ( त्मना प्रजाः अभिरक्षति ) स्वय ही सब प्रजाओंका रक्षण करता है, उतते ( पिपति ) अन्नको सूर्य करता है  
और ( बहुधा विराजति ) अनेक प्रकारसे प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

१ अ-वि-दृष्टत आयुः— उपरग्रहित आयु ।

० वात-जूतः सूर्यो त्मना प्रजाः अभिरक्षति पिपति— वायुने ताप सूर्यं सब प्राणियोंका रक्षण  
करता है, और उन्हें अन्न देकर पुष्ट करता है ।

[ ६२९ ] ( देवानां चित्रं अनीके उदगात् ) देवोंका अद्भुत तेज समूहको सूर्यं उच्य हो गया है, यह मित्र,  
वरुण और आग्नि ( चक्षुः ) नेत्ररूप है, उच्य होते ही इनके ( धावापृथिवी अन्तरिक्षं आत्माः ) धूलोठ, भूमीक  
और अन्तरिक्षको तेजको भर बिबा है, ऐसा यह सूर्यं ( जगतः तस्थुपथः च आत्मा ) जगत् और त्पावर जगत्को  
साक्षात् है ॥ ३ ॥

[ ६३० ] ( अय गौः ) यह गणिवान् ( वृद्धि ) तेजस्वी सूर्यं ( मा अन्नमीत् ) उच्य होकर ऊपर हो गया है,  
( पुरः मातरं अरवद् ) पहले यह पृथ्वी माताको प्राण हुआ, फिर वह ( पितरं च यः प्रयत् ) धूलोठको सत्यने  
पिताको प्राण होता है ॥ ४ ॥

[ ६३१ ] ( अस्व रोचना ) इन सूर्यका प्रजा ( अन्तः चरति ) आकाशमें गंधार करता है । ( प्राणाद्  
अवानती ) उच्यने वायु प्रजागित होता है और अन्न होनेके बाद वह मित्रो हो जाता है । ( मदिहः दिपं पयन्व्यत् )  
यह अहम् सूर्यं धूलोठको विगत रूपमें प्रकाशित करता है ॥ ५ ॥

- ६३२ त्रिंशद्दाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोऽहं शुभिः ॥ ६ ॥  
 ( ऋ. १०।१८९।३; यजु ३।८ )
- ६३३ अप त्वे तापयो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुमिः । सूराय विश्वचक्षुसे ॥ ७ ॥  
 ( ऋ १।६०।३; अथर्व १।३।२।७, २०।४७।४ )
- ६३४ अदृश्रन्स्य केतवो वि रश्मयो जनाश्चानु । भ्राजन्तो अग्रया यथा ॥ ८ ॥  
 ( ऋ १।६०।३; अथर्व. १।३।२।८, २०।४७।६ )
- ६३५ तरणिर्विश्वदशो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वभासि रोचनम् ॥ ९ ॥  
 ( ऋ. १।६०।४; अथर्व. १।३।२।९; २०।४७।६ )
- ६३६ प्रत्यद् देवानां विद्यः प्रत्यद्भुदोषि मानुषान् । प्रत्यद् विश्वश्चन्द्रोऽहं ॥ १० ॥  
 ( ऋ १।६०।५; अथर्व. १।३।२।१०; २०।४७।७ )
- ६३७ येना पावक चक्षुसा भुरण्यन्तं जनाश्चानु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ ११ ॥  
 ( ऋ १।६०।६; अथर्व १।३।२।११; २०।४७।८ )

आत्मपक्ष — ( अस्य रोचमा ) इत आत्मान तज ( अन्नः चरति ) शरीरके अन्तर संभार करता है, ( माणान् अयाजती ) प्राण बीर अधानके रूपसे उसकी गति शरीरमें होनी है, यह ( अग्निः ) महान् शक्तिमान् आत्मा ( दिवं व्यच्यत् ) शक्तिपूर्वक तत्त्वता प्रकाश करता है ॥ ५ ॥

[ ६३२ ] ( वस्तोः त्रिंशद् दाम विराजति ) विनके तीस मुहूर्त होते हैं ( अहः ) यह सूर्य ( शुभिः विराजति ) अपने किरणसे प्रकाशित होता है, ( पङ्क्याय वाक् प्रति धीयते ) उस सूर्यकी स्तुति की जाती है ॥ ६ ॥

[ ६३३ ] ( विद्व-चक्षुसे सूराय , सबकी प्रकाश देनेवाले सूर्यके उदय होनेके बाद ( नक्षत्राः अक्तुमिः ) नक्षत्र राशिके साथ साथ ( यथा त्वे तापयः ) जैसे विनमें चौर छिप जाते हैं, उसी प्रकार ( अप यन्ति ) छिप जाते हैं ॥७॥

[ ६३४ ] ( अस्य केतवः रश्मयः ) इस सूर्यकी प्रकाशकी किरणें ( जमान् अनु वि अदृश्रन् ) लोगोंकी देखती हैं, ( यथा भ्राजन्तो अग्रयाः ) जिस प्रकार प्रज्वलित हुई अग्निकी किरणें देखती हैं ॥ ८ ॥

[ ६३५ ] हे ( सूर्य ) सूर्य ! तू ( तरणिः ) सबोंकी तारनेवाला ( ज्योतिष्कृदसि ) सबोंके द्वारा देखे जाने योग्य ( ज्योतिष्कृदसि ) प्रकाश करनेवाला है, ( दिवं रोचने आभासि ) सब समयनेवाले महावीरको प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

अध्यात्मपक्ष — ( सूर्य ) हे सबको मिराण देनेवाले परमात्मन् ! तू ( तरणिः ) सबकी तारनेवाला है, ( विद्व दृशीतः ) सबोंके द्वारा साक्षात्कार करनेके योग्य ( ज्योतिष्कृत् असि ) तेजस्वी गोलरङ्का तू बर्ता है, ( दिवं रोचने आभासि ) सब तेजस्वी लोगोंकी तू ही प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

[ ६३६ ] हे सूर्य ! तू ( देवानां विद्यः प्रत्यद् ) देवोंके प्रजाजन को भङ्गू है, उनके सामने ( मानुषान् प्रत्यद् ) मनुष्योंके आगे, ( विद्वं चन्द्रोऽहं प्रत्यद् ) सब विश्वको देखनेके लिए सामने ( उदोषि ) उदय होता है ॥ १० ॥

[ ६३७ ] हे ( पावक चरुण ) पवित्र करनेवाले भेष्ट सूर्य ! ( त्वं ) तू ( जमान् भुरण्यन्तं ) माणियोंके पोषण करनेवाले इस लोकको ( येन क्षात्रसा अनु पश्यसि ) जिस प्रजातते देलता है, उस तेरे प्रजापति हूय स्तुति करते हैं ॥ ११ ॥



६३८ उद्द्यामपि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्षुताभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्यं ॥ १२ ॥

( ऋ १।९।०; अर्षे १३।२।२९; २।०।४।७।९ )

६३९ अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूर्यो रथस्य नष्टयः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ १३ ॥

( ऋ १।९।०; अर्षे १३।२।२४; २।०।४।७।९ )

६४० सप्त त्वा हरितो रथं वहन्ति देव सूर्यं । श्रोचिष्केशं विचक्षणं ॥ १४ ॥

( ऋ १।९।०; अर्षे १३।२।२३; २।०।४।७।१० )

इति पञ्चमो दशतिः ॥ ५ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

इति पण्डोऽध्यायः ॥ ६ ॥ इति सामवेद-संहितायामारण्य काण्ड पर्वं वा समाप्तम् ॥

[ ६३८ ] हे सूर्य ! ( पृथु रजः छां उद्देपि ) तू इस विस्तृत अन्तरिक्ष और दुलोकमें संचार करता है, ( अहा अक्षुताभिः मिमानः ) दिनकी रात्रोसे नापता हुआ तू ( जन्मानि पश्यन् ) अन्न लेनेवाले प्राणिमात्रको देखता जाता है ॥ १२ ॥

[ ६३९ ] ( सूर्यः ) सूर्यने ( शुन्ध्युवः सप्त अयुक्त ) शूद्र करनेवाले सात घोडोंको अपने रथमें जोड़ा है, ( रथस्य नष्टयः ) जो रथको खलते हैं, ( ताभिः स्वयुक्तिभिः याति ) उनसे और अपनी योजनाओंसे वह सूर्य जाता है ॥ १३ ॥

१ शुन्ध्युवः— सूर्यकिरणों स्पष्टता करनेवाली होती हैं ।

२ सप्त— सूर्यकिरणों सात रथकी होती हैं ।

३ रथस्य नष्टयः— रथ खलनेवाली घोडेहथी किरने हैं ।

[ ६४० ] ( वि-चक्षण देव सूर्यं ) हे प्रकाशक सूर्यदेव ! ( सप्त हरित ) सात घोडे-सात किरने ( श्रोचि-ष्केशो त्वा ) शूद्र करनेवाली किरणोंसे युक्त हुए ( रथे वहन्ति ) रथसे ले जाते हैं ॥ १४ ॥

१ श्रोचिष्केशः— सूर्यकी किरने शूद्रता करनेवाली हैं ।

२ सप्त हरित — सात रथकी सात किरणें ।

॥ यद्वा पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति आरण्यं काण्डम् ॥

अथ महानामन्वयविक्रमः ।

( १-२० ) प्रजापतिः ॥ इन्द्रस्त्रैलोक्यराजः ॥ विभः = [ १ प्रथम द्विपदा + ( २ ) तत्स्वयं शास्त्ररा पावाः + ( ३ ) तत् उपसर्गो + ( ३ ) उभय ( शास्त्ररूपसर्गो ) + ( ५ ) तत्. शास्त्ररास्त्रय पावा + ( ६ ) उपसर्ग ]

६४१ विदा मध्वन् विदा गातुमनुश्वसिषो दिशः । शिक्षा शचीनां पते पूर्वाणां पुरुवसो ॥१॥

६४२ आभिप्रमिष्ठिभिः स्वापदेर्वाश्वुः । प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र शुजाय न इषे ॥ २ ॥

६४३ एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।

श्विष्ठ वज्रिबृजसे मथहिष्ठ वज्रिबृजसे । आ याहि पित्र मत्स्य ॥ ३ ॥

६४४ विदा राये सुवीर्यं शुवो वाजानां पातपशाश्वतु ।

मथहिष्ठ वज्रिबृजसे यः श्विष्ठः शूराणाम् ॥ ४ ॥

६४५ यो मथहिष्ठो मघानामश्च शूत्रे शोचिः । चिकित्वो आमि नो नपेद्रो विदे तमु स्तुहि ॥५॥

६४६ ईश हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।

स नः स्वपदेति द्विपः क्रतुश्छन्दः क्रतं पृष्टत ॥ ६ ॥

[ ६४१ ] हे ( मध्वन् ) धनवान् परमात्मन् ! ( विदाः ) तु स्य जनता है, ( गातुं विदाः ) तु योग्य मार्ग जानता है, ( दिशः ) अतु शंसिपः ) हम कौनसो दिशासे जायें, उसका हमें उपदेश कर, हे ( पूर्वाणां शचीनां पते ) आदि शक्ति के स्वामी ! ( पुर-वसो ) हे धनसम्पन्न प्रभो ! ( शिक्षा ) हमें शिक्षा दे ॥ १ ॥

[ ६४२ ] हे ( प्रचेतन ) चेतनता देनेवाले ईश्वर ! हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( स्व-न ) सुपुत्र के समान ( अंगुः ) तेजस्वी तु ' आभिः अभिष्ठिभिः ' इन तराणानि ( इषे शुजाय ) अथ और तेज प्राप्त करनेके लिए हमें ( प्र चेतय ) प्रेरित कर ॥ २ ॥

[ ६४३ ] हे ( मथिष्ठ वज्रिवः ) महान् और बलवती इन्द्र ! तु ( शक्रः एव हि ) सामर्थ्यवान् है, इसलिए हे ( श्विष्ठ ) बलवान् प्रभो ! तु हमें ( राये वाजानां पातपशाश्वतु ) धन और यत्न अथवा धन प्राप्त करनेके लिए समर्थ करता है ( क्रजमे ) हमें सामर्थ्यवान् कर । ( आ याहि ) हमारे पास आ ( पित्र ) यह तोम पी और ( मत्स्य ) आनन्दित हो ॥ ३ ॥

[ ६४४ ] हे इन्द्र ! ( राये सुवीर्यं विदाः ) धन प्राप्त करनेके लिए उत्तम सामर्थ्य कौसे प्राप्त करें यह तु जानता है, ( यः शूराणां श्विष्ठः ) जिस प्रकार गुरु पुरुषोंमें बलवान् है, उस प्रकार जो तू है, हे ( मथिष्ठ वज्रिन् ) महान् बलवती इन्द्र ! यह तू ' वाजानां पाति अथ ' सब शक्तिवीर्यवा स्वामी है, तू ( वशान् अनु क्रजसे ) अपने बज्रमें होकर अनुकूल हुए भक्तोंको सामर्थ्यवान् करता है ॥ ४ ॥

[ ६४५ ] ( य मघानां मथिष्ठः ) जो महान् पतिहोनें भी बहुत महान् है, ( अंगु- न ) और स्वयं प्रकाशित होनेवालोंके समान ( शोचि- ) प्रकाशवान् है, बसत तू है, हे ( चिकित्व- ) शास्त्रवान् ! तू ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यसम्पन्न है, इस लिए ( ना विदे अभिनय ) हमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिए योग्य मार्गोंके आ, ( तं ऊ स्तुहि ) तू उगीनी प्रसंसा कर जो सामर्थ्यमें जाता है ॥ ५ ॥

[ ६४६ ] ( शक्र- ईशे हि ) शक्तिशाली होने हुए यह स्वामित्व करता है, इसलिए ( क्रतये जेतारं अपराजितं व शुवामहे ) अपने संरक्षणके लिए हम विजयी और पराजित न होनेवाले उस धीरको बुलाते हैं, ( सः नः द्विप- सु अर्षत् ) यह हमारे सम्बन्धोंसे दूर करता है, यह ही ( प्रतुः ) शक्तिकी कर्ता ( छन्दः ) स्वक, ( क्रतं ) साथ भरण और ( पृष्टत ) महान् है ॥ ६ ॥

६४७ इन्द्रं धनस्य सातथे हवामहे जेतारमपराजितम् ।

स नः स्वपेदति द्विपः स नः स्वपेदति द्विपः

॥ ७ ॥

६४८ पूर्वस्य यत् अद्रिवाऽऽशुभेदाय । सुप्त आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते ।

वशी हि शक्रो नूनं तन्नय्यऽसन्नयसे

॥ ८ ॥

६४९ प्रभो जनस्य वृषहेन् तसमयेषु प्रवायहे ।

शूरां वा गोषु गच्छति सखा सुशेवां अद्रयुः

॥ ९ ॥

अथ पठ्य पुरीषवदानि ॥

६५० एवाहोऽऽऽऽऽऽ व । एवा ह्यमे । एवाहीन्द्र ।

एवा हि पूषन् । एवा हि देवाः ॐ एवाहि देवाः

॥ १० ॥

इति पठ्य पुरीषवदानि ॥

इति महाभारत्याचिक' सप्ताप्तः ॥

इति सामवेद महित्यामं पूर्वार्चिकः सप्तमः ॥

पूर्वार्चिकस्य भन्त्रसंख्या

१ आग्नेयस्य	काण्डस्य ( १-११४ )	११४
२ ऐन्द्रस्य	काण्डस्य ( ११५-४६६ )	३५२
३ पावसानस्य	काण्डस्य ( ४६७-५८५ )	११९
४ आरण्यकस्य	काण्डस्य ( ५८६-६४० )	५५
५ महाभारत्याचिकस्य	( ६४१-६५० )	१०

सर्वयोगः ६५०

[ ६४७ ] ( धनस्य सातथे ) धनको प्राणिके लिए ह्य ( अपराजितं जेतारं इन्द्रं ) पराजित न होनेवाले विजयी इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं, ( सः नः द्विपः अति अर्थत् ) वह हमारे धनको बूढ़ करे ॥ ७ ॥

[ ६४८ ] हे ( अद्रिवाः ) अशुभकारी इन्द्र ! ( पूर्वस्य ) सत्ये पहले रहनेवाले तेरे ( यत् अशुभे मदाय ) जो प्रवास आनन्द यज्ञानेके लिए है, हे ( वशी ) हे शक्रको बसानेवाले इन्द्र ! उसे ( नः स्वपे वापेहि ) हमारे मुक्तके लिए हमें दे, हे ( शविष्ठ ) प्रत्यक्त ! ( पूर्तिः शस्यते ) पूर्णता करनेकी शक्तिही हो सब अपर प्रतीत होती है, ( नूनं शक्रः ) शक्रको विन्दवको तु सामर्थ्यवान् और सबको यदा भी बतनेवाला है, इतलिए ( त्वं नय्ये संनयसे ) मैं इसकीबत खुजिने घोष्य तुमो अपने आगे स्थापित करता हूँ ॥ ८ ॥

[ ६४९ ] हे ( वृषहेन् प्रभो ) धनको भारनेवाले प्रभो ! ( जनस्य समयेषु म दयायहे ) धेळ मनुष्योंमें तेरो ही हम प्रगता करते हैं, ( यः ) जो ( गोषु गच्छति ) गर्वमें रहता है, वह ( सखा ) मित्र ( सुशेवाः ) उत्तम प्रजाते केवा करने घोष्य शीर ( अ-द्रयुः ) अद्रिलोक धेळ है ॥ ९ ॥

[ ६५० ] ( एवा हि पूषन् ) वह ऐसा ही है, हे आने ! ( एवा हि देवाः ) तुम ऐसे प्रजापतिवत् हो, हे इन्द्र ! ( एवा हि ) तुम इस प्रकार समूहको हारनेवाले हो, हे ( पूषन् ) प्रजा ! ( एवा हि ) तुम ऐसे ही योग्य करनेके जो, हे ( देवाः ) सब देवो ! तुम ( एवा हि ) इस प्रकार दिग्बलुगम्यत हो ॥ १० ॥

## आरण्यक काण्ड

संहिता-शास्त्र-आरण्यक और उपनिषद् ये प्राचीन शास्त्रमयके चार विभाग हैं। संहितामें भववाद, शास्त्रांशोंमें यज्ञकाण्ड और आरण्यक तथा उपनिषदोंमें वेदमंत्रोंमें आये हुए अध्यात्म-विद्याका विस्तारमें वर्णन है। इस आरण्यक काण्डमें अन्तर्गत महारामिनि आधिक्यो तथा कुछ अन्य मंत्रोंकी छोड़कर शेष सब मंत्र श्रुत्वेदके ही हैं। उनका पता हर मंत्रके नीचे दिया हुआ है। जो मंत्र श्रुत्वेदमें नहीं हैं, उनका नहीं दिया गया।

आरण्यकोंका विषय अध्यात्मज्ञानका स्पष्टीकरण ही है। इस प्रकार इस सामवेदीय आरण्यक-काण्डका विषय भी अध्यात्मज्ञानका प्रकटीकरण ही है।

श्रुत्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चार वेद हैं। श्रुत्वेदमें देवोंकी स्तुति है, यजुर्वेदमें यज्ञकाण्डका विषय है, सामवेद उपसनाका वेद है, और अथर्ववेदमें ब्रह्मज्ञान मुख्य है। यद्यपि इस प्रकार ये विभाग हैं, पर प्रत्येक वेदमें किसी न किसी रूपसे अध्यात्मका विषय आ ही गया है। यजुर्वेद कर्मकाण्डका ग्रन्थ है, पर फिर भी उसका अन्तिम चालीसवाँ अध्याय " ईमा-उपनिषद् " है। अथर्ववेदमें ब्रह्मज्ञानके अनेक सूक्त हैं।

उत्तम प्रकार सामवेदके इस आरण्यक-काण्डमें अध्यात्मका विषय आया है। इसके मंत्र यद्यपि श्रुत्वेदके ही हैं, पर उनका ज्ञान अध्यात्मकी बुद्धिसे वेदना चाहिए।

इसमें अग्नि, इन्द्र, वायु, उषा आदि देवताओंके मंत्र हैं, ये विभिन्न देवता हैं, इनका अध्यात्मके साथ कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा कोई यदि समझे, अथवा ऐसा समझकर धका भी करे, तो उसका निराकरण श्रुत्वेदके निम्न मंत्रमें उत्तम रीतिसे किया गया है—

एक सत्य वस्तु

इन्द्रं मिथं वरुणमग्निमाहुः

अयो दिव्यं सः सुपर्णां गतरामान् ।

एकं सद्विद्या बहुधा यदन्ति

अग्निं यम मातरिभ्यममाहुः ॥

( श्रु १११६, ४४६; अथर्व १११०१२८ )

( एकं सत्यं ) हाय वस्तु एक ही है, पर उष एक ही

सत्य वस्तुको ( यिमाः बहुधा यदन्ति ) सामीचीय अनेक नामोंसे पुकारते हैं, उनीका अंगन, इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य सुवर्ण, महत्मान्, यम, मातरिभ्या आदि नामोंसे वर्णन करते हैं। अर्थात् अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि नाम यद्यपि भिन्न-भिन्न हैं, तथापि उन नामोंसे वर्णित की जानेवाली वस्तु एक ही है। इस सिद्धान्तसे बहु-देवतावादका खण्डन होता है और एक-देवतावाद ( सब देवता मिलकर एक देवताका प्रतिपादन करते हैं ) की सिद्धि होती है।

इस आरण्यक काण्डका विचार करते हुए यह आवश्यक है कि हम अपनी दृष्टि एकात्मवाद पर ही रेखित करें। और इस दृष्टिसे ही इस काण्डका विचार करना चाहिए—

१ अथ तत्र प्रते यथं अ-दितये अनामसः स्थान ( ५८९ )— हे ईश्वर ! तेरे नियममें रहकर, हमारा विज्ञान न हो, इसलिये हम पापरहित हों। " दिति " का अर्थ है सन्निवृत्त होना, दुःख होना, विभक्त होना, और अद्वैतिका अर्थ है, अलम्बित स्थिति, स्वतन्त्रता अविनाश, मोक्षहीन अवस्था। यह अवस्था पानेके लिये मैं पाप-रहित होऊँ। परमेश्वरका जो नियम है, मनुष्योंको उसलिये उसने जो नियम निश्चित किए हैं, उन नियमोंका पालन करके हम उस पूर्णवस्थाको प्राप्त करें। मुक्त होनेका वर्णन यह मंत्र उत्तम रीतिसे करता है—

यन्धनं टीले कर

१ उत्तमं पाशं अस्मात् उक्तं यथाय ।

मध्यमे पाशो अस्मात् वि अथाय ।

अधर्मं पाशं अस्मात् अव अथाय ।

उत्तम, मध्यम और अधम ऐसे तीन बंधनोंसे मनुष्य बंधा गया है। बुद्धि, मन और शरीर इन तीन स्वार्थोंमें ये बंधन हैं। बुद्धिका बंधन अज्ञानसे है, मनका बंधन विचारोंको हीमताके कारण है और शरीरका बंधन आहार हीमताके कारण है। बहुतसे मनुष्य इन बंधनोंसे जकड़कर बांध दिये गए हैं। उत्तम सत्यज्ञान प्राप्त करने बुद्धिके पाशोंको ढीले करो, उत्तम विचारोंसे मनके और उत्तम आचारोंसे शरीरके बन्धन दूर करने चाहिए। ऐसा करनेसे हीनों पाशोंसे मनुष्य मुक्त हो सकता है।

२ त्वया भरे शम्भ्वत् कृतं वयं चिन्तयाम ( ५९० ) - हे ईश्वर ! तेरी सहायतासे हमेंशा करने योग्य स्वर्षाओंमें हम अपने कर्तव्योंको सावधानीसे करें। प्रमाद न करें। मनुष्य इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ तबसे उसके जीवनमें स्वर्षां शुभ दुर्घट, छोटीसी स्वर्षां ही विशाल स्वर्षां अर्थात् सप्राणका रूप धारण कर लेती है। यह स्वर्षां चालू ही है। इस स्वर्षांमें अपना कर्तव्य न पूरते हुए विनायी होता ही मनुष्यका कर्तव्य है। पात्र या बर्षण छोलेकरनेके लिए इसको आवश्यकता है।

३ वः अन्नामाः सुस्नेपु मद्मे ( ६१० ) - हे ईश्वर ! तेरे पास बहुरक तेरे द्वारा दिए गए सुखमें आनन्दसे हृष्य रहें। मनुष्योंको देवोंके पास जाकर रहना चाहिए। देवोंके कौण-कौनसे गुण हैं उन्हें देखना चाहिए, और वे ही गुण अपने अन्दर बढाकर देवोंके सात्त्विकमें आनन्दसे रहें। मनुष्योंकी उन्नतिका यही साधन है।

देवोंमें देवोंकी स्तुति इसी लिए है कि उस स्तुतिमें जो देवोंके गुण वर्णित हैं, वे ही गुण उपासक अपनेमें बढावें। यह ही मनुष्योंके उन्नति है। " यत् वेदा अनुजुंनं तत् कर्त्तव्यमिह " ( शातपत्र ब्राह्मण ) जो देव करते हैं उसीकी मैं करू। यह उन्नतिका नियम है। देवोंकी जो स्तुति है उसका विचार करने, उसका मनन करके उपासक देवताओंके गुण अपने अन्दर अभिकसे अधिक किस तरह बढावें, यह देखना चाहिए देवोंकी स्तुति मानवोंकी उन्नतिमें इस प्रकार सहायक होती है। प्रथम अपनेमें देवत्व लावें, फिर श्रुत श्रुतोंके उसकी वृद्धि करें। यही अनुष्ठान मनुष्यों द्वारा करना चाहिए।

### पुरे ध्यान न धोलना

सबसे पहले वाणीको मुद्रता करनी चाहिए। यह इस प्रकार है -

१ हे नैवाः । वः परिचक्ष्वयाणि चर्चसि मा वोच ( ६१० ) - हे देवी ! तुम्हें अच्छे न लगनेकले वचनोंको मैं न बोझू। यह रीति वाणीको शुद्ध करनेकी है। वाणीकी शुद्धिसे बढतमे काम सिद्ध हो जाते हैं।

### शुद्ध भागोंका ज्ञान

अपने श्रावणके साथें शुद्ध और स्वच्छ होने चाहिए। इस विषयमें ये वेदवचन हैं -

१ हे मध्वन् । विदाः गाता विदा । दिशः अनु चक्षिष्य । पूर्षाणां शर्षाणां पते, पुरध्वसो । विश्व ।

( ६४१ ) - हे धनवान् इन्द्र ! तू सब भागोंको जाननेवाला है, उत्तम भागें कौनसा है, बहुत जानता है। हम कौनसी दिशासे जाए इसका तू हमें उपदेश कर। हे आदिशक्तिके स्वामी ! हे घनसम्पन्न प्रभो ! हमें उत्तम दिशा दे, और उत्तम भागेंसे हमें बला।

यह प्रार्थना उपासकोंको करना चाहिए। ईश्वरके पास अनन्य भावनासे ही यह प्रार्थना करना चाहिए। तब देवगण भागोंको बताते हैं। इन प्रकार निर्दोष भागें प्यानमें आता है। उपासक स्वयं भी कौनसा भागें उत्तम है और कौनसा नहीं इसका विचार करके निश्चय करें।

### मुझे श्रेष्ठ होना है

मुझे महान् होना है, यह भावना मनमें होनी चाहिए। इस विषयमें उपदेश इस प्रकार है -

१ तत् नः मित्रो वरुणो मा महन्तां अदितिः सित्पुः पृथिवी उत पौः ( ५९० ) - " इसके लिए मित्र, वरुण, अदिति, सित्पु, पृथिवी और सुलोकमुझे महान् करें। " इसमें पृथ्वीसे लेकर सुलोक तक, रहनेवाले सब देव मेरे महान् होनेके काममें सहायक हों, यह प्रार्थना है। मनुष्यको यदि महान् होना है तो उसे इन सब देवोंकी सहायता अवश्य ही चाहिए। मनुष्यके शरीरमें ये सब देवताएं हैं। यदि एक भी देव प्रतिकूल होगा तो यह अवयव रोगी ही जाएगा और उसकी उन्नतिमें रुकावट आ जाएगी।

२ इमं पदं धृपणं वृणुत ( ५९१ ) - इसको अद्वितीय शक्तिमान् करो। अद्वितीय शक्तिवाला यदि मनुष्य हो जाए तो उसके महान् होनेमें कोई शक्य है ही नहीं।

३ हे प्रचेतन ! आग्निः अभिष्टिभिः ह्ये युष्मन्वाय प्र चेतय ( ६४२ ) - हे प्रेरक ईश्वर ! इस अपने संरक्षणसे अथ व तेज प्राप्त करनेके लिए हमें प्रेरित कर, अपात् ह्य उत्तम भागेंसे जावें तथा अववाले और तेजस्वी होंवें।

४ ध्यावापृथिवी, इन्द्रा-वृहस्पती, भगव्य यदाः मा विन्दुतु ( ६११ ) - धृ, पृथ्वी, इन्द्र, बृहस्पति, और भग इन देवोंके मुझे यज्ञ प्राप्त हो।

५ यदाः मा प्राति मुष्मन्तां ( ६११ ) यदा मुझे छोड़कर दूर न जावे। हमेंशा बग मुझे ही मिलता रहे, अर्थात् मैं तथा यज्ञताओं होवें।

६ यदा मानुषाणां निष्वाणि युष्मानि अयं मिषा-सन्तः यनामहे ( ५९२ ) - इसकी सहायतासे मनुष्योंके

पास रहनेवाले सब तैनोंको प्राप्त करके उत्तम उपभोग करनेकी इच्छावाले हम उत्तम तेज प्राप्त करें ।

७ अस्याः संसद, यशसा अहं प्रयदिता स्याम् ( ६११ )— इस ससदके यशसे में पुञ्ज होऊ और में इस सभामें उत्तम भाषण करनेवाला होऊ ।

सब प्रकारसे मेरी उन्नति होकर में सभामें उत्तम प्रकारसे प्रभावशाली भाषण करनेवाला होऊ, राष्ट्रमें ऐसा मान प्राप्त होना उपप्रतिष्ठा लक्षण है ।

### पूर्णताकी प्रशंसा

जगत्में पूर्णताकी ही प्रशंसा होती है इसलिए कहा है कि—

१ पूर्तिं दास्यते नूनं शक्रः ययां ( ६४८ )— पूर्णता सदा प्रशंसित होती है, निश्चयसे जो शक्तिशाली है वह सभीको धनमें करके अपने अधीन करता है ।

२ शक्र इवो हि ( ६४६ )— सामर्थ्यवान् ही ईशान करता है । निर्वल क्षाण नहूँ कर सकता इसीलिए कहा है ।

३ जेतारं अपराजितं ऊतये हयामहे ( ६४६ )— जो विजयी और अपराजित है उस वीरको अपने संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

४ यजियः शयिष्ठ ( ६४३ )— हे बलशाली बलवान् वीर ! हमारी सहायता कर ।

५ राये वाजाय क्रंजसे ( ६४३ )— धन और अन्नकी प्राप्ति करनेके लिए हमें तू समर्थ करता है ।

६ यः दाराणां दायिष्ठः, वाजानां वाजपतिः, वशान् अनु क्रंजसे ( ६४४ )— जो शूरोंमें अत्यधिक बलवान् है, जो दलितोंमें भी सबसे अधिक बलवान् है, वह अपने वशमें रहनेवालोंकी सामर्थ्यवान् बनाता है ।

ऐसी ही शक्ति हमें भी प्राप्त हो, ऐसी इच्छा मनुष्योंकी मनमें करनी चाहिए । सामर्थ्यशाली होनेसे धन मिलता है । इस धनके विषयमें निम्न बचन इस काष्ठमें हैं ।

### धन

जिससे मनुष्य धन्य होता है, वह धन है । धनका अर्थ बेशक रुपये ही नहीं है, अपितु धर, पुत्र, गाण, पीनेवादी भी धन हैं । इनकी पास रखनेसे मनुष्य धन्य होता है ।

१ नः सुम्ने आधेदि ( ६४८ )— हमें सुख देनेवाले धनमें स्थापित कर ।

२ धनस्य सातये जेतारं अपराजितं हयामहे

२७ ( साम हिमो )

( ६४७ )— धनको प्राप्तिके लिए विजयी और वीरों भी पराजित न होनेवाले वीरको हम अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ।

३ राये सुधीर्थे विद्वाः ( ६४४ )— धन प्राप्त करनेके लिए उत्तम प्रकारके धनके शक्ति अपनेमें किम प्रकारसे सारे वह तू जानता है ।

४ राये वाजाय क्रंजसे ( ६४३ )— धन प्राप्त करनेके लिए हम बल प्राप्त करें, अतः तू हमें सहायता दे ।

५ नः ऊर्जे इषं च आसुत्र ( ६२७ )— हमें सामर्थ्य और बल दे ।

६ हे विरशिन ! तत् सहः भोजः न दृष्टि । अस्य महतः ईशो । नः नुमर्णं स्थविरं वाजः वृधि ( ६२५ )— हे बहुदत्ता धन प्राप्तमें रखनेवाले इन्द्र ! वह राहस्य और सामर्थ्य हमें दे । इग महान् सामर्थ्यका तू स्वामी है, तू हमको धन और महान् स्वाधी बल दे ।

७ हिरण्यस्य, गवां, सस्यस्य ब्रह्मणः, यत् धर्मः, तेन मा संसृजामसि ( ६२४ )— शीता, गाय और सत्य मानका जो तेज है, उससे मुझे पुञ्ज कर ।

८ अमितं योजनं अग्निं अग्रयेयाम् ( ६२२ )— अनिश्चित धन योजनापूर्वक हमें दे ।

९ द्यावापृथिवी स्याते भवतं, ते नः अंहस्तः सुंचताम् ( ६२२ )— सुलोक और पृथ्वीको हमें सुख देनेवाले हों, और ये हमें पापसे बचावे ।

हम निष्पाप हों, अर्थात् हमारे पाप धन आवे, उत्तीप्रकार बल और सामर्थ्य भी प्राप्त हो । धन आदि तापन मिले तो भी आयुके रहनेपर ही उसका उपभोग किया जा सकता है, इसलिए आयुकी कायना हन करें, ऐसा कहा है—

### दीर्घ आयुष्य

१ अग्ने ! आयुषि पचते ( ६२७ )— हे अग्नि ! हमें दीर्घायु दे ।

२ यक्षपती अ-विहृतं आयुः दधत् ( ६२८ )— धन करनेवालेको उपबद्धरहित दीर्घ आयु दे । इस प्रकार आयु प्राप्त करें यह इच्छा इन वचनोंमें है ।

### संरक्षण

हमें धन, बल, तेज, दीर्घायु आदि प्राप्ति हों और अपने लिए संरक्षण मिले यह मनुष्योंकी इच्छा स्वाभाविक है । इस विषयमें निम्न वचन देखिये—

१ उग्र. उग्राभिः. जतिभिः. वाजेषु सहस्रप्रधनेषु नः अथ ( ५९८ ) तू महान् वीर है, इसलिए अपने उत्तम सरक्षणों को छोटे और बड़े युद्धोंमें हमारा सरक्षण कर ।

२ घातजूतः ( सूर्य ) तमता प्रजा अभिरक्षति, पिपति बहुधा विराजति ( ६२८ )- वायुके साथ सूर्य स्वयं ही सब प्रजाओंका सरक्षण करता है, सभी अशोकों पूर्ण करता है, और उन्हें विजय रोशनी प्रकाशित करता है ।

३ सूर्यः जगत. तस्मिन् आत्मा ( ६२९ )- सूर्य इस स्थावर और जगम जगत्का राजा है ।

४ सूर्यः ताराभिः विश्वदर्शितः ज्योतिष्कृत् अस्ति विश्वं रोचनं आभासि ( ६३५ )- सूर्य सबको तारनेवाला, सब देखनेवाला, प्रकाश करनेवाला और सरक्षण करनेवाला है । सब विश्वको वह प्रकाशित करता है ।

### युद्ध

यदि संरक्षण करना है तो शत्रुके साथ युद्ध करके शत्रुको पराजित करना ही पड़ता है । उसके बिना उत्तम सरक्षण ही हो नहीं सकता । इसलिए युद्ध करना आवश्यक ही है । इस युद्धके सन्वन्धमें निम्न वचन हैं—

१ सः नः दिप. सु उर्षत् ( ६४६ )- वह हमारे शत्रुओंको दूर करता है ।

२ शूत्रेषु शत्रून् सहना धृषि ( ६२५ )- युद्धमें शत्रुओंको अपने बलसे पराजित कर ।

३ अहिं अहन् ( ६१२ )- शत्रुको तुने मारा ।

४ हे अपूर्व्यं मध्वन् । वृचहस्याय जायधाः ( ६०१ ) - हे अद्वितीय पगवान् इन्द्र ! तू वृत्रको मारनेके लिए उत्पन्न हुआ है ।

इस प्रकार शत्रुके युद्ध करना अत्यावश्यक है, उसको किए बिना प्रजाका सरक्षण ही हो नहीं सकता । युद्धमें उत्तम वीर होने चाहिए । वे वीर कैसे हों यह इन्द्र देवताके वर्णनके द्वारा दिखाया है । इसलिए इन्द्र देवताका वर्णन यहाँ देखें—

### देवोंके गुण

देवोंमें विजय सामर्थ्य होता है, इसी सामर्थ्यके कारण उनकी देवत्व प्राप्त हुआ है । उन देवोंके गुण बंतिए—

१ वज्रहस्त ( ५८६ )- हाथोंमें वज्र धारण करनेवाला इन्द्र ।

२ इन्द्रः वज्री हिरण्यस्य ( ५९७ )- इन्द्र वज्र धारण करता है और वह सोनेके व्यामूषण भी धारण करता है ।

३ अभिमातिपाहः ( ६०३ )- वह शत्रुओंका पराभव करनेवाला है ।

४ वज्री यानि प्रथमानि वीर्याणि चकार, तु प्रवोचं ( ६१२ )- वज्रपाशरी इन्द्रने प्रथम जो पराक्रम किया उसका मैं वर्णन करता हूँ ।

५ इन्द्रः जगतः चर्षणानां राजा ( ५८७ )-

६ अधिक्षमा विपुर्गुणं यत् अस्ति ( ५८७ )-

७ द्युशत्रुं वसुनि ददाति ( ५८७ )-

८ उपस्तुतं राघः अर्धाङ्गं चोदत् ( ५८७ )-

इन्द्र स्थावर जगम और सब मनुष्योंका राजा है । इस वृषीपर अनेक रूपरूपपाते जो कुछ भी पदायं हैं, उनका भी बड़ी राजा है । बानगोलको वह शनैक प्रकारके धन देता है । जो उसकी स्तुति करता है, उसके पास वह धन भेजता है ।

९ ज्येष्ठं ओजिष्ठं यपुरि श्रवः नः अग्रर ( ५८६ )- श्रेष्ठ, बलवर्धक और पूर्णता करनेवाले घाश और अन्न हमें भरपूर दे ।

१० परमेष्ठीः प्रजापतिः मयि वर्षः अथोपनाः पयः चंद्रतु ( ६०२ )- परमेष्ठी प्रजापति मुझे तेज, घाश और दूध देवे ।

११ हे अग्ने ! नः पयसा रयिं ह्यो घर्षः अदाः ( ६१५ )- हे अग्ने ! हमें दूधके साथ धन और तेज दे । हमें अन्न और तेज दे ।

१२ धायापृथिवी सुभोजसो ( ६२२ )- धूलोक पृथ्वीलोक हमें उत्तम भोजन दें ।

१३ वरिवीथित् ( ५९२ )- धन अग्नें प्राप्त रखनेवाला ।

१४ रत्नघातमं अग्निं ईडे ( ६०५ )- रत्न देनेवाले अग्निर्को मैं स्तुति करता हूँ ।

ये देवताओंके गुण हैं । उन्हें देखें और उन गुणोंको अपने अन्तर बदानेका उपाय करें और देवत्वसे युक्त हों ।

### सभी समय उत्तम हूँ

प्रायः तीस समयकी बोध देते हैं, पर सभी समय उत्तम हूँ—

१ घसन्ताः, प्रीष्मः, घर्षाणि, शरदः, हेमन्तः, शिशिरः रम्यः ( ६१६ ) - ये सभी ऋतुयें रमणीय हैं, मुझ देनेवाली हैं, इसलिए सत्यको दोष देना ठीक नहीं । अपने प्रयत्नमें बंध होते हैं, उन प्रयत्नोंकी सपत्नीय करना चाहिए । इसीलिए देवोंमें मनुष्योंको " शत्रु " कहा गया

है। मानवी जीवन क्लृप्त-यत्नरूप होना चाहिए। इस उद्देश्यको कहा है—

**कृत्**

० सः क्रतुः छन्दः क्रतं बृहत् ( ६४६ )- यह कर्म करनेवाला है, उसका पुरुषार्थ करनेका स्वभाव है, वह सत्य-निष्ठ और सरल व्यवहार करनेवाला है, इस कारण वह महान् है। ये चार शब्द ब्रह्म ही महत्वके होनेके कारण इनके अर्थ आये दिए जाते हैं—

क्रातुः- निश्चय, शक्ति, बुद्धि, यत्न, अन्त प्रकाश, प्रज्ञा।  
 छन्दः- आनन्द, इच्छा, निश्चय, तत्परता।  
 क्रतं- योग्य, शास्त्र, सामर्थ्य, शूर, पूज्य, तेजस्वी, नियम।  
 बृहत्- उच्च, महान्, बहुल, सामर्थ्यवान्।

इस प्रकार इनके अनेक उत्तम अर्थ हैं, और ये अर्थ सायणको माने दिखाने हैं।

**अन्न**

अन्नका मत किया जाता है। ये अन्न देवोंके पहले भी उत्पन्न हुए—

१ देवेभ्यः पूर्वं अहं अमृतस्य क्रतस्य प्रथमज्ञा अस्मि ( ५९४ )- देवोंके पहले, अमरत्व देनेवाले यत्नके पूर्व मैं जन्म उत्पन्न हुआ। पहले जन्म उत्पन्न हुए और उसके बाद उठे पानेवाले उत्पन्न हुए। प्राप्त पहले पंचा हुई और प्राप्त पानेवाले पशु यादमें उत्पन्न हुए। फलके वृक्ष पहले पंचा हुए और फल पानेवाले मनुष्य पीछेके पंचा हुए।

**गायोंमें दूध**

१ कृणामु रोहिणीषु पशुध्यासु रुशत् पयः अधारयः ( ५९९ )- बालों, लाल और अनेक रणके गायोंमें तेजस्वी दूधको दूने स्थापित किया। यह देवोंका महान् सामर्थ्य है।

० सहज-रूपभा- महत्वस्वाः दूधधूर्माः विदग्धा रूपानि विधत्ताः उदैत ( ६३६ )- बालोंके साथ रहनेवाली, बघड़ोंके साथ रहनेवाली, दुग्धमें बड़े पनोंवाली अनेक रणकी गायें हमारे पास आये।

**दानका महत्व**

यत्न उत्पन्न हुआ, दूध निकले लगा, और उससे यत्न होने शुरू हुए। तब दानका महत्व समझमें आया। उसके सन्तर्पण पंचा इस प्रकार है—

१ यः मां ददाति स आधत् अन्नं अदन्तं अहं अन्नं अस्मि ( ५९४ )- ' जो मुझ अन्नको दानरूपसे दारारो देता है, उसका संरक्षण होता है, परन्तु दान न देता हुआ अन्नको स्वयं ही खाता है उस कनूत मनुष्यको मैं स्वयं यत्न ही का जाता हूँ, अर्थात् पहले अन्नका श्राव करे फिर स्वयं अन्न खाये।

**सन्धा मित्र**

१ सन्धा सुशेनः अह्ययुः ( ६४९ )- यह ही सन्धा मित्र है, जो उत्तम सेवाके योग्य और दोहरा स्वकार नहीं करता। अन्तरसे दूसरा और चाहेतसे दूसरा जो व्यवहार करता है वह सन्धा मित्र नहीं।

**कथयाण करनेवाली रात्री**

१ भद्रा युचति रात्री प्रागात्, बहः केदून् सं ईर्त्सति, विश्वस्य जगताः निषेजानी रात्री भद्रा अधून् ( ६०८ )- कल्याण करनेवाली रात्रीरूपी स्त्री या गर्दी है। वह विश्वके प्रकाशनी रोषती है। तब जगत्को विश्राम देनेवाली यह रात्री विश्वसे लोभोंका हित करनेवाली है।

**कुत्तोंको दूर करो**

१ दुच्छुनान् आरे वाघरत ( ६२० )- इष्ट कुत्तोंके दूर करो। कुत्तोंको दूर करो। कुत्तु हमारे काममें विघ्न न पंदा करे ऐसा करो।

**घोडे**

देवोंके रथमें घोड़े जुते होते हैं। उसका वर्णन इस प्रकार है-

१ इन्द्र इत् एर्योः स्वचा वा स्वमिदधः घघोयुञ्ज ( ५९७ )- इन्द्रही घोड़ोंका सन्धा मित्र है और जन घोड़ोंकी अपने रथमें जोड़नेवाला है। ये घोड़े कहने मानने ही रथमें जुड़ जानेवाले हैं। इतने वे तिष्ठित हैं। इस प्रकार घोड़ोंको सितावर बुनियात करना चाहिए।

२ चायो। निमुनयान् आगति ( ६०० )- हे चायो। तु अपने निमुन नामके घोड़ोंको अपने रथमें ओढ़कर उतरी आ।

यहां चायुके घोड़ोंको निमुन कहा है। " निमुन " इस शब्दका अर्थ है, रथमें उत्तम प्रकारसे जोड़े जायेवाले, है।

३ शुभयुवः सप्त अयुक्त, रथस्य नःत्तय ( ६३९ )- ३ सप्त हरितः द्यौर्विपैदां तया रथे यष्टित ( ६४० )- पवित्रता करनेवाले सप्त घोड़े, पवित्रता करनेवाली सप्त किरणें जिसरीं हैं, ऐसे तुम्हें रथके ले जाने हैं।

यह सूर्यका विशेषण " द्यौर्विपैदा " किया है। सूर्यकी किरणें सुदृढता करनेवाली होती हैं। सात घोड़े ये किरणोंके



सात रग हं । अर्थात् सात घोड़े व घोड़िया आलकारिक हं । वायु और इन्द्रके घोड़ोंका प्रयोग आलकारिक है । वायु रथमें बैठता है, इन्द्र और सूर्य रथमें बैठते हं यह भी सब आलकारिक है । सच्चे घोड़ेका यहा कोई सम्भव नहीं है ।

### नक्षत्र

जिस प्रकार चौर राश्रीमें घूमते हैं और दिनमें छिप जाते हैं, उसी प्रकार तारे राश्रीके समय आकाशमें चमकते हैं और दिनमें सूर्यके आते हो छिप जाते हैं । इसका वर्णन देखिए—

१ नक्षत्रा अप्तुभिः अपयन्ति यथा त्पे तायवः ( ६३३ )—जिस प्रकार चौर राश्रीके समय होनेके साथ साथ विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार नक्षत्र राश्रीके साथ साथ छिप जाते हैं, यह उपमा अलकारका एक उत्तम उदाहरण है ।

### मोक्ष

मनुष्य जो कुछ भी प्रयत्न करता है वह बचनते छूटनेके लिए ही करता है । सभी आध्यात्मिक ज्ञान, जो अन्तक कहा है, बन्धनते निवृत्ति और मोक्ष प्राप्तिके लिए ही है । इस विषयमें कहा है—

१ अमृताय आप्पायमानः दिधि उत्तमानि भवांसि धिष्य ( ६०३ )—अमरत्व प्राप्त करनेके लिए उत्कृष्टव्यति प्राप्त करते हुए धूलोकते उत्तम अन्न प्राप्त कर । स्वर्गते उत्तम उपभोग प्राप्त कर ।

अमरता प्राप्तिकी दृष्टासे जो अनुष्ठान किया जाता है, उन्हीं करते हुए मनुष्यकी उत्पत्ति होती रहती है और उसे उत्पत्तिके मार्गमें स्वर्गके भोग मिलनेसे आनन्द प्राप्त होता रहता है । यह दत्त अनुष्ठानके करनेवालेको प्रत्यक्ष अनुभव होता है । इस अनुष्ठानका साधक पृथ्वीपर रहते हुए भी उत्तमका मन दिव्य आनन्दका स्वाभ उठता है । इमे दुर्लोकमें जानेकी जरूरत नहीं । उसे यहीं विषयसुखकी प्राप्ति होती है और यह सदा आनन्द प्रसन्न रहता है ।

### श्रापिका कार्य

१ कवयः पुरासः रवा स्तुबन्ति ( ६२३ )—कवि वेदोंकी स्तुति करते हैं । यह स्तुति मनुष्योंकी उत्पत्तिका मार्ग दिखाती है । इतिन्द्र स्तुतिको साधक तावधानीसे करे और उत्तम अर्थ और सुखकी अपनं प्पानमें लावे ।

२ ते गोनां नाम प्रथम अभवत् । निः सप्त परम्

नाम जानन् ( ६०६ )—इन ऋषियोंने वाणीके शब्दोंका प्रथम विचार करके स्तुति करने योग्य है ऐसा समझा । यह स्तुति इबकीसे छन्दोंमें हो सकती है, इस प्रकार उम ऋषिने अनुभव किया ।

भाषाके शब्दोंमें गूढ अर्थ हैं और उन शब्दोंते इबकीसे छन्दोंमें स्तोत्र बनते हैं । इस प्रकारका महान् ज्ञान ऋषिको हुआ, यह ज्ञान होनेके बाद अनेक छन्दोंमें स्तोत्र बनाये और मन्त्र प्रकट हुए । उन मन्त्रोंमें अध्यात्म-विद्या प्रकट हुई, उसे देखनेके लिए मानवजाति उत्पन्न हुई । मानवकी कृत-कृत्यता इस ज्ञानसे हुई ।

### वैश्वानरकी कल्पना

वैश्वानर, विश्वकृष्टि, सब मनुष्य अथवा पृथ्वीके सब मनुष्य मिलकर एक " पृथ्व " है, पृथ्वीके सब मनुष्य एक विशाल " शरीर " है । इतकी एकता मनुष्य समाजमें होनी चाहिए, यह ध्येय वेदने इस स्थानपर कहा है । वह मन्त्र यहा देखिए—

१ सहस्रशीर्षा पृथवः सहस्राक्षः सहस्रपाव । स भूमिं सर्वतो दूरवाप्यतिष्ठद्दशांगुलम् ( ६१७ ) — " हजारों शिर, हजारों आंख और हजारों पैरोंवाला एक पृथव है । वह पृथ्वीके चारों ओर ब्याप्त है, दत्त इन्द्रयोंते ज्ञात होनेवाले जगत्को व्याप रहा है ।

पृथ्वीपर आज लगभग २०० करोड़ मनुष्य हैं । सम्पूर्ण मनुष्योंका मानव समाज रूपी एक शरीर है । उस शरीरके २०० करोड़ मस्तक, चारती करोड़ पैर, चारती करोड़ हाथें आदि हैं । यह पृथ्वीपर चारो ओर है । ये जो ही करोड़ मनुष्य परस्पर मिलकर शरीरमें अवयवोंके समान एकताका यत्न करें । एक शरीरमें जिस प्रकार शिर, हाथ, पैर और पाव सब एक दूसरेकी मदद करते हुए सुलते रहते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य एकतासे रहते हुए अपनी उत्पत्ति करें इस तावदेशको व्यवहारमें लानेके लिए सब मिलकर प्रयत्न करें, इसको यहा सूचना दी है ।

### सुभाषित

१ ज्येष्ठ ओजिष्ठं पुरिश् श्रयः नः आभर ( ५८६ )—श्रेष्ठ और यत्न बढ़ानेवाले, सुलत करनेवाले अन्न हमें भरपुर दें ।

२ इन्द्रः जगतः सर्पणोर्ना राजा ( ५८७ )—इन्द्र-प्रभु-बलनेवाले प्राणियों और प्पानका राजा है ।

३ अधिक्षमा विद्वरुषं अष्ट राजा ( ५८७ )

— इस पृथ्वीपर अनेक रूपवाले जो कुछ भी वरदायें हैं उनका भी वही राजा है ।

४ दक्षुपे घसन्नि ददाति ( ५८७ )— दानशील मनुष्यको वह राजा धन देता है ।

५ उपस्तुतं वाधः अर्गक्ष् चोदत् ( ५८७ )— ईश्वरको स्तुति करनेवालेको वह धन मिलता है ।

६ घस्य रजोयुजः इन्द्रस्य इदं वृहत् रन्त्यं स्यः तुजे जने वनम् ( ५८८ )— इस तेजस्वी इन्द्रके ये महान् रमणीय धन बानी और प्रेरणा करनेवाले लोगोंमें प्रशंसनीय हैं ।

७ वृत्णः ! उत्तमं, अधमं, मध्यमं पारां अस्मत् उत्तु श्रधाय ( ५८९ ) हे वृष्ण ! उत्तम, अधम और मध्यम वपनोंकी हमसे दूर कर ।

८ तद्य धते वयं अ-दितये अनासः स्याम ( ५८९ )— तेरे नियममें रहते हुए हम स्वतंत्रता प्राप्तिके लिए निष्प्राय होंगे ।

९ पवमानेन त्वया भरे दाद्वत् वृत्तं वयं विचि-नुयाम ( ५९० )— पवित्र रहनेवाले तेरी सहायतासे हमेशा किए जानेवाले कर्तव्य हम सावधानीसे करते रहें ।

१० तत्त् मा महस्तां ( ५९० )— उत्तमो सहायमाने मुझे सहायता प्राप्त हो ।

११ इमं पक्षं वृष्णं कृणुत ( ५९१ )— इस एकको तुम बलवान् करो ।

१२ एना मानुषाणां विद्वानि पुन्नानि अर्यः, लिपात्सन्मः, घनामहे ( ५९२ ) इतकी सहायतासे मनुष्यों द्वारा इच्छित धर्मोंके पाम जाकर उसके उपयोग करनेकी इच्छा करनेवाले हम उस धनको प्राप्त करते हैं ।

१३ अमृतस्य अन्नस्य पथमजा अस्मि ( ५९४ )— अन्न पत्रके पहले अन्न उत्पन्न हुआ, मैं भी धनके पहले उत्पन्न हुआ, अतः मैं इस अन्नका यज्ञ करता हूँ ।

१४ यः मां ददाति स आचन् ( ५९४ )— जो इस मद्यका दान करता-है, वह सबका संरक्षण करता है ।

१५ अर्धं अदन्तं वार्धं चर्यं अग्नि ( ५९४ )— जो अन्नका दान न करने स्वयं पाता है, उसे मैं अन्न स्वयं खा जाता हूँ ।

१६ हे इन्द्र ! कृष्णात्, रोहिणीयु, पृथ्वीयु रदावृ पयः सघारवः ( ५९५ )— हे इन्द्र ! तू बानी, सास और अनेक रंगकी गावोंमें तेजस्वी हुए स्थापित करता है ।

१७ उपसः क्षप्रियाः पृदिनः अरुदचत् ( ५९६ )— उप-शालके बाढ़ उपनेवाला सुव्यं प्रजापति सगता है ।

१८ भुवनेषु वाजयुः ( ५९६ )— प्राणियोंमें अन्न खानेकी इच्छा होती है ।

१९ माययिनः अस्य मायया गमिरे ( ५९६ )— कुशल लोग अपनी कुशलतासे पदाधिका निर्माण करते हैं ।

२० उग्रः उग्रभिः ऊतिभिः वाजेषु सहस्रमर्धनेषु च नः अय ( ५९८ )— तू मूर्ख है, इसलिए अपने विशेष संरक्षणमें छोड़े और महान् युद्धोंमें हमारा संरक्षण कर ।

२१ परमेष्ठी प्रजापतिः गपि चर्चमं, यदा, पयः दंहतु ( ६०२ )— परमेश्वर मुझे तेज, बल, धन और दूध भरपूर देवे ।

२२ अभिप्रातिपाद्ः ते पथांसि वाजाः घृष्प्यानि सं वरुतु ( ६०३ )— तू शत्रुका पराभव करनेवाला है, इस लिए तुझे दूध, अन्न और बलकी प्राप्ति हो ।

२३ अमृताय आप्यायमानः दिवि उत्तमानि धर्वांसि धिष्य ( ६०३ )— मोक्ष प्राप्तिके लिए तू अपनी उन्नति करते हुए शूलोक्तो उत्तम धन प्राप्त कर ।

२४ त्वं तमः ज्योतिषा वि चवर्थ ( ६०४ )— तू अल्पकारका तेजसे नाम करता है ।

२५ पुरोहितं, यजस्य देयं, ऋत्विजं, होतारं, रत्न-घातमं अग्निं ईडे ( ६०५ )— आगे रहनेवाले, धनके प्रवर्तन, शत्रुओंके अनुसार यज्ञ करनेवाले, देवोंको अपने साथ खाने-वाले और उपासकोंकी रत्न देनेवाले अपनोंके मैं स्तुति करता हूँ ।

२६ भद्रा युवतिः रास्यं प्रागात् ( ६०६ )— बन्ध्या कलनेवाली रास्योक्षी स्त्री आ गई ।

२७ विद्वस्य जगतः निषेदानी रास्यं भद्रा अभूत् ( ६०६ )— सब जगत्की आराम देनेवाली रास्य सबका बन्ध्या करनेवाली है ।

२८ प्रश्नस्य वृष्णः अरारस्य माहः नः घवा ( ६०९ )— ध्यायक, बलवान्, तेजस्वी और महान् देवकी मैं स्तुति करता हूँ ।

२९ धैद्वानराय नृचिः च्यागः मतिः ( ६०९ )— सब मनुष्योंके हित करनेवालेने नृद और सुन्दर स्मृति की जानी है ।

३० हे देवाः ! यः परिवृष्पाणि घर्चंसि मा वोधं ( ६१० )— हे देवो ! तुम्हारे न मुनवके योग्य बाणीकी मैं न बोजू ।

३१ यः अन्तमाः शुम्नेषु इह मयेन ( ६१० )—

सुहारे पात रह करके तुम्हारे द्वारा किए गए सुखमें हम आनन्दते रहें ।

३२ यशः मा प्रति मुच्यतां ( ६११ )- यश सुखे छोड़कर दूर न जाये । सुखे यश मिलता रहे ।

३३ अस्याः संसदः यशसा अहं प्रथविता स्याम् ( ६११ )- इन सभामें मैं तेजस्विताने बोलनेवाला होऊ ।

३४ धर्षा यानि प्रथमानि धीर्याणि चकार, प्रथो-  
चम् ( ६१२ )- प्रथमपारी इन्द्रने जो महान् पराक्रम किए उनका मैं वर्णन करता हूँ ।

३५ जन्मना जातवेदाः अभिः अस्मि ( ६१२ )- जन्मते ही मैं सर्वत और अग्रणी हूँ ।

३६ हे यमुजित् आने ! नः पयसा रयि दशो वचैः  
अदाः ( ६११ )- हे धनवान् आने ! हमें दूधके साथ धान और शर्शनीय तेज दे ।

३७ वसन्तः, प्रीष्म । धर्षाणि, शरत्, हेमन्तः,  
शिशिरः, रम्याः, ( ६१६ )- वसन्त, प्रीष्म, वर्षा, शरत्,  
हेमन्त और शिशिर ये ऋतुयें रमणीय हैं ।

३८ सहस्रशोर्षा, सहस्राशः, सहस्रपाय, पुष्पः,  
स भूमिं विश्वतो दूर्या दश्रांगुलं अत्यतिष्ठत् ( ६१७ )  
- हजारों तिर, हजारों आँवें, हजारों पांववाला एक पुष्प है,  
वह सब पृथ्वीपर चारों ओर व्याप्त होकर दस अंगुलियोंके  
तमान इस विरक्तो व्याप्त करके रह रहा है ।

३९ त्रिपाद् पुष्टयः ऊर्ध्वः उर्ध्व ( ६१८ ) तीन  
भागोंवाला यह पुष्ट ऊपर स्वर्गें स्थानमें रह रहा है ।

४० अस्य पाद्ः इह पुनः भगवत् ( ६१८ )-  
इसका एक भाग इस जगत्में चार-चार पैदा होता है ।

४१ ततः अज्ञान-अज्ञाने अभि विष्णुह व्यग्रायत  
( ६१८ )- बादमें अज्ञानके ओर न जानेवाले ऐसे  
विषय स्थिति चारों ओर प्रकट होता है ।

४२ यत् भूतं यत् च भाष्यं इदं नयं पुष्टय पय  
( ६१९ )- जो उत्पन्न हो चुका और जो होनेवाला है वह  
सब यह पुष्टय ही हैं ।

४३ स्वर्गा भूतानि अम्य पाद्ः ( ६१९ )- तारे  
जगत्त हुए प्राणी इतने चौधे हो हिस्से हैं ।

४४ अस्य तावान् महिमा ( ६२० )- इसकी ऐसी  
महिमा है ।

४५ वसुतःयस्य ईशानः ( ६२० )- अमरताका वह  
स्वामी है ।

४६ ततः विराट् अजायत ( ६२१ )- इस पुष्पको  
विराट् पुष्प हुआ ।

४७ विराजः अघि पुरुषः ( ६२१ )- विराट् पुरुषका  
अधिष्ठाता एक पुरुष है ।

४८ स जाता अत्यरिच्यत, भूमिं पदन्वात्, पुरा  
( ६२१ )- वह उत्पन्न हुए प्राणियोंके धेड़ था, पहले भूमि,  
बादमें भूमिपर उत्पन्न हुए दूसरे पदार्थोंके रूपसे वह प्रकट हुआ ।

४९ हे धावापृथिवी ! वां सुभोजसी ( ६२२ )- हे  
तु और पृथ्वी लोको ! मुझ ही उत्तम भोजन देनेवाले हो ।

५० हे धावापृथिवी ! स्थोने भवते ( ६२२ )- हे  
धावापृथिवी ! तुम हमारे लिए दुल देनेवाले हो ।

५१ ते नः अंहसः सुंचतम् ( ६२२ )- तुम हमें  
पारसि छुड़ावो,

५२ अभितं योजनं अभि अग्रधैर्घां ( ६२२ )- हमें  
अपरिमित धन भोजनापूर्वक दो ।

५३ धनर्धेवः कथयः पुरपासः त्वा स्तुघन्ति ( ६२३ )  
- गाय पासनेवाले शानी जन तुझ इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

५४ हिरण्यस्य, गर्गा, सत्यस्य महाराः यत् वर्ष्वा,  
तेन मां संयुजामसि ( ६२४ )- तोना, पाय और साथ-  
साथ इनमें जो तेज है उस तेजसे मुझे युक्त कर ।

५५ हे विरिंशन् ! सहः भोजः नः दधि ( ६२५ )-  
हे बहुत धनवान् ! हमें सामर्थ्य और दूध दे ।

५६ अस्य महतः ईशो ( ६२५ )- इस महान् धनका  
तू स्वामी है ।

५७ नः नृप्यां स्थविरं धाजं सुधि ( ६२५ )- हमारे  
लिए धन और स्वामी सहान् बल दे ।

५८ पृष्टेषु दादुम् सहता एधि ( ६२५ )- संघामें  
धनुर्धारी पेटके कुचामें सात्तमें हर्ष दे ।

५९ सह-ऋषभाः महद्यन्त्राः हृष्टयन्त्राः उयेत ( ६२६ )  
- बलोंके साथ रहनेवागें, महदोंके साथ शानतिर, दृष्टने बने  
हुवासायबावों गायें हमारे पास आवें ।

६० उरः पुषुः अयं सोकः ( ६२६ )- यह सुकोर  
तुम्हारे लिए मरान् और वितान् हो ।

६१ अग्ने ! मायूषि पयमे ( ६२७ )- हे आग्ने ! तू  
हमें शीघ्रें मान् दे ।

६२ नः ऊर्जे इयं च आसुय ( ६२७ )- हमें बल और  
अन्न दे ।

६३ दुष्टपुनो भारो वापश्य ( ६२७ )- दुष्टको दूर कर ।

६४ यज्ञपतेः अविहृतं आयुः दधत् ( ६२८ )-  
यज्ञमानको उपद्रवर्हित आयु दे ।

६५ प्रजाः अभिरक्षति, पिपतिं ( ६२९ )- यह  
प्रजाओंका सरक्षण करता है । और अन्नको पुर्ण करता है ।

६६ सूर्यः जगतः तस्थुषः च आत्मा ( ६२९ )- सूर्य  
स्वावह और जगम जगत्वा आत्मा है ।

६७ महियः दिव्यं व्यरपत् ( ६३१ )- यह महान्  
सूर्य शलोकको प्रकानित करता है ।

६८ यथा स्ये तायवः, विद्वच्चक्षसे सुराय, नक्षत्रा  
अफनुभिः अपयन्ति ( ६३३ )- जैसे चोर दिवमें छिप  
जाते हैं, उसी तरह सबको प्रकाश देनेवाले सूर्यके उदय होते  
ही तारे रात्रोमे साप बिलोन हो जाते हैं ।

६९ अस्य फेतवः रदमयः जनान् अजु व्यदृश्यन्  
( ६३४ )- इस सूर्यकी किरणें लोगोंको देखती हैं । लोगोंका  
निरोधान करती हैं ।

७० तरणिः विदमर्दरतः ज्योतिःछन्दः अग्नि ( ६३५ )  
- तू सबको तारनेवाला, सर्वोसे देखने योग्य और प्रकाश  
करनेवाला है ।

७१ विद्वे रोचने आभासि ( ६३५ )- सब तेजस्वी  
पदार्थोंको तू प्रकाशित करता है ।

७२ मानुषान् विद्वन् स्वर्दशे अत्यहः उदेयि ( ६३६ )  
- मनुष्योंके आगे सब विद्वे शीघे इतलिए तू उदय होता है ।

७३ मयवन् विदुः ( ६४१ )- हे धनवान् परमात्मन् !  
तू सब कुछ जाननेवाला है ।

७४ गान्तुं विदाः ( ६४१ )- तू उत्तम मार्गोंको जानता है ।

७५ दिदाः अजु संश्रियः ( ६४१ )- हम कौनसो  
विशासे जाए यह बता ।

७६ पूर्वाग्नां शचीनां पते ! पुरुवसो ! शिश ( ६४१ )  
- हे आदिशक्तिके स्वामी ! धनवान् ! हमें जान दे ।

७७ प्रचोतन ! आग्निः अभिष्टिभिः इये धुम्नाय प्र  
चोतय ( ६४२ )- हे चेतना देनेवाले देवो ! इन सरक्षणीति अन्न  
और तेज प्राप्त करनेके लिए हमें उत्तम मार्गसे प्रेरित करो ।

७८ महिष्ठः चक्षिषः ! शक्रः प्य दि ( ६४३ )- हे  
महान् चक्षुषारी इन्द्र ! तू सामर्थ्यवान् है ।

७९ हे शनिष्ठ ! महे याजाय अन्नक्षसे ( ६४३ )-  
हे बलवान् ! महान् धन और बल प्राप्त करनेके लिए हमें  
समर्थ कर ।

८० अन्वजे ( ६४३ )- तू सामर्थ्यशाली बनता है ।

८१ राये सुबोधं विदाः ( ६४४ )- धन प्राप्त करनेके  
लिए उत्तम सामर्थ्य जिस प्रकार प्राप्त करें, यह जानता है ।

८२ शूराणां शयिष्ठः ( ६४४ )- शूरोंमें तू सबसे अधिक  
शूर है ।

८३ वाजानां पतिः ( ६४४ )- तू सर्वाका स्वामी है ।

८४ वशान् अजु अन्नक्षसे ( ६४४ )- अपने अनुकूल  
रहनेवालोंको तू सामर्थ्यशाली बनाता है ।

८५ भयोनां महिष्ठः ( ६४५ )- महान् धनवानोंसे भी  
तू अधिक धनवान् है ।

८६ अन्नुः न गोप्तिः ( ६४५ )- सूर्यके समान तू  
प्रकाशमान् है ।

८७ नः विदे अभिनय ( ६४५ )- हमें जान प्राप्त  
करनेके लिए तू उत्तम मार्गसे ले जा ।

८८ शक्रः ईशो ( ६४६ )- तू सामर्थ्यशाली होता है,  
वह स्वामी होता है ।

८९ उतये अंतारं अपराजितं ह्यामदे ( ६४६ )-  
सरक्षणके लिए विजयी और अपराजित धीरको हम बुलाते हैं ।

९० नः नः क्षिप्रः अर्पत् ( ६४६ )- यह हमारे  
पानुओंको दूर करता है ।

९१ सः क्रतुः छन्दः अतं गृहत् ( ६४६ )- यह  
कर्म करनेवाला, रक्षक सत्यनिष्ठ और महान् है ।

९२ धनस्य सतये अपराजितं जेतारं इन्द्रं ह्यामहे  
( ६४७ )- धनको प्राप्तिके लिए अपराजित और विजयी  
इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

९३ पूर्तिः शस्यते ( ६४८ )- पूर्णता करनेको शक्तिको  
प्रस्ता होता है ।

९४ शक्रः यगो ! ( ६४८ )- सामर्थ्यवान् सबको बर्धन  
करता है ।

९५ यः सारा सुबोधः अदयुः ( ६४९ )- जो उत्तम  
धिय, उत्तम प्रकारसे सेवाके योग्य तथा शीलका व्यवहार न  
करनेवाला है, वह उत्तम होता है ।

### उपमा

१ द्विधि घां इव ( ६०२ ) जिस प्रकार धूलिकर्म  
तेज है, उसी प्रकार ( यज्ञस्य पयः ) यज्ञका इव होता है ।

२ यथा स्ये तायवः ( ६३३ )- जैसे चोर दिवमें भाग  
जाते हैं, उसी प्रकार ( नक्षत्रा अफनुभिः अपयन्ति )  
तारे रात्रोमे साप छिप जाते हैं, दिवमें शीघे नहीं ।

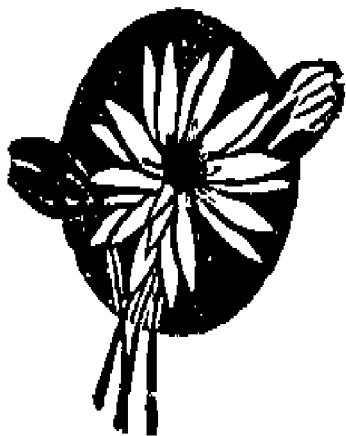
३ यथा श्रान्तः अश्रयः ( ६३४ )- जिस प्रकार  
तेजस्वी अग्नि जलती है, उसी प्रकार ( अस्य फेतवः  
रदमयः ) इस सूर्यकी किरणें चमकती हैं ।

इस आरम्भ-काण्डमें इतनी ही उपमाएँ हैं ।

## आरण्यकाण्डान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

संज्ञासंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
		( १ )		
५८६	६।३६।५	शंभुर्बाह्वृस्पत्यः ( भरद्वाजः )	इन्द्रः	सूक्ती
५८७	७।२७।३	पत्सिन्वो भंज्रावर्षणिः	"	त्रिष्टुप्
५८८	—	वामदेवो गीतमः	"	गायत्री
५८९	१।२७।१५	शुन.सोष आनीर्गतिः कुत्रिमो देवरातो वेदवामिम्रो वा	वरुण.	त्रिष्टुप्
५९०	९।९७।५८	कुस्रस आंगिरसः ( गृत्समदः )	पवमानः सोमः	"
५९१	—	वामदेवो गीतमः	विश्वेदेवाः	एकपाद्भगती
५९२	९।११।१९	अमहीयुरागिरसः	पवमान. सोम.	गायत्री
५९३	९।६१।११	अमहीयुरागिरसः	"	"
५९४	—	आत्मा	आत्म	त्रिष्टुप्
		( २ )		
५९५	८।९३।१३	श्रुतकण्ठ आगिरसः	इन्द्रः	गायत्री
५९६	९।८२।३	पत्रित्र आगिरसः	पवमानः सोमः	भगती
५९७	१।७।२	मयुचछन्दा वेदवामित्रः	इन्द्रः	गायत्री
५९८	१।७।३	मयुचछन्दा वेदवामित्रः	"	"
५९९	१०।१८।१।१	प्रयो वासिष्ठः	विश्वेदेवाः	त्रिष्टुप्
६००	९।३१।१	गृत्समदः क्षीतकः	वायुः	गायत्री
६०१	८।८९।५	मृनेष्युषमेधावागिरसी	इन्द्रः	अनुष्टुप्
		( ३ )		
६०२	—	वामदेवो गीतमः	प्रजापति	अनुष्टुप्
६०३	१।९१।१८	गीतमो राहूगणः	सोमः	त्रिष्टुप्
६०४	१।९१।२९	गीतमो राहूगणः	"	"
६०५	१।१।१	मयुचछन्दा वेदवामित्रः	अग्निः	गायत्री
६०६	७।१२।१६	वामदेवो गीतमः	"	त्रिष्टुप्
६०७	९।३५।३	गृत्समदः क्षीतकः	अपानवात्	"
६०८	—	वामदेवो गीतमः	रात्रिः	अनुष्टुप्
६०९	६।८।१	भरद्वाजो बाह्वृस्पत्यः	अग्नि.	भगती
६१०	६।५२।१४	श्रुजिश्वा भारद्वाजः	विश्वेदेवाः	"
६११	—	वामदेवो गीतमः	लिङ्गोक्तताः	महापंक्तिः
६१२	१।३२।१	हिरण्यमूष आगिरस	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
६१३	३।२६।७	विन्वाभिन्नो वापिनः ( बह्व )	अत्मा अग्निर्वा	"
६१४	३।२।१	विन्वाभिन्नो वापिनः ( बह्व )	अग्निः	"

मंत्रतल्या	श्राव्येत्यांत	श्राविः	देवता	छन्दः
६१५	—	धामदेवो गीतमः	अग्निः	पंक्तिः
६१६	—	धामदेवो गीतमः	"	"
६१७	१०१७०११	नारायणः	पुरुषः	अनुष्टुप्
६१८	१०१७०१४	नारायणः	"	"
६१९	१०१७०१७	नारायणः	"	"
६२०	१०१७०१९	नारायणः	"	"
६२१	१०१७०१५	नारायणः	धामदेवो गीतमः	विष्टुप्
६२२	—	धामदेवो गीतमः	इन्द्रः	अनुष्टुप्
६२३	—	धामदेवो गीतमः	"	"
६२४	—	धामदेवो गीतमः	"	विष्टुप्
६२५	—	धामदेवो गीतमः	"	"
६२६	—	धामदेवो गीतमः	"	"
		( ५ )		
६२७	१०१६११९	शत ब्रह्मनातः	अग्निः षडनातः	गायत्री
६२८	१०१६७०११	विज्राद् सूर्यः	सूर्यः	जपती
६२९	१०१६५११	कुल्ल आगिरसः	"	विष्टुप्
६३०	१०१६८५११	सर्पराज्ञी	सूर्यं आत्मा या	गायत्री
६३१	१०१६८३११	सर्पराज्ञी	"	"
६३२	१०१६८३११	सर्पराज्ञी	सूर्यः	"
६३३	११५०१२	प्रस्कम्बः	"	"
६३४	११५०१३	प्रस्कम्बः	"	"
६३५	११५०१४	प्रस्कम्बः	"	"
६३६	११५०१५	प्रस्कम्बः	"	"
६३७	११५०१६	प्रस्कम्बः	"	"
६३८	११५०१७	प्रस्कम्बः	"	"
६३९	११५०१८	प्रस्कम्बः	"	"
६४०	११५०१९	प्रस्कम्बः	"	"
		अथ महानाम्न्याचिकः ।		
६४१	—	प्रजापतिः	इन्द्रश्चैतोरुवासा	
६४२	—	प्रजापतिः	"	
६४३	—	प्रजापतिः	"	
६४४	—	प्रजापतिः	"	
६४५	—	प्रजापतिः	"	
६४६	—	प्रजापतिः	"	
६४७	—	प्रजापतिः	"	
६४८	—	प्रजापतिः	"	
६४९	—	प्रजापतिः	"	
६५०	—	प्रजापतिः	तिपोस्ताः	





# सामवेदका सुबोध अनुवाद

( उत्तरसंहिता ) उत्तरार्चिकः ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रयागके प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

[ १ ]

( १-२३ ) १ अतितः काश्यपो देवलो वा; २ काश्यपोः भारीयः; ३ शतं यन्नागतः; ४, २१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ५, ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ५ जमदग्निर्वा; ६ इन्द्रिन्विष्टिः काण्वः; ८ अमरीयुरागिरतः; ९ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ काश्यपो भारीयः; ३ गीतमो राहूगणः; ४ अश्रिमौषः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ जमदग्निर्वाग्वः; ७ वसिष्ठो निश्ववर्षणिः ); १० उग्रना काण्वः; ११ वसिष्ठो पंचावर्षणिः; १२ बामदेवो गीतमः; १३ नोधो गीतमः; १४ कलिः प्रागापः; १५ मयूचकृत्वा र्वैश्वामिनः; १६ गौरवीतः शाक्यः, १७ अग्निपञ्चासुपः; १८ अण्णोयुः श्वावसिनः; १९ कविर्वाग्विकः; २० अमूर्वाहृस्पत्यः ( तुण्वाणि. ) २२ सोमरिः काण्वः; २३ नृमेघो आगिरतः ॥ १-६, ८-१०, १५-१९ पवमानः सोमः; ४, २०, २१ अग्निः; ५ मिश्रावर्षणी; ७ इन्द्राग्नी; ६, ११-१४, २२-२३ इन्द्रः ॥ १-८, १२ ( १-२ ), १५, १८ ( २-३ ), २१ गायत्री; ९, ११, १३, १४, २० प्रगायः = ( विद्यमा बृहती, समा सती बृहती ); १० त्रिष्टुप्; १२ ( ३ ) सोमनिवृत्; १६, २२ काकुमः प्रगाय = ( विद्यमा काकुपु समा सती बृहती १७ उष्णिक्; १८ ( १ ) अनुष्टुप्; १९ जगती; २३ ( १ ) ककुपु, ( २ ) उष्णिक् ( ३ ) पुर उष्णिक् ॥

६५१ उपास्मै गायता नरः पवमानायन्देवे । अभि देवाय इयक्षते ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।११ )

६५२ अभि त्वं मधुना पयोयर्वाणो अग्निश्रयुः । देवे देवाय देवयु ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१।१२ )

[ १ ] प्रथमः राण्डः ।

[ ६५१ ] हे (नरः) ऋत्विजो ! ( देवान् अभि इयक्षते ) देवोंके लिए हवन करनेकी इच्छावाले ( पवमानाय अस्मै इन्देवे ) शुद्ध होनेवाले इस सोमकी ( उप गायत ) तुम स्तुति करो ॥ १ ॥

सोमरसकी छानकर तैय्यार करके उससे देवोंके लिए हवन किया जाता है । उसे छानते हुए यज्ञ करनेवाले उस सोमके लिए स्तोत्रोंका याचन करते हैं ।

[ ६५२ ] ( ते देवयु देवे ) तेरे देवोंकी विप्य जानेवाले विद्य रसको ( देवाय ) इन्द्रदेवके लिए ( मधुना पयः ) मोठे दूधके साथ ( अयर्वाणो ) अयर्वादेवके ऋषियोंने ( अभि-अग्निश्रयुः ) मिलाया है ॥ २ ॥

विद्य सोमरस देवोंको दिये जानेके लिए गायके मोठे दूधके साथ मिलाकर उसे ऋषिलोग तैय्यार करते हैं । अयर्वादेवकीयज्ञ करनेवाले सोमरसको दूधके साथ मिलाते हैं ।

१ [ साम. द्विषो वा. २ ]



६५३ स नः पवस्व शं गवेँ अं जनाय श्रमवेते । शश्राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥ १ ( ती ) ॥

( ऋ. १।१।११ )

६५४ दविद्युतत्या रुचा परिष्टोमन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गयाशिरः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।१२८ )

६५५ हिन्वानो हेतुभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रीत् । सीदन्तो वनुषो यथा ॥२॥ ( ऋ. १।६।१२९ )

६५६ ऋधक्साम स्वस्तये संजमानो दिवा कवे । पवस्व स्याँ द्यौ ॥ ३ ॥ २ ( यि ) ॥

( ऋ. १।६।१३० )

६५७ पवमानस्य ते कवे वाजित्तर्गा अमुक्षत । अवेन्तो न अवस्यवः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।१३० )

[ ६५३ ] हे ( राजन् ) तेजस्वी सोम ! ( सः ) यह तू ( नः गवेँ शं ) हमारी गायिका कल्याण कर, ( जनाय श्र ) पुत्रपौत्रोंका कल्याण कर ( अनेते शं ) हमारे घोड़ोंका कल्याण कर और ( ओषधीभ्यः शं ) औषधियोंका कल्याण कर, तथा ( पवस्व ) तू स्वयं भी छाना जाकर बृद्ध हो ॥ ३ ॥

सोम माघ, पीडे, पुत्रपौत्र और औषधियोंका हित करे और वह स्वयं भी छनकर पवित्र होवे ।

[ ६५४ ] ( दविद्युतत्या रुचा ) तेजस्वी कान्तिसे युक्त और ( परिष्टोमन्त्या ) दाय्य करनेवाली पारससे युक्त ( शुभाः सोमाः ) स्वच्छ सोमरस ( गयाशिरः ) गायके दूधमें मिलाकर तँव्यार किये गये हैं ॥ १ ॥

सोमरस चमकता है और धार बाधकर छाना जाता है, तब शब्द होता है, उममें गायका दूध मिलाकर उसे तँव्यार किया जाता है ।

[ ६५५ ] ( वाजी ) बलवर्धक सोमरस ( हेतुभिः हिन्वानः ) स्तोत्राभिते प्रशमित होता है, ( हितः ) वह हित करनेवाला ( वाजं अज्यक्रीत् ) यत्नमें चल्ता जाता है, ( यथा ) जिया प्रकार ( वनुषः सीदन्त ) मुँह करनेवाले वीर युद्धभूमिमें आक्रमण करते हैं ॥ २ ॥

सोमरसके स्तोत्र पाये जाते हैं, और उनका रस निघोषा जाता है । बाद्यमें यह सोम सयना हित करनेवाला होकर यत्नमें उसी प्रकार प्रविष्ट होता है, जिस प्रकार घोड़ा शत्रुपर आक्रमण करनेके लिये युद्धभूमिमें प्रविष्ट होते हैं । सोम पीनेके बाद उत्साह बढ़ता है और उससे ओरोंकी वीरता भी बढ़ती है । वे वीर शत्रुओंपर आक्रमण करके घातकी होते हैं ।

[ ६५६ ] हे ( कवे सोम ) ज्ञानी सोम ! तू ( स्येँ ) सूर्यके सगण ( ऋधक् ) ऊपर चढ़कर ( संजमानः ) जगत्से युक्त होकर ( स्वस्तये द्यौ ) सबके कल्याणके लिये ( दिवा ) दिव्य प्रकारसे युक्त होकर ( पवस्व ) छनता जा ॥ ३ ॥

सोमरससे ज्ञानयुक्त उत्साह बढ़ता है । धर्म सूर्य ऊपर चढ़ता-चढ़ता तेजस्वी होता है, उसी प्रकार सोमरसकी चमक बढ़ती जाती है । सोमरससे सबका कल्याण होता है, तेज और उत्साह बढ़ता है ।

[ ६५७ ] हे ( कवे वाजिन ) ज्ञानी और बलवर्धक सोम ! ( पवमानस्य ते ) छानेजानेवाले तेरी ( अवस्यवः सर्गाः ) पवस्वी धारा ( अवेन्तः न ) पीडे जँते मुँहसालते बाहर बेगते दीडते हैं, उसी प्रकार ( अमुक्षत ) वर्तनमें गिरती हैं ॥ १ ॥

सोमरस ज्ञान और बल बढ़ाता है, छानते समय उसकी धारा छाननीसे नीचेके वर्तनमें उसी प्रकार गिरती है, जिया प्रकार पीडे मुँहसालते बाहर आकर दीडते हैं । पीडे जित प्रकार बेगते दीडते हैं, उसी प्रकार सोमनी धारा ऊपरकी छाननीसे नीचेके वर्तनमें बेगते गिरती है ।

६५८ अच्छा कोशे मधुश्च्युतमस्युं वारे अव्यये । अवायशन्त धीतयः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।११ )

६५९ अच्छा समुद्रमिन्दवाँस्त्वै गावाँ न धेनवः । अग्न्यूतस्य योनिमा ॥ ३ ॥ ३ ( कौ ) ॥  
( ऋ. १।६।१२ )

॥ इति प्रथम खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

६६० अम आ याहि वीतये गुणानां हव्यदातये । नि होता ससि बर्हिषि ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।१० )

६६१ तं त्वा समिद्धिराह्नो घृतेन वर्षायामसि । वृहच्छोचा यविष्ठय ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।११ )

६६२ स नः पूयु श्रवायमच्छा देव विवाससि । वृहद्वे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।१६।१२ )

६६३ आ नो मित्रावरुणा घृतेर्गव्युतिमुक्षवम् । मघा रजाथसि सुकृत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।६।१६ )

[ ६५८ ] ( मधुश्च्युतं कोशो अच्छा ) मीठा रस जिसमें मधु जाता है, उस कलशमें ( अव्यये वारे ) भंडके पालते बनी छलनीते ह्वय सोमरसको ( असुप्रं ) छानते हैं, ( धीतयः ) हमारी उगलियां ( अवायशान्त ) धारधार बवाकर रस निचोड़नेकी इच्छा करती हैं ॥ २ ॥

घातनेके ऊपर भंडके चालीसे बनी छलनी होती है, उसमें रस छाना जाता है और वह नीचेके कलशमें गिरता है । हमारी उगलियां सोम दवाकर रस निचोड़नेका प्रयत्न करती हैं ।

[ ६५९ ] ( हव्यदातः ) सोमरस ( समुद्रं ) जलयुक्त कलशमें ( गावः धेनवः अस्तं कृतस्य योनिं न ) जिस प्रकार चलती हुई गाधें अपने घर अर्थात् घातस्थानमें ( आ अग्न्यूं ) जाती हैं, उसी प्रकार ( अच्छा ) सीपा जाता है ॥ ३ ॥

सोमरस पानीसे युक्त कलशमें छाना जाता है, वे सोमरसके प्रवाह कलशमें उतरी वेगते जाते हैं, जिस वेगते गाधें अपने स्थानमें जाती हैं ।

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ६६० ] हे ( अग्ने ) अग्निदेव ! तू ( गुणानः ) स्तुतिके वाद ( धीतये ) हवि द्रव्योंके भक्षण करनेके लिए और ( हव्य-दातये ) हवि देवोंको गहनानेके लिए ( आ याहि ) आ, हमारे यशमें ( होना ) देवोंको बुलानेवाला होकर ( बर्हिषि नि गसि ) धामनपर बैठ ॥ १ ॥

[ ६६१ ] हे ( अग्निः ) सुन्दर अग्ने ! ( तं त्वा ) उग तुम ( समिद्धिः ) समिधालेमि और ( घृतेन ) घीते ( वर्षायामसि ) ह्वय प्रयत्न करते हैं, हे ( यविष्ठय ) सदन अग्ने ! ( वृहत् शोचा ) तू अविष प्रकाशित हो ॥ २ ॥

[ ६६२ ] हे ( देव ) तेराही अग्निदेव ! ( सः ) वह तू ( पूयु श्रवायं ) बहुत मगस्यो ( वृहत् सुवीर्यं ) बहुत बलवान् बननेवाले सानय्यं ( नः ) हमें ( अच्छा यिवाससि ) सरलतासे प्राप्त हों ऐसा कर ॥ ३ ॥

[ ६६३ ] हे ( सुकृत् ) उत्तम करनेवाले ( मित्रा-वरुणा ) मित्र और वरुण देवो ! ( नः गव्युनिं ) हमारे गाधके स्थानको ( घृतेः आ उक्षवत् ) घीते सीपी, और ( मग्ना ) मीठे रसके ( रजासि ) रसो लोह-द्वारे लोहके स्थानको उत्तम रीतिते सिद्धित करो ॥ १ ॥

हमें गाधसे भरतूर घी मिले और सब स्थानोंपर मीठा अन्नरस प्राप्त हो ।

- ६६४ उरुध्वसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजयः । द्राघिष्ठाभिः शुचिग्रता ॥२॥ ( ऋ. ३।६२।१७ )
- ६६५ गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदत्तम् । पातश्च सोममृतावृधा ॥ ३ ॥ ५ ( यि ) ॥  
( ऋ. ३।६२।१८ )
- ६६६ आ याहि सुपुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं वहिः सदो मम ॥१॥ ( ऋ. ८।१७।१ )
- ६६७ आ स्वा ब्रह्मयुजा हरी बहवामिन्द्र फेक्षिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१७।२ )
- ६६८ ब्रह्माणस्त्वा युजा वयश्च सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥ ६ ( फौ ) ॥  
( ऋ. ८।१७।३ )
- ६६९ इन्द्राग्नी आ गतश्च सुते गीर्मिर्नमो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेपिता ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।१२।१ )
- ६७० इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमश्च सुतम् ॥२॥ ( ऋ. ३।१२।२ )

[ ६६४ ] हे ( शुचि-ग्रता ) हे शुद्ध कर्म करनेवाले मित्रावरुणो ! ( उरुध्वसा ) बहुत प्रशंसित और ( नमो वृधा ) हविष्प्राप्तिसे घटनेवाले पुत्र ( द्राघिष्ठाभिः ) महान् स्तुतिसे प्रशंसित होकर ( दक्षस्य मह्ना राजयः ) अपने बलके माहात्म्यसे शोभित होते हो ॥ २ ॥

[ ६६५ ] हे मित्रावरुणो ! ( जमदग्निना ) जमदग्नि ऋषिके द्वारा ( गृणाना ) स्तुति किए गए पुत्र दोनों ( ऋतस्य योनी ) यज्ञके स्थानपर ( सीदत्तं ) बंटो, और ( ऋता-वृधा ) पतकों बहानेवाले पुत्र दोनों ( सोमं पातं ) सोमरस पियो ॥ ३ ॥

[ ६६६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( आ याहि ) आ, हमने ( ते ) तेरे लिए ( सुपुमा हि ) सोमरस निकाला है, ( इम सोमं पिब ) यह सोमरस प्यो, और ( मम इदं वहिः आ सदः ) मेरे इत भाग्यपर बैठ ॥ १ ॥

[ ६६७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ब्रह्म-युजा ) मम बोलते ही रथमें जुड़ जानेवाले ( फेक्षिना हरी ) अयालवाले दोनों घोड़े ( स्वा आवहतां ) तुझे यहाँ के आधे, और यहाँ आकर तू ( नः ब्रह्माणि ) हमारे स्तोत्र ( उप शृणु ) पसलते पुन ॥ २ ॥

[ ६६८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सोमिनः ) सुतावन्तः वयं ) सोमपत्र करनेवाले और सोमरस तैय्यार करनेवाले हम ( ब्रह्माणः ) शानीयतकर्ता ( सोमपां स्वा ) सोमरस पीनेवाले तुम ( युजा हवामहे ) योग्य स्तोत्रोंसे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ ६६९ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और आने ! ( गीर्मिः ) स्तोत्रोंसे प्रशंसित ( नमः आगतं ) आकाशसे अर्पित पर्वतके ऊंचे शिखरसे आया हुआ यह ( वरेण्यं ) श्रेष्ठ सोमरस है ( धिया इपिता ) बुद्धिसे प्रेरित किए गए पुत्र ( अस्य पातं ) इसका पान करो ॥ १ ॥

सोमकला पर्वतके ऊंचे शिखरसे लाई जाती थी, इतलिए उसे " नमः आगतं " आकाशसे लाया हुआ सोम ऐसा कहना गया है ।

[ ६७० ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और आने ! तुम ( जरितुः सचा ) स्तुति करनेवालेके सहायक होओ, ( यज्ञः चेतन जिगाति ) जिससे पत्र होता है, और जो चेतना-स्फूर्ति देता है, वह सोम बुद्धि प्राप्त होता है, ( अया ) इस स्तुतिसे बुलाये गये तुम ( इमं सुते पातं ) इस सोमरसका पान करो ॥ २ ॥

६७१ इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या घृणे । तां सोमस्येह तुम्पताम् ॥ ३ ॥ ७ ( ता ) ॥

( ऋ. १।१२।१ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

६७२ उचां वे जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रश्च शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।१।० )

६७३ स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भयः । परिवोवित्परिं सव ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।१।२ )

६७४ एना विश्वान्यर्यं आ धुमानि मानुषाणाम् । सिपासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥ ८ ( औ ) ॥

( ऋ. ९।६।१।१ )

६७५ धुनानः सोमं शरयापो वसानो अर्पसि ।

आ रतथा योनिमृतस्य सीदस्वुत्सो देवो हिरण्यपयः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।४ )

[ ६७१ ] ( यज्ञस्य जूत्या ) यज्ञते मंत्रित होकर ( कविच्छदा ) स्तुति करनेवालोंकी योग्य फल देनेवाले इन्द्र और अग्नि देवोंकी ( घृणे ) में स्वीकार करता है, ( ता इह ) ये दोनों इस यज्ञमें ( सोमस्य तुम्पतां ) सोमरसके पाकसे तथा होंगे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ६७२ ] हे सोम ! ( ते अग्रश्चः ) तेरे अग्ररूपी सोमका ( दिवि उचां जातं ) धूलोबमें ऊंचे स्थानपर जन्म हुआ है, तेरे ( उग्रं सत् ) शीर्षकी बढानेवाले ( शर्म महि श्रवः ) मुख देनेवाले महान् यज्ञवाले अन्न ( भूमि जाद्वे ) भूमिपर हृत् प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

सोमलता हिमालय पर्वतकी मौजवान् नामक ऊंची चोटीपर उगती है, वहासे वह पृथ्वीपर लाई जाती है, और यज्ञमें उसका प्रयोग किया जाता है, उस सोमलताका रस क्षितिकर्षक, मुखवर्षक और पुष्टि करनेवाला है ।

[ ६७३ ] हे ( परिवो-वित् ) वन देनेवाले सोम ! ( सः ) यह धू ( नः यज्यवे ) हमारे पूज्य ( इन्द्राय वरुणाय ) इन्द्र, वरुण और ( मरुद्भयः ) मरुतोंके लिए ( परिस्तव ) छनता जा ॥ २ ॥

[ ६७४ ] हे सोम ! ( मानुषाणां ) मनुष्यों द्वारा प्राप्त करने योग्य ( एना विश्वानि धुम्नानि ) इन सारे पत्नोंकी ( आ अर्यः ) प्राप्त करके तेरी ( सिपासन्तः ) सेवा करनेकी इच्छा करनेवाले हृत् ( वनामहे ) तेरा भजन करते हैं ॥ ३ ॥

[ ६७५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( धुनानः ) छाना जाता हुआ दू ( आपः वसानः ) पानीमें मिलाया हुआ ( धारया अर्पसि ) धार चापकर बतनमें गिरता है । ( रतथा ) रतनोंकी देनेवाला और ( उत्सः देयः ) अलक्षसे धमकनेवाला ( हिरण्यपयः ) सोनेके समान तेजस्वी दू ( मृतस्य योनिं वासीदसि ) यज्ञके स्थानपर बैठता है ॥ १ ॥

सोमरस पानीमें मिलाया जाता है, फिर वह छलनीसे छाना जाता है, तब वह, धमकता है, पैंसा यह सोम यज्ञमें रखा जाता है ।

६७६ दुहान ऊर्ध्वदिग्घं मधु मियं प्रतश् सधस्थमासदत् ।

आपृच्छये षरुणं वाज्यपक्षिं नृमिधातो विचक्षणः ॥ २ ॥ ९ (हु) ॥ (ऋ. ९।१७।१९)

६७७ प्र तु द्रव परि कोश नि यीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्षे ।

अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्ताऽच्छा चर्हीं रशनाभिनेयन्ति ॥ १ ॥ (ऋ. ९।८।१)

६७८ स्वायुधः पवते देव इन्दुरश्वस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।

पिता देवानां जमिता सुदक्षो विष्टम्भा दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ २ ॥ (ऋ. ९।८।२)

६७९ ऋषिर्विश्रः पुर एता जनानामृध्वीर उश्रना काव्येन ।

स चिद्विदेद निदितं पदासामधीष्याश्च गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥ १० (हु) ॥ (ऋ. ९।८।३)

॥ इति तृतीयः खण्ड ॥ ३ ॥

[ ६७६ ] (मधु मियं दिग्घं ऊर्ध्वः) मोठे, मियं ओर विष्यत्सको (दुहानः) दुहनेवाला यह सोम (मन्ने स्वर्ध्वं) प्राचीन यज्ञस्थानपर (आसदत्) बँठ गया है, उसके बावमें (वाजी) बलवर्धक सोम (नृभिः धौतः) यज्ञकर्ताओं द्वारा छाना गया है, यह (विचक्षणः) विशेषरूपसे निरीक्षण करनेवाला सोम (आपृच्छये धरुणं) प्रसंखनीय यज्ञको पारण करनेवाले यज्ञमानको (अश्वि) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

पर्वतसे सोम यज्ञशालामें लाया जाता है, यज्ञकर्ताओं द्वारा उसका रस निकालकर वह छाना जाता है उसके बाद वह यज्ञ करनेवाले यज्ञमानके पास पहुँचाया जाता है ॥

[ ६७७ ] हे सोम ! तू (तु म द्रव) सोम शोधकर आ, (कोशं परि निपीद) कलशमें आकर भर जा (नृभिः पुनानः) यज्ञकर्मिसे छाना जानेके बाद (वाजं अभि अर्षे) हविरूप अन्न होकर रहे, (वाजिनं अश्वं न) बलवान् घोड़ेको जिस प्रकार स्वेच्छ करते हैं, उसी प्रकार (त्वा मर्जयन्तः) गुह्यं छूट करनेवाले ऋषियज्ञ (वर्तिः अच्छ) यह स्थानके पास (रशनाभिः) अगुणियोंसे वृत्ते (नयन्ति) ले जाते हैं ॥ १ ॥

सोमरस छानकर सफ किया जाता है, घोड़ेको जिस प्रकार साफ करते हैं, उसी प्रकार सोमरसको सफ करते हैं, ओर बावमें यज्ञस्थानके पास ले जाते हैं ओर यहा उसका हवन करते हैं ।

[ ६७८ ] (स्वायुधः) उत्तम यज्ञात्सर्वोत्तमो यज्ञ (अ-श्वस्ति-हा) वायुका नाश करनेवाला (वृजना) ज्येष्ठवर्षको दूर करनेवाला, (रक्षमाणः) रक्षण करनेवाला (पिता) पालन करनेवाला (देवानां जमिता) देवोंको उत्पन्न करनेवाला (सु-दक्षः) उत्तम यज्ञवान् (दिव्यः विष्टम्भः) सुखीकहो आपार देनेवाला (पृथिव्याः चरणः) पृथिवीको पारण करनेवाला (देव इन्दुः पवते) दिव्य सोम छाना जाता है ॥ २ ॥

सोमरस बल और उत्साह बढ़ानेवाला होनेके कारण ऊपरके विदोषण आत्मकारिक रूपसे उसे दिए गए है ।

[ ६७९ ] (विश्रः पुरः एता) शान्ति और आगे आगे चलनेवाला (जनानां ऋभुः) सोमोंका तेजस्वो नेता (धीर उश्रना ऋषिः) धैर्यवाली उश्रना ऋषि है, (स चिद्वि) यह ही (आसां गोनां) इन गोयोंमें रहनेवाला (यद् अपीत्यं गुह्यं नाम) जो गुप्तरूपसे दूध है, उसे (काव्येन विदेद) काव्यकी सहायतासे जानता है ॥ ३ ॥

धौर्ध्वं जो गुप्तरूपसे रहनेवाला उत्तम दूध है, उसे उश्रना ऋषिने जान लिया और नेता होनेके कारण उसे सब ऋषियोंको बताया ।

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

- ६८० अभि त्वा शूर नोनुमोऽनुग्धा ह्य धेनवः ।  
ईशानमस्य जगतः स्वर्दशमीशानमिन्द्र तस्सुपः ॥ १ ॥ ( ऋ ७।२।१२ )
- ६८१ न त्वावाथ अन्या दिव्या न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।  
अक्षामन्तो मघवास्मिन्द्र वाजिनो गन्धन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥ ११ ( गी ) ॥  
( ऋ ७।२।१३ )
- ६८२ कया नश्चित्र आ धुषद्वती सदावृषः सखा । कया श्चिष्टया वृता ॥ १ ॥ ( ऋ. ४।२।१ )
- ६८३ कस्त्वा सरथो मदानां मंहिद्यो मत्सदन्धतः । ददा चिदराजे वसु ॥ २ ॥ ( ऋ ४।२।२ )
- ६८४ अभी पु षः सतीनामविता जरितृणाम् । शतं मवास्यूतयं ॥ ३ ॥ १२ ( टा ) ॥  
( ऋ. ४।२।३ )
- ६८५ तं यो दसामृतीपहं वसोमन्दानमन्धसः ।  
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीभिर्नवामहे ॥ १ ॥ ( ऋ ८।८।१ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ६८० ] हे ( शूर ) शूरवीर इन्द्र । ( अ-नुग्धाः धेनवः इव ) न वृद्धी गईं गायें जिस प्रकार यज्जड़े के पास जानी है, उसी प्रकार हम ( अस्य जगतः ईशानः ) इस जगम जगत्के स्वामी और ( तस्सुपः ईशानः ) स्यावर जगत्के स्वामी ( स्वः ददां त्वा ) स्वयं समीप दानं करनेवाले तुमने ( अभिनोनुमः ) प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

[ ६८१ ] हे ( मघवन् ) घनवान् इन्द्र । ( स्वाधान् ) वेदे सभात ( अन्यः ) दूसरा कोई भी ( दिव्यः न ) धुलोकमें नहीं है, और ( पार्थिवः न ) पृथ्वीपर रहनेवाला भी नहीं है, ( न जातः ) न कोई हुआ और ( नः ) जनिष्यते ) न कोई होगा, हे ( इन्द्र ) इन्द्र । ( अदवायन्तः ) घोड़ोंको इच्छा करनेवाले ( याजिनः ) पनकी इच्छा करनेवाले ( गन्धन्तः ) गायकी इच्छा करनेवाले हम ( त्वा हवामहे ) तेरी प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

[ ६८२ ] ( सदा-वृषः ) सदा यदनेवाला ( चित्रः सखा ) विलक्षण मित्र यह इन्द्र ( कया जती ) कौन कौनसे तरलणके साथकोंते ( श्चिष्टया कया वृता ) और कौनको शक्तिसे युक्त होकर ( नः आभुवत् ) हमारे पास आएगा ? ॥ १ ॥

[ ६८३ ] ( मंहिद्यः ) महान् ( सस्यः ) सत्यकर्म करनेवाला और ( मदानां कः ) आनन्द देनेवालोंमें कौन भला विषय आनन्द देनेवाला है ? ( अन्धसः ) सोमरस पेटे आनन्दका देनेवाला है, क्योंकि वट ( ददा चिदराजे वसु आरजे ) शुद्ध रहनेवाले अनुजोंके वस्त्रोंके विनष्ट करनेके लिए ( ददा मत्सुत् ) तुमने उत्साहित करता है ॥ २ ॥

[ ६८४ ] ( सतीनां जरितृणां ) अल्पे मित्र स्तोताओंकी वृ ( अविता ) रक्षा करनेवाला है, इसलिए ( नः ) हमारी ( शतं ऊतये ) संकर्मों प्रकारकी रक्षा करनेके लिए ( सु अभि भयासि ) उत्तम प्रकारसे संघ्यार होकर सामने स्थिर रह ॥ ३ ॥

[ ६८५ ] ( स्वसरेषु ) गीगालोंमें ( वत्सं धेनवः इव ) यज्जड़े के पास जिस प्रकार गायें जाती हैं, उसी प्रकार ( वत्सं ) दानोंमें और ( श्रतीपहं ) मनुकी हरानेवाले ( वसोः ) अन्धसः मन्दानं ) पायमें रखे हुए सोमरसके आनन्दित होनेवाले ( वः तं इन्द्रं ) तुम्हारे उस इन्द्रकी ( गीभिः ) नवामहे ) स्तोत्रसे हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

- ६८६ <sup>३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> द्युक्षं सुदानुं तविपीमिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।  
 क्षुमन्तं वाजं शक्तिनं सहस्रिणं मक्षु गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥ १३ (ही) ॥ (ऋ ८।८।२)
- ६८७ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> तरोभिर्वा विद्वसुभिन्द्रं सवाध ऊतये ।  
 धृद्वायन्तः सुतसोमि अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥ (ऋ ८।६।१)
- ६८८ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> न यं दुधा वरन्ते न स्थिरा स्रो मदेपु श्रिमन्धसः ।  
 य आदत्सा शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उपथ्यम् ॥ २ ॥ १४ (जु) ॥ (ऋ ८।६।२)
- ॥ इति चतुर्थं खण्ड ॥ ४ ॥

[ ५ ]

- ६८९ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्य सोम धारया । इन्द्राय पातये सुतः ॥ १ ॥ (ऋ ९।१।१)
- ६९० <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> रशोहा विश्वर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २ ॥ (ऋ ९।१।२)

[ ६८६ ] (द्यु-क्षं) धूलोकमें रहनेवाले (सु-दानुं) उत्तम दान देनेवाले (तविपीभिः आवृतं) अनेक सामर्थ्योत्त युक्त और (पुरु-भोजसं) बहुत भोजन करनेवाले इन्द्रके पासते (क्षुमन्तं) पोषण करनेवाले (शक्तिनं सहस्रिणं) संकर्मों और हजारों घनते युक्त (गोमन्तं वाजं) गायोत्त उत्पन्न किए अन्न (मनु ईमहे) गोत्र मिले ऐसी इच्छा हम करते हैं ॥ २ ॥

[ ६८७ ] हे कृत्वन्वी ! (यः) तुम (सुतसोमि अध्वरे) सोमयागमें (तरोभिः) वेगवान् अश्वोंके साथ रहनेवाले (विद्वसुं इन्द्रं) घनके दान करनेवाले इन्द्रके लिए (स-वाधः) शत्रुओंके (ऊतये) रक्षणके लिए (धृद्वात् गायन्तः) धृत्वा नामके सामका गायन करो, (भरं न) भरण पोषण करनेवाले जिस प्रकार बुलाये जाते हैं, उसी प्रकार (कारिणं हुवे) हित करनेवाले इन्द्रको मैं सहायतायें बुलाता हूँ ॥ १ ॥

[ ६८८ ] (सु-शिमं यं) सुन्दर डोहीवाले इस इन्द्रको (दु-घ्राः न वरन्ते) दुष्ट घ्रात अश्व भी नहीं हटा सकते, (स्थिरा- न) मृद्धमें स्थिर रहनेवाले घ्रात भी इन्द्रको नहीं हटा सकते, (सुर-) मरनेवाले शत्रु भी उसका निवारण नहीं कर सकते, ऐसा (यः) जो इन्द्र है, वह (अन्धस- मदे) सोमरसके आनन्दमें (आदत्सा शशमानाय) अन्धरसे रतुति करनेवाले (सुन्वते जरित्रे) सोमयज्ञ करनेवाले सोतोके लिए (उपथ्यं दाता) प्रसादनीय घन देता है ॥ २ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चम खण्डः ।

[ ६८९ ] हे (सोम) सोम ! (इन्द्राय पातये) इन्द्रके पीनेके लिए (सुतः) निकाला हुआ यह सोमरस है, (स्वादिष्टया मदिष्टया धारया) स्वादिष्ट और आनन्द भजनेवाली धारसे (पवस्य) छनता जा ॥ १ ॥

[ ६९० ] (रशो-हा) राक्षसोंका नाश करनेवाला (विश्व-र्षणिः) सब मनुष्योंका हित करनेवाला (अयोहते द्रोणे) सोमके घर्तनमें छनकर (सधस्थं योनिं) पासके गहस्थानमें (अभि आदत्त्) सोमरस जाकर बैठ गया ॥ २ ॥ सोमरसको छानकर पीनेके घर्तनमें भर दिया ।

६९१ वरिवोषातमो ह्यवो म रंदिष्टो वृत्रहन्तमः । पपि राषो मघोनाम् ॥ ३ ॥ १५ ( षी ) ॥  
( ऋ. १।१।२ )

६९२ पवत्स मधुमत्तम इन्द्राय सोम ऋतुधितमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥  
( ऋ. १।१०८।१ )

६९३ यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वविदः ।  
स सुमकतो अम्यक्रमीदप्योऽच्छा वाज नैवशः ॥ २ ॥ १६ ( प ) ॥ ( ऋ. १।१०८।२ )

६९४ इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टे जातास इन्द्रवः स्वविदः ॥ १ ॥  
( ऋ. १।१०६।१ )

६९५ अयं भराय सानसिर्दिन्द्राय पवते सुतः । सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥  
( ऋ. १।१०६।२ )

६९६ अस्मदिन्द्रो मदेषा ग्रामे शुभ्णाति सानसिम् ।  
यज्ञं च वृषणं भरत्समसुजित् ॥ ३ ॥ १७ ( कि ) ॥ ( ऋ. १।१०६।३ )

[ ६९१ ] हे सोम ! तू ( परिचो-धातमः ) पन वेनेवाला ( मंहिष्टः ) महान् ( धृत्र-हन्तमः ) मधुका वृत्ते तरह नाम करनेवाला ( भुयः ) है, इसलिये ( मघोनां राधः परि ) पनवान् मनुके पास रहनेवाले पन हवें वे ॥ ३ ॥

[ ६९२ ] हे सोम ! तू ( मधुमत्तमः ) अथवा मीठा ( ऋतु-धित्-तमः ) काम करनेके मार्गको उत्तम रीतिसे जाननेवाला ( माहि द्युक्षतमः ) महान् तेजस्वी और ( मदः ) आवन्त वेनेवाला है इसलिये ( इन्द्राय मदः ) इन्द्रको मानन्द देनेके लिए ( पवत्य ) छनकर तैय्यार हो ॥ १ ॥

[ ६९३ ] हे सोम ! ( वृषभः ) बलवान् इन्द्र ( यस्य ते पीत्वा ) जिस तुम पीकर ( वृषायते ) अथवा बलवान् होता है, ( स्व-विदः ) अथवा पीत्वा ) आत्मतानी भी इसे पीकर आनन्दित होता है । ( सु-म-केतः सः ) उत्तम मार्गको यह इन्द्र ( इयः ) मनुके अतीकी ( एतशः चाजं अमि न ) जिस प्रकार घोडा सधाममें जाकर विजय प्राप्त करता है, उती प्रकार ( अम्यक्रमीत् ) मानने अधिकारमें करता है ॥ २ ॥

[ ६९४ ] ( श्रुष्टे ) जोर ही ( जातासः इन्द्रवः ) तैय्यार हुए, ( समकनेवाले और ( स्व-विदः ) हरयः इमे सुताः ) आज बढानेवाले हेरे रंपके ये सोमरत ( वृषणं इन्द्रं अच्छ यन्तु ) बलवान् इन्द्रके पास जोर पढ़वे ॥ १ ॥

[ ६९५ ] ( भराय ) संधामके समय ( सानसिः ) सेवन करनेके योग्य ( अयं सुतः ) यह सोमरत ( इन्द्राय क्षाति ) इन्द्रके लिए छाया जाता है, यह ( जैत्रस्य चेतति ) बिजयी इन्द्रको उत्साहित करता है, ( यथा विदे ) जैसा कि सब लोग जानते हैं ॥ २ ॥

[ ६९६ ] ( अस्म इत् मधेषु ) इस सोमके आनन्दमें ( सानसि ) सेवन करनेके योग्य ( ग्रामे शुभ्णाति ) मनुको पकड़ता है, मधमें ( अच्युजित् इन्द्रः ) पानीके प्रवाहोंको नीतनेवाला इन्द्र ( वृषणं यज्ञं च ) बलवान् यज्ञको ( सं भरत् ) धारण करता है ॥ ३ ॥



६९७ पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्स्वे ।

अप श्वानश्चधिपुन सखायो दीर्घजिह्वयम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१।१ )

६९८ यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृतव्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।१।२ )

६९९ तं दुरीपमभी नतः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥ ३ ॥ १८ ( यि ) ॥

( ऋ. ९।१०।१।३ )

७०० अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यद्वा अधि पेपु वधते ।

आ सूर्यस्य गृहतो गृहन्नाभि रथं विश्वश्चमरुदद्विचक्षणः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१।४ )

७०१ श्रतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।

दशति पुनः पित्रारपीच्यां रेनाम त्वरीयमधि रोचनं दिवः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।१।५ )

[ ६९७ ] हे ( सखाय ) निमो ! ( व. पुरोजिती ) तुम अपने आगे विजय हे ऐसा समझकर ( अन्धसः सुताय ) अन्धरूपी इस सोमरसके ( मादयित्स्वे ) आनन्द देनेवाला होनेके कारण जानेवाले ( दीर्घ-जिह्वय ) लम्बी जीमवाले कुत्तेको ( अपदनधिपुन ) दूर करो ॥ १ ॥

कुत्ता सोमरसको न खाटे ऐसी सखायानी बरती ।

[ ६९८ ] ( सुतः कृतव्यः ) सोमरस यत्का सहायक है, ( यः इन्दु ) यह सोमरस ( पावकया धारया ) गृह होनेवाली धारसे ( अद्रुः न ) जैसे घोडा जोरते बीडता है, उसी प्रकार ( परि प्रस्यन्दते ) छाना जाता है ॥ २ ॥

सोमरस यत्का सहायक है, यह गृह होनेके लिये छलनीसे छाना जाता है, और नीचेके बर्तनमें अक्षय्य धारते छनता जाता है, घोडा जैसे बीडता है, उसी प्रकार यह नीचेके बर्तनमें वेगसे गिरता है ।

[ ६९९ ] ( नरः ) श्वत्विज लोग ( दुरीपं ) दुष्टोंका नाश करनेवाले ( तं सोमं अधि ) उत सोमके पास जाकर ( विदवाच्या धिया ) सबके सरक्षण करनेकी बुद्धिसे ( यज्ञाय ) यत्को ( सन्तु ) भारतसे देवने-बाते हों ॥ ३ ॥

[ ७०० ] ( चनो-हितः ) अन्धरूपसे हित करनेवाला सोम ( प्रियाणि नामानि अभि पवते ) सबको तुल्य करनेवाले पानीको पवित्र करता है, ( पेपु ) जिन अन्नमें ( यद्वाः अधिवर्धते ) यह महान् सोम बढता है । ( गृहतः सूर्यस्य ) महान् सूर्यके ( गृहन्नाभि रथं ) सब जगह जानेवाले रथपर ( गृहत् विचक्षणः ) आरुहत्, यह महान् और सब इष्टा सोम चढता है ॥ १ ॥

सोम अग्ररथ है, यह पानीमें मिलाना जाता है, तब यह पानीको पवित्र करता है । पानी मिलानेके कारण सोमरस बढता है, भारतमें यह सूर्यके प्रकाशमें रखा जाता है ।

[ ७०१ ] ( श्रतस्य-जिह्वा ) मानीं यह यत्को जीम ही है, ऐसा यह ( वक्ता ) सम्ब करनेवाला सोमरूपी ( प्रियं मधु पवते ) प्रिय और मीठा रस छाना जाता है, ( अन्व्य धियाः पति ) इस यत्कर्मका पातक यह सोम जिनमें ( अ-दाभ्यः ) न बढनेवाला है, और ( पुनः ) वज्रमालकपी यह पुन ( पित्रोः ) अर्षीच्या ) मतापिताने नामको न जाननेवाले ( धियाः रोचनं ) दृष्टीकरने प्रकाश करनेवाले ( त्वरीयं नाम ) तीसरे नामको ( अधि दधाति ) धारण करता है ॥ २ ॥

सोमरसकी छाने जानेके समय उतहा सम्ब होता है, इसलिये यह सोम बढता है । यह न बढाया जानेवाला यत्कर्म बर्त है, यत्के यत्क इम यत्कर्तको " सोमयामो " यह सोमरस नाम मिलता है । मत्तरर दृक् नाम, व्यवहारमें दृक्प नाम और यत्कर्तके बरत " सोमयामी " यह सोमरस नाम उगे मिलता है ।

७०२ अ॒व॒ सु॒ता॒नः॑ क॒ल॒शा॒श्च॒वि॒क्र॒द॒न्नु॒भिर्ये॒माणः॑ को॒श॒ आ॒ हि॒र॒ण्य॒ये ।

अभी श्रतस्य दौहना अनूपतावि विप्रष्ट उपसा वि राजसि ॥ ३ ॥ १९ ( दि ) ॥

( ऋ. २।७२।३ ) -

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

७०३ य॒ज्ञाय॑ज्ञा॒ नो॒ अ॒ग्नये॑ गिरागिरा च दक्षसे ।

प्रप्र वयममृतं जातयेदसं प्रियं मित्रं न शशसिपम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४८।१ )

७०४ ऊ॒र्जा॑ न॒पात्॒श्च॒ हि॒ना॒यम॑स्युदाग्रेम इन्पदातये ।

सुवद्वाजेश्वरिता सुवदूध उत त्राता तनूनाम् ॥ २ ॥ २० ( घृ ) ॥ ( ऋ. ६।४८।२ )

७०५ ए॒शु॒ पु॒ ब्र॒वाणि॑ तस्य इत्येतरा गिरा । एभिर्वेषांस इन्दुभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।१६ )

७०६ यत्र॑ कत्र च ते मना दक्षं दधस उचरम् । तत्र योनिं कृणवसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।१७ )

[ ७०२ ] ( सुतानः ) तेजसो सोम ( नृभिः ) ऋत्विगो द्वारा ( हिरण्यये कोशे ) सोनेके कलशमें ( येमानः ) छाना जाता हुआ ( कलशाश्च विक्रदन्नुभिर्येमाः ) कलशमें शय्य करता हुआ भरता है, इस समय ( श्रतस्य दौहनाः ) पक्ष करनेवाले ऋत्विग सोमही ( अभि अनूपता ) स्तुति करते हैं, हे सोम ! ( विप्रष्टः ) तीन सवनोंमें ( उपसाः अग्नि ) उप.पत्रके प्रहाराके बाद ( विराजसि ) तू चमकता है ॥ ३ ॥

सोमरस ऋत्विगोके द्वारा सोनेके पात्रमें छाना जाता है, वह शय्य करता हुआ मीचेके बर्तनमें गिरता है । उस समय ऋत्विग इस सोमके स्तोत्र बहते हैं । तीनों ही सवनोंमें यह सोमरस चमकता है ।

॥ यहाँ पाचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ ७०३ ] हे स्तुति करनेवाले ऋत्विगो ! ( यः ) तुम ( यज्ञायज्ञा ) प्रत्येक यज्ञमें ( दक्षसे अग्नये ) प्रदीप्त होनेवाले अग्निको ( गिरागिरा ) अपनी चापरीसे स्तुति करो । ( च ) और ( अयं ) हम नी ( अमृतं जातयेदसं ) अमर ज्ञानो अग्निवरो ( प्रियं मित्रं न शशसिपम् ) प्रिय मित्रके समाप्त ( प्र शशसिपम् ) प्रमात्न करते हैं ॥ १ ॥

[ ७०४ ] ( ऊर्जाः न-पात् ) बल कम न करनेवाले अग्निही हम स्तुति करते हैं, ( हिना सः अयं ) निरचयते यह यह अग्नि ( आस्पयुः ) हमारा हित करनेवाला है, ( हव्य-जातये दाग्रेम ) देवोंकी हवि पट्टघानेवाले इत अग्निको हम हवि बेटे हैं, यह ( दाग्रेषु अविता ) सुदोमें हमारी रसा करनेवाला और ( घृष्टः ) हमारी वृद्धि करनेवाला ( सुवत् ) होवे, ( उत ) और ( तनूनां दाता सुवत् ) हमारे शरीरोंका रक्षण करनेवाला होवे ॥ २ ॥

[ ७०५ ] हे अग्ने ! ( एहि ) या, ( ते गिरः ) तेरे स्तोत्रोंकी हम ( इत्या सु ब्रवाणि ) इस प्रकार उक्तम रीतिसे बहते हैं, ( उ ) और ( इतरः ) दूसरे स्तोत्रोंकी भी कहते हैं, उन्हें तू सुन, ( एभिः इन्दुभिः ) इन सोम-रसोंके ( येषांसे ) तू मदत है ॥ १ ॥

[ ७०६ ] ( ते मनाः ) तेरा मन ( यत्र कत्र च ) जहाँ कहीं है, ( तत्र ) वहाँ ( उचरं दध्रं ) श्रेष्ठ बलका ( दधसे ) तू स्थापन करता है, उसी प्रकार वहाँ ( योनिं कृणवसे ) घरका भी निर्माण करता है ॥ २ ॥

७०७ न हि तं पूतमाक्षिपद्भुवन्नमानां पते । अथा दुर्वा वनवसे ॥ ३ ॥ २१ ( यी ) ॥  
( ऋ. ६।१६।८ )

७०८ वयसु त्वामपूर्व्यं स्थूरे न कश्चिद्भ्रान्तोऽवस्यवः । वज्रिं चित्रं हवामहे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२।१।१ )

७०९ उप त्वा कर्मन्तये स नो युवाग्रशक्राम यो धृपत् ।  
रवाभिष्यवितारं वृमुहं सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥ २२ ( च ) ॥ ( ऋ. ८।२।१।२ )

७१० अथा हीन्द्र गिर्वेष उप त्वा काम इमहं ससुग्महं । उदवं गन्त उदमि ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।१८।१० )

७११ वार्षं त्वा यच्यभिर्वेषन्ति दूरं ब्रह्माणि । वावृष्णांस्सं चिदद्रिवो दिवैदिवे ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।१८।१८ )

७१२ युञ्जन्ति हरी हृषिरस्य गाधयौरी रथं उरुयुगे वचायुञ्जत् ।  
इन्द्रवाहा सर्षिदा ॥ ३ ॥ २३ ( यि ) ॥ ( ऋ. ८।१८।१९ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

इति प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्चः ॥ १ ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

[ ७०७ ] हे अन्ने । ( ते पूर्वं अक्षिपत् ) तेरा तेज नेत्रोंकी हानिकारक ( नदि भुवत् ) नहीं होता, हे (नेमानां पते) निपवीतें रहनेवाले मनुष्योंके स्वाभित् । ( अथाः दुर्वा ) अथ हमारी सेवा तू ( वनवसे ) स्वीकार कर ॥ ३ ॥

[ ७०८ ] हे ( अपूर्व्यं च यजिन् ) अपूर्व्यं बच्यपारी इन्द्र । ( भ्रान्तः ) तुल्ये सोमरत्न देनेवाले और ( अवस्यवः ) अपने मरनाकी इच्छा करनेवाले हुए ( चित्रं त्वां उ ) विलक्षण और भेद तुझे सहायताके लिए ( कश्चिद्भुवन् न ) जैसे कोई मरे आवषोकी मृत्युता है उसी प्रकार ( हवामहे ) बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ७०९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र । ( कर्मन् ) कर्म करते हुए ( उदये ) सरसगने लिए ( उपचक्राम ) तेरे पास हाथ आते हैं, ( यः ) जो ( धृपत् ) रामुर्षोका पराक्रम करनेवाला ( युवा उग्रः ) तरुण और दूरबीर है ऐसा तू ( नः ) हमारे पास आ, ( सखायः ) हुए तेरे मित्र ( सानसिं अधितारं त्वा इत् ) सेवा करने योग्य और संस्लान करनेवाले तुझे ही सहायताके लिए ( वृमुहं ) स्वीकार करते हैं, ( दि ) यह सभीकी मान्य है ॥ २ ॥

[ ७१० ] हे ( गिर्वेषा इन्द्र ) हे तुल्य इन्द्र । ( अथा हि ) अब ( त्वा वामि ईमहे ) तेरी अपनी इच्छा तुल्य करनेके लिए प्रार्थना करते हैं, और ( उदवं गन्तः उदमिः इव ) पानी सेजानेवाले मनुष्य जिस प्रकार पानीमें सेतते हैं, वसी प्रकार हम ( उप ससुग्महे ) तेरे पास आते हैं ॥ १ ॥

पानी सेजानेवाले जिस प्रकार एक दूसरेपर पानी फेंककर सेतते हैं, उसी प्रकार हम अपनी इच्छा तुल्य करनेके लिए इन्द्रके पास आते हैं, यह हमारी इच्छा पूर्ण करेगा, जो भी इच्छा हम इन्द्रसे करते हैं, उसे वह पूरा करता है ।

[ ७११ ] ( अद्रियः दूर ) हे मध्यमारी दूर इन्द्र । जिस प्रकार ( वार्षं ) तामुर्षोकी ( अद्रयामिः वर्षन्ति ) नदियां बहाती हैं उसी प्रकार स्तुति करनेवाले ( ब्रह्माणि ) स्तोत्र ना-वाकर ( वावृष्णांस्सं चित् ) महत् मरे हुए ( स्वा दिवैदिवे ) तुझे प्रतिविर बहाते हैं ॥ २ ॥

[ ७१२ ] ( हृषिरस्य ) प्रगतिशील इन्द्रके ( उरुयुगे ) महान् युवावाले ( उतं रथं ) महान् रथमें ( इन्द्र-वाहा ) इन्द्रकी ओरवाले, ( घयो-युजा ) दारुणी जुद्ध जानवाले ( स्वा-विद् ) स्वयं ही जानने स्वामी जानवाले ( हरी ) शीशों गोरे ( गाधया युञ्जन्ति ) स्तोत्रके बोधने ही जुद्ध करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

## प्रथम अध्याय

इस अध्यायमें इन्द्र, सोम, अग्नि, मित्र, वरुण इत्यादि देवोंके मंत्र हैं । इन देवताओंका गुणवर्णन इस अध्यायमें किया है । देवताओंके ये गुण उपासक अपने अन्दर धारण करें और बड़ाईं इतकिए यह गुणवर्णन है । जतः महा पहले हम उनके गुणोंका विचार करते हैं—

१ शुचि-धृता [ ६६४ ]- शुद्ध और पवित्र व्रतके आचरण करनेवाले, अपवित्र आचरण कभी न करनेवाले ।

२ उग्र-शंसा [ ६६४ ]- जिनकी प्रशंसा बहुत होती है, सब लोग जिनकी प्रशंसा पाते हैं ।

३ नमो-वृधा [ ६६४ ]- अग्निसे बढ़नेवाले, अपने पास बहुतसा अन्न रखनेवाले, नश्रतासे बढ़नेवाले ।

४ दक्षस्य मन्वा राजधः [ ६६४ ]- अपने सामर्थ्यसे विराजमान होते हैं । अपनी स्वयंकी महानतासे जो तेजस्वी होता है ।

५ क्रता-वृधा [ ६६५ ]- धनको बढ़ानेवाले, सत्य-मार्गसे बढ़नेवाले, मन्वको बढ़ानेवाले ।

६ क्रतास्य योनौ सीदतं [ ६६५ ]- धनके स्यात्पर बँधते है, सत्यकर्मको करनेके लिए तैय्यार रहते हैं ।

७ फयि-च्छदा [ ६७१ ]- शान्ति जिसको स्तुति करते हैं । दूरवर्षों लोग जिसका बखान करते हैं ।

मित्र और वरुणके उपवर्षन गुण हैं, अथ इन्द्रके गुण शेषिए—

१ वृषणः इन्द्रः [ ६९४ ]- बलवान् इन्द्र है ।

२ सदा-वृधः [ ६८२ ]- हमेशा बढ़नेवाला, महान् होनेवाला ।

३ चित्रः सघा [ ६८२ ]- अद्भुत और बड़ा मित्र, सहायक ।

४ अमनुजित् [ ६९६ ]- अन्तरिक्षमें विजयी होनेवाला, पानीके प्रवाहोंको धीतकर अपने क्षयिवारमें रखनेवाला ।

५ यजं संभरत् [ ६९६ ]- यज्ञ धारण करके स्रष्टा है ।

६ सामसिं धामं गुरुणाति [ ६९६ ]- हाथोंमें पकड़ने योग्य धनुषको हाथमें धारण करके लड़ता है ।

७ कया उती कया यमिच्छया पुता, नः आभुवत् [ ६८२ ]- कीन्से संरक्षणके साधनोंके साथ और कीन्से

सामर्थ्यसे युक्त होकर वह हमारी सहायताके लिए हमारे पास आवे ?

८ यं सु-दिमं दुधाः न धरन्ते [ ६८८ ]- उत्तम शिरस्धारण धारण करनेवाले जित इन्द्रकी कोई भी दुष्ट धनु हरा नहीं स्रष्टा ।

९ स्थिराः यं न धरन्ते [ ६८८ ]- युद्धमें स्थिर रहने-वाले वीर भी जिंते हरा नहीं स्रष्टे ।

१० सुरः न धरन्ते [ ६८८ ]- धन करनेमें कुशल धनु भी जिसका पराभव नहीं कर स्रष्टे । मारा करनेमें चतुर धनुके वीर भी जिसके आगे स्थिर नहीं रह स्रष्टे ।

११ देय । रुः त्वं पृष्टु ध्रवाय्यं वृहत् सुवीर्यं नः शच्छ विवास्ति [ ६६२ ]- वह तू महान् धरातीप्रचण्ड सामर्थ्य हों सरलतासे मिले ऐसा कर ।

१२ यजेतु अथिता [ ७०४ ]- युद्धमें हमारा रक्षण करनेवाला ।

१३ वृष्टः भुवत् [ ७०५ ]- हों वृष्टानेवाला ।

१४ तनुनां वाता भुवत् [ ७०४ ]- हमारे शरीरोंका संरक्षण करनेवाला होवे ।

१५ ते मनः यत्र धः च, तत्र, उत्तरं दक्षं दृघसे, योनिं कृणधसे [ ७०६ ]- तेरा मन जहाँ रहता है, वहाँ तू ध्येन्दुवत् बढाता है, ओर अपना धर निर्माण करता है ।

१६ दुस्मं क्रतीपरहं वसोः अन्धसः मन्दानं इन्द्रं नयामहे [ ६८५ ]- धर्तनीय धनुको हरानेवाले, सोमरससे आनन्दित होनेवाले इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं ।

१७ सस्त्रीनां अथिता [ ६८४ ]- मित्रोंका रक्षण करनेवाला ।

१८ नः शतं ऊतये शु आभि भयाति [ ६८४ ]- हमारे संकाओं प्रकारसे रक्षण करनेके लिए तू उत्तम प्रकारसे तैय्यार रहता है ।

१९ स-याधः ऊतये [ ६८७ ]- वाया करनेवाले धनुओंसे रक्षण करनेके लिए तैय्यार रह ।

२० हे अणुर्व्यं यजिन् ! अद्यस्यवा भरन्तः यदं चित्रं त्वां ध्यामहे [ ७०८ ]- हे अग्नितीय धातुधारी इन्द्र ! अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम विलक्षण शक्ति धारण करनेवाले तुझे अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ।

२१ कर्मन् ऊतये उप चक्राम [ ७०९ ]- हम कर्म करते हुए अपने सरक्षणके लिए तेरे पास आते हैं।

२२ यः ध्रुपत् युवा उग्रः नः चक्राम [ ७०९ ]- यह शत्रुओंका पराभव करनेवाला तद्वग उपवीर हमारे पास हमारे सरक्षणके लिए आवे।

२३ सान्तिं अवितांरं स्वा धनुमहे [ ७०९ ]- विजयी सरक्षक तुझे हम धरण करते हैं।

२४ विदंषः इन्द्र ! त्वा कामे ईमहे, उप सखुग्महे [ ७१० ]- हे त्पुतिके योग्य इन्द्र ! हमारी इच्छा पूर्ण करनेके लिए हम तेरी प्रार्थना करते हैं।

अब सोमके विशेषण देखिए—

१ देवः [ ६५२ ]- तेजस्वी, धमकनेवाला।

२ देवयुः [ ६५२ ]- देविके साथ रहनेवाला।

३ राजन् [ ६५३ ]- तेजस्वी, धमकनेवाला।

४ दविद्युत्तया रत्वा [ ६५४ ]- धमकनेवाले तेजसे युक्त।

५ शुक्रः सोमः [ ६५४ ] धीर्मान् सोम, स्वच्छ।

६ वाजी [ ६५५ ]- बलवान्।

७ हितः [ ६५५ ]- हितकारक।

८ हेतुभिः हिनवान् [ ६५५ ]- स्रोताओंके द्वारा प्रशंसित होनेवाला।

९ कथिः [ ६५६ ]- शानी।

१० संजग्मानः [ ६५६ ]- तेजस्वी, मिलकर रहनेवाला।

११ दिवा [ ६५६ ]- तेजस्वी, धमकनेवाला।

१२ रक्षो-क्षा [ ६९० ]- शत्रुओंको मारनेवाला।

१३ विद्व-वर्षणिः [ ६९० ]- सब देखनेवाला।

१४ भंहिष्ठः [ ६९१ ]- महान्।

१५ वृत्रहन्तमः [ ६९१ ]- घेरनेवाले शत्रुको मारनेमें प्रवीण।

१६ परिचो-धा-न्तमः [ ६९१ ]- अधिक धन देनेवाला।

१७ मधुमत्तमः [ ६९२ ]- अत्यन्त मीठा।

१८ प्रभुवित्तमः [ ६९२ ]- शत्रुओंको उतम प्रशारते करनेमें प्रवीण।

१९ महि शुभ्रतमः [ ६९२ ]- महान् तेजस्वी।

२० मद्गः [ ६९२ ]- आनन्द भगनेवाला।

२१ ध्रुपमः [ ६९३ ]- बलवान्।

२२ तस्य पीया वृषायते [ ६९३ ]- उतने पीनेसे बल भरता है।

२३ स्व-विद्वः [ ६९३ ]- शान्त भगनेवाला, जाननेवाला।

२४ सु-प्र-केतः [ ६९३ ]- उत्तम शानी।

२५ हरयः इन्द्रयः [ ६९४ ]- हरे रगका सोम।

२६ चनोहितः [ ७०० ]- अन्नरूपसे हितकर।

२७ द्युतासः [ ७०२ ]- तेजस्वी।

२८ विद्यक्षणः [ ६७६ ]- विद्येय शानी।

२९ वाजं अभि अर्थ [ ६७७ ]- बल बढ़ा।

३० प्र-द्रव [ ६७७ ]- दौड़, वेगसे जा।

३१ पुनामः [ ६७७ ]- साक होनेवाला, साक किया जानेवाला।

३२ स्वायुधः [ ६७८ ]- उतम शस्त्रास्त्रोंकी पातमें रखनेवाला।

३३ अशस्ति-हा [ ६७८ ]- अशस्तीका नाश करनेवाला।

३४ युजता [ ६७८ ]- उपद्रवकारी शत्रुओंकी दूर करनेवाला।

३५ रक्षमाणः पिता [ ६७८ ]- पिताके समान रक्षा करनेवाला।

३६ सु-दक्षः [ ६७८ ]- उत्तम बल।

३७ पुथिज्या धरुमः [ ६७८ ]- पुथिबीजा धारण करनेवाला।

३८ विप्रः [ ६७९ ]- शानी।

३९ जनात् पुर पता [ ६७९ ]- लोगोंके आगे धमने-वाला, नेता।

४० धीरः [ ६७९ ]- धैर्यशाली बीर।

४१ सत्यः [ ६८३ ]- सत्य काम करनेवाला।

४२ सुत्थ्यः [ ६९८ ]- बन् करनेवालेका सहृदय।

४३ दुरोयं स्त्रीमः [ ६९९ ]- दुष्टोंका नाश करनेवाला सोम है।

अब अग्निके विशेषण देखिए—

१ ऊर्जः न पातः [ ७०४ ]- बलको धम न करनेवाला।

इस अर्थात्प्रामेय से देवताओंके गुण बणित हैं। जहाँ उपासक अपने अन्दर धारण करें और यद्यपि सदा इन गुणोंके वृद्ध होवे, इसलिए इन गुणोंका महा धमन किया है।

इससे मनुष्यको उपरति हो सकती है। इन गुणोंमें कुछ गुण इतने, अग्निके, धरनेके और मित्रके हैं, और कुछ लोकके हैं,। चाहे देवता बने हों या छोटे, उनसे गुणोंको और साथ रखना चाहिए, और देवता प्राप्त करना चाहिए।

दूकरेकी और ध्यान न देना चाहिए, यह नियम महा पातनोय है।

### धन प्राप्त करना

मनुष्यकी उन्नतिके सब कार्य धनसे होते हैं। धनके बिना कुछ नहीं हो सकता। धनका उचित उपयोग करनेसे मनुष्य धन्य होता है। इस प्रकार यह धन मनुष्यको गुण प्राप्त करनेवाला है। इस धनके साम्यधर्म इस अध्यायमें इस प्रकार कहा है—

१ शु-श्रं [ ६८६ ]— शुभोक्तं (शुभेवात्, तेजस्वी, शुभोक्तं) जो कुछ भी है, वह तेजस्वी है, उसी प्रकार धन तेजस्वी है।

२ सु-दानुं [ ६८६ ]— उत्तम धान देने योग्य।

३ त्विपीभिः श्रावृतं [ ६८६ ]— अनेक सामर्थ्यसि युक्त, जिसके कारण अनेक प्रकारके सामर्थ्य प्रकट होते हैं।

४ पुरुमोजसं [ ६८६ ]— बहुलता अन्न देनेवाले। यदि धन प्राप्त हो तो बहुलता अन्न प्राप्त हो सकता है।

५ शु-मन्तं [ ६८६ ]— बहुल भस्मसे युक्त।

६ शानिं सङ्गमिणं [ ६८६ ]— संकष्टों और हजारों सामर्थ्यसे युक्त।

७ गोमन्तं वाजं [ ६८७ ]— भाषणसे युक्त अन्न देनेवाला।

धनके ये गुण इन मंत्रोंमें बड़े हैं, वे मन्वीय हैं—

८ मानुषाणां पित्रा शुभानि आ अर्थः सिपासन्तः घनामहे [ ६७४ ]— मनुष्योंके लिए उपयोगी सब धनोंको प्राप्त करके तेरी सेवा करनेकी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं।

९ रत्नघा नैयः हिरण्ययः क्रतुस्य योनिं आसी-  
दसि [ ६७५ ]— रत्नोंको धारण करनेवाला यह सुवर्णमय देव यज्ञमें अपने स्थानपर बैठता है। यह देव रत्नोंको धारण करता है। यह अपने भक्तोंको धन देता है।

१० हे इन्द्र! अश्यायन्तः शव्यन्तः याजिनः एवा ह्यामहे [ ६८१ ]— हे इन्द्र! षोडश, गाय और पत्त अथवा अन्नकी इच्छा करनेवाले हम तेरी प्रार्थना करते हैं। हमें यह सब दे।

११ हृदा चित्तु वसु आरुजे त्या मस्तसु [ ६८२ ]— सुदृढ़ रहनेवाले शत्रुओंका धन विनष्ट करनेके लिए यह सोम युद्ध प्रसन्न करता है।

१२ ऊटिये अकथ्यं दाता [ ६८८ ]— स्तुति करने-  
वालोंके प्रशंसनीय धन देता है।

१३ मयोर्ना राधः परि [ ६९१ ]— धनवान् शत्रुके पास रत्ने हुए धन हर्से दे।

इस प्रकार धनके विषयमें इस अध्यायमें कहा है। शत्रुके

धनको उसे हराकर हम अपने पास ले जायें ऐसी इच्छा यहों है। शत्रुकी हरायका बल अपनेमें हो यह इसका उद्देश्य है। धनके साथ-साथ बल, सामर्थ्य, दूरबीरता आदि गुण अपने अन्दर होने चाहिए यह भाव यहां है।

### देवोंके लिए सोम

सोमरसको तैय्यार करके पहले देवोंको अर्पण करना चाहिए फिर राजाको भीता चाहिए। वह बिलानेके लिए कहा है—

१ इन्द्राय मद्यः पवस्य [ ६९२ ]—

२ इन्द्राय चरुणाय मरुद्भ्यः परिभ्रुध [ ६७३ ]—  
इन्द्र, वधन, मरुत् आदि देवोंके लिए सोमरस छानकर शुद्ध करो।

३ सा अस्मयुः, हव्यदातये दारोम [ ७०४ ]— वह अग्नि हमारा हित करनेवाला है। उसे हव्य देनेके लिए हम हवनीय द्रव्य देते हैं।

४ पुत्रेजिती [ ६९७ ]— तुम ऐसा समझो कि जय तुम्हारे सामने है। अपनी पराजय करनी न हो इतना बल अपनेमें होना चाहिए, अरु भी भय न होना चाहिए। तभी विजय निश्चित है।

### सोमरसके पास कुत्ता न आवे

सोमरस जहां रखा जाता है, उस जगह कुत्ता न आवे, इसकी सावधानी रखनी चाहिए। इसलिये कहा है—

१ सुताय मादयित्तये दीर्घाजिह्वाय अथ अयिष्टत [ ६९७ ]— यह सोमरस आनन्द देनेवाला होनेके कारण लम्बी जीभवाला कुत्ता पास न आवे। कुत्तेकी बहुत दूर करना चाहिए। वह सोमरसके पास न पहुंचे, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए।

### स्तुतिये लाभ

इन्द्रादि देवोंकी स्तुति यज्ञमें मुख्य होती है। देवोंकी स्तुति सुनें और देवोंके सपान हों, यह स्तुतिको उपयोग है।

१ नः द्रवाणि उप श्रुणु [ ६९७ ]— हमारे स्तोत्रोंको पासते सुन। “द्रवा” शब्दका अर्थ है, “ज्ञान” देनेवाले स्तोत्र। महान् होनेकी शिखा देनेवाले स्तोम मनुष्योंको, महान् होनेकी शिखा देते हैं। देवोंके गुण सुनकर उन्हें अपने अन्दर धारण करके उन्हें बढानेसे मनुष्य महान् होता है। प्रशंसनीय होता है।

२ मघयन् । त्वावान् अभ्यः दिव्यः न, पार्थिवः न, न जातः न अनिष्यते [ ६८१ ] - हे इन्द्र ! तेरे समान दूसरा कोई भी धुलोकमें अथवा पृथ्वीपर न हुआ है, न होगा । ऐसे अद्वितीय हम स्वयं भी बनें, यह स्तुतिक्रा श्रावण है ।

३ यज्ञायज्ञा वक्षसे अग्रये गिरामिरा [ ७०३ ] - प्रत्येक यज्ञमें धतुर और बलवान् अग्निकी स्तुति करो । जो दक्ष और बलवान् होता है, उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, इसलिए कर्तव्यमें धतुर और बलवान् बनें । ऐसा जो होगा, उसकी सब जगह प्रशंसा होगी ।

देवताओंकी स्तुतिसे ऐसा लाभ होता है ।

### यज्ञ

यज्ञ देवोंकी सम्पुष्टिके लिए है ।

ऋतुसंधिषु व्याधिर्जायते ॥

ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते ॥ ( गोपय का )

ऋतुओंके सन्धिकालमें हवा विगड़ती है, इस कारण दीप दूर करनेके लिए यज्ञ किए जाते हैं । ये यज्ञ औषधियोंसे होते हैं, अर्थात् जिन रोगोंके उत्पन्न होनेकी सम्भावना होती है, अथवा जो रोग नष्ट हो गए हैं उन रोगोंकी दूर करने-वासी औषधियोंके ध्वंससे हवन किए जाते हैं । इससे हवामें रहनेवाले रोगबीज नष्ट हो जाते हैं, और वायु शुद्ध होती है ।

१ स्वा समिन्द्रिः धूतन चर्षयामसि [ ६६१ ] - तुमने तमिषाओं और गायके पीसे हवन प्रशंसित करते हैं । यज्ञमें गायका घी ही डालना चाहिए, और दूसरे पीसे काम नहीं चल सकता ।

२ यविष्यथ ! ब्रह्म शोच [ ६६१ ] - हे तपण लगे ! तू अधिक प्रकाशित हो, अधिक जल ।

३ ह्ययश्नतेये आ याहि [ ६६० ] - हवनीय इध्मोंकी देवोंके पास पहुंचानेके लिए आ । अर्थात् तुममें हम जो भी हवनीय इध्म शाले, उन्हें तू देवोंको प्रदान करनेके लिए उन्हें देवोंके पास पहुंचा ।

४ नः गन्वृति धृतिः उक्षतम् [ ६६३ ] - हमारी गर्धं जहां रहती है, यहां गायके पीका तिष्ठन होकर यह स्थान पवित्र हो । गायके घृतके हवनसे तब स्थापन पवित्र होता है, इसना विषयो नष्ट करनेका सामर्थ्य गायके घृतमें है ।

### इन्द्रके घोड़े

इन्द्रके घोड़े प्रतिद्वे हैं । इन्द्र घोड़ोंको परत सुधारता है

और उन्हें शिक्षित करता है । इस विषयमें इस प्रकार वर्णन है -

१ तरोभिः इन्द्रं घृह्त्वा गायत [ ६८७ ] - घोड़ोंके साथ रहनेवाले इन्द्रकी बृहत्नामका साम सुनाओ । "तरु" का अर्थ यहां शीघ्र बीडनेवाले घोड़े ऐसा है । मुद्गोंमें जिन घोड़ोंका प्रयोग होता है, वे घोड़े इन्द्रके पास रहते हैं ।

२ ब्रह्मयुजा केरिंशौ हरी रवा आ वहतां [ ६९७ ] - शब्दोंका मकेत होते ही रथमें बृजजानेवाले, सुन्दर अवालबाले दो घोड़े इन्द्रकी रथसे ले जाते हैं । घोड़ोंके अपाल उत्तम होते हैं, इसलिए उन्हें यहां "केरिंशौ" कहा गया है ।

३ इपिरस्य उक्तयो उरी रथे इन्द्रवाहा वचोयुजा स्पर्विदः हरी गायथा सुजन्त [ ७१२ ] - प्रतिबाल, इन्द्रके महान् लूणवाले रथमें शब्दोंके सकेतसे ही शुद्ध जानेवाले इन्द्रके घोड़ोंके घोड़े स्वयं ही अपने स्थानपर जानेवाले, रतीवके कहते ही मुड़ जाते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रके घोड़े हैं । उनकी केवल इशारेकी ही जल्दत है, दीप सारा काम वे स्वयं ही कर देते हैं । इसनेवे होशियार हैं । यहां यह बताया है कि घोड़ोंको इस प्रकार शिक्षित करना चाहिए ।

### सोम

सोमरसका यज्ञमें बहुत महत्त्व है । यह ऊंचे पर्वतसे लाया जाता है । देखिए -

१ नमः आगतं चरेण्यं सुतं [ ६६९ ] - आकाशसे लाया गया यह महान् सोम है, उसका रस निकाला है । हिमालयके ऊंचे शिखरसे यह सोम लाया गया है ।

२ ते अन्धसः दिवि उच्चा जातं [ ६७७ ] - तुम अन्ध-रूप सोमकी उत्पत्ति ऊंचे धुलोकमें हुई है । यहां धुलोकका अर्थ है हिमालयका ऊंचा शिखर ।

३ मधु प्रियं दिव्यं ऊषः दुहान् [ ६७६ ] - मोठे प्रिय ऐसे धुलोककृषी दुग्धागयसे यह दुहकर निकाला गया है ।

४ दिवः विद्यम्ना देवः [ ७०८ ] - धुलोकको आयात देनेवाला यह दिव्य सोम है ।

इस प्रकार सोमका स्थान ऊंचे हिमालयका शिखर है । यहांसे यह लाया जाता है, और उसका रस निकालकर उत्तरे पक्ष दिया जाता है ।

५ उन्नं सत्तु धर्मं गहि ध्रुवः भूमि आद्वे [ ७७२ ] - उन्नता और नीरता यदनेवाले मुसदायी सोमरसकृषी महान् अन्न भूमिपर आगये हैं । सोम स्वयंसे पृथ्वीपर लाया

जाता है । सोमरस यथा-प्राप्तिके उच्छृङ्खलसाधन है । सोमरस करनेवालेको महान् यथा प्राप्त होता है ।

### सोमरसको पानीमें मिलाना

१ सोमः पुनानः, आपः यसानः धारया अर्पति [६७५]- सोमरसको छाननेसे पहले पानीमें मिलाया जाता है, फिर यह छाननीसे नीचेके बर्तनमें छाना जाता है । यह नीचेके बर्तनमें धार वाधकर पड़ता है, तब उसका शब्द होता है ।

२ धीतयः अवावदान्त [ ६५८ ]- हाथकी अंगुलियां सोमको बारबार दबाकर रस निकालनेकी इच्छा करती है । अच्छी तरह दबाये बिना उससे सारा रस धाहर नहीं निकलता ।

३ बर्हिः अच्छ रजानामिः नयन्ति [ ६७७ ]- यज्ञस्थानके पास अंगुलियोंसे पकड़कर श्रवित्वा लोक सोमको लेजाते हैं ।

### छलनी

१ अन्यये घारे मधुश्च्युतं षोडशं अच्छ अष्टमं [ ६५८ ]- अनेके बालोंकी बनी छलनीसे मोटा रस भरनेके बर्तनमें मँ छानता हूँ ।

शेबके बालोंकी बनी छलनीसे यह रस छाना जाता है ।

### सोमरस छानना

१ दिवा पवस्य [ ६५६ ]- दिव्य प्रकाशसे युक्त होकर छनता जा, चमकता हुआ छनता जा ।

२ हे सोम ! इन्द्राय पातये सुताः स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पवस्य [ ६८९ ]- हे सोम ! इन्द्रके लिए स्वादिष्ट और अनायकारक धारसे छनता जा ।

३ अयोहते द्रोणे खद्युस्ये योमिं अभि आसवत् [ ६९० ]- सोनेके पात्रमें पात हो यज्ञशालामें सोमरस घंटा है ।

४ च्यनोहितः प्रियाणि नामामि अभिपचते, पेयु यज्ञाः अपि चर्पते [ ७०० ]- अग्ररूप हितकारक सोम सबको मुक्त करनेवाले पानीमें मिलाकर छनता जाता है, इस कारण यह महान् सोम चढ़ता जाता है ।

५ ऋतस्य जिह्वा यक्ता मधु पचते, अस्य धियः पतिः अदाभ्यः [ ७०१ ]- गान्नीं यह यक्ती जिह्वा ही है, ऐसा ज्ञान करता हुआ मोटा, यथाका पालन करनेवाला और न दबनेवाला यह सोमरस छनता जाता है ।

इस प्रकार सोमरस छाना जाता है, उस समय इसका

३ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

शब्द होता है, यह चमकता है । इस सब वर्णनको आलंकारिक भाषामें यैवमं कहा है ।

### सोम छाननेके समय साम-गान

जब सोमरस यज्ञमें छाना जाता है, उस समय उद्गाता सामका गायन करते हैं । एक तरफ सामगायन चलता है, दूसरी तरफ सोमरस छाना जाता है ।

२ हे नदः ! ययमामाय इन्द्रये उप गायत [ ६५९ ]- हे यज्ञको ! सोमरस छानते हुए तुम उससे पास बैठकर सामगायन करो ।

२ ऋतस्य दोहना अभि अनूपत, त्रिपृष्टः उपसः अपि विराजांसि [ ७०२ ]- यज्ञ करनेवाले श्रवित्वा सोमकी स्तुति पाते हैं । तीनों सवनोंमें उप बालके बाव हे सोम ! हू अधिक चमकता है ।

### सोमरसमें दूध मिलाना

१ देवेषु देवाय मधुना पयः अभि अशिध्रयुः [ ६५२ ]- देवको देनेके लिए तैय्यार किया गया सोमरस भीठे मापके रूपके साथ मिलाया जाता है ।

२ कृताः शुक्राः सोमाः गवाशिरः [ ६५४ ]- तेजस्वी सोमरस मापके रूपमें मिलाया जाता है ।

३ विमः पुर एता जनानां ऋभुः धीरः श्रुतिः गोमिं अपीच्यं शुद्धं नाम काथ्येन विवेद [ ६७९ ]- शान्ति, अप्रणी, मनुष्योंका नेता, धर्मशाली श्रुति गायोंमें जो भुक्तरूपसे मूष है, उसे अपने ज्ञानसे जानता है ।

इस प्रकार गायके रूपमें छाना हुआ सोमरस मिलाया जाता है, और बावमें उसे देवोंको अर्पण किया जाता है, उसके बाव उसे दूसरे लोग पीते हैं ।

इस प्रकार इस प्रथम अर्घ्यापने वर्णन है । उसे पालनगण प्यानपूर्वक पदों, और बोध प्राप्त करें ।

### सुभाषित

१ हे राजन् ! न गये, अर्पते, जनया ओषधिभ्यः शम् [ ६५३ ]- हे राजन् ! गाय, पीठे, मनुष्य, और औषधियों हमारे लिए कल्याणकारी होंवें ।

२ हितः वाजं अजामीत्, यथा धनुषः सिद्वता [ ६५५ ]- हित करनेवाले बोर सुदुर्भाग्यरत भाव्ये, जिस प्रकार घोड़ा मुड़में जाते हैं ।

३ इत्येते दशो दिवा पवस्य [ ६५६ ]- सबको चरवाण हो, इस दुष्टिते तेजसे युक्त होनेके लिए शुद्ध हो ।



४ श्रवणस्यः सर्गाः अशुक्षत [ १५७ ]- पशको कामे उत्पन्न करे ।

५ धीतयः अवायवान्त [ १५८ ]- अगुणिया कामे करन्ते-की इच्छा करती है ।

६ ऋतस्य योनिं आ अगमन् [ १५९ ]- सत्यके मूल केन्द्रमें जा । सत्यके अथवा यज्ञके केन्द्रमें जा ।

७ हृदयदातये आयाहि [ १६० ]- अन्नदान करनेके लिए आ ।

८ वार्हिषि नि सतिस् [ १६० ]- अपने आसनपर बैठ ।

९ हे यधिष्ठिर ! बृहत् शोच [ १६१ ]- हे तरुण ! तू विनोय तेजसे युक्त हो । विनोय तेजस्वी हो ।

१० हे देव ! पृथुश्रयाप्यं बृहत् सुवोर्यं नः अचुछ विद्यासिस् [ १६२ ]- हे देव ! बृहत् यज्ञवाले यज्ञान् सामर्थ्य हमें प्राप्त हों ऐसा कर ।

११ शुचिमत आरुंसा नमोबुधा वृदास्य मद्रा राजथः [ १६४ ]- शुद्ध निर्दोष व्रतका आचरण करके, बहुत प्रशंसित होकर अन्नकी सम्पृद्धि करके सामर्थ्यकी महानतासे विराजमान हो ।

१२ ऋतावृधा ऋतस्य योनीं सीदते [ १६५ ]- सत्य, यज्ञ कर्मका सत्यार्थन करके यज्ञके स्थापन पर बैठ ।

१३ नः ब्रह्मणि उपशृणु [ १६७ ]- हमारे ज्ञान बढ़ानेवाले स्तोत्रोंकी पाठ आकर सुन ।

१४ ब्रह्माणः त्वा युजा हवामहे [ १६८ ]- हमसानी तुझे निम्नताके नाते स्तुतिप्रार्थनाके लिए बुलाते हैं ।

१५ यज्ञः चेतनः जिग्यति [ १७० ]- यज्ञ चेतना उत्पन्न करके तुम्हें श्रेयसा देता है ।

१६ यज्ञस्य जूत्या कविच्छ्रदा युणे [ १७१ ]- यज्ञकी श्रेयसासे श्रेष्ठ होकर ज्ञानके छन्द पारण करनेवालोंकी में स्वीकार करता है ।

१७ उन्नं सत् महि श्रयः शर्म [ १७२ ]- तेरे उपपत्ता और वीरताकी बढ़ानेवाले यज्ञान् यज्ञ कल्याण करनेवाले हैं ।

१८ मानुषार्था विन्धा शुम्भानि आ अर्यः सिषा-सन्तः वनामहे [ १७४ ]- मनुष्योंको इच्छा सब तेजस्वी पत्नीको प्राप्त करके हम तेरी सेवा करनेकी इच्छावाले तेरी सेवा करते हैं ।

१९ रत्नधा हिरण्ययः देवः ऋतस्य योनिं आसी-दस् [ १७५ ]- रत्नोंकी धारण करनेवाला, सौतेले समान तेजस्वी देव यज्ञके स्थानपर बैठता है, यज्ञ करता है ।

२० वाजी विचक्षणः नृभिः धीतः आपृच्छयं धरणे अर्गसि [ १७६ ]- बलवान्, ज्ञानी, धीर नेताओं द्वारा निर्बोध किया गया, प्रशस्तनीय कर्मोंको करता है ।

२१ स्वायुध-अ शस्ति हा पुत्रना रक्षामाणः देवानां पिता जनिता सु-दक्षः देवः पयले [ १७८ ]- उत्तम शस्त्रार्थोंकी धारण करनेवाला, यज्ञओंका नाश करनेवाला, उपद्रवोंको दूर करनेवाला; संरक्षण करनेवाला, उत्तम व्यवहार करनेवालोंका पालक, बहुत ही गुढ़ होता है ।

२२ विप्रः पुर एता, जप्तानां क्रभुः घीरः क्रपिः फाव्येन विवेद [ १७९ ]- ज्ञानी, नेता, अपने बलनेवाला, पर्येशाली, इच्छा अपने ज्ञानसे सब जानता है ।

२३ अस्य तस्थुयः जगतः ईशाने स्वर्दशं अग्नि नोनुमः [ १८० ]- इस सब स्थावर जंगमके स्वामी और आत्मदर्शीको हम प्रणाम करते हैं ।

२४ हे इन्द्र ! स्वामान् अभ्यः दिव्यः पार्थिवः न जातः न जनिष्यते [ १८१ ]- हे इन्द्र ! तेरे समान धूलोक कीर पृथ्वीपर कोई भी दूसरा न हुआ न होगा । तेरे समान तू ही है ।

२५ सदायुधः चित्र सत्ता कया जत्या कया शक्तिष्ठया प्रता नः आ युजत् [ १८२ ]- हमेशा बढ़ने-वाला उत्तम मित्र भला कौतवी संरक्षणकी शक्तिपौते युक्त होकर हमारी स्तुतिप्रार्थनाके लिए हमारे पास आया ?

२६ मंहिष्ठः सत्य मदानां क [ १८३ ]- महान्, सत्यका आचरण करनेवाला जानन् देनेवाला है ।

२७ नः शतं ऊतये सु अभि भवांसि [ १८४ ]- हमारा संकष्टों प्रकारसे संरक्षण करनेके लिए तू उत्तम स्तुतिप्रार्थना करनेवाला है ।

२८ वस्मं क्रतुवीपहं अ-धत्सः मग्दाने इन्द्रं गीभिः नयामहे [ १८५ ]- मुन्दर, यज्ञओंका परामर्श करनेवाले, अन्नसे आर्तवित्त होनेवाले इन्द्रकी यज्ञान्ते हम स्तुति करते हैं ।

२९ शुद्धं सुक्रानुं तविर्षीभिः आवृत्तं पुरुभोजसं शुम्भन्तं शान्तिं सहस्रिणं गोमन्तं वाजं मक्षू ईमहे [ १८६ ]- तेजस्वी उत्तम बाल करनेवाले, अनेक सामर्थ्यसे युक्त, बहुत भोजन देनेवाले अन्नसे युक्त, संकष्टों और हजारों प्रकारके यज्ञसे उत्पन्न होनेवाले अन्नकी प्राप्ति क्षी प्र हो, ऐसी इच्छा हम करते हैं ।

३० सयमयः ऊतये इन्द्रं वृहत् गायत [ १८७ ]- उपद्रव करनेवाले दास्योंसे तरुण करनेवाले इन्द्रके लिये बृहत् नामसे सामका गान करो ।

३१ भरं न कारिणं हुये [ ६८७ ]- भरण पीपण करनेवालेके सम्मान कार्य करनेवालेको में ब्रूयाता हूँ ।

३२ सु-शिषं दुःप्राः स्थिराः मुरः न धरन्ते [ ६८८ ]- उत्तम साक्षा शिष्यनेवाले इन्द्रका प्रतीकार बुद्ध, स्थिर, और मूर्ख धनु नहीं कर सकते ।

३३ जरित्रे उदधर्यं दाता [ ६८८ ]- स्तुति करनेवालेको यह प्रशंसीय धन देता है ।

३४ रक्षोदा विभ्व-चर्यणिः [ ६९० ]- राक्षसीका वध करनेवाला सब मनुष्योंका हित करता है ।

३५ चरियोधातमः बृध्रहन्तमः मघोनां राघः पर्णि [ ६९१ ]- अधिक धन देनेवाला, मनुष्योंको मारनेवाला नू शत्रुओंके धन छीनकर हमें दे ।

३६ मधुमत्तमः प्रतु-विचमः महि पुसतमः [ ६९२ ]- अत्यन्त मीठा, यज्ञको विधि उत्तम रीतिते जाननेवाला महान् तेजस्वी है ।

३७ स्वः-विदः सु-प्रकेतः इयः अभ्यक्रमीत् [ ६९३ ]- आत्मतानी विदोय विद्वान् शत्रुके अदपर अपना अधिकार स्थापित करता है ।

३८ जैप्रस्थ चेतति [ ६९५ ]- विजय प्राप्त करनेका उत्साह देता है ।

३९ इन्द्रः प्रामं वृषणं धन्नं च गृभ्णाति [ ६९६ ]- यह शीर इन्द्र धनुष और बल्युक्त वज्रको धारण करता है ।

४० मुरोजिती [ ६९७ ]- अपने सामने विजय है, ऐसा समझ ।

४१ नराः तुरोपसं तं विश्वाच्या धिया अत्रयः सन्तु [ ६९९ ]- नेतापण, दुष्टोंका नाश करनेवाले उत्तम औरका सबका संरक्षण करनेवालेको वृद्धिते आदर करें ।

४२ विप्वंनं अधिरयं विचक्षणः आरुहत् [ ७०० ]- धारों और जानेवाले रथपर विशेष जानी बंटा है ।

४३ अत्य धियः पतिः अद्वाभ्यः [ ७०१ ]- इस कामका पालन करनेवाला हवाया नहीं जा सकता ।

४४ यज्ञायना दक्षसे गिरा अमृतं प्रशंसिषम् [ ७०३ ]- प्रायेक यज्ञमें बल प्राप्तिके लिए अपनी धानीते क्षमर देवकी स्तुति करो ।

४५ ऊर्जा न-पातं [ ७०४ ]- बलको कम न करनेवालेको में प्रशंसा करता हूँ ।

४६ वाजेयु अविता [ ७०५ ]- युद्धमें यह हमारा रक्षण करनेवाला है ।

४७ वृधः सुवत् [ ७०४ ]- यह हमारी शक्ति बढ़ानेवाला है ।

४८ तन्नृनां प्राता सुवत् [ ७०५ ]- यह हमारे शरीरोंको रक्षा करनेवाला है ।

४९ ते मनः यत्र फ्य च तत्र उत्तरं दक्षं द्यसे [ ७०६ ]- तेरा मन जहाँ कहीं भी हो, उत्तम बलको धारण करता है ।

५० योमिं दृणयसे [ ७०६ ]- नू अपना घर संभार करता है ।

५१ ते वृत् अक्षिपत् न हि भुवत् [ ७०७ ]- तेरा तेज आशोंकी हानि पहुँचानेवाला नहीं है ।

५२ हे अपृष्यं यस्मिन् ! भरन्तः वयं अवरयवः त्रिषं त्वां हवामहे [ ७०८ ]- हे शक्तिशाली ब्रह्मधारी इन्द्र ! हम तुझे हवनीय पशुयं देते हैं, अपने सारक्षणके लिए ब्रह्मदान शक्तिवाले तुझे सहायताके लिए ब्रूयाते हैं ।

५३ अवितारं त्वा धनुमहे [ ७०९ ]- रक्षण करनेवाले तुमें हम ब्रूयाते हैं ।

५४ कर्मन् ऊतये उव चप्राम [ ७०९ ]- कर्म करते हुए संरक्षणके लिए हम तेरे पास आते हैं ।

इस प्रकार इस अध्यायमें सुभाषित है । पाठकोंको सरलतासे समझमें आनाए इसके लिए इनका अर्थ योद्धा बितारते दिया है ।

उपमा]

इस प्रथम अध्यायमें जाये धी हुई उपमायें आई हैं—

१ हितः याजी याजं अक्रमीत् यथा यनुवः सदिन्तः [ १५५ ]- हित करनेवाला शीघ्र यज्ञमें उसी प्रकार जाता है, जिस प्रकार घोड़ा वीर युद्धमूर्खमें जाते हैं ।

२ अर्थन्तः न [ ६५७ ]- घोड़े जैसे युद्धसालके बाहर जाते हैं, वसी प्रकार " पवमानरय ते स्वर्गाः अरुक्षत " शुद्ध होनेवाले सोमकी धारा नीचेके वर्तनमें पड़ती है ।

३ योनेयः अस्तं न [ ६५९ ]- गावें जिस प्रकार अपने बाघमें जाती हैं, उसी प्रकार " इन्द्रवः समुद्रं कलदां न अरुछ आ अग्मन् " सोमरस पानीके वर्तनमें सीधे जाते हैं ।

४ वाजिनं आभं न, त्वा मर्जयन्तः [ ६७७ ]- बलवान् घोड़ेकी जिस प्रकार धोते हैं, उसी प्रकार सोमरसकी साफ करते हैं ।

५ अतुग्धाः योनेयः इयः जगत्तः सत्युयः ईशानं स्वदृशं त्वा अभिनोतुमः [ ६८० ]- जिना इठी हुई पायें

जित प्रकार अपने बछड़ेके पास जाती है, उसी प्रकार स्यावर जागमके इन्द्र तेरे पास नम्र होकर हम आते हैं।

६ स्वसरेषु वसं धेनव इव, दुर्षं इन्द्रं गीर्भिः नचामहे [ ६८५ ]- गौशालामें गावें जित प्रकार अपने बछड़ेके पास जाती हैं, उसी प्रकार धर्षणीय इन्द्रके पास अपनी धाणोसे स्तुति करते हुए हम आते हैं।

७ भरं न, कारिणं हुये [ ६८७ ]- भरणपोषण करने-वालेको जित प्रकार आदरसे बुलाते हैं, उसी प्रकार कर्मशील पुरुषको हम बुलाते हैं।

८ घतशः घाजं अभि न, सु प्रफेत इयः अभ्य-ग्रामीषु [ ६९३ ]- घोषा जित प्रकार पृथग्में विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार उत्तम ज्ञानी इन्द्र सोमसाधकी अन्नको प्राप्त करता है और उत्तमपर विजय प्राप्त करता है, और उसे यो लेता है।

९ अश्वः न, इन्द्रुः धारया परि प्रस्यन्दते [ ६९८ ]

- घोड़ेके समान सोम धार बाँधकर छाना जाता है, बर्तनमें जाता है।

१० प्रियं मित्रं न, अमृतं जातयेदसं प्रशसिपम् [ ७०३ ]- प्रिय मित्रके समान अमर अमिको में प्रशंसा करता है।

११ स्थूरं न, चित्र त्वा हचामहे [ ७०८ ]- अंतै कोई महान् मनुष्यको बुलाता है, उसी प्रकार विलक्षण, थोड़ा सुगं हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

१२ उदा इव गमन्त उदभिः त्वा उप सखग्महे [ ७१० ]- पानी लेकर जानेवाले जित प्रकार पानीसे खेलते हैं, उसी प्रकार हम तेरे साथ खेलते हैं।

१३ हे अद्रिच दारु! वार्णं. यन्याभिः वर्धन्ति, वानु-ध्यांस. दध. न्यद्र. दिग्दिग्दि [ ७११ ]- हे अद्रिच, वानु-ध्यांस, दध, न्यद्र, दिग्दिग्दि, जित प्रकार समुद्रको नदीया बढ़ाती हैं, उसी प्रकार बढ़ने-वाले तुमको हम रोग स्तुतिसे बढ़ाते हैं।

इस प्रकार ये उपमायें इस अध्यायमें आई हैं।

## प्रथमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रसंख्या	ऋषिवरदान	ऋषिः	देवता	छन्द-
		( १ )		
६५१	१११११	अतित काश्यपो देवलो वा	पयमान सोम	गायत्री
६५२	१११११	अतित काश्यपो देवलो वा	"	"
६५३	१११११	अतित काश्यपो देवलो वा	"	"
६५४	१११११	काश्यपो मारीच	"	"
६५५	१११११	काश्यपो मारीच	"	"
६५६	१११११	काश्यपो मारीच	"	"
६५७	१११११	दात संखानस	"	"
६५८	१११११	दात संखानस	"	"
६५९	१११११	दात संखानस	"	"
		( २ )		
६६०	३१३१३	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	अग्नि	"
६६१	३१३१३	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
६६२	३१३१३	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
६६३	३१३१३	विश्वामित्रो गायिन	मित्रावरयो	"
६६४	३१३१३	विश्वामित्रो गायिन	"	"

संज्ञसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋचिः	देवता	छन्दः
६६५	३।६।१।१८	विश्वामित्रो गायिनः जमदग्निर्वा	मित्रायणो	गायत्री
६६६	८।१७।१	इरिन्मिदिः काण्वः	इन्द्रः	"
६६७	८।१७।२	इरिन्मिदिः काण्वः	"	"
६६८	८।१७।३	इरिन्मिदिः काण्वः	"	"
६६९	३।६।२।१	विश्वामित्रो गायिनः	इन्द्राग्नी	"
६७०	३।१२।५	विश्वामित्रो गायिनः	"	"
६७१	३।१२।३	विश्वामित्रो गायिनः	"	"
( ३ )				
६७२	९।११।१०	अमहोयुरागिरसः	पवमानः सोमः	"
६७३	९।११।१७	अमहोयुरागिरसः	"	"
६७४	९।११।११	अमहोयुरागिरसः	"	"
६७५	९।१०।७।४	सप्तयंत्रः	प्रगाथः ( विषमा बृहती, सप्त सतो बृहती )	
६७६	९।१०।७।५	सप्तयंत्रः	"	"
६७७	९।८।७।१	उग्रना काण्वः	"	त्रिष्टुप्
६७८	९।८।७।२	उग्रना काण्वः	"	"
६७९	९।८।७।३	उग्रना काण्वः	"	"
( ४ )				
६८०	७।३।१।२२	वसिष्ठो मंत्रायणनिः	इन्द्रः	प्रगाथः ( विषमा बृहती, धमा सतो बृहती )
६८१	७।३।१।२३	वसिष्ठो मंत्रायणनिः	"	"
६८२	७।३।१।१	यामदेवो गौतमः	"	गायत्री
६८३	७।३।१।२	यामदेवो गौतमः	"	"
६८४	७।३।१।३	यामदेवो गौतमः	"	पादनिचुत्
६८५	८।६।८।१	शोधा गौतमः	"	प्रगाथः ( विषमा बृहती, सप्त सतो बृहती )
६८६	८।६।८।२	नीमा गौतमः	"	"
६८७	८।६।६।१	कलिः प्रागाथः	"	"
६८८	८।६।६।२	कलिः प्रागाथः	"	"
( ५ )				
६८९	९।११।१	मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः	पवमानः सोमः	गायत्री
६९०	९।११।२	मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः	"	"
६९१	९।११।३	मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः	"	"
६९२	९।१०।८।१	गौरवीति शाकल्यः	"	शकुन्मः प्रागाथः ( विषमा शकुन्, सप्त सतो बृहती )
६९३	९।१०।८।२	गौरवीति शाकल्यः	"	"

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदस्थान	ऋषि	देवता	छन्द
६९४	९।१०६।१	अग्निश्चाक्षय	पवमान सोम	उष्णिक् -
६९५	९।१०६।२	अग्निश्चाक्षय	"	"
६९६	९।१०६।३	अग्निश्चाक्षय	"	"
६९७	९।१०१।१	अन्धीगु श्यावाश्वि	"	अनुष्टुप्
६९८	९।१०१।२	अन्धीगु श्यावाश्वि	"	गायत्री
६९९	९।१०१।३	अन्धीगु श्यावाश्वि	"	"
७००	९।७५।१	कविर्भागव	"	जगती
७०१	९।७५।२	कविर्भागव	"	"
७०२	९।७५।३	कविर्भागव	"	"
( ६ )				
७०३	६।४८।१	शमुर्वाहंस्पत्य ( तुणपाणि )	अग्नि	प्रगाथ ( विषमा बृहती समा सती बृहती )
७०४	६।४८।२	शमुर्वाहंस्पत्य ( तुणपाणि )	"	"
७०५	६।१६।१६	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	गायत्री
७०६	६।१६।१७	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
७०७	६।१६।१८	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
७०८	८।११।१	सोमरि काण्व	इन्द्र	कानुभ प्रगाथ ( विषमा ककुप्, समा सती बृहती )
७०९	८।११।२	सोमरि काण्व	"	"
७१०	८।९८।७	नृमेघ आगिरसः	"	ककुप्
७११	८।९८।८	नृमेघ आगिरस	"	उष्णिक्
७१२	८।९८।९	नृमेघ आगिरस	"	पुरउष्णिक्



अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ प्रथमपाठके द्वितीयोऽर्थः ॥ १ ॥

[ १ ]

( १-२२ ) १, ४ धृतकः; पुकः वा आगिरसः; २, ८, १३-१५ वसिष्ठो मंत्रावरणः; ३ श्रेयादिभिः काण्वः; प्रियमेघ-  
श्वागिरसः; ५ इरिभिः काण्वः; ६ कुलीशो काण्वः; ७ त्रियोक्तः काण्वः; ९ विश्वामित्रो गायिनः; १० भयुक्तव्या  
वैश्वामित्रः; ११ सुनःशेष आजीगतिः; १२ नारदः काण्वः; १६ अयासारः काश्यपः; १७ ( १ ) सुनःशेष आजी-  
गतिः स वेवरातः कुत्रिमो वैश्वामित्रः; १७ ( २-३ ) मेघ्यातिभिः काण्वः; १८ ( १, ३ ) अस्तिः काश्यपो देवलो  
वा; १८ ( २ ) अमहीयुरागिरसः; १९ त्रित आण्व्यः; २० सप्तार्यवः ( १ भरद्वाजो बह्वृस्पत्यः, २ काश्यपो  
मारोचः; ३ मोतमो राहूणः, ४ अग्निर्मैमः, ५ विश्वामित्रो गायिनः, ६ जगदीनर्भर्गवः, ७ वसिष्ठो  
वैश्वामित्रः ); २१ सायाण्य आत्रेयः; २२ ( १-२ ) अग्निश्वाशुयः; २२ ( ३ ) प्रजापतिर्वैश्वामित्रो  
गाय्यो वा ॥ १-१२ इन्द्रः; १३ अग्निः; १४ उषाः; १५ अश्विनो; १६-२२ यवसावः सोमः ॥  
१ ( २-३ )-११; १६-१९; २१; गायत्री, १२, २२ ( १-२ ) उष्णिक्; १३-१५,  
२० प्रगायः= ( विषमा बृहती, समा सनोबृहती ); १ ( १ ), २२ ( ३ ) अनुष्टुप् ।

- ७१३ पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।  
विश्वासाहश्शतकृतं मर्ध्विष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९।२।१ )
- ७१४ पुरुहूतं पुरुहूतं गाथान्पारैश्च सनश्रुतम् । इन्द्र इवि प्रवीतन ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९।२।२ )
- ७१५ इन्द्र इक्षो मदीनां दाता वाजानां नृत्तः । महाश्चअभिइवा यमत ॥ ३ ॥ १ ( वा ) ॥  
( ऋ. ८।९।२।३ )
- ७१६ प्र व इन्द्राय मादनश्च ह्यग्थाय गायत । सखायः सोमपात्रे ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१।१।१ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ७१३ ] ( वः अन्धसः आपान्तं ) तुम्हारे द्वारा विष्ट गए सोमरूप अन्नका पान करनेवाले, ( विश्वा-साहं ) सब शत्रुओंका पराभव करनेवाले ( शत-शत्रु ) सैकड़ों प्रकारके कर्म करनेवाले ( चर्षणीनां-मर्ध्विष्ठं ) मनुष्योंमें बहुत महान् ( इन्द्र इवि प्रगायत ) इन्द्रको स्तुतिकर गान करो ॥ १ ॥

[ ७१४ ] ( पुरु-हूतं ) बहुत लोग सहायताके लिए जिसे बुलाते हैं, ( पुरुहूतं ) बहुत लोग जिसको स्तुति करते हैं, ( गाथान्यै ) जो स्तुति करनेके योग्य है, ( सन-श्रुतं ) समाप्त कालके जो प्रसिद्ध हैं, ( इन्द्र इति प्रवीतन ) उम इन्द्रको इस प्रकार स्तुति करो ॥ २ ॥

[ ७१५ ] ( नृत्तः ) सबको बलानेवाला ( महोनां वाजानां दाता ) महान् धन और वज्रको देनेवाला ( महान् इन्द्रः इव अवि-भुः ) महान् इन्द्र ही हमारे सामने आकर ( नः ) हमें ( वा यमत् ) पान आदि देवे ॥ ३ ॥

१ नृत्तः— सबको बलानेवाला, सबको बलानेवाला ।

२ अविः-भुः— सामनेसे देखनेवाला ।

[ ७१६ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( वः ) तुम ( ह्यग्थाय ) पौधोंकी पाल रखनेवाले ( सोम-पात्रे ) सोम पीनेवाले इन्द्रको ( मादनं प्रगायत ) आनन्द देनेवाले स्तोत्र गाओ ॥ १ ॥

१ ह्यग्थवः ( हरि-अश्वः ) लाल घोड़े जिसके पाल रहते हैं ।

- ७१७ शशसेदुकथं सुदानव उत द्युषे यथा नराः । चक्रुमा सरपराधसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।२।१२ )
- ७१८ त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गन्धुः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुवसो ॥ ३ ॥ २ ( गौ. ) ॥  
( ऋ. ७।२।१३ )
- ७१९ वषष्ठु त्वा तदिदथा इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।१६ )
- ७२० न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । वषेदु स्तोमैश्चिकेत ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१।१७ )
- ७२१ इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमत्तन्द्राः ॥ ३ ॥ ३ ( पा. ) ॥  
( ऋ. ८।१।१८ )
- ७२२ इन्द्राय मद्गने सुतं परि शोभन्तु नो गिरः । अकमचन्तु कारवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१२।१९ )
- ७२३ यसान्विष्या अधि श्रियो रणन्ति सप्त सशसद्दः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।१२।२० )

[ ७१७ ] ( उत ) और हे मित्री ! ( सु-दानवे ) उत्तम बान बनेवाले, ( सरप-राधसे ) शल्यतासे अपने पास धन रखनेवाले इन्द्रके लिए ( उक्थे ) स्तोत्रोंका गान करो, ( नर ) स्तुति करनेवाले ब्रह्मसे शोष जिस प्रकार स्तुति करते हैं, वैसी स्तुति तुम ( द्युषे दांस ) तेजस्वी रीतिसे करो, ( इत् चयम ) और हम भी उसकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ ७१८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं नः घाज-युः ) तू हमें अन्न देनेवाला हो, हे ( दात-जसो ) अनेक प्रकारसे पराक्रम करनेवाले इन्द्र ! ( त्वं गन्धुः ) तू पाप देनेवाला हो, हे ( पसो ) सवकी घसानेवाले इन्द्र ! ( त्वं हिरण्ययुः ) तू सोना देनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ ७१९ ] हे इन्द्र ! ( त्वायन्तः ) तुम प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले ( सखायः ) हम मित्र ( तद्विषया- ) उसी प्रयोजनके लिए ( त्वा ) तेरी स्तुति करते हैं, ( उ ) और ( कण्वाः ) बन्धुगोत्रमें उत्पन्न होनेवाले लोग भी ( उक्थेभिः जरन्ते ) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ ७२० ] हे ( वज्रिन् ) वज्रपायी इन्द्र ! ( अगसः ) यह बर्षोंमें ( तप नविष्टौ ) तेरे गये धर्ममें ( अग्नयत् घेम ) मैं तेरे स्तोत्रके विषय ब्रह्मरुदे स्तोत्र ( न घ्या-पपन ) नहींगा ही नहीं । ( तप इत् उ ) तेरी ही ( स्तोत्रिः चिकेत ) स्तोत्रोंसे स्तुति करना मैं जानता हूँ ॥ २ ॥

[ ७२१ ] ( देवाः ) देवगण ( सुन्वन्तं इच्छन्ति ) गोमयत करनेवालेसे प्रेम करते हैं, ( स्पृहया न स्पृह-यन्ति ) आत्मगीते प्रेम नहीं करते, ( अत्तन्द्राः ) परिधयी देव ( प्रमादं दन्ति ) परम आराध देनेवाले गोमयी प्राण करते हैं ॥ ३ ॥

[ ७२२ ] ( मद्गने इन्द्राय ) आनन्ददायक गोमरुकी इच्छा करनेवाले इन्द्रके लिए ( सुतं ) गोमरुकी तीव्रता करनेवाले ( नः गिरः परिच्छोभन्तु ) हमारी काष्ठी उसकी स्तुति करती है, ( कारवः ) स्तोत्रागण ( अकं अचन्तु ) स्तुतिके शोष शोमकी स्तुति करें ॥ १ ॥

[ ७२३ ] ( यसान्वि ) जिस इन्द्रमें ( विष्याः श्रियोः अधि ) सारी शोभायें पढ़ती हैं, और ( सप्तसशसद्दः रणन्ति ) शत्रुकी स्तुति करनेसे सात शत्रुत्व करते हैं, अम ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( सुते हवामहे ) गोमयकमें हव भूषाने हैं ॥ २ ॥

७२४ त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमन्तव । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥ ४ (ला) ॥  
(ऋ. ८।१२।१)

॥ इति प्रथम खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

७२५ अयं व इन्द्र सोमो निपूतो अधि वदिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१७।१)

७२६ शाचिगो शाचिपूजनाय रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र ह्यसे ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१७।२)

७२७ यस्ते मृङ्गवृषो णात्प्रणपात्कुण्डपात्यः । न्यसि दध्र आ मनः ॥ ३ ॥ ५ (दि) ॥  
(ऋ. ८।१७।३)

७२८ आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्रामं सं भृभाय । महाहस्तो दक्षिणेन ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१८।१)

७२९ विद्या हि त्वां तुविक्वमिं तुविदेप्यं तुर्वामयम् । तुविमात्रमवाभिः ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१८।२)

७३० न हि त्वा शू देवा न मर्तासां दिस्सन्वम् । भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥ ६ (के) ॥  
(ऋ. ८।१८।३)

[ ७२४ ] (देवाः) तय देव (त्रिकद्रुकेषु) यज्ञके तीन विनमो (चेतनं) अल्लाह बढ़ानेवाले यज्ञका (अन्तत) विस्तार करते हैं। (सं ह्य) उसीकी (न. गिरः) वर्धन्तु) हमारी वाणी प्रतीता करती है ॥ ३ ॥  
॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ७२५ ] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (अयं सोमः) यह सोम (वदिषि) देवीवर (निपूतः) पाना जाता है, (एहीमस्य पिबि) इसके पास आ (द्रवा) पीय आ, और (पिब) उसे पी ॥ १ ॥

[ ७२६ ] (शाचि-गो) सामर्थ्यवान् किरणसि पुष्य और (शाचि-पूजन) शक्तिशाली होनेके कारण पुत्रे जानेवाले, (आ-खण्डल) समुद्रोंको तोड़नेवाले हे इन्द्र ! (ते रणाय) तुझे मुक्त हो इसलिये (अयं सुतः) यह रत संप्यार किया है, इसलिये (प्र ह्यसे) तुझे मुक्तते हैं ॥ २ ॥

[ ७२७ ] (श्टेगः-भृषः-न-पात्) किरणोंके विस्तारकी सङ्घटित न करनेवाले इन्द्र ! (ते प्रणपात्) तेरा सहायक (यः कुण्डपात्यः) कुण्डपात्य नामका जो सोम-पानका यज्ञ है, (अस्मिन् मनः) आ नि दध्रे) उत्तम अरना धन लगा ॥ ३ ॥

१ श्टेगः-भृषः-न-पात् — किरणोंके प्रसारको कम न करनेवाला । प्रकाशको जो फैलाता है ।  
२ कुण्ड-पात्यः — जिसमें बड़े बर्तनसे सोम पिया जाता है ऐसा घन ।

[ ७२८ ] हे इन्द्र ! (महा-हस्ती) बड़े हाथोंवाला तू (नः) हमारे लिए (क्षु-मन्तं चित्रं ग्रामं) तेजस्वी, विलक्षण और स्वीकार करनेके योग्य घन (दक्षिणेन सं भृभाय) दायें हाथसे चारण कर, घन देनेके लिए हाथोंमें धन धारण कर ॥ १ ॥

[ ७२९ ] हे इन्द्र ! (तुविक्वमिं) अनेक पराक्रम करनेवाले (तुवि-देप्यं) देने योग्य बहुतेके पनको अपने पासमें रखनेवाले (तुवि-मर्धं) महान् धनवान् (तुवि-साभं) महान् आकारवाले (अवोधिः) संरक्षणके अनेक साधनोंसे युक्त (त्वा) तुझे (विद्य हि) हम जानते हैं ॥ २ ॥

[ ७३० ] हे (शू) बोर इन्द्र ! (दिस्सन्वं त्वा) देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे (देवाः) देव और (मर्तासाः) मनुष्य भी (न वारयन्ते) किसी प्रकार हटा नहीं सकते, जिस प्रकार (हि भीमं गां न) भयकर बलकी कोई हटा नहीं सकता ॥ ३ ॥



७३१ आभि त्वा वृषमा सुते सुतस्त्रुजामि पीतये । तृम्पा व्यशुनुहो मदम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४५।२२ )

७३२ मा त्वा मूरा अविष्यवा मोपहस्वान आ दमन् । मा कीं व्रत्तद्विषं वनः ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।४५।२३ )

७३३ इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरा यथा पिव ॥ ३ ॥ ७ ( या ) ॥  
( ऋ. ८।४५।२४ )

७३४ इदं वसो सुतमन्धः पिवा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयित्ररिमा ते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२।१ )

७३५ नुमिधीतिः सता अश्रैरग्या वारिः परिपतः । अशो न निकतो नदीषु ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।२।२ )

७३६ ते ते यवं यथा गोमिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इन्द्र स्वासिस्तसधमादे ॥ ३ ॥ ८ ( यो ) ॥  
( ऋ. ८।२।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

७३७ इदं श्वान्वोजसा सुतश्राधानां पते । पिवा त्वारेस गिवेणः ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।५।१।१० )

[ ७३१ ] हे ( वृषम ) बलवान् इन्द्र ! ( सुते त्वा ) सोमयज्ञके तेरे ( पीतये सुतं अभि त्रुजामि ) पीनेके लिए सोमरस अच्छी तरह तैयार करता हूँ, ( तृम्पा ) तू उसले तुष्य हो, और ( व्यशुनुहो ) जस आत्मव्यदायक रसको पी ॥ १ ॥

[ ७३२ ] हे इन्द्र ! ( त्वा ) तुमों ( अविष्यवाः मूराः ) रसगर्ही इच्छा करनेवाले मूर्खों ( मा दमन् ) न बनावे, तेरा ( उपहस्वानः मा ) उपहास करनेवाले भी तुमों न बनावें, ( व्रत्तद्विषं ) शानसे द्वेष करनेवालेकी ( मा कीं वनः ) तू सहायता न कर ॥ २ ॥

[ ७३३ ] हे इन्द्र ! ( इह ) इस यज्ञमें ( गो-परीणसं ) गावके दूधले मिला हुआ सोमरस अर्पण करनेका यज्ञक ( महे राधसे ) बहुत सारा धन भक्षण करनेके लिए ( त्वा मन्दन्तु ) तुमों आनन्दित करने हूँ, ( यथा गौरः सरो ) जिस प्रकार मूषा तालाबपर साकर पानी पीता है, उसी प्रकार तू ( पिव ) सोमरस पी ॥ ३ ॥

[ ७३४ ] हे ( वसो ) निवासक इन्द्र ! ( इदं सुतं मन्धः ) यह सोमरसहवी अन्न तू ( उदरं सु-पूर्णं ) पेट भरकर ( पिव ) पी, हे ( अनाभयित्रिन् ) निर्भय इन्द्र ! ( ते ररिम ) तुमों हम सोमरस देते हूँ ॥ १ ॥

[ ७३५ ] ( नुमिः धीतिः ) यात्राकोले स्वच्छ किया गया, ( अश्रैः सुतः ) पत्थरीले दूधकर निकाला गया यह रस ( अश्या वारिः परिपतः ) भेड़के बालसि धनी छलनीले छाना गया है । ( नदीषु अशः न ) नदीमें जिता प्रकार घोड़ेकी पीते हैं, उसी प्रकार गान्धर्वे घोषा हुआ और ( निकः ) छानकर तैयार किया गया यह रस है ॥ २ ॥

[ ७३६ ] हे इन्द्र ! ( ते ते ) यह रस तुमों देनेके लिए ( यवं यथा ) जिस प्रकार जोषा पुरोडाज बनाते हैं, उसी प्रकार ( गोमि श्रीणन्तः ) गावके दूध सादिते मिलाकर ( स्वादुमकर्म ) मीठा किया गया है । हे ( इन्द्र इन्द्र ) तू ( त्वा असिन्तु स्वधमादे ) तुमों इस यज्ञमें आनन्द प्राप्तिके लिए बुलाते हूँ ॥ ३ ॥

॥ यदां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ७३७ ] ( श्राधानां पते ) हे धनपते ! ( श्रिणः ) श्रुतिने वीष्य इन्द्र ! ( ओजसा ) बलले मुख तू ( इदं सुतं अनु ) इस सोमरसके अनुकूल होकर ( अर्य सु पिव ) इसको पी ॥ १ ॥

७३८ यस्तं अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ, तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्य ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१।११ )

७३९ प्र ते अश्रोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ऋषणा शिरः । प्र बाहू धूर राधसा ॥ २ ॥ ९ ( पी ) ॥  
( ऋ. ३।१।१२ )

७४० आ त्वेता नि पीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायं स्तोमबाहसः ॥ १ ॥ ( ऋ ३।१।१ )

७४१ पुरुतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं स्तोमं सचा सुते ॥ २ ॥ ( ऋ ३।१।२ )

७४२ स घा नो योम आ मुत्स राये स पुरन्ध्या । ममद्वाजेमिरा स नः ॥ ३ ॥ १० ( टी ) ॥  
( ऋ. ३।१।३ )

७४३ योग्ययोगे तवस्तरे वाजेवाजे इवामहे । सखाय इन्द्रमूर्तये ॥ १ ॥ ( ऋ ३।३।७ )

७४४ अनु प्रत्नस्यौकसो ह्ये तुविप्रति नरम् । ये ते पूर्वे पिता ह्ये ॥ २ ॥ ( ऋ ३।३।९ )

[ ७३८ ] हे इन्द्र ! ( ते यः ) तेरे लिए यह सोम ( वृक्षां अनु असत् ) अन्नके समान है, ( सुते ) इस सोम यज्ञमें तू ( तन्वं नियच्छ ) अपने शरीरको ले जा, और हे ( सोम्य ) सोमके योग्य इन्द्र ! ( सः त्वा ममत्तु ) वह सोम तुझे मान्यित करे ॥ २ ॥

[ ७३९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सः ते कुक्ष्योः प्राश्रोतु ) वह सोम तेरे कुक्षियोंमें भरा रहे। ( ऋषणा शिरः ) स्नान द्वारा वह तेरे शिरसरूप-सव शरीरमें-पहुँचे, हे ( धूर ) धूर इन्द्र ! ( राधसा बाहू प्र ) घन देनेके लिए तेरे बाहू भी उठे प्राप्त हों ॥ २ ॥

[ ७४० ] हे ( स्तोम-बाहसः सखायः ) यज्ञ करनेवाले मित्रो ! ( तु आ पत ) शीघ्र आओ, ( निपीदत ) बैठो, और ( इन्द्रं अभि प्र गायत ) इन्द्रको लक्ष्य करके साम-गाय करो ॥ १ ॥

[ ७४१ ] ( सचा ) एक जगह बंधकर ( सुते ) सोम यज्ञमें ( पुरूतमं ) बहुतेसे शत्रुओंको हरानेवाले, ( पुरूणां वार्याणां ईशानां ) बहुत श्रेष्ठ धनके स्वामी ( इन्द्रं ) इन्द्रको स्तुति करो ॥ २ ॥

१ पुरु-तम — बहुतेसे शत्रुओंका नाश करनेवाला ।

२ तमः — तारा करनेवाला ।

३ वायं — ग्रहण करने योग्य पत्र ।

[ ७४२ ] ( सः घ ) वह निरक्षयसे ( नः योगे ) हमारे पुत्रद्वयके ( आमुत्स ) बर्षमें सहायक होवे, ( सः राये ) यह पत्र प्राप्त करनेके कार्यमें ( सः पुरन्ध्यां ) यह बहुत बुद्धि प्राप्त करनेके कार्यमें सहायक होवे, ( सः वाजेभिः नः आगमत् ) यह अन्नके साथ हमारे पास आवे ॥ ३ ॥

१ पुरं-धी — बहुत बुद्धि, स्त्री ।

२ योग्य — अपने सहायकसे मिले हुए पत्र, जोड़ना ।

[ ७४३ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( योग्ये-योगे ) प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें ( वाजे-वाजे ) शीघ्र प्रत्येक युद्धमें ( सत्यस्तं इन्द्रं ) भाव्यन्त बलवान् इन्द्रको ( उतये इवामहे ) संरक्षणके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ७४४ ] ( प्रत्नस्य ओकसः ) अपने प्राचीन घरसे ( तुवि-प्रति ) बहुतेके पास जानेवाले ( नरं ) नेता इन्द्रको ( अनु ह्ये ) मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ ( ये ते ) जिसको ( पिता पूर्वे ह्ये ) मेरे पिताने पहले बुलाया था ॥ २ ॥

१ प्रत्नस्य ओकसः — इन्द्रका प्राचीन घर यह विषय है । स्वयंपात है ।

७४५ आ धा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीमिरूतिभिः । वाजेभिरुष नो हवम् ॥ ३ ॥ ११ (ला) ॥  
( ऋ. १।३।८ )

७४६ इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतु पुनीष उक्थ्वम् ।  
विदे घृधस्य दक्षस्य महाऽहि पः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१३।१ )

७४७ स प्रथमे व्योमनि देवानां सद्ने घृधः ।  
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१३।२ )

७४८ तमु हुवे वाजसातय इन्द्र मराय शुभिणम् ।  
मवा नः सुन्ने अन्तमः सखा घृधे ॥ ३ ॥ १२ (वा) ॥ ( ऋ. ८।१३।३ )

॥ इति सुतोयः खण्ड ॥ ३ ॥

[ ४ ]

७४९ एना वो अग्निं नमसोर्जा नपातमा हुवे ।  
प्रियं चेतिष्ठमरायै स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१६।१ ; वा. य. ३।५ )

[ ७४५ ] ( यदि वाः हवत् श्रवत् ) यदि वह हमारो प्रायंवा सुन केगा तो ( सहस्रिणीभिः ऊतिभिः सह ) हजारों तक्ष्ने सत्त्वजके सायनेके साथ ओर ( वाजेभिः ) जत्रके साथ षट् ( उप आगमत् ) हमारे पास भाषेगा ( आ घ ) यह निश्चित है ॥ ३ ॥

[ ७४६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सुतेषु सोमेषु ) सोमरत्न निकालनेके बार ( घृधस्य दक्षस्य विदे ) महान् ब्रह्म प्राप्त करनेके लिए ( क्रतुं उक्थ्वं पुनीषे ) बच और स्तोत्रोंको सू पवित्र करता है, ( सः महाऽहि । ) ऐसा वह ब्रह्महान् है ॥ १ ॥

[ ७४७ ] ( सः ) यह इन्द्र ( प्रथमे व्योमनि देवानां सद्ने ) प्रथम आकाशमें देवोंके घरमें ( घृधः ) ब्रह्मपानको यज्ञनेवाला ( सुपारः ) उत्तम प्रकारके दुल्लोले पार करनेवाला ( सु-श्रवस्तमः ) उत्तम श्रवणको ( समप्सुजित् ) राक्षसोंको जीतनेवाला रहला है, उसे हम दुल्लाते हैं ॥ २ ॥

१ स्व-अपत-जित् — पानोंको रोक्नेवाले राक्षसोंको जीतनेवाला । पानोंको रोक्नेवाले मंत्र अथवा अर्पण होते हैं, उस प्रतिबन्धको ब्रह्म करनेवाला ।

२ देवानां सद्ने — स्वर्ग ।

[ ७४८ ] ( तं उ ) उस ( शुभिणं इन्द्रं ) ब्रह्महान् इन्द्रको ( वाज-सातये ) मराय ) भ्रम प्राप्त करनेवाले यज्ञके लिए ( हुवे ) दुल्लाता हूँ । हे इन्द्र ! ( सु-अन्ते अन्तमः अयं ) सुषने तमय हमारे पास रह, जमी प्रवार ( घृधे सखा ) जत्रके साथ मित्र होकर हमारे पास रह ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ७४९ ] ( वाः ) सुषने के लिए ( एना नमसा ) इन स्तोत्रोंके ( ऊर्जा न-पारं ) पानोंके ब्रह्म करनेवाले, ( प्रियं चेतिष्ठ ) प्रिय और वेगना देनेवाले ( अरतिं ) अग्रनितीस ( सु अथर्वरं ) उत्तम यज्ञ करनेवाले ( दिग्भ्यश्च दूतं ) सभी मानकके ब्रह्म ( अमृतं अग्निं ) अमर अग्निको ( वा हुवे ) मैं दुल्लाता हूँ ॥ १ ॥

- ७५० स योजते अरुपा विश्वभोजसा स दृद्रथस्स्वाहुतः ।  
सुन्रदा यत्तः सुशमी वसनां देवः राधो जनानाम् ॥ २ ॥ १३ ( तु ) ॥ ( ऋ ७।६।२ )
- ७५१ प्रत्य अद्रथर्षियस्युरेच्छन्ती दुहिता दिवः ।  
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति स्तरी ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।८।१ )
- ६५२ उद्दुस्त्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमचिवत्  
तत्रेद्रुपा व्युषि सूर्यस्य च स भक्तेन रामेमहि ॥ २ ॥ १४ ( वा ) ॥ ( ऋ ७।८।२ )
- ७५३ इमा उ वां दिविष्ट्य उसा हवन्ते अश्विना ।  
अयं वामह्रस्वसे द्यचीवस विश्वविशः हि गच्छथः ॥ १ ॥ ( ऋ ७।९।१ )
- ७५४ युवं चित्रं ददधुर्भोजनं नरा चोदेयाः सनृतावते ।  
अवीग्रथः समनसा नि यच्छतं पियतः सोम्यं मधु ॥ २ ॥ १५ ( चा ) ॥ ( ऋ. ७।७।२ )
- ॥ इति षतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ७५० ] ( सः ) वह अग्नि ( अरुपा विश्व-भोजसा ) तेजस्वी और सर्वभक्षक अश्वीकी ( योजते ) अपने रूपमें जोड़ता है । उसके बाद ( सु-प्रदा ) उत्तम ज्ञानी ( यद्वाः ) पूज्य ( सु-शमी ) उत्तम सयमी ( स्वाहुतः ) उत्तम आहुतिके लिये प्रदीप्त हुआ यह अग्नि देवोंकी लानेके लिए ( दृद्रथः ) जाता है । तब ( देवः ) उस अग्निकी ( ससुनां ) धनोत्सा ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ २ ॥

[ ७५१ ] ( आयती उच्छन्ती ) आकर घमकनेवाली ( दिवः दुहिता उपाः ) पृथिवीकी पुत्री उपा ( प्रति अर्द्धि ) दीपने लगी है, वह ( मही तमः उ ) गहान् अन्वहारकी ( चक्षुषा उप वृणुते उ ) प्रकाशसे हराती है ( स्तरी ज्योतिः कृणोति ) उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उपा प्रकाश करती है ॥ १ ॥

[ ७५२ ] ( सूर्यः ) सूर्य ( सचा ) एकदम ( उद्दुस्त्रियाः ) अपनी किरणोंकी फैलता है, ( उद्यत् ) उद्यत होनेके बाद ( सनृते ) आवागमने यह नक्षत्र प्रकाश फैलते हैं । हे ( उपाः ) उपे । ( तव सूर्यस्य च ) तेरे और सूर्यके ( व्युषि ) प्रकाश होनेके बाद ( भक्तेन सांममेहि इत् ) अग्रेसे हम पुषत हों ॥ २ ॥

[ ७५३ ] हे ( अश्विना ) अश्वीकी देवो । ( इमा दिविष्ट्यः उ ) इत स्वर्गकी इच्छा करनेवालीं प्रजापते ( उच्छी वां हवन्ते ) सबकी वसतनेवालीं तुम्हें गहागतके लिए पुकारती हैं, हे ( द्यची-वसः ) अपनी शक्तिके निवात करनेवाली देवो । ( अयं ) यह स्तुति करनेवाला ( अयसे ) शरत्क्षमके लिए ( वां अक्षे ) तुम्हें बुलाता है, ( हि ) शर्योके सुम ही ( विश्वं विश्वं गच्छथः ) प्रत्येक प्रजाजनके पास जाते हो ॥ १ ॥

[ ७५४ ] ( नरा ) हे नेताओ ! अश्विदेवो । ( युवं ) तुम ( चित्रं भोजनं ददधु ) विलक्षण भोजन देते हो, ( सनृतावते चोदेयां ) स्तुति करनेवालीकी तुम प्रेरित करते हो, तुम ( स-मनसा ) एक विचारसे ( रथं अर्घ्यात् नियच्छतं ) रथको हमर रोटी और पहां ( सोम्यं मधु पियतं ) मीठा सोमरस पियो ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

७५५ अस्य प्रज्ञामनु युतं शुक्रं दुदुहे अद्भ्यः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१४।१ )

७५६ अयं सूर्य इतोपद्यमयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१४।२ )

७५७ अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो सुवनोपरि । सोमा देवा न म्रथः ॥ ३ ॥ १६ ( ते ) ॥  
( ऋ ९।१४।३ )

७५८ एष प्रत्नेन जन्मना देवा देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्पति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१४।९ )

७५९ एष प्रत्नेन मन्मना देवा देवेभ्यस्परि । कषिर्विप्रेण चावृषे ॥ २ ॥ ( ऋ ९।१४।१२ )

७६० दुहानः प्रनमित्पयाः पवित्रे परि पिच्यते । क्रन्दं देवां अजीजनः ॥ ३ ॥ १७ ( हा ) ॥  
( ऋ ९।१४।१४ )

७६१ उप शिक्षापतस्थुषा मियसमा धेदि शत्रवे । पवमान विदा रयिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१४।६ )

७६२ उषां पु जातमपतुर गोभिर्मङ्गं परिकृतम् । इन्दुं देवा अयासिपुः ॥ २ ॥ ( ऋ ९।१४।१२ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ७५५ ] ( अस्य ) इस सोमरसके ( प्रज्ञां युतं अनु ) पुनाने तेजको याव करके ( शुक्रं सहस्रसां ) तेजस्वी और हजारों इच्छा पूर्ण करनेवाले ( कषिर् पयः ) मानवर्धक रसको ( अद्भ्य दुदुहे ) मानी गण तैय्यारकरते हैं ॥ १ ॥

[ ७५६ ] ( अयं ) यह सोम ( सूर्यः इव ) सूर्यके समान ( उप-द्यम् ) सबको देवनेवाला है, ( अयं सरांसि धावति ) यह ( सोम ) जलके पात्रोंमें छाना जाता है, उसी प्रकार ( आ दिवं ) सुलोकतक यह ( सप्त प्रवते ) सात धाराओंमें बहता है ॥ २ ॥

१ संप्राप्त— [ सोम ] पानीके बतन ।

२ धावति— बँधता है, छाना जाता है ।

[ ७५७ ] ( अयं पुनानः सोमः ) यह पवित्र होनेवाला सोमरस ( विभ्रानि सुवनो उपरि ) सब भूवर्षोंपर ( सूर्यः देवः न ) सूर्यदेवके समान ( तिष्ठति ) प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

[ ७५८ ] ( हरिः पयः देवः ) हरे रगल यह सोम ( प्रत्नेन जन्मना ) पहलेसे ही ( देवेभ्यः सुतः ) देवोंके लिए निबोधकर ( पवित्रे अर्पति ) छलनीसे छाना जाता है ॥ १ ॥

[ ७५९ ] ( प्रत्नेन मन्मना ) प्राचीन स्तोत्रोंकी सहायतासे ( पयः देवः ) यह प्रजास्रमाम् ( कषिः ) मानी सोम ( देवेभ्यः ) देवोंके लिए ( विप्रेण परियावृषे ) बाह्यर्षी द्वारा बढाया जाता है ॥ २ ॥

[ ७६० ] ( प्रनं इत् पयः ) पहलेसे यह रस बर्तनमें ( दुहानः ) निचोडा जाता है, और बारमें ( पवित्रे परि-पिच्यते ) छलनीसे छाना जाता है । यह ( क्रन्दन् ) शब्द करता हुआ ( देवान् अजीजनः ) देवोंको मानों मगमें बूझाता है ॥ ३ ॥

[ ७६१ ] हे ( पवमान ) सोम ! ( उप-तस्थुषा ) पावमें बैठनेवालोंको ( उप शिक्ष ) समझाकर बता और ( शत्रवे ) शत्रुको ( मियसं आधेहि ) भय हो ऐसा कर तथा ( रयिं विदाः ) धन हने दे ॥ १ ॥

[ ७६२ ] सोमरस ( जातं ) निकालनेके बाद ( अप-तुरं ) पानीमें मिलाया जाता है । ( मंगं ) शत्रुके नाश करनेवाले ( गोभिः परिप्यतं ) गायके दूधसे मिले हुए ( इन्दुं ) सोमरसके पास ( देवाः उप अयासिपुः ) देव जाते हैं ॥ २ ॥

७६३ उपासै गायता नराः पवमानायेन्दवे । अभि देवा इपसते ॥ ३ ॥ १८ (त्रि) ॥

( ऋ. १।१।११ )

॥ इति यजुष्यमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

७६४ प्र सोमासो विपथितोऽवा नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३।१ )

७६५ अभि द्रोणानि चभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।३।१ )

७६६ सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्पन्तु विष्यवे ॥ ३ ॥ १९ (वि) ॥

( ऋ. १।३।३ )

७६७ प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।

अश्रो पयसा मदिरो न जागुविरच्छा कौशं मधुश्चुवम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०।१२ )

७६८ आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः स्रुर्न मर्ज्यः ।

तमीह्निन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीषु गमस्त्यो ॥ २ ॥ २० (क) ॥ ( ऋ. १।१०।१३ )

७६९ प्र सोमासो मद्व्युतः श्रवसे नो मघानाम् । सुता विदधे अक्रमुः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३।१ )

[ ७६३ ] हे (नराः) पानको ! (देवान् अभि इपसते) देवोके लिए यत् करनेकी इच्छा करनेवाले यजमानको अपेक्षा (पवमानाय अस्य इन्दवे) छाने जानेवाले इस सोमके लिए (उप-गायत) सामका पान करो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पाचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] यष्टः खण्डः ।

[ ७६४ ] (विपथितः) ऊर्मयः सोमासः) सोम बढ़ानेवाले ये सोमरस (वनानि महिषा इव) मिल प्रकार पवनमें भँसे जाते हैं उसी प्रकार (आपः प्र नयन्ते) पानीमें मिलाये जाते हैं ॥ १ ॥

[ ७६५ ] (चभ्रवः शुक्राः) भूरे रथके ये सोमरस (ऋतस्य धारया) पानीको धारके साथ (द्रोणान्) धाप्रमें (गोमन्तं वाजं) गौ वृषरथी अस्के साथ (अभि प्रक्षरन्) मिलाये जाते हैं ॥ २ ॥

[ ७६६ ] (सुताः सोमाः) सोमरस विचुड़नेके बाद इन्द्र, वायु, मरुद्, विष्णु इन देवोको (अर्पन्तु) प्राप्त हों ॥ ३ ॥

[ ७६७ ] हे (सोम) सोम ! तू (देव-वीतये) देवोको देनेके लिए (अर्णसा) पानीमें (सिन्धुः न) किस प्रकार नदियाँ पानीसे भरी जाती हैं, उसी प्रकार (प्र पिप्ये) मिलाया जाता है। (मदिरो न जागुथिः) मानव देनेवाले पदायुक्त समान तू उत्साह बढ़ानेवाला है, (अश्रोः) इस सोमरसको (पयसा) दूधमें मिलाओ, बावमें (मधुश्चुवतं कौशं) इस भीठे रसको रखनेके बर्तनमें मछी तरह भरो ॥ १ ॥

[ ७६८ ] (हर्यतः स्रुः न) प्रिय पुत्रके समान (मर्ज्यः अर्जुनः) मुझ हीनेवाला यह स्वच्छ सोमरस (अत्के आ अव्यत) बर्तनमें छाना जाता है। (तं ह्यँ) उत इस सोमको (नदीषु) जलोंमें (गमस्त्योः) हाथोंसे (अपसः) रथं यथा) जिस प्रकार बैगवान् रथको संघाममें लेजाते हैं उसी प्रकार (आ हिन्वति) मिलाते हैं ॥ २ ॥

[ ७६९ ] (मद-व्युतः सोमासः) मानव बढ़ानेवाले ये सोमरस (सुताः) नियोत्रे जानेके बाद (विदधे) पवनमें (मघानां नः) हविष्यमान देनेवाले हमारे (अवसे) यथाके लिए (प्र अक्रमुः) सहायक होते हैं ॥ १ ॥

७७० आदीँ हृशसो यथा गणं विश्वस्याधीवशन्मतिम् । अन्धो न गोभिरज्यते ॥ २ ॥

( ऋ. १।३।१३ )

७७१ आदीँ जितस्य योपणो हरिँ हिन्वन्त्सद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ३ ॥ २१ ( ली ) ॥

( ऋ. १।३।१२ )

७७२ अया पवस्व देवयु रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः । मधोधारा असुक्षत ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०६।१४ )

७७३ पवते हयतो हरिरति ह्वर्गसि रंखा । अभ्यपे स्तोत्रम्यो वीरवद्यथः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१०६।१२ )

७७४ म सुन्वानापान्धसो मतो न यष्ट तद्वचः ।

अप इवानमराधसं हता मसं न भृगवः ॥ ३ ॥ २२ ( लि ) ॥ ( ऋ. १।१०१।१३ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्थः प्रथमप्रपाठश्च समाप्तः ॥ १ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

[ ७७० ] ( आत् ई ) और यह सोम ( हंसः यथा गणं ) हंस जिस प्रकार अपने समूहमें जाता है, उसी प्रकार ( विश्वस्य मतिं ) सबकी बुद्धिको ( अधीवशन् ) बलमें करता है, ( अन्धः न ) पीछा जिस प्रकार पानीमें घुसता है, उसी प्रकार ( गोभिः अज्यते ) यह बाघके दूधमें मिलाया जाता है ॥ २

[ ७७१ ] ( आत् ई हरिँ इन्द्रं ) इस हरे रंगके सोमकी ( जितस्य योपणः ) जित श्राविको अगुस्तिपां ( इन्द्राय पीतये ) इन्द्रके पीलेके लिए ( अद्रिभिः हिन्वन्ति ) पत्थरोंसे कुटती है ॥ ३ ॥

[ ७७२ ] हे सोम ! ( देव-युः ) देवोंसे मिलनेकी इच्छा करनेवाला तू ( अया पवस्व ) धारासे छनता जा, ( रेभन् ) सन्ध करता हुआ ( पवित्रं विश्वतः पर्येषि ) छलनीसे चारों ओर बाहर गिरता है, और बाबमें तेरे ( मधोः धाराः असुक्षत ) मोठे रसकी धारा बाहर गिरने लगती है ॥ १ ॥

[ ७७३ ] ( हयतो हरिः ) इच्छा करनेके योग्य यह हरे रंगका सोम ( स्तोत्रम्यो ) स्तुति करनेवालोंकी ( वीर-वद्यथः पशः ) वीर पुत्रों सहित यज्ञकी ( अभ्यपेन् ) देख ( रंखा ) रनवीय ( हरगसि अति पवते ) छलनीसे छाना जाता है ॥ २ ॥

[ ७७४ ] ( सुन्वानापान्धसः ) निबोड़े जानेवाले इस अलक्षणी सोमके बदलेमें ( तत् वचः ) तेरे हीन लक्षणकी ( मतोः न प्र यष्ट ) मनुष्य न मुने, हे याज्ञकी । ( अ-राधसं श्वानं ) भवोग्य कुत्तेकी ( भृगवः मसं न ) जिस प्रकार मृगने ब्रवीत्य यज्ञकी दूर किया था, उसी प्रकार ( अप हत ) दूर करो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

## द्वितीय अध्याय

### इन्द्रदेवता

- इस द्वितीय अध्यायमें आये हुए इन्द्रके गुण इस प्रकार हैं—
- १ विश्वा-साहः [ ७१३ ]- सब प्राणियोंको हरानेवाला।
  - २ शत-श्रुतुः [ ७१३ ]- सैकड़ों उतन कम करनेवाला।
  - ३ सर्षणीनां मंहिष्ठः [ ७१३ ]- मनुष्योंमें अत्यधिक महान्।
  - ४ इन्द्रः ( इन्द्रः ) [ ७१३ ]- शयनोंको फाड़नेवाला।
  - ५ पुण्ड-हृता [ ७१४ ]- जिसे बहुत लोग अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।
  - ६ पुरु-प्लुताः [ ७१४ ]- बहुतके द्वारा प्रशंसित।
  - ७ गाथान्यः [ ७१४ ]- प्रशंसाकी, स्तुत्य।
  - ८ सन-भुताः [ ७१४ ]- सनातन कालसे जितकी प्रशंसा होती आई है।
  - ९ द्रुतुः [ ७१५ ]- सबोंको घलानेवाला, सबोंको अपने अपने काममें प्रयुक्त करनेवाला।
  - १० महोनां घाजानां दसता [ ७१५ ]- बहुत धन और अन्न देनेवाला।
  - ११ हयंश्वः ( हृति-अश्वः ) [ ७१६ ]- हास रंगके घोड़े अपने पास रखनेवाला।
  - १२ सुदानुः [ ७१७ ]- उत्तम दान देनेवाला।
  - १३ सत्य-राधाः [ ७१७ ]- श्रेष्ठ धन जिसके पास है। हमेशा रहनेवाले धन जिसके पास है। हित करनेवाले धनोंको भी अपने पास रखता है।
  - १४ सु-क्षः [ ७१७ ]- दुलोकमें रहनेवाला, दुलोकमें तेजस्वी।
  - १५ घाज-युः [ ७१८ ]- अन्न और बल देनेवाला, अन्न और बल जिसके पास भरपूर है।
  - १६ शय्युः [ ७१८ ]- जो गाथोंका पालन करता है, गाथों जिसके पास हैं।
  - १७ दसुः [ ७१८ ]- निषास करनेवाला, धनवान्, आठ वस्तु जिसके पास हैं। आठ वस्तु- आपः, भूवः, तोमः, परः, अन्निलः, प्रयूपः और प्रसासः। वस्तुके अर्थ- मिष्ट, मोठा, धन, रत्न, सुवर्ण, उत्तम, जल, दूत, किरण, फलवान्।
  - १८ शिरप्य-युः [ ७१८ ]- तोना वातमें रखनेवाला, सोनेका दान करनेवाला।

५ [ साम. हिरवी भा. २ ]

- १९ घञी [ ७२० ]- पञ्चका उपयोग करनेवाला, पञ्चपाटी।
- २० मद्-या [ ७२२ ]- आनन्दित, जिसके पास आनन्द है।
- २१ यस्मिन् विश्वाः श्रियः अधि [ ७३२ ]- जिसके पास सब प्रकारकी सम्पत्ति और ऐश्वर्य है।
- २२ शाधि-युः [ ७२६ ]- जो अपनी शक्तिते सुप्रसिद्ध है, जिसकी इन्द्रियें शक्तिवाली हैं।
- २३ शाधि-पूजता [ ७२६ ]- शक्तिके कारण पूजा जानेवाला।
- २४ वा-खण्डलः [ ७२६ ]- शत्रुके टुकड़े करनेवाला, शत्रुओंको मारनेमें प्रवीण।
- २५ अंश-पृषः न पाद् [ ७२७ ]- अपने प्रकाशको कम न करनेवाला। किरणोंको पारों और फैलानेवाला। जिसके सौंकीक बल कम नहीं होता।
- २६ महाहस्ती [ ७२८ ]- भयलु और बड़े हाथोंवाला।
- २७ महाहस्ती नः क्षुमन्तं चिर्मं प्रार्भं दक्षिणेन संगृभाय [ ७२८ ]- भयलु हाथोंवाला यह इन्द्र तेजस्वी, अनेक प्रकारके और घट्टन करने योग्य धन हमें देनेके लिए बायें हाथमें लेता है।
- २८ तुषि-कूर्मिः [ ७२९ ]- पराक्रमके अनेक कार्य करनेवाला।
- २९ तुषि-देष्वाः [ ७२९ ]- देनेके लिए यदुत्ता धन अपने पास रखनेवाला।
- ३० तुषि-मघः [ ७२९ ]- बहुत धनवान्।
- ३१ तुषि-मायः [ ७२९ ]- मजबूत शरीरवाला।
- ३२ अयोभिः त्या विप्रहि [ ७२९ ]- संरक्षणके अनेक तापन यह इन्द्र अपने पास रखता है, यह हमें भाङ्गुन है।
- ३३ दूरः [ ७३० ]- भूखीर।
- ३४ सुप्रमा [ ७३१ ]- बलवान्, बलके समान सामर्थ्यवाला।
- ३५ दिस्वन्तं त्या देयाः मतांसः न धारयन्ते [ ७३० ]- धन देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे देव और मनुष्य रोक नहीं सकते।
- ३६ अयिध्वयः त्या मा दमन् [ ७३२ ]- अपने संरक्षारी इच्छा करनेवाले मूर्ख लोग तुझे न दबायें।



३७ ब्रह्मद्विष मा किं घनः [ ७३२ ]- मानते द्वेष करनेवाले की तू सहायता मत कर ।

३८ अनाभयी ( अन्-आभयी ) [ ७३४ ]- निर्भय, न डरनेवाला ।

३९ राधानां पतिः [ ७३७ ]- अनेक घनोंका स्वामी ।

४० गिर्र्वाणः [ ७३७ ]- स्तुत्य ।

४१ हे दूर ! राघला याहू [ ७३९ ]- हे दूर इन्द्र ! तेरी भुजायें धन रखनेवाली हैं ।

४२ तवस्तर' [ ७४३ ]- अत्यन्त बलवान् ।

४३ तवस्तर ऊरुतये हवामहे [ ७४३ ]- बलवान् वीर इन्द्रको अपने सरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

४४ सुवि प्रतिः [ ७४४ ]- बहुतांके पार सहायता करनेके लिए जानेवाला ।

४५ नर' [ ७४४ ]- बला, आगे धलनेवाला ।

४६ प्रत्यस्य ओकसः सुवि-प्रति नर इवे [ ७४४ ] अपने पुराने घरसे बहुतांकी सहायताके लिए जानेवाले नेता इन्द्रको मैं अपने सरक्षणके लिए बुलाता हूँ ।

४७ य ते पिता पूर्य इवे [ ७४४ ]- जित इन्द्रकी तेरे पूर्वजोंने सहायताके लिए बुलाया था ।

४८ स महान् हि [ ७४६ ]- वह इन्द्र महान् है ।

४९ वृष' [ ७४६ ]- बढ़ानेवाला, शक्तिका विकास करनेवाला ।

५० सु-पार [ ७४६ ]- सफाईके पार पट्टवानेवाला ।

५१ सुध्रयस्तम [ ७४९ ]- कीर्तिमान्, पदारबी ।

५२ स-अपनुजित् [ ७४६ ]- पाषोमें रहनेवाले समुझोंको जोलनेवाला ।

५३ शुध्मी [ ७४८ ]- बलवान्, सामर्थ्यवान् ।

५४ सुमे अन्तम [ ७४८ ]- सुबके समय पास रहनेवाला ।

५५ वृधे सखा [ ७४८ ]- उन्नति करानेमें मित्रके समान ।

५६ शुभिमण इन्द्र वाजसातये मरय इवे [ ७४८ ]- बलवान् इन्द्रको भक्षण दान होनेवाले धर्ममें बुलाता हूँ ।

५७ सहस्त्रिणांभि ऊतिभि सह उपागमत् [ ७४५ ] हजारों सरक्षणके साधनोंके साथ यह इन्द्र आता है ।

५८ सः योगे राये पुरुष्यथा वाजोभि न आगमत् [ ७४२ ]- वह इन्द्र लाभ होनेके समय, धन मिलनेके समय, और बुद्धिके काम करनेके साथ भक्षणके साथ हमारी तरफ आता है ।

५९ हे सखाय ! योगे योगे, चाजे चाजे तवस्तर इन्द्र उतये हवामहे [ ७४३ ]- हे मित्रो ! प्रत्येक लाभके काम करनेके समय, अनेक युद्धके समय अत्यन्त बलवाली इन्द्रको सरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

६० सखाय ! आ पते, निर्पादित, इन्द्र अभि प्र गायत [ ७४० ]- हे मित्रो ! आओ, बँधो, और इन्द्रके गुणोंका गान करो ।

६१ सचा सुते पुरुक्तम पुरुषां ईशानं चार्पाणां इन्द्र [ ७४१ ]- बसमें बहुत पनोने स्वामी ऐसे इन्द्रके गुणोंका वर्णन करो ।

इस प्रकार इन्द्रके अष्ट गुणोंका वर्णन इन मंत्रोंमें आया है । शीर्ष, शीर्ष, युद्ध कीशल्य, शीर्षोंकी सहायता करनेकी तैय्यारी, जनताके हित करनेकी सत्परता इत्यादि सबगुण इन वर्णनोंमें आये हैं ।

पर केवल " इन्द्र दूर है " इतना पढ़नेका कुछ भी उपयोग नहीं, सब तक कि वह दूरता वर्णनमें न लाई जाय । बेदोंने जो धर्म बताये हैं, उनका उपयोग सभी हो सकता है, जब उनके अनुसार आचरण किया जाय । अतः पाठक युद्ध उन पद्योंका अनुकरण करें और उन्नत हों ।

### अग्नि देवता

१ ऊर्जो-न-पात् [ ७४९ ]- बल काम न करनेवाला, उस्ताह काम न करनेवाला ।

शरीरमें यमोंके रहनेतक ही इस शरीरमें बल रहता है । शरीरके उर्जें होते ही इसकी हलचल बढ़ हो जाती है । इससे यह शक्त हो जायगा कि अग्नि कित्त प्रकार बलको आधार देनेवाला है ।

२ अरति [ ७४९ ]- प्रगतिशाल ।

३ प्रिय, चोतिष्ठ [ ७४९ ]- प्रिय और चोतय उत्पन्न करनेवाला ।

४ अमृत [ ७४९ ]- अमर, नष्ट न होनेवाला ।

५ सु-अधर [ ७४९ ]- उत्तम हितारहित कार्य करनेवाला ।

६ विश्वस्य वृत् [ ७४९ ]- विश्वका बल, हवनमें शक्ते शय पशवोंके सब जगह पट्टवानेवाला ।

७ सु-महा [ ७५० ]- उत्तम मानी ।

८ यत्न [ ७५० ]- पूज्य ।

९ सु-श्रीम् [ ७५० ]- उत्तम स्वामी ।

१० सु-आहुत् [ ७५० ]- उत्तम आहुति जिसमें पयनी है ।

११ पुद्रवस् [ ७५० ]- देवोंको लानेके लिए शीघ्र जाता है ।

१२ देव्यं वसूतां राध. [ ७५० ]- इत अग्निदेवको मनोसे प्राप्त होनेवाले ऐश्वर्य मिलते हैं ।

१३ स अरुणया विन्ध्यमोजसा योजते [ ७५० ]- वह तैजस्वी, जाल रागके घोषोंको अपने रथमें जोड़ता है ।

इतने गुण अग्नि देवताके इस अम्यायमें आए हैं ।

### उषा देवता

उषा देवताके गुण भी षडे महत्वके और मननीय हैं—

१ आर्यती उच्छन्ती [ ७५१ ]- उषा आती है और प्रकाश फैलने लगता है । अणकार दूर करनेके लिए प्रकाश फैलाने अत्यन्त आवश्यक है ।

२ दिवः दुहिता उषा प्रत्यर्शि [ ७५१ ]- सुलोककी पुत्री उषा दोसने लग गई है । उषाका प्रकाश फैलने लग गया है ।

३ महीतमः चक्षुषा उप वृणोते [ ७५१ ]- वह उषा महान् अणकारको अपनी आँसों-किरणोंसे नष्ट करती है । अणकारको प्रकाशसे दूर करती है ।

४ सुनरी ज्योतिः कृणोति [ ७५१ ]- उत्तम नेत्रत्व करनेवाली प्रकाश करती है । अणकार दूर करके प्रकाश फैलती है ।

५ सूर्ये सखा उक्षियाः उत्पृजते [ ७५२ ]- उषाके साथ सूर्य आकर अपनी किरणें फैलता है ।

६ उषात् मक्षर्यं अर्चियन् [ ७५२ ]- उषा होते ही मक्षर चपकने लगते हैं ।

७ हे उषः ! तव सूर्यस्य च व्युपि मकेन संगम्ये-  
महि [ ७५२ ]- तैरे और सूर्यके प्रकाशके बाद हम अणका सेवन करें ।

उषा आती है और प्रकाश फैलकर अणकार दूर करना शुरू करता है । उषाके बाद सूर्य उदय होकर प्रकाशने लगता है । तात्पर्य यह कि उषाके उदय होते ही अणकारका नाश प्रारम्भ हो जाता है । उसी प्रकार मनुष्यको अपने समाज व राष्ट्रमें अपने कर्मके द्वारा प्रसामाधिकारका नाश करना चाहिए और अपने समाज व राष्ट्रको प्रकाशमें लानेका प्रयत्न करना चाहिए । उषा प्रतिदिन लोगोंको यह ज्ञान देती है । उस ज्ञानकी मनुष्योंको अपने जीवनमें उतारना चाहिए ।

### अग्निनी देवता

१ उक्षिया [ ७५२ ]- तेजस्वी, चमकनेवाले, किरण, प्रकाशी किरण, बँस, ईश्वर, सूर्य, दिवस, अग्निनीकुमार ।

२ उक्षा [ ७५३ ]- प्रभात, प्रभात, चमकनेवाला आकाश, गाय, पुष्पी, अग्निनीकुमार ।

३ शचीवस् [ ७५३ ]- अपनी शक्तिसे रहनेवाले ।

४ नरा [ ७५४ ]- नेत्रत्व करनेवाले ।

५ युवे चिद्र भोजनं ददयुः [ ७५४ ]- तुम वितरण मूणकारी भोजन देते हो ।

६ सूनुतायते च्छेदेयां [ ७५४ ]- सत्यमार्थसे क्षतने-  
वालेको उत्तम प्रेरणा तुम ही देते हो ।

७ समनसा रथ अत्रोक् नियच्छते [ ७५४ ]- एक विचारवाले होकर अपने रथको इधर लाओ ।

८ निरां विश्व मच्छथः [ ७५४ ]- तुम प्रत्येक प्रजा-  
जनकी ओर जाते हो । उसके रोगकी चिकित्सा करनेके लिए जाते हो ।

९ अचसे घां भेहे [ ७५३ ]- अपने तरलणके लिए तुमको मैं झुलता हूँ ।

१० इमा दिविष्टय- उम्भो वां हजन्ते [ ७५३ ]- ये देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली प्रजायें अग्निनीकी अपनी सहायताके लिए झुलती हैं ।

अग्निनी बी देव हैं । इनमें एक वाक्प्रक्रियाओं कुशल है और दूसरा शोधयि- चिकित्सामें । मैं दोनों ही रोगोंके पास जाते हूँ और उसके रोग दूर करनेका प्रयत्न करते हूँ । ये देव हैं पर उनके रोगी मानव होते हैं, अर्थात् ये देव होते हुए भी मनुष्योंकी चिकित्सा करते हैं ।

रोगीको ये ऐसा उत्तम भोजन तैयार करने देते हैं कि उसके लानेमें ही रोगी भला बना हो जाता है । शोधयि सेवनकी अपेक्षा शोधयि भिन्न भोजनकी लानेमें रोगीको अधिक लाभ होता है । क्योंकि शोधयि लेते हुए रोगीने मनमें " मैं रोगी हूँ " ऐसे भावना रहती है, पर भोजन लानेमें बीसी भावना नहीं रहती । रोगीको ऐसा मानस होता है कि " मैं बीमार नहीं हूँ, अपना भोजन मैं खाता हूँ " । अतः गलतिका स्वास्थ्यकी दृष्टिसे शोधयिकी अपेक्षा भोजन रूपसे शरीरमें बर्दाश्त पशुधाना और उसकी सहायतासे रोगीको रोग मुक्त करना अधिक लाभदायक है ।

शेर्षोने अपने रोगियों पर ऐसे प्रयोग करने चाहिए । मानके द्वारा रोगियोंके शरीरमें शोधय पशुधाना चिकित्साका एक उत्तम उपाय है ।

अग्निनीकुमारोंकी " रक्षा " बड़ा गया है, क्योंकि वे सबके रोगियोंकी तरफ जाते हैं । रोगियोंको निरीक्षण करनेके लिए सबके साथ उत्तम होना है ।

## सोम

सोम हिमालयके भोजवान् शिखरपर मिलनेवाली एक बेलका नाम है। इसीलिए वेदोंमें उसे “ भोजवान् सोम ” कहा है।

## सोमको छानते समय सामगान

प्रथम सोमको छानते समय सामगान किया जाता था, उस विषयमें वर्णन इस प्रकार है—

१ पद्यमानाय इन्द्रे उप गायत [ ७६३ ]- छाने जानेवाले सोमके लिए सामगान थोको।

इस समय दूरे ध्वनन बोलना ठीक नहीं, ऐसा स्पष्ट कहा है—

२ सुन्नानाय अन्धसः तन् घञ् मर्तेः न प्रवष्ट [ ७७४ ]- निचोडे जानेवाले इस अन्नरूपी सोमके विषयमें किसीको भी होना शब्द नहीं बोलने चाहिए। तथा सोमरस निकालते हुए उस स्थानपर कुत्ते न आ पायें ऐसा भी प्रबन्ध करना चाहिए—

३ अराधसं द्रानं अपहत [ ७७४ ]- अनुहार कुता पवि यहा आजाए सो उसे मारकर भया बो।

## सोमको चूटकर रस निकालना

सोमको बेल काई जानी थी, उसे पत्थरसे चूटते घं, और उसका रस निकालते थे। इस विषयमें मंत्र इस प्रकार है—

१ हरि इन्दुं योषण इन्द्राय पितये अद्रिभिः हिन्वन्ति [ ७७१ ]- हरे रथके चमकनेवाले सोमको हाथ पत्थरसे चूटते हैं और चूटनेके बाद उगलियां उसे दबाकर उसका रस निकालती हैं। इन्द्रके पीनेको देनेके लिए यह किया जाना है। लघुशोभे चूटे पर सोमको रसचूर उगे पत्थरसे चूटते हैं फिर हाथसे उसका रस निकाला जाना है। घुंसे इस रसमें निचोडनेके बाद पानी मिलाकर इने छाना जाता है। छाननेका वर्णन इस प्रकार है—

२ नृभिः भीत, यज्ञैः सुत, अश्यापारे परिपूत निषतः [ ७३५ ]- याद्वरोंने द्वारा प्रथम घोषा गया, पत्थरसे चूटकर रस निकाला गया, भेड़के बालोकी धनी छलनीसे छाना गया यह सोचरत है।

एक निकालनेके बाद उगे पानीमें मिलाते हैं और बादमें छलनीसे उसे छानते हैं।

३ अयं नदीनि धायनि [ ७५५ ]- यह सोम सरोवरके पास बौरना हुआ जाता है। यहां “ हरः ” नाम पानीका

वर्तन है। सोमरस पानीके घर्तनमें जाता है और यहां माधर पानीसे मिल जाता है।

३ हरिः एष देवेभ्यः सुतः पवित्रे अर्पति [ ७५८ ]- यह हरे रथका चमकनेवाला देवोंको देनेके लिए निषोडा गया, यह सोमरस छलनीसे होकर नीचेके घर्तनमें गिरता है।

४ एषः देवः देवेभ्यः विभ्रेण परि ज्ञापुषे [ ७५९ ]- यह चमकनेवाला रथ्य सोमरस ब्राह्मणोंके द्वारा बड़ाया जाता है, अर्थात् ब्राह्मण उत्तम पानी मिलाकर उसे बड़ाते हैं, और उसे पीने योग्य बनाते हैं।

५ हुदानः पवित्रे परिचिच्यते [ ७६० ]- रस निरालनेके बाद छलनीसे यह छाना जाता है। छानते समय यह नीचेके कलामें गिरता है और उससे कारण घब्र होता है, उस अपने शब्दसे वह देवोंकी बुलाता है। यह आलम्बार्थिक भावना है।

६ क्रन्दन् देवान् अजीजन [ ७६० ]- छलनीसे नीचे गिरते हुए जो सोमका शब्द होता है, उससे मानो यह देवोंकी बुलाता है।

७ विपिच्यतः उर्मैयः सोमरसः आपः प्रतयन्ते [ ७६४ ]- क्षान भडानेवने ये सोमरस लहरके रूपमें पानीके पास तेजाये जाते हैं अर्थात् सोमरस पानीमें मिलाये जाते हैं।

८ हे सोम! देवपीतये अर्णसा प्रपिष्ये [ ७६९ ]- हे सोम! तू देवोंने पीनेके लिए पानीमें मिलाया जाता है।

९ नदीषु गमस्तयोः आ हिन्वन्ति [ ७६८ ]- नदीके पानीमें यह सोमरस हाथसे मिलाया जाता है। यहां “ नदीषु ” “ नदिष्विनिं मिलाया जाता है ” ऐसा कहा है। “ नदीके पानीमें ” चूटनेके स्थानपर “ नदिष्विनिं ” ही यह विषा है। अतःके लिए पूर्णका प्रयोग वेदोंमें होता है। “ अतः ” के लिए “ नदी ” का प्रयोग आलम्बार्थिक है।

इस प्रकार, इस अष्टाध्यायमें सोमरस निकालने, पानीमें मिलाने और छाननेका वर्णन है।

१० गोमिः अर्णान्त स्यादु अकर्म [ ७३६ ]- मायके रूपमें सोमरस मिलाकर उसे हमने पीडा कर दिया है।

११ जान अन्नुद भर्तुः गोमिः परिपूत इन्दुं देया उप अर्पासिषु [ ७६३ ]- सोमरस निकालनेके बाद उत्तम पानी मिलाते हैं उस धनुषी मारनेवाले सोमको मायके रूपमें मिलाते हैं तब उत्तम पान देव जाने हैं। रस निकालकर, पानी मिलाया, छानना और उत्तम पानका रूप मिलाया बादमें पीना सबका एतन्में एतन्में अहन्ति देवर कर पीना। यह बन्ध है सोमके तेजाय करनेका।

१२ घञ्जयः शुक्राः श्रुतस्य धारया प्रोणान्  
सोमस्ते पाञ्च भूमि भक्षरन् [ ७६५ ]- स्वच्छ सोमरस  
पावोर्वा धारते साय कससेमं तथा गोदुग्धरूपो अन्नके साय  
मिसाये जाते है ।

१३ अंदोः पयसा मधुच्युतं कौदां मच्छ [ ७६७ ]  
-सोमरस दूधमें मिसानेके बाद उते मोठे रसवाले बर्तनमें  
डालते है ।

१४ गोमिः अज्यते [ ७७० ]- घायके दूधके साथ  
सोमरस मिसाया जाता है । यहाँ " गो " पर घायके दूधका  
बाधक है ।

१५ मज्यैः अर्जुनः अत्के आ अज्यत् [ ७६७ ]-  
शुद्ध होनेवाला सोम बर्तनमें छलनीसे छाना जाता है ।

१६ रेभन् पविश्रं विश्रतः पर्यधि [ ७७२ ]- घाय  
करता हुआ छ छलनीसे नीचेके बर्तनमें जाता है ।

१७ अया पयस [ ७७२ ]- धार बांधकर छनता जा ।

१८ मघोः धारा अरुक्षत [ ७७२ ]- मोठे रसकी  
धारा नीचे गिरती है ।

१९ ह्यैत हृदि, स्तोत्रभ्यः धीरसत्पयदाः अम्भ्यर्जुन  
रंखा द्रारंति अति पयने [ ७७३ ]- हरे रगका सोमरस  
स्तोत्रार्थीको धीरपुत्रिके साथ मिलनेवाला यज्ञ देकर छलनीसे  
छनता है ।

२० अयं सूर्यः इव उपदृक् [ ७५६ ]- यह सूर्यके  
धामान तेजस्वी और सबोंको देखनेवाला है ।

२१ अयं पुनानः सोमः विश्वा सुवना उपरि, देवो  
न सूर्यः तिष्ठति [ ७५७ ]- यह स्वच्छ होनेवाला सोमरस  
सब भवनोंके ऊपर सूर्यके समान प्रकाशित होता है ।

इस सोमरसको हवन करके देवोंको पीनेके लिए दिया  
जाता है ।

२२ हे इन्द्र ! त्वा अस्मिन् सधमादे [ ७३६ ]- हे  
इन्द्र ! तुम इस यज्ञमें बुलाया जाता है ।

२३ इदं सुत अनुपिय [ ७३७ ]- इस सोमरसको पी ।

२४ ते यः स्युर्धा अनु असत [ ७३८ ]- तेरे लिए  
सोमरस अन्नके समान है ।

२५ सुते तन्वं नियच्छ [ ७३८ ] सोमयज्ञमें अपनेको  
सेवा ।

२६ सोम्य ! स्व स्या ममसु [ ७३८ ]- सोम पीनेवाले  
इन्द्र ! यह सोम मुझे जानव देले ।

२७ स्व ते शुक्रयोः प्रादनात् [ ७३९ ]- यह तेरे कौशलों  
पर जावे ।

२८ सोम्यं मधु पिबते [ ७५४ ]- सोमके मधुर रसको  
पियो ।

२९ देवयुः [ ७७२ ]- यह सोम देवोंके पात जानेवाला है ।

३० विश्वस्य मतिं ना यियदात् [ ७७० ]- सबकी  
बुद्धियोंको यह अपने अधिकारमें रखता है । सबकी बुद्धिपर  
अपना प्रभान डालता है ।

३१ उद्वंरं सुपूर्णे सुनि अज्यः पिय [ ७३४ ]- वेद  
मरकर सोमरसरूपो अन्न पी ।

३२ मच्च्युतः सोमासः सुताः विदधे मघोर्नां नः  
अवसे प्राधसुः [ ७६९ ]- आनन्द बढ़ानेवाले सोमरस  
पक्षमें मजमानका यज्ञ यथाते है ।

### शुक्रको भयभीत करना

सोमरस पीनेके बाद मनका उत्साह बढ़ता है, शरीरकी  
शक्ति बढ़ती है । और शत्रुको भय हो ऐसा सामर्थ्य उत्पन्न  
होता है—

३३ हे सोम ! उपस्थुपः उपशिक्ष, शत्रुभ्ये नियसं  
धापेहि [ ७६१ ] हे सोम ! पात बैठनेवालोंके कह कि वे  
शत्रुको भयभीत करें ।

शत्रुको भयभीत करने योग्य बल सोमरसको पीनेसे बढ़ता  
है । सब देव इत्ते पीकर सामर्थ्यवान् होते हैं और शत्रुओंको  
हराते हैं ।

### सुभाषित

इस हुस्से अन्वयाममें सुभाषित इस प्रकार है—

१ विश्वा-साहं, श्रुतःश्रुतं, चर्यणानां मंहिष्ठं इन्द्रं  
प्र गायत [ ७१३ ]- सब शत्रुओंको हरानेवाले सैकड़ों  
प्रकारके कर्म करनेवाले मनुष्योंमें बहुत महान् इन्द्रकी  
स्तुति करो ।

२ सुतुः नः महोनां याजानां दाता [ ७१५ ]- यह  
इन्द्र सबोंको धरानेवाला और हमें बहुतसे वन और अन्नका  
देनेवाला है ।

३ चः ह्येदमाय सोम-पात्ने प्रगायत [ ७१६ ]- हे  
भियो ! तुम पीओके रखनेवाले, सोम पीनेवाले इन्द्रके लिए  
आनन्द देनेवाले स्तोत्रोंका मान करो ।

४ सु दानवः सत्य-राधसः [ ७१७ ]- यह इन्द्र

उत्तम वान देनेवाला और ईमानदारीसे धन अपने पास रखनेवाला है ।

५ वाज-युग्म, गन्धुः, हिरण्य-युग्म [ ७१८ ]- यह इन्द्र हमें अन्न, पाप्य, और सोना देनेवाला है ।

६ इन्द्र ! त्वायन्तः सखाय त्वा [ ७१९ ]- हे इन्द्र ! तुम प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम, मित्र तेरी स्तुति करते हैं ।

७ अपसः तय नविष्टो अन्यत् न घेँ आपपन [ ७२० ]- हे इन्द्र ! यत्कर्मोंमेंसे तेरे नये धर्मों तेरे स्तोत्रके विषय में दूसरेके स्तोत्र नहीं पहुँचा ।

८ तव इत् उ स्तोमैः चिकेत [ ७२० ]- तेरे ही स्तोत्रोंसे स्तुति करना मैं जानता हूँ ।

९ देवाः सुन्येते इच्छन्ति [ ७२१ ]- देव सोमरस निकालनेवालेकी इच्छा करते हैं, अर्थात् सोमयज्ञ करनेवालेसे प्रेम करते हैं ।

१० स्वप्नाय न स्पृहयन्ति [ ७२१ ]- आत्मसी मनुष्यकी पसन्द नहीं करते ।

११ अ-तन्द्राः प्र-मादं यन्ति [ ७२१ ]- परिश्रमी देवता परम आनन्द देनेवाले सोमकी प्राप्ति करते हैं, अर्थात् जघमी मनुष्य ही मुलकी प्राप्ति कर सकता है ।

१२ यस्मिन् विभ्याः विभ्यः अधि [ ७२२ ]- इस इन्द्रमें सभी शोभायें रहती हैं ।

१३ सप्त संसद्ः रणन्ति [ ७२३ ]- इन्द्रकी स्तुति यज्ञके सात ऋत्विज करते हैं ।

१४ देवा वि-रुद्रकेषु योनेन आनत [ ७२४ ]- सब देवता यज्ञके शोभ दिवसमें उत्तम ब्रह्मणवाले यज्ञका विस्तार करते हैं ।

१५ शाश्वि-गोः-शाश्वि-पूजनः [ ७२६ ]- यह इन्द्र सामर्थ्यवान् विरभोसे युक्त और शशिनमान् होनेके कारण पूजा जाता है ।

१६ हे आ-स्वपल ! प्र हयसे [ ७२६ ]- हे मनुष्यो मारनेवाले इन्द्र ! गोपथे लिए तुमों बुलाते हैं ।

१७ तृंग-भुयः न पाग् [ ७२७ ]- किरभोके विस्तारकी वन न करनेवाला यह इन्द्र है ।

१८ इन्द्र ! महा-हरती न धूमन्ने चियं प्राभं वृक्षिणेन सं शृभाय [ ७२८ ]- हे इन्द्र ! महान् हार्यो-वाला तू हमारे लिए तैराकी मिलजुल और स्वीकार करने योग्य वन देनेके लिए नहीं हाथें हाथमें धारण कर ।

१९ तुयिर्धूमिः, तुयि वैष्णवः, तुयि मघः, तुयि-

मात्रं अधोभिः [ ७२९ ]- अनेक पराक्रम करनेवाला, देने योग्य बहूतसे धर्मोंकी अपने पास रखनेवाला, महान् धनवान्, महान् आकारवाला, सरसणके अनेक साधनोंसे युक्त यह इन्द्र है ।

२० हे शूर ! दिस्सन्ते त्या देवाः न, मर्तोसः न वारयन्ते [ ७३० ]- हे वीर इन्द्र ! वान देनेकी इच्छा करनेवाले तुमों देव अथवा मनुष्य, कोई भी रोक नहीं सकता ।

२१ त्वा अग्निष्वः मूराः उपहृत्वाः मा दमन् [ ७३२ ]- तुमों रक्षणकी इच्छा करनेवाले मूलं और उपहास करनेवाले भी कष्ट न दें ।

२२ ब्रह्म-द्विषं मा वीं घनः [ ७३२ ]- शानसे द्वेष करनेवालेकी तू सह्युता मत कर ।

२३ राधानां-पते गिर्यण ! ओजसा पित्र [ ७३७ ]- हे धनपते ! स्वयं इन्द्र ! बलसे युक्त तू इस सोमरसकी पी ।

२४ हे शूर ! राधसा याह प्र [ ७३९ ]- धन देनेके लिए तेरे बाहु भी सोमरसकी प्राप्ति हों ।

२५ पुरु-तमः पुरुणां वार्याणां ईशानः [ ७४१ ]- यह इन्द्र बहूतसे मनुष्योंकी हत्यानेवाला और स्वीकार करने योग्य बहूतसे धर्मोंका स्वामी है ।

२६ सः घ नः योमे, राये, पुरन्था आ भुयद् [ ७४२ ]- यह इन्द्र निःशयसे हमारे पुराणोंके कामोंमें, धन प्राप्त करनेके कामोंमें, यज्ञ बुद्धिवा प्रयोग करके विपु जानेवाले कामोंमें सहायक होवे ।

२७ योये-योये, याजे-याजे तयस्तरे इन्द्रं उजाये हयामहे [ ७४३ ]- प्रत्येक करके प्रारम्भमें और प्रत्येक युद्धमें अत्यन्त बलवान् इन्द्रको सरसण करनेके लिए हम बुलाते हैं ।

२८ प्रत्नस्य ओजसाः, तुवि-प्रति नरे अनु ह्ये [ ७४४ ]- अपने पुराने धर्मों बहूतसे धान जानेवाले नेता इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं । " प्रत्नस्य ओ-जसाः " इन्द्रका सत्वात धर यह विद्वान् ही है ।

२९ सः महान् दि [ ७४५ ]- वह महान् है ।

३० सः देवानां सद्ने पृथः शु-पाएः सु-ध्वः स्तमः सं अयु-जिग् [ ७४७ ]- वह इन्द्र देवोंके स्वामी यज्ञवादी बडांनेवाला, मण्डी तरफने दुर्भोग्य धार करनेवाला, उत्तम यज्ञकी और शान्तियोंकी शोभनेवाला है ।

३१ हे इन्द्र ! तुमने अन्नमः भय, पृथं साता [ ७४८ ]- हे इन्द्र ! तुमने सपथ भी हमारे पास रह, उती प्रचार उर्णिके समय भी हमारे पास रह ।

३२ ऊर्जः न-पातं, प्रियं, चेतिष्टं अरतिं सु-अप्यदं विश्वस्य दृत्तं अमूर्तं अग्निं भा हुवे [ ७५१ ]- यत्नो ब्रम न करनेवाले प्रिय, शान देनेवाले प्रगतिशील, उत्तम पक्ष करनेवाले सभी यात्राके लिए दूतने समान उपा अथर अग्निबो हम् ब्रमाते हैं ।

३३ सः अरुणा विश्व-गोजसा योजते [ ७५० ]- वह अग्नि तेजस्वी, सवने भक्षण अग्निबो अपने रपमें जोयता है ।

३४ सु-प्रसा, यतः सु-शामी सु-आहुतः [ ७५१ ]- यह अग्नि उत्तम शानी, दूग्ध, उत्तम आहुतिवर्ति प्रबलित हुआ है ।

३५ व्यायती उच्छन्ती दिव्यः दुहित्वा उयाः महीतमः चक्षुषा उप मृणुते उ [ ७५१ ]- आरर वमनेवाली पुनोबकी पुत्री उया महात् अपकारका प्रकाशने निवारण करती है ।

३६ सूनीरी ज्योतिः एणुते [ ७५१ ]- उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उपा प्रकाश करती है ।

३७ उपः । तन सूर्यस्य च द्युभिर्भक्तन संगमे-महि [ ७५२ ]- हे उवे । तेरे और सूर्यके प्रकाश हो जाने पर धमते हम् यत्त हैं ।

३८ अभिना ! इमाः द्विविष्टयः उर्ध्वी दां ह्यन्ते [ ७५३ ] हे अग्निबो देवो ! इस स्वर्गके इच्छा करनेवाली राजाके सवने बतानेवाले तुम्हें महायत्नाके लिए बुलाने हैं ।

३९ विदा विदां गच्छत्यः [ ७५३ ]- तुम प्रत्येक प्रजात्रयके पास जाते हो ।

४० नराः । युव समनसा चित्र भोजनं द्दद्युः [ ७५४ ]- हे नेता अग्निबो ! तुम चित्ररथ भोजन देते हो ।

४१ शुक्र सहस्रसां पायः [ ७५५ ]- तेजस्वी और अनेकों प्रकारकी इच्छा पूर्ण करनेवाला यह सोमरस है ।

४२ अयं सूर्यः इव उपदृक् [ ७५६ ]- यह सोम सूर्यके समान सबको देखनेवाला है ।

४३ अयं सोमः निग्धानि भुयना उपरि तिष्ठति [ ७५७ ]- यह सोमरस सब लोकों पर प्रकाशित होता है ।

४४ पवमानः । शत्रवे प्रियसं आपोधि [ ७६१ ]- हे सोम ! शत्रुको भय प्राप्त हो ऐसा कर ।

४५ ई विश्वस्य मतिं आ विवदात् [ ७६० ]- यह सोम सबको बुद्धिको वशमें करता है ।

४६ हव्यतः हरिः रतोत्तुभ्यः वीरवत् यदा अभ्यपवत्

[ ७७३ ]- चाहनेके योग्य वह हरे रंगका सोम स्तुति करने-वालोंके बौर सुनते युक्त यदा वेता है ।

४७ तत्पु यचः मर्तः न म नष्ट [ ७७४ ]- वह हीन यचन मनुष्य न सुने ।

४८ अ-राधसं श्वानं अपहृत [ ७७४ ]- अयोग्य कुतरो तोमने दूर बरो ।

## उपमा

इत अध्यायमें निम्नलिखित उपमायें आई हैं—

१ भीमं गां न [ ७२० ]- जित प्रकार भयकर बैलका निवारण कोई नहीं कर सकता, उसी प्रकार " दिग्दन्तं स्या न देवाः न मर्तासः दारयन्ते " शान देनेकी इच्छा करनेवाले इन्द्रका निवारण देव अथवा मनुष्य कोई भी नहीं कर सकता ।

इम मत्रमं " गा " पर बैलका पावक है ।

२ यथा गौरः सरः [ ७३३ ]- जित प्रकार गौर मूष सरोवरपर पानी पीता है, उसी प्रकार " गो-परीणांतं पिय " पापके हृषमें मिले हुए सोमरसकी पी । मूष सरोवरके पास जाना ही बीर वैट भरकर पानी पीता है, उसी प्रकार इन्द्र भी यज्ञमें जाकर वैट भरकर सोम पीते ।

३ नदीषु अयः न [ ७३५ ]- नदीके पानीमें जीते घोड़े घोड़े जाते हैं, उसी प्रकार " अद्वै द्युतः नृभिः धीतः अत्र्यायैरः परिपूत " पर्यटते बूटकर इस निकाला गया, यात्राकोरे द्वारा पानीसे धोकर स्वच्छ किया गया, अइसे बालोंकी बनी छलनीसे छानकर साफ किया गया तोमरस तैयार किया जाता है ।

४ देवो सूर्यं न [ ७५७ ]- सूर्य जित प्रकार सवसे ऊंचे स्थानपर जोरित होता है, उसी प्रकार " अयं पुनानः सोम विश्वा भुयना उपरि तिष्ठति " यह छानकर साफ किया गया सोमरस सब लोकोंमें अन्य सब पेशोंकी अनेका श्रेष्ठ है । जैसे सूर्य तेजस्वी और श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सोम तेजस्वी और श्रेष्ठ है ।

५ यनानि महिषा इव [ ७६४ ]- जैसे बजमें हालावके पाय भंसे जाते हैं, उसी प्रकार " सोमासः आपः प्र नयन्ते " सोमरस पानीमें मिलाने जाते हैं ।

६ सिन्धुः न [ ७६७ ]- जित प्रकार नदी पानीसे भरती रहती है, उसी प्रकार सोमरस " अयं स्या प्र पिये "

पानीसे पूर्ण किया जाता है। सोमरस पानीमें मिलाया जाता है।

७ मंदिरः न आगृधिः [ ७६७ ]- आनन्द बढानेवाले पदार्थके समान तू लोगोंको जापत करनेवाला उनका उस्ताह बढानेवाला है। सोमरस जो पीते हैं उनमें आनन्द और उस्ताह बढता है।

८ ह्येतः सुनुः न [ ७६८ ]- प्रिय पुत्रके समान यह "मर्त्यः अर्जुनः" शुद्ध होनेवाला और छाना भया सोम प्रिय है।

९ अपसः रथं यथा [ ७६९ ]- वेपथान् रथको जैसे मुठमें ले जाते हैं, वैसे ही "नदीषु गमस्तयोः आ हिन्वन्ति" सोमरसकी नदीके जलोंमें हायीति मिलाते हैं। बेगसे सोम पानीमें ले जाते हैं, जैसे रथ मुठमें जाता है।

१० हंसः गर्णं यथा [ ७७० ] हंस जैसे अपने मुठमें जाता है, वैसे ही सोम "विश्वस्य मतिं आविषदात्" सबकी बुद्धियोंमें जाता है, बुद्धियोंको उताव प्रेरणा देता है।

११ अत्यः न [ ७७० ]- धोड़ेको जित प्रकार नहलाते हैं, उसी प्रकार सोम "गोभिः अज्यते" गायके दूधमें मिलाते हैं, उसे दूधसे नहलाते हैं।

१२ भृगवः मर्त्यं न [ ७७४ ]- जित प्रकार भृगुओंने अयोधय यज्ञको दूर किया, उसी तरह यज्ञसे "श्वानं अप- हत" कुत्तेको दूर करो।

इस प्रकार दूसरे अध्यायका निरीक्षण यहाँ किया है। पाठक मन्त्र इस अध्यायके मन्त्रोंका सूक्ष्म अध्ययन करके उस पर मनन करें।

## द्वितीयाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋष्येवत्पानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १ )				
७११	८।२१।१	भृगुकवः सुबोधो वा आंगिरसः	इन्द्रः	भनुष्टुप्
७१४	८।११।२	भृगुकवः सुबोधो वा आंगिरसः	"	पापभो
७१५	८।२१।३	भृगुकवः सुबोधो वा आंगिरसः	"	"
७१६	७।३१।१	वसिष्ठी संभाषदग्निः	"	"
७१७	७।३१।२	वसिष्ठी संभाषदग्निः	"	"
७१८	७।३१।३	वसिष्ठी संभाषदग्निः	"	"
७१९	८।११।६	वेधातिथिः काश्यपः, प्रियमेपरश्चांगिरसः	"	"
७२०	८।११।७	वेधातिथिः काश्यपः, प्रियमेपरश्चांगिरसः	"	"
७२१	८।११।८	वेधातिथिः काश्यपः, प्रियमेपरश्चांगिरसः	"	"
७२२	८।११।९	भृगुकवः सुबोधो वा आंगिरसः	"	"
७२३	८।११।१०	भृगुकवः सुबोधो वा आंगिरसः	"	"
७२४	८।२१।११	भृगुकवः सुबोधो वा आंगिरसः	"	"
( २ )				
७२५	८।१०।१	इतिम्बिडिः काश्यपः	"	"
७२६	८।१०।२	इतिम्बिडिः काश्यपः	"	"
७२७	८।१०।३	इतिम्बिडिः काश्यपः	"	"
७२८	८।८।१	कुसीरो वाश्यः	"	"
७२९	८।८।२	कुसीरो वाश्यः	"	"

संमर्तव्या	श्रुतेवैश्यानं	श्रुतिः	वेदता	उपः
७३०	८१८१३	दुसोरो वाण्यः	द्वयः	गायत्री
७३१	८१४५१२२	त्रिगोवः वाण्यः	"	"
७३०	८१४५१२३	त्रिगोवः वाण्यः	"	"
७३३	८१४५१२४	विगोकः वाण्यः	"	"
७३४	८१११	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
७३५	८१०१२	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
७३६	८१०१३	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"

( ३ )

७३७	३१५११२०	विश्वामित्रो गायिनः	"	"
७३८	३१५११२१	विश्वामित्रो गायिनः	"	"
७३९	३१५११२२	विश्वामित्रो गायिनः	"	"
७४०	३१५१२	मयुजउन्वा वैश्वामित्रः	"	"
७४१	३१५१२	मयुजउन्वा वैश्वामित्रः	"	"
७४२	३१५१३	मयुजउन्वा वैश्वामित्रः	"	"
७४३	३१३०७	गुन.सोप आजीगतिः	"	"
७४४	३१३०९	गुन.सोप आजीगतिः	"	"
७४५	३१३०८	गुन.सोप आजीगतिः	"	उपिणक्
७४६	८१३११	नारवः वाण्यः	"	"
७४७	८१३१२	नारवः वाण्यः	"	"
७४८	८१३१३	नारवः वाण्यः	"	"

( ४ )

७४२	७१२६१	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	अग्निः	प्रगाथ* ( विपया बृहती, शभा सतो बृहती )
७५०	७१२६५	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
७५१	७१८११	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	उषा	"
७५२	७१८१२	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
७५३	७१७४१	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	अश्विनो	"
७५४	७१७४२	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"

( ५ )

७५५	७११४१	अवसातः काश्यपः	पवनानः शीम.	गायत्री
७५६	७१५४१	अवसातः काश्यपः	"	"
७५७	७१५४३	अवसातः काश्यपः	"	"
७५८	७१३१९	गुन.सोप आजीगतिः स वैवरतः कृषिमो वैश्वामित्र	"	"
७५९	७१४१२	वैश्वामितिः वाण्यः	"	"
७६०	७१४१४	वैश्वामितिः वाण्यः	"	"



पानीसे पूर्ण किया जाता है। सोमरस पानीमें मिलाया जाता है।

७ मन्दिरः न जागृयिः [ ७६७ ]- आनन्द बढ़ानेवाले पदार्थके समान तु लोगोंको जाग्रत करनेवाला उनका उस्ताह बढानेवाला है। सोमरस जो पीते हैं उनमें आनन्द और जागताह बढ़ता है।

८ ह्येतः स्तुः न [ ७६८ ]- मिय पुत्रके समान यह "मर्त्यः अर्जनः" शुद्ध होनेवाला और छाता गया सोम मिय है।

९ अपसः रथं यथा [ ७६८ ]- देगवान् रथको जैसे युद्धमें ले जाते हैं, वैसे ही "नदीषु गमस्त्वोः आ हिन्वन्ति" सोमरसको नदीके जलोंमें हाथोंसे मिलाते हैं। वेगसे सोम पानीमें ले जाते हैं, वैसे रथ युद्धमें जाता है।

१० हंसः गणं यथा [ ७७० ] हत जैसे अपने मुण्डमें जाता है, वैसे ही सोम "विश्वस्य मर्ति आवियशात्" सबको बुद्धियोंमें जाता है, बुद्धियोंको उत्तम प्रेरणा देता है।

११ अत्यः न [ ७७० ]- घोड़ेको जिस प्रकार नहलाते हैं, उसी प्रकार सोम "गोमिः अजयते" गावके रूपमें मिलाते हैं, उसे रूपसे नहलाते हैं।

१२ सृगधः मखे न [ ७७४ ]- जिस प्रकार भूषणोंके ध्योग्य यज्ञको दूर किया, उसी तरह यज्ञसे "श्वानं अप- हत" कुत्तेको दूर करो।

इस प्रकार द्रुसरे अध्यायका निरोक्षण यहाँ किया है। पाठक सूत्र इस अध्यायके संज्ञोका सूक्ष्म अध्ययन करके उस पर मनन करें।

## द्वितीयाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रसंख्या	ऋषिदेवतानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
		( १ )		
७१३	८।९।१	भूतकणः सुकणो वा आंगिरसः	इन्द्रः	मनुष्टुप्
७१४	८।९।११	भूतकणः सुकणो वा आंगिरसः	"	गायत्री
७१५	८।९।१३	भूतकणः सुकणो वा आंगिरसः	"	"
७१६	७।३।११	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
७१७	७।३।१२	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
७१८	७।३।१३	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
७१९	८।१।१६	मेघातिथिः काण्वः, म्रियमेघवर्णागिरसः	"	"
७२०	८।१।१७	मेघातिथिः काण्वः, म्रियमेघवर्णागिरसः	"	"
७२१	८।१।१८	मेघातिथिः काण्वः, म्रियमेघवर्णागिरसः	"	"
७२२	८।३।१९	भूतकणः सुकणो वा आंगिरसः	"	"
७२३	८।३।२०	भूतकणः सुकणो वा आंगिरसः	"	"
७२४	८।९।२१	भूतकणः सुकणो वा आंगिरसः	"	"
		( २ )		
७२५	८।१।११	इरिम्बिधिः काण्वः	"	"
७२६	८।१।१२	इरिम्बिधिः काण्वः	"	"
७२७	८।१।१३	इरिम्बिधिः काण्वः	"	"
७२८	८।८।११	कुत्सीवी काण्वः	"	"
७२९	८।८।१२	कुत्सीवी काण्वः	"	"

संक्रमांका	श्लोकराज्य	श्लोः	श्लोः	उच्यः
७३०	८।८१।३	दुसोचो वाच्यः	दुः	गायत्री
७३१	८।८५।१२	त्रिसोचः वाच्यः	"	"
७३२	८।८५।१३	त्रिसोचः वाच्यः	"	"
७३३	८।८५।१४	त्रिसोचः वाच्यः	"	"
७३४	८।९।१	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"
७३५	८।९।२	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"
७३६	८।९।३	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"

( ३ )

७३७	३।५१।१०	विरवाग्निः वाच्यः	"	"
७३८	३।५१।११	विरवाग्निः वाच्यः	"	"
७३९	३।५१।१२	विरवाग्निः वाच्यः	"	"
७४०	३।५।१	मधुचन्द्रा मंत्रवाग्निः	"	"
७४१	३।५।२	मधुचन्द्रा मंत्रवाग्निः	"	"
७४२	३।५।३	मधुचन्द्रा मंत्रवाग्निः	"	"
७४३	३।३०।७	दुनःसोच आग्नीमतिः	"	"
७४४	३।३०।९	दुनःसोच आग्नीमतिः	"	"
७४५	३।३०।८	दुनःसोच आग्नीमतिः	"	"
७४६	८।१३।१	नारवः वाच्यः	"	उग्निः
७४७	८।१३।२	नारवः वाच्यः	"	"
७४८	८।१३।३	नारवः वाच्यः	"	"

( ४ )

७४९	७।२६।१	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	अग्निः	प्रगाथः ( विद्यमा बृहती, सत्ता रत्तो बृहती )
७५०	७।२६।२	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"
७५१	७।८१।१	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	उद्या	"
७५२	७।८१।२	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"
७५३	७।७३।१	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	अग्निः	"
७५४	७।७३।२	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"

( ५ )

७५५	७।१४।१	अवरसातः काश्यपः	पयमानः सोमः	गायत्री
७५६	७।५४।१	अवरसातः काश्यपः	"	"
७५७	७।५४।२	अवरसातः काश्यपः	"	"
७५८	७।३।९	दुनःसोच आग्नीमतिः	हा वैश्वरातः कुत्रिभो	"
		उद्वर्वाग्निः	"	"
७५९	७।३।१२	मेध्यातिथिः वाच्यः	"	"
७६०	७।३।१४	मेध्यातिथिः काश्यपः	"	"

मन्त्रसंख्या	श्रुतवेदस्थान	ऋषिः	देवता	छन्दः
७६१	११११६	असित. काश्यपो देवलो वा	पवमान सोमः	गायत्री
७६२	११६११३	अमहीयुरागिरसः	"	"
७६३	१११११	असित. काश्यपो देवलो वा	"	"
( ६ )				
७६४	११३३१	श्रित आप्य.	"	"
७६५	११३३१	श्रित आप्यः	"	"
७६६	११३३३	श्रित आप्यः	"	"
७६७	११०७११	सप्तर्षयः	"	प्रगायः ( विद्यमा बृहती, समा सतो बृहती )
७६८	११०७१३	सप्तर्षयः.	"	"
७६९	११३११	श्यावाश्व आश्रयेः	"	गायत्री
७७०	११३१३	श्यावाश्व आश्रयेः	"	"
७७१	११३१५	श्यावाश्व आश्रयेः	"	"
७७२	१११०६१४	अग्निश्वाशुषः	"	उष्णिक्
७७३	१११०६१३	अग्निश्वाशुषः	"	"
७७४	१११०११३	प्रजापतिर्वैश्वानित्रो वाचपो वा	"	अनुष्टुप्

## अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयपाठके प्रथमोऽर्घः ॥ २ ॥

[ १ ]

( १-१९ ) १ अजबनिर्गणवः; २, ५, १५ अग्नौमुरागिरसः; ३ कश्यपो सारीचः; ४, १० भृगुर्बाह्विर्बवग्निर्मा-  
सोवो वा; ६-७ मेधातिथिः काण्वः; ८ मधुच्छन्दा वेदवामित्रः; ९ मत्तिलो मेधावर्षणिः; ११ उपमन्युर्बभित्ठः;  
१२ दंयुर्बाह्विस्पदयः; १३ बालभित्त्याः; प्रत्कन्वः काण्वः; १४ नृपेय आगिरसः; १६ नहुषो भागवः; १७  
( १-२ ) तिकला निवावरी; १७ ( ३ ) पुदिन्योऽग्नाः; १८ श्रुतकर्मः मुक्लो वा आगिरसः; १९ जैता  
मायुच्छन्तः; ॥ १-५, १०-११, १५-७ पत्रमानः सोमः; ६ अग्निः; १७ मित्रावण्योः ८, १२-१४,  
१८-१९ इन्द्रः; ९ इन्द्राग्नी ॥ १-१०, १५, १८ पायमी; ११ निवृष्टुः; १२-१४ प्रगायः=  
( चिपमा बृहती, तमा सतीबृहती ), १५, १९ अनुष्टुप्; १७ जगती ॥

७७५ पवस्व वाचो अग्निष्यः सोमं चित्रामिरुतिभिः । अग्निं विश्वानि काण्वा ॥ १ ॥  
( ऋ ९।६।२।२५ )

७७६ स्वसमृद्धिया अपोऽग्निष्यो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वचर्षणे ॥ २ ॥ ( ऋ ९।६।२।२६ )

७७७ तुभ्यमा भुवना कवे मदिस्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यं धावन्ति भेनवः ॥ ३ ॥ ( यी ) ॥  
( ऋ ९।६।२।२७ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

। [ ७७५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अग्निष्यः ) तू आनेके भागमें रहनेवाला अर्थात् मुख्य है, तू ( चित्राभिः कृतिभिः ) अपनी विलक्षण रचनाकी शक्तिसे पुरुष होकर ( वाचः पवस्व ) हमारी स्तुतिको सुन, जसी प्रकार तू ( विश्वानि काण्वा ) अपने सब स्तुतिके कार्योंको सुन ॥ १ ॥

१ अग्निष्यः— आगे रहनेवाला ।

२ चित्राः ऊतया— विशेष संरक्षणकी शक्ति अपने पास हो ।

३ विश्वानि काण्वा अग्नि— सब स्तुतिके कार्य हैं, ऐसे कार्य करने चाहिए ।

[ ७७६ ] हे ( विश्व-चर्षणे ) सबका निरीक्षण करनेवाले सोम ! ( अग्निष्यः ) तू आगे चलनेवाला होकर ( वाचः ईरयन् ), स्तुतियोंको प्रेरित करता हुआ ( समृद्धियाः आपः ) अर्थात्सके जलको ( पवस्व ) प्राप्त कर । सोमसमें जल मिलाना जाता है ॥ २ ॥

१ विश्व-चर्षणिः— सब कर्मोंको अच्छी तरह निरीक्षण करना चाहिए । सर्वजनिक हित करनेवाला ।

२ अग्निष्यः— जन्मे स्थान पर रहें, नेता बनें ।

३ वाचः ईरयन्— दूसरोंकी वाणी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हो, ऐसे धतय कर्म करने चाहिए ।

४ समृद्धियाः आपः पवस्व— सोमसमें अर्थात्सके कर्पमें प्राप्त होनेवाले जलको मिलवें ।

[ ७७७ ] हे ( कवे ) इन्द्राग्नी सोम ! ( तुभ्यं ) तेरी ( मदिस्ने ) महान्तके कारण ( इमा भुवना तस्थिरे ) ये भुवन स्थिर हैं, जसी प्रकार ( भेनवः ) ये गर्व ( तुभ्यं धावन्ति ) तुमो रूप देनेके लिए तेरे पास दौड़ रही हैं ॥ ३ ॥

७८८ ये ते पवित्रमूर्ध्मयाऽमिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृडय ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।१६ )

७८९ सु नः पुनान आ भर रथि वीरवतीमिपम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥ ३ ॥ ५ ( ला ) ॥  
( ऋ. १।६।१६ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

७९० अग्निं दूर्तं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुकृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।१ )

७९१ अग्निमग्निं हवीमग्निः सदा हवन्त विश्वपतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१।२ )

७९२ अग्ने द्रवांश्च इहा वह जज्ञानो वृक्तपार्हिषे । असि होता न ईश्वः ॥ ३ ॥ ६ ( यौ ) ॥  
( ऋ. १।१।३ )

७९३ मित्रं वयंश्च हवामहे वरुणं सोमपीतये । या जाता पूतदक्षता ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२।४ )

[ ७८८ ] हे सोम ! ( ते ये ऊर्ध्वयः ) तेरी जो लहरें हैं, वे ( धारया पवित्रं अमिक्षरन्ति ) एक धारते छनवोते भीके फिर रही हैं, ( तेभिः नः मृडय ) उनके द्वारा हमें मुझ मिले ऐसा कर ॥ २ ॥

[ ७८९ ] हे सोम ! ( विश्वतः ईशानः ) तू सबका स्वामी है, ( सः पुनानः ) वह तू इस निकाल कर छाता जानेके बाद ( नः ) हमें ( रथि वीरवतीं इयं आ भर ) मन और पुत्रपौत्रद्वय अन्न भरतुर दे ॥ ३ ॥

१ विश्वतः ईशानः— सब प्रकार सबका स्वामी ।

२ पुनानः— पवित्र होकर ।

३ रथि वीरवतीं इयं आ भर— मन और पुत्र देनेवाले वर हमें भरतुर दे ।

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ७९० ] ( होतारं ) देवोंकी बुलाकर लानेवाले ( विश्व-वेदसं ) सब मन पासमें रखनेवाले ( अस्य यज्ञस्य सुकृतं ) इस यज्ञकी उत्तम ढंगसे सिद्ध करनेवाले ( दूर्तं अग्निं वृणीमहे ) देवोंकी हवि पढ़वानेवाले अग्निकी हम आराधना करते हैं ॥ १ ॥

१ होता— श्रेष्ठ देवोंको बुलाकर लानेवाला ।

२ विश्व-वेदाः— सब प्रकारके देवोंकी अपने पास रखनेवाला ।

३ यज्ञस्य सुकृतः— यज्ञकी उत्तम ढंगसे करनेवाला ।

४ दूर्तः— हवि देवोंकी पढ़वानेवाला ।

५ अग्नि— “ अग्निः कासाद्भ्रणीभिपति ” ( निरुक्त )— अन्नगी, आगे ले जानेवाला, मंगिल तरु पढ़वानेवाला ।

[ ७९१ ] ( विश्वपतिं ) प्रजाओंके पालन करनेवाले ( हव्य-वाहं ) हविकी देवोंके पास पढ़वानेवाले ( पुरु-प्रियं ) बहुतांकी प्रिय लगनेवाले ( अग्निं अग्निं ) आगे ले जानेवाले नेता अग्निकी ( हवीमग्निः सदा हवन्ते ) हवनके मंत्रों हम सदा बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ ७९२ ] हे ( अग्ने ) अग्नि देव ! ( जज्ञानः ) धारणियोंसे उत्पन्न होनेवाला तू ( वृक्त-पार्हिषे ) आतन कालमें भाले यज्ञमानके लिए ( इहा देवान् आ धर ) इस यज्ञमें देवोंकी बुला ला, तू ( नः ) होता इत्यः अस्मि ) देवोंकी बुलाने वाला, सुख और हमारा सहोदक है ॥ ३ ॥

[ ७९३ ] ( वयं ) हम ( सोम-पीतये ) और यज्ञमें आनेवाले और पवित्र बलपुत्र दे, उन ( मित्रं वरुणं ) मित्र और वरुणकी ( हवामहे ) बुलाते हैं ॥ १ ॥



८०२ ता वां गीभिर्विपन्यवः प्रपस्वन्तो हवामहे । मेघसाता सनिप्यवः ॥ ३ ॥ ९ (हु) ॥  
( ऋ. ७।९।१६ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

८०३ वृषा पयस्य धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान औजसा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।१० )

८०४ तं त्वा धतोरमोण्याः पवमान स्वदेशम् । दिव्ये वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।११ )

८०५ अया चित्ता विपानया हरिः पयस्य धारया । युवं वाजेषु चोदय ॥ ३ ॥ १० (ट) ॥  
( ऋ. ९।६५।१२ )

८०६ वषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेपि पृथिवीभुत घाम् ।  
इन्द्रस्येव वग्नुरा मृष्य आजौ प्रचोदयन्नपसि वाचमेमाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।१३ )

८०७ रसाद्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेपि मधुयन्तमश्नुम् ।  
पवमान सन्तनिमपि कृष्वन्निन्द्राय सोमे परिपिन्वमानः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।१४ )

[ ८०२ ] ( विपन्यवः ) स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले ( प्रपस्वन्तः ) हविष्यान्की पसमें रहनेवाले ( सनिप्यवः ) घन पानेकी इच्छा करनेवाले और ( मेघ-साता ) पल करनेवाले हम ( ता वां ) उन सुम योनों इन्द्र और अग्निकी ( गीभिः ) हवामहे ) स्तुतिते बुलाते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ८०३ ] हे सोम ! तू ( वृषा ) बल बढ़ागेवाला होकर ( धारया पयस्य ) एक धारसे टनता जा, और तू ( विश्वा भोजसा दधानः ) सब धनको अपने बलसे धारण करके ( मरुत्वते मत्सरः ) महतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको आनन्द देनेवाला हो ॥ १ ॥

[ ८०४ ] हे ( पवमान ) युद्ध होनेवाले सोम ! ( शोण्याः धतोरं ) छावापृथिवीकी धारण करनेवाले ( स्व-दरां वाजिनं ) आरुको साक्षात् करनेवाले, बलवान् ( तं त्वा ) ऐसे उन सुमों में ( वाजेषु दिव्ये ) तंश्राममें जानके लिए प्रेरित करता हूँ ॥ २ ॥

[ ८०५ ] हे सोम ! ( अया विषा ) इस अश्लीभि ( चित्ता-हरिः ) निजोका गपहृटे खेचकभूम् ( अयसा पयस्य ) एक धारसे बचसमें छनता जा, और ( वाजेषु युवं चोदय ) युद्धमें जानके लिए अपने निज इन्द्रकी प्रेरित कर ॥ ३ ॥

[ ८०६ ] ( शोणः पृषा ) काल रंगवाला बेल ( गाः अभि फसिक्रदन् ) गायकी बेलकर जिस प्रकार शब्द करता है, उस प्रकार ( नदयन् ) शब्द करनेवाला यह सोम है, हे सोम ! तू ( पृथिवीभुत घां पपि ) पृथ्वी और पृथ्वीको प्राप्त होता है, ( आजौ ) युद्धमें ( इन्द्रस्येव वग्नुरा इव ) इन्द्रके शब्दके समान तेरे शब्दको ( साश्रुण्ये ) मैं सुनता हूँ, ( प्रचेतयन् ) अपने स्वरूपका गान देता हुआ ( इमा धावं आ अर्षीषि ) इस स्तुतिरूप बातको तू प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[ ८०७ ] ( रसाद्यः ) प्रथम स्वयं भयूर और ऊपरसे ( पयसा पिन्वमानः ) गायकी रूप मिलानेसे और अर्धक ( मधुयन्तं ) भयूर रूप ( अंशुं ) सोपको ( ईरयन् पपि ) प्रेरणा करते हुए तू जाता है । हे ( सोम ) सोम ! ( परिपिन्वमान पवमानः ) पानीमें मिलकर छाना जानेवाला तू ( संतनिं कृष्वन् ) अपनी धारा बनाते हुए ( इन्द्राय पपि ) इन्द्रकी प्राप्त होता है ॥ २ ॥

८०८ एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वषस्तुम् ।  
परि वर्ण भरमाणा रुजन्तं गच्छुर्नो अपि परि सोम सिक्तः ॥ ३ ॥ ११ (रि) ॥  
( ऋ. २।९।१५ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

८०९ त्वामिद्धि हवामहे सातो वाजस्य कारयः ।  
त्वां वृत्रेभिन्द्र सत्पति नरस्त्वां काष्ठास्ववतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४।६।१ )

८१० स त्वं नक्षिप्र यजहस्त धृष्णुया मह स्तवानां अद्रिष्व ।  
गामश्च शरथ्यामिन्द्र स किं सत्रा वाजं न जिग्मूषे ॥ २ ॥ १२ (कु) ॥  
( धा. १.०।उ २ । ऋ. ९ ) ( ऋ. ६।४।६।२ )

८११ अभि प्र वः सुराघसामिन्द्रमर्षं यथा विदे ।  
यो जरितृभ्यां मघवा पुरुवसुः सहस्रेणव शिक्षति ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१९।१ )

[ ८०८ ] हे सोम ! ( मदिरो ) उस्ताहबदनेवाला तू ( पव-स्तुम् ) नमन्य होनेके बाद ( उग्रप्राभस्य नमयन् ) पानी बहानेवाले मेघको झुकाते हुए ( मदाय पवस्व ) मानन्द देनेके लिए छनता जा । ( रुजन्तं वर्णं परि भरमाणा ) तेजस्वी रंगको धारण करते हुए ( सिक्तः ) पानीमें छनते हुए ( गच्छुः ) गायके दूधको इच्छा करते हुए ( नः परि अर्षं ) तू हमारे चारों ओर यह ॥ ३ ॥

॥ यद्वां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ८०९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( कारयः ) स्तुति करनेवाले हम ( वाजस्य सातो ) अन्नको प्राप्तिके लिए ( त्वां इति हवामहे ) तुझे ही बुलाते हैं, हे इन्द्र ! ( सत्पति ) श्रेष्ठ पुत्रवर्गका प्राप्त करनेवाले तुम ( नरः ) लोग ( वृत्रेषु रुजन्ते ) शत्रुके जलन होनेपर बुलाते हैं, जसी प्रकार ( अर्षतः काष्ठास्तु ) घोड़ोंके घुड़ोंमें भो ( त्वां ) बुलाते ही सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ८१० ] ( क्षिप्र यजहस्त अद्रिष्वः ) हे विलक्षण पराक्रमी, यज्ञपारी तथा पर्वतपर रहनेवाले इन्द्र ! ( धृष्णुया ) अपनी शत्रुनाशक शक्तिके ( महः ) महान् हुआसु ( स्तवानः ) स्तुति किए जानेके बाद ( गां अर्षं शरथं संकिर ) गाय, घोड़े और रथ जलम प्रस्तारो हमें दे, ( जिग्मूषे ) विजयी पुत्रवर्गके ( सत्रा वाजं न ) जैसे एक साथ घोड़े भाग पदायं तू देता है, जसी प्रकार हमें दे ॥ २ ॥

१ धृष्णुया महः— शत्रुके पराभव करनेकी शक्तिके महानता प्राप्त होनेके ।

२ जिग्मूषे सत्रा वाजं— विजयी वीरको सहजमें ही अन्न और बल प्राप्त होता है ।

[ ८११ ] ( पुरु-वसुः मघवा ) बहुत सार पत्न प्राप्त करनेवाला जनबान् ऐला ( य ) को इन्द्र ( जरितृभ्यः ) सहस्रेण इव शिक्षति ) स्तुति करनेवालोंको हतारों प्रकारसे मन देता है, ऐसे ( सु-राधर्षं इन्द्रं ) उसम मन देनेवाले उग्र इन्द्रको ( यः ) तुम ( यथा-विदे ) जिस प्रकार जानते हो, उस प्रकार ( अभि प्र अर्षं ) स्तुति करो ॥ १ ॥

उ [ साम. हिथो भा. २ ]



८१२ शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुपे ।

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरं दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥ १३ (हि) ॥

[ धा. १६ । उ. ना. । ख ३ ] ( ऋ ८४९।२ )

८१३ स्वामिदा द्यो नरोऽपीप्स्यन्वजिन् भूर्णयः ।

स इन्द्रं स्तामवाहस इह श्रुष्युप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥ ( ऋ ८१९।१ )

८१४ मत्स्वा सुशिमिन्द्रहिवस्तपीमहे त्वया भूपन्ति वैधसः ।

तव अवात्स्वपमान्युकथ्य सुतेपिन्द्र मिवणः ॥ २ ॥ १४ (ल) ॥

[ धा. १९ । उ. ना. । ख १ ] ( ऋ ८१९।२ )

॥ इति षतुयं खण्ड ॥ ४ ॥

[ ५ ]

८१५ यस्तं मदी चरेण्यस्तेना यवस्वान्यसा । देवावीरयशस्सदा ॥ १ ॥ ( ऋ ९।६।१९ )

[ ८१२ ] ( धृष्णुया शतानीक इव ) दूरवीर जित प्रकार शत्रुसेनापर ( प्र जिगाति ) चढाई करता है, उस प्रकार इन्द्र ( दाशुपे वृत्राणि हन्ति ) दान देनेवालेके लिए शत्रुओंको मारता है, ( पुर-भोजसः ) बहुत सापन अपने पास रखनेवाले ( अस्य ) इस इन्द्रके ( दत्राणि ) दान लोभोंको, ( गिरेः रसाः इव ) जिस प्रकार पर्वतके जल लोभोंको तुल्य करते हैं, उसी प्रकार ( प्र पिन्विरं ) तुल्य करते हैं ॥ २ ॥

१ धृष्णुया शतानीक इव प्र जिगाति— दूर पुरुष अपने शीघ्रते शत्रुसेनापर आक्रमण करता और विजय प्राप्त करता है ।

२ दाशुपे वृत्राणि हन्ति— वह इन्द्र उपकार करनेवालोंकी उन्नतिके लिए शत्रुओंको मारता है, और दानाओंको रक्षा करता है ।

३ गिरे रसा इव अस्य दत्राणि प्र पिन्विरं— पर्वतके जल जित प्रकार सबको मिलते हैं, उस प्रकार इसके दान सबके लिए लाभकारी होते हैं ।

[ ८१३ ] हे ( यजिन् ) वज्रधारी इन्द्र ! ( भूर्णयः नरः ) हवि देनेवाले यजमान ( इदा त्वां अपीप्यन् ) आज पहले ही हिनसे तुझे सोम देते हैं । ( सः ) वह तू ( स्ताम-वाहसः ) स्तोत्र गानेवालोंकी स्तुतियोंको ( इह श्रुधि ) इस पहलमें सुन और ( स्वसरं उपगहि ) प्रसन्नानमें विराजमान हो ॥ १ ॥

[ ८१४ ] हे ( सु-शिमिन्द्रहिवः गिरेणः ) सुन्दर शिरस्त्राय धारण करनेवाले, घोडोंका पालन करनेवाले, स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( वैधसः ) तेरी सेवा करनेवाले, ( त्वया भूपन्ति ) तुझे उत्तम प्रकारसे पुत्रीभित करते हैं, ( मत्स्व ) तू तोम पीकर तुल्य हो, हे ( उपध्य ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( सुतेपु ) सोमरस तैम्बार होनेके बाद तुझे ( तव उपमानि अवांसि ) तेरी उपमा देने योग्य अस भी दिए जाते हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चम खण्डः ।

[ ८१५ ] हे सोम ! ( वैधवी ) देवताकी देने योग्य ( अघ दांस हा ) पापी राजाओंकी मारनेवाला और ( चरेण्यः मद्-य-ते ) श्रेष्ठ आनन्द देनेवाला जो तेरा रस है, ( तेन अन्धसा पयस्व ) उस सेवन करने योग्य रमके साथ पू-वाचनं छनता बा ॥ १ ॥

८१६ जमि<sup>१</sup>नु<sup>२</sup>ममि<sup>३</sup>त्रिय<sup>४</sup>सस्ति<sup>५</sup>नवा<sup>६</sup>ज दिवे<sup>७</sup>दिवे । गोपा<sup>८</sup>तिर<sup>९</sup>भसा<sup>१०</sup> असि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।१० )

८१७ सम्मि<sup>१</sup>श्रो<sup>२</sup> अरु<sup>३</sup>भा<sup>४</sup> भुवा<sup>५</sup> ह्यप<sup>६</sup>साभिने<sup>७</sup> धनु<sup>८</sup>भिः । सीद<sup>९</sup> च्छय<sup>१०</sup>नो<sup>११</sup> न योनि<sup>१२</sup>मा ॥३॥ १५ (चौ) ॥  
[ धा. १२। उ १। स्वर नास्ति ] ( ऋ ९।६।११ )

८१८ अयं<sup>१</sup> पूषा<sup>२</sup> रयि<sup>३</sup>भेगा<sup>४</sup> सोमः<sup>५</sup> पुना<sup>६</sup>नो<sup>७</sup> अपति<sup>८</sup> ।  
पति<sup>९</sup>वि<sup>१०</sup>श्वस्य<sup>११</sup> भूमनो<sup>१२</sup> व्यरु<sup>१३</sup>यद्रो<sup>१४</sup>दसी<sup>१५</sup> उभे ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१०।१० )

८१९ ससु<sup>१</sup> भिया<sup>२</sup> अनु<sup>३</sup>पठ<sup>४</sup> गावां<sup>५</sup> मदा<sup>६</sup>य घृ<sup>७</sup>ध्वयः ।  
सोमा<sup>८</sup>सः कृ<sup>९</sup>णवे<sup>१०</sup> पथः<sup>११</sup> पवमा<sup>१२</sup>नास इन्द्र<sup>१३</sup>वः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।१८ )

८२० य जो<sup>१</sup>जिष्ठ<sup>२</sup>स्तमा<sup>३</sup> भर<sup>४</sup> पवमा<sup>५</sup>न श्रवा<sup>६</sup>य्यम् ।  
या<sup>७</sup> पञ्च<sup>८</sup> चर्पणी<sup>९</sup>रभि रयि<sup>१०</sup> येन<sup>११</sup> वना<sup>१२</sup>महे ॥ ३ ॥ १६ (फु) ॥  
[ धा १९। उ. २। स्व ५ ] ( ऋ ९।१०।१९ )

८२१ वृषा<sup>१</sup> मती<sup>२</sup>नां<sup>३</sup> पवते<sup>४</sup> विचक्षणः<sup>५</sup> सोमो<sup>६</sup> अह्नां<sup>७</sup> प्रतरी<sup>८</sup>तापसां<sup>९</sup> दिवः ।  
प्राणा<sup>१०</sup> सिन्धू<sup>११</sup>नां कलशा<sup>१२</sup> अचिक<sup>१३</sup>ददिन्द्र<sup>१४</sup>स्प हा<sup>१५</sup>द्याविष्म<sup>१६</sup>मनी<sup>१७</sup>षिभिः ॥ १ ॥ ( ऋ ९।८।१९ )

[ ८१६ ] हे सोम ! तू ( अ-मित्रिय वृचं जमि ) शत्रुकी दुष्टोंका भाग करनेवाला है, तू (दिवे दिवे) प्रति-  
दिन (वाजं सस्तिः) मुझमें जाता है, और (गो-पाति.) गायका वान और (अद्य-सा असि) घोड़ोंका वान तू करता है ॥२॥

२ अ-मित्रियं वृचं जमि — शत्रुका बंध करना चाहिए ।  
२ दिवे दिवे वाजं सस्तिः — प्रतिदिन तू मुझ करता है ।

[ ८१७ ] हे सोम ! तू (सु-उपस्थाभि. घेनुभि. संमिदलः) सुखर गायके वृचमें मिलनेपर (दयेन न) जिस प्रकार वाज (योनि आसीद्) अपने घोसकेमें बंधकर (न अरुपः भुवः) तेजस्वी होता है, उसी प्रकार तू धमकता है ॥ ३ ॥

[ ८१८ ] (पूषा) धोषण करनेवाला (भ्रग) भ्रमनीय (रयिः) चनेके समान (अयं पुनातः अपति) यह सोम धाने जाते हुए कलशमें जाता है, (विश्वस्य भूमनः पतिः सोमः) सब प्राणियोंका पालन करनेवाला यह सोम (उभे रोदसी व्यरुयद्रो) दोनों छलोक और पृथ्वी लोक पर अपने तेजसे धमकता है ॥ १ ॥

[ ८१९ ] (भिया. घृध्वयः गावः) प्रेम और स्पर्धा करनेवाली गायें (मदाय स्रमनुपत) आनन्द प्राप्त करनेके किए खुलित करती हैं, (उ) यह सत्य है कि (पवमानासः इन्द्रवः) शत्रु होनेवाले तथा ऐश्वर्यवाले (सोमासः) सोमरस (पथ घृणवेते) अपने यहनके मार्गको बनाते हैं ॥ २ ॥

[ ८२० ] हे (पवमान) सोम ! (यः जोजिष्ठः) जो सोमरस शक्ति बढ़ानेवाला है, (य.) जो (यंच चर्पणीः) पांचजनोंके (अभि) प्राप्त होता है, और (येन रयिं धनामहे) जिसकी सहायतासे हम धन प्राप्त करते हैं उस (श्रवाय्य वा भर) प्रसन्ननीय रसकी हमें भरपूर दे ॥ ३ ॥

[ ८२१ ] (मतीनां वृषा) बुद्धिका यल बढ़ानेवाला (विचक्षणः) विवेक शाली, (अह्नां उपसां दिवः प्रतरीता) दिन, उषा और छलीका तेज बढ़ानेवाला (सिन्धूनां प्राणा) नदियोंका धारा (मनीषिभिः) विद्वानों द्वारा खुलित किए जाने धोषण पैसा यह सोम (इन्द्रस्य हादिं भाविशान्) इन्द्रके दूरपरमें प्रवेश करनेकी इच्छा करते हुए (कलशाच्च अचिक्रदत्) तथा शक्य करते हुए कलशमें जाता है, छाया जाता है ॥ १ ॥

- ८२२ मनीषिभिः पवते पूष्यैः कविर्नृमियसः परि कोशां८ असिष्यदत् ।  
त्रितस्य नाम जनयन्मधु शुश्रिन्द्रस्य त्रायु८ सख्याय वर्धयन् ॥ २ ॥ ( ऋ २।८६।१० )
- ८२३ अयं पुनान उपसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।  
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिर८ सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ३ ॥ १७ ( गी ) ॥  
[ भा. ३६ । ऋ. ३।२३. ४ ] ( ऋ २।८६।११ )  
॥ इति पञ्चम खण्डः ॥ ५ ॥
- ८२४ एवा क्षसि घोरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राधय मनः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।९१।२८९ )
- ८२५ एवा रातिस्तुविमघ विश्वेभिषोयि भ्रातृभिः । अषा चिदिन्द्र नः सत्वा ॥ २ ॥  
( ऋ ८।९२।१९ )
- ८२६ सो पु ब्रह्मिष तन्द्रयुर्वेवा वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥ १८ ( ति ) ॥  
[ भा. १४।७।१।२२. ३ ] ( ऋ ८।९२।३० )
- ८२७ इन्द्र विश्वा अवीवृषंसमुद्रन्वचसं गिरः ।  
रथीतम८ रथीनां वाजानां८ सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥ ( ऋ १।१।१ )

[ ८२२ ] ( पूष्यैः कविः ) पवते ही सानो यह तोम ( मनीषिभिः पवते ) भाजकों द्वारा छाना जाता है ( नृभिः पतः ) पतकोंओं द्वारा नियन्त्रित यह तोम ( कोशां८ पर्यसिष्यदत् ) कल्लामं जाता है, ( त्रितस्य इन्द्रस्य नाम जनयत् ) तीनों लोकोंमें प्रतिष्ठ होनेवाले इन्द्रके नामको जोर अधिक प्रतिष्ठ करता हुआ ( मधु ) यह मधुर रस ( इन्द्रस्य सख्याय ) इन्द्रको मित्रताके लिए ( त्रायु८ वर्धयन् ) कामका रोचन करता हुआ ( शूरम् ) बतनमें गिरता है ॥ २ ॥

[ ८२३ ] ( लोक-कृत् ) लोगोंका हित करनेवाला ( अयं पुनानः ) यह तोम पवित्र होता हुआ ( उपसो अरोचयत् ) उपाको प्रकाशित करता है, ( सिन्धुभ्यः अभवत् ) नदियोंको बढ़ानेवाला यह है, ( अयं हृदे ) यह तोम पेटमें जानेके लिए ( त्रिः-सप्त दुदुहानः ) इषकीस गापीका दूध निकालकर ( मत्सरः चारु पवते ) आनन्ददायक होकर उत्तम रीतिसे छाना जाता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पाँचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ ८२४ ] हे इन्द्र ! तू ( घोरयुः एव असि हि ) युद्धमें जोरोंका उपयोग करनेवाला है, क्योंकि तू ( शूर एव ) शूर है, ( उत स्थिर ) और युद्धमें स्थिर रहनेवाला है, इतलिए ( ते मनः ) तेरा मन ( राधय एव ) भराभना करनेके योग्य है ॥ १ ॥

[ ८२५ ] हे ( तुवी-मघ ) बहुत धनवान् ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( विश्वेभिः भ्रातृभिः ) धारण करनेवाले सब देवताओंको हृदि देनेवाले यजमानोंके पास तेरे द्वारा विप गुरु ( रातिः ) दान ( प्रायि चित् ) स्थिररूपसे रहते हैं, ( अथ ) इतलिए, हे इन्द्र ! ( नः सत्त्वा ) हमें धन देकर हमारी सहायता कर ॥ २ ॥

[ ८२६ ] हे ( वाजानां पते ) जमीके प बलीके स्वामी इन्द्र ! ( तन्द्र-युः ब्रह्मा इव ) आलसी ब्राह्मणके समान ( मा उ सु भुचः ) तू आलसी मत हो, अतितु ( गोतमः सुतस्य मत्सरः ) गोदूध मिश्रित सोमरससे भ्रातृन्वित हो ॥ ३ ॥

[ ८२७ ] ( विश्वाः गिरः ) सब स्तुतियों ( समुद्र-न्वचसं ) समुद्रके समान विस्तृत ( रथीनां रथीतमं ) रथी जोरोंमें भयानक थल ( वाजानां पतिं ) बलीके स्वामी ( सत्पतिं इन्द्र अवीवृषत् ) सतुद्रपतिके सारभण करनेवाले इन्द्रका धनं करवी है, और उसके मत्सको बढ़ाती है ॥ १ ॥

८२८ सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम श्वसस्वपते ।

त्वामभि प्र नौनुमा जेतारमपराजितम्

॥ २ ॥

( ऋ. १।१।१९ )

८२९ पर्वारिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यंत्यूवयः ।

यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम्

॥ ३ ॥ १९ (ली) ॥

[ भा. १८।३. नासिन। २२. ४ ] ( ऋ. १।१।१९ )

॥ इति पठः सप्त ॥ ६ ॥

॥ इति द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्ध ॥ २ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

[ ८२८ ] हे ( श्वसः पते ) बलोंकी रक्षा करनेवाले ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते स्वरेय वाजिनः ) तेरी मित्रतामें बलवान् होकर हम ( मा भेम ) न डरे, निभय हों, ( जेतारं ) विजयी ( अपराजितं ) पराजित न होनेवाले ऐसे ( त्वामि प्रणोनुमः ) तुझे हम प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

[ ८२९ ] ( इन्द्रस्य रातयः पर्वारिः ) इन्द्रके बान प्राचीनकालमें मिलते था रहे हैं, ( स्तोतृभ्यः ) स्तुति करने-वालोंकी ( गोमतः वाजस्य मघं ) माघसे उत्पन्न हुए मघरूपी धन ( यदा मंहते ) जब वह देना है, तब उसने ( रातयः ) बान ( न वि दस्यन्ति ) डर नहीं होते ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

## तृतीय अध्याय

### इन्द्र-देवता

इस अध्यायमें इन्द्र देवताके गुणोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ उग्रः [ ७१८ ]— इन्द्र उग्रवीर है, वह दूर है ।

२ पक्षीः— [ ७१७ ]— वह पक्षीके धारण करता है ।

३ इन्द्रः ( इन्द्र इन्द्र ) [ ७१७ ]— मनुष्योंकी फारता है ।

४ द्विरुपयः [ ७१७ ]— सोनेके आभूषण धारण करता है ।

५ बन्धो युजा ह्ययोः सत्या वा संमिद्वः [ ७१७ ]— पाशोंको मुचते ही रथमें जुड़ानेवाले ऐसे होविषाकर घोड़े इन्द्रके हैं ।

इन्द्रके घोड़े इतनी अच्युते तरह निर्मित हैं कि शब्द बोलते ही अपनी जगह जाकर खड़े हो जाते हैं ।

६ उक्थयः [ ८१४ ]— स्तुत्य, प्रशंसनीय ।

७ याजानां पतिः [ ८२६ ]— अथ और बलोंका स्वामी ।

८ हे इन्द्र ! सहस्र प्रघनेषु वाजेषु नः अथ [ ७१८ ]— हे इन्द्र ! हजारों बान जितमें प्राप्त होते हैं ऐसे युद्धमें हमारी रक्षा कर ।

युद्धमें हजारों प्रकारके बान मिलते हैं । मनुष्योंकी हारनेके बाद उसको जो सड़ा जाता है, उस युद्धमें पन प्राप्त होता है, अर्थात् युद्धमें विजय मिलनेके बाद मनुष्योंके मृतनेका अविषाकर विजयी बोरोंको है । यह प्रया वैशोको भाग्य घो, ऐसा शोचता है ।

९ हे इन्द्र ! वीर्युः शारः वसिः, स्थिरः अस्ति [ ८२४ ]— हे इन्द्र ! तू बोरोंके साथ रहकर मूर्खता बिलाने-वाला है, बीर युद्धमें अपनी जगह पर स्थिर रहनेवाला है । बर्बोरोंके उसको हार कभी भी नहीं होती, इतनापि यह इन्द्र युद्धमें अपनी जगह पर स्थिर रहता है ।

१० स्वर्पति नरः वृषेभ्यु हवन्ते [ ८०९ ]- उत्तम रीतिसे पालन करनेवाले इन्द्रको लोग मृदुर्न सहस्रधाके लिए बुलाते हैं ।

११ सुशिभिन् हरिचः गिर्वेषः [ ८१४ ]- उत्तम साक्षात् सामनेवाला और उत्तम घोड़े पालनेवाला प्रसंतनोय इन्द्र है ।

१२ धुष्यगुया सतानीक इव प्र जिगाति [ ८१९ ]- बर्षसे संकड़ों सैनिक पासमें रखनेवाले यौरके समान धनु पर इन्द्र आक्रमण करता है ।

१३ द्युमुपे वृषाणि हन्ति [ ८१२ ]- दाम देनेवालोंके कात्याण करनेके लिए उनके शत्रुओंको मारता है ।

१४ हे इन्द्र ! कारयः वाजसातो र्वा हवन्ते [ ८०९ ] - हे इन्द्र ! स्तुति करनेवाले अनेक यज्ञमें तुझे बुलाते हैं ।

१५ गाधिन् इन्द्रं बृहत् अनुपत, अर्किणः अर्केभिः धाणीः इन्द्रं [ ७९६ ]- स्तोत्र कहुनेवाले इन्द्रकी बृहत् साम भाकर स्तुति करते हैं, अर्चना करनेवाले मंत्रोक्ति प्रभासा करते हैं, सभीकी धाणी इन्द्रका धर्षण करती है ।

१६ अयस्थयः इन्द्रे अग्नौ बृहत् नमः सुपूर्तिके पेरधामहे [ ८०० ]- अपने संरक्षणको इच्छा करनेवाले इन्द्र और अग्निकी हम महान् स्तुति करते हैं, ऐंता कहते हैं ।

१७ विश्वाः गिरः समुद्रयघरसं रथानां रथीतमं यानानां पतिं स्वर्पतिं इन्द्रं अर्वावृधन् [ ८२७ ]- सम स्तुतिवां समुद्रके समान विद्याल, श्रेष्ठ रथी, धनोंके स्वामी, उत्तम अधिपति ऐसे इन्द्रके यशको बढाती है ।

१८ इन्द्रः वीर्याय चक्षसे दिधि सूर्य आरोहयत् [ ७९९ ]- इन्द्रने महान् प्रकाशके लिए सूर्यको धुलोक पर बढाया ।

१९ गोभिः अग्निं ध्वैरयत् [ ७९९ ]- किरणोंसे भेषोंको कोडा और पानी बरसाया ।

इन्द्रके ये गुण इन मंत्रोंमें आए हैं । इनमेंसे जो गुण अपनेमें लाये जा सकें उन्हें पाठक लानेका प्रयत्न करें, और जो गुण न आ सकते हों उनका आशय ही पाठक अपने मनमें धारण करें । जैसे " सबके प्रकाशके लिए इन्द्रने सूर्यकी आकाश पर बढाया " इस प्रकार सूर्यको बढाना धनुषीके धनुषको बात नहीं है, फिर भी यज्ञानुष्ठापनमें परे हुए धनुषीको ज्ञानका प्रकाश देकर उन्हें ज्ञानयुक्त करनेका काम साधकसे आसानीसे ही सकता है । अतः साधकोंको ऐसे काम अवश्य करने चाहिये ।

" बध्मपारो " इन्द्र है । हम " बध्मपारो " नहीं हो सकते, क्योंकि हमारे पास बज्र नहीं है, पर हम " बध्मपारो " हो ही सकते हैं । इस रीतिसे इन्द्रके गुणोंका ज्ञान इन मंत्रोंमें दिया गया है । उन्हें जनिं और उनके आशयको अपने अन्दर लानेका प्रयत्न करें । अब दूसरे देवोंके गुण देखिए—

### अग्नि-देवता

अग्नि देवताके विन्म गुण इस अध्यायमें आए हैं—

१ अग्निः [ ८९० ]- अग्नि-जो-आगने से आनेवाला, अत्यन्तक पशुवानेवाला ।

२ दिश्व-वेदुः [ ७९० ]- सर्वज्ञ, सब धनोंको अपने पास रखनेवाला ।

३ यक्षस्य तुन्तुः [ ७९० ]- यज्ञका सम्पादन उत्तम रीतिसे करनेवाला, सज्जनोंका साकार करनेवाला, सब लोगोंका समान करने और बात देकर सबका उद्धार करनेवाला ।

४ विद्वतिः [ ७९१ ]- प्रजाओंका पालन करनेवाला ।

५ पुर-मित्रः [ ७९१ ]- बहूतोंको मित्र ।

६ हृष्यधाह [ ७९१ ]- हृषिके देवोंको पहचानेवाला ।

७ द्रुतः [ ७९० ]- हृषिके देवों तक पशुवानेवाला द्रुत ।

८ होता [ ७९० ]- देवोंको बुलाकर लानेवाला ।

९ जशान-वृक्त-वर्हिषे इह देवान् आ यह [ ७९२ ]- उत्पन्न होते ही यजमानोंके लिए देवोंको बुलाकर ला ।

१० नः होता इंडयः अग्नि [ ७९० ]- तू हमारा होता और स्तुत्य है ।

यहां पर अग्निको देवोंको बुलाकर लानेवाला और यज्ञ शालामें उन्हें अपने अपने स्थान पर बंधानेवाला कहा गया है । यही यज्ञशाला हमारा शरीर है । इस शरीररूपी यज्ञशालामें नेत्र स्थानमें सूर्य, हृदयके स्थान पर चन्द्रमा, कुण्डलमें वायु, छातीमें इन्द्र, मुखमें अग्नि, कानमें विश्वा ऐसे अनेक अवयवोंमें अनेक देव आकर बसे हुए हैं और इस वेदुमें अपना-अपना काम वे करते हैं । ये वेदु शरीरमें उष्णता रूपी अग्निके रहनेवाला ही रहते हैं । शरीरमें ऊँचे होनेके पहले ही सब निकल जाते हैं । इसलिए कहा है कि अग्नि शरीररूपी यज्ञशालामें सब देवोंको बुलाकर लाता है और उन्हें अपने-अपने स्थान पर बंधाता है, और उनके द्वारा बहाने सब कार्य करता है । शरीरमें यह अनुभव सभी साधकोंको होना चाहिये । और अपने शरीर रूपी यज्ञशालामें सब देव कैंते और कहां रहते हैं, यह जानना चाहिये ।



यह जानकर उन्हें अपनायें। वे तेजस्वी हैं अतः हम भी तेजस्वी बनें।

२ विभ्यामिः ऊतिभिः मिथः वरुणः प्राथिता सुन्दर [ ७९५ ]- सब प्रकारके शरक्षणीके साथसेविषे मित्र और वधुन हमारा सरक्षण करते हैं।

अपने सरक्षणके साथन लोग अपने बात रखें और उल्लो झूठारोकी भी रक्षा करें।

३ नः सुराधसः करताम् [ ७९५ ]- हमें वे उत्तम धनसे युक्त करें।

### दान

ये देवता दान देते हैं। ये उदार हैं—

१ गा अर्बतः नः राये दुर विप्रुधि [ ७८३ ]- गाय और घोड़े तु देता है, इहनिद धन प्राणिके बरवाजोको हमारे लिए सोल दे।

२ अभिमुतः पुनात न रायि वीरयतां ह्यं आभर [ ७८९ ]- वत निकालनेके बाद छाने जानेवाला तु हमें धन और पुत्र पीत्रसे युक्त भरपूर मात्र दे।

धन और अन्न पुत्र पीत्रसे युक्त हो, घरमें अन्न और धनके साथ उनका उपभोग करनेवाले पुत्र पीत्र भी हों।

३ चित्र वज्रहस्त अद्रिचः [ धुर्युणुया महः स्तयान गां रथ्यां संकिर [ ८१० ] हे विलक्षण पराक्रमी वज्र धारण करनेवाले और किलेमें रहनेवाले इन्द्र ! अपनी सन्मान्यता शक्तिते बड़े स्तुति होनेके बाद गाय और घोड़े हमें उत्तम रीतिसे दे।

४ पुरुषसु, मघया जरिदुभ्यः सहस्रेण ह्य शिक्षति [ ८११ ] यज्ञत धनवान् इन्द्र अपने स्तोत्रार्थीको हजारी प्रकारके धन देता है।

५ पुरुभोजसः अस्य दूत्राणि प्रविणियरे [ ८१२ ]- बहुत अन्नवाले इस इन्द्रके शत्रु भी बहुतसे हैं।

६ गोयगतिः अदधमा [ ८१६ ]- गाय और घोड़ेका दान इन्द्र करता है।

७ इन्द्रस्य, रातयः पूर्वी [ ८२९ ]- इन्द्रके शत्रु परलेसे धनमें आ रहे हैं।

८ स्तोत्रुभ्यः गोमत्तः याजस्य मघ यदा भंते, उजयः न विदुस्यग्नि [ ८२९ ]- स्तुति करनेवालेके लिए जब गोमति उल्लर हुए अन्नधनी बन यह देना है, तब भी उत्तमे दान हम नहीं होते।

इस प्रकार इस अध्यायमें दानके बर्णन है।

### तेजस्वी

१ हे पवमान ! स्वर्दशं भानुना पुमन्तं त्या हया महे [ ७८४ ]- हे शुद्ध होनेवाले सोम ! तू आत्मवर्ता और अपने तेजसे तेजस्वी है, ऐसे तुझे सहायताके लिए हम बुलाते हैं।

यहा “ स्वः-दशं ” और “ भानुना पुमन्तं ” ये गुण सहायके हैं। तब कुछ अपनी शक्तिते ही बेलें, दूसरेकी शक्तिते न देखें, दूसरेकी दृष्टिते न देखें। जती प्रकार अपने तेजसे तेजस्वी हों, अपने तेजसे विश्वमें धमके।

### यशस्वी होना

१ जने नः यशसः वृधि [ ७७८ ]- मनुष्योंमें हमें यशस्वी कर।

२ तय श्वांसि उपमानि [ ८१४ ]- तेरे यज्ञ उपमा देनेके योग्य है।

इस लोकमें अपना यज्ञ बड़े ऐसे कीर्तिप्राप्तके करनी चाहिए। जीवन यशस्वी करना यहाँ अत्यन्त आवश्यक है।

### शत्रुको दूर करना

शत्रुको दूर करनेका उपायका अनेक प्रकारको इस अध्यायमें आया है।

१ विभ्याः द्विपः अप जहि [ ७७८ ]- सब शत्रुओंको दूर कर

२ ते देवयीः अघशंस-हा घरेण्यः मद्रः [ ८१५ ]- तेरा मान्य देवोसे सम्बन्ध जोड़नेवाला और पापियोंकी धारनेवाला है। पापी बुद्धोंको मार कर दूर करना चाहिए।

३ अभिमिथ्यं पुत्रं जग्मिः [ ८१६ ]- शत्रुओंको तु मारनेवाला है।

४ ते सत्ये, तय उत्तमे सुम्ने, पृतम्यतः सास-क्षामः [ ७७९ ]- तेरो मित्रता और तेरी तेजस्विताके युक्त हुए हम, तेना लक्षर अपने ऊपर बहते हुए बने मानेवाले शत्रुओंको हरा धरेंगे।

५ ते या भीमानि तिगमानि आयुधा धूर्षणे, समस्य निद्रः नः रक्षा [ ७८० ]- तेरे यज्ञ जो भयंकर और तीक्ष्ण शस्त्र शत्रुओंके नाश करनेके लिए है। उनसे डरना हमारे निश्चयसे हमारी रक्षा कर।

६ हे द्राघमरुपते इन्द्र ! ते सत्ये याग्निः मा भोम [ ८२८ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरे माघ मित्रता होने पर हम बलवान् बनकर शत्रुओंके धरेंगे।

७ जैतारं अपगतिनं त्या भनि प्रमोनुमः [ ८२८ ]-

विजयी और बनी थी पराजित वा होनेवाले तुमों हम बार-बार प्रणाम करते हैं ।

यस्य दूर करनेके विषयमें तथा शत्रुको हराकर उसके पास करनेके विषयमें इस तरहके वर्णन इस अध्यायमें हैं ।

### सोमके गुण

सोम हिमालयकी घाटी पर उगनेवाली एक बेल है । उसका रस श्वेत और यत्न करनेवाले पीते हैं, और उसके कारण उनका उत्साह बढ़ता है, दीर्घ बढ़ता है, और वे प्रत्येक काममें यशस्वी होते हैं । इस सोमके उत्तम गुण इस अध्यायमें बखित हैं—

- १ देव [ ७८१ ]- तेजस्वी, प्रकाश करनेवाला ।
- २ द्युमात् [ ७८१ ]- तेजस्वी, पथकनेवाला ।
- ३ इन्द्रुः [ ७८६ ]- शय्य करनेवाला ।
- ४ धृष्या [ ७७८ ]- बलवान्, शक्तिमान्, सामर्थ्यदायक ।
- ५ धृष्यमस्तः [ ७८१ ]- बल बढ़ानेका जिसका मत है ।
- ६ ऋषिः [ ७७७ ]- सानी, दूरदर्शी ।
- ७ अग्निव्युधः [ ७७५ ]- जगने रहनेवाला ।
- ८ सु-आयुधः [ ७८१ ]- उत्तमशस्त्र धारण करनेवाला ।
- ९ विश्व-चर्षणिः [ ७७६ ]- सब मनुष्योंका हित करनेवाला ।

१० विश्वता ईशान\* [ ७८१ ]- सबका स्वामी, सबका ईश्वर ।

सोमके ये गुण इस अध्यायमें दिए गए हैं । उनमें कुछ गुण लार्ककारिक हैं, जैसे “ ऋषि ” दूरदर्शी । विद्वान् सोम-रस पीते हैं, और उसके कारण उनको शानशास्त्र उत्तेजित होनी है । इसलिए यह सोमरस कवि है ।

दूरयुध सोमरस पीते हैं और उनका उत्साह बढ़ता है और उसके कारण वे शत्रुवीरताके काम कर सकते हैं, इसलिए यह धीर्षी और बल बढ़ानेवाला है । यह उत्तम शस्त्रोंका प्रयोग करता है, क्योंकि दूरबीर सोमरस पीकर और उत्साहित होकर धृष्टमें जाते हैं और वहाँ अपने शस्त्र शस्त्राधीन उपयोग करते हैं । इस प्रकार आलकारिक रीतिसे इन पर्वोंको समझें और जिस प्रकार सोम बलवान्, दूर और विजयी है, उसी प्रकार सायक भी श्वेत ।

### सोमकी रक्षणशक्ति

१ चित्राभिः ऊतिभिः घृचः पशुश्च [ ७७५ ]- बन्धुके विलक्षण तरलणकी शक्तिते श्रुतिके बन्धुकी पवित्र कर ।

८ [ साम द्वितीया २ ]

२ विश्वानि कात्या अभि पवस्व [ ७७५ ]- हमारे श्रुतिके काव्य गुण ।

३ हे धृष्यम् । धृष्याः ते शवः धृष्यये [ ७८२ ]- हे शतमान् देव । तेरे समान बलवान् बीरका सामर्थ्य विशेष प्रभावशाली है ।

४ घन धृष्या [ ७८२ ]- तेरा तेजस बल बढ़ानेवाला है ।

५ धृष्या धृष्या [ ७८२ ]- सोमरस बल बढ़ानेवाला है ।

६ त्वं धृष्या असि [ ७८२ ]- तू शक्त बढ़ानेवाला है ।

सोमरसके ये वर्णन उसके बल बढ़ानेवाले गुणके कारण हैं । सोमरस पीनेके शौर्यका बल बढ़ता है, इसलिए ये गुण सोमरसके ही हैं ऐसा कह दिया ।

### सोमके धीर्षी और तेज

सोम धीर्षवान् और तेजस्वी है ।

१ विश्वस्य भूमनः पतिः सोमः उभे रोदसी ध्यरयत् [ ८१८ ]- सब प्राणिमात्रका पालन करनेवाला सोम धृष्टी और श्रुतीकमें अपने तेजसे धमकता है ।

२ हे सु-आयुध । मग्दमानः सुवीर्य आ पपस्व [ ७८६ ]- हे उत्तम आयुध धारण करनेवाले सोम । तू मानव देनेवाला होकर हमें उत्तम धीर्ष प्रदान कर । इस स्थानपर शौनके उत्तम शस्त्र धारण करनेवाला बताया है, उसका सामर्थ्य यह है कि बीर लोग सोमरस पीते हैं, उससे उनका उत्साह बढ़ता है, और वे उत्तम शस्त्र लेकर लड़ते हैं । यह सब सोम पानसे होता है, इसलिए शौनकी ही उताव शस्त्रात्र लेकर लड़नेवाला बताया गया ।

३ हे पथमान । शोचिष्ठः श्रयाव्यं शम्भर, यः पचचर्षणि\* अभि तिष्ठति, येन रथिं घनामहे [ ८२० ]- हे सोम । तू सामर्थ्य बढ़ानेवाला है, इसलिए यश बढ़ाने बन्धु सामर्थ्य हमें भरपूर दे । पांच प्रकारके लौकिक कल्याण करनेके लिए तव्यार रह और हमें मन मिलें ऐसा कर ।

सोम पीनेसे ऐसा सामर्थ्य बढ़ता है ।

### सोमकी महिमा

१ तुभ्य महिम्ने इमा भुयता तस्थिरे [ ७७७ ]- तेरी महिमाके लिए ही ये सारे भुयन् स्थिर हैं, अर्थात् सब कागह तेरी महिमा ही सबका उत्साह बढ़ाती है ।

२ धृष्या धर्मिणिं धृभिपि [ ७८६ ]- तू अपने बलके शक्तियोंको धारण करता है ।

इस प्रकार शौनकी महिमा सबका उत्साह बढ़ाती है ।



सोममें उस्ताह बढ़ानेका सामर्थ्य है, इतना ही इस वर्णनका तात्पर्य है। इसलिए हम सोमके साथ मित्रता करें और उसके उस्ताहसे उस्ताहित होकर अपने अपने कार्य करते रहे।

### सोमके साथ मित्रता

१ पयमानस्य ते सप्रित्तवं आवृणीमहे [ ७८७ ]-  
सोमके साथ मित्रता करनेकी हम इच्छा करते हैं।

२ ते ऊर्मयः धारया पवित्रं अभि क्षरन्ति, तेभिः नः मृष्ट [ ७८८ ]- तेरी लहरें एक पारसे छलनीमें गिरती हैं, उससे हमें सुखी कर।

सोमसे उस्ताह बढ़ता है और महान् कार्य करनेकी क्षिति अपने अन्दर बढ़ती है। इसलिए उसके साथ मित्रता करनेकी इच्छा लोग करते हैं। यह मित्रता सोमरस पोनेरी इच्छा ही है। सभीकी इच्छा ऐसी रहती है, क्योंकि उस्ताह बढ़े और हम महान् कार्य करनेमें समर्थ हो ऐसी इच्छा सबके लिए स्वानाविक है।

### सोमपान

१ वयं सोम-पतये पूतक्षसा मित्रं परणं हवामहे [ ७९३ ]- हम सोमपान करनेके लिए पवित्र बलसे युक्त मित्र और वदणकी बुलाते हैं।

मित्र और वदणके बल पवित्र कामोंमें बड़े उपयोगी हैं। अतः उनको सोमपानके लिए बुलाया जाता है। इन्द्र आदि दूसरे देवोंकी भी ऐसे ही सोमपानके लिए बुलाया जाता है। सब देव यज्ञमें आते हैं, सोम पीते हैं और महान् सार्वजनिक हितके काम करते हैं। उसी प्रकार दूसरे भी यज्ञमें जाकर सोमरसका पान करते हैं और उस्ताहसे अपना बर्तव्य करते हैं।

जोका थाटा इनमेंसे जिसकी इच्छा हो उसे मिलाते हैं, फिर उसका हवन होता है और अन्तमें उसे लोग पीते हैं।

### सोममें पानी मिलाना

१ समुद्रियाः आपः पवस्व [ ७८५ ]- अन्तरिक्षकी समुद्रका पानी मिलाओ। पृथ्वीके समुद्र खारे पानीके होते हैं। और वह धारा पानी पीनेके लायक नहीं होता। अन्तरिक्षमें मेघ होते हैं, और वह नीचे पानीका समुद्र है। उसका, कुएरा अथवा नदी और नहरोंका पानी सोमरसमें मिलाया जाता है।

२ आयुभिः मर्मृज्यमानः यत् अग्निः पारिपिच्यसे द्रोणे सप्रथयं अद्रुणे [ ७८५ ]- जब अग्निबल होयको छानते हैं, तब वह पानीमें मिलाया जाता है और द्रोण-फलज - में उसे स्थान मिलता है, अर्थात् छना हुआ सोमरस कलसेमें भरा जाता है।

३ रुद्रान्ते वर्णं पारे भरमाणः सित्तं गन्तु पर्येपि [ ८०८ ]- तेजस्वी रग धारण करके पानीसे साथ मिलकर पायके दूधकी इच्छा करते हुए सोमरस आगे जाता है।

छाननेके बाद उसमें पायका दूध मिलाया जाता है। सोमकी छलनीसे छाननेका वर्णन इस प्रकार है।

१ अया विपानया हरिः धारया पवस्व [ ८०५ ]- हे सोम ! इस अगुलियोंसे निचाला गया हरे रगका तू एक धारमें छनता जा।

२ अयं पुनानः अर्पति [ ८१८ ] यह सोम पवित्र होता-छनता-हुआ नीचेके बर्तनमें गिरता है।

३ मुमि यत् कोदान् पर्यसिप्यद्व [ ८२२ ]- याजकोंके द्वारा निचाला गया यह सोमरस बलसेमें गिरता है।

४ कलशान् अचिप्रद्व [ ८२१ ]- छनता हुआ कलसेमें डाल करता हुआ जाता है।

### सोमरसमें दूध मिलाना

छाननेके बाद सोमरसमें इच्छानुसार दूध, वही इत्यादि मिलाया जाता है । इस विषयमें इस प्रकार वर्णन है—

१ धेनवः तुभ्यं धामन्ति [ ७७७ ]- गायें घृग गीयके पास दौड़ती आती हैं । गायका दूध सोमरसके पास लाया जाता है ।

२ रस्तायः पयसा पिन्वमानः मधुमन्तं अंनुं ईरयन् पयि [ ८०७ ]- फरसेसे मोटे फिर गायके दूधसे और अधिक मोटे दूध हूए सोमको प्रेरित करते हूए तू जाता है ।

३ प्रिया घृग्ण्यः गाव मदाय समनूपत पयमातासः इन्द्यः सोमासः पयः कृण्वते [ ८१९ ]- प्रेम और स्पर्धा करनेवाली गायें सोमके साथ मिलनेके आनन्दकी प्राप्ति करनेकी इच्छा करती हैं । दूध सोम दूध प्राप्त करते हैं ।

४ लोककृत् अयं पुनानः सिन्धुभ्यः अमयत् । अयं हृदे प्रिः सप्त बुधानः मात्सर्य चाप पयते [ ८२३ ] सोमोहा हित करनेवाला यह छाना जानेवाला सोम गदियोंको बदलनेवाला है । इसके लिए इरवीस गायें दुही जाती हैं, यारमें यह आनन्द देनेवाला होता है ।

अर्थात् इसमें पहले नदीका पानी मिलाया जाता है, यारमें गायका दूध ।

५ गोमिनः सुतस्य मत्स्य [ ८२६ ]- गोदुग्ध मिश्रित सोमरससे आनन्दित हो ।

इस प्रकार सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है और फिर यह पिया जाता है ।

### सुभाषित

१ अश्रियः विनाभिः जतिभिः वचः पयस्व [ ७७५ ]- नेता होकर अपने बिलक्षण सखागणोंसे अपने वचन पवित्र कर ।

तू अशरीरी हो, अपने पास सखगणके साथमेका साथ करके रख और अपनी वाणीको पवित्र निवारोंसे मूक्त कर

२ विश्वानि काव्या भाषि [ ७७५ ]- सब श्रेष्ठ काव्योंकी देस, सुन ।

३ हे विश्व-चर्यजे ! अश्रियः वाचः ईयत् पयस्व [ ७७६ ]- हे सबके निरीक्षण करनेवाले ! नेता होकर अपनी वाणीको प्रेरणासे सबको पवित्र कर ।

४ हे कोरे ! तुभ्य महिम्ने इमा भुवना तस्यिरे [ ७७७ ]- हे इन्द्रकी सानी पुरुष ! तेरी महानताके लिए ही ये लोक स्थिर हैं ।

५ धेनवः तुभ्यं धामन्ति [ ७७७ ]- गायें तुझे देवकर दौड़ती हुई आती हैं । ( इतना प्रेम माय पर है ) ।

६ घृया पयस्व [ ७७८ ]- बलवान् होकर मुझ हो ।

७ जने न यशसः कृधि [ ७७८ ]- लोगोंमें हमें यशस्यो कर ।

८ विश्वाः द्विपः नप जहि [ ७७८ ]- तू शत्रुओंका पराभव कर ।

९ यस्य ते सस्ये, तव उत्तमे घुमने, पृतन्यतः सप्तसप्तम्यम् [ ७७९ ]- तेरे साथ निवृत्ता होनेके बाद तेरे उत्तम तेजसे तेजस्वी होकर, संयुक्त साथ हम पर चल कर आनेवाले शत्रुको हम हरायें ।

१० ते या भूमिनि सिग्मानि आयुधा धूर्वणे, समस्य निदः न रक्ष [ ७८० ]- तेरे जो भयकर लोभण अस्त्र दादके नाश करनेके लिए है, उनसे सहान्वित हमारे सब निन्दक शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर ।

११ घृया घृमान् असि [ ७८१ ]- तू बलवान् और तेजस्वी हो ।

१२ हे देव ! घृया घृपसतः घृया धर्मणि दश्रिषे [ ७८१ ]- हे देव ! तू बलवान् है बल बजानेका तेरा वत है, ऐसा तू बलवान् होकर अपने बरतय स्वय करता है ।

१३ घृयन् ! घृण्यः ते दाय घृण्यम् [ ७८२ ]- बल बढ़ानेवाले तेरे सामर्थ्य अत्यन्त प्रभावशाली है ।

१४ त्वं घृया असि [ ७८२ ]- तू निश्चयसे बलवान् है ।

१५ नः राये दुरः त्रिभुधि [ ७८६ ]- हमारे लिए सम्पत्ति प्राप्त होनेके परवर्तने लोभ दे ।

१६ इवाः-दशं भानुना घुमन्तं रवा हवामहे [ ७८७ ]- स्वयं देवनेकी शक्तिसे घुमन तथा स्वयमे तेजसे तेजस्वी हूए तेरी हम प्रशंस करते हैं ।

१७ आयुभिः ममृज्यमान [ ७८५ ]- मनुष्योंके द्वारा मुझ होनेवाला ।

१८ सु-आयुध ! मग्दमानः सुवीर्ये आ पयस्व [ ७८६ ]- हे उत्तम शस्त्रोंकी भासमें रखनेवाले वीर ! तू आनन्द बदलनेवाला होकर उत्तम वीरता प्रकट कर ।

१९ पयमानस्य ते सखिण्ये आवृणीमहे [ ७८७ ]- पवित्रता करनेवाले तेरी बोस्तीकी हृद दण्डा करते हैं ।

२० नः सुडय [ ७८८ ]- हमें सुखो कर ।

२१ विश्वतः ईशानः नः रथिं वीरवर्तां इयं आ भर  
[ ७८९ ]- तू तवका स्वामी होकर हमें वीर पुत्रोंके युक्त  
घन और अन्न भरपूर दे।

२२ होतारं विश्व-वेदसं यक्षस्य सुक्रतुं दूतं आग्निं  
पृष्ठाभिहे [ ७९० ]- देवताओंकी युक्तकर कलनेवाले, सर्वज्ञ,  
यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले दूत अग्निका हम वरण  
करते हैं।

२३ विदपतिं पुराप्रियं आग्निं सदा हवन्ते [ ७९१ ]  
- प्रजाओंके पालक बहुतांको प्रिय ऐसे अग्नीको हम हमेशा  
अपने पास बुलाते हैं।

२४ इह देवान् आ वह [ ७९२ ]- यहां देवोंकी बुला ला।

२५ नः ईडयः अलि [ ७९२ ]- प्रसंसाके योग्य तू  
हमारा सहायक है।

२६ पूत-दक्षसा वयं हवामहे [ ७९३ ]- अिनके पवित्र  
सामर्थ्य हैं, उन्हें हम बुलाते हैं।

२७ अनेन अनावृधौ ज्योतिषस्पती हुये [ ७९४ ]  
- सत्यसे सत्यपमं बढानेवाले तेजस्वी घोरोंको मैं बुलाता हूँ।

२८ विश्वामि-ऊतिभिः प्राथिता भुवत् [ ७९५ ]-  
सब संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करनेवाला हो।

२९ नः सुराघसः कर्ता [ ७९५ ]- हमें उत्तम  
धनसे युक्त कर।

३० गाथिनः इन्द्रं वृहत् अनुपत [ ७९६ ]- हे साम-  
पायको! तुम इन्द्रकी बृहत् सामके द्वारा स्तुति करो।

३१ उग्रः उग्रामिः ऊतिभिः सहस्रप्रघनेषु नः अथ  
[ ७९८ ]- उग्रवीर, प्रबल संरक्षणके साधनोंसे हजारों  
प्रकारके धन प्राप्त होनेवाले यज्ञमें हमारी रक्षा कर।

३२ इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे दिवि सूर्ये आरोहयत्  
[ ७९९ ]- इन्द्रने विशेष प्रकारके लिए छलोकमें सूर्यको  
बढाया।

३३ विश्वा ओजसा दधानः [ ८०३ ]- सब सामर्थ्योंको  
पारण कर।

३४ स्व-ईशं याजिनं त्वा याजेषु हिन्ये [ ८०४ ]-  
आरम्भदर्शी बलवान् ऐसे तुझे संघाममें जानेकी प्रेरणा करता हूँ।

३५ धाजेषु युजं चोदय [ ८०५ ]- युद्धमें जानेके लिए  
मित्रको प्रेरणा दे।

३६ आजौ इन्द्रस्य वसुतु आ शृष्वे [ ८०६ ] युद्धमें  
इन्द्रके साथ सुनाई देते हैं।

३७ चक्षस्तुं नमयन्, मदाय पयस्व [ ८०८ ]- यय  
करनेवाले सूर्यको शूकाकर आनन्द बढानेके लिए शुक हो।

३८ सतपतिं नरः वृत्रेषु हवन्ते [ ८०९ ]- सजनोंके  
पालन करनेवालेको लोग युद्धमें सहायताके लिए बुलाते हैं।

३९ हे धक्षहस्त अद्रिवन्! धृष्ण्याया मद्ः गां  
रथ्यं संकिर [ ८१० ]- हे वधवापी इन्द्र! अपनी धनु-  
बाणक शक्तिसे आनन्दित हुआ तू माय और घोड़े हर्षे दे।

४० जिग्मुषे सत्रा याजं [ ८१० ]- विजयी वीरको  
एक साथ अन्न और बल मिलते हैं।

४१ पुरुवसुतुः मयथा जरित्भ्यः सहस्रेण शिक्षति  
[ ८११ ]- बहुत धनवान् इन्द्र स्तोत्रोंकी अनेक प्रकारके  
धन देता है।

४२ यथा विद्रे सुराघसं इन्द्रं अमि प्र अर्चं [ ८११ ]  
- जैसे तुम जानते हो वेने-ही इन्द्रकी आराधना करो।

४३ धृष्ण्याया शतानांशः इय प्र जिगाति [ ८१२ ]-  
शूरवीर इन्द्र सन्तुको सेना पर आक्रमण करता है।

४४ दाशुषे वृत्राणि हन्ति [ ८१२ ]- रातके हितसे  
लिए शत्रुओंकी धारता है।

४५ पुरुभोजसः अस्य द्वाप्राणि प्र पिन्दिरे [ ८१२ ]-  
बहुत अन्नसे युक्त इस इन्द्रके क्षान्तभीके लिए लाभकारी है।

४६ तव उपमानि अंधासि [ ८१४ ]- तेरे यज्ञ उपमा  
देनेके योग्य हैं। तेरे अन्न उपमाके योग्य हैं।

४७ ते मद्ः देववीः अधर्दांस-हा वरेण्यः [ ८१५ ]-  
तेरे आनन्द देवोंके पास पहुंचनेवाले और पापियोंका नाश  
करनेवाले तया थोड़ हैं।

४८ अमित्रियं वृत्रं जघिनः [ ८१६ ]- तू शत्रुहणी  
दुष्टोंका नाश करनेवाला है।

४९ दिधे दिधे वाजं सस्तिनः [ ८१६ ]- प्रतिदिन तू  
युद्ध करता है।

५० गोपातिः अश्वसा [ ८१६ ]- तू गाओं और घोड़ोंका  
रक्षक करता है।

५१ अरयः सुयः [ ८१७ ]- तू तेजस्वी हो।

५२ पूषा भगः रथिः [ ८१८ ]- यह घोषण करनेवाला,  
नाथ्य बढानेवाला और धन देनेवाला है।

५३ विश्वस्य मूमनः पतिः [ ८१८ ]- सब प्राणियोंका  
पालन करनेवाला।

५४ ओजिष्ठः शवाय्यं वा भर [ ८२० ]- बल बढाने-  
वाला तू प्रसन्ननीय धन भरपूर दे।

५५ येन रथि वनामहे [ ८२० ]- जिससे हमें धन  
मिले ऐसा कर।

५६ मतीनां वृषा [ ८२१ ]- तू बुद्धिवा बल बढाने-  
वाला हो ।

५७ पूर्ण्य कवि [ ८२२ ]- पहलेते ही तू शान्ति  
प्रतिष्ठ है ।

५८ लोककृत् पुनामः उपसः अरोच्यत् [ ८२३ ]-  
लोभाका हितकारी, यह पवित्र करनेवाला उप.नाममें  
प्रकाशित होता है ।

५९ हे इन्द्र ! वीर्यु. असि [ ८२४ ]- हे इन्द्र ! तू  
धोरोका उपयोग करनेवाला है ।

६० शूरः एव असि [ ८२४ ]- तू शूर है ।

६१ स्थिरः असि [ ८२४ ]- तू मुझमें अपनी जगह  
पर स्थिर रहता है ।

६२ ते मनः राध्यं [ ८२४ ]- तेरा मन आराधना  
करनेके योग्य है ।

६३ रातिः धायि चित् [ ८२५ ]- तेरे दान स्थिर,  
ठिकनेवाले हैं ।

६४ नः सचा [ ८२५ ]- हमारा मित्र हो ।

६५ तन्द्रयुः मा सु भव [ ८२६ ]- तू आत्मो मत हो ।

६६ विश्वाः गिः ससुद्र-व्यचक्षं, रथानां रथी-  
तमं, सत्पतिं इन्द्रं अवीकृषत् [ ८२७ ]- हम स्तुतिया  
समुद्रके समान बिलसत, रथीकीरोंमें श्रेष्ठ, बलोंके स्वामी,  
सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले इन्द्रकी महिमा बढाते हैं ।

६७ हे शायस-पते इन्द्र ! ते सरये याजिनः मा  
भेम [ ८२८ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरी निव्रताने कारण  
हम बलवान् होकर निर्भय होवें ।

६८ जेतारं अ-पराजितं अग्नि प्रपोनुमः [ ८२८ ]-  
जिनकी ओर अपराजित वीरकी हम प्रणाम करते हैं ।

६९ इन्द्रस्य रातयः पूर्वा. [ ८२९ ]- इन्द्रके दान  
प्राचीनकालते चलते आ रहे हैं ।

७० मध यद्वा मंहते, रातयः न विदस्यन्ति [ ८२९ ]  
- जब यह पान देता है, तब उसके दान कम नहीं होते ।

## उपमा

इत अध्यायमें निम्न उपमायें आयीं हैं ।

१ अश्व. न [ ७८३ ]- घोड़ेके समान (संचक्रातः)  
सोमरत्त छनते समय शब्द करता है ।

२ शोणः वृषा गाः अभि वनिःकृद् [ ८०६ ]- लाल  
रंगका बेल जितप्रकार गायकी तरफ देखकर शब्द करता है,  
उसी प्रकार सोम गायके दूधके साथ मिलते हुए शब्द करता है ।

३ जिग्युषे सत्रा वाजं न [ ८१० ]- जिनकी पुष्ट्यकी  
एक साथ तू घोड़े इत्यादि देता है, उसी प्रकार हमें दे ।

४ गिरेः रस्ताः इव [ ८१२ ]- पर्वतोंके जैसे जलप्रवाह  
बहते हैं, उसी प्रकार इन्द्रके दान लोभोंकी ओर बहते हैं ।

५ द्येनः न योनिं व्यासीदन् [ ८१७ ]- बान पक्षी  
जितप्रकार अपने स्थान पर बैठ कर सुसोभित होता है,  
वीर ( न अर्थात् भुवः ) जितप्रकार यह चमकता है, उसी  
प्रकार सोम चमकता है ।

इत प्रकार इत अध्यायमें उपमायें आई हैं ।

## तृतीयाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋषिदेवता	ऋषिः	देवता	छन्दः
७७५	१।६५।१५	जगदग्निर्भागीव	पशुधानः सोम.	गायत्री
७७६	१।६७।२६	जगदग्निर्भागीव.	"	"
७७७	१।६७।१७	जगदग्निर्भागीव.	"	"
७७८	१।६१।१८	अग्नीधुरागिरस	"	"
७७९	१।६१।१९	अग्नीधुरागिरस	"	"

मंत्रसंख्या	श्राव्यवेदस्थानं	श्राव्यः	श्रेयता	छन्दः
७८०	१।३।१।३०	अमहीमुरागिरसः	पवमान. सोमः	गायत्री
७८१	१।३।१।३१	कश्यपो मारीचः	"	"
७८२	१।३।१।३२	कश्यपो मारीचः	"	"
७८३	१।३।१।३३	कश्यपो मारीचः	"	"
७८४	१।३।५।४	भृगुर्वाहणिर्जमदग्निर्भाग्यो वा	"	"
७८५	१।३।५।५	भृगुर्वाहणिर्जमदग्निर्भाग्यो वा	"	"
७८६	१।३।५।५	भृगुर्वाहणिर्जमदग्निर्भाग्यो वा	"	"
७८७	१।३।१।४	अमहीमुरागिरसः	"	"
७८८	१।३।१।५	अमहीमुरागिरसः	"	"
७८९	१।३।१।६	अमहीमुरागिरसः	"	"

( २ )

७९०	१।३।१।३	मेधातिथिः काण्वः	अग्निः	"
७९१	१।३।१।३	मेधातिथिः काण्वः	"	"
७९२	१।३।१।३	मेधातिथिः काण्वः	"	"
७९३	१।३।३।४	मेधातिथिः काण्वः	मित्रावरुणौ	"
७९४	१।३।३।५	मेधातिथिः काण्वः	"	"
७९५	१।३।३।६	मेधातिथिः काण्वः	"	"
७९६	१।७।३	मयुच्छन्दा वैश्वामित्रः	इन्द्रः	"
७९७	१।७।३	मयुच्छन्दा वैश्वामित्रः	"	"
७९८	१।७।४	मयुच्छन्दा वैश्वामित्रः	"	"
७९९	१।७।३	मयुच्छन्दा वैश्वामित्रः	"	"
८००	७।१७।४	वसिष्ठो मंत्रायहणिः	इन्द्राग्नी	"
८०१	७।१७।५	वसिष्ठो मंत्रायहणिः	"	"
८०२	७।१७।६	वसिष्ठो मंत्रायहणिः	"	"

( ३ )

८०३	१।३।५।१०	भृगुर्वाहणिर्जमदग्निर्भाग्यो वा	पवमान सोम	"
८०४	१।३।५।११	भृगुर्वाहणिर्जमदग्निर्भाग्यो वा	"	"
८०५	१।३।५।१२	भृगुर्वाहणिर्जमदग्निर्भाग्यो वा	"	"
८०६	१।३।७।१३	उपमन्वुर्वासिष्ठः	"	त्रिष्टुप्
८०७	१।३।७।१४	उपमन्वुर्वासिष्ठः	"	"
८०८	१।३।७।१५	उपमन्वुर्वासिष्ठः	"	"

( ४ )

८०९	६।४।६।१	वसुवर्हिस्पत्यः	इन्द्रः	प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती )
-----	---------	-----------------	---------	--

मंत्रसंख्या	ऋषेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
८१०	६।४६।९	शंभुर्वाहंस्तरयः	इन्द्रः	प्रगाथः- ( विषमा बृहतो, समा सतो बृहतो )
८११	८।४७।१	वाल्सित्याः प्रस्कण्वः बाण्वः	"	"
८१२	८।४७।२	वाल्सित्याः प्रस्कण्वः बाण्वः	"	"
८१३	८।४९।१	नृमेघ आगिरसः	"	"
८१४	८।४९।२	नृमेघ आगिरसः	"	"

( ५ )

			पथमानः सोमः	पाथत्री
८१५	९।६१।१९	अमहीमुरागिरसः	"	"
८१६	९।६१।२०	अमहीमुरागिरसः	"	"
८१७	९।६१।२१	अमहीमुरागिरसः	"	"
८१८	९।६०।१७	नहुषो मानवः	"	अनुष्टुप्
८१९	९।६०।१८	नहुषो मानवः	"	"
८२०	९।६०।१९	नहुषो मानवः	"	"
८२१	९।६६।१९	सिक्ता नियावरी	"	"
८२२	९।६६।२०	सिक्ता नियावरी	"	"
८२३	९।६६।२१	पुंनिनयोऽजाः	"	"

( ६ )

				पाथत्री
८२४	८।३९।२८	श्रुतकसः सुकसो वा आगिरसः	"	"
८२५	८।३९।२९	श्रुतकसः सुकसो वा आगिरसः	"	"
८२६	८।३९।३०	श्रुतकसः सुकसो वा आगिरसः	"	"
८२७	१।११।११	जेता मधुच्छान्दसः	"	"
८२८	१।११।१२	जेता मधुच्छान्दसः	"	"
८२९	१।११।१३	जेता मधुच्छान्दसः	"	"

८४३ पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥ ३ ॥ ४ ( या ) ॥  
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १।६१।१५ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

८४४ अग्निनाग्निः समिष्यते कविर्गृहपतिर्गुवा । हव्यवाद् जुह्वास्यः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१२।६ )

८४५ यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपयति । तस्य स प्राविता भव ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१२।८ )

८४६ यो अग्निं देववीतये हविष्मात् आविवासति । तस्मै पावक मृडय ॥ ३ ॥ ५ ( रि ) ॥

[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १।१२।९ )

८४७ मित्राद्दुवे दूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । वियं घृताचींसाधन्ता ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१३।० )

८४८ ऋतेन मिश्रावरुणावृतावृथावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्वमाश्राये ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१३।८ )

८४९ कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥ ३ ॥ ६ ( व ) ॥

[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।१३।९ )

[ ८४३ ] हे सोम ! ( वाजिमिः ) अनेक यस्तियसि ( द्युतानः ) तेजस्वी बोधनेवाला ( देव-वीतये पुनानः ) देवोंको देनेके लिए पवित्र किया जानेवाला ( हितः ) हितकारी तू सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं याहि ) इन्द्रके स्थानके पास जा ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ८४४ ] ( कविः ) दूरदर्शी ( गृह-पतिः ) यज्ञगृहका रक्षण करनेवाली ( गुवा ) तपण ( हव्य-वाद् ) हविको देवोंतक पहुचानेवाली ( जुह्वास्यः अग्निः ) बृहन्नामक मुखवाली अग्नि ( अग्निना समिष्यते ) मगयते उत्पन्न की जानेवाली अग्निको सहृदयतासे प्रबोध की जाती है ॥ १ ॥

[ ८४५ ] हे ( अग्ने देव ) अग्ने ! ( यः हविष्पतिः ) जो हवियवान्को देवोंतक पहुचानेवाला यजमान ( दूतं स्वां सपयति ) तुझ दूतकी उत्तम प्रकारसे पूजा करता है, तू ( तस्य प्राविता भव ) उसकी पूरी तरह सेवा कर ॥ २ ॥

[ ८४६ ] हे ( पावक ) गृह करनेवाले अग्नि ! ( यः हविष्मान् ) जो हवि अर्पण करनेवाला यजमान ( देव-वीतये ) देवोंको देनेके लिए ( अग्निं वा विवासाति ) तुझ अग्निकी आराधना करता है, तू ( तस्मै मृडय ) उसे हल्की कर ॥ ३ ॥

[ ८४७ ] मैं ( दूत-दक्षं मित्रे ) पवित्र बलवाले मित्रको और ( रिशा-असं वरुणं च ) हितक धातुके वरुणको ( दुवे ) बुलाता हूँ । ये मित्र और वरुण ( घृताचींमियं स्वाधन्ता ) जल उत्पन्न करनेके कार्य तिष्ठ करते हैं ॥ १ ॥

[ ८४८ ] ( मिश्रा-वरुणौ ) मित्र और वरुण ये देव ( ऋता-सृष्टी ) सत्य यज्ञको ब्रह्मानेवाले हैं, ( ऋत-स्पृष्टी ) सत्यकी सार्थक करनेवाले हैं, हे देवो ! तुम दोनों ( बृहन्तं क्रतुं ) इस ब्रह्मन्त यज्ञको ( आश्रये आश्राये ) सत्यसे पूर्ण करते हो ॥ २ ॥

[ ८४९ ] ( कवी ) दूरदर्शी ( तुवि-जाता ) अनेक कर्मोंके लिए उपयोगी ( उरु-क्षया ) अनेक स्थानोंमें रहनेवाले ( मित्रा-वरुणा ) मित्र और वरुण ( नः ) दक्ष अर्पणसे दधाते ) हमारे धनको और कार्यको धृष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

८५० इन्द्रेण सध्वि दधसे संजगमानो अविभ्युषा । मन्द्रु समानवर्चसा ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।७ )

८५१ आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्रमेरिरे । दधाना नाम यत्त्रियम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।४ )

८५२ वीडु चिदारुजन्तुभिर्गुदा चिदिन्द्र वाह्निभिः । अविन्द उस्त्रिया अनु ॥ ३ ॥ ७ ( ति ) ॥  
[ धा० १४।७०।१।स्त्र० ३ ] ( ऋ. १।६।६ )

८५३ ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्षतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।६०।४ )

८५४ उग्रा विघनिना मुख इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडात इदृगे ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।६०।५ )

८५५ हयो मृप्राणया हयो दासानि सत्पती । हयो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥ ८ ( पी ) ॥  
[ धा० १०।७०।१।स्त्र० ४ ] ( ऋ. ६।६०।६ )

॥ इति द्वितीय पञ्च. ॥ २ ॥

[ ३ ]

८५६ अग्नि सोमास आयवः पवन्ते मयं मदम् ।

समुद्रस्यधि विष्टपं मनोपिणो मत्सरासो मदन्नुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०७।१४ )

[ ८५० ] ( मन्द्रु ) अलम्बित ओर ( समान वर्चसा ) समान तेजस्वी ऐसे मन्वृषण ( अविभ्युषा इन्द्रेण सं जगमानः ) निर्भय इत्येके साय रहकर ( सँ दधसे हि ) उत्तम दीवते हँ ॥ १ ॥

[ ८५१ ] ( आदह यद् ) शीघ्र ही ( स्वधां अनु ) अग्निको लय्य बरके ( यत्त्रियं नाम दधानाः ) प्रत्य नामको धारण करनेवाले पक्ष ( पुनः गर्भत्वं ईरिरे ) फिर गर्भकी प्राप्ति होती है। ॥ २ ॥

[ ८५२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( वीडु चित् ) सुडू किन्कीं भी ( आ रुजन्तुभिः ) सोइनेवाले ( वः-हनिः मरुद्भिः ) तेजस्वी मत्सोने ( गुदा चित् ) गुहामे रहनेवाली ( उस्त्रियाः ) गायोंकी ( अनु-अविन्द्यः ) प्राप्ति किया ॥ २ ॥

[ ८५३ ] ( ता इन्द्राग्नी हुवे ) उस इन्द्र और अग्निको मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ, ( ययोः ) तिन दोनोंके द्वारा ( पुराकृतं निभ्वं इत् ) पहले किए गए सभी पराक्रमोंकी ( पप्ने ) स्तुति की जाती हँ, वे इन्द्र और अग्नि ( न मर्षतः ) स्तुति करनेवालोंको दुःख नहीं देते ॥ १ ॥

[ ८५४ ] वे ( उग्रा ) उग्रभोर ( मुखः विघनिना ) गन्धुका नाश करनेवाले हँ, उन ( इन्द्र-अग्नी ) इन्द्र अग्निको हम सहायताके लिए ( हवामहे ) बुलाते हँ, ( तां ) वे ( इदृगे ) इस प्रकार इस सप्तापमें ( नः मृडातः ) हमें सुखी करें ॥ २ ॥

[ ८५५ ] हे इन्द्र और अग्नि ! ( आयो ) श्रेष्ठ पुन ( मृप्राणि हयः ) गन्धुको मारो, ( सत्पती ) सज्जनोंके पालन करनेवाले तुम ( दासानि हयः ) नीचोंको बुर करो, उसी प्रकार ( निभ्याः द्विषः अप ह्यः ) सब द्वेष करनेवालोंका नाश करो ॥ ३ ॥

॥ यद्वां दुस्तर खण्ड समस्तं हुक्वा ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ८५६ ] ( मनोपिणः आयवः ) सुडिनात् अविज ( मत्सरासो मदन्नुतः सोमासः ) आनन्द उगनेवाले, उसाही सोमरसोंके ( समुद्रस्य अधि विष्टपं ) जलप्रायके ऊपर रबी हुई छलनीमेंसे ( मयं मदं अग्नि पवन्ते ) आनन्द और उत्साह बढ़ानेके लिए आते हँ ॥ १ ॥



- ८५७ तरत्समुद्रं पयमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।  
 अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१०७।१९ )
- ८५८ नृभिर्धेमाणा हृतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रथः ॥ ३ ॥ ९ ( तु ) ॥  
 [ घा० १९ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. ८।१०७।१६ )
- ८५९ तिस्रो वाच ईरयति प्र बृहन्नरस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।  
 गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतया वावशानाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१७।३४ )
- ८६० सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।  
 सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोम अकाल्लिष्टुभः सं नवन्ते ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१७।३९ )
- ८६१ एवा नः सोम परिधिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।  
 इन्द्रया विश बृहता मदेन वर्षया वाचं जनया पुरंधिम ॥ ३ ॥ १० ( पी ) ॥  
 [ घा० १० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।१७।३६ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ८५७ ] ( पयमानः देवः ) सुदृ क्रिया जलोवाला ( राजा ) तेजस्वी सोम ( बृहत् ऋतं समुद्रं ) महान् जलते युक्त कलसमें ( ऊर्मिणा तरत् ) स्रहरोने युक्त होकर बहता है, ( हिन्वानः ऋतं बृहत् ) श्रेणा देनेवाला यह साम सोमरस ( मित्रस्य वरुणस्य ) मित्र और वरुण द्वारा ( धर्मणा प्र अर्षा ) धारण किए जानेके लिए छाना जाता है, कलशमें विरता है ॥ २ ॥

[ ८५८ ] ( नृभिः धेमाणाः ) ऋषिवर्गोंके द्वारा तैम्पार होनेवाला ( हृतः ) विचक्षणः ) धर्मनीय, विशेषज्ञान धरानेवाला ( देवः राजा ) विषय सोच राजा ( समुद्रथः ) जलोंमें इन्द्रके लिए छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ ८५९ ] ( बृहन्नरस्य वाचः ईरयति ) यत्कर्ता ऋक्, यन् और साम इन तीन धागियोंका उच्चारण करता है, ( नरस्य धीतिं ) यत्की रीति और ( ब्रह्मणः मनीषां ) सागरी पवित्र हुये विचारका इत्तमें उच्चारण किया जाता है, ( गावः गो-यन्ति यन्ति ) जिस प्रकार गायें गोशालके पास जाती हैं उसी प्रकार ( पृच्छमानाः सोमं यन्ति ) कर्त्तव्य शब्द करती हुई सोमके पास जाती हैं, तब ( वावशानाः मतया ) इच्छा करनेवाली बुद्धियां उसकी स्तुति करती हैं ॥ १ ॥

[ ८६० ] ( धेनवः गावः ) बुधारे गायें ( सोमं वावशानाः ) सोमकी इच्छा करती हैं, ( विप्राः मतिभिः सोमं पृच्छमानाः ) जानी लोग अपनी बुद्धियोंने सोमका वर्णन करते हैं, ( सुतः सोमः ) सोमरस निकालनेके बाद ( पूयमानः ऋच्यते ) छाना जाता हुआ सोम रत्ने हुए बर्तनोंमें विरता है, ( अकाल्लिष्टुभः सोमो सं नवन्ते ) मिष्टुष्ट छन्दके मात्र सोमका वर्णन करते हैं • २ ॥

[ ८६१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( परिधिच्यमानः ) बर्तनों पानीके मिलाया हुआ तथा ( पूयमानः ) पवित्र होता हुआ तू ( नः ) त्वं स्वस्ति पश्यत इत्यारे कल्याणके लिए छानता जा, ( बृहता मदेन इन्द्रं आ विश ) बड़े जानवरों तू इन्द्रके पेटमें जा, ( विश वर्षया वाचं जनया पुरंधिम ) बृहत् काम करनेवाली बुद्धिकी उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

- ८६२ यत् धाव इन्द्र ते शतशतं भूमिरुव स्युः ।  
न त्वा वज्रिन्तसहस्रस्यर्षी अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ १ ॥ ( ऋ ८।७०।१ )
- ८६३ आ प्रमाथ महिना वृष्या वृषन्विषा शविष्ठ शवसा ।  
अस्माश्चव मघवन् गोमति व्रजे वज्रि चित्राभिरूतिभिः ॥ २ ॥ ११ ( ली ) ॥  
[ धा० १९। उ० नास्ति । ख० ४ ] ( ऋ ८।७०।६ )
- ८६४ वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृकतवर्हिषः ।  
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृषहन्पारि स्वातार आसते ॥ १ ॥ ( ऋ ८।६३।१ )
- ८६५ स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उषिपनः ।  
कदा सुते वृषाण ओक आ भमदिन्द्र स्वन्दीव वक्षसगः ॥ २ ॥ ( ऋ ८।६३।२ )
- ८६६ कष्वेभिर्धृष्यावा धृषद्राजं दर्षि सहस्रिणम् ।  
विशङ्करूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥ १२ ( छा ) ॥  
[ धा० २७। उ० २ । ख० ९ ] ( ऋ ८।६३।२ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ८६२ ] हे इन्द्र ! ( ते ) तेरी बराबरी करनेके लिए ( यत् धाव शत स्युः ) पविष्ठकी सौ हो जाये, ( उत भूमिः शतं स्युः ) और भूमियाँ भी सौ होजाये और हे ( प्रजिन् ) बख्तपारी इन्द्र ! ( सहस्रस्यर्षीः ) हजारों सुर्ष हो जायें, तो ये सब भी ( त्वा न अनु न अष्ट ) तेरी बराबरी नहीं कर सकते, ( जाते न अनु अष्ट ) कोई भी पैदा हुआ जगत् तेरी बराबरी नहीं कर सकता, ( रोदसी ) ये दोनों छायापुत्रिकों की तेरी समता नहीं कर सकते ॥ १ ॥

[ ८६३ ] हे ( वृषन् ) बलवान् इन्द्र ! तू अपने ( वृष्या महिना ) सामर्थ्यके महत्वसे युक्त ( शवसा ) बलसे ( विष्या आ प्रमाथ ) सभीको धुन करता है। हे ( शविष्ठ ) बलवान् ( मघवन् घजिन् ) मघवान्, बख्तपारी इन्द्र ! ( गोमति व्रजे ) गाँवों भरे हुए गौशालाओं ( चित्राभि ऊतिभिः ) अनेक प्रकारके सरभणके साथभूमि ( नः अय ) हमारी रक्षा कर ॥ २ ॥

[ ८६४ ] हे ( वृषहन् ) शत्रुका वध करनेवाले इन्द्र ! ( त्वां वयं घ ) तेरे पास हम ( सुतावन्तः ) सोमरस निकाल कर ( आपः न ) जलप्रवाहके समान आते हैं, ( पवित्रस्य प्रस्रवणेषु ) पवित्र सोमकी शुद्धि करते हुए ( वृक-वर्हिषः स्वोतारः ) आसतकी फँसकर स्तुति करनेवाले ( परि उप आसते ) तेरी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[ ८६५ ] हे ( वसो ) निवासाक इन्द्र ! ( सुते निरेके ) सोमरस निकालनेके बाद ( उषिपनः नरोः ) स्तुति करनेवाले ऋत्विज ( त्वा स्वरन्ति ) तेरी स्तुति करते हैं, ( सुते वृषाणः ) सोमरस पीनेकी इच्छा करनेवाला इन्द्र ( वक्षसाः ) बँस बँसा ( स्वन्दीव ) शब्द करता हुआ ( कदा ओकः आगमत् ) कब हमारे पर आया ? ॥ २ ॥

[ ८६६ ] ( धृष्याः ) हे बूढ़ोंके इन्द्र ! ( कष्वेभिः ) कष्वेकों द्वारा स्तुति किए गानोंके बाद उन्हें तू ( सहस्रिण्यं धाजं आदर्षि ) हजारों प्रकारके बल अथवा धन देता है। हे ( मघवन् विचर्षणे ) मघवान् और मानी इन्द्र ! तेरे पाससे ( धृषत् ) शत्रुका नाश करनेवाले ( विशंग-रूपं ) सोमके समान चमकनेवाले ( गोमन्तं धाजं ) गाँवसे साम रहनेवाले धन ( मभु ईमहे ) शीघ्र पाता चाहते हैं ॥ ३ ॥

८६७ तरणिरिसिपासति वाजं पुरंध्या युजा । आ च इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नैमि तथैव सुद्रुवम् ॥ १ ॥  
( ऋ. ७।३।२।२० )

८६८ न दुःस्तुतिद्विषोदेपु शस्यते न स्नेषन्तश्चरिर्नशत ।  
सुशक्तिरिन्मघव तुभ्यं मानते देष्णां यत्पार्ये दिवि ॥ २ ॥ १३ ( वि ) ॥

[ घा० १७ । उ० नारित । २।० २ ] ( ऋ. ७।३।२।२१ )

॥ इति ऋग्वे. खण्ड ॥ ४ ॥

[ ५ ]

८६९ तिस्रा वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरिति कनिक्कदत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३।१४ )

८७० अभि ब्रह्मीरनुषत् यद्द्वीकृतस्य मातरः । मजयन्तीदिवः शिशुम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।३।१५ )

८७१ रायः समुद्राश्चतुराऽस्मभ्यश्मोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ३ ॥ १४ ( टा ) ॥  
[ घा० १८ । उ० १ । २।० २ ] ( ऋ. ९।३।१६ )

८७२ सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।

पवित्रवन्तो अक्षरं देवान्गच्छन्तु वां मदाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१४ )

[ ८६७ ] ( तरणिः इत् ) दूधको पार कर जानेवाला घोर ही ( युजा पुरंध्या ) योग्य और विशाल बुद्धिकी लहावतासे ( वाजं सिपासति ) शल प्राप्त करना चाहता है । हे पशु करनेवाली ! ( चः ) तुम्हारे लिए ( गिरा ) स्तुतिके द्वारा ( पुरु-हूतं इन्द्रं ) बहुरीके द्वारा स्तुति किये गये इन्द्रकी जिस प्रकार ( तद्यथा सुद्रुवं नैमि इव ) बर्दे लकड़ीकी घुरि बनाता है, उसी प्रकार ( आ नमे ) नमन करता हूँ ॥ १ ॥

[ ८६८ ] ( द्विषोदेपु ) धनके बान करनेवाले पुरुषोंकी ( दु-स्तुतिः न शस्यते ) निन्दाकी कोई भी प्रशंसा नहीं करता है, ( स्नेषन्तं ) दान दाताओंकी स्तुति न करनेवालोंको ( रयिः न नशत् ) धन प्राप्त नहीं होता, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( पार्ये दिवि ) सोमपत्रके दिन ( मानते ) मूल नैतीको, ( देष्णां यत् ) देने योग्य जो धन है, ( तुभ्यं सुशक्ति इत् ) उन्हें तुम्हारे उत्तम शक्तिशाली हूँ प्राप्त करता है ॥ २ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ८६९ ] ( तिस्रः वाचः उदीरते ) ऋग्, यजु, साम इन तीन वागियोंका पत्रकर्ता उच्चारण करते हैं, ( धेनवः गावः मिमन्ति ) दुग्ध पान रंभाती है, ( हरिः यमिनदत् पति ) हरे रगका सोमपत्र दान करता हुआ बलवान् मिरता है ॥ १ ॥

[ ८७० ] ( दिवः शिशुं मजयन्ती ) दुलोकके पुत्ररूपी सोमको शुद्ध करती हुई ( प्रश्याः ) देवोंमेंसे ( श्रुतस्य यद्द्वीः मातरः ) पशुके बड़े महत्वका वर्णन करनेवाली स्तुतिवा ( अभि अनुषत् ) पार्य जाती है ॥ २ ॥

[ ८७१ ] हे ( मोम ) सोम ! ( रायः चतुराः स्ममुद्रान् ) धनके चार समूहोंकी ( अस्मभ्यं ) हमारे लिए ( विश्वतः आ पवस्व ) चारों ही ओरसे लाल दे, और ( सहस्रिणः ) हमारी हजारों इच्छाओंको पूर्ण कर ॥ ३ ॥

[ ८७२ ] ( मधुमत्तमाः ) अत्यन्त मीठे ( मन्दिनः सुतासः ) अत्यन्त बढानेवाले सोमपत्र ( पवित्रवन्तः ) शुद्ध होकर ( इन्द्राय अक्षरन् ) इन्द्रके लिए कलतायें पड़ते हैं, हे ( सोमाः ) सोमपत्री ! ( वां मदाः ) देवान् गच्छन्तु ) तुम्हारे अत्यन्तव्यक्त रत्न देवोंको प्राप्त हों ॥ १ ॥

८७३ इन्द्रुरिन्द्राय पवते इति देवासो अब्रुवन् । वाचस्पतिर्मखस्पत विश्वस्पिज्ञान ओजसः ॥ २ ॥

( ऋ. १।०।१।१ )

८७४ सहस्रधारः पवते समुद्रा वाचमहीयः ।

सोमस्पती रयीणासखेन्द्रस्य दिवादेव

॥ ३ ॥ १५ ( लि ) ॥

[ धा० २९। उ० नास्ति । ख० २ ] ( ऋ. १।१०।१६ )

८७५ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभृगात्राणि पर्येषि विश्वतः ।

अत्पततनुं तदामो अब्रुते मृतास इद्रहन्तः स तदाश्व

॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।१।१ )

८७६ तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽचन्तो अस्य तन्तवा व्यस्तिरन् ।

अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधि रोहन्ति तेजसा

॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।१।२ )

८७७ अरुरुचदुपसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजसुः ।

मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः

॥ ३ ॥ १६ ( डु ) ॥

[ धा० ३८। उ० १। ख० १ ] ( ऋ. १।८।१।२ )

॥ इति पञ्चम सर्गः ॥ ५ ॥

[ ८७३ ] ( इन्द्रुः ) सोमस्य ( इन्द्राय पवते ) इन्द्रके लिए छाया जाता है, ( इति देवासः अब्रुवन् ) इस प्रकार स्तुति करनेवाले कहते हैं, ( वाचः-पतिः ) स्तुतिपति रसक और ( विश्वस्य ओजसः ईशानः ) सब बलोंके स्वामी इस सोमका ( मखस्पते ) यज्ञमें उपयोग किया जाता है ॥ २ ॥

[ ८७४ ] ( समुद्रः ) पानीमें मिलाया हुआ ( वाचं इत्ययः ) वाणीको प्रेरणा देनेवाला ( रयीणां पतिः ) पनीका स्वामी ( इन्द्रस्य सखा ) इन्द्रका मित्र ( सोमः ) यह सोम ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ( सहस्र-धारः पवते ) हजारों धाराओंके रूपमें छाया जाता है ॥ ३ ॥

[ ८७५ ] हे ( ब्रह्मणः पते ) भग्नके स्वामी सोम ! ( ते पवित्रं विततं ) तेरा पवित्र हुआ भाग सब जगह फैला हुआ है, तू ( प्रभुः ) सामर्थ्यवान् ( गात्राणि पर्येषि ) पीनेवालोंके अन्नपर्योमें व्याप्त होता है, ( विश्वतः अ-तस-तनुः ) सब तरफसे धारीको सपते बिना तपाये ( आमः तनु न अब्रुते ) अन्नच नारीसे उन मूलको कोई प्राप्त नहीं कर सकता । ( मृतासः इव् ) जो परिपक्व हैं, वे ही ( पतन्त तनुं स आशने ) पत करते हुए तुझ प्राण करते हैं ॥ १ ॥

[ ८७६ ] ( तपोः पवित्रं ) शत्रुको सपानेवाले सोमके पवित्र अन्न ( दिवः पदे विततं ) दृष्टोक्तके स्थानमें फैले हुए हैं, ( अस्य तन्तवः ) इसकी किरणें ( अचन्तः व्यस्तिरन् ) चक्करी हुईं विशेष रीतिसे स्थिर हो गईं हैं, ( अस्य आशयः ) इस सोमके जल्दी ही फैलनेवाले रसा ( पवितारं अग्रन्ति ) दृष्ट करनेवालोंको रसा करते हैं, वे ( दिवः पृष्ठं ) दृष्टोक्तके पृष्ठ भाग पर ( तेजसा अपिरोहन्ति ) अपने तेजसे चटकर बँडने हैं ॥ २ ॥

[ ८७७ ] ( उपसः पृश्नः ) पच-वालोंमें शून्य ( अग्रियः अरुरुचत् ) पहले प्रजागत होता है । ( उक्षा ) सर्वा करनेवाला वह ( भुवनेषु यिमेति ) सब भूवर्षोंमें जल बाँटना है और प्रजाको ( पाज-सुः ) भग्नने प्रजा करता है, ( माया यिनः ) शक्तिमान् देवता ( अस्य मायया ) इसकी शक्तिसे ( ममिरे ) जगत्को निर्माण करते हैं, ( अरयः ) इस सोमकी शक्तिसे ( नृचक्षसः पितरः ) मानवोंको निरोधण करनेवाले पालक ( गर्भे आदधुः ) शीतपिये गर्भ स्थापित करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यदा पांचवां सर्गः समाप्त हुआ ॥

[ ६ ]

८७८ प्र म॑द्विष्टाय गायत॑ ऋतान्॑ गृहते॑ शुक्रशोचिषे॑ । उपस्तुतासो॑ अग्रये ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१०।१८ )

८७९ आ व॑सते मघवा॑ वीरवद्यशः॑ समिद्धो॑ घुम्न्याहुतः॑ ।

कुर्विन्नो॑ अस्य सुमति॑र्भवीयस्यच्छा॑ वाजेभिरागमत् ॥ २ ॥ १७ ( या ) ॥

[ धा० १७।७० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१०।१९ )

८८० तं तै॑ मद॑ गृणीमसि॑ वृषणं॑ पृथु॑ सासहिम् । उ॑ लोककृत्नुमिद्वि॑र्यो हरिश्चियम् ॥ १ ॥

( ऋ. ८।११।४ )

८८१ येन॑ ज्योती॑रव्यायवे॑ मनये॑ च विवेदि॑य । मन्दानो॑ अस्य॑ बर्हिषो॑ वि राजसि ॥ २ ॥

( ऋ. ८।११।५ )

८८२ तदद्या॑ चित् उ॑किथनोऽनु॑ ष्टुवन्ति॑ पूर्वथा॑ । वृषपत्नी॑रपो जया॑ दिवेदिवे ॥ ३ ॥ १८ ( इ ) ॥

[ धा० २१ । ७० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।११।६ )

८८३ श्रुधो॑ ह्वं॑ तिरद्व्या॑ इन्द्र॑ यस्त्वा सपर्यति॑ । सुवीर्य॑स्य गोमतो॑ रायस्पृधि॑ महा॑सि ॥ १ ॥

( ऋ. ८।११।४ )

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ ८७८ ] ( उप-स्तुतासः ) हे स्तुति करनेवालो ! तुम ( मंदिष्टाय ) श्रेष्ठ ( ऋताव्ये ) पत्न करनेवाले ( गृहते शुक्र-शोचिषे ) महान् तेजस्वी ( अग्रये प्र गायत ) अग्निके लिए स्तुतिका गान करो ॥ १ ॥

[ ८७९ ] ( मघवा घुम्नो ) पत्नवान् तेजस्वी ( समिद्धः आहुतः ) प्रदीप्त वीर हवन किया गया अग्नि ( वीरवद्य यदाः ) पुनसि होनेवाला पश ( आ वसते ) देता है, ( अस्य ) इस अग्निकी ( भवीयसी सुमतिः ) हमारे अनुकूल रहनेवाली बुद्धि ( सः अच्छ ) हमारे पास ( वाजेभिः ) अग्निके साथ ( कुर्वित् व्यागमत् ) अनेक बार आवे ॥ २ ॥

[ ८८० ] हे ( अद्रियः ) बध्दपारो इन्द्र ! ( ते वृषणं ) तेरे मनोरपकी पुत्ति करनेवाले ( पृथु सासहि ) मुझसे शत्रुको हरा देनेवाले ( लोककृत्न उ ) लोकोंका हित करनेवाले ( हरि-श्चियं ) अरकोंकी शोभा जिसके पास है, ऐसे ( तं मद ) उस लोग पीनेसे उत्पन्न हुए हुए उत्साहकी ( गृणीमसि ) हम प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ८८१ ] हे इन्द्र ! ( येन ) जिस उत्साहसे ( व्यायवे मनये ) बोधोन्मुखाले मनुष्यके हितके लिए ( ज्योतीं वि विवेदिथ ) सूर्यादि अनेक तेजस्वी पदार्थ प्रकाशित किए, उसी उत्साहसे युक्त होकर ( अस्य बर्हिषो मन्दानः ) इस पश-कतकिते आसन पर आनवित होकर ( विराजसि ) तू विराजमान होता है ॥ २ ॥

[ ८८२ ] हे इन्द्र ! ( ते तत् ) तेरे उस बलकी ( स्याद्य चित् ) आज भी ( पूर्वथा ) पूर्वके समान ( उकिथनः अनुस्तुवन्ति ) स्तुतिकर्ता स्तुति करते हैं, इस प्रकार तू ( वृषपत्नी अपः ) बलके पास करनेवालोंको ( दिवे दिवे जय ) प्रतिदिन जीत करके प्राप्त कर ॥ ३ ॥

[ ९८३ ] ( यः स्या सपर्यति ) जो तेरी आराधना करता है, हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( तिरद्व्याः ह्वं श्रुधि ) उस तिरद्विष ऋषिकी प्राचेना सुन और ( सुवीर्यस्य गोमतः रायः स्पृधि ) उत्तम श्रेष्ठ युद्धसे युक्त वीर गापीसे युक्त बनते हूँ पूर्ण कर । ( महान् असि ) तू महान् है ॥ १ ॥

८८४ यस्त इन्द्र नवीयसी गिरं मन्द्रामजीजनत् ।

चिकित्स्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युपीम्

॥ २ ॥ ( ऋ ८।११।१ )

८८५ तस्य प्रवाम यं गिर इन्द्रसुकथानि वामुधुः ।

पुरूषस्य पोऽस्या सिपासन्तो वनामहे

॥ ३ ॥ १९ ( फा ) ॥

॥ ६ [ पा० १५ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।११।६ )

॥ इति षष्ठं खण्डं ॥ ६ ॥

॥ इति द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः । द्वितीयप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ २ ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

[ ८८४ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यः ) जो ( नवीयसी ) नवी जोर ( मन्द्रां गिरं ) जातवन्वायक स्तुति ( ते अजीजनत् ) तेरे लिए करता है, उस स्तोत्राको ( प्रत्नां अमृतस्य पिप्युपीं ) पुरातन यज्ञकी भङ्गानेवाली ( चिकित्स्विन् मनसं ) मनकी शूद्र करनेवाली ( धियं ) बुद्धि दे ॥ २ ॥

[ ८८५ ] हम ( तं उ इन्द्रं स्वाम ) उस इन्द्रकी स्तुति करते हैं, ( यं गिरः ) उक्तथानि वाक्यसुः ) जिसकी महिमा मंत्र और स्तोत्र बढाते हैं, इसलिये ( अस्य ) इस इन्द्रके ( पुरुणि पोऽस्या ) महान् पराक्रमोंका हम ( सिपासन्तो वनामहे ) भवितते वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

## चतुर्थ अध्याय

इस चौथे अध्यायमें इन्द्रका जो मूण वर्णन किया है, वह इस प्रकार है ।

### इन्द्रके गुण

- १ अविभ्युपः [ ८१० ]- निर्भय, किन्तिते न डरनेवाला ।
- २ धृष्युः [ ८६६ ]- शत्रुओंको डर करनेवाला, दूरघोर ।
- ३ तरणिः [ ८९७ ]- कुलते पार होनेवाला ।
- ४ धृषा [ ८६३ ]- धनवान्, सामर्थ्यवान् ।
- ५ चक्षिन् [ ८६३ ]- बलपाटी, शस्त्रास्त्रघाटी ।
- ६ शशिक्षः [ ८६३ ]- सामर्थ्यवान् ।
- ७ प्रघवान् [ ८६३ ]- धनवान् ।
- ८ वसुः [ ८६५ ]- धनवान्, निवात करनेवाला ।
- ९ विचर्यणिः [ ८६६ ]- विचरनेवाला

१० [ साम हिंकी भा. २ ]

१० पुत्र-हृत् [ ८१७ ] जिसे बहुत लोग अपनी सहायताके लिए भुलते हैं ।

११ अस्य पुरुणि पोऽस्या सिपासन्तो वनामहे [ ८८५ ]- इस इन्द्रके बहुतते पराक्रमके कार्योंका वर्णन हम-भक्तिते करते हैं ।

१२ सुवीर्यस्य गोमतः रावः पूर्धि [ ८८३ ]- उत्तम वीर्यवान् पुत्र और मायसे मुक्त धन हमें भरपूर दे ।

१३ हे धृषन् ! धृष्या महिना शयस्ता विश्वा वा प्रमाथ [ ८६३ ]- हे बलवान् इन्द्र ! सामर्थ्य और महान् बलसे तू तब कार्योंको पूर्ण करता है ।

१४ हे इन्द्र ! यः नवीयसी मन्द्रां गिरं ते अजी-जनत्, प्रत्नां अमृतस्य पिप्युपीं चिकित्स्विन् मनसं

[ ८८४ ]- हे इन्द्र ! जो तेरी नई और आनन्द बढ़ानेवाली स्तुति करता है, उसे प्राचीनकालसे ही याज्ञो बढानेवाली और मनकी पवित्र करनेवाली बुद्धि दू देता है ।

१५ हे इन्द्र ! यत् प्राय शत स्युः, यत् भूमिः शतं स्युः, सहस्रं स्युः त्वा न अयु अष्ट, जातं न अयु अष्ट, रोदसी न अयु अष्ट [८६२]- हे इन्द्र ! यदि तो चुल्लोक होजायें, संकडों भूमियां हों जायें, हजारों सूर्य हो जायें, तो भी वे तेरी बराबरी नहीं कर सकते, उत्पन्न हुआ जातू तेरी बराबरी नहीं कर सकता, छायापुविषी भी तेरी बराबरी नहीं कर सकते ।

इन्द्रके ये मुण इस अण्यायमें शक्ति हैं, उन्हें उपासक अपने अन्दर लानेका प्रयास करें । जो अपने अन्दर लानेके योग्य न हों तो उनका भाषार्थ मनमें लाकर उनको जितना पारण किया जा सकता है, उतना करें ।

### इन्द्रको रक्षण

इन्द्र सभीका संरक्षण करता है, इसलिय कहा है—

१ हे मघधन् ! यन्त्रिन् ! गोमति त्रयो चित्रामिः ऊतिभिः नः अय [ ८६३ ]- हे धनवान् बख्खपारी इन्द्र ! पायोसे भरी हुई गोसालयमें अनेकसंरक्षकके साथगोसे हमारा संरक्षण कर, अर्थात् हमें पायोसे भरी हुई गीसाला भी दे और साथ ही हमारा संरक्षण भी कर ।

२ हे अधिष्ठः ! ते धृषणं पृथु सासाहिं लोकशुतुं मधं शृणीमसि [८८०]- हे बख्खपारी इन्द्र ! चलनाली, युद्धमें शत्रुको हारनेवाले लोगोंका हित करनेवाले ऐसे तेरे उस्ताहकी हथ प्रशंसा करते हैं । इन्द्रका उस्ताह लोगोंका हित करनेवाला है ।

३ ते तत् अघासिन् पूर्वथा उक्थिनः अयुस्तुवन्ति [ ८८२ ]- तेरे उस धूर्धुरीसकी पहलके समान प्राण भी रतोता स्तुति करते हैं ।

### इन्द्र धन देता है

इन्द्र स्तुति करनेवालोंको धन देता है, इस विषयमें आपके मंत्र भाग देखने योग्य हैं—

१ हे धृषणो ! सहस्रिणं वाजं आदधि [ ८६६ ]- हे धूर्धुरी इन्द्र ! सृ हमें हजारों प्रकारके बछ अथवा धन देता है ।

२ हे मघधन् चिक्थर्षणे ! धृपत् पिदांकरुवं गोमन्तं याज मधु ईसहे [८६६]- हे धनवान् जानी इन्द्र ! शत्रुको

हारनेवाले, सोनेके समान धनकनेवाले, पायोके साथ रहनेवाले धन हमें शीघ्र प्राप्त हों, ऐसी हम इच्छा करते हैं ।

३ तराणिः युजा पुरन्धा वाजं तिपासति [८६७]- कुषति पार होनेवाला धीर तेरी उत्तम और विशाल बुद्धिसे बल अथवा धन पानेकी इच्छा करता है ।

४ पुरु-हृतं इन्द्रं आनमे [ ८६७ ]- बहुतेके द्वारा स्तुति किया गए इन्द्रको मैं अपनी सहायताके लिए बुलाता हूँ ।

५ अविणोदेसु दु-स्तुतिः न शस्यते [८६८]- धन देनेवाले इन्द्रादिकों निन्दा करना अच्छा नहीं है, क्योंकि उनकी उत्तम स्तुति ही करनी चाहिए ।

६ हे मघधन् ! पायें दिवि मादते देषणं तुभ्यं सुद्राक्तिः इत् [८६८]- हे इन्द्र ! कुषति पार करनेवाले दिष्ट यत्तमें मूल जैतिको देने योग्य जो धन है, वे तेरे पाससे उत्तम शक्तिमान् ही प्राप्त कर सकता है, शक्तिमान् धन करता है और धन पाता है ।

इन्द्र उपासकोंको धन देता है, इस विषयमें ऊपरके मंत्र भाग मनन करने योग्य हैं । यत्तमें इन्द्रादि देवोंको सोमरस दिया जाता है, इस विषयमें मंत्र भागोंको अब देखिये—

### इन्द्रको सोम देना

यत्तमें सोमका रस निकाला जाता है, और वह इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है । इस विषयमें विन्न मंत्र हैं—

१ इन्दुः इन्द्राय पयसे इति देयासः अयुचन् [८७३]- सोम इन्द्रको दिया जाता है ऐसा देवीने कहा है ।

२ रयीणां पतिः दिवेदिवे इन्द्रस्य सखा सोम सहस्रधारः पयसे [ ८७४ ]- ऐश्वर्योंका पासक, प्रतिदिन इन्द्रका मित्र सोम हजारों धाराओंसे छाया जाता है ।

३ वाचस्पतिः विश्वस्य ओजसः ईशानः मख सयते [ ८७३ ]- धर्णीका पति, सब सामर्थ्योंका ईश्वर ऐसा यह सोम यत्तमें धनमालके योग्य है । यत्तमें इन्द्रको सोनेके लिए दिया जाता है वह सोमका सम्मान है ।

४ श्रुहता मदेन इन्द्रं आधिष [ ८९१ ]- हे सोम ! तू महान् आनन्दसे इन्द्रमें प्रवेश कर ।

५ वाचं वर्धय वुरस्थि जनय [८६१]- बकृत्वगति बढ़ा और उत्तम बुद्धि निर्माण कर । सोमरस सोनेके धारको उस्ताह बढ़ता है उससे अच्छी तरह धोलनेकी शक्ति आती है और शक्ति भी तीव्र होती है ।

इस तरह इन्द्रादि देवता सोमरस पीते हैं, और महान् शूर वीरताके काम करते हैं । देताएँ—

६ सनुक-पृष्णु मदीमहिमत्तं मयं शतं पुरः रुद्र-  
हिष्णं [ ८३७ ]- नितने अपने शत्रु हरा दिए, जो महान्  
महान् कार्य करता है, जो शत्रु से भी बिले तोड़ता है, उस  
सोमरसके आनन्दकी हम प्रशंसा करते हैं। सोमरस पीनेसे  
पराक्रम करनेकी शक्ति अपने अन्दर आती है।

इस प्रकार इन्द्रके वर्णन इस अध्यायमें है। अब अगिनेके  
वर्णन देखिए—

### अग्निका वर्णन

इस अध्यायमें अगिन्वा इसप्रकार गुणवर्णन किया है—

१ कविः [ ८४४ ]- ज्ञानी, दूरदर्शी।

२ युवा [ ८४४ ]- तक्ष।

३ गृहपतिः [ ८४४ ]- घरकी रक्षा करनेवाला।

४ पायकः [ ८४६ ]- पवित्र करनेवाला।

५ प्राग्ज्ञा [ ८४९ ]- उत्तम दौतिसे रक्षा करनेवाला।

६ मघवा [ ८७९ ]- धनवान।

७ सुम्नी [ ८७९ ]- तेजस्वी।

८ महिष्ठः [ ८७८ ]- महान्।

९ अस्ताज्ज [ ८७८ ]- सत्यपालक, मंत्र करनेवाला,  
उत्तम कार्य करनेवाला।

१० घृह्व [ ८७८ ]- बडा, महान्।

११ शुक्रदोचि [ ८७८ ]- शुद्ध प्रकाशवाला।

१२ हव्यसाद्र [ ८४४ ]- हवन किए गए वसामें देवताओंके  
पास पहुँचानेवाला।

१३ द्रुतः [ ८४५ ]- देवोंको हवि पहुँचानेवाला।

१४ वीरवत् यशः आ धसते [ ८७९ ]- पुनर्भीषके  
साथ मिलनेवाला यश प्राप्त करता है।

१५ अस्य मदीयस्वी सुमतिः न. अथ याजेभि  
शुचित् आगमत् [ ८७९ ]- इसके अनुकूल होनेवाली उत्तम  
बुद्धि हमारे पास आज अत्रके साथ आवे।

इस तरह अगिनेके गुण इस अध्यायमें वर्णन किये हैं, ये  
गुण यदि मनुष्य अपने अन्दर प्राप्त कर ले तो उत्तरी योग्यता  
मिलती कंभी हो जाए ?

### वर्ष

सूर्यका वर्णन इस अध्यायके एक ही मंत्रमें किया है, उसे  
देखिए—

१ उपसाः प्रीदिनः अग्निवः सारुक्षत् [ ८७७ ]- उप-  
कालके बाद सूर्य प्रथम चमकने लगता है।

\*

२ उक्षा भुवनेषु मिमेति [ ८७७ ]- वृद्धि करनेवाला  
पह सूर्य सब भुवनोंमें जलका सिंचन करता है।

३ मायाविनः अस्य मायया मिमेदि [ ८७७ ]- कुशल  
देवता इस सोमके सामर्थ्यसे अत्यन्त पदायोंका निर्माण  
करते हैं।

उप काल होते ही उठना और दूसरोंको प्रकाशके द्वारा  
सामें दिखाना, दूसरोंको जल अर्थात् जीवन देकर अनेक  
प्रकारके कुशलताके काम करनेके लिए प्रेरणा देना ये सोम  
इन वचनोंसे मिल सकते हैं।

### मरुत्

मरुत् देवताका वर्णन इस अध्यायमें इस प्रकार किया है—

१ मन्दू स्वमानधर्षता अग्निभ्युषा इन्द्रेण संज-  
ग्मानः सवक्षसे [ ८५० ]- स्वभावसे अत्यन्तयुक्त और  
समान तेजस्वी मरुत् गण निर्भय इन्द्रके साथ रहनेके कारण  
उत्तम तेजस्वी दीखते हैं।

२ वीळु चित् आरुज्जुभिः वःहिभिः मरुद्भिः  
गुहाचित् उक्षिष्य. शम्यचिन्दः [ ८५३ ]- मनबूत किले  
तोड़नेवाले तेजस्वी पशुओंके गुफामें छिपायी गई माँसोंको  
श्राप किया।

मरुत् गुण ऐसे तेजस्वी और लडाकू धीरे हैं, ये शत्रुके किले  
तोड़ते हैं और उन पर अपना अधिकार करते हैं। ऐसी  
धीरता लोग अपने अन्दर बढावे।

### इन्द्र और अग्नि

इन्द्र और अग्नि इन देवताओंका वर्णन भी इस अध्यायमें  
आया है। वह अब देखिए—

१ ता इन्द्राग्नी, ययो. पुराश्रुत विश्व पप्ये [ ८५३ ]  
- ये सुप्रसिद्ध इन्द्र और अग्नि हैं, जिनके द्वारा पहले किए  
गए मन्त्र उत्तम कर्त्तव्य ब्रह्मण किया जाता है।

२ न मर्थत [ ८५३ ]- वे कभी भी डुल नहीं देते।

३ ता उभ्रा मृधः विघनिना इन्द्राग्नी हवामहे  
[ ८५४ ]- वे उषावर शत्रुका नाम करनेवाले इन्द्र और अग्नि  
हैं, उन्हें हम अपनी सहायताके लिए बुलाने हैं।

४ ईदृशे न. मृडातः [ ८५४ ]- ये हमें मुख देने हैं।

५ हे इन्द्राग्नी। स्यापी युष्मणि ह्यः [ ८५५ ]- हे  
इन्द्र और अग्नि। तुम माँसके कल्याण करनेके लिए शत्रुओंका  
संहार करते हो।

६ हे सत्यवी। दासानि विश्वा द्विप. अथ ह्य.



[ ८५५ ]- हे तत्वपालको ! तुम मौचोको और उसी प्रकार सब शत्रुओंको मारो और बुर करो ।

इस प्रकार उपासक उत्तम धीर बनें और जो शत्रु हों उन्हें बुर करे ।

### पानीकी उत्पत्ति

मित्र और बरहण ये दोनों वायु हैं, ये पानी उत्पन्न करते हैं, ऐसा मंत्रमें कहा है—

१ मित्रं ह्ये पृतदक्षं बरहण च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता [ ८४७ ]- ( पृत-दक्षं मित्र ) पवित्र बलवाले मित्रको और ( रिशादस चरुषं ) हिंसक शत्रुओंकी नाश करनेवाले बरहणको ( ह्ये ) मैं मूलता हूँ, ये दोनों ( घृताचीं धियं साधन्ता ) पानी उत्पन्न करनेके काम करते हैं ।

२ रिशा-अद्रस् बरहण, [ ८४७ ]- जग लगानेवाला, ( अर्वातीजन वायु ) जो जग पैदा करता है ।

३ पृतदक्ष, मित्र, [ ८४७ ]- पवित्र बलवान् वायु ( हाइड्रोजन ) ।

इसमें " रिश्ट, रिष्ट ( रस्ट Rust ) ये दोनों धातु किली धातु ( लोहे आदि ) में अग लगानेके भावको दिषाते हैं । इमिलशका " रस्ट " ( Rust ) भी तस्कृतके " रिश्ट " से निकट सम्बन्ध रखता है ।

४ मित्रावरुणौ क्रतावृधौ [ ८४८ ]- मित्र और बरहण ये पानी बढानेवाले हैं ।

५ कवीं नुविजाता उत्कृत्या मित्रावरुणा न अपस यल्ल द्धधने [ ८४९ ]- ( क-वी ) " क " का अर्थ है जल और " धी " का अर्थ है उत्पन्न करनेवाले, ( नुविजाता ) अनेक कार्योंमें उपयोगी, ( उत्कृत्या ) अनेक एवाग्रे पर रहनेवाले मित्र और बरहण ये वायु हमारे कार्य और बलको पुष्ट करें ।

इस मंत्रमें ये दोनों वायु ( घृत-अचीं धियं साधन्ता ) पानी उत्पन्न करनेके कार्य करते हैं ऐसा स्पष्ट कहा है ।

### सोमके गुण

इस अध्यायमें सोमका भी वर्णन है । उसमें सोमके गुण वर्णित हैं । उन्हें अम रेणिवृ—

१ घाजी [ ८३० ]- बलवान्, अन्नवान् ।

२ राजा [ ८३३ ]- राग्य चलानेवाला, तेजस्वी, चमकनेवाला ।

३ सहः भुवः [ ८३४ ]- बल बढ़ानेवाला ।

४ संवृक्त-पूरणुः [ ८३७ ]- जिसने अपने सभी सामर्थ्यवान् शत्रुओंको हरा करके मष्ट कर दिया है ।

५ महा-महि-प्रतः [ ८३७ ]- अनेक महान् महान् कार्य करनेवाला ।

६ सुप्रतुः [ ८३८ ]- उत्तम काम करनेवाला ।

७ विव्वश्य ओजसः ईशानः [ ८३७ ]- तब सामर्थ्यका स्वामी ।

८ शर्त पुरः रुक्षी [ ८३७ ]- शत्रुके संकटों मगर तोडनेवाला ।

९ पुर दुरिता विप्रान् [ ८३१ ]- बहुतसे घातक शत्रुओंका-नाप काम करनेवालोंका नाश करनेवाला ।

१० तपोः पवित्रं [ ८७६ ]- शत्रुको दुष्ट देनेवालेका पवित्र भाव ।

११ विचर्याणः [ ८३९ ]- विशेष शान्ति ।

१२ अमिष्टिहृत् [ ८३९ ]- इच्छित कामोंको करनेवाला ।

१३ मृतस्य गोपा [ ८४० ]- सत्यका रक्षक, पशुका रक्षक ।

१४ हितः [ ८४३ ]- कल्याण करनेवाला ।

१५ देवः [ ८५७ ]- प्रकाशमान्, दिव्य ।

१६ पाच-पतिः [ ८७४ ]- भावण देनेवाला, वाणीका स्वामी ।

१७ ब्रह्मण-पतिः [ ८७५ ]- शानका स्वामी, शान्ति ।

१८ विचक्षणः [ ८५८ ]- विशेष शान्ति, वस्तु ।

१९ हर्यसः [ ८५८ ]- प्रग्य, बन्धनीय ।

२० पुराविं जनीय [ ८६१ ]- विशाल बुद्धि प्रकट करनेवाला ।

२१ इन्द्रिय हिन्द्यानः [ ८३९ ]- अपनी इन्द्रिय दक्षिणों उन्साहित करनेवाला ।

२२ मनीषिभिः सुज्यमानः [ ८४१ ]- आने जितकी बुद्धता करते हैं, शानियोंके द्वारा बुद्ध होनेवाला ।

२३ विश्वस्ते स्वद्वेषे साधारणः [ ८४० ]- तब भाव-वर्ती शानियोंमें साधारणतया रहनेवाला ।

२४ वासिभि युतान् [ ८४३ ]- बलवानोंके द्वारा प्रदीप्त किया गया, बलवान् जिसे आगे स्थापित करते हैं ।

२५ मत्सरः मद्चयुतः [ ८५१ ]- मानक बढ़ानेवाला ।

२६ पयमानः [ ८५७ ]- भुष्ट होनेवाला ।

२७ बृहत् कर्तं हिन्द्यानः [ ८५७ ]- महान् कार्य प्रकट करनेवाला, महान् पत्र करनेवाला ।

२८ दिवः पदे विततः [ ८७२ ]- विष्य स्वानमे रहनेवाला ।

२९ मधुमत्सम [ ८७२ ]- अत्यन्त मीठा ।

३० रयीणां पतिः [ ८७४ ]- धरौका स्वामी ।

३१ रयिः अभि अयत् [ ८३८ ]- धनके पास मानेवाला ।

ये सोमके गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं । सोमरस पीनेसे जो उत्साह और सामर्थ्य बढ़ता है, उससे धीर पुढ्य धीरताके काम करते हैं; इसलिये ये गुण सोमके ही हैं, यह बात आल-कारिक भाषायमें कही है । यह बात ध्यानमें रखनेसे ऊपरके गुण सोमके कित प्रकार हैं, यह स्पष्ट हो जाएगा ।

### सोमका स्वर्गसे लाया जाना

सोम स्वर्गसे पृथ्वी पर लाया गया, इस प्रकार सोमका वर्णन वेदोंमें अनेक जगह पर आया है । मीजवात् हिमालयके एक ऊँचे शिखरका नाम है । उस ऊँची चोटी पर सोम जगता है और वहाँसे लाया जाता है । हिमालयके ऊपरवा भाग स्वर्ग है, वहाँसे सोम लाया जाता है, इसलिये यह स्वर्गसे लाया गया ऐसा कहते हैं । यह वर्णन अब देखिए—

१ रयिः अभि अयत् राजानं त्वा दिवः अययथी सुपर्णाः आभरत् [ ८३८ ]- धनके पास पतुनेवाले तेजस्वी राजाके सामान सुप्ते स्वर्गसे उड़ न माननेवाला गवड़ ले आया ।

२ अतस्य गोर्षा, विश्वस्यै स्वहृष्टो साधारणं विः भरत् [ ८४० ]- धनके सारक्षण करनेवाले, सब स्वर्गको देखनेवाले, देवोंको साधारण रीतिसे प्राप्त होनेवाले सोमको पत्नी ले आया ।

३ तपोः पवित्रं दिवाः पदे विततं [ ८७६ ]- धनुषी हाथ देनेवाले सोमके से पवित्र अंग स्वर्गलोकमें फँसे हुए है ।

४ दिवः पृष्ठं तेजसा अधिरोहति [ ८७६ ]- स्वर्गकी चोटी पर सोम अपने तेजसे बढता है । सोमको बेल चमकती है । इस प्रकार सोम स्वर्गसे लाया जाता है, और यज्ञमें उसका रस निकाल कर उसका हवन किया जाता है ।

### सोम धन देता है

सोमके धन देनेके विषयमें आगेके मंत्र देखने योग्य हैं—

१ इन्दुयः विश्वानि सोमभा अभि [ ८३० ]- सोम सब सोमाय देता है ।

२ मद्रो दिवः स्वधस्येषु, मृग्यानि विश्वानं, चार्त्तं ते रवा सुकुर्याया ईमदे [ ८३६ ]- महान् सुलोकके अनेक स्वर्गानि रहनेवाले अनेक प्रकारके धरौको धारण करनेवाले, मुन्दर ऐसे सुप्त सोमको उत्तम यज्ञके द्वारा प्राप्त करते हैं ।

### सोम भाग्य और धोड़े देता है

१ वाजिनः, पुः खुरिता भिन्नतः, तोकाय सु गाः अर्धतः त्मना पृष्णतः [ ८३१ ]- बल बढ़ानेवाले, बहुतसे पार्षोका नाश करनेवाले ये सोमरस, हमारे पुत्रपौत्रोंके लिए उत्तम भाग्य और धोड़े भिन्ने, इसलिये स्वयं ही भाग्य बनाते हैं ।

२ हे इन्दो ! शातशिवनं गवां पोरं, स्वह यं भगान्ति नः आनह [ ८३५ ]- हे सोम ! तौ गायोसे युक्त, गायोका पोषण करनेवाले मुन्दर धोड़ोसे युक्त ऐसे भाग्यके दात हमें दे ।

इस प्रकार सोम भाग्य और धोड़े देता है । सोमका रसमें उपयोग होता है और यज्ञमें गाय और घोड़े आते हैं । वह मानो सोम हो जाता है इसप्रकार आलकारिक भाषामें वर्णन है ।

### सोमका पानीमें मिलाना

सोम बूँदकर उसका रस निकालते हैं, और उसमें पानी मिलाकर उसे छानते हैं, इस विषयके वर्णन आगेके मंत्रोंमें है—

१ हे सोम ! परिपिच्यमानः, नः स्वसि पयस्य [ ८६१ ]- हे सोम ! बर्तनमें रखे हुए पानीमें मिलकर हमारे कल्याणके लिए छनता जा ।

२ हे सोम ! रायः चतुर समुद्रान् असुभ्यं विश्वतः आ पयस्य [ ८७१ ]- हे सोम ! धनके चारों समुद्रोंको हमारे लिए चारों ओरसे लाकर छनता जा । पानीमें मिलाकर तथा छानकर सोम शुद्ध किया जाता है ।

### सोमरस छाना जाता है

सोमको पानीमें मिलानेके बाद उसे छाना जाता है—

१ एते आशायः इन्दुवः तिरः पवित्रं अष्टमम् [ ८३० ] - ये शीघ्र गति करनेवाले सोमरस छलनीसे छाने जाते हैं ।

२ हे इन्दो ! मनीषिभिः मृज्यमानः इषे धारया पयस्य [ ८४१ ]- हे सोम ! बुद्धिमान् पानकोंके द्वारा शुद्ध किया जानेवाला तू हमारे अन्नके लिए छनता जा ।

३ धाजिभिः घृतानः देवधोतये पुनानः हितः इन्द्रस्य तिष्ठते पाहि [ ८४३ ]- अनेक धाजिधोतये तेजस्वी पीछनेवाला, देवोंको देनेके लिए छनता हुआ, हितकर करने-वाला सोम इन्द्रके पास जाये ।

४ मनीषिणः आयान्, मत्सरासः मन्च्युतः सोमासः समुद्रस्य अधि विष्टेषु, मधं मद् अभि पयसे [ ८५६ ]- बुद्धिमान् पानक मानव बढ़ानेवाले उस्ताही

सोमरसको, जलके वर्तनके ऊपर रली हुई छत्रनीसे अलग्व और उस्ताह बढानेके लिए छानते हैं ।

५ पवमानः देवः राजा बृहद् ऋतं समुद्रं ऊर्मिणा तरद्, हिव्दानः ऋतं धृहत् मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र अर्षे [८५७]- बृहद् किया जानेवाला तेजस्वी सोम राजा, बड़े जल युक्त कनधार धारासे, मित्र और वरुणके लिए छाना जाता है ।

६ मुभिः येमाणः हृततः पिचक्षणाः देवः राजा समुद्रयः [ ८५८ ]- ऋत्विजनों द्वारा तैय्यार किया जानेवाला, वर्णनके योग्य और ज्ञान बढानेवाला यह दिव्य सोमरस जलामें मिलाकर छाना जाता है ।

७ सुतः सोमः पूयमानः ऋच्यते, त्रिभुभः अर्काः सोमं संनचन्ते [ ८६० ]- सोमरस छनकर पानोमें गिरता है, उस समय त्रिष्टुप् छानके मंत्र सोमका वर्णन करते हैं ।

इस प्रकार सोमरस पानीमें मिलाकर छाना जाता है । छाननेके बाद उत्तम रूप मिलाया जाता है और पिया जाता है ।

### सोमरसको गायके दूधमें मिलाना

इस विषयमें आगेके मंत्र देखें—

१ रुचा गाः अर्भीहि [ ८५१ ]- तेजस्वी सोमरस गायके दूधमें मिलाये जाते हैं ।

२ धेनवः गावः सोमं वाचशानाः [ ८६० ]- बुधाय गायें सोमकी इच्छा करती हैं । अपना दूध सोमरसमें मिलाया जाये ऐसी इच्छा करती हैं ।

३ आशिरं सृजानः पुनानः [ ८४२ ]- दूधमें मिलाकर सोम छाना जाता है ।

४ धेनवः गावः मिमग्नि, हरिः कनिक्द्रव पति [ ८६९ ]- बुधाय गायें रंभातो हैं और हरे रंगका सोम शब्द करते हुए कलधमें आता है ।

इस प्रकार सोमका वर्णन इस अध्यायमें है । इस वर्णनमें वेदार्थार्थिका ओ गुण वर्णन है, उन्हें तापक अथवा अक्षर सामें और बढावें और देवत्व प्राप्त करके यज्ञस्थी वर्तें ।

### सुभापित

१ विभ्वानि सौमगा अभि अक्षरं [ ८३० ]- सब सोभाय - धन - प्राप्त करनेके लिए वे आने जाते हैं ।

२ वाजिनः, पुन दुरिक्षा यिप्रान्तः, सोकाय सु-गाः

अर्थतः तमना कृष्यन्तः [ ८३१ ]- यल यदानेवाले और बहुलसे पानोका मास करनेवाले पुत्रपौत्रोंके लिए उत्तम गाय व घोड़े मिलें इसलिए अपने बाप यल करते हैं ।

३ गये अस्मभ्यं वरिवः इडां कृष्यन्तः [ ८३२ ]- पायोंके लिए और हमारे लिए श्रेष्ठ धन और अन्न प्राप्त करनेके लिए यल करते हैं ।

४ मनो अधि पयमानः राजा मेधाभिः अन्तरिक्षेण यातये ईयते [ ८३३ ]- मनुष्योंमें बृहद् होनेवाला राजा अपनी बुद्धिसे उच्च मार्गसे जानेकी कोशिश करता है ।

५ देवधीतये सद्दः चर्चसे नः आ भर [ ८३४ ]- देवत्व प्राप्त करनेके लिए शत्रुओ हारनेकी शक्ति हमारे तेज बढानेके लिए हमें भररुद्र दे ।

६ शातरियन् गयो पोयं, स्वहृद्यं भगर्षि नः आ घह [ ८३५ ]- सौ पायोंसे युक्त, गायका पोषण करनेवाले तथा उत्तम घोड़ोंवाले भाग्य हमें दे ।

७ नृमणानि यिभ्रतं चारं त्वा सुहृत्पया ईमहे [ ८३६ ]- अनेक घनोंके धारण करनेवाले सुन्दर ऐसे सुते उत्तम कर्म करके प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं ।

८ संयुक्त-धृष्ट्युं उषध्वं महामहिद्यतं मद्दं शतं पुरः रुक्षिर्षि [ ८३७ ]- जिसने अपने प्रभायी शत्रु मष्ट किए हैं ऐसे प्रशंसनीय और अनेक महत्वके कार्य करनेवाले, अलग्व देनेवाले, शत्रुके संकटों नगरोंको तोड़नेवाले धीरने हम यन पांगते हैं ।

९ हे सुहृतो! रयिः अभि अयत् त्वा राजानं अव्यथी आभरत् [ ८३८ ]- हे उत्तम कर्म करनेवाले ! धनके पास जानेवाले तैरे सभान राजाको कर्म करनेमें कुशल न माननेवाले नमुण्य लायें ।

१० चिचर्षणिः, अभिष्टिहृत्, इन्द्रियं हिव्दानः, ज्यायः महित्यं आनशे [ ८३९ ]- विज्ञेय मानी और इष्टकी सिद्धि करनेवाला अपनी शक्तिको प्रयोगमें लाकर श्रेष्ठत्व प्राप्त करता है ।

११ ऋतस्य गोपां, विश्वर्यं स्वदेशे साधारणं भरत् [ ८४० ]- सत्यके संरक्षण करनेवाले, अपनी बुद्धिसे देखनेवाले, सबोंके बीचमें सामारण तीरसे रहनेवाले तेज हमें प्राप्त हों ।

१२ जनाय वरिवः ऊर्जे ह्यधि [ ८४२ ]- लोगोंमें श्रेष्ठ बल पैदा कर ।

१३ वाजिभिः सुतानः पुनानः हितः [ ८४३ ]-

अनेक शक्तिव्यति तेजस्थे, स्वच्छ तथा निर्दोष रत्नेशाला ही हितकारक होता है ।

१४ कविः गृहपतिः युवा अग्निः समिधयते [ ८४४ ] - ब्रह्मर्षि, परका स्वामी, सहज, आने रहनेवाला प्रशंसित किया जाता है, अधिक तेजस्वी किया जाता है ।

१५ यः सपर्याति तस्य प्रायिता भव [ ८४५ ] - जो तेरी पूजा करता है, उसका तू रत्नक हो ।

१६ यः अग्निं वा विद्यासति तस्मै मृदुय [ ८४६ ] - जो अग्निकी आराधना करता है उसे सुखी कर ।

१७ पूत-दक्षं मित्रं रिशादसं वरुणं हुये, घृताच्यं धियं साधन्ता [ ८४७ ] - पवित्र बलते युवा मित्र और शत्रुकी दूर करनेवाले वरुणको मे सहायताके लिए बुझता हूँ । वे घृत अर्पित पीठिक पदार्थ प्राप्त करनेवाली घृदिकी बनाते हैं । पवित्र बाण्यं करनेवाले यज्ञ और शत्रुको दूर करनेके सामर्थ्य जहाँ होते हैं, वहाँ पोषण करनेवाले पदार्थ भी रहते हैं ।

१८ अताघृषां शतस्पृशां शतेन मृद्वर्तं कर्तुं आश्राये [ ८४८ ] - साथ घसानेवाले, सत्यकी स्पर्श करनेवाले साथी हो महान् कार्य करते हैं ।

१९ कवीं नुविजाता उरभ्रया अपसं वलं दधाते [ ८४९ ] - अनेक कार्य करनेवाले, अनेक स्थानोंमें रहनेवाले, उत्तम कार्य करनेके बलको धारण करते हैं ।

२० मन्त्रु समान वर्चस्वा अविभ्रुषा संजग्मानः [ ८५० ] - आनन्दित और तेजस्वी और न करनेवाले औरके साथ मिल गया है ।

२१ वीडू आ रुजानुमिः बलिभिः गुहा उक्षिपाः अन्वयिन्दुः [ ८५१ ] - शत्रुके मजबूत हिकोको तोड़नेवाले तेजस्वी धीरोंने शत्रुओं द्वारा खुराकर लं जाई गई और गुहामें छिपाकर रहने गई गावोंको प्राप्त किया ।

२२ ता पुराकृत धियं ह्य् वप्से, न मर्धतः [ ८५२ ] - उनके द्वारा पहले किए गए सब पराक्रमोंकी स्तुति होती है, वे दूख नहीं देते ।

२३ ता उभ्रा विघनिता ह्यवामहे [ ८५३ ] - वे शत्रुबान् और शत्रुके नाश करनेवाले हैं, उनको हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२४ ईदशो नः मृडातः [ ८५४ ] - इत प्रकारके इत संग्राममें हमें वे सुखी करते हैं ।

२५ आर्यां पूषाणि ह्यग्र [ ८५५ ] - आर्योंके कल्याणके लिए तुम शत्रुओंको मारो ।

२६ सपर्याति दासति ह्ययः [ ८५६ ] - तुम सज्जनोंके पावन करनेवाले हो, इसलिए योंकी मारकर दूर करो ।

२७ निभ्याः द्विषः अप ह्ययः [ ८५७ ] - सब देव करनेवाले शत्रुओंका नाश करो ।

२८ घाचं घर्षय [ ८५८ ] - वाद्गपका संवर्धन कर ।

२९ पुरग्धि जनय [ ८५९ ] - बहुते उतम कर्म करनेमें समर्थ बुद्धिको उत्पन्न कर ।

३० हे शत्रुन् । घृणया मद्विना शयसा विश्वा वा पमाय [ ८६० ] - हे चलवान् शीर ! सामर्थ्यवन्त महात्म्यते और बलते तू सब बाण्यं पूर्ण करता है ।

३१ हे प्रायिष्ठ मघन्न घञिन् । गोमति ग्रजे विद्यामिः क्षतिभिः ना भव [ ८६१ ] - हे चलवान् पनवान् बलधारी शीर ! यावोंते भरो हुई गीमात्ममें बिलक्षण प्रकारके सतसणके साधनोंसे हमारा रक्षण कर ।

३२ हे विचर्यणे मघवन् ' धृपत् विशांगद्वयं गोमन्तं वाजं मधु र्महे [ ८६२ ] - हे शानो और पनवान् इन्द्र ! तेरे पाससे शत्रुके नाश करनेवाले, शानके समान चमकनेवाले, गावोंके साथ रहनेवाले धन शीघ्र प्राप्त हो, ऐसी हम इच्छा करते हैं ।

३३ तरणिः युजा पुरन्ध्या वाजं सिवासति [ ८६३ ] - दुःखमे पार हो जानेवाला शीर, विशाल और उत्तम बुद्धिके बल प्राप्त करनेकी इच्छा करता है ।

३४ द्रविणोदेयु दु-स्तुतिः नः प्रायते [ ८६४ ] - धनोके दान करनेवालोंकी निन्दा करना ब्रह्मण्य नहीं ।

३५ रधिः न नश्रात् [ ८६५ ] - उस निन्दकको धन नहीं मिलता ।

३६ माघते देष्ठां तुभ्यं सुदासिः [ ८६६ ] - मुझ जैसेको देवें पोष्य धनको तुमसे दासितशाली ही प्राप्त कर सकते हैं ।

३७ घेनवः गाघः मिमान्ति [ ८६७ ] - बुवाघ बाण्यं दूध दुहनेके समय रमाती है ।

३८ शशीः श्रतस्थ यहाँः मातरः दिधः शिम्तं मजं यन्ति [ ८७० ] - शानी दत्यकी मजो मातायें एक दिनके घन्केकी नहलाते हैं ।

३९ रायः अस्मभ्यं विश्वतः आ पयस्य [ ८७१ ] - धन हमें पारों ओरसे लाकर दे ।

४० याचः-पतिः विश्वस्य ओजसः ईशानः मख-स्यते [ ८७३ ] - चाणीका स्वामी-विद्वान्-सब सामर्थ्योका स्वामी हो तो दूध होता है ।

४१ हे ब्रह्मणस्पते ! ते पवित्रं वितते [ ८७५ ]- हे ज्ञानके पति - हे ज्ञानो ! तेरे पवित्र कार्यं सब जगह फैले हुए हैं ।

४२ अतस्तनूः आमः तत् न अदनुते [ ८७५ ]- निस्तने तप नहीं किन्ना ऐसे अपवध शरीरवालेको मुल नहीं मिल सकता ।

४३ श्रुतासः इत् तत् समाशते [ ८७५ ]- जो परिपक्व होते हैं उन्हें ही यह मुल मिल सकता है ।

४४ तपो पवित्रं दिवः पदे वितते [ ८७६ ]- शत्रुको ताप देनेवाले शरीरोंका यह पवित्र स्थान धूलोकमें फैला हुआ है ।

४५ दिवः पृष्ठं तेजसा अधिरोहन्ति [ ८७६ ]- वे [ शत्रुको कष्ट देनेवाले ] धूलोककी पीठ पर अपने तेजसे चढ़कर बैठते हैं ।

४६ उपसः पृदिनः अग्निया अरुरुचत् [ ८७७ ]- उप कात्के बाद सूप आगे होकर चमकने लगता है ।

४७ उक्षा भुवनेषु मिमेति याजयुः [ ८७७ ]- मेघ पृथ्वी पर बरसत गिरता है और अन्न उत्पन्न करता है ।

४८ महिष्ठाप श्रुताग्ने वृहते शुभ्रजोधिषे प्रगापत

[ ८७८ ]- जो घंठ, सत्यनिष्ठ और महान् तेजस्वी है उसका वर्णन कर ।

४९ मघवा धीरवत् यशः आ चंसते [ ८७९ ]- पनवान् इन्द्र पुत्रपौत्रोंके ताप होनेवाला पश देता है ।

५० ते वृषणं वृष्टु सासहिं लोकश्रुतुं मर्दं गृणीमसि [ ८८० ]- बलवर्षक मुदमें शत्रुओंको हटानेवाले, लोगोंका हित करनेवाले तेरे उत्साहकी हम प्रशंसा करते हैं ।

५१ ते तत् पूर्वथा अथ उभियतः अनुस्तुघन्ति [ ८८२ ]- तेरे उस बलकी पहूलेके समान आज भी स्तोता स्तुति करते हैं ।

५२ सुवीर्यस्य गोमतः रायः पूर्धि [ ८८३ ]- उत्तम श्रेष्ठ पुत्रोंसे युक्त और गर्वसे युक्त धनसे हम पूर्ण कर ।

५३ अतस्य पिश्रुपीं चिकित्विन् मनसं धियं [ ८८४ ]- सत्यका पोषण करनेवाली, मनको शुद्ध करनेवाली शुभ ब्रह्मि है ।

५४ अस्य पुरुषि पौंस्या सिपासन्तः वनामदे [ ८८५ ]- इसके बहूतसे पराक्रमके कामोंका वर्णन हम भक्तिते करते हैं ।

## चतुर्थाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रसंख्या	ऋषेयस्यान्तर्गतः	ऋषिः	देवता	छान्दः
८३०	११३६११	जम्बरुनिर्भागवः	पवमानः सोमः	गायत्री
८३१	११६११०	जम्बरुनिर्भागवः	"	"
८३२	११६११०	जम्बरुनिर्भागवः	"	"
८३३	११६५११६	भृगुर्षारणिर्जम्बरुनिर्भागवो वा	"	"
८३४	११६५११८	भृगुर्षारणिर्जम्बरुनिर्भागवो वा	"	"
८३५	११६५११७	भृगुर्षारणिर्जम्बरुनिर्भागवो वा	"	"
८३६	११७८११	बृचिर्भागवः	"	"
८३७	११७८१०	बृचिर्भागवः	"	"
८३८	११७८१३	बृचिर्भागवः	"	"
८३९	११८८१९	बृचिर्भागवः	"	"
८४०	११८८१३	बृचिर्भागवः	"	"
८४१	११६७१२३	बृचिर्भागवः	"	"
८४२	११६७१२३	बृचिर्भागवः	"	"
८४३	११६७१२३	बृचिर्भागवः	"	"
८४४	११६७१२३	बृचिर्भागवः	"	"
८४५	११६७१२३	बृचिर्भागवः	"	"
८४६	११६७१२३	बृचिर्भागवः	"	"
८४७	११६७१२३	बृचिर्भागवः	"	"
८४८	११६७१२३	बृचिर्भागवः	"	"
८४९	११६७१२३	बृचिर्भागवः	"	"
८५०	११६७१२३	बृचिर्भागवः	"	"

चतुर्थ अध्याय ]

सामवेदका सुबोध व्युत्पाद

संज्ञसंख्या	ऋग्वेदसंख्यां	श्रुतिः	वेदता	छन्दः
८४३	१।१५।१५	बन्धवो मारीधः ( २ )	पवमानः सोमः	गायत्री
८४४	१।१२।१६	मेघातिथिः काण्वः	अग्निः	"
८४५	१।१२।१८	मेघातिथिः काण्वः	"	"
८४६	१।१२।१९	मेघातिथिः काण्वः	"	"
८४७	१।१३।७	मयुच्छन्वा वेदवामिनः	मित्रावरुणी	"
८४८	१।१३।८	मयुच्छन्वा वेदवामिनः	"	"
८४९	१।१।९	मयुच्छन्वा वेदवामिनः	"	"
८५०	१।१।७	मयुच्छन्वा वेदवामिनः	इन्द्रः	"
८५१	१।१।४	मयुच्छन्वा वेदवामिनः	मरुतः	"
८५२	१।१।५	मयुच्छन्वा वेदवामिनः	इन्द्रः	"
८५३	१।१।७	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	इन्द्राग्नी	"
८५४	१।१।७	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
८५५	१।१।७	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
( ३ )				
८५६	१।१०७।१४	सप्तर्षयः	पवमानः सोमः	प्रगायः ( विपना बृहती, सभा सती बृहती )
८५७	१।१०७।१५	सप्तर्षयः	"	द्विपदा विराट्
८५८	१।१०७।१६	सप्तर्षयः	"	त्रिपटु
८५९	१।१०७।१४	परामारः शाकल्यः	"	"
८६०	१।१०७।१५	परामारः शाकल्यः	"	"
८६१	१।१०७।१६	परामारः शाकल्यः	"	"
( ४ )				
८६२	८।७०।५	पुबहन्मा आंगिरसः	इन्द्रः	प्रगायः ( विपना बृहती, सभा सती बृहती )
८६३	८।७०।६	पुबहन्मा आंगिरसः	"	"
८६४	८।३३।१	मेघातिथिः काण्वः	"	बृहती
८६५	८।३३।२	मेघातिथिः काण्वः	"	"
८६६	८।३३।३	मेघातिथिः काण्वः	"	"
८६७	८।३३।४	वसिष्ठो मित्रावरुणिः	"	प्रगाय ( विपना बृहती, सभा सती बृहती )
८६८	८।३३।५	वसिष्ठो मित्रावरुणिः	"	"
( ५ )				
८६९	१।३३।४	त्रित काण्वः	पवमानः सोमः	गायत्री
८७०	१।३३।५	त्रित काण्वः	"	"
८७१	१।३३।६	त्रित काण्वः	"	"

( ८२ )

## सामवेदका सुयोध अनुयाद

[ उत्तरार्चिक।

शंखसंख्या	श्रवणवेदस्थानं	श्रावि	देवता	छन्दः
८७२	१११०११४	ययातिर्नाहुषः	पद्ममालः सोमः	अनुष्टुप्
८७३	१११०११५	ययातिर्नाहुषः	"	"
८७४	१११०११६	ययातिर्नाहुषः	"	"
८७५	११८३११	पवित्र आगिरसः	"	अथती
८७६	११८३१२	पवित्र आगिरसः	"	"
८७७	११८३१३	पवित्र आगिरसः	"	"

( ६ )

८७८	८११०३१८	सोमरिः काण्वः	अग्निः	प्रणायः ( विषया कृष्ण, समा सतो बृहती )
८७९	८११०३१९	सोमरिः काण्वः	"	"
८८०	८११५१४	शोषूक्त्यश्चसूक्तिर्नो काण्वायनी	इन्द्रः	उष्णिक्
८८१	८११५१५	शोषूक्त्यश्चसूक्तिर्नो काण्वायनी	"	"
८८२	८११५१६	शोषूक्त्यश्चसूक्तिर्नो काण्वायनी	"	"
८८३	८१९५१४	तिरश्चौरागिरसौ	"	अनुष्टुप्
८८४	८१९५१५	तिरश्चौरागिरसौ	"	"
८८५	८१९५१६	तिरश्चौरागिरसौ	"	"

## अथ पंचमोऽध्यायः ।

अथ तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धो ॥ ३ ॥

[ १ ]

( १-२२ ) १ अहृज्या धावाः; २ अमहीपुरागिरसः; ३ भेष्यातिथिः काश्रः; ४, १२ बृहन्मतिरागिरसः, ५ भृगुर्वा-  
 षिर्भ्रमदग्निर्नाग्वयो वा; ६ सुनंनर आश्वेयः; ७ मूलमदः शीवरुः; ८, २१ गीतनो राहृगणः; ९, १३ वसिष्ठो भैत्रा  
 वधंभिः; १० युवच्युत आगस्त्यः; ११ सप्तर्षेयः ( भद्रदानी धार्हृत्पत्य, २ बन्धयो मारीचः; ३ गीतनो राहृगणः;  
 ४ अत्रिर्भौवः; ५ त्रिदवायित्रो गाथिनः, ६ जयवग्निर्नाग्वयः, ७ वसिष्ठो भैत्रावरुणः ) १४ रेमः काश्रमपः;  
 १५ पुष्टहन्मा भागिरसः; \* १६ अस्तितः काश्रमपो देवलो वा; १७ ( १ ) शक्तिर्वासिष्ठः, १७ ( २ )  
 उररागिरसः; १८ अग्निश्चासुवः; १९ प्रतर्दयो वंशोवाभिः; २० प्रयोगो भार्गवः; २१ पावकोऽग्निर्वाहृ-  
 स्परयो वा, बृहस्पतिव्यथिष्ठो सहसः पुत्रावन्मतरयो वा; २२ ॥ १-५; १०-१२, १६-१९ पवमानः  
 सोमः; २, २० अग्निः; ७ त्रिभ्रत्वदगो; ८, १३-१५, २१ इन्द्रः; ९ इन्द्राग्नीः; २२ ॥ १, ६  
 वागतो; २-५, ७-१०, १२; १६, २० पापवी; ११, १५ प्रगायः= ( विषमा बृहती,  
 सत्मा सतोबृहती ); १३ विराट्; १४ ( १ ) अति जगतो, १४ ( २-३ ) उपरिच्छाद्  
 बृहती; १७ काकुभः प्रगायः= ( विषमा ककुप सत्मा सतोबृहती ); १८ उज्जिग्  
 १९ त्रिच्छद्; २१ अनुच्छद् ॥

८८६ प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असुग्रन्पयसा धरीमणि ।

प्रान्तरिक्षास्याविरीस्ते असृक्षत ये रथा मृजन्त्युपिषाण वैधसः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।६।४ )

८८७ उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति कृतवः ।

यदी पवित्रं अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनी कलशेषु सीदति ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।६।५ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ८८६ ] हे ( पवमान ) बृह होनेवाले सोम ! ( ते ) तेरी ( आदिजनीः धेनवः ) देवान् बुधाव गार्गे ( दिव्याः )  
 विष्य हे, ( पयसा ) अपने दूधते ( धरीमणि ) कलशमें ( प्र असृग्न् ) पहुँचती है। ऋषिषाण ) हे ऋषिके द्वारा  
 निकाले गए सोमरस ! ( ये वैधसः रथा मृजन्ति ) जो क्षीनो ऋषिवज सुधे छानते हैं ( ते ) वे ऋषिवज ( अन्तरिक्षात् )  
 ऊपरके बर्तनते ( स्याद्विरीः असृक्षत ) त्विर भारतमेंते नीचेके कलशमें सुधे पहुँचाते हैं ॥ १ ॥

[ ८८७ ] ( पवमानस्य ध्रुवस्य सतः ) छाने जानेवाले त्विर सोमकी ( रश्मयः केतय उभयतः परि यन्ति )  
 किरणें बीनों ही तरकते फेलनी हैं, ( यदि ) जब ( पवित्रे हरिः अधिमृज्यते ) छलनीसे हरे रणका सीप छाना जाता  
 है, उस समय ( सत्ता ) त्विर रहनेकी इच्छा करनेवाला सोम ( योनी कलशेषु निषीदति ) कलशरूपी बर्तनमें  
 जाकर रहता है ॥ २ ॥



८८८ विश्वा धामानि विश्वश्चक्षुः श्रभ्वसः प्रमोष्टे सतः परि यन्ति फेतवः ।

व्यानञ्जी पवसे सोम धर्मेणा पतिविश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ३ ॥ १ (वी) ॥

[ धा० ३५ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १।८।५९ )

८८९ पवमानो अजीजनदिवधित्रं न तन्यतुम् । ज्यातिर्विश्वानरं वृद्धेत् ॥ १ ॥ - ( ऋ. १।९।१६ )

८९० पवमान रसस्तव मदी राजन्नदुच्छ्रुतः । वि वारमव्यमपति ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।१८ )

८९१ पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्यातिर्विश्वश्चस्वद्वेष्टो ॥ ३ ॥ २ (पा) ॥

[ धा० २० । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।९।१७ )

८९२ प्र यद्वावो न भूर्णयस्स्वेषा अयासो अक्रमुः । मन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०।११ )

८९३ सुवितस्य वनामदेऽति सेतुं दुराप्यम् । साह्याम दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१०।१२ )

८९४ शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शृम्भिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१०।१३ )

८९५ आ पवस्व महोमिप गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्ववत्सोम वीरवत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१०।१४ )

[ ८८८ ] ( विश्वश्चक्षुः ) सव जगह देखनेवाले सोम । ( प्रमोः सतः ते ) प्रभुत्वकी इच्छा करनेवाले तेरो ( जस्यसः फेतवः ) पकी बडी किरणें ( विश्वा धामानि परिगन्ति ) सब जगह पहुँचती हैं, सब हे ( सोम ) सोम । ( व्यानञ्जी ) व्यापक स्वभावका तू ( धर्मेणा पवसे ) अपने स्वभाव धर्मेसे गूढ़ होता है, और ( विश्वस्य भुवनस्य पतिः ) सब भुवनोंका स्वामी तू ( राजसि ) चमकता है ॥ ३ ॥

[ ८८९ ] ( पवमानः ) पवित्र किया जानेवाला सोम ( वृद्धेत् वैश्वानरं ज्यातिः ) महान् वैश्वानर नामके तेजको ( दिवः चित्रं तन्यतुं न ) [शुलोकने विलक्षण तेजस्वी विजलीके समान ( अजीजनत् ) उत्पन्न करता है, वह चमकता है ॥ १ ॥

[ ८९० ] हे ( राजन् पवमान ) तेजस्वी शुद्ध होनेवाले सोम । ( तय अद्ः ) तेरा उत्साह बढानेवाला तया ( अ-दुच्छ्रुत रसः ) राससोंको न मिलनेवाला रस ( अव्यं पारं वि अर्पति ) यकरोके बालोंको छलनीसे नीचे बताने पड़ता है ॥ २ ॥

[ ८९१ ] हे सोम । ( पवमानस्य ते ) शुद्ध किए जानेवाले ऐसे तेरा ( दक्षः द्युमान् रसः ) बलवान् और तेजस्वी रस ( विराजति ) चमकता है ( विश्वं स्वः ज्यातिः वृद्धो ) सपे व्यापक तेरो ज्योति पहाँ दीखती है ॥ ३ ॥

[ ८९२ ] ( गायः न ) गायोंके समान ( भूर्णयः ) शीघ्र जानेवाला ( तेषाः अयासः ) तेजस्वी पतिमान् ( यत् ) जो सोम ( कृष्णां त्वचं अपव्रतः ) पाली चमरो [ छाल ] को दूर करके ( प्र अक्रमुः ) मतानमें गिरता है, उसकी प्रज्ञता होती है ॥ १ ॥

[ ८९३ ] ( सु-वितस्य ) सुखदाई सोमकी ( दुराप्यं अति सेतुं ) दुष्प्राप्त बन्धनको दूर करनेके लिए हम ( पनामदे ) प्रार्थना करते हैं, ( अ-प्रत दस्युं साह्याम ) साकर्म न करनेवाले शत्रुको हथ हरायें ॥ २ ॥

[ ८९४ ] ( वृष्टेः स्वनः इव ) वृष्टिके शब्दके समान ( पवमानस्य ) शुद्ध किए जानेवाले सोमका शब्द ( शृण्वे ) सुना जाता है । उत तपय ( शृम्भिणः विद्युतः ) बलवाली सोमकी किरणें ( दिवि चरन्ति ) आकाशमें संचार करती हैं ॥ ३ ॥

[ ८९५ ] हे ( इन्दो सोम ) रसस्व सोम । तू ( महो इयं ) बहुतता अन्न ( गोमत् ) गायोंके साथ ( हिरण्यवत् ) सोने के साथ ( अद्वयवत् ) पीछेके साथ और ( वीरवत् ) पुत्रवीरोंके साथ हनें ( आ पवस्य ) दे ॥ ४ ॥

८९६ पवस्व विश्वर्चपेण आ मही रोदसी पूण । उपाः सूर्यो न रदिमभिः ॥ ५ ॥ ( ऋ ९।४।१५ )

८९७ परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥ ३ ( जी ) ॥  
[ घाटं ३९ । उ० ४ । स्व० ४ ] ( ऋ ९।४।१६ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

८९८ आशुरपं बृहन्मते परि मियेण धाम्ना । यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१९।१ )

८९९ परिष्कृष्वन्निकृतं जनाय यातयन्निपः । वृष्टिं दिव्यः परि स्रव ॥ २ ॥ ( ऋ ९।२९।२ )

९०० अयस्स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिन्धोरूपो व्यक्षरन् ॥ ३ ॥ ( ऋ ९।३९।४ )

९०१ सुत एति पवित्र आ त्विपिं दधान औजसा । विचक्षणो विरोचयन् ॥ ४ ॥ ( ऋ ९।३९।३ )

९०२ आचिवांसन्परावता अथो अर्वायतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥ ( ऋ ९।३९।५ )

९०३ समीचीना अनूपत हरिं हिन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ६ ॥ ४ ( जी ) ॥  
[ घा० ३२ । उ० ३ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।३९।६ )

[ ८९६ ] हे ( विश्व-चर्चपेण ) सबको देखनेवाले सोम ! ( पवस्व ) शुद्ध हो, और अपने इस रससे ( मही रोदसी ) इन महान् शुक्लक और पृथ्वीलोकको ( सूर्यः रदिमभिः, उपाः न ) जित प्रकार सूर्य अपने किरणोंसे जगत्काल्ने बाद सब विश्वको भर देता है उसी प्रकार ( आ पूण ) भर दे ॥ ५ ॥

[ ८९७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( विष्टपं रसा इव ) इस मूलोकको जैसे पानी घेरे हुए है, उसी प्रकार अपने ( शर्मयन्त्या धारया ) तुल्यवत्क धारासे ( न, विभ्यतः परि स्त्र ) हमें जहाँ मोरसे घेरे ले ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ८९८ ] हे ( बृहन्मते ) बृहन्मान् सोम ! ( मियेण धाम्ना ) अपने प्रिय धारोसे-धारासे ( आशु परि अर्प ) शीघ्र आ, ( यत्र देव्यः ) जहाँ देव रहते हैं ( इति ब्रुवन् ) ऐसा कहते हैं, उस यज्ञमें आ ॥ १ ॥

[ ८९९ ] ( अनिष्कृतं परिष्कृष्यन् ) सत्काररहित स्थानको सत्कारमुत्त करते हुए ( जनाय इपः यातयन् ) लोगोंको आर देनेके लिए ( दिव्यः वृष्टिं परिस्त्रव ) शूलोकमें वर्षा कर ॥ २ ॥

[ ९०० ] ( यः दिवः परि रघुयामा ) जो शूलोकके ऊपर पीरे पीरे चलता है, ( सः अयं ) वह यह सोम ( पवित्रे आ ) छलनीसे छाना जाता है, और ( सिन्धोः ऊर्ध्वं वि अक्षरन् ) पानीके लहरमें टपकता है ॥ ३ ॥

[ ९०१ ] ( सुतः त्विपिं दधानः ) सोमरस तेजस्वित धारण करके ( विचक्षणः विरोचयन् ) सबका निरीक्षण करके सबको प्रकाशमान् करते हुए ( औजसा ) वैशेषे ( पवित्रे आ एति ) छलनीसे शीघ्र छाना जाता है ॥ ४ ॥

[ ९०२ ] ( सुत ) रस निकालनेके बाद ( परावतः अथो अर्वायत ) दूरसे और पाससे ( अर धियासन् ) शुद्ध करके ( इन्द्राय इन्द्रको ( मधु ) मह मधुर रस ( सिच्यते ) दिया जाता है ॥ ५ ॥

[ ९०३ ] ( समीचीनाः ) स्तुति करनेवाले एक जगह समर्पित होकर ( अनूपत ) स्तुति करते हैं, ( इन्द्राय पीतये ) इन्द्रको पीनेको देनेके लिए ( हरिं इन्दुं ) हरे रसके सोमको ( अद्रिभिः हिन्त्यन्ति ) पारपारसे कूटते हैं ॥ ६ ॥

९०४ हिन्वन्ति स्रमुस्रपः स्वसारी जामयस्र्पतिम् । महामिन्दु महीयुवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।१ )

९०५ पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः । विश्वा वसून्वा विश्व ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।२ )

९०६ आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इपे पवस्य संपतम् ॥ ३ ॥ ५ ( इ ) ॥

[ भा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६५।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

९०७ जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरभिः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।

घृतप्रणीको वृहता दिविस्पृशा घुमद्भि साति भरतेभ्यः शुचिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११।१ )

९०८ स्वाममे अङ्गिरसां गुहा हितमन्वविन्दं च्छिभ्रिपार्णं वनेवने ।

स जायसे मध्यमानः सदा महश्शमाहुः सहस्रपुत्रमङ्गिरः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११।६ )

[ ९०४ ] ( उस्रय. जामयः स्वसारः ) सत्र जगह जानेवालो, आपसने प्रेमते रहनेवालों बहिर्ने-अंगुलियां ( मही-युवः ) महान् कार्य-सोमरस निकालनेका कार्य करती है, और ( स्र्पतिं ) अष्ट स्वामी ऐसे ( महा इन्दुं ) महान् सोमरसकी ( हिन्वन्ति ) निकालती है, सोमरसको निचोड़ती है ॥ १ ॥

[ ९०५ ] हे ( रुचा रुचा ) तेमने ( देव पवमान ) धमकनेवाले तथा शुद्ध होनेवाले सोम ! ( देवेभ्यः सुतः ) देवोंकी देनेके लिए निबोधा गया तू ( विश्वा वसूनि आ विश्व ) सब धन हमें दे, सब धनमें तू प्रविष्ट होकर रह ॥ २ ॥

[ ९०६ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( सुष्टुतिं वृष्टिं ) उत्तम स्तुतिके योग्य वर्षाको ( देवेभ्यः दुवः ) देवताओंके प्राप्त होनेवाले आसनोंके समान ( आ पवस्य ) हमारे पास पहुंचा, ( इपे संयते ) अत्र प्राप्त हो इसके लिए वर्षा कर ॥ ५ ॥

॥ यदां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ९०७ ] ( जनस्य गोपा ) लोगोंका रसक ( जागृवि सुदक्षः ) जागृत और उत्तम कर्ममें कुशल ( अग्निः ) अग्नि ( नव्यसे सुविताय यजनिष्ट ) मने प्रकारसे लोगोंका पत्थान हो इसलिए प्रष्ट हुआ है, उसके बाद ( घृत-प्रणीकः ) घृतसे प्रशकित किया गया ( वृहता दिविस्पृशा ) महान् सुकोकको स्पर्श करनेवाले तेमने युक्त ( शुचिः ) शुद्धता करनेवाला अग्नि ( भरतेभ्यः ) धन करनेवाले लोगोंके लिए ( घुमत् विभाति ) प्रकाशमान होकर धमकता है ॥ १ ॥

[ ९०८ ] हे ( अग्ने ) अग्निदेव ! ( अंगिरसः ) अंगिरस ऋषियोंने ( गुहा-हितं ) गुहामें रहे हुए ( वने वने छिभ्रिपार्णं ) प्रत्येक रुसाके आश्रयते रहनेवाले ( स्वां अन्वविन्दन् ) तुझ अग्निको प्राप्त किया । ( महत् सहः सः ) महान् चलते पुत्र तू अग्नि ( मध्यमानः जायसे ) संयत्र करके पैदा किया जाता है । हे ( अंगिर. ) अंगीमें रहनेवाले अग्ने ! ( स्वां सहस्रः पुत्रं आहुः ) तुम सामर्थ्यका पुत्र कहते है ॥ २ ॥

- ९०९ यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरञ्चिपथस्थे समिन्धते ।  
इन्द्रेण वैचैः सरथस्य वरिधिपि सीदन्नि होता पञ्चथाप सुकृतः ॥ ३ ॥ ६ ( वे ) ॥  
[ पा० ३० । उ० नास्ति । स्व० ७ ] ( ऋ. १।१।१९ )
- ९१० अयं वाँ मित्रावरुणा सुतः सोमं क्रतानृषा । ममेदिह श्रुतश्चइवम् ॥ १ ॥ ( ऋ. २।४।१४ )
- ९११ राजानावनभिद्रुहा ध्रुवं सदस्युत्तमे । सहस्रस्पृण आधाते ॥ २ ॥ ( ऋ. २।४।१५ )
- ९१२ वा सप्ताजा घृतासुवी आदित्या दानुनरपती । सचेते अनवह्वरम् ॥ ३ ॥ ७ ( पि ) ॥  
[ पा० १५ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. २।४।१६ )
- ९१३ इन्द्रो दधीचीं अस्याभिर्वन्नाण्यप्रतिष्कृतः । जघान नववीनिव ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।४।३ )
- ९१४ इच्छन्नश्चस्य च्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । उद्दिदच्छर्षणावति ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।४।४ )
- ९१५ अत्राह गोरमन्वत नाम स्वष्टुरपीच्यम् । इत्या चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥ ८ ( टी ) ॥  
[ पा० १३ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।८।४।५ )

[ ९०९ ] ( नरः ) ऋत्विज लोग ( यज्ञस्य केतुं ) यज्ञके पञ्च, ( पुरोहितं ) आगे रथे गए ( वैचैः सरथं ) बैचैके साथ एक रथपर बैठनेवाले ( प्रथमं अग्निं ) मुख्य अग्निको ( नि-सधस्थे ) तीन जगह ( सं इन्धते ) बन्धी तरह प्रज्वलित करते हैं, उसके बाद ( सुकृतः होता सः ) उत्तम कर्ष करनेवाला तथा वैचैके लिए हथ, करनेवाला यह अग्नि ( वरिधिपि ) अपने स्थानमें ( यज्ञधाय ) यज्ञ करनेके लिए ( निधीदत् ) बैठता है ॥ ३ ॥

[ ९१० ] हे ( क्रतानृषा मित्रावरुणा ) यज्ञको बढानेवाले मित्र और वरुण ! ( वा ) तुम्हारे लिए ( अयं सोम सुतः ) यह सोम निकालकर और धानकर रखा गया है, इसलिये ( इह ) यहाँ इस यज्ञमें ( मम इत् श्रुतं इव श्रुते ) मेरी ही प्रार्थना सुनो ॥ १ ॥

[ ९११ ] हे ( राजानौ अनभिद्रुहा ) तेजस्वी और द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुणो ! ( ध्रुवे उत्तमे सहस्रस्पृणो सदसि ) स्थिर, बल और हजार सन्मौपाले इस यज्ञ मन्वन्तमें ( आधाते ) धाकर बँडो ॥ २ ॥

[ ९१२ ] ( सप्ताजा ) सप्ताद ( घृतासुवी ) घृतको अन्न धानेवाले ( आदित्या ) अवितिके पुत्र ( दानुनरपति ) यज्ञके स्वामी ऐसे ( वा ) वे निज और वरुण ( अनवह्वरम् ) कुदिलताते रहित यज्ञमन्त्रके ( सचेते ) सहायता करते हैं ॥ ३ ॥

[ ९१३ ] ( अ-प्रति-ष्कृतः ) जितना कोई विरोधी नहीं ऐसे ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( दधीचि- अस्याभिः ) रथोचिते हृष्टिपति ( नयतीः नय ) निष्पातके ( च्छिराश्च जघान ) धरनेवाले शत्रुओंको मार ॥ १ ॥

[ ९१४ ] ( पर्वतेषु अपश्रितं ) पर्वतोंमें रखा हुआ ( अद्यस्य यत् शिरः ) घोड़ेका जो शिर है, उसे ( इच्छन् ) प्राप्त करनेकी इच्छने इच्छा की, उस इच्छने ( शर्षणावति तद् विदत् ) शर्षणावती शरीरके पास उचितप्राप्त किया और उससे अनुर्षका सहारा किया ॥ २ ॥

[ ९१५ ] ( अत्राह ) यहाँ ( गोः चन्द्रमसः गृहे ) मगन करनेवाले चन्द्रमाके मन्वन्तमें ( स्वष्टुरः अपीच्यं नाम ) पूर्णकी पुत्र किरणें सारीके समय प्रकाशित होती हैं ( इत्या अमन्वत ) ऐसा माना जाता है ॥ ३ ॥

- ९१६ इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्यस्तुतिः । अभ्राद्दृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।९।१ )  
 ९१७ शृणुतं जरितुह्वमिन्द्राग्नी वनवे गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।९।२ )  
 ९१८ मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिश्चस्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥ ९ ( चा ) ॥  
 [ धा० १२ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ७।९।३ )

॥ इति तृतीय सण्ड ॥ ३ ॥

[ ४ ]

- ९१९ पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२।१ )  
 ९२० सं देवैः शोभते वृषा फविर्धानावधि म्रियः । पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२।३ )  
 ९२१ पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिऋद् । धमेणा वायुमारुहः ॥ ३ ॥ १० ( ख ) ॥  
 [ धा० ११ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।२।२ )  
 ९२२ तवाह्वसोम रारण सख्ये इन्दो दिवेदिवे ।  
 पुरुषे यत्रो नि चरन्ति मामव परिधींश्चरति ताश्चिदि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१९ )

[ ९१६ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र वीर अग्नि ! ( इयं चां पूर्य-स्तुतिः ) यह सुम दोनोंकी बपूर्व स्तुति ( मन्मन्य वामस्य मन्मनः ) इत सुन्दर और मननीय विद्वान्से ( अभ्रात् चुष्टिः इय ) जित प्रकार मेघने वर्षा होती है, उसी प्रकार ( अजनि ) उत्पन्न हुई है ॥ १ ॥

[ ९१७ ] हे ईशानो ! ( जरितुः ह्यं शृणुतं ) त्वोत्तमो प्रायना तुम सुनो, ( गिरः वनतं ) उत्तमी स्तुति सुनो ( ईशाना ) प्राप्त करनेवाले तुम दोनों ( धियः पिप्यतं ) उनके कर्मोंका फल दो ॥ २ ॥

[ ९१८ ] ( नरा इन्द्राग्नी ) हे नेता स्वरूप इन्द्र वीर मन्ने ! ( नः ) हमें ( पापत्वाय मा रीरधतं ) पापके कामोंमें न लगाओ, ( माभिश्चस्तये मा ) हिसाके कामोंमें हमें मुक्त मत करो, ( निदे न मा ) वीर निदाके लिए भी हमें मत लगाओ ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ९१९ ] हे ( हरे ) हरे रणके लोग ! ( दक्ष-साधनः मदः ) बल व उत्साह बढ़ानेवाला हू ( देवेभ्यः मरुद्भ्य ) देवों और अर्द्धतंत्रि तपा ( वायवे ) वायुके ( पीतये पवस्व ) पीनेके लिए पवित्र हो ॥ १ ॥

[ ९२० ] ( वृषा फविः ) बलवर्धक शानी ( योनिं अधि ) अपने स्थान पर ( पवमान म्रियः ) शूद्र होनेके कारण म्रिय और ( अदाभ्य ) न बढ़ाया जानेवाला सोम ( देवै संशोभते ) देवोंके साथ उत्तम प्रकारसे शोभित होता है ॥ २ ॥

[ ९२१ ] हे ( पवमान ) शूद्र होनेवाले सोम ! ( धिया हितः ) विचार कर अच्छी तरह रक्षा गया हू ( कनिऋद् ) सम्बन्ध करते हुए ( योनिं अभि आरुहः ) कलशमें गिरता है, ( धमेणा वायुं आरुह ) अपने गुणोंसे वायुको प्राप्त कर ॥ ३ ॥

[ ९२२ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( तव सख्ये ) तेरी मित्रताके लिए ( अह् दिवे दिवे रारण ) मैं प्रतिबिम्ब यत्न करता हूँ, हे ( यत्रो ) कान्तिमान् सोम ! ( पुरुषे मां ) बहुतसे राक्षस मुझे ( नि अय चरन्ति ) कष्ट देते हैं ( तान् परिधींश्चरति चिदि ) उन शत्रुओंके मर्त कर ॥ १ ॥

९२३ त्वाहं नक्तमृत सोम ते दिवा दुहानो वभ्र ऊधनि ।

घृणा तपन्तमति एषे परः शकुना इव पशिम

॥ २ ॥ ११ ( ति ) ॥

[ धा० ११। उ० १। स्० १ ] ( ऋ. ९। १०७। १० )

९२४ पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृषो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विभ्र धीतिभिः ॥ १ ॥

( ऋ. ९। ४०। १ )

९२५ आ योनिमरुणो रुहद्रमदिन्द्रो घृषा सुतम् । ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥ ( ऋ. ९। ४०। २ )

९२६ नू नो रयि महामिन्द्रोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सदस्त्रिणम् ॥ ३ ॥ १२ ( चा ) ॥

[ धा० १२। उ० १२। स्० २ ] ( ऋ. ९। ४०। ३ )

॥ इति वसुधं. सप्तः ॥ ५ ॥

[ ५ ]

९२७ पिषा सोममिन्द्र मदन्तु त्वां यं ते सुषाव हर्षश्चाद्रिः । सोतुवाङ्मुषां सुपतो नार्वी ॥ १ ॥

( ऋ. ७। २१। १ )

९२८ यस्तै मदीं युज्यश्चारुस्ति येन वृत्राणि हर्यश्च हृथसि । स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

( ऋ. ७। २१। २ )

[ ९२३ ] हे ( वभ्रो ) भूरे रंगके सोम ! ( उत भक्तं उत दिवा ) रात अथवा दिन ( तय ऊधनि अहं ) तेरे पास भं रहूं, ( ते घृणा ) अपने तेजते ( तपन्तं ) घमरनेवाले तुमो तथा ( एरं सूर्यं ) इर बनकरनेवाले एषको ( शकुनाः इव अति पशिम ) पशोके समान हृष देखते हूं ॥ २ ॥

[ ९२४ ] ( पुनानः विचर्षणिः ) पवित्र होनेवाला निरीक्षक सोम ( विश्वा मृषः अक्रमीत् ) सब शत्रुओंको हराता है, उन ( विभ्रं ) जानी सोमको श्रुतिज ( धीतिभिः शुम्भन्ति ) स्तुतियोंसे सुधीनित करते हें ॥ १ ॥

[ ९२५ ] ( अरुणः ) अरुण रथका घोम ( योनि आरुहत् ) कलामें घुसता है, कामें ( घृषा हन्द्रः ) बलवान हन्द्र ( सुतं गमत् ) उस सोमरथके पास जाता है, और ( ध्रुवे सदसि ) बिम्बर स्थानमें ( सीदतु ) रहता है ॥ २ ॥

[ ९२६ ] ( हन्द्रो सोम ) हे सोमरथ ! ( अस्मभ्यं ) हमें ( नु ) क्षीम ही ( महान् सदस्त्रिणं रयिं ) महान् और अनेकों प्रकारके यन ( विश्वत आ पवस्व ) चारों ओरसे काकर दे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ९२७ ] हे ( हन्द्रः ) हन्द्र ! ( सोमं पिब ) सोमरथ पी, ( त्वा मदन्तु ) तुमो ये रथ आनन्द देवें, हे ( हर्षश्च ) मोहे प्राप्तनेवाले हन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए ( सोतुः वाङ्मुषां ) सोमरथ निकालनेवालेकी भुजाओं द्वारा ( सु-यतः आद्रः ) पकड़ा हुआ पत्थर ( यं सुषाव ) जित रथको निकालता है, वह रथ ( नार्वी न ) घोड़ेके समान तुमो आनन्द देवे ॥ १ ॥

[ ९२८ ] हे ( हर्यश्च हन्द्रः ) हरि गायक घोड़े पासमें रखनेवाले हन्द्र ! ( ते युज्यः ) तेरे घोषण ( चारः मद्ः ) उत्सव आनन्द देनेवाला ( यः अस्ति ) जो सोम है ( येन वृत्राणि ) जितके उरताहते वृ वृत्रोंको ( हंसि ) मारता है, हे ( प्रभूवसो ) बहुत बनवान् ! ( सः त्वां ममत्तु ) वह सोम तुमो आनन्द देवे ॥ २ ॥

१२ [ साम हिन्दी भा. २ ]

९२९ बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठा अर्चति प्रशस्तिम् ।

इमा ब्रह्म सघमादे जुपस्य

॥ ३ ॥ १३ (चा) ॥

[ धा० १२ । उ० १ । स्व० २ ] (ऋ. ७।२।१९)

९३० विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।

कस्य वरं स्थमन्यामुरांमुताग्रमोजिष्टं तरसे तरस्विनम्

॥ १ ॥ (ऋ. ८।९७।१०)

९३१ नमि नमन्ति चक्षसा मेघं विप्रा अभिस्वरं ।

सुदीतयो वो अद्रुहाऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्षमिः

॥ २ ॥ (ऋ. ८।९७।१२)

९३२ सगु रमासा अस्वरन्दिन्द्रं सामस्य पीतये ।

स्वः पतिपदा वृधे घृतप्रता क्षाजसा समृतिभिः

॥ ३ ॥ १४ (पी) ॥

[ धा० १२ । उ० १ । स्व० ४ ] (ऋ. ८।९७।११)

९३३ यो राजा चर्षणीनां याता स्थभिराग्निभुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठे यो वृत्रहा गृणे

॥ १ ॥ (ऋ. ८।१०।१)

[ ९२९ ] हे (मघवन्) पनवान् इन्द्र ! (यां प्रशस्तिं वाचं) जित स्तुतिरूप वाणीते (वाचिष्ठः ते अर्चति) वसिष्ठ देवी अर्चना करता है, (इमां सु आ योध) उस स्तुतिको तु उत्तम रीतिसे समझकर स्वीकार कर और (इमां ग्राह) इस शानकी अथवा इस अन्नको (सघमादे जुपस्य) पत्रतालामें सेवन कर ॥ ३ ॥

[ ९३० ] (विश्वाः पृतनाः) सब संप्रामनें शत्रुको (अभिभूतरं इन्द्रं) पराजित करनेवाले इन्द्रको (नरः सजूः ततस्तुः) सब लोग मिलकर स्तुति करते हैं। (राजसे जजनुः) इन्द्रका तेज बढ़ानेके लिए ततोत्साह उत्साह सामर्थ्य बढ़ाते हैं (कस्ये चरे स्थेमनि) अपने कर्तृत्वसे थोड़े स्थानोंमें रहनेवाले (आमुर्तिं) शत्रुको मारनेवाले (उग्रं ओजिष्टं) और बड़ा बलिष्ठ (तरसे तरस्विनं) श्रेष्ठ और क्षीप्रतासे सब काम करनेवाले इन्द्रको सब स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ ९३१ ] (विप्राः अभि स्वरं) ऋत्विज महान् स्वरसे स्तोत्र कहते हुए (मेघं मेमिं चक्षसा नमन्ति) शमितमान् व्यापक इन्द्रको आकसे देखकर ही पहले नमस्कार करते हैं। हे स्तुति करनेवालो ! (सु-दीतय आ-द्रुहाः) उत्तम तेजस्वी और रोह न करनेवाले (घः) तुम (अपि) भी (तरस्विनः) क्षीप्रतासे (कर्णे) इन्द्रके कानोंतक पहुंचे ऐसे स्वरसे (समृक्षमिः सं) ऋचाओंके द्वारा उसको स्तुति करो ॥ २ ॥

[ ९३२ ] (रमासाः) स्तुति करनेवाले ऋत्विज (सामस्य पीतये) तोमरसे पीनेके लिए (इन्द्रं उ स्वम-स्वरम्) इन्द्रको ही उत्तम रीतिसे मिलकर स्तुति करते हैं (यत्) जब (स्वः पतिः) स्वर्गका पालक इन्द्र (वृधे) यज्ञमानको महान् करनेको इच्छा करता है, उस समय (घृत-प्रताः) घृतोंका आचरण करनेवाला इन्द्र (ओजसां ऊतिभिः सं) अपने सामर्थ्यसे ब अपने संरक्षणके साधनेसे (सं) युक्त होता है ॥ ३ ॥

[ ९३३ ] (योः चर्षणीनां राजा) जो मनुष्योंका राजा है, (रथेभिः याता) धी रथसे जानेवाला है, (अग्नि-भुः) भी आगे जानेवाला है, (विश्वासां पृतनानां वदता) जो सब शत्रुओंसे भयतको घार करानेवाला है, (योः घृत्रहा) जो शत्रुका नाश करनेवाला है, उस (ज्येष्ठे गृणे) श्रेष्ठ इन्द्रको मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

१३४ इन्द्रं तं शुभ्रं पुण्ड्रमन्त्रस्य यस्य द्विता विषर्ति ।

हस्तेन यज्ञः प्रति धायि दशतो मर्हा देवा न ध्रुपः

॥ २ ॥ १५ ( चि ) ॥

[ धा० १७ । उ० १ । स्व० ३ ] । ऋ ८।७०।२ )

॥ इति पञ्चमः पद्यः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१३५ परि प्रिया दिवः कविर्वयाश्चि नप्त्याहितः । स्वानैर्यासि कविकृतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९। )

१३६ स सुनुमातरा शुचिर्जातो जाते अराचयत् । महान्मर्हा श्रतायुधा ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।३ )

१३७ प्र प्र क्षपाय पन्पसे जनाय जुष्टो अद्रुहः । वीत्यर्षं पानिष्टये ॥ ३ ॥ १६ ( रि ) ॥

[ धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ ९।९।२ )

१३८ त्वं छात्रेऽङ्ग देव्य पवमान जनिमानि धुमत्तमा । अमृतस्वाय घोषयन् ॥ १ ॥

( ऋ ९।१०।१३ )

१३९ येना नवग्वा दृश्यहूपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।

देवानाश्च सुस्र अमृतस्य चादृणो येन श्रवाश्स्पाशव

॥ २ ॥ १७ ( पौ ) ॥

[ धा० ११ । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ ९।१०।१४ )

[ १३४ ] ( पुण्ड्रमन्त्रः ) है अनेक दासुकी मारनेवाले इन्द्रके उपासक ! ( अथसेते तं इन्द्रं शुभ्रं ) अर्धने सरलरूपके लिए उस इन्द्रकी उपासना कर ( यस्य विधर्तरे ) जिसकी संरक्षण शक्तिमें ( द्विता ) दोनों प्रकारकी शक्तिमा है, बितार और हृषा करनेकी दोनों प्रकारकी शक्तियाँ हैं, वह इन्द्र ( दशतः, महान् यज्ञः ) वर्तनीय और महान् पद्यकी ( देवः सूर्यः स ) तेजस्वी धूमके समान ( हस्तेन प्रति धायि ) हाथमें धारण करता है ॥ २ ॥

॥ यहाँ पाँचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ १३५ ] ( कवि- ) सानी ( कविकृतः ) बुद्धिसे कर्म करनेवाला ( नप्त्याः द्विता ) पहले पररणा गया, ( द्विचः परिप्रिया यथासि ) दुलोकसे अति प्रिय पक्षीरूप पत्थरसे निकाला गया सोयरस ( स्वानैः ) रस निकालनेवाले अश्वधुर्गाँठी ( परि यासि ) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

[ १३६ ] ( शुचिर्जातः ) शुद्ध हुआ हुआ ( महान् सः ) महान् वह सोम नामक ( सुनुः ) पुत्र ( मर्हा यज्ञः-युधा जाते मातरा ) महान् पद्यकी प्रकाशित करने-बसानेवाले-प्रसिद्ध माता धृ और पुत्रीकी ( अराचयत् ) प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

[ १३७ ] है सोम ! ( प्र प्र क्षपाय ) तेरे निवासके लिए यत्न करनेवाले ( अद्रुह- ) क्रोध न करनेवाले और ( पन्पसे जनाय ) स्तुति करनेवाले अनुप्यके लिए ( धीति ) भक्षणके ( जुष्टः ) उपवीर्यमें छाया गया वृ ( पानिष्टये धर्म ) स्तुतिकी प्राप्त हो ॥ ३ ॥

[ १३८ ] ( देव्य पवमान ) दिव्य सोम ! ( धुमत्तमः त्वं हि ) अत्यन्त तेजस्वी ऐसा तू ( अङ्ग ) बीज ( घोषयन् ) घोषणा करके ( जनिमानि ) अनेके दिव्य जन्मकी उत्पत्ति ( अमृतस्वाय ) अमरपत्थकी प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ १३९ ] ( नव-ग्वा दृश्यहृ ) नौ वर्षोंका वीर्य करनेवाला दृश्यहृ ऋषि ( येन अपोर्णुते ) जिस सोमके द्वारा शलका द्वारा सोमका है, ( विप्रासः येन आपिरे ) पत्त करनेवाले विप्रोंने जिस सोमकी सहायतासे पायें प्राप्त कीं, ( देवानां सुस्र ) देवोंके यज्ञसे सुस्र प्राप्त होनेपर ( चादृणो ) अमृतस्य श्रवांसि ) वेदके अक्षरकी सहायतासे मिलनेवाले अक्षरकी ( येन आप्रात ) जिस सोमकी सहायतासे यज्ञमान प्राप्त करते हैं, वह तू सोम देवोंकी प्राप्त हो ॥ २ ॥



- ९४० सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिऋदत् ॥ १ ॥  
( ऋ. ९।१०६।१० )
- ९४१ धौमिमृजन्ति वाजिनं वने कीडन्त्वमत्पविम् । अभि श्रिपृष्ठं मतयाः समस्वरन् ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।१०६।११ )
- ९४२ असजि कलशां अमि मीद्वान्त्सप्तने वाजयुः ।  
पुनानां वाचं जनयन्नसिस्पदत् ॥ ३ ॥ १८ ( फा ) ॥  
[ धा० १०।उ० २।स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०६।१२ )
- ९४३ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवा जनिता पृथिव्याः ।  
जनिताम्रेजनिता सूर्यस्य जनितन्द्रस्य जनिता विष्णाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१६।९ )
- ९४४ द्रवा देवानां पदवीः कवीनामपिर्विश्राणां महिषो मृगाणाम् ।  
द्वेनो मृधाणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेमन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१६।६ )

[ ९४० ] ( पुनानः सोमः ) शुद्ध किया जानेवाला सोम ( ऊर्मिणा ) अपनी धारते ( अव्यं वारं विधावति ) भेदके बालीकी छलनीसे नीचे पड़ता है । ( पवमानः ) शुद्ध किया जानेवाला सोम ( वाचः अग्रे कनिऋदत् ) स्तोत्र पाठके बाद शब्द करते हुए नीचेके बर्तनमें गिरता है ॥ १ ॥

[ ९४१ ] ( वाजिनं ) बलवान् ( वने कीडन्तं ) जलमें मिलाया जानेवाला, ( अभि अरि ) छलनीसे छाना जानेवाला सोम ( धौमिः मृजन्ति ) स्तोत्रोंकी सहायतासे श्रुत्वियों द्वारा शुद्ध किया जाता है ( श्रिपृष्ठं ) सोम बर्तनमें रहनेवाले सोमरसकी ( मतयाः अभि समस्वरन् ) स्तोत्र प्रस्ता करते हैं ॥ २ ॥

[ ९४२ ] ( वाजयुः ) अग्ने युक्त होनेवाला ( मीद्वान् ) और जलमें मिलनेवाला सोम ( कलशान् अभि असजि ) कलशमें गिरता है । ( सतिः न ) पीटा जैसे सप्राममें जाता है, उसी प्रकार ( पुनानः ) शुद्ध होनेवाला सोम ( वाचं जनयन् ) शब्द करते हुए ( असिस्पदत् ) बर्तनमें छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ ९४३ ] ( मतीनां जनिता ) स्तुतियोंको उत्पन्न करनेवाला ( दिवः जनिता ) छलीकको प्रकट करनेवाला ( पृथिव्याः जनिता ) पृथिवीका जनक ( अग्रेः जनिता ) अग्निका जनक ( सूर्यस्य जनिता ) सूर्यका जनक ( इन्द्रस्य उत विष्णोः जनिता ) इन्द्र और विष्णुका जनक ( सोमः पवते ) सोम शुद्ध किया जाता है ॥ १ ॥

इन देवोंको सोम पत्रशालामें लाता है, इसलिए यह इनको उत्पन्न करता है ऐसा आलम्बार्थिक पर्वच इत मन्त्रमें किया है । सोमके होने पर ही ये देव यज्ञशालामें आते हैं ।

[ ९४४ ] ( देवानां प्रशाः ) देवोंमें अन्न ( कवीनां पदवीः ) कवियोंमें वान्तोंकी योगना करनेवाला ( विप्राणां क्रपिः ) विद्वानोंमें श्रुति ( मृगाणां महिषः ) पशुओंमें भेड़ ( मृधाणां द्वेनः ) पक्षियोंमें बाज ( वनानां स्वधितिः ) हितकोंमें शास्त्ररूप यह सोमरस ( रेभन् ) शब्द करता हुआ ( पवित्रं अति पति ) छलनीसे कलशमें छाना जाता है ॥ २ ॥

१४५ प्राचीविपदाय ऊर्मि न सिन्धुर्गिरि स्तोमान्पवमानो मनीषाः ।

अन्तः पश्यन्वृत्तनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ३ ॥ १९ ( पू० ) ॥  
[ धा० १०।७० २।स्व० ६ ] ( ऋ. १।९।७ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१४६ अग्निं वा वृधन्तमध्वराणां पुरुतमम् । अच्छा नष्ट्र तदस्वते ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१०१।७ )

१४७ अयं यथा न आशुवषष्टा रूपेव तक्षपा । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ २ ॥

( ऋ. ८।१०२।८ )

१४८ अयं विश्वा अग्निं धियोऽग्निदेवेषु पश्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ३ ॥ २० ( डा ) ॥

[ धा० ८।७० ३।स्व० २ ] ( ऋ. ८।१०१।९ )

१४९ इममिन्द्रं सुते पिब ज्येष्ठममत्वं मदम् । शुक्रस्य त्वाम्यध्वरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ १ ॥

( ऋ. १।८४।४ )

[ १४५ ] ( सिन्धुः वाचः ऊर्मि न ) जिस प्रकार बहनेवाली नदीको लहरें चम्प करती हुई चलती हैं, उसी प्रकार ( पवमानः ) दृष्ट होनेवाला सोम ( मनीषाः गिरि स्तोमान् ) पत्रको अच्छे लगनेवाले घासोंकी ( प्राचीविपदा ) प्रेरणा देता है, ( वृषभः ) बलवान् ऐसा यह सोम ( अन्तः पश्यन् ) अपने अन्दर देखकर ( गोषु जानन् ) गायोंमें ब्रह्म है यह जानकर ( अवरण्या ) ऋम न होनेवाले ( इमा वृजना ) इन बलोंको ( आतिष्ठति ) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १४६ ] हे श्रुतिको ! ( अः ) तुम ( अध्वराणां नष्ट्रे ) बलवान्के मानी ( तदस्वते वृषभानां ) बलवान्को बहानेवाले ( पुरुतमं अग्निं ) श्रेष्ठ अग्निके ( अच्छा ) पास जाओ ॥ १ ॥

१ अध्वरः ( अ-ध्वरः )- जिसका नाम नहीं किया जा सकता ऐसा बलवान् ।

[ १४७ ] ( त्वष्टा तक्षपा रूपेव इव ) जिस तरह बर्छई लकड़ीको ठीक करता है, उसी प्रकार ( अयं ) यह अग्नि ( नः आशुवत् ) हमें ठीक करता है, ( अस्य क्रत्वा यशस्वतः ) इसके कर्मसे हम यशस्वी होते हैं ॥ २ ॥

[ १४८ ] ( देवेषु ) देवोंमें ( अयं अग्निः ) यह अग्नि ( विश्वाः धियोः ) सब ज्येष्ठ्योंकी ( अग्निपश्यते ) प्राप्त होता है, ऐसा यह अग्नि ( नः ) हमारे पास ( वाजैः उपागमत् ) अपने साथ आये ॥ ३ ॥

[ १४९ ] हे ( इन्द्रः ) इन्द्र ! ( ज्येष्ठं मदं ) श्रेष्ठ मानव देनेवाले ( अमत्स्यं ) दिव्य ऐंसे ( सुते इमं पिब ) इस सोमरसको पी । ( ऋतस्य सादने ) पत्नी शालाके ( शुक्रस्य धाराः ) ये तेजस्वी सोमकी धाराएँ ( त्वाम्यध्वरन् ) तुमसे प्राप्त होनेके लिए नोभे गिरती हैं ॥ १ ॥

९५० न किष्ट्वद्रधीतरौ हरी यदिन्द्र यच्छसे । न किष्ट्वानु मजमना न किः स्वश्व आनशे ॥२॥  
( ऋ. १।८४।६ )

९५१ इन्द्राय नूतमर्चतौकथानि च ब्रवीतन ।  
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठे नमस्पता सहः ॥ ३ ॥ २१ ( १ ) ॥

[ पा० ८ । उ० नास्ति । स्व० ? ] ( ऋ. १।८४।९ )

९५२ इन्द्र जुपस्व प्र वहा याहि शूर हरिह । पिवा सुतस्य मतिर्न मघोश्चकानधारुषदाय ॥ १ ॥

९५३ इन्द्र जठरं नव्यं न घृणस्व मघोर्दिवो न ।  
अस्य सुतस्य स्वाश्नीष स्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥ २ ॥

९५४ इन्द्रस्तुरापाग्मित्री न जघान वृत्रं यतिने ।  
विभेद वलं भृगुने ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥ ३ ॥ २२ ( ६ ) ॥  
[ पा० ११ । उ० ५ । स्व० ? ]

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

॥ इति तृतीयपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ३ ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

[ ९५० ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ( यत् ) जिसके कारण तू ( हरी यच्छसे ) अपने घोड़ोंकी रचमें जोड़ता है, उस कारण ( स्वश्व ) तेरेसे बड़गर ( रधीतरः न किः ) थोड़ा घोर दूतरा कोई नहीं है, ( मजमना ) बलमें ही ( स्वा, अनु नकिः ) तेरे समान दूतरा कोई नहीं है । ( सु-अश्वः ) उत्तम घोड़े पालनेवाला भी ( न किः आनशे ) दूतरा कोई नहीं है ॥ २ ॥

[ ९५१ ] हे ऋषियज्ञो ! ( नूनं इन्द्राय अर्चत ) निश्चयसे तुम इन्द्रकी ही पूजा करो, ( उपधानि च ब्रवीतन ) [ इन्द्रके किष्ट ही ] स्तोत्र बोलो । ( सुताः इन्द्रवः अमत्सुः ) छाना हुआ सोमरत्न इन्द्रको आनन्द देवे । ( ज्येष्ठे सहः ) श्रेष्ठ बलवान् इन्द्रको ( नमस्पतः ) नमस्कार करते ॥ ३ ॥

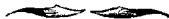
[ ९५२ ] हे ( हरिह शूर इन्द्र ) घोड़े पासमें रखनेवाले शूरवीर इन्द्र ! ( आयाहि ) आ, ( प्र वहा ) हविष्याणको स्वीकार कर, ( चादः मदाय ) उत्तम आनन्द प्राप्त हो इसलिये ( न चकानः ) इस समय इच्छा करते हुए ( सुतस्य मघोः ) मधुर दोसरस ( मतिः ) अपनी इच्छानुसार ( पिवा ) पी ॥ १ ॥

[ ९५३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( दिवः न ) जैसे धूलोकसे ( सुवाचः मदाः ) उत्तम हस्तिका आनन्द ( स्वा उप अस्थुः ) पुत्र प्राप्त होता है, और जैसे ( स्वः न ) उस स्वर्गीय आनन्दको तू भोगता है, उसी प्रकार ( सुतस्य अस्य मघोः ) इस मधुर सोमरत्नसे ( जठरं नव्यं न ) अपने पेटको ( स्वा घृणस्व ) भर ले ॥ २ ॥

[ ९५४ ] ( तुरापाद् इन्द्रः ) जल्दी ही शत्रुको हरा देनेवाला इन्द्र ( मिघः न ) जिसके समान ( वृत्रं जघान ) शत्रुको मारता है, ( यतिः न वलं विभेद ) जिस प्रकार संयमी वीर बल दास्यको मारता है, तथा ( सोमस्य मदे ) सोमके आनन्दमें ( भृगु न शत्रून् सासहे ) भृगु जैसे शत्रुओंको हराता है, उस प्रकार तू शत्रुओंको हरा ॥ ३ ॥

॥ अहां सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥



## पञ्चम अध्याय

### इन्द्रके गुण

इस अध्यायमें इन्द्रके गुण इस प्रकार वर्णित हैं—

१ अ-प्रतिष्कृतः [ ११३ ]— जिसका कोई भी प्रतिष्कार नहीं कर सकता ।

२ चर्यणीनां राजा [ १३३ ]— सब मनुष्योंका राजा, सबका दासक ।

३ रथेभिः याता [ १३३ ]— रथों जानेवाला, जिसके साथ बहुतसे रथ होते हैं । जिसके साथ सरदारोंके रथ रहते हैं ।

४ अग्नि-गुः [ १३३ ]— अग्ने जानेवाला ।

५ ज्येष्ठः [ १३३ ]— श्रेष्ठ, सबसे बड़ा ।

६ नुरापाद् [ १५४ ]— शीघ्रतासे शत्रुको हारनेवाला ।

७ हरिः [ १५२ ]— घोड़ोंको पासमें रखनेवाला, दुर्बलोंका हरण करनेवाला ।

८ शूरः [ १५२ ] शूरोद्धार ।

९ तरस्वी [ १३१ ]— शीघ्रतासे सब कार्य करनेवाला ।

१० स्वयं-पति [ १३२ ]— स्वयंका स्वामी, आत्मविजयी ।

११ धृत-घ्नता [ १३२ ]— नियमोंका पालन करनेवाला ।

१२ युद्धन्मा [ १३४ ]— अनेक शत्रुओंको मारनेवाला ।

१३ ज्येष्ठं सङ्घः [ १५१ ]— जिसके पास श्रेष्ठ सामर्थ्य है ।

१४ इन्द्रः दधीचः अश्वभिः नवती नय वृत्राणि जघान [ ११३ ]— इन्द्रने दधीचोंकी हृदयोंके अश्वोंसे १९ वाशत मारे ।

१५ विश्वासां धृतानां तदृता वृत्रहा [ १३३ ]— सब शत्रुकी सेनाओंको हारनेवाला इन्द्र है ।

१६ इन्द्रः धृते जघान [ १५४ ]— इन्द्रने धृतेकी मारा ।

१७ इन्द्रः घले विमेद् [ १५४ ]— इन्द्रने बलकी मारा ।

१८ सोमस्य भदे शत्रून् सासहे [ १५४ ]— सोमके मानवमें सब शत्रुओंको इन्द्रने पराजित किया ।

१९ मजमना त्वा अनु न किः [ १५० ]— बलमें तेरे समान कोई नहीं है ।

२० सु-अश्वः न किः [ १५० ]— उत्तम घोड़े पालनेवाला भी तेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है ।

२१ हे इन्द्र ! यत् धृती हृच्छसे, त्वत् रथीतरः न किः [ १५० ]— हे इन्द्र ! तू घोड़े अपने रथमें जीमता है,

इसलिए तेरो अपेक्षा महान् रथमें घेठनेवाला वीर दूसरा कोई नहीं है ।

२२ ज्येष्ठं सङ्घः नमस्यत [ १५१ ]— इन्द्रके श्रेष्ठ साहसपूर्ण कार्यको नमस्कार करो ।

२३ यस्य धियर्तारि द्विता [ १३४ ]— जिसकी पारक-शक्तिमें दो शक्तिया हैं । एक कृपा करनेकी शक्ति और दूसरी विनाश करनेकी शक्ति ।

२४ दर्शतः मदान् वज्रः हस्तेन प्रतिघृथि [ १३४ ]— देखनें पीछे महान् वज्रकी यह हाथोंमें शत्रुको मारनेके लिए धारण करता है ।

२५ पुष्-हन्-भन् ! अयसे ते इन्द्रं शुम्भ [ ५१४ ]— हे शत्रुतने शत्रुओंको मारनेवाले भगत ! अपने संरक्षणके लिए उस इन्द्रकी उपासना कर ।

२६ नूनं इन्द्राय अर्षत, उफगानि च धवीतन [ १५१ ]— निरवयसे इन्द्रकी अर्चना करो, उसके स्तोत्र करो ।

२७ रेभासः इन्द्रं स्रमस्वरन् [ १३२ ]— स्तोता इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

२८ यत् स्व-पतिं युधे, धृतमत्ता भोजसा कृतिभिः स्त्रं [ १३२ ]— जब स्वयंका स्वामी सर्वघन करनेकी इच्छा करता है, तब यद् नियमानुसार चलनेवाला अपने सामर्थ्य और संरक्षणके साथनैसि सहायता करता है ।

२९ विप्राः अभिरयरे मेघं नेमि नमन्ति [ १३१ ]— गागी एक आवाजसे उस इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रके गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं ।

### अधिके गुण

अब इस अध्यायमें काय हुए अनेके गुणोंकी बेलें—

१ जायुधिः [ १०७ ]— जागृत रहनेवाला ।

२ सु-दक्षः [ १०७ ]— बतुर ।

३ जनस्य गोपा [ १०७ ]— मनुष्योंका रक्षक ।

४ शुचिः [ १०८ ]— शुद्ध, पवित्र, निर्मल ।

५ अगिरस्तः [ १०८ ]— तप-प्रवर्धनमें जो प्रकाशता है ।

६ यज्ञस्य केतुः [ १०९ ]— पतकी पताका, चिह्न ।

७ सुभक्तुः [ १०९ ]— उत्तम कर्म करनेवाला ।

८ सहस्वान् [ १४६ ]— सामर्थ्यसे युक्त ।

९ सुधिताय अजनिद् [ १०७ ]— योगीका कल्याण करनेके लिए उत्तम हुआ ।

१० सुमद् भाति [१०७]- तेजस्वी प्रकाशित होता है।

११ महतः सहः सः मध्यमानः जायसे [१०८]-  
महान् बलसे मयने पर बहु प्रकट होता है।

१२ अस्व प्रत्या यशस्वन्तः [१०९]- इसके कामसे  
हम यशस्वी होते हैं।

१३ देवेषु व्ययं अग्निः विश्वाः धियः अभि पत्यते  
[ ११० ]- देवोंमें यह अग्नि सच-सोभाओंको स्थापित  
करता है।

१४ नः वाजेः उपागमत् [ १११ ]- हमारे पास यह  
अग्नि अन्न और बलके साथ आये।

१५ त्वा सहस्रः पुत्रं आहुः [ ११२ ]- तू बलसे उत्पन्न  
होता है ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार इस अग्निका वर्णन इस अध्यायमें हुआ है।

### मित्र और वरुण

अथ मित्र और वरुण इनका वर्णन देखिए—

१ श्रताधृष्या मित्रावरुणौ [ ७१० ]- सत्य अथवा  
यज्ञको धरानेवाले मित्र और वरुण हैं।

२ राजानौ अनभिद्रुहे ध्रुवे उत्तमे सहस्ररूपेण  
सर्वसि आश्राते [ १११ ]- ये दो राजा हैं, वे परस्पर  
कब्रते नहीं और स्थिर तथा हजार छत्रोंवाली उत्तमस्थानों  
में बैठते हैं।

३ सस्राजा घृतासुती आदित्या दानुमः-पती  
अनघद्वरे सञ्चते [११२]- वे दोनों सस्राज हैं, पी मिला  
हुआ अन्न खाते हैं, आदित्यके पुत्र और उनके स्वामी हैं, वे  
कुटिल व्यवहार न करनेवालेको सहायता करते हैं।

इस प्रकार मित्र और वरुणका वर्णन यहाँ किया है।

### इन्द्र और अग्नि

अथ इन्द्र और अग्निके वर्णन देखिए—

१ हे इन्द्राग्नी ! इयं चां पूर्वस्तुतिः, अस्व भग्मनः  
अजग्नि [ ११६ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! मह तुम दोनोंकी  
अपूर्व स्तुति इन भजन करनेवाले विद्वानेति उत्पन्न हुई है।

२ हे इन्द्राग्नी ! जरितुः हवंश्चुण्वते, गिरः वनतं,  
ईशाना धियः पिप्यतं [ ११७ ]- हे इन्द्र और अग्ने !  
स्त्रीका प्रार्थना करता है, उसे तुम सुनो, उसकी स्तुति सुनो,  
तुम दोनों ही दक्षिणदिशि हो, इतलिय उत्तके योग्य कर्मोंका  
उत्तम परम को, सचवा उत्तकी बुद्धिको परिपक्व करो।

३ हे मरा इन्द्राग्नी ! सः पापत्वाय रीरुधम् [११८]  
-हे इन्द्र और अग्ने ! हमें पापमें प्रवृत्त मत करो।

४ अभिद्रास्तये मा, निदे नः मा [ ११९ ]- हिंस्र  
करनेके काममें प्रवृत्त मत करो, निन्दनीय कर्मोंमें भी मत  
लगाओ।

अर्थात् तुम हमारी प्रवृत्ति अच्छे कामोंकी ओर ही  
लगाओ, इस प्रकार देवताओंकी प्रार्थना की गई है, कि  
हमारी प्रवृत्ति उत्तम कर्मोंकी ओर ही हो, खराब कामोंकी  
ओर न हो। देवताओंके गूण इतोलिय वर्णित हैं। देवोंके  
गुणोंको हम धारण करें, यही उत्तम प्रवृत्ति है, इसके विपरीत  
जो है, वह अत्यन्त बुरी प्रवृत्ति है। मनुष्य सारप्रवृत्तिको  
धारण करें और अत्यप्रवृत्तिको अयनेसे दूर रहें।

यतमें सोमरस तैय्यार करते हैं, और उसे इन्द्रको अर्पित  
करते हैं। इस विषयमें वर्णन अब देखिए—

### इन्द्रको सोम

१ सुतः आ विद्यासन् इन्द्राय मधु सिञ्चते [१०२]  
- सोमरस निकालनेके बाद उसे छानकर मूढ़ करनेके इन्द्रको  
बहु मोठा रस दिया जाता है। इसको मोठा करनेके लिए  
उसमें गांधका दूध मिलाया जाता है।

२ इन्द्राय पातवे हरिं इन्द्रुं अद्रिभिः हिग्वान्ति  
[ १०३ ]- इन्द्रको सोमरस पीनेकी देनके लिए हरे रंगका  
सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है।

३ धृष्या इन्द्रः सुतं गमत्, ध्रुवे सवसि सीदतु  
[ १२५ ]- बलवान् इन्द्र सोमपायके स्थान पर जाता है और  
स्थिर यज्ञशालामें जाकर बैठता है।

४ हे इन्द्र ! सोमं पिय, त्वा मद्रन्तु [ १२७ ]- हे  
इन्द्र ! तू सोमरस पी, ये सोमरस तुमने आनन्द देवें।

५ हे ह्यंभ्य ! ते सोतुः वाधुभ्यां सुयसः अद्रिः  
यत् सुपाव [ १२७ ]- हे उत्तम घोड़े रखनेवाले इन्द्र !  
रस निकालनेवालेके हाथिके द्वारा पकड़े गए पत्थरोंसे यह  
रस निकाला गया है।

६ हे इन्द्र ! ज्येष्ठं मद्रं अमर्त्यं इमं सुतं पिय [१२९]  
- हे इन्द्र ! श्रेष्ठ अमर और दिव्य आनन्द देनेवाले इस  
सोमरसको पी।

७ अतस्य सादने शुक्रस्य धाराः त्वां अक्षरन्  
[ १२९ ]- यतके स्थान पर इस कीर्षवान् सोमरसकी धारा  
तेरे लिए निकली है, तेरी तरफ बह रही है।

८ चारुः मदाय सुतस्य मधो मतिः पिय [ १५३ ]-  
उत्तम आनन्द प्राप्त होनेके लिए यह यधुर सोमरस इष्ट-  
मुसार पी ।

९ हे इन्द्र ! सुतस्य मधोः मदः त्वा उष वस्युः  
जठरं पूणस्य [ १५३ ]- हे इन्द्र ! इस सोहे सोमरसका  
आनन्द तुझे मिले, अतः पेट भर कर पी ।

इस प्रकार सोमरस इन्द्रको और अन्य देवताओंको दिया  
जाता था, वे सब यज्ञशालामें बैठकर पीते और उत्साहित  
होकर अपने कार्य उत्तम रीतिसे करते थे ।

### स्वर्गसे सोम

१ यः दिधस्परि रघुयामा [ १०० ]- जो धूलोक पर  
रहता है, वह यह सोम है, हिमालयके शिखरपर ऊँचे ठिकाने  
सोम उगता है । वहाँसे यज्ञ करनेवाले यजमान उसको साकर  
पतनमें उसका उपयोग करते हैं ।

### सोमके गुण

- १ पयमानः [ ८८६ ]- शुद्ध, पवित्र, छाना जानेवाला ।
- ० ऋषि-पाणः [ ८८६ ]- ऋषि यज्ञमें जिसका उपयोग  
करते हैं ।
- ३ ध्रुवः [ ८८७ ]- स्वयं देनेवाला ।
- ४ हरिः [ ८८७ ]- बुद्धि का हरण करनेवाला, हरे रसका ।
- ५ विश्वच्छाः [ ८८८ ]- सब देखनेवाला, सर्व भ्रष्टा ।
- ६ प्रभुः [ ८८८ ]- स्वामी ।
- ७ विश्वस्य भुवनस्य पतिः [ ८८८ ]- सम्पूर्ण भुवनोंका  
स्वामी ।

८ प्यानती [ ८८८ ]- व्यापक, सब पर प्रभाव  
झालनेवाला ।

९ दृष्टः दृमान् रसः [ ८९१ ]- बलवान् और  
तेजस्वी रस ।

१० अ-दुक्कृद्भुनः [ ८९० ]- दुष्टोंको प्राप्त न होनेवाला ।

११ सिग्धं स्वः ज्योतिः [ ८९१ ]- सब प्रकारसे  
तेजस्वी ज्योतिः ।

१२ विश्व-चार्याणि [ ८९६ ]- सब देखनेवाला ।

१३ शुद्धमतिः [ ८९८ ]- महान् बुद्धिवाला ।

१४ कथिः [ ९२० ]- ज्ञानके, बुरबर्गी ।

१५ घषा [ ९२० ]- बलवान् ।

१६ मियः [ ९२० ]- शिव ।

१७ अ-दुग्धः [ ९२० ]- न बहनेवाला, फोड़ भी  
जिते बहा नहीं सकता, ऐसा सामर्थ्यवान् ।

१३ [ चाप. हिन्वी भा. २ ]

१८ देवैः सं शोमते [ ९२० ]- देवोंके साथ गुणोन्मत्त  
होता है ।

१९ फविक्रतुः [ ९३५ ]- उत्तम कर्म करनेवाला ।

२० मशीनां, दिव्य, पृथिव्याः, अग्नेः, सूर्यस्य,  
इन्द्रस्य, विष्णोः जनिता सोमः [ ९४३ ]- बुद्धि, धूलोक,  
पृथ्वी, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, विष्णु इनमें उत्साह पैदा करनेवाला ।

ये सोमके गुण हैं, सोमरस पीनेसे ये गुण उत्साहके कारण  
बढ़ते हैं, इसलिये ये सोमके गुण हैं ऐसा कहा है ।

### शुभ्रुको हरानेवाला सोम

१ हे इन्द्रो ! तद्य सण्ये अहं दिवे दिवे राण [ हे  
यज्ञो ! पुरुषि मां श्वचरन्ति, तान् परिधीन् मति  
इति [ ९२२ ]- हे सोम ! तेरी मित्रतामें मैं रहूँ, ऐसी इच्छा  
में प्रतिदिन करता हूँ, क्योंकि हे 'सोम ! बहुतसे शत्रु भूमि  
चारदार कष्ट देते हैं, उन्हें तू दूर कर ।

२ पुनानः दिचर्षणिः विश्वाः मृध अकमीत्  
[ ९२४ ]- छाना जानेवाला, विनोषज्ञानी, सोम सब शत्रुपर  
आक्रमण करते उन्हें दूर करता है ।

३ हे हर्षश्च इन्द्र ! ते युयुयः चारुः मदः यः अस्त,  
येन घृचाभि हंसि [ ९२८ ]- हे काल रंगके घोड़े पासमें  
रखनेवाले इन्द्र ! तेरे योग्य यह उत्तम आनन्द है, जिससे तू  
शत्रुओंको मारता है ।

इस प्रकार जो पीमें ऐसा उत्साह उत्पन्न करता है कि वे उसके  
कारण शत्रुके विनाशके कामोंको करनेके लिए योग्य होने हैं ।  
ऐसा इस सोमरसका प्रभाव है ।

### अंगुलियोंका रस निकालना

सोमकी शेतकी पारकरके पाद पर रहकर परपरसे कूटा  
जाता है, और उंगलियोंसे बचाकर उसका रस निकाला जाता  
है । उसका वर्ण इस प्रकार है -

१ उद्वियाः, जामयः, चवसारः, मशीपुयः, सूरं  
पतिं मर्धा इन्दुं दिव्यन्ति [ ९०४ ]- सब लयह जानेवालीं,  
बहिनके सपान एक मतसे बना करनेवालीं ऐसी उंगलियां,  
महान् कार्य करनेकी इच्छा करके, मोठ हवाभी महान् मोषको  
बचाकर उसका रस निकालती हैं ।

सोमका रस निकालना एक बड़ा काम है, क्योंकि उससे  
सोमयज्ञ सिद्ध होता है, और उससे सब देव शान्नुष्ट होते हैं ।

## सोम घन देता है

१ देवेभ्यः सुत विश्वा वसूनि आशिषा [१०५]-  
देवोंके लिए निकाला गया सोमरस हमारे लिए सब धनोंमें  
प्रविष्ट होने, अर्थात् सब घन हमें देवे।

२ हे इन्द्रो सोम ! अस्मभ्यं महा सहस्रिणं रयिं  
विश्वतः आ पवस्व [११६]- हे तेजस्वी सोम ! तू  
हमें महान् और हजारों प्रकारके घन धारों औरसे दे।

सोमनाममें सब लोग पन देते हैं, तब यह घन सोम ही  
देता है, ऐसा कहा जाता है।

## सोमका पानीमें मिलाया जाना

सोम कूटकर उसका रस निकालते हैं, बादमें उसमें पानी  
मिलाते हैं, तत्पश्चात् उसे छाना जाता है, और छाने हुए  
सोमरसको कलशमें भरकर रखते हैं। इस सन्वयमें वर्णन  
इस प्रकार है—

१ सः दिवः परि रघुयामा, सः अयं पदित्रे आ  
सिःधोः ऊर्मा धि अक्षरत् [१००]- जो सोम सुलोक  
पर होता है वह सोम छलनीसे छाना जाता है। वह नदीके  
सूहरमें टपकता है। नदीका पानी मिलाकर वह छाना  
जाता है।

२ वाजिनं वने श्रीडन्त आते अर्षि धीमिः मृजगति  
[१४१]- बलवान् सोमको पानीमें मिलाकर भेड़के बालोंकी  
बनी छलनीसे स्तोत्र बोलकरके याजक छानते हैं।

३ याजयुः मीह्वार कलशात् अभि असाजि [१४२]-  
जप देनेवाला पानीमें मिलाया हुआ सोम कलशमें छाना  
जाता है।

इस प्रकार सोमरसको पानीमें मिलानेका वर्णन है। इसके  
बाद वह छाना जाता है, उसका वर्णन निम्न प्रकार है—

## सोमरसका छाना जाना

१ हे श्रुपिपाण ! ये वेधसः स्वा मृजगति, ते अन्त-  
रिक्षात् स्थाविरिः अरुक्षत् [८८६]- हे ऋषियोंके द्वारा  
निकाले गए सोम ! जो शरीर तुम्हें निकालते हैं, वे ऊपरके  
वर्तमान एक पारसे नीचेके वर्तमानमें तुम्हें पड़ते हैं, छानते हैं।

२ यदि पदित्रे हृदि अधिसृज्यते सत्ता योनौ  
निर्षीदति [८८७]- जब छलनीसे हरे रणका सोम छाना  
जाता है, उस समय पदित्र रहनेकी इच्छा करनेवाला यह  
सोम कलशमें आकर बँटता है।

३ हे राजन् पथमान ! तत्र मद्ः अतुच्छुनः रसः  
अयं वारं वि अर्पति [८९०]- हे सोम ! तेरा आनन्द  
देनेवाला तथा बुरे और दुष्ट लोगोंको न मिलनेवाला रस  
भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे छनकर नीचे जाता है।

४ ओजसा पदित्रे शीघं आ एति [१०१]- वेगसे  
छलनीके द्वारा शीघ्र छाना जाता है।

५ हे हरे ! वक्षसाधनः मद्ः देवेभ्यः पीतये  
पवस्व [११९]- हे हरे रणके सोम ! बल बढ़ानेके साधन  
तेरे आनन्द देनेवाले रस देवोंके पीनेके लिए छानकर तैयार  
किये जाते हैं।

६ पुनातः सोमः ऊर्मिणा अय्य वारं वि धावति  
[१४०]- छाना जानेवाला सोम पारसे भेड़के बालोंकी  
छलनीसे दीपता हुआ नीचेके वर्तमानमें पड़ता है।

इस प्रकार सोम छाना जाता है और वह छलनी भेड़के  
बालोंकी बनी होती है।

## सोममें गायका दूध मिलाना

१ हे पथमान ! ते आश्विनीः धेनुवः दिव्या, पयसा  
धरीमणि प्र अमृग्रन् [८८६]- हे सोम ! तेरी वे  
वेगवान् गर्भे दिव्य है, वे अपने दूधसे कलशमें पड़वती हैं।  
कलशमें छने हुए सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है।

२ वृषभ अन्तः पश्यन्, गोषु जानन्, अचराणि  
इमा वृजना आ तिष्ठति [१४१]- बलवान् सोमरस  
अपने अन्दर देखता है, और गायमें दूध है यह जनता है,  
कम न होनेवाले बालोंको वह गायके दूधसे प्राप्त करता है।

इस प्रकार आलंकारिक भाषासे सोमरसमें गायका दूध  
मिलाया जाता है इसका वर्णन इन मर्मोंमें किया है।

## सोमका अन्न देना

१ हे इन्द्रो सोम ! मरुं इय गोमव् आ पवस्व  
[८९५]- हे तेजस्वी सोम ! तू बड़े जप तथा गायोंके  
मुक्त घन हमें दे।

२ प्र प्र क्षयाय अद्रुहः पन्वसे जनाय वीति लुष्टः  
पनिष्टये अर्ष [११७]- हे सोम ! तेरे निवास करनेके लिए  
पल करनेवाले, द्रोह न करनेवाले और स्तुति करनेवाले  
मनुष्यके खानेके लिए प्रयुक्त हुआ द्रु तृप्तिको प्राप्त हो।

## सोमका शुद्ध

सोमरसको छाने जानेसमय उसका शब्द होता है। उसका  
वर्णन इस प्रकार है—

१ धृष्टेः स्वनः इव परमानस्य श्रूयते [८९४]-  
बर्षाकी जैती आवाज होती है वही प्रकार छाने जानेवाले  
सोमकी आवाज सुनी जाती है ।

२ धिया दितः कनिक्दत् पौतिं धभि आरुहः  
[ ९२१ ]- बुझते यत्नमें रखा गया सोम शब्द करता हुआ  
कथनेमें जाता है ।

३ पवमानः वाचः अग्नें कनिक्दत् [ ९४० ]- छाया  
जाता हुआ सोम शब्द करता है ।

४ त्रिपृष्टं मतय धभि समस्वरत् [ ९४१ ]- तीन  
वर्तनोंमें स्तुतिके साथ-साथ सोम शब्द करते हुए जाता है ।

५ पुनान वाचं जनयन् अस्तिष्यदत् [ ९४२ ]-  
छाना जाता हुआ सोम शब्द करते हुए वर्तनमें पड़ता है ।

६ सोमो रेमन् पवित्र अति यति [ ९४४ ] सोम  
शब्द करते हुए छलनीमेंसे छाना जाता है ।

७ पवमानः मर्नागाः गिरः स्तोमान् प्राचीनिष्व  
[ ९४५ ]- बुझ होता हुआ सोम सनको प्रिय लगनेवाले  
घरोंको प्रेरणा देता है ।

इस तरह सोमरस छाना जाता हुआ शब्द करते हुए  
छलनीमेंसे नीचेके वर्तनमें पड़ता है, उसका आलंकारिक  
वर्णन ऊपरके मंत्रोंमें किया है । किसी वर्तनमें पहले ही द्रव  
पदार्थ रखा हो और उस पर ऊपरसे द्रव पदार्थ गिराया जाए  
तो शब्द तो होना ही हुआ । यही प्रकारका यह शब्द है ।  
नीचेके वर्तनमें द्रव है और उसीमें ऊपरसे सोमरस छलनीमें  
गिरने लगा जाये, तो उसका शब्द तो होगा ही । यह ही  
सोमक शब्द है ।

### सोमका तेज

सोमलता तेजस्वी है । उसका रस भी तेजस्वी है । इस  
तेजस्वित्वका वर्णन इस प्रकार है—

१ पवमानस्य ध्रुवस्य सतः केतवः उभयतः परि-  
यन्ति [ ८८७ ]- छाने जानेवाले स्फिर सोमकी किरणें दोनों  
ही ओर फैलती हैं ।

२ पवमानः बृहद् वैश्वानरं ज्योतिः अजीजनत्  
[ ८९१ ]- छाना जानेवाला सोम महान् व्यापक तेज उत्पन्न  
करता है ।

३ पवमानस्य ते दक्षः शुमान् रसः विराञ्जति  
[ ८९१ ]- छाने जानेवाले सोमके बलवर्षक तेजस्वी रस  
शुशीलता होते हैं ।

#

४ विश्वं स्वः ज्योतिः दशे [ ८९१ ]- सोमका शयना  
तेज दीप्ता है ।

५ शुश्रियन् विश्रुतः दिवि चरन्ति [ ८९४ ]-  
बलवान् सोमकी किरणें धूलोत्तममें फैलती हैं ।

६ मही रोदसी आ पूषा [ ८९६ ]- विशाल छाया-  
पृथ्वीको अपने तेजसे भर दे ।

७ सुनः त्रिपिं दधानः विशक्षणः गिरोचयन्  
[ ९०१ ]- सोमरस तेज धारण करते हुए संजस्यो होकर  
घनकने लगता है ।

८ रुचा देव पवमान [ ९०५ ]- तेजसे सोमदेव  
सुशीलता होता है ।

९ शुचिः जातः महान् सः खनु मही कृतावृथा  
जाते मातरा अरोच्यन्त् [ ९३६ ] शुद्ध हुआ हुआ सोम  
नामक पुत्र महान् पत्नीको बढानेवाली प्रसिद्ध माता द्वावा-  
पृथ्वीको प्रकामित करता है ।

१० दैव्य पवमान ! शुमत्तमः स्व [ ९३८ ]- हे  
प्रकाशमान् सोम ! तू तेजस्वी है ।

इस प्रकार सोम तेजस्वी है ।

### सुभाषित

१ ध्रुवस्य सतः केतवः उभयतः परियन्ति [ ८८७ ]  
-स्फिर ओर उत्तम कार्य करनेवालोंका तेज दोनों ओर  
फैलता है ।

२ हे विश्वचक्षु ! अग्ने स्तः ते श्वभ्यस्य केतवः  
विश्व्या धामानि परियन्ति [ ८८८ ]- हे सबके निरीक्षण  
करनेवाले निरोसक ! शासन करनेकी इच्छावाले तेरा महान्  
प्रकाश सब स्थानमें पहुंचता है ।

३ धर्मणा पयसे [ ८८८ ]-अपने धर्ममें शुद्ध होता है ।  
४ विश्वस्य ध्रुवनस्य पति राजन्ति [ ८८८ ]- तू सब  
भूतनोंका स्वामी होकर चमकता है ।

५ पवमानः बृहद् वैश्वानरं ज्योतिः दिव चित्र  
त-यन्तुं न अजीजनत् [ ८९१ ]- पवित्र हुआ सोम महान्  
तथा सब भन्व्योंके हित करनेवाले तेजको, धूलोत्तममें घनकने  
वाली बिजलीके समान, उत्पन्न करता है ।

६ हे राजन् ! तव मद्ः अ-दुच्छुनः [ ८९० ]- हे  
राजन् ! तेरा आनन्द कुछ नहीं पा सकते ।



७ ते दक्षः द्युमान् विराजति [ ८११ ]- तेरा तेजस्वी बल प्रकाशित होता है।

८ विश्वं स्वः उद्योतिः दृष्टो [ ८११ ]- सब विद्वयमें आत्माको ध्योति दीकती है।

९ स्वेयाः अयासः प्रअक्रमुः [ ८१२ ]- तेजस्वी लीर कियासो ल ही प्रगति करते हैं।

१० अ-व्यतं दस्सुं साहास्रं [ ८१३ ]- हस्करं न करनेवाले शत्रुको हम पराजित करें।

११ शुभ्रिणः विद्युतः दिवि चरन्ति [ ८१४ ]- बलशाली बिजलीका प्रकाश धूलोकमें फैलता है।

१२ घुष्टेः स्वनः श्रुयते [ ८१५ ]- बृष्टिका रास्य सुनाई दे रहा है।

१३ गोमत्, अश्वघत्, हिरण्यघत्, धीरघत् मह्यं इयं वा पयस्व [ ८१५ ]- गाय, घोड़े, सोना और धीर-पुत्रोंसे युक्त महान् अन्न हमें दे।

१४ हे विश्व-चपणे! मदी रोदसी आपुण [ ८१६ ]- हे सब लोकोके हित करनेवाले धीर ! तू अपने तेजसे इस महान् धूलोक और पृथ्वीलोकको भर दे।

१५ सूर्यः रश्मिभिः उपाः न [ ८१६ ]- सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे उप-कालके वायु अणुको भर देता है, वसी प्रकार तू भी अपने तेजसे जगत्को भर दे।

१६ नः शर्मयन्त्या धाराया विश्वतः परिसर [ ८१७ ]- हमें सुख देनेवाले अप्रसरकी धारासे धारों औरसे घेर ले।

१७ हे बृहन्मते ! प्रियेण धाम्ना व्याशुः परि वर्प [ ८१८ ]- हे बुद्धिमान् ! अपने प्रिय जीवनसे युक्त होकर पौत्र इधर आ।

१८ अनिष्टतं परिष्टुष्वन् जनाय इयः यातयन्, परिस्त्रय [ ८१९ ]- अतंस्कृतको सुतंस्कृत करते हुए, लोगोंको भय देते हुए धारों और भ्रमण कर।

१९ दिव्यं प्रधानः, विश्वक्षणः विरोचयन्, ओजसा शर्मिं आ एति [ ९०१ ]- तेज धारण करके, सबको देखनेवाला, स्वय प्रकाशमान् होनेवाला अपने सामर्थ्यसे धीप्र प्रगति करता है।

२० उखयः जामयः स्ववारः मदीयुचः खरं पतिं हिचमिति [ ९०४ ]- तेजस्वी तथा एक जगह रहनेवाली बहिनं महान् कार्यमें स्वयंको लगाकर अपने तेजस्वी पतिको भी उत्तम कार्यमें प्रेरित करती है।

२१ कथा विश्वा वसूनि आ विशा [ ९०५ ]- अपने तेजसे सब धनमें तू प्रसिद्ध होकर रह।

२२ जनस्य गोपा, जाशुधिः सुदक्षः अग्निः, नभ्यसे सुविताय अजनिष्ट [ ९०७ ]- मनुष्योंका संरक्षण करनेवाला, आपत धीर चतुर, आगे ले चलनेवाला, नये मार्गसे सबका कल्याण करनेके लिए प्रकट हुआ है।

२३ बृहता दिविस्पृशा शुचिः भरतेभ्यः धुमत् भाति [ ९०७ ]- महान् आकाशको स्पर्श करनेवाले तेजसे पवित्र हुआ हुआ वह धीर भारतदेशमें लोगोंके हितके लिए तेजस्वी होकर चमकता है।

२४ सः महत् सद्यः [ ९०८ ]- यह प्रयुक्ता पराभव करनेवाले महान् बलसे युक्त है।

२५ त्वं सद्यः पुयं आहुः [ ९०८ ]- तुझे सामर्थ्य या बलका पुत्र कहते हैं।

२६ राजानो अनभिद्रुहो ध्रुवे उत्तमे सहस्रस्थुषे सशस्त्रि आशाते [ ९११ ]- जो राजा आपसमें मित्रते नहीं, वे स्थिर, उत्तम धीर हजार क्षत्रियोंवाली सभामें बैठते हैं।

२७ सप्राजा दानुनः पत्नी अनवदरं सचेते [ ९१२ ]- ये सखाद पनके स्वामी होकर कुदिलता रहित सत्कर्मकी सहायता करते हैं।

२८ अ-प्रतिशुक्रतः इन्द्रः दधीचः अस्यभिः नयती नय वृत्राणि जघान [ ९१३ ]- जिसको कोई भी हरा नहीं सकता ऐसे इन्द्रने ऋषिकी हृष्टिपति ९९ वृत्रोंको मारा, शत्रुको मारनेके लिए ऋषिने अपनी हृष्टी राष्ट्रहितके लिए समर्पित की।

२९ गोः चन्द्रमसः गृहे रंघुः अपीक्यं नाम इत्या अमन्वत् [ ९१५ ]- गमन करनेवाले चन्द्रमाके मण्डल पर सूर्यकी गुल किरणें इस प्रकार प्रकाशित होती हैं। सूर्यकी किरणें चन्द्र पर जाकर पड़ती हैं, वहासे उनका परावर्तन होकर रात्रिके समय पृथ्वीपर उस चन्द्रमाका प्रकाश पड़ता है।

३० ईशानाः धियः पियत्यं [ ९१७ ]- तुम दोनों ही स्वामी हो, इसलिए हमारी बुद्धिके प्रारे तच्छ विकसित करो।

३१ हे नरा इन्द्राग्नी ! नः पापवधाय मा, अभि-दास्तये मा, निदं मा, रीरधत् [ ९१८ ]- हे नेता, इन्द्र और अग्निश्री ! हमें पापके काषोभें मत लगाओ, हिता करनेमें प्रवृत्त न करो, तथा निवृत्तके कार्योंमें भी मत युक्त करो।

३२ चुपा ध्रुविः प्रियः अदाभ्यः संशोभते [ ९२० ]- बलवान् कथि, प्रिय, तथा न दबाया जानेवाला होता है, यह सुशोभित होता है।

३३ धिया हितः धर्माना आम्हः [ १२१ ]- बुद्धिसे जो हितकारक है, वह अपने गुण धर्मसे उन्नत होता है ।

३४ पुत्रुणि मां नि अचचरन्ति तान् परिधीन् अति इहि [ १२२ ]- नहुतेसे दुष्ट शत्रु मुझे कष्ट देते हैं, उन्हें दूर कर ।

३५ ते घृणा तपन्तं अति पतिम [ १२३ ]- तू अपने तेजसे घमकता है, ऐसा हम देखते हैं ।

३६ विचर्यणिः विश्वाः मुधः अक्रभीत् [ १२४ ]- विशेष निरीक्षण करनेवाला अपने सब शत्रुओंको हराता है ।

३७ चित्रं धीतिभिः शुम्भन्ति [ १२५ ]- उस सामाजिकी सब विद्वान् स्तुतिधर्मसे सुबोधित करते हैं ।

३८ मृदा इन्द्रः ध्रुवे सदसि सीरति [ १२५ ]- चलवान इन्द्र स्थिर मभामें बैठता है ।

३९ अस्मभ्यं महां सहस्रिणं रथि विश्वतः आपस्व [ १२६ ]- हमें महात्, हजारों प्रकारके पन चारों ओरसे लाकर दे ।

४० ते शुजयः चाग् मद् य अस्ति, येन वृत्राणि हंसि [ १२८ ]- तेरा योग्य और उत्तम जगह जो है, जहाँसे तू शत्रुको मारता है ।

४१ निष्वाः घृतनाः अमिभूतरं इन्द्रं नरः सजुः ततध्रुः [ १२० ]- सब शत्रुके सैनिकोंको हराबाले इन्द्रको सब लोग मिल करके स्तुति करते हैं ।

४२ राजसे जजनुः [ १३० ]- उसका तेज बढ़ाने है ।

४३ त्रत्ये चरे स्थेमनि, आमुर्णि उन्नं ओजस्त्रिनं, तरसं तरसिधनं [ १३० ]- अपने कामसे श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले, शत्रुको मारनेवाले, उग्र और महा चलवान्, श्रेष्ठ और शीघ्रतासे कार्य करनेवालेकी स्तुति की जाती है ।

४४ धियाः अभिस्तुरे मेर्गं नेमिं नमन्ति [ १३१ ]- ज्ञानी महान् स्वरसे शक्तिमान् और व्यापक इन्द्रको नमस्कार करते हैं ।

४५ सु-द्वितयः अ-दुद्वः चः तरस्त्रिनः कणं ऋचयभिः सं [ १३१ ]- उत्तम तेजस्यो और ब्रह्म न करनेवाले सुत शीघ्रतासे इन्द्रके कार्यात्मक पट्टचनेवाले स्वरसे द्राप मन्त्रसे उत्तमी स्तुति करो ।

४६ यत् रथः पतिः प्रुषे, घृतप्रतः शोत्रसं ऊतिभिः सं [ १३२ ]- जब स्वर्गना स्वामी इन्द्र भक्तरा संवर्धन करना चाहता है, तब नियमोंका पालन करनेवाला इन्द्र अपने सामर्थ्यसे और संरक्षणसे साधनोंसे पुनत होता है ।

४७ चर्यणीनां राजा अभिमुः, विश्वासां घृतनानां तरता बुध्रह् । उपेष्टं गृणे [ १३३ ]- मनुष्योंका शासक, प्रपति करनेवाला, सब शत्रुको सेनाधर्मोंसे पार करानेवाला इन्द्र है, उस श्रेष्ठ इन्द्रको मैं स्तुति करता हूँ ।

४८ पुष्टहृन्-मन ! अघसे ते इन्द्रं शुग्भ [ १३४ ] - हे शत्रुके मारनेवाले इन्द्रके जगतक ! अपने सरसङ्गके लिए उस इन्द्रकी उपासना कर ।

४९ यस्य विश्वीरि द्विता [ १३४ ]- जिसको संरक्षण शक्तियमें दोनों प्रकारकी शक्तियाँ हैं । एक शत्रुके विनाश करनेको शक्ति और दूसरी भक्त पर कृपा करनेकी शक्ति ।

५० महान् दर्शतः यज्ञः हस्तेन प्रतिधापि [ १३४ ] - महान् बसनीय यज्ञकी यह हाथसे पारण करता है ।

५१ शुचि जातः मही क्रतावृषा मा नरा अरोच्यत् [ १३६ ]- शुद्ध हुआ हुआ अपनी बड़ी, सत्य बानेवाली माताओंको प्रकाशित करता है ।

५२ शुभ्रत्तमः रवे जनिमानि अमृतत्वाप [ १३८ ] - अत्यंत तेजस्यो तू अपने जन्ममें अमृतकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न कर ।

५३ अस्य क्रत्या यशस्वन्तः [ १४७ ]- इसके पुत्रवाप्य प्रयत्न से हम यशस्वी होते हैं ।

५४ अयं विश्वाः प्रियः अमि पत्यते, मः धाये उपागमत् [ १४८ ]- यह सब ऐश्वर्यसे युक्त है, वह हमारे पास जनके साथ आवे ।

५५ यत् हरी यच्छसे त्वत् रथीतरः न किः [ १५० ] - जिस कारण तू अपने दोनों ही घोड़े रथमें जोड़ता है, उस कारण तेरी अपेक्षा उत्तम रथी और शीघ्र बूरा कोई नहीं है ।

५६ मग्मना र्वा अनु न किः [ १५० ]- चलने से तेरे सामान कोई बूरा नहीं है ।

५७ सु अयः न किः आनरो [ १५० ]- उत्तम घोड़े पालनेवाला भी कोई बूरा नहीं है ।

५८ उपेष्टे सहः नमस्त्यत [ १५१ ]- शत्रुकी हरानेवाले चलको पारण करनेवाले इन्द्रको नमस्कार करो ।

५९ तुरापाद् इन्द्रः वृत्रं जघान [ १५४ ]- शीघ्रतासे शत्रुकी हरानेवाला इन्द्र शत्रुको मारता है ।

६० यतिः न बल विभेद [ १५४ ]- संघर्षी युद्धके स्थान बल नामक राक्षसको मारता है ।

६१ ध्रुयुः न शत्रुन् सासते [ १५४ ]- भूगर्भे समान शत्रुकी हरता है ।

## उपमा

अथ इत्त अर्वायमे जितनी उपमामे हे, उनको देखो—

१ दिवः चिधं त-यत्तु न [ ८८९ ]- आकाशमें जित प्रकार बिजली चमकती है, उसी प्रकार ( पयमानः बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः ) सोमका महान् और विद्वका नेतृत्व करनेवाला तेज फैलता है।

२ गायः न [ ८८९ ]- गायके समान - गायके ब्रूषके समान ( भूर्णथः त्वेषाः अयासः कृष्णां त्वं अपमन्तः प्र अक्रमु. ) शीघ्रगामी तथा तेजस्वी सोमरस काली छालकी दूर करते हुए नीचेके बर्तनमें गिरता है। गायका ब्रूष सोमरस में जब मिलाया जाता है, तब सोमका काला रंग दूर होता है और वह सोम नीचे रखे बर्तनमें पड़ता है।

३ बृष्टेः स्वनः इय [ ८९४ ]- वृष्टिका जैसा शब्द होता है, उसी प्रकार ( पयमानस्य श्रूयते ) सोमका शब्द सुनाई देता है।

४ सूर्यः रश्मिभिः उपा. न [ ८९६ ]- सूर्य अपनी किरणोंसे उषःकालके बाद विद्वको जैसे ध्यात् करता है जैसे ही ( विचर्यणे ! मही रोदसी आ धूय ) है समको देखनेवाले सोम ! तू इस महान् दावापुषिवीको [ अपने तेजसे ] भर दे।

५ विष्टपं रसा इव [ ८९७ ]- इस भूलोकको जिस प्रकार पानी ध्यात् करता है, उसी प्रकार ( हे सोम ! धारया विश्वतः परि सर ) हे सोम ! तू अपनी रसकी धारसे चरते और ध्यात् हो।

६ अञ्जत् वृष्टिः इव [ ९१६ ]- मेघके जैसे वृष्टि होती है, उसी तरह ( इयं पूर्व्यस्तुतिः अस्य मन्मनः अजनि ) यह अर्पणं स्तुति इस विद्वान्से हुई है।

७ ते पृष्ठा तपन्ते परं सूर्ये शकुन्ता इव अति पतिमि [ ९२३ ]- अपने तेजसे चमकनेवाले इतके सूर्यको जैसे पत्थी बेसते हैं, उसी प्रकार मैं चमकनेवाले सोमको बेसता हूँ।

८ अर्यो न [ ९२७ ]- घोडा जैसे आनन्द देता है, उसी प्रकार ( अद्रिः यत् सुपाय ) पशु जो सोमका रस निगलते हैं, वह तुम आनन्द देता है।

९ देवः सूर्यः न [ ९३४ ]- सूर्य देव जैसा तेजस्वी है, उसी प्रकार ( द्रशीतः महान् वज्रः ) बर्तनीय महान् धनु तेजस्वी है।

१० सतिः न [ ९४२ ]- जैसे घोडा मुदमें जाता है, उसी प्रकार ( पुनानः वाचं जनयन् आसिष्यत् ) छावा जानेवाला सोम शब्द करता हुआ कर्णमें जाता है।

११ सिन्धुः वाचः ऊर्मि न [ ९४५ ]- जिस प्रकार नदी शब्द करती हुई बहती है, उसी प्रकार ( पयमानः स्तोमान् प्रावीविपत् ) छावा जानेवाला सोम स्तुतियोंको प्रेरित करता है।

१२ त्पथा तक्ष्या रूपा इय [ ९४७ ]- जिस प्रकार बड़ई सायनेसे लकड़की सुन्दर बनता है, उसी प्रकार ( अयं नः आ भुवत् ) यह अग्नि हमें सुन्दर बनाती है।

१३ दिवः न [ ९५३ ]- धुलोको जैसे प्रकाश जाता है उसी प्रकार ( सुतस्य मदः ) सोमरससे आनंद मिलता है।

१४ स्वः न [ ९५३ ]- स्वर्गाय आनन्दके समान सोमका आनन्द है।

१५ नदयं न [ ९५३ ]- नदीन होनेके समान ( जटारं पूष्णस्व ) धपना पेट भरकर सोमरस पी।

१६ मित्रः न [ ९५४ ]- मित्र जैसे सहायता करता है, उसी प्रकार ( इन्द्रः सुभ्रं जघान ) इन्द्रने वृत्रको मारकर सहायता की।

१७ यतिः न [ ९५४ ]- संयमी घोर जैसे शत्रुकी मारता है, उसी प्रकार इन्द्रने ( गलं विभेद ) बल राक्षसकी मार।

१८ भुयुः न [ ९५४ ]- भूय जैसे शत्रुका नाश करता है, उसी तरह इन्द्र ( धात्रुन् सासहे ) शत्रुका पराभव करता है।

इस प्रकार इस अर्वायमे उपमामे आई हैं।

पञ्चमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋषेरत्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १ )				
८८६	११८१।४	अकृष्टासायाः	पथमानः सोमः	जगती
८८७	११८१।६	अकृष्टासायाः	"	"
८८८	११८१।५	अकृष्टासायाः	"	"
८८९	११६१।१६	अमहोयुरागिरसः	"	वायवी
८९०	११६१।१८	अमहोयुरागिरसः	"	"
८९१	११६१।१७	अमहोयुरागिरसः	"	"
८९२	११४१।१	मेघ्यातिथिः काश्यः	"	"
८९३	११४१।२	मेघ्यातिथिः काश्यः	"	"
८९४	११४१।३	मेघ्यातिथिः काश्यः	"	"
८९५	११४१।४	मेघ्यातिथिः काश्यः	"	"
८९६	११४१।५	मेघ्यातिथिः काश्यः	"	"
८९७	११४१।६	मेघ्यातिथिः काश्यः	"	"

( २ )				
८९८	११३१।१	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
८९९	११३१।२	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
९००	११३१।३	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
९०१	११३१।४	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
९०२	११३१।५	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
९०३	११३१।६	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
९०४	११६।५।१	भृगुर्वादिभिर्जमरनिर्भाषिषो वा	"	"
९०५	११६।५।२	भृगुर्वादिभिर्जमरनिर्भाषिषो वा	"	"
९०६	११६।५।३	भृगुर्वादिभिर्जमरनिर्भाषिषो वा	"	"

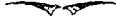
( ३ )				
९०७	५।११।१	धुतंभर आश्रेयः	अग्निः	जगती
९०८	५।११।६	धुतंभर आश्रेयः	"	"
९०९	५।११।९	धुतंभर आश्रेयः	"	"
९१०	२।४१।४	गृत्समदः सोमकः	मित्रावरुणौ	वायवी
९११	२।४१।५	गृत्समदः सोमकः	"	"
९१२	२।४१।६	गृत्समदः सोमकः	"	"
९१३	१।८४।१।३	गोमसो राहुगणः	इन्द्रः	"
९१४	१।८४।१।४	गोमसो राहुगणः	"	"
९१५	१।८४।१।५	गोमसो राहुगणः	"	"
९१६	७।९४।१	वसिष्ठो मंत्रावरुणिः	इन्द्राग्नी	"
९१७	७।९४।२	वसिष्ठो मंत्रावरुणिः	"	"
९१८	७।९४।३	वसिष्ठो मंत्रावरुणिः	"	"

( ४ )				
९१९	१।१५।१	बृहस्पते आश्रेयः	वसवसः सोमः	वायवी
९२०	१।१५।३	बृहस्पते आश्रेयः	"	"
९२१	१।१५।३	बृहस्पते आश्रेयः	"	"

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदस्थान	ऋषिः	देवता	छन्दः
५००	२।१०७।२९	सप्तर्षयः	पवमानः सोमः	प्रगायः ( विद्यमाना बृहती, समा सती बृहती )
५०३	५।१०७।२०	सप्तर्षयः	"	"
५०४	५।४०।१	बृहन्मतिरागिरसः	"	गायत्री
५०५	५।४०।२	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
५०६	५।४०।३	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
( ५ )				
५०७	७।२२।१	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	इन्द्रः	विराट्
५०८	७।२२।२	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
५०९	७।२२।३	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
५१०	८।१०१।१०	रेमः काश्यपः	"	अतिजगती
५११	८।१०१।२	रेमः काश्यपः	"	उपस्थिता बृहती
५१२	८।१०१।३	रेमः काश्यपः	"	"
५१३	८।१०१।४	पुरुहन्मा आगिरसः	"	प्रगायः ( विद्यमाना बृहती, समा सती बृहती )
५१४	८।१०१।५	पुरुहन्मा आगिरसः	"	"
( ६ )				
५३५	५।१५।१	असितः काश्यपो देवलो वा	पवमानः सोमः	गायत्री
५३६	५।१५।२	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
५३७	५।१५।३	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
५३८	५।१०८।१	असितर्षावसिष्ठः	"	काकुभः प्रगायः ( विद्यमाना ककुभु, समा सती बृहती )
५३९	५।१०८।२	ऊररागिरसः	"	"
५४०	५।१०८।३	अग्निश्चाक्षुष	"	उरिगक्
५४१	५।१०८।४	अग्निश्चाक्षुषः	"	"
५४२	५।१०८।५	अग्निश्चाक्षुषः	"	"
५४३	५।१०८।६	प्रतर्वनो देवोदासिः	"	त्रिष्टुप्
५४४	५।१०८।७	प्रतर्वनो देवोदासिः	"	"
५४५	५।१०८।८	प्रतर्वनो देवोदासिः	"	"
( ७ )				
५४६	८।१०२।७	प्रयोगो भार्गवः	अग्निः	गायत्री
५४७	८।१०२।८	प्रयोगो भार्गवः	"	"
५४८	८।१०२।९	प्रयोगो भार्गवः	"	"
५४९	१।८४।१	गोतमो राहुगणः	इन्द्रः	अष्टुप्
५५०	१।८४।२	गोतमो राहुगणः	"	"
५५१	१।८४।३	गोतमो राहुगणः	"	"
५५२	—	पावकीर्ण्यर्षावसिष्ठो वा, गृह्यति- यविष्ठो सहस्रः पुत्रान्वतरो वा	"	बृहत्यात्मक सूत्रम्
५५३	—	पावकीर्ण्यर्षावसिष्ठो वा, गृह्यति- यविष्ठो सहस्रः पुत्रान्वतरो वा	"	"
५५४	—	पावकीर्ण्यर्षावसिष्ठो वा, गृह्यति- यविष्ठो सहस्रः पुत्रान्वतरो वा	"	"



## अथ षष्ठोऽध्यायः ।



अथ तृतीयमपाठके त्रितीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

[ १ ]

( १-२३ ) १ ( अष्टादा सापावयः ) प्रयः ऋषयः; २ ऋषयो मारीचः; ३, ४, १३ अतितः काश्यपो वैदलो वा;  
 ५ अमत्सारः काश्यपः; ६, १६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ अश्वो र्षतहृष्यः; ८ उच्चक्रिदाश्विः; ९ कुवमुतिः काश्यपः;  
 १० भरद्वाजो वाह्वेदस्य; ११ भृगुर्वाह्विर्जमदग्निर्भार्गवो वा; १२ सप्तयवः { १ भरद्वाजो वाह्वेदस्य, २ काश्यपो  
 मारीचः, ३ गौतमो राहुणः, ४ अश्विर्भार्गवः, ५ विश्वामित्रो यागिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मेत्रा-  
 वह्विः }; १४, १५, २३ गौतमो राहुणः; १७ ( १ ) उर्ध्वतथा आशिरसः, १७ ( २ ) कृतयसा आशिरसः,  
 १८ त्रित आशिरसः; १९ देवसूनु काश्यपो; २० मनुर्वासिष्ठः; २१ बभ्रुवृत्त आश्विनः; २२ नृपेय आशि-  
 रसः ॥ १-६, ११-१३; १६-२० पवमानः सोमः; ७, २१ अग्निः; ८ मित्रावरुणो; ९, १४-१५,  
 २२-२३ इन्द्रः, १० इन्द्राग्नौ ॥ १, ७ जगती; २-६, ८-११, १३, १६ गायत्री; १२ गृह्यो,  
 १४, १५, २१ षडितः; १७ काकुभः प्रगाथः= ( विषमा ककुप, समा सती गृह्यो );  
 १८, २२ उष्णिक्; १९, २३ अनुष्टुप्; २० विष्टुप् ॥

९५५ गोवित्पवस्व वसुविद्विरण्यविद्वेताधा इन्दी भुवनेभ्वर्षितः ।  
 त्वं सुधीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उष गिरम आसते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।३९ )  
 ९५६ त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमानं वृषम तां वि धावसि ।  
 स नः पवस्व वसुमद्विरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८६।३८ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ९५५ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( गो-विद् ) गावीनी पासर्वे रक्षनेवाला, ( घनु-विद् ) धनको पासर्वे रक्षनेवाला,  
 ( द्विरण्य-विद् ) सोनेको पासर्वे रक्षनेवाला ( रेतो-धाः ) धर्मं पारण करनेवाला ( भुवनेषु अर्षितः ) भुवनोंमें रहने-  
 वाला ऐसा वृ ( पवस्व ) छनता जा । हे ( सोम ) सोम ! वृ ( सु-गीरः ) उलतगवीर और ( विश्व-विद् ) सर्वे ज्ञानी  
 ( असि ) हैं, हे ( नरः ) नेता सोम ! ( तं त्वा ) उत तेरी ( इमे गिरम उपासते ) ये ऋत्विज स्तोत्रके उपासना  
 करते हैं ॥ १ ॥

[ ९५६ ] हे ( पवमानं वृषम सोम ) बुद्ध होनेवाले बलवर्धक सोम ! ( त्वं विश्वतः नृचक्षाः वासि ) वृषभ  
 प्रकारके वसुधर्मके धारको है । ( तां वि धावसि ) उनके पास जा जाता है ( सः नः ) वह तु हमार के लिए ( पवस्व )  
 छनता जा, उसको महापताये ( चयं ) हल ( घनुमन् द्विरण्यवद्वयं ) धन और सुवर्णके वृषा होकर ( भुवनेषु जीवसे  
 स्याम ) सोनेमें जीवनेवाले हों ॥ २ ॥

१४ [ साम-हिन्दी भा. २ ]

९५७ ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्णः ।

तास्ते क्षरन्तु मधुमदधृतं पयस्त्व व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ३ ॥ १ ( स्त्री ) ॥

[ पा० ११ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।८६।१७ )

९५८ पवमानस्य विश्ववित्प्र वे सर्गा असृक्षत । सूर्यस्पेव न रश्मयः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।७ )

९५९ केतुं कृष्वे दिवस्पदि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६४।८ )

९६० जज्ञानो वाचमिष्पसि पवमान विश्वमणि । क्रन्दे देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ २ ( पा ) ॥

[ पा० १५ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६४।९ )

९६१ प्र सोमासो अघन्विषुः पवमानास इन्दवः । श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२४।१ )

९६२ अभि गावो अघन्विपुरापो न प्रयता यतीः । पुनाना इन्द्रमाश्नत ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२४।२ )

९६३ प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः । नृमिर्षतो वि नौर्यसे ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।२४।३ )

९६४ इन्दो यदद्रिमिः सुतः पवित्रं परिदीयसे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।२४।४ )

[ ९५७ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( ईशानः ) सब्रह्म स्वामी तू ( हरितः सुपर्ण युजानः ) हरे रणके वीप्र चलनेवाले घोड़ोंको रथमें जोड़कर ( इमा भुवनानि ) इन सब भूधनोंमें ( ईयसे ) जाता है । ( ताः ) वे ( ते ) तेरे रथ ( मधुमत् धृतं पयः ) मीठे और कमकनेवाले जलोंमें ( क्षरन्तु ) छाने जायें । हे ( सोम ) सोम ! ( कृष्टयः ) यज्ञ करनेवाले मनुष्य ( तव व्रते तिष्ठन्तु ) तेरे यज्ञकर्ममें लगान रहें ॥ ३ ॥

[ ९५८ ] हे ( विश्ववित् ) सर्वत्र सोम ! ( पवमानस्य ते सर्गाः ) छलकर मुझ होनेवाली तेरी पारखें ( सूर्यस्य रश्मयः इव ) सूर्यकी किरणोंके समान ( न प्रासृक्षत ) इस वस्तु नीचे गिर रही हैं ॥ १ ॥

[ ९५९ ] हे ( सोम ) योग ! ( समुद्रः ) पानीमें मिलाया गया तू ( केतुं कृष्वन् ) सानका प्रसार करते हुए ( दिव्या रूपा ) सब केशोंके घन होकर ( दिवः परि अभ्यर्षसि ) अन्तरिक्षके मार्गमें जाता है और हमें ( पिन्वसे ) यज्ञके प्रचारके पन देता है ॥ २ ॥

[ ९६० ] हे ( पवमान ) मुझ होनेवाले सोम ! ( देवः सूर्यः न ) तेजस्वी सूर्यके समान ( जज्ञानः ) प्रकट होने-वाला तू ( वाचमिष्पसि ) छलनीके ( क्रन्दन् ) शब्द करते हुए ( वाचं इष्पसि ) स्तुतिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

[ ९६१ ] ( पवमानासः इन्दवः सोमासः ) छाने जानेवाले सोमरस ( प्राघन्विषुः ) नीचेके बर्तनमें गिरते हैं, ( श्रीणानाः ) वे सोमरस दूधमें मिलाकर ( अप्सु वृञ्जते ) पानीमें मिलाये जाते हैं ॥ १ ॥

[ ९६२ ] ( गायः [ इन्दवः ] ) छाने जानेवाले सोमरस ( प्रयता यतीः ) नीचेके बर्तनमें जाते हुए ( आपः न ) पानीके समान ( अभि अघन्विषुः ) छलनीके नीचे छाने जाते हैं । ( पुनानाः ) छाने हुए ये सोमरस ( इन्द्रं आश्रत ) इन्द्रको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

[ ९६३ ] हे ( पवमान सोम ) छाने जानेवाले सोम ! ( इन्द्राय मादनः ) इन्द्रको चस्ताह देनेवाला तू ( प्र धन्वसि ) छलनीके नीचे गिरता है, बारनें ( नृमिः यताः ) अतिवर्षि द्वारा ( विनीयसे ) तू यज्ञ स्थानके पास से जाया जाता है ॥ ३ ॥

[ ९६४ ] हे ( इन्दो ) सोम ! तू ( पयं अद्रिमिः सुत ) जब पारखें द्वारा बूटकर रस निकालनेके बाद ( पवित्रं परिदीयसे ) छलनीके पास से जाया जाता है, तब ( इन्द्रस्य धाम्ने अरं ) इन्द्रके बैठने के जाने योग्य होता है ॥ ४ ॥

९६५ त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः । सस्त्रियो अनुमाद्यः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।२।४ )

९६६ पयस्व वृत्रहन्तम उक्येभिरनुमाद्यः । शुचिः पावकः अद्भुतः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।२।६ )

९६७ शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् । देवावीरपश्वं सदा ॥ ७ ॥ २ ( हे ) ॥

[ पा० ४१ । उ० नास्ति । स्व० ८ ] ( ऋ. ९।२।७ )

॥ इति प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

[ २ ]

९६८ म कविद्वेषवीतयेऽव्या वरिभिरव्यत । साह्यान्विधा अमि स्पृधः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२।१ )

९६९ स हि प्मा जारितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२।२ )

९७० पारि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती । स नः सोम श्रुतः विदः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।२।३ )

९७१ अभ्यर्षे वृहद्यशो मधवद्भ्यो भुवश्श्रियम् । इपश्स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।२।४ )

९७२ त्वं राजेव सुमतो गिरः सोमाविवेशिय । पुनानो वद्वे अद्भुत ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।२।५ )

९७३ स बद्धिरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गमस्तपोः । सोमश्चमूपु सीदति ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।२।६ )

[ ९६५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( नृमादनः ) मनुष्योंको मान्य देनेवाला ( चर्षणी-धृतिः ) अश्विनोके द्वारा पारण किया गया ( त्वं पवस्व ) तू उतना जा, ( यः सस्त्रियः ) जो सोम मुझ और ( अनुमाद्यः ) प्रसंगलीय है ॥ ५ ॥

[ ९६६ ] हे सोम ! ( उक्येभिः अनुमाद्यः ) स्त्रोत्रेति स्तुति करने सोम्य ( अद्भुतः शुचिः पावकः ) अद्भुत, शुद्ध और पवित्र तू ( वृत्रहन्तमः पयस्व ) दायका नाम करनेवाला होकर पवित्र हो ॥ ६ ॥

[ ९६७ ] ( शुचिः मधुमान् ) विचोडा गया, मीठा ( शुचिः पावकः ) पवित्र, मुझ ( देवावीर ) देवोंको तुल्य करनेवाला और ( अघ-शंस-द्वा सः ) पापी अनुत्तम मानक ऐसा वह सोम ( उच्यते ) बणित होता है ॥ ७ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ९६८ ] ( कविः ) मानी सोम ( द्वेष-वीतये ) देवोंके देनेके लिए ( अव्या वारिभिः ) मेवके बालोंको छलनीके ( अव्यत ) छाना जाता है । ( साह्यान् ) शत्रुको हरानेवाला सोम ( विश्वाः स्पृधः अमि ) सब दुष्टोंको हराना है ॥ १ ॥

[ ९६९ ] ( पवमानः ) पवित्र होनेवाला ( स हि स्म ) यह सोम ही ( जारितृभ्यः ) स्तुति करनेवालोंको ( गोमन्तं सहस्रिणं वाजं ) गायत्रीं युक्त हजारों प्रकारके अम ( आ इन्वति ) देता है ॥ २ ॥

[ ९७० ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( मती ) हमारी स्तुतिके लिए ( मृज्यसे ) जला जाता है, ( नः ) वह तू ( नः ) हमें ( चेतसा ) बुद्धिपूर्वक ( विश्वानि श्रयः विदः ) अनेक प्रकारके अग्र देव वे ३ हैं ॥

[ ९७१ ] हे सोम ! ( मधवद्भ्यः स्तोतृभ्यः ) पवमान् स्तोत्रांके लिए ( वृहद्यशः ) महान् यश ( भुवश्श्रियं रयिं ) स्वामी धन ( अभ्यर्षे ) वे शीर ( इपं आ भर ) अन्नभी भरपूर दे ॥ ४ ॥

[ ९७२ ] हे ( वद्वे ) यत करनेवाले ( अद्भुत सोम ) अद्भुत सोम ! ( सुमत पुनानः राजा इव ) उत्तम बर्न करनेवाले पवित्र हृदयवाले राजाके समान ( गिरः आ विवेशिय ) हमारी स्तुतिको तू स्वीकार करता है ॥ ५ ॥

[ ९७३ ] ( बद्धिः ) यत करनेवाला ( अप्सु दुष्टरः ) अन्नमें मिलाया जानेवाला ( गमस्तपोः ) मृज्यमानः ) हमेंसे निकल जातेवाला ( सः सोमः ) वह सोम ( चमूपु सीदति ) बर्तनेमें आकर रहता है ॥ ६ ॥



९७४ <sup>३ २ १ ३</sup> ऋद्भिर्लो न म<sup>२ २</sup>ह्युः पवित्रं<sup>३ ३ ३</sup> सोम गच्छसि । <sup>१ २ ३ ३ ३ ३</sup> दधत्स्त्वो<sup>३ ३</sup> सुवीर्यम् ॥ ७ ॥ ४ ( को ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ १।२।०७ )

९७५ यवंयवं नो<sup>३ ३</sup> अन्धसा<sup>३ ३ ३ ३ ३</sup> पुष्टपुष्टं<sup>३ ३</sup> परि स्रव । विश्वा च सोमं<sup>३ ३</sup> सीमगा ॥ १ ॥ ( ऋ १।१६।१ )

९७६ इन्द्रो यथा तव स्तयो यथा ते जातमन्धसः । नि<sup>३ ३</sup> वीहि<sup>३ ३</sup> प्रिय सदाः ॥ २ ॥ ( ऋ १।१६।२ )

९७७ उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्वसा । मधूतमेभिरहमिः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१६।३ )

९७८ यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुममीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ ५ ( हि ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ १।१६।४ )

९७९ यास्ते घारा मधुश्रुतोऽसुग्रामिन्द ऊतये । तामिः पवित्रमासदः ॥ १ ॥ ( ऋ १।१६।७ )

९८० सो अर्षेन्द्राय पीतये तिस्रो वाराण्यव्यया । सीद्भ्रतस्व योनिमा ॥ २ ॥ ( ऋ १।१६।८ )

९८१ त्वं सोम परि स्रव रवादिष्टो अङ्गिरोम्यः । वरिवोविद्धृतं पयः ॥ ३ ॥ ६ ( हि ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १।१६।९ )  
॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ९७४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( ऋद्भिः ) खेल करनेवाला ( मधु. न ) यज्ञके समान ( मंह-युः ) बाण देनेकी इच्छा करनेवाला तू ( स्तोत्रे ) स्तुति करनेवालेको ( सुवीर्यं दधत् ) उत्तम धीरता देकर ( पवित्रं गच्छसि ) छलनी पर जाता है ॥ ७ ॥

[ ९७५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( नः ) हमारे लिए ( पुष्टं पुष्टं यवं यवं ) अत्यधिक पौष्टिक रसको ( अन्धसा परिस्त्रव ) अश्रकी धाराले बहता रह ( च ) और ( विश्वा सीमगा ) सब पेश्वर्य वे ॥ १ ॥

[ ९७६ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( ते अन्धस स्त्रव ) तेरे अज्ञके स्तोत्र ( तव यथा जातं ) तेरे लिए जते बनाने गए हे, उसी प्रेमके साथ तू ( प्रिये वीहि प्रियत् ) प्रिय आसन पर बैठ ॥ २ ॥

[ ९७७ ] ( उत सोम ) और हे सोम ! ( न ) हमें तू ( मधूतमेभिः अहमि ) बहुत अच्छी ही ( गो-वित् ) बाण देनेवाला ( अश्ववित् ) घोड़े देनेवाला, ( अन्धसा पवस्व ) और अन्न देनेवाला ही ॥ ३ ॥

[ ९७८ ] हे ( सहस्रजित् ) हजारों शत्रुओंको जीतनेवाले सोम ! ( य जिनाति ) जो तू शत्रुओंको जीतता है और ( शत्रुं अमीत्य हन्ति ) शत्रुपर आक्रमण करके उन्हें मारता है, पर ( न जीयते ) स्वयं शत्रुले कभी जीता नहीं जाता ( स पवस्व ) ऐसा वह तू धाराले जाता जा ॥ ५ ॥

[ ९७९ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( ते ) तेरी ( मधुश्रुतः या घारा ) मोठी रसकी जो धारमें है, वे ( ऊतये असुग्रम् ) सरसणके लिए है, ( तामिः पवित्रं आसद ) उन धारार्थके साथ तू छलनी पर चर ॥ १ ॥

[ ९८० ] हे सोम ! ( सः ) वह तू ( अर्षेन्द्राय घाराण्य ) भेड़के बालोंकी बनी छलनीके ( तिरः ) छनता है, ( प्रातर्य योनिं आसीदन् ) यज्ञके स्थानपर बैठकर ( इन्द्राय पीतये अर्षे ) इन्द्रके पीनेके लिए तू तैम्मार हो, छन ॥ २ ॥

[ ९८१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( रवादिष्ट ) तू स्वादिष्ट है, और ( वरिवो-वित् ) धन देनेवाला है, इसलिये तू ( अङ्गिरोम्यः ) अङ्गिराश्वमियों के लिए ( घृतं पयः पवित्र्य ) तेजस्वी दूध दे ॥ ३ ॥

[ ३ ]

- ९८२ तव श्रियो वर्णम्येष विद्युताऽप्रेथिकिन् उपसाभिवातयः ।  
यदोपघोरमिद्युष्टो वनानि च परि स्वयं विद्युपे अन्नमासनि ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।९।१५ )
- ९८३ वातोपजृत् इपिता वशाः अनु तपु यदक्षा वैविपदित्विष्टसे  
आ ते यतन्ते रडवोवेयथा पृथक् शशाःस्यप्रे अजरस्य धक्षतः ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।९।१७ )
- ९८४ मेघाकारं विदधस्य प्रसाधनमत्रि होतारं परिभूतं मतिम् ।  
स्वामभस्य हविषः समानमिच्छां महा वृणते नान्यं स्वत् ॥ ३ ॥ ७ ( बु ) ॥  
[ घा० ३२ । उ० ३ । स० १५ ] ( ऋ. १०।९।१८ )
- ९८५ पुरूरुणा चिद्धस्यस्यो नूनं वां वरुण । मित्र वक्षसि वाऽस्तुमतिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।७०।१ )
- ९८६ ता वाः सम्पगद्गुह्याणिपमदयाम धाम च । वयं वां मित्रा स्याम ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।७०।२ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ९८२ ] हे अग्ने ! ( यत् ) जब तू ( ओपधीः ) वनानि च ( ओपधी और वन ( अमिद्युष्टः ) जलानेके लिए वेता है, ( स्वयं ) आसनि ) तव स्वयं अपने मंहमें ( अस् परिचिद्युपे ) स्वतः और जंगमरुपी जगत्के अग्रको शासता है, उस समय ( तय श्रियः ) वैरी किरणें ( वर्णम्येष विद्युतः इव ) वर्णकालमें विजलीके समान ( उपसां ऊतयः इय ) अथवा उधकने प्रकाशके समान ( चिकित्से ) बीसने लगती ह ॥ १ ॥

[ ९८३ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( यत् वातोपजृत् ) जब तू वायुके द्वारा कंवाया जाता है, तब ( वशान् अनु ) म्रिय बनस्यत्वियं ( तपु इपितः ) शीघ्र म्रिय होकर ( अघा येमिपत् ) अपने अग्रको घेरता है, और ( विविपदित्विष्टसे ) वहाँ पर रहता है, तब ( अजरस्य धक्षतः ते ) बुझापाहलित तदणके समान नभम करनेकी इच्छावाले तेरे ( शशांसि ) तेज ( स्यः यथा ) एषपर चरे हुए बीरके समान ( पृथक् आघतन्ते ) पृथक् पृथक् बढ़ते हुए बिलाईं बेंते ह ॥ २ ॥

[ ९८४ ] ( मेघाकारं ) बुद्धिकी वजानेवाले ( विदधस्य प्रसाधनं ) यवके साधन ( होतारं ) देवोंको सुलाकर सानेवाले ( परि-भू-जृत् ) यवके पराभव करनेवाले ( म्रतिं ) बुद्धिके प्रेरक ( अग्निं ) अग्निकी हम प्रार्थना करते ह ॥ हे अग्ने ! ( स्वां इत् ) तुझे ही ( अर्धस्य हविषः ) बीरके हविष्याहारे लानेके लिए ( त्वां इत् महाः ) और तुझे ही बहुतती हवि लानेके लिए ( स्वामानं वृणते ) पृथक् होकर प्रार्थना करते ह, युक्तते ह, ( त्वत् अन्यं न ) तेरे निवाय भीर किसी देवता को नहीं बुलते ॥ ३ ॥

[ ९८५ ] हे मित्र और वरुणो ! ( वां ) तुम दोनोंके ( पुरूरुणा अघः ) बहुतसे संरक्षणके साधन ( नूनं अस्ति ) निदमपसे ह, यह ( दि ) प्रसिद्ध ही है, ( चित् ) और ( वरुण मित्र ) हे मित्र और वरुण ! हमें ( वां सुमतिं यंसि ) तुम्हारी अनुकूल और उत्तम बुद्धि प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ ९८६ ] हम स्वता ( अ-द्रुह्याणा ) द्रोह म करनेवाले ( ता वां ) तुम दोनोंकी ( स्वय्यक् ) अथवा तरह स्तुति करते ह ॥ ( वयं ) हम ( वां मित्रा स्याम ) तुम्हारे मित्र हों और ( त्वं ) अग्रको ( च धाम ) और स्वानको ( अदयाम ) प्राप्त करें ॥ २ ॥

९८७ पातं नो मित्रा पापुमिहृत प्रायेथाऽसुनात्रा । साक्षाम दस्युं तनुमिः ॥ ३ ॥ ८ ( य ) ॥  
[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।७०।३ )

९८८ उचिष्टुन्नोवसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७६।१० )

९८९ अतु त्वा रोदसी उभे स्वर्धमान मदेताम् । इन्द्र यद्दस्युहामवः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।७६।११ )

९९० वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतायुषम् । इन्द्रात्परितन्वं ममे ॥ ३ ॥ ९ ( ही ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।७६।१२ )

९९१ इन्द्राग्नी युवाग्निमेरेऽग्नि स्तोमा अनुपत । पिवतं श्वश्रुधुवा सुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।६०।७ )

९९२ या वाक्षसन्ति पुरुषपूहा नियुता दाशुपे नरा । इन्द्राग्नी तामिरा गतम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।६०।८ )

९९३ तामिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ३ ॥ १० ( हा ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति० । स्व० २ ] ( ऋ. ६।६०।९ )

॥ इति सुतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

९९४ अपो सोम घृमत्तमौऽग्नि द्रोणानि रोहवत् । सौदन्योनी वनेष्वा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६९।१९ )

[ ९८७ ] हे ( मित्रा ) मित्र और बरुणों । तुम ( नः ) हवारी ( पायुमिः पातं ) सरक्षकके साधनीति रखा करते, ( उत ) और ( सुप्राना प्रायेथां ) उत्तम संरक्षण करनेवाले तुम हवारा पालन करते, हम भी ( तनुमिः ) अपने शारीरिक सामर्थ्यसे ( दस्युन् साक्षाम ) शत्रुना पराजय करते ॥ ३ ॥

[ ९८८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( चमू सुतं सोमं पीत्वा ) बर्तनमें रखे हुए सोमरसको पीकर ( ओजसा सह उचिष्टन् ) बल लगाकर उठकर ( शिप्रे अवेपयः ) अपनी दुहोको हिला ॥ १ ॥

[ ९८९ ] हे ( स्वर्धमान इन्द्र ) स्वर्धमान करनेवाले इन्द्र ! ( त्वा अतु ) तेरे अनुकूल ( उभे रोदसी ) दोनों ही पुरुषों और पृथ्वीलोक ( मदेतां ) खानवित होते हैं ( यत् ) जब तू ( वदस्युहा भवः ) शत्रुना नाश करनेवाला होता है ॥ २ ॥

[ ९९० ] ( अष्टापदीं ) अष्ट ऋणको ( नय-स्रक्तिं ) नई ऋणवली युक्त ( प्रता-युषं ) सत्यको बढानेवाली ( तन्वं यावं ) छोटी ही धुनि ( अहं परिममे ) में करता हूँ ॥ ३ ॥

[ ९९१ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! ( युवा ) तुम दोनोंको ( इमे स्तोमाः अभ्यनुपत ) मे स्तुति करनेवाले स्तुति करते हैं, हे ( दा-शुपा ) धुल देनेवाले इन्द्र और अग्नि ! ( सुतं पियतं ) सोमरसको पिबो ॥ १ ॥

[ ९९२ ] ( नरा इन्द्राग्नी ) हे नेता इन्द्र और अग्नि ! ( दां ) तुम दोनोंके ( पुरु-स्युहाः ) बहुतों द्वारा मर्त्तवा करनेके योग्य ( दाशुपे ) बाल देनेवालेकी सहायताके लिए ( याः नियुताः सन्ति ) जो पौधियां हैं ( तामिः आगतं ) जन्मी सहायतासे यहाँ आओ ॥ २ ॥

[ ९९३ ] हे ( नरा इन्द्राग्नी ) नेता इन्द्र और अग्नि ! ( इदं सुनं स्वदनं उय ) इस श्रुत किए गए सोमरसके पाप ( सोम-पीतये ) सोम पीनेके लिए ( तामिः आगच्छतं ) उन घोरदिव्यके साथ आओ ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ९९४ ] ( सोम ) हे सोम ! ( घृमत्तमः ) तेरको तू ( यनेषु धोमी आसीदन् ) लक्ष्मीके पात्रमें रहकर ( द्रोणानि अग्नि ) द्रोण करनेमें ( रोदयत् अर्धं ) रास्य करते हुए जा ॥ १ ॥

९९५ अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्पन्तु विष्णवे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६९।२० )

९९६ इयं लोकाय नो दधदसाम्यः सोम विभ्यतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ ११ ( ला ) ॥  
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ ९।६९।२१ )

९९७ सोम उ ज्वाणः सोतृभिराधि ष्युभिरवीनाम् ।  
अश्वयेव हरिता याति भारया मन्द्रया याति धारया ॥ १ ॥ ( ऋ ९।७०।८ )

९९८ अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।  
समुद्रे न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोञ्चते ॥ २ ॥ १२ ( फ ) ॥  
[ धा० १५ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।७०।९ )

९९९ परसोम चित्रमुक्थ्ये दिव्ये पार्थिवे वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥ ( ऋ ९।९।१ )

१००० वृषा पुनान आयुधेपि स्तनयन्नधि बहिधि । हरिः सन्धोनिमासदः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।३ )

१००१ पुवधेदि स्यः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यते धियः ॥ ३ ॥ १३ ( पु ) ॥  
[ धा० १६ । उ० १ । स्व० ५ ] ( ऋ ९।९।२ )  
॥ इति सप्तमं सप्तः ॥ ४ ॥

[ ९९५ ] ( अप्सा ) पानीके साय मिले हुए ( सोमः ) सोमरस ( इन्द्राय वायवे ) इन्द्र, वायु ( वरुणाय मरुद्भ्यः ) वरुण, मरुत् ( विष्णवे अर्पन्तु ) और विष्णुके लिए कलसेमें जावें ॥ २ ॥

[ ९९६ ] हे ( लोकाय ) सोम ! ( लोक ) हमारे पुत्रोंके लिए ( इयं दधदः ) अन्न दे, ( सहस्रिणम् ) हजार प्रकारके धन ( विभ्यतः अस्मभ्यं आ पवस्व ) धारों ओरसे हमारे लिए जाकर दे ॥ ३ ॥

[ ९९७ ] ( सोतृभिः ) सोमरस तीव्यार करनेवाले ऋत्विजोंके द्वारा ( स्वात सोम ) तिचीरा गया सोमरस ( अश्वीनां स्तुभिः ) भेड़के बालोंकी बनी छलनीके ( अधि याति ) वेगसे टापा जाता है, यह रस ( उ ) निश्चयसे ( अश्वया एव ) घोड़ोंके समान ( हरिता धारया ) हरे रंगकी धारसे ( मन्द्रया धारया ) आनन्दकारक धारसे ( याति ) कलसेमें गिरता है ॥ १ ॥

[ ९९८ ] ( गोमान् सोमः ) गावोंके युक्त सोम ( अनूपे गोभिः अक्षाः ) कलसेमें गावसे दूधके साथ टपकता है, ( सोमः दुग्धाभिः अक्षाः ) सोम दूधके साथ टपकता है, ( समुद्रे न ) जिस प्रकार समुद्रमें नदियां गिरतीं हैं वसी प्रकार ( सं वरणानि अग्मन् ) सोमरससभी अन्न कलसेमें गिरता है, ( मन्दी मदाय तोञ्चते ) आनन्दवायक सोम आनन्द प्राप्तिके लिए कूटा जाता है ॥ २ ॥

[ ९९९ ] ( सोम ) सोम ! ( वसु ) जो ( चित्र उक्थ्ये दिव्ये ) विलक्षण, प्रशस्तनीय और दिव्य ( पार्थिवे वसु ) ऐतान् पृथ्वीके ऊपर धन है ( तन्नः ) यह धन ( पुनान न आ भर ) मूढ़ होनेवाला तू हमें भरपूर दे ॥ १ ॥  
[ १००० ] ( आयुधेपि पुनानः ) यज्ञकी आयुधोंकी पवित्र करनेवाला ( वृषा स्तनयन् ) बलसे दम्ब करता हुआ हे सोम ! ( अधि बहिधि ) आनन्द पर ( हरिः सन्धः ) हरे रंगका होता हुआ तू ( योनि मासदः ) अपने स्थान पर बैठ ॥ २ ॥

[ १००१ ] ( सोम च इन्द्रः ) हे सोम और इन्द्र ! ( पुव हि स्य पती स्य ) तुम दोनों निश्चयसे सबके स्वामी हो, ( गोपती ईशाना ) गोपालक और देवकी स्वामी ऐसे तुम ( धिय पिप्यते ) हमारी बुद्धियोंके पुच्छ करो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा पाठ समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

- १००२ इन्द्रो मदाय वावुधे श्वसे वृत्रहा नुभिः ।  
तमिन्महत्स्वाजिपुत्रिमर्षं हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविपत् ॥ १ ॥ ( ऋ १।८।१।१ )
- १००३ असि हि वीर सैन्योऽसि भूरि पराददिः ।  
असि दभ्रस्य चिद्वृषो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥ ( ऋ १।८।१।२ )
- १००४ यहुदीरस आजयोः धृष्णये धीयते धनम् ।  
युद्ध्वा मद्व्युता हरी कश् इनः कश् वसो दधोऽस्मात् इन्द्र वसो दधः ॥३॥ १४ (सु)॥  
[ धा० २६ । उ० २ । स्त० ५ ] ( ऋ १।८।१।३ )
- १००५ स्वादोरित्था विपुवतो मधोः पिवन्ति गौर्यः ।  
या इन्द्रेण सयावरीवृष्णा मदन्ति शोभया वस्वीरसु स्वराज्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।४।१० )
- १००६ ता अस्य पृशनायुवः सोमश् श्रीणन्ति पश्रयः ।  
मिया इन्द्रस्य घेनवा वजश् हिन्वन्ति सायकं वस्वीरसु स्वराज्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ १।८।४।११ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १००२ ] ( वृष-हा इन्द्रः ) मनुनासक इन्द्र ( मदाय वावुधे श्वसे ) आनन्द तथा बलकी प्राप्तिके लिए ( नुभिः वावुधे ) वाजकों द्वारा ही और अधिक महान् किया गया है, ( सं इव् ) उसके पाससेही ( महत्सु आजिषु ) महान् सामागमें और ( अर्षं ) छोटे युद्धोंमें ( ऊर्ति हवामहे ) हम परक्षण भागते हैं, ( स. वाजेषु ) यह युद्धमें ( नः प्राविपत् ) हमारा परक्षण करे ॥ १ ॥

[ १००३ ] हे ( वीर ) वीर इन्द्र ! ( सैन्य-असिः ) तू सैनिक है, इसलिए ( भूरिः पराददिः ) अक्षि ) मनुका बहुलता धन हृत्प्य करनेवाला है, ( दभ्रस्य चिद्वृषः ) छोटीको तू महान् करनेवाला है । ( सुन्वते यजमानाय शिक्षसि ) गोमयाग करनेवाले यजमानोंको तू धन देता है, क्योंकि ( ते भूरि वसु ) तेरे पास बहुतसा धन है ॥ २ ॥

[ १००४ ] ( यात् आजयः उदीरते ) जब युद्ध उत्पन्न होते हैं तब ( धृष्णये धेना धीयते ) विजयो औरको धन मिलता है, हे इन्द्र ! युद्धके समय ( मद्व्युता हरी युद्ध्व ) सब चंगानेवाले घोड़े रथमें जोड़ । ( कश् इनः ) कितानो पारता है और ( कश् वसो दधः ) कितानो धनमें स्वाचित करना है यह निर्दिष्ट कर । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अस्मान् धमो दधः ) हमें धनोंमें स्थापित कर ॥ ३ ॥

[ १००५ ] ( स्वादो. ) मोडे ( इत्था विपुवत मधोः ) और इस प्रकार सब यज्ञमें व्यापनेवाले मोडे सोमरसको ( गौर्यः पिवन्ति ) सबके रसकी गांय पीते हैं ( याः इन्द्रेण शोभयाः ) जो इन्द्रके साथ रहकर सुवीरित होती हैं । ( धृष्णाः सयावरीः मदन्ति ) पलपालो इन्द्रके साथ जानेवाली गांयें आनन्दित शीलतां हैं ऐसी ( वस्वी स्वराज्यं मनु ) रूप देकर निवास करनेवाली गांयें अपने राज्यमें रहती हैं ॥ १ ॥

[ १००६ ] ( ताः अन्वय ) हे इस इन्द्रके ( पृशनायुवः पृशनायः ) स्वर्गको इच्छा करनेवाली गांयें ( सोमं श्रीणन्ति ) अपना रूप गोमयागमें मिलती हैं । ( इन्द्रस्य मियाः घेनवाः ) इन्द्रकी मिया गांयें ( सायकं चरं हिन्वन्ति ) मनुनासक बखरीके मरण देती हैं । ( वस्वीः स्वराज्यं मनु ) अपना रूप देकर अपने राज्यमें रहती हैं ॥ २ ॥

१००७ ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेत्सः ।

प्रतान्धस्य सथिरे पुरुणि पूर्वैचित्तये चस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥ १५ ( व ) ॥

[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व १ ] ( ऋ. १।८४।१२ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१००८ असाव्य < शुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६२।४ )

१००९ शुभ्रमन्वो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ २ ॥

( ऋ. ९।६२।२ )

१०१० आदीमशं न हेतारमशुमन्मृताय । मघो रस < सधमाद ॥ ३ ॥ १६ ( जु ) ॥

[ धा० १९ । उ० १ । ख० ५ ] ( ऋ. ९।६२।६ )

१०११ अभि शुभ्रं वृहद्यश इपस्पते दिदीहि देव देवयुम् । पि कोशं मध्मम युव ॥ १ ॥

( ऋ. ९।१०८।९ )

[ १००७ ] ( प्रचेत्सः ताः ) विशेष बृद्धिवाची ये गावें ( अस्य सहः ) इत इन्द्रके साहसको ( नमसा सपर्यन्ति ) अपने रूपरूपी अमते प्रजाती हैं, ( पूर्वै-चित्तये ) पूर्वके कामांतो समझानेके लिए ( अस्य पुरुणि प्रतानि ) इस इन्द्रके पहलके बहुतसे कामोंका ( सथिरे ) ध्यान बिलाती हैं, ( वस्वीः स्वराज्यं अनु ) वृष देकर अपने राज्यमें इस इन्द्रके अनुकूल होकर रहती हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १००८ ] ( गिरिष्ठाः अंशुः ) पर्वत पर उगनेवाले सोमका ( मन्दाय असायि ) आनन्दके लिए रस निकाला है । ( अप्सु दक्षः ) बासमें पानीमें धो मिलाया है, जतके बाद ( श्येनः न ) शत्रु यतीके समान ( योनिं आसदत् ) यह अपने स्थान पर बैठता है ॥ १ ॥

[ १००९ ] ( देव-वातं शुभ्रं अश्वः ) देवीकी बनेके लिए स्वर्ण और सुवर्ण सभ्र अर्थात् ( नृभिः सुतं ) अतिवर्णके द्वारा तैय्यार किए गए ( अप्सु धौतं ) पानीमें मिलाये गए सोमरसको ( गावः ) गावें ( पयोभिः स्वदन्ति ) अपना रूष मिलाकर स्वाचिष्ट बनाती हैं ॥ २ ॥

[ १०१० ] ( मात् ) मातृके ( हेतारं ई मघोः रसं ) इकृति देनेवाले इस सोमरसको ( सधमान् अमृताय अदाशुमन् ) वाममें शमरत्व प्राप्त करनेके लिए अतिवर्ण ( अश्वं न ) घोड़ेके समान सुसोपित करते हैं ॥ ३ ॥

[ १०११ ] ( इपस्पते देव ) हे शतके स्वामी सोमदेव ! ( देवयुं शुभ्रं वृहद्यशः ) देव नितकी बड़ा करते हैं, ऐसे तेजस्वी और महान् सभ्र ( अभि दिदीहि ) हूँ के, ( मध्मम कोशं यियुय ) शत्रुके वर्णनमें जानकर रह ॥ १ ॥

१०१२ आ वच्यस्व सुदक्ष चम्ब्योः सुतो विशां वद्विनं विवपतिः ।

वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वन् गविष्टये धियः ॥ २ ॥ १७ ( डा ) ॥

[ धा० १८ । उ० ३ । २० २ ] ( ऋ १।१०।१० )

१०१३ प्राणा विशुमहीना हिन्वन्नुतस्य दीधितम् ।

विश्वा परि म्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥ ( ऋ १।१०।११ )

१०१४ उप त्रितस्य पाष्योऽरमक्त यद्गुहा पदम् । यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥

( ऋ १।१०।१२ )

१०१५ त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ट्वैरपद्रयिम् ।

मिमीते अस्य योजना वि सुकतुः ॥ ३ ॥ १८ ( री ) ॥

[ धा० ८ । उ० नारि । २० ४ ] ( ऋ १।१०।१३ )

१०१६ पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः । इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ॥ १ ॥

( ऋ. १।१०।१६ )

१०१७ त्वा रिद्वन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः । वरसं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ॥ २ ॥

( ऋ. १।१०।१७ )

[ १०१२ ] हे ( सु-दक्ष ) उत्तम बलशाली सोम ! ( चम्ब्योः सुतोः ) कलसेमें रखा हुआ तू ( यद्दि न ) सव प्रजाओंका बालक या नेता जैसे राजा होता है, उसी प्रकार ( विशां विवपतिः ) तू प्रजाओंका बालक होकर ( आ वच्यस्व ) कलसेमें आ, ( गविष्टये ) पाप पानेकी इच्छावाले पवमानकी ( धियः जिन्वन् ) बुद्धियोंको प्रेरित करते हुए ( दिवः अपः वृष्टिं रीतिं ) धृत्वोक्तसे जैसे पानी गिरता है, उसी प्रकार ( पवस्व ) नीचेके बर्तनमें तू छगता जा ॥ २ ॥

[ १०१३ ] ( प्राणाः ) यज्ञका प्राण ( महीनां शिशु ) अतोंका पुत्र सोम ( ऋतस्य दीधितं हिन्वन् ) यज्ञके प्रकाशक अपने रसको प्रेरित करते हुए ( विश्वा म्रिया परिभुयत् ) सपें त्रिय हृत्तिकी अनेजा भी ब्रह्मिक महायका होता है, और ( अथ द्विता ) बाहमें छलोक और पृष्ठीलोक दोनोंके बीचमें रहता है ॥ १ ॥

[ १०१४ ] ( त्रितस्य गुहा ) त्रित नामके ऋत्तिकी गुहामें ( पाष्योः पदं ) दो पटलोंके बीचके स्थानमें ( यत् उप अद्रयत् ) जब उन सोमोंको प्राप्त किया, ( अथ ) तब ( यज्ञस्य सप्त धामभिः ) यज्ञके सात छत्रोंके ( प्रिय म्रि ) त्रिय सोमकी ऋत्तिकी स्तुति करनेमें समे ॥ २ ॥

[ १०१५ ] हे सोम ! ( धारया ) अपने रसको धाराले ( त्रितस्य त्रीणि ) त्रितके तीनों सबनोंमें ( पृष्ट्वेपु रयि घेरयत् ) सामगानके बृष्ट होनेपर पन देनेवाले इन्द्रको प्रेरित कर, बर्बोकि ( सु-ऋतुः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला स्तोत्र ( अस्य योजना ) इस इन्द्रके स्तोत्रोंका ही ( वि मिमीते ) उच्चचारण करता है ॥ ३ ॥

[ १०१६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( सुतः ) रस संव्यार करनेके बाद तू ( इन्द्राय विष्णवे देवेभ्यः ) इन्द्र विष्णु और सव देवोंके लिए ( मधुमत्तरः ) अत्यन्त मीठा होकर ( वाज-सातये ) अथकी प्रातिके लिए ( पवित्रे धारया पवस्व ) छलनीमेंसे धाराले टपक ॥ १ ॥

[ १०१७ ] हे ( पवमान ) बृष्ट होनेवाले सोम ! ( विधर्मणि ) यज्ञमें ( अ-द्रुहः धीतयः ) शत्रु न करनेवाली अर्गुणियों ( हरिं ) हरे रक्षणके ( रया पवित्रे रिद्वन्ति ) तुमों छलनीमें जती प्रचार डगली है जिम प्रकार ( ज्ञात धरतं मातरः न ) नये अत्यन्त हुए बच्चोंको पावें चाहती है ॥ २ ॥

१०१८ त्वं वां च महिमत पृथिवीं चाति जज्ञिषे ।

अति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥ ३ ॥ १९ ( ता ) ॥

[ धा० २४ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।१००।९ )

१०१९ इन्दुवाजी पवते गान्धीषा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।

हन्ति रक्षा भाधते परराति वरिवस्कुण्वन्बृजनस्य राजा ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१७।१० )

१०२० अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।

इन्दुस्त्रिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवा देवस्य मत्सरो मदाय ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१७।११ )

१०२१ अभि व्रतानि पवते पुनानो देवा देवान्स्वैन रसनं पृञ्चन् ।

इन्दुर्धर्मण्यृतुषा वसानो दक्ष क्षिपो अच्यत सानो अन्ये ॥ ३ ॥ २० ( पी ) ॥

[ धा० २० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।१७।१२ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१०२२ आ ते अग्न इधीमहि शुमन्तं देवाजग्म् ।

यद् स्या तं पनीयसी समिदीदयति धवीपयस् स्वोत्स्य आ मर ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।४ )

[ १०१८ ] ( महिमत ) मत्स्य महान् व्रत करनेवाले सोम । ( त्वं ) तू ( वां च पृथिवीं च ) धृतीक ओर पृथ्वीको ( अति जज्ञिषे ) उत्तम रीतिते पारण करता है, हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम । ( महित्वना द्रापि ) तू अपने महत्त्वके योग्य कञ्चनको ( अति अर्मुञ्चथाः ) धारण करता है ॥ २ ॥

[ १०१९ ] ( याजी ) बलवान् ( गोग्योषा ) रस जितसे बहूना है, ऐसा ( इन्द्रः सोमः ) सोम ( इन्द्रे सहः इन्वन् ) इन्द्रमें सहस्र वस्त्र करके ( मदाय पवते ) आगत्य ब्रह्मणके लिए छाका जाता है, ( बृजनस्य राजा ) बलका राजा ( धारिवः कुण्वन् ) स्वीताओंको धन देता है, ( रक्षः हन्ति ) राक्षसोंका नाश करता है, और ( अ-रतिं परि याधते ) शत्रुओंको कष्ट देता है ॥ १ ॥

[ १०२० ] ( अध ) उलके बार ( अद्रिदुग्धः ) पयसेति रस निकाला गया सोम ( मध्वा धारया पुचानः ) मीठी धारसे देवोंको पुष्ट करता हुआ ( रोम तिरः पवते ) भेके बालोंकी छलनीसे छाता जाता है । ( इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः ) इन्द्रके साथ मित्रताकी इच्छा करते हुए ( देवः मत्सरोः इन्दुः ) चमकनेवाला आनन्दवर्षक सोम ( देवस्य मदाय पवते ) इन्द्रके उत्साहकी यज्ञानके लिए छाका जाता है ॥ २ ॥

[ १०२१ ] ( धर्मणि व्रतानि ) धार्मिक व्रतोंने ( त्रानुषा वसानः ) ऋतुमेंके अनुकूल करते हुए ( पुचानः इन्दुः ) छाका जानेवाला सोम ( अभि पवते ) बलपूर्वक छाका जाता है, ( देवः ) तेजसी सोम ( स्वैन रसेन देवान् पुञ्चन् ) अपने रससे देवोंको सन्तोष देता हुआ, ( दक्ष क्षिपः ) वन भंगुलियोंके द्वारा ( सानो अन्ये अच्यत ) अन्ये क्षणमें अपने मां बालोंकी छलनीमें पहुँचाया जाता है ॥ ३ ॥

॥ यदां छटा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १०२२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( शुमन्तं अजर्तं ) तेजस्ये ओर जरादेहित ऐसे ( ते ) तुमसे हय ( आ इधीमहि ) धार्मिक प्रयत्न करते हैं, ( यद् ए ते स्या पनीयसी समिद् ) जब तैसी वह प्रथमतोय समिदा ( धामि दीदयति ) धृ-छोरमें प्रदानमें लगनी है, तब ही अग्ने । तू ( स्वोत्स्यः इयं आमर ) स्तुति करनेवालोंको भय भयपूर है ॥ १ ॥



- १०२३ आ ते अग्र ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिपस्पते ।  
सुखन्द्र दस्म विदपते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इप < स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥ ( ऋ. १।६।९ )
- १०२४ ओभे सुखन्द्र विदपते दर्वी श्रीणीष आसनि ।  
उतो न उत्पुपूर्णा उक्थेषु श्वसस्पत इप < स्तोतृभ्य आ भर ॥ ३ ॥ २१ ( रा ) ॥  
[ धा० २८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १।६।९ )
- १०२५ इन्द्राय साम गायत विप्राय वृहत् वृहत् । ब्रह्मकृते विपथिते पनस्यथ ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।९।८।१ )
- १०२६ त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाश् अति ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।९।८।२ )
- १०२७ विप्राञ्जं ज्योतिषा स्वरेग्गच्छो रोचने दिवः ।  
देवास्त इन्द्र सरूपाय येमिरे । ॥ ३ ॥ २२ ( व ) ॥  
[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।९।८।३ )
- १०२८ असावि सोम इन्द्र ते अविष्ट धृष्ण्या गाहि ।  
आ त्वा पूणवित्वन्द्रियं रजः सूर्यां न रदिमभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।४।१ )

[ १०२३ ] हे श्वेत् आनन्द देनेवाले ! ( दस्म ) शत्रुनाशक ( विदपते ) प्रजापालक और ( हव्यवाट् ) हवि पहुँचानेवाले ( ज्योतिपस्पते ) अग्ने ! प्रकाशमान् अपने ! ( शुक्रस्य ते ) प्रदीप्त हृद्य तेरे अन्तर ( ऋचा हविः आ हूयते ) मंत्र बोलकर हवि दी जाती है, ( स्तोतृभ्यः इपं आभर ) स्तुति करनेवालोंको भरपूर भरण दे ॥ २ ॥

[ १०२४ ] हे ( श्वसस्पते, विदपते ) सुखन्द्र ! बलके स्वामी, प्रजापालक और अति तेजस्वी अपने ! ( उभे दर्वी ) दोनों ही बरतन ( आसनि श्रीणीषे ) तेरे मुखके गाल पहुँचाये जाते हैं, ( उत उ ) और ( उक्थेषु नः उत्पुपूर्णाः ) स्तुति करनेके बाद हमें तू पूर्ण करता है, ( स्तोतृभ्यः इपं आभर ) स्तुति करनेवालोंको अन्न भरपूर दे ॥ ३ ॥

[ १०२५ ] हे उद्गानाओ ! ( विप्राय वृहते ) ज्ञानी महान् ( ब्रह्मकृते विपथिते ) ज्ञान फलनेवाले विद्वान् ( पनस्यथ इन्द्राय ) और प्रशंसाके योग्य इन्द्रके लिए ( वृहत् वृहत् ) बृहत् नामके सामका गान करो ॥ १ ॥

[ १०२६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं सूर्यमरोचयः ) तू सूर्यमंकी हरानेकला है, ( त्वं सूर्यं अरोचयः ) तूने सूर्यको प्रकाशित किया, तू ( विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् अति ) सब कार्य करनेवाला, सब देवीके समान महान् है ॥ २ ॥

[ १०२७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ज्योतिषा दिवः रोचने ) अपने तेजसे सूर्यका प्रकाशक तथा ( स्वः विप्राञ्जन् ) अपना प्रकाश फैलानेवाला तू ( आगच्छ ) आ, ( देवाः ते सरूपाय येमिरे ) सब देव तेरे साथ विभ्रता करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३ ॥

[ १०२८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते सोमः असावि ) तेरे लिए सोम तैयार किया है, ( अविष्ट धृष्ण्या ) हे वधवान् और शत्रुको हरानेवाले ब्रह्म ! ( आ गाहि ) आ, ( सूर्यः रदिमभिः रजः न ) सूर्य किरणोंके जंगे मन्तरिषाको भर देता है, उसी प्रकार ( त्वा इन्द्रियं आ पूणकृत् ) तुमने सोमपानसे महान् शक्ति प्राप्त हो ॥ १ ॥

१०२९ आ तिष्ठ वृत्रहृत्रय युक्ता ते नक्षणा हरी ।

अर्वाचीनश्च तु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना

॥ २ ॥ ( ऋ. १।८४।२ )

१०३० इन्द्रमिद्धरी वहतीऽपतिघृष्टश्वसम् ।

ऋषीणां सुपृतीरुप यज्ञे च मानुषाणाम्

॥ ३ ॥ २३ ( पा ) ॥

[ धा० १०। उ० १। स्व० २ ] ( ऋ १।८४।२ )

॥ इति सप्तम खण्ड ॥ ७ ॥

॥ इति तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धे ॥ ३ ॥

॥ इति तृतीय प्रपाठकस्य समाप्त ॥ ३ ॥

॥ इति षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

[ १०२९ ] हे ( वृत्रहृत्र ) शत्रुको भारनेवाले इन्द्र ! ( रथं आ तिष्ठ ) रथपर घट ( ते हरी नक्षणा युक्ता ) तेरे दोनों ही घोड़े हमने मर्षसि जोड़ दिये हैं, ( ग्रावा ) सोमको कृष्टनेवाला पत्थर ( वग्नुना ) मनको आर्वाचिन करनेवाले शर्वसि ( ते मनः ) तेरा मन ( अर्वाचीनं सुपृणोतु ) हमारी ओर आकर्षित करे ॥ २ ॥

[ १०३० ] ( अ-प्रति-घृष्ट-श्वसं इन्द्रं इत् ) न हरायं जलं पीय बलते युक्त इन्द्रको ( ऋषीणां मानुषाणां ) ऋषि और ऋषितोके द्वारा ( सुपृतीः ) पी गई द्रुतितोके पास ( यज्ञे च ) और यज्ञके पास ( हरी ) घोड़े ( उप वदसः ) बहवसते हैं ॥ ३ ॥

॥ यद्वा सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

## षष्ठ अध्याय

इस छठे अध्यायमें इन्द्र देवताके वर्णन इस प्रकार है—

इन्द्र

१ हे स्वर्धमान इन्द्र । यत् एवं वक्ष्युहा भवः, उभे रोदसी अतु मदेवाम् [ १८९ ]— हे स्वर्ध करनेवाले इन्द्र ! जब तू शत्रुका नाश करनेवाला होता है, तब दोनों ही ध्रुवोके और भूलोके आनन्दसे तेरे अनुपम होते हैं ।

२ यत् स्राजयः उदीरसे, घृष्णाद्ये धनं धीयते [ १००४ ]— जब युद्ध शुरू होते हैं, तब विजयी वीरको धन मिलते हैं ।

३ घृषुहा इन्द्रः सदाय शवसे नृभिः पापृषे [ १००२ ]— दूसरे नाश करनेवाले इन्द्रके आनन्द व मनकी यज्ञानेके लिए सोम पतना यज्ञ कडाते हैं ।

४ तं महत्तु भाजिषु अर्भे ऊर्तिं हयामहे [ १००२ ]— उस इन्द्रको बड़े तथा छोटे युद्धोंमें गपनी रक्षाके लिए हम बुझते हैं ।

५ स वाजेषु नः प्रायियत् [ १००२ ]— वह युद्धमें हमारी रक्षा करता है ।

६ हे इन्द्र ! त्व अग्निभूः अस्त्रि [ १०२४ ]— हे इन्द्र ! तू अग्निओको जीतनेवाला है ।

७ हे शविष्ठ घृष्णो ! आगाहि [ १०२८ ]— हे बलवात् और विजयी इन्द्र ! हमारी सहायताके लिए आ ।

८ अ-प्रति-घृष्टरावस इन्द्रं ऋषीणां मानुषाणां सुपृतिः यज्ञे च हरी उपवहतः [ १०३० ]— जितकेयर्थ और साहस बन्धी बल नहीं होते, उस इन्द्रको ऋषि और

मनुष्योंकी स्तुतियोंके पास अर्थात् यमके पास उनके घोडे ले जाते हैं।

९ हे इन्द्र ! सोमं पीत्वा भोजसा सह उत्तिष्ठन् शिषे अवेपथ्यः [ १८८ ]- हे इन्द्र ! तोम पीकर अपने सामवेद्यके उठ और अपनी ठोड़ीकी कवा, अपनी मूर्धोरता बिसा।

१० हे धीर ! सेन्यः अस्ति, दध्नस्य चित् मृधः [ १००७ ] हे वीर इन्द्र ! तू सेनाके साय रहता है, छोटोंको तू बडा बनाता है।

११ प्रचेतसः ताः गावः अस्य मधुः नमसा धर्म-यन्ति [ १००७ ]- बुद्धिपुत्र वे गावें इस इन्द्रके सामवेद्यके अपने दूधसे बढ़ाती हैं।

१२ पृथ्वीचिन्तये अस्य पुरुणि व्रतानि सधिरे [ १००७ ]- पहलेके पराक्रमकी याद दिलानेके लिए इसके बहुतसे साहसिक कार्योंका वर्णन किया जाता है।

१३ घृन् हन् रथं ध्यातिष्ठ [ १०२१ ]- हे वृषको भारते-पाले इन्द्र ! अपने रथपर बैठ।

१४ मद्भ्युता हरी युंक्व, फ हनः, कं वसो दधः, अस्मान् वसो दधः [ १००४ ]- मरोगमत् घोड़ोंको रथमें जोड़, और कितको मारता है और कितको धन देना है इसका विचार कर। हमें धन दे।

१५ सुन्यते यजमानाय दिक्षस्ति, से भूरिषसु [ १००३ ]- सोमपत्र करनेवाले यजमानको तू धन देता है, तेरे पास बहुतसा धन है।

१६ अस्य ताः पृशानायुवः पृदनयः सोमं धीणन्ति [ १००६ ]- उस इन्द्रकी उत्तम मायें अपना दूध सोमरसमें बिलती हैं।

१७ धात्री सोम इन्द्रे सहः इन्वन् मदाय पयसे [ १०१९ ]- कलवान् सोम इन्द्रका सामवेद्यं यदाकर उसका धामन्द बढ़ाता है।

१८ हे इन्द्र ! त्वं सूर्यः अरोचय, रथं विश्वधर्मा विश्वदेवः महान् अस्ति [ १०२६ ]- हे इन्द्र ! तुने सूर्यकी प्रकाशित किया, तू सब कर्म करनेवाला है, तू सर्वोंका देव है और तू महान् है।

१९ यिम् मृहत् प्रलहन् विपदिषत् [ १०२५ ]- इन्द्र सानी, महान्, क्षान्त्रा प्रसार करनेवाला और विद्वान् है।

२० इन्द्रस्य सारथ्यं सुपाणः देवः इन्द्रुः [ १०२० ]- इन्द्रकी विपत्तापी इच्छा करनेवाला यह तेजस्वी सोमरस है।

इस प्रकार इन्द्रके गुणोंका वर्णन इस अध्यायमें आया है। अब अगिके गुण दें—

### अग्नि

इस अध्यायमें अगिके गुणोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ अजर [ १८३ ]- जरारहित, सदा तज्य, बूढावस्था जितके पास आती नहीं।

२ मेधाकारः [ १८४ ]- बुद्धिके कार्य करनेवाला, बुद्धि बढ़ानेवाला।

३ विद्वद्यस्य प्रसाधनः [ १८४ ]- मुढका और मत्तका साधन।

४ होता [ १८४ ]- देवोंको बुलाकर लानेवाला, हवन करनेवाला।

५ परिभूतरः [ १८४ ]- शत्रुओंको हरानेवाला।

६ मतिः [ १८४ ]- बुद्धिमान्।

७ सुमान् [ १०२५ ]- तेजस्वी।

८ सुदचन्द्रः [ १०२३ ]- उत्तम तेजस्वी।

९ द्रुमः [ १०२३ ]- दलीय, सुन्दर।

१० विद्वपतिः [ १०२३ ]- प्रजापालक।

११ ज्योतिषस्पतिः [ १०२३ ]- तेजस्वियोंका पालक।

१२ हव्यवाद् [ १०२३ ]- हवन किए गए पदार्थोंकी ठीक स्थानपर पहुँचानेवाला।

१३ शुक्रः [ १०२३ ]- शुद्ध, पीमवान्।

१४ दावस्स्पतिः [ १०२४ ]- बलवान्, सामर्थ्यवान्।

१५ धक्षन् [ १८३ ]- जलानेवाला, शत्रुओंको जलानेवाला।

१६ हविः आह्वयते [ १०२३ ]- अग्नियं हविर्व्योधा हवन होता है।

१७ उभे सूर्या आसनि धीणापि [ १०२४ ]- दोनों ही गृह आदि वर्तनीको अपने मुखके पास ले जाते हो, आहुतिवा हवन करनेके लिए पात्रको अग्निके पास पहुँचाते हैं।

१८ स्तोतृभ्यः इयं भाषर [ १०२२ ]- स्तुति करने-वालोंको धन भरपूर दे।

१९ त्वां इत् सर्मस्य हविषः, त्वां इत् मधः, समानं घृणते त्वत् अन्यं न [ १८४ ]- तुसे ही घोड़ीकी और बहुतसी हविष देनेके लिए मन्त्राया जाता है, तेरे तिसवा और किमी दूसरेको नहीं बुलाया जाता।

२० हे अग्ने ! यत् ओषधिः यमानि च अभिखुष्ट, स्वयं भासन्, अयं परिचिनुषे, तय धियः, वर्णस्य

विद्युतः इव, चिकिषे [ ९८२ ]- जब तू ओपधी, बनरपति और वर्णोंको अस्त्रानेकी इच्छा करता है, तब तेरे मुखमें अस पड़ता है और उस समय तेरी किरणें वर्षामें बिजलीके समान धमकने लगती हैं।

इस प्रकार इस अध्यायमें अभिनका वर्णन है।

### इन्द्र और अग्नि

इन्द्र और अग्निकी मिलेजुली स्तुति भी इस अध्यायमें है—

१ इन्द्राग्नीं शंभुवा [ ९९१ ]- इन्द्र और अग्नि वे कल्याण करनेवाले हैं।

२ सोमपीतये आगच्छन् [ ९९३ ]- सोमपान करनेके लिए आओ।

३ नरा इन्द्राग्नीं। कां पृथुस्पृदा वाशुपे या नियुतः सन्ति, ताभिः आगतं [ ९९२ ]- हे नैतुत करनेवाले इन्द्र और अग्निदेवो। तुम्हारे बहुतों द्वारा प्रशंसके योग्य, तथा दानशीलकी सहायता करनेवाले जो घोड़े हैं, उन्हें जोड़कर तुम आओ।

इस प्रकार इन्द्र और अग्निके मिलेजुले वर्णन है। ये दूँय सबका कल्याण करते रहते हैं। सबका हित करना ही इनका स्वभाव है, इस कारण वे हमेशा नैतुत करते हैं। ये उदार चित्तवाले मनुष्योंकी सहायता करते हैं। इसलिये सब मन करनेवाले इनकी यज्ञमें बुलाते हैं।

### मित्र और वरुण

मित्र और वरुणकी भी समुक्त स्तुति इस अध्यायमें आई है। उनके वर्णन यहाँ इस प्रकार है—

१ हे मित्रा ! नः पाशुभिः पातं [ ९८७ ]- हे मित्र और वरुणो ! तुम हमारे मित्र हो, इसलिये सरझणके सापनसि हमारी रक्षा करो।

२ सुभात्रा प्रापेथां [ ९८७ ]- उत्तम सरक्षण करनेवाले तुम हमारी अच्छी तरह रक्षा करो।

३ तनूभिः दस्युन् साधाम् [ ९८७ ]- अपने शारीरिक सामर्थ्यसे हम शत्रुओंकी हराये।

४ अद्रुहाणां घां सम्यक् मिथा स्याम [ ९८६ ]- तुम दोनों आपसमें द्रोह न करनेवाले हो, अतः हम तुम्हारे मित्र होकर रहें।

५ हर्षं च धाम आद्यामः [ ९८६ ]- अन्न और घर तुम्हारे द्वारा हमें प्राप्त हों।

६ वां पुरुरजा अघ नूनं अस्ति [ ९८५ ]- तुम दोनोंके बहुतसे सरक्षण हमें प्राप्त हों।

७ वां सुमतिं वंसि [ ९८५ ]- तुम्हारी उत्तम और अनुकूल युद्ध हमें प्राप्त हो।

इस प्रकार मित्र और वरुण इन दोनोंकी सहायताका वर्णन इस अध्यायमें आया है।

### सोमके गुण

अब इस अध्यायमें आये हुए सोमके गुणोंको बोलें—

१ इन्द्रुः [ ९५५ ]- तेजस्वी, चन्द्रके समान प्रकाशमान।

२ गोचिन् [ ९५५ ]- गावोंसे युक्त, गायका रूप जिनमें मिलाया जाता है।

३ वसुचिन् [ ९५५ ]- धनसे युक्त, निवासक शक्तिसे युक्त।

४ हिरण्यचिन् [ ९५५ ]- सोनेसे युक्त।

५ रेतोधाः [ ९५५ ]- वीर्य बढ़ानेवाला, वीर्यको धारण करनेवाला।

६ सु-धीरः [ ९५५ ]- उत्तम वीर।

७ विश्व-चिन् [ ९५५ ]- सब जाननेवाला।

८ रूपमः [ ९५६ ]- बलवान्।

९ पयमानः [ ९५६ ]- शुद्ध होनेवाला।

१० विश्वतः नृचक्ष्णः [ ९५६ ]- सब तरफसे मनुष्योंकी देखनेवाला।

११ ईदामः [ ९५७ ]- स्वामी, दासक।

१२ नृमादनः [ ९५५ ]- मनुष्योंका आनन्द बढ़ानेवाला।

१३ चर्षणी-भृति [ ९६५ ]- मनुष्योंको धारण करनेवाला।

१४ सस्त्रिः [ ९६५ ]- युद्ध, जीतनेवाला।

१५ अनुमाद्यः [ ९६५ ]- प्रशसनीय।

१६ अद्रुतः [ ९६६ ]- अमृत, विलक्षण।

१७ पाथकः [ ९६६ ]- शुद्ध होनेवाला।

१८ पृथ्वन्तमः [ ९६६ ]- शत्रुको धारनेवाला।

१९ शुचिः [ ९६६ ]- शुद्ध।

२० मधुमान् [ ९६७ ]- मीठा, मधुर।

२१ देवावीः [ ९६७ ]- देवोंकी मिलने योग्य।

२२ अघ-शंस-हा [ ९६७ ]- पापियोंका नाश करनेवाला।

२३ वविः [ ९६७ ]- हानी, कान्तवर्त्सा, दूरदर्शी।

२४ साह्यान् [ १६७ ]- शयुको हरातेवासा ।

२५ श्रीदुः [ १७४ ]- संलननें कुशल ।

२६ भंतयुः [ १७४ ]- महत्त्व युक्त, दान देनेवाला ।

२७ सुवीर्यं दधत् [ १७४ ]- उत्तम वीर्यते युक्त,  
उत्तम दार ।

२८ स्वादिष्टः [ १८१ ]- स्वादयुक्त, हचिकर ।

२९ वरिधोयित् [ १८१ ]- पनयुक्त, दान देनेवाला ।

३० धुमत्तम [ १९४ ]- अति तेजस्वी ।

ये सोमके गुण इस अध्यायमें आए हैं । सोमरस पीनेके बाद उसका बदला है । इसलिए ये गुण मानों सोमके ही हैं ऐसा कहा है ।

### स्वर्गमें सोम

सोमकी बेल स्वर्गमें उगती है । स्वर्ग हिमालयकी ऊंची चोटी पर है । वहाँ पर यह बेल उगती है । इसलिए सोम स्वर्गमें लाया जाता है, ऐसा वर्णन वेदोंमें है ।

१ हे सोम ! दिवस्पति विम्बा रूपा अभ्यर्षसि [ १५९ ]- हे सोम ! तू स्वर्ग पर अनेक रूप धारण करके रहता है ।

२ गिरिष्ठाः अंशुः अदाय असाधि [ १००८ ]- पर्वत पर उयनेवाले सोमके रसको आनन्दके लिए निकालते हैं ।

३ द्यौः न योनिं आसद् [ १००८ ]- बाज पशुके समान ( पर्वतसे आकर ) यहाँमें बैठता है ।

### सोमका पथरोंसे कूटा जाना

सोम पथरोंसे कूटा जाता है—

१ अद्रिभिः सुतः पवित्रं परि दीयसे, इन्द्रस्य धास्ते अरं [ १६४ ]- पथरोंसे कूटकर निकाले गए रसको छलनीसे छानते हैं, और तब बाइसे इन्द्रको देने योग्य होता है ।

२ सोमः इन्द्रः च । सूर्यं स्वपतीं स्य । गोपतीं ईशाना धियं पिप्यसं [ १००१ ]- सोम और इन्द्र ! तुम निश्चयसे सबके स्वामी हो, तुम दोनों गायके पालन करनेवाले हो, तुम सब पर अधिकार करते हो, अतः तुम हमारी बुद्धि पुष्ट करो ।

सोमरस पीनेके बाद बुद्धिमें महान् उत्साह उत्पन्न होता है, और महान् महान् कार्य करनेका सामर्थ्य अथवा वंश होता है ।

### सोमका पानीमें मिलाया जाना

सोमका रस निकालनेके बाद उसे पानीमें मिलाया जाता है—

१ अम्बु दुष्टः गभस्त्वोः मृश्यामानः चमूपु स्रिदति [ १७३ ]- पानीमें मिलाया गया सोम हाथोंसे साफ किये जानेके बाद बर्तनमें गिरता है ।

२ अप्सा सोमाः इन्द्राय वायवे अर्पन्तु [ १९५ ]- पानीमें मिलाये जानेके बाद सोमरस इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है ।

३ ताः ते मधुमत् घृतं पयः क्षरन्तु [ १५७ ]- तेरे - ये रस मोठे जल और दूधमें मिलाये जाते हैं ।

४ मघोः रसं सघमादे अमृताय अदाशुभन् [ १०१० ]- मोठे सोमके रस यज्ञमें पानीके साथ मिलकर शोभा पाते हैं । इस प्रकार पानीमें सोमरस मिलाये जानेके बाद ये छाने जाते हैं ।

### सोमरसका छाना जाना

१ देववीतये अय्या धारेभिः अव्यत [ १६८ ]- देवोंको देनेके लिए भेड़के बालोंकी बनी हुई छलनीसे सोमरस छाना जाता है ।

२ हे सोम ! सु-वीर्यं दधत् पवित्रं गच्छसि [ १७४ ]- हे सोम ! उत्तम सामर्थ्य धारण करके तू छलनेके लिए छलनीसे पास जाता है ।

३ ते मधुदसुतः धाराः अरुधन्, ताभिः पवित्रं आ सद् [ १०९ ]- तेरी मोठी धारा निकलने लगी, उन धाराओंसे युक्त होकर तू छलनी पर जाकर बैठ गया है ।

४ सः अव्यया वाराणि तिरः इन्द्राय पातये अर्प [ १८० ]- यह तू भेड़के बालोंकी बनी हुई छलनीसे इन्द्रके पीनेके लिए छतता था ।

५ सुतः देवेभ्यः मधुमत्तरः पवित्रे धारया पयश्च [ १०१६ ]- रस निकाले जानेके बाद देवोंको देनेके लिए अधिक मोठा होकर धार बनाकर छलनीसे छतता था ।

६ अ-द्रुहः धीतयः हरिं स्यां पवित्रे रिहन्ति [ १०१७ ]- डोह न करनेवाली अंगुलियाँ हरे रंगके तुम सोमरसो छलनी पर रखकर बबती हो ।

७ अद्रिधुग्धः रोमं तिरः पयने [ १०२० ]- पथरोंसे रस निकालनेके बाद वे सोमरस बालोंकी छलनीसे छाने जाते हैं ।

८ देवः स्वैन रसेन देवान् पृश्नन् सा नो अये  
वदयत [ १०२१ ]- विष्य सोम अपने रसते देवोंकी सन्तोष  
देते हुए ऊँचे स्थान पर रत्ने हुए भँडके बालोंकी छसनीसे  
छाना जाता है ।

इसप्रकार सोमरसकी निकासकर उठे पानीमें मिलाकर  
पेटकी बालोंकी छसनीसे यह छाना जाता है, बादमें यह  
गायके रूपमें मिलाया जाता है ।

### सोमरसका गायके दूधमें मिलाया

१ देवघातं शुभ्रं बन्धः सुभिः सुतं, अप्नु धीतं,  
गावः पयोभिः स्वद्यन्ति [ १००९ ]- देवोंको देनेके लिए  
स्वच्छ सुन्दर अन्न ऋत्विजों द्वारा तैयार किए गए हैं, इस  
प्रकार तैयार किए गए तथा पानीमें मिलाये गए उन सोम-  
रसोंको गायें अपने दूधसे स्वादिष्ट बनाती हैं ।

२ धीणानः अप्नु घृज्यते [ १६१ ]- सोमरस गायके  
दूधमें और पानीमें मिलाया जाता है ।

३ सोमः अनूये योभिः अक्षाः [ ११८ ]- सोमरस  
कलत्रमें गायके दूधके साथ टपकता है ।

४ सोमः दुग्धाभिः अक्षाः [ ११८ ]- सोमरस दूधके  
मिलाने जाने पर टपकता है ।

इसप्रकार सोमरसमें गायका दूध मिलातेसे यह स्वादिष्ट  
बनता है, ऐगे वर्णन अनेक मंत्रोंमें आए हैं ।

### सोमका घन देना

१ हे सोम ! न. विश्वा सोमगा, पुष्टं यथं परिस्त्रय  
[ १७५ ]- हे सोम ! हमें सब सोमाय और पुष्टिकारक  
अन्न दे ।

२ हे सोम ! चित्रं उपचर्य दिव्यं पार्थिवे वसुः नः  
आ भर [ ११९ ]- हे सोम ! बिलसण, प्रसन्ननीय, दिव्य  
और पार्थिव घन हमें भरपूर दे ।

### दीर्घजीवन प्राप्त होना

१ हे सोम ! भुवनेषु जीवसे स्वाम [ १५६ ]- हे  
सोम ! इस भुवनमें हम दीर्घजीवन प्राप्त कर सके, ऐसा कर ।

### सोमका अन्न देना

१ सः गोमन्ते सहस्त्रिंशं धांजे आ इन्वति [ १६९ ]-  
यह सोम हमें गायते युक्त अनेक प्रकारके अन्न देता है ।

२ नः विश्वानि अयः दिदः [ १७० ]- हर्षे सब  
प्रकारके अन्न दे ।

१६ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

३ हे सोम ! स्तोत्रभ्यः गृहद् यदाः भुवं रथिं हर्षे  
आ भर [ १७१ ]- हे सोम स्तुति करनेवालोंको महान् पान,  
स्मिद घन और अन्न भरपूर दे ।

४ अस्माकं तोकाम्य हर्षं दधत् [ १९६ ]- हमारे वृत्र-  
घोत्रोंको अन्न दे ।

५ हे इषस्पते देव ! द्युम्नं गृहत् यदाः देवयुं अग्नि  
विदीहि [ १०११ ]- हे धनपते सोमदेव ! तेजसे घृत  
बिगुल अन्न, जो देवोंको दिया जाता है, हमें भी दे ।

इसप्रकार सोम भरपूर अन्न देता है ।

### सोमका शत्रुओंको दूर करना

१ साहान् विश्वाः स्पृशः [ १६८ ]- सब तर्षा करने-  
वाले शत्रुओंको हरानेवाला सोम है ।

२ सहस्रजित्, यः जिनाति, न जीयते, शत्रुं अभीत्य  
हन्ति [ १७८ ]- हजारों शत्रुओंको सोम पीतता है, पर कभी  
स्वयं पराजित नहीं होता। शत्रु पर आक्रमण करने उन्हें  
जागते मारता है ।

३ वृजनस्य राजा धरियः क्षण्यन्, रक्षः हन्ति,  
अरार्ति परि घाचते [ १०१९ ]- यह सोम बलका राजा  
है, यह उपासकोंको घन देता है, राक्षसोंको मारता है, और  
शत्रुओंको दूर करता है ।

इसप्रकार इस जगत्प्रधाने इन देवोंके गुणोंका वर्णन है ।  
प्रत्येक व्यक्ति इन गुणोंसे युक्त हो, यह आवश्यक है ।

## सुभाषित

१ गोविन् घसुवित् हिरण्यवित् रेतोधाः भुवनेषु  
सर्पितः [ १५५ ]- गाय, घन, सोना और पत्राक्रमको  
अपने पाल रखनेवाला वृ भुवनोंका कल्याण करनेके लिए  
समर्पित हुआ है ।

२ हे सोम ! सुवीर विश्वावित् असि [ १५५ ]- हे  
सोम ! तू उत्तम वीर और सर्वश्रेष्ठ है ।

३ हे वृषभः ! विश्वतः नृबक्षताः असि [ १५६ ]-  
हे बलवर्धक सोम ! तू सब प्रकारसे मनुष्योंका निरोधण  
करनेवाला है ।

४ साः विधावासि [ १५६ ]- उन प्रजाओंके पास तू  
जाता है ।

५ मधुमत्तु दिग्दण्डपद्मं भुयनेषु जीवते श्याम  
[ १५६ ]- मधु और गोमंते दुग्ध होकर भुयनेषु हीमंजीवन  
प्राप्त करतावाले हूय होते ।

६ ईदनातः हतिनाः सुगन्धः वृजानः इमा भुयनानि  
ईदमे [ १५७ ]- मू (सामो) मन्ते इयमे उत्तम बलनीवाले  
घोडे शोडकर इय भुयनेषु मिलता है ।

७ ते मधुमत्तु पुनः पयः शरत्तु [ १५७ ]- वे तेरे  
निम्न पी और हूय देखे ।

८ वृष्टयः ते मते तिष्ठन्तु [ १५७ ]- मत्स्य तेरे  
विषयमें रहें ।

९ केतुं वृष्टयन् विचः परि मध्यपरिग [ १५९ ]-  
प्रकाश करते हुए मू घुकीर पर जाता है ।

१० देवः सूर्यः न जगानः प्रन्दन् पाशं इष्यमि  
[ १६० ]- सूर्यदेवके तमाल प्रदत्त होकर ताम्र करते हुए  
तुलितो प्राप्त होता है ।

११ गुमादः सर्पणी-पुत्रिः अनुगायः [ १६१ ]-  
मनुष्योंको मानव केवलता और मनुष्योंको पारण करनेवाला  
प्रसंगके योग्य है ।

१२ अद्भुतः गुचिः पायकः वृत्रहन्तमः अनुगायः  
[ १६१ ]- अद्भुत, गुच्छ और पवित्र करनेवाला तथा मनुष्य  
नाश करनेवाला और प्रसंगके योग्य होता है ।

१३ गुचिः पायकः देवायीः अघतोमहा [ १६७ ]-  
विशेष, पवित्र और देवोंके प्राप्त करनेवाला और पत्नी  
दुर्लभा नामा करता है ।

१४ पयिः देवर्षिणये विभवाः स्फुषः साहाय [ १६८ ]-  
जानी केवल प्राप्त करनेके निम्न सब स्वर्षा करनेवाले  
मनुष्योंको हटाता है ।

१५ सः पयमानः जरिदुष्यः गोमन्तं सहाद्विष्यं  
पात्रं आ इन्वति [ १६९ ]- वह सोम (गोताम्रोंको) मापके  
उत्तम होनेवाले हतारों प्रकारके पत्र देता है ।

१६ सः नः चेतसा विभ्यानि अय विदुः [ १७० ]  
-यह मू हमें बुद्धिपूर्वक करने प्रकारके पत्र व अन्न दे ।

१७ स्तोत्रम्यः वृहद् यथाः भुय रयिं अन्वयं, इयं  
आभर [ १७१ ]- स्तुति करनेवालोंके महान् पत्र, त्विषर  
पत्र और नरपूत अन्न दे ।

१८ सुयमः पुतातनः राजा इचगिठ आधिपेनिध  
[ १७२ ]- उत्तम नियमके बलानेवाले राजाके तमाल  
हमारी स्तुति गुण ।

१९ मंदयुः कपोले सूर्यसिं दृगम् [ १७६ ]- दण्ड  
केनेवाला मू सूर्यसिं करनेवाले को उत्तम पत्र दे ।

२० सः सूर्यसिं दृगम् विभवा गीमगा मय परि-  
दृगम् [ १७६ ]- सूर्यसिं करनेवाला मन्त्र और मय उत्तम  
पत्र दे ।

२१ न भोविन् अन्वयिन् अन्वयता पयम् [ १७७ ]  
-हमें मय घोडे और मन्त्र दे ।

२२ हे महर्षिजन्तु ! यः जिनाति, न जीवते, सार्धं  
अर्थाय हति [ १७८ ]- हे हजारों मनुष्योंके जीवने-  
वाले घोडे ! जो जीवता है, पर स्वयं जो ! नहीं जाता तथा  
जो मनुष्योंको घेरकर पारता है, यह घोडे है ।

२३ परिपोविन् पूत पयः परिदृगम् [ १८१ ]- मू  
पत्र केनेवाला घोडे और हूय सूर्य दे ।

२४ अन्नरम्य परातः ते दास्यमि, वयम् यथा,  
पृथक् आयतने [ १८२ ]- अन्वयिन् अर्थाय तत्पत्र और  
मनुष्योंके जगानेके तेरे काममें स्वकीशोरेके तमाल पुष्प,  
पुष्प करने हुए तिलाने देते हूँ ।

२५ मेधावारे सिद्धयन् प्रभाचमं परिभूतं अग्निं  
धर्मि [ १८५ ]- बुद्धिके बलानेवाला, मन्त्रका ज्ञान, मनुष्यों  
हटानेवाला, बुद्धिमान्, अग्निके तमाल तेजस्वी ऐग जो होता  
है उत्तरी प्रसंगा को जानी है ।

२६ पां पुत्रगणा भयः नूनं भस्ति [ १८५ ]- तुमको  
अनेक प्रकारके संतान प्राप्त होने है ।

२७ पां सुमतिं वीरि [ १८५ ]- तुम्हारी उत्तम बुद्धि  
हमारे अनुकूल हो ।

२८ अ-दृष्टाणा सम्बन्धमिद्रा धर्यं श्याम, इयं धाम  
व अद्रवाम [ १८६ ]- कोह न करनेवाले तुम्हारे हम उत्तम  
नित्र हों तथा अन्न और धरनेके प्राप्त करें ।

२९ हे मित्रा ! पायुमिः नः पार्तः सुप्रामा प्रायेधा,  
तनूमिः दस्यून् साहाय [ १८७ ]- हे मित्रो ! तुम  
संरक्षणके शायनेती हमारी रक्षा करो, उत्तम रक्षण करने-  
वाले हूय हमारा पालन करो, उमोप्रकार भावने शारीरिक  
तामस्योमि मनुष्य परामत्र हम पर करो, ऐसा करो ।

३० हे इन्द्र ! सोमं पीयाया ओजसा सह उत्तिष्ठन्  
[ १८८ ]- हे इन्द्र ! शोम पीकर अपने तामस्योमि उठ  
करा हो ।

३१ हे वर्धमान इन्द्र ! यद् इच्छुहा भयः त्वा

उभे रोदसी अनुमदेताम् [ १८९ ]- हे स्वर्षा करनेवाले इन्द्र ! जब तू दुष्टोंको मारनेवाला होता है, तब दोनों छुलोक और पृथ्वीलोक आतन्वसे तेरे अनुकूल होते हैं ।

३२ अष्टापर्दी नव-सार्किकं कृतासुधं तन्व्यं वाच अहं परिममे [ १९० ]- आठ पद सुषन, नयी कल्पनाओंके सुषन तथा सप्तको घटानेवाली छोटी छोटी वाषिष्ठीको मैं धोऊता हूँ ।

३३ इन्द्राग्नी शं युवा [ १९१ ]- इन्द्र और अग्नि कल्याण करनेवाले हैं ।

३४ अस्माकं तोषाय इधं दधत्, महस्त्रिणं अम्मम्यं विभ्यतः आ पयस्व [ १९६ ]- हमारे लड़कोंके लिए अन्न दे और हजारों प्रकारके घन चारेसे ओरसे हमें दे ।

३५ यत् चित्रं उन्ध्यं दिव्यं पार्थिवं वसुः पुनातः आ भर [ १९९ ]- जो बिलस्य, प्रगतनीम, दिव्य और पार्थिव घन हैं, उन पनोंको शुद्ध होकर तूम दे ।

३६ जार्युषि पुनातः स्तनयन्, हरिः सन् अधि यर्हिषि, योनिं आ सवः [ १००० ]- अपना जीवन पवित्र करते हुए, बलवान् होकर भाष्य करते हुए, लोकोके दुष्ट दूर करते हुए अपने स्थान पर आकर आसन पर बैठ ।

३७ पुवं सवत्यै ईशाना गोपती धियं पिप्यते [ १००१ ]- उत्तम स्वामी, ऐश्वर्यके अधिकारी, मायके पालन करनेवाले तुम युद्धियोंको पुष्ट करो ।

३८ त महत्सु आजिषु, अमै ऊति हवामहे, सः वाजेषु नः प्राचिषात् [ १००२ ]- उसे महान् सप्राप्तियोंमें उसी प्रकार छोटे मुहोंमें अपने सरलसके लिए बुलाते हैं । वह युद्धमें हमारा सहाय करे ।

३९ हे वीर ! मेभ्यः असि, मूरि पराददि असि [ १००३ ]- हे वीर ! तेजनासे युक्त है, शत्रुके बहुतसे धनको हरण करनेवाला है ।

४० दध्रस्य चित् वृषः [ १००३ ]- छोटोंको वृषा करनेवाला है ।

४१ सुग्ने येजमानाय शिश्सि [ १००३ ]- सोम पत्र करनेवालेको वृष पत्र देता है ।

४२ ते मूरि वसु [ १००३ ]- तेरे शत बहुत घन है ।

४३ यत् आजायः उदीर्यते, घृष्णये घना धीवते [ १००४ ]- जब युद्ध होते हैं तब विजयी सौरीको घन मिलता है ।

४४ मदक्युता हरी युंक्ष्व [ १००४ ]- मद घुमानेवाले पीठे रखमें जोड़ ।

४५ कं हनः, कं चसौ द्यः [ १००४ ]- किसको मारना है शीर किसको धनोंमें स्थापित करना है, इसका विचार बर ।

४६ अस्मान् वसो द्यः [ १००४ ]- हमें धनमें स्थापित कर ।

४७ अस्व पुरुषि मयानि सश्चिरे [ १००७ ]- इसके बहुतसे काम स्मरणमें आते हैं ।

४८ हे इपस्वते देव ! युञ्जं वृहद् यथा, देवसुं अग्नि दिदीहि [ १०११ ]- हे अघस्पते देव ! तेजस्वी महान् यथा अथवा अग्न, जिसको देवगण इच्छा करते हैं, हमें दे ।

४९ वृजन्स्य राजा वरिषः रुष्णन्, रक्षः ह्मिन्, यार्पति परि यापते [ १०१८ ]- बलवान् राजा घन देता है, राक्षसीको मारता है और शत्रुओंको कष्ट देता है ।

५० युमन्तं अजरं आ इधीमहि [ १०२२ ]- तेजस्वी और जरारहित ऐसे युने हम अधिक प्रदीप्त करते हैं ।

५१ रतोह्वयः इप आ भर [ १०२२ ]- स्तुति करनेवालोंको भरपूर अन्न दे ।

५२ सुदचन्द्र, दस, विदपते, ज्योतिस्पपते, हृद्य-वाद् अग्ने ! इषं आ भर [ १०२३ ]- उत्तम आत्न्य देनेवाले, शत्रुको मारनेवाले, प्रजापालक, तेजस्वी, हृदिको यथास्थान पढ़वानेवाले अग्ने ! हमें भरपूर अन्न दे ।

५३ त्वं विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि [ १०२३ ]- तू सब कर्मोंको करनेवाला, सबका देव और महान् है ।

५४ ज्योतिषः रोचनं रुचः विभ्राजन् आगच्छ [ ११२७ ]- तू तेजस्वी सूर्यका प्रकाशक और छुलोकको प्रकाशित करनेवाला है, ऐसा तू यहाँ आ ।

५५ शचिष्ठ घृष्णोः ! आ गाह [ १०२८ ]- हे बलवान् और शत्रुको हरानेवाले वीर ! तू यहाँ आ ।

५६ त्वं अग्निभूः असि [ १०२६ ]- तू शत्रुको हरानेवाला है ।

५७ अप्रतिघृष्ट-शयसं इन्द्रं क्षपीणां मानुषाणां यदां हवी उप चहतः [ १०३० ]- जवरान्नित घोर इन्द्रको श्रुति और मनुष्योंके यज्ञमें पीठे रखनें देनाकर लाते हैं ।

## उपमा

इत अध्यायमें जो उपमाएँ हैं, उन्हें अब देखिए—

१ सूर्यरप रदभय- इव [ १५८ ]- सूर्यको बिरलोकें समान ( ते सर्गाः प्रास्वस्त ) लोभको पारसमें फैली है ।



२ देवः सूर्यः न [ १६० ]- दिव्य सूर्यके समान दू सोम ( विधर्मणि जघानः ) वक्ष्यते प्रकट होता है ।

३ आपः न [ १६२ ]- पानीके प्रवाहके समान ( इन्द्र्यः अभि अधन्विषुः ) सोमरस छलनीसे छनते है ।

४ सुव्रतः पुरातनः राजा इव [ १६२ ]- उत्तम नियमके पालन करनेवाले पुराने राजाके समान ( सोम ! गिरः आधिवेशिष्य ) हे सोम ! तू स्तुतिको स्वीकार कर ।

५ मखः न [ १७४ ]- घनके समान ( भ्रंहयुः ) दान देनेकी इच्छा करता है ।

६ वर्षस्य विद्युतः इव [ १८२ ]- वर्षाकालमें बिजलीके समान ( तव श्रियः चिकिषे ) तेरी किरणें चमकती है ।

७ उपसां ऊतयः इव [ १८२ ]- उब कालकी किरणोंके समान तेरी किरणें चमकती है ।

८ रथ्यः यथा [ १८३ ]- रथी वीरके समान ( ते शार्धंसि पृथक् आयतन्ते ) तेरे सामर्थ्य बढते है ।

९ अश्वया इव [ १९० ]- घोड़ेके समान ( हारिता धारया याति ) हरे रथकी धाराले भोग जाता है ।

१० समुद्रं न [ १९८ ]- समुद्रमें जैसे जलप्रवाह जाकर मिल जाते हैं, उसीप्रकार ( संबरणाभि अग्मन् ) सोमरस-हृषी उत्तरप्रवाह कलशमें जाते है ।

११ इयेनः न [ १००८ ]- वाज जिसप्रकार अपने घोसलेमें आता है, उसीप्रकार यह सोम ( योनि आसद्द् ) अपने कलशमें आता है ।

१२ अश्वं न [ १०१० ]- जैसे संग्राममें जनेवाले घोड़ेकी सजाते है, उसी प्रकार ( मघोः रत्नं सधमादे अशुशुभन् ) भीठे सोमरसको घतमें सुशोभित करते है, रूप आदि मिलाकर अच्छा बनाते है ।

१३ घडिः न [ १०१२ ]- सब प्रजाओंका पालक जैसे तेजस्वी राजा होता है, उसीप्रकार हे सोम तू ! ( विश्वपतिः आ वच्यस्य ) प्रजाका पालक बनकर कलशमें जाता है ।

१४ गावः जातं वरत्नं न [ १०१७ ]- गाय जिस प्रकार-नये उत्पन्न हुए बछड़ेको घाटवी है, उसीप्रकार ( धीतयः हर्ति रिहन्ति ) अंगुलियां हरे रंगके सोमको ढबाती है, ढबाकर रस निकालती है ।

१५ सूर्यः रदिमभिः रजः न [ १०२८ ]- सूर्य जिस-प्रकार किरणोंसे अनरिषको भर देता है, उसी प्रकार ( त्या इन्द्रियं आ पृणस्य ) तुझे सोमपानसे महती इन्द्रियशक्ति भर देती है ।

इसप्रकार इस अध्यायमें उपमायें है ।

## षष्ठाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

संस्कृतख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
१५५	१।८६।३९	[ अकृष्टा मायावयः ] ऋषः ऋषयः	पवमानः सोम.	जगती
१५६	१।८६।३८	[ अकृष्टा मायावयः ] ऋषः ऋषयः	"	"
१५७	१।८६।३७	[ अकृष्टा मायावयः ] ऋषः ऋषयः	"	"
१५८	१।६४।७	काश्यपो मारीच.	"	गायत्री
१५९	१।६४।८	काश्यपो मारीच.	"	"
१६०	१।६४।९	काश्यपो मारीचः	"	"
१६१	१।६४।१०	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
१६२	१।६४।११	असित. काश्यपो देवलो वा	"	"
१६३	१।६४।१२	असित. काश्यपो देवलो वा	"	"
१६४	१।६४।१३	असित. काश्यपो देवलो वा	"	"

( १ )

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋग्निः	देवता	छात्रः
९६५	९।१४।४	असितः काश्यपो देवलो वा	पशुमानः सोमः	शापत्री
९६६	९।१४।६	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९६७	९।१४।७	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
( २ )				
१६८	९।१०।१	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९६९	९।१०।१	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९७०	९।१०।२	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९७१	९।१०।४	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९७२	९।१०।५	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९७३	९।१०।६	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९७४	९।१०।७	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९७५	९।५५।१	अवत्सारः काश्यपः	"	"
९७६	९।५५।१	अवत्सारः काश्यपः	"	"
९७७	९।५५।३	अवत्सारः काश्यपः	"	"
९७८	९।५५।४	अवत्सारः काश्यपः	"	"
९७९	९।६२।७	अमदग्निर्भागवः	"	"
९८०	९।६२।८	अमदग्निर्भागवः	"	"
९८१	९।६२।९	अमदग्निर्भागवः	"	"
( ३ )				
९८२	१०।३१।५	अरुणो वंत्तहृष्यः	अग्निः	वापती
९८३	१०।३१।७	अरुणो वंत्तहृष्यः	"	"
९८४	१०।३१।८	अरुणो वंत्तहृष्यः	मित्रावरुणी	शापत्री
९८५	५।७०।१	उरुचकिरात्रेयः	"	"
९८६	५।७०।१	उरुचकिरात्रेयः	"	"
९८७	५।७०।३	उरुचकिरात्रेयः	"	"
९८८	८।७६।१०	कुरुमुतिः काश्वः	इन्द्र	"
९८९	८।७६।११	कुरुमुतिः काश्वः	"	"
९९०	८।७६।१२	कुरुमुतिः काश्वः	"	"
९९१	६।६०।७	भरद्वाजो बाहुँस्पत्यः	इन्द्राग्नौ	"
९९२	६।६०।८	भरद्वाजो बाहुँस्पत्यः	"	"
९९३	६।६०।९	भरद्वाजो बाहुँस्पत्यः	"	"
( ४ )				
९९४	९।६५।१९	भृगुर्वाहग्निर्जमदग्निर्भागवो वा	पशुमानः सोम	"
९९५	९।६५।१०	भृगुर्वाहग्निर्जमदग्निर्भागवो वा	"	"
९९६	९।६५।११	भृगुर्वाहग्निर्जमदग्निर्भागवो वा	"	"
९९७	९।१०७।८	मत्तय्यः	"	मृहती

मंत्रसंख्या	श्रव्यैवस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
११८	१।१०७।१	सप्तर्षयः	पथमानः सोमः	बृहती
११९	१।११।१	अतितः काश्यपो देवलो वा	"	गायत्री
१०००	१।११।३	अतितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१००१	१।११।५	अतितः काश्यपो देवलो वा ( ५ )	"	"
१००२	१।८१।१	गोतमो राहृगणः	इन्द्राः	पंक्तिः
१००३	१।८१।५	गोतमो राहृगणः	"	"
१००४	१।८१।३	गोतमो राहृगणः	"	"
१००५	१।८१।१०	गोतमो राहृगणः	"	"
१००६	१।८१।११	गोतमो राहृगणः	"	"
१००७	१।८१।१२	गोतमो राहृगणः ( ६ )	"	"
१००८	१।६२।४	जमदग्निभर्गवः	पथमानः सोमः	गायत्री
१००९	१।६२।५	जमदग्निभर्गवः	"	"
१०१०	१।६२।६	जमदग्निभर्गवः	"	"
१०११	१।१०८।९	उष्वंसदा आगिरसः	"	काङ्क्षुमः प्रागायः ( विषभा कङ्क्षु, समा ततो बृहती )
१०१२	१।१०८।१०	कृतयशा आगिरसः	"	"
१०१३	१।१०९।१	त्रित आपद्यः	"	उत्थिक्
१०१४	१।१०९।२	त्रित आपद्यः	"	"
१०१५	१।१०९।३	त्रित आपद्यः	"	"
१०१६	१।१००।६	रेमसूनु काश्यपो	"	अनुष्टुप्
१०१७	१।१००।७	रेमसूनु काश्यपो	"	"
१०१८	१।१००।९	रेमसूनु काश्यपो	"	"
१०१९	१।१००।१०	मन्युर्वासिष्ठः	"	त्रिष्टुप्
१०२०	१।१००।११	मन्युर्वासिष्ठः	"	"
१०२१	१।१००।१२	मन्युर्वासिष्ठः ( ७ )	"	"
१०२२	५।६।४	वसुधुत आत्रेयः	भानिः	पंक्तिः
१०२३	५।६।५	वसुधुत आत्रेयः	"	"
१०२४	५।६।९	वसुधुत आत्रेयः	"	"
१०२५	८।१८।१	नुमेय आगिरसः	इन्द्रः	उत्थिक्
१०२६	८।१८।२	नुमेय आगिरसः	"	"
१०२७	८।१८।३	नुमेय आगिरसः	"	"
१०२८	१।८१।१	गोतमो राहृगणः	"	"
१०२९	१।८१।३	गोतमो राहृगणः	"	"
१०३०	१।८१।५	गोतमो राहृगणः	"	"



## अथ सप्तमोऽध्यायः ।



अथ चतुर्थमपाठके प्रथमोऽधः ॥ ४ ॥

[ १ ]

( १-२४ ) १ ( अष्टव्यस्याराधयः ) ऋषयः, २, ११ कश्यपो मारीचः; ३ मेवातिभिः काण्वः; ४ हिरण्यस्तुप आगिरसः;  
 ५ अथनारः काण्वयः; ६ जमदग्निर्भर्गवः; ७, २१ कुत आगिरसः; ८ वसिष्ठो मेधावहनि. ९ त्रिशोकः काण्वः;  
 १० अथानाव आश्विनः; १२ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूयः,  
 ४ अत्रिर्भर्गः, ५ विश्वामित्रो शापिनः, ६ जमदग्निर्भर्गवः, ७ वसिष्ठो मेधावहनिः ), १३ अथहीमृतागिरसः;  
 १४ मुनःश्रेण आनीगतिः; १५ अथुच्छन्दा वेन्वामित्रः; १६ ( १, ३, २-पूर्वार्धः ) माग्याता योवनायवः,  
 १६ ( २ उत्तरार्धः ) गोषा ऋषिका; १७ अश्विनः काण्वयो देवलो वा; १८ ( १ ) ऋणचयो राजभिः,  
 १८ ( २ ) अश्विनोऽश्विनः; १९ पर्वेननारदो काण्वो; २० मनुः सावरण, २२ अथुः सुहृन्धु.  
 अथुवधुविप्रवधुन्धु ऋषेण गोपापना लीपापना वा; २३ अथुवधुवः साधनो वा भीवनः ॥  
 १-६, ११-१३, १७-२१ पवमानः सोमः; ७, २२ अग्निः, ८ आदित्यः, ९, १४-१६  
 इन्द्रः; १० इन्द्राग्नी; २३ विश्वे देवाः, २४ ॥ १, ७ जपती; २-६, ८-११, १३-१५,  
 १७ मायमी; १२ प्रयायः - विपना बृहती, तामा सतीबृहती ); १६ महापथितः;  
 १८ ( १ ) अथनार्या वायवो, १८ ( २ ) सती बृहती; १९ उल्लिखः; २०  
 अनुवधुः २१ मिथुनः; २२ द्विपदा विराट्; २३ द्विपदा मिथुनः, २४ ॥

१०३१ ज्योतिर्यज्ञस्य पयते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।

दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रमः ॥ १ ॥ ( ऋ २।८६।१० )

१०३२ अमिक्रन्दन्कलशं धाज्यपति पतिर्दिवः शतघारो विचक्षुणः ।

हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मूर्धजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ २ ॥ ( ऋ २।८६।११ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १०३१ ] ( यज्ञस्य ज्योतिः ) यज्ञका प्रकाश करनेवाला सोम ( देवानां प्रियं मधु पयते ) देवोंको प्रिय लगने-  
 वाले मोठे रसको देता है। यह ( पिता ) पालन करनेवाला ( जनिता ) उत्पादक ( विभू-वसुः ) बहुत सारा धन अपने  
 पास रखनेवाला ( मदिन्तमः ) अत्यन्त आनन्द बढ़ानेवाला ( मत्सरः ) जलसा बढ़ानेवाला ( इन्द्रियोः ) इन्द्रको प्रिय  
 लगनेवाला ( रमः ) मोहकर ( स्वधयोः ) धावानुभिर्बीजं ( व्यपीच्यं रत्नं दधाति ) छिदे हुए धन यजमानको  
 देता है ॥ १ ॥

[ १०३२ ] ( द्विचः पतिः ) धूलोकका स्वामी ( शतघारः ) संकरों पारामेति छाया जानेवाला ( विचक्षुणः  
 घाजी ) बुद्धिमान् जोर धक्यान् ( हरिः ) हरे रंगका सोमरस ( अमिक्रन्दन् कलशं धार्यति ) सम्य करता हुआ कलशमें  
 जाता है । ( सिन्धुभिः ) जलोति विभिन्त शोकर ( अविभिः मूर्धजानः ) धारोंकी धनी छतनीते शुद्ध होता हुआ यह  
 ( वृषा ) बलवान् सोम ( मित्रस्य सदनेषु सीदति ) मित्रके यज्ञके पासमें जाकर रहता है ॥ २ ॥

१०३३ अग्ने मिन्धूनां पवमानो अपेस्यग्ने वाचां अग्निषो गोषु गच्छसि ।

अग्ने वाजस्य भजसे महद्हनः स्वायुषः सातुभिः सोम सूयसे ॥ ३ ॥ १ ( लु ) ॥

[ धा० २९ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. १८६।१२ )

१०३४ अमुक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमातो अश्या । शुक्रासां वीरयाशः ॥ १ ॥ ( ऋ. १६४।४ )

१०३५ शुम्पमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्तयोः । पन्ने वीरे अवपे ॥ २ ॥ ( ऋ. १६४।९ )

१०३६ ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ३ ॥ २ ( वी ) ॥

[ धा० २० । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १६४।६ )

१०३७ पवस्व देववीरति पवित्रसोम रक्ष्वा । इन्द्रमिन्द्रो नृपा विश्व ॥ १ ॥ ( ऋ. १७।१ )

१०३८ आ वचपस्व महि रसो वृपेन्दो दुन्नवचमः । आ योनिं घर्णासिः सद् ॥ २ ॥ ( ऋ. १९।२ )

१०३९ अधुक्षत मियं मधु धारा सुतस्य वेषसः । अपो वसिष्ठ मुकतुः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १९।२ )

[ १०३३ ] हे सोम ! तू ( सिन्धूनां अग्ने ) जल मिलानेके पहले ( पवमानः अपेसि ) दृढ़ होनेके लिए जाता है । ( वाचाः अग्ने गच्छसि ) स्तुतिके लिए प्रणम होकर जाता है । ( गोषु अग्निषः गच्छसि ) गावोंके आगे आगे चलता है । ( वाजस्य स्वायुषः ) बलके लिए उत्तम शस्त्रोंसे युक्त होकर ( महत् धनं भजसे ) बड़े-बड़े धन प्राप्त करता है । ( सोम सोतुभिः सूयसे ) हे सोम ! तू श्चत्विर्वीं द्वारा निवेशा जाता है ॥ ३ ॥

[ १०३४ ] ( वाजिनः ) बलवान्, ( शुक्रासः आशय सोमासः ) तेजस्यो और गतिमान् सोम ( गव्या, अश्वया, वीरया ) गाव, घोड़े और पुत्र यजमानको प्राप्त हैं इसलिए ( प्र अमुक्षत ) अपना रस छोड़ते हैं ॥ २ ॥

[ १०३५ ] ( ऋतायुभिः ) यत्न करनेवाले श्चत्विर्वीं द्वारा ( शुम्पमानाः ) मुसोभित हुए और ( गभस्तयोः ) मृज्यमाना ) हाथोंसे दृढ़ किए जानेवाले सोमरस ( अश्वये वीरे ) भेड़के बालोंको छलनीते ( पवन्ते ) दृढ़ किने जाते हैं ॥ २ ॥

[ १०३६ ] ( ते सोमा ) वे सोमरस ( दाशुषे ) दान देनेवाले यजमानको ( दिव्यानि आन्तरिक्ष्या पार्थिवा ) दुर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वीपरके ( विश्वा वसु ) सब पर ( आ पवन्तां ) देवें ॥ ३ ॥

[ १०३७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( देवयोः ) देवोंको प्राप्त होनेको इच्छा करनेवाला तू ( रक्ष्वा पवित्रं अति पवस्य ) वेगपूर्वक छलनीते छनता जा । हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( नृपा ) बल बढ़ानेवाला तू ( इन्द्रं मिन्द्रा ) इन्द्रमें प्रविष्ट हो ॥ १ ॥

[ १०३८ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( नृपा दुन्नवचमः ) धर्मरहित ( बलवान् तेजसो और तबका धारण करनेवाला तू ( महि वसवः ) बहुत अन्न और जल ( आ वचपस्य ) हमें दे और ( योनिं आ सद् ) अपने स्थान पर बैठ ॥ २ ॥

[ १०३९ ] ( सुतस्य वेषसः ) धारा ) रस निकोके गए सोमको धारा ( मियं मधु अधुक्षत ) मधुके समनेवाले घोड़े रसको बननेमें इच्छा करनी है । ( वसु-अनुः ) उत्तम यत्न करनेवाला सोम ( अपः वसिष्ठ ) जलमें मिलाना जाता है ॥ ३ ॥

- १०४० महान्तं त्वा मदीरन्वापां अर्पन्ति सिन्धवः । यद्भोभिर्वासिष्यसे ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।२।४ )
- १०४१ समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो चरुणो दिवः । सोमः पवित्रे असम्युः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।२।५ )
- १०४२ अचिक्रददृषा हरिमेहाग्निषो न दशतः । सख्यैर्जेण दिद्युते ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।२।६ )
- १०४३ गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्पुवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।२।७ )
- १०४४ ते त्वा मदाय धृष्वथ उ लोककृत्सुमीमहे । तव प्रशस्तये महे ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।२।८ )
- १०४५ गोषा इन्दो नृषा अस्यधसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।२।९ )
- १०४६ अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मघोः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाश्व ॥ १० ॥ ३ ( ऋ. १।२।१० )

[ धा० ११ । उ० १ । स्व० ८ ] ( ऋ. १।२।९ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

- १०४७ सना च सोम जेपि च पवमान माह श्रवः । अथा नो वस्यसस्तुधि ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३।१ )

[ १०४० ] हे सोम ! ( यत् सोमिः वासिष्यसे ) जब तू मावके हुयमें विलाप्य जाता है, तब ( महान्तं त्वा ) बहुरूपसे युक्त तुममें ( सिन्धव्य मही अपः ) नदीका बहुलता पानी भी ( अनु अर्पति ) भिन्नप्राय जाता है ॥ ४ ॥

[ १०४१ ] ( समुद्रः ) जलमय ( दिवः विष्टम्भः ) धूलोकको धारण करनेवाला और ( चरुणः ) आधार देनेवाला और ( असम्युः सोमः ) हमें चाहनेवाला सोम ( पवित्रे अप्सु मामृजे ) धरतकके पानीमें बारबार घोषा जाता है ॥ ५ ॥

[ १०४२ ] ( वृषा महान् हरिः ) बलवर्धक, महान् और हरे रङ्गा तथा ( मित्रः न दशतः ) मित्रके तपान वर्तनीय सोम ( अचिक्रदृष ) शय्य करता है और ( सख्यैर्जेण दिद्युते ) सुयके सभाम धमकता है ॥ ६ ॥

[ १०४३ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( ते ओजसा ) तेरे सामर्थ्यमें ( अपस्पुवः गिरः ) कर्मकी इच्छा करनेवाले स्रोता, प्रकृतिके मन्त्र, ( मर्मृज्यन्ते ) कहते हैं और ( याभिः मदाय शुम्भसे ) इन स्तुतियोंमें आनन्द भवानेके लिए तू बलवृत्त किया जाता है ॥ ७ ॥

[ १०४४ ] हे सोम ! ( तव महे प्रदास्तये ) तेरी महान स्तुतिके लिए ( लोककृत्सु त्वा ) लोकोत्पन्न हित करनेकी इच्छावाले तुझे ( धृष्वथ मदाय ) सद्गुण प्राप्त करनेके लिए और आनन्द भवानेके लिए ( महे ) हृय प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

[ १०४५ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( यज्ञस्य पूर्व्यः आत्मा ) यज्ञकी मुख्य आत्मा तू ( गोषा नृषा ) गाय देनेवाला, पुत्र देनेवाला तथा ( अस्यधस्त उत वाजसा ) घोड़े और मत्त देनेवाला ( अस्ति ) है ॥ ९ ॥

[ १०४६ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( वृष्टिमाश् पर्जन्य इय ) वर्षा करनेवाले वेदके तपान ( असभ्यं ) हमकी ( इन्द्रियं ) बलवर्धक सामर्थ्य ( मघोः धारया पवस्य ) मघूर रसकी धारते दे ॥ १० ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १०४७ ] ( माहिशयः पवमान सोम ) हे बहुत प्रशंसनीय गुण होनेवाले सोम ! तू ( सन ) बेधोले प्राप्त हो तथा ( जेपि ) तू अनुभवी भीत ( मघः ) शब्दमें ( नः धस्यसः कृधि ) हमें यज्ञकी कर ॥ १ ॥

१७ [ साम. द्वितीया धा २ ]

- १०४८ सना ज्योतिः सना स्वश्विथा च सोम तौभवा । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।४।२ )
- १०४९ सना दक्षक्षत क्रतुमप सोम मुधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥ ( ऋ ९।४।३ )
- १०५० पथीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥ ( ऋ ९।४।४ )
- १०५१ स्वश्वये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥ ( ऋ ९।४।५ )
- १०५२ तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योत्विपश्येम स्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥ ( ऋ ९।४।६ )
- १०५३ अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विषईसपरयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।४।७ )
- १०५४ अभ्यर्षोऽनपच्युतो वाजिन्समस्तु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥ ( ऋ ९।४।८ )
- १०५५ त्वां यज्ञैरवीमुधन्पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।४।९ )
- १०५६ रयिं नश्चित्रमश्चिनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥ ४ ( चा ) ॥  
[ घा० २२ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।४।१० )

[ १०४८ ] हे ( सोम ) सोम ! ( ज्योतिः सना ) हमें तेज दे, ( स्वः च श्विथा सौमगा सन ) तुझ औरतन सौभाग्य दे, ( अथ ) यावमें ( नः वस्यसः कृधि ) हमें कल्याणयुक्त कर ॥ २ ॥

[ १०४९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( दक्षं क्रतुं सन ) बल और यज्ञ करनेका सामर्थ्य दे, ( मुधः क्षपजहि ) क्षुभओकी हरा, ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें कल्याणयुक्त कर ॥ ३ ॥

[ १०५० ] हे ( पथीतारः ) सोमरस तैष्यार करनेवाले ऋत्विजो ! ( इन्द्राय पातवे ) इन्द्रके पीनेके लिए ( सोमं पुनीतन ) सोमरसको पवित्र करो । ( अथ नः वस्यसः कृधि ) हमें कल्याणते युक्त करो ॥ ४ ॥

[ १०५१ ] हे सोम ! ( स्वं ) तू ( तव क्रत्वा ) अपने कामते और ( तव ऊतिभि ) अपने सरक्षणोंके ( नः स्वये आ भज ) हमें सुपंकी उपारतनामें स्थापित कर । ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ५ ॥

[ १०५२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( तव क्रत्वा ) तेरे द्वारा किए गए कामके ( तव ऊतिभि ) तेरे रक्षामें रहकर हम ( ज्योत्स्विं पश्येम ) बहुत समयतक सुपंकी देखें, ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ६ ॥

[ १०५३ ] हे ( स्वायुध सोम ) उत्तम दासोंकी धारण करनेवाले सोम ! ( द्वि-यईसं रयिं अभ्यर्ष ) दोनो स्वयंके यज्ञ हमें दे । ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें सुखी कर ॥ ७ ॥

[ १०५४ ] हे ( वाजिन् ) बलवान् सोम ! ( समस्तु अनपच्युत ) युद्धमें न हातेबाला और ( सासहिः ) पशुकी हातेबाला तू ( अभि अर्षं ) कलतेमें छनता जा ( अथ ) और ( नः वस्यसः कृधि ) हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ८ ॥

[ १०५५ ] हे ( पवमान ) बृद्ध होनेवाले सोम ! सोम ( विधर्मणि ) विविध कल देनेवाले यज्ञमें ( यज्ञैः त्वा भवीमृधन् ) पूजनीय स्तोत्रोंके तेरे महत्त्वको बढाते हैं । ( अथ नः वस्यसः कृधि ) अत हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ९ ॥

[ १०५६ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( नः ) हमें ( रयिं अभिर्षं ) बिलक्षण, घोषोंके युक्त और ( विश्वायुं ) सब लोचोंका हित करनेवाले ( रयिं ) यज्ञको ( सामर ) भरपूर दे । ( अथः न वस्यसः कृधि ) और हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ १० ॥

१०५७ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००</sup> तरस्त मन्दी धावति धारा सुतस्मान्वसः । तरस्त मन्दी धावति ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१८।१ )

१०५८ उक्षा वेद वक्ष्नां मर्तस्य देव्यवसः । तरस्त मन्दी धावति ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१८।२ )

१०५९ व्यस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्यहे । तरस्त मन्दी धावति ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१८।३ )

१०६० आ ययोस्त्रिंशत्तं तना सहस्राणि च दद्यहे । तरस्त मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ५ ( हा ) ॥

[ धा० ६ । उ० नास्ति । ए० २ ] ( ऋ. १।१८।४ )

१०६१ एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्वसे महे । मदिन्त्वमस्य धारया ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६२।२२ )

१०६२ अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनातो अर्षसि । सनद्राजः परि स्रव ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६२।२२ )

१०६३ उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुमः । गृणानो जमदग्निना ॥ ३ ॥ ६ ( वि ) ॥

[ धा० १६ । उ० नास्ति । ए० ३ ] ( ऋ. १।६२।२४ )

१०६४ इभस्त्वोममहेते जातयेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।

मद्रा हि नः प्रमतिरस्य सस्सद्यमे सख्ये मा रिषामा वय तव ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९४।१ )

[ १०५७ ] ( मन्दी स ) जानन्व देनेवाला वह सोम ( तरत् धावति ) सोम ही छलनीसे नीचे गिरता है, ( सुतस्य अन्धसः धारा ) इस सोमरथस्थी अगली पार ( धापति ) शीघ्रती है । ( मन्दी सः तरत् धावति ) जानन्व देनेवाला वह सोम छतता हुआ शीघ्रता है ॥ १ ॥

[ १०५८ ] ( वक्ष्नां उक्षा ) पन देनेवाली ( देवी ) चमकती हुई धारा ( मर्तस्य अथसः देव ) यजमानकी रथाके प्रकारकी जानती है, ( स मन्दी तरत् धावति ) वह जानन्व देनेवाली धारा शीघ्रतासे बहती है ॥ २ ॥

[ १०५९ ] ( व्यस्रयोः पुरुषन्त्योः ) श्वस्र और पुरुषांतिके ( सहस्राणि आद्यदद्यहे ) हजारतरे प्रकारके धनोंको हम ग्रहण करते हैं । ( मन्दी सः ) जानन्व देनेवाला वह सोम ( तरत् धावति ) शीघ्रतासे शीघ्रता है ॥ ३ ॥

[ १०६० ] ( ययोः ) जितकारण भ्रमर और पुरुषांतिके ( त्रिंशत् सहस्राणि ) तीस ती और हजार ( तना आद्यदद्यहे ) यज्ञोंको हम स्वीकार करते हैं, ( मन्दी सः तरत् धावति ) जानन्व देनेवाला वह सोम शीघ्र ही नीचेके बर्तनमें गिरता है ॥ ४ ॥

[ १०६१ ] ( मदिन्त्वमस्य एते सोमाः ) परम जानन्व देनेवाले सोमके ये रस ( गृणानाः ) स्तुतिके धार ( महे धावते ) हमें उत्तम अन्न प्रदान करनेके लिए ( धारया असृक्षत ) एक पारसे कलसेमें गिरते हैं ॥ १ ॥

[ १०६२ ] हे सोम ! तू ( वीतये ) वेगोंके पीनेके वेगके लिए ( नृम्णा गव्यानि ) चतुर्थीको जानन्व देनेवाले ब्रह्म आविषांते ( पुनातः अर्षसि ) बलिब्र हुमा हुमा कलशमें जात है । ( राजः सनद्रा परिस्त्रव ) भ्रम बेटा हुमा तू कलशमें उतरता है ॥ २ ॥

[ १०६३ ] ( उत नो गोमतीरिषो ) और हे सोम ! ( जमदग्निना गृणानाः ) जमदग्निके द्वारा प्रवर्तित हुमा हुमा तू ( नः ) हमें ( गोमतीः ) जानोति भूत ( परिष्टुमः ) प्रवर्तनीय ( विश्वाः इषः ) सब अन्न ( अर्षे ) दे ॥ ३ ॥

[ १०६४ ] ( महेते जातयेदसे ) पूजनीय अग्निके लिए ( मनीषया ) बुद्धिपूर्वक किए गए ( इमे स्तोमं ) इस स्तोत्रकी ( रथं इय ) रथके समान ( सं महेम ) हम पूजनीय करते हैं । ( अस्य संसदि ) इसकी आराधनामें ( नः प्रमतिः ) हमारे बुद्धि ( मद्रा हि ) उत्तम चमकी है । ( अरे ) अग्निदेव ! ( सव सख्ये ) तेरी मित्रतामें ( ययं मा रिषाम ) हम तुझे या पीति न हों ॥ १ ॥



- १०६५ भ्रामेधमं कृणवामा हवीं॒ अपि ते चि॒तयन्तः॑ पर्व॒णापर्व॒णा वयम् ।  
जीवा॒तये प्र॒तरा॒साधया॑ धियो॒ऽभे सख्ये॑ मा रि॒षामा वयं॑ तव ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।४४ )
- १०६६ शकेम॑ स्वा समिधं॒ साधया॑ धियस्त्व॒ देवा ह॒विरद॒न्याद्भु॒वम् ।  
स्वमा॒दि॒त्या॒ आ व॒ह वा॒न्या॒श्मस्य॑ सख्ये॑ मा रि॒षामा वयं॑ तव ॥ ३ ॥ ७ ( छी ) ॥

[ धा० ३७ । उ० २ । २१० १० ] ( ऋ. १।९।४३ )

॥ इति द्वितीय पञ्च ॥ २ ॥

[ ३ ]

- १०६७ प्रति॑ वा॒सुर॑ उ॒दिते॑ मि॒त्रं गृ॒णीषे वरु॑णम् । अ॒यम॑ण॒रि॒श्राद॑सम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।६।१० )
- १०६८ रा॒या हिर॑ण्यया॒ माति॑रियम॒नु॒काय॑ श्रव॒से । इयं॑ वि॒षा मेघ॑सा॒तये ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।६।१८ )
- १०६९ ते॑ स्याम॒ देव वरु॑ण ते॒ मि॒त्रं यूरि॑भिः स॒ह । इय॑स्व॒द्य धी॑महि ॥ ३ ॥ ८ ( ह्य ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति० । २१० २ ] ( ऋ. ७।६।१९ )

- १०७० मि॒न्धि॑ वि॒षा अप॑ द्वि॒पः परि॑ बा॒धो ज॒ही सृ॒षः । वसु॑ र्पा॒दं तदा॑ भर ॥ १ ॥

( ऋ. ८।४।४० )

[ १०६५ ] हे ( अग्ने ) जनिदेव ! ( इयं भ्राम ) हम तेरे लिए तमिषा एकत्रित करते हैं ( वयं ) हम ( पर्वणा पर्वणा ) प्रत्येक पर्वणों ( चितयन्तः ) तुमो प्रदीप्त करते हुए ( ते हवींषि कृणवाम ) तेरे लिए हवि संस्कार करते हैं । वह नू ( जीवातये ) हमारे बंधुजीवनके लिए ( धिय प्रतरां साधय ) हमारे यज्ञकर्मको पूर्ण कर । हे ( अग्ने ) अग्निदेव ! ( तव सख्ये ) तेरी मित्रतामें रहकर ( वय मा रिषाम ) हम कभी कृत्सी न हों ॥ २ ॥

[ १०६६ ] हे अग्ने ! ( स्वा समिधं शकेम ) तुमो हम उत्तम रीतिते जलाते हैं । ( धिया साधय ) हमारे यज्ञार्थि कर्म उत्तम रीतिते शिद्ध कर । ( स्वे आद्भुत हविः ) तुममें आद्भुतिके द्वारा जो गर्ह हविको ( देवाः अद्भुति ) देवगण बनाते हैं । ( स्वे आदित्यान् आ वह ) नू अर्धितिके पुत्रोंको ब्रूलाकर ला ( तान् हि उदमसि ) वहाँ हम उनको इष्टता करते हैं ( अग्ने ) हे अग्ने ! ( सय सख्ये वय मा रिषाम ) तेरी मित्रतामें हम तव न हों ॥ ३ ॥

॥ यदां वृत्तरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] स्तृतीय पण्ड ।

[ १०६७ ] हे मित्र और वरुण बंधो ! ( सुरे उदिते ) सूर्यके उदय होने पर ( चां मित्र वरुण ) तुम दोनों मित्र और वरुणको तथा ( रिश्रादलं अयमण ) अनुनादाक अयमाकी तथा ( प्रति ) प्रत्येक वेवताओंकी ( गृणीषे ) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ १०६८ ] हे ( निमाः ) शानियो ! ( इय मति ) यह स्तुति ( हिरण्यया राया ) हितकारक और रमणीय धरके साप ( अनुकाय श्रवसे ) क्रूरतारहित प्रलसो प्राणिके लिए और ( मेघ-सातये ) वनको सिद्धिके लिए तुम्हें स्वीकार हो ॥ २ ॥

[ १०६९ ] हे ( देव वरुण ) वरुणदेव । ( यूरिभिः सह ) विद्वानोंके साथ ( ते ) तेरो भी स्तुति करनेवाले हम वनवान ( स्याम ) होंगे । हे ( मित्र ) मित्र ! तेरो भी स्तुति करनेवाले हम वनवान हों तथा ( इयं च स्व्य धीमहि ) अथ और स्वयंभी आत्स्य प्राप्त करनेवाले हों ॥ ३ ॥

[ १०६० ] हे इन्द्र ! नू ( विष्वाः द्विपः अप मिन्धि ) सब शत्रुभोका नाम कर ( वायः सृष परि जहि ) वाया करनेवाले शत्रुओंका नाश कर । ( र्पादं तव वसु आभर ) और चाहने योग्य वन हूँ ॥ १ ॥

१०७१ यस्य ते विश्वमानुषभूरेदं चस्य वेदति । वसु स्वाहे तदाभर ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४।४२ )

१०७२ पद्मीडाविन्द्र यस्विषरे यत्पशानि परामृतम् । वसु स्वाहे तदा मरं ॥ ३ ॥ ( पू. ॥ )  
[ धा० १२ । उ० १ । स्व० ६ ] ( ऋ. ८।४।४१ )

१०७३ यद्गस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य घोषताम् ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।१८।१ )

१०७४ गोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य घोषताम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१८।२ )

१०७५ इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्दिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य घोषतम् ॥ ३ ॥ १० ( टा ) ॥  
[ धा० ८ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१८।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१०७६ इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्य मधुमत्तमः । अकस्य योनिमासदम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।१२२ )

१०७७ सं त्वा विप्रा बचोविदः परिष्कृषन्ति धर्षसिम् । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।६।१२३ )

[ १०७१ ] हे इन्द्र ! ( ते दत्तस्य ) तेरे द्वारा दिए गए ( भूरे-यस्य ) बहुते जित पनको ( विश्व आनुषङ्क वेदति ) सब मनुष्य ऋते जानते हैं ( तद् स्वाहे वसु नः आभर ) उस चाहने योग्य पनको हमें भरपूर दे ॥ २ ॥

[ १०७२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् वीडा ) जो घन मजबूत खजालमें रखा हुआ है, ( यत् स्थिरे ) और जो जमीनमें स्थिर स्थानपर रखा हुआ है ( यत् पशानि ) जो छुनेके योग्य जगहमें रखा हुआ है, तथा जो ( परामृतं ) मधुसे छीनकर लाया गया पन है ( तद् स्वाहे वसु नः आभर ) वह चाहने योग्य पन हमें दे ॥ ३ ॥

[ १०७३ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! तुम ही ( हीं ) निरवबले ( यत्तस्य ऋत्विजा स्व ) पतके ऋत्विज हो । ( वाजेषु कर्मसु ) युद्धके समान कर्मोंमें भी तुम ( सस्नी ) गूढ़ रहते हो इसलिए ( तस्य घोषतं ) इस स्तुतिको तुम जानकर स्वीकार करो ॥ १ ॥

[ १०७४ ] हे ( गोशासा ) धनुषी मारनेवाले ( रथ-यावाना ) रथसे जानेवाले ( वृत्र-हणा ) घेरनेवाले धनुषोंके नाश करनेवाले ( अ पराजिता ) पराजित न होनेवाले ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( तस्य घोषतं ) उस मेरी स्तुतिको सुनकरके स्वीकार करो ॥ २ ॥

[ १०७५ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( वां ) तुम्हारे लिए ( मदिरं ) ऋत्विजोंने ( आदिभिः ) पत्थरोंसे ( मदिरं मधु अनुक्षन् ) आलव्य देनेवाला मोत्र सोपस निकालकर तैयार किया गया है ( तस्य घोषतं ) उस सम्बन्धी मेरी स्तुति तुम जानो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १०७६ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( मधुमत्तमः ) अत्यन्त मीठा ऐसा मू ( अकस्य योनिं आसदं ) पूर्य पनके स्थानमें बैठनेके लिए तथा ( मरुत्वते इन्द्राय पवस्य ) मरुतोंके साथ जानेवाले इन्द्रके लिए मू गूढ़ हो ॥ १ ॥

[ १०७७ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( सं धर्षसि त्वां ) उस वारणशक्तिसे युक्त तुम ( बचोविदः विप्राः ) बाह्यका अर्थ जाननेवाले जामो ( परिष्कृषन्ति ) मृगोभित करते हैं । ( आयवः ) ऋत्विजको ( त्वा सं मृजन्ति ) तुमै उताप प्रकारसे गूढ़ करते हैं ॥ २ ॥

१०७८ रसं ते मित्रो अयमा पिवन्तु वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥ ११ ( ल ) ॥  
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।१४।१४ )

१०७९ मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।  
रयि पित्रङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाम्पर्यसि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।११ )

१०८० पुनानो वारि पवमानो अरुणये वृषो अचिक्रदद्वने ।  
देवानां सोम पवमान निष्कृत गोभिरज्ञानो अपसि ॥ २ ॥ १२ ( वि ) ॥  
[ धा० २४ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।१०७।२२ )

१०८१ एतश्च त्वं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिररुणत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।१० )

१०८२ समिन्द्रगोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सत् सूर्यस्य रदिममिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।१८ )

१०८३ स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुमित्रे वरुणे च ॥ ३ ॥ १३ ( टि ) ॥  
[ धा० ८ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।६।१९ )

॥ इति सुयोधः सप्त. ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१०८४ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२०।१२ )

[ १०७८ ] हे ( कवे ) क्रान्तदर्शी सोम ! ( पवमानस्य ते रसं ) पवित्र होनेवाले तेरे रसको ( मित्रः वरुणः अयमा मरुतः पिवन्तु ) मित्र, वरुण, अयमा और मरुत पीयें ॥ ३ ॥

[ १०७९ ] ( सु-हस्त्या ) सुन्दर अपूर्णियोसे ( मृज्यमानः ) शूद्र किया जानेवाला सोम ( समुद्रे वाचं इन्वसि ) कलशमें शरद करता हुआ गिरता है । हे ( पवमान ) शूद्र होनेवाले सोम ! ( पित्रङ्गं पुरुस्पृहं ) सोमके रंगके तथा अनेकों द्वारा चाहने योग्य ( बहुलं रयि अभ्यर्पसि ) बहुत धन तू देता है ॥ १ ॥

[ १०८० ] ( वृषः पुनान. ) बल बढ़ानेवाला, शूद्र होनेवाला ( अरुणये घारे पवमान. ) भेदके बलोंकी छलनोसे छननेवाला ( चने अचिक्रदत् ) पानीमें शरद करते हुए गिरता है । हे ( पवमान ) शूद्र होनेवाले सोम ! तू ( देवानां ) देवताओंके लिए ( गोभिर्वंजान ) गायके दूधके साथ मिलाया जाता है और ( निष्कृतं अपसि ) शूद्र किए हुए स्थानपर लू जाता है ॥ २ ॥

[ १०८१ ] ( सिन्धु-मातरं स्य पते ) सिन्धु जिसकी माता है ऐसे दस [सोमके ( दशक्षिपः ) दस अंगुलियां ( मृजन्ति ) शूद्र करती हैं । वह सोम ( आदित्येभिः स्वमण्यत ) आदित्योंको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

[ १०८२ ] ( सुतः ) सोमरस ( पवित्रे ) कलशमें ( इन्द्रेण सं एति ) इन्द्रकी प्राप्त होता है । ( उत वायुना आ ) और वायुकी भी प्राप्त होता है । तथा ( सूर्यस्य रदिममि सं ) सूर्यकी किरणोंके साथ मिलता है ॥ २ ॥

[ १०८३ ] हे सोम ! ( मधुमान् चाः सः ) मीठा और सुन्दर बड़े लू ( नः ) हमारे यज्ञमें ( भगाय, वायवे, पूष्णे, मित्रे, वरुणे च पवस्व ) भग, वायु, पूषा, मित्र और वरुणके लिए पवित्र हो ॥ ३ ॥

॥ यथां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १०८४ ] ( क्षुमन्तः ) अलके पास रहनेवाले हूय ( याभिः ) जिन्हें गायोंके साथ रहकर ( मदेम ) आत्मवका उपजीव करते हैं, ( इन्द्रे सधमादे ) उस इन्द्रके साथ एक स्थानपर रहकर ( नः ) हमारी वे गायें ( रेवतीः ) ब्रह्म और घो देनेवाली और ( तुविवाजाः सन्तु ) बलते युक्त हों ॥ १ ॥

- १०८५ आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्या धृषणवीथानः । ऋणोर्क्षं न चक्रयोः ॥ २ ॥  
 ( ऋ. १।२०।१४ )
- १०८६ आ यद् दुषः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणोर्क्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥ १४ ( ठी ) ॥  
 [ धा० १८ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।२०।१५ )
- १०८७ सुरूपकुत्सुमुत्पे सुदृषामिव गोदुहे । जुहूमसि घविघवि ॥ १ ॥ ( ऋ १।१११ )
- १०८८ उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिव । गोदा इद्रवता मदाः ॥ २ ॥ ( ऋ १।१४२ )
- १०८९ अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अवि ख्य आ गहि ॥ ३ ॥ १५ ( कौ ) ॥  
 [ धा० ११ । उ० १ । स्व० नासि ] ( ऋ १।१४२ )
- १०९० उमे यदिन्द्र रोदसी आपप्रायोषा इव । महान्तं त्वा महीनात् सम्राजं चर्षणीनाम् ।  
 देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१३।१ )
- १०९१ दीर्वे शंशुकुशं यथा शक्ति विमर्षि मन्तुमः । पूर्वेषु मघवन्पदा वयामजा यथा यमः ।  
 देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१३।६ )

[ १०८५ ] हे ( पुष्पो ) पर्ववान् इन्द्र ! ( त्वावान् ) तेरे समान ( त्मना युक्तः ) धृष्टिते युक्त होकर ( इथानः ) प्रार्थना करनेके बाद ( स्तोतृभ्याः ) स्तोताओंके लिए इष्ट पदार्थ ( घ आ ध्रुणोः ) अथवा वे, ( चक्रयोः अक्षं न ) जिस प्रकार दोनों चक्रोंकी टपकी घूरा गिलाती है या सयुक्त करती है उसीप्रकार स्तोताओंको धनसे संयुक्त कर ॥ २ ॥

[ १०८६ ] हे ( शत-क्रतो ) सैशदो कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( यद् दुष कामं ) जपसंकोक जो इच्छित धन है वह ( जरितृणां आ ऋणो ) स्तुति करनेवालोंसे विला ( शचीभिः अक्षं न ) जिस प्रकार रथकी उत्तम अवस्थासे उत्तके हालकी सौ गति मिलनी है, उसीप्रकार स्तुति करनेवालोंको धन मिले ॥ ३ ॥

[ १०८७ ] ( सुरूपकुत्सु ) सुन्दर रूप करनेवाले इन्द्रको ( ऊतये ) अपने सरक्षणके लिए ( घवि घवि जुहूमसि ) प्रतिदिन हम बुझाते हैं । ( गोदुहे सुदृषां इव ) दूष कुहनेके समय ज्वाले जिस प्रकार दुधाक गायोंकी बुझाते हैं, उसी प्रकार हम इन्द्रको बुझाते हैं ॥ १ ॥

[ १०८८ ] हे ( सोमपाः ) सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! सोमरस पीनेके लिए ( नः सवना उप आगहि ) हमारे बतोंके समर्थों आ । ( सोमस्य पिव ) सोम पी, और तू ( देवत मदाः गोदाः इव ) धनवानोंको अनाज और पाय देनेवाला हो ॥ २ ॥

[ १०८९ ] ( अथ ) सोम पीनेके बाद ( ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम ) तेरे पास रहनेवाली उत्तम बुद्धियोंकी हम जानें, तू भी हमारे पास ( आ गहि ) आ । ( नः मा अवि ख्यः ) हमें छोड़कर दूसरोंकी उस ज्ञानकी मत बता ॥ ३ ॥

[ १०९० ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( उमे रोदसी ) दोनों ही धूलोक और भूस्वीलोककी ( उयाः इव ) जया जिस प्रकार अपने प्रकाशसे सब जगत्को भर देती है, उसीप्रकार तू भी ( यद् आपप्रायः ) जन भर देता है तब ( महीनां महान्तं ) महान्ते महान् ( चर्षणीनां सम्राजं त्वा ) मनुष्योंके सम्राट् तुझे ( देवीं जनित्रीं ) देवमाता अविनि ( अजीजनत् ) उत्पन्न करते है, । भद्रा जनित्री अजीजनत् ) कल्याण करनेवाली माता उत्पन्न करती है ॥ १ ॥

[ १०९१ ] हे ( मन्तुमः ) ज्ञानवान् इन्द्र ! ( दीर्वे शंशुकुशं यथा ) महान् शत्रुकी धारण करनेके समान ( शक्ति विमर्षि ) तू शक्तिसे धारण करता है, हे ( मघवन् ) इन्द्र ! ( यथा अजः पूर्वेषु पदा ) जैसे घकरा लगनेके पीछे ( यथा यमः ) राजाके नियंत्रित करता है उसीप्रकार तू शत्रुकी नियंत्रित करता है, तुझे ( देवीं जनित्रीं अजीजनत् ) अविनिर्वाचीने जन्य विधा है, । भद्रा जनित्री अजीजनत् ) कल्याण करनेवाली मातासे सुप्त प्रसूत किया है ॥ २ ॥

१०९२ अब स दुहृणापयो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम् । अघस्पदं तमीं कृधि यो असा ५ अमिदासति ।  
 देवीं अनिऋपजीजनद्भद्रा अनिऋपजीजनत् ॥ ३ ॥ १६ ( यौ ) ॥

[ धा० ४२ । उ० नास्ति । स्व० १० ] ( ऋ. १०।१३४२ )

॥ इति पथमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१०९३ परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेपु सर्वेषा असि ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१८।१ )

१०९४ त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेपु सर्वेषा असि ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१८।२ )

१०९५ त्वे विश्वे सजोपसो देवासः पीतिमाशत । मदेपु सर्वेषा असि ॥ ३ ॥ १७ ( खा ) ॥

[ धा० ११ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. १।१८।३ )

१०९६ स सुन्धे यो वधूनां यो रायामानेवा य इडानाम् । सोमो यः सुधित्वीनाम् ॥ १ ॥

( ऋ. १।१८।१३ )

१०९७ यस्य त इन्द्रः पिपाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।

आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे मह ॥ २ ॥ १८ ( ली ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १।१८।१४ )

[ १०९२ ] ( दुहृणापयतः मर्त्तस्य ) दुष्ट शत्रुके ( स्थिरं अथ तनुहि ) स्वामी बलको क्षीण कर, ( यः अस्मान् अमिदासति ) जो हर्म्य वास बनाना चाहता है ( तं इ अघस्पदं कृधि ) उसे नीचे दबा डे । ( देवीं अनिऋ अजी-जनत् ), अर्थात् माताने तुम उत्पन्न किया है, ( भद्रा अनिऋ अजीजनत् ) कल्याण करनेवाली माताने तुम प्रकृत किया है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पाँचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पष्ठः खण्डः ।

[ १०९३ ] ( गिरिष्ठाः स्वानः सोम ) वर्षतपर रहनेवाला, रस निकाला गया सोम ( पवित्रे परि अक्षरत् ) छलनीसे टपकता है । हे सोम ! ( मदेपु सर्वेषा असि ) आनन्ददायक पदार्थोंमें तू सबसे अधिक श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

[ १०९४ ] हे सोम ! ( त्वं विप्रः ) तू ज्ञानी है, ( त्वं कविः ) तू दूरदर्शी है, तू ( अन्धसः जातं मधु प्र ) अज्ञाने उत्पन्न मधु रसको देता है । ( मदेपु सर्वेषा असि ) आनन्द देनेवाले रसोंमें तू सबसे उत्तम है ॥ २ ॥

[ १०९५ ] हे सोम ! ( सजोपसो विश्वेदेवासः ) एक कार्यको सुदृढ़ कर देनेवाले सप्त देव ( त्वे पीति माशत ) सेता रस पीनेकी इच्छा करते हैं । ( मदेपु सर्वेषा असि ) आनन्द देनेवालोंमें सबसे अनेका तू ही अधिक श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

[ १०९६ ] ( यः सोम ) जो सोम ( वधूनां वा जेता ) धनोंकी लानेवाला ( यः रायां ) जो गायोंकी लानेवाला ( यः इडां ) जो अन्न लानेवाला, ( यः सुधित्वीनां ) जो उत्तम पुत्रोंको और नौकरोंकी देनेवाला है, ( सः सुन्धे ) उस सोमके रसको निकाला जाता है ॥ १ ॥

[ १०९७ ] हे सोम ! ( यस्य ते इन्द्रः पिपात् ) जिस तेरे रसको इन्द्र पीता है, ( यस्य महतः ) जिसका रस महत् पीते हैं ( यः ) अथवा ( यस्य अर्पमणा भग ) जिसके रसको अर्पणके साध भग देव पीते हैं, ( येन महे अघते ) जिस सोमके द्वारा महान् संरक्षणके लिए ( मित्रावरुणा वा ) मित्र और वरुणको बुलाया जाता है, उत्तीर्णकर ( इन्द्रः वा ) इन्द्रको बुलाया है ॥ २ ॥

१०९८ त वः सखाया मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न हृष्यैः स्वद्वयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥  
( ऋ ९।१०५।१ )

१०९९ सं वस इव मातृभिरिन्दुहिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदां मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥  
( ऋ ९।१०५।२ )

११०० अयं दक्षाय साधनोऽप्यं शर्षाय वीतये ।  
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥ ३ ॥ १९ ( पि ) ॥  
[ भा० १७ । उ० नास्ति । ए० ३ ] ( ऋ. ९।१०५।३ )

११०१ सोमाः पवन्त इन्दवाऽसभ्यं गातुवित्तमाः ।  
मित्राः स्वात्ना अरेपसः स्वाध्वः स्वविदः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०१।१० )

११०२ ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दक्ष्याशिरः ।  
सुरासो न दर्शतासो जिगत्सवो ध्रुवा ध्रुवे ॥ २ ॥ ( ऋ ९।१०१।१२ )

११०३ सुध्याणासो व्यद्विभिश्चिताना गौरधि स्वधि ।  
ह्यमसमभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥ ३ ॥ २० ( वा ) ॥  
[ भा० १० । उ० नास्ति । ए० २ ] ( ऋ. ९।१०१।११ )

[ १०९८ ] हे ( सखाय ) ऋत्विजस्त्वो मित्रो ! ( यः प्रदाय ) तुम देवताओंको जानकर देनेके लिए ( पुनर्भि सं अभि गायत ) छाने जानेवाले उस सोमके स्तोत्रोंका गायन करो । ( शिशुं न ) जिसप्रकार मातापै बालकको सुगोमित करती है, उसीप्रकार सोमको ( हृष्यैः गूर्तिभिः स्वद्वयन्त ) हवि और स्तुतिमैके द्वारा और स्वाधिष्ठ वनछो ॥ १ ॥

[ १०९९ ] ( देवायीः मदाः ) देवोंका रत्नक और जानकरवाचक, ( मतिभिः परिष्कृतः ) स्तुतिमैके शुद्ध किया गया और ( हिन्वानः इन्दुः ) पात्रकोंके मेरणा देनेवाला सोम ( सं अज्यते ) पानीसे मिलाया जाता है । ( मातृभिः शकृतः इव ) माताके द्वारा बच्चा जिसप्रकार नहलाया, धृतया जाता है, उसीप्रकार सोम पानीके द्वारा साफ किया जाता है ॥ २ ॥

[ ११०० ] ( अयं दक्षाय साधनः ) यह सोम बल बढ़ानेका साधन है, ( अयं शर्षाय ) यह सोमबल बढ़ानेके लिए और ( वीतये ) पीनेके लिए है, ( अयं सुतः ) इसका रस निकालनेके बाद ( देवेभ्यः मधुमत्तरः ) वह देवोंके लिए अधिक मीठा होता है ॥ ३ ॥

[ ११०१ ] ( मित्राः स्वात्नाः ) मित्रके समान हितकाएक, मित्रोंके गए ( अरेपसः स्वाध्वः ) निष्पन्न और उत्तम लक्ष्य देने योग्य ( ए० विदः ) ज्ञानमयों ( गातु वित्तमाः इन्दवः सोमाः ) प्रजासनीय, समकनेवाले सोमरस ( असभ्यं पवन्ते ) हमारे लिए कलजामें छाने जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११०२ ] ( पुतासः विपश्चित ) पवित्र और तानी ( दक्ष्याशिरः ) बहीके साथ मिले हुए ( ध्रुवे जिगत्सवः ) जलमें मिलाये जानेवाले ( ध्रुवा ध्रुवे ) सोमासः ) कलजामें रहनेवाले वे सोमरस ( सुरासः न ) ध्रुवके समान ( दर्शतासः ) दर्शनीय है ॥ २ ॥

[ ११०३ ] ( गो अधि स्वधि ) बलके समकनेपर ( चितानाः ) रहनेवाले ( पि व्यद्विभिः सुध्याणासः ) अनेक पात्रोंसे कूटनेवाले ( वसुविदः ) धन देनेवाले वे सोम ( असमभ्यं अभितः इव समस्वरन् ) हमें चारों ओरसे घन देते हैं ॥ ३ ॥

- ११०४ अया पवा पवस्यैना वसुनि माश्चत्वं इन्दो सरसि प्र घन्व ।  
 ब्रह्मश्चिद्यस्य वातो न जूर्ति पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९।१२ )
- ११०५ उत न एना पवया पवस्याधि श्रुते श्रवाद्यस्य तीर्थे ।  
 पट्टि सद्दस्त्रा नैगुतो वसुनि वृक्षे न पक्व धूनवद्रणाय ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।१३ )
- ११०६ महोमि अस्य वृष नाम शूये माश्चत्वे वा पृशने वा वधये  
 अस्वापवाग्निगुतः सेह्यचापामित्रा अपाचितो अचेतः ॥ ३ ॥ २१ ( कि ) ॥  
 [ धा० १६।३०१।९५०३ ] ( ऋ. ९।९।१४ )  
 ॥ इति पण्डः खण्डः ॥ ६ ॥
- [ ७ ]
- ११०७ अमे स्व नो अन्तम उत त्राता शिवा श्रुषो वरुधयः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९।१५ )
- ११०८ वसुराग्निवसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमन्तमो रयि दाः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।१६ )

[ ११०४ ] हे सोम ! ( अया पवा ) इत पवित्र पारते ( एना वसुनि ) इन पनोंकी हमें ( पवस्य ) वे । हे ( इन्दो ) सोम ! ( माश्चत्वे सरसि प्र घन्व ) इस पूजाके योग्य पानीमें तू जाकर मिल जा, ( यस्य ) जिसके रसको पीकर ( ब्रह्मनः चित् ) सूर्य भी ( वातः न ) वायुके समान ( जूर्ति ) श्वेतको प्राप्त होता है, और ( पुरुमेधाः चित् ) आत्यधिक बुद्धियान् इन्द्र ( तपये महो ) सोम प्राप्त करनेवाले भूते ( नरं धात् ) नेता होनेके योग्य पुत्रको देता है ॥ १ ॥

[ ११०५ ] हे सोम ! ( उत अघाद्यस्य तीर्थे ) और स्तुतिके योग्य ऐसे तेरे स्थानपर ( नः श्रुते ) हमारे यज्ञमें ( एना पवया ) इत पवित्र पारते ( पवया ) तू छनता जा । ( नैगुतः ) शत्रुओंका नाश करनेवाला सोम ( पट्टि सद्दस्त्रा वसुनि ) साठ हजार घन ( रणाय ) शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिए ( धूनवत् ) हमें देवे, ( वधये वृक्षे न ) जैसे वृक्ष पके हुए फल देते हैं, उसीप्रकार हमें धन दे ॥ २ ॥

[ ११०६ ] ( महो वृष, नाम ) बहुत सारे बाणोंकी मारना और शत्रुको मारना ( इमे अस्य शूये ) ये वीरों ही सोमके कार्य सुलभकारी हैं । ये काम ( माश्चत्वे ) योंके साध होनेवाले युद्धमें किए जाते हैं ( वा पृशने ) अथवा बाहुओंके युद्धमें ( वा वधये ) अथवा ह्रापति शत्रुओंके कत्ल करनेके समय किए जाते हैं, ( निगुतः अस्वापयन् ) ओ शत्रुओंके पीते हुए अथवा ( सेह्यचाप ) शत्रुके मांसे समय किए जाते हैं, हे सोम ! ( अमित्रान् ) तम शत्रुओंको बुर कर ( इतः अपाचितः ) यहूति शत्रुओंको तू बुर कर, ( अप अच ) उन्हें बहुत बुर कर ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ ११०७ ] हे अग्ने ! ( वरुधयः स्थं ) सेवा करनेके योग्य तू ( नः अन्तमः ) हमारे पास रह, ( उत ) और ( त्राता ) हमारा रक्षक हो, तथा हमारा ( शिवा भय ) कल्याण करनेवाला हो ॥ १ ॥

[ ११०८ ] ( वसुः वसुश्रवाः अग्निः ) विवातक और पनोंके लिए प्रसिद्ध अघनी तू ( अच्छ नक्षि ) सीधे हमारे पास जा, और ( द्युमन्तमः रयि दाः ) तेजस्वी होकर हमें धन दे ॥ २ ॥

- ११०९ तं त्वा शोचिष्ट दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ३ ॥ २२ ( वा ) ॥  
 [ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ १।२४।२ )
- १११० इमा जु क भुवना सीपधेमन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१५।१ )
- ११११ यज्ञं च नस्तन्वेषं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीपधातु ॥ २ ॥ ( ऋ १०।१५।२ )
- १११२ आदित्यैरिन्द्रः सगणो महद्भिरस्मभ्यं भेषजा कर्तु ॥ ३ ॥ २३ ( छा ) ॥  
 [ धा० १२ । उ० २ । ख० २ ] ( ऋ १०।१५।३ )
- १११३ प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विषाय गार्थं गायता य जुजोषते ॥ १ ॥
- १११४ अर्चन्त्यर्कं महतः स्वर्का आ स्तोमति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥ २ ॥
- १११५ उप प्रक्षे मधुमति क्षिपन्तः पुष्येम रयि धीमहे त इन्द्र ॥ ३ ॥  
 [ धा० २ । उ० नास्ति । स्व १ ]

॥ इति सप्तमः खण्ड ॥ ७ ॥

॥ इति अनुसंधानाखण्ड प्रथमोऽर्ध ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

[ ११०९ ] हे ( शोचिष्ट दीदिव ) तेजस्वी और मरुतनेकाले मन्त्रिदेव । ( सुम्नाय सखिभ्यः ) सुलके लिए और मित्र तथा पुत्राधिकी प्राप्तके लिए ( नूनं ईमहे ) निश्चयसे हम प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

[ १११० ] ( इमा भुवना ) ये भुवन ( जु क सीपधेम ) हमारे सुलके तावन यज्ञे । ( इन्द्रः च विश्वेदेवाः च ) इन्द्र और सब देव हमें सुल देवें ॥ १ ॥

[ ११११ ] ( आदित्यैः सह इन्द्रः ) आदित्यके साथ इन्द्र ( नः यज्ञं ) हमारे यज्ञकी ( तन्वेषं च ) और हमारे शरीरकी ( प्रजां च ) और पुत्रयोकी ( सीपधातु ) उत्तम सफल करे ॥ २ ॥

[ १११२ ] ( आदित्यैः महद्भिः ) आदित्य और मरुतकी तथा ( सगणः इन्द्रः ) गणोंके साथ रहनेवाला इन्द्र ( अस्मभ्यं ) हमारे लिए ( भेषजा कर्तु ) भोज्यें तैय्यार करे, रोग हूर करे ॥ ३ ॥

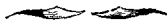
[ १११३ ] हे मन्त्रो । ( विषाय वृत्रहन्तमाय ) शानी और वृत्रकी मारनेवाले ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( चः ) तुम ( गार्थं प्रगायत ) स्तोत्रोंका गान करो, ( य जुजोषते ) जिन्हें यह सुनता है ॥ १ ॥

[ १११४ ] ( अर्चन्त्यर्कं महतः ) उत्तम तेजस्वी महत ( अर्कं अर्चन्ति ) पूजनीय इन्द्रकी पूजा करते हैं । ( श्रुत युवा आ स्तोमति ) शानी युवा प्रशंसित होता हैं, ( स्व इन्द्रः ) वही इन्द्र है ॥ २ ॥

[ १११५ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते मधुमति प्रक्षे ) तेरे उत्तम निरीक्षणमें ( उपक्षिपन्तः ) रहनेवाले हम ( पुष्येम ) पुष्ट हों और ( रयि धीमहे ) धनोंकी पारण करें ॥ ३ ॥

॥ यहाँ सातवा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥





## सप्तम अध्याय

इस शास्त्रमें अग्न्यापनमें अथ्य वेवताओंका वर्णन करनेवाले कुछ श्लोक हैं। जब कि सोमके वर्णन करनेवाले बहुत प्रशंसा हैं। पहले हम अथ्य वेवोंका वर्णन देखेंगे, क्योंकि वेवोंने लिए ही सोम हैं। प्रथम इन्द्रके वर्णन देखिए—

### इन्द्र

१ मुरुपटलुं ऊतये धायिघानि जुष्टमसि [ १०८७ ]  
—मुन्द्ररूप बनानेवाले इन्द्रको अथने सरसणके लिए हम प्रतिदिन युक्तते हैं। जगत्में जो सोम्य हैं, वह इन्द्रका ही वनपा हुआ हैं। ऐसे उस इन्द्रको अथने सरसणके लिए हम युक्तते हैं।

२ आगदि, नः मा अतिरयः [ १०८९ ]—हमारे पास था, हमें छोड़कर हमारी बात किसी दूसरेकी न यता।

३ हे मनुजः! दीर्घं अंशुतुं शक्ति विमर्षि [ १०९१ ]  
—महान् अरुनेः समान बलताली शक्तिकी तु धारण करता है। इन अरुनेसि तु धारणे साथ सज्जकर उतकी हरा।

४ हे सोमपाः! नः सत्यना आगदि, सोमस्य पिप, न्येनः मद्ः गोदा [ १०८८ ]—हे सोम पीनेवाले इन्द्र! मू हमारे यज्ञमें था, सोम पी। धनधानीकी प्रशंसा माय देवोंका होनी है।

### इन्द्र अशुओंका दूर करता है

१ दुहंषायतः मर्चंस्य क्षिधं अजतनुदि [ १०९२ ]  
—इष्ट्य अशुके विचार बलकी क्षीण कर।

२ यः अस्मान् अभिधासति तं अघस्पदं वृधि [ १०९३ ]—ओ हमें बात बगला चाहता है, उसे हटा दे।

इन्द्रने ही ये शर्म हैं, इनलिए चारों ओरने इन्द्रकी श्रंशता होनी है।

### इन्द्रको सोम दिया जाना

१ इन्द्राय पातये सोम पुर्विलन [ १०५० ]—इन्द्रने पीनेके लिए सुध सोम दावकर तैय्यार करो।

२ हे इन्द्र! विभ्या टिपः अघ भिन्धि [ १०५० ]—हे इन्द्र! हमारे साथ प्रकरके सन्धुओंको मार दे। इन्द्र सोमरस पीना है और उगने उज्ज्वलित होकर ऐसे सूरबोहराने काम करता है।

३ याघः परिजहि, स्पाहँ तद् आभर [ १०७० ]  
—याघा झालनेवाले सन्धुओंको जीत और चाहने योग्य धनोंको हमें भरपूर दे। सोमपातके साथ इन्द्र यह साथ करता है।

### इन्द्रका धन देना

१ हे इन्द्र! ते वक्षस्य भूरेः यस्य विश्व-मानुषः आनुषक् वेदति [ १००१ ]—हे इन्द्र! तेरे द्वारा दिए गए धनकी साथ मनुष्य एक साथ जानते हैं।

२ हे इन्द्र! यत् चीडी, यत् स्थिरं, यत् विपशाने, यत् पराभृत् तन् स्पार्हं वस्तु नः आभर [ १०७२ ]—हे इन्द्र! जो धन मजबूत राजानेमें हैं, जो स्थिर जगहमें रखा हुआ है, न छुने योग्य जगहमें रखा हुआ है अथवा जो सन्धुओंकी पराजित करनेके लाया गया है, उस चाहने योग्य धनकी हमें भरपूर दे।

इस प्रकार इन्द्र धन देता है।

### अग्नि

अग्नि देवताके समर्थमें क्या कहा है, अथ उस पर विचार करते हैं—

१ हे अग्ने! ते मनस्ये यये मा रिपाम [ १०६४ ]—हे अग्ने! तेरे साथ मित्रता होनेके बाद हमारा नाश होनेवाला नहीं है। तु हमारा मित्र हो गया है इसका मतलब ही यह है कि हमारी हर प्रकरके रक्षा निस्त-देह होगी।

२ हे अग्ने! इधमं भूराग, ते हर्षानि एणयाम, जीयातये धियाः प्रतरां खाधेय [ १०६५ ]—हे अग्ने! हम तेरे लिए समिया एकत्रिन करते हैं, तेरे लिए हवन सामग्री एकत्रिन करते हैं, हमें दीर्घायु प्राप्त हो इसलिये हमारी बुद्धि श्रेष्ठ कर, हमारे कर्मोंको यथाके साथ पूर्ण कर।

३ त्वं भादितयान् आ यद् [ १०६६ ]—तू भादितयोंको यहाँ ले आ।

४ हे अग्ने! त्वं नः भन्तमः, आता शिषः भय [ ११०७ ] हे अग्ने! तू हमारे पातना मित्र है, अथ तू हमारा रक्षा करनेवाला और कल्याण करनेवाला हो।

५ यानुः यानुधयाः भांतिः पुत्रसामः क्विः दाः [ ११०८ ]—हे अग्ने! तू यानुस बन है, यानुने जिन प्रसिद्ध है, तू अग्नय तेकरकी है, पैसा तू हमें धन दे।

६ हे सोविष्ट दीक्षिय ! त्वा तुन्नाय सखिभ्यः ईमाहे [ ११०९ ]- हे तैत्रिष्यो और प्रकाशित होनेवाले आनिवेय ! हमें सुख और पुत्रपौत्र मिले इतलिए हम तेरी प्रार्थना करते हैं ।

इस प्रकार अग्निके सम्बन्धमें इत अध्यायमें मन्त्र हैं । अथ इन्द्र और अग्निके मन्त्र देखिए—

### इन्द्र और अग्नि

१ सोशासा रथयाना वृत्रहणा अपराजिता इन्द्राग्नी । तस्य योधत [ १०७४ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! तुम द्रुपुको मारनेवाले वीर हो, तुम रथसे जाते हो, वृत्रादि असुरोंको मारते हो, तुम्हारे कर्त्तव्य भी पराजय नहीं होता । हम तुम्हारा स्तुति करते हैं, उन्हें तुम जानो ।

२ वां अद्रिभिः मदिरे मधु अयुक्षन् [ १०७५ ]- तुम्हारे लिए परवरोंके कूटकर यह आनन्ददायक रस निकाला गया है-इस रसको स्वीकार करो ।

### मित्र, वरुण और अन्य देव

१ हे मित्रा ! इयं मतिः हिरण्यया राया, अयुक्ताय दास्यसे मेघसातये [ १०६८ ]- हे ज्ञानी मित्र और वरुणो ! हितकारक और रमणीय वस्तुको प्राप्तिके लिए, कृत्तारहित बलको प्राप्तिके लिए और बुद्धिको प्राप्तिके लिए हम तुम्हारे स्तुति करते हैं, उन्हें तुम स्वीकार करो ।

२ इयं च स्वः पीमाहि [ १०६९ ]- हम अन्न और आनन्द प्राप्त करनेवाले होंगे ।

३ आदित्यैः सह इन्द्रः नः यथै, तन्व्यं प्रजां च सीपधातु [ ११११ ]- बारह आदित्योंके साथ इन्द्र हमारे यत्नमें आये तथा हमारे शरीरको और हमारे पुत्रपौत्रोंको उत्तम सहायता देवे ।

इस प्रकार मित्र, वरुण और अन्य देवोंका वर्णन आया है । अब हम सोमका वर्णन, जिसका कि इस अध्यायमें विशेष महत्त्व है, देखते हैं ।

### देवोंके लिए सोम

१ [ सुतः ] आदित्यैभिः समन्वयत [ १०८१ ]- सोम आदित्योंको प्राप्त होता है ।

२ इन्द्रे धायुना पूर्वयं च रश्मिभिः स [ १०८२ ]- इन्द्र, वायु और सूर्य विरलोंने भी प्राप्त होता है ।

३ हे सोम ! यस्य से इन्द्रः पिपासु, मरुतः, अर्य-मथा, भगः, मित्रावरुणा [ १०९७ ]- हे सोम ! तेरा रस इन्द्र पीता है, और मरुत, अर्यमा, भग, मित्र और वरुण भी पीते हैं ।

इस प्रकार यत्नमें सब देव सोमरस पीते हैं ।

### पर्वत पर सोम होता है

१ गिरिष्ठाः स्थानः सोमः पथिवे परि अक्षरक्ष, मदेसु सर्मथा अति [ १०९३ ]- पर्वतपर होनेवाला सोम, रस निकालनेसे बाद छलनीसे छाना जाता है । वह आनन्द बढ़ानेवाले पदार्थोंमें सबसे अधिक आनन्द बढ़ानेवाला है ।

### सोम यज्ञकी आत्मा है

१ हे इन्द्रे ! यज्ञस्य पूर्वयः आत्मा [ १०४५ ]- हे सोम ! तू यज्ञको पहलेसे ही आत्मा है ।

सोम न हो तो यज्ञ भी नहीं हो सकता । इसलिए इसको यज्ञकी आत्मा कहा है ।

### सोमके गुण

१ यज्ञस्य ऽयोतिः [ १०३१ ]- यज्ञका तैज ।

२ त्रियं मधु [ १०३१ ]- त्रिय और मीठा ।

३ पिता [ १०३१ ]- पिता, पाक ।

४ जानिता [ १०३१ ]- उत्पत्तिका, ज्ञाना प्रकारकी ज्ञानित उत्पन्न करनेवाला ।

५ धियुः घसुः [ १०३१ ]- बहुलता संभव जितके पास है ।

६ मदिन्तमः [ १०३१ ]- अत्यन्त आनन्द देनेवाला ।

७ मरुतः [ १०३१ ]- आनन्द देनेवाला ।

८ इन्द्रियः [ १०३१ ]- इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाला, इन्द्रकी शक्ति बढ़ानेवाला ।

९ दिवः पतिः [ १०३२ ]- पृथ्वीकका स्वामी, पृथ्वी पर रहनेवाला ।

१० चिचक्षुषः [ १०३२ ]- विजोय शायी ।

११ वाजी [ १०३२ ]- बलवान्, अन्नवान् ।

१२ हरितः [ १०३२ ]- हरे रंगका ।

१३ शुक्राः [ १०३४ ]- स्वच्छ, वीर्यवान्, बल बढ़ानेवाला, बलवान् ।

१४ आशुः [ १०३४ ]- पीरतासे क्षान्न करनेवाला ।

१५ सोमः [ १०३४ ]- सोम लता, सोमरस ।

१६ इन्द्रुः [ १०३८ ]- तैत्रिष्यो, बल करनेवाला ।

१७ घृषा [ १०३८ ]- बलशाली, कामनाशोकी तृणित करनेवाला ।

१८ दुग्न्मयत्तम [ १०३८ ]- बहून् चनकनेवाला ।

१९ धर्षसिः [ १०३८ ]- धारकवात्त बढानेवाला ।

२० स्वययुधः [ १०५३ ]- उत्तम शस्त्रास्त्रोत्ते पुस्त ।

२१ मित्रः [ ११०१ ]- मित्रके समान हित करनेवाला ।

२२ अतेपाः [ ११०१ ]- विबोध, निष्कलक ।

२३ स्वयध्वः [ ११०१ ]- उत्तम निरीक्षण करनेवाला ।

२४ स्वयिदः [ ११०१ ]- स्वयंकी जानेवाला, आरमत्तानी ।

२५ यातुयित्तमः [ ११०१ ]- उत्तममार्ग जानेवाला ।

२६ पूतः [ ११०२ ]- पवित्र, धना हुआ ।

२७ त्रिपद्विद्यतः [ ११०२ ]- ज्ञानी ।

२८ दध्याशिरः [ ११०२ ]- दही जिसमें मिलाया जाता है ।

२९ दूते जिगत्तुः [ ११०२ ]- पानीमें मिलनेकी इच्छा करनेवाला ।

३० ध्रुघः [ ११०२ ]- जिसका परिणाम स्थिर रहता है ।

३१ दर्शतः [ ११०२ ]- दर्शनोप, सुन्दर, देखने योग्य ।

३२ वसुधिद् अस्मभ्यं ह्य स्वयस्वरन् [ ११०३ ]- पत्नी पालमें रखनेवाला हमें उत्तम धन देवे ।

३३ रतः स्वघयोः अर्धोपय रत्न दधाति [ १०३१ ] सोमरत इत द्रुलोकाश्रीर पुष्वीलोका उतम धर्तृको वेता है ।

इस प्रकार इन सोमका वर्णन इत अप्यायमें है । सोमरत पीनेके बाद जो गुण शरीरमें अवशय होनेवालोंमें दिखाई देते हैं, वे सोमके ही हैं ऐसा समझना चाहिए । उपासक अश्वनेमें जो गुण बढाने योग्य हैं उन्हें बढावे ।

बैलके नभडे पर कूटने है

१ गो. अधि रयधि चित्ताना वि अग्निगिः सुध्यानासः [ ११०३ ]- गाय अर्धाद् बेलके नभडेपर अर्धाद् नभडेकी कलाकर उत पर सोमको पावरोसे कूटने है । नभडेपर लकड़ीके पटले रखकर उसपर सोम कूटकर रस निकालने हैं ।

सोमका पानीमें मिलाया जाना

सोमका रस निकालनेके बाद वह आगनेके पट्टे पानीमें मिलाया जाता है—

१ मिग्नुभिः मगिभिः मग्नुजान् [ १०३२ ]- पशोका पानी मिलाकर छलनीसे बहू रस उताना जाता है ।

२ सिन्धुनां अत्रे पवमानः अर्षसि [ १०३३ ]- नदिपोंके पानीके पास बहू झुड़ होनेके लिए जाता है ।

३ सुह्रुस्या मृज्यमान समुद्रे वाचं ह्वयति [ १०७९ ]- उत्तम हाथोंकी अगुनियोंने शुद्ध किया जानेवाला सोमरस पानीके बर्तनम धाबू करता हुआ जाता है ।

४ मांश्चत्व्ये सरसि प्रधन्व्य [ ११०५ ] इस उत्तम पानीमें मिल ।

५ घृषा मित्रस्य सदनेषु सीदति [ १०३२ ]- यह बल बढानेवाला सोम मित्ररूपी धर्ममें जाकर बँडता है, अर्थात् पानीके बर्तनमें रखा जाता है ।

इस प्रकार सोमरसको पानीमें मिलाया जाता है ।

सोमका छाना जाना

सोमरस पानीमें मिलाकर उसे भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे छानते हैं ।

१ गभस्वयोः मृज्यमानः अरये वारे पवते [ १०३५ ]- हाथोंके शुद्ध किया जानेवाला सोमरस भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे छाना जाता है ।

२ देवयीः रंक्षा पवित्रं अति पवस्व [ १०३७ ]- देवोंके पास जानेवाला सोम वेधते छलनीसे छाना जाता है ।

३ समुद्रः द्विचः पिष्टन्मः धरुणः सोमः पवित्रे अप्सु माम्जुने [ १०५१ ]- जलमय पत्तोंको पारण करनेवाला सोम छलनीसे छानकर पानीमें शुद्ध किया जाता है ।

४ आयय रत्या सं मुज्जगित [ १०७० ]- ऋत्विज्ज मुने उत्तम प्रकारसे शुद्ध करते हैं ।

५ घृषा पुनासः अश्वये वारे पवमानः वने अधि-अदत् [ १०८० ]- बल बढानेवाला सोम भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना जाता हुआ पानीमें धाबू करता हुआ गिरता है ।

सोमका शब्द करते हुए छाना जाना

१ अमिन्नन्तु कलरी अर्षसि [ १०३२ ]- दान्य करता हुआ कलनामें आना है ।

२ घृषा महान्, हरिः मित्रः न दर्शतः अचिन्नन्तु [ १०५२ ]- बल बढानेवाला, महान्, हुए हुए करनेवाला, मित्रके समान दर्शनोप, सोम दाबू करता हुआ बर्तनमें गिरता है ।

शोधके बर्तनमें पानी रहता है, उसमें उपरकी छलनीसे रस गिरनेसे दाबू होना है ।

### सोमरस चमकता है

१ सोमः स्वयंभु सं विद्युते [ १०४२ ]- तोय मूर्ध्ने समान चमकता है ।

### सोमका गायके दूधमें मिलाया जाना

तोमरसे पानीमें मिलानेके बाद उसे दूधमें मिलाते हैं ।

१ गोषु अग्रं गच्छति [ १०३३ ]- गायके आगेके भागमें गिरता है । गायके दूधमें सोमरस मिलाया जाता है ।

२ यत् गोभिः वामविपुलसे, महान्तं त्वा सिन्धुः- महीः अपः अनु अर्पयन्ति [ १०४० ]- जिस समय तुममें गायका दूध मिलाया जाता है, उससे पहले नदीका पानी अथवा बूतरा पानी लेकर मिलाया जाता है ।

३ धीतये नृम्या गम्यान्ति पुनामः अर्पयन्ति [ १०६२ ]- सोमरसको पीनेके पहले उत्तम गायका दूध स्वच्छ सोममें मिलाया जाता है ।

### सोमरस पीना

१ सजोषसः विभेदेवासः त्वे पीति आश्रत [ १०९५ ]- एक साथ कार्य करनेवाले सब देव सोमको पीनेकी इच्छा करते हैं ।

### सोम अन्न देता है

१ महि पत्तरः आ च्यवस्व [ १०३८ ]- बहुत तारा अन्न हमें दे ।

२ न. सोमती चिध्वा इपः अर्प [ १०६३ ]- हमें गायोले उत्पन्न होनेवाले सब प्रकारके घन दे । सोमरसमें गायके दूध, इहो आदि पदार्थ मिलाये जाते हैं, इहलिये सोमरस पीनेसे गायोले मिलनेवाले पद प्राप्त होते हैं, ऐसा होता है । इस प्रकार सोम अन्न देता है । वह बल भी बढ़ता है—

### सोम बल बढ़ाता है

१ हे इन्द्रो ! [ अस्ताक ] इन्द्रियं मधो धारया पयस्व [ १०४६ ]- हे सोम ! हमारी इन्द्रियशक्ति अपनी मोठी धारसे बढ़ा ।

२ दक्षे क्रतुं सन [ १०४९ ]- बल और कर्मशक्ति बढ़ा ।

३ अयं दक्षाय, शर्षाय, धीतये साधनः [ ११०० ]- यह सोम बल, साधर्म्य और अमीका साधन है, अर्थात् यह बल और साधर्म्य बढ़ानेवाला है ।

### सोम दीर्घायु देता है

१ तय क्रत्वा, तद्य कृतिभिः ज्योक् स्यं पश्येम [ १०५२ ]- हे तोम ! तेरी कर्तव्यशक्ति और तेरे सरलभणिते हम निरन्तरतक धूपकी बेलते रहे । अर्थात् हम बोध अयु-वाले हो । सोम यदि ठीक रीतिसे पिया जाए तो आयु बोध होता है ।

### सोम संरक्षण करता है

१ वसन्तु उक्ता देवी मर्तस्य अपसः वेद [ १०५८ ]- धन देनेवाली, चमकनेवाली सोमकी धारा संरक्षण करनेके हर प्रकारकी जादवी है ।

२ सोमोः महे अयसे धारया अशुश्रत [ १०६१ ]- सोमरस महान् संरक्षणके लिए धार बाधकर कलशमें गिरता है । इस प्रकार सोमरस अपने सरलशक्ती शक्ति बढ़ाता है और बीरोंको अपनी रक्षा करनेमें सफल बनाता है ।

### सोम लोकसेवा करता है

१ लोकश्रुतुं त्वा धृष्णये मदाय ईमहे [ १०४४ ]- लोकोकाहित करनेवाले तुम सोमकी शत्रुके नाश करनेके लिए तथा आयु बढ़ानेके लिए हम स्वीकार करते हैं । सोम पीनेसे बीरोंके शरीरोंमें उत्साह बढ़ाता है, उसके कारण लोकसेवाके महान् महान् कार्य किये जा सकते हैं ।

### सोम शत्रुओंको दूर करता है

१ हे सोम ! दक्षे क्रतुं सन । मृध. अपजहि । नः वस्यस इधि [ १०४९ ]- हे सोम ! हमें बल और कर्म करनेके साधर्म्य दे । शत्रुओंको दूर कर और हमारा कल्याण कर ।

२ हे वाजिन ! समस्तु अनपच्युत सासहिः अभि अयं [ १०४४ ]- हे बलवान् सोम ! तू युद्धमें न हारनेवाला तथा शत्रुओंका हरानेवाला होकर भागे जा ।

३ मही भुय-नाम इमे अस्य शूये [ ११०६ ]- बहुतसे गाणोंकी शत्रुपर वर्षा करना और शत्रुकी मृगाना में सोमके दो सामर्थ्य हैं ।

४ मां दक्षत्वे, पृशने, वधध्रे, निगुतः अस्थापयन्, स्नेहयन्, अमिधान्, भपचित, इतः भपचितः [ ११०६ ]- घोड़ोंके युद्धोंमें, शत्रुओंके युद्धोंमें, हाथोंके युद्धोंमें शत्रुकी तुलानेके साथ अथवा शत्रुओंकी भ्रामणके समय में शत्रुओंको दूर कर और यहाँसे भी शत्रुओंको दूर कर ।

इस प्रकार सोम वानुओंकी दूट करता है। गोमरत पीनेते बोरोंमें इस प्रकारसे मुद्र करानेकी दक्षित उत्पन्न होती है।

### सोम धन देता है

१ सोमः दामुपे दिव्यानि आन्तरिक्ष्या पार्थिव्याः विश्वा यसु आ पयतां [ १०३६ ]- सोमरत यताको हवर्षिय, अन्तरिक्षीय और पार्थिव अर्थात् सभी प्रकारके धन देवे।

२ हे सोम! गोया, नृपा, अश्वसा उत वाजसा असि [ १०४५ ]- हे सोम! तू गाय देनेवाला, पुत्र देनेवाला, घोड़े देनेवाला, और अश्व देनेवाला है।

३ महिध्रयः सोम! जेषि, नः वस्यसः कृधि [ १०४७ ]- हे प्रसन्नित सोम! तू पित्रय प्राप्त करता है। हमें यज्ञको कर।

४ ज्योतिः सन! स्वः च विश्वा सौभगा सन [ १०४८ ]- हमें तेज दे। मुझ तथा सब सोभाग्य दे।

५ द्वियर्हसं रयि अश्वर्षि [ १०५३ ]- दोनों ही स्थानों पर उपयोगी होनेवाले धन दे।

६ नः चित्रं, अभिनं, विश्वायुं रयि आ भर [ १०५६ ]- हमें बिलसप्त, घोड़ोंसे पुष्ट, सब लोगोंका हित करनेवाले धन भरपूर दे।

७ सहस्राणि आद्राहे [ १०५९ ]- सहस्र प्रकारके धन हम प्राप्त करते हैं।

८ त्रिदातं सहस्राणि तना गाद्राहे [ १०६० ]- तीनों और हजारों बत्नोंको हम लेते हैं।

९ पिरांगं पुगस्वृहं बहुलं रयि अश्वर्षसि [ १०७१ ]- मुनहरे रंगके बहुदत्ते धन हमें दे।

१० सोमः यस्तां आनेता, रायां, इडां, सुक्षितानां [ १०९६ ]- सोम हमें धन, ऐश्वर्य, अन्न, तथा उत्तम पुत्रोंका देनेवाला है।

११ अया पया पना यस्तुनि पयस्य [ ११०४ ]- इन पाराश्रिति ही तू हमें धन दे।

१२ नैयुतः पतिं स्वहृद्या यमुनि रणाय धूनयत् [ ११०५ ]- वानुओंका भाता करनेवाला सोम ताड़हजार धन वानुके साथ युद्ध करनेके लिए देवे।

१३ पातस्य मद्यायुधः महत् धनं भजसे [ १०२३ ]- बल बढ़ानेके लिए उत्तम मार्गसे पुष्टतु सोम! महान् धन प्राप्त करता है।

इस प्रकार यह सोम अनेक प्रकारके धन और ऐश्वर्यका देनेवाला है। सोम यदि शरीरमें योत्ता लाता है, तो वह शत्रुको हराकर बहुतसा धन दे सकता है, इसमें कोई शंका नहीं। इस प्रकार विचार करनेते यह आसानीसे समझमें आ सकता है कि सोमसे किस प्रकार धन प्राप्त होता है।

### सुभाषित

१ यशस्य ज्योतिः प्रियं मधु पयते [ १०३१ ]- यज्ञको ज्योति प्रिय और मधुर भाव उत्पन्न करती है।

२ विभूयसुः मदिन्तमः नरतरः अपीज्यं रत्नं दधाति [ १०३१ ]- बहुतसा धन प्राप्तमें रखनेवाला और आनन्द बढ़ानेवाला गुप्त स्थानमें रख पारण करता है, गुप्त स्थानमें धन रखता है।

३ वाजस्य स्वायुधः महत् धनं भजसे [ १०३३ ]- युद्धके लिए उत्तम शस्त्रोंसे तैय्यार हुआ हुआ शीर ही धन प्राप्त करता है।

४ ते दामुपे दिव्यानि आन्तरिक्ष्या पार्थिव्या विश्वा यसु आ पयन्तां [ १०३६ ]- यह शताको दिव्य, अन्तरिक्षीय और पार्थिव धन देता है।

५ पृथा घुम्यत्तमः धर्षसिः महि वसरः आ यज्यस्य [ १०३८ ]- तू बलवान् तेजस्वी और सर्वोंका पारण करनेवाला होकर बहुत अर्थ हमें दे।

६ पृथा महान् हरिः, मिथः नः दर्शतः [ १०४२ ]- बलवान्, महान्, कुलोका हरण करनेवाला और वित्रके समान दर्शनीय है।

७ लोककृणुं त्वा धृष्णये मदाय ईमहे [ १०४४ ]- लोगोंका कल्याण करनेवाले, तुम वानुओंका भाता करनेके लिए और आनन्द प्राप्त करनेके लिए हम प्राप्त करते हैं।

८ जेषि, अथ नः वस्यसः कृधि [ १०४७ ]- तू पित्रय प्राप्त करता है, इसलिए हमें यज्ञको कर।

९ ज्योतिः सन, विश्वा सौभगा सन [ १०४८ ]- हमें तेजस्वित्ता दे और सब सोभाग्य-ऐश्वर्य-दे।

१० दृक्षं प्रानुं मन [ १०४९ ]- बल और कर्मपातित दे।

११ मृषः अप जधि [ १०४९ ]- वानुओंको हरा।

१२ तप प्रत्या तप ऊतिभिः नः आ यज [ १०५१ ]

- धनने पुत्रप्राप्तते और अपने संरक्षणके साधनसि हमारी सहायता कर ।

११ ज्योक् सूर्ये पश्येम [ १०५२ ]- बहुत बर्षोंतक हम सूर्यको देखें । हमें बौधायि दे ।

१४ हे स्वायुधः द्विवर्षं रायि अभ्यर्ष्य [ १०५३ ]- हे उत्तम शास्त्राचार्य चलानेवाले बौर ! हमें दोनों ही जगहके धन दे ।

१५ हे याजिन् ! समस्तु अनपच्युतः सासदिः अभि अर्ष्ये [ १०५४ ]- हे बलवान् बौर ! मुझमें अगती पागह पर स्थिर रहनेवाला तथा शत्रुओंको हारनेवाला होकर भागे जा ।

१६ नः चित्रं विश्वायुं रायि वा भर [ १०५६ ]- हमें विलक्षण, और पूर्ण आयु देनेवाले धन भरपूर दे ।

१७ यत्नां उक्ता देवीं मर्तस्य अवलः वेद [ १०५८ ]- धन देनेवाली देवी मनुष्यके संरक्षणके सारे ऋषि जानती है ।

१८ नः गोमतीः विश्वाः इष्यः अर्ष्ये [ १०६३ ]- हमें पापसि उत्तम होनेवाले सब प्रकारके अन्न दे ।

१९ अस्य संसदि नः प्रमतिः भद्रा [ १०६४ ]- इस सामने हमारी बुद्धि उत्तम कल्याण करनेवाली हो ।

२० हे अग्ने ! तव सख्ये वर्ष मा रिपाम [ १०६४ ]- हे अग्ने ! तेरो मित्रतामें रहकर हम मित्रपयते मष्ट होनेवाले नहीं ।

२१ जीवातये धियः प्रतरां साधय [ १०६५ ]- दीर्घ-जीवन प्राप्त करनेके लिए हमारी बुद्धिको पूर्णता कर ।

२२ इयं मतिः हिरण्यया राया, अनुकाय शयसे मेघसातये [ १०६८ ]- यह बुद्धि हितकारक और रत्नकीय धन, ऋतुसंस्कारित वस्तु, बुद्धि और धनवती प्राप्ति करने वाली है ।

२३ इषं च स्वः पीमहि [ १०६९ ]- अन्न और स्वर्गोंय आनन्द हमें प्राप्त हो ।

२४ विश्वाः द्विपः अपमिन्धि [ १०७० ]- सब शत्रुओंका नाश कर ।

२५ याथा मूध परिजहि [ १०७० ]- बाधा करनेवाले और हिंसा करनेवाले शत्रुओंको हार कर ।

२६ स्पर्हो तम् घसु आभर [ १०७० ]- चाहने योग्य धनको हर्ने दे ।

२७ ते वत्स्य भूरेः विश्वमानुषः सायुषस्ते येदति तत् स्पर्हो घसु नः आभर [ १०७१ ] तेरे द्वारा दिए गए ११ [ ताप. हिन्दी भा. २ ]

धनको सब मनुष्य एकदम जानेंगे । अतः चाहने योग्य धन हमें दे ।

२८ यत् वीडौ, यत् स्थिरे, यत् विपशानि पराभृतं तत् स्पर्हो घसु नः आभर [ १०७२ ]- जो धन मनुष्य समानमें रखा हुआ है, जो स्थिर स्थानपर है तथा जो शत्रुओंसे छीनकर लाया गया है, वे चाहने योग्य धन हमें भरपूर दे ।

२९ तोशासा, रथयावाना, यूथ्रहणा, अपराजिता [ १०७४ ]- शत्रुओंको मारनेवाले, रक्षासि जानेवाले, शत्रुओंका नाश करनेवाले और पराजित न होनेवाले बौर ह ।

३० पिशांणं पुरस्सृहे वहुले रायि अभ्यर्षसि [ १०७९ ]- सुनहरा, बहुतांश प्राप्त चाहने योग्य बहुत सारा धन हमें दे ।

३१ जनये सुरूपकुरुन् धविधायि युद्धमसि [ १०८७ ] हमारे संरक्षणके लिए उत्तम रूप बनानेवाले शत्रुको हम प्रति-विन बुलाते हैं ।

३२ मा नः व्यति रुषः [ १०८९ ]- हमें दूर मत कर । ३३ हे मन्तुम ! वीर्यं अंकुशं शक्ति विभर्षि [ १०९१ ]- हे क्षानवान् बौर ! तू महान् शक्तिवाले अस्त्रोंको धारण करता है ।

३४ मयेषु रावेषा अरि [ १०९४ ]- आनन्द देनेवालोंमें तू सबसे श्रेष्ठ है ।

३५ चक्षतां, रायां, इडां सुक्षितीनां वा नेता [ १०९६ ]- वह धन, पेशवर्ष, अन्न और उत्तम पुत्रोंका देनेवाला है ।

३६ मैतुतः पति सद्यस्त्रा यस्मि रणाय धनवत् [ ११०५ ]- शत्रुका नाश करनेवाला बौर साहजहार धन हमारे आनन्दके लिए देवे ।

३७ मदीं वृष नाम इमे अस्य शूरे [ ११०६ ]- बहुत शारे बाण मारकर शत्रुको मारनेवाला ही बौर है ।

३८ मां दत्तये, पूदाने, पथधे, निगुतः अस्वापयन्, स्नेहयत् [ ११०६ ]- यह कार्य धीर्दिके मुद्गने, शत्रुओंसे मुद्गने, शत्रुओंको सुलानेके समय ही किया जाना है ।

३९ अभिमान् अपचितः इतः अपचितः [ ११०६ ]- शत्रुओंको हार कर, शत्रुओंको महाने भगा ।

४० अग्ने ! नः अन्तमः प्राप्ता दियाम् भव [ ११०७ ] हे अग्ने ! तू हमारे पास रह और हमारा रक्षण और बत्साध कर ।

४१ दुमन्तमः रथिं दाः [ ११०८ ]- तू तेजस्वी है, इतलिए हमें धन दे।

४२ शोचिष्ठः दीदिव्यः ! त्वा सुम्नाय सखिभ्यः ईमहे [ ११०९ ]- हे तेजस्वी और प्रकाशमान् देव ! सुखके लिए और मित्र प्राप्तिके लिए तेरी प्रार्थना करते हैं।

४३ इमा भुवना कं सीपधेम [ १११० ]- ये भूवन सुखके सामान बनें।

४४ इन्द्रः तन्यं प्रजां च सीपधानु [ ११११ ]- इन्द्र हमारे शरीर और पुत्रोंको सुखी करे।

४५ इन्द्र असभ्यं भेषजा कर्त् [ १११२ ]- इन्द्र हमें औपयि प्रदान करे।

४६ वः उप प्र अर्चं [ १११३ ]- तुम इन्द्रकी पास्तले उपासना करो।

## उपमा

इस सातवें अध्यायमें उपमायें निम्न प्रकार हैं—

१ मित्रः न [ १०४२ ]- मित्रके समान ( हरिः दर्शतः ) सोम खेलने योग्य है।

२ वृष्टिमान् पर्जन्यः इव [ १०४६ ]- वर्षा करनेवाले मेघके समान ( अस्माकं इन्द्रियं मधोः धारया पयस्व ) हमारा इन्द्रियसामर्थ्य मोठे रसको धारासे परित्र हो। भेषकी धारा और सोमरसकी धाराकी समानता यहां दिखाई है।

३ रथं इव [ १०५४ ]- रथ जित प्रकार बनते हैं, उसीप्रकार ( इमं स्तोमं सं महेम ) इन स्तोत्रोंको हम कहते हैं, इन स्तोत्रोंकी महिमाका वर्णन करते हैं।

४ चाप्रयोः अशं न [ १०८५ ]- रथके दोनों ही पहियोंको जितप्रकार हाल मिलता है, वा संयुक्त करता है, हे इन्द्र ! उसीप्रकार हमसे धर्मोंको संयुक्त कर।

५ दाचीभिः अशं न [ १०८६ ]- जितप्रकार गावोंको

गतिसे उसको घुराको गति मिलती है, उसीप्रकार ( जरि-तुणां वा ऋणोः ) स्तोत्राओंकी प्रार्थनाके द्वारा तू उन्हें प्राप्त हो।

६ गो दुहे सुतुधां इव [ १०८७ ]- गाय बूढ़नेके समय जितप्रकार सरलतासे बूध बनेवाली मार्गोंको बुलाया जाता है, उसीप्रकार ( सुरुप रुन्तुं ऊतये धावि धावि जुहमसि ) उत्तम रूपवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम प्रतिदिन बुलाते हैं।

७ उपा इव [ १०९० ]- उपा जितप्रकार अपने प्रकाशसे सब जगत्को भर देती है, उसीप्रकार ( हे इन्द्र ! उमे रोदसी आ प्रमाथ ) हे इन्द्र ! तू अपने प्रकाशसे पृ और पृथ्वी दोनों क्षेत्रोंको भर दे।

८ यथा दीर्घं अंकुशं [ १०९१ ]- जितप्रकार और हाथोंमें प्रलर शस्त्रोंको धारण करते हैं, उसीप्रकार तू ( शक्तिं यिभ्यिं ) शक्तिको धारण करता है।

९ यथा अजा पूर्वेण पदा चया यम [ १०९१ ]- जित प्रकार बकरा अपने अगले पैरसे बालीको झुकाता है, उसीप्रकार तू शत्रुओंका नाश करता है अथवा ( देवीं जानित्री अर्जाजनत् ) अवितिदेवीमें तुझे पहले उपास किया।

१० शिशुं न [ १०९८ ]- जितप्रकार छोटे बालकको सजाते हैं, उसीप्रकार ( हृद्यैः मूर्तिभिः स्यद्यमत् ) हृदि और स्तुतियोंसे इस सोमको और स्वादिष्ट बनाते हैं।

११ मादुभिः घत्सः इव [ १०९९ ]- जितप्रकार मां अपने बच्चेको पानीसे साफ करती है, उसीप्रकार ( इन्दुः सं अज्यते ) सोम पानीमें धोया जाता है।

१२ सूर्यासः न [ ११०२ ]- सूर्यके समान ( सोम्रासः दर्शतासः ) सोमरस वर्तनीय है।

१३ घातः न [ ११०४ ]- चायुके समान ( अग्रः जूर्ति ) सूर्य वेगका आशय करता है।

१४ वृहंतं पक्वं न [ ११०५ ]- वृष जितप्रकार पके हुए फलोंकी बेता है, उसीप्रकार ( मैशुतः यस्मिन् धून-यत् ) सोम धन देता है।

सप्तमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋष्येवस्थातं	ऋषिः	देवता	छन्दः
		( १ )		
१०३१	२।८६।१०	[ अकृष्ट सायावयः ] त्रयः ऋषयः	पवमानः सोमः	जगती
१०३२	२।८६।११	[ अकृष्ट सायावयः ] त्रयः ऋषयः	"	"
१०३३	२।८६।१२	[ अकृष्ट सायावयः ] त्रयः ऋषयः	"	"
१०३४	२।६४।४	कश्यपो मारीचः	"	गायत्री
१०३५	२।६४।५	कश्यपो मारीचः	"	"
१०३६	२।६४।६	कश्यपो मारीचः	"	"
१०३७	२।१।१	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१०३८	२।१।२	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१०३९	२।१।३	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१०४०	२।१।४	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१०४१	२।१।५	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१०४२	२।१।६	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१०४३	२।१।७	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१०४४	२।१।८	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१०४५	२।१।९	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१०४६	२।१।१०	मेघातिथिः काण्वः	"	"
		( २ )		
१०४७	२।४।१	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०४८	२।४।२	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०४९	२।४।३	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५०	२।४।४	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५१	२।४।५	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५२	२।४।६	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५३	२।४।७	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५४	२।४।८	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५५	२।४।९	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५६	२।४।१०	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५७	२।५।१	अवतारः काश्यपः	"	"
१०५८	२।५।२	अवतारः काश्यपः	"	"
१०५९	२।५।३	अवतारः काश्यपः	"	"
१०६०	२।५।४	अवतारः काश्यपः	"	"
१०६१	२।५।५	अवतारः काश्यपः	"	"
१०६२	२।५।६	अवतारः काश्यपः	"	"
१०६३	२।५।७	अवतारः काश्यपः	"	"
१०६४	२।५।८	अवतारः काश्यपः	"	"
१०६५	२।५।९	अवतारः काश्यपः	"	"
१०६६	२।५।१०	अवतारः काश्यपः	"	"
१०६७	२।५।११	अवतारः काश्यपः	"	"
१०६८	२।५।१२	अवतारः काश्यपः	"	"
१०६९	२।५।१३	अवतारः काश्यपः	"	"



मंत्रसंख्या	श्रवणस्थानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
१०६३	१।१७।१	कुस्त आंगिरसः	अग्निः	जगती
१०६५	१।१७।२	कुस्त आंगिरसः	"	"
१०६६	१।१७।३	कुस्त आंगिरसः	"	"

( ३ )

१०६७	७।६६।७	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	आदित्यः	गायत्री
१०६८	७।६६।८	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"
१०६९	७।६६।९	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"
१०७०	८।१५।१०	त्रिशोकः काण्वः	इन्द्र	"
१०७१	८।१५।११	त्रिशोकः काण्वः	"	"
१०७२	८।१५।१२	त्रिशोकः काण्वः	"	"
१०७३	८।१६।१	दवावाद्य आत्रेयः	इन्द्राग्नी	"
१०७४	८।१६।२	दवावाद्य आत्रेयः	"	"
१०७५	८।१६।३	दवावाद्य आत्रेयः	"	"

( ४ )

१०७६	९।६४।२२	कदपयो मारीचः	पद्मवानः सौर्यः	"
१०७७	९।६४।२३	कदपयो मारीचः	"	"
१०७८	९।६४।२४	कदपयो मारीचः	"	"
१०७९	९।१०७।२१	सप्तर्वयः	"	प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सती बृहती )
१०८०	९।१०७।२२	सप्तर्वयः	"	"
१०८१	९।६१।७	अमहीमुरागिरसः	"	गायत्री
१०८२	९।६१।८	अमहीमुरागिरसः	"	"
१०८३	९।६१।९	अमहीमुरागिरसः	"	"

( ५ )

१०८४	१।३०।१३	दुन-नोष आजीगतिः	इन्द्रः	"
१०८५	१।३०।१४	दुन-नोष आजीगतिः	"	"
१०८६	१।३०।१५	दुन-नोष आजीगतिः	"	"
१०८७	१।४।१	मधुच्छन्दा मैत्रावित्रः	"	"
१०८८	१।४।२	मधुच्छन्दा मैत्रावित्रः	"	"
१०८९	१।४।३	मधुच्छन्दा मैत्रावित्रः	"	"
१०९०	१०।१३४।१	माग्याला योक्तादयः	"	गृहार्चिकः
१०९१	१०।१३४।२	माग्याला योक्तादयः ( पूर्वाभ्यं )	"	"
१०९२	१०।१३४।३	माग्याला योक्तादयः ( उत्तरार्चिक )	"	"
१०९३	१०।१३४।४	माग्याला योक्तादयः	"	"

( ६ )

१०९४	९।१८।१	असितः कादपयो देवसो वा	पद्मवानः सौर्यः	गायत्री
------	--------	-----------------------	-----------------	---------

मंत्रसंख्या	श्राव्येवस्थानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
१०९४	९११८।१	असितः काश्यपो देवलो वा	पथमानः सोमः	गायत्री
१०९५	९११८।३	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१०९६	९११८०।१२	श्रष्टावयो राजयि-	"	पथमध्या गायत्री
१०९७	९११८०।१४	अशितर्वासिष्ठः	"	सतो भूहती
१०९८	९११८५।१	पथेतनारदो काण्वी	"	उगिष्क
१०९९	९११८५।२	पथेतनारदो काण्वी	"	"
११००	९११८५।३	पथेतनारदो काण्वी	"	"
११०१	९११८१।१०	मनुः सावरणः	"	भनुष्टुप्
११०२	९११८१।१२	मनुः सावरणः	"	"
११०३	९११८१।११	मनुः सावरणः	"	"
११०४	९११७।५२	कुत्स आगिरसः	"	त्रिष्टुप्
११०५	९११७।५३	कुत्स आगिरसः	"	"
११०६	९११७।५४	कुत्स आगिरसः	"	"

( ७ )

११०७	५।१४।१	बन्धुः सुबन्धुः भृतबन्धुविप्रबन्धुः	अग्निः	द्विपदा विराट्
		क्रमेण गोपायना लीपायना वा	"	"
११०८	५।१४।२	बन्धुः सुबन्धुः भृतबन्धुविप्रबन्धुः	"	"
		क्रमेण गोपायना लीपायना वा	"	"
११०९	५।१४।३	बन्धुः सुबन्धुः भृतबन्धुविप्रबन्धुः	"	"
		क्रमेण गोपायना लीपायना वा	"	"
१११०	१०।१५।७।१	भुवन आप्यः साधनो वा भीवनः	विश्वेदेवाः	द्विपदा त्रिष्टुप्
११११	१०।१५।७।२	भुवन आप्यः साधनो वा भीवनः	"	"
१११२	१०।१५।७।३	भुवन आप्यः साधनो वा भीवनः	"	"
१११३	—	—	—	—
१११४	—	—	—	—
१११५	—	—	—	—



## अथ अष्टमोऽध्यायः ।



अथ बहुर्यमपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ४ ॥

[ १ ]

( १-१४ ) १ ( २-३ ) वृषगणो वासिष्ठ, १ ( ४-१२ ), २ ( १-९ ) असित काश्यपो देवलो वा; २ ( १०-१२ ), ११ भृगुर्वाशिर्नमदनिर्भाग्वो वा; ३, ६ भरद्वाजो वाहंस्पाय; ४ यज्ञत आनेय, ५ मधुच्छन्वा बंधवामिन्.; ७ सिकता निवावरी, ८ पुष्टहस्ता आगिरस, ९ पर्यंतानरवो शाष्यो शिशुषिन्पावत्सराी काश्यपो वा; १० आगये विष्ण्यो ऐश्वरा १२ मत्स काश्य, १३ नृमेव आगिरस; १४ अत्रिर्मीम. ॥ १-२, ७, ९-११ पयमान. सोमः ३, १२ अग्नि, ४ मित्रायवहो, ५, ८, १३-१४ इष्ट्र, ६ इष्ट्रानो ॥ ( १-३ ), ३ विष्टुष्टुः १ ( ४-१२ ), २, ४-६ ११-१२ शायमी, ७ जगती, ८ प्रगाथ = ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ); ९ उल्लिङ्गः १० द्विषवा विराट्, १३ ( १-२ ) ककुप् १३ ( ३ ) सुर उल्लिङ्गः १४ अनुष्टुप् ॥

- १११६ प्र काश्यमुद्यनेव श्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।  
मद्विमतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९।७ )
- १११७ प्र हस्तासस्तपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अवासुः ।  
अङ्गोषिर्णं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।८ )
- १११८ स योजत उरुगायस्य जूर्तिं वृषा क्रीडन्तं मिमते न गावः ।  
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्देदृशे नक्तमृजः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।९।९ )

[ ६ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १११६ ] ( उशना इव ) उशना ऋषिके समान ( काश्यं श्रुवाणः ) काश्य बोलनेवाला ( देवः ) स्तुति करनेवाला ( देवानां जनिमा विवक्ति ) देवोंकी जीवन-कथाओंको उत्तम प्रकारसे कहता है । ( मद्वि-मतः ) महान् कार्य करनेवाला ( शुचि-बन्धुः पावकः वराहः ) वृद्ध बन्धुके समान पवित्र होनेवाला और उत्तम बलिमें तैय्यार किया गया सोम ( रेभन् पदा अभि-यति ) सम्भ्र करके हुए पावमें जाता है ॥ १ ॥

[ १११७ ] ( हस्तासः धृपगणा- ) शायी वृषगण नामक ऋषि ( आमात् ) शत्रुके सामर्थ्यसे डरकर ( धृपला यन्तुं अन्त अस्तं अयासुः ) शीघ्र कूटनेका शब्द जहाँ हो रहा था, उस स्थानपर उसी समय गए । ( सखायः ) वै मित्र-रूप ऋषि ( अङ्गोषिर्णं ) स्तुतिके योग्य, ( दुर्मर्षं ) शत्रुओंके द्वारा न सहने योग्य तथा ( पवमानं ) वृद्ध होते हुए सोमके लिए ( वाणं शार्पः प्रवदन्ति ) बाण नामक शस्त्रोंको बजाने लगे ॥ २ ॥

[ १११८ ] ( उरुगायस्य जूर्तिं ) कनेकके द्वारा की गई स्तुतिके प्राप्त होनेवाली गतिर ( सः योजते ) वह सोम प्राप्त करता है । ( वृषा प्रीडन्तं गावः न मिमते ) सहज ही बौद्धा बचनेवालेकी गतिके इतने गति करनेवाले भाव नहीं सपते । ( तिग्मशृङ्गः ) तीव्र शस्त्रके धुरज सोम ( परीणसं कृणुते ) प्रकाश फैलता है ( दिवा हरिः पशुद्ये ) दिनमें हरा बीजना है और ( नक्तमृजः ) रातमें प्रकाशपूर्ण बीजता है ॥ ३ ॥

- १११९ प्र स्वानासो रथा इवावन्तो न श्रवस्यः । सोमासो रथि अक्रमुः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१०१ )
- ११२० हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामि ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१०१ )
- ११२१ राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६ ॥  
( ऋ. १।१०१ )
- ११२२ परि स्वानास इन्द्रवो मद्राय बर्हणा गिरा । मधो अर्पन्ति धारया ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।१०४ )
- ११२३ आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उपसो भगम् । स्रा अर्पं वि तन्वते ॥ ८ ॥  
( ऋ. १।१०३ )
- ११२४ अप द्वारा मतीनां प्रजा ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१०६ )
- ११२५ समीचीनास आश्रव होतासः सप्तजानयः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।१०७ )
- ११२६ नामा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे । कवेरपत्यमा दुदे ॥ ११ ॥ ( ऋ. १।१०८ )

[ १११९ ] ( रथाः इव ) रथ और ( अर्धन्तः न ) घोड़े नितप्रकार ( श्रवस्यः ) यज्ञो इच्छा करते हुए ( राथे प्राक्रमुः ) मन मानिके लिए पराक्रम करते हैं, उत्तीप्रकार ( स्वानासः सोमासः ) घाने जाते हुए सोम शब्द भवसा पराक्रम करते हैं ॥ ४ ॥

[ ११२० ] युद्धमें जानेवाले ( रथाः इव ) रथमें समाप्त ( हिन्वानासः ) गतिमान् सोमको ( भरासः कारिणां इव ) सात ओकर जानेवाले मजदूरके हाथोंपर नितप्रकार बीज रखते हैं, उत्तीप्रकार योग ( गभस्त्यो दधन्विरे ) हाथोंमें धारण करते हैं ॥ ५ ॥

[ ११२१ ] ( सोमासः ) में सोम ( प्रशस्तिभिः राजानः न ) स्तुतियोंद्वारा राजा तथा ( सप्तधातृभिः यज्ञः न ) सात ऋत्विजोंके द्वारा मत्त नितप्रकार सुबोधित होता है, उत्तीप्रकार ( गोभिः अञ्जते ) पापके भी श्राद्धिके सुबोधित किये जाते हैं ॥ ६ ॥

[ ११२२ ] ( स्वानासः इन्द्रयः ) निचोड़े गए सोम ( बर्हणा गिरा ) महान् रतोपति प्रशस्ति होनेके बाद ( मधोः धारया ) नीचे रखकी धारसे ( मद्राय ) आनन्द बढ़ानेके लिए ( परि अर्पन्ति ) बलवाने निरते हैं ॥ ७ ॥

[ ११२३ ] ( विवस्वतः अपानासः ) इच्छने पीनेके लिए ( उपसः भगं जिन्वन्तः ) उपाका तेज बढ़ाते हुए ( स्राः ) सोमरस ( अर्धं दितन्वते ) शब्द करते हैं ॥ ८ ॥

[ ११२४ ] ( मतीनां कारवः ) स्तुति करनेवाले ( प्रजाः ) प्राचीन ( वृष्णः हरसः ) बलवान् सोमको सान्त्वितके ( आयवः ) मनुष्य ऋत्विज ( द्वारा अप ऋण्वन्ति ) यज्ञके बरपाने सोलते हैं ॥ ९ ॥

[ ११२५ ] ( समीचीनासः ) अर्थ ( जातयः ) जातिके ( एकस्य पर्जे पिप्रतः ) अनेके सोमके स्थानको पूर्ण करते हुए ( सप्त आश्रव ) सात होतागण यज्ञ करनेके लिए बैठते हैं ॥ १० ॥

[ ११२६ ] ( चक्षुषा सूर्यं दृशे ) साक्षात् सुषको देखनेके लिए ( नाभिः ) यज्ञकी नाभिकण सोमको ( ना नामा द्यादे ) श्वनी नाभिके पास अर्थात् पेटके समीप रखता है ( कथेः अपत्यं ) इसप्रकार करनेसे सोमके पुत्ररूपी तेजको में ( आ दुदे ) पूर्ण तेजस्वी करता है ॥ १० ॥

११२७ अग्निं प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षुसा ॥ १२ ॥ १ (सै) ॥  
[ धा० ५७। उ० ४। स्व० ८ ] ( ऋ. १।१।१९ )  
॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ २ ]

११२८ असुग्रमिन्दवः पथा धर्मन्तुतस्य सुधियः । विदाना अस्य योजना ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७।१ )  
११२९ प्र भारा मधो अग्निषो महीरपो नि गाहते । हविर्हविःपु चन्द्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७।२ )  
११३० प्र युजा वाचो अग्निषो वृषो अचिकददने । सघामि सत्या अध्वरः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७।३ )  
११३१ परि यत्काव्या कविनेष्णा पुनानो अपति । स्ववाजी सिपासति ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।७।४ )  
११३२ पवमानो अग्निं स्पृषो विशो राजेव सीदति । यद्दीमृष्यन्ति वेधसः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।७।५ )  
११३३ अग्या वारि परि प्रियो हरिवेनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।७।६ )

[ १२७ ] ( सूरः ) इन्द्र ( चक्षुसा ) नेत्रेति ( विधः प्रिय पदं ) सुलोकमं प्रिय नीर ( गुहाहितं ) हृदयमं रत्नं  
हुए सोमको ( अग्निं पश्यति ) देखता है ॥ १२ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ११२८ ] ( अस्य योजना विदानाः ) इस यजमानके द्वारा बनाये गए वेधता सम्बन्धी योजनाओंको जानकर  
( सुधियः इन्दव ) उत्तम सुबोधित हुए हुए सोम ( धर्मन् ) धर्मके समान ( अतस्य पथा ) धर्मके मार्गसे ( असुग्रं )  
संस्कार किए जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११२९ ] ( हविः पु चन्द्यः हविः ) हवियोंमें प्रसन्ननीय सोम ( महीः अथ विगाहते ) बहुत सारे जलोंमें  
स्नान करता है । ( मधोः अग्निषः धाराः प्र ) मोठे रसकी मुख्य धारा कक्षामें फिरती है ॥ २ ॥

[ ११३० ] ( अग्निषः युजा वाचः प्र ) हवियोंमें मुख्य यह सोम स्त्रोत्रोंको प्रथम करता है । ( वृषोः सत्याः  
अध्वरः ) बसवान्, सत्यस्वरूप और हिता न करनेवाला सोम ( सघामि अग्नि ) यज्ञकालमें ( घने अचिकदत् ) जलमें  
गहब करता हुआ आता है ॥ ३ ॥

[ ११३१ ] ( कवि पुष्णा पुनानः ) यह बुरबुरा सोम अपने बलसे मनुष्योंको शुद्ध करते हुए ( काव्या यत्  
परि अपति ) जब स्तुतिको प्राप्त होता है तब ( स्व वाजी सिपासति ) स्वर्गसे बलवान् इन्द्र यज्ञमें आनेकी इच्छा  
करता है ॥ ४ ॥

[ ११३२ ] ( यत् हं ) जब इस सोमको ( वेधसः अण्यन्ति ) ऋत्विज प्रेरणा देते हैं तब ( पवमानः ) शुद्ध  
होनेवाला सोम ( स्पृषो अग्निं सीदति ) शत्रुओंको नष्ट करनेके लिए संस्कार होता है ( विशोः राजा इध ) प्रजापति  
शत्रुओंको दूर करनेके लिए जिसप्रकार राजा जाता है, उसीप्रकार यह सोम भी जाता है ॥ ५ ॥

[ ११३३ ] ( हरिः प्रियः ) हरे रगक प्रिय सोम ( घनेषु ) घनीमें मिलाया जाकर जब ( अग्याः घारे परि-  
सीदति ) बालोंकी बनी छलनीसे छाना जाता है, तब ( रेभोः मती वनुष्यते ) शब्द करते हुए स्तुतिको वह स्वीकार  
करता है ॥ ६ ॥

११३४ स वायुमिन्द्रमक्षिणा साकं मदेन गच्छति । रथा यो अस्य धर्मणा ॥७॥ ( ऋ. २।७।७ )

११३५ आ मित्रे चरुणे भगो मयोः पवन्त उर्मयः । विद्वाना अस्य ज्ञकमभिः ॥८॥ ( ऋ. २।७।८ )

११३६ अस्मभ्यश्च रोदसी रयिं मघ्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसुनि संजितम् ॥९॥ ( ऋ. २।७।९ )

११३७ आ ते दक्षं मयाभ्युवं वह्निमद्या घृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१०॥ ( ऋ. २।६।१८ )

११३८ आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥११॥ ( ऋ. २।६।२९ )

११३९ आ रयिमा सुचेतुनमा सुकृतो तनुश्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥ २ ( ञ ) ॥  
[ या० ३८ । उ० ५ । ख० ११ ] ( ऋ. २।६।३० )

॥ इति द्वितीयः पाठः ॥ २ ॥

[ ११३४ ] ( यः अस्य धर्मणा रथा ) जो यजमान इस सोमके निबोधने भादि कामोंमें व्यस्त रहता है, ( स-वायु इन्द्रं भदिचता ) वह वायु, इन्द्र और मन्विषी देवकी पात ( मदेन साकं गच्छति ) आत्मन् देनेवाले सोमके साथ पहुँचता है ॥ ७ ॥

[ ११३५ ] जिन यजमानोंके ( मयोः ऊर्मयः ) मोठे सोमकी लहरें ( मित्रे चरुणे भगो पवन्ते ) मित्र, चरुण और भगके लिये बहती हैं, वे यजमान ( अस्य [ सोमस्य ] विद्वानाः ) इस सोमके महत्त्वको जानकर ( ज्ञकमभिः ) मुखसे युक्त होते हैं ॥ ८ ॥

[ ११३६ ] हे ( रोदसी ) दूधोक्त गीर पृथिवी देवी ! तुम ( मघ्वः वाजस्य सातये ) इन मयूर सोमरत्नकी अन्नको प्राणिके लिये ( अस्माकं ) हमें ( रयिं भयः घसुनि ) धन, अन्न और सम्पत्ति ( संजितं ) तथा ज्ञय प्राप्त कराओ ॥ ९ ॥

[ ११३७ ] हे सोम ! यह करनेवाले हम ( मयाभ्युवं ) तुम देनेवाले ( वह्निं ) धन देनेवाले ( पान्तं ) सरक्षण करनेवाले ( पुरु-स्पृहं ) अनेकों द्वारा चाहने योग्य ( ते दक्षं अद्य वा घृणीमहे ) तेरे बलकी आज भगने पात चाहते हैं ॥ १० ॥

[ ११३८ ] हे सोम ! ( मन्द्रं वा ) आत्मन् देनेवाले तेरी हम आराधना करते हैं । ( वरेण्यं वा ) श्रेष्ठ वा चाहने योग्य तेरी हम सेवा करते हैं । ( विप्रं वा ) ज्ञानयुक्त तेरी हम उपसन्ना करते हैं । ( मनीषिणं वा ) बुद्धिते युक्त तेरी हम श्रुति करते हैं । ( पान्तं पुरुस्पृहं वा ) रक्षण करनेवाले और अनेकों द्वारा स्तुति करने योग्य तेरी हम भक्ति करते हैं ॥ ११ ॥

[ ११३९ ] हे ( सुकृतो ) उत्तम यत्न करनेवाले सोम ! ( रयिं वा ) धनके लिये हम प्रार्थना करते हैं, ( सुचेतुनं वा ) उत्तम शक्तके लिये हम प्रार्थना करते हैं, ( तनुषु वा ) पुत्रपौत्रिके लिये हम प्रार्थना करते हैं । ( पान्तं पुरुस्पृहं वा ) रक्षण करनेवाले और बहनों द्वारा प्रशंसनीय तेरी हम आराधना करते हैं ॥ १२ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ]

- ११४० मूर्धानं दिवा अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमुत् आ जातमभियम् ।  
 कविश्सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।७।१ )
- ११४१ त्वां विश्वे अमृतं जायमानश्चिद्युं न देवा अभि सं नवन्ते ।  
 तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पिशोरदीदेः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।७।४ )
- ११४२ नाभि यज्ञानाश्सदनश्चरयोणां महामाहावमभि सं नवन्त ।  
 वैश्वानरश्चरथमध्वराणां यत्तस्य क्रतुं जनयन्त देवाः ॥ ३ ॥ ३ ( ऋ. ६।७।५ )
- [ धा० १६ । उ० १ । स्व० ५ ] ( ऋ. ६।७।५ )
- ११४३ म वो मित्राय मायत वरुणाय विषा गिरा । महिक्षनाष्टु वृहत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।६।११ )
- ११४४ सम्राजा या घृतयोनि मित्रशोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।६।१२ )
- ११४५ ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥ ४ ( र. ११ )
- [ धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ५।६।१५ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ११४० ] ( दिव्यः मूर्धानं ) दुनोकके मतक, ( पृथिव्याः अरतिं ) भूमिमें जानेवाले, ( वैश्वानरं ) सब मनुष्योंके हितकारक, ( क्रते वा जा नं ) यत्के लिए उत्पन्न हुए हुए, ( कविश्सम्राजं ) ज्ञानी और सम्राट्, ( जनानां अतिथिं ) लोगों द्वारा पूजनीय, और ( आसन्नः ) देवताओंके मूलस्थली ( नः परतं अग्निं ) हमारे संरक्षक अग्निको ( देवाः आ जनयन्त ) ऋत्विज यत्नें जरजियेते उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

[ ११४१ ] हे ( अमृत ) अमर जाने ! ( विश्वे देवाः ) सब देव सब ऋत्विज ( जायमानं त्वां ) प्रकट होते ही तुम ( चिद्युं न अभि सं नवन्ते ) बालकके समान सम्मानित करते हैं । हे ( वैश्वानर ) विद्वान्के नेता आने ! ( यत् पिशोः अदीदेः ) जब पासन करनेवाले तुमोः और पृथ्वीलोकके बीचमें सू प्रवीण हुए, तब यजमान ( तव क्रतुभिः ) तेरे यत्नें कारण ( अमृतत्वं आयन् ) देवत्वको प्राप्त हुए ॥ २ ॥

[ ११४२ ] ( यज्ञानां नाभि ) यत्की नाभि ( रयोणां सदनं ) यत्के अण्डार ( महामाहाव्यं ) जिसमें बड़ी बड़ी आहुतियें की जाती हैं ऐसी अग्निकी ( अभि सं नवन्ते ) ऋत्विजलोग स्तुति करते हैं । ( वैश्वानरं ) सब विद्वान्के नेता ( अध्वराणां रथं ) हितकारक यत्के चालक ( यक्षस्य क्रतुं ) यत्के चक्रण ऐसे अग्निको ( देवाः जनयन्त ) ऋत्विजोंने भेष करके उत्पन्न किया ॥ ३ ॥

[ ११४३ ] हे ऋत्विजो ! ( मः मित्राय घटणाय ) तुम मित्र और वरुणके लिए ( विषा गिरा मायत ) मोटी आवाजमें मायत करो । ( महि-क्षत्री ) महान् क्षात्रके मूल मित्र और वरुणो ! ( श्रतं वृहत् ) यत्के स्थानपर बड़ी स्तुति सुननेके लिए आओ ॥ २ ॥

[ ११४४ ] ( या मित्रः घटणः च ) जो मित्र और वरुण ( उभा सम्राजा ) दोनों ही सम्राट् हैं, ( घृत-योनि देवा ) अन्न उत्पन्न करनेवाले तथा प्रजाजमान ( देवेषु प्रशस्ता ) देवोंमें प्रशस्तलोग हैं ॥ २ ॥

[ ११४५ ] ( ता ) वे मित्र और वरुण ( नः ) हमें ( दिव्यस्य, पार्थिवस्य ) दुनोकके और पृथ्वीवरण ( महः रायः शक्तं ) महान् यत् देनेमें सक्ते हैं । हे देवो ! ( घां ) तुम शोभेंगे ( महि क्षत्रं ) महान् क्षात्रक ( देवेषु ) देवोंमें प्रसिद्ध हैं ॥ ४ ॥

११४६ इन्द्रा याहि चित्रमानो सुता इमे न्यायवः । अर्षीभिस्तना पूतासः ॥१॥ ( ऋ. १।३४ )

११४७ इन्द्रा याहि धियेयितो विश्रजतः सुतायतः । उप ब्रह्माणि यायतः ॥२॥ ( ऋ. १।३५ )

११४८ इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्वनः ॥३॥ ५ ( ही ) ॥

[ घा० १६ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १।३६ )

११४९ तमीडिष्व यो अर्षिया घना विश्वा परिष्वजत् । कृष्णा कृष्णाति जिह्वया ॥ १ ॥

( ऋ ६।६०।१० )

११५० य इद्द आविवासति सुसमिन्द्रस्य मर्यः । युस्त्राय सुतरा अपः ॥ २ ॥ ( ऋ ६।६०।११ )

११५१ ता नो वाजवतीरिप आशून् विपुत्रमर्यतः । एन्द्रमर्थि च चोदवे ॥ ३ ॥ ६ ( य ) ॥

[ घा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ६।६०।१२ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

११५२ प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृत सखा सख्युने प्र मिनाति सङ्गिरम् ।

मर्थ्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलये शतयामना पथा ॥ १ ॥ ( ऋ ९।८६।१६ )

[ ११४६ ] हे ( चित्रमानो इन्द्र ) विशेष प्रकारमानु इन्द्र ! ( आयाहि ) आ । ( अर्षीभिः सुताः ) अनुलिपिते निचोडे गए ( तना पूतासः ) उत्तम सुदृढ करके रले गए ( इमे ) मे सोमरस ( न्यायवः ) तेरे लिए हैं ॥ ५ ॥

[ ११४७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( धिया धियतः ) मुझिले प्रेरित होकर ( विश्रजतः ) ऋत्विजों द्वारा बुलाया गया हूँ ( सुतायतः पाद्यतः ) सोमरस लेख्यार करके स्तुति करनेवालोंके द्वारा बोले जानेवाले ( ब्रह्माणि ) स्तोत्रोंको सुननेके लिए ( उप आयाहि ) यतके पास आ ॥ २ ॥

[ ११४८ ] हे ( हरिवः ) घोड़े पालनेवाले इन्द्र ! तू ( तूतुजानः ) घोस्र ही ( ब्रह्माणि उप ) स्तोत्र सुननेके लिए पास आ और ( सुते नः चतः दधिष्व ) इस याममें हमारी हृदयोंको ग्रहण कर ॥ २ ॥

[ ११४९ ] ( यः अर्षिया ) जो अपने तेजसे ( विश्वा घना ) सब बनोंको ( परिष्वजत् ) घेर लेता है, और ( जिह्वया कृष्णा कृष्णाति ) जवालाते भस्मको कलसा कर देता है । ( तां ईडिष्व ) उस अग्निको स्तुति कर ॥ २ ॥

[ ११५० ] ( यः मर्यः ) जो ऋत्विज ( इदो ) प्रयोज्य हुई अग्निमें ( इन्द्रस्य सुसुं ) इन्द्रको सुखदायक हवि ( आ यिवासति ) अर्पण करता है, उसके ( युस्त्राय ) तेजके लिए ( सुतराः अपः ) उत्तम और चरत्तासे पार करने योग्य पानी इन्द्र देता है ॥ २ ॥

[ ११५१ ] हे इन्द्र और अग्नि ! ( ताः ) वे तुम ( इन्द्रं च अग्निं आ चोदवे ) इन्द्र और अग्निको वेदताओंकी ओर पहुँचानेके लिए ( नः ) हमें ( वाजवतीः हयः ) यल यजानेवाले अश्व और ( आशून् अर्यतः ) घोस्र चलनेवाले घोड़े ( विपुत्रं ) भे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ११५२ ] ( इन्द्रुः ) सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं ) इन्द्रके वेदमें ( प्रो अयासीत् ) गया । ( सखा ) विश्वरूपी यह सोम ( सख्युः च ) अपने मित्ररूपी इन्द्रके । ( सं गिरं न प्रमिनाति ) वेदमें कोई बन्ध नहीं देता, ( मर्थ्यः युवतिभिः इव ) युवज जैसे तदण स्त्रियोंसे मिलता है, ( जसोप्रहारः ) सोम पानेके साथ मिलाया जाता है, ( यदने वह सोम ) शतयामना पथा ) संकरी तरहसे जाने योग्य मार्गसे ( कन्दो ) कलशमें जाता है ॥ १ ॥



११५३ प्र वा धियां मन्द्रयुवा विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः ।

हरिं क्रीडन्तमभ्यनूपते स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदग्निश्रयुः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८६।१७ )

११५४ आ नः सोम संयते पिप्युषीमिपिमिन्दो पवस्य पवमान ऊर्मिणा ।

या नो दोहते त्रिरहन्नसश्नुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ७ ( ठि ) ॥

[ धा० २८।७०२।२७०३ । ( ऋ. १।८६।१८ ) ]

११५५ न किं कर्मणा नशयश्चकार सदाश्रयम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तंभृश्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७०।२ )

११५६ अपादुम्रं पृतनासु सासाहि यस्मिन्महीरुञ्जयः ।

सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोननुः ॥ २ ॥ ८ ( ही ) ॥

[ धा० १६।७०।१।२७०४ ] ऋ. ८।७०।४ )

॥ इति षतुर्थाः लघ्वः ॥ ५ ॥

[ ११५३ ] हे सोम ! ( यः धियः ) तुन्द्रयुवा वृद्धि का ध्यान करनेवाले ( मन्द्रयुवाः ) आतन्ववर्षक ( पनस्युवः ) स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले ( विपन्युवः ) स्वीतावन ( संवरणेषु प्राक्रमुः ) यतमश्रयमें यतकर्म करने लगते हैं, तब ( स्तुमः ) स्तुति करनेवाले ( हरिं क्रीडन्तं ) हरे रमके तथा खेलनेवाले तुम सोमकी ( अभ्यनूपते ) स्तुति करते हैं, उस समय ( धेनवः ) गायें ( पयसा इत् अभिशिश्रयुः ) अपने दूधसे इस सोमकी सेवा करती हैं ॥ २ ॥

[ ११५४ ] ( पवमान इन्दो सोम ) हे शुद्ध होनेवाले तेजस्वी सोम ! ( या [ इद ] ) जो भय ( नः अहन् विः अ नदुषी ) हमारे एकदिवसके तीनों सबनोंमें राधा न आलते हुए ( क्षुमत् वाजयत् ) प्रतिद्वय बलवर्षक ( मधुमत् सुवीर्यं दोहते ) उत्तमतासे दूध उत्तम बीरपुत्र देता है । उस ( नः संयुतं पिप्युर्यं इप ) हमारे द्वारा लाये गए वीरक अदकी ( ऊर्मिणा पवस्य ) अपनी लहरिते शुद्ध कर ॥ ३ ॥

[ ११५५ ] ( यः ) जो यतकर्ता ( सदाश्रयं विश्वगूर्तं ) सदा वशनेवाले, सबकी द्वारा स्तुति करनेके योग्य, ( ऋश्वसं ) महान् ( ओजसा अश्रुष्टं ) अपनी शक्तिसे अपराभूत अर्थात् शत्रुसे न हारनेवाले ( धृष्णुं ) पर शत्रुओंकी हारनेवाले ( न इन्द्रं ) प्रशंसित इन्द्रका ( यज्ञैः चकार ) यज्ञोंसे साकार करता है, ( ते ) उसकी ( कर्मणा न किं नदात् ) अपने कर्मसे कोई मन्त्र नहीं कर सकता ॥ १ ॥

[ ११५६ ] ( यस्मिन् जायमाने ) जिस इन्द्रके अकट होते ही ( महीः ) उरुञ्जय, धनवः ) महान् वेदशास्त्र गायें ( समनोननुः ) उसे प्रशंस करती हैं, उनीप्रकार ( द्यावाः क्षामी- समनोननु ) दृक्लोक और पृथ्वीलोक भी जिसके आगे शत्रुते हैं उस ( अपादुं उम्रं ) शत्रुको हारनेवाले, भयकर और ( पृतनासु सासाहि ) युद्धमें साहस दिखानेवाले इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[ ५ ]

- ११५७ सखाय आ नि पीदत् पुनानाय प्रगायत । शिशु नः यज्ञैः परिभूयत श्रिये ॥ १ ॥  
 ( ऋ. १।१०४।१ )
- ११५८ समी वरते न मातृभिः सृजता मयसाधनम् । देवाव्यंश्मदमभि द्विशषत्सम् ॥ २ ॥  
 ( ऋ. १।१०४।२ )
- ११५९ पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्षाय वीतये । यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥ ३ ॥ ९ (वि) ॥  
 [ धा० १५। उ० १। स्व० ३ ] ( ऋ. १।१०४।३ )
- ११६० प्र वाज्यक्षाः सहस्रघारास्तिः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०९।१६ )
- ११६१ स वाज्यक्षाः सहस्रेता अद्रिर्मुजानो गोभिः श्रीणानः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१०९।१७ )
- ११६२ प्र सोम बाहीन्द्रस्य कुशा नृभिर्यमानो अद्रिभिः सुतः ॥ ३ ॥ १० (पु) ॥  
 [ धा० १५। उ० १। स्व० ९ ] ( ऋ. १।१०९।१८ )
- ११६३ ये सोमासः परावति ये अनावति सुन्विर । ये वादः शर्यणावति ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६५।२२ )
- ११६४ य आजर्केषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६५।२३ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ११५७ ] हे ( सखाय ) ऋत्विजो ! ( आ निपीदत् ) वेधे, ( पुनानाय प्रगायत ) गृह्य होनेवाले सोमके लिए गल करो, ( शिशु नः ) बालकको जिसप्रकार पिता मातृवर्षीने सजाता है, उसीप्रकार ( यज्ञैः श्रिये परिभूयत ) यज्ञोंसे इसकी गोभा बढ़ाओ ॥ १ ॥

[ ११५८ ] हे ऋत्विजो ! ( गय-साधनं ) घरके साधनरूप ( देवाव्यंश्मदं ) वेदोंके रक्षा और आनन्द वशनेवाले ( द्वि-शाय्यंश्मदं ) दोनों प्रकारके बल बजानेवाले इस सोमको ( मातृभिः वरते न ) माताओंके साथ जितप्रकार बच्चे मिलकर रहते हैं, उसीप्रकार ( अभि संरुजत ) जलके साथ मिलाओ ॥ २ ॥

[ ११५९ ] ( शर्षाय ) वेगके लिए ( वीतये ) वेधोंको वेनेके लिए ( मित्राय, वरुणाय ) मित्र और बरुणके लिए ( यथा शन्तमं ) जितप्रकार अधिक गुल ही उसप्रकार ( दक्ष-साधन पुनाता ) बल बजानेवाले सोमको गल करो ॥ ३ ॥

[ ११६० ] ( चाजी सहस्रघारः ) बलवान और अनेक घारओंके छाना जानेवाला सोम ( अत्र्य घारं पवित्रतिः ) प्राश्नाः ) बालोंको घनी छलनीके छाना जाता है ॥ १ ॥

[ ११६१ ] हे ( सहस्रेता-येताः ) अनेक बलके युक्त ( अद्रिः मुजानः ) बलसे भोया जानेवाला ( गोभिः श्रीणानः सः ) चाजी ) गलके बूधते मिलाया जानेवाला यह बलवान् सोम ( अक्षाः ) छाना जाता है ॥ २ ॥

[ ११६२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( नृभिः येमानः ) ऋत्विजोंके द्वारा नियममें रखा गया ( अद्रिभिः सुतः ) पारसीके कृत्कर निषोषा गया ( इन्द्रस्य कुशा ) इन्द्रके वेद्यमें ( प्र साहि ) भर जा ॥ ३ ॥

[ ११६३ ] ( ये सोमासः ) जो सोम ( परावति ) बूढके देगमें तथा ( ये अनावति सुन्विर ) जो पालके देगमें छाने जाते हैं, ( या ये अदः शर्यणावति ) अथवा जो इत शर्यणावत् नामक हरीबरके पास छाने जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११६४ ] ( ये आजर्केषु ) जो सोम ऋत्वीक देगमें ( ये कृत्वसु ) जो कर्म करनेवालोंके देगमें ( पस्त्यानां मध्ये ) जो नवीने बिनादे ( या ये पंचसु जनेषु ) अथवा जो पचगनेने घोषमें छाना जाता है, वह हर्षे पृष्ये ॥ २ ॥

११६५ ते नो वृष्टि दिवस्पति पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥ ३ ॥ ११ (चि) ॥  
[ धा० ७ । उ० १ । स्व० ३ ] (ऋ. १।६९।२४)

॥ इति पचम खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

११६६ आ ते वत्सो मनो यमत्परमाचितसधस्यात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ १ ॥ (ऋ. ८।११।७)

११६७ पुरुषा हि सदङ्गुमि दिशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा इवामहे ॥ २ ॥ (ऋ. ८।११।८)

११६८ समत्सुभिर्मवसे वाजयन्तो इवामहे । वाजेषु चित्ररावसम् ॥ ३ ॥ १२ (ठा) ॥  
[ धा० १३ । उ० २ । स्व० २ ] (ऋ. ८।११।९)

११६९ त्वं न इन्द्रा भर औजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । ओ वीरं पृतनासहम् ॥ १ ॥  
(ऋ. ८।९।८।१०)

११७० त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता श्रतक्रवो वभूविथ । अथा वे सुन्नमीमहे ॥ २ ॥  
(ऋ. ८।९।८।११)

११७१ त्वां शुभिन्पुरुहूत वाजयन्तुषु ब्रूवे सदस्कृत । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ १२ (ल) ॥  
[ धा १४ । उ० नास्ति । स्व० १ ] (ऋ. ८।९।८।१२)

[ ११६५ ] ( स्वानाः देवासः इन्दवः ) निचोडे गए थे चमकनेवाले सोमरस ( नः दिवस्पति ) हमें घृतीकले ( वृष्टि सुवीर्य आ पवन्ताम् ) वृष्टि और उत्तम पराक्रम युक्त अन्न देवें ॥ ३ ॥

॥ यहां पाँचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पद्यः खण्ड ।

[ ११६६ ] हे ( अग्ने ) मन्ने ! ( वत्सः ) बल ऋषि ( गिरा त्वां कामये ) तेरी स्तुति करके धारता है, कि ( ते मनः ) तेरा मन ( परमात् चित् सधस्यात् ) बहुत ऊँचे स्थानसे भी ( आ यमत् ) यज्ञों आने ॥ १ ॥

[ ११६७ ] हे अग्ने ! ( तू ( पुरुषा हि सदङ्गु अस्ति ) सब जगह एक जैसी वृष्टि रहनेवाला है, इस कारण तू ( विश्वा-दिशो-अनु प्रभु ) सब दिशाओंके अनुकूल प्रभु है, इसलिए ( समत्सु त्वा इवामहे ) सधाममें तुझे सहायताके लिए हम दुफते हैं ॥ २ ॥

[ ११६८ ] ( समत्सु वाजयन्तः ) सधाममें बलका उपयोग करनेवाले हम ( अयसे ) संरक्षणके लिए ( वाजेषु ) सधाममें ( चित्र-रावसे ) बिलक्षण पराक्रम करनेवाले ( अग्नि इवामहे ) अग्निको सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ ११६९ ] ( शतक्रतो विचर्षणे इन्द्र ) हे सैकड़ों कर्म करनेवाले विरिधे ज्ञानी इन्द्र ! तू ( न नृम्णं औजः आ भर ) हमें शीघ्रयुक्त बल भरपूर दे, जसोप्रकार ( पृतना-सहं वीरं आ ) युद्धमें शत्रुको हरानेवाले वीरयुध दे ॥ १ ॥

[ ११७० ] हे ( वसो शतक्रतो ) निवासक और सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( त्वं नः पिता वभूविथ ) तू हमारा पिता है । ( त्वं माता ) तू माता है । ( अथा वे सुन्नं ईमहे ) इसलिए तेरे पास हम तुल्य भाँगेके रूप आते हैं ॥ २ ॥

[ ११७१ ] हे ( सदस्कृत ) बलके लिए प्रसिद्ध ( शुभिन् ) सामर्थ्यवान् और ( पुरुहूत ) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! ( वाजयन्तं त्वा उपमुषे ) बलवान् तेरी हम स्तुति करते हैं ( सः नः सुवीर्यं रास्व ) बहुत ही उत्तम वीर्य दे ॥ ३ ॥

११७२ यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।

राघस्तन्नो विदद्मस उमयाहस्त्या भर ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३९।१ )

११७३ यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर । विद्याम तस्य वे वयमकूपारस्य दावनः ॥ २ ॥

( ऋ. १।३९।२ )

११७४ यत्ते दिक्षु प्रशस्य मनो अस्ति श्रुतं वृहत् ।

तेन वृडा चिदद्रिय आ वाजं दर्पिं सातये ॥ ३ ॥ १४ ( पी ) ॥

[ षा० २५ : उ० १ : २७० ४ ] ( ऋ. १।३९।३ )

॥ इति षष्ठं खण्डं ॥ ६ ॥

॥ इति षतुर्धंप्रपाठस्य द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥ षतुर्धंप्रपाठस्य समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

[ ११७२ ] हे ( अद्रियः चित्र इन्द्र ) बध्मधारी विलक्षण बलवान् इन्द्र ! ( त्वादातं यत् मे इह नास्ति ) तेरे द्वारा लिए गए जो धन मेरे पास यहाँ नहीं है । हे ( विदद्मसो ) धनयुक्त इन्द्र ! उन धर्मों ( तत् उमयाहस्त्या ) धर्मों ही हारमंति ( नः आभर ) हमें भरपूर दे । १ ॥

[ ११७३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् द्युक्षं वरेण्य मन्यसे ) जिते वृ तेजसको भीरु धेनु धनता है ( तत् व्याधर ) यह धन हमें भरपूर दे । ( ते वयं ) ये हम ( तस्य अकूपारस्य ) उस ज्ञान धनके ( दावनः ) बान सेनेवाले होंगे ॥ २ ॥

[ ११७४ ] हे ( अद्रियः ) बध्मधारी इन्द्र ! ( ते दिक्षु प्रशस्यं ) तेरा नाम विशाखोंमें प्रशस्तनीय ( धृत वृहत् यत् मनः अस्ति ) तथा सुप्रसिद्ध महान् जो मन है, ( तेन वृडा चिद्वत् ) इस मनसे बृहते वृज धनको भी ( वाजं सातये आदर्पिं ) बल ब्रह्मनेके लिए हमें दे । ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥

## अष्टम अध्याय

देवीका राजा इन्द्र है । उसके गुण इस आठवें अध्यायमें इस प्रकार हैं—

१ चित्र-भानु [ ११४६ ]- विलक्षण प्रकाश करनेवाला ।

२ खदा-धृषः [ ११५५ ]- हमेशा बजते रहनेवाला ।

३ विश्व-गूर्तः [ ११५५ ]- सबके द्वारा स्तुति करने योग्य, प्रशंसायोग्य ।

४ मन्त्र्यसः [ ११५५ ]- महान्, बड़ा ।

५ भोजसा अ-पृष्टः [ ११५५ ]- भयने विनये शक्तिके कारण धर्मो भी हारनेवाला नहीं है, होनेसा विजयो ।

६ अयातः [ ११५६ ]- शत्रुको हारनेवाला, स्वर्द धर्मो न हारनेवाला ।

७ उग्रः [ ११५६ ]- ऊपबोर, गूर ।

८ पुत्नानु सासदिः [ ११५६ ]- पुत्रमें शत्रुधर्मको हारनेवाला, संग्राममें विजयो ।

९ शतकतुः [ ११६९ ]- संकडों महान् वायं उत्तम रीतिते करनेवाला ।

१० विचरिणीः [ ११६९ ]- विरोध जानी ।

११ वसु- [ ११६९ ]- धनवान्, निवास करनेवाला ।

१२ सहस्रकृतः [ ११७१ ]- बलके लिए प्रसिद्ध ।

१३ पुरहुत [ ११७१ ]- बहुत लोभ जिते सहानुताके लिए बुलाते हैं ।

१४ वाजयन् [ ११७१ ]- बलशाली, सामर्थ्यवान् ।

१५ अद्रियः [ ११७२ ]- बख्ख हाथोंमें धारण करनेवाला । पहाड़पर किलेमें रहनेवाला ।

१६ चित्र [ ११७२ ]- बिलक्षण, बलशाली ।

१७ विद्वंसुः [ ११७२ ]- धनयुक्त, धनका दान करनेवाला ।

१८ विवस्थान् [ ११७३ ]- विशेष तेजस्वी ।

ये गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं । ये गुण यदि उपासक अपने वावर बढाते तो उनकी चारों ओर प्रशंसा होगी । मनुष्य इस रीतिते उत्तम हों, इसीलिए ये देवोंके गुण यहां कहे हैं । अब इन्द्रके दूसरे वर्णन देखें—

१ धिया दीपत विप्रजूत सुतायतः पाघतः प्रज्ञाणि उप आयादि [ ११७७ ]- हे इन्द्र ! बुद्धिपूर्वक प्रार्थना करने बुलाया गया, बाह्यणिके द्वारा नियमित, सोमरस जितके लिए तैयार किया गया है, जितकी स्तुति बलती है ऐसा तू स्तोत्रोंको सुननेके लिए यशके पास आ ।

२ यः मर्त्यः इहे इन्द्रस्य सुखं हविः आ दिया सति, पुम्नाय सुतर अपः [ ११५० ]- जो मनुष्य प्रदीप अनिमें इन्द्रको प्रिय लगनेवाले हवि इन्द्रोंका बर्षण करता है उसके तेजके लिए इन्द्र बुद्धि करके उत्तम रीतने योग्य पानी देता है ।

इन्द्र देवताके प्रेमके लिए कुछ विशेष हवनोप द्रव्य हैं । अग्नि अन्नकर उन द्रव्योंका हवन करनेसे अच्छी बर्षा होती है, और उससे बहुत पानी होता है । ये हवन द्रव्य कौनसे हैं उनकी खोज आवश्यक है ।

३ औजसा अ-प्रभृष्ट इन्द्र यज्ञैः चकार, सं न किः फर्मणा नशान् [ ११५५ ]- अपने सामर्थ्यसे नित्य विजयी इन्द्रका यशोंके जो सत्कार करता है, उसे अपने कर्मके कोई भी मध्य नहीं कर सकता । इसना उस पशुकर्ताका सामर्थ्य बढता है । यह बलकेका अर्थ हैचल सत्कार करना ही नहीं है, अपितु ( १ ) सत्कारके योग्य सज्जनोंका राष्ट्रमें सत्कार

ही, ( २ ) राष्ट्रमें सघटन ही, ( ३ ) सत्कारको दान देकर लोक कल्याण करें, ऐसे तीन प्रकारके कार्य यत्न करने होते हैं । ये कार्य राष्ट्रहितकी मृष्टिते जो करता है उसका सामर्थ्य उसकी इस लोकसेवाके कारण बढता है, इसलिये उसका कोई पाप नहीं कर सकता ।

४ हे इन्द्र ! नृपणं भोजः पृतनासद्वै वीरं नः आभर [ ११६९ ]- हे इन्द्र ! हमें पीरवपुक्त बल दे, और युद्धमें शत्रुका नाश करनेवाला पुत्र भी दे ।

५ हे शुष्मिन् ! त्वां उपगृये, नः सुवीर्यं रास्व [ ११७१ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरी मे प्रार्थना करता हूँ । तू हमें सामर्थ्य दे ।

६ हे इन्द्र ! यत् पुक्ष्वरेष्यं मन्यसे तत् आ भर तस्य अकूपारस्य दावनः विधाम [ ११७३ ]- तेरे विचारमें जो धन तेजस्वी और श्रेष्ठ है, वे धन हमें भरपूर दे । उस उत्तम और श्रेष्ठ धनके लेनेवाले हव ही ।

७ हे इन्द्र ! त्या दातं यत् मे इदं नास्ति, तत् उभयादृस्ती नः आ भर [ ११७२ ]- तेरे द्वारा दिए गए जो धन मेरे पास नहीं है, उन्हें तू हमें दोनों हाथसे भरपूर दे ।

८ हे वसो शतकतो ! एवं न पिता, त्वं माता यभूयिषि ! अथ ते सुखं ईमहे [ ११७० ]- हे निवासीक और संकडों कार्य उत्तम रीतिते करनेवाले इन्द्र ! तू हमारा पिता और तू ही हमारी माता है, इसलिये तुमसे हम सुख मागते हैं ।

९ हे अद्रिय ! ते दिक्षु प्रसाधं श्रुतं बृहत् यत् मन अस्ति, तेन दडा चित् याजं सातये आर्विषि [ ११७४ ]- हे बख्खारी इन्द्र ! तेरा सब दिशाओंमें प्रसन्नतीय जो विशाल मन है । उस अपने मनसे जो धन दृढ़ हो गए हैं उनको भी हमारे बल बढानेके लिए हमें दे ।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन इस अध्यायमें आया है ।

### अग्नि

१ तथ क्रतुभिः अमृतत्वं आधन् [ ११४१ ]- पशुपाल यशोंके द्वारा अमृतत्वको प्राप्त होगया ।

२ वैश्वानरं अघ्रराणां रथं यक्षस्य केतुं देवाः जनयन्त [ ११४२ ]- विश्वका नेता, हितारहित यत्कर्ताका सत्पालक, यशके पञ्च ऐसे पुत्र अग्निको देवोंने उत्पन्न किया ।

३ यः आर्चिषा विभवा यना पटियजत्, निवद्या

रूपा कराति तं इडिप्य [ ११४५ ]- जो अपने इवालाते सप्त जगनोंको जला मालता है, और अपनी उवासायें सब काला करता है, उस अग्निकी स्तुति कर ।

अग्नि अपनी उवालाते जगलको भस्म कर देता है, और जिस मार्गसे वह बनको जला वेता है, वहाँ वहाँ काला कर देता है । ऐसा वह अग्निदेव स्तुति करनेके योग्य है ।

४ अत्रसे चित्र-राघवसं अग्नि हवामहे [ ११६० ]- अपने सरभ्रणके लिए बिलक्षण पराक्रम करनेवाले अग्निको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

५ दिव्य मूर्धानं पृथिव्याः अराति वैभवानरं कृते आज्ञातं, कथं सस्राज्ञं जनायां अतिथिं आसन्, सः पार्थं देवाः आ जनयन्त [ ११४० ]- पृथिवीके मस्तकके स्थानपर रहनेवाले, पृथ्वीपर फिरनेवाले, विश्वके नेता, यज्ञके लिए उत्पन्न हुए, मानी और सभ्राट्, लोगोंकी और अतिथिके रूपमें जानेवाले, देवोंके मुख और हमारे सरलक ऐसे अग्निको देवोंने उत्पन्न किया ।

इस प्रकार अग्निका वर्णन इत अध्यायमें लाया है ।

### इन्द्र और अग्नि

१ इन्द्र अग्नि च आ वोद्वेच नः याज्ञघतीः इपः, आशुत् अर्धतः पिपूतं [ ११५१ ]- इन्द्र और अग्निको देवोंकी और बहुवानके लिए हमें बल बढ़ानेवाले अन्न और चरल घोड़े दो ।

ऐसे बंते अन्न हमें नहीं चाहिए, अपितु बल बढ़ानेवाले चाहिए । घोड़े भी ऐसे बंते नहीं, अपितु तेज बोझनेवाले और अव्यक्त बलक चाहिए । यह सब योजना यहाँ बँतने योग्य है ।

### मित्र और वरुण

इस अध्यायमें मित्र और वरुणकी भी पौष्टीसी स्तुति प्राई है, जो इसप्रकार है—

१ मित्राय वरुणाय विद्या मित्रा गायत । अग्नि इन्द्राः श्रुतं गृह्णु [ ११४३ ]- मित्र और वरुणके लिए स्तोत्रोंकी बड़ी आवाजते पाओ । महान् बलोंकी धारण करनेवाले मित्रावधयो ! यज्ञमें तुम्हारी बड़ी स्तुति हो रही है, जो तुम्हेंके लिए भागो ।

२ उभा सस्राज्ञा पृतपोनी देवा देवेषु प्रधास्ता [ ११४४ ]- मित्र और वरुण ये दोनों ही महान् सभ्राट् हैं ।

२१ [ साम हिन्दी भा २ ]

ये बल उत्पन्न करनेवाले देव हैं इसलिए वे पाव देवोंमें गायत्रिक प्रशस्ति है ।

३ तान् दिव्यस्य पार्थिवस्य महः रायः शकनं, यां देवेषु महि क्षामम् [ ११४५ ] वे मित्र और वरुण पृथिवी और पृथिवीपरके सब महान् धन देवोंमें समर्थ हैं । तुम दोनोंके महान् साम्रज्य देवोंमें भी प्रसिद्ध है ।

४ शर्षाय वीतये मित्राय वरुणाय यथाज्ञातं वृक्षसाधनं पुनाता [ ११५५ ]- बल बढ़ानेके लिए और देवोंकी देवोंके लिए तथा मित्र और वरुणको जितप्रकार आनन्द हो, उसप्रकार बल बढ़ानेके साथसाथ हीमको शुद्ध करो ।

### देवोंके लिए सोमरस

सोमरस यज्ञमें निचोड़ते हैं, वह देवोंकी दिया जाता है, यज्ञमें धन करनेवाले पीते हैं । इस विषयमें पौष्टीसा वर्णन इस प्रकार है—

१ स यासुं, इन्द्रं, अधिना मयेन साके गच्छति [ ११३४ ]- यह सोमरस यासु, इन्द्र, अधिनो आदि देवोंके पात अपने इवाभाविक आनन्दके साथ पशुचता है ।

२ अयोः ऊर्मयः मित्रे वरुणे भगो पश्यते [ ११३५ ]- इस सोमरसकी सहर्ष मित्र, वरुण और भग आदि देवोंके पात पशुचती है ।

३ हे सोम ! तुमि, येमानः अग्निभिः सुप्तः इन्द्रस्य कुशा प्र याहि [ ११६२ ]- हे सोम ! अग्निजों द्वारा धरतीके ऊपर निचोड़ा गया तू इन्द्रके पैरमें जाता है ।

### सोम स्वर्गमें रहता है

१ इन्द्र-य न दिवस्पारि पृथि सुवीर्य आ पयतां [ ११५५ ]- सोमरस हमारे लिए स्वर्गलोकोके वृष्टि और उतम पराक्रम करनेकी शक्ति लाता है ।

### सोमके गुण

- १ देवः [ ११३६ ]- चमरनेवाला, स्वर्गमें रहनेवाला ।
- २ अग्निप्रतः [ ११३६ ]- महान् बल करनेवाला ।
- ३ सुचि-यन्तुः [ ११३६ ]- शुद्ध बलुके समान ।
- ४ पायकः [ ११३६ ]- शुद्ध, पवित्र करनेवाला ।
- ५ घराहः [ ११३६ ]- बलवान्, जितप्रकार सभ्राट् अन्धे दिनोंके पडे हैं ।
- ६ इन्द्रुः [ ११५२ ]- तेजस्वी ।

७ सखा [ ११५२ ]-मित्र, मित्रके समान हित करनेवाला ।  
८ गायसाध्वनः [ ११५८ ]- पत्रस्थानका मुख्य साधन,  
प्रकाश मुख्य साधन ।

९ देवाद्यः [ ११५८ ]- देवोंके देवत्वकी रक्षा करनेवाला ।

१० द्विषावम् [ ११५८ ]- दो प्रकारके बल जिसके पास हैं । दिव्य और पार्थिव बल जिसके पास हैं ।

इसप्रकार इस सोमके गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं ।

### सोमका चमकना

१ तिग्मशुंगः परीणसं कृणुते, दिवा हरिः द्युशो,  
नक्तं अज्ज [ १११८ ]- बह सोम सोशय किरणोंसे प्रकाश  
करता है, दिनमें हरा बोधता है और रातमें चमकता है ।

### सोमके बल

सोमरसमें सामर्थ्य बढ़ानेका गुण है । इसीलिए उत रसको  
देव पीते हैं, और रासकोंका सहार करते हैं । सोमके ये बल  
वेदमंत्रोंमें अनेक प्रकारसे वर्णित हैं । उनमेंसे कुछ स  
प्रकार हैं—

१ ते मयोभुवं वान्हि पान्तं पुरुस्पृहं दक्षं अथ  
आधृणीमहे [ ११३७ ]- हे सोम ! तेरे सुखवायो, दृष्ट-  
स्थानपर पहुँचानेवाले, संरक्षण करनेवाले, बहुतां हारा  
प्रशस्ति ऐसे बलोंको आज हम प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं ।

२ मन्द्रं घरेषधं विमं मनीषिणं पान्तं पुरुस्पृहं आ  
धृणीमहे [ ११३८ ]- आनन्द बढ़ानेवाले, भेद्य ज्ञानपूर्ण,  
बुद्धिपूवक, संरक्षण करनेवाले, बहुतां हारा चाहने योग्य ऐसे  
जो तेरे बल हैं उन्हें हम पानेकी इच्छा करते हैं ।

३ हे सुकतो ! रयिं छुचेतुनं तनुषु पान्तं पुरुस्पृहं  
आ धृणीमहे [ ११३९ ]- हे उत्तम कर्म करनेवाले सोम !  
धन, उत्तम ज्ञान, उत्तम पुत्रपौत्र, उत्तम संरक्षण और  
प्रशसनयोग्य बल हम तुमसे प्राप्त करें ऐसी इच्छा करते हैं ।

सोमरसमें ये गुण हैं । ये गुण हमारे अन्दर आधे वीर हथ  
जान मुझसे मुक्त हों ऐसी हमारी इच्छा है । हर एक उन्नति  
करनेवालेकी ऐसी ही इच्छा करना चाहिए ।

सोमकी पत्थरोंसे कूटकर उसका रस निकालते हैं । उस  
रसमें पानी मिलाकर छानते हैं । इस सम्बन्धी वर्णन इस  
प्रकार है—

### सोमका पानीमें मिलाया जाना

१ घन्यः हविः महीः अपः विगाहते [ ११२९ ]-

अत्यन्त बग्नवीय सोम बहुत सारे पानीमें स्नान करता है ।  
अर्थात् बहुतसे पानीमें वह मिलाया जाता है ।

२ नृषः सत्यः अध्वरः सप्रा अभि धने अचिप्रद्वारु  
[ ११३० ]- बलवान् सत्यस्वरूप, हितारहित सोम पत्र-  
शालामें पानीमें शब्द करता हुआ मिलाया जाता है ।

३ हरिः प्रियः वनेषु अश्या चारे परिसीदति  
[ ११३३ ]- हरे रसका प्रिय सोमरस पानीमें मिलाये जानेके  
बाद भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना जाता है ।

ऐसा यह सोम पानीमें मिलाकर छाना जाता हुआ नीचेके  
वर्तनमें गिरता है, तब उसका शब्द होता है ।

### छानते समय सोमका शब्द

१ रेभन् पदा अभ्येति [ १११९ ]- सोम शब्द करते  
हुए पाथमें गिरता है ।

२ सूरः अषधं वितन्वते [ ११२३ ]- सोमरस शब्द  
करते हैं ।

३ वाजी सहस्रधारः अश्वं चारं तिरः प्राक्षाः  
[ ११६० ]- बलवान् सोम हजारों धारारोंसे भेड़के बालोंकी  
छलनीसे नीचे गिरता है ।

एक कलशमें जलमिश्रित सोमरस भरा जाना है । ऊपर  
कलशमें सूद पानी रहता है । उस इतने कलशके मुहपर  
भेड़के बालोंकी छलनी रखी जाती है और उस पर जल  
मिश्रित सोमरस डाला जाता है । इस पर यह सोमरस छन-  
छनकर नीचेके पतनमें गिरता है । गिरते समय उसकी  
आवाज होती है, यह आलकारिक वर्णन है ।

### गायके दूधमें सोमरस मिलाना

छाने हुए सोमको गायके दूधमें मिलाया जाता है—

१ घेनवः पयसा इत् अभि शिश्रयुः हृदि प्रीडन्त  
अभ्यनूयत [ ११७३ ]- गायें अपने दूधका निक्षण इस-  
सोमरसके साथ करती हैं । सँजनेवाले हरे रंगके सोमको ये  
सुनोभित करती हैं ।

२ सद्दृशरेताः अग्निः मृजानः गोभिः धीषानः  
अक्षाः [ ११९१ ]- हजारों प्रकारके बलसे युक्त सोमरसमें  
पहले पानी मिलाया जाता है, फिर गायका दूध मिलाया जाता  
है । फिर यह रस वर्तनमें छाना जाता है ।

३ सोमासः गोभिः श्रजते [ ११२१ ]- सोमरस  
गायके दूधसे सुनोभित होते हैं ।

इन स्थलोंमें “ गायका दूध ” न बहकर केवल “ गाय ”

कहा है, यह वेवकी आलंकारिक भाषा है। तोम गायके साथ मिलया जाता है इसका अर्थ है कि सोमरस गायके दूधके साथ मिलाया जाता है ।

### सोमके लिए बाजे

सोमरस निकालनेके समय अंसे मंत्र बोले जाते हैं, जंते सामका पान किया जाता है, उसीप्रकार बाजे भी नजाने जाते हैं—

१ सखायः दुर्मर्षे पवमानं वाणं साकं प्रवदन्ति [ १११७ ] वे ऋषि मित्र शत्रुओंके लिए अलह्य ऐसे शुद्ध होनेवाले सोमके लिए " वाण " नामक बाजे बजाते हैं। सामगानके समय ये बाजे बजाये जाते हैं। " वाण " सम्भवतः एक घर्मवाद्य था। और अनेक ऋषि उस वाद्यको सोमरस तैय्यार करनेके समय बजाते थे, ऐसा प्रतीत होता है।

### जयके द्वारा सम्पत्तिकी प्राप्ति

१ हे रोदसी ! मध्वः घाजस्य सातये असाकं रयिं ध्रुवः वसुनि संजिते [ १११६ ]— हे श्यामपुत्रियो ! सोम-रूपी अन्नकी प्राप्तिके लिए हमें धान, अन्न और ऐश्वर्य, विजयकी प्राप्तिके बाद मिले। अर्थात् पहले हमारी विजय हो उसके पार हमें ऐश्वर्य भी प्राप्त हो।

### सोम अन्न देता है

१ नः संयतं पिपुर्षी इपं उर्मिणा पधस्व, या [ ६६ ] ध्रुमव्, याजवव्, मधुमन् सुवीर्यं दासते [ ११५४ ]— हमारे द्वारा लाये गए पौषक अन्नको हे सोम ! तू अपनी लहरोंसे शुद्ध कर, जो लक्ष प्रसिद्ध यक्षवर्षक और मधुरतायुक्त उत्तम अन्न देता है। जिससे घोर पुत्र उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसा यह सोम मान्य कर रहा है।

### सोम शत्रु दूर करता है

१ पयमानः स्पृधाः जमितीदति विद्याः राजा इव [ ११३२ ]— यह सोम प्रताओंके पालन करनेवाले राजाके समान शत्रुको हटाता है।

२ विम्बाः दिदाः अनु प्रभुः समस्तु त्या हवामहे [ ११६७ ]— हे सोम ! तू सब विदाओंके अनुकूल रहनेवाला प्रभु है। इसलिए पृथ्वी सहामयताके लिए हम तुझे बुलाते हैं।

इस प्रकार सोमका वर्णन हम अन्त्याप्तमें हैं।

## सुभाषित

१ काव्यं युवाणः देवः देवानां जनिमा विवक्ति [ १११६ ]— काव्योंका कहनेवाला सोमदेव अन्य देवोंके जन्मके वृत्तान्त कहता है।

२ सखायः दुर्मर्षे पवमानं वाणं साकं प्रवदन्ति [ १११७ ]— वे मित्र शत्रुओंकी अलह्य तथा शुद्ध होनेवाले सोमके लिए वाण नामक बाजा बजाते हैं। अनेक लोग मिलकर बाजे बजाते हैं।

३ दिवा हरिः ददुशे, नक्तं क्रजः [ १११८ ]— सोम दिनमें हरे रंगका दीखता है और रातमें चमकता है।

४ रथाः इव, अर्यन्तः न श्रवस्पन्तः राये प्राफसुः [ १११९ ]— रथ और घोड़े यज्ञकी इच्छा करते हुए पन प्राप्तिके लिए पराक्रम करते हैं।

५ प्रजास्तिभिः राजानः न गोभिः अजते [ ११२१ ]— स्तुतियोंसे जितप्रकार राजाजन घोषित होते हैं, उसीप्रकार गायके दूधसे सोमरस सुशोभित होते हैं।

६ धर्मन् क्रतस्य पाव्य अष्टप्रम् [ ११२८ ]— धर्मके समान सत्यके मार्गसे वे जाते हैं।

७ पयमानः स्पृधाः विद्याः राजा इव व्यभितीदति [ ११३२ ]— सोमरस स्वर्ष करनेवाली प्रजाओंके राजाके समान शत्रुओंको नष्ट करता है।

८ रोदसी असभ्यं रयिं ध्रुव वसुनि संजिते [ ११३६ ]— दुलोक और पुत्र्यलोक हमारे लिए धन, पय, ऐश्वर्य तथा जय प्राप्त करावें।

९ हे सोम ! ते मयोमुचं पान्तं पुष्टस्पृहं दक्षं अघ आमुणीमहे [ ११३७ ]— हे तोम ! तरे सुखदायो, संरक्षण करनेमें समर्थ तथा बहुताई द्वारा प्रज्जिताके योग्य, बलवी हम् इच्छा करते हैं।

१० हे सोम ! मन्त्रं वरेष्यं, विपं मनीषिणं पान्तं पुष्टस्पृहं आ [ ११३८ ]— हे तोम ! आनन्द देनेवाले, भेद्य, ज्ञानी, मननशील, संरक्षक और बहुताई द्वारा चाहने योग्य ऐसे तेरी हम नम्रित करते हैं।

११ हे सुकतो ! रयिं सुचेतनं तसुतु पान्तं पुष्ट-स्पृहं आ [ ११३९ ]— हे उत्तम कर्म करनेवाले तोम ! धन, उत्तम हाज, पुत्रवत् तथा संरक्षणकी प्राप्तिके लिए बहुताई द्वारा जिसको स्तुति होगी वे ऐसे इस सोमरने प्रार्थना हम करते हैं।



१२ यां देवेषु माहि क्षत्र [ ११४५ ]- तुम्हारी देवोंमें  
= हान्वा सूक्षीरता है।

१३ नः याजयतीः इय आदान् अर्धतः पिपुतं  
[ ११५१ ]- हमें बस बढानेवाले अन्न और चबक घोड़े बी।

१४ सखा सस्युः संधिरं न प्रमिनाति [ ११५२ ]-  
मित्र मित्रको कष्ट नहीं देता।

१५ मर्यः युयतिभिः [ ११५२ ]- पुरुष स्त्रियोंके साथ  
आनन्दसे रहता है।

१६ नः संयतं पिप्युर्वीं इयं ऊर्मिणा पवस्व [ ११५४ ]-  
हमें पीवक अन्न अपनी लहतीं दे। भरपूर दे।

१७ धुमन् याजयन्तं मधुमन् सुवीर्यं दोहते [ ११५४ ]  
मोम प्रसिद्ध, बलवर्धक तथा मधुरतायुक्त धन देता है।

१८ सदाभृष्टं विभ्वमूर्तं ऋग्वत्सं ओजसा बभृष्टं  
भृष्ट्यु इन्द्रं कर्मणा तपिः नदात् [ ११५५ ]- तब  
बढानेवाले, प्रसंगीय, बहान्वा, अपनी शक्तिसे न हारनेवाले  
पर शत्रुओंकी हरानेवाले इन्द्रको अपने प्रयत्नसे कोई भी नहीं  
हरा सकता।

१९ अयाज्ज् उर्मं पृतनासु सासार्द्धं इन्द्रं [ ११५६ ]  
- शत्रुको हरा देनेवाले, उपवीर और युद्धमें विजयी इन्द्रको मैं  
स्तुति करता हूँ।

२० सखाया या निपीडित, पुनानाय प्रमायत  
[ ११५७ ]- दे मित्रों। आओ, बँडे और दुःख होनेवालेकी  
प्रशंसा करो।

२१ विभवाः दिदाः अनु प्रसुः समस्तु तथा हवा-  
महे [ ११६७ ]- तब दिशाओंमें तू घोषणासक है, इतलिय  
मुझे युद्धमें सहायताके लिए हम बुलाते हैं।

२२ तमस्तु याजयन्तः अयसे याजेषु चित्रराघसं  
आसि हवामहे [ ११६८ ]- युद्धमें बलका उपयोग करनेवाले  
हम सवाममें अपने संरक्षणके लिए विलक्षण वराक्रम करने-  
वाले अयोधियोंके सहायताके लिए बुलाते हैं।

२३ हे दातप्रतो विद्यमैणे इन्द्र ! नः नृप्यं ओजः  
आभर, पुननासार्द्धं वीरं वा [ ११६९ ]- हे सँजनों कर्म  
करनेवाले माली इन्द्र ! हमें पीवकयुक्त बल भरपूर दे और  
युद्धमें शत्रुको हरानेवाला पुत्र दे।

२४ हे यमो दातप्रतो ! त्वं नः पिना, त्वं माता  
पमृशिश। अथ ते सुमनं ईमहे [ ११७० ]- हे निवासक  
इन्द्र ! तू हमारा पिता और तू ही हमारी माता है, हमलिय  
तेरे पास पुत्र मांगने हैं।

२५ सहस्रहत सुष्टिम्न पुरुहत। वाजयन्तं त्वां  
उपमुवे। नः सुवीर्यं राख [ ११७१ ]- हे बलके लिए  
प्रसिद्ध और सामर्थ्यवान् तथा सभोके द्वारा प्रशंसित इन्द्र !  
बलसे युक्त तेरी हम स्तुति करते हैं, तू हमें उत्तम वराक्रम  
करनेका सामर्थ्य दे।

२६ हे विद्वत्सो ! हे अद्रिचः चित्र इन्द्र ! तत्  
उभया हस्ती नः आभर [ ११७२ ]- हे धनवान्, मखधारी,  
विलक्षण और बलवान् इन्द्र ! वे धन दोनों ही हावते हैं हमें  
भरपूर दे।

२७ हे इन्द्र ! यत् सुर्वं घरेष्य मन्यसे तत् आभर  
[ ११७२ ]- हे इन्द्र ! जिसे तू तेजस्वी और चाहने योग्य  
मानता है, उसे हमें भरपूर दे।

२८ ते वयं तस्य अकृपारस्य दाचनः विधाम  
[ ११७३ ]- वे हम उस उत्तम धनके बानको लेनेकी इच्छा  
करते हैं।

२९ हे अद्रिचः ! ते दिक्षु प्रराय्यं श्रुतं पृहत् मनः  
आसि, तेन दृढा चित् वाजं सातये आश्रिं [ ११७४ ]  
हे बलधारी इन्द्र ! तेरा माना विद्याओंमें आनेवाला प्रसिद्ध  
और विद्याल मन है। उस मनसे कठिनतासे मिलनेवाले  
धनोंकी भी बल बढानेके लिए हमें दे।

## उपमा

अब इस अध्यायमें आधी हुई उपमाओंकी देखिए—

१ उदाना इव [ १११६ ]- उजवा श्रुतिसे तमान  
( वाय्वं भुवाणाः ) कवि काम्योंकी झेलता है।

२ रथाः इय अर्धगतः न [ १११९ ]- रथ और घोड़ोंसे  
तमान ( अर्धस्यथ सोमासः राये प्राक्शुः ) यवकी  
इच्छा करनेवाले सोमरस धन पानेके लिए प्रयास करते हैं।

३ रथा इय [ ११२० ]- युद्धमें जानेवाले रथके तमान  
( हिन्व्यानामः गमस्त्वोः दृषिरे ) प्रेरित हुए हुए सोमरस  
हार्थमें धारण किए जाते हैं। पीनेके लिए सोमवात्र हाथने  
पकड़े जाते हैं।

४ भरापवः कारिणां इय [ ११२० ]- भार उठाकर मैं  
जानेवाले यजुरोंके हावीर जितप्रकार मोत उठाकर रखा  
जाता है, उमीनकार सोमवात्र मोम पीनेके लिए हाथोंसे  
उठावे जाते हैं।

५ प्रशस्तिभिः राजानः न [ ११२१ ]- स्तुतिधत्ति जेते राजा खुग होते हैं, उसीप्रकार सोमरस ( गोभिः अंजते ) गायके रूपसे सुशोभित होते हैं ।

६ सप्त धातुभिः यदा न [ ११२१ ]- सप्त ऋषिब्रह्मों द्वारा जेते यज्ञ सिद्ध होता है, उसीप्रकार सोम गायके रूपसे सिद्ध होता है ।

७ दिशुं न [ ११४१ ]- लडकेकी जेते उसकी मस्तक खेलनाल करते है, उसीप्रकार ( जायमान त्वां अग्निं ) नये जलाये गए उस अग्निकी ऋत्विज देखनाल करते है ।

८ दिशुं न [ ११५७ ]- जालकको जेते पिता आम्बुपति मजता है, उसीप्रकार ऋत्विज ( यजे, धिये परिभूपत ) यज्ञसे अग्निकी शोभा बढ़ाते है ।

९ मर्यः युवतिभिः इव [ ११५२ ]- पुरुष जेते त्रिषोके साय आनन्दसे रहता है, उसीप्रकार ( सोमः लमर्यति ) सोम पानीके साथ रहता है ।

१० इन्द्र न [ ११५५ ]- इन्द्रका जेते लोग ( यज्ञैः चकार ) यज्ञसे लकार करते है, उसीप्रकार सोमका भी लकार यज्ञसे करते है ।

११ मातृभिः वसं न [ ११५८ ]- माताओंके साथ प्रिसप्रकार लडका रहता है, उसीप्रकार ( ईं अभि सं-रजत ) इस सोमकी जलोंके साथ मिलाओ ।

१२ त्रिदा राहा इव [ ११३२ ]- प्रजाओंका राजा जेते दम्भुओंकी दूट करता है, उसीप्रकार ( पयमानः स्पुधा-भमि स्वीदति ) सोम दम्भुओंकी दूट करता है ।



## अष्टमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋषिदेवस्थान	ऋषि	देवता	छन्द.
		( १ )		
१११६	२१७७७	युवगणो वासिष्ठ	पयमान सोम.	त्रिष्टुप्
१११७	२१७७८	युवगणो वासिष्ठ	"	"
१११८	२१७७९	युवगणो वासिष्ठ	"	"
१११९	२१८०१	असित काश्यपो देवलो वा	"	मापनी
११२०	२१८०२	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११२१	२१८०३	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११२२	२१८०४	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११२३	२१८०५	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११२४	२१८०६	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११२५	२१८०७	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११२६	२१८०८	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११२७	२१८०९	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
		( २ )		
११२८	२१७११	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११२९	२१७१०	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११३०	२१७११	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११३१	२१७१२	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११३२	२१७१३	असित काश्यपो देवलो वा	"	"

मन्त्रस्थान	ऋग्वेदस्थान	ऋषि	देवता	छन्द
११३३	११७६	असित काश्यपो देवलो वा	पवमान सोम	गायत्री
११३४	११७७	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११३५	११७८	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११३६	११७९	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११३७	११८०	भृगुर्वास्विर्जमदग्निर्भाग्यो वा	"	"
११३८	११८१	भृगुर्वास्विर्जमदग्निर्भाग्यो वा	"	"
११३९	११८२	भृगुर्वास्विर्जमदग्निर्भाग्यो वा	"	"

( ३ )

११४०	११८३	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	अग्नि	त्रिष्टुप्
११४१	११८४	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
११४२	११८५	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
११४३	११८६	यजत आग्नेय	निशाचरणी	शायत्री
११४४	११८७	यजत आग्नेय	"	"
११४५	११८८	यजत आग्नेय	"	"
११४६	११८९	यजत आग्नेय	"	"
११४७	११९०	मधुच्छन्दा संस्थाग्निश्च	इन्द्र	"
११४८	११९१	मधुच्छन्दा संस्थाग्निश्च	"	"
११४९	११९२	मधुच्छन्दा संस्थाग्निश्च	"	"
११५०	११९३	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
११५१	११९४	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"

( ४ )

११५२	११९५	सिक्ता निशाचरो	पवमान सोम	जगती
११५३	११९६	सिक्ता निशाचरो	"	"
११५४	११९७	सिक्ता निशाचरो	"	"
११५५	११९८	पुष्टमा आगिरस	इन्द्र	मगाय - ( विद्यमान बृहती, समा सती बृहती )
११५६	११९९	पुष्टमा आगिरस	"	"

( ५ )

११५७	११९९	पवतनारदो बार्हो, नितिशिवाय पारसो बार्हो वा ।	पवमान सोम	उत्तिग्ग
११५८	१२००	पवतनारदो बार्हो, नितिशिवाय पारसो बार्हो वा	"	"
११५९	१२०१	पवतनारदो बार्हो, नितिशिवाय पारसो बार्हो वा	"	"
११६०	१२०२	अग्नेये धिष्णो पवता	"	"

इतिरा बिवाद

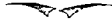
संक्रमांश्या	श्राव्येवत्पान	श्रविः	देवता	छन्दः
११६१	५१२०५१२७	अनये विष्णो एऽवराः	पथमत्ता। सोमः	द्विपदा विरट्
११६२	५१२०५११८	अनये विष्णो एऽवराः	"	"
११६३	५१३५५१२	भृगुर्वाशनिर्जमदग्निर्भागवो वा	"	गाथथी
११६४	५१३५५१३	भृगुर्वाशनिर्जमदग्निर्भागवो वा	"	"
११६५	५१३५५१४	भृगुर्वाशनिर्जमदग्निर्भागवो वा	"	"

( ६ )

११६६	८१२१७	वसतः काण्वः	अग्निः	"
११६७	८१२१८	वसतः काण्वः	"	"
११६८	८१२१९	वसतः काण्वः	"	"
११६९	८१२८१२०	नृमेघ आगिरसः	इन्द्रः	ककुप्
११७०	८१२८१२१	नृमेघ आगिरसः	"	"
११७१	८१२८१२२	नृमेघ आगिरसः	"	पुर उदियाक्
११७२	५१३५११	अग्निर्भौमः	"	अनुष्टुप्
११७३	५१३५१२	अग्निर्भौमः	"	"
११७४	५१३५१३	अग्निर्भौमः	"	"



## अथ नक्षत्रसोऽध्यायः ।



अथ पञ्चमपाठके मध्यसोऽध्यायः ॥ ५ ॥

[ १ ]

( १-२० ) १ प्रतर्दनी र्बोवासिः; २, ३, ४ अतितः काश्यपो देवलो वा; ५, ११ उषस्य आगिरसः; ६, ७ अमही-  
 मुरागिरसः; ८, १५ निभ्रुतिः काश्यपः; ९ वसिष्ठो मीमावस्वनिः; १० सुकस्य आगिरसः; १२ कविर्गामिः; १३ देवातिथिः  
 काश्यपः; १४ अगः प्रागायः; १६ अन्वरीयो वार्यागिः ऋजिदमा भारद्वाजस्वः; १७ अग्नयो विष्णवा ऐश्वर्यः; १८ जसना  
 काश्यपः; १९ नृमेघ आगिरसः; २० जेता माघुच्छन्दसः ॥ १-८, ११-१२, १५-१७ पवमानः सोमः; ९, १८  
 अग्निः; १०, १३, १४, १९-२० इन्द्रः ॥ १-९ त्रिष्टुप्; २-८, १०-११, १५, १८ गायत्री; जगती १३,  
 १४ प्रागाय = ( विषया बृहती, समा सतीबृहती ); १६-२० अनुष्टुप्; १७ छिपवा विरहः; १९ उजिगम् ॥

११७५ शिशुं जज्ञानं हृषितं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।  
 कविर्गामिः काश्येना कविः सन्सोमः पवित्रमस्यति रेभन् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९।१० )

११७६ आपिमना य ऋषिकृत्स्थपाः महस्रनीधः पदवीः कवीनाम् ।  
 सुवीर्यं धाम महिषः सिपासन्सोमा विराजमानु राजति षुष् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।१८ )

११७७ चभूपच्छयेनः शुकुनो विभ्रुन्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि विभ्रन् ।  
 अपामूर्मिः सचमानः समुद्रं तुरीर्यं धाम महिषो विवक्ति ॥ ३ ॥ १ ( लु ) ॥  
 [ धा० २४ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. १।९।१९ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ११७५ ] ( जज्ञानं शिशुं ) अभी अभी उत्पन्न होनेके कारण बालकके समान रहनेवाले ( हृषितं ) तर्बोकें द्वारा  
 पृथक् इस लोकके ( म्रजतः मृजन्ति ) मदन दूर करने हैं । ( शुम्भन्ति विप्रं मरुतगणेन ) तत्स संस्थाके इस क्षान्तवर्षके सोमके  
 गुणोभित करते हैं, उसके बाद ( कविः सोमः काश्येन ) यह ज्ञानी सोम स्तोत्रके काश्येति ( कविः गामिः ) को स्तुति  
 प्रारम्भ हुई है, उसे गुनते हुए ( रेभन् पवित्रं अत्येति ) धर्य करते हुए छलनीसे छाना जाता है ॥ १ ॥

[ ११७६ ] ( आपि - मना ) ऋषिने समान मनवासा ( ऋषि - कृत् ) ऋषियोंको, बनानेवाला ( स्थपाः सद्युष्ट-  
 नीधः ) सबका सोचन करनेवाला, हजाराँ स्तुतियोंसे प्रसन्नित ( कवीनां पदवीः ) कविको शोषणाको प्राप्त हुएका गुण  
 ( धः सोम ) जो सोम है वह ( महिषः ) अत्यन्त पृथक् ( तुरीर्यं धाम विषामन् ) तीसरे धाममें रहनेवाले और  
 ( षुष् ) शुष्क होकर ( विराजे अनु विराजति ) विशेष तेजस्वी बने हुए इन्द्रको और अधिक प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

[ ११७७ ] ( चभूपच्छयेनः ) बलनामें रहनेवाला प्रसंगनीय ( शुकुनः ) शकितमान् ( विभ्रुन्वा ) गति करनेवाला  
 ( गो - विभ्रुः ) गाय प्रान्त करनेवाला, गायके रूपमें मिलाया जानेवाला ( द्रप्सः ) रहनेवाला ( अपां ऊर्मिं समुद्र  
 इत्यमानः ) अन्ते लहरोंने समुद्रमें मिलाया जानेवाला ( आयुधानि विभ्रन् ) तर्बोकें धारण करनेवाला ( म्रिदा )  
 यह बलवान् सोम ( तुरीर्यं धाम विषयित ) समुद्रं धाममें रहता है, उसे स्वानमें विराजता है ॥ ३ ॥

- ११७८ एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममध्वरन् । वर्षन्तो अस्य धीर्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।१ )
- ११७९ पुनानासश्मृषदो गच्छन्तो वायुमभिक्षा । ते नो धत्त सुधीर्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।२ )
- ११८० इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । देवानां योनिमासदम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।८।३ )
- ११८१ मजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।८।४ )
- ११८२ देव्यभ्यस्त्वा मदाय क्व सृजानमति मेध्याः । सं गोमिर्वासयामसि ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८।५ )
- ११८३ पुनानः कलशेषा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गण्धान्यव्यत ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८।६ )
- ११८४ मघोन आ पवस्व नो जाहि विश्वा अप द्विपः । इन्द्रो सत्प्रायमा विश ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।८।७ )
- ११८५ नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रप्रीतश्च स्वविदम् । भक्षीमाहि प्रजामिपम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।८।८ )
- ११८६ वृष्टि दिवः परि स्रव सुसं पृथिव्या अभि । सद्दो नः सोम पृतसु धाः ॥ ९ ॥ २ ( वि ) ॥
- [ धा० १९ । उ० १ । ख० १९ ] ( ऋ. १।८।८ )

॥ इति प्रथम खण्ड ॥ १ ॥

[ ११७८ ] ( एते सोमा ) ये सोमरत्न ( अस्य धीर्यं वर्षन्तः ) इस इन्द्रका सामर्थ्य बढाते हुए ( इन्द्रस्य कामं मिथं ) इन्द्रको प्रिय लगनेवाले रसको ( सं अभि अग्रध्वरन् ) वृष्टि करते हैं, तस नीचेके बलबलमें छनकर गिरता है ॥ १ ॥

[ ११७९ ] हे ( पुनानासः श्मृषदः ) छने हुए और बलबलमें रखे हुए सोमरत्ने । ( वायु अभिक्षा गच्छन्तो ) वायु और अतिबलको प्राप्त होकर ( ते ) वे हुए ( न सुधीर्यं धत्त ) हमें उत्तम बोरता दो ॥ २ ॥

[ ११८० ] हे ( सोम ) सोम । ( पुनान ) छाना जाता हुआ तू ( इन्द्रस्य राधसे ) इन्द्रकी आराधनाके लिए ( हार्दि चोदय ) हृदयोंको प्रेरित कर । सं ( देवानां योनिं आ सद् ) देवोंके उत्पत्त्याकारमें आकर भेठ गया है ॥ ३ ॥

[ ११८१ ] हे सोम ! ( दश क्षिपः मजन्ति ) तुझे दस अंगुलिया गूढ़ करती है । ( सप्तधीतयः हिन्वन्ति ) सात होतारण तुझे सन्नष्ट करते हैं, ( विप्राः अनु अमादिषु ) ज्ञानी तेरा अनुसरण करके तुझे प्रसन्न करते हैं ॥ ४ ॥

[ ११८२ ] हे सोम ! ( मेध्याः मति सृजानं ) जालोंकी छलनीते छाना जानेवाले ( कं त्वा ) मुख बढानेवाले तुझे ( देव्यभ्यः मदाय ) देवोंको आनन्द देनेके लिए ( गोमिः संवासयामसि ) गायके रूपमें मिलते हैं ॥ ५ ॥

[ ११८३ ] ( पुनानः ) गूढ़ होकर ( कलशेषु वा ) कलशोंमें आकर रहनेवाला ( अरुपः हरिः ) धमकनेवाला हरे रत्नका सोम ( गण्धानि चस्त्राणि परि अत्यत ) गायके धस्त्रोंकी पहनता है । अर्थात् गायके रूपमें निलाना जाता है ॥ ६ ॥

[ ११८४ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( मघोनः जः ) धनते युक्त हमारे लिए ( आ पवस्व ) छगता जा । ( विश्वा द्विपः अप जाहि ) तस सन्धुओंकी लक्ष्य कर ( सत्प्रायं आ विश ) और अपने मित्र इन्द्रके पेटमें प्रविष्ट हो जा ॥ ७ ॥

[ ११८५ ] हे सोम ! ( नृ-चक्षस ) मनुष्यका निरोक्षण करनेवाले ( इन्द्र-प्रीतं ) इन्द्रके द्वारा पिये जाने योग्य तथा ( स्वविदं त्वां ) सबको जाननेवाले तुझे प्राप्त करके ( वयं प्रजां इयं मयीमाहि ) सत्त्वान और अन्न प्राप्त करें ॥ ८ ॥

[ ११८६ ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( दिवः पृष्टि परिस्त्रव ) धूलोको वृष्टि कर । ( पृथिव्या अभि सुसं ) पृथिवी पर अन्न उत्पन्न कर । ( पृतसु नः सद्दो धाः ) सदाभयं जगतीको होनेवाले सामर्थ्य हवें वे ॥ ९ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ]

- ११८७ सोमः पुनानो अपैति सहस्रधारो अत्यविः । वायोऽरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥ ( ऋ. ९।१।१ )
- ११८८ पवमानपवस्वसो विप्रमभि प्र गायत । सुप्यार्ण देववीतये ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।२ )
- ११८९ पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । शृणाना देववीतये ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१।३ )
- ११९० उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुधीर्यम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१।४ )
- ११९१ अत्या हियाना न हेतुभिरसुग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशुचः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१।५ )
- ११९२ ते नः सहस्रिणः रयि पवन्तामा सुधीर्यम् । स्वाना देवास इन्द्रवः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१।६ )
- ११९३ वाश्वा अपन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः । दधन्विरे गम्भस्तयोः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।१।७ )
- ११९४ जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्कदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।१।८ )

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ११८७ ] ( सहस्रधारः ) हजारों धाराओंसे ( अति अथिः ) बालोंकी छलनीसे ( पुमानः सोमः ) छाना जानेवाला सोम ( वायोः इन्द्रस्य ) वायु और इन्द्रके पीनेके लिए ( निष्कृतं अर्पति ) जतनमें जाता है ॥ १ ॥

[ ११८८ ] हे ( अवस्यवः ) अपने धरक्षणकी इच्छा करनेवाले उद्गाता आदि पाजको ! तुम ( पवमानं विप्रं ) श्रद्धा होनेवाले, सानो ( देववीतये सुप्यार्ण ) देवोंके पीनेके लिए छाने जानेवाले सोमके लिए ( अभि प्र गायत ) मर्मोंका गान करो ॥ २ ॥

[ ११८९ ] ( वाजसातये ) अन्नदान करनेके लिए ( शृणानाः ) प्रशस्त होनेवाले ( सहस्र-पाजसः सोमाः ) हजारों प्रकारके बल बछानेवाले वे सोमरस ( पवसे ) श्रद्धा किए जाते हैं ॥ ३ ॥

[ ११९० ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( द्युमत् सुधीर्यं पवस्व ) तेजस्वी और उत्तम सामर्थ्य हमें दे ! ( उत ) और ( वाजसातये ) अन्नदान करनेके लिए ( बृहतीः इयः ) बहूतसा अन्न हमें दे ॥ ४ ॥

[ ११९१ ] ( वाजसातये हियानाः ) सप्राप्तके लिए प्रेरित हुए सोमरस ( आशुचः न ) शीघ्रगामी घोड़ेके सामान ( हेतुभिः ) ऋत्विगोंके हाथ ( अव्यं चाटं वि अति अव्यग्रं ) बालोंकी बनी छलनीसे छाने जाते हैं ॥ ५ ॥

[ ११९२ ] ( ते स्वानाः देवासः इन्द्रवः ) वे निषोढे गए दिव्य सोमरस ( नः सहस्रिणं रयि सुधीर्यं भा पवन्तां ) हमें हजारों प्रकारके घन और उत्तम सामर्थ्य देवें ॥ ६ ॥

[ ११९३ ] ( वाश्वाः इन्द्रवः ) शय्य करनेवाले सोम ( मातरः ) धरतल न ) गायें जैसी बछड़ेके पास जाती है, उसी प्रकार ( अभि अर्पति ) कलनामें जाते हैं और ( गम्भस्तयो दधन्विरे ) हाथोंसे धारण किए जाते हैं ॥ ७ ॥

[ ११९४ ] सोम ( इन्द्राय जुष्ट ) इन्द्रको दिया जाना है, हे सोम ! बहु दू ( मत्सरः पवमानः ) आनन्द देने-वाला और साना जानेवाला ( कनिक्कदत् ) शय्य करते हुए ( विश्वाः द्विषः अप जाहि ) मय शत्रुओंकी नष्ट कर ॥ ८ ॥

११९५ अपमन्तो अराव्णः पथमानाः स्वर्दशः । योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥ ३ ( दृ ) ॥  
[ धा० ३९ । उ० ३ । २५० ६ ] ( ऋ. ९।१३।९ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

११९६ सोमा अमुप्रामन्दवः सुता श्रतस्य धारया । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१२।१ )

११९७ आभि विप्रा अन्वृषत गावां वरसं न धेनवः । इन्द्रश्च सोमस्य पीतये ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१२।२ )

११९८ मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूपा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥

( ऋ. ९।१२।३ )

११९९ दिवो नामा विचक्षणोऽव्या वरि महीयते । सोमो यः सुकृतुः कविः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१२।४ )

१२०० यः सोमः कलशेषा अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि पञ्चजे ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१२।५ )

१२०१ प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन्कोशे मधुश्रुतम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१२।६ )

१२०२ नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सवर्दुषाम् । हिन्नानो मानुषा युजा ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।१२।७ )

[ ११९५ ] हे ( पथमानाः ) सोमो । ( अ-राव्णः अपमन्तः ) बल न देनेवाले शत्रुओंका मात करत हुए तथा ( स्वः-दशः ) अपने तेजसे धनकले हुए हुए ( श्रतस्य योनां सीदत ) गतके स्थानपर बैठे ॥ ९ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ॥

[ ११९६ ] ( अतस्य सुताः ) यन्के लिए तैय्यार किये गए ( मधुमत्तमाः इन्द्रयः ) मधुत पीठे और तेजसो ( सोमाः ) सोमरस ( इन्द्राय धारया अमुप्रमं ) इन्द्रके लिए धाराले छनते जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११९७ ] हे ( विप्राः ) श्रुतिगो । ( सोमस्य पीतये ) सोम पीनेके लिए ( इन्द्रं आभि मन्वृषत ) इन्द्रकी सेवा करो । ( धेनवः गायः वरसं न ) दुग्ध गायें जितप्रकार अपने गछबैठेकी सेवा करती हैं, उसीप्रकार यह इन्द्रकी सेवा करो ॥ २ ॥

[ ११९८ ] ( मदच्युत्सु सोमः ) मानव यज्ञवेद्याला सोम ( सवदने क्षेति ) यज्ञशालाके पिपात करता है, ( सिन्धोः ऊर्गं विपश्चित् ) जैसे नदीके तरफोंमें यह गाभी सोम रहता है, उसीप्रकार यह ( गौरी अधिश्रितः ) वापवर्षोंमें भी रहता है । छलनोंमें शूद्र होता है ॥ ३ ॥

[ ११९९ ] ( यः ) जो ( सुकृतुः कविः विचक्षणः ) उत्तम धरा करनेवाला, महान् शान्ति यह ( सोमः ) सोम है, यह ( दिवः नामा ) अन्तर्दिष्टको तमिने समान ( अदया वारे महीयते ) बालोंको छलनोंके ऊपर धरुत्वजाली होता है ॥ ४ ॥

[ १२०० ] ( यः सोमः ) जो सोम ( कलशेषा अन्तः ) कलशोंमें ( पवित्रे अग्नेः आहितः ) छलनोंके बीचमें रखा हुआ है, ( तं इन्द्रः परिपञ्चजे ) उस सोमकी सब स्पर्श करे ॥ ५ ॥

[ १२०१ ] ( इन्द्रः ) सोम ( मधुश्रुतं कोशे जिन्वन् ) मीठाकरत जिसमें टपकता है उस घलनेको घृषा भर देता है । यह ( समुद्रस्य अधि विष्टपि ) जन्के आश्रय स्थान पर ( वाचं प्र इष्यति ) वाच करता हुआ जाता है ॥ ६ ॥

[ १२०२ ] ( नित्यः स्तोत्रः वनस्पतिः ) नित्य जितने स्तुति की जाती है वृक्षा धनक स्वामी सोम ( मानुषा युजा सिन्धानः ) मनुष्योंको संगठन करनेके लिए प्रेरित करता हुआ ( सवर्दुषाम् ) सक्ते पीठे यज्ञा शोभनेवालेके ( आश्रयः ) आश्रय करनेमें रहनेवाली स्तुतिगो स्वीकार करे ॥ ७ ॥



१२०३ <sup>१</sup> आ <sup>२</sup> पवमान <sup>३</sup> भारया <sup>४</sup> रयि५ सहस्रवर्चसम् । <sup>६</sup> अस्मे <sup>७</sup> इन्द्रो <sup>८</sup> स्वासुवम् ॥८॥ ( ऋ. ९।१।१९ )

१२०४ <sup>१</sup> अभि <sup>२</sup> प्रिया <sup>३</sup> दिवः <sup>४</sup> कविर्विप्रः <sup>५</sup> स <sup>६</sup> धारया <sup>७</sup> सुतः । <sup>८</sup> सोमो <sup>९</sup> हिन्द्रे <sup>१०</sup> परावति ॥ ९ ॥ ४ ( मे ) ॥  
[ धा० ४० । उ० ४ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।१।१८ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१२०५ <sup>१</sup> उचै <sup>२</sup> शुपमास <sup>३</sup> ईरते <sup>४</sup> सिन्धोरुर्मैरिव <sup>५</sup> स्वनः । <sup>६</sup> वाणस्य <sup>७</sup> चोदया <sup>८</sup> पविष् ॥१॥ ( ऋ. ९।१।१ )

१२०६ <sup>१</sup> प्रसथे <sup>२</sup> त उदीरते <sup>३</sup> तिस्रा <sup>४</sup> वाचो <sup>५</sup> मखस्युवः । <sup>६</sup> यदव्य <sup>७</sup> एषि <sup>८</sup> सानवि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।२ )

१२०७ <sup>१</sup> अद्या <sup>२</sup> वारिः <sup>३</sup> परि <sup>४</sup> प्रिय५ हरि६ हिन्वन्त्यद्रिभिः । <sup>७</sup> पवमानं <sup>८</sup> मधुद्रुतम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१।३ )

१२०८ <sup>१</sup> आ <sup>२</sup> पवस्व <sup>३</sup> मदिन्तम <sup>४</sup> पवित्रं <sup>५</sup> धारया <sup>६</sup> कवे । <sup>७</sup> अर्कस्य <sup>८</sup> योनिमासदम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१।४ )

१२०९ <sup>१</sup> स <sup>२</sup> पवस्व <sup>३</sup> मदिन्तम <sup>४</sup> गोभिरञ्जानो <sup>५</sup> अकतुभिः । <sup>६</sup> एन्द्रस्य <sup>७</sup> जठरं <sup>८</sup> विश ॥ ५ ॥ ५ ( का ) ॥  
[ धा० ३१ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१।५ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ १२०३ ] हे ( पवमान इन्द्रो ) पुत्र होनेवाले सोम ! ( सहस्रवर्चसं स्वासुवम् ) सहज तेजोति युक्त अपना घर तथा ( रयि ) धन ( अस्मे धारय ) हर्षे दे ॥ ८ ॥

[ १२०४ ] ( कविः सुतः ) तानी सोमरस ( पचावति विप्रः सः ) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले तानीके समान ( धारया ) अपनी धारसे ( दिवः प्रिया ) सुलोकोसे प्रिय स्थानको और ( अभि हिन्द्रे ) प्रेरणा करता है ॥ ९ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १२०५ ] हे सोम ! ( सिन्धोः उर्मैः स्वनः इव ) समुद्रकी लहरोंके साथके समान ( ते शुपमासः उचैरते ) तेरे वेगसे बहनेकी आवाज निकलती है । ऐसा दू ( वाणस्य एषि चोदय ) वाण नामक जाकेके समान शब्द कर ॥ १ ॥

[ १२०६ ] ( ते प्रसथे ) तेरी उत्पत्ति होनेके बाद ( मखस्युवः तिस्रा वाचः उचैरते ) मत करनेवाले ऋत्विज ऋषेद, यजुर्वेद और सामवेदके मंत्र बोलने लगते हैं । ( यत् सानवि अद्ये एषि ) तब तू ऊँचे स्थानपर रहे हुए धारोंकी बनी छलनोंमें जाता है ॥ २ ॥

[ १२०७ ] [ प्रिये हरिः ] प्रिय और हरे रंगके ( अद्रिभिः ) पारसों द्वारा कूटे गए ( मधुद्रुतं-पवमानं ) नीचे सोमरसको छाननेवाले ऋत्विज ( अद्या वारिः परि हिन्वन्ति ) भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे छानते हैं ॥ ३ ॥

[ १२०८ ] ( मदिन्तम कवे ) हे परम हर्षे ब्रजनेवाले सोम ! ( अर्कस्य योनिं भासदम् ) इन्द्रके पेटमें आनेके लिए ( पवित्रं धारया वा पवस्व ) छलनीसे धार बांधकर छनता जा ॥ ४ ॥

[ १२०९ ] हे ( मदिन्तम ) मानव बनेवाले सोम ! ( अकतुभिः गोभिः संजानः ) तेजस्वी, मायके रूप आदि पदाचारि ताम मिलकर ( पवस्व ) छनता जा और ( इन्द्रस्य जठरं वा विश ) इन्द्रके पेटमें जा ॥ ५ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

- १२१० अया, वीवी परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अशहन्नवतीर्निव ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।१।१ )
- १२११ पुरः सद्य इत्थाधिषे दिवोदासाय शंवरम् । अथ रथं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।१।२ )
- १२१२ परि पौ अश्वमश्विद्गोमिदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥ ६ ( हि ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । १० ३ ] ( ऋ. १।६।१।३ )
- १२१३ अपमन्पवते मृषोऽप सोमो अराण्यः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।१।४ )
- १२१४ महो ना राय आ भर पवमान जडो मृषः । रास्वेन्दो वोरवद्यशः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।१।५ )
- १२१५ न त्वा शतं च न हुवो राधो दिस्तन्तमा मिनन् । यत्पुनानो मारुस्यसे ॥ ३ ॥ ७ ( खा ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।६।१।६ )
- १२१६ अया पवस्व धारया यया स्यमरोचयः । हिन्वानो मानुपीरयः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।१।७ )
- १२१७ अयुक्तं छर एतश्च पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण याववे ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।१।८ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १२१० ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( अया वीनि पारिस्त्रव ) इस रीनिते इन्द्रके पीनेके लिए सू छनता जा । ( ते यः मधेयु ) तेरा यह रस तवाममं ( अय-नयतीः अयाहन् ) निम्नानके शत्रुओंकी मध्य करता है ॥ १ ॥

[ १२११ ] ( सद्यः पुरः ) उसी समय शत्रुके नगरोंका नाम यह सोम करता है । ( इत्था ) इस प्रकार ( धिषे दिवोदासाय ) यज्ञ करनेवाले दिवोदासके लिए ( शंवरं ) सम्बरापुरको ( अथ रथं तुर्वशं ) और प्रथम तुर्वशको ( यदुम् ) और यदुको ( अयाहन् ) इन्द्रने धारा ॥ २ ॥

[ १२१२ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( अश्वयित् ) घोड़े मान्त करनेवाला तू ( नः ) हमें ( गोमत् हिरण्यवत् अश्वं ) गाय और सोनेसे युक्त घोड़ेको और ( सहस्रिणीः इयः ) अनेक प्रकारके अश्वको ( परि श्रुतं ) दे ॥ ३ ॥

[ १२१३ ] ( सोमः मृषः अपमन् ) सोम शत्रुकी मारकर ( अराण्यः अप ) जल न देनेवाले कुट्योंको बुर करने ( इन्द्रस्यः निष्कृतं गच्छन् ) इन्द्रके स्थानके पास जानेके लिए ( पयते ) छाना जाता है ॥ १ ॥

[ १२१४ ] हे ( पवमान इन्दो ) छाने जानेवाले सोम ! ( न महः रायः आ भर ) हमें बहुतसा घन भरण्य दे । ( मृषः जडो ) शत्रुओंको मार और ( वोरवत् यदाः रास्व ) पुत्रोंसे युक्त यदा दे ॥ २ ॥

[ १२१५ ] हे सोम ! ( यत् पुनानं ) जब छाना जानेवाला तू ( मारुस्यसे ) यज्ञ करनेवालोंको घन देनेकी इच्छा करता है, तब ( राधः दिस्तन्तं त्वा ) घन देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे ( शतं च न-हुतः ) संकटों शत्रु भी ( न आमिनन् ) रोक नहीं सकते ॥ ३ ॥

[ १२१६ ] हे सोम ! ( मानुपीः अपः दिग्बानः ) मनुष्योंको हितकारक जल देनेवाले तुझे ( यया धारया मूयं अरोचयः ) जिस धमकनेवालों धारसे मूयंकी प्रभावित किया, ( अया पयमन् ) उसी धारामें छनता जा ॥ १ ॥

[ १२१७ ] ( पवमानः ) शूद्र होनवाला सोम ( मनावधि ) मनुष्योंके इष्ट ( अन्तरिक्षेण याववे ) अन्तरिक्षमें मार्गसे जानेके लिए ( गूरः पलदां अयुक्तः ) मूयंके एतदा नामक घोड़ेको उसने रथमें जोड़ता है ॥ २ ॥

१२१८ उद्यं त्वा हरितो रथे धरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ध्रुवत् ॥ ३ ॥ ८ ( का ) ॥  
[ धा० ११। उ० १। स्व० २ ] ( ऋ. १।६।१९ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१२१९ अग्निं चो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृष्णध्वम् ।  
यो मर्त्येषु निधुविश्रेतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पायकः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१।१ )

१२२० प्रोधदशो न यवसेऽतिष्यन् यदा महः संवरणाद्भवस्थात् ।  
आदस्य घातो अनु वाति शोचिरथ स ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।१।२ )

१२२१ उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्रे चरन्त्यजरा इधानाः ।  
अच्छा यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न इयसे हि देवान् ॥ ३ ॥ ९ ( टी ) ॥  
[ धा० १८। उ० १। स्व० ४ ] ( ऋ. ७।१।३ )

१२२२ तमिन्द्रं चाजयामसि महं वृषाय हन्तवे । स वृषां वृषमो भुवत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९।७ )

[ १२१८ ] ( उत इन्द्रः ) और सोम ( इन्द्रः इति ध्रुवत् ) इन्द्र इन्द्र कहता हुआ ( त्वा हरितः ) तेरे घोड़ोंको ( सदा रथे ) घूमके रथमें ( यातवे अयुक्त ) जलके लिए जोरता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पाँचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ १२१९ ] हे देवो ! ( यः ) तुम ( यः मर्त्येषु निधुभिः ) जो मानवोंमें रहता है, जो ( घृताया ) घृत करनेवाला ( तपुर्मूर्धा ) तथा तपुर्मूर्धोंको कष्ट देनेवाला तेज है ( घृतान्नः ) घी ही जितका अन्न है तथा ( पायकः ) जो पवित्रता करनेवाला है, ऐसे ( अग्निभिः सजोषाः ) अनेक अग्निजोके साथ ( यजिष्ठं अग्निं देवं ) परम पूज्य अग्निजोके ( अध्वरे दूतं कृष्णध्वे ) हितारहित यज्ञमें दूत करो ॥ १ ॥

[ १२२० ] ( यवसे अतिष्यन् ) घास खाते हुए ( प्रोधत् अश्वः न ) हिनहिनावेवाले घोड़ेके समान ( महः संवरणात् ) महान् वेगसे कंलनेवाला दायानल ( यदा व्यस्थात् ) जब वृषाके बीचमें पहुँचता है, तब ( आद्य अस्य शोचिः ) इसकी ज्वालामय ( अनुवातः घाति ) वायुके मनुकूल होकर चलती है, ( अध ) और हे आग्ने ! ( ते व्रजनं कृष्णं अस्ति ) तेरा मार्ग काला है ॥ २ ॥

[ १२२१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नव-जातस्य वृष्णाः ) नये उत्पन्न हुए हुए और वृष्टि करनेवाले ( यस्य ते ) जिस तेरो ( अजराः इधानाः उद्यस्यति ) न मरने होनेवाली जलती हुई ज्वालामय ऊपर आती है, तब है ( अग्ने ) अग्ने ! ( अरुषः धूमः दूतः ) प्रकाश करनेवाला धूमरुषो दूतवाला तू ( घां अच्छा समेषु ) धूलोकेमें जाता है, और वहाँ ( देवान् हि इयसे ) देवोंको मान होता है ॥ ३ ॥

[ १२२२ ] ( महे वृषाय हन्तवे ) महान् वृषको मारनेके लिए ( तं इन्द्रं चाजयामसि ) उत इन्द्रको हन बलवान् मनाते है । ( वृषा ताः वृषमः भुवत् ) वह पहलेसे बलवान् होता हुआ भी और अधिक बलवान् होता है ॥ १ ॥

१२२२ इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः । सुर्जा श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥

( ऋ. ८।२।८ )

१२२४ गिरा बज्रो न सम्भृतः सवलो अनपन्द्युतः । बवक्ष उग्रो अस्तुतः ॥ ३ ॥ १० ( छे ) ॥

[ धा० १७ । उ० २ । स्व० ७ ] ( ऋ. ८।२।९ )

॥ इति यत्तः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१२२५ अश्वर्यो अद्रिमिः सुतसोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातये ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।५।१ )

१२२६ तव त्व इन्दो अश्वसो देवा मधोर्व्याश्रुत । पवमानस्य मरुतः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।५।२ )

१२२७ दिवः पीयूषमुत्तमसोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनाता मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥ ११ ( खा ) ॥

[ धा० ११ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।५।३ )

१२२८ धृवी दिवः पवते कृत्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।

हरिः सृजानो अत्यो न सत्वमिदृथा पाजासि कृशुषे नदीष्व ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७।१ )

[ १२२३ ] ( सः इन्द्रः दामने कृतः ) वह इन्द्र बल देनेके लिए ही पैदा हुआ है ( स ओजिष्ठ बल हितः ) वह प्रभावशाली इन्द्र बल बढ़ानेके लिए और सोमके पीनेके लिए हुआ है ( सुर्जाः श्लोकी स सोम्यः ) तेजस्वी प्रशतित ऐसा वह इन्द्र सोम पीनेके योग्य है ॥ २ ॥

[ १२२४ ] ( गिरा संभृतः ) स्तुतियों द्वारा प्रशतित ( वज्रः न ) बज्रके समान ( सवळः अनपन्द्युतः ) बलवान् इसीलिए दूसरेके न दबाये जानेवाला ( उग्रः अ-स्तुतः ) उग्रवीर और अपराजित इन्द्र ( बवक्षे ) धन देनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १२२५ ] हे ( अश्वर्यो ) अश्वर्यु ! ( अद्रिमिः सुतसोमं ) पत्नीके द्वारा कूटकर निकाले गए सीमरसको ( पवित्र आनय ) छलनीमें लाकर रख और ( इन्द्राय पातये पुनाहि ) इन्द्रके पीनेके लिए छान ॥ १ ॥

[ १२२६ ] ( त्वे देवाः मरुतः ) वे देव और मरुत, हे ( इन्दो ) सोम ! ( तव मधोः पवमानस्य मन्वसः ) मेरे मधुर और पवित्र अन्नको रसको ( वि आदात ) खाते हैं ॥ २ ॥

[ १२२७ ] हे ऋषियजो ( मधुमत्तमं दिवः पीयूषं ) बहुत मीठे दूधलेके अमृत ( उत्तमं सोम ) इस उत्तम सोमको ( वज्रिणे इन्द्राय सुनात ) बज्रधारी इन्द्रके लिए तैयार करो ॥ ३ ॥

[ १२२८ ] ( कृत्यो रसः ) कर्तव्य करनेवाला यह रस ( देवानां दक्षः ) देवोंका बल बढ़ानेवाला ( नृभिः अनु माद्यः ) ऋषियजोंके द्वारा प्रशंसनीय ( धृवी ) सवोंको धारण करनेवाला ( दिवः पवते ) अन्तरीक्षमें रस छलनीके छाना जाता है । ( हरिः ) यह हरे रंगवाला और ( सत्वमिः सृजानः ) बलवान् ऋषियजोंके द्वारा छाना जानेवाला यह रस ( अत्यः न ) पीनेके लिये ( नदीषु ) पानीमें ( कृथा ) तरलतासे ही ( पाजासि कृशुषे ) अपने बर्तनोंके प्रशत करता है ॥ १ ॥



१२३४ त<sup>१४</sup> हि स्वराजं<sup>३ ३ ३</sup> धूपमं<sup>३ ३</sup> तमोजसा<sup>२८</sup> धिपणे<sup>३ ३ ३</sup> निदृष्टक्षतुः ।  
उत्तीपमानां<sup>३ ३ ३ ३</sup> प्रथमो<sup>३ ३</sup> नि पीदसि<sup>३ ३</sup> सोमकाम<sup>३ ३ ३</sup> हि ते मनः ॥ २ ॥ १४ ( ची ) ॥

[ धा० १७। उ० १। स्व० ४ ] ( ऋ. ८।६।१९ )

॥ इति सप्तम खण्ड. ॥ ७ ॥

[ < ]

१२३५ पवस्व<sup>१ ३</sup> देव आ<sup>२ ३ ३</sup>पुपगिन्द्रं<sup>२ ३</sup> सच्छतु<sup>३ ३ ३</sup> ते मदः । वायुमा<sup>३ ३</sup> रोह धर्मणा<sup>३ ३ ३</sup> ॥ १ ॥ ( ऋ ९।६।२२ )

१२३६ पवमान<sup>१ ३</sup> नि तोक्षसे<sup>३ ३</sup> रयि<sup>३ ३</sup> सां श्रवाप्यम् । इन्द्रो<sup>३ ३</sup> समुद्रमा<sup>३ ३</sup> विश ॥ २ ॥ ( ऋ ९।६।२२ )

१२३७ अपप्तन्पवसे<sup>३ ३ ३</sup> मृषः । क्रतुवित्तोम<sup>३ ३</sup> मत्सरः । सुदस्मादेवयुं<sup>३ ३</sup> जनम् ॥ ३ ॥ १५ ( लि ) ॥

[ धा० १४ ] उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।६।२४ )

१२३८ अभी<sup>३ ३</sup> नो वाजसातमं<sup>३ ३ ३</sup> रयिमर्षं<sup>३ ३ ३</sup> शतस्पृहम् ।

इन्द्रो<sup>३ ३</sup> सहस्रमर्णसं<sup>३ ३ ३</sup> तुविद्युन्न<sup>३ ३ ३</sup> विभासहम् ॥ १ ॥ ( ऋ ९।९।८ )

१२३९ वयं<sup>३ ३</sup> ते अस्य<sup>३ ३</sup> राधसो<sup>३ ३</sup> वसावंसो<sup>३ ३</sup> पुरुस्पृहः ।

नि<sup>३ ३</sup> नैदिदृष्टतमा<sup>३ ३</sup> इयः<sup>३ ३</sup> स्याम<sup>३ ३</sup> सुन्न<sup>३ ३</sup> ते अध्रिगो ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।८ )

[ १२३४ ] ( धिपणे ) धूलोक और भूलोक ( स्वराजं धूपमं त हि ) स्वय प्रकाशत्व और बलवान् उक्त इन्द्रको ( तमोजसा निदृष्टक्षतुः ) अपने बलसे प्रकट करते हैं। ( उत ) और है इन्द्र । ( उपमानां प्रथम. ) उपमा देनेके योग्यपिं प्रथम तु ( निपीदसि ) अपने स्थानपर बैठता है। ( हि ते मन. सोमकामे ) क्योंकि तेरा मन सोमकी इच्छा करता है ॥ २ ॥

॥ यहाँ सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ < ] अष्टमः खण्ड. ।

[ १२३५ ] हे सोम ! ( देवः पवस्व ) धमकनेवाला तू छमता जा । ( ते मदः आयुपक इन्द्रं सच्छतु ) तेरा मानव्यापक रत इन्द्रके पास जावे । ( धर्मणा वायुं आरोह ) अपनी शक्तिते तू वायुको प्राप्त हो । ॥ १ ॥

[ १२३६ ] हे ( पवमान इन्द्रो ) शूद्र होनेवाले सोम ! तू ( श्रवाप्य रयि नि तोदासे ) प्रसन्ननीय धनके लिए शपथोंको पीडा देता है, ऐसा तू ( समुद्रं आविश ) कलशके पानीमें प्रवेश कर ॥ २ ॥

[ १२३७ ] हे सोम ! ( मत्सरः ) आत्म वेनेवाला तथा ( क्रतुविद्यु ) पर बर्षको जाननेवाला तू ( पवसे ) शूद्र होता है। शूद्र हुआ हुआ तू ( मृषा अपप्तन् ) शपथोंको बुर करके ( अदेवयुं जनं सुदस्व ) नास्तिक मनुष्योंको बुर कर ॥ ३ ॥

[ १२३८ ] हे ( इन्द्रो ) तेजस्वी सोम ! ( नः ) हमें ( वाजसातम ) बल बढ़ानेवाले ( शतस्पृहं ) तंकाओं योगोंके द्वारा प्रशंसित ( सहस्रमर्णसं ) हजारों मनुष्योंका भरण पोषण करनेवाले ( तुविद्युन्न ) अति तेजस्वी ( विभासहं ) विजय प्रकाशमान ऐसे ( रयिं भग्नि अर्पं ) धन दे ॥ १ ॥

[ १२३९ ] हे ( यसो ) विभासक सोम ! ( पुरुस्पृहः यसोः ) अनेकों द्वारा प्रशंसित और सबको भयानेवाले ( अद्वय ते राधसः ) ऐसे बात तेरे धनके पास ( नैदिदृष्टतमाः स्याम ) हम रहनेवाले हों । ( अध्रि-गो ) गाधके पास रहनेवाले सोम ! ( ते इयः सुन्न ) तेरे द्वारा लिए गए भद्रके आलापने हम गुणी हों ॥ २ ॥

२३ [ ताम हिमी मा २ ]

- १२४० परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।  
 धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गन्वयुः ॥ २ ॥ १६ ( ली ) ॥  
 [ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. २।१८।३ )
- १२४१ पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ १ ॥ ( ऋ. २।१०९।४ )
- १२४२ शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्ये शं च प्रजाभ्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. २।१०९।५ )
- १२४३ दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥ ३ ॥ १७ ( हि ) ॥  
 [ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. २।१०९।६ )
- ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

[ ९ ]

- १२४४ प्रेष्ठ नो अतिथिस्तुपे मित्रमिन्द्र प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।८४।१ )
- १२४५ कविभिव प्रशस्यं ये देवास इति द्विता । नि मर्त्येभवाद्भुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।८४।२ )
- १२४६ त्वं यविष्ठ दाशुभो नृः पाहि शृणुही गिरः । रथा वीकसुव रथनो ॥ ३ ॥ १८ ( यी ) ॥  
 [ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।८४।३ )

[ १२४० ] ( गन्वयुः ) गायके दूषकी इच्छा करनेवाला ( ऊर्ध्वः य० ) धेठ यह सोम ( भ्राजा न ) तेजसे जितप्रकार धमकना चाहिए उसप्रकार धमकता है और ( अध्वरे धारा याति ) अर्हासक यत्नमें धारसे पहुँचता है । ( स्वानः स्यः इन्दु ) छाना जानेवाला वह सोम ( मदच्युतः अन्ये परि अक्षरत् ) आनन्द बढ़ानेके लिए आलोक्यो छलनीमेंसे टपकता है ॥ ३ ॥

[ १२४१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( महान्त्समुद्रः ) महान् रससे युक्त ( पिता ) पालन करनेवाला तू ( देवानां विश्वा धाम ) देवोंके सब स्थान अपने रससे ( अग्नि पवस्व ) भर वे ॥ १ ॥

[ १२४२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( शुक्रः ) धमकनेवाला तू ( देवेभ्यः पवस्व ) देवोंके लिए छकता जा । ( पृथिव्ये ) पृथ्वीके, पृथ्वीलोकके तथा ( प्रजाभ्यः शं ) प्रजाओंको मुक्त मिले ॥ २ ॥

[ १२४३ ] हे सोम ! तू ( शुक्रः पीयूषः ) तेजसी और पीनेके योग्य ( दिवः धर्तासि ) पृथ्वीलोकका पारण करनेवाला है । ( याजी ) मलयान् तू ( सत्ये ) यत्नमें ( विधर्मन् पवस्व ) विविध कर्म करनेके समय छनता जा ॥ ३ ॥

॥ यहाँ आठवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ १२४४ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( प्रेष्ठं अतिथिं ) प्रिय अतिविरह्य ( मित्रं इय मित्रं ) मित्रके समान मित्र ( रथं न वेद्यं ) रथके समान पत्त प्राप्तिकार हेतु ( धा स्तुपे ) तेतो में स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ १२४५ ] ( देवासाः ) सब देवोंके ( धर्मि इय प्रशस्यं ) बरिंके समान प्रशस्तीय ( यं ) जित अग्निसे ( मर्त्येषु इति ) मनुष्योंमें ( द्विता ) गार्हपत्य और आगहनूय इन दोनोंके कर्णमें ( श्वाद्भुः ) स्थापित किया ॥ २ ॥

[ १२४६ ] हे ( यविष्ठ ) तारा तदण रहनेवाले इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( दाशुभः नृः पाहि ) रात्र करनेवाले मनुष्योंका रक्षण कर ( गिरः शृणुहि ) शृणु मुझ । ( उत रथा वीकं वक्षः ) और अपने प्रयाससे युद्धका रक्षण कर ॥ ३ ॥

१२४७ एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदपोद्भ । गिरिर्नि विषतः पृथुः पतिर्दिवः ॥२॥ ( ऋ. ८।९।८ )

१२४८ अग्नि हि सत्य सोमया उमे चभूय रौदसी । इन्द्राग्निं सुन्वतो वृषः पतिर्दिवः ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।९।८ )

१२४९ त्वर हि शशतीनामिन्द्र धर्ता पुरामसि । इन्ता दस्योर्मनोवृषः पतिर्दिवः ॥३॥ १९ ( ऋ. ) ॥  
[ धा० १० । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ८।९।८ )

१२५० पुरां भिन्दूयुवा कविरमितौजा अजायत ।  
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता यज्ञो पुरुष्टुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।१४ )

१२५१ त्वं यलस्य गोमतोऽपावरद्विवो विलम् । त्वां देवा अविम्पुपस्तुज्यमानासः आविपुः ॥२॥  
( ऋ. १।१।१५ )

१२५२ इन्द्रमीजानमोजसामि स्तोमैरनूयत ।  
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ३ ॥ २० ( ही ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १।१।१८ )

॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥  
॥ इति पञ्चमप्रपाठके अथमोऽर्घ्यः ॥ ५-१ ॥  
॥ इति नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

[ १२४७ ] हे ( प्रिय ) हित करनेवाले, ( सत्राजित् ) मय दायुर्भोजी जोतनेवाले तथा ( अ-गोछ ) कित्तोके द्वारा न बढाये जानेवाले ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( गिरिः न ) पर्वतके समान ( विश्वतः पृथुः ) सब तरहते यज्ञ हू ( दिवः पतिः ) सुलोकका स्वामी ( नः आग्निधि ) हमारे पास आ ॥ १ ॥

[ १२४८ ] ( सत्य सोमया इन्द्र ) हे सत्यके पालक और सोम पीनेवाले इन्द्र ! तू ( उमे रौदसी ) दोनों सुलोक और पृथ्वीलोकको ( अग्नि यमूय ) अपने प्रभावसे दक देता है । येवा हू ( सुन्वतः वृषः ) सोमयाग करनेवालेको बढानेवाला और ( दिवः पतिः अग्नि ) सुलोकका स्वामी है ॥ २ ॥

[ १२४९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं हि ) तू ( शशतीनां पुरां धर्ता ) दायुर्भोजी बहुतसे नगरोंको तोषनेवाला, ( दस्यो इन्ता ) दायुर्भोजी नष्ट करनेवाला ( मनोवृषः ) यज्ञ करनेवाला, भनुय्योके मनोको बढानेवाला और ( दिवः पतिः अग्नि ) सुलोकका स्वामी है ॥ ३ ॥

[ १२५० ] ( पुरां भिन्दुः ) दायुर्भोजी नगरोंका नष्ट करनेवाला, ( युवा ) सदा तपन, ( कविः यमिनीजाम् ) ज्ञानी और अपरिमित पराक्रमवाला, ( विश्वस्य कर्मणो धर्ता ) सब मनुष्योंका पोषण करनेवाला, ( यज्ञो पुरुष्टुतः ) यज्ञपारो और बहुतों द्वारा प्रशंसित होता ( इन्द्रः अजायत ) इन्द्र अकट हुआ है ॥ १ ॥

[ १२५१ ] हे ( आग्निधि ) यज्ञपारो इन्द्र ! ( त्वं ) तूने ( गोमतः यलस्य ) दायुर्भोजी के जानेवाले दायुर्भोजी ( विलं अपायः ) मुझको फोटा, सब ( तुज्यमानासः येवा ) हमारे हुए देव ( अ-विम्पुपः ) न पचरते हुए ( त्वां आविपुः ) तुमसे आकर मिले ॥ २ ॥

[ १२५२ ] स्तुति करनेवाले ( ओजसा ईजानं इन्द्रं ) सामर्थ्यसे सबके स्वामी होनेवाले इन्द्रकी ( स्तोमैः अभ्यनूयत ) स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगे । ( यस्य रातयः सहस्रं ) जिसके दान हजारों हैं ( उत वा ) अपना ( भूयसीः सन्ति ) बहुत ज्यादा हैं ॥ ३ ॥

॥ यद्वां नवमं खण्डं समाप्तं हुआ ॥  
॥ इति नवमोऽध्यायः ॥



## नवम अध्याय

- इत अध्यायमें इन्द्रके गुण इतप्रकार हैं—
- १ सुधा [ १२२२ ]- बलवान् ।
  - २ सूपमः [ १२२२ ]- सामर्थ्यवान् ।
  - ३ ओजिष्ठ [ १२२३ ]- सामर्थ्यवान् ।
  - ४ यत्ने-हितः [ १२२३ ]- बलसे युक्त, बलसे हित करनेवाला ।
  - ५ सत्यलः [ १२२४ ]- धलवान् सामर्थ्ययुक्त ।
  - ६ उग्रः [ १२२४ ]- उपवीर ।
  - ७ अस्तुतः [ १२२४ ]- पराजित न होनेवाला, न हारनेवाला ।
  - ८ अनपच्युतः [ १२२४ ]- अन्यकिसीसे न बननेवाला ।
  - ९ वज्रः न [ १२२४ ]- वज्रके समान कठिन, बलशाली ।
  - १० वज्री [ १२५० ]- वज्रका उपयोग करनेवाला ।
  - ११ प्रशार्थ [ १२३१ ]- शत्रुको हरानेवाला ।
  - १२ शविष्ठः [ १२३३ ]- सामर्थ्यवान् ।
  - १३ स्वपाद् [ १२३४ ]- तेजस्वी, स्वयं राज्य करनेवाला ।
  - १४ सोम्यः [ १२२३ ]- उत्तम मनवाला ।
  - १५ इलोकी [ १२२३ ]- जिसकी प्रशंसा होती है, प्रशंसनीय ।
  - १६ उपमार्जा प्रथमः [ १२३४ ]- उपमा देनेके योग्यमें सर्व प्रथम ।
  - १७ प्रियः [ १२४७ ]- सबको प्रिय ।
  - १८ सधाजिन् [ १२४७ ]- अनेक शत्रुओंको एकदम जीतनेवाला ।
  - १९ अगौरः [ १२४७ ]- ओ छिपा नहीं रह सकता, अपने सामर्थ्यसे प्रतिष्ठ होनेवाला ।
  - २० विभ्वतः पुष्टः [ १२४८ ]- सब प्रकारसे महान् ।
  - २१ दिवः पतिः [ १२४८ ]- दुलोकका स्वामी ।
  - २२ दामने वृताः [ १२२३ ]- बान बनेके लिए प्रतिष्ठ ।
  - २३ पुरां मिन्दुः [ १२५० ]- शत्रुके नारोंको तोड़नेवाला ।
  - २४ सुधा [ १२५० ]- तटन, चाहे कितनी भी उग्र शस्त्री हो जाए फिर भी हमेशा तटन रहनेवाला ।
  - २५ कविः [ १२५० ]- कानी, बूखवाला ।
  - २६ अमिनौजाः [ १२५० ]- अर्थात्मत शक्तिसे युक्त ।
  - २७ विभ्वस्य कर्मणः धर्ता [ १२५० ]- सब धेठ धर्मोंका करनेवाला ।

२८ पुष्टपुतः [ १२५० ]- अनेक बिसकी सृष्टि करते हैं ।  
२९ आजसा ईशानः [ १२५२ ]- अपने सामर्थ्यसे शासक बननेवाला ।

३० महे बुधाय हन्तये इन्द्रं वाजयामरि [ १२२२ ]- महान् बुजराको मारनेके लिए उस इन्द्रके बलका हम धर्यात करते हैं ।

३१ हे इन्द्र! प्राक्, अपाक्, उदक्, स्यक् वा नृभिः ह्यसे [ १२३१ ]- हे इन्द्र! तुझे पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिणसे वीर नेता सहायताके लिए बुलाते हैं ।

३२ त्वं द्युधुवः नूद पादि [ १२४६ ]- तू दान्तगोल नेताको ब उतके पुत्रवीरोंकी रक्षा कर ।

३३ त्मना तोकं दक्ष [ १२४६ ]- अपने पुत्रवीरोंकी रक्षा कर ।

३४ हे अद्रिचः! त्वं गोमत्तः चलस्य विलं अपायः [ १२५१ ]- हे इन्द्र! तुने गाणोंको चुराकर ले जानेवाले राक्षसकी मुकाफो तोडा ।

३५ तुज्यमानासा देवाः अविभ्युयः त्वां आविदुः [ १२५१ ]- हारे हुए सब देव न करते हुए तेरे आध्ययमें आ गए ।

३६ यस्य रातयः सहस्रं, उत वा भूपत्नीः सन्ति [ १२५२ ]- इन्द्रके बान हजारों अपवा उनसे भी अधिक हैं ।

३७ इन्द्रः उभे रोदसी अग्नि यभूथ [ १२४८ ]- इन्द्रने दोनों ही लोक अपने तेजसे भर दिए ।

### इन्द्रको सोम देना

यह करनेवाले इत इन्द्रको सोमरत निचोड़कर दिया करते थे । इत विषयक वर्णन इत अध्यायमें इतप्रकार है—

१ अद्रिभिः सुतं सोमं पविषे आनय, इन्द्राय पातये पुनादि [ १२२५ ]- पत्थरोंसे बूटकर निचोड़े गए सोमरत छलनीके पास आ और इन्द्रके पीनेके लिए छानकर तैय्यार कर ।

२ मधुमत्तमं दिवः पीयूषं सोमं इन्द्राय सुनोत [ १२२७ ]- आसन्न नीचे दुलोकके ये अमृत अर्वात् सोमरत इन्द्रके लिए तैय्यार करो ।

३ तथिष्यमाणः इन्द्रस्य जटरेषु ऊर्मिणा आविद [ १२३० ]- बडाया जानेवाला यह सोमरत इन्द्रने देवमें लहराते जाये । इन्द्रका पैठ उत रखते अक्छो तरह भर जाये ।

४ ते मनः सोमकामं [ १२३४ ]-हे इन्द्र ! तेरा मन सोमरस धोनेकी इच्छा करता है ।

५ ते मदः आयुषकृ इन्द्रं गच्छतु [ १२३५ ]- हे सोम ! तेरा आमन्त्रण बढानेवाला रस इन्द्रके पास जाये ।

६ सखायं आ विशा [ ११८४ ]- हे सोम ! मित्ररूपी इन्द्रमें तू प्रविष्ट हो ।

७ इन्द्राय जुष्टः मन्स्वरः पवमानः [ ११९४ ]- इन्द्रकी विद्या जानेवाला आनन्दवर्षक सोमरस शृङ्ग किया जाता है ।

८ सुताः सोमाः इन्द्राय धारया अस्त्रं [ ११९६ ]- सोमरस इन्द्रको देनेके लिए पार बांधकर छाने जाते हैं ।

९ इन्द्रस्य जडरं आ विशा [ १२०९ ]- हे सोम ! इन्द्रके घेठमें भर जा ।

१० इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् पयते [ १२१३ ]- इन्द्रके स्थानपर पहुँचनेके लिए सोमरस शृङ्ग किया जाता है ।

इसप्रकार इन्द्रको सोमरस दिए जानेका वर्णन है ।

### देवोंके लिए सोमरस

जिसप्रकार इन्द्रको सोमरस दिया जाता है, उसीप्रकार दूसरे देवोंको भी दिया जाता है ।

१ महान् समुद्रः पिता देवानां विश्वा धाम अग्नि पवस्व [ १२४१ ]- महान् समुद्रके समान रहते भरा हुआ सोम, सभीके पालक देवोंके तब स्थानोक्त जाता है । तब देवोंको यह प्राप्त होता है ।

२ शुकः देवेभ्यः पवस्व [ १२४२ ]- षण्कनेवाला सोमरस देवोंके लिए छाना जाता है ।

३ द्विवे पृथिव्यै प्रजाभ्यः शं [ १२४२ ]- बृहती, पृथ्वीको और प्रजाओंको सुख मिले, इसलिए हे सोम ! तू शृङ्ग हो ।

### धुलाकर्म सोम

सोम स्वर्गमें अर्वात् हिमालयके ऊंचे शिखर पर पड़ा होता है—

१ शुभः पीयूषः विश्वः घर्षा अस्ति [ १२४३ ]- हे सोम ! तू तेजस्वी और अमृतके समान तथा धुलाकर्म रहनेवाला है ।

### सोमके गुण

१ विश्वः [ ११७५ ]- ज्ञानी ।

२ कविः [ ११७५ ]- दूरदर्शी ।

३ हृद्यतः [ ११७५ ]- पूज्य ।

४ अग्निमनाः [ ११७६ ]- ऋषिके समान नृद्व मनसे युक्त ।

५ अग्निहृत् [ ११७६ ]- ऋषि बनायेहार ।

६ स्ययीः [ ११७६ ]- सयका तब जाननेवाला ।

७ सहस्रनीथः [ ११७६ ]- हजारों रातोंकी जाननेवाला ।

८ महिषः [ ११७६ ]- बल बढानेवाला ।

९ कवीनां पदधीः [ ११७६ ]- ज्ञानीकी पदमी जिते प्राप्त हो गई है ।

१० स्तुम् [ ११७६ ]- स्तुत्य ।

११ विश्वदः [ ११७६ ]- विश्वके तेजस्वी ।

१२ द्येयः [ ११७६ ]- अर्वांसनीय गहर्षके समान सुखीकर्म रहनेवाला ।

१३ शुकुनः [ ११७६ ]- शक्ति बढानेवाला ।

१४ गोविन्दुः [ ११७६ ]- पाप प्राप्त करनेवाला ।

१५ द्रष्टः [ ११७६ ]- रसरूप ।

१६ नृचक्षुः [ ११८५ ]- मानकोंका निरीक्षण करनेवाला ।

१७ स्वर्विद् [ ११८५ ]- स्वर्गमें रहनेवाला, स्वर्गको जाननेवाला ।

१८ सोमाः इन्द्रस्य शीर्षं वर्धन्तः [ ११७८ ]- सोमरस इन्द्रका बल बढाता है ।

सोमरसके घे गुण हैं । इनमेंसे कुछ गुण इन्द्रके गुणके समान ही हैं । देव सोमरस पीते हैं, उससे उनका उत्साह बढता है और इससे अनेक महत्त्वके कार्य से करते हैं । यह देवोंका सामर्थ्य सोमरसके पीनेसे बढता है, इसलिए ये गुण सोमके ही हैं, ऐसा वर्णन किया है ।

### सोम यज्ञ स्थानमें घेठवा है

यज्ञ करनेवाले हिमालयके शिखरपरते सोम सते हैं और सोमपाय करते हैं । उस समय सोमपल्लीको भी यज्ञमण्डपमें रखते हैं, इसलिए कहा है—

१ स्वर्दशः ऋतास्य योनीं स्वीदत [ ११९५ ]- स्वर्गमें रहनेपाले सोम यज्ञ स्थानमें आते हैं ।

२ मद्भुजुतः सोमः खादने शेति, गोरी अधिध्रितः [ ११९८ ]- आनन्द और उरसाह बढानेवाला सोम, यज्ञ-शालामें रहता है । मान-सामगानोंके द्वारा यह शृङ्ग होता है । उसे शृङ्ग करते हुए सामका मापन शब् होता है ।

३ घाञ्जी स्वत्ये विश्वर्म पवस्व [ १२४३ ]- बल बढानेवाला सोम यज्ञशालामें शृङ्ग होता है ।

इसप्रकार सोमका यज्ञशालाके साथ सम्बन्ध है ।

## सोम संगठन करनेवाला है

१ नित्य-स्तोत्र-वनस्पतिः मानुषा युजा हिन्द्यान्-  
[ १२०१ ]- नित्य प्रशस्त होनेवाली सोमवल्ली मनुष्योंको  
संगठित करती है। मानवोंको पत्रके कारण एकत्रित करती है।

## सोमरसका पानीमें मिलाता।

सोमका रस निचोड़नेके बाद पानीमें मिलाया जाता है।

१ अथ. न नदीषु वृथा पाज्जांसि कृणुते [ १२२८ ]  
- घोड़ेके समान यह सोम नदीमें अनायास ही अपने बलोंको  
प्रकट करता है। पोढा जिलप्रकार पानीमें अपना बल दिखाता  
है, उसीप्रकार सोम जलमें मिलकर उसका बड़ानेकी अपनी  
शक्ति दिखाता है।

२ हे सोम ! समुद्रं वा मित्रा [ १२३६ ]- हे सोम !  
कलशमें रखे हुए पानीमें प्रवेश कर। पानीमें मिल।

इसप्रकार सोम पानीमें मिलाया जाता है।

## सोमके लिए सामगान

सोमरस छाननेके समय सामगान किया जाता है। इस  
विषयमें वर्णन इसप्रकार है—

१ हे अवस्थय ! पवमानं निम देववीतये सुप्राणं  
अभि प्रगायत [ ११८८ ]- हे अपनी रक्षाकी इच्छा करने-  
वाले गायकों ! शूद्र होनेवाले, जानी, देवीके पीनेके लिए  
जिसका रस निकाला गया है, ऐसे सोमको लक्ष्य करके  
वेदमंत्रों-सामों-का गान करो।

सोमरसके निकालनेके और छाने आने तक सामवेदका गान  
यतमचर्यमें होता रहता था। एक तरफ उद्गाता साम गान  
करते थे और दूसरी तरफ सोमरस छाना जाता था।

## सोमका छाना जाना

सोमका रस निकालनेके बाद उसमें पानी मिलाकर वह  
छलनीसे छाना जाता था। इस विषयमें वर्णन इसप्रकार है—

१ क्विः पवित्रं अत्येति [ ११७५ ]- जानी सोम  
छलनीसे छाना जाता है।

२ स्वा ददाक्षिप. मृजन्ति [ ११८१ ]- हे सोम ! पुत्रों  
रस अंगुलियों शूद्र करती है।

३ स्वदक्षपारः अत्यनि. पुनान. सोमः [ ११८७ ]-  
हजारों धाराओंसे भेड़के बालोंकी छलनीसे सोम छाना  
जाता है।

४ होलुमिः अव्यं चारं वि अति अष्टमं [ ११९१ ]  
- ऋषिब्रह्मोंके द्वारा सोमरस भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना  
जाता है।

५ सुक्रतुः क्विः सोमः दिवः नाना अद्या घारे  
महीयते [ ११९९ ]- जलम यत करनेवाला जानी सोम  
स्वर्गके नामिस्वान अर्थात् ऊपरके कलशसे पालोंकी छलनी  
पर शोभित होता है अर्थात् छाना जाता है।

६ सोमः पवित्रे अन्तः आहितः [ १२०० ]- सोम-  
रस छलनी पर रखा जाता है।

७ इन्दुः मधुदधुर्त कोशं जिन्वन् समुद्रस्य अधि  
विष्टिपि वाच्यं प्रेषति [ १२०१ ]- सोमरस रखनेके बर्तनमें  
गिरता है, तब जलके कलशमें वह शब्द करता हुआ गिरता है।

८ अद्रिभिः भ्रियं हरिं मधुदधुर्त पवमानं अद्याः  
घारेः परि हिन्वति [ १२०७ ]- पत्थरोंसे कूटकर निचोड़े  
गए भ्रिय और हरे रंगके मोठे सोम रसको भेड़के बालोंकी  
छलनीसे छानते हैं।

९ पवित्रं धारया वा पवस्व [ १२०८ ]- छलनीसे  
पार बाधकर छनता जा।

१० स्वानः इन्दुः अव्ये परि अक्षरत् [ १२४० ]-  
निकाला गया सोमरस भेड़के बालोंकी छलनीसे छनता  
जाता है।

## सोमरसको गायके दूधमें मिलाता

सोमरस निकालनेके बाद उसे पानीमें मिलाकर छानते  
हैं। बादमें उसमें गायका दूध मिलाते हैं—

१ मदिन्तम अकृनुमिः गोभिः अजानः पवस्व  
[ १२०२ ]- हे आनन्दवर्धक सोम ! तेजस्वी गायके दूधके  
साथ मिलकर शूद्र हो।

२ गव्ययुः ऊर्ध्वः यः भ्राना न अघ्नरे धारा याति  
[ १२४० ]- गायके दूधसे मिलाया जानेवाला, श्रेष्ठ यह  
सोम तेजसे चमकता है और यतमें धारासे छनता है।

३ मेप्यः अति रुजानं स्वा देवेभ्य मदाय गोभिः  
सं चासयामसि [ ११८२ ]- हे सोम ! भेड़के बालोंकी  
छलनीसे छाना जानेके बाद देवोंको आनन्द देनेके लिए पुत्रों  
गायके दूधमें हल मिलाते हैं। प्रथम यह छाना जाता है,  
उसके बाद वह देवोंकी अन्धा मगं इसलिये उसमें गायका  
दूध मिलाते हैं।

४ पुनानः कलशेषु वा, अरुप हरिः गव्यानि  
यन्त्राणि परि अव्यत [ ११८३ ]- सोमरसको छानकर

बलश्रमे भरनेके बाद वह हरे रथका चपपनेवाला सोम गायके दूधके बरत्रोंको पहनता है। गायके दूधमें मिलाया जाता है।

इसप्रकार सोमरसको गायके दूधमें मिलानेका वर्णन है। गायके बरत्रोंको सोम पहनता है यह आलंकारिक वर्णन है। सोममें गायके दूधको मिलानेका मतलब ही गायका धरम पहनता है। "गायके साथ मिलता है" यह भाव भी कई धर्मोंमें थाया है, उसका भी अर्थ गायके दूधमें मिलाना है। "अंशके लिए पूर्णका उपयोग" वैदिक अलंकारमें कई जगह दिखाई पड़ता है। "दूध" अन्न है और "गाय" पूर्ण है इसलिए दूधके लिए गायका प्रयोग किया है। यह वेदकी सीली है।

### सोमका शब्द

सोमरस छात्रकर कलशमें भरा जाता है, तब उस बलश्रमे भरनेका उसका शब्द होता है।

१ सिन्धोः स्वनः इय ते शुष्माताः उर्वरते [ १२०५ ] - जिज्ञाप्रकार नदी सपका समुद्रकी सहरोंका शब्द होता है उसीप्रकार सोमका शब्द सुनर जाता है। सोमकी बलश्रमे आसते समय उसका शब्द होता है।

२ याणस्य पर्यि चोदय [ १२०५ ] - बाण नामक यज्ञेका शब्द होता है वंसा शब्द कर।

वह शब्द कलशमें आसते समय उब पकड़्योकर संसा होता है, वंसा होता है।

### सोम अन्न देता है

सोमरस एक प्रकारका पोष्टिक और बल बढ़ानेवाला अन्न है।

१ सोम ! स्वर्दिदे त्वां, यय प्रजां इयं भक्षिमिहि [ १२८५ ] - हे सोम ! त्वन्को जाननेवाले तुझे प्राप्त करके तथा सतति य अन्न प्राप्त करके हम आनन्दते रहें।

२ हे इन्द्रो ! याजसातये पृहती इयः पञ्चस्य [ ११९० ] - हे सोम ! हम अन्न दान करें इसलिए बहुत सारा अन्न हमें दे।

३ नः गोमन् हिरण्यवत् अभयवित् सहस्रिणी इयः परिक्षर [ १२१२ ] - हे सोम ! हमें गाय, सोना, घोडा और हजारों प्रकारका अन्न दे।

४ धिया नः शश्वत्तः वाजान् उपमाति [ १२३० ] - बर्ष करके हमें हमेशा रहनेवाले यत्तवर्ष अन्न दे।

५ हे अध्रिगो ! ते इयः सुस्रे [ १२३९ ] - हे गायको मापे करनेवाले सोम ! तेरे अन्न मुक्त बढानेवाले, हे। गायको आगे करनेवाला सोम अपात् गायका दूध जितमें मिलाया जाता है वह सोम।

गोयका रस दूधमें मिलनेसे वह एक उत्तम प्रकारका अन्न होता है।

### सोम बल बढ़ाता है

सोमरसको छानकर उसमें दूध मिलानेसे वह पुष्टिकारक अन्न होता है -

१ सहस्र-पाजसः सोमाः पवन्ते [ ११८९ ] - हजारो प्रकारकी शक्ति बढानेवाले सोमरस छाने जाते हैं।

२ द्युमन् सुषीर्यं पवस्व [ ११९० ] - तेजावी उत्तम पराक्रम करनेके सामर्थ्य हमें दे।

सोमरसही जी अन्न है उसमें एसा विलक्षण सामर्थ्य है इसमें शका नहीं।

### सोम धन और उत्तम वीर्य देता है

१ ते स्वानाः देवास्तः इन्द्रवः नः सहस्रिणं रयिं सुषीर्यं आ पवन्ताम् [ ११९२ ] - वे निचोटे गए विध्य सोम हमें हजारो प्रकारके उत्तम वीर्य और धन देवे।

२ हे पयमान ! सहस्रवर्षसं स्याभुय रयिं अस्ते धारय [ १२०३ ] - हे तुम्ह होनेवाले सोम ! हजारों तेजोति युक्त ऐसे अपने स्वयंके पर हमें दे।

३ हे इन्द्रो ! नः महः रायः आभर, वीरवत् यसाः रास्य [ १२१४ ] - हे सोम ! हमें बडे बडे धर दे और पुत्र-पौत्रोति युक्त यश दे।

४ अजस्यसे राधः शिरसत् त्वा शव चन हृतः नः शामिन् [ १२१५ ] - पत करनेवालोंको नू बूब धार देनेकी इच्छा करता है, तब संकष्टों कुटिल शत्रु भी तेरा प्रति वन्द्य नहीं कर सकते।

५ हे इन्द्रो ! नः धाजसातम शतस्युह, सहस्र-अर्णवत् तुविशुस्रं विभासाहं रयिं अभि सर्षे [ १२३८ ] - हे सोम ! हमें बल देनेवाले, बहुतों द्वारा प्रशंसित, हजारोंका भरपूरयोग्य करनेवाले तेजस्वी, विशेष वीरिजवाले पन्न दे।

६ पुत्रपृहः घसोः ते राधसः नेदिष्ठतमाः स्वाम् [ १२३९ ] - बहुत सारे सोम तेरे पनकी प्रशंसा करते हैं अतः उन धारों पात हम पढ़ें।

## शत्रुको दूर कर

१ विश्वाः द्विपः अप जहि [ ११८४-११९४ ]- राव शत्रुओंको हरा ।

२ पृत्सु नः सहः धाः [ ११८६ ]- युद्धमें अपने शत्रु-ओंको जीतनेका सामर्थ्य हममें बढा ।

३ पचमान ! अराट्णः अपन्नतः [ ११९४ ]- हे तोमरत ! तू शान न देनेवाले कजुओंको दूर करनेवाला है ।

४ ते यः मन्वेसु नवनवतीः भवाहन् [ १२१० ]- तेरा यह रत सप्राप्तमें ९९ शत्रुओंको हराता है ।

५ सद्यः पुरः [ १२११ ]- उसी समय शत्रुके नगरोंका यह नाश करता है ।

६ द्विवोदासाय शम्बरं तुर्वशं यदुं भवाहन् [ १२१३ ]-द्विवोदासके कल्याण करनेके लिए शम्बर, तुर्वशा और यदु-ओंको इन्द्रने मारा ।

७ सोम मृधः अपघ्नन्, अराट्णः अप [ १२१३ ] सोम शत्रुओंको मारता है और शान न देनेवालोंको भी दूर करता है ।

८ मृधः जहि [ १२१४ ]- शत्रुओंको हरा ।

९ दूरः न गभस्त्वोः आयुषा घन्ते [ १२२९ ]- दूरके समान यह सोम हाथोंमें शत्रुओंको धारण करता है ।

१० मत्सरः प्रतुयिष् मृध अपघ्नन् [ १२३७ ]- यह आनन्द देनेवाला सोम कर्म करनेके सब ज्ञानको जानता है और शत्रुओंको मारता है ।

११ हे इन्द्र ! त्वं दक्षधतीनां पुरां धर्ता, दस्वोः हृता अस्ति [ १२४९ ]- हे इन्द्र ! तू शत्रुओंको मारकर भगवत्सोंका और कुटुंबोंका नाश करनेवाला है ।

## सुभाषित

१ जगानं हर्षतं शिन्नुं मृजन्ति [ ११५५ ]- अभी अभी जन्में हुए उत प्रिय बातहकी शृङ्खलें हैं, साक करते हैं ।

२ गणेन यिन्नं नुमन्मति [ ११७५ ]- राव समूहमें मिलकर शानकी पुजा करते हैं । साकार करते हैं ।

३ ऋषिः योमिः पवित्रं भस्तेति [ ११७५ ]- ऋषि भावपके द्वारा पवित्रपके पास शत्रुघ गया है ।

४ ऋषिपना ऋषिकृत्, सहस्रनीधः, कवीनां यदवीः महिषः तृतीयं धाम सिपासन् विराजं भुव विराजति [ ११७६ ]- ऋषिके समान जिसका पवित्र मन है, जो ऋषियोका निर्माण करता है, जो अनेक मार्गोंसे उत्तम कार्य करता है, जो शानकी पदवीको प्राप्त हुआ है, ऐसा जो महान् और शक्तिमान् होनेके कारण सर्वोच्च तृतीय स्थानमें रहता है वह विशेष तेजस्वी होनेके समान विराजमान् होता है ।

५ चमूपद् शकुनः गोविन्दुः महिषः तुरीयं धाम विद्यन्ति [ ११७७ ]- समूहमें सम्मानपूर्वक रहनेवाला, गाय पालनेवाला, क्षत्रिय स्थानमें अपति सर्वोत्तम स्थानमें विराजता है ।

६ एते वस्य वीर्यं घर्षन्तः [ ११७८ ]- ये वीर इसका पराक्रम बढ़ाते हैं ।

७ पुनानासः चमूपदः ते नः सुधीयं घन्त [ ११७९ ]-ये पवित्र होनेवाले समूहमें सम्मानसे रहनेवाले तुम हमें उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य दो ।

८ पुनानः राघसे हार्दिं चोदय, देवानां योमि आसुदं [ ११८० ]- युद्ध होकर सिद्धि प्राप्त करनेके लिए लोगोंके हृदयमें युद्ध प्रेरणा कर । देवोंके स्थानमें भे बढा हुआ है ।

९ विमाः स्या अनु भमाविपुः [ ११८१ ] शानो तुमं आनन्द देते है ।

१० विश्वाः द्विपः अप जहि [ ११८४ ]- राव शत्रु करनेवाले शत्रुओंको पराजित कर ।

११ सखायं भा विश [ ११८४ ]- मित्रके पास बंध ।

१२ नृचक्षसं स्वविदं त्वां यद्यं प्रजां ह्यं भक्षीमहि [ ११८५ ]- मनुष्योंके निरीक्षण करनेवालेतुम आत्मज्ञानको प्राप्त करके सुसन्तान और धन प्राप्त करके आनन्दसे रहें ।

१३ वृषिष्वाः आधि शुक्रं [ ११८६ ]- वृषियों पर तेजस्वी अन्न उत्पन्न कर ।

१४ पृत्सु नः सहः धाः [ ११८६ ]- संग्राममें उपयोगी हैं ऐसे शत्रुको हारनेवाले सामर्थ्य हमें दे ।

१५ अयस्ययः । पयमानं यिन्नं वैषयीतये सुव्युर्णं अग्निं प्रगायत [ ११९९ ]- अपनी रसारी इच्छा करने-वालो । दूध, शानो, देवोंके गोत्रके लिए निचोड़ें गे तोमरकी लड्य करके स्वीयोंका शान करो ।

१६ दामस्तु तुरीयं पयस्य [ ११९० ]- तेजस्वी उत्तम सामर्थ्य हमें दे ।

१५ नः सहस्रिणं रायं सुधीर्यं पद्यन्तः [ ११९२ ]  
- हृषं हजारां प्रकारके पन और उत्तम पचाराय करनेके सामर्थ्य हो ।

१८ पचमानः कनिप्रदत्त् विभ्याः द्वियः अप जहि [ ११९४ ]  
तु गुञ्ज होते हुए तथा नाञ्ज करते हुए तम प्रायुओंकी वृत्त कर ।

१९ वरावणः अपन्नतः स्वर्द्धदाः ऋतस्व योनी सीदत् [ ११९५ ]- अगुवार प्रायुओंकी मारकर, अपने तेजसे युक्त होकर यज्ञके स्थान पर बंठे ।

२० सहस्रयचंसं स्वाभुव्यं रयिं अस्मे रास्य [ १२०३ ]- हजारां प्रकारके तेजसे युक्त पर और पन हमें है ।

२१ कविः धिमः द्वियः भिया भभि हिन्द्रे [ १२०४ ]  
- ज्ञानी, बुद्धिमान् छुछोकी प्रिय स्थानकी और प्रेरणा करता है ।

२२ से मदेसु नय-नयतीः अघाहन् [ १२१० ]- तेरा जमाह्नु यज्ञमें विग्यानसे प्रायुओंकी मारता है ।

२३ सद्यः पुटः [ अघाहन् ] [ १२११ ]- उत्तरे समय प्रायुंके पचारायकी इतने तीव्र ।

२४ नः गोमत् क्षिरपयवत् अक्षवित्त सहस्रिणीः रयाः परिहार [ १२१२ ]- हमें गाय, सोना और धीर्यसे युक्त हजारां प्रकारके अन्न है ।

२५ सोमः मृघः अपन्नन् वरावण अप [ १२१३ ]-  
है सोम ! हिमक और ज्ञान न देनेवाले प्रायुंकीका नाश कर ।

२६ नः महः रायः आ भर, मृघः जहि, वीरजत् यशः रास्य [ १२१४ ]- हमें बहुत सारा धन भरपूर दे । प्रायुंकी मार और बुझके साथ मिलनेवाले यश और अन्न है ।

२७ राधः विरस्तन् रया शतं च्यञ्जतः न आमि नन् [ १२१५ ]- पन देनेकी इच्छावाले तुम्हें सैकड़ों प्रायु भी पन देनेसे नहीं रोक सकते ।

२८ सः घृया दृपमः भुवत् [ १२२२ ]- यह बलवान् और अधिक बलवान् हो गया है ।

२९ स दामने छतः [ १२२३ ]- यह देनेके लिए ही उत्पन्न हुआ है ।

३० स ओजिष्ठः धले हितः [ १२२३ ]- यह बल शाली और बलके कार्योंमें ही स्थापित किया गया है ।

३१ गिरा सम्भृतः स्यलः अतपच्छुतः उग्रः अस्तुतः वषसे [ १२२४ ]- चाणसे प्रसन्नित, बलवान् २४ [ साम हिन्वी भा. २ ]

होनेके कारण अपने कर्तव्यसे विमूल न होनेवाला, उपवीर और कभी न हारनेवाला ऐसा यह इन्द्र धन देनेकी इच्छा करता है ।

३२ शरः नः गभस्तयोः अगुधं घसे [ १२२९ ]-  
शूरके सहाय यह हाथोंमें अन्न धारण करता है ।

३३ प्राक्, अपाक्, उदक् या स्यक् सुभिः ह्यसे [ १२३१ ]- पूर्ण, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशामें लीग तुझे सहायतासे लिए बूलाते हैं ।

३४ उपमानां प्रथमः निपीदति [ १२३४ ]- उपमा देने योग्य मनुष्योंमें सबसे मुख्य होकर तु बैठता है ।

३५ अशाय्यं रयिं नितोदासे [ १२३६ ]- प्रसन्नोप धनके लिए तु प्रायुंकीकी पीछा देता है ।

३६ पुरस्वृहस्य वसोः राघसः नेदिष्ठतमः स्याम [ १२३९ ]- बहुतीके द्वारा साहने योग्य, सिद्धि देनेवाले धनके बहुत ही गत रहनेवाले हम होधे ।

३७ प्रजाभ्यः शं [ १२४२ ]- प्रजाओंका कल्याण हो ।

३८ शुक्रः वासी सत्ये विधर्मन् [ १२४३ ]- तेजस्वी, धलवान् और सत्यमांसमें धनके काम करनेवाला तू है ।

३९ एवं द्रागुपे नृन् प्राहि [ १२४६ ]- तू जान देनेवाले मनुष्योंकी रक्षा कर ।

४० रमना लोकं रक्ष [ १२४६ ]- अपने प्रबलते अपनी सन्तानोंकी रक्षा कर ।

४१ सप्राजित् वागोदाः विश्वतः पृथु [ १२४७ ]- सब प्रायुंकीके जीतनेवाला, किसीके साथे न दयनेवाला, सबसे दृढ़ और तू है ।

४२ द्राघ्यतीर्त्तां पुरां धर्ता, दृश्योः हस्ता, मनोः पृथः अत्रि [ १२४९ ]- तू प्रायुंकीकी नाशक तपस्वीकी तीर्त्तनेवाला, प्रायुंकी धारनेवाला और मनकी धलवान् करनेवाला है ।

४३ पुरां भि-दुः युया फरिः अमितीसा विभ्यस्य कर्मणः धर्ता वशी पुस्तद्वृतः अजायत [ १२५० ]- प्रायुंके पचारायकी तीर्त्तनेवाला तपन, ज्ञानी, अविरहित तपित-ज्ञानी, सत्य कर्मोंकी धारण करनेवाला, बलधारी और बहुतीके द्वारा स्तुति करनेके योग्य तू उत्पन्न हुआ है ।

४४ एवं गोमत्तः पलस्य विलं अयावः [ १२५१ ]- तुने माथोंकी धारनेवाले बल राशतकी मुफाकी फोड़ ।

४५ तुज्यमानासः देवाः अत्रिभुपुः स्या शायिपुः

[ १२५१ ]- हारे हुए देवोंने फिर न घबराते हुए तेरा ही आश्रय लिया ।

४६ यस्य रातयः सहस्र, उत वा भूयसी- सन्ति, तं ओजसा ईशानं इन्द्रं स्तोमैः अभ्यनूयत [ १२५२ ]- जिसके वान हजारों अथवा उससे भी अधिक हैं, उत सामन्तोंसे युक्त इन्द्रकी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ।

## उपमा

१ जज्ञानं दिशुं न [ ११७५ ]- नये-नये जन्मे हुए बच्चेकी जिसप्रकार साफ रखते हैं, उसीप्रकार ( हृद्यंतं मद्यतः मृजन्ति ) पूज्य सोमको बहुत साफ करते हैं ।

२ वाजसातये हियाताः आशयः न [ ११९१ ]- मुडके लिए तैयार हुए हुए बघल घोड़ेके समान ( हेतुभिः अव्यं चारं अति अस्त्रं ) शक्तिजोंके द्वारा सोमरस उल्लोते छाना जाता है ।

३ मातरः घस्त्वं न [ ११९३ ]- गायें जिसप्रकार अपने बछड़ेके पास जाती हैं, उसीप्रकार ( इन्वृच- अग्नि अर्पन्ति ) सोमरस बलशामें जाते हैं ।

४ धेनवः गावः घस्त्वं न [ ११९७ ]- बुधारे गायें अपने बछड़ेके पास जिसप्रकार जाती हैं, उसीप्रकार ( विप्रः इन्द्रं अग्नि अनूयत ) शक्तिज इन्द्रके पास जाते हैं ।

५ मद्रच्युत् सोमः सादमे क्षेति [ ११९८ ]- मानव देनेवाला सोम जिसप्रकार यज्ञशालामें रहता है, उसीप्रकार ( सिन्धोः ऊर्मां विपदिचत् ) नदीके पानीमें सोम रहता है, और उसीप्रकार ( गौरी अधिधितः ) गान्धीके बोधमें सोम मुद्र होता है ।

६ सुप्रतुः यधिः निचक्षणः [ ११९९ ]- उत्तम पशु करनेवाला जिसप्रकार शानी और महान् विशान् होता है, उसीप्रकार ( सोमः दिवः माभा ) सोम दृक्कोकमें ऊंचे स्थानपर रहता है ।

७ परावति क्विः विप्रः [ १२०४ ]- जैसे श्रेष्ठ स्थानमें कवि और शानी रहता है, उसीप्रकार ( धारया दिवः प्रिया अग्नि द्विन्ये ) धारते युक्त होकर दृक्कोकमें विप स्थानके पास सोम रहता है ।

८ सिन्धोः ऊर्मं स्वनः इव [ १२०५ ]- समुद्रकी लहरोंके शब्दके समान ( ते शुष्पासः उदीरते ) तेरी-सोमरसकी-तीव्रताके शब्द सुनाई देते हैं ।

९ प्रोथत् अश्वः न [ १२२० ]- हिमहिमनेवाले घोड़ेके समान ( महः संघरणात् यदा व्यस्थात् ) महान् धेयते जगलकी अग्नि फैलती है ।

१० वज्रः न [ १२२४ ]- वज्रके समान ( स्वधलः अन- पच्युतः ) बलवान् और न दबनेवाला इन्द्र है ।

११ भयः न [ १२२८ ]- घोड़ेके समान ( नवीपु वृथा पाजांसि कृणुते ) नवीके पानीमें सोम अनायास ही अपने धल दिखाता है । सोम पानीमें मिलाया जाता है ।

१२ दूरः न [ १२२९ ]- दूरके समान ( गभस्त्वोः आयुधा घषे ) सोम हाथोंमें धारण धारण करता है ।

१३ विपत् अश्व इव [ १२३० ]- गिजकी जैसे बादलोंसे पानी बरसती है, उसीप्रकार ( रोवसी प्रपिन्ये ) छलोक और भूलोक कल देते हैं ।

१४ भ्राजा न [ १२४० ]- तेजसे जैसे कोई चमकता है, वैसे ही सोम ( अघरे धारा याति ) यज्ञमें अपनी धारते जाता है । वहाँ जाकर चमकता है ।

१५ प्रिय मिर्धं इव [ १२४४ ]- प्रिय मित्रके समान ( प्रेष्टं अतिथि स्तुपे ) सर्व प्रिय अग्निकी स्तुति करता है ।

१६ रथं न घेद्यं [ १२४४ ]- रथके समान धन प्राप्त करानेवाले अधितिही में स्तुति करता है ।

१७ क्वि इव प्रशस्य [ १२४५ ]- क्विके समान प्रशस्तनीय ।

१८ गिरिः न [ १२४७ ]- पर्वतके समान ( विश्वतः पूयुः ) चारों ओरसे महान् ऐसा ( दिवः पाति ) दृक्कोकका शासक इन्द्र है ।



## नवमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋषिदेवता	ऋषि ( १ )	देवता पंचमान सोमः	छन्द विष्णुप्
११७५	१११६।१७	प्रतर्दंगो वैवोवाति	"	"
११७६	१११६।१८	प्रतर्दंगो वैवोवाति	"	"
११७७	१११६।१९	प्रतर्दंगो वैवोवाति	"	गायत्री
११७८	११८।१	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११७९	११८।२	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८०	११८।३	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८१	११८।४	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८२	११८।५	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८३	११८।६	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८४	११८।७	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८५	११८।८	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८६	११८।९	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
		( २ )		
११८७	१११३।१	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८८	१११३।२	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८९	१११३।३	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९०	१११३।४	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९१	१११३।५	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९२	१११३।६	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९३	१११३।७	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९४	१११३।८	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९५	१११३।९	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
		( ३ )		
११९६	१११२।१	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९७	१११२।२	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९८	१११२।३	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९९	१११२।४	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
१२००	१११२।५	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
१२०१	१११२।६	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
१२०२	१११२।७	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
१२०३	१११२।८	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
१२०४	१११२।९	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
१२०५	१११२।८	असित काश्यपो देवलो वा	"	"



मन्त्रसंख्या	श्लोकेदम्भार्यं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
१६०५	११५०१	उच्यथ आगिरसः	पयमानः सोमः	गायत्री
१६०६	११५०२	उच्यथ्य आगिरसः	"	"
१६०७	११५०३	उच्यथ्य आगिरसः	"	"
१६०८	११५०४	उच्यथ्य आगिरसः	"	"
१६०९	११५०५	उच्यथ्य आगिरसः	"	"

( ४ )

१६१०	११६११	अमहीयुरागिरसः	"	"
१६११	११६१२	अमहीयुरागिरसः	"	"
१६१२	११६१३	अमहीयुरागिरसः	"	"
१६१३	११६१४	अमहीयुरागिरसः	"	"
१६१४	११६१५	अमहीयुरागिरसः	"	"
१६१५	११६१६	अमहीयुरागिरसः	"	"
१६१६	११६१७	अमहीयुरागिरसः	"	"
१६१७	११६१८	निश्रुविः काश्यपः	"	"
१६१८	११६१९	निश्रुविः काश्यपः	"	"

( ५ )

१६१९	७१३१	वसिष्ठो भेमावरणिः	शनिः	त्रिष्टुप्
१६२०	७१३२	वसिष्ठो भेमावरणिः	"	"
१६२१	७१३३	वसिष्ठो भेमावरणिः	"	"
१६२२	८१३३	मुकल आगिरसः	इन्द्रः	गायत्री
१६२३	८१३४	मुकल आगिरसः	"	"
१६२४	८१३५	मुकल आगिरसः	"	"

( ७ )

१६२५	११५११	उच्यथ्य आगिरसः	पयमानः सोमः	"
१६२६	११५१२	उच्यथ्य आगिरसः	"	"
१६२७	११५१३	उच्यथ्य आगिरसः	"	"
१६२८	११७११	कविर्भानवः	"	अगती
१६२९	११७१२	कविर्भानवः	"	"
१६३०	११७१३	कविर्भानवः	"	"
१६३१	८१७१	देवातिपिः काश्यः	इन्द्रः	प्रागाथः—( विषमा बृहती, समा सती बृहती )
१६३२	८१७२	देवातिपिः काश्यः	"	"
१६३३	८१६११	भर्गः प्रागाथः	"	"
१६३४	८१६१२	भर्गः प्रागाथः	"	"

संज्ञासंख्या	श्रावैवस्थान	श्रुति	देवता	छन्द
( ८ )				
१०३-५	११६३।१५	निध्रुवि काश्यप	पवमान सोम	गायत्री
११३६	११६३।१३	निध्रुवि काश्यप	"	"
११३७	११६३।०४	निध्रुवि काश्यप	"	"
१०३८	११९८।६	अम्बरीषो घार्वांगिर ऋजिदवा भारद्वाजस्य	"	अनुष्टुप्
१२३९	११९८।५	अम्बरीषो घार्वांगिर ऋजिदवा भारद्वाजस्य	"	"
१०४०	११९८।३	अम्बरीषो घार्वांगिर ऋजिदवा भारद्वाजस्य	"	"
११४१	१११०१।४	अनये धिष्या ऐश्वरा	"	द्विषवा विराट
११४२	१११०१।५	अनये धिष्या ऐश्वरा	"	"
११४३	१११०१।६	अनये धिष्या ऐश्वरा	"	"
( ९ )				
११४४	८।८४।१	उदना काश्य	अग्नि	गायत्री
११५५	८।८४।१	उदना काश्य	"	"
११४६	८।८४।३	उदना काश्य	"	"
१०४७	८।९८।३	नृमेघ आंगिरस	इन्द्र	उत्तम
१०४८	८।९८।५	नृमेघ आंगिरस	"	"
११४९	८।९८।६	नृमेघ आंगिरस	"	"
११५०	१।११।४	जेता मायुच्छदस	"	अनुष्टुप्
११५१	१।११।५	जेता मायुच्छदस	"	"
११५२	१।११।८	जेता मायुच्छदस	"	"



## अथ दशमोऽध्यायः ।

॥७७

अथ पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽध्यायः ॥ ५ ॥

[ १ ]

( १-२३ ) १ पराधारः शाक्यः; २ जून.वेप आजीगति. स देवरातः कृत्रिमो बंसवामित्रः; ३ अस्तिः कामयो देवतो वा;  
 ४, ७, राहूगण आंगिरसः; ५ ( १-४ ), ५ ( प्रथम पादः ) प्रियमेघ आंगिरसः; ५ ( दोषारत्रयः पादाः ) ६ ( प्रथमः पादः )  
 १४ नृमेघ आंगिरसः; ६ ( दोषारत्रयः पादाः ) इष्मवाहो बार्हस्पत्युतः; ८ पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा;  
 ९ वसिष्ठो मंत्रावदणिः; १० वासः काश्वः; ११ शतं संखानसः; १२ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो  
 मारीचः; ३ गौतमो राहूगणः, ४ अश्विर्मौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जयवर्तिर्भाग्वः; ७ वसिष्ठो  
 मंत्रावदणिः ); १३ वसुभरद्वाजः; १५ भगः प्रगाथः; १६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १७ मनुत्सपत्यः;  
 १८ अश्वरीयो वायागिरः ऋजिसवा भारद्वाजश्च; १९ आनयो विष्ण्वा ऐश्वराः; २० अश्वीमुरांगिरसः;  
 २१ त्रिसोः काश्वः; २२ गौतमो राहूगणः; २३ मधुच्छन्वा संश्रामित्रः ॥ १-७, ११-१३,  
 १६-२० पयमानः सोमः, ८ पवमानाध्वेता, १०, १४-१५, २१ ( २-३ ), २२-२३ इत्यः;  
 ९ अग्निः, २१ ( १ ) अग्नीन्द्रो ॥ १, ९ विष्टुपूः २-७, १०-११, १६, २०-२१ गायत्री;  
 ८, १८, २३ अनुष्टुपः १२ ( १-२ ), १४, १५ प्रगाथः= ( बृहती, सतो बृहती );  
 १२ ( ३ ), १९ द्विपदा विराट्; १३ अगती, १७, २२ उचिष्ट ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३  
 १२५३ अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन्प्रजा सुवनस्य गोपाः ।  
 वृषा पवित्रे अधि सानो अध्ये बृहत्सोमा वायुधे स्वानो अद्रिः ॥ १ ॥ ( ऋ ९, ९७१४० )

१२५४ मस्ति वायुमिष्टये राधसे नो मस्ति मिश्रावरुणा पूयमानः ।  
 मस्ति शर्षो माहते मस्ति देवान्मस्ति द्यावापृथिवी देव सोम ॥ २ ॥ ( ऋ. ९, ९, ७१४२ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १२५३ ] ( समुद्रः गो-पा ) पानी भरतानेवाला, रत्नक सोम ( प्रथमे सुवत्सस्य विधर्मन् ) सबसे पहले  
 सुवत्सको धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें ( प्रजाः जनयन् अग्रान् ) प्रजाओंको उत्पन्न करने सक्ती भवेता थोडा हुआ । ( वृषा  
 रूपानः ) बलवर्षक सोमके रसको निकालनेके बाद ( अद्रिः सोमः ) आधरणीय वह सोम ( अधिसानो अध्ये पवित्रे )  
 अधिक ऊँचे रले गए मालोकी छलनीमें ( सुहृत् वायुधे ) अधिक बरता है ॥ १ ॥

[ १२५४ ] हे ( देव सोम ) विष्णु सोम ! ( नः इष्टये राधसे ) हमें अन्न और धन प्राप्त हो इसलिये ( वायुं  
 मस्ति ) वायुको प्रसन्न कर । ( पूयमानः ) छाना जानेवाला तू ( मिश्रावरुणा मस्ति ) मिश्र और धरपको सत्पुष्ट कर ।  
 ( माहते शर्षः मस्ति ) मरुतीके बलको आनष्टित कर । ( देवान् मस्ति ) देवोंको सत्पुष्ट कर ( द्यावापृथिवी  
 [ मस्ति ] ) सुलोक और पृथिवीको प्रसन्न कर ॥ २ ॥

१२५५ महत्ससोमो महिषश्कारायां यद्रमोऽवृणीत देवान् ।

अदधादिन्द्र पवमान ओजोऽजनपस्वर्ष्यं ज्योतिरिन्दुः ॥ ३ ॥ १ ( टै ) ॥

[ धा० २८ । उ० । १२० ८ । ( ऋ १।१७।१ )

१२५६ एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥ ( ऋ १।११।१ )

१२५७ एष विम्रेरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाह्वे । दधद्रत्नानि दाशुपे ॥ २ ॥ ( ऋ. १।११।६ )

१२५८ एष विश्वानि वार्यां शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषामसि ॥ ३ ॥ ( ऋ १।११।४ )

१२५९ एष देवो रथर्यति पवमानो विश्वस्पति । आधिष्कृणोति यम्वनुम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।११।६ )

१२६० एष देवो विपन्सुभिः पवमान श्रुतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।११।२ )

१२६१ एष देवो विषा कृतोऽसि ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥ ६ ॥ ( ऋ १।११।२ )

१२६२ एष दिवं वि भावति विरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥ ( ऋ १।११।७ )

[ १२५५ ] ( महिषः सोमः ) महान् प्रथम सोम ( महत् तत् चकार ) उष महान् कार्यो करता है । ( यत् ) को कार्य ( अर्थां गर्भः ) पत्नीके गर्भवाला यह सोम ( देवान् आपृणीत ) देवोंकी सेवा करनेके लिए करता है । ( पव-मानः ) छवकर इस सोमने ( इन्द्रे ओजः अदधात् ) इन्द्रने बल बढ़ाया, उत्तीप्रकार इत ( इन्दुः ) सोमने ( स्वर्ष्यं ज्योतिः अदधात् ) स्वर्ष्यं तेज स्थापित किया ॥ ३ ॥

[ १२५६ ] ( एषः अमर्त्यः देवः ) यह अमर देव सोम ( द्रोणानि अभि आसदम् ) कलशने बैठनेके लिए ( पर्णवीः इव ) पत्नीके समान ( दीयते ) वेपते जाता है ॥ १ ॥

[ १२५७ ] ( विम्रेः अभिष्टुतः ) हानियोंके द्वारा प्रसलित ( एषः देव ) यह देव सोम ( दाशुपे रत्नानि दधत् ) राताको रत्न देता हुआ ( अथ विगाह्वे ) जलोमें जाता है ॥ २ ॥

[ १२५८ ] ( पवमानः एषः शूरः ) छाता जानेवाला यह शूर वीर सोम ( विश्वानि वार्यां ) सब धन ( सत्वभिः यान्निव ) अपने मलने सहोपतासे प्राप्त करते हुए ( सिषामसि ) हमें देनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥

[ १२५९ ] ( एषः पवमानः देवः ) यह छाता जानेवाला विश्व सोम ( रथर्यति ) यजनें करनेके लिए, रथकी इच्छा करता है । ( विश्वस्पति ) और हमें इष्ट पदार्थ देनेकी इच्छा करता है और ( यम्वनुं आधिष्कृणोति ) सब करता है ॥ ४ ॥

[ १२६० ] ( एषः पवमानः देवः ) यह छाता जानेवाला विश्व सोम ( श्रुतायुभिः विपन्सुभिः ) यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके द्वारा, सोम ( हरि ) घोड़ेको निरूपकार ( वाजाय मृज्यते ) तयामर्थे जानेके लिए सजाते हैं, उत्तीप्रकार समया जाता है ॥ ५ ॥

[ १२६१ ] ( विषा कृतः ) संसृष्टियों द्वारा निषीडा गया, ( अ-दाभ्यः ) सदा न बचाया जानेवाला ( एष पवमानः देवः ) यह शूर होनेवाला विश्व सोम ( ह्वरांसि अति धावति ) शत्रुओंको कुचलता हुआ जाता है ॥ ६ ॥

[ १२६२ ] ( धारया पवमानः एषः ) धारसे छाता जानेवाला यह सोम ( कनिक्रदत् ) शब्द करता हुआ ( रजांसि विरो ) शत्रुके लोकोको हराता हुआ धनस्वानते ( दिवं विधावति ) स्वर्गलोकोको जाता हुआ प्रतीत होता है ॥ ७ ॥

१२६३ एष दिव्यं व्यासरात्रिरो रजांस्स्यस्वृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।३।८ )

१२६४ एष प्रश्नेन जन्मना देवो देवभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्पति ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।३।९ )

१२६५ एष उ स्य पुरुप्रतो जज्ञानो जनयाज्ञपः । धारया पवते सुतः ॥ १० ॥ २ ( दू. ॥

[ पा० ३४ । उ० ३ । ख० ६ ] ( ऋ. ९।३।१० )

॥ इति प्रथम खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१२६६ एष धिना यात्यण्वा शूरो रथेभिरशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१।१ )

१२६७ एष पुरू भियायते बृहते देवतातये । यन्नामृतासः आशत ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।२ )

१२६८ एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेऽनायवः । प्रचक्राणं महीरिपः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१।३ )

१२६९ एष हितो वि नीयतेऽन्वः शुन्धपावता पथा । यदी तुजन्ति भूर्णयः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१।४ )

१२७० एष रुक्मिभिरायते वाजो शुभ्रेभिरशुभिः । पतिः सिन्धूर्ना मवन् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१।५ )

[ १२६३ ] ( सु-अध्वरः पवमानः एषः ) उत्तम यत् करनेवाला तथा छाता जानेवाला यह सोम ( अस्वृतः ) अथराजित अर्थात् विजयो होकर ( रजांसि तिरः ) सत्रके लोसोको गण्ट करके ( दिव्यं व्यासरत् ) स्वर्गको जाता हुआ प्रतीत होता है ॥ ८ ॥

[ १२६४ ] ( हरिः पयः देवः ) हरे रगका यह विष्णु सोम ( प्रश्नेन जन्मना ) प्राचीन जन्मसे ही ( देवेभ्यः सुतः ) देवोंके लिए निवृद्ध कर ( पवित्रे अर्पति ) छलनीसे छाना जाता है ॥ ९ ॥

[ १२६५ ] ( एष उ स्यः ) यही वह सोम ( पुरुप्रतः जज्ञानः ) बहुत कर्म करनेके लिए उत्पन्न हुआ हुआ और ( ध्याः जनयन् ) अन्न उत्पन्न करता हुआ ( सुतः धारया पवते ) रसको धारया छनता जाता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १२६६ ] ( शूरः ) शूरवीर तथा ( अण्व्या ) अणुलिप्येति दवाकर निकाला गया ( एषः ) यह सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतम् ) इन्द्रके स्वावके पास ( आशुभिः रथेभिः ) शीघ्रगामी रथोंसे ( गच्छन् ) जानेकी इच्छा करता हुआ ( धिया याति ) बुद्धिपूर्वक जाता है ॥ १ ॥

[ १२६७ ] ( एषः ) यह सोम ( बृहते देवतातये ) महान् यत्के लिए ( पुरू धियायते ) बहुतसे कर्म करनेकी इच्छा करता है। ( यत्र ) जित यत्में ( यन्नामृतासः आशत ) अथर देव बँठते हैं ॥ २ ॥

[ १२६८ ] ( आयय ) ऋत्विज ( महीः इष मन्वथार्ण ) बृहत् अन्न उत्पन्न करनेवाले ( एते मर्ज्यं ) इत मुझ होनेके योग्य सोमको ( द्रोणेषु उप मृजन्ति ) कलशमें छानकर रखते हैं ॥ ३ ॥

[ १२६९ ] ( हितः पयः ) हविर्णसे रखा हुआ यह सोम ( विनीयते ) ग्राहकनीय स्थानकी ओर लेजाया जाता है। ( अन्तः शुन्धपावता पथा ) यहाँ दाढ़ होनेके मार्गसे ( याति भूर्णयः ) मन्वथं जाति ( तुजन्ति ) उठे देवोंकी ओर ले जाते हैं ॥ ४ ॥

[ १२७० ] ( यात्री ) बलवान् और ( शुभ्रेभिः अंशुभिः ) सूक्ष्म किरणोंसे युक्त ( पयः ) यह सोम ( सिन्धूर्ना पतिः मधन् ) प्रवाहित होनेवाले रसोंका स्वामी होकर ( रुक्मिभिः ईयते ) पात्रकोंके साथ जाता है ॥ ५ ॥

१२७१ एष शुद्धाणि दोषुमन्त्रिणीते सूधपोऽ वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥६॥ ( ऋ. १।१।५ )

१२७२ एष वसुनि पिबन्नः परया ययिवाऽ अति । अत्र शाद्रेषु गच्छति ॥७॥ ( ऋ. १।१।६ )

१२७३ एतद् त्वं दश शिषो हरिः हिन्वन्ति यातये । स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ ३ ( के ) ॥  
[ धा० ३। । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. १।१।८ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१२७४ एष उ स्य वृषा रथोऽग्या वारिभिरज्यत । गच्छन्वाजः सहस्रिणम् ॥१॥ ( ऋ. १।२।१ )

१२७५ एतं त्रितस्य योषणा हरिः हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥ ( ऋ. १।२।२ )

१२७६ एष स्य मातृपीषा इपेनो न विशु सीदति । गच्छं जारो न योषितम् ॥३॥ ( ऋ. १।२।३ )

१२७७ एष स्य मघो रसोऽय चष्टे दिवाः शिशुः । य इन्दुवारमाविशत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।२।४ )

[ १२७१ ] ( ओजसा नृम्णा दधानः ) अपने सामर्थ्यसे पनोंको पारय करते हुए ( एषः ) यह सोमरत्न ( सूधुः धृषा शिदीते ) तिलप्रकार गुच्छमें बँल अपने सीपोंको हिलाता है, उसीप्रकार ( शृंगामिण दोषुवत् ) अपनी किरणोंको हिलाता है ॥ ६ ॥

[ १२७२ ] ( वसुनि पिबन्नः ) बँठनेवाले रासलोंको पीना देनेवाला ( एषः ) यह सोम ( परया अति ययिवाः ) अपनी शक्तिसे शत्रुपर आक्रमण करता है, और ( शाद्रेषु अत्र गच्छति ) पारने योग्य रासलोंको कुचलता हुआ चला जाता है ॥ ७ ॥

[ १२७३ ] ( सु-आयुधं ) उत्तम गत्त्रोंका उपयोग करनेवाले तथा ( मदिन्तमम् ) अत्यन्त शान्तवदायक ( त्वं हरिः एतं उ ) उस हरे रगके रोमको ( यातये ) बँवोंके पास ले जानेके लिए ( दश शिष हिन्वन्ति ) बँवों अगुनियों बचाकर रस निकालती हैं ॥ ८ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १२७४ ] ( एषः ) यह ( रथः ) रथके समान वेगवान् तथा ( वृषा स्यः ) बलवान् सोम ( सहस्रिण जाजं ) हजारों प्रकारके अन्न देनेके लिए ( गच्छन् ) कलशमें जाते हुए ( अग्या वारिभिः ) बालोंको छलनीके द्वारा ( अज्यत ) छारा जाता है ॥ १ ॥

[ १२७५ ] ( त्रितस्य योषणा ) त्रितको अगुनियों ( इन्द्राय पीतये ) इन्द्रको पीनेके पाले देनेके लिए ( एतं हरिः इन्दुं ) इस हरे रगके सोमको ( अद्रिभिः हिन्वन्ति ) पथरोंसे बूटती है ॥ २ ॥

[ १२७६ ] ( स्यः एषः ) वह यह सोम ( मातृपीषु विशुः ) मनुष्यकी प्रजाओंमें ( इपेनः न ) अपने पक्षीके समान तथा ( योषितं गच्छन् जारः न ) स्त्रीके पास जाते हुए जा रहे समान ( आ सीदति ) जाकर बँठता है ॥ ३ ॥

[ १२७७ ] ( दिव शिशुः ) सुनोषका यह पुत्र ( यः इन्दुः ) जो सोम है वह ( वारं या विशत् ) छलनीमें प्रवेश करता है, ( एषः स्यः ) यह यह ( मघं रसः अय चष्टे ) जलम्बु मगानेवाला सोमरत्न सबको बँधता है ॥ ४ ॥

२५ [ साम हिन्दी भा २ ]

१२७८ एष स्य पीतये सुतो हरिरर्पति धर्षासि । ऋन्दन्धोनिमभि प्रियम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।२।६ )

१२७९ एषं त्यक् हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ६ ॥ ४ ( वी ) ॥  
[ धा० २९ । उ० ८ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।२।६ )

॥ इति सुतोय. खण्ड ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१२८० एष घानी हितो नृभिर्विभ्रविन्मनसस्पातिः । अल्पे धार वि धावति ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२।११ )

१२८१ एष पवित्रे अक्षरस्तोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२।१२ )

१२८२ एष देवः शुभायतेऽधि योनावमस्यैः । वृत्रहा देववीरतमः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।२।१३ )

१२८३ एष वृषा कनिकदक्षभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।२।१४ )

१२८४ एष सूर्यमरोचपत्पमाना अधि धावि । पवित्रे मस्सरो मदः ॥ ५ ॥

( ऋ. १।२।१६ [ प्रथम पाद' ] ऋ. १।२।१४ [ प्रथम पादा ] )

[ १२७८ ] ( पीतये सुतः ) देवोंके पीनेके लिए निबोहा गया ( हरिः धर्षासि ) हरे रक्का और सक्के पारण करनेवाला ( स्यः एषः ) यह यह सोम ( प्रियं योनिं ) अपने प्रिय स्थान बलसमें ( ऋन्दन् अपि अर्पति ) राख करता हुआ जाता है ॥ ५ ॥

[ १२७९ ] ( त्यं पतत् ) उस इस सोमको ( द्वाः हरितः ) दलों अंगुलिया ( अपस्युवः मर्मृज्यन्ते ) पत करलेंतो इच्छा करती हुई साफ करती हैं । ( याभिः ) जिन अंगुलिपीते ( मदाय शुम्भते ) शत्रुता आनन्द बढानेके लिए सोम छाना जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १२८० ] ( घानी ) बलवान् सोम ( नृभिः हितः ) पात्रकोंके द्वारा बलसमें रखा गया है । ( विश्वविन् मनसः पातिः ) सर्वत्र और मनका स्वामी ( एषः ) यह सोम ( अत्य धारं निधायति ) बालोंकी छलनीकी और रोझता है ॥ १ ॥

[ १२८१ ] ( देवेभ्यः सुतः एषः ) देवोंको देनेके लिए निबाला गया यह सोम ( पवित्रे अक्षरत् ) छलनीकी छाना जाता है । ( विश्वा धामानि आयायान् ) यह सब धार्थमें-देवोंके घरोंमें-प्रवेश करता है ॥ २ ॥

[ १२८२ ] ( अमस्यैः वृत्र-हा ) अमर और सन्मूर्खता नाश करनेवाला ( देव-धी-तमः देवः एषः ) देवोंकी बहुत अच्छा लगनेवाला यह विष्य सोम ( आधि योनां शुभायते ) अपने बलसमें शुभोचित होना है ॥ ३ ॥

[ १२८३ ] ( वृषा एषः ) बल बढानेवाला यह सोम ( कनिकदक्ष ) दास करते हुए ( द्रोणभिः जामिभिः यतः ) दलों अंगुलियोंके द्वारा बढानेके बाद ( द्रोणानि अभि धावति ) बलसमें रोझता हुआ पहुँचता है ॥ ४ ॥

[ १२८४ ] ( पवित्रे ) छलनीमें रहनेवाला ( मस्सरो मदः ) आनन्द बढानेवाला तथा प्रसन्नता देनेवाला ( एष पयमानः ) यह दुग्ध किया जानेवाला सोमस ( अधि सूर्ये अधि मरोचयत् ) दुलोचयें प्रपंचके बढाने करता है ॥ ५ ॥

- १२८५ एष सुपेण हासते संवमानो विवस्वता । पतिवोचो अदाभ्यः ॥ ६ ॥ ५ ( के ) ॥  
 { धा० २६ । उ० १ । स्व० ७ } ( ऋ १२।७२ [ प्रथमः पादः ] ऋ १२।६४ [ त्रय पादाः ] )  
 ॥ इति ऋग्वेदः खण्डः ॥ ४ ॥  
 [ ५ ]
- १२८६ एष कथिरमिन्दुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो ह्यक्षय द्विषः ॥ १ ॥ ( ऋ. १२।७१ )
- १२८७ एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि पिच्यते । पवित्रे दक्षमाधनः ॥ २ ॥ ( ऋ. १२।७२ )
- १२८८ एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमा वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥ ( ऋ १२।७३ )
- १२८९ एष गन्धुश्चिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः पश्नाजिदस्वतः ॥ ४ ॥ ( ऋ १२।७४ )
- १२९० एष शुष्मसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ५ ॥ ( ऋ १२।७५ )
- १२९१ एष शुष्मदाभ्यः सोमाः पुनानो अपति । देवावीरघश्च सदा ॥ ६ ॥ ६ ( गु ) ॥  
 [ धा० ३१ । उ० ३ । स्व० ९ ] ( ऋ. १२।८६ )  
 ॥ इति ऋग्वेदः खण्डः ॥ ५ ॥

[ १२८५ ] ( वाचः पतिः ) स्तुतिवा स्वामी ( अदाभ्यः एषः ) और न बचाया जानेवाला यह सोम ( स्व वसानः ) जलाविद्योमं मिलाये जानेके लिए ( विवस्वता सुपेण ) प्रकाशमान् सूर्यके द्वारा ( हासते ) छीना जाता है । धर्तनमें छाना जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥  
 [ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

- [ १२८६ ] ( कथिः अथिपुतः ) कथिर्षो-मानिर्षो-के द्वारा प्रशंसित होनेवाला ( पुनानः ) छाना जानेवाला ( द्विषः अपघ्नन् ) शत्रुओंको मारनेवाला ( एषः ) यह सोम ( अधि तोशते ) काले हिरणके चमड़ेपर कटा जाता है ॥ १ ॥
- [ १२८७ ] ( दक्ष-साधनः स्वर्जित् एषः ) बल बजानेके साधनोंके और स्वर्ग-सुख-को जीतनेवाला यह सोम ( इन्द्राय वायवे ) इन्द्र और वायुके लिए ( पवित्रे परि पिच्यते ) छलनीसे टपकता हुआ नीचेके कलशमें गिरता है ॥ २ ॥
- [ १२८८ ] ( दिवः मूर्धा ) पुनोक्कला तिर ( वृषा सुतः ) बलवान् और रतल्य ( विश्ववित् एषः सोमः ) सर्वत सोम ( वनेषु नृभिः नीयते ) लकड़के धर्तनमें स्तुतिवर्षों द्वारा ले जाया जाता है ॥ ३ ॥
- [ १२८९ ] ( गन्धुः शिरण्ययुः ) गंधुश्चिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः अरराजित ( एषः पवमानः ) यह सुद होनेवाला सोम ( अचिक्रदत् ) घस्य करता हुआ टपकता है ॥ ४ ॥
- [ १२९० ] ( वृषा हरिः ) बल बढ़ानेवाला हरे रंगका ( पुनानः इन्दुः ) पवित्र होनेवाला और घषकनेवाला ( शुष्मो एषः ) सामर्षवान् यह सोम ( अन्तरिक्षे आसिष्यदत् ) छलनीसे टपकता है और ( इन्द्रं वा ) इन्द्रके पास पहुँचता है ॥ ५ ॥
- [ १२९१ ] ( देवामी अघशंसदा ) देवोंका रक्षक और पापी शत्रुओंका नाश करनेवाला, ( अ-दाभ्यः पुनानः ) न बचनेवाला और सुद होनेवाला ( शुष्मो एषः अपति ) बलवान् यह सोम कलशमें जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहाँ पाँचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ६ ]

१२९२ स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्पति । विन्नन्नस्रांसि देवयुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३।१ )

१२९३ स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्पति घर्षसिः । अभि योनिं कनिकदत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।३।२ )

१२९४ स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति । रक्षाहा वारमन्वयम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।३।३ )

१२९५ स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः क्षर्यंश्सह ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।३।४ )

१२९६ स वृषहा वृषा सुतो वरिवाविददाम्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।३।५ )

१२९७ स देवः कविनेपिताश्मि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मंथयन् ॥ ६ ॥ ७ ( खे ) ॥

[ धा० २१ । उ० २ । ख० ७ ] ऋ. ९।३।६ ]

॥ इति खण्डः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१२९८ यः पावमानोरध्वत्पृषिभिः संभृतश्चरसम् ।

सर्वैश्च पूतमश्राति स्वदितं मातरिभ्यना

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।१ )

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ १२९२ ] ( देवयुः ) देवोको प्राक्त होनेवाला ( पीतये सुतः ) इन्द्रादि देवोंके पीनेके लिए तैयार किया गया तथा ( वृषा ) बल बढ़ानेवाला ( सः सोमः ) वह सोम ( रक्षांसि निचनन् ) राक्षसोंका नाश करता हुआ ( पवित्रे अर्पति ) छलनीसे गोबि उतरता है ॥ १ ॥

[ १२९३ ] ( विचक्षणः हरिः ) सर्वोंको देखनेवाला, हरे रंगका ( घर्षसिः सः ) सर्वोंको धारण करनेवाला वह सोम ( पवित्रे ) छलनीसे ( कनिकदत् योनिं अभि अर्पति ) सम्र करता हुआ कलशमें जाता है ॥ २ ॥

[ १२९४ ] ( वाजी दिवः रोचनं ) बलवान्, पुलोकमें चमकनेवाला ( रक्षोहा पवमानः सः ) राक्षसोंका नाश करनेवाला, शूद्र होनेवाला वह सोम ( अद्रययं वारं विधावति ) बालोंकी छलनीसे छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ १२९५ ] ( सः ) वह सोम ( त्रितस्य अधि सानवि ) त्रितके महान् मन्त्रमें ( पवमानः ) छाना- जाता हुआ ( जामिभिः ) सह ( महनं तेजोति ( सूर्यं शरोचयत् ) सूर्यको प्रकाशित करता है ॥ ४ ॥

[ १२९६ ] ( वृषहा वृषा ) शत्रुको मारनेवाला बलवान् ( सुतो ) रस निचोड़नेके बाद ( वरिवावित् ) धन देनेवाला ( अद्राम्य सः सोमः ) न दबनेवाला वह सोम ( याजं द्व्य असरत् ) पौंड्रके समान कलशमें जाता है ॥ ५ ॥

[ १२९७ ] ( देवः इन्दुः सः ) [ पुलोकमें ] प्रकाशित होनेवाला वह सोम ( कविना इवितः ) अश्वयुके द्वारा मंत्रित ( इन्द्राय मंथयन् ) इन्द्रको महानता देकर ( द्रोणानि अभि धावति ) कलशमें जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहाँ छंदा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १२९८ ] ( यः ) जो ( श्रिमिभिः सम्भृतं रक्षं ) श्रिमिगोंके द्वारा एकत्रित किए गए रसका तथा ( पावमानीः ) पवमानके मंत्रोंका ( अध्वयोति ) अध्वयन करता है । ( सः ) वह ( मातरिभ्यना स्वदितं सर्वै ) शत्रुके द्वारा बलें हुए सारे ( पूतं अश्राति ) पवित्र भक्षण भक्षण करता है ॥ १ ॥



[ ८ ]

- १३०४ अग्न्य महा नमसा यविष्ठ यो दीदाय समिद्धः स्वं दुरीणे ।  
चित्रम्रातुं < रोदसी अन्तरुनीं स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१।१ )
- १३०५ स महा विश्वा दुरितानि साह्वानभिः ध्वे दम आ जातवेदाः ।  
स नां रक्षिष्वदुरितादवद्याद्दस्मान्मृणत उत नां मघोनः ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।१।२ )
- १३०६ त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठः ।  
त्वे वसु सुपणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ९ ( ही ) ॥  
[ धा० २। उ० नास्ति । स० ४ ] ( ऋ. ७।१।३ )
- १३०७ महा < इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाश्नुइव । स्तोमैर्वरसस्य वावृधे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।१ )
- १३०८ कण्वा इन्द्रं पदक्रतु स्तोमैर्पञ्चस्य साधनम् । जामि भ्रुवत आयुषा ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६।२ )

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ १३०४ ] ( यः स्वो दुरीणे ) जो अपने यज्ञस्थानमें ( समिद्ध दीदाय ) अग्निको उत्तम रीतिसे प्रदीप्त करता है । उस ( यविष्ठ ) तरुण ( ऊनीं रोदसी अन्तः चित्रम्रातुं ) इस विशाल प्रायश्चित्तको भीषणों विशेष प्रशासनान् ( क्याहुत ) उत्तम रीतिसे आहुति दिये गये ( विश्वतः प्रत्यञ्चं ) सर्वत्र गमन करनेवाले अग्निके पास ( महा नमसा भाग्यम् ) हृष्य महान् नमस्कार करते हुए जाते हैं ॥ १ ॥

[ १३०५ ] ( महा ) अपने महान् प्रभावसे ( विश्वा दुरितानि साह्वान् ) सब पाषाणों को दूर करनेवाला ( जातवेदाः स्वः आसि ) राजका प्रसार करनेवाला अग्नि ( इमे आ स्तावे ) यज्ञस्थानमें प्रशान्त होता है, ( स्वः मृणतः नां ) वह स्तुति करनेवाले हमें ( दुरितात् अयद्याद् रक्षिष्यन् ) पाषाणों और निश्वित बनाने सुरक्षित रखता है, ( उत मघोनः भाग्यम् ) और हृषिको पातमें रचनेवाले हमारा रक्षण करता है ॥ २ ॥

[ १३०६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं वरुण उत मित्रः ) तू वरुण और मित्र है ! ( यमिष्ठः त्वां मतिभिः वर्धन्ति ) जिनैश्वर्य शक्ति तुझे सुख सुविशुद्ध को गई स्तुतिवाँते संर्धित करते हैं, ( त्वे वसु ) तेरे पास जो 'पद' हैं वे ( सुपणनानि सन्तु ) हमारे द्वारा स्वीकारने योग्य हैं । ( यूयं ) तुम ( नः ) हमें ( स्वदा स्वस्तिभिः पात ) हमें गन्तव्य करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ३ ॥

[ १३०७ ] ( यः इन्द्रः ) जो इन्द्र ( वृष्टिमाश्नुइव ) वृष्टि करनेवाले मेघसे तमाम ( तेजसा महात् ) अपने तेजसे महान् है, वह इन्द्र ( पदक्रतु स्तोमैः वावृधे ) बलसे तलोरति बढ़ता है, इन्द्रका बल बढ़ता है ॥ १ ॥

[ १३०८ ] ( यत् ) जब ( वपया ) वर्षाओं ( इन्द्र ) इन्द्रको ( स्तोमैः पञ्चस्य साधनम् ) स्तोमोंसे द्वारा यज्ञका साधन बनाया, तब ( आयुषा जामि भ्रुवत ) आयुष-धृ - का कोई कारण बधा नहीं देता लोग कहते लगे ॥ २ ॥

१३०९ प्रजाभृतस्य पिश्रवः प्र यद्भरन्त बह्वयः । विषा क्रतस्व वाहसा ॥ ३ ॥ १० ( टि ) ॥  
[ धा० ८ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।६।२ )

॥ इरपष्टम. लघुः ॥ ८ ॥

[ ९ ]

१३१० पवमानस्य जिघ्रतो हरिश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।१९ )

१३११ पवमानो रथीतमः शुभ्रभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्रणः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।२६ )

१३१२ पवमान व्यशुहि रडिमिर्वाजसातमः । दधरस्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ११ ( ह ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६।२७ )

१३१३ पवीता पिश्रवा सुतश्च सोमो य उत्तमश्च हविः ।

दधन्वाश्च यो नर्यो अप्सवश्चेन्तरा सुपाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )

१३१४ नूनं पुनानोऽविभिः परि सवाद्दधः सुरभितरः ।

सुते चिर्वापसु मदाभो अधसा श्रीणन्ता गोभिर्हृत्तरम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।२ )

[ १३०९ ] ( यत् ) अथ ( पिप्रतः बहुवचः ) आकाशको अपने वेगसे भरनेवाले बाहुरूपी धीरे, ( भृतस्य प्रजा ) यज्ञमें जानेके लिये तैय्यार हुए हुए इन्द्रको ( प्र भरन्त ) वेगसे लेकर जाते हैं, तब ( विषाः ) श्रुतिज (भृतस्य वाहसा) यज्ञको प्रेरणा देनेवाले स्तोत्रोंसे उसकी स्तुति करने लगते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ आठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नयमः खण्डः ।

[ १३१० ] ( जिघ्रतः ) शय्यका नाश करनेवाले ( हरेः अजिरशोचिषः ) हरे रगके और तब अगह अपना तेज फैलानेवाले ( पवमानस्य ) छाने जानेवाले सोमकी ( चन्द्रा जीराः असृक्षत ) तेजस्वी घारा बहने लगी हैं ॥ १ ॥

[ १३११ ] ( रथीतमः ) उत्तम रथमें बैठनेवाला, ( शुभ्रभिः शुभ्रशस्तमः ) अपने तेजसे अधिक तेजस्वी ( हरिः चन्द्रः ) हरे रगके सैरकरना ( मरुद्रणः पवमानः ) यज्ञोंकी बहुव्यय घान् करनेवाला, सत्ता घाला जानेवाला यह सोम है ॥ २ ॥

[ १३१२ ] हे ( पवमान ) शय्य होनेवाले सोम ! ( वाजसातमः ) बहुत अन्न और घस देनेवाला तू ( स्तोत्रे सुवीर्यं दधत् ) स्तुति करनेवालेको उत्तम वीरपुत्र अपना उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य देता है ॥ ३ ॥

[ १३१३ ] ( यः सोमः ) जो सोम ( उत्तमं हविः ) उत्तम हविरूप है और ( य नर्यः आ ) जो मानवोंके हित करनेवाला है यह ( अप्सु अगतः दधन्वाश्च ) यानीमें मिलाया जाता है । ( सोमः अद्रिभिः सुपाव ) उस सोमकी शब्दपूर्वोंने पत्थरसे कूटकर उसका रस निकाला है । उस ( सुते ) सोमरसकी ( दत्तः परि पिचत् ) यहीसे ऊपर साकर सौंघो ॥ १ ॥

[ १३१४ ] हे सोम ! ( अ-दधः ) न बढनेवाला ( सुरभितरः ) अथवा स्तुति ( नूनं पुनान् ) अब शय्य होता हुआ ( अविभिः परिस्त्रय ) तू गालीकी छलनीसे छनता जा । ( सुते चित् ) छननेके बाद ( अन्धसा गोभिः श्रीणन्त ) अन्न और गोदुग्धसे मिलाकर ( उत्तरं अप्सु त्वा मदासः ) फिर तुम यानीमें मिलाकर प्रत्यक्ष करते हैं ॥ २ ॥

- १३१५ परि स्वानश्रद्धमे देवमादगः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥ १२ (खा) ॥  
[ धा० १६ । उ० २ । ख० ७ ] ( ऋ १।१०७।१ )
- १३१६ अमावि सोमो अरुषा वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।  
पुनानो वारमरयेष्यन्वपश्चयेनो न योनि घृतवन्तमासदत् ॥ १ ॥ ( ऋ १।८१।१ )
- १३१७ पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।  
स्वसार आपो अभि गा उदासरन्सं प्रावभिर्वमते वीति अघ्वरे ॥ २ ॥ ( ऋ १।८१।२ )
- १३१८ कनिर्वेषस्या पर्येयि माहिनमत्स्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।  
अपसेधन् दुरिता सोम नो मृष्ट घृता वसानः परि यासि निर्णिजघ् ॥ ३ ॥ १३ (गू) ॥  
[ धा० १६ । उ० ३ । ख० ६ ] ( ऋ. १।८१।२ )  
॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥  
[ १० ]

- १३१९ श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।  
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भार्गं न दीधिमः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९९।१ )

[ १३१५ ] ( देवमादगः क्रतुः ) देवीको आत्स्य देनेवाले परोका साधन ( इन्द्रः विचक्षणः ) तेजस्वी और सानी ( स्वानः ) सोम ( अश्रद्धे परि ) सबका निरीक्षण करनेके लिए कलत्रमें उतरे ॥ ३ ॥

[ १३१६ ] ( अरुषः वृषा ) तेजस्वी और बल बढ़ानेवाला ( हरिः सोमः असाधि ) हरे रगका सोम घृष्ट किया है, यह ( राजा इव दस्मः ) राजाके समान वर्तनीय है । ( गाः अभि अचिक्रदत् ) गायोंकी देखकर शय्य करने लगता है, गायके दूधमें मिलनेके साथ धार करता है तथा ( पुनानः अन्वयं चारं अत्येयं ) पवित्र होनेवाला यह सोम भेबके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है । ( चयेनः न ) वाज पक्षीके समान ( घृतवन्तं योनिं आश्रदत् ) पानीसे भरे हुए कपतेमें जाकर पकता है ॥ १ ॥

[ १३१७ ] ( महिषस्य पर्णिनः पर्जन्यः पिता ) बड़े बड़े पत्तेवाले सोमका उत्पन्न करनेवाला पर्जन्य-मेघ है । यह ( पृथिव्याः नाभा गिरिषु क्षयं दधे ) पृथिवीके नाभस्थानमें रहनेवाले पर्वतोंमें निवासस्थान बनाता है । ( स्वसारः आपो गाः ) अंबुनियंत्र, जल और गायें ( अभि उदासरन् ) उसके सामने आती हैं, ( वीति अघ्वरे ) श्रेष्ठ यज्ञोंमें ( प्रावभिः सं चमते ) पावरके साथ वह मिलकर रहता है ॥ २ ॥

[ १३१८ ] हे। सोम। सोम । ( कविः ) यह सानी सोम ( वेधस्या माहिनं पर्येयि ) यज्ञ करनेकी इच्छासे छलनी पर जाता है ( मृष्टः ) मृष्ट करनेके बाद ( अत्यः न ) पीनेके समान ( यासि अश्रमर्षसि ) सपाममें जाता है । हे सोम । ( दुरिता अपसेधन् ) गायोंकी दूध करते हुए ( नः मृष्ट ) हमें सुखी कर । ( घृता वसानः निर्णिजं परि यासि ) प्र कपमें विषयके बाद छलनीमें जाता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ नौवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ १० ] दशमः खण्डः ।

[ १३१९ ] हे पुरुषो । ( श्रायन्तः इव सूर्यं ) सूर्यके आश्रयमें रहनेवाली निर्गलं जिनप्रकार सूर्यका आश्रय लेती हैं, जगोत्थार ( विभवा इन्द्र इन्द्रस्य भद्रतः ) सब धन इन्द्रके आश्रयमें रहते हैं । ( जातोः ) प्रकट हुआ हुआ इन्द्र ( वसूनि भोजसा जनिमानि ) जिन पर्वतोंके अन्दे गामध्योंमें प्रकट करता है उन धनोंके ( भार्गं न प्रति दीधिमः ) भाग्यमें हम चित्तमें प्राप्त होनेके समान प्राप्त करने के ॥ १ ॥

१३२० अ॒र्षि॒रा॒तिं वसु॒दा॒मुष॒ स्तु॒हि भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तया॑ ।  
 यो अ॒स्य का॒मं वि॒धत्ते॑ न रो॒पति॑ म॒नो दाना॑य चो॒दयन् ॥ २ ॥ १४ ( छ् ) ॥  
 [ धा १९ । उ० नाति । स्व० ६ ] ( ऋ ८।९।१४ )

१३२१ यत॑ इन्द्र॒ भया॑महे ततो॒ नो अम॑यं कृ॒षि ।  
 मघ॑यन् छ॒ग्धि तव॑ तन्न ऊ॒नये॑ वि द्वि॒षो वि मृ॑षो ज॒हि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।११ )

१३२२ त्व॒ हि रा॒घस॑स्पते रा॒घतो॑ महः क्षय॑त्यासि वि॒षर्ता॑ ।  
 तं त्वा॒ वषे॑ मघ॒यन्निन्द्र॑ गिर्व॒णः सु॒ताव॑न्तो ह॒वामहे॑ ॥ २ ॥ १५ ( धा ) ॥  
 [ धा० २० । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।६।१४ )  
 ॥ इति यज्ञम. सप्त. ॥ १० ॥

[ ११ ]

१३२३ त्व॒ सोमा॑सि धार॒युमिन्द्र॑ औ॒जिष्ठो॑ अ॒ध्वरे॑ । पव॑स्य म॒रु॒ह्यद्र॑पि ॥ १ ॥ ' ऋ ९।६।७।२ )  
 १३२४ त्व॒ सुतो॑ मदि॒न्तमो॑ दध॒न्वान्म॑रु॒त्सरि॑न्तमः । इन्द्रुः॑ स॒त्राजि॑द॒भृत् ॥ २ ॥ ( ऋ ९।६।७।२ )

[ १३२० ] ( अ॒र्षि॒रा॒तिं वसु॒दा॒मुष॒ स्तु॒हि ) निधाप सुबोधको और भवनोंको धन देनेवाले इन्द्रकी स्तुति कर । यर्षी ( इन्द्रस्य रातयाः भद्राः ) इन्द्रके वान कल्याणकारी होते हैं । ( यः मन-दानाय चोदयन् ) जो इन्द्र अपने मनकी वान देनेके लिए प्रेरित करता है ( विधत्ते ) वह उपासना करनेवाले इस यज्ञभाषको इच्छा नष्ट नहीं करता ॥ २ ॥

[ १३२१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यतः भयामहे ) जित दुश्मने हम डरते हैं ( ततो नः अमयं कृषि ) उनसे हमें निर्भय कर । हे ( मघयन् ) मघवान् इन्द्र ! ( नः तत् तव ऊनये ऋग्धि ) हमें उस अपने रक्षणसे सुरक्षित करनेके लिए तू समर्थ हो । ( द्विषः विजहि ) द्वेष करनेवालोंका वरानव कर तथा ( मृषो वि ) हमारे मनुष्योंको हार ॥ १ ॥

[ १३२२ ] हे ( राघसस्पते ) धनपते इन्द्र ! ( त्वं हि ) तू ही ( महः राघसः क्षयस्य ) मनुष्य धनके स्थानका ( विषर्तासि ) विनश रोहिते धारण करनेवाला है । हे ( गिर्वणः ) खुल्य और ( मघयन् इन्द्र ) मघवान् इन्द्र ! ( तं त्वा वषे ) उस सुते ( सुतावन्तः वषे हवामहे ) सोमपत्र करनेवाले हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ दसचाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] एकदशः खण्डः ।

[ १३२३ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अन्द्रः औजिष्ठः ) आनन्द प्रधानवाला और बहुत सामर्थ्यवाला तू ( अध्वरे धारयुः असि ) हिंसारहित यज्ञमें सोमरतकी धारसे मुक्त होकर रहता है । इसलिये ( मरुह्यद्रपि ) त्वं पवस्य ) धन देनेवाला तू सुख हो ॥ १ ॥

[ १३२४ ] हे सोम ! ( सुतो ) निषेधा गया ( त्वं मदिन्तम ) तू अत्यन्त आनन्द प्रधानवाला ( दधन्वान् ) यज्ञकी धारण करनेवाला ( मरुत्सरिन्तमः इन्द्रुः ) परम उस्ताह प्रधानवाला और धनकनेवाला ( सत्राजिदभृत् ) तब दानुओंको जोतनेवाला और पराजित न होनेवाला है ॥ २ ॥

२६ [ साम हिन्वी भा. २ ]

१३२५ त्वं सुष्याणो अद्रिमिरभ्यर्षं कनिकृदत् । द्युमन्तं शुभममा मर ॥ ३ ॥ १६ ( ली ) ॥  
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।६।३ )

१३२६ पवस्व देववीतये इन्दो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ १ ॥  
( ऋ. ९।०६।७ )

१३२७ तव द्रप्ता उदमुत इन्द्रं मदाय वावृधुः । त्वा देवासो अमृताय कं पपुः ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।०६।८ )

१३२८ आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।  
वृष्टिधावो रीत्यायः स्वविदः ॥ ३ ॥ १७ ( वी ) ॥  
[ धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ९।०६।९ )

१३२९ परि त्वं हर्यतं हरिं वधुं पुनन्ति वारेण ।  
यो देवान्निष्ठां इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९।७ )

१३३० द्वियं पञ्च स्वयंशसं सखायो अद्रिसं हतम् ।  
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रसनापयन्त ऊर्मयाः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।६ )

[ १३२५ ] हे सोम ! ( अद्रिमिः सुष्याणः त्वं ) पारोति कृत्वर रस निकाला गया तू ( कनिकृदत् अ२-पर्यं ) शब्द करता हुआ बलदाये जा । ( द्युमन्तं शुभं अमर ) तेजस्वी सामर्थ्य हूयें दे ॥ ३ ॥

[ १३२६ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( देववीतये ) देवीकी क्षेत्रके लिए ( ओजसा धाराभिः पवस्व ) वेगते पार बपकर छनता जा । हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमान् ) शीला तू ( नः कलशं आ सदः ) हमारे कलशमें आकर रह ॥ १ ॥

[ १३२७ ] ( उदमुतः तव द्रप्ताः ) पानीके साथ मिलनेवाले तेरे रस ( मदाय इन्द्रं वावृधुः ) आनारके लिए इन्द्रका धन बढ़ाते हैं । वारपे ( देवासः कं त्वा अमृताय पपुः ) देवगण सुलस्ववप तुमसे अमर होनेके लिए बोते हैं ॥ २ ॥

[ १३२८ ] ( वृष्टि-धावः ) धूलोपले वृष्टि करनेवाले ( स्व-विदः ) स्वयंकी जाननेवाले ( रीत्यायः सुतासः ) पुष्पोपर पानीकी वृष्टि करनेवाले ये सोमरस ( पुनानाः इन्दवः ) स्वच्छ होनेवाले और तेजस्वी हैं । हे सोमरतो ! तुम ( नः रयिं आ धायत ) हमें धन प्राप्त हो ऐसा करो ॥ ३ ॥

[ १३२९ ] ( हर्यतं हरिं ) वृष और वाप डूब करनेवाले ( वधुं त्वं ) जल भूरे रंगके लोमकी ( वारेण परि पुनन्ति ) छलनीमें छानकर गूदा करते हैं । ( यः विश्वान् देवान् ) जो सब देवोंके पास ( मदेन सह इत् ) मानवकारण गुणोंके साथ ( परि गच्छति ) जाता है ॥ १ ॥

[ १३३० ] ( द्विः पञ्च सखायः ) दस अनुमितों ( स्वयंशसं अद्रिसंहतं ) स्वयंशसों और पारोति पुरं गप ( इन्द्रस्य निर्वं काम्यं यं ) इन्द्रकी प्रिय और इष्ट ऐंके जित लोमकी ( ऊर्मयाः ) जलसे बना ( प्रसनापयन्ते ) स्नान करवाने हैं ॥ २ ॥

१३३१ इन्द्राय सोमं पातये वृत्रघ्ने परि पिच्यसे ।

नरे च दक्षिणावधे वीराय सदानासदे

॥ ३ ॥ १८ ( जी ) ॥

[ धा० २२ । उ० ३ । स्व० ४ ] ( ऋ. १५८।१० )

१३३२ पवस्व सोम महे दक्षायाम्भो न निको वाजी भनाय

॥ १ ॥ ( ऋ. १५१०१।१० )

१३३३ प्र ते सोतारो रसे मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युत्राय

॥ २ ॥ ( ऋ. १५।०१।११ )

१३३४ शिशुं जहान हारिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम्

॥ ३ ॥ १९ ( का ) ॥

[ धा० ११ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १५।०१।१९ )

१३३५ उपो जु जातमत्तुरं गोभिर्मङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिपुः ॥ १ ॥ ( ऋ. १५६।१।२१ )

१३३६ तमिद्वर्धन्तु नो गिरौ वत्स वत्स शिश्वरीरिव । प इन्द्रस्य हृदयं सनिः ॥ २ ॥

( ऋ. १५६।१।४ )

१३३७ अपो नः सोम शं गवे धुस्वत् पिच्युर्वीमिपम् । वर्षा समुद्रमुच्य ॥ ३ ॥ २० ( वी ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १५६।१।१६ )

॥ इति एकवचनं सप्त ॥ ११ ॥

[ १३३१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृत्रघ्ने इन्द्राय पातये ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रको देनेके लिए ( दक्षिणा-वधे वीराय ) यत्नमें दक्षिणा देनेवाले वीरके लिए वीर ( सदाना-सदे नरे ) यत्नमें बँडेनेवाले यजमानके लिए ( परि-पिच्यसे ) तू कलशमें उपकृत है ॥ ३ ॥

[ १३३२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वाभ्यः न ) पीरके समान ( निकोः ) पीरकर शुद्ध किया गया ( वाजी ) वेवधान् तू ( महे दक्षाय धनाय पवस्व ) शत्रुको हरावेवाली शक्ति, बल और धनके लिए शुद्ध हो ॥ १ ॥

[ १३३३ ] हे सोम ! ( सोतारः ) रस निकालनेवाले ऋषियज ( ते रसं ) तेरे रसको ( मदाय पुनन्ति ) भक्षण्ण प्राप्तिके लिए शुद्ध करते हैं, तथा ( महे द्युत्राय सोमं ) वहान् तेजस्वी सोमरसको छानते हैं ॥ २ ॥

[ १३३४ ] ( शिशुं जहानं ) नये पैदा हुए बच्चेको मँते शुद्ध करते हैं उसीप्रकार ऋषियज ( देवेभ्यः ) देवोंको देनेके लिए ( हारिं इन्दु सोमं ) हरे रणके फलकनेवाले सोमको ( पवित्रे मृजन्ति ) छलनेसे शुद्ध करते हैं ॥ ३ ॥

[ १३३५ ] ( जातं अत्तुरं ) तैयार हुए हृदय तथा पानीमें मिलाये गए ( मङ्गं ) वायुका नाश करनेवाले ( गोभिः सुपरिष्कृतं ) गापके हृषमें मिलाये गए ( इन्दुं देवाः उप अयासिपुः ) सोमरसको वेव प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

[ १३३६ ] ( यः इन्द्रस्य हृदयं सनिः ) जो इन्द्रके हृदयका श्रेष्ठ सेवक है ( सं इह नः गिरः सं वर्धन्तु ) ऐसे उस सोमका वर्धन हमारी वाणी उत्तम रोसिते करे । ( वत्सं शिश्वरीः इव ) निगमकार बालकको उसकी माता भवती है, उसीप्रकार हमारी वाणी सोमके यत्नको बढ़ावे ॥ २ ॥

[ १३३७ ] हे सोम ! ( नः गवे वा अर्थ ) हमारी गापोंके सुलके लिए तू बलशमें का । ( पिच्युर्वी इव धुस्व-त् ) पीठिक अन्न हमें भरपूर दे । हे ( उच्यते ) सुल्य सोम ! ( समुद्रं वर्धं ) कलशमें पानीको बढ़ा ॥ ३ ॥

॥ यहाँ स्यारहवां सप्तक समाप्त हुआ ॥



[ १२ ]

- १३३८ आ या ये अमिमिन्धते स्तृणन्ति वदिरानुपक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।४१। )
- १३३९ घृदाग्निदिष्म एषां भूरि श्छ पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४१। )
- १३४० अयुद्ध इद्युधा वृत् शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥ २१ ( ठ ) ॥  
[ धा० १ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।४१। )
- १३४१ य एक इदिदपते वसु मर्त्याय दाशुपे । ईशानो अम्रतिष्कृत इन्द्रो अङ्ग ॥ १ ॥  
( ऋ. १।८४। )
- १३४२ यथिदि त्वा वदुम्प आ सुतावाऽभाविवासति । उमं उत्पदयते श्य इन्द्रो अङ्ग ॥ २ ॥  
( ऋ. १।८४। )
- १३४३ कदा मर्तमराघसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।  
कदा नः शुभ्रवदिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ३ ॥ २२ ( कि ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. १।८४। )

[ १२ ] द्वादशः खण्डः ।

[ १३३८ ] ( ये ) जो अवि ( आ घा ) सामने बँठकर ( अग्नि इन्धते ) अग्निको प्रदीप्त करते हैं । ( युवा इन्द्र ) येषां सखा ) तदन इन्द्र जिनका मित्र है, वे ( आनुपक् ) यर्हि, स्तृणन्ति ) जमते वेधेके लिए आत्म कंलाते हैं ॥ १ ॥

[ १३३९ ] ( युवा इन्द्रः ) येषां सखा ) तदन इन्द्र जिनका मित्र है ऐसे ( एषां इष्मः घृह्ण इत् ) इन अविधोरी सभिया बहुत है । ( श्छ भूरि ) शोत्र भी बहुत है ( स्वरुः पृथुः ) शस्त्र भी घडे-घडे हैं ॥ २ ॥

[ १३४० ] ( युवा इन्द्रः ) येषां सखा ) तदन इन्द्र जिनका मित्र है, वह ( अयुद्धः इत् ) युद्ध करनेको इच्छा न रखते हुए भी ( युधा वृत् ) योद्धाभक्ति युधन वपुको ( सत्वभिः शूरः ) अरने बलही सहायतासे शूरवीर होने हुए ( आजति ) हुए वेना है ॥ ३ ॥

[ १३४१ ] ( यः एकः इत् ) जो अकेला ही इन्द्र ( दानुपे मर्त्याय वसु विदुयते ) दान देनेवाले यात्रकको पत्र देना है, वह ( अम्रतिष्कृतः इन्द्रः ) पराजित न होनेवाला इन्द्र ( अंग ईशानः ) उत्तममय इस सब जगत्प्रा स्वामी होता है ॥ १ ॥

[ १३४२ ] ( वदुम्पः यः विह् दि ) बहुत मनुष्योभिते जो यत्रयान ( सुतावान् ) तीपयान करने ( त्वा ) तैरी ( आ विपागति ) मारापना करता है, ( सत् ) उत्तरी ( इन्द्रः ) इन्द्र ( उमं दायाः ) उच बल ( अंग आयायते ) बहुत अस्वी वेना है ॥ २ ॥

[ १३४३ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( कदा ) कब ( अ-दापसं अर्धे ) बान न देनेवाले मनुष्यको ( पदा शुभ्रं इत् ) वेदीमे जिनकर अर्धको दुबलते है, उत्तमकर ( स्फुरत् ) मल्ट करेगा ? हे ( अंग ) निय । ( नः ) मारा वदा शुभ्रवत् ) वह हमारी स्तुति कब गुनेगा ॥ ३ ॥

१३४४ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

ब्रह्माणस्त्वा श्रतकव उद्धश्शमिव येभिरे

॥ १ ॥ ( ऋ १।१०।१ )

१३४५ यस्तानोः सान्वाकृहो भूर्धस्यष्ट कक्षेभ्यु ।

तदिन्द्रो अर्थे चेतति यूथेन घृष्णिरेजति

॥ २ ॥ ( ऋ १।१०।२ )

१३४६ युक्ष्वा हि केक्षिना हरि घृषणा कक्ष्यमा ।

अथा न इन्द्र सोमपा गिराष्टुपध्रुति चर

॥ ३ ॥ २३ ( षी ) ॥

[ धा० २२ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ १।१०।३ )

॥ इति द्वावश खण्ड ॥ १२ ॥

॥ इति पञ्चमप्रपाठके द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥ पञ्चमप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

[ १३४४ ] हे ( शतक्रतो ) सैकसौ कर्त्त करनेवाले इन्द्र । ( गायत्रिणः ) त्वा गायन्ति ) उद्गता तेरी स्तुतिक गान करते हैं । ( अर्किणः अर्कं अर्चन्ति ) अर्चना करनेवाले पूजनीय इन्द्रकी अर्चना करते हैं । ( ब्रह्माण. त्वा ) अग्न्य ऋत्विज भी तेरी महिमा गाते हैं । श्लो ( वींश इव ) जितप्रकार धाँसकी ऊपर उठते हैं, उसीप्रकार तेरा महात्व वर्णन करके सुसो ( उत्त येभिरे ) उठते हैं ॥ १ ॥

[ १३४५ ] ( यत् ) जब पजमान ( सानोः सान्वाकृहः ) समिपा यादि सानेके लिए बहाबकी घोड़ीपर चढ़ता है, तब वह ( भूरि यर्य अस्पष्ट ) बहुत प्रयत्न करता है । ( तत् इन्द्र ) उस समय इन्द्र ( अर्थे चेतति ) पजमानका उद्देश्य जानता है और ( घृष्णिः यूथेन ) मनोरमकी वृष्टि करनेवाला वह इन्द्र वेबोके साथ यवभूमिमें ( यजति ) आता है ॥ २ ॥

[ १३४६ ] ( सोमपा ) सोम पीनेवाला इन्द्र ( केक्षिना घृषणा ) उसम अवालवाले, बलवान् ( कक्ष्यमाः हरी ) वृष्य क्षरीरवाले अपने घोडोंको ( युक्ष्व हि ) अवश्य जोड़ता है । ( अथा ) बावमें हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः गिरा उपध्रुति चर ) हमारी स्तुति धृत्तनेके लिए नाममें आ ॥ ३ ॥

॥ यदां यारह्वां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥

## दशम अध्याय

इन्द्र

इस दशम अध्यायमें सोमका वर्णन, बितेव रूपसे है । पर उसके साथ अन्य देवोंकी भी वर्णन है । उनमेंसे इन्द्र देवताका वर्णन प्रथम देखिए—

१ इन्द्रः कदा अ-राधत्तं मर्त, पदा क्षुम्प इव,

सुररत् [ १३४३ ]- इन्द्र कब, पाबोति फूलोंको रौंदनेके स्थान, कजूस दान न वेनेवाले मनुष्यको, रौंदिया ?

उदार मनुष्य हो सामानमें रहें । मनुवार मनुष्य सामानको परेनाम करता है ; पर आच यहाँ है ।

२ इन्द्रः उर्म शवः सापत्यते [ १३४२ ]- इन्द्र उर्म

बल होता है। वह इन्द्र अपने उपताओंको बलवान् बनाता है।

३ इन्द्र ओजसा महान् [ १३०७ ]- इन्द्र अपने तेजसे महान् है।

४ विश्वा इत् इन्द्रस्य भक्षत [ १३१९ ]- सय प्रभारके धन निश्चयसे इन्द्रके आधयसे रहते हैं।

५ जात, ओजसा वसुति जनिमानि [ १३१९ ]- इन्द्र उत्पन्न होने ही अपनी शक्तिके साथ धन उत्पन्न करता है।

६ बलपिराति यमुदा उप स्तुहि। इन्द्रस्य रातयः भद्रा- [ १३२० ]- पापरहित तथा दान करनेवाले पुरुषोंको धन देनेवाले इन्द्रकी स्तुति करो। इन्द्रके दान बरपाप करनेवाले हैं।

७ य मन, दानाय चोद्यन्, धिषत्, अस्प कामं न रोपति [ १३२० ]- जो इन्द्र अपने मनको दान देनेके लिए प्रेरित करता है तथा जो दान देनेवालेकी इच्छाका मूढ नहीं करता।

८ हे इन्द्र ! यत्, भयामहे तत् न अभय वृधि [ १३२१ ]- हे इन्द्र ! जह्मि हमें भय हो यह्मि हमें निर्भय कर।

९ नः तप तत् ऊतये दाग्धि। द्विष विजाहि। मृधाः वि [ १३२१ ]- मृष्टयं अपने संरक्षणमें सुरक्षित करनेमें समर्थ है। देव करनेवालोंको हरा और हिनक मनुष्योंको हूरा कर।

१० यत्, षण्णाः इन्द्रं स्तोमं, यमस्य साधन अग्रत। आमुधा जामि झ्यत [ १३०८ ]- जब षण्णोंने इन्द्रको स्तोत्रोंके द्वारा गतका साधन बनाया, तब साधनोंके उपयोग करनेका कोई कारण नहीं बचा, ऐसा सोच कर ही लयें। इसी भाँति स्थापित हो गई कि साधनोंके सन्नेका कोई कारण ही नहीं बचा ऐसा सोचनेकी प्रतीति हुआ।

११ हे राघस, पने । त्य भद्र, राघसः शयस्य विषर्षा अंसि [ १३२२ ]- हे पनवने इन्द्र ! निश्चयसे मृष्टयान् पनोंका और मृष्टयान् पनोंका स्वामी है। इन्द्रके पास बहुत ताँदे धन भी है और बहुतसे धर भी।

१२ येगं युधा इन्द्रः सग्ना, नृवः धयुदः रत्न युधा भुतं तापयिभिः आजनि [ १३४० ]- जिनका मित्र तरण इन्द्र है, वे मूर पुरुषोंके इच्छा न होने हुए भी सोपाओंके पुरुष मनुष्यों करने सामर्थ्यव हूयते हैं।

१३ य एवः इत्, दामुगे मर्तोय धनु धिदयो। अमनिष्कृतः इन्द्रः ईदान [ १३४१ ]- जो अनेकाली हुए दान देनेवाले धनुष्योंको धन देना है, ऐसा न करनेवाला इन्द्र निश्चयसे मनुष्य इन्द्र है।

येने बनानेकी इच्छाके भी मर्तोयके लिए किया जाना है—

## इन्द्रका सोम पीना

१ दूरः एषः अण्ड्या इन्द्रस्य निष्कृतं आमुभिः रथेभिः धिया याति [ १२६६ ]- यह दूर सोम अगुलियोंने बवाकर निकालनेके बाद इन्द्रके स्थानसे पास मोक्षर जानेवाले रथसे युद्धपूर्वक जाता है।

पहले सोमको कूटते हैं, बादमें अगुलियोंने बवाकर उसका रस निकालते हैं, फिर उसे इन्द्रके रहनेके स्थानपर ले जाते हैं। उसका रथसे जाना आलम्बार्थक है।

२ इन्द्राय पातये प्रितस्य योपणः हरिं इरुं अग्नि-भिः हिन्वति [ १२७५ ]- इन्द्रको सोमरस देनेके लिए प्रित ऋषिकी अगुलियां इत हरे रगने सोमकी पापरीसे कूटती हैं।

३ घृषा हरिः पुनान इन्द्रः शुष्मी एषः अन्तरिक्षे इन्द्रं वा अस्तिष्यदत् [ १२९० ]- बल बढानेवाला, हरे रगका मूढ होनेवाला और चमकनेवाला यह सोम एकलियोंने होकर इन्द्रके पास पहुँचता है।

४ देवः इन्द्रुः, यमिना इवितः, इन्द्राय मंहयन्, द्रोणानि अभि धायति [ १२९७ ]- ( एलोक्ते ) प्रजापति होनेवाला यह सोम बविके द्वारा प्रेरित होनेसे बाद इन्द्रकी मृत्यु सेकर बलमाने जाता है।

५ उदुष्टुन तय झ्यमः मदाय इन्द्रं धापृषुः [ १३२७ ]- पानोंके साथ मिलनेवाले तेरे रस आनवरने लिए इन्द्रका धन बढाते हैं।

६ देवासः क र्यां अमुताय वपु [ १३२७ ]- देव-गण आनन्द देनेवाले तुम सोमरसको क्षमरता प्राप्त करनेके लिए पीते हैं।

७ पुष्येभे दक्षिणायने इन्द्राय पातये सद्दानात्तदे नरे परिचिच्यते [ १३३१ ]- मनुष्योंके करनेवाले तथा दान देनेवाले इन्द्रके पीनेके लिए क्षीर दत्ता - मनुष्यमें बड़े हुए यजमानके लिए यह सोमरस दत्ता जाना है।

इसप्रकार इन्द्रकी पीनेके लिए सोमरस देनेका वर्णन है।

## अग्नि

अग्नि विपयव मत्र भी पीनेके इग अग्यायमें है—

१ इये दुरोने य, नमिन्द्र, दीदिय, धियं उयी रोदगी अगतः विप्रभान् युगाम्नि विपयवः प्रपंचं मदा नमया अगम [ १३०५ ]- अग्ने यत् स्वयंनमें अग्निकी उत्तम रीतिने प्रीति किया जाना है, उस तरह, विपयव

छलक और पृथ्वीलोकके बीचमें विशेष प्रकाशमान्, उत्तम रीतितो की गई आहुतिके कारण सर्वत्र प्रकाशमान् शान्तिके प्राप्त ह्य मन्त्रकार करते हुए जाते हैं।

२ मद्रा विश्व्या दुरितानि साहान् जानवेदाः अग्निः दमे आ स्तये । सः गृणतः नः दुरितात् अघघान् रक्षिषत् । उत मघोनः अस्मान् रक्षिषत् [ १३०५ ]- अपने महान् प्रभावाते सभ पापोंको दूर करनेवाला, शान्तका प्रसारक अग्नि पशुशास्त्रमें प्रदर्शित होता है। यह स्तुति करनेवाले हमें पापोंसे ब निन्दित कर्मोंसे दूर करता है और हृदिको पासमें रखनेवाले हमारे रक्षा करता है।

३ हे अग्ने ! त्वे वसु सुपणानानि सन्तु [ १३०६ ]- हे अग्ने ! तेरे वन हमारे द्वारा स्वोच्चार करने योग्य हों।

यहां पशुशास्त्रमें अग्नि प्रवीत किया जाता है, उसकी स्तुति की जाती है, उत्तम हवनोय पदार्थोंका उत्तम हवन किया जाता है, इसप्रकार प्रवीत हुई हुई अग्नि शान्तिके प्रकाशने योग्योकी रक्षा करती है, इत्यादि वर्णन यहां आये हैं।

### देवोंको सोमरस

इन्द्रको सोमरस देनेका वर्णन पीछे आया है। अब देवोंको सोमरस देने जानेका वर्णन देखते हैं—

१ हे सोम ! नः इष्टये राक्षसे धार्युं मित्रावरणा मारुतं धार्घः देवान् धायापृथिवीं मरिसि [ १२५४ ]- हे सोम ! हमें अन्न और वन प्राप्त हो इसलिए वायु, मित्र, बहण, मरुत, सवदेवों तथा दुल्लोक और पृथिवीको सन्तुष्ट कर।

२ यवमानः सोमः इन्द्रे ओजः, सूर्ये ज्योतिः, अपर्णा गर्भः देवान् आहृणीत [ १२५५ ]- छाने हुए सोमने इन्द्रमें सामर्थ्य तथा सूर्यमें तेज बढ़ाकर और पार्णामें मिलकर देवोंको सेवा की।

३ देवेभ्यः सुताः पवित्रे अक्षरन् विश्व्या धामसति आविदान् [ १२८१ ]- देवोंको देनेके लिए यह सोमरस छलनीसे छाना जाता है। यह देवोंके सब पालनोंमें पहुंचता है।

४ दृहसाघ्नः स्वसित्त पपः इन्द्राय वायये पवित्रे परि विच्यते [ १२८७ ]- बल बढ़ानेका साधन तथा स्वर्गको जीतनेवाला यह सोम इन्द्र और वायुको देनेके लिए छलनीसे छाना जाता है।

५ देवायीः अघशंसहा अदाभ्यः पुमानः शुष्पी एपः शर्मति [ १२९१ ]- देवोंके देनेके लिए पापियोंको

मरुत करनेवाला तथा न पबनेवाला यह सोम छाना जाता है। छनकर वर्णनमें गिरता है।

६ देवदुःपीतये सुतः वृषा रक्षांसि विघ्नन् पवित्रे अर्षति [ १२९२ ]- देवोंके देनेके लिए निबोधा गया यह बल बढ़ानेवाला सोमरस शान्तियोंको मारकर छलनीसे छाना जाता है।

७ यः विश्वान् देवान् मदेन सह इत् परि गच्छति [ १२९३ ]- यह सोमरस सब देवोंको जानन्द देनेको इच्छासे देवोंके पास जाता है।

८ जातं अन्तुरं अंगं गोभिः सुपरिष्कृतं इन्दुं देवाः उप अयासिषुः [ १३३५ ]- तंभ्यार किए गए, पानीमें मिलाने गए दानुवा नास करनेवाले तथा वायके दूधमें मिश्रित सोमके पास देव जाते हैं।

९ इन्द्रस्य इदं सनिः तं नः गिरः सर्वर्षन्तु [ १३३६ ]- इन्द्रके हृदयको आनन्द देनेवाला यह सोम है, हमारे बानी उसकी स्तुति करके उसके यत्नको बढ़ावे।

यह सोमरस तंभ्यार करके तर्पण देवोंको समर्पित किया जाता है। वायमें उसे श्रुतिगण पीते हैं, ऐसा यह सोम पर्वतपर-हिमालयके ऊंचे शिखरपर मिलता है।

### पर्वतपर सोम

यह सोम हिमालय पर्वतकी ऊंची चोटीपर उगता है। इस विषयमें मंत्रोंमें वर्णन इस प्रकार है—

१ गिरिपु इत्ये दधे [ १३१७ ]- पर्वतपर यह सोम जका घर बनाता है।

२ दिवः शिडाः इन्दुः [ १३७७ ]- सुलोकमें जन्मा हुआ यह सोम है। सुलोकका अर्थ है हिमालयकी ऊंची चोटी।

३ दिवः सूर्यां वृषा [ १२८८ ]- सुलोकमें ऊंचे स्थानपर यह बल बढ़ानेवाला सोम रहता है।

४ धृषिद्यावः स्वर्दिदः सुतासः इन्दुधः [ १३२८ ]- स्वर्गलोकसे युक्ति करनेवाले, स्वर्गको जाननेवाले ये सोमरस हैं। सोम पर्वतपर ऊंचे स्थानपर रहता है। यहाँसे युक्ति होती है। यह सोम स्वर्गमें रहता है, इसलिए यह स्वर्गको जानता है। ये वर्णन सोमजला हिमालयके ऊंचे शिखरपर उगते हैं यह बात दिगते हैं।

### सोमका पश्यरोंमें कूटा जाना

१ गीते अधरे प्रावभिः सं वसते [ १३१७ ]-



यहाँ पर भी यह धमकती है, पर रत अधिक धमकता है ।  
इसका धर्षण वेदमें इस प्रकार है—

१ देव सोम [ १२५४ ]- धमकनेवाला सोम ।

२ हरे अजिरशोचिष पयमानस्य घन्दाः जीराः  
असृष्टान् [ १३१० ]- हरे रगके, सर्वत्र तेज फैलानेवाले,  
मुझ होनेवाले सोमरसकी तेजस्वी धारा महती है ।

३ पयमानः हरे घन्दाः [ १३११ ]- मुझ होनेवाला  
सोमरस हरे रगथा तेज फैलाता है ।

४ हे पयमान ! रदिमभि वषट्पुहि [ १३१२ ]- हे  
सोमरस ! तू अपनी किरणोंसे ध्वाप्त हो ।

५ अरुणः वृषा [ १३१६ ]- यह यज्ञधन सोम  
तेजस्वी है ।

इसप्रकार सोमरस धमकता है । सोमलताकी कूटकर  
उसका रस निकालते हैं । उसमें पानी मिलाकर छानते हैं,  
बादमें उसमें गायका दूध मिलाया जाता है। इत दिवयमें  
निम्न धर्षण है—

### गायके दूधमें मिलाना

१ गोषा- [ १२५३ ]- सोम गायें पालता है । गायके  
दूधमें यह मिलाया जाता है ।

१ गाः अभि अचिक्रदत् [ १३१६ ]- गायके पात  
दाव करता हुआ जाता है ।

३ स्त्रसारः आप् गा अभि उदासरत् [ १३१७ ]  
-अंगुली, धारों और गाय सोमके पास आती हैं । अगुलिया  
बचाकर रस निकालती हैं, फिर उसमें पानी और गायका  
दूध मिलाया जाता है ।

इसप्रकार सोममें गायका दूध मिलाया जाता है । पानी  
और गायें उसके सामने आती हैं, इसका धर्षण है कि उसमें  
पानी और गायकर दूध मिलाया जाता है । अशके लिए  
पूर्णाका उपयोग, दूधके लिए गायका प्रयोग यह वेदोंकी  
पद्धति ही है ।

### सोम शुद्धमें जाता है

इत्र अभि देव सोमरस पीते हैं । इसकारण उनका उरसाह  
बढ़ता है । बादमें वे मुद्धमें जाकर दधुकी चारते हैं । यह  
सोमरसका कार्य है, ऐसा धर्षण वेद करता है—

१ पयमान देवः अदाभ्याः इरांसि अति धावति  
[ १२६१ ]- यह शुद्ध होनेवाला, न बढाया जानेवाला सोम  
दाधुओंकी कुचलता जाता है ।

२७ [ साम हिंशो भा २ ]

२ पयमानः एषः रजोसि तिर, दिथं विघाजति  
[ १२६२ ]- शुद्ध होनेवाला यह सोमरस दाधुओंको दूर  
करते हुए दलोकमें मानों दीड़ता जाता है ।

३ एषः पयमानः अस्तुत- रजोसि तिर, दिथं  
व्यासरत् [ १२६३ ]- यह शुद्ध होनेवाला अपराजित सोम  
दाधुओंको दूर करता हुआ स्वर्गरी और जाता है ।

४ एष पुनातः द्विषः अपधन्त् पावित्रे अशितो-  
दते [ १२८६ ]- यह पवित्र होनेवाला सोम दाधुओंको दूर  
करते हुए पवित्र स्थानपर कड़ा जाता है ।

दाधुओंको दूर करनेका अर्थ है, मुद्धमें जल और दाधुओंके  
साथ लड़ना । यह बीरोंका कार्य है । धीर सोम पीते हैं उस  
कारण वे उल्लाहित होकर दाधुओंको दूर करते हैं । यह  
सोमके उल्लाहते होता है, इदलिए सोम हो यह सय करता  
है ऐसा धर्षण यहां किया है ।

### सोमको पानीमें मिलाना

१ एषः देवः अप विगाहते [ १२५७ ]- यह दिव्य  
सोम पानीमें मिलाया जाता है ।

२ घाञ्जी सिन्धूना पति भञ्ज [ १२७० ]- यह  
बलवान् सोम नदीका स्वामी हो गया है । पानीमें मिलाया  
गया है ।

३ घृता खलान निर्णिज परिप्रासि [ १३१८ ]-  
पानीमें मिलाये जानेके बाद छलनीमें जाता है ।

इसप्रकार सोमरसकी पानीमें मिलाया जाता है ।

### सोम धन देता है

१ एषः देव वाशुपे रत्नानि वधत् [ १२५७ ]-  
यह सोम शताको रत्न देता है ।

२ एषः धूरः विश्वानि चार्पां सिषासति [ १२५८ ]  
-यह धूर सोम सत्यके द्वारा स्वोत्तर करनेको प्रेरण देता है ।

३ एष ओजसा नृभ्या दधानः [ १२७१ ]- यह  
सोम अपने तामधमें धन देता है ।

४ न रथि आघारत [ १३२८ ]- हे सोमरस !  
हमें धनके पात पशुका ।

### सोम उत्तम वीर्य देता है

१ वाजसमत स्तोत्रे सुधीर्यं दधत् [ १३१२ ]-  
यज्ञ बढानेवाला यह सोम स्तुति करनेवालेको उत्तम वीर्य

देता है। सोमरस पीनेसे शरीर उत्तम बलपुञ्ज होता है, इस कारण उत्तम एतान्ते होती है।

### पवित्र करनेवाली वेदवाणी

वेदमंत्रोंमें पबमानसूक्तका महत्त्व इसप्रकार वर्णित है—

१ यः क्रयिभिः सभ्युं रसं पायमानीः अभ्येति, मः सर्वं पूर्तं अश्नाति [ १२५८ ]— जो ऋषियों द्वारा एकत्रित किए गए पायमानी मन्त्रसप्तहृत्पौ ज्ञान - रसका अभ्ययन करता है, वह सब प्रकारसे पवित्र जल खाता है।

२ तस्मै सरस्वती क्षीरं सर्पिः मधु उदकं दुधे [ १२९९ ]— जो पायमानी मन्त्रका अभ्ययन करता है, उसे सरस्वती दूध, घी, माहद और जल देती है।

३ पायमानीः स्वस्वयनी सुदुष्या [ १३०० ]— पयमानसूक्त कल्याण करनेवाले और उत्तम अन्न देनेवाले है।

४ देवैः समाहृताः पायमानीः देघीः नः इमं अयो अमुं लोकं दधन्तु, नः कामान् स्वमर्षयन्तु [ १३०१ ]— देवों द्वारा एकत्रित की गई पायमानी देवी हूँ इस लोकमें और जल लोकमें उत्तम स्थान देवे, और हमारी सब इच्छा पूर्ण करे।

५ देयाः येन पयिधेण सदा आत्मानं पुनते, तेन पायमानीः नः पुनन्तु [ १३०२ ]— देव जिस पवित्रता करनेके साधनेसे अपनी पवित्रता करते हैं, उन साधनेसे ही पयमानसूक्त हमारी पवित्रता करे।

६ पायमानीः स्वस्वयनीः ताभिः भान्वन् गच्छति पुण्यान् भक्षान् भक्षयति, अमृतत्वं च गच्छति [ १३०३ ]— ये पयमाना मृत कल्याण करनेवाले हैं, इनकी महापताके भानव विलता है, पुष्यकारक अन्न खानेके लिए मिलते हैं और अमरता प्राप्त होनी है।

वेदमंत्रोंके विशेषकर पयमान सूक्तके अभ्ययनसे मनुष्यकी उत्तम उपति होती है। सोमके गुण यदि मनुष्य अपने अन्नके बजाये तो मनुष्यकी उपति होगी। इसकारण पाठक इस पर स्थान दें।

### सुभाषित

१ गोपाः प्रथमे भुपनस्य पिपर्मन् प्रजाः जनयन् भद्रान् [ १२५१ ]— गाय और इन्द्रियोंका पालन करनेवाला, भुपनका विशेष धर्मसे पालन करते, जगत् उत्पन्न

करके अर्थात् गृहयधर्मका विशेष रीतिसे पालन करके समस्त श्रेष्ठ होता है।

२ धृष्या अग्निः अधितानो पवित्रे बृहन् वायुचे [ १२५३ ]— बलवान् वह पर्वतके समान विशाल होकर, ऊँचे स्थान पर रहकर, पवित्र होकर अधिक श्रेष्ठ होता है।

३ हे देव । नः इधये राधसे मरिसि [ १२५४ ]— हे देव । हमारे इष्टसिद्धि और धनको प्राप्तिके लिए जानबूझते सहामता कर।

४ महियः तत् महत् चकार [ १२५५ ]— उस महा बलवान्ने उस महान् कार्यको किया है।

५ पयमानः इन्द्रे ओजः अद्धात् [ १२५६ ]— सोमके कारण इन्द्रमें सामर्थ्य बढ़ा।

६ इन्दुः सूर्यो ज्योतिः अजनयत् [ १२५७ ]— सोमने सूर्यमें प्रकाश स्थापित किया।

७ विमिः अभिगद्भुतः पयः देवः दाशुपे ररनानि दूधत् [ १२५७ ]— माहणो द्वारा प्रशंसित यह देव दान-शीलको रत्न देता है।

८ पयः दारः विश्वानि वार्या सत्वभिः यन् इय सिपासति [ १२५८ ]— यह पुर सब धर्मोंको अपने सामर्थ्यसे प्राप्त करके उत्तका उपभोग करता है।

९ पयः देवः रथयति, दिशस्यति, धग्धुं आविष्ट-पोति [ १२५९ ]— यह विद्वान् देव रथमें बैठनेकी इच्छा करता है, लोगोंको उपनिष्ठा मार्ग दिलाता और उत्तम उप-देशके दावेदोंका व्याख्यान करता है।

१० एदः देवः हरिः श्रतायुभिः पिपन्सुभिः वाजाय मृज्यते [ १२६० ]— यह दुर्लभा हरण करनेवाला जानी और साथके लिए अपनी सम्पूर्ण आयुको लपानेवाले तथा हितकारक बर्न करनेवालोंके द्वारा, युद्धमें विजय प्राप्तिके लिए तैयार किया जाता है।

श्रतायुः ( श्रत-आयुः )— साथके लिए, श्रेष्ठ बर्नके लिए जितनी आयु लक्ष्य होती है। पिपन्सुः ( पि-पन्सुः )— विशेष हितकारी बर्न करनेवाला। हरिः— दुर्लभा हरण करनेवाला। देवः— प्रजासमान, गौर, विजयको इच्छा करनेवाला। मृज्यते— मृदु किया जाता है, विशेष बनाया जाना है।

११ अदाभ्यः दारोसि अति धायति [ १२६१ ]— न बनाया जानेवाला और सन्तु पर आश्रयण करने जाना है।

१२ पयमान रजानि निम्न, दिधं पिपायति

[ १२६२ ]- शूद्र होनेवाला मनुष्य रजोगुणको दूर करके स्वर्गको जानेके मार्ग पर जाता है ।

१३ स्वध्वरः, अस्तुतः रजांसि तिरः द्विवं व्यास-  
रत् [ १२६३ ]- उत्तम हित्कारहित कार्य करनेवाला, पराश्रित न होनेवाला, रजोगुणोंको दूर करके स्वर्गमें राक्षसे आगे जाता है ।

१४ एषः हरिः श्रमेन जन्मना देवेभ्यः सुतः पवित्रे  
अर्पति [ १२६४ ]- यह कुछ दूर करनेको इच्छा करनेवाला जन्मसे ही देवोंके लिए निर्मित हुआ है, इसप्रकार पवित्रताके भाग पर जाता है ।

१५ एषः दारः भानुभिः रोषिभिः गच्छन्, पिया  
याति [ १२६५ ]- यह शूर वृद्ध शौराणामो रभति जाकर ऋषिदुर्गक उन्नतिके भागमें आगे जाता है ।

१६ अमृतानः आशन, वृहते देवतातपे, पुरु  
धिपापते [ १२६७ ]- जहा अमरदेव देवते हैं, उस महान् पतमें यह बहूतसे काम करनेको इच्छा करता है ।

१७ एषः हितः अन्तः शुभ्यायता पथा विनीयते  
[ १२६९ ]- इस हितकारक सायकको अन्तर्गामीने शूद्र होनेके भागमें आगे ले जाता जा ११ है ।

१८ औजसा नृग्णा दुधानः एषः शृगाणि द्योषुयन्  
[ १२७१ ]- अपने सामर्थ्यमें घनीको पारण करनेवाला यह अपने सींग दिलाता है ।

१९ वसुनि पिबन्तः एषः परया अति ययिवान्,  
शादेपु अव गच्छति [ १२७२ ]- निरास करके रहने वाले दुष्टोंको कष्ट देता हुआ अपनी दक्षिणसे उसके आगे जाकर, मारनेके योग्य उस दुष्टको कुचलता हुआ चला जाता है ।

२० एषः सहद्विप्रिण वाजं गच्छन् [ १२७४ ]- यह हजारां प्रकारके अन्न देनेके लिए जाता है ।

२१ एषः मालुपीषु विष्णु इयेनः न आ सीदति  
[ १२७६ ]- यह मानवीय प्रजाओंमें, इवेन यशोंके समान, ऊंचे स्थान पर जाकर बैठता है ।

२२ धार्मी विश्वविन् मनसः पतिः नृभिः हित  
[ १२८० ]- बलवान् यह सर्वत्र और मनका स्वामी होकर मनुष्यों द्वारा सम्मानके योग्य स्थानमें रहा जाता है ।

२३ अमर्त्यः सुब्रह्मा देववीतमः देवः अपि पांनो  
नुभायते [ १२८२ ]- अमर, शत्रुओंको मारनेवाला और देवोंको बहुत आनन्द देनेवाला ऐसा यह देव अपने स्वान्तमें सुशोभित होता है ।

२४ एषः धावि सूर्यं अरोचयत् [ १२८४ ]- यह धृगोक्तमें सूर्यको प्रकाशित करता है ।

२५ दक्षसाधनः एषः स्वर्जित् [ १२८७ ]- बल बढ़ानेका साधनरूप यह सुशोको जीतकर प्राप्त करनेवाला है ।

२६ गन्तुः हिरण्ययुः सत्राश्रित् अस्तुतः अचि-  
न्रदत् [ १२८९ ]- गाथ पालनेवाला, सीमा पारमें रत्नने-  
वाला, एकदम सब धन्युओंको जीतनेवाला, अपराजित और शत्रु मरता है ।

२७ देवावीः अग्रंशसहा अदाभ्यः शुष्पी एषः  
अर्पति [ १२९१ ]- देवोंका रत्नक, पापियोंका सहायक, न बचाया जानेवाला यह बलवान् भागे जाता है ।

२८ वृषा रक्षांसि विघ्नन् अर्पति [ १२९२ ]- बल-  
वाला यह राक्षसोंको मारता हुआ भागे जाता है ।

२९ वृषहा वृषा परिषोयित् अ-दाभ्यः, वाजं इव,  
असरत् [ १२९६ ]- शत्रुको मारनेवाला बलवान् वीर, मनु-  
देनेवाला तथा कित्तिसे न बचनेवाला शेरक घोड़ेके समान आगे जाता है ।

३० यः श्रियिभिः संभृतं रसं व्यथेति, सरस्वतीं  
तस्मै स्त्रीं स्त्रीः मधु उदकं हुवे [ १२९९ ]- जो श्रियों  
द्वारा इच्छते किए हुए आनन्द व्यथ्य करता है उसे सरस्वती इष, पौ, शत्रु और जल देती है ।

३१ श्रियिभिः संभृतः रसं प्राहाणेषु अमृतं हितं  
[ १३०० ]- श्रियों द्वारा इच्छता किया गया यह आनन्द प्राहाणोंमें अमृतके रूपमें दिये है ।

३२ देवैः समाहृताः पादमानीः देवीः नः इमं अथो  
अमुं लोकं बध्नुत, नः वामान् समर्पयन्तु [ १३०१ ]-  
देवोंके द्वारा सम्पादित, ये पवित्रता करनेवाली देवियाँ हमें इस  
और उस लोकमें सुख देवें और हमारी कामनायें पूर्ण करें ।

३३ देवाः येन पवित्रेण आत्मानं पुनते, तेन नः  
पुनन्तु [ १३०२ ]- देवगण जिस पवित्र करनेके तापनने  
अपनेको पवित्र करते हैं, उन साधनोंसे वे हमें पवित्र करें ।

३४ पावमानीः स्वस्वधनोः, तामिः नान्दं  
गच्छति, पुण्यान् भक्षान् अन्नयति, अमृतत्वं गच्छति  
[ १३०३ ]- पवित्रता करनेवाली और कल्याण करनेवाली  
देवियोंमें हैं । इनसे आनन्द प्राप्त होता है, पवित्र अन्न  
पानेको मिलता है तथा अमृतत्वकी प्राप्ति होती है ।

३५ स्वाहुतं चित्रमानुं अमसा अगम [ १३०४ ]-



जिसमें उतम हवन किया गया है, उस प्रकाशसे युक्त अग्निके पास नमस्कार करते हुए हम जावे ।

३६ मेन्हा विश्वा दुरितानि स्वाहान् अग्निः दमे वास्तु [ १३०५ ]- अपने महान प्रभावसे सब पापोंको दूर करनेवाले अग्निकी यज्ञकालमें स्तुति की जाती है ।

३७ सः नः दुरितात् अवद्यात् रक्षिषत् [ १३०५ ]- यह हमारी पापोंसे और निन्दित कमसे रक्षा करता है ।

३८ हे अग्ने! त्वे यस्तु सुपणानि सन्तु [ १३०६ ]- हे अपने! तेरे पाकके धन हमारे द्वारा स्वीकार करने योग्य हों ।

३९ नः स्वस्तिमि पात [ १३०६ ]- हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित कर ।

४० इन्द्रः ओजसा महान् [ १३०७ ]- इन्द्र अपने तेजसे महान् है ।

४१ आमुषा जामि मुन्न [ १३०८ ]- वास्तव अथ निरुपवीगो ही मरु, ऐसा लोग कहने लगे ।

४२ वाजसातमः सुवीर्यं वधुषु रक्षिमभिः व्यवसु-  
हि [ १३१२ ]- बल बढ़ानेवाला तू उत्तम वीर्य धारण करके अपने तेजसे सब जगहोंको व्याप्त कर दे ।

४३ यः नर्यः [ १३१३ ]- जो सब मनुष्योंका हित करनेवाला है ।

४४ पृषा हरिः, राश इय, वस्म [ १३१६ ]- यह बल बढ़ानेवाला तथा दुर्बलोंका हरण करनेवाला, राजाके समान, बर्तनीय है ।

४५ दुरितान् अपलोधन्न नः मृड [ १३१८ ]- पापोंको दूर करने हूँ सुखी कर ।

४६ यस्तुनि ओजसा जनिमानि भागं प्रति दीधिमः [ १३१९ ]- धन अपने साधनमें उत्पन्न करके उसका ठीक भाग हम लेते हैं ।

४७ इन्द्रस्य रातय इन्द्रः [ १३२० ]- इन्द्रके रात कल्याणकारी हैं ।

४८ या मनः चोदयत् [ १३२० ]- जो मनोंको उत्तम प्रेरणा देता है ।

४९ विपदा कामं न रोषति [ १६२० ]- उपासककी इच्छा यह नष्ट नहीं करता ।

५० हे इन्द्र! यतः भयामहे ततः नः अभयं वृषि [ १३२१ ]- हे इन्द्र! जहति हर्षे मय उत्पन्न हो, वहति हर्षे भयवर्हित कर ।

५१ हे मधवन्! नः तव ऊतये शग्धि, द्विषः जाहि, मुधाः वि [ १३२१ ]- हे धनवान् इन्द्र! हमें अपने रक्षणसे सुरक्षित कर, द्वेष करनेवालोंका पराभव कर, शत्रुओंको दूर कर ।

५२ हे राघसः पते! त्व महः राघसः क्षयस्य विघर्ता असि [ १३२२ ]- हे धनपते! तू महान् धनके रक्षकोंकी धारण करनेवाला है ।

५३ त्वं मद्दिन्तमः सत्राजित् अन्वृतः [ १३२४ ]- तू आनन्द देनेवाला सब शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाला और अपराजित है ।

५४ धुमन्तं शुष्मं आमर [ १३२५ ]- तेजस्वी बल हमें भरपूर दे ।

५५ महे दक्षाय धनाय पवस्य [ १३३२ ]- शत्रुको हरनेवाले बलके लिए और धनके लिए युद्ध हो ।

५६ नः गवे शी [ १३३७ ]- हमारी गायोंका कल्याण होवे ।

५७ विष्वर्यो इय पुस्तस्य [ १३३७ ]- वीर्य करने-  
वाले अमर दे ।

५८ युवा इन्द्रः येण सखा, अनुजः इव युवा युतं स्वत्वमिः शूरः आजति [ १३४० ]- तरुण इन्द्र जितका मित्र है, वे वीर युद्धकी इच्छा न होते हुए भी अनेक योद्धाओंसे युक्त शत्रुको अपने बलसे शूरवीर हीकर दूर करते हैं ।

५९ दाशुषे मर्ताय यस्तु विदयते [ १३४१ ]- दास देनेवाले मनुष्योंको यह इन्द्र धन देता है ।

६० अ-प्रतिप्लुतः इन्द्रः ईरानः [ १३४१ ] जितका पराभव नहीं होता ऐसा इन्द्र सबका ईश्वर है ।

६१ यः आधिवासति, तत् उमं शायः इन्द्रः मा पत्यते [ १३४२ ]- जो आपासना करता है, इन्द्र उसे उप बल देता है ।

६२ इन्द्रः अराधते मते, पदा शुभं इव, सुदुरत् [ १३४३ ]- इन्द्र दास न देनेवाले मनुष्योंको, अंति परते फूलरी कुचलते हैं, उसीप्रकार नष्ट कर देता है ।

## उपमा

१ पूर्ववी इय [ १२५६ ]- पत्नीसे समान ( दयः देयः प्रीणानि अग्नि वासदम् ) यह भीम बलमें वेगसे गिरता है ।

२ हरिः याज्ञाय सृज्यते [ १२६० ]- जितप्रकार घोड़ेको युद्धमें जानके लिए सजाते हैं, उसीप्रकार ( पयः पयमानः विपन्सुभिः सृज्यते ) यह सोम पत करनेवालीके द्वारा युद्ध किया जाता है।

३ यूय्यः वृषा शिशते [ १२७१ ]- जितप्रकार भुज्जमें बंल अपने सींग हिलाता है, उसीप्रकार ( पयः ष्टंगाणि बोधुवत् ) यह सोम अपने सींग हिलाता है।

४ द्येनः न [ १२७६ ]- याज्ञके समान यह सोम ( आ सीदति ) शक्तिर बँडता है।

५ योपितं गच्छन् जातः न [ १२७६ ]- स्त्रीके पात जैसे उसका शर जाता है, उसीप्रकार ( पयः मानुषीपुविशु ) यह सोम मनुष्योंमें जाकर बँडता है।

६ घार्ज इव [ १२९६ ]- घोड़ेके समान ( सः सोमः ) यह सोम कलशमें घेगते जाता है।

७ पुष्टिमान् पर्जन्यः इव [ १३०७ ]- वृष्टि करनेवाले भेदके समान ( तेजसा महान् ) यह सोम तेजसे महान् बीजता है।

८ राजा इव वरुणः [ १३१६ ]- राजाके समान बेलने-वाला यह ( सोमः ) सोम है।

९ द्येनः न [ १३१६ ]- याज्ञपतीके समान ( घृत-यन्तं योनिं आसदस् ) पानीके कलशमें जाता है।

१० अत्यः न [ १३१८ ]- घोड़ेके समान ( घार्जं अश्वपतिं ) युद्धमें जाता है।

११ थायन्तः सूर्य इव [ १३१९ ]- किरने जित-प्रकार सूर्यके आश्रयसे रहती हैं, उसीप्रकार ( विश्वा इव इन्द्रस्य भद्रत ) सब धन इन्द्रके आश्रयसे रहते हैं।

१२ भायं न प्रतिदीधिभिः [ १३१९ ]- पिताके धनका भाग जितप्रकार भाईके बटमेंसे मिलता है, उसीप्रकार हर्षे पयका भाग मिले।

१३ अद्वयः न [ १३३२ ]- घोड़ेके समान ( निफतः घालीं ) धोकर धुष्ट किया गया यह यलघान् सोम है।

१४ शिशुं जहानं [ १३३४ ]- नये भन्वेको जैसे साध करते हैं, उसीप्रकार ( सोमं पवित्रे सृजन्ति ) सोमको छलनीपर धुष्ट करते हैं।

१५ वरुणं शिश्वरीः इव [ १३३६ ]- बच्चेको जित-प्रकार माता बढाती है, उसीप्रकार ( तं नः शिरः स्वे वर्धन्तु ) उस सोमका वर्णन हमारी श्रुति करती है।

१६ पदा क्षुम्पे इव [ १३४३ ]- पाँवसे जैसे फूलकी दीबते हैं, उसीप्रकार ( भ-राद्यर्षं मर्ते स्फुरत् ) दान न देनेवाले मनुष्यका इन्द्र पादा करता है।

१७ यंदा इव [ १३४४ ]- बालकी जैसे ऊपर करते हैं, उसीप्रकार ( ग्रहाणाः त्वा उद्योमिरे ) बालुण तुभ इन्द्रको थोछ कहकर उन्नत करते हैं, तेरा भग बढाते हैं।

## दशमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋषेःस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
१२५३	१।१।७।१०	परशाराः शाक्यः	पयमानः सोमः	विष्ट्वृ
१२५४	१।१।७।१२	परशारा शाक्यः	"	"
१२५५	१।१।७।११	परशाराः शाक्यः	"	"
१२५६	१।१।१	शुनःशोष आजीपतिः सः देवरातः ऋषियो वैश्वामित्रः	"	शायत्री
१२५७	१।१।६	शुनःशोष आजीपतिः सः देवरातः ऋषियो वैश्वामित्रः	"	"
१२५८	१।१।७	शुन शोष आजीपतिः सः देवरातः ऋषियो वैश्वामित्रः	"	"

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदस्थान	श्रुतिः	देवता	छन्दः
१२५९	९।१।५	शुनःशेष आजोगतिः सः देवरातः कृत्रिमो वंश्वामित्रः	पवमानः सोमः	गायत्री
१२६०	९।१।६	शुनःशेष आजोगतिः सः देवरातः कृत्रिमो वंश्वामित्रः	"	"
१२६१	९।३।२	शुनः शेष आजोगतिः सः देवरातः कृत्रिमो वंश्वामित्रः	"	"
१२६२	९।१।७	शुनःशेष आजोगतिः सः देवरातः कृत्रिमो वंश्वामित्रः	"	"
१२६३	५।३।८	शुनःशेष आजोगति सः देवरातः कृत्रिमो वंश्वामित्रः	"	"
१२६४	९।३।९	शुनः शेष आजोगति सः देवरातः कृत्रिमो वंश्वामित्रः	"	"
१२६५	९।३।१०	शुनःशेष आजोगतिः सः देवरातः कृत्रिमो वंश्वामित्रः	"	"
( २ )				
१२६६	९।१।५।१	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१२६७	९।१।५।१	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१२६८	९।१।५।७	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१२६९	९।१।५।३	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१२७०	९।१।५।५	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१२७१	९।१।५।४	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१२७२	९।१।५।६	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१२७३	९।१।५।८	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
( ३ )				
१२७४	९।३।८।१	राहूगण आगिरसः	"	"
१२७५	९।३।८।१	राहूगण आगिरसः	"	"
१२७६	९।३।८।४	राहूगण आगिरसः	"	"
१२७७	९।३।८।५	राहूगण आगिरसः	"	"
१२७८	९।३।८।६	राहूगण आगिरसः	"	"
१२७९	९।३।८।३	राहूगण आगिरसः	"	"
( ४ )				
१२८०	९।३।८।१	प्रियमेघ आगिरसः	"	"
१२८१	९।३।८।१	प्रियमेघ आगिरसः	"	"
१२८२	९।३।८।३	प्रियमेघ आगिरसः	"	"
१२८३	९।३।८।४	प्रियमेघ आगिरसः	"	"
१२८४	९।३।८।५ [ प्रथमः पाठः ]	प्रियमेघ आगिरसः	"	"
	९।३।८।४ [ द्वयः पाठः ]	प्रियमेघ आगिरसः	"	"

दशम अध्याय ]

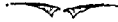
सामवेदका सुयोध अनुयाय

संक्रमांख्या	श्रुत्येवस्थानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
१६८५	१११७।५ [ प्रथमः पाद्यः ] १११७।४ [ द्वयः पादाः ]	नृमेघ आंगिरसः इधमबाहो वाङ्मन्यतः	पथमानः सोमः	गायत्री
( ५ )				
१६८६	१११७।१	नृमेघ आंगिरसः	"	"
१६८७	१११७।१	नृमेघ आंगिरसः	"	"
१६८८	१११७।३	नृमेघ आंगिरसः	"	"
१६८९	१११७।४	नृमेघ आंगिरसः	"	"
१६९०	१११७।६	नृमेघ आंगिरसः	"	"
१६९१	१११८।६	त्रियमेघ आंगिरसः	"	"
( ६ )				
१६९२	११३।७।१	राहूगण आंगिरसः	"	"
१६९३	११३।७।२	राहूगण आंगिरसः	"	"
१६९४	११३।७।३	राहूगण आंगिरसः	"	"
१६९५	११३।७।४	राहूगण आंगिरसः	"	"
१६९६	११३।७।५	राहूगण आंगिरसः	"	"
१६९७	११३।७।६	राहूगण आंगिरसः	"	"
( ७ )				
१६९८	११६।७।३।१	पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा	पथमानाभ्येतो	अनुष्टुप्
१६९९	११६।७।३।२	पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा	"	"
१७००	—	पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा	"	"
१७०१	—	पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा	"	"
१७०२	—	पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा	"	"
१७०३	—	पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा	"	"
( ८ )				
१७०४	७।६।१।१	वसिष्ठो मंत्रावदधिः	अग्निः	विष्टुप्
१७०५	७।६।१।२	वसिष्ठो मंत्रावदधिः	"	"
१७०६	७।६।१।३	वसिष्ठो मंत्रावदधिः	"	"
१७०७	८।६।१	वसः काण्वः	इन्द्रः	गायत्री
१७०८	८।६।१	वसः काण्वः	"	"
१७०९	८।६।१	वसः काण्वः	"	"
( ९ )				
१७१०	११।६।६।१।५	शतं वैश्वानसः	पथमानः सोमः	"
१७११	११।६।६।१।६	शतं वैश्वानसः	"	"
१७१२	११।६।६।१।७	शतं वैश्वानसः	"	"
१७१३	११।६।७।१	सप्तर्षयः	"	प्रगाथः ( बृहती, ... सतो बृहती )
१७१४	११।१०।७।१	सप्तर्षयः	"	"

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदस्थान	ऋषिः	देवता	छन्दः
१३१५	१।१०७।३	सप्ततम्यः	पद्मवानः सोमः	द्विपदा विराट्
१३१६	१।८२।१	वसुभरिद्वाजः	"	अगती
१३१७	१।८२।३	वसुभरिद्वाजः	"	"
१३१८	१।८२।९	वसुभरिद्वाजः	"	"
( १० )				
१३१९	८।१९।३	नुमेव आगिरसः	इन्द्रः	प्रगाथः ( गृहती सतो गृहती )
१३२०	८।१९।४	नुमेव आगिरसः	"	"
१३२१	८।१९।१३	भर्गः प्रागाथः	"	"
१३२०	८।१९।१४	भर्गः प्रागाथः	"	"
( ११ )				
१३२३	१।६७।१	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	पद्मवानः सोमः	वायवो
१३२४	१।६७।२	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१३२५	१।६७।३	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१३२६	१।१०६।७	मनुराप्तवः	"	उत्थिगत्
१३२७	१।१०६।८	मनुराप्तवः	"	"
१३२८	१।१०६।९	मनुराप्तवः	"	"
१३२९	१।१०८।७	अम्बरीषो वार्यागिरः ऋजिरवा भारद्वाजवध	"	अनुष्टुप्
१३३०	१।१०८।६	अम्बरीषो वार्यागिरः ऋजिरवा भारद्वाजवध	"	"
१३३१	१।१०८।१०	अम्बरीषो वार्यागिरः ऋजिरवा भारद्वाजवध	"	"
१३३२	१।१०९।१०	अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः	"	द्विपदा विराट्
१३३३	१।१०९।११	अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः	"	"
१३३४	१।१०९।१२	अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः	"	"
१३३५	१।१११।१३	अग्नहोमुरागिरसः	"	गायत्री
१३३६	१।१११।१४	अग्नहोमुरागिरसः	"	"
१३३७	१।१११।१५	अग्नहोमुरागिरसः	"	"
( १२ )				
१३३८	८।४५।१	त्रिसोकः काण्वः	अग्नोमयी	"
१३३९	८।४५।२	त्रिसोकः काण्वः	इन्द्रः	"
१३४०	८।४५।३	त्रिसोकः काण्वः	"	"
१३४१	१।८४।७	गोतमो रङ्गयथाः	"	"
१३४२	१।८४।९	गोतमो रङ्गयथाः	"	उत्थिगत्
१३४३	१।८४।८	गोतमो रङ्गयथाः	"	"
१३४४	१।१०।१	मधुच्छन्दा बेंदवामिनः	"	अनुष्टुप्
१३४५	१।१०।२	मधुच्छन्दा बेंदवामिनः	"	"
१३४६	१।१०।३	मधुच्छन्दा बेंदवामिनः	"	"



## अथ एकादशोऽध्यायः ।



अथ षष्ठ्यपाठके प्रथमोऽर्घ्यः ॥ ६ ॥

[ १ ]

( १-११ ) मेधातिथिः काव्यः, २, १० वसिष्ठो मंत्रावरणिः; ३ प्रगायः काव्यः; ४ पराजः शाक्त्यः, ५ प्रगायो वीर्य काव्यः; ६ मेधातिथिः काव्यः; ७ अथर्ववेदेषु; प्रसवयुः वीर्यकृत्यः; ८ जनयो विष्ण्वा ऐश्वराः; ९ हिरण्यस्तुप आविरसः; १० सार्वरातो ॥ १ आश्रीमूर्त्तः- ( १ इधम. सविदोऽग्निवो, २ मनुवभत्, ३ नरादांसः, ४ इष्टः ); २ आदित्यः; ३, ५-६ इन्द्रः, ४, ७-९ यवमानः सोमः; १० अग्निः; ११ आत्मा, सुषो वा । १-१, ११ पावनीः  
 ४ मिष्ट्यु, ५-६ प्रगायः- ( विषमा बृहती, सभा सतीबृहती ); विपीलिकमघ्या अनुन्द्युः; ८ द्विषवा विराट्; ९ जगती; १० विराट् ॥

१२४७ सुषामिदो न आ वह देवाः अग्ने हविष्मते । होतः पावकं यक्षि च ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।११ )

१२४८ मधुमन्तं मनुमपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुइयूतयं ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१।१२ )

१२४९ नरादांससिंह प्रियमसिन्धुज उप ह्वये । मधुजिद्धं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१।१३ )

१२५० अग्ने सुखतमे रथे देवाः ईडित आ वह । असि हाता मनुइहितः ॥ ४ ॥ १ ( रा ) ॥

[ धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १।१।१४ )

[ १ ] प्रथमा खण्डः ।

[ १२४७ ] हे आने ! ( सु सविद्धः ) अच्छी तरह प्रवृत्त होकर ( नः हविष्मते ) हमारी हविको अपने पास रखनेवाले यजमानके लिए ( देवान् भा वह ) देवोंको बुलाकर ला । हे ( होतः पावक ) हवन करनेवाले तथा परिव्रता करनेवाले अग्ने ! ( यद्वि च ) उन देवताओंकी सक्षय करके यज्ञ कर ॥ १ ॥

[ १२४८ ] हे ( कवे ) ब्रह्मर्षी अग्ने ! ( मनु-न-पात् ) शरीरको न गिरानेवाला तू ( अद्य ) आज ( ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिए ( सः मधुमन्तं यज्ञं ) हमारी अत्यन्त पीठी हविको ( देवेषु कृणुहि ) देवोंकी ओर पहुंचा ॥ २ ॥

[ १२४९ ] ( इह अस्मिन् यज्ञे ) यहाँ इस यज्ञमें ( प्रिये मधु-जिद्धं ) प्रिय और पीठा बोलनेवाले ( हविष्कृतं नरादांसं ) हविको देवोंकी ओर पहुंचानेवाले और मनुष्य जिसको स्तुति करते हैं, ऐसे उस अग्निको ( उप ह्वये ) न बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

१ मधुजिद्धः— पीठा भाषण करनेवाला ।

२ प्रियः— प्रिय आचरण करनेवाला ।

३ नरादांसः— मनुष्य जिसकी प्रशंसा करते हैं ।

४ हविष्कृतम्— हविष् सेव्यार करके यजन करनेवाला ।

[ १२५० ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( ईडितः ) प्रशंसित हुआ हुआ तू ( सुखतमे रथे ) अत्यन्त सुख देनेवाले रथके ( देवान् भा वह ) देवोंकी लेकर आ । ( मनुः-हितः ) मनुष्यों-यजमानों-द्वारा स्थापित किया गया ( होता अस्ति ) तू देवोंकी बुलाकर खानेवाला हूँ ॥ ४ ॥

१ सुख-समा रथः— अत्यन्त सुख देनेवाला रथ ।

२८ [ साम हिनो वा. २ ]

१३५१ पदय सूर उदितेऽनागा मिश्रो अयमा । सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।६।४ )

१३५२ सुभावीरस्तु स क्षयः प्र जु यामन्त्सुदानवः । ये नो अश्वोऽतिपिप्रति ॥ २ ॥  
( ऋ. ७।६।५ )

१३५३ उत स्वराजो आदितिरद्व्यस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥ ३ ॥ २ ( खि ) ॥  
[ धा० ११ । उ० २ । स्त० ३ ] ( ऋ. ७।६।६ )

१३५४ उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।१ )

१३५५ पदा पणीनराधसो नि बाधश्च महाः अस्ति । न हि त्वा कश्चन प्रति ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।६।२ )

१३५६ त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥ ३ ( टि ) ॥  
[ धा० १३ । उ० २ । स्त० ३ ] ( ऋ. ८।६।३ )

॥ इति प्रथम खण्ड ॥ १ ॥

[ १३५१ ] ( यद् ) उन धनोंको ( अद्य सूर उदिते ) आज सूर्यके उदय होनेके बादसवेरे ( अनागा ) निष्याय ( मित्रः अयमा भगः सविता ) मित्र, अयमा, भग और सविता देव ( सुवाति ) हमारी और प्रीति करें ॥ १ ॥

१ मित्रः— मित्रके समान आचरण करनेवाला ।

२ अयमा— श्रेष्ठ पुण्यका निर्णय करनेवाला ।

३ भगः— भाग्यवान् ।

४ सविता— ( सर्वस्य प्रसविता ) सब जगत्को उत्पन्न करनेवाला-सूर्य ।

[ १३५२ ] ( सु-दानव ) हे उत्तम धान देनेवाले देवो ! ( प्र जु यामन् ) तुम्हारे आगमनके बाद ( सः क्षयः ) तुम्हारा पवन होनेवाला निवास ( सु-प्र-अवीः अस्तु ) हमारा अच्छी तरह रक्षण करनेवाला होवे । ( ये नः अंहः अति पिप्रति ) जो तुम हमें पासे दूर करते हो ॥ २ ॥

[ १३५३ ] ( उत ये ) और जो वेव तथा ( अदितिः ) देवोंकी माता अदिति हैं, ये सब ( अ-द्व्यस्य प्रतस्य स्वराजः ) न बचाये जानेवाले व्रतके राजा हैं, वे ( महो राजानः ) वे महान् राजा हैं, और ( ईशते ) सब पर शासन करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

[ १३५४ ] हे इन्द्र ! ( सोमाः त्वा ) सोमरस तुम ( उद् मदन्तु ) उत्तम आनन्द देवे । हे ( अद्रि-च ) यज-धारी इन्द्र ! ( राध कृणुष्व ) हमें पेशवर्षों के और ( ब्रह्म-द्विषः अजजहि ) ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको हरा ॥ १ ॥

[ १३५५ ] हे इन्द्र ! तू ( महान् अस्ति ) बड़ा है । ( त्वा प्रति कश्चन न हि ) तेरे समान दूसरा कोई भी नहीं है, ( अ-राधस पणीन् ) धान न देनेवाले लोगों लोगोंको तू ( पदा नि बाधश्च ) परेते कुचल बाल ॥ २ ॥

[ १३५६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं सुतानां ) तू रस निकाले गए और ( त्वं असुतानां ) रस न निकाले गए सोमोंका ( ईशिषे ) स्वाभो है । ( त्वं जनानां राजा ) तू लोगोंका भी राजा है ॥ ३ ॥

[ २ ]

१३५७ आ जागृविविप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदचमूषु ।

सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अश्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ १ ॥ ( ऋ. १९७।३७ )

१३५८ स पुनान उप घ्ने दधान ओमे अपा रोदसी धी प आवः ।

प्रिया चियस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥ २ ॥ ( ऋ. १९७।३८ )

१३५९ स चर्धिता चर्धेनः पूयमानः सोमो मीद्वा आमि नो ज्योतिषावित् ।

यत्र नः पूर्वं पितरः पदङ्गाः स्वविदो अभि गा अद्रिमिष्यन् ॥ ३ ॥ ४ ( तै ) ॥

[ पा० १९। उ० १। सू० ८ ] ( ऋ. १९७।३९ )

१३६० मा चिदन्पद्भि शंसत सखायो मा रिषण्यत् ।

इन्द्रमिस्त्वोता वृषण्यत् सचा सुते मुहुषुषया च शंसत ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।१ )

[ ३ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १३५७ ] ( जागृविः ) जाग्रत रहनेवाला ( ऋतं मतीनां विप्रः ) सन्धो स्तुतिर्योका शाता ( सोमः ) सोम ( पुनानः ) छनकर ( चमूषु आसदत् ) कलधर्म बेडता है । ( मिथुनासः ) एकत्र रहनेवाले ( निकामाः ) इष्ट-कामना करनेवाले ( रथिरासः सुहस्ताः ) यश करनेवाले और उत्तम हथवाले ( अश्वर्यवः ) अभ्यर्षुं ( यं सपन्ति ) जिसे स्वर्ण करते हैं, ऐसा यह सोम है ॥ १ ॥

[ १३५८ ] ( पुनानः दधानः सः ) पवित्र होनेवाला, यतकर्मोंको सिद्ध करनेवाला वह सोम ( सूरे उप गच्छति ) इन्द्रके पास जाता है । ( उभे रोदसी ) दोनों ही धु और पृथिवीको ( आ अपाः ) यह भर देता है । ( [ सोमः ] आवः ) यह सोम तेजसे हमें आच्छादित करता है । ( प्रियाः ) प्रिय पदार्थ देनेवालो ( चिय सतः ) जिसके रक्षकी ( प्रियसासः ) अत्यन्त प्रिय वाचा ( ऊती ) हमारा सरलाप करती है और ( कारिणे न ) यश करनेवालेको अंशे यश मिलता है, उसीप्रकार ( धनं प्र यंसत् ) पन हमें देती है ॥ २ ॥

[ १३५९ ] ( चर्धिता ) सवर्धन करनेवाला ( चर्धेनः ) तथा स्वर्ध भी बढ़नेवाला ( पूयमानः ) छाना जानेवाला और ( मीद्वा ) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला ( सः सोम ) वह सोम ( नः ज्योतिषा अभि व्यावित् ) अपने तेजसे हमारी रक्षा करे । ( पदङ्गाः स्वविदुः ) पदोंका अर्थ जाननेवाले, आत्मज्ञानो ( नः पूर्वं पितरः ) हमारे पूर्वजालके वितर ( गाः ) गायोंको ( यत्र अद्रिं अभि इष्यन् ) पर्वतके पास ले जानेको इच्छा करते थे ॥ ३ ॥

जहाँ सोमलता होती थी, वहाँ वे गायें ले जाते थे ।

[ १३६० ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( अन्पद् मा चित् वि दांसत ) इन्द्रके स्तोत्रके सिंगम इन्द्रके स्तोत्र मत भोलो और ( मा रिषण्यत् ) इन्द्रके स्तोत्र बोलकर स्वर्ध ही अपनी शक्ति दोगन मत करो । ( सुते ) सोमरस निकालनेके बाद ( वृषण्यत् इन्द्रं हत् ) बलवान् इन्द्रकी ही ( सचा स्तोत ) एक जगह बँधकर स्तुति करो । ( उपया च मुहुः दांसत ) इन्द्रके स्तोत्र बारबार करो ॥ १ ॥



१३६१ अवक्रक्षिणं वृषमं यथा जुषं गां न वर्षणीसहम् ।

विद्वेषणं संवननमुभयङ्करं भक्षिष्टमुभयाविनम्

॥ २ ॥ ५ (घी) ॥

[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ ८।१।२ )

१३६२ उद्दु स्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।

सत्राजितो धनसा अक्षितेतयो वाजयन्तो रथा इव

॥ १ ॥ ( ऋ ८।१।५ )

१३६३ कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमागत ।

इन्द्रं स्तोमेभिर्मह्यन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन्

॥ २ ॥ ६ (ला) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ ८।१।६ )

१३६४ पर्यु पु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः । द्विपस्तरध्या क्रणया न ईरसे ॥१॥

( ऋ. ९।१।११ )

१३६५ अजीजनो हि पवमान सूर्ये विधारे अकमना पयः । गोजीरया रंहमाणः पुरंध्या ॥२॥

( ऋ ९।१।१२ )

[ १३६१ ] ( वृषमं यथा अवक्रक्षिणं ) बेलके समान शत्रुओंसे दक्कर लेनेवाले ( गां न जुषं ) बँसके समान धीमता करके ( वर्षणीसहं ) शत्रुओंको हुरानेवाले ( विद्वेषणं ) शत्रुओंसे वैष करनेवाले ( स्वंगमनं ) उधासकोंके द्वारा सेवा करने योग्य ( अभय-करं मंक्षिष्टं ) निर्भय करनेवाले, महान् तथा ( उभयाविनं ) दोनों प्रकारके ऐश्वर्य देनेवाले इन्द्रको स्तुति करो ॥ २ ॥

[ १३६२ ] ( स्ये मधुमत्तमाः ) वे अत्यन्त मीठे ( गिरः स्तोमास ) धाणिके स्त्रीय ( उद्दु ईरते ) कहे जाते हैं । ( सत्राजितः ) बहुतसे शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाले ( धनसा ) धन देनेवाले ( अ-क्षित-ऊतयः ) न मल्ट होनेवाले रथोंके साधनेसि युक्त वे स्तोत्र ( वाजयन्त रथाः इव ) युद्धमें जानेवाले रथके समान, कहे जाते हैं ॥ १ ॥

[ १३६३ ] ( कण्वा इव ) कण्यके समान ( भृगवः ) भृगुओंने ( धीतं विश्वं इत् ) ध्यान किए गए और सर्वत्र रहनेवाले इन्द्रको ( आगत ) प्राप्त किया । ( सूर्या इव ) सूर्य जैसे प्रकाशसे ध्यापता है, उसीप्रकार उभने उन्हें बेला । ( प्रियमेधासः आयवः ) प्रेमसे यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके समान ( इन्द्रं मह्यन्त ) इन्द्रका महत्त्व प्रकट करते हुए ( स्तोमेभिः अस्वरन् ) वे स्तोमपाठ करते लगे ॥ २ ॥

[ १३६४ ] हे सोम ! ( सु वाजसातये ) उत्तम प्रकारसे अन्न देनेके लिए ( प्र धन्व ) तू आगे जा । ( सक्षणिः वृत्राणि परि ) साहस करनेवाला धीर जिसप्रकार वृत्र जैसे बलशाली शत्रुओं पर चढ़ता घला जाता है, वैसे ही तू शत्रुओं पर आक्रमण कर । ( नः क्रणया ) हमारे ऋण दूर करनेवाला तू ( द्विप तरभ्ये ) शत्रुओंको मारनेके लिए ( ईरसे ) आगे जाता है ॥ १ ॥

[ १३६५ ] हे ( पवमान ) सोम ! ( पयः विधारे हि ) जल चारण करनेवाले अन्तरिक्षमें ( दाकमना सूर्ये अजीजनः ) अपनी शक्तिसे तुने सूर्यको उत्पन्न किया । ( गौ-जीरया पुरंध्या ) स्तुति करनेवालोंको पाप देनेकी मुद्रिमें ( रंहमाणः ) तू मर्णातवाला हुआ है ॥ २ ॥

१३६६ अनु दि त्वा सुतः सोम मदामसि महे समर्षराज्ये ।

वानाः अभि पवमान प्र गाहसे

॥ ३ ॥ ७ ( ल ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १ । ( ऋ. ९।१०१२ )

१३६७ परि प्र घन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्ये भगाय

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१ )

१३६८ एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अप दिव्यः पीयूषः

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०९।२ )

१३६९ इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेपात्कृत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः

॥ ३ ॥ ८ ( ल ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०९।२ )

॥ इति त्रितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१३७० सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्वा मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते ।

तन्तुं ततं परि सर्गास आशुवो नेन्द्रादृते पवते धाम किंचन

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०९।६ )

१३७१ उपो मतिः पृथ्वते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।

पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रष्टः परि वारमर्षति

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०९।२ )

[ १३६६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( महे अर्षराज्ये ) महान् आर्ष राज्यमें ( त्वा सुतं अनु ) तेरे अनुकूल होकर ही ( स मदामसि ) हम आनंदले रहते हैं । हे ( पवमान ) सोम ! ( वानाः अभि प्र गाहसे ) तू बन्ने होनेवाले पापमें जाता है ॥ ३ ॥

[ १३६७ ] हे सोम ! तू ( स्वादुः ) गन्ध होकर ( मित्राय पूष्ये भगाय इन्द्राय ) निम, पूषा, भग और इन्द्रकी ओर जानेके लिए ( प्र घन्व्य ) आगे जा ॥ १ ॥

[ १३६८ ] हे सोम ! ( शुक्रः दिव्यः ) तेजस्वी और स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हुआ ( पीयूषः सः ) पीनेके योग्य तू ( अमृताय ) अमर होनेके लिए ( महे क्षयाय पव ) महान् स्थानको प्राप्त करनेकी इच्छासे ( अर्ष ) आगे जा ॥ २ ॥

[ १३६९ ] हे सोम ! ( कृत्वे दक्षाय ) ज्ञान और बल प्राप्त करनेके लिए ( सुतस्य ते ) तेरा सत् ( इन्द्रः पेयात् ) इन्द्र नियं ओर ( विश्वे च देवाः ) सब देव भी पिमें ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १३७० ] ( सूर्यस्य रश्मयः इव ) सूर्यकी किरणोंकी समान ( द्रावयित्वा मत्सरासः ) प्रेरणा करनेवाले और आनन्द देनेवाले, ( प्रसुतः आशयः सर्गासः ) शूद्र किए गए, पापमें रहनेवाले सोमरस ( ततं तन्तुं साकं परि ईरते ) फंसी हुई छलनीमेंसे एकदम नीचे गिरते हैं । वे ( इन्द्रात् अते ) इन्द्रके विषय ( किंचन धाम ) और किसी स्थानको ( न पवते ) पसन्द नहीं करते ॥ १ ॥

[ १३७१ ] इन्द्रकी ( मतिः पृथ्वते ) स्मृति श्वे जाती है ( मधु सिच्यते ) मधु सोमरस इन्द्रको दिया जाता है । ( मन्द्रा-जनी आसनि अन्तः उप चोदते ) आनन्द देनेवाली रसकी पारा इन्द्रके मुहमें छोड़ी जाती है । ( सन्तनिः ) हमेशा ( सुन्वतां ) सोमरसको निकालनेवाले पवमानोंका ( पवमानः मधुमान् द्रष्टः ) शूद्र किया जानेवाला मोटा सोमरस ( चारं परि अर्षति ) छलनीसे नीचे पड़ता है ॥ २ ॥



१३७८ त्रिंशद्दाम वि राजति चाक्षपतद्वाय धीपते । प्रति वध्वोरहं घृमिः ॥ ३ ॥ ११ ( छि ) ॥  
[ पा० १७। उ० २। स्थ० १ ] ( ऋ. १०।१८९।१ )

॥ इति सुनीय एव ॥ ३ ॥

॥ इति पद्यप्रवाहर् प्रथमोर्ध्व ॥ ६-१ ॥

॥ एकादशोऽध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

[ १३७८ ] ( पस्तोः त्रिंशद्दाम अह ) विराजे तोमपयो तव महं सूयं ( घृमिः विराजति ) किरणोपि विनायं मुजोमित होमा है । उम समय ( घाक् ) वेरवाणी ( पतगाय ) इन सूयंकी ( प्रति धीपते ) स्तुति करती है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा एण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति एकादशोऽध्यायः ॥

## एकादश अध्याय

इत ग्यारहवें अध्यायमें कुछ देवताओंके बाद तोमपय गुण गान है । इसलिये प्रथम हम अय्य वेवोणा वर्णन देतीं । तर्ष प्रथम इन्द्रका स्थान है—

इन्द्र

१ आद्रि-घ० [ १३५४ ]- वयपारी, बहाबो क्लिमें रहनेवाला ।

२ महान् [ १३५५ ]- शयकी अपेक्षा बड़ा ।

३ जनानां राजा [ १३५६ ]- लोगोंका शासक, लोगोंका राजा बननेवाला ।

४ घृया [ १३६० ]- बलवान्, सामर्थ्ययुक्त ।

५ चरुणीसहू - [ १३६१ ]- शत्रु शंयकी हारनेवाला ।

६ यिद्रेपी [ १३६१ ]- शत्रुओंके द्वेष करनेवाला ।

७ स्वयनन - [ १३६१ ]- सेवा करनेके योग्य ।

८ अमयकरः [ १३६१ ]- लोगोंको निर्भय करनेवाला ।

९ महिष्ठ [ १३६१ ]- महान्, बड़ा ।

१० उमयायी [ १३६१ ]- दोनों प्रकारके देवद्वय देनेवाला, शक्ति और आभ्यात्मिक देवद्वय देनेवाला ।

११ अय्यवदी [ १३६१ ]- शत्रुओंको दमकर देनेवाला ।

इत प्रकार इन्द्रके गुण इत अव्याप्यमें हैं । अब उसके लिये और भी ओ कुछ बहा है, जसे देवों—

१ सोमाः त्या मद्भुत् [ १३५४ ]- हे इन्द्र ! तोमरस तुझे क्षान्त देयें ।

२ हे आद्रिय ! राघ घृणुष्व [ १३५४ ]- हे वयपारी इन्द्र ! हमें पन दे ।

३ महान्द्रिय अवज्रति [ १३५५ ]- मानते द्वेष करनेवालोंका मरण कर ।

४ हे इन्द्र ! महान् अस्ति, त्य प्रति कश्चन नति [ १३५५ ]- हे इन्द्र ! तू महान् है । तेरे समान दूसरा कोई नहीं है ।

५ अराघस - पर्णान् पद्मानि पापस्व [ १३५५ ]- शत्रु न देनेवाले लोगोंको पंरोंके कुशल डाल । उन्हें कष्ट पहुँचा ।

६ हे इन्द्र ! त्व सुतानां भसुतानां रशिये [ १३५६ ]- हे इन्द्र ! तू रस निकाले गये और न निकाले गये सोमोरस स्थानी है ।

७ हे सत्याय ! अम्यत् चित्त् मा विशसत [ १३६० ]- हे मित्रो ! तुम और कुछ न करो ।

८ मा रियण्यत [ १३६० ]- ब्यायें ही इन्द्रके फायोंमें अपनी शक्ति खर्च मत करो ।

९ तुते घृणण इत् स्वया स्तोत उक्था च सुहु

शंसन [ १३६० ]- सोमयागमें बलवान् उस इन्द्रके ही स्तोत्र कहे, और बारबार उसके स्तोत्र कहे।

१० वृषभं यथा अघमक्षिणं [ १३६१ ]- टक्कर मारनेवाले बैलके समान सामर्थ्यशाली इन्द्रकी स्तुति करो।

११ कण्वाः भृगवः घीर्ते चिभ्वं इत् आशरत [ १३६३ ] - कण्व और भृगुने ध्यान द्वारा उस सर्वव्यापक इन्द्रकी उपासना की।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन इस अध्यायमें है।

### अग्नि

१ अग्निः [ १३४७ ]- अग्रणी, आगे ले जानेवाला, नेता।

२ पायकः [ १३४७ ]- पवित्रता करनेवाला, मृदुता करनेवाला।

३ होता [ १३४७ ]- हवन करनेवाला।

४ कविः [ १३४८ ]- ज्ञानी, दूरदर्शी, अतीन्द्रियावंशशी।

५ तन्-न-पात् [ १३४८ ]- शरीरका पतन न होने देनेवाला।

६ मधुजिह्वः [ १३४९ ]- मधुर भावण करनेवाला।

७ द्विभ्यः [ १३४९ ]- सर्वोंको विद।

८ नराशंसः [ १३४९ ]- मनुष्यों द्वारा प्रशंसित।

९ मनुर्हितः [ १३५० ]- मनुष्यका हित करनेवाला, मनुष्योंके द्वारा स्थापित।

१० होता [ १३५० ]- हवन करनेवाला, बुलानेवाला।

११ प्रशस्तः [ १३७३ ]- प्रशंसित, स्तुत्य।

१२ दूरेदम् [ १३७३ ]- दूरसे दीखनेवाला।

१३ गृहपतिः [ १३७३ ]- गृहस्थ, घरका स्वामी।

१४ अघव्युः [ १३७३ ]- घमतिशाल, गति करनेवाला।

१५ सुप्रतिचक्षः [ १३७४ ]- जलपन दर्शनीय।

१६ यधिष्ठः [ १३७५ ]- तरण, मीत्रयान।

इन गुणवर्णनोंके अलावा और भी वर्णन इस अध्यायमें हैं—

१ हे अग्ने ! देवान् आ यह [ १३४७ ]- हे अग्ने ! देवोंकी बुलाकर ला।

२ यक्षि [ १३४७ ]- यजन कर।

३ सुखतमे रथे देवान् आ यह [ १३५० ]- उत्तम सुखदायक रथमें देवोंको यहां बुलाकर ला। शरीरही सुखदायक रथ है। जितने देव विप्रथमें हैं, वे सभी देव अंतर्हृत्में इस देहमें हैं। अग्नि अर्थात् उष्णताके रहनेतक सब देवोंका

निवास इस शरीरमें होता है। देहके ठण्डे होनेपर सब देव शरीर छोड़ जाते हैं। तब " अत्यन्त सुखदायक रथमें देवोंकी यहां ला " इसका अर्थ है कि " शरीररहपी रथमें ला "।

४ यः दमे दक्षाय्यः नित्यः आस [ १३७४ ]- यह अग्नि प्रत्येक स्थानमें बल बढ़ानेवाला होकर हमेशा रहता है। ( दक्षाय्यः- बल बढ़ानेवाला )

५ अघसे घस्यः अस्ते न्युष्वान् [ १३७४ ]- संरक्षणके लिए इसे बहुदेव प्रत्येक स्थानमें रखते हैं। अग्निके रहते तक ही देहमें देवोंका निवास रहता है। यह सभीके अनुभवमें आ सकता है।

### देवोंका दर्शन

अनेक देवोंके नाम इस अध्यायमें आए हैं—

१ तत् मित्रः अर्यमा भगः सविता सुधाति [ १३५१ ] - उन पनोंको मित्र अर्यमा, भग और सविता हमारी ओर प्रेरित करें।

२ सु दानवः ! प्र नु यामन् सः क्षयः सु-प्रावीः अस्तु [ १३५२ ]- हे उत्तम वात देनेवाले देवों ! तुम्हारा आगमन होने पर तुम्हारा यज्ञमें निवास हमारा उत्तम संरक्षण करनेवाला होवे।

३ ये नः अंष्टः अति पिप्रति [ १३५२ ]- जो तुम हमें छोड़ते दूर करते हो।

४ उत ये आदितिः अ-दृग्घस्य प्रतस्य स्वराजः महः राजानः ईशते [ १३५३ ]- और वे देव तथा देव-माता अदिति सब मिलकर न वधाये जानेवाले व्रतके समष्ट हैं। वे महान् राजा और सबके ईश्वर हैं।

५ हे सोम ! स्वादुः मिवाय, भगाय, पूषे इन्द्राय प्र धन्व [ १३६७ ]- हे सोम ! पू भोडा होकर मित्र, भग, पूषा और इन्द्रकी ओर जा।

इसप्रकार अनेक देवोंके नाम इस अध्यायमें हैं। कितने ही देव धन देते हैं। कितने ही संरक्षण करते हैं। कितने ही देव सापकोंको धारणें दूर करते हैं। कितने ही सब संसार पर शासन करते हैं। यतमें सब देवोंको सोचकर विद्या जाता है।

### सोम

१ जायुषिः अतं मतीनां चिप्रः सोमः पुनानः चमूषु आसद्व [ १३५७ ]- जाग्रत रहनेवाला, तत्त्व स्तुतियोंका हाता यह सोम छपनेके बाद कलामें जाता है।

बलशाली तोम भरकर रखते हैं। यह तोम ( जासृष्टिः ) जागता रहता है, अर्थात् इसके पीनेके बाद इतना उत्साह बढता है कि उसके पीनेवालेको भालस्य गही जाता।

२ याज्ञसातये प्र घन्त् [ १३६४ ]- अन्न बाल करनेके लिए घृ आगे हो। सोमरस एक अन्न है। उसे पीनेके लिए देना एक प्रकारसे अन्न बाल ही है।

३ सश्रणिः घृत्राणि परि [ १३६४ ]- साहस करने-वाला भीरु शत्रुओं पर चढता जवा जाता है, उसीप्रकार "दिप्यः तदर्थं ईरसे" देव करते रहनेवाले शत्रुओंको मारनेके लिए आगे जाता है। सोमरस पीकर उत्साहित हुए हुए भीरु शत्रुओं पर चढते बले जते हैं।

४ हे सोम ! महे अर्थ-राज्ये खंमदानमसि [ १३६६ ]- हे सोम ! महान् आर्थ राज्योंमें हम सगठितरूपसे आनवित होकर रहें।

५ हे सोम ! शुक्रः त्रिव्यः पीयूषः सः अमृताय महे क्षायप प्य अर्पे [ १३६८ ]- हे सोम ! तू तेजस्वी, बलवान् और स्वर्गमें उत्पन्न हुआ तूआ अमृतरूपी रस है। ऐसा तू भगवत होनेके लिए तथा बडे बडे निषात स्थान प्राप्त करनेके लिए आगे होकर प्रगति कर।

६ हे सोम ! कदरे दक्षाय सुतस्य ते इन्द्रः पेयात्, विश्वे च देवाः [ १३६९ ]- हे सोम ! कर्मोंऔर बलप्राप्त करनेके लिए तेरा रस इन्द्र और सब देवोंके देव धीयें।

७ स्वर्गस्य रदमस्यः इव, ग्रापयित्वाः भस्करासः प्रसुत आशयः सर्गासः तव तन्तुं साकं ईरते, इन्द्रात् क्वंते किंचन घाम न पवने [ १३७० ]- सूर्यको किरणोंके समान फैलनेवाले और आनन्द देनेवाले सोमरस फँकी हुई छलबोते नीचे गिरते हैं। वे इन्द्रके सिखाय और कोई स्थान परन्व नहीं करते।

इसप्रकार सोमरस इस अध्यायमें वर्णित है। यह सोम उत्साह बढानेवाला, आलस्य कम करनेवाला, अन्नके समान उपयोगमें आनेवाला, शत्रुओंको डर करनेवाला, महान् शत्रुओंमें संगठित होकर रहनेकी व्यवस्था करनेवाला, कर्मसाक्षि और बल बढानेवाला है।

### सोम रक्षण करता है

१ सोमः आयः [ १३५८ ]- सोमहमारा रक्षण करता है। सोमते ओ उत्साह बढता है, उत्तले बीरता बढती है, फिर बीरतासे रक्षा होती है।

२ प्रियसासः ऊती [ १३५८ ]- बिय लगनेवाले ये सोमके रस हमारी रक्षा करनेवाले हैं।

३ धर्षिता धर्षनः मीढ्यान् सोमः नः ज्योतिषा अभि आयिस्व [ १३५९ ]- स्वर्धन करनेवाला, बढानेवाला, कामनाओंकी तुष्टि करनेवाला यह सोम अपने तेजसे हमारी रक्षा करे। बल बढानेकी शक्ति नितके पास है, यह संरक्षण कर सकता है।

### सोम धन देता है

१ खीमः कारिणे न, धनं प्र यंसस्व [ १३५८ ]- कारीगरको, धन करनेवालोंकी जैते धन दिमा जाता है, उसी प्रकार यह सोम स्फूर्ति बढानेवाला होनेके कारण पीनेसे स्फूर्ति बढाता है, इस कारण बहुत सारा काम करके धन प्राप्त किया जा सकता है।

### वैदिक-स्तोत्र

वैदिक स्तोत्रोंका यहस्य इस अध्यायमें विम्न है। बहु ध्यान-पूर्वक देखने योग्य है—

१ ते मधुमत्समाः शिः स्तोमासः उदीरते, सत्रा-जितः धनसा अक्षितोत्सवः चाज्ञपन्तः रथाः इव [ १३६९ ]- उन अत्यन्त मीडे स्तोत्रोंका उन्मत्तारण किया जाता है। वे स्तोत्र शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाले, धन देनेवाले, अनाय सरलब करनेवाले, युद्धमें जानेवाले रथके समान विजय देनेवाले हैं।

वैदिक स्तोत्रोंका यह वर्णन बिलकुल ठीक है। इन्द्र और सोमके स्तोत्र शीघ्र और पराक्रम बढानेकी शक्ति-वाले हैं। अग्निके स्तोत्र शान बढानेवाले हैं। अथ देवोंके स्तोत्र भी इन्हींप्रकार विजयका मार्ग दिखाते हैं। मन्त्रमें वर्णित वेद्यथाभिके गुण उपासकोंको अपने मन्दर लाने चाहिए। यह विषयका निश्चय मार्ग है।

### सुभाषित

१ सुसमिदाः हविष्यते देवान् आ यह [ १३५७ ]-प्रदीप्त होकर पत्त करनेवाले देवोंको ले आ।

२ हे पायक ! यक्षि [ १३५७ ]- हे पवित्र करनेवाले देवों ! मत करो।

३ हे कवे ! तन्व-न-पात् [ १३५८ ]- हे तानो

अने । तू शरीरका पतन नहीं होने देता । शरीरमें जबतक गर्मी रहती है, तबतक मृत्यु नहीं होती ।

४ अथ नः ऊतये भुमन्तं यथा देवेषु कृणुहि [ १३४८ ]- आज हमारे सरक्षणके लिए हमारे मधुर हवनसे होनेवाले यज्ञकी बेशकी ओर पहुँचा ।

५ धियं मधुजिह्वं नराशंसं उपह्वये [ १३४९ ]- प्रिय, मधुरभाषी लोगों द्वारा प्रशंसित उत अग्निको मैं अपने पास बुलाता हूँ ।

६ ईदितः सुखतमे रथे देवान् आवह [ १३५० ]- स्तुतिके बाद अत्यन्त सुख देनेवाले रथसे वेवोंको ले आ ।

७ मनु-हितः असि [ १३५० ]- तू मनुष्योंका हित करनेवाला है ।

८ हे सुदानवः । सक्षपः सु-प्राथीः अस्तु [ १३५२ ]- हे पतन वाग देनेवाले देवों ! तुम्हारा यहाँका निवास हमारा उत्तम रक्षण करनेवाला होवे ।

९ नः अंहः अति पिप्रति [ १३५२ ]- हे देवों ! हमें पाचोंसे दूर करो ।

१० ये अद्वेष्य इतस्य स्वराजः महः राजानः ईदते [ १३५३ ]- जो न बहनेवाले वस्तुके राजा और स्वयं महान् शासक हैं, वे देव सनीपर आसन करते हैं ।

११ हे अद्रिचः । राधः कृणुष्व [ १३५४ ]- हे बज्रघाती इन्द्र ! हमें ऐश्वर्य दे ।

१२ ब्रह्मद्विपः अचजाह [ १३५४ ]- मानसे द्वेष करनेवालों को मार ।

१३ हे इन्द्र ! महान् असि, त्वा प्रति कश्चन नहि [ १३५५ ]- हे इन्द्र ! तू महान् है, तेरे समान दूसरा कोई भी नहीं है ।

१४ अ-राचसः पणीन् पदा नि धापस्व [ १३५५ ]- बान न देनेवाले लालचियोंको परसे कुचल डाल ।

१५ हे इन्द्र ! त्वं जनानां राजा [ १३५६ ]- हे इन्द्र ! तू मनुष्योंका राजा है ।

१६ जाग्रुभिः कर्तं मतीनां धियः सोमः पुनानः [ १३५७ ]- सदा जाग्रत रहनेवाला, यज्ञमें स्तुतिधियों प्रशंसित यह जानो सोम छाना जाता है ।

१७ पुनानः उभे रोदसी वा अग्नाः [ १३५८ ]- सुख होनेवाला सोम धूलिकी और भूलीक कीर्णोंकी ही अपने तेजसे भर देता है ।

१८ सोमः आवः [ १३५८ ]- सोम हमारा रक्षण करता है ।

१९ कारिणे न, धनं प्र थंसत् [ १३५८ ]- यज्ञ करनेवालोंको जैसे धन मिलता है, वैसे ही हमें भी दे ।

२० वर्धिता वर्धनः पूषमानः मीढवान् सोमः नः ज्योतिषा अग्नि आवित् [ १३५९ ]- दूसरोंकी बढानेवाला, स्वयं भी बढनेवाला, स्वच्छ होनेवाला, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला सोम अपने तेजसे हमारी रक्षा करे ।

२१ यत्र पदशाः स्वर्चिन् नः पूर्वे पितरः गा अग्नि इण्णन् [ १३५९ ]- जित सोमके स्थानके पास पदोका अर्थ जाननेवाले, आत्मज्ञानी हमारे पूर्वज अपनी गायें लेजाते थे । गायें घरानेके लिए बहा ले जाते थे जहः सोमबस्ती उपती थी ।

२२ हे तस्त्रायः । अन्यन् मा चित् दिरांसत, मा रिपय्यत, मुते वृषणं इन्द्रं सत्त्वा स्तोत, उपश्या प्य मुहुः शंसत [ १३६० ]- हे मित्रों ! इन्द्रको छोड़कर और किसीको स्तुति मत करो । निरयंक अपनी शक्ति धरें मत करो । सोमयज्ञमें एक जगह बैठकर बलवान् इन्द्रकी ही स्तुति करो । इन्द्रके स्तौत्र बारबार कहो ।

२३ वृषभं यथा अचक्रिक्षणं, गां न जुषुं, चर्षणी-सहं, विद्विपिणं, संयमनं अश्वरंकरं मंहिष्ठं उपश्याधिर्न मुहुः शंसत [ १३६१ ]- बलके समान वृषभको टक्कर देनेवाले, बलके समान शीघ्रता करके वृषभको हरानेवाले, वृषभसे द्वेष करनेवाले, उपासकोंके द्वारा सेवा करने योग्य, निर्भय करनेवाले, महान् और वीरों तरहके ऐश्वर्य देनेवाले इन्द्रको बारबार स्तुति करो ।

२४ सजाजितः धनसा, अक्षितोतयः, वाजयन्तः रथाः इव गिरः उदीरते [ १३६२ ]- एक साथ वानुओंकी जीतनेवाले, पल देनेवाले, रक्षण करनेवाले, युद्धमें जानेवाले रथके समान स्तौत्र कहे जाते हैं ।

२५ कष्याः भृगवाः धीत चिष्वं इत् इन्द्रं आदात [ १३६३ ]- कष्य और भृगु स्थानके द्वारा सर्वव्यापक इन्द्रको प्राप्त हुए ।

२६ आपयः महयन्तः रसोमेभिः अस्वरन् [ १३६३ ]- उपासक इन्द्रके महान् गाते हुए स्तौत्र बोलने लगे ।

२७ सु वाजसातये प्रधन्व [ १३६४ ]- उत्तम रीतिसे आसन करनेके लिए तू आगे हो ।

२८ राक्षणिः सुधाणि परि [ १३६४ ]- साहस करनेवाला वीर शत्रुपर जैसा आक्रमण करता है, वसा ही तू कर ।

२९ त्रिप तरुणै ईरसे [ १३६४ ]- दानुओंको मार  
नके लिए आगे जाता है।

३० न ऋणया [ १३६४ ]- हमारे ऋण उतारनवाला  
तू है।

३१ महे अर्यराज्ये स मदासि [ १३६६ ]- महान्  
आय राममें रहकर हम आनन्दित होते ह।

३२ स्वाहु प्र घन्य [ १३६७ ]- तू मोठा बनकर भागे  
बल।

३३ नुक् दिश्य पीयूष स अमृताय महे क्षयाय  
धये [ १३६८ ]- तेजस्वी स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हुआ अमृतके  
समान यह सोम अमर होनके लिए और महान् स्थान प्राप्त  
करनेके लिए छनता है।

३४ सूर्यस्य रदमय इव द्राघयितय मत्सरास  
प्रसृत आशय सर्गास तत तन्तु साक ईरते, इन्द्रात्  
ज्ञाने किंचन धाम न पवत [ १३७० ]- सूर्यकी किरणोंके  
समान प्रस्था करनेवाले और आनन्द देनेवाले शुद्ध किए  
गए और बतनमें रख गए सोमरस फली हुई छलनीमेंसे एक  
बम नीचे रस हुए बतनमें गिरते ह। वे इन्द्रके सिपाय और  
कोई स्थान पताच नहीं करते।

३५ अय गो पूदिता अकमीत् [ १३७६ ]- यह सूर्य  
अपन तेजसे आकाशमें उबक हो गया।

३६ मदिपः दिव इयव्यत् [ १३७७ ]- यह महान्  
सूर्य सुलोकको प्रशंसित करता है।

३७ यस्तो त्रिशद् धाम युमि विराजति [ १३७८ ]  
- बिनकी तीस पशोतक यह विषय प्रशंसित होता ह।

### उपमा

१ कारिणे न [ १३५८ ]- कारीगर, कवि स्तोता  
इत्यादिकोंको लेते पन मिलता है, उसीप्रकार ( घन प्र  
यसत् ) पन हमें मिले।

२ वाजयन्त रथा इव [ १३६२ ]- युद्धमें जानबले  
रथके समान विजय देनेवाले ( स्तोमास सत्राजित )  
स्तोत्र दानुओंको भीतनवाले ह।

३ कण्वा इव [ १३६३ ]- कण्वाके समान ( भृगवः  
विश्व इत् इन्द्र आशत ) भृगु सत्रस्थापक ईश्वरको प्राप्त  
करते ह।

४ सूर्या इव [ १३६३ ]- सूर्यके समान यह ईश्वर उन्हें  
विसाई दिया।

५ सूर्यस्य रदमय इव [ १३७० ]- सूर्यकी किरणोंके  
समान ( मत्सरास परि इरते ) सोमरस नीचे आत ह।

६ अत्क न [ १३७२ ]- कवचके समान ( निक परि  
अव्यत ) ब्रूयका आवरण - मिथुन तीम पर पड गया है।  
इत प्रकार इत अध्यायमें उपमायें आई ह।

### एकादशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रसंख्या	ऋषिदेवता	ऋषि	देवता	छन्द
१३६७	१११११	मेधातिथि काण्व	माग्नी-सूचन- [ १ ] इन्द्र तमिष् अग्निर्वा, [ २ ] तनुत्पात [ ३ ] नरातास [ ४ ] ब्रह्मा	गायत्री
१३६८	१११३१	मेधातिथि काण्व	'	'
१३६९	१११३१	मेधातिथि काण्व	'	'
१३७०	११३३३	मेधातिथि काण्व	'	'
१३७१	७३६५४	वसिष्ठो मनाषद्वि	मादित्य	"
१३७२	७३६५५	वसिष्ठो मनाषद्वि	'	"



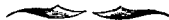
संज्ञासंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
१३५३	७।६६।६	वसिष्ठो मंत्रावरणिः <sup>१</sup>	"	"
१३५४	८।६४।१	प्रभायः काण्वः	इन्द्र.	"
१३५५	८।६४।१	प्रभायः काण्वः	"	"
१३५६	८।६४।३	प्रभायः काण्वः	"	"

( २ )

१३५७	९।९७।३७	पराराजः शाक्यः	पवमानः सोमः	मिष्ट्यु
१३५८	९।९७।३८	पराराजः शाक्यः	"	"
१३५९	९।९७।३९	पराराजः शाक्यः	"	"
१३६०	८।१।१	प्रभायः घोरः काण्वः	इन्द्रः	प्रभायः—( विषमा बृहती, समा सतो बृहती )
१३६१	८।१।२	प्रभायः घोरः काण्वः	"	"
१३६२	८।३।१५	मेघ्यातिषिः काण्वः	"	"
१३६३	८।३।१६	मेघ्यातिषिः काण्वः	"	"
१३६४	९।११०।१	अदणत्त्रैबृष्णः प्रसदस्युः वीरकुस्यः	पवमानः सोमः	पिपोतिका मय्या अनुष्टुप्
१३६५	९।११०।२	अदणत्त्रैबृष्णः प्रसदस्युः वीरकुस्यः	"	"
१३६६	९।११०।३	अदणत्त्रैबृष्णः प्रसदस्युः वीरकुस्यः	"	"
१३६७	९।१०९।१	अग्नयो धिष्या ऐदवरा.	"	त्रिषवा विशद्
१३६८	९।१०९।२	अग्नयो धिष्या ऐदवराः	"	"
१३६९	९।१०९।३	अग्नयो धिष्या ऐदवराः	"	"

( ३ )

१३७०	९।६९।६	हिरण्यस्तूप आंगिरसः	"	जगती
१३७१	९।६९।७	हिरण्यस्तूप आंगिरसः	"	"
१३७२	९।६९।४	हिरण्यस्तूप आंगिरसः	"	"
१३७३	७।१।१	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	अग्निः	विदाद्
१३७४	७।१।२	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
१३७५	७।१।३	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
१३७६	१०।१८९।१	सापराती	अरमा सुषो वा	गायत्री
१३७७	१०।१८९।२	सापराती	"	"
१३७८	१०।१८९।३	सापराती	"	"





[ २ ]

१३८३ अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वसो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥ १ ॥ ( ऋ ६।१६।४२ )

१३८४ अच्छा नो याह्ना वहामि प्रयांसि वीतये । आ देवान्सोमपीतये ॥२॥ ( ऋ. ६।१६।४४ )

१३८५ उदग्ने भारत धुमदजस्रेण दविद्युत् । शोचा वि भाद्यजर ॥ ३ ॥ २ (यी) ॥

[ धा० १७। उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ ६।१६।४५ )

१३८६ प्र सुन्वानायान्मसा मतां न वष्ट तद्रचः ।

अप श्वानमराधसश् हता मखं न भृशवः ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१०।१।२ )

१३८७ आ जामिरत्के अष्यत भुजे न पुत्र ओषयोः ।

सरज्जारो न योपर्णा वरो न योनिमासदम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।१।४ )

१३८८ स पीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्म रोदसी ।

हरिः पवित्रे अष्यत वैधा न योनिमासदम् ॥ ३ ॥ ३ (खै) ॥

[ धा० २। उ० २। स्व० ८ ] ( ऋ. ९।१०।१।५ )

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १३८३ ] हे (अग्ने देव) अनिदेव ! ( ये तव साधवः अश्वसः ) जो तेरे उत्तम और सुगील घोड़े ( आशवः अरं वहन्ति ) सीधतासे तुझे पहचानते हैं, उनको ( युक्ष्व हि ) तू अपने स्वयं जोड़ ॥ १ ॥

[ १३८४ ] हे अग्ने ! ( नः अच्छ याहि ) हमारे पास तू सीधे आ ( वीतये सोमपीतये ) अप्र भक्षणके बाद सोम पीनेके लिए ( प्रयांसि अग्नि ) हविल्य अग्नेके पास ( देवान् आ वह ) देवोंको ले आ ॥ २ ॥

[ १३८५ ] हे ( भारत अग्ने ) पीयण करनेवाले अग्ने ! ( उत शोच ) तू प्रज्वलित हो। हे ( अ-जर ) जरारहित ( दविद्युत् ) तेजस्वी और ( धुमत् ) प्रकाशमान् अग्ने ! ( अ-जक्षेण विभाहि ) कम न होनेवाले तेजसे प्रकाशित हो ॥ ३ ॥

[ १३८६ ] ( सुन्वानाय अन्धसः ) रत निकाले गए सोमके विषयमें ( तत् वचः ) उन प्रसिद्ध शब्दोंको ( मतां न वष्ट ) नोच मनुष्य न तुने । हे स्तुति करनेवालो । ( अ-राधसं श्वानं अप हत ) विषय करनेवाले कुत्तोंको मारो, ( अप श्वानं मखं न ) निरप्रकार भूगुने कुछ मखकी मारा ॥ १ ॥

[ १३८७ ] ( जामि ) भाईके समान सोम ( अत्के आ अष्यत ) छलनीसे छाना जाता है । ( ओषयो मुजे पुत्र न ) रक्षण करनेवाले माया पिताको भूजाओंमें जैसे पुत्र रहता है, उसीप्रकार यह ( योनिं आसदम् ) अपने कलशमें जानेके लिए ( सरत् ) मोधे विरता है ( जारः योपर्णा न ) जितप्रकार जार स्त्रीकी और जाता है, अथवा ( वरः न ) घर-पति-कन्याकी और जाता है उसीप्रकार सोमरस कलशकी और जाता है ॥ २ ॥

[ १३८८ ] ( दक्ष-साधनः सः धीरः ) बल बढ़ानेके साधनसे युक्त वह वीर सोम ( यः रोदसी वितस्तम् ) जितने धुलोके और पृथ्वीको अपने तेजसे भर दिया है । ( वैधाः न ) जितप्रकार यजमान अपने घर जाता है, उसीप्रकार यह सोम ( हरिः योनिं आसदम् ) हरे रगवाला हीकर कलशमें आया है, वह ( पवित्रे अष्यत ) छलनीसे छाना जाता है ॥ ३ ॥

१३८९ अ॒भ्रातृ॒ष्णो अ॒ना स्व॒मना॑पि॒रिन्द्र॑ ज॒तुषा॑ स॒नादा॑सि । यु॒धेदा॑पि॒स्वमि॑च्छ॒मे ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१।१।३ )

१३९० न की॑ रेव॒न्तस्स॒रुषाय॑ वि॒न्दस्ते॑ पी॒यन्ति॑ ते सु॒राश्वः॑ ।

यदा॑ कृ॒णापि॑ नद॒तुस्स॒मूह॑स्यादि॒त्पित॑ष॒ ह्यसे ॥ २ ॥ ४ ( पि )

[ धा० १५ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।१।१।४ )

१३९१ आ॒ त्वा स॒हस्र॑मा श॒शे यु॒क्ता रथे॑ हिर॒ण्यये॑ ।

म॒स्युजा॑ हर॒य इन्द्र॑ केशि॒ना ब॒हन्तु॑ सोम॒पीतये॑ ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।१४ )

१३९२ आ॒ त्वा रथे॑ हिर॒ण्यये॑ ह॒री म॒यूर॑श्रे॒ण्या ।

यि॒तिपृ॒ष्ठा व॒हता॑ म॒ध्या अ॒न्धसो॑ वि॒वक्ष॑ण॒स्य पी॑तये ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१।१५ )

१३९३ पि॒या त्व॒रे॒स्य मि॒र्षया॑ सु॒तस्य॑ पूर्॒वपा॑ इव ।

परि॑कृ॒तस्य॑ र॒सिन॑ इ॒यमा॑सु॒विश्व॑रु॒र्मदा॑म प॒त्यते ॥ ३ ॥ ५ ( प ) ॥

[ धा० १० । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१।१६ )

[ १३८९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( एवं जतुषा अ-भ्रातृष्णः ) तु जन्मने ही अनुग्रहित है। ( सनादा अ-ना ) होनेवाले नेतारहित ओर ( अनापिः असि ) भाईरहित है। जब ( आपित्वं इच्छामे ) तू भाईकी इच्छा करता है, तब ( युधा इत् ) युद्धसे हो यह चाहता है ॥ १ ॥

१ अ-भ्रातृष्णः— भाईरहित, अनुग्रहित ।

२ अ-ना— जिसपर निर्बन्धन रहनेवाला कोई नहीं ।

३ युधा इत्— युद्ध करके ही-अनुग्रहको हार करके ही उवाचकोंको अपना मित्र बनाता है ।

[ १३९० ] ( रेवन्तं ) केवल धन उसके पास है, इसीलिए किसी मनुष्यको ( सरुषाय न किः विन्दसे ) प्र अपना मित्र नहीं बनाता । ( सुराश्वः ते पीयन्ति ) शराव पीनेवाले नरितरु नुसे बुद्ध देने हैं । ( यदा नदतुं कृणापि ) जब ज्ञान प्राप्त करनेवालेको तू अपना मित्र बनाता है, तब ( समूहसि ) उसे उत्तम मार्ग पर चलता है । ( आपित्वं ) तब ( पिता इव ह्यसे ) पिताके समान तू उनके द्वारा पुकारा जाता है ॥ २ ॥

[ १३९१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( मस्य-युजाः येशिनः ) इसारेने स्वयं नृप जानेवाले, सुखर ब्यासवाले, ( हिरण्यये रथे युक्ताः ) सोनेके रथमें जोड़े गए ( सहस्रं शतं ह्यस्य ) हजारों घोड़ों पीछे ( सोम-पीतये तथा आ ह्यन्तु ) सोम पीनेके लिए तुझे यतके स्वल्पपर ले आवें ॥ १ ॥

[ १३९२ ] हे इन्द्र ! ( मध्याः विवक्षणस्य अन्धसः पीतये ) नीचे रहते दूधर तथा स्तुष्य सोमके पीनेके लिए ( हिरण्यये रथे ) हुनहरे रथमें ( मयूर-श्रेण्या शितपृष्ठा हरी ) मोरके तमाम रंगवाले, सफेद पीठवाले दो घोड़े ( त्वा आवाहतां ) तुझे यतमें बुद्धवानें ॥ २ ॥

[ १३९३ ] हे ( विश्वेणः ) प्रसन्नकोय इन्द्र ! ( परिकृतस्य रसिनः अस्य सुतस्य ) स्वच्छ किए गए रस युक्त इस सोमरसका ( पिय ) तू निःतन्ध धान कर। तू ( पूर्व-पाः इव ) प्रथम पीनेवाला है। ( ध्याम् ) इयं आहुतिः ) सुखर यह सोमरस ( मदाय पत्यते ) आत्मर देनेके योग्य है ॥ ३ ॥

१३९४ आ साता परि पिञ्चताश्च न स्तोममस्तुरं रजस्तुरम् । वनप्रथमुदप्रुतम् ॥ १ ॥

( ऋ ९।१०।१७ )

१३९५ सहस्रधारं धूपभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।

ऋतन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतेन बृहत्

॥ २ ॥ ६ ( या ) ॥

[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।१०।१८ )

॥ इति द्वितीय खण्ड ॥ २ ॥

[ ३ ]

१३९६ अग्निधृत्राणि जङ्घनद्रुविणस्पुर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १ ॥ ( ऋ ६।६।१४ )

१३९७ गर्भं मातुः पितुः पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सोदन्नुतस्य योनिमा ॥ २ ॥ ( ऋ ६।६।१९ )

१३९८ मङ्ग प्रजावदा भर जातवेदा विचर्यणे । अग्ने यदीदयद्वि ॥ ३ ॥ ७ ( व ) ॥

[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ३।६।३६ )

१३९९ अस्य प्रेया हेमना पूयमानो देवो देवभिः समपुक्त रसम् ।

सुतः पविर्ष पयैति रेभन्मितेव सद्य पशुमन्वि हाता

॥ १ ॥ ( ऋ ९।९।१ )

[ १३९४ ] हे ऋत्विजो ! ( अथ न ) घोड़ेके समान ( अस्तुर स्तोम ) जलोको वेगसे बहानेवाने प्रथमनीय ( रजस्तुरं वनप्रथं ) तेजको तेजीसे फैलानेवाले और पानीके समान गति करनेवाले ( उदप्रुतं आसोत ) पानीमें तरनेवाले सोमका रस निकालो और ( परि पिञ्चत ) उसे पानीमें मिलाओ ॥ १ ॥

[ १३९५ ] ( सहस्र-धारं धूपभं ) हजारों धाराओंसे छाना जानेवाला, बलबन्धक ( पयो-दुहं प्रियं ) धूपमें मिलावे गए प्रिय सोमको ( देवाय जन्मने ) देवोंको देनेके लिए गुद्ध करो । ( देयः अतं ) विष्य और यज्ञरूप ( बृहत् ऋतजातः ) महान् और यज्ञमें लगा गया ( यः राजा ) जो राजा सोम है, वह ( ऋतेन वि वावृधे ) अलसे यज्ञया जाता है ॥ २ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १३९६ ] ( समिद्धः शुक्र ) प्रखलित और तेजस्वी ( आहुतः विपन्यया ) आहुति दिया गया और स्तुति किया गया ऐसा वह ( अग्निस्पुः अग्निः ) वन देनेवाला अग्नि ( धृत्राणि जघनत् ) सद्गुणोंको मारता है ॥ १ ॥

[ १३९७ ] ( मातुः गर्भे ) मातृभूमिमें ( अ-क्षरे ) अविनाशो यज्ञवेदीके स्थान पर ( विदिद्युतानः ) विद्वेष प्रवीण हुआ हुआ ( पितुः पिता ) धूलोका रसक अग्नि ( अन्नुतस्य योनिं ) यज्ञकी वेदीमें ( आसीदत् ) बैठा हुआ है ॥ २ ॥

[ १३९८ ] हे ( जातवेदः विचर्यणे अग्ने ) सवेत, विद्वेष द्रष्टा अग्ने ! ( प्रजावत् प्रस्य आ भर ) पुत्रपौत्रोंसे युक्त अथ हर्ष से । ( यत् विदि दीदयत् ) जो धूलोके देवताओंको दिया जाता है ॥ ३ ॥

[ १३९९ ] ( अस्य प्रेया ) इस सोमका घेरना देनेवाला और ( हेमना पूयमानो देव ) सोमसे पवित्र होनेवाला तेजस्वी ( रस देवभिः समपुक्त ) रस देवोंसे मिलना है । ( सुतः रेभन् पविर्ष पयैति ) सोमरस क्षय करता हुआ छन्दो द्वारा छगता है । ( हाता मित्वा पशुमन्वि सद्य इय ) जिसप्रकार हवन करनेवाला यज्ञमान स्वयंके द्वारा बनावे गए पशुपुत्रा घरोंमें जाता है, उसीप्रकार सोम बलवधमें जाता है ॥ १ ॥

- १४०० मद्रा वस्त्रा समन्याश्च वसानो मदान्कविनिवचनानि श्वसन् ।  
 आ वच्यस्य चम्वाः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देवयीतौ ॥ २ ॥ ( ऋ. १९७१२ )
- १४०१ समु प्रियां सृज्यते सानो अण्ये यशस्वरो यशसा श्रुतौ जस्मे ।  
 अभि श्वर घन्था पूयमानो पूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ८ ( रि ) ॥  
 [ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १९७३३ )
- १४०२ एतो न्यन्द्रस्तवाम शुद्धश्शुद्धेन साम्ना ।  
 शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वास्तश्शुद्धैराशीर्वाग्ममत्तु ॥ १ ॥ ( ऋ. ८१९१७ )
- १४०३ इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धामिरुतिभिः ।  
 शुद्धो रथि नि धारय शुद्धो ममाद्धि सोम्य ॥ २ ॥ ( ऋ. ८१९१८ )
- १४०४ इन्द्र शुद्धो हि ना रथिश्शुद्धो रत्नानि दाशुपे ।  
 शुद्धो वृथाणि जिप्तसे शुद्धो वाजश्च सिपाससि ॥ ३ ॥ ९ ( री ) ॥  
 [ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८१९१९ )  
 ॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ १४०० ] ( मद्रा समन्या घन्था वसानः ) कल्याणकारक युद्धके घोष्य एते वरत्रोको - त्रैत्रोको पाप्य करनेवाला ( महान् कविः ) महान् शानो ( नि वचनानि श्वसन् ) स्तुति और स्तोत्रोंका कहनेवाला ( विचक्षणः जागृविः ) शान्ति और जाग्रत रहनेवाला यह सोम है, हे सोम ! वह तू ( पूयमानः ) पवित्र होकर ( देवयीतौ ) यज्ञमें ( चम्बोः वा वच्यस्य ) यज्ञमें प्रविष्ट हो ॥ २ ॥

[ १४०१ ] ( यशसा यशस्वरः ) यशसी होनेवालोंमें श्रेष्ठ यशस्वी ( श्रुतः प्रियः ) भूमिपर उत्पन्न होकर सबको प्यारा लगनेवाला ( सानो अण्ये ) मालोंकी श्रेष्ठ इतनीमें ( जले सं सृज्यते ) हमारे लिए श्रद्धाविक्रमि द्वारा छाना जाता है। ( पूयमानः ) पवित्र होनेवाला तू भी ( चम्वा कविश्चन्द्र ) शान्ति यज्ञमें दाव्य करते हुए जा। ( पूय नः स्वस्तिभिः सदा पात ) तुम कल्याण करनेवाले सायनेसे हमारे श्रुतेरा रक्षा करो ॥ ३ ॥

[ १४०२ ] ( तु पतत उ ) तुम गीर्ध भाओ । ( शुद्धेन सामना ) हम युद्ध हाकगायनेसे और ( शुद्धैः उक्थैः ) युद्ध यंत्रोंसे ( शुद्धैः स्तवामः ) युद्ध इन्द्रकी स्तुति करते हैं। ( वावृध्वीसं ) सामर्थ्यसे बृद्धिकी प्राप्ति होनेवाले इन्द्रकी ( शुद्धैः आशीर्वात् ) शुद्ध और पवित्र होनेके साथ मिला हुआ सोम ( ममत्तु ) प्राप्त करे ॥ १ ॥

[ १४०३ ] हे इन्द्र ! तू ( शुद्धः नः आगहि ) युद्ध रहनेवाले हमारे पास आ ( शुद्धाभिः जतिभिः शुद्धः ) युद्ध रहनेके साथनोंसे युक्त, युद्ध पवित्र तू ( शुद्धः रथि नि धारय ) युद्ध रहकर हमें पत्र दे। हे ( सोम्य ) सोम यज्ञमें पाने इन्द्र ! ( शुद्धः ममाद्धि ) तू युद्ध होकर हमें आनन्द प्राप्ति करा ॥ २ ॥

[ १४०४ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( शुद्धः हि नः रथि ) तू युद्ध है इसलिए तू हमें पत्र दे। ( शुद्धः वाशुपे रत्नानि ) तू युद्ध रहकर वाताकी रत्न दे। ( शुद्धः वृथाणि जिप्तसे ) तू युद्ध रहकर तनुमोंको नारता है। ( शुद्धः वाजं सिपाससि ) तू युद्ध रहकर जत्र देता है। ॥ ३ ॥

॥ यदा तीक्ष्णं खण्डं समात्तं हुम्न ॥

[ ४ ]

१४०५ अग्ने स्तोमं मनामहे सिद्धमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।१।३।२ )

१४०६ अग्निर्जुपत नो गिरो होता यो माजुषेष्वा । स यक्षद्वैव्यं जनम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।१।३।३ )

१४०७ त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि सन्वते ॥ ३ ॥ १० ( रि ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ५।१।३।४ )

१४०८ अभि त्रिपृष्ठं चूर्णं वयोधामङ्गाधिगमवावशंत वाणीः ।

बना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नभा दयते वार्याणि ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।१०।२ )

१४०९ शूरग्रामाः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्य सनिता धनानि ।

तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वपादः साह्वान्पृतनासु धश्रून् ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।१०।३ )

१४१० उरुगव्यूतिरभयानि कृष्णन्तसमीचीनि आ पवस्वा पुरन्धी ।

अपः सिपासन्नुपसः स्वऽर्शाः सं चिक्रदो महो असम्यं बाजान् ॥ ३ ॥ ११ ( ५ ) ॥

[ धा० ३० । उ० १ । स्व० ६ ] ( ऋ. ५।१०।४ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १४०५ ] ( द्रविणस्यवः ) धनकी इच्छा करनेवाले ह्य ( दिवि-स्पृशः ) देवस्य अग्नेः ) आकाशमें व्याप्त होनेवाले तेजस्वी अग्निके ( सिद्धं स्तोमं ) सिद्धि देनेवाले स्तोत्रकी ( अद्य ) आज ( मनामहे ) करते हैं ॥ १ ॥

[ १४०६ ] ( होता यः अग्निः ) हवन करनेवाला जो अग्नि ( माजुषेष्वा ) मनुष्योंके घरमें रहता है । ( सः नः गिरः जुपत ) यह हमारी स्तुतियोंकी सुने, और ( देव्यं जनं यक्षत् ) विष्य जनोंको प्रणय करे ॥ २ ॥

[ १४०७ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( जुष्टः वरेण्यः होता त्वं ) प्रसन्न, श्रेष्ठ और हवन करनेवाला तू ( स-प्रथाः असि ) सवते श्रेष्ठ है । सब पनमान ( त्वया ) तेरे द्वारा ही ( यज्ञं वितन्वते ) यज्ञका अनुष्ठान करते हैं ॥ ३ ॥

[ १४०८ ] ( त्रिपृष्ठं चूर्णं ) तीनों सवतोंमें रहनेवाले बलवान् ( वयोध्यां ) अन्न देनेवाले और ( अंगोविर्णं ) दाय करनेवाले सोमकी ( वाणीः ) अभ्यवावशान्त ) हमारी वाणियों स्तुति करती हैं ( वरुणः न ) वरुणके तमान ( धना धनानः ) कलमें मिला हुआ ( सिन्धुः रत्नधाः ) गमनशील और रत्न देनेवाला सोम ( वार्याणि दयते ) स्वोकार करने योग्य पद स्तुति करनेवालोंको देता है ॥ १ ॥

[ १४०९ ] हे सोम ! ( शूरग्रामः सर्ववीरः ) शूरोंके समूह और अनेक वीरोंमें युवत ( सहावान् जेता ) सामर्थ्यवान् और बिजयो ( धनानि सनिता ) धन देनेवाला ( तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा ) तीव्र शस्त्रपातमें रहनेवाला और धीप्रसति धनुष चलानेवाला ( समत्सु अशब्दः ) संधायमें असह्य ( पृतनासु धश्रून् स्वादान् ) युद्धमें शत्रुको हरातेवाला तू सोम ( पवस्य ) कलधर्में धनता जा ॥ २ ॥

[ १४१० ] हे सोम ! ( उद्य-गन्धूतिः ) विस्तीर्ण मार्गवाला ( अभयानि कृष्णन् ) निर्भय करनेवाला ( पुरन्धी समीचीने कुर्वन् ) धार्याणियोंको जोड़नेवाला ( आ पवस्य ) प्रकृता जा और ( अपः उपसः स्वः गाः सिपासन् ) क्षम, उपा सुनें, किरणें और मार्गोंका अपनी पुष्टिके लिए सेवन करता हुआ ( सं चिक्रदः ) तथा शय्य करता हुआ ( महः बाजान् ) बहुत ताप क्षम ( असम्यं ) हर्से दे ॥ ३ ॥

१४११ स्वभिन्द्र यद्वा असूयणीषी श्वसस्पतिः ।

त्वं वृषाणि इत्स्पयतीन्पेक इत्पुर्वुचुचर्षणीष्टतिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९।१५ )

१४१२ तस्य त्वा नूनमसुर प्रचेतस्य राघो भागमिवेमहे ।

महीच कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अवनवन् ॥ २ ॥ १२ ( त ) ॥

[ भा० १४ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।९।१६ )

१४१३ यजिष्ठं त्वा वचुमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यत्स्य सुकृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९।१६ )

१४१४ अर्षा नपातय सुभगय सुदीदितिमिमिषु श्रेष्ठोचिषम् ।

स नो मिश्रस्य वरुणस्य सा अपामा सुभ्रं यक्षते दिनि ॥ २ ॥ १३ ( वा ) ॥

[ भा० १४ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।९।१७ )

॥ इति चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१४१५ यमग्ने पृस्तु मर्त्यमवा वाजेषु ये जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषा ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२।७।० )

१४१६ न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रयाप्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२।७।८ )

[ १४११ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( शश्वत्. पतिः ऋषीषी ) बलका त्वागो वीर सोयती इवञ्च करने-वाला तथा ( यदाः अस्ति ) यशस्वी है । ( अनुस. चर्षणी-ष्टतिः त्वं ) अपराजित वीर सब मनुष्योंका आपार हू ( एक इत् ) अकेला ही ( अमर्त्यमि वृषाणि ) बलवान् शत्रुओंको ( पुष्ट इति ) बहुत सहाय्ये पारता है ॥ १ ॥

[ १४१२ ] हे ( असुर इन्द्र ) बलवान् इन्द्र ! ( ते मर्त्यसं स्वाय ) जब आगले युक्त तेरे पाससे ( भागं इव ) वितासे गिताप्रकार घनका भाग भागते हैं, उत्तमकार ( राघः नूनं ईमहे ) हम घन मांगते हैं । ( कृत्तिः इय ) बड़े घोनेके समान ( ते मही शरणा ) तेरे विस्तृत स्थान हमें आश्रय देनेवाले हैं, ( ते सुम्ना ) तेरे उत्तम मन बनानेवाले बुद्ध ( नः प्राशनुचम् ) हमें प्राप्त हों ॥ २ ॥

[ १४१३ ] हे अग्ने ! ( देवत्रा देवं ) देवोंमें अधिक विष्णु ( होतारं अमर्त्यं ) हवन करनेवाले, अमर ( अस्य यत्स्य सुकृतम् ) इस यशको उत्तम रीतिले करनेवाले ( यजिष्ठं त्वा वचुमहे ) यशके कर्ता तू ही हम अभित करते हैं ॥ १ ॥

[ १४१४ ] ( अर्षा-न-पात ) अर्षाओं न गिरानेवाले ( सुभग सु-दीदिति ) उत्तम मायवान् वीर उत्तम वेदज्ञते तेजस्वी ( श्रेष्ठ-ओचिष अग्निः ) तथा श्रेष्ठ ज्वालामूर्ति युक्त अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं । ( सः नः ) वह हमें ( दिवि मिश्रस्य वरुणस्य ) यशस्वान्तर्न रहनेवाले मिश्र वीर वरुणके द्वारा मिलनेवाले ( सुभ्रं यक्षते ) बुद्ध देवे, ( सः अर्षा ) वह हमें अलौकिक मिलनेवाले बुद्ध देवे ॥ २ ॥

॥ यदां चौथा खण्ड समाप्त हुवा ॥

[ ५ ] पञ्चमः सर्गः ।

[ १४१५ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( पृस्तु ये मर्त्ये अवा ) संग्राममें जिस मनुष्यकी तू रक्षा करता है, ( वाजेषु ये जुनाः ) स्वर्गमें जिस पुष्टको तू श्रेया देता है ( सः ) वह ( शश्वतीः इषाः यन्ता ) हमेशा अन्न प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[ १४१६ ] हे ( सहन्त्य ) शत्रुओंको हटानेवाले अग्ने ! ( अस्य कयस्य पर्येता न कि चित् ) इस तेरे भक्तका पराजय करनेवाला कोई भी नहीं, ( वाजो अस्ति श्रयाप्यः ) यशस्वी बल प्रसिद्ध है ॥ २ ॥



- १४१७ स वाजं विश्वर्षणिरर्वाङ्गिरस्तु तरुवा । विप्रैभिरस्तु सनिता ॥ ३ ॥ १४ ( डा ) ॥  
[ धा० १८ । उ० २ । ए० २ ] ( ऋ. १।२७।९ )
- १४१८ साकमुधो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुवीः ।  
हरिः पर्यद्रवजाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अरयो न वाजी ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२३।१ )
- १४१९ सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्ने पुरुवारो अङ्गिः ।  
मयो न योषामभिः निष्कृतं यन्तसं गच्छते कलश उल्लियाभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२३।२ )
- १४२० उत प्र पिप्प ऊषरध्न्याषा हन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।  
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निकैः ॥ ३ ॥ १५ ( घृ ) ॥  
[ धा ३० । उ० नास्ति । ए० ६ ] ( ऋ. १।२३।३ )
- १४२१ पिषा सुतस्य रसिनो मरस्वा न हन्द्र गोमतः ।  
आपिनो योधि सधमाधे वृषेऽस्मात् अवन्तु ते धियः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।१ )

[ १४१७ ] ( विश्व-चर्षणिः सः ) सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला यह अग्नि ( अर्वाङ्गिः वाजं तरुवा अस्तु ) धोड़के द्वारा पृथक् करानेवाला होके, ( विप्रैभिः सनिता अस्तु ) तथा शानियों द्वारा प्रसन्न किया गया वह अग्नि होने फल देनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ १४१८ ] ( साकं उक्षः स्वसारः ) एक साथ कार्य करनेवाली वे अग्नियों ( मर्जयन्त ) सोमरसको गूढ़ करती हैं । ( दश धीतयः ) वे दशों अग्नियों ( धीरस्य धनुवीः ) इत धीरपारी सोममें हलचल पैदा करती हैं । वायमें ( हरिः सूर्यस्य जा. पर्यद्रवत् ) यह हरे रंगका सोम सूर्यको विनाशित छाना जाता है । ( वाजी न अत्यः ) धोड़के समान यह घबल सोम ( द्रोणं ननक्षे ) कलशमें जाता है ॥ १ ॥

[ १४१९ ] ( वायशानः ) श्वेता जितकी इच्छा करते हैं ( पुक्ष्वाः ) अनेक जिते प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं ऐसा यह ( वृषा ) बलवान् सोम ( अङ्गिः सं दधन्ने ) पानीके साथ मिलाया जाता है, ( मातृभिः शिशुः न ) माताते जैसे पुत्र मिलाया जाता है, अथवा ( मयो योषां न ) पुरुष जवान स्त्रीसे जैसे मिलता है उसीप्रकार सोम पानीमें मिलाया जाता है । ( निष्कृतं अमियन् ) अपने संस्कार किये जानेवाले स्थान पर जानेके लिए ( कलशे ) कलशमें ( उल्लियाभिः सं गच्छते ) गणके रूपके साथ सोमरस मिलाया जाता है ॥ २ ॥

[ १४२० ] ( उत अच्ययाः ऊषः प्रपिप्ये ) और गायके बुधाशयको यह सोम अधिक पूर्ण करता है । ( सु-मेधाः हन्दुः ) उत्तम बुद्धिमान् यह सोम ( धाराभिः सचते ) धाराअसि मिलाया जाता है । ( गावः चमूषु मूर्धानं ) गायें बलवान् रहनेवाले श्वेत सोमको ( निकैः वसुभिः न ) जिसप्रकार लोग स्वच्छ कप धरेंति अपने आपको आच्छादित करते हैं, उसीप्रकार ( पयसा यभि श्रीणन्ति ) अपने रूपसे आच्छादित करती हैं ॥ ३ ॥

[ १४२१ ] हे ( हन्द्र ) हन्द्र । ( गोमतः नः रसिनः सुतस्य ) गायके रूपसे पुरुष, हमारे द्वारा निकोने गए सोमरसको ( पिय, मरस्व ) पी और मानवित हो । ( सधमाधेः आपिः नः वृषे योधि ) एक जगह बैठकर पीनेके समय आसि समान होने भ्रमण है, घृ यह जान । ( ते धियः नहमात् अजन्तु ) तेरी बुद्धियां हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

१४२२ भूयाम ते सुमती वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।

असां चित्राभिरवतादमिष्टिमिरा नः सुस्रेषु यामय ॥ २ ॥ १६ ( रु ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।११२ )

१४२३ प्रिरस्मै सप्त धेनवो द्रुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे ध्योगनि ।

चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे पटवैरवर्षत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७०।१ )

१४२४ स मधुमाणो अमृतस्य चारुण उमे द्यावा काण्येना वि श्रथथे ।

तेजिष्ठा अपो मध्वना परि ष्यत यदी देवस्य श्वसा सदा विदुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७०।२ )

१४२५ वे अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो अनुपी उमे अनु ।

येभिर्नुम्णा च देव्या च पुनर आदिद्राजानं मनना अगृण्यत ॥ ३ ॥ १७ ( वे ) ॥

[ धा० ३९ । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।७०।३ )

॥ इति पञ्चमः खण्ड ॥ ५ ॥

[ १४२२ ] हे इन्द्र ! ( वयं ते सुमती ) हम तेरे अनुकूल उत्तम नृदिमें रहकर ( वाजिनः भूयाम ) बलवान् होंगे । ( अभिमातये ) शत्रुओंके लिए ( नः मा स्त. ) हमारा नाश न कर । अग्नि ( अभिष्टिभिः चित्राभिः [ ऊतिभिः ] ) इच्छित और सामर्थ्य युक्त ( सखाभिः ) अस्मान् अवतात् ) हमारा तारक्षण कर और ( सुस्रेषु नः आयाय ) मुझ समृद्धियोंमें हमें बढ़ा ॥ २ ॥

[ १४२३ ] ( परमे ध्योगनि असां ) अन्तरिक्षमें रहनेवाले इस सोमको । ( त्रिः सप्त धेनव. ) इषकोस पायं ( सत्यां आशिरं द्रुदुह्रिरे ) उत्तम दूध देतो है । और यह सोम ( यत् ) जब ( श्रते अवर्षत ) पड़ोसि बरशा जाता है, तब ( अन्या चत्वारि भुवनानि ) अन्य चार प्रकारके पानोंको ( निर्णिजे चारूणि चक्रे ) छाननेमें सहायक होता है ॥ १ ॥

[ १४२४ ] ( चारुणः अमृतस्य ) उत्तम जलपी ( अदभ्यासः स्वः ) इच्छा करनेवाला यह सोम ( उमे द्यावा ) दोनों पृथु और पृथ्वीको ( काण्येना विद्राश्रथे ) स्तुतिस्त्रीके द्वारा जलसे परिपूर्ण करता है । ( तेजिष्ठा. अप. ) तेजस्वी पानीको ( मध्वना परिष्यत ) अपने महाबलसे ढक देता है ( यदि ) इत तपय ऋषिब्रह्म ( देवस्य सदा ) इत विषय सोमके स्वातन्त्र्य ( श्वसा विदुः ) यज्ञके लिए हविते युक्त करते है ॥ २ ॥

[ १४२५ ] ( अमृत्यव. अदाभ्यास. ) ममर और न इनमें पानेवाली ( अस्य ते केतवः ) इस सोमको वे किरमें ( उमे अनुपी सन्तु सन्तु ) दोनों प्राणियोंको सुरक्षित रखती हैं । ( येभिः ) जिन किरणोंसे सोम ( नुम्णा च देव्याश्च ) अपने सामर्थ्योंको और देवोंको वेने योग्य अन्नको ( पुनरते ) देवोंको और प्रेरित करता है । ( आत् इत् ) आद्यमें ( राजानं ) सोम राजाको ( मनना. अगृण्यत ) स्तुतियां प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

॥ यद्वां पाचर्वा खण्ड स्वमाप्त भुवा ॥

[ ६ ]

- १४२६ <sup>३ २</sup> अमि <sup>३ २</sup> वायु <sup>३ २</sup> वीत्यर्षा <sup>३ २</sup> गृणानो <sup>३ २</sup> दे <sup>३ २</sup> अमि <sup>३ २</sup> मित्रावरुणा <sup>३ २</sup> पूयमानः ।  
<sup>३ २</sup> अभी <sup>३ २</sup> नरं <sup>३ २</sup> धीजवनं <sup>३ २</sup> रथेष्टामभीन्द्रं <sup>३ २</sup> वृषणं <sup>३ २</sup> वज्रबाहुम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९।१९ )
- १४२७ <sup>३ २</sup> अमि <sup>३ २</sup> वज्रा <sup>३ २</sup> सुवसनान्यर्षामि <sup>३ २</sup> घेनुः <sup>३ २</sup> सुदुषाः <sup>३ २</sup> पूयमानः ।  
<sup>३ २</sup> अमि <sup>३ २</sup> चन्द्रा <sup>३ २</sup> मर्तवे <sup>३ २</sup> नो <sup>३ २</sup> हिरण्याभ्यश्चात्रयिनो <sup>३ २</sup> देव <sup>३ २</sup> सोम ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।१० )
- १४२८ <sup>३ २</sup> अभी <sup>३ २</sup> नो <sup>३ २</sup> अर्षे <sup>३ २</sup> दिव्या <sup>३ २</sup> वसुन्यमि <sup>३ २</sup> विश्वा <sup>३ २</sup> पार्थिवा <sup>३ २</sup> पूयमानः ।  
<sup>३ २</sup> अमि <sup>३ २</sup> येन <sup>३ २</sup> द्रविणमश्रवामाभ्यापर्यं <sup>३ २</sup> जमदग्निवज्रः ॥ ३ ॥ १८ ( खे ) ॥  
 [ धा० २१ । उ० २ । स्व० ७ ] ( ऋ. १।९।११ )
- १४२९ <sup>३ २</sup> यज्जायथा <sup>३ २</sup> अपूर्व्यं <sup>३ २</sup> मघवन्वृत्रहृत्पाय ।  
<sup>३ २</sup> तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तम्ना <sup>३ २</sup> उता <sup>३ २</sup> दिवम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।८९।६ )
- १४३० <sup>३ २</sup> तप्ते <sup>३ २</sup> यज्ञो <sup>३ २</sup> अजायत <sup>३ २</sup> तदर्कं <sup>३ २</sup> उत <sup>३ २</sup> हस्कुतिः ।  
<sup>३ २</sup> तद्विश्वमभिभूरसि <sup>३ २</sup> यज्जातं <sup>३ २</sup> यद्य <sup>३ २</sup> जन्वम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।८९।६ )

[ ६ ] पद्यः लण्डः ।

[ १४२६ ] हे सोम ! ( गृणानः ) स्तुति किए जानेके बाद तू ( वीति वायुं अमि अर्षे ) पीनेके लिए वायुके पास जा । ( पूयमानः मित्रावरुणो अमि ) साफ होनेके बाद मित्र और वरुणके पास जा । ( नरं-धी-जवनं ) सबके नेता और बुद्धिको देनेवाले ( रथेष्टां अमि ) रथमें बैठे हुए अश्विनोहुमारोंके पास जा, तथा ( वृषणं वज्र-बाहुं इन्द्रं अमि ) बलवान्, बरुने समान जिसको भुजायें हैं, ऐसे इन्द्रके पास भी जा ॥ १ ॥

[ १४२७ ] हे ( देव सोम ) दिव्य सोम ! तू हमें ( सु वसनानि वसना अभ्यर्षे ) उत्तम पहननेके योग्य वस्त्र दे । ( पूयमानः ) साफ होनेवाला तू ( सुदुषाः घेनुः अमि ) उत्तम वृष देनेवाली गाय दे । ( अतये ) अरण्य पीपलके लिए ( नः चन्द्रा हिरण्या अमि ) हमें तेजस्वी सोना दे और ( रयिनः अभ्यात् अमि ) रथके साथ घोड़े दे ॥ २ ॥

[ १४२८ ] हे सोम ! ( पूयमानः ) छाना जानेवाला तू ( नः दिव्या वसुनि अभ्यर्षे ) हमें विश्व वस्त्र दे । ( पार्थिवा विश्वा अमि ) पृथ्वी परके सब देवर्षे दे । ( येन द्रविणं अद्रुणाम् अमि ) जिससे हमें पत्र मिले वह सामर्थ्य हमें दे । ( जमदग्निवत् आर्येण नः ) जमदग्निके समान ऋषियोंके पत्र सो हमें दे ॥ ३ ॥

[ १४२९ ] ( अपूर्व्यं मघवनु ) हे अपूर्व इन्द्र ! ( वृत्रहृत्पाय यत् जायथा ) शत्रुओंका नाश करनेके लिए जब तू प्रकट होता है, तब ( तत् पृथिवीं अ प्रथयः ) तुने पृथ्वीको दृढ़ किया ( उत उ तत् दिव्यं अस्तम्नाः ) और धूम्रौष्णो रूपर लक्षण किया ॥ १ ॥

[ १४३० ] हे इन्द्रा ! ( तत् ते यज्ञः अजायत ) उस समय तेरे लिए पत्र हुए ( उत तत् हस्कुति अर्कः ) तब तिनको बतानेवाला तूवं उत्पन्न हुआ । ( यत् जातं यत् जन्व्यं ) जो हुआ हुआ और होनेवाला है ( तत् विश्वं अमिभूः अति ) उन सबोंको तू हृदयनेवाला है ॥ २ ॥

- १४३१ आमासु पकमैरय आ सुयं रोहयो दिवि ।  
धर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्विणसे बृहत् ॥ ३ ॥ १९ (ये) ॥  
[ धा० ३० । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ८।८९।७ )
- १४३२ मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।  
बृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रात्ममः ॥ १ ॥ ( ऋ १।१७९।१ )
- १४३३ आ नस्ते गन्तु मत्सरो बृषा मदा वरेण्यः ।  
सहावा इन्द्र सानसिः पृतनापाडमर्त्यः ॥ २ ॥ ( ऋ १।१७९।२ )
- १४३४ त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।  
सहावान्दस्युमम्रतमोयः पात्र न शोचिषा ॥ ३ ॥ २० (वि) ॥  
[ धा० २९ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ १।१७९।३ )

॥ इति षष्ठं खण्डं ॥ ६ ॥

॥ इति षष्ठप्रपाठके द्वितीयोऽर्धं ॥ ६-२ ॥

॥ द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥

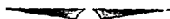
[ १४३१ ] हे इन्द्र ! ( आमासु पकमं पेरय ) अपक्व मासोंमें परिपक्व दूधको तुने उत्पन्न किया । ( दिवि स्वर्ग अरोहयः ) शूलोकमें सुयंको धराया । ( धर्मं सामं न ) जिसप्रकार प्रथम-पत्रको जलाते हैं, उसीप्रकार ( सु वृक्तिभिः तपता ) उत्तम स्तुतियोंमें इन्द्रको तपाओ, उत्साहित करो । ( गिर्विणसे जुष्टं बृहत् ) स्तुत्य इन्द्रको आनन्द देनेके लिए बृहत् सामका गान करो ॥ ३ ॥

[ १४३२ ] हे (हरिव) घोड़े पासमें रहनेवाले इन्द्र ! ( महः पात्रस्य इव ते ) बड़े बर्तनके समान धूमहान् ॥ ( वृष्णः ते ) बलवृक्ष तेरे लिए ( मत्सरो मदः बृषा ) सातम्बदायक, हर्षवर्धक, बल बढ़ानेवाला ( वाजी सहस्र-स्रात्ममः इन्दुः ) बलवान् और हजारों बाल देनेवाला जो सोमरस है, उसे ( अपायि मर्त्यः ) पौ और आतन्वित हो ॥ १ ॥

[ १४३३ ] हे (इन्द्रः) इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए तैय्यार किया गया यह ( बृषा मदा ) बलवर्धक, आनन्ददायक ( वरेण्यः सहवावा ) अष्ट, सामर्थ्यवान् ( सानसिः पृतनापाड ) पीने योग्य, शत्रुओंको हारनेवाला ( अमर्त्यः मत्सरो-आमन्तु ) मगर और आनन्द देनेवाला सोमरस तुझे प्राप्त होवे ॥ २ ॥

[ १४३४ ] हे इन्द्र ! ( त्वं हि शूरः सनिता ) तू शूर और बालका देनेवाला है, ( मनुषो रथं चोदय ) मनुष्यके मनोरथोंको उत्तम प्रकारसे प्रेरित कर । ( सहावान् ) सहायता करनेवाला हीकर ( [ अग्निः ] शोचिषा पात्रं न ) जिस प्रकार अग्नि अपनी ज्वालामें बर्तन जला डालता है, उसीप्रकार ( दस्यु अद्यतं ओय ) दुष्ट और बत पालन न करनेवालेको जला डाल ॥ ३ ॥

॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥



## द्वादश अध्याय

इस अध्यायमें इन्द्र देवताका वर्णन इस प्रकार है—

१ हे इन्द्र ! त्वं जनुषा अ-ध्रातृव्यः [ १३८९ ]- हे इन्द्र ! तू जन्मसे दाम्बुहिल है। तेरा कोई शत्रु नहीं। यहा " अध्रातृव्य " शब्द भाईबन्धुका भाव बिलता है। भाई, भाईमें शत्रु होना स्वाभाविक है, ऐसा प्रतीत होता है। वैदिककालमें भी " अध्रातृव्य " पर शत्रुभावका शोचक था। जन्मसे ही इन्द्रका कोई भाई नहीं, जिससे द्वेष हो सके।

२ सनात् अ-ना [ १३८९ ]- तुम पर नेतृत्व करने-वाला कोई नहीं।

३ अनारिः अस्ति [ १३८९ ]- तू भाईरहित है। तेरा कोई भाई नहीं, तेरा सहायक कोई नहीं।

४ आपित्वे इच्छसे युधा इत् [ १३८९ ]- तू जब भाई खाता है, तब मुझ करके तू शत्रुओंको डर करता है और सौगोंको अपना मित्र बनाता है।

इन्द्रका भाई नहीं, नेता नहीं, मित्र नहीं, ऐसा यह इन्द्र अकेला ही है। पर वह अपनी अपार शक्तिते सबसे अधिक सामर्थ्यवान् है। और अकेला ही जो कुछ करना होता है करके दिखाता है। जिसका नेता, भाई, मित्र कोई दूसरा नहीं, फिर भी यह तब कुछ करता है। इससे उसको अपार शक्तिका मान होता है। वह अकेला ही सबसे अधिक शक्ति-शाली है, इसलिए वह अकेला ही सब कुछ करता है।

५ देवतं वशय्याय न किः धिन्द्रसे [ १३९० ]- केवल कोई धनवान् है, इसलिए तू उसे अपना मित्र नहीं बनाता। उसमें जीवन अथवा मृत्यु है, यह तू देखता है और जो मृत्यु-वान् है उसे तू अपना मित्र बनाता है।

६ यदा नदत्तं छणोपि, समूहसि, मादिन् पिता इप ह्यसे [ १३९० ]- जब तू तान प्राप्त करनेवालेको मित्र बनाता है, तब उसे तन्मार्गसे घलाकर समूह बनाता है। तब लोग तेरी पिताके समान स्तुति करते हैं। क्योंकि पिता अपने बच्चोंको उत्तम मार्ग पर बलाता है, और उनकी उन्नति कराता है।

७ हे इन्द्र ! त्वं शायसः पतिः यशाः अस्ति [ १४११ ]- हे इन्द्र ! तू बलवान् है और उस कारण यशाकी भी है।

८ अनुषाः चर्षणीपुतिः त्वं यकः इत् अमर्तानि, पुद पुत्राणि दंसि [ १४११ ]- पराजित न होनेवाला और

सब मनुष्योंका धारण करनेवाला अकेला ही तू बहुत बलवान् शत्रुओंको हराता है।

९ ते धियः अस्मान् अवन्तु [ १४२१ ]- तेरी बुद्धिवां हमारी रक्षा करें।

१० धयं ते सुमर्तौ वाजिनः भूयाम [ १४२२ ]- हम तेरी अनुकूलतासे बलवान् हों।

११ नः मा स्ता [ १४२२ ]- हमारा नाश मत कर।

१२ अग्निभिः चित्राभिः [ ऊतिभिः ] अस्मान् वयस्ताम् [ १४२२ ]- इष्ट और सामर्थ्यवान् तथा विलक्षण तरङ्गके साधनेति हमारी रक्षा कर।

१३ सुसेषु नः आयामय [ १४२२ ]- तुम तमूझिमें हमें बढा।

१४ हे इन्द्र ! शुद्धः नः रयिं, शुद्धः दाशुपे रत्नानि [ १४०४ ]- हे इन्द्र ! शुद्ध और पवित्र तू हमें धन दे, शुद्ध तू शताको रत्न दे।

१५ शुद्धः पुत्राणि जिमसे [ १४०४ ]- शुद्ध तू शत्रु-ओंको मारता है।

१६ शुद्धः वाजं सियाससि [ १४०४ ]- शुद्ध तू मत्त देता है।

१७ यत् जातं यत् जन्त्ये तत् विश्वं अभिभूः अस्ति [ १४३० ]- जो उत्पन्न हुए या होनेवाले हैं उन सबको तू हरानेवाला है।

१८ हे अर्ष्य ! मघधन् ! यत् पुत्रहत्याय त्वं जाययाम, तत् धृषिर्था अमघधय, उत द्विषं अस्ताभ्याः [ १४२९ ]- हे अर्ष्य इन्द्र ! शत्रुका नाश करनेके लिए जब तू संव्याह हुआ, तब तुने पुष्पीको बृह विद्या और दुमीकको ऊपर हाथ लिया।

१९ हे इन्द्र ! त्वं शूरः ससिता [ १४३४ ]- हे इन्द्र ! तू शूर है और शान्त।

२० मनुष्याः रथे धोदय [ १४३४ ]- मनुष्योंका मनोरथ सिद्ध हो ऐसा प्रेरणा कर।

२१ सहायान् अमर्तं दस्तुं भोयः [ १४३४ ]- तू सामर्थ्यवान् होकर नियम न पालन करनेवाले दुष्टोंको मर्त कर दे।

२२ हे अशुह इन्द्र ! प्रचेतसं त्या भागं इय राधा नूनं ईमदे [ १४१२ ]- हे बलवान् इन्द्र ! भागवान् ऐसे

तेरे पास हम धनका भाग मांगते हैं । अपने पितासे जैसे मांगते हैं, वैसे ही धनका भाग हम मांगते हैं ।

१३ ते महती दारणा [ १४१२ ]- तेरा महान् ध्यान आश्रय लेने योग्य है ।

२४ ते सुम्ना नः प्रादनुवन् [ १४१२ ]- तुमसे उत्तम धन मांगते हैं ।

२५ आमासु पक्वं पेर्यः [ १४३१ ]- तु गापोंमें पका हूय उत्पन्न करता है ।

२६ विवि सूर्यं वराह्यः [ १४३१ ]- आषाढमें सूर्यको ऊपर धरता है ।

२७ तत् ते यज्ञः अजायत [ १४३० ]- तब तेरे लिए यज्ञ मनु हुए । तू महान् प्रतापी होनेके कारण यज्ञके द्वारा तेरा जन्मान लोग करते हैं ।

२८ गिर्येणसे जुष्टं बृहत् [ १४३१ ]- प्रगंसनीय इन्द्रको आनन्द देनेके लिए बृहत् सातका गायन किया जाता है ।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन मंत्रों द्वारा किया गया है । इस इन्द्रके लिए मत करते हैं और जगमें उत्तमो पीनेके लिए सोमरस बैसे हैं ।

### इन्द्रको सोम

१ याजी सहस्रसत्तमः अपायि मस्ति [ १४३२ ]- बलवान् और हजारों प्रकारके बान देनेवाला इन्द्र सोमरस पीता है और आनन्दित होता है ।

२ हे इन्द्र ! ते वृषा मदः वरेण्यः सहावान् सानसिः पूतनापाद्, अमर्त्यः मन्सरः गन्तु [ १४३३ ]- हे इन्द्र ! तेरे लिए संस्कार किया गया यह बलवान् और आनन्द देनेवाला, थोडा और सामर्थ्य युक्त, सेवन करनेके योग्य, प्रायुओंको हारनेवाला, अमर अल्हाबवायक सोमरस मूत्रं प्राप्त हो ।

३ एवं पूर्वपाः अस्ति । इयं चाद्दः आसुतिः मदाय पर्यते [ १३९३ ]- तू प्रथम पीनेवाला है । यह सुन्दर सोमरस मूत्रे आनन्द देने योग्य है ।

४ शुद्धेन सान्ना, शुद्धैः उक्थैः, शुद्धं इन्द्रं स्तवाम । प्रायुर्ध्यावं शुद्धः आशीर्षान् ममन्तु [ १४०२ ]- शुद्ध सामगायनेसे, शुद्ध स्तोत्रोंसे, शुद्ध इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं । आत्म-सामर्थ्यसे बचनेवाले इन्द्रको शुद्ध गायके रूपसे निष्कर सोमरस प्रसन्न करे ।

५ हे इन्द्र ! शुद्धः नः आगहि । शुद्धामिः ऊतिभिः शुद्धः रथिं नि धारय । शुद्धः ममास्ति [ १४०२ ]- हे, ३१ [ साम. हिन्दी भा. ९ ]

इन्द्र । तू शुद्ध हो कर हमारे पास आ । शुद्ध स्तोत्रोंके साथमेंते बूढ़ होकर हमें धन दे और शुद्ध होकर सोम पीकर आनन्दित हो ।

६ हे इन्द्र ! नः रसिनः गोमतः सुतस्य पित्र, मरस्य । सधमाथे वापिः न भुधे वोधि [ १४२१ ]- हे इन्द्र ! गायके रूपसे मिथित तथा हमारे द्वारा निबोधे मय सोमरस धो और आनन्दित हो । एक बँडकर पीनेकी जगह-पशुपान-में मित्रके समान हमारा सवर्धन करना है, यह जान ।

७ हे इन्द्र ! ब्रह्मयुजः केशिनः हिरण्ये रथे युमताः सहस्रं दातं हरयः सोम-पीतये त्वा यहन्तु [ १३९१ ]- हे इन्द्र ! सम्बन्धके इशारेसे जुड जानेवाले, उत्तम अयाजवाले, सोमके रथमें जुड़े हुए हमारा और संकष्टों छोड़े सोम पीनेके लिए तुमों को कर ले जाते हैं ।

८ मध्यः विचक्षणस्य अन्धसः पीतये हिरण्ये रथे मयूर-शोष्या शितिगुह्या हरो त्वा आ यहताम् [ १३९२ ]- मयूर रस युक्त, प्रगंसनीय सोमरस पीनेके लिए सोमके रथसे मोरपत्रके समान सुन्दर रथके अयाजवाले तथा सफेद पीठवाले दोनों छोड़े तुमों पड़वायें ।

इस प्रकार इन्द्रके सोम पीनेके लिए यज्ञमें जानेका वर्णन है ।

### अग्नि

जगिदेवका वर्णन इस अध्यायमें इस प्रकार आया है ।

१ आरे अग्ने शृष्टमते अग्नेये मंत्रं वोधेम [ १३७९ ]- बूढ़ रहकर भी हमारा प्रार्थनाओंको सुननेवाले अग्निके लिए हम मंत्र बोलते हैं । यज्ञोंके द्वारा उत्तमो स्तुति करते हैं ।

२ पूर्वयः स्नादितिषु कृष्टिषु संजग्मानासु दाप्यु गये अरक्षत् [ १३८० ]- पहलेसे ही हितक शत्रु तीव्र्यके इकट्ठे होनेपर भी बानी मनुष्यके घरकी मरू अग्नि रक्षा करता है ।

३ दातमः सः अग्निः नः घेद, अमा-तन्यं रक्षतु उत अस्मान् अंशुसः पातु [ १३८१ ]- अत्यन्त मुखमय अग्नि देनेवाला यह अग्नि हमारा धन अथवा लो कुछ हमारे पास है उस सबकी सुरक्षित रखे, तथा हमें पापोंसे बचाये ।

४ क्षुप्रहा रणे धनंजयः अग्निः उदुजति [ १३८९ ] शत्रुका भाग करनेवाला और प्रत्येक युद्धमें धन देनेवाला अग्नि प्रबल हो गया है ।

५ हे भारत अग्ने ! उरू शोच । हे अजर ! दुदि-पतत् द्युमत् अजक्षेत्र वि भाहि [ १३८५ ]- हे भरणयोग्य

करनेवाले अने । तू प्रखलित हो । हे जरारहित । तेजस्वी और प्रकाशमान जन्मे । कम न होनेवाले तेजसे तू प्रकाशित हो ।

६ समिद्धः शुक्रः आहुतः द्रपियस्सुः आग्निः  
सुधाणि जंघान् [ १३९६ ]- प्रखलित, तेजस्वी, आहुतिले सुवत, धन देनेवाला अग्नि शत्रुओंको मारता है ।

७ हे अग्ने ! पृत्सु यं मर्त्ये अयाः, चाजेषु यं जुनाः,  
सः दाश्वतीः इपः यन्ता [ १४१५ ]- हे अग्ने ! तू सभामें जिसको रक्षा करता है, स्वर्गमें जिसको तू प्रेरणा देता है, यह सब अन्न प्राप्त करता है ।

८ हे सहज्य ! अस्य कयस्य पर्यंता न किः ।  
अवाग्यः धानः अस्ति [ १४१६ ]- हे शत्रुओंको हराने-  
वाले जन्मे ! इत तेरे भक्तकी कोई भी नहीं हटा सकता ।  
इसका पगल्लो बल प्रसिद्ध है ।

९ सः पिभ्यश्चर्यणिः अर्षद्भिः धाजं तयता अस्तु,  
धिरेभिः सन्निता अस्तु [ १४१७ ]- यह सब मनुष्योंका  
कल्याण करनेवाला अग्नि पौष्टिकी युद्धमें विजय प्राप्त कराने-  
वाला और शानियों द्वारा प्रसन्न किया गया है ।

१० हे अग्ने ! प्रजापत्यं ब्रह्म आ मर [ १३९८ ]- हे  
अग्ने ! पुत्रपौत्रोंके साथ होनेवाले अन्न हमें भरपूर दे ।

११ होता आग्निः मानुषेषु आ । सः नः गिरः सुपतः ।  
द्वैत्यं जयं यक्षन् [ १४०६ ]- हवन निरतमें होता है ऐसा  
अग्नि मानवोंके घरमें रहता है । यह हमारी स्तुति सुने और  
दिव्य जनको अधिक पवित्र करे ।

१२ अर्षां नपातं सुभगं सुदीदिति श्रेष्ठरोचियं  
अग्निं [ १४१४ ]- कर्मोंका पालन करनेवाला, उत्तम भाग्यवान्  
तेजस्वी, प्रकाशमान अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं ।

१३ सः नः पुन्यं यक्षते [ १४१४ ]- यह हमें सुख देवे ।

१४ हे अग्ने ! सुष्टः चरेण्यः होता त्वं सप्रया  
अस्ति, त्वया यशं वितन्वते [ १४०७ ]- हे अग्ने ! प्रसन्न,  
श्रेष्ठ और हवन करनेवाला तू सबके महान् है । तेरी सहज्यतासे  
यसका अनुष्ठान होता है ।

१५ हे अग्ने ! ये तय साधयः भाशयः अभ्यास्तः  
अदं यद्वृत्तिं, युंश्च हि [ १३८३ ]- हे अग्ने ! जो तेरे  
उत्तम सुगुणित शीघ्रपायी घोड़े शीघ्रतासे सुगं ले जाते हैं,  
उन्हीं अपने रथमें जोड़ ।

१६ हे अग्ने ! देवान् प्रयांसि अग्नि भायद् [ १३८४ ]  
- हे अग्ने ! देवोंको यज्ञमें बुला ला ।

इत प्रकार अग्निवा कर्म इत अध्याप्ये हैं ।

## देवोंके लिए सोम

१ गुणानः धीति वायुं अग्नि अर्ष [ १४२६ ]- हे सोम !  
स्तुतिके बाद पीनेके लिए वायुके पास जा ।

२ पूयमानः मिश्रावरुणौ अग्नि अर्ष [ १४२६ ]-  
स्वच्छ किए जानेके बाद मित्र और बरुणके पास जा ।

३ नदं धीजयनं रथेषां अग्नि अर्ष [ १४२६ ]- नेताकी  
युद्धिकी गति देनेवाले और रथमें बैठनेवाले अग्निपौत्रोंको  
ओर जा ।

४ वृषणं वज्रवाहं इन्द्रं अग्नि अर्ष [ १४२६ ]-  
बलवान् और वज्रके समान शत्रुओंको इन्द्रके पास जा ।

इत प्रकार देवोंके सोमरस विद्ये जलनेके सम्बन्धमें  
वर्णन है ।

## सोम

१ दक्षसाधनः सः वीरः रोदसी चि तस्त्वमभ  
[ १३८८ ]- बस बटानेका साधन यह वीर सोम अपने तेजसे  
आबापुषिकीओ भर देता है ।

२ हरिः योमिं आसदम् [ १३८८ ]- हरे रतका सोम  
कलशमें जाता है ।

३ पावित्रे अय्यत [ १३८८ ]- सोम छलनीसे छाना  
जाता है ।

४ अणुरं स्तोमं रजस्तुरं वनप्रक्षं उदुमुतं आसोत,  
परि पिञ्चत [ १३९४ ]- पानीमें शीघ्रतासे मिलनेकी इच्छा  
करनेवाले तेजस्वी तथा पात्रमें रहनेवाले सोमरसको निकाल  
कर उत्तम पानी मिलाने ।

५ सहस्रधरं पृषभं पयोदुह मियं देवाय जन्मते  
[ १३९५ ]- हजारों धाराओंसे छानेजानेवाले बसवर्षका रूषमें  
मिलाये हुए प्रिय सोमकी देवोंकी देनेके लिए युद्ध कर ।

६ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानः देवः रसं देवेभिः  
समृक्तः । सुतः रेमन् पावित्रं पर्यति [ १३९५ ]- इस  
सोमका प्रेरणा देनेवाला और पीनेसे पवित्र होनेवाला तेजस्वी  
रस देवेति मिलता है । यह सोमरस दाब करता हुआ  
छलनीसे छाना जाता है ।

सोम छलनेवाले अग्निज हाथोंमें सोनेकी अंगुठी पहनते  
ये । सोमरससे उन सोनेका रसों होनेपर सोमरस मुद्ध होता  
या "हेमना पूयमानः" दान्तसे प्रतीत होता है ।  
अथवा वीर किसी प्रकारसे भी सोमरसके साथ सोनेका  
सम्बन्ध होता होगा । पर सोमरसके लिए सोनेका स्वर्ण  
आधारक सामान्य जाता था, यह बात निश्चित है ।

७ भद्रा समन्या घन्ना वसान महान् फणिः नि  
वचनानि वांसन् विचक्षणः जागृषिः पूषमानः देव-  
धीती घन्वोः आ वचस्व [ १४०० ]- कत्यागकारक,  
युद्धके योग्य वर्याँकी-तेजोँकी-धारण करनेवाला, महान्  
शान्ति, स्तुति स्तोत्र कहते हुए जानती होकर अग्रत रहनेवाला  
सोम पवित्र होकर-छाया जाकर-यज्ञ स्थान पर रत्ने हुए  
कलशमें छननेके बाद विरता है ।

८ मिष्टंष्ट वृषणं ययोर्घां भंगोषिणं चार्णाः अभि  
अवावशन्त [ १४०८ ]- सोम सवर्णमें रहनेवाले, बलवान्  
और अन्न देनेवाले और शब्द करनेवाले सोमकी हमारी याणी  
स्तुति करती है ।

९ वना वसाल सिग्धुः रत्नघ्ना. चार्याणि द्यते  
[ १४०८ ]- जलमें मिलाया गया, प्रगतिशील और रत्न  
देनेवाला सोम स्वीकार करने योग्य धन देता है ।

१० शरग्रामः, सधोरीः, सह्रायान्, जेता, धनानि  
समिता, तिग्मायुधः क्षिप्र-धन्वा, समस्तु अषाब्दः,  
पृतनास्तु श्वान् साहान् पवस [ १४०९ ]- वृत्तिक  
समूहको पालने रखनेवाला, अनेक वीररति युक्त, सामर्थ्यवृक्ष  
और विजयो, धन देनेवाला, तीक्ष्ण शस्त्र प्राप्तमें रखनेवाला,  
शीघ्र धनुष चलानेवाला, सपाममें धात्रजोंको अस्तु, युद्धमें  
शत्रुओंको हरातेवाला सोम छाना जाता है । सब देव और  
वीर सोम पीकर लड़ाई पर जाते हैं और वीरताके काम  
करते हैं, इसलिए वीरताके नाम सोम ही करता है, यह  
आलंकारिक वर्णन यहाँ किया गया है ।

११ वावशानः शृषा सुवगारः बाङ्गि संवृषन्वे  
[ १४१९ ]- देव जिसकी इच्छा करते हैं, ऐसा यह बलवान्  
सोम बहुताई दारत चाहते योग्य है और पानेके साथ मिलाया  
जाता है ।

१२ निवृत्ते अभियन् कलशो जलियाभिः सं  
गच्छते [ १४१९ ]- अपने संस्कार करनेके स्थान पर जानेके  
लिए कलशमें गायके दूधके साथ मिलकर रहता है ।

१३ अघ्न्याया ऊचः प्रपिये [ १४२० ]- गायके  
दुग्धाजकी यह सोम अधिक पूर्ण करता है ।

१४ सुमेधाः इन्दुः धाराभिः स्वचते [ १४२० ]-  
उत्तम बुद्धिमान् यह सोम धाराओंके मिलाया प्रवृत्त है ।

१५ गाय चमृषु सूर्यान् पवसा अभि धीजन्ति  
[ १४२० ]-गायें वर्तनीं इस शब्द सोमकी दूधके ढकी है ।  
सोमरत्नमें दूध मिलाया जाता है ।

१६ परमे व्योमनि अस्मे वि सत घेनवः सस्यं  
आशिरं सुदुहिरे [ १४२३ ]- अन्तरिक्षमें-पर्वतपर ऊँचे  
स्थान पर रहनेवाले इस सोमके लिए इषकीस गायें उत्तम दूध  
मिलानेके लिए देती हैं ।

१७ चावणः अमृतस्य मक्षभाणः सः उभे धावा  
काव्येन वि शश्रये [ १४२४ ]- उत्तम जलकी इच्छा  
करनेवाला यह सोम दोनों ही धावानुषिबीको अपनी स्तुतिसे  
परिपूर्ण करता है ।

१८ तेजिष्ठाः अपः मंहना परिच्यत [ १४२४ ]-  
तेजस्वी पानीकी अपने महत्वसे ढक देता है । पानीमें सोम-  
रत्न मिलाया जाता है ।

१९ हे सोम देव ! सु वसमानि घन्ना अभ्यर्  
[ १४२७ ]- हे सोम देव ! उत्तम रहनेके योग्य बरत दे ।

२० पूषमानः सुदुधाः धेनुः अभि अर्पे [ १४२७ ]-  
स्वच्छ होनेके मार उत्तम दूध देनेवाली गायोंको प्राप्त हो ।  
गायके दूधमें मिल जा ।

२१ न. चन्द्रा हिरण्या अभि [ १४२७ ]- हमें धमकने  
पाके सोमके सिक्के दे ।

२२ रथिनः अभ्यान् अग्नि [ १४२७ ]- रथमें जोड़ने  
योग्य घोड़े दे ।

२३ पूषमानः नः दिव्या वसुनि अमर्षे [ १४२८ ]  
-छाने जानेके बाद हमें विष्य धन दे ।

२४ पार्थिया विश्वा अग्नि [ १४२८ ]- सब पार्थिव  
धन दे ।

२५ येन घयं द्रविणं अभि अइनुयाम [ १४२८ ]-  
जिसकी सहायतासे हमें धन मिले ऐसा सामर्थ्य हमें दे ।

२६ आर्येय नः [ १४२८ ]- ऋषियोंके पास होनेवाले  
धन हमें दे ।

२७ यशसां यशस्तरः क्षैतः प्रियः सानो अव्ये सं  
मृज्यते [ १४०९ ]- यशस्की होनेवालोंमें विष हुआ दूधा  
सोम बालोंकी छलनीसे छाना जाता है ।

इस प्रकार सोमरत्नको छानने और उसे पीनेका वर्णन इस  
अध्यायमें है । इसमें प्रत्येक स्थान पर आलंकारिक वर्णन है ।

जैसे " सोमरत्न गायके साथ वर्तनमें जाता है " इसका अर्थ  
है कि सोमरत्न गायके दूधमें मिलाकर कलशमें रखा जाता  
है । ऐसे अनेक आलंकार इस अध्यायमें हैं ।



## सुभाषित

१ आरे च मस्येऽप्यते अग्रयेमंनं वोचेम [ १३७९ ]  
-रूर रक्षर भी हमारे प्रावनेवालोंकी तुननेवाले अग्निकी  
हम स्तुति करते हैं ।

२ यः सूर्यः स्नाहितोषु उष्टिषु संजगमानासु दाशुपे  
मयं धारश्नुतु [ १३८० ]- जो पूर्वते हिसक दानुओंके एष-  
मित होनेपर भी वाताके घरकी रक्षा करता है ।

३ शान्तमः सः अग्निः नः अमा-स्यं वेदः रक्षतु  
[ १३८१ ]- शान्तनु सुत देनेवाला वह अग्नि हमारे पातके  
पक्षको सुरक्षित रखे ।

४ उत अस्मान् अंहसः पातु [ १३८१ ]- और वह  
हमारी पापोंके रक्षा करे ।

५ वृषद्वारणे रणे धनंजयः अग्निः उद्वजनि [ १३८२ ]  
-दनुओंको मारनेवाला, प्रायेण युद्धमें दानुओंको हरातेवाला  
तथा धन जीतनेवाला अग्नि प्रकट हो गया है ।

६ हे अग्ने देव । ये तत्र साधयः आशयः अभ्यास  
अर्धं यदग्निं युंक्ष्यति [ १३८३ ]- हे अग्निदेव । जो तेरे  
उत्तम तथा वेष्टयान् घोड़े हे उन्हें अपने रथमें जोड़ ।

७ न अच्युत वीतये आपादि [ १३८४ ]- हमारे पास  
अन्न खाकर सोम पीनेके लिए था ।

८ प्रयांसि अग्निं देवान् वा दह [ १३८४ ]- जनोंके  
पात देवोंको लेबर गा ।

९ हे भारत अग्ने । त्वं दांच [ १३८५ ]- हे भरण  
योग्य करनेवाले अग्ने । तू अल ।

१० हे अजर । दृष्टिभ्रतस्व पुमान् अजघ्नेण  
विभादि [ १३८५ ]- हे अजरहित । तेजस्वी और प्रकाश  
मान् तू क्या न होनेवाले तेजसे प्रकाशित हो ।

११ सु-यानास्य मधुपसः सत्सु पच मर्तम न घष्ट  
[ १३८६ ]- रत निकाले गए सोमको स्तुति नोष मनुष्य  
न तुने ।

१२ अरापयं भवान् मपहत [ १३८६ ]- विना करने-  
वाले कुत्तको डूर करो ।

१३ हे इन्द्र । त्वं अनुया मध्यादप्यः [ १३८९ ]-  
हे इन्द्र । तू आग्लो ही दानुहिन है ।

१४ सनान् अगा, अनाधिः अग्निः [ १३८९ ]-  
कोई हमारा तेरा मेना नहीं और कोई हमारा मर्दाई भी  
नहीं । तू पर निर्बन्धन करनेवाला हमारा कोई नहीं । तू  
घरेना ही सब कुछ करता है ।

१५ युधा इत् आपित्वं इच्छसे [ १३८९ ]- जब तू  
भाईकी इच्छा करता है, तब दानुओंको मारकर जपानकोंको  
मित्र बनाता है ।

१६ रेवन्तं सख्याय न किं विन्दसे [ १३९० ]-  
केवल धनवान्को अपना मित्र नहीं बनाता ।

१७ सुराग्धः ते वीर्यमिति [ १३९० ]- शराय पीनेवाले  
नास्तिक तुझे कुछ देते हैं ।

१८ यदा नयन्ते कृणांति, समूहसि, आदिन् पिता  
इव ह्यसे [ १३९० ]- जब स्तुति करनेवालोंको तू अपना  
मित्र बनाता है, तब तू उन्हें धन देता है, उस समय ये अपने  
पिताके यमान तेरी स्तुति करते हैं ।

१९ हे इन्द्र । प्रस्युज्य देशिनः, हिरण्यये रथे  
युक्ताः, सहस्र इतं हरयः सोमपीतये त्वा यद्वन्दु  
[ १३९१ ]- हे इन्द्र । शत्रुके इगारसे युद्ध जानेवाले, उत्तम  
अयालवाले, तेरे सोनेके रथमें जुड़े हुए हजारों अथवा सैकड़ों  
घोड़े सोम पीनेके लिए सुतेयज्ञमें पड़वाते हैं । यहाँ (सहस्र  
इतं हरयः) हजार अथवा सौ घोड़े ये वास्तविक घोड़े न  
होकर आलकारिक हैं । रथके घोड़े वो अथवा चार ही होते  
हैं । यहाँ हजार बताये हे ये विरण हैं । क्योंकि किरण हजारों  
ही सक्ती हैं । रथके हजारों घोड़े नहीं ही सक्ते । रथमें वो  
घोड़ोंके जोड़नेवा भी नहीं बर्न सके स्वर्णपर आया है । आर्यके  
मय देवाए—

२० हिरण्यये रथे मयूर-शोण्या शितिष्ठा हरीत्वा  
आ घहतां [ १३९२ ]- सोनेके रथते मोरके पलके समान  
रगवाले तथा सकेर पीठवाले वो घोड़े तुझे डोहर के जाते हैं ।

२१ राजा क्रोन्ते विद्यायुधे [ १३९५ ]- राजा सायने  
विद्येय बजना है ।

२२ द्रविण्यस्युः अग्निः वृषाणि जंघनम् [ १३९६ ]  
- धन देनेवाला अग्नि दानुओंको मारता है ।

२३ प्रजापत्यं प्राय आ भर [ १३९८ ]- पुत्रप्राप्ति  
साय होनेवाले अग्नि अथवा ज्ञान हमें भरपूर से ।

२४ यदामां यदास्तारः [ १४०१ ]- यज्ञवालोंमें सबके  
अधिक पगारवी हो ।

२५ शुद्ध इन्द्रं स्वयाम् [ १४०२ ]- शुद्ध इन्द्रकी हम  
स्तुति करते हैं ।

२६ हे इन्द्र । शुद्धा नः भागदि [ १४०३ ]- शुद्ध  
होनेवाला तू हमारे पास था ।

२७ नुजाभिः ऊनिभिः नुजाः [ १४०३ ]- रक्षकके  
शुद्ध सायने शुद्ध ऐसा तू है ।

२८ शुद्धः रयिं नि धारय [ १४०३ ]- तू शुद्ध होकर हमें पन दे ।

२९ शुद्धः ममदि [ १४०३ ]- तू शुद्ध होकर आनन्द प्राप्त कर ।

३० शुद्धः नः रयिं [ १४०४ ]- शुद्ध होकर तू हमें पन दे ।

३१ शुद्धः दाशुषे रतानि [ १४०४ ]- तू शुद्ध रहकर शताशोक पन दे ।

३२ शुद्धः वृत्राणि निम्रसे [ १४०४ ]- तू शुद्ध रहकर शत्रुओंको मारता है ।

३३ शुद्धः हार्जं त्रिपाससि [ १४०४ ]- तू शुद्ध रहकर अन्न देता है ।

३४ दिव्यं जन् यक्षत् [ १४०६ ]- दिव्यजन्मो भूय कर ।

३५ सुष्टः घरेष्यः होता सप्रथा एवं असि [ १४०७ ]- प्रसन्न, श्रेष्ठ और हवन करनेवाला तू सबसे श्रेष्ठ है ।

३६ रत्नषा वायानि द्यते [ १४०८ ]- रत्नोंको धारण करनेवाला पन देता है ।

३७ शूरग्रामः सर्ववीरः सहायान् जेता, धनानि सनिता, तिम्रमायुष क्षिप्र-घन्वा, सप्रस्तु अपाल्बद्धः, वृत्तनासु शश्वन् स्वाह्वान् [ १४०९ ]- पूर्वोक्त समूहसे तथा अनेक वीरोंसे युक्त, सामर्थ्यसंपन्न और विजयी, धन देनेवाला, तोषण शस्त्र रखनेवाला, शत्रुव द्डीप्त चलावेवाला, सप्रामाण्यं शत्रुओंको अस्तित्व, युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला ( सोम ) है ।

३८ उरु-गन्वृतिः अभयानि कृषयन् [ १४१० ]- जितका मार्ग विलोभ है, वह हमें निर्भय करता है ।

३९ हे इन्द्र ! शवसो पतिः अमुताः चरणी-धृतिः परः इव, अमतीनि वृत्राणि पुरु एसि [ १४११ ]- हे इन्द्र ! तू बलका स्वामी, प्रजाओंका धारण पीषण करनेवाला, अकेला ही बलवान् शत्रुओंको बहुत बड़ी संख्यामें मारता है ।

४० हे असुर इन्द्र ! प्रचेतसं त्या मार्गं इव राघः ईमदे [ १४१२ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरे समान सान्त्वित्वेण पातसे मनका भाग हम पीतसे हैं ।

४१ ते मही शरणा [ १४१२ ]- तेरा महान् त्याग शरणके योग्य है ।

४२ ते सुतासः प्राशुतयन् [ १४१२ ]- तुमसे हमें उत्तम सुत मिलें ।

४३ देवं अमार्चं पलस्य सुकृत यजिष्ठं त्या षपुमदे

[ १४१३ ]- देवोंमें श्रेष्ठ अमर देव, यत्न उत्तम रीतिसे करने-वाले, श्रेष्ठ ऐसे तुमसे हम उपास्य मानकर स्वीकार करते हैं ।

४४ अपां-न-पातं सुभगं सुदीदितं श्रेष्ठयोचिषं व्यभिं [ १४१४ ]- कर्मोंको न गिरानेवाला, उत्तम भाग्यवान्, उत्तम तेजस्वी और श्रेष्ठ प्रकृतिसे युक्त अनेकों हम स्तुति करते हैं ।

४५ साः नः युन्मं यक्षते [ १४१४ ]- वह हमें सुख देवे ।

४६ हे अग्ने ! पूरसु चं मर्च्यं अवाः, चातेषु यं लुनाः, सः शश्वतोः इप. यन्ता [ १४१५ ]- हे अग्ने ! युद्धमें जित मनुष्योंको तू रक्षा करता है, स्वर्गमें जिसे तू उत्तम प्रेरणा देता है, उसे हमेशा अन्न प्राप्त होता है ।

४७ सहस्यं । अस्य फयस्य पर्येता न निः, ध्रवाय्या पाज. अस्ति [ १४१६ ]- हे शत्रुको हरानेवाले ! इस तेरे भक्तको हरानेवाला कोई भी नहीं है, क्योंकि उसका यशस्वी बल प्रसिद्ध है ।

४८ विश्वचर्षणि स. अर्षेन्द्रिः पाजं तरता अस्तु, विप्रेमिः सनिता अस्तु [ १४१७ ]- सब लोगोंका कल्याण करनेवाला वह पोंडोवाले युद्धमें विजय प्राप्त कराये तथा शान्तिके द्वारा वह प्रसन्न किया जाये ।

४९ ते धियः अस्मान् अयन्तु [ १४१८ ]- तेरी बुद्धिमा हमारा रक्षण करे ।

५० सघमाद्ये आभिः न. युधे घोधि [ १४२१ ]- एक जगह बैठकर आनन्द प्राप्त करनेके समय निश्चय समान हमारा सवर्षण करता है, यह तू जान ।

५१ वयं ते सुमती चाजिनः न्याम [ १४२२ ]- हम तेरे अनुकूल उत्तम विचारसे युक्त होकर चलवान् हों ।

५२ अभिमतये नः मा सत [ १४२२ ]- शत्रुके हितके लिए हमारा यत्न मत कर ।

५३ अभिष्टिभिः चित्राभिः ऊतिभिः अस्मान् अव-तात् [ १४२२ ]- इष्ट सामर्थ्यसे युक्त संज्ञकणसे हमारा रक्षा कर ।

५४ सुम्नेनु नः आयाप्रय [ १४२२ ]- सुख समृद्धिमें हमें बढ़ा ।

५५ अमृत्ययः अदाभ्यासः अस्य केतयः उभे जनुपी अनु सन्तु [ १४२५ ]- अमर और न बचनेवाली इतनी किरणें दोनों ही प्रकाशसे प्राणियोंको मुक्तिव रक्षती हैं ।

५६ राजानं मननाः अमृष्णत [ १४२५ ]- राजाको स्तुतिव प्राप्त होती है ।

५७ नः दिव्या वसूनि अभ्यर्ष [ १४२८ ]- हमें दिव्य धन दे।

५८ पार्थिवा विश्वा अभि अर्ष [ १४२९ ]-हमें पाथिव धन दे।

५९ येन अर्षे द्रविणं अभि अदनुवाम [ १४२२ ]- जिससे हमें धन प्राप्त होने लगे ऐसा सामर्थ्य हमें दे।

६० अर्षेयं नः [ १४२२ ]- ऋषिके समान धन हमें मिले।

६१ हे मघवन्! वृत्रहत्याय यत् जायथाः तत् पृथिवीं अग्रथयः उत दिवं अस्तभ्नाः [ १४२९ ]- हे इन्द्र! तू वृत्रका वध करनेके लिये जब गया, तब तूने पृथ्वीको सूदृढ किया और धुलोःको स्तम्भ किया।

६२ यत् जातं यत् जन्तं तत् विश्व अभिभूः असि [ १४३० ]-जो ही गये और जो होनेवाले हैं उन सबको तू हटानेवाला है।

६३ आमास्तु पशवं परेयः [ १४३१ ]- गायमें पके हुएको तूने रखा है।

६४ दिवि सूर्यं वरोहयः [ १४३१ ]- सूर्यको चरमा।

६५ गिर्यणसे जुष्टे सूदृष्व [ १४३१ ]- इतुय इन्द्रके लिये बृहत् सामना गान करो।

६६ हे इन्द्र! ते चरेण्यः सहावान् प्रतनापाद् अभस्यैः भस्तरः गन्तु [ १४३३ ]- हे इन्द्र! तुझे यह श्रेष्ठ सामर्थ्यवान्, शत्रुओंको हटानेवाला अमर और आनन्द देनेवाला तोम प्राप्त हो।

६७ हे इन्द्र! रगे शूरः सनिना मनुष्यः रयं चोदय [ १४३४ ]- हे इन्द्र! तू शूर और बात। है। मनुष्योंके पशोर्योंको उत्तम रीतिसे प्रेरित कर।

६८ सहावान् दूर्युं अ-मर्तं योगः [ १४३४ ]- तू सामर्थ्यवान् है, इसलिए प्रतीका पालन न करनेवाले दुष्टोंका नाश कर।

## उपमा

१ भृगवः मलं न [ १३८६ ]- भृगुओंनि जितप्रकार मन्त्री बूट किया, उत्तीप्रकार (अ-राघवसं भवान् अपहृत) बिज्रकारती कुत्तीं करो।

२ भोग्योः भुजे पुत्रः न [ १३८७ ]- माता पिताके

हाथमें जैसे पुत्र रहता है, उत्तीप्रकार ( जाभिः अत्के वा अद्यत् ) तोमरस छलनीमें सूदृढ होता है।

३ जारः योपणां न [ १३८७ ]- जितप्रकार जार स्त्रीके पास जाता है, उत्तीप्रकार सोम ( योनिं आसदत् ) कलशमें जाता है।

४ घरः न [ १३८७ ]- जितप्रकार पति पत्नीके पास जाता है, उत्तीप्रकार सोम कलशमें जाता है।

५ वेधाः न [ १३८८ ]- ज्ञानी जितप्रकार अपने घर जाता है, उत्तीप्रकार ( हरिः योनिं आसदम् ) हरे रंगका सोम कलशमें जाता है।

६ पिता इय ह्यसे [ १३९० ]- जैसे पिताको प्रार्थना करते हैं धंसे ही लोग तेरी - इन्द्रकी - प्रार्थना करते हैं।

७ अश्वं न [ १३९४ ]- घोड़ेके समान ( अप्तुरं सोमं परि पिचत )- पानीमें मिलाये जानेवाले सोमको मिलाओ। घोडा जितप्रकार पानीमें स्नान करता है, उत्तीप्रकार तोमरस पानीमें मिलाता है।

८ होता पशुमन्ति स्वदा इय [ १३९९ ]- हवन करने-वाला जैसे गायते वृषत घरमें जाता है, उत्तीप्रकार ( सुता रेभन् पविषं पर्यति ) सोमरस शब्द करता हुआ छलनीमें जाता है।

९ वरुणः न [ १४०८ ]- वरुणके समान ( पना वसान ) सोम जलमें रहता है।

१० भागं ह्य [ १४१२ ]- पिताके पास अपने धनका हिस्सा जिस प्रकार मांगते हैं, उत्तीप्रकार इन्द्रसे ( राघः ईमहे ) हम धन मांगते हैं।

११ छत्तिः इय [ १४१२ ]- बड़े घोड़ेके समान ( ते मदीं शरणा ) तेरा विशाल आश्रय स्थान हमारे योग्य है।

१२ चाजी अत्यः न [ १४१८ ]- तीक्ष्ण भागनेवाले घोड़ेके समान सोम ( द्रोणं सजक्षे ) बर्तनमें डेगने जाता है।

१३ मातृभिः दिनुः न [ १४१९ ]- माताले जैसे पुत्र मिलकर रहता है, उत्तीप्रकार सोम ( अङ्गिः सं ह्यग्ये ) पानीसे मिलकर रहता है।

१४ मर्याः योपां न [ १४१९ ]- जितप्रकार पृथक् स्त्रीको और जाता है, उत्तीप्रकार सोम पानीकी तरफ जाता है।

१५ निकिः वरुभिः न [ १४२० ]- जैसे गरुड वार्यनि पक्षीको धक्ते हैं, उत्तीप्रकार ( गानः पयसा चमपु मूर्धानं अग्नि अधिण्डित ) गायें अपने ब्रह्मते बर्तनमें रहने-

साले श्रेष्ठ सोमको आच्छादित करती है । सोमरसमें गायका रूप मिलाया जाता है ।

१६ जमदग्निपत् आर्येण नः [ १४२८ ]- जमदग्निने समान श्रविके योग्य बान हमें दे ।

१७ धर्मं स्वामं न [ १४३१ ]- जिसप्रकार धर्मयें नामक यज्ञको प्रश्रयलित करते हैं, उसीप्रकार ( सुवृत्किभिः तपत )

उत्तम स्तुतियोगि द्वयको उत्साहित करो ।

१८ महः पात्रस्य इय [ १४३२ ]- महान् बर्तनके तामान दू ( घृष्यः ते ) महान् बलवान् है ।

१८ [ अग्निः ] शोचिष्या पात्रं न [ १४३४ ]- जैसे अग्नि अपनी उजालाते बर्तनको जला देती है, उसीप्रकार ( घृष्युः ) नामतें श्रोत्र ( ) है द्वय ! तू नियम न पालनेवाले दुष्टोंका नाश कर । ;

### द्वादशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋषिदेवतयानं	ऋषि.	देवता	छन्दः
		( १ )		
१३७९	१।७४।१	गोतमो राहूयणः	अग्निः	गायत्री
१३८०	१।७४।२	गोतमो राहूयणः	"	"
१३८१	७।१५।३	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
१३८२	१।७४।३	गोतमो राहूयणः	"	"
		( २ )		
१३८३	६।१६।४३	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१३८४	६।१६।४४	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१३८५	६।१६।४५	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१३८६	९।१०।१।१३	प्रजापतिर्वेदवामित्रो वाच्यो वा	पशुमानः सोम.	जगुप्
१३८७	९।१०।१।१४	प्रजापतिर्वेदवामित्रो वाच्यो वा	"	"
१३८८	९।१०।१।१५	प्रजापतिर्वेदवामित्रो वाच्यो वा	"	"
१३८९	८।११।१३	सोमदिः काश्यपः	इन्द्रः	काकुभः प्रगाथ = ( विषमा ककुपु, सभा सतोबृहती )
१३९०	८।११।१४	सोमदिः काश्यपः	"	"
१३९१	८।११।१५	मेघातिथि - मेघ्यातिथी काश्यपे	"	बृहती
१३९२	८।११।१५	मेघातिथि - मेघ्यातिथी काश्यपे	"	"
१३९३	८।११।१६	मेघातिथि - मेघ्यातिथी काश्यपे	"	"
१३९४	९।१०।१७	ऋजिन्वा भारद्वाजः	पशुमानः सोमः	काकुभः प्रगाथ = ( विषमा ककुपु, सभा सतोबृहती )
१३९५	९।१०।१८	ऊर्बंसया आशिरसः	"	"
		( ३ )		
१३९६	६।१६।३४	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	अग्निः	गायत्री
१३९७	६।१६।३५	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१३९८	६।१६।३६	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१३९९	९।१७।१	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	पशुमानः सोम	त्रिष्टुप्
१४००	९।१७।१	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
१४०१	९।१७।३	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"

मन्त्रसंख्या	श्रुत्येवस्थानं	श्रुतिः	शेषता	छन्दः
१४०२	८१२५।७	तिररचोरानिरसः	इन्द्रः	अनुष्टुप्
१४०३	९१२५।८	तिररचोरानिरसः	"	"
१४०४	९१२५।९	तिररचोरानिरसः	"	"
( ४ )				
१४०५	५११३।१	सुतंभर आग्नेयः	अग्निः	गायत्री
१४०६	५११३।२	सुतंभर आग्नेयः	"	"
१४०७	५११३।३	सुतंभर आग्नेयः	"	"
१४०८	९१९०।१	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	पवमानः सोमः	त्रिष्टुप्
१४०९	९१९०।२	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"
१४१०	९१९०।३	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"
१४११	८११०।५	नुमेध-पुरुमेधावागिरसो	इन्द्रः	प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती )
१४१२	८१२०।६	नुमेध-पुरुमेधावागिरसो	"	"
१४१३	८१२०।७	सोमर्षिः काष्यः	अग्निः	काकुभः प्रगाथः= ( विषमा ककुप् समा सतोबृहती )
१४१४	८११९।४	सोमर्षिः काष्यः	"	"
( ५ )				
१४१५	११२७।७	शुभ्रः सोम आजीमतिः	"	गायत्री
१४१६	११२७।८	शुभ्रः सोम आजीमतिः	"	"
१४१७	११२७।९	शुभ्रः सोम आजीमतिः	"	"
१४१८	९१२३।१	गोषा गोतमः	पवमानः सोमः	त्रिष्टुप्
१४१९	९१२३।२	गोषा गोतमः	"	"
१४२०	९१२३।३	गोषा गोतमः	"	"
१४२१	८१३।१	मेघवातिभिः काष्यः	इन्द्रः	प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती )
१४२२	८१३।२	मेघवातिभिः काष्यः	"	"
१४२३	९१७०।१	रेणुर्वंश्वाभिः	पवमानः सोमः	जगती
१४२४	९१७०।२	रेणुर्वंश्वाभिः	"	"
१४२५	९१७०।३	रेणुर्वंश्वाभिः	"	"
( ६ )				
१४२६	९१९७।३	कुसुत आगिरसः	"	त्रिष्टुप्
१४२७	९१९७।५	कुसुत आगिरसः	"	"
१४२८	९१९७।६	कुसुत आगिरसः	"	"
१४२९	८१८९।५	नुमेध-पुरुमेधावागिरसो	इन्द्रः	अनुष्टुप्
१४३०	८१८९।६	नुमेध-पुरुमेधावागिरसो	"	"
१४३१	८१८९।७	नुमेध-पुरुमेधावागिरसो	"	"
१४३२	१११७।१	अगस्त्यो मैत्रावरुणः	"	बृहती
१४३३	१११७।२	अगस्त्यो मैत्रावरुणः	"	रक्षभोषोषो बृहती
१४३४	१११७।३	अगस्त्यो मैत्रावरुणः	"	अनुष्टुप्



## अथ ऋषोदशोऽवस्थाः ।



अथ पद्यप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ६-३ ॥

[ १ ]

( १-२० ) १ कविर्भाविः; २, १, १६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ अतितः काश्यपो वेवली वा; ४ सुकल आगिरसः;  
 ५ विश्वामित्रोः; ६, ८ वसिष्ठो नैमिष्यदग्निः; ७ नरो प्राणाय, १०, १७ विरवाभिषो वाथिनः; ११ वैधातिभिः  
 काव्यः; १२ नारत वीरानसाः; १३ वज्रत आत्रेयः; १४ मयुचन्द्रो वैश्यामित्रः; १५ उजाना काव्यः; १८ हर्मतः प्राणायः;  
 १९ बृहद्विष आयर्वेण, २० मृत्युमयः शीतक ॥ १, ३, १५ पवमानः शीमः; २, ४, ६, ७, १४, १९, २०  
 इन्द्रः; ८ सारस्वानुः; ९ सारस्वती; ११ सधिता; १२ बहुधनस्पतिः; १३ अग्निः पवमानः; १३ मित्रावरुणो;  
 १६-१८ अग्निः; १८ हर्मोषि वा; ५ सूर्यः ॥ १, ३-४, ८-१४, १६ (२-३) १७, १८ गायत्री; २ (१ ३)  
 अनुष्टुप्; २ ( ४ ) गृह्णी; ६, ७ प्रगाथः = (विद्यया गृह्णी, समा सतो गृह्णी); १६ ( १ ) सर्वमाना;  
 १५ १९ विश्वुप्; २० ( १ ) अग्निः; २० ( २-३ ) अतिशयवरो, ५ जगती ॥

१४३५ पवस्व वृष्टिमा सु नोऽवाभूमिं दिवस्परि । अयस्मा गृह्णीरियः ॥ १ ॥ ( ऋ ९।४९।१ )  
 १४३६ तथा पवस्व धारया यया गाय इहागमन् । जन्यास उप नो गृह्ण ॥२॥ ( ऋ. ९।४९।२ )  
 १४३७ घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥ ( ऋ ९।४९।३ )  
 १४३८ स न ऊर्जे ऋग्ण्यं पवित्रं धाव धारया । देवांसि शृण्वन् हि कम् ॥४॥ ( ऋ. ९।४९।४ )  
 १४३९ पवमानो असिष्यद्द्रष्टाः स्वयंपजहन्त । प्रत्यद्द्रोषधनुचः ॥ ५ ॥ १ ( ची ) ॥  
 [ धा० २३ । उ० १ । २०० ४ ] ( ऋ ९।४९।५ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १४३५ ] हे सोम ! तू ( विद्यः घृष्टिः ) सुलोकते, मुष्टिको ( नः सु आ पवस्व ) हमारे लिए उत्तम रीतिसे मोके ला । ( अर्था ऊर्जे परि ) पानोकी सहर्षे उछले, तथा ( अ-यस्मा गृह्णीः इयः ) रोषरहित अजुत सारा सब हर्षे ॥ १ ॥

[ १४३६ ] हे सोम ! तू ( तथा धारया पवस्व ) जब धारासे यहां बरिब हो ( यया जन्यासः गायः ) जितनी सहायतासे इवाच गाये ( इह नः गृह्ण उप आगमन् ) यहां हमारे घर माये ॥ २ ॥

[ १४३७ ] हे सोम ! ( यज्ञेषु देव-पीतमः ) पवनं देवीं द्वारा बाहा गया तू ( अस्मभ्यं घृतं धारया पवम् ) हर्षे धारारूप-मुष्टिकरूपसे पानो दे अर्थात् ( घृष्टिं आ पव ) बरसाता पिरा ॥ ३ ॥

[ १४३८ ] हे सोम ! ( सोम ) वह तू ( नः ऊर्जे ) हमारे अग्रके लिए ( अन्वयं पवित्रं धारया वि धाय ) अर्थात् सतनीसे पारोके रूपमें नीचेके बर्तनमें पिरा । ( देयासः हि कं शृण्वन् ) बंब तेरा वह सब सुनें ॥ ४ ॥

[ १४३९ ] ( रक्षांसि अथ जंघनम् ) रक्षसोंका माता करते हुए ( रुचः प्रत्यधम् रोचयन् ) अपने लेज्जो पहलेके भगन ही प्रकानित करते हुए ( पवमानः असिष्यद्द्रु ) छाता कानेबाता सोम नीचेके बर्तनमें टपकता है ॥ ५ ॥

३२ [ साय. हिन्दी भा १ ]

[ ३ ]

- १४५३ विभ्राद् बृहत्पितृ सोम्यं मघ्वायुर्दधयज्ञपतावविहुतम् ।  
वातजूता यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपति बहुधा वि राजति ॥ १ ॥ ( ऋ १०।१७०।१ )
- १४५४ विभ्राद् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।  
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपन्नहा ॥ २ ॥ ( ऋ १०।१७०।२ )
- १४५५ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुचम विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।  
विश्वभ्राद् भ्राजा महि सुषो दृश उरु पप्रथे सह औजो अच्युतम् ॥ ३ ॥ ५ ( जि ) ॥  
[ धा० २७ । उ० ३ । स्व० ३ ] ( ऋ १०।१७०।३ )
- १४५६ इन्द्रं क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।  
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूतं यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥ ' ऋ ७।३१।२६ )
- १४५७ मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्याये माशिवसोऽव क्रष्टः ।  
त्वया वयं प्रवतः श्वश्वतीरपोऽति दूर तरामसि ॥ २ ॥ ६ ( ल ) ॥  
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] । ऋ ७।३१।२७ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः।

[ १४५३ ] ( विभ्राद् ) विशेष प्रकाशनेवाला सुमं ( यज्ञपती ) यज्ञ करनेवालेको ( अ-धि-हुतं आयुः दधय् ) आरोग्यपूर्ण शोभायुं देता है । ( यः वातजूतः ) जो वायुको गति देनेवाला ( त्मना अभि रक्षति ) स्वयं सबका रक्षण करता है, ( प्रजाः पिपति ) प्रजाओंका अच्छी तरह पालन करता है और ( बहुधा वि राजति ) अनेक प्रकारसे सुबो-धित होता है, ऐसा वह इन्द्र ( पृहत् सोम्य मधु पिबतु ) बहुत सोमरसकी मीठा पिय पिये ॥ १ ॥

[ १४५४ ] ( विभ्राद् बृहत् ) विशेष प्रकाशयान् और महान्, ( सुभृतं वाजसातमं ) उत्तम पोषण करनेवाला तथा सन्न देनेवाला, ( धर्मं दिवः धरुणे अर्पितं ) अपने पसंते छलोकको धारण करनेके लिए नियुक्त किया गया, ( अ-मित्र-हा ) निरक्षयते अन्नओंका नाश करनेवाला, ( वृत्र-हा ) वृत्रको मारनेवाला, ( दस्यु-हन्तमं ) दुष्टोंको मारनेवाला ( असुर-हा ) राक्षसोंका विनाशक, ( सपन्न-हा ) वृत्रको मारनेवाला सुमं ( ज्योतिः जज्ञे ) अपना प्रकाश फैलाता है ॥ २ ॥

[ १४५५ ] ( इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिः ) यह सुमंका तेज अनेक तेजोंका प्रकाशक ( उत्तमं विश्वजित् ) उत्तम विश्वविजयी ( धनजित् पृहत् उच्यते ) धनको जीतनेवाला तथा महान् क्रष्टः जाता है, ( विश्वभ्राद् भ्राजः ) विश्वको प्रकाशित करनेवाला और स्वयं प्रकाशयन् ( महि सुषे ) यह महान् सुमं ( दृशे उरु सह ) शीलनेमें महान् सामर्थ्यवान् ( अच्युतं औजः पप्रथे ) अविनाशी तेजस्वी बलको प्रसारित करता है ॥ ३ ॥

[ १४५६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( माः प्रतुं आभर ) हमारा यज्ञ पूर्ण कर । ( यथा पिता पुत्रेभ्यः ) जंते पिता पुत्रोंको पान देता है, उत्तमप्रकार ( माः शिक्ष ) हचे दे । हे ( पुरुहुत ) अनेकों द्वारा सहायताके लिए बुलाये गए इन्द्र । ( यामनि ) यामनें हृष ( जीताः ) मनुष्य ( ज्योतिः अदीमादि ) तेज प्राप्त करें ॥ १ ॥

[ १४५७ ] हे इन्द्र ! ( अ-ज्ञाताः ) अज्ञात ( वृजनाः अ-दियायसः दुराध्यायः ) दुष्टिल पापी और क्षमणल वादु ( माः माः अयमधुः ) हम पर आक्रमण न करें । हे ( दूर ) दूर ! ( त्वया वयं प्रवतः ) तेरे कारण मुझलित हुए हुए हम ( दास्यतीः अपः भाति तरामसि ) बहुतसे रक्षकोंके प्रबन्धोंके कारण हों ॥ २ ॥

१४५८ अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र प्रास्व परे च नः ।

विश्वा च नो जरितुन्सरपते अहा दिवा नक्तं च रक्षिणः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।६।१।७ )

१४५९ प्रभङ्गी शूरो मघवा तुयीमघः सम्मिश्रो वीर्याय कम् ।

उमा ते बाहू वृषणा शरकृता नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥ २ ॥ ७ ( वी ) ॥

[ धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ ८।६।१।८ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१४६० जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तश्हवामहे ॥ १ ॥ ८ ( रौ ) ॥

[ धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ ७।९।६।४ )

१४६१ उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्बा भूत् ॥ १ ॥ ९ ( दौ )

[ धा० १ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।६।१।० )

१४६२ तस्सविभुषरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ( ऋ ३।६।१।० )

१४६३ सोमार्नं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवर्तं य औशिजः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१।८।१ )

[ १४५८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अद्य अद्य ) आज ( श्वः श्वः ) कल ( परे च नः ) और परसों कर्पात् हुयेहा हमारी ( प्रास्व ) रसा कर । हे ( सरपते ) सरजनोंके पालक इन्द्र । ( विश्वा च अहा ) सब विष ( नः जरितुन् ) हम स्तुति करनेवालोंके ( दिवा नक्तं च रक्षिणः ) दिन और रात रक्षा कर ॥ १ ॥

[ १४५९ ] ( [ अर्थ ] मघवा ) यह इन्द्र ( वीर्याय कं ) तुलसे पराक्रम करनेके लिए ( प्र-भंगी शूरो ) दानुओंको तोड़नेवाला, शूर ( तुयी-मघः सम्मिश्रः ) बहुत घनवान् और सबसे मिलकर रहनेवाला है । हे ( दातप्रजो ) संकषों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( या वज्रं नि मिमिक्षतुः ) जो वज्रकी धारण करती है, ऐसी ( ते उमा बाहू वृषणा ) तेरी दो दोनों भुजायें बहुत बलवान् ॥ २ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १४६० ] ( जनीयन्तः ) स्त्रीवाले ( पुत्रीयन्तः ) पुत्रवाले ( सुदानव अद्यद्यः ) उत्तम धन देनेवाले और धाने रहनेवाले हम ( सरस्वन्तश्हवामहे ) सरस्वतीकी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ १४६१ ] ( उत नः प्रियासु प्रिया ) और हमें प्रिय वस्तुमें अल्पतः प्रिय ( सप्तस्वसा ) सात तगोरुनी बहूमें जिससे मिलती है, ऐसी ( सुजुष्टा सरस्वती ) अच्छी तरहसे सेवित सरस्वती नदी ( स्तोम्बा भूत् ) श्रुति करनेके योग्य हो गई है ॥ १ ॥

[ १४६२ ] ( यः सविता देवः ) जो सविता देव ( नः धियो प्रचोदयात् ) हमारी बुद्धियोंके प्रेरित करता है, उस ( देवस्य सविभुः ) सविता देवके ( तस्स विभुषरेण्यं भर्गः ) उत श्रेष्ठ तेजका ( धीमहि ) हम ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

[ १४६३ ] हे ( ब्रह्मणः स्पते ) भगवन्ते ! ( सोमार्नां ) गोप कर्पात् सातके प्राप्त योग सापनके अनुभवसे ( कक्षी-वर्तं ) छातीमें रहनेवाले प्राणके ( स्वरण-सु-जरणं ) उत्तम प्रकारसे आने जानेवाला ( कृणुहि ) कर तथा ( यः औशिजः ) जो प्राण धारण ना शक्य है, उसे भी बलवान् कर ॥ २ ॥



- १४६४ अग आगृधपि पवस आ सुवोर्जामिषं च नः । अरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥३॥ १० (य) ॥  
[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६६।१९ )
- १४६५ ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥१॥ ( ऋ. ९।६८।१ )
- १४६६ श्रतमृतेन सपन्तेपिरे दसमाशते । अद्रुहा देवो यधेते ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६८।४ )
- १४६७ वृष्टिधावा रीत्यापेपस्पती दानुमत्याः । घृहन्तं गर्तमाशते ॥ ३ ॥ ११ (वा) ॥  
[ धा० ९ । उ० १ । ल० २ ] ( ऋ. ९।६८।६ )
- १४६८ युञ्जन्ति अन्नमरुषं चरन्ते परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।१ )
- १४६९ युञ्जन्तरय काभ्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णु नृवाहसा ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।२ )
- १४७० केतुं कृण्वन्नकेतवे पशो मर्या अपेशसे । सद्युपद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥ १२ (य) ॥  
[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।६।९ )

॥ इति सप्तमं. खण्ड ॥ ४ ॥

[ १४६४ ] हे (अग्रे) प्रकाशस्वरूप ! ( नः आगृधि पवसे ) हमें शोषामु दे । ( अः ऊर्जे ) हमें मल और ( यधं ) मग दे, ( दुच्छुनां आरे याधस्व ) दुष्टोंको दूर कर ॥ ३ ॥

[ १४६५ ] ( ता ) वे मित्र और वरुण देव ( नः ) हमें ( पार्थिवस्य दिव्यस्य ) पृथ्वीपरके और ध्रुवोत्तरे ( महः रायो शक्तं ) महान् पन वेनेके लिए समर्थ हों । हे मित्रावरुण ! ( वां महि क्षत्रं ) तुम्हारा महान् क्षात्रमल ( देवेषु ) देवोंमें प्रतिष्ठ है ॥ १ ॥

[ १४६६ ] ( श्रतमेन कृतं सपन्ता ) यजते यज्ञ पूर्ण करते हुए ( श्रितेरे दशं आशते ) चाहने योग्य मलको प्राप्त करते हैं । ऐसे ( अ-द्रुहा देवो यधेते ) ग्रीह न करनेवाले मित्र और वरुण अपने सामर्थ्यसे बढते हैं ॥ २ ॥

[ १४६७ ] ( वृष्टि-धावा ) वृष्टिके लिए जितकी स्तुति होती है, ( रीत्याया ) योग्य रीतिले जिते बस्तुमें प्राप्त होता है, वेते ( दानुमत्याः रूपः पती ) बाल वेनेके योग्य अन्नके ल्वाभी वे मित्र और वरुण ( घृहन्तं गर्तं आशते ) महान् रथपर बैठते हैं ॥ ३ ॥

[ १४६८ ] लोग ( अन्नं ) आदित्यके रूपमें रहनेवाले, ( अरुषं ) तेजस्वी अग्निके रूपवाले ( चरन्ते ) चलते हुएके समान शोचनेवाले पर ( परि तस्थुषः ) स्थिर रहनेवाले धूम्रका ( युञ्जन्ति ) उपासनाके लिए उपयोग करते हैं । उस इन्द्रकी ( रोचन्ते दिवि रोचन्ते ) प्रकाशकी किरणें ध्रुवोत्तरे प्रकाशित होती हैं ॥ १ ॥

[ १४६९ ] ( अरुष रथे ) इस इन्द्रके रथमें ( काभ्या विपक्षसा ) मुखर और शोर्न तरक बूटे हुए ( शोणा धृष्णु ) बाल रथके और धनुर्धरो हृषनेवाला तथा ( नृवाहसा हरी ) इन्द्रको बोरकर तेजानेवाले घोड़े ( युञ्जन्ति ) जोड़े जाते हैं ॥ २ ॥

[ १४७० ] हे ( मर्या ) मनुष्यो ! ( अ-केतये ) लक्ष्मीको ( केतुं कृण्वन् ) बाल वेते हुए और ( अपेशसे पेशः ) रूप दर्शनोंके रूप वेते हुए ( उपद्भिः समजायथाः ) उपवासके बार धूम्रका उदय होता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ धीया खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

१४७१ अयस्सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।

त्वद्द्वयं चक्रुषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सामम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।१० )

१४७२ स ईश्वरो न सूरिषाड्योजि महः पुरुषि सातये वसूनि ।

आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्पाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।१२ )

१४७३ शुभ्रीं शर्घो न मारुते पवस्वानमिशस्ता दिव्या यथा विट् ।

आपो न मधु सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पूतनापाव्न यज्ञः ॥ ३ ॥ १३ ( घी ) ॥  
। पा० २६ । उ० ४ । ख० ४ ] ( ऋ. १।८।१३ )

१४७४ त्वममे यज्ञानां ह्यतो विशेषां हितः । देवैर्मिमानुपे जने ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।१ )

१४७५ स नो मन्द्रामिरश्वरे जिह्वामिपंजा महः । आ देवान्वाक्षि यक्षि च ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।२ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १४७१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे ) यह सोमरथ तेरे लिए निजाता जाता है, ( तुभ्यं पवते ) तेरे लिए ही छाया जाता है, ( त्वं अस्य पाहि ) तू इसका पान कर, ( त्वं ह्ययं चक्रुषे ) तूने ही इसे बनाया है, ( इन्दुं सोमं ) इस चमकनेवाले सोमको ( मदाय युज्याय ) आनन्दके लिए और सहायताके लिए ( त्वं ववृषे ) प्रस्वीकार करता है ॥ १ ॥

[ १४७२ ] ( सः ईश्वरः ) यह इन्द्र महान् है । ( सूरि-षाड्योजि नः ) बहुतसा योत से जानेवाले यज्ञके समान ( पुरुषि वसूनि सातये ) बहुत सारा पान देनेके लिए ( अयोजि ) यज्ञमें इसकी नियुक्ति की गई है, ( आट् ई ) इसके बाद ( विश्वा नहुष्याणि जाता ) सब अनुष्योक्त विरोध करनेवाले सब उत्पन्न हो गए हैं, ये ( ऊर्ध्वा ) ऊपर मुल करने ( पने स्वर्पाता नवन्त ) वनमें होनेवाले पुत्रमें जायें और वहाँ नष्ट हो जायें ॥ २ ॥

[ १४७३ ] हे सोम ! ( शुभ्रीम् ) तू बलवान् है । ( मारुते शर्घो नः ) मरुतोंके बलके समान बलभाषी होनेके लिए ( पवस्व ) तू शूद्र हो । ( यथा दिव्या विट् ) जिसप्रकार दिव्य मरुतों ( मन्त्रमिशस्ता ) अर्पित ब्रह्मण होता है, उसीप्रकार ( आपो नः ) पानीके समान पवित्र होकर ( मधु नः सुमतिः भव ) उसी समान हमारे लिए उत्तम सुख देनेवाला हो । ( सहस्राप्साः ) अनेक रथोंमें रहनेवाला तथा ( पूतनापाव् ) गन्धुको हरानेवाला तू ( यज्ञः नः ) यज्ञके समान पुत्रनीय है ॥ ३ ॥

[ १४७४ ] हे ( अग्ने ) मन्ने ! ( त्वं विश्वेषां यज्ञानां ह्यतो ) तू सब यज्ञोंमें हवन करनेवाला है, और ( देवैर्मिमानुपे जने हितः ) देवोंके द्वारा मानवी प्रजाओंमें तू स्थापित किया गया है ॥ १ ॥

[ १४७५ ] हे अग्ने ! ( सः नः अप्यरे ) वह तू हमारे यज्ञमें ( मन्द्रामिः जिह्वामिः ) आनन्द बढ़ानेवाली यज्ञाग्निके द्वारा ( महः यज्ञः ) देवोंका यज्ञन कर । ( देवान् वा यक्षि ) देवोंकी मुलाकर सा ( यक्षि च ) और उन्हें हवि अर्पण कर ॥ २ ॥

- १४७६ वेत्था हि वैषी अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अमे यज्ञेषु सुकृत्वा ॥ ३ ॥ १४ ( ह्रीं )  
 [ धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।१६।१ )
- १४७७ होता देवो अमर्यः पुरस्तादेति मायया । विदधानि प्रचोदयन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।२।७।७ )
- १४७८ वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र गीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।२।७।८ )
- १४७९ शिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥ ३ ॥ १५ ( रा ) ॥  
 [ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ऋ. ३।२।७।९ )  
 ॥ इति पञ्चम खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

- १४८० आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७।२।१ )
- १४८१ ते जानत स्वमीकयंश्च सं वत्सासा न मातृभिः । मियो नसन्त जाभिभिः ॥ २ ॥  
 ( ऋ. ८।७।२।४ )
- १४८२ उप स्रक्षेषु यन्ततः कृण्वते धरणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्यः ॥ ३ ॥ १६ ( च ) ॥  
 [ धा० १२ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।७।२।५ )

[ १४७६ ] ( वेत्था सुकृतो देव अग्ने ) हे विधाता, उत्तम कर्म करनेवाले देव अग्ने । तू ( यज्ञेषु ) यत्नमें ( अध्वन पथ. अजसा च वेत्था ) यत्नके पासके और दूरके मार्ग में जानता है, इसलिये यज्ञसाधनको मार्ग दिता ॥ ३ ॥

[ १४७७ ] ( होता अमर्य देव. ) हवन करनेवाला अमर देव अग्नि ( विदधानि प्रचोदयन् ) कर्मको प्रेरित करता हुआ ( मायया ) कुशलतासे ( पुरस्तात् पति ) आगे आता है ॥ १ ॥

[ १४७८ ] ( वाजी वाजेषु धीयते ) बलवान् अग्नि मुझमें शत्रुता भाग करनेके लिए स्थापित किया जाता है, ( अध्वरेषु प्रगीयते ) यत्नमें बहते जाया जाता है, इसलिये ( विप्रः ) यह जानी अग्नि ( यज्ञस्य साधन ) यज्ञका साधन है ॥ २ ॥

[ १४७९ ] अग्नि ( शिया चक्रे ) कर्ममें प्रश्रित किया गया है, इसलिये वह ( वरेण्यः ) श्रेष्ठ है और वह ( भूतानां गर्भमाददे ) सब प्राणियोंमें व्याप्त है । ( पितरं दक्षस्य तना ) यत्नके पासके अग्निको बसती वेदीरूपी यह तुम्ही पारण करती है ॥ ३ ॥

॥ यथा पाचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १४८० ] हे अश्वयंजो ! ( सुते ) सोमरसमें ( रोदस्यो- अभिश्रियम् ) सुलोका और पृथ्वीलोकमें शोभा बनाने वाले ( श्रियं मासिञ्चत ) दूधको मिलाओ । बारमें ( रसा वृषभं दधीत ) ये दूध बलवान् सोमको अपने अन्तर धारण करते हैं ॥ १ ॥

[ १४८१ ] ( ते स्य ओष्य ) वे गावें अपने स्थावको ( जानत ) जानती हैं, ( वत्सासा. मातृभिः न ) बछड़े जिसप्रकार अपनी माताभक्ति प्राप्त करते हैं उसीप्रकार वे गावें ( जाभिभिः मिथ नसन्त ) अपने बापयोंके साथ मिलती हैं ॥ २ ॥

गावेंके दूधके स्थान [ घर ] सोमके वर्णन है, यह उन्हें मालूम है ।

[ १४८२ ] ( उपस्रक्षेषु यन्ततः ) यथासाध्वनि भक्षण करनेवाले अग्निके ( स्यः ) अन्नरूप गौ दूधके ( धारणं ) धारण करनेवालेकी ( दिवि उपस्रक्षते ) अन्तरिक्षमें स्थापित करते हैं । बारमें ( इन्द्रे अग्ना नमः ) इन्द्र और अग्निकी सब दूध देने ह ॥ ३ ॥

- १४८३ तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वपत्सृग्णः ।  
 सद्यो जज्ञानो नि रिणाति श्वूनंतु म विश्वे मदन्त्युमाः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१२०।१ )
- १४८४ यावृधानः श्वसा भूर्यजाः श्वुदोसाय भियसं दधाति ।  
 अघ्ननच व्यनच सस्ति सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१२०।२ )
- १४८५ त्वं क्रतुमपि यजन्ति विश्वे द्वियं देते त्रिभवंत्युमाः ।  
 स्वादाः स्वादायः स्वादुना सृजा समदाः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३॥ १७ ( षी ) ॥  
 [ धा० २३ । उ० ५ । स० ४ ] ( ऋ. १०।१२०।३ )
- १४८६ त्रिकद्रुकेषु महिषा यवाशिरं तुविशुभ्मस्तृम्पत्  
 सोममपिषाद्विष्णुना सुतं यथावधम् ।  
 स हं ममाद महि कर्म कवेवे महामुरुधं सैनं  
 सश्रद्धो देव सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १२।२।१ )

[ १४८३ ] ( तत् ज्येष्ठं इत् ) यह ज्येष्ठ यह ही ( भुवनेषु जास ) तप भुवनेर्नो व्याप्त होता है, ( यतः ) जिससे ( उग्रः त्व्यपत्सृग्णः जज्ञे ) उग्र और तेजस्वी बलसे युक्त सूर्य प्रकट हुआ । ( जज्ञानः सद्यः श्वूनं निरिणाति ) उत्पन्न होते ही जज्ञने जती समग तप धनुर्भोगी नष्ट किया । ( यं विश्वे जमाः अनुमर्गितं ) जिसे वैश्वर तप प्राणो मत्स्य होते हैं ॥ १ ॥

[ १४८४ ] ( यावृधाः यावृधानः ) बलके कारण श्वनेवाला तथा ( भूर्यजाः श्वुः ) अघ्ननागतित पुत्र बुद्धीका यत् इय ( दासाय भियसं दधाति ) शत्रुके अन्तःकरणमें भय उत्पन्न करता है, ( अघ्ननत् च व्यनत् च सस्ति ) प्राण केनेवाले और प्राण न खेनेवाले दोनोंका हित करता है, हे इन्द्र । ( ते मदेषु ) तेरे आत्मन्में ( प्रभृता सं नघन्त ) बड़े हुए सब लोग तेरी भक्ति करनेके लिए एकत्रित होते हैं ॥ २ ॥

[ १४८५ ] हे इन्द्र । ( विश्वे अपि देो क्रतुं यजन्ति ) सब यमस्य तेरे लिए ही यज्ञ करते हैं, ( यत् पते जमाः ) जिस समय ये यज्ञ करनेवाले यजमान ( द्वि त्रिः भवन्ति ) साथी करके यी अथवा पुत्र होनेके बाद लोग होने हैं, उस समय हे इन्द्र । ( स्वादाः स्वादायः ) विषये भी श्रिय समनेवाले [ सत्ताय ] को ( स्वादुना संसृजा ) त्रिय [ सत्तय चाले माता पिता ] से संयुक्त कर । ( अद्ः मधु ) आत्ममें इस त्रिय तजानको ( मधुना सु अभि योधीः ) चीनरुची मधुरतासे युक्त कर ॥ ३ ॥

[ १४८६ ] ( महिषः तुविशुभम् ) महान् और अधिक तापस्पर्शवान् ( तृम्पत् ) मूल हुआ हुआ इन्द्र ( त्रिकद्रुकेषु सुतं ) तीन बलनमें निकाले गए ( यवाशिरं सोमं ) शत्रुके आर्येगे मित्रिण सोमरवरो ( विष्णुना दधावसं अपियत् ) विष्णुके साथ इच्छानुसार पीता है । ( सः ) यह सोमरस । महान् ऊर्ध्वं हं ) महान् बिलगत तेजस्वी इत इन्द्रको ( महि कर्म कवेवे ) महान् कर्म करनेके लिए ( ममाद् ) आगन्वित करता है । ( सत्यः इन्द्रः ) तापस्पर्श और चमकनेवाला ( देवः सः ) विष्णुमय युव नष्ट लोग ( सत्यं देवं ) अविनाशी तथा तेजस्वी ( यने इन्द्रं सद्यत् ) इस इन्द्रको प्राप्य होता है ॥ १ ॥

१४८७ साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ  
 साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मघो विचर्षणिः ।  
 दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं  
 सश्वद्वो देवस्य सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम्

॥ २ ॥ ( ऋ २।२।२ )

१४८८ अध त्विषीमास्यभ्योजसा कृषि युधामवदा  
 रोदसी आपणदस्य मजमना प्र वावृधे ।  
 अधत्तान्यं जठरे प्रमरिच्यते प्र वेतय सैनं  
 सश्वद्वो देवस्य सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम्

॥ ३ ॥ १८ ( थि ) ॥

[ पा० १४। उ० २। २७० १३ ] ( ऋ. २।२।२ )

॥ इति षष्ठ खण्ड ॥ ६ ॥

॥ इति षष्ठप्रपाठके तृतीयोऽर्चः ॥ ३ ॥ षष्ठ प्रपाठकरण समाप्त ॥ ६ ॥

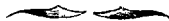
॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

[ १४८७ ] हे इन्द्र ! तू ( क्रतुना साकं जातः ) यज्ञके साथ प्रकट हुआ है, ( ओजसा साक ववक्षिथ ) अपने सामर्थ्यसे विश्वका भार उठानेकी तू इच्छा करता है । हे ( प्रचेतन ) श्रेष्ठ ज्ञानी इन्द्र ! ( वीर्यैः साकं वृद्धः ) अपने पराक्रमसे तू महान् हुआ है, ( मृधः सासहिः ) सज्जानमें शत्रुओंकी तू हराता है । ( विचर्षणिः स्तुवते ) विदोष ज्ञानी तू स्तुति करनेवालोंकी ( राधः काम्यं वसु दाता ) धन और इष्ट ऐश्वर्यदेता है । ( सत्य इन्दुः ) तव सोमरस ( देवस्य सः ) धमकते हुए ( सत्यं देवं ) सत्य देव ( एनं इन्द्रं सश्वत् ) इस इन्द्रको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

[ १४८८ ] हे इन्द्र ! ( अध ) धर्म ( त्विषीमान् ) तेजस्वी तूने ( ओजसा कृषि युधा अभ्यमवत् ) अपने सामर्थ्यसे युद्धमें कृषिकी ओता और ( रोदसी आ पृणात् ) घायापृष्ठीकी अपने तेजसे भर दिया । ( अस्य मजमना प्र वावृधे ) इस सोमके बलसे तू और अधिक बड़ा हुआ है, उस इन्द्रने ( अम्यं जठरे अधत्त ) सोमरसका एक भाग अपने पेटमें और दूसरा भाग ( हं प्रारिच्यते ) देवोंके लिए रख दिया है । हे इन्द्र ! तू दूसरे देवोंको ( प्र वेतय ) सोम पीनेके लिए प्रेरित कर । ( सत्य इन्दुः ) तव तथा ( देवः सः ) विश्व गुणोंवाला यह सोम ( सत्यं देवं एनं इन्द्रं सश्वत् ) तव देव इस इन्द्रको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥



## त्रयोदश अध्याय

### इन्द्र देवता

इस अध्यायमें इन्द्र देवताका वर्णन इस प्रकार है—

१ यः नव नवति पुरः वाहोऽज्ञसा विभेद । वृत्रहा  
महि अवधीत् [ १४५१ ]- इन्द्रने अपने बहुत बलसे शत्रुके  
१९ सारोंकी लोकाधीर इस धूमकी मारनेवाले इन्द्रने अहिही  
मारा ।

२ समस्य जेग्यस्य शर्घतः अभिशस्तेः सुधिव्  
अयस्वरात् [ १४५३ ]- सब जीतने योग्य तथा स्वर्ण करने-  
वाले सब शत्रुओंको नष्ट करनेके वह इन्द्र तुम्हारा अधिक  
संरक्षण करेगा ।

३ शयसा वावृधानः भूर्योजा शक्रः दासाय  
भियसं दधाति [ १४५४ ]- अपने बलसे बधनेवाला,  
धनगत सामर्थ्यसे गुप्त, दुष्टोंका शत्रु इन्द्र शत्रुके बिलमें भय  
उत्पन्न करता है ।

४ ऋतुना साकं जातः । ओजसा साकं पयश्चिथ ।  
धीर्नि साकं वृद्धः । मृघः सासहि [ १४५७ ]- कर्ण  
करनेके लिए यह प्रसिद्ध है । अपने सामर्थ्यसे वह सब  
कार्योका मार उठाता है । अपने पराक्रमसे वह महान् हुंसा  
है । यह सब शत्रुओंको हराता है ।

५ अज्ञाताः वृजनाः अशियासः दुराध्याः नः मा  
असक्रमुः [ १४५७ ]- अज्ञात, कुटिल, पापी और असफल  
शत्रु हम पर हमला न करें ।

६ हे शूर ! त्वया धर्मं प्रयतः शश्वतीः अयः जति  
सामसि [ १४५७ ]- हे शूर इन्द्र ! तेरी सहायतासे सुर-  
क्षित हुए हुए हय बहुत सक्तीके प्रवाहसे पार हों ।

७ हे इन्द्र ! अद्य द्यं गये च नः ब्रास्व [ १४५८ ]-  
आज, बल और परतों अवति होनेका हमारा तु सत्क्षण कर ।

८ विश्वा च अहानः दिवा नक्तं च रक्षेयः [ १४५८ ]  
- सब दिन और रातमें हमारा संरक्षण कर ।

९ अयं मयया धीर्योयं कं, प्रभंभी शूरः, तुर्णामयः  
संमिष्टः । हे इन्द्र दातकतो ! ते उभा माहू, मुणया या  
धयं नि मिमिष्टतुः [ १४५९ ]- यह इन्द्र तुमसे पराक्रम  
करनेवाला, शत्रुका मार करनेवाला शूर, बहुत धनवान् और  
सबसे मिल मित्रावर होनेवाला है । हे शत्रुओं कार्य करने-

वाले इन्द्र ! वयको धारण करनेवाली तेरी शोनों शूनामें  
बलवान् है ।

१० स ई महः, भूरियाद् रथ इच, पुरुणि वसुति  
खातये अयोजि । आत् ई विश्वा नहुष्पाणि जाता,  
ऊर्धा वने स्वर्पाता नवन्त [ १४७२ ]- वह किः रंशय  
महान् इन्द्र है । बहुत सारा वजन दोकर ले जानेवाले रथके  
समान बहुत सारा धन देनेके लिए उस रथमें उसने घोडाना  
की है । हे इन्द्र ! तय मनुष्योंका विरोध करनेवाले शत्रुओंके  
उत्पन्न होनेपर उनका नाश बनमें होनेवाले युद्धमें हो, और  
मृक ऊपर करके वे मष्ट हो जाएं ।

११ त्विषीमान् ओजसा कृषिं शुचा अभ्यमचत् ।  
अस्य मज्जमा प्र चावृषे [ १४८८ ]- उस तेजस्वी इन्द्रने  
अपने सामर्थ्यसे शत्रुको युद्धमें जीत लिया है । वह अपने  
बलसे बहुत महान् हो गया है ।

इस प्रकार इन्द्रके सामर्थ्यका वर्णन है । अब उसके विषयमें  
दूसरे वर्णन देखिए—

१२ सुतोमिः इन्दुभिः सोमिभिः यदि प्रतिभूषध,  
मेधिरः विश्वस्य वेद, धृपत् इत् एयते [ १४४२ ]-  
सोमरसके साथ यदि तुम इन्द्रके पास गए, तो वह दुष्टिमान्  
इन्द्र तुम्हारे साथ अतीरप जानेका और तुम्हारी सब कामना-  
ओंकी पूर्ण करेगा ।

१३ असा इत् अन्धसः सुतं प्र भर [ १४५१ ]- उस  
इन्द्रको सोमरस भूपूर दो ।

१४ सः शिवाः इन्द्रः नः सखा, अभ्यायत् गोमत्  
यवमत् उरु घारा इच दोहते [ १४५२ ]- वह कल्याण  
करनेवाला इन्द्र हमारा मित्र है । वह हमें दुग्धमा इष्ट देने-  
वाली घायोंके समान, पीने, गाय और पान्य बहुत देता है ।

१५ हे इन्द्र ! नः क्रतु मा मर । यथा पुत्रेभ्यः  
पिता, नः शिक्ष । हे पुत्रहृत् ! यामानि जीवाः ज्योतिः  
अग्नीमहि [ १४५६ ]- हे इन्द्र ! हमारा धत पूर्ण कर ।  
धते पिता अपने पुत्रोंको पत्र देता है, उसीप्रकार तू हमें धन  
दे । हे प्रशंतनीय इन्द्र ! यामें हम मनुष्य तेजस्वी बनें ।

१६ हे इन्द्र ! अयं सोमः तुम्यं सुण्ये । तुभ्यं पयते ।  
तयं अयं पाहि [ १४७१ ]- हे इन्द्र ! यह सोमसा तेरे  
लिए निबोधा गया है । तेरे लिए छात्र छात्रा है । तू उसे दो ।

१७ विचर्याणिः स्तुवते राघः काम्यं यस्तु दाता  
[ १४८७ ]- विद्योय तानीं तु स्तुति करनेवालेको धन और  
चाहे हुए ऐश्वर्यं देता है ।

१८ अयनन् च यनन् च सरिन [ १४८४ ]-  
स्वातोच्छ्वास करनेवाले और न करनेवाले दोनोंका हित  
करनेवाला है ।

१९ विश्वे त्वे फलुं सुंजन्ति [ १४८५ ]- सब यज्ञ-  
कर्ता तेरे लिए ही यज्ञ करते हैं ।

२० महिषः तुविश्रुष्मः तृष्णत् यवाशिरं सोमं  
विष्णुना यथावशं आपियत् । सः महान् ऊर्वे ई महि कर्म  
कर्तये ममाद् [ १४८६ ]- महान् और अत्यधिक सामर्थ्य-  
वान् तृष्ण हुआ हुआ इन्द्र सत्सुते मिले हुए सोमको विष्णुके  
साथ इच्छानुसार पीता है । वह सोमरस उस महान् इन्द्रको  
महान् कामं करनेके लिए हाँवत करता है ।

२१ अस्य रये काम्या विपक्षला शोणा, धृष्णु  
नृयाहसा हरी सुंजन्ति [ १४६९ ]- इस इन्द्रके रथमें  
सुर, दोनों तरफ जोड़े जानेवाले, साल रणके, सधुओंको  
हरानेवाले, इन्द्रको डोकर ले जानेवाले दो घोड़े जोड़े जाते हैं ।

इस प्रकार इन्द्र और इन्द्रके रथका वर्णन है ।

### सूर्य इन्द्र

सूर्यके रूपमें इन्द्र और सूर्यका भी वर्णन इस अध्यायमें  
आया है—

१ हे सूर्य ! धृतामयं प्रथमं नर्यापसं अस्तारं  
अभि उदेयि [ १४५० ]- हे सूर्य ! प्रसिद्ध यन्त्राल, बलवान्,  
मनुष्योंका हित करनेवाले बाताके सामने तु उदय होता है ।

२ विश्वाद् यज्ञपतीं आवि-श्रुतं गायु दधत् [ १४५३ ]-  
विश्वों प्रकाश करनेवाला सूर्य यज्ञ करनेवालेको आरोग्य  
पूर्ण दीर्घायु देता है ।

३ रमना अभिरश्नाति [ १४५३ ]- वह स्वर्षका सरक्षण  
करता है ।

४ विश्वाद् बृहत् सुभृतं वाजस्रतमं, धर्मन् दिवः  
धरुणे आपित, सत्यं अभिश-हा, वृश्याहन्तमं अशुर-  
हा सपत्न-सा ज्योतिः जज्ञे [ १४५४ ]- विश्वों प्रकाशमान्  
और महान्, उत्तम भरणपीयण करनेवाला और अन्न देनेवाला,  
अपनी शक्तिते घृत्नोको धारण करनेके लिए नियुक्त किया  
गया, निरघयते धनुओंका नाश करनेवाला, शूर्पोंको मारने-  
वाला, और राक्षसोंका विनाशक, सपत्नीकी मारनेवाला सूर्य  
अपना प्रकाश फैलाता है ।

५ इद् अष्टं ज्योतिषां उत्तमं ज्योतिः, विश्वजित्,  
धनजित् बृहत् उच्चते । विश्वध्राद् ध्राजः महि सूर्यः  
हृषी, उरुः सहः अच्युतं भोजः पप्रथे [ १४५५ ]- वह  
श्रेष्ठ और उत्तम सूर्यका तेज अनेक तैत्तोंका प्रकाशक है । वह  
तेज उत्तम विद्ययजिनपी, धन जीतनेवाला और बहुत महान्  
है ऐसा कहते हैं । विश्वको प्रकाशित करनेवाला, स्वयं  
प्रकाशी यह महान् सूर्यं दिनमें महान् सामर्थ्यवान् अधिनासी  
और तेजस्वी बलको प्रकाशित करता है ।

६ प्रज्जं अरुषं वरन्तं परि तस्थुषः युजन्ति ।  
रोचना दिवि रोचन्ते [ १४६८ ]- आदित्यरूपी तेजस्वी,  
चलनेके समान दिशाई देनेवाले, पर स्थिर रहनेवाले सूर्यका  
उपयोग सायक उपासनामें करते हैं । उसकी प्रकाश शिरसे  
धाकासयं प्रकाशित होती है ।

७ तत् उपेष्टं भुवनेषु आत, यतः उग्रः त्वेषुन्म्याः  
जयो । जवानः सध दायून् निरिणाति । य विश्वे ऊनाः  
अनुमदन्ति [ १४८६ ]- वह ज्येष्ठ ब्रह्म सब भुवनोंमें  
व्याप्त है, जिससे बहुत तेजस्वी सूर्य उत्पन्न हुआ । उत्पन्न  
होते ही उसने उसी समय सब धनुओंको गच्छ किया, उसे  
बेलाकर सब प्राणी प्रसन्न होते हैं ।

८ मर्याः । अनेतये केतुं कृषवन्, अपेदासे पेदा,  
उपद्भिः समजायथाः [ १४७० ]- हे मनुष्यो ! सहा-  
नियोंको ज्ञान देने हुए, रुचरहितोंको रूप देते हुए उय कालके  
बाद यह सूर्यं उदय होता है ।

९ सवितुः देवस्य तद्य धरेण्यं भर्गः धीमति, धः नः  
धियः प्रचोदयात् [ १४६२ ]- सविता देवके उस श्रेष्ठ  
तेजका हम ध्यान करते हैं, जो सविता-सूर्य-हमारी बुद्धियोंकी  
उत्तम प्रेरणा दे ।

इस प्रकार सूर्यका वर्णन इस अध्यायमें है । अन्तका मन्त्र  
पायथी मन्त्र है, और वह प्रसिद्ध होनेके कारण सबको पता  
है । अब अनिका वर्णन देखें—

### अग्नि

१ हे अग्ने ! नः आभूयिषि ऊर्जे इषं च पवसे [ १४६४ ]  
-हे अग्ने ! हमें दीर्घायु बल और अन्न दे ।

२ दुच्छुनां आरे वाघस्य [ १४६४ ]- दुष्टोंकी दूर कर ।

३ हे अग्ने ! त्वं विश्वेषां यशानां होता, देवेभिः  
मातुषे जने हितः [ १४७४ ]- हे अग्ने ! तू सब यशोंका  
होता, देवों द्वारा मनुष्योंमें स्थापित किया गया है ।

४ सः नः आचरे मन्द्राभिः जिग्द्वाभिः महः यज,

देवान् वा वक्षि यक्षि च [ १४७५ ]- वह वृहस्पति यतमें आनन्द यज्ञानेके लिए ज्वालामुखि प्रवीण हो, और देवोंके लिए यज्ञन कर। देवोंकी बुलाकर ला और उनके लिए यज्ञ कर।

५ वेद्यः सुक्रतो देव अग्ने । यज्ञोऽध्वनः पयः अंजसा घेत्थ [ १४७६ ]- हे पिपाता और उत्तम काम करनेवाले अग्नि देव ! तू यज्ञके पासके धीर दूतके मार्गकी जानता है, इसलिए तू उत्तम मार्ग दिखा।

६ होता अमर्यः देवः विद्वयानि प्रबोद्धयन् मायया पुरस्तात् पति [ १४७७ ]- होता अमर देव कर्माकी प्रेरणा करते हुए कुशलतासे जागे जाता है।

७ अग्नीं वाजेभु धीयते । अश्वरेभु मणीयते । विद्वः यज्ञस्य साधनः [ १४७८ ]- यज्ञवान् अग्नि युद्धमें स्थापित किया जाता है। घोनी पक्षीमें जब अग्निके समान द्वेष प्रबलित होता है, तभी युद्ध होता है। यतमें अग्नि से जाया जाता है। यह जानी अग्नि यज्ञका साधन है।

अग्निके वर्णनमें यज्ञ करना ही अग्निका मुख्य काम है। आरोग्यसाधन और शौर्यम् इत यज्ञके फल है। शरीरमें अग्निकी उष्णताके रहनेके कारण शरीररूपी यज्ञशालामें सूर्यादि देवोंके अंश रहते हैं। और उष्णताके नष्ट होते ही सब देव निकल जाते हैं, यह अनुभव सबको है। अग्निके अंगोंके वर्णन मानवशरीरमें होनेवाले शतसयत्सदीय यतमें देखें। उससे अंगकी आन्तरिक भाषा स्पष्ट रूपसे समझमें आ जायेगी और सब अंगोंका अर्थ स्पष्ट हो जायेगा।

### मित्र और वरुण

१ ताः नः पार्थिवस्य दिग्भ्यस्य महः राघः शक्यः, वेपेयुर्धं मदि दश्वं [ १४६५ ]- वे दो मित्र और वरुण देव पार्थिव और विष्य ऐसे दोनों प्रकारके धन देनेमें समर्थ हैं। सब देवोंमें इनका महान् बल प्रसिद्ध है।

२ प्रतेन कर्तं सप्रता इषिरे दक्षं आशाते, अनुहा देवी धर्षते [ १४६६ ]- यज्ञके यज्ञ पुत्र करते हुए चाहने योग्य बल प्राप्त करते हैं। क्रोधन करनेवाले मित्र और वरुण दोनों देव अपने सामर्थ्यसे धरते हैं।

३ ष्टिष्ठाया रीत्याया दानुमत्या इयः पती, मुहूर्त्तं गतं आशाते [ १४६७ ]- बुद्धिके लिए मित्रकी रक्षित होती है, मगतिसे लिए जो काम करते हैं, वान देवोंकी और मित्रकी बुद्धि जानी है। ऐसे अन्नके स्वामी वे मित्र और वरुण महान् रूपमें बँडते हैं।

इन अंगोंमें मित्र और वरुण देवता हैं। पार्थिव और विष्य ऐश्वर्यमें वे देते हैं। क्षात्रकर्ममें कुशल होनेके कारण वे शत्रुओंकी हत्याकर बुर करते हैं। वे मलयान् हैं। एक काम समाप्त हुआ कि दूसरा शुरु कर देते हैं। आलस्यमें समय नष्ट नहीं करते। भावसमें शगडते नहीं। प्रगति करनेके सब कार्य करते हैं। ये इनके अण्डे घुग पहण करने योग्य हैं।

### सरस्वती

सरस्वती देवीके सम्बन्धमें भी इस अध्यायमें वर्णन है—

१ उत नः प्रियास्तु प्रिया, सत-स्वसा सुसुधा सरस्वती स्तोम्या भूम [ १४६१ ]- हमें प्रिय बस्तुओंमें प्रिय, सात बहिनों द्वारा सेवित सरस्वती स्तुतिके योग्य ही गई है।

सरस्वती विद्या और सङ्कतिकी देवी है। अपने देशकी सङ्कति सबकी प्रिय होनी चाहिये। यह सङ्कति सबसे अधिक प्रिय है सब प्रशस्तनीयोंमें यह सर्वाधिक प्रशस्तनीय है। इतकी सात बहिनें हैं। धर्म भावना, भाषा, सभ्यता, सत्कार्य करनेकी इच्छा, शक्ति, संस्कृति और मातृभूमि में सरस्वतीकी सात बहिनें हैं। इनकी सेवा प्रत्येककी करनी चाहिये।

२ जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानयः अभयः सरस्वन्तं हृद्यामहे [ १४६० ]- स्त्रीयाले गृहस्त्री, पुत्रकाते, उत्तम धान देनेवाले, सबके आसे रहनेवाले, ऐसे हम सब सरस्वतीकी सहायताके लिए प्रार्थना करते हैं।

सब प्रकारके लोगोंकी इस विद्यादेवीकी उपासना करनी चाहिये। सब प्रकारकी श्रमतिसे लिए विद्याका उपयोग होता है। विद्यामें भावे रहनेवाला ही समझें भागे रहता है।

### प्राणकी उपासना

शौर्यादिय प्राण करनेके लिए प्राणकी उपासना अत्यन्त आवश्यक है—

१ हे ब्रह्मणस्पते ! सोमामां कर्हृयिन्तं स्वर्षं कुरुहि, याः श्रीशिवः [ १४६२ ]- हे शानके स्वामी ! हे शानपते ! ( स-उमार्त ) ब्रह्मविद्याही उपा है, इस ब्रह्म-विद्यासे मुक्त ब्रह्मजानी ही योग्य है। उन जानियोंने योग साधनके अनुभवसे तब प्राणोंका सात होता है, उन छातीमें रहनेवाले प्राणोंकी ( स्वर्यणं सु-अरणं ) उत्तम प्रकार और देव-उत्तम माने जाने-वाला करो। यह प्राण करने वराम होता, ही महान् सिद्धि मिलेगी।



शान प्राप्त करे, फिर प्राणोंको बशमें करें । पूरक और रेचक इनका अभ्यास करें । इस छातीमें रहनेवाला प्राण यदि बशमें हो गया तो दीर्घजीवन प्राप्त हो जाएगा । निरोगी रहा जा सकेगा । स्वास्थ्य सुख मिलेगा ।

इस प्रकार इस अध्यायमें ही महत्त्वको साधना बताई है । सो इसका अनुष्ठान करेगा, उसको स्वास्थ्य, आरोग्य और दीर्घजीवनका सुख प्राप्त होगा ।

### सोम

अब इस अध्यायमें सोमका वर्णन इस प्रकार है—

१ मधुः [ १४४४ ]- भूरे रगना ।

२ स्वतयाः [ १४४४ ]- अपनी शरितसे बढोवाला ।

३ अक्षयः [ १४४४ ]- समरुनेवाला ।

४ दिविर्युक [ १४४४ ]- स्वर्गमें रहनेवाला, हिमालयकी ऊँची चोटी पर उषनेवाला ।

५ मनस पति [ १४४८ ]- मनसा स्वामी, यनका उत्साह बढानेवाला ।

६ सुधर्मि [ १४७१ ]- सामर्थ्यवान्, मधुमान् ।

७ सुमतिः [ १४७२ ]- उत्तम बुद्धि देनेवाला, मनको उत्तेजित करनेवाला ।

८ दिवः धृष्टि नः आ धवस्व, अपां ऊर्मि परि, अयक्ष्माः घृहतीः इव । [ १४३५ ]- घुलोकसे वृष्टि कर ताकि पानीकी लहरें उछलें और रोगरहित अन्न मिले ।

९ तथा धारत्या पवस्व, यया जन्यासः गावः इह नः गृहं उप धामान् [ १४३६ ]- उस धारसे छनता जा, जिसके कारण दुग्धाध और मछड़े सहित गर्भें हमारे घरके पास भावें और उनका दूध सोमरसमें मिलाया जावे ।

१० नः ऊर्मिं अव्ययं पविर्षं धारत्या विधाव [ १४३८ ]- हमारे बल बढानेके लिए भेड़के बालोंको छलनीमेंसे धार बनाकर नीचे बतनमें गल्थी जा ।

११ रक्षंसि अपज्वनन्, रुचः प्रलब्ध रोचयन् पचमानः अलिप्यन् [ १४३९ ]- राक्षसोंको मारकर पहलेके समान तेजकी किरणोंको प्रकाशित करते हुए छलकर बतनमें जा ।

१२ विश्वानि विद्युषे अरंभमाय जग्मये अपश्वाद् वाग्ने विपीयते अस्मि प्रति भर [ १४४० ]- सबको जलनेवाले, बहुत प्रगति करनेवाले यत्नमें जानेवाले, धामें रहनेवाले, सोम पीनेकी इच्छा करनेवाले इस इन्द्रके लिए सोमरस बी ।

१३ हे सोम । अ-मिष-हा विश्वचर्षणिः देवेभ्यः अनुकामद्वन्द्वं गधे द्रां पवस्व [ १४४७ ]- हे सोम । तू दानुओंको मारनेवाला, सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला, देवोंके लिए दानुद्वन्द्व कर्म करनेवाला तू गायोंके कल्याण करनेके लिए मूढ हो । गायका दूध सोममें मिलाया जाता है, इस कारण गायोंको आनन्द होता है ।

१४ हे सोम । इन्द्राय पातवे मदाय परिपिच्यसे [ १४४८ ]- हे सोम । इन्द्रके पीनेके लिए और उसे आनन्द देनेके लिए तू यत्नमें गिरता है । छाना जाता है ।

१५ हे इन्दो पचमान । सुवीर्यं रयिं नः युजा इन्द्रेण नः रिरीहि [ १४४९ ]- हे मूढ होनेवाले सोम ! उत्तम वीर्यसे युक्त घन हमारी सहायता करनेके लिए इन्द्रके लेकर हर्षे व ।

१६ यथा दिव्या विद् अनभिदास्ता [ १४७२ ]- जिस रीतिसे दिव्य प्रजायें आनन्दित रहें ऐसा कर ।

१७ नः मधु सुपतिः भय । सहाप्लासः घृतनापाह [ १४७३ ]- हमारे बुद्धि, शोध हो उत्तम हो ऐसा कर । अनेक कर्म करनेवाला और सन्तुष्टनाको हरानेवाला हो ।

१८ सुते धिर्यं आसिचत । रखा वृषभं दधीत [ १४८० ]- सोमरसमें दूध मिलाओ, ताकि उस दूधसे यत्नवान् सोमका धारण हो ।

१९ ते स्व्यं ओष्यं जानत, धरत्वासः मातृभिः न, जामिभिः मिधः नसन्त [ १४८१ ]- वे गायें अपना घर जानें । जिसप्रकार बच्चे अपनी माताओंसे पितकर रहते हैं उसीप्रकार अपने बंधुओंसे वे मिलकर रहें ।

गायोंका घर सोम है इसका अर्थ है कि सोममें गायका दूध मिलाया जाता है । गायका दूध अपने घर जाता है अर्थात् सोममें दूध मिलाया जाता है । यह आत्कारिक वर्णन है ।

### सोममें दूध

१ हस्तच्युतेभिः अद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन, मधौ मधु आधावत [ १४८५ ]- हाथोंसे कूटे जानेवाले पत्थरोंके द्वारा कूटकर निबोदा गया सोमरस शुद्ध करो और इस मधुर सोमरसमें दूध मिलाओ ।

२ नमसा उपसीदत, दध्ना अभिधीणीत, इन्द्रे इन्दुं दधातन, [ १४८६ ]- नमस्कार करते हुए सोमके पास जा बँडो और उस सोमरसमें बहो या दूध मिलाओ और बहु सोमरस इन्द्रको बी ।

इस प्रकार सोमको इन्द्रके लिए देनेका वर्णन है । अर्घ्य देवोंको भी इसप्रकार सोमरस पीनेके लिए दिया जाता है ।

## सुभाषित

१ दिवः सृष्टिं नः सु आ पवस्व, अयक्ष्नाः वृहतीः  
द्वयः [ १४३५ ]- आकाशसे वर्षा अन्धी तरह गिरा और  
रोगग्रहित बहुत साध अन्न हमें दे ।

२ तथा घारत्या पवस्व, यथा जम्ब्यासः गाधः इह  
नः शुहं उपागमन् [ १४३६ ]- तू भूतलाधार बरसात  
गिरा, जिसके कारण दूध देनेवाली गायें यहाँ हमारे घर आयें ।

३ देवास्तः कं शृण्वन् [ १४३८ ]- देव श्रानन्दते  
पाद सुनि ।

४ रक्षांसि अपजघनत्, रचः प्रक्षयत् रोचयन्  
[ १४३९ ]- राक्षसीको मारकर, पहलेके समान अपने तेजसे  
तेजस्वी हो ।

५ विश्वानि त्रिदुये, अरंगमाय जग्मये, अपश्च्यत्  
अध्वने प्रतिभर [ १४४० ]- सब जाननेवाले, बहुत प्रगति  
करनेवाले, सबसे आगे रहनेवालेको भरपूर बल दे ।

६ मेधिर- विश्वस्य वेद, धूपत्, तं इत् एपते  
[ १४४१ ]- बुद्धिमान् इन्द्र तुम्हारे सारे मनोरथोंको जानता  
है, वह धनुर्ब्रह्मको दूरता है, और तुम्हारे सब कामनाओंको  
पूरा करता है ।

७ स्वमस्य ज्येस्य शर्घतः अभिशस्तेः सुवित्  
अपस्वरत् [ १४४३ ]- सब नीतने योग्य और तर्पण  
करनेवाला नाम करके यह इन्द्र तुम्हारा नि शाय मारका  
करेगा ।

८ अमिप्रहा विश्वर्चणिः देवेभ्यः अनुकामठत्  
[ १४४७ ]- तू धनुर्ब्रह्मका नाम करनेवाला, सब मनुष्योंका  
कल्याण करनेवाला और देवोंके अनुकूल कामें करनेवाला है ।

९ गवे दं पवभ्य [ १४४७ ]- गायोंको मुक्त दे ।

१० मनः वित् मतसा पतिः [ १४४८ ]- मनकी  
शक्तिको जानें और मन पर शासन करें ।

११ सुधीर्य रथि नः रिरीहि [ १४४५ ]- उत्तम वराक्रम  
करनेके सामर्थ्यसे युक्त मन हमें दे ।

१२ ध्रुतामर्षं ध्रुपं नर्पापस अस्तारं अमि उदेवि  
[ १४५० ]- प्रसिद्ध धनवानों, बलवानों तथा मनुष्योंके  
हित करनेवालोंके तथा दान देनेवालोंके सामने तू प्रकट  
होता है ।

१३ यः नय नयति पुरः यादोजसा विमेद् [ १४५१ ]  
- जिस इन्द्रने शत्रुओंकी नियन्त्रणसे मगरियोंको अपने बाहु-  
बलसे लौ चला ।

१४ वृन्-हा आहि अघधीत् [ १४५१ ]- वृत्रको  
मारनेवाले इन्द्रने अहिको मार दिया ।

१५ स्वः शिवा इन्द्रः नः मखा, अश्यावत्, गोमत्  
यजमत् उरघारा इव दोदते [ १४५२ ]- वह कल्याण  
करनेवाला इन्द्र हमारा मित्र है, वह घोड़े, गाय और जो  
इनके साथ मिलनेवाला अन्न, बहुत दूध देनेवाली गायोंके  
समान, हमें देता है ।

१६ विश्वाद् यजपतो अ-विच्छ्रुतं वायुः वृधत्  
[ १४५३ ]- सूर्यपथ करनेवालेको धारोग्यमप दीर्घायु देता है ।

१७ बृहत् सौम्यं मधु पितृत् [ १४५३ ]- बृहत्से  
सोमरसके मोठे पेष यह पौचे ।

१८ वातजृत्तः त्यना अमि रक्षन्ति [ १४५३ ]- वायुसे  
प्रेरित किए गए स्वयंकी हर तरहसे रक्षा करता है ।

१९ प्रजाः पिपतिं [ १४५३ ]- प्रजाओंका उत्तम योग्य  
करता है ।

२० वहुधा विराजति [ १४५३ ]- अनेक रीतियोंमें  
वह विशेष तेजस्वी होता है ।

२१ विश्वाद् वृहत् सत्यं अमित्रहा दस्युहन्तम  
असुरहा स्वपत्नहा, ज्योतिः जग्मे [ १४५४ ]- विद्वेय  
तेजस्वी और विशाल, निश्चयसे धनुर्ब्रह्मका नामक, बुद्धीको  
मारनेवाला, असुरोंको मारनेवाला, सपनों [ शत्रुओं ] को  
मारनेवाला तेजस्वी वीर उत्तम हुआ है ।

२२ इद् श्रेष्ठ ज्योतिषां उत्तमं ज्योतिं विश्ववित्  
धनाजित् वृद्धं उच्यते [ १४५५ ]- ये तेजस्वी पशवियों  
उत्तम तेजस्वी, सब जगत् विजय करनेवाले, धन नीतनेवाले  
महान् और प्रसिद्ध तेज हैं ।

२३ विश्वसाद्, आजः महि सूर्यं हरो उर सह-  
अच्युतं व्योज पप्रथे [ १४५५ ]- सबको प्रकाशित करने-  
वाला, स्वयं प्रकाशमान् यह महान् सूर्य श्वेतवर्णका सामर्थ्य-  
वान्, अविनाशी और तेजस्वी सामर्थ्यको फैलाता है ।

२४ वान्त्वा अर [ १४५६ ]- धत उत्तम रीतिसे  
समाप्त कर ।

२५ यथा पुत्रेभ्य पिता, नः शिक्ष [ १४५६ ]- जैसे  
अपने पुत्रोंको पिता धन देता है, उत्तमकर तू हमें दे ।

२६ यामानि जीवाः ज्योतिः अदीमहि [ १४५६ ]-  
यहमें हुए मनुष्य प्रजा प्राण हैं ।

२७ अजाताः वृजनाः अशियामः तुराध्याः नः मा  
अच्यमनुः [ १४५७ ]- अजान, कुटिल, पापी और क्षमण  
तनु हृत्पर माकण्य न हैं ।

२८ हे शूर ! त्वया वयं प्रवतः शश्वतोः अपः  
वति तरामसि [ १४५७ ]- हे शूर ! तेरी सह्यागताते सुर-  
क्षित हुए हुए हम बहुतसे सकटोंके प्रबहते पार हों ।

२९ अद्य द्यवः परे च नः प्रास्य [ १४५८ ]- आज,  
कल और परतो अर्थात् हवेश्वा हमारी रथा कर ।

३० हे सरपते ! विश्वा च अह्ना नः दिवा नक्तं च  
रक्षियः [ १४५८ ]- हे सज्जनिके सरसक ! हमेशा हमें  
रिज और रात्रीमें सुरक्षित कर ।

३१ अयं मघया वीर्याय कं प्रमंगी शूरः तुयी-मघः  
संमिश्रः [ १४५९ ]- यह धनवान् इन्द्र तुझसे परक्रम  
करनेके लिए शत्रुको नष्ट करनेवाला, शूर, अत्यधिक ऐश्वर्य-  
वान् और मिलमिलाकर रहनेवाला है ।

३२ या वज्रं नि निमिश्रतुः ते उभा याद् वृषणा  
[ १४५९ ]- जो वज्रको धारण करते हैं वे तेरे दोनों माहू  
धनवान् हैं ।

३३ जनीयन्तः पुत्रियन्तः सुदानवः अग्रवः सर-  
स्वन्तं हवामहे [ १४६० ]- शत्रुके साथ रहनेवाले अपति  
विभाहित, पुत्रवाले, उत्तम दान देनेवाले, आगे रहनेवाले हम  
विघ्रावेदीको सह्यागताते लिए युक्त हैं ।

सरस्वान्त- विघ्राका उपासक, विद्वान्, सानी ।

३४ सरस्वती स्तोम्या भूम् [ १४६१ ]- विघ्रावेदी  
स्तुतिके योग्य है ।

३५ सचिनुः देवस्य तत् वरेण्यं भगं धीमहि, य  
न धियः प्रचोदयात् [ १४६२ ]- तबिला देवके उस श्रेष्ठ  
तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरणा  
देता है ।

३६ हे ब्रह्मणस्पते ! सोमानां कर्क्षीवन्तं स्वरण  
श्रुयुधि [ १४६३ ]- हे मानपते ! शत्रुके और योगसे छातीमें  
रहनेवाले प्राणको बन्धकी तरहसे आने और जानेवाला कर ।  
प्राणापानका बन्धास कर ।

३७ नः आर्युषि पयस्ये, न ऊर्जं ह्यं च [ १४६४ ]-  
हमें शौर्यापुण्य दे तथा हमें बल और अन्न भी दे ।

३८ दुष्टदुर्तां आरे वाघस्य [ १४६४ ]- दुष्टोंको  
दूर कर ।

३९ ता नः दिव्यस्य पार्यिकस्य महः रायः प्रापतं,  
पां वैषेपु मासि क्षत्रं [ १४६५ ]- वे तुम हमें धुणुके और  
पुष्पोपके पशुान् ऐश्वर्यको दो, बर्षाके तुम्हारा देवोंमें महान्  
दात प्रसिद्ध है ।

४० ज्ञानेन कृतं स्वपन्ता इपिरं दक्षं आशाते,  
अदुर्हं देवां वधेते [ १४६६ ]- सत्यसे सत्यका पालन  
करते हुए धार्मिके योग्य बल प्राप्त करते हैं, वे आपसमें ग्रीह  
न करनेवाले दोनों देव बढते हैं ।

४१ दानुमत्या इपस्पतीं युहुन्तं गतीं आशाते  
[ १४६७ ]- दान देनेवाले शत्रुके स्वामी महान् रथमें बैठते हैं ।

४२ प्रम्यं अरुपं चरन्तं परि तस्सुप, युञ्जति [ १४६८ ]  
- ध्यान करनेवाले उपासक सूर्यके तेजस्यों और चलायमान  
रथका उपासनाके लिए उपयोग करते हैं ।

४३ रोचना दिवि रोचन्ते [ १४६८ ]- उसकी किरणें  
आकाशमें प्रकाशित होती हैं ।

४४ अस्य रथे काम्या विपक्षस्ता शोणा घृष्ण  
नृवाहस्ता हरी युञ्जति [ १४६९ ]- इसके रथमें सुन्दर,  
बोनी तरफ जोड़े जानेवाले, साल रथके, शत्रुओंकी हुरानेवाले  
तथा वीरोंकी ओकर से जानेवाले दो घोड़े जोड़े जाते हैं ।

४५ अनेतये केतुं हृण्यन्, अपेशसे पेशः, उपद्भिः  
समजायथाः [ १४७० ]- अज्ञानीको भान देनेवाले, हृण-  
रहितको सुन्दर रूप देनेवाले सूयका उपाके आनेके बाद उदय  
होता है ।

४६ स. महः पुरुणि घसूनि सातये अयोजि [ १४७२ ]  
- इस महान् इन्द्रमें बहुत सारा धन देनेकी योजना बनाई है ।

४७ विश्वा नहुष्याणि जाता, ऊर्जां धमे स्वर्पाता  
नधन्त [ १४७२ ]- सबका विरोध करनेवाले शत्रु उत्पन्न  
हो गये हैं, वे ऊपर तिर करके बनमें होनेवाले युद्धमें नष्ट हों ।

४८ स हस्त्राप्ला. पुत्तापाद्य [ १४७३ ]- अनेक रूपों  
शत्रुतेनाकी हुरानेवाला वह धीर है ।

४९ अमस्यैः देवः विदधानि प्रचोदयन् मायया  
पुरस्तात् पति [ १४७४ ]- अमर देव सब उत्तम कर्मोंकी  
प्रोत्साहन देता हुआ तुमलगाते आगे जाता है ।

५० चार्जी चाजेपु धीयते [ १४७४ ]- बलवान् वीर  
मुझमें जाता है ।

५१ धिप्रः पशस्य साधनः [ १४७४ ] सानी धतकी  
गिद्ध करता है ।

५२ ते स्व ओक्यं जानत [ १४८१ ]- वे अपने घर  
जाते हैं ।

५३ धत्तासः माहृतिः [ १४८१ ]- लक्षके पातके  
साथ जाते हैं ।

५४ जासिमिः मिथ नसन्त [ १४८१ ]- अपने  
भार्यगिके साथ वे मिलकर रहते हैं ।

५५ तत् ज्येष्ठं इत् सुवनेषु आस [ १४८३ ]- यह श्रेष्ठ ब्रह्म निदमयसे भुवनेषु आस रहता है।

५६ यतः उग्रः स्वेष-सूनुमः जज्ञे [ १४८३ ]- जितसे उग्र तेजस्वी सूर्य प्रगट हुआ है।

५७ जज्ञानः स्वयः शत्रून् निरिणाति [ १४८३ ]- जल्पन होते ही वह शत्रुओंको मर्द करता है।

५८ यं चिम्बे ऊमाः अनु मदन्ति [ १४८३ ]- जिसे देखकर सब प्राणी आनन्दित होते हैं।

५९ शकसा वावृथानः भूर्योजाः शत्रुः दासाय भियसं दधाति [ १४८४ ]- सामर्थ्यसे बड़नेवाला तथा अन्नत शक्तियोंसे युक्त ऐसा वह दुष्टोंका शत्रु इन्द्र शत्रुके विरुद्ध मय जलपन करता है।

६० अव्यनत् च व्यनत् च सस्नि [ १४८४ ]- इबासोव्यनत्वात् करनेवाले और न करनेवाले दोनोंका हित करता है।

६१ ते मदेसु प्रभृता सं नवन्त [ १४८४ ]- तेरे आनन्दमें बड़े हुए सब लोग तेरो भक्ति करनेके लिए एक जगह इकट्ठे होते हैं।

६२ महां उरं ईं माहे कर्म कर्तये ममाद् [ १४८५ ]- महान्, अधिक और सामर्थ्यवान् शीरोको महान् कर्म करनेके लिए उत्साहित कर।

६३ ऋतुना साकं जातः [ १४८७ ]- कर्म करनेकी शक्तिके साथ नू उत्पन्न हुआ है।

६४ भोजसा साकं धयामिष्य [ १४८७ ]- अपने सामर्थ्यसे काम करनेकी तेरी इच्छा है।

६५ हे प्रचेतन ! धीर्यं साकं युजः [ १४८७ ]- हे उत्साही शीरो ! अपने पराक्रमसे नू महान् हुआ है।

६६ मृघः सासहिः [ १४८७ ] शत्रुको हरा।

६७ विचर्षणिः स्तुवते राघः काम्यं यस्तु दाता [ १४८७ ]- विदोब ज्ञानी नू स्तुति करनेवालेको धन और चाहे हुए ऐश्वर्यको देता है।

६८ त्विधीमान् भोजसा कृषिं युधा अग्नि अमयत् [ १४८८ ]- तेजस्वी नूने अपने सामर्थ्यसे हिलक शत्रुको युद्धमें जीत लिया है।

६९ रोदसी आ वृणात् [ १४८८ ]- पावापुमिषीको तेजसे भर दिया।

७० अद्य मग्मना प्र चावृधे [ १४८८ ]- इसके सामर्थ्यसे नू बड़ा।

७१ प्र चेतय [ १४८८ ]- नूतनोंको उत्तम प्रेरणा दे।

## उपमा

१ उरुधारा इय [ १४५२ ]- बहुतसा नूध बनेवाली पाणिके समान ( सः इन्द्रः दौद्यते ) वह इन्द्र धन देता है।

२ यथा पिता पुत्रेभ्यः, नः शिक्ष [ १४५६ ]- जैसे पिता पुत्रोंको धन देता है, उसीप्रकार हे इन्द्र ! नू हमें धन दे।

३ यथा दिव्या विद् अनभिदास्ता [ १४७३ ]- जित-प्रकार दिव्य प्रज्ञान आनन्दसे पवित्र रहते हैं, उसीप्रकार शीम पवित्र रहता है।

४ आपाः न [ १४७३ ]- पानीके समान शूड बुद्धि हूँ दे।

५ यक्षः न [ १४७३ ]- यक्षके समान नू प्रग्य है।

६ धत्सासः मावृभि न [ १४८१ ]- जितप्रकार यष्टके मातके पास आते हैं, उसीप्रकार अपने वाग्मयके साथ ये शीमरत्न आते हैं। शीमरत्न मत्तनमें गिरता है।

## त्रयोदशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रांतस्था	ऋषेर्देवानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
१४१५	१।७१।१	कविर्भाग्यः	वषमासः शीमः	गायत्री
१४१६	१।७१।१	कविर्भाग्यः	"	"
१४१७	१।७१।१	कविर्भाग्यः	"	"

३४ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

मंत्रतल्या	ऋग्वेदरथानं	श्रुतिः	वेद्यता	छन्दः
१४३८	५।४५।४	कविर्भागवः	पथमानः सोमः	गायत्री
१४३९	५।४५।५	कविर्भागवः	"	"
१४४०	६।४५।१	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	इन्द्रः	अनुष्टुप्
१४४१	६।४५।२	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१४४२	६।४५।३	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१४४३	६।४५।४	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	बृहती

## ( २ )

१४४४	५।११।४	असितः काश्यपो देवलो वा	पथमानः सोमः	गायत्री
१४४५	५।११।५	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१४४६	५।११।६	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१४४७	५।११।७	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१४४८	५।११।८	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१४४९	५।११।९	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१४५०	८।९३।१	मुकल आगिरसः	इन्द्रः	"
१४५१	८।९३।२	मुकल आगिरसः	"	"
१४५२	८।९३।३	मुकल आगिरसः	"	"

## ( ३ )

१४५३	१०।१७०।१	विभ्राद् सोमः	सूर्यः	अगती
१४५४	१०।१७०।२	विभ्राद् सोमः	"	"
१४५५	१०।१७०।३	विभ्राद् सोमः	"	"
१४५६	७।३१।२६	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	इन्द्रः	प्रगाथः=( विषमा बृहती तमा ततोबृहती )
१४५७	७।३१।२७	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
१४५८	८।६१।१७	भगः प्रागाथः	"	"
१४५९	८।६१।१८	भगः प्रागाथः	"	"

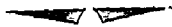
## ( ४ )

१४६०	७।१६।४	कसिष्ठो मंत्रावरणिः	रुद्रस्त्वान्	गायत्री
१४६१	६।६१।१०	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	सरस्वती	"
१४६२	३।३२।१०	विरवामित्रो पापिनः	वसिष्ठा	"
१४६३	१।१८।११	मेधातिथिः काश्वः	ब्रह्मणस्पतिः	"
१४६४	५।६६।१९	शतं धेनुमतः	अग्निः पथमानः	"
१४६५	५।६८।३	यजत आग्नेयः	मित्रावरणी	"
१४६६	५।६८।४	यजत आग्नेयः	"	"
१४६७	५।६८।५	यजत आग्नेयः	"	"
१४६८	१।६।१	मधुघन्वा वैश्वामित्रः	इन्द्रः	"
१४६९	१।६।२	मधुघन्वा वैश्वामित्रः	"	"
१४७०	१।६।३	मधुघन्वा वैश्वामित्रः	"	"

संक्रमंस्या	श्रावणस्थानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
१४७१	११८८१	उराना काव्यः	पयमानः सोमः	त्रिष्टुप्
१४७२	११८८१	उराना काव्यः	"	"
१४७३	११८८१७	उराना काव्यः	"	"
१४७४	६११६१	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	मिनिः	वर्षमाना
१४७५	६११६१	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	गायत्री
१४७६	६११६१	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१४७७	३१२७१७	विश्वामित्रो गायिनः	"	"
१४७८	३१२७१८	विश्वामित्रो गायिनः	"	"
१४७९	३१२७१९	विश्वामित्रो गायिनः	"	"

( ६ )

१४८०	८१७११३	हयंतः प्रागायः	अग्निः, हवीषि वा	"
१४८१	८१७११४	हयंतः प्रागायः	"	"
१४८२	८१७११५	हयंतः प्रागायः	"	"
१४८३	१०११२०१	बृहद्दिव आपर्वणः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१४८४	१०११२०१	बृहद्दिव आपर्वणः	"	"
१४८५	१०११२०३	बृहद्दिव आपर्वणः	"	"
१४८६	२१२११	गुत्समवः द्यौनकः	"	मण्डिः
१४८७	२१२१३	गुत्समवः द्यौनकः	"	अतिनामवरी
१४८८	२१२१२	गुत्समवः द्यौनकः	"	"



## अथ ऋतुर्द्धशोऽध्यायः ।



अथ सप्तमप्रपाठके प्रथमोऽर्चः ॥ ७-१ ॥

[ १ ]

( १-१६ ) १, ९ प्रियमेध आगिरसः; २ नृपेध-पुष्यमेधावागिरसो; ३, ७ प्रयदणस्त्रैवृष्णा; प्रसवस्युः पौदकुत्सः; ४ मृगन्तेषु आजीवतिः; ५ वसतः काण्वः; ६ अग्निस्तापसः; ८ विश्वमना वैषद्वचः; १० वसिष्ठो मंत्रावहनिः; ११ सोमिः काण्वः; १२ शतं वंशानताः; १३ वसुपथ शत्रेभ्यः; १४ गोतमो रातुतणः; १५ केतुराम्नेयः; १६ विकृष आगिरसः ॥  
१-२, ५, ८-९ इन्द्रः; ३, ७ पयमानः सोमः; ४, १०-११, १३-१६ अग्निः; ६ विश्वे देवाः, १२ अग्निः पयमानः ॥ १, ४-५, १२-१६ वायवो; २, १० प्रयासः-( विषया बृहती, तामा सतो बृहती ); ३, ७ ऋष्या बृहती; ६ अनुवृषु, ८-९ उष्णिक्; ११ बृहती ॥

१४८९ अग्निं प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्चं यथा विदे । सन्तु सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६९।४ )

१४९० आ हरयः ससृजिरेऽहृषीराधि वहिषि । यत्रामि संनवामहे ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६९।५ )

१४९१ इन्द्राय गाव आशिरं दुदुहे वसिष्ण मधु । यस्सीमृषहरे विदत् ॥ ३ ॥ १ ( हा ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।६९।६ )

१४९२ आ नो विश्वासु हृष्यमिन्द्रं सप्तसु भूषत ।  
उष ब्रह्माणि सवनानि श्रुतदन्परमज्या ऋचीपम ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९०।१ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १४८९ ] हे स्तुति करनेवालो ! ( सत्यस्य सन्तुं ) सत्य यज्ञके पालक ( सत्पतिं गोपतिं ) सत्रजनोंके रक्षक और गार्थके पालक इस ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( विदे यथा मिरा ) जितप्रकार वृष जानते हो, उसीप्रकार स्तुतिते ( अग्निं प्र अर्चं ) उत्तम स्तुति करो ॥ १ ॥

[ १४९० ] ( हरयः ) इन्द्रके गोत्रे ( अहृषीः ) ऋषिकनेवाले ( अग्निं वहिषि ) आसन पर जले ( आ ससृजिरे ) सार्वे । ( यत्र अग्निं सप्तयामहे ) जित स्थानपर बँडे हुए इन्द्रको हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १४९१ ] ( यत् ) ऋष इन्द्र ( उपहरे ) पाल ही ( मधुं स्वीं विदत् ) मोठा रस पीता है तब ( गावः ) गायें ( वसिष्णे इन्द्राय ) वसिष्णारी इन्द्रके लिए ( मधुं आशिरं दुदुहे ) मोठा रूप देते हैं ॥ ३ ॥

[ १४९२ ] हे ऋषिको ! ( विश्वासु सप्तसु ) सब मुदोंमें ( हृष्यं इन्द्रं ) सहायताके लिए बुलाये जाने योग्य इन्द्रको मन्त्र करने गायें गए ( नः ब्रह्माणि सवनानि उप याभूषत ) हमारे इतौब तथा यत् उपासी सोमः ब्रह्मते हैं । ( श्रुतदन् परमज्याः ऋचीपम ) हे वृषको सारनेवाले, उत्तम शरीरसे युक्त धनुषवाले तथा प्रशान्तनीय इन्द्र ! हमें इतिष्ठ यत् ॥ १ ॥

१४९३ स्वं दाता प्रथमो गधसामस्यसि सस्य ईशानकृत् ।

तुविद्युन्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य श्वसो महः ॥ २ ॥ २ ( पा ) ॥

[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ ८।९।१२ )

१४९४ प्रत्नं पीपूर्यं पूर्यं यदुक्थ्यं महो गाहादिव आ निरधुक्षत ।

इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१।१०।८ )

१४९५ आदीं के चित्पश्यमानास आष्यं वसुधुचो दिव्या अम्पनूषत ।

दिवो न वारं सविता व्यूर्धुते ॥ २ ॥ ( ऋ ९।१।१०।६ )

१४९६ अथ यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा सुवनाभि मजमना ।

यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि ॥ २ ॥ ३ ( खू ) ॥

[ धा० १६ । उ० २ । स्व० ६ ] ( ऋ ९।१।१०।९ )

१४९७ इमम् पु त्वमस्माकं सनि गायत्री नरुवांसम् । अग्ने देवेषु प्र बोचः ॥ १ ॥

( ऋ. १।२।७४ )

१४९८ विमक्तासि चित्रभानो सिन्धोरुर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुपे क्षरसि ॥२॥ ( ऋ १।२।७६ )

[ १४९३ ] हे इन्द्र ! ( प्रथमः त्वं राधस्तां दाता असि ) तवमे प्रथमं तु यनका वाता है, ( ईशानकृत् सस्यः असि ) ऐश्वर्ययुक्त करनेवाला तू सस्य है, ( तुविद्युन्नस्य शयसः पुत्रस्य महः ) बहुत तेजस्वी बलके पुत्रके समान तुमने ( युज्या वृणीमहे ) यनकी प्रार्थना हम करते हैं ॥ २ ॥

[ १४९४ ] ( यत् प्रत्नं ) जो पहलेके मिलता आ रहा है, वह ( पीपूर्यं उक्थ्यं ) अमृत प्रशसनीय है, वह ( पूर्यं ) पहलेके मिलनेवाला अमृत ( महः गाहादिव दिवः ) महान् और अगाध सुलोकसे ( आ निरधुक्षत ) निकला गया है । उसके बाद ( इन्द्रं अभि ) इन्द्रके आगे ( जायमान ) उत्पन्न हुए हुए सोमकी ( समस्वरन् ) यनकर्ता स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १४९५ ] ( आत् ) भावमें ( चित्पश्यमानासः दिव्यां वसुधुचः ) इसकी देखनेवाले विश्व वसुधुच, जयतक ( दिव्याः सविता ) सुलोकसे युग् ( वारं न व्यूर्धुते ) समको बकनेवाले जन्मवारकी दूर नहीं करता, जयतक ( आष्यं ) अम्पनूषत ) भाईके सपान वस सोमकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १४९६ ] हे ( पवमान ) सोम ! ( अथ ) भावमें ( यत् इमे रोदसी ) अब इस धु और पृथिवी ( इमा विश्वा सुवनास च ) और इन सभी प्राणिवीमें ( मजमना यूथे निष्ठा वृषभः न ) अपने बलसे पार्थिके मुण्डके बोधमें रहनेवाले बलके सपान ( विराजसि ) तु विराजमान होता है ॥ ३ ॥

[ १४९७ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्व अस्माकं ) तू हमारे द्वारा ( इम ऊः सु ) बोले जानेवाले इन ( सनि ) हवन युक्त ( नरुवांसं गायत्रीं ) नवीन स्तुतिके मंत्रोंको ( देवेषु प्रबोचः ) देवोंके पास जाकर उन्हें बता ॥ १ ॥

[ १४९८ ] हे ( चित्रभानो ) विलसण तेजस्वी भवने ! तू ( विमक्ता असि ) यन देनेवाला है । ( सिन्धोः उपाके उर्मा आ ) शितप्रकार नदीके पास पानीकी सहदे जाती है उसीप्रकार ( दाशुपे सद्य क्षरसि ) बलात्पनी जती समय कर्षोका पल तू बैठा है ॥ २ ॥



- १४९९ आ नो मज परमेष्वा वाजपु मध्यमेपु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ३ ॥ ४ ( टा ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।७।७ )
- १५०० अहमिद्धि पितृपरि मेघामृतस्य जग्रह । अहस्स्य इवाजनि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।१० )
- १५०१ अह प्रतेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्वयत् । येनेन्द्रः शुम्भामिद्धे ॥२॥ ' ऋ. ८।६।११ )
- १५०२ ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेन्द्रवस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥ ५ ( धु ) ॥  
[ धा० १४ । उ० २ । स्व० ९ ] ( ऋ. ८।६।१२ )
- ॥ इति प्रथम खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

- १५०३ अमे विश्वेभिरभिभिर्जापि नद्म सहस्कृत । ये देवता य आपुपु तेभिर्नो महया गिरः ॥१॥
- १५०४ प्र स विश्वेभिरभिभिर्जापिः स यस्य वाजिनः ।  
तनये तौके अस्मदा सम्यद्वाजिः परीवृतः ॥ २ ॥
- १५०५ त्वं नो अमे अभिभिर्नद्म यज्ञं च वर्धय ।  
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥ ३ ॥ ६ ( डि ) ॥  
[ धा० १८ । उ० ३ । स्व० ३ ] ( ऋ. १०।१४।६ )

[ १४९९ ] हे अग्ने ! ( नः ) ह्वं ( परमेपु धाजेपु ) अथ भोगीने ( आ मज ) षडुवा, तथा ( मध्यमेपु आ ) मध्यम भोगीने ह्वं षडुवा और ( अन्तमस्य वस्वः शिक्षा ) कनिष्ठ पन भी ह्वं दे ॥ ३ ॥

[ १५०० ] ( पितुः अहत्स्य मेघां ) पालक तथा अमर इन्द्रको अनुकूल युद्धिको ( अहं इत् परि जग्रह ) मेने प्राप्त किया है, इस कारण ( अहं स्वयं. इव अजनि ) में स्वयंके समान हो गया हूँ ॥ १ ॥

[ १५०१ ] ( कण्वयत् अह ) ऋषके समान ( प्रतेन जन्मना ) प्राचीन वाणीसे ( गिरः शुम्भामि ) स्तोत्र कहकर मे इन्द्रको सुनोमित करता हूँ, ( येन इन्द्रः शुम्भं दधे इत् ) जिसकी सहायतासे इन्द्र बलको धारण करता है ॥ २ ॥

[ १५०२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ये त्वां न तुष्टुवुः ) जिनोंने तेरो स्तुति नहीं की, तथा ( ये न्ययः स्व तुष्टुवुः ) जिन श्रुतिगोत्रोंने स्तुति की, उनमेंसे ( मम इत् ) मेरे स्तोत्रोंमें ही ( सुष्टुतः चर्षयच ) उत्तमतासे प्रशंसित होनेके कारण सर्वप्रथम हो ॥ ३ ॥

॥ यद्यो पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १५०३ ] हे ( स्वहस्कृत अमे ) बल प्रकट करनेवाले अग्ने ! ( विश्वेभिः अग्निभिः ) सब अग्निगोत्रोंके साथ- साथ तू भी ( प्राय जोषि ) हमारे स्तोत्र सुन । ( ये देवप्रा ) जो अग्निवां देवोंमें हैं, और ( ये आपुपु ) जो मनुष्योंमें हैं, ( तेभिः नः गिरः नद्म ) उनके द्वारा हमारी स्तुतिगोत्रोंमें बहुरवरो यज्ञा ॥ १ ॥

[ १५०४ ] ( यस्म्य धाजिनः ) जिस बलवान अग्निमें हवन करनेवाले षडुत्त हैं, ( स्वः अग्निः ) वह अग्नि ( विश्वेभिः अग्निभिः ) सब द्वारा अग्निगोत्रोंके साथ ( धाजेः परीवृत ) हविष्याग्नेसे पिपा हुआ ( सम्यक् अस्मत् प्र सा ) जगत्त रोहिते हमारे पास आवे, तथा ( सः तनये तौके ) बट हमारे पुत्र, पौत्रोंको तरल भी जावे ॥ २ ॥

[ १५०५ ] हे ( अमे ) अग्ने ! ( त्वं अग्निभिः ) तू सब अग्निगोत्रोंके साथ ( नः प्राय यज्ञं च वर्धय ) हमारे स्तोत्र और या यज्ञा । ( त्वं नः ) तू ह्वं ( वायः दानाय ) पन देनेके लिये ( देवतातये ) देवोंको ( प्ययच ) प्रेरित कर ॥ ३ ॥

- १५०६ स्वे सोम प्रथमा युक्तवर्हिषो महं वाजाय अचसे धियं दधुः ।  
 स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।१०७ )
- १५०७ अम्भामि हि श्रवसा ततर्दिथोस्ते न कं चिजनपानमधितम् ।  
 शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्वोः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१।१०८ )
- १५०८ अजीजनो अमृत मर्त्याप कष्टृतस्य धर्मममृतस्य चारुणः ।  
 सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ३ ॥ ७ ( ले ) ॥  
 [ धा० १०।७० नास्ति । स्व० ७ ] ( ऋ. १।१।१०८ )
- १५०९ एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिवाति साम्यं मधु । प्र राधांसि चोदयते माह्रिस्वनां ॥ १ ॥  
 ( ऋ. ८।१४।१३ )
- १५१० उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमम्रवम् । नूनं शुधि स्तुवतो अश्वस्य ॥ २ ॥  
 ( ऋ. ८।१४।१४ )
- १५११ न ह्यश्वेग पुरा न न जज्ञे वीरतरस्वत् । न को राधा नैवया न भन्दना ॥३॥ ८ ( चा ) ॥  
 [ धा० १०।७० १।२३० १ ] ( ऋ. ८।१४।१५ )

[ १५०६ ] ( सोम ) हे सोम ! ( प्रथमाः युक्त-वर्हिषः ) तद्विंश प्रथमव्यसन फलनेवाले यजमान ( महे वाजाय अचसे ) विषोय बल और अन्नके लिए ( स्वे धियं दधुः ) तेरे विषयमें उत्तम विचार रखते हैं । ( साम्यं ) वह धु ( वीर ) हे वीर सोम ! ( नः वीर्याय चोदय ) हमें वीर होनेके लिए प्रेरित कर ॥ १ ॥

[ १५०७ ] हे सोम ! ( श्रवसा ) अन्नके युक्त होकर ( अमि-अमि ततर्दिथ ) तू छमनीसे गोधे गिरता है, ( न ) जिसप्रकार ( जनपानं ) मनुष्योंके पीनेके लिए ( गभस्त्वोः शर्याभिः ) हाथोंकी अंगुलियोंसे ( कं चित् अ-धितं उत्सं ) किसी न चूनेवाले होजको ( भरमाणः ) पानीसे भरते हैं, उसीप्रकार तू कलशमें भरता है ॥ २ ॥

[ १५०८ ] हे ( ममृत ) अमृतरूपी सोम ! तूने ( अमृतस्य चारुणः वामृतस्य ) शय और मयलकारकद्रव्योंको धारण करनेवाले अमृतरिषमं ( कं मर्त्याप अजीजनः ) गुरुको मनुष्यके लिए उत्तम किया, ( सनिष्यदत् ) रेवोंकी सेवा की । ( वाजं अच्छ ) तू गुरुके लिए सीधे ही ( सदा असरः ) हमेशा जाता है ॥ ३ ॥

[ १५०९ ] ( इन्दुं ) सोमरस ( इन्द्राय वा सिञ्चत ) इन्द्रकी ची । वह इन्द्र ( सोम्यं मधु पिवाति ) सोमका मोठा रस पीता है और ( माह्रिस्वना राधांसि प्रचोदयते ) अपने महत्कते धनीके प्रेरित करता है ॥ १ ॥

[ १५१० ] ( हरीणां पतिं ) घोड़ेके स्वामी और ( राधः पृञ्चन्तं ) भक्तोंकी धन देनेवाले इन्द्रकी ( उप मम्रवम् ) में स्तुति करता हैं । ( अश्वस्य स्तुवतः नूनं शुधि ) अश्व स्तुति करता है, उत स्तुतिको हे इन्द्र ! तू अम्रव गुन ॥ २ ॥

[ १५११ ] हे इन्द्र ! ( इत्य पुरा न जज्ञे ) तुझसे पहले तेरे समान कोई भी नहीं हुआ, हे ( अंग ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! ( वीरतरः न हि ) तुझसे बड़ाकर वीर भी कोई इतरा नहीं हुआ, ( राधा नकि ) पन देनेवाला भी कोई इतरा नहीं हुआ ( मर्त्याप न ) मनुष्यों इन्द्रको कुशलनेवाला भी इतरा कोई नहीं हुआ तथा ( भन्दना न ) स्तुतिके कारण भी इतरा कोई नहीं हुआ ॥ ३ ॥

१५१२ नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।

पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुष्यमि

॥ १ ॥ ९ ( व ) ॥

[ धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ ८।६२।१ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१५१३ देवो वो द्रविणोदाः पूर्णा विवद्वासिचम् ।

उदा सिञ्चध्वमुप वा पूणध्वमाविद्धो देव ओहते

॥ १ ॥ ( ऋ ७।६।११ )

१५१४ तश्चोतारमध्वरस्य प्रचेतसं वहिं देवा अकृण्वत ।

दधाति रत्नं विषते सुवीर्यमापिज्ञनाय दाशुषे

॥ २ ॥ १० ( लि ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ ७।६।१२ )

१५१५ अदर्शिं गातुविचमो यस्मिन्त्रतान्यादधुः ।

उपो यु जातमार्यस्य वर्धनमर्दि नक्षन्तु नो गिरः

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।३।१ )

१५१६ यस्माद्रेजन्त कृषयश्कृत्स्नपानि कृण्वतः ।

सहस्रसां मेघसाताविच रत्नानि धीभिर्निमस्यत

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१०।३।२ )

[ १५१२ ] हे यजमानो ! ( वा ) तुम्हारे लिए ( ओदतीनां नदं ) उषाओंको उत्पन्न करनेवाले आग्नेयस्वी इन्द्रको हम बुलाते हैं । ( योयुवतीनां नदं ) पत्न शिरसोंको उत्पन्न करनेवाले इन्द्रको तुम्हारे हिंसके लिए बुलाते हैं, ( अघ्न्यानां पतिं यः ) शायकि वात्स्य करनेवाले इन्द्रको हम तुम्हारे लिए बुलाते हैं, ( धेनूनां इषुष्यमि ) हे यजमान ! तू गायके इषका मत्सके रूपमें उपयोग करनेको इच्छा करता है ॥ १ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १५१३ ] ( द्रविणोदाः देवः ) यम देनेवाला अग्निदेव ( वः पूर्णा आसिचं विवदुः ) तुम्हारे घोसे भरी हुई ध्वजोंको इच्छा करे । ओर हम ( उदा सिञ्चध्वं वा ) सीमने बर्तन करो, ( पूणध्वं वा ) बर्तनोंको हमारे पूरे ताप्य करो, ( यान् इत्थं वेयः यः ओहते ) बारमें अग्नि देव तुम्हारा घोषण करेगा ॥ १ ॥

[ १५१४ ] ( देवा. ) देवोंने ( प्रचेतसं ) घेले बुद्धिमान् ( अध्वरस्य वहिं होतारं तं ) अहिंसापूर्ण यज्ञके बर्तन, हविषके घोनेवाले और हवन करनेवाले उस अग्निको ( अकृण्वत ) अपना साहायक बनाया है, वह ( अग्निः ) अग्नि ( विषते दाशुषे जनाय ) यज्ञ करनेवाले तथा दान देनेवाले मनुष्यको ( सु-वीर्यं रत्नं दधाति ) उत्तम घोसला ब्रह्मनेवाले यज्ञ देता है ॥ २ ॥

[ १५१५ ] ( यस्मिन्त्र तान्यादधुः ) जहाँ जिस अग्निमें यजमान यज्ञकर्त्तव्य करते हैं, वहाँ ( गातुविचमः अदर्शिं ) आगबर्तनोंमें तबमें घेले वह अग्नि उत्पन्न होता है । ( सुजातं मार्यस्य वर्धनं ) उत्तम रीतिसे प्रशिक्षण हुए हुए और आर्योंको बर्तनेवाले ( अग्निं ) अग्निको ( नः गिरः उपो नक्षन्तु ) हमारी स्तुतियां प्राप्त हों ॥ १ ॥

[ १५१६ ] ( यस्मात् कृषयश्कृत्स्नपानि कृण्वतः ) जिस समय बर्तन करनेवाले मनुष्योंको ( कृषयः रेजन्ते ) ताबूके मनुष्य रूपानेका प्रदान करते हैं, जग जगत्त हम मनुष्यों ! ( सहस्रसां अर्द्धिः ) हजारों प्रकारके यज्ञ देनेवाले अग्निको ( मेघसातां ) यज्ञमें ( पीथिः रत्नानि निमस्यत ) बुद्धिपूर्वक तबच प्रदान करते ॥ २ ॥

१५१७ प्र देवोदासो अग्निदेव इन्द्रो न मज्जना ।

अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥ ३ ॥ ११ ( हा ) ॥

[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० २ ] श्रु ८।१०३१२ )

१५१८ अग्र आयुं वि पवस आ सुनोर्जमिषं च नः । आरे वापस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥

( ऋ. १।६।१९ )

१५१९ अग्निश्रुषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमोमहे महागयम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।१० )

१५२० अग्रे पवस्व स्वपा असे वचः सुवीर्यम् । दधद्रयि मयि पोषम् ॥ ३ ॥ १२ ( क ) ॥

[ धा० १०। उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. १।६।१९ )

१५२१ अमे पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वा । आ देवान्बलिं यक्षि च ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२।६।१ )

१५२२ तं स्वा घृतस्नवीमहे चित्रमानो स्वदेष्टम् । देवाश्च आ वीक्ष्ये वह ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२।६।२ )

१५२३ वीतिहाश्रं त्ना को घुमन्तं समिधीमहि । अग्रे बृहन्तमधरे ॥ ३ ॥ १३ ( दौ ) ॥

[ धा० १८ । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. १।२।६।३ )

॥ इति सुतोयः खण्ड ॥ ३ ॥

[ १५१७ ] ( देवोदासः अग्निः देवः ) सुतोयं रहनेवाला अग्निदेव ( इन्द्रः न ) इन्द्रो समान ( मज्जना ) बलपूर्वक ( मातरं पृथिवीं अनु ) वावृभूणि पर ( प्र वि वावृते ) अनेक प्रकारके कार्य करते हैं, और ( नाकस्य शर्मणि तस्थौ ) अन्तरिक्षके आश्रयते रहता है ॥ ३ ॥

[ १५१८ ] हे ( अग्रे ) जाने ! ( नः आयुं पयसे ) हमें लक्ष्मी आयु प्रथम कर । ( नः ऊर्जं इपं च आ सुय ) हमें बल और शक्त दे । ( दुच्छुनां ) दुष्टोंको ( आरे वापस्व ) दूर करके उन्हें वीक्षित कर ॥ १ ॥

[ १५१९ ] ( पाञ्चजन्यः श्रुषिः ) पवजनोंका हित करनेवाला और सब देवनेवाला ( पयमानः अग्निः ) सुद्ध अग्नि ( पुरोहित ) आगे स्थापित किया गया है । ( तं महागयं ईमहे ) उस महान् यज्ञशालामें रहनेवाले अग्निको हम प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

[ १५२० ] हे ( स्वपा ) उत्तम कर्म करनेवाला है, ( असे वचः सुवीर्यं पवस ) हमें तेज तथा पराक्रम करनेकी शक्ति दे और ( मयि रयिं पोषं दधाम् ) मुझे धन और पोषण दे ॥ ३ ॥

[ १५२१ ] ( पावक अग्रे देव ) हे पवित्र करनेवाले अग्निदेव । ( रोचिषा मन्द्रया जिह्वा ) अपने तेजसे और आत्मन् देनेवाली ज्वालासे ( देवाश्च आ वीक्षि यक्षि च ) देवोंको भुला और उनके लिए यज्ञ कर ॥ १ ॥

[ १५२२ ] हे ( घृत-स्नो चित्र-मानो ) घीसे उत्पन्न होनेवाले तथा विलक्षण तेजस्वी जाने ! ( स्वदेष्ट तं स्वा ईमहे ) सबको देवनेवाले तेरी हन प्रार्थना करते हैं । वह प्रार्थना यह है कि ( वीतिषे देवान् आ वह ) हवि भक्षण करनेके लिए देवोंको यहाँ भुलाकर ला ॥ २ ॥

[ १५२३ ] हे ( कये अग्रे ) जानो जाने ! ( वीति-हाश्रं घुमन्तं ) हवन पर प्रेम करनेवाले, तेजस्वी तथा ( बृहन्तं तया ) महान् सुमे ( अघरे समिधीमहि ) यज्ञमें हन प्रवर्धित करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यदां सीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

१५२४ अवा नो अम ऊतिमिर्गायत्रस्य प्रमर्मणि । विश्वासु धीषु वन्य ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७५।७ )

१५२५ आ नो अग्ने रयिं मर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृतसु दुष्टरम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७५।८ )

१५२६ आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुषोषसम् । माद्रीकं वेदि जीवसे ॥ ३ ॥ १४ ( वी ) ॥

[ घा० १५। उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. १।७५।९ )

१५२७ अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सतिमाशुमिवाजिषु । तेन जेष्म घनंघनम् ॥ १ ॥

( ऋ. १०।१५६।१ )

१५२८ यया गा आकरामहै सेनयामै तवात्या । तां नो हिन्व मघत्तये ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१५६।२ )

१५२९ अग्ने रूधरं रयिं मर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्घ्रिं खं वर्तया पविम् ॥ ३ ॥

( ऋ. १०।१५६।३ )

१५३० अग्ने नक्षत्रमजरमा ध्रुवं रोहयो दिवि । दक्षज्जयोतिर्जनेभ्यः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।१५६।४ )

१५३१ अग्ने कतुर्विधामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपत्यसत् । रोधा स्तत्रिं ययो दधत् ॥ ५ ॥ १५ ( धा ) ॥

[ घा० १५। उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. १०।१५६।५ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १५२४ ] हे ( विश्वासु धीषु वन्य अग्ने ) तब धर्मों में ध्यनीय अग्ने ! ( गायत्रस्य प्रमर्मणि ) गायत्री छन्द-  
वाले सामगानोंके मुख होनेपर ( ऊतिमिः नः अय ) संरक्षणके साधनसि हमारी रक्षा कर ॥ १ ॥

[ १५२५ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( सत्रा-साहं ) तब सत्रधर्मोंको हरानेवाले ( वरेण्यं ) श्रेष्ठ ( विश्वासु पृतसु  
दुष्टरं ) तब दुष्टोंके दुष्टार ( रयिं नः आमर ) धन हमें दे ॥ २ ॥

[ १५२६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नः जीवसे ) हमारे रीषयोंकीवनके लिए ( सु-चेतुना ) उत्तम धानसे मुख्य  
( विश्वा-आयु-पोषसं ) तब आयु तक पोषण करनेवाले ( माद्रीकं रयिं ) मुख्यसाधक धन ( नः वेदि ) हमें दे ॥ ३ ॥

[ १५२७ ] ( आजिषु आशुं सतिं इय ) जितप्रकार बुद्धमें शीघ्र चलनेवाले घोड़ेको प्रेरित करते हैं, उत्तमकार  
( नः धियः ) हमारी बुद्धियां ( अग्निं हिन्वन्तु ) अग्निको प्रेरित करें । ( तेन घनं घनं जेष्य ) उत्तममें हम प्रयत्न बुद्ध  
कीर्णें ॥ १ ॥

[ १५२८ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( यया सेनया ) जित सेनारो तथा ( तय जत्या ) जित हरे संरक्षणके ( गाः  
आकरामहै ) गाएँ हमें मिलें ( तां ) उा संरक्षणकी रक्षिकी ( नः मघत्तये दिव्य ) हमारे धनकी प्राप्तिके लिए  
प्रेरित कर ॥ २ ॥

[ १५२९ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( रूधरं पृथुं ) बहुत महान् तथा ( गोमन्तं अश्विनं रयिं ) गाए और घोड़ेके  
धन धन ( मा मर ) हमें भरदु दे । ( खं शंघ्रिं ) भावात्मके अर्धमें तेज पंथा और ( पविं घर्तयं ) सन्मुखे प्राप्त हमने  
कर कर ॥ ३ ॥

[ १५३० ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( जनेभ्यः ज्योतिः दधत् ) शीर्षोंके लिए प्रकाश करते हुए ( अजरं नक्षत्रं  
ध्रुवं दिवि ) अजरहित और निरन्तर गतिमान् ध्रुवको शीर्षोंके ( आरोहयाः ) नू पडा ॥ ४ ॥

[ १५३१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( यियां कतुः प्रेष्ठः श्रेष्ठः ) नू प्रमार्थोंकी हान देनेवाला, त्रिय और श्रेष्ठ  
( अक्षिं ) है, ( उप-त्यसत् ) यज्ञगात्माके रहनेवाला नू ( रूध्रे ययाः दधत् ) श्रुति करनेवालेको अन्न देने हूँ  
( पौष ) उत्तमी श्रुति जान ॥ ५ ॥

१५३२ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अपम् । अवा५ रेताथसि जिन्वति ॥ १ ॥

( ऋ. ८।४४।१६ )

१५३३ ईशिये वार्यस्य हि दाप्रवपाने स्वः पतिः । स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥२॥ ( ऋ. ८।४४।१८ )

१५३४ उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतीश्वर्यचयः ॥ ३ ॥ १६ ( ली ) ॥

[ घा० ४ । उ० नासिः । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।४४।१७ )

॥ इति चतुर्थः सर्गः ॥ ५ ॥

॥ इति शतमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ७-२ ॥

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

[ १५३२ ] ( मूर्धा ) सबस्य शंख ( दिवः ककुत् ) तुलोकमें अचे स्थान पर रहनेवाला ( पृथिव्याः पतिः अयं अग्निः ) पृथ्वीका पालक यह अग्नि ( अवां रेताथसि जिन्वति ) जलौका सार तत्त्व अपनेमें रक्षता है ॥ १ ॥

[ १५३३ ] हे ( अग्ने ) जाने ! ( स्वः पतिः ) स्वर्गका स्वामी तू ( वार्यस्य दाप्रस्य ईशिये ) स्कोकार करने योग्य और दान देने योग्य बनका स्वामी है । ( तव शर्मणि ) तेरे द्वारा किए गए सुखमें रहकर ( स्तोता स्याम् ) मैं तेरी स्तुति करनेवाला होऊँ ॥ २ ॥

[ १५३४ ] हे जाने ! तेरी ( शुचयः शुक्राः ) गुड, स्वच्छ और ( भ्राजन्तः अर्चयः ) देवीपूजाने के लिये ( तव ज्योतीनि ) तेरे तेजोंकी ( उदिरते ) प्रेरणा देती है ॥ २ ॥

॥ यदां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥



## चतुर्दश अध्याय

इस चौदहवें अध्यायमें इन्द्र, अग्नि और सोम देवताओंका वर्णन है । उनमें इन्द्र देवताका वर्णन इस प्रकार है—

इन्द्र

१ स्वस्यस्य सुनुं सत्पतिं गोपतिं इन्द्रं, यथा विदे, गिरा अग्निं प्र अर्थे [ १५८९ ]— स्वयंके प्रचारक, स्वयंके पालक और गोपोंके पालक इन्द्रकी अपने ज्ञानके अनुसार स्तुति करो ।

२ विश्वास्तु समस्तु हव्यं न. प्रह्लाणि सचनानि उप धामूपत [ १५९२ ]— सब यज्ञोंमें सहायताके लिये तुलाने योग्य इन्द्रकी हमारे स्तोत्र धोभा बढ़ाते हैं । इन्द्र ऐसा

दूरबीर है कि उसे सब प्रकारके यज्ञोंमें अपने वीरताके लिए लोग बुलते हैं ।

३ वृषहन् परमज्या । अक्षीपम [ १५९२ ]— हे नामकी कारनेवाले और धनुषकी उत्तम कोरीवाले इन्द्र ! हमें इच्छित बन दे ।

४ श्वरपुरा न जज्ञे । धीरतरः न किं । राधा न किं । पशुधा न । भन्दता न [ १५९१ ]— तुमते पहले तेरे समान कोई नहीं हुआ । तेरी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ बीर कोई भी उत्पन्न नहीं हुआ । धनते भी तुमते अधिक सामर्थ्यवान् कोई नहीं है । यज्ञमें धनुषोंकी कुशलनेवाला भी तेरे समान दूसरा कोई नहीं है । इसलिए तेरे समान प्रबलवीर भी कोई नहीं है ।

५ अश्व्यानां पतिं वः [ १५१२ ]- अश्व्य गायेकि पालन करनेवालेको तुम्हारे लिए मैं बुलाता हूँ ।

६ त्वं प्रथमः राधासां दाता अस्मि, ईशानकृत् सत्यः अस्मि, तुविद्युन्नस्य शश्वसः पुत्रस्य मङ्गः युज्यां वृणी- महे [ १५१३ ]- तू तूथोसे प्रथम धन देनेवाला है । तू हमें निश्चयसे ऐश्वर्ययुक्त करनेवाला है । बहुत तेजस्वी बलके लिए प्रसिद्ध तुमसे हम धन पानेकी इच्छा करते हैं ।

७ पितुः सत्यस्य मेघां अहं परि जग्रह, अहं सूर्यः इय भजनि [ १५०० ]- सत्यके पालक, सत्यके पिता और पूज्य इन्द्रकी बुद्धिको मेने अपने अन्कूल बना लिया है । इस कारण मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ ।

८ हे इन्द्र ! ये त्वां न तुष्टुधुः, ये च तुष्टुधुः, मम इत् सुष्टुतः वर्धस्व [ १५०२ ]- हे इन्द्र जो तेरी स्तुति नहीं करते और जो तेरी स्तुति करते हैं, उनमें मेरी ही स्तुतिके तू अच्छी तरह बध ।

९ हरीणां पतिं, राघः पृथ्वतं, उप अग्रधं, अश्वस्य स्तुवतः नूनं भुधि [ १५१० ]- घोड़ोंके स्वामी और धन देनेवाले इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ । अश्वधुविकी इस स्तुतिको तू सुन ।

१० ह्ययः अरुषीः अधि परिधि आ सस्यिरे [ १५१० ]- इन्द्रके घोड़े घमकनेवाले आसन पर उसे लावें । इन्द्र यज्ञशालामें आकर बैठे ।

११ गावः धसिणे इन्द्राय मधु आशिर्दे बुधुहे, उपदरे सीं मधु विदत् [ १५११ ]- गायें पशुपारी इन्द्रके लिए सींठा दूध देती हैं । यह इन्द्र पात ही बँठकर मधुर सोमरस पीता है । सोमरसमें गायका दूध बिलाकर इन्द्र पीता है ।

१२ इन्द्राय इत्वं आसिंचत । सोम्यं मधु पिवाति । महित्वना राधासि प्रचोदयते [ १५०९ ]- इन्द्रके सोम- रस भो । इन्द्र सींठा चोमरस पीता है, और अरुने अहकते यह धन देता है ।

इत प्रकार इन्द्रका वर्णन इस अष्टावधमें आया है । इसमें इन्द्रकी शूद्रता, धीरता, उदारता, धनके दान करनेकी प्रवृत्ति और सोमरस पीनेकी प्रवृत्ति दिखाई गई है । इन्द्रके घोड़ोंका भी यहाँ वर्णन है ।

### अग्नि

१ १२ अस्ताक सभ्यासं गायधं देवेषु प्रयोचः [ १५१७ ]- हे आने ! तू हमारे अग्र्यं गायत्री मंत्रके स्तोत्र देवोंके पात जाकर कह ।

२ हे विश्वमानो ! विश्वका अस्मि, दाशुषे सद्यः क्षरति [ १५१८ ]- हे विश्वधन प्रकाशमान आने ! तू धन देनेवाला है । दाताको उसके कामका फल तत्काल दू देता है ।

३ नः परमेषु वाजेषु, मध्वमेषु आ भज । अन्तमस्य वस्यः दिक्ष [ १५१९ ]- हमें श्रेष्ठ भोगोंमें और सभ्य भोगोंमें स्थापित कर । तथा दिक्कृत धन भी दे ।

४ महस्क्रुत अग्ने ! ब्रह्म जुषस्व, ये देव्यना, ये आमुषु, तेभिः नः गिरः महय [ १५०९ ]- हे बल प्रकट करने- वाले आने ! ये स्तोत्र सुन, जो देवोंमें और जो मनुष्योंमें देव हैं, उनकी सहायतासे हमारी स्तुतिके महत्वको, पढ़ा ।

५ अग्ने ! त्वं अग्निभिः नः ब्रह्म यक्षं च वर्धय । रवं नः रायः दानाय देवतास्ये चोदय [ १५०५ ] हे आने ! तू अन्ध अनियंकी सहायतासे हमारा तान और यज्ञकर्म बढ़ा । तू हमें धन देनेके लिए देवोंको प्रेरित कर । यज्ञमें अनेक अनियम रहती हैं, ये यज्ञका अनुष्ठान बढ़ाती हैं ।

६ देवाः प्रचेतसं ते अध्वरस्य वरिंहि होतासं अरु- पवत । विघ्ने दाशुषे जनाय सुवीर्ये रत्नं दधाति [ १५१४ ]- देवोंके मागी, क्षिप्रारहित यज्ञके कर्त्ता और हविकी सृष्टिचानेवाले अग्निको उत्पन्न किया । यज्ञ करनेवाले दाता मनुष्यको उत्तम बीरता बढानेवाले धन बहु देता है ।

७ यस्मिन् प्रतानि आद्ध्युः गातुषिचमः अदर्शि, सु-जातं आर्यस्य वर्धने आग्नि नः गिरः उपो नक्षतु [ १५१५ ]- जिस अग्नियें यज्ञमान यज्ञ करते हैं, वहाँ सम्पूर्ण दिखानेवाला अग्नि प्रकट होता है । उत्तम रीतिसे प्रकट हुए हुए और मायोंका संवर्धन करनेवाले अग्निको हमारी स्तुति प्राप्त हो ।

८ यस्मात् चरिष्यति कृप्यनः कृपयः रेजते सहयससं मेघसाती पीभिः त्मना नमस्यत [ १५१६ ]- जिस समय कर्त्तव्य करनेवाले मनुष्योंको शत्रुके मनुष्य कपातेका प्रयत्न करते हैं, उस समय हे मनुष्यो ! हमारा प्रकारके धन देनेवाले अग्निको यज्ञमें बुद्धिपूर्वक स्वयं प्रणाम करो । वह तुम्हारा भय दूर करेगा ।

९ देवोदासो अग्निः, इन्द्रः नः, मज्जना मातरं पृथिवीं अनु प्र विवापृते [ १५१७ ]- धुलोकमें रहनेवाला अग्नि इन्द्रके समान बसपुत्रके दातृभूमि पर अनेक प्रकारकी प्रवृत्ति करता है । अग्निकी सहायतासे अनेक यज्ञ किए जाते हैं ।

१० हे अग्ने ! नः साधुधि, नः ऊर्जे इयं च पयते । दुचतुर्नां गारे वाधस्व [ १५१८ ]- हे आने ! हमें मनुष्य बल और अन्न दे । बुद्धीको दूर कर ।

११ पांचजन्यः क्षपिः पयमानः अग्निः पुरोहितः ।  
तं महापयं ईमदे [ १५१९ ]- पंचजनोपा हित करनेवाला  
शानो मुद्ग अग्नि आगे स्थापित किया गया है । उस महाप  
यशास्त्रालय रहनेवाली अग्नि की हम प्रायणा करते हैं ।

१२ अग्ने ! स्वया अस्ने घर्वाः पयस्य, मथि रयिं  
पोर्यं वधत् [ १५२० ]- हे अग्ने ! तू उतम वनं करनेवाला  
है, हमें तेज दे, तथा घन और पोषण दे ।

१३ हे पायक अग्ने देव ! शोचिषा मन्द्रया जिन्धया  
देवान् आचक्षि चक्षि च [ १५२१ ]- हे पवित्र करनेवाले  
अग्निदेव ! अपने तेजसे और आनन्द देनेवाली उवासासे  
देवोंको मुक्त और उनके लिए यज्ञ कर ।

१४ हे छूतस्नो चित्रमानो ! स्वर्दृशं त्या ईमदे ।  
वीत्ये देवान् आ चह [ १५२२ ]- हे यौसे उत्पन्न हुए  
हुए और विलक्षण तेजस्वी अग्ने ! सर्वोंको देखनेवाले तुमसे  
हम प्रायणा करते हैं । यह प्रायणा यह है कि हाँच मक्षण  
करनेके लिए देवोंको यहाँ मुक्तकर ला ।

१५ हे कथे अग्ने ! वीतिहोत्रं धुमन्तं पूहन्तं त्या  
अध्वरे समिधीमहि [ १५२३ ]- हे शानो अग्ने ! हवन पर  
प्रेम करनेवाले तेजस्वी और महापु तुमसे यज्ञमें हम जलते हैं ।

१६ हे अग्ने ! सप्रसाहं यरेण्यं विश्वासु पुरस्तु  
दुधर्यं नः आमर [ १५२४ ]- हे अग्ने ! सब शत्रुओंकी  
एक साथ हरानेवाले, श्रेष्ठ और सब पुद्गलोंमें शत्रुको हुस्तर  
ऐसे घन हमें भरपूर दे ।

१७ हे अग्ने ! नः जीवसे सुबेतुना विश्वयुपायसं  
मार्दीकं रयिं नः पेषि [ १५२५ ]- हे अग्ने ! हमारे वीर्य-  
जीवनेके लिए उत्तम जानने युक्त, सम्पूर्ण आयु तक भरण  
पोषण करनेमें तक्ष्यं और सुसहायक धन दे ।

१८ नः विश्वः अग्निं हिन्वन्तु, आग्निषु आसुं खातिं  
इव, तेन धनं धनं जेष्य [ १५२६ ]- हमारी मुक्ति अग्निको  
हमारे अनुकूल करे । जिताग्रकार युद्धमें पोरोंकी शीघ्र बीडते  
हैं, जतीप्रकार वीर जाकर हम प्रत्येक युद्धमें विजय प्राप्त करें ।

१९ हे अग्ने ! घृषा सेनया तव ऊत्या गमः आकरा-  
महे, तां नः मघचये हिन्व [ १५२७ ]- हे अग्ने ! जित  
सेनाते तथा जित तेरे सरक्षकते हमें मायें प्राप्त हों, उस  
संरक्षणशक्तिके, हमारा महत्व सब तथा वे हमारे अनुकूल  
हों, इसलिये प्रेरित कर ।

२० हे अग्ने ! स्फूर्तं पूष्यं गोमन्तं आश्विनं चर्यं आ  
भर । छं अग्निं पतिं पतय [ १५२८ ]- हे अग्ने ! बहुत

यज्ञी गायें और घोडेंते युक्त यज्ञ हमें भरपूर दे । आकाशमें  
अपने तेज फैला और शत्रुओंके घात्र हमसे दूर कर ।

२१ हे अग्ने ! जनेभ्यः ज्योतिः दधत्, अजरं नक्षत्रं  
सूर्यं दिपि आरोहय [ १५३० ]- हे अग्ने ! तू सौगंधि  
लिए प्रकाश देता है और तुने सौम न होनेवाले प्रकाशमान्  
सूर्यको धात्रघर्म चढाया ।

२२ हे अग्ने ! विद्यां केतुः प्रेषः श्रेष्ठः अग्निः, उपस्य-  
खन स्तोत्रे चयः दधत्, योष [ १५३१ ]- हे अग्ने ! तू  
प्रजाओंको ज्ञान देनेवाला शिव और श्रेष्ठ है । पत शास्त्रमें  
रहनेवाला तू स्तुति करनेवालेको अन्न देता है और स्तुति  
जानता है ।

२३ मूर्धा दिवः ककुत् पृथिव्याः पतिः अयं अग्निः  
अयां रेतांश्चि जिन्वति [ १५३२ ]- सवमें श्रेष्ठ और  
दुलोकमें श्रेष्ठ स्थान पर रहनेवाला पृथ्वीका पालक अग्नि  
जल्के तावको अपनेमें धारण करता है ।

१४ हे अग्ने ! स्वः पति चर्यस्य द्वात्रस्य ईतिपे,  
तव दामिणि स्तोता स्वाम् [ १५३३ ]- हे अग्ने ! तू स्वयंपका  
स्वामी, स्वीकार करनेयोग्य और धाम देने योग्य ऐसे धर्मोंका  
भी स्वामी है । तेरे द्वारा दिए गए धुलमें रहकर मे तेरी  
स्तुति करनेवाला होऊँ ।

२५ हे अग्ने ! शुचयः शुकाः भ्राजन्तः अर्चयः  
तव ज्योतींश्चि उद्वरते [ १५३४ ]- हे अग्ने ! मुद्ग, स्वच्छ  
और देवीप्यमान प्रवालायें तेरे तेजको प्रेरणा देती हैं ।

इत प्रकार अग्निका वर्णन इस अध्यायमें है । अग्नि वसने  
प्रवीण होता है । श्चस्वियज उसको स्तुति करते हैं । यज्ञमें सब  
देवोंको यह मुक्तकर लाता है । उन देवोंको सोभरस दिया  
जाता है । यह सब अग्निके वर्णनमें हमें मिलता है । अब  
सोमका वर्णन देखिए—

सोम

१ घात्रयत्तं पांपूषं पूष्यं उपथ्यं मद्रः माहात् दिवः  
आ निरुसुस्तु [ १५५४ ]- बहुते मिलनेवाला अमृत  
प्रशसनीय है । महापू अणाम् दुलोकते यह निकाला गया है ।  
हिमालयके जले क्षिप्रर पर यह सोम उगता है और बहुते  
यह बनेके लिए लाया जाता है ।

२ पश्यमानासः दिव्याः वसुस्यः स्वायें ई अज्य-  
नूपत [ १५५५ ]- इस सोमको देखनेवाले दिव्य वसुदत्त  
भाईके समान इस सोमकी स्तुति करते हैं ।

३ हे पयमान ! यत् इमे रोदृषी इमा विश्वा भुचुना  
च विराजसि [ १५५६ ]- हे सोम ! इस सृ और पुष्की  
पर और इन सब भुवनों पर तू विराजमान होता है ।



४ प्रथमः वृत्त-वर्णयः महे वाजाय श्रमे ते धियं द्युः । सः त्वं नः धीर्याय चोदय [ १५०६ ]- तू सबसे मुख्य है, आमत कमानेवाले यजमान, विशेष बल और अन्न प्राप्त हो, इसलिद तेरे विषयमें उसम आदर बुद्धि धारण करते हैं। यह तू हे सोम ! हम यीर हों ऐसी हमें प्रेरणा दे।

५ श्रधस्ता अभ्यभि ततार्द्धि [ १५०७ ]- अन्नते पृथक् होकर यह सोम छलनीसे नीचे घटनमें छाना जाता है।

६ हे अमृत ! अतस्य चारुणः अमृतस्य कं मर्त्याय अजीजनः सनिष्यद्त् वाज अचक्ष सद्वा असर [ १५०८ ]- हे अमृतवर्षी सोम ! हाथ और मगल करनेवाले, पानीकी धारण करनेवाले आकाशमें सूर्यको तूने मनुष्योंके हितके लिपू धारण किया। तूने देवोंकी सेवा की। तू हमेशा मुदमें सीधा जाता है।

इस प्रकार इस अप्यायमें सोमका वर्णन है। सोम ऊंचे पर्वत शिखर पर उत्पन्न होता है। वहाते यह पत्तके लिए लाया जाता है। कूटकर उनका रस निकाला जाता है। उसमें पानी मिलाकर यह छाना जाता है। उसमें गावका दूध मिलाते हैं। यह दग्गादि देवोंकी विद्या जाता है, बाबमें उसे मय पीते हैं।

यह सब आलंकारिक भाषामें वर्णित है।

## सुभाषित

१ स्वत्यस्य स्युं गोपति सःपति अभि प्र अर्च [ १४८९ ]- स्वत्यके प्रभार करनेवाले, गायोंके रक्षक और मयके रक्षकका साकार करो।

२ गावः यन्निगे इन्द्राय मधु आशिरं बुद्धे [ १४९१ ]- गावें बन्धवादी इन्द्रको मीठा दूध देनी हैं। योरोंकी गावका दूध पीना चाहिए।

३ विश्वास्तु समस्तु हव्येनः ब्रह्माणि सयनानि उप आभूवत [ १४९२ ]- सब पुढोंमें ब्रह्माने मोग्य बोरोंकी सोमा ह्यारे स्तोत्र बजाते हैं।

४ पुत्रहन् परमजा प्रार्थामः [ १४९२ ]- हे मनुको मारनेवाले और महान् मनुष्यकी बोरोंवाले बोर ! हम तेरी स्तुति बजाते हैं।

५ एवं राघस्तां प्रपमः दाता अति [ १४९३ ]- तू पनोवा सबने पट्टिया बका है।

६ ईशानश्रुत् सत्य अभि [ १४९३ ]- तू ऐश्वर्यपुत्र करनेवाला और सत्य है।

७ तुविद्युमनस्य शयसः पुत्रस्य मद्रः युज्या वृणी- महे [ १४९३ ]- बहुत तेजस्वी, बलवान्के पुत्रके समान तुमसे बहुत सारा धन प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं। जो बलवान् होता है, उसे बहुतसा धन मिलता है और वह बहुतसा धन देता भी है। उसी तरह बहुतसा धन प्राप्त करें और दें।

८ दिव्याः पद्यमानासः आर्या अभ्यनुपत [ १४९५ ]- दिव्य दृष्टिवाले उत्तम भाईकी स्तुति करते हैं।

९ विवः सविता धारं न व्युर्णते [ १४९५ ]- धूलोकसे सूर्य जब तक अणुकार दूर नहीं करता तब तक उसकी स्तुति छोड़ नहीं करता, यह अणुकार दूर करने, मगर कि उमकी स्तुति शुरू हो जाती है।

१० इमे रोदसी, इमा विश्वा भुयना, मज्जना विरा- जसि [ १४९६ ]- इस ध्रु व पृथ्वीमें और इन सब भुवनोंमें अपने सामर्थ्यसे तू सुबोमित होता है।

११ हे चित्रमानो ! विभका अस्ति [ १४९८ ]- हे तेजस्वी देव ! तू धन देनेवाला है।

१२ दाक्षुपे सद्यः क्षरसि [ १४९८ ]- दातारो कर्मके फल तत्काल देता है।

१३ नः परमेधु मध्येधु धाजेधु आभज [ १४९९ ]- हमें श्रेष्ठ और मध्यम भोगोंमें बहुधा।

१४ अन्तमस्य वस्यः शिक्ष [ १४९९ ]- हमें निहृष्ट भोग भी मिले।

१५ पितुः अमृतस्य मेघां बहं इत् परि जग्रह [ १५०० ]- पालन करनेवालीके सत्यबुद्धि मेंने प्राप्त की है।

१६ अहं सूर्यः इव अजनि [ १५०० ]- मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ।

१७ येन इन्द्रः शुष्मं दधे [ १५०१ ]- जित्तो इन्द्र यलकी धारण करता है।

१८ त्वं नः रायः दानाय देयतातये चोदय [ १५०५ ]- तू हमें धन देनेके लिए देवोंकी प्रेरित कर।

१९ प्रथमः महे वाजाय शयसे धियं द्युः [ १५०६ ]- मुख्य होकर वे भहान् बल और यश प्राप्त करनेकी बद्धि धारण करते हैं।

२० सः एवं नः धीर्याय चोदय [ १५०६ ]- पर तू हमें बोर होनेके लिए प्रेरित कर।

२१ यार्त्तं अच्छ सदा भसर. [ १५०८ ]- युवके लिए अतो ही ।

२२ महित्वना रावांसि प्रचोदयते [ १५०९ ]- अपनी महानतासे वह धनोंको प्रेरित करता है ।

२३ त्वत् पुरा वीरतरः न जसे [ १५११ ]- तुमसे पहले तुमसे बढकर महानु वीर और कोई नहीं हुआ ।

२४ राया न कि, पवथा न, भम्दना न [ १५११ ] - धनसे भी तुमसे षढकर कोई नहीं हुआ, शत्रुओंको कुचलने-वाला भी कोई नहीं हुआ और स्तुतिके घोष भी दूसरा कोई नहीं हुआ ।

२५ विघते दाशुपे जनाय सुवीर्यं रत्नं दघाति [ १५१४ ]- यत् करनेवाले, दाता मनुष्यको उत्तम वीरता बढानेवाले धन देता है ।

२६ गातुधित्तमः अदर्शि [ १५१५ ]- बहु उत्तम मार्गदर्शक प्रतीत होता है ।

२७ सुजाते आर्यस्य वर्धनं नः गिरः उपो नक्षन्तु [ १५१५ ]- उत्तम रीतिते उत्पन्न हुए तथा आर्योंके सवर्धन करनेवालेकी हनारी बाणिग्या स्तुति करती है ।

२८ यसात् चर्हन्वामि वृष्यतः कृपयाः रेजन्ते, सहस्रात् मेघसाती धीभि त्मना नमस्यत [ १५१६ ] - जब कर्म करनेवाले मनुष्यको धम् कपाते हैं, तब हजारों प्रकारसे सहायता करनेवाले अतिको हे मनुष्यो ! बुद्धिपूर्वक तुम स्वय प्रणाम करो ।

२९ नः आयुषि ऊर्ज इयं च पवसे [ १५१८ ]- हमें वीर्याम्, बल और शक्त दे ।

३० वृञ्चुर्नां आरे याचस्व [ १५१८ ]- इव्योंको हू करके उन्हें कष्ट दे ।

३१ पाञ्चजन्यः चापिः पुरोहितः [ १५१९ ]- धन-जनोंका हित करनेवाला श्रुति आने रहकर कार्य करता है ।

३२ तं महागयं ईमहे [ १५१९ ]- उसको सहायतासे हम बडे धरमें रहनेकी इच्छा करते हैं ।

३३ स्वपाः असे धर्नः पयस्व, मयि रयिं पोयं दधन् [ १५२० ]- उत्तम कार्य करनेवाला तू हमें तेज दे और हमें धन और पोषण भी दे ।

३४ ऊतिभिः नः भय [ १५२४ ]- सरक्षणके साधनेति हमारा सरक्षण कर ।

३५ सत्रासाहं धरेण्यं विधासु, पुंसु सुष्टं रयिं

नः आ भर [ १५२१ ]- तब शत्रुओंको हरानेवाले, श्रेष्ठ और युद्धमें शत्रुभक्ति लिए द्रुतर धन हमें दे ।

३६ नः जीवसे सुचेतुना विश्वायुपोपसं मादोँक रयिं नः घोहि [ १५२६ ]- हमारे वीर्य भीषणके लिए उत्तम जानसे युक्त, तब आयु पर्यन्त पोषण करनेवाले सुमहायक धन हमें दे ।

३७ तेन धनं धनं जेष्म [ १५२७ ]- उस सामर्थ्यसे हम प्रायेक युद्ध जीते ।

३८ यया सेनया तव जत्या गाः शक्रारामहे, तां नः मघस्ये हिन्व [ १५२८ ]- जित संयत्से और जिस तेरे सरक्षणसे हमें गाय मिले उस सरक्षणशक्तिको हमें धन मिले इसलिए प्रेरित कर ।

३९ स्फूरं पृथुं गोमस्त अभिनं रयिं आ भर [ १५२९ ] - बहुत महानु गाय और घोडेसे युक्त धन हमें दे ।

४० खं अंगिध, पयिं वर्तय [ १५२९ ]- आकाशमें अपने तेज फैला और शत्रुओंको दूर कर ।

४१ अजेभ्यः ज्योतिः दधत् [ १५३० ]- लोगोंके लिए प्रकाश दे ।

४२ त्वं विदारीं केतुः प्रेषः शेष [ १५३१ ]- तू प्रजाओंको आज देनेवाला त्रिप और श्रेष्ठ है ।

४३ स्वपति वार्यस्य दात्रस्य वीर्यापे [ १५३२ ]- तू स्वामी है । स्वोकार करने धीम्य और दान देने योग्य धनका स्वामी है ।

४४ शुचयः शुक्राः धाजन्ता अर्चय तव ज्योतींषि उदीरसे [ १५३४ ]- शुद्ध, स्वच्छ, तेजस्वी और प्रकाशमान तेरी प्रकाशकी किरने वारों और फैलती हैं ।

## उपमा

१ मजमना यूधे निष्ठा वृष्य न [ १४९९ ]- अपनी गतिसे मनुष्यमें जैसे बल रहता है, उसीप्रकार हे तोम ! तू ( चिराजसि ) यहाँ चिराजमान होता है ।

२ सिन्धोः उपाके ऊर्मां सा [ १४९८ ]- जैसे तमूझमें पानीसी सहर्षे गती है, पनीप्रकार ( दाशुपे सधः शररति ) दाताको तू धन देता है ।

३ अहं नृयः ह्य अजनि [ १५०० ]- मैं मूयोंके समान तेजस्वी ही गया हूँ ।

४ प्रथमः वृक्त-सर्हिदः महे वाजाय श्रसे ते धिय द्युः । सः त्व नः वीर्याय सोदय [ १५०६ ]- तू सवते मृष्य है, आतन कंसानेवाले यममान, विशेष बल और अन्न प्राप्त हो, इसलिङ्ग तेरे विषयमें उत्तम आरर बुद्धि पारण करते हैं । वह तू हे सोम ! हम वीर हों ऐसी हमें प्रेरणा दे ।

५ श्रयसा अभ्यग्नि ततार्दिय [ १५०७ ]- अन्नसे युक्त होकर यह सोम छलनीसे नीचे बर्तनमें छाना जाता है ।

६ हे अमृत ! ऋतस्य चारुणः अमृतस्य कं मर्त्याय अजीजनः सनिपद्यद्वाज अच्छ सदा असर [ १५०८ ] - हे अमृतस्यो सोम ! तव्य और मयल करनेवाले, पानीको पारण करेवाले आकाशमें दूबको तूने मनुष्योंके हितसे लिप पारण किया । तूने देवोंको सेवा की । तू हमेगा मुद्धमें सीधा जाता है ।

इस प्रकार इस अध्यायमें सोमका वर्णन है । सोम ऊंचे पर्वत सिद्धर पर उत्पन्न होता है । वहासे यह पदके लिप लाया जाता है । बूटकर उनका रस निकाला जाता है । उसमें पानी मिलाकर यह छाना जाता है । जसमें गावका दूध मिलाते हैं । यह इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है, धारवमें उसे सब पीते हैं ।

यह सब आलंकारिक भाषासे वर्णित है ।

## सुभाषित

१ मत्वस्य गुरुं गोपतिं सगृपतिं मग्निं प्र अर्चं [ १४८९ ]- सत्यसे प्रचार करनेवाले, गावोंके रसाह और मयसे रसबन्ध साकार करो ।

२ गावः घन्निषे इन्द्राय मधु आशिर बुद्धे [ १४९१ ] - गावें बन्धवासे इन्द्रकी मोठा रूप देनी ह । वीरोंको गावका दूध पीना चाहिए ।

३ विभ्यासु समस्तसु हार्य नः धराणि सयनानि उप भामुवत [ १४९२ ] तब मुद्धमें बलाने योग्य वीरोंकी गोमा ह्मारे स्तोक बडाते हैं ।

४ पुत्रहन् परमगाय अचीवमः । [ १४९२ ]- हे प्राणुको मारनेवाले और महान् पशुवनी डोरीवाले वीर ! तब तेरी स्तुति करते हैं ।

५ त्वं वाघस्यो प्रायम दाना अग्नि [ १४९१ ]- तू धनकी मन्त्रो पतिगा बर । है ।

६ ईशानवृत् सत्य अग्नि [ १४९३ ]- तू ऐश्वर्ययुक्त करनेवाला और सत्य है ।

७ तुविद्युम्नस्य शवसः पुत्रस्य महः युव्या वृणी- महे [ १४९३ ]- बहुत तेजस्वी, बलवान्के पुत्रके समाप्त युगसे बहुत सारा धन प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं । जो बलवान् होता है, उसे बहुतसा धन मिलता है और वह बहुतसा धन देता भी है । उसी तरह बहुतता धन प्राप्त करे और वे ।

८ दिव्याः पश्यमानासिः आप्ये अभ्यनुपत [ १४९५ ] - दिव्य बुद्धिवाले उत्तम भाईकी स्तुति करते हैं ।

९ दिवः स्वविता धारं नव्युर्णुते [ १४९५ ]- सुलोकते सूर्य जब तक अथकार दूर नहीं करता तब तक उसकी स्तुति कोई नहीं करता । वह अथकार दूर करने लगा कि उसकी स्तुति शुरु हो जाती है ।

१० इमे रोदसी, इमा विभ्या भुयना, मजमना विरा- जसि [ १४९६ ]- इत धु प पृथ्वीमें और इन सब भुवनमें अपने सामर्थ्यसे तू सुबोभित होता है ।

११ हे चित्रमानो ! विभक्ता वसि [ १४९८ ]- हे तेजस्वी देव ! तू धन देनेवाला है ।

१२ दास्युषे सद्यः क्षरसि [ १४९८ ]- दातारो कर्मने परल तात्काल देता है ।

१३ नः धरमेधु मध्यमेधु धानेधु आयज [ १४९९ ] - हमें श्रेष्ठ और मध्यम भोगोंमें समृद्धा ।

१४ अन्तमसा घसः शिक्ष [ १४९९ ]- हमें निहृष्ट भोग भी मिले ।

१५ पितुः अमृतम्य मेघां व्हं इत् परि जग्रह [ १५०० ]- पालन करेवालेकी सत्यबुद्धि मेंने प्राप्त की है ।

१६ अर्धं सूर्या इष अजनि [ १५०० ]- मैं सूर्यके ममान तेजस्वी हो गया हूँ ।

१७ येन इन्द्रः शुष्मं द्ये [ १५०१ ]- जितने इन्द्र बलने पारण करता है ।

१८ त्वं नः रायः दानाय देष्यतातये सोदय [ १५०५ ] - तू हमें धन देनेसे लिप देवोंकी प्रेरित कर ।

१९ प्रथम मदे वाजाय श्रयसे धियं द्युः [ १५०६ ] - मृष्य होकर वे महान् बल और धन प्राप्त करनेकी बद्धि पारण करते हैं ।

२० नः रवे नः रीर्याय सोदय [ १५०६ ]- नष्ट धु हमें वीर होनेसे लिप प्रेरित कर ।

२१ यज्ञं अच्छ सदा अस्तरः [ १५०८ ]- युजके लिए आगे ही ।

२२ महित्वयना राधांसि प्रचाद्यते [ १५०९ ]- अपनी महानतासे वह धनोंको प्रेरित करता है ।

२३ त्वत् पुरा वीरतरः न जसे [ १५११ ]- तुमसे पहले तुमसे बढकर महान् वीर और कोई नहीं हुआ ।

२४ यया न कि, पयथा न, भन्दना न [ १५११ ] - धनसे भी तुमसे बढकर कोई नहीं हुआ, वस्तुओंको कुपलने-वाला भी कोई नहीं हुआ और स्तुतिके योग भी इसका कोई नहीं हुआ ।

२५ विघते दानुषे जनाय सुवीर्यं रत्नं दधाति [ १५१४ ]- यत करनेवाले, दाता मनुष्यको उत्तम कीरता बढानेवाले धन देता है ।

२६ मातृविस्ममः अदर्शि [ १५१५ ]- वह उत्तम मातांशुकाः प्रतीत होता है ।

२७ सुजातं आर्यस्य वर्धने नः गिरः उपो नक्षन्तु [ १५१५ ]- उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुए तथा आर्योंके संबन्धन करनेवालेको हमारी वाणिज्यां स्तुति करती है ।

२८ यस्मात् चर्चल्यानि कृण्वतः कृपयः रेजन्ते, सहस्रस्य संभ्रमाती धीमि, रम्ना नमस्यत [ १५१६ ] - जब धर्म करनेवाले मनुष्यको शत्रु कंपते हैं, तब हजारों प्रकारसे सहायता करनेवाले भूमिकों हे मनुष्यो ! बुद्धिपूर्वक तुम स्वयं प्रणाम करो ।

२९ नः आर्युषि ऊर्जे ह्ये च पयसे [ १५१८ ]- हमें वीर्याय, बल और जन दे ।

३० दुच्छुर्मां आरे याधस्य [ १५१८ ]- दुष्टोंको दूर करके उन्हें कष्ट दे ।

३१ पांचजन्यः क्रयिः पुरोहितः [ १५१९ ]- वंश-जनोंका हित करनेवाला श्राद्धि आगे रहकर कार्य करता है ।

३२ तं महागयं ईमहे [ १५१९ ]- उसको सहायतासे हम यज्ञे यज्ञे रहनेकी इच्छा करते हैं ।

३३ स्वपाः असे यर्वीः पयस्य, मयि रयिं पोषे दधत् [ १५२० ]- उत्तम कार्य करनेवाला तु हमें तेज दे और हमें धन और पोषण भी दे ।

३४ ऊतिमिः नः अय [ १५२४ ]- संरक्षणके साधनोंसे हमारा संरक्षण कर ।

३५ सयासाहे यरेण्यं विश्वास्तु पृस्तु बुष्टरं रयि

नः आ भर [ १५२५ ]- सब शत्रुओंको हरानेवाले, श्रेष्ठ और युद्धमें शत्रुओंके लिए दुस्तर धन हमें दे ।

३६ नः जीवसे सुचेतुना विश्वाधुपोषसं मार्शीक रयिं नः धेहि [ १५२६ ]- हमारे वीर्य जीवनके लिए उत्तम मानसे युक्त, सब आयु पर्यन्त पोषण करनेवाले मुजबायक धन हमें दे ।

३७ तेन धनं धने जेष्य [ १५२७ ]- उस सामर्थ्यसे हम प्रत्येक युद्ध जीतें ।

३८ यया खेनया तव ऊत्या गाः आकरामहे, तां नः मघच्छये हिंश्व [ १५२८ ]- जित सेम्यसे और जित तेरे संरक्षणसे हमें पाप मिले उस संरक्षणशक्तिको हमें धन मिले इसलिये प्रेरित कर ।

३९ स्थूरं पृष्टं भोमन्तं व्यग्धिनं रयिं आ भर [ १५२९ ] - बहुत महान् पाप और धोखेसे युक्त धन हमें दे ।

४० खं अग्धि, पविं यर्तय [ १५३९ ]- साक्षात्समं सपने तेज फेला और शत्रुओंको दूर कर ।

४१ जनेभ्यः ज्योतिः दधत् [ १५३० ]- लोगोंके लिए प्रकाश दे ।

४२ त्वं विश्वां केतुः प्रेष्ठः श्रेष्ठः [ १५३१ ]- तू प्रजाओंको शान देनेवाला प्रिय और धेष्ठ है ।

४३ स्वयतिः वार्यस्य दात्रस्य ईशिये [ १५३३ ]- तू स्वामी है । स्वोत्तर करने योग्य और शान देने योग्य धनका स्वाधी है ।

४४ शुचयः युक्ताः भ्राजन्तः अर्चयः तप ज्योतीयि उदरिते [ १५३४ ]- शुद्ध, स्वच्छ, तेजस्वी और प्रकाशमान तेरी प्रकाशकी किरणे चरती और फैलती हैं ।

उपमा

१ मजमाना सुये सिष्ठा युवमः न [ १४९६ ]- अपनी शक्तिसे मजबूत जैसे बेल रहता है, उसीप्रकार हे तोम ! तू ( गिराजसि ) यहां विराजमान होता है ।

२ सिन्धोः उपाके ऊर्मा आ [ १४९८ ]- जंगे समुद्रमें पानीकी लहरें जाती हैं, उसीप्रकार (दानुषे सद्यः क्षरसि ) शताको तू धन देता है ।

३ अहं सूर्या इव अजनि [ १५०० ]- मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ ।

४ कण्ववत् अह प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि [ १५०१ ] कण्वके समान में प्राचीन वागोसे इन्द्रकी स्तुति करके उसे सुशोभित करता हूँ ।

५ न कंचित् जनपाने अक्षितं उरसे [ १५०७ ]- मनुष्योके पानी पीनेके लिए जैसे होज भरा जाता है, उसी-प्रकार हे सोम ! ( अक्षयमि ततर्दिथ ) छाया जाकर तू बतंतमें भरा जाता है ।

६ भरमाण. न [ १५०७ ]- जिसप्रकार हीन भरते

हैं, उसीप्रकार ( गभस्त्वोः शर्याभिः ) हाथकी अंगुलियोंसे शोभरस घर्तनमें भरा जाता है ।

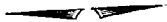
७ इन्द्रः न [ १५१७ ]- इन्द्रके समान ( अग्निः मातरं पृथिवीं अनु प्र वि वावृते ) अग्नि मातृभूमिपर अनेक प्रवृत्ति करता है ।

८ आञ्जियु आशुं सर्षि इव [ १५२७ ]- युद्धमें वेगवान् घोड़ेकी जिसप्रकार बीडते हैं, उसीप्रकार ( नः धियः सर्षि हिन्यन्तु ) हमारी बुद्धियाँ अग्निको प्रेरित करें ।

## चतुर्दशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रांख्या	ऋषेइत्यान	ऋषि.	देवता	छन्दः
( १ )				
१४८९	८१६१३	त्रियमेघ आगिरसः	इन्द्रः	गायत्री
१४९०	८१६१४	त्रियमेघ आगिरसः	"	"
१४९१	८१६१५	त्रियमेघ आगिरसः	"	"
१४९२	८१९०१	नुमेघ-सुदमेघावागिरसो	"	प्रगाप = ( विद्यमा बृहती, समा सतोबृहती )
१४९३	८१९०२	नुमेघ-सुदमेघावागिरसो	"	"
१४९४	९१११०८	त्र्यदनात्रेवृष्ण, त्रसदस्युः पौदहुस्तः	पवमान-सोमः	ऊर्ध्वा बृहती
१४९५	९१११०९	त्र्यदनात्रेवृष्ण, त्रसदस्युः पौदहुस्तः	"	"
१४९६	९११११०	त्र्यदनात्रेवृष्ण, त्रसदस्युः पौदहुस्तः	"	"
१४९७	१११७१४	दुन-सोप आजीगतिः	अग्नि.	गायत्री
१४९८	१११७१५	दुन-सोप आजीगतिः	"	"
१४९९	१११७१५	दुन-सोप आजीगतिः	"	"
१५००	८१६११०	वसतः काण्वः	इन्द्रः	"
१५०१	८१६१११	वसतः काण्वः	"	"
१५०२	८१६११२	वसतः काण्वः	"	"
( २ )				
१५०३	—	अग्निस्तापसः	विश्वेदेवाः	मनुष्टुप्
१५०४	—	अग्निस्तापसः	"	"
१५०५	१०११४११	अग्निस्तापसः	"	"
१५०६	९१११०७	त्र्यदनात्रेवृष्ण, त्रसदस्युः पौदहुस्तः	पवमान. सोम.	ऊर्ध्वा बृहती
१५०७	९१११०८	त्र्यदनात्रेवृष्ण, त्रसदस्युः पौदहुस्तः	"	"

संज्ञसंख्या	श्राव्येदस्यानं	श्राव्यः	वेदता	सूत्रः
१५०८	२।११।०३	त्रयदणस्त्रं वृष्णाः, त्रसदस्त्रुः पीठकुसः	पवमानः सोमः	अर्धमां बृहती
१५०९	८।१४।१३	विद्वयमना वयदस्त्रः	द्वन्द्वः	उत्पिणक्
१५१०	८।१६।१४	विद्वयमना वयदस्त्रः	"	"
१५११	८।१४।१५	विद्वयमना वयदस्त्रः	"	"
१५१२	८।६९।१२	त्रियमेध आंगिरसः	"	"
( ३ )				
१५१३	७।१६।११	वसिष्ठो मंत्रावधनिः	अग्निः	प्रगाथाः = ( विपमां बृहती, समा सतो बृहती )
१५१४	७।१६।१२	वसिष्ठो मंत्रावधनिः	"	"
१५१५	८।१०३।१	सोमर्षिः काण्वः	"	बृहती
१५१६	८।१०३।३	सोमर्षिः काण्वः	"	"
१५१७	८।१०३।१२	सोमर्षिः काण्वः	"	"
१५१८	९।६६।१९	शतं वेषामसः	अग्निः पवमानः	शायत्री
१५१९	९।६६।२०	शतं वेषामसः	"	"
१५२०	९।६६।२१	शतं वेषामसः	"	"
१५२१	५।१६।१	वसुपथ आग्नेयः	अग्निः	"
१५२२	५।१६।१	वसुपथ आग्नेयः	"	"
१५२३	५।१६।३	वसुपथ आग्नेयः	"	"
( ४ )				
१५२४	१।७९।७	गोतमो राहूगणः	"	"
१५२५	१।७९।८	गोतमो राहूगणः	"	"
१५२६	१।७९।९	गोतमो राहूगणः	"	"
१५२७	१०।१५६।१	केतुराग्नेयः	"	"
१५२८	१०।१५६।२	केतुराग्नेयः	"	"
१५२९	१०।१५६।३	केतुराग्नेयः	"	"
१५३०	१०।१५६।४	केतुराग्नेयः	"	"
१५३१	१०।१५६।५	केतुराग्नेयः	"	"
१५३२	८।४४।१६	विरूप आंगिरसः	"	"
१५३३	८।४४।१८	विरूप आंगिरसः	"	"
१५३४	८।४४।१७	विरूप आंगिरसः	"	"



## अथ पञ्चदशोऽह्नायः ।



अथ सप्तमप्रपाठके द्वितीयोऽर्घः ॥ ७-२ ॥

[ १ ]

( १-१४ ) १, ११ गोतमो राहुषणः; २, ९ विश्वामित्रो गामिनः; ३ बिल्व आंविरसः; ४, ७ भर्गः प्रगाथाः; ५ पित भात्यः; ६ जसना काव्यः; ८ सूवीति- युवमीदृहावागिरसो १० सोमरिः काव्यः; १२ गोपयन आग्नेयः; १३ भर-  
द्राजो बाहुष्यतो, द्यौतहस्य आगिरसो वा; १४ प्रयोगो भार्यवः; पावकोऽग्निर्बाहुष्यतो वा, गृह्यति-यविज्यो  
सहस्र-पुत्रावाप्यतरो वा ॥ अग्निः ॥ १-३, ६, ९, १४ गायत्री; ४, ७, ८ प्रगाथः- ( विषया गृह्णी, समा  
सतीगृह्णी, ); ५ त्रिष्टुप् १० काकुभः प्रगाथः- ( विषया ककुपु, समा सतीगृह्णी ); ११ उज्जिण्; १२  
अनुष्टुप्सुतः प्रगाथः- ( अनुष्टुप् + गायत्री ); १३ जगती ॥

१५३५ कस्ते जाभिर्जनानामग्ने को दाशध्वरः । को ह कसिस्तसि श्रितः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७।३ )

१५३६ एवं जाभिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईह्य ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७।४ )

१५३७ यजा नो मिषावरुणा यजा देवाश्च श्रतं वृहद् । अग्ने यक्षि एवं दमम् ॥३॥ १ ( रु ) ॥

[ पा० ८ । उ० नास्ति । ख० ९ ] ऋ. १।७।५ )

१५३८ ईदैन्यो नमस्यस्तिरस्तमाशसि दशतः । समगिरिष्यते वृषा ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।२७।११ )

१५३९ वृषो अग्निः समिष्यतेऽश्वो न देववाहनः । तश्च हविष्मन्त ईहते ॥२॥ ( ऋ. ३।२७।१४ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १५३५ ] हे अग्ने । ( जनानां ते जाभिः काः ) मनुष्यांति तेरा भाई कौन है ? ( वृषु-अप्यरः काः ) शखते तेरा पक्ष करनेवाला कौन है ? ( काः ह ) तू कौन है यह कौन जानता है ? ( कस्मिन् श्रितः असि ) तू कहां आश्रय लेकर रहता है ? ॥ १ ॥

[ १५३६ ] हे अग्ने । ( एवं जनानां जाभिः प्रियः मित्रः असि ) तू मनुष्योंपन भाई और प्रिय मित्र है । ( ईह्यः सखिभ्यः सखा ) तू वृषुष और ऋषिजनको मित्रोंका मित्र है ॥ २ ॥

[ १५३७ ] हे अग्ने । ( नः ) हमारे लिए ( मिषावरुणा यजा ) निष और बलवान यजन कर । ( देवान् यज ) देवोंका यजन कर । ( श्रतं वृहद् एवं दमे यक्षि ) पक्ष कर और महान् यजमानोंमें पूज्य होकर रह ॥ ३ ॥

[ १५३८ ] ( ईदैन्यः ) वृषुष और गणकार करने योग्य ( तमांस्ति तिरः ) अप्यरको बुर करनेवाला ( वृषोः वृषा अग्निः ) वर्तनीय और बलवान् अग्नि ( सं दशयते ) आहुतिके द्वारा जसमताये प्रदीप्त किया जाता है ॥ १ ॥

[ १५३९ ] ( वृषा उ ) बलवान् ( अश्वः न देववाहनः ) घोडा होते राजाको शेरके समान है जसोप्रकार अग्नि देवोंके पास हवि के जाता है, ऐसा यह ( अग्निः समिष्यते ) अग्नि आहुतिके द्वारा प्रदीप्त किया जाता है । ( तं हविष्मन्तः ईहते ) हवन करनेवाले यजमान उन अग्निको वृषुषि करते हैं ॥ २ ॥

- १५४० वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीधत् वृहत् ॥ ३ ॥ २ ( छि ) ॥  
 [ पा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ३।२७।१५ )
- १५४१ उचे वृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४१।४ )
- १५४२ उप त्वा जुह्वेरे मम घृताचीर्यन्तु हर्षत । अग्ने हव्या जुपस्व नः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४१।५ )
- १५४३ मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रमानुं विभावसुम् । अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥ ३ ॥ ३ ( ह ) ॥  
 [ धा० १ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।४१।६ )
- १५४४ पाहि नो अन्न एकया पासुदेव द्वितीयया ।  
 पाहि गीर्मिस्तिस्वामिरूजां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६०।९ )
- १५४५ पाहि विश्वस्माद्रक्षसा अराव्याः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।  
 त्वामिद्वि नेदिष्ठं देवताभय आपि नक्षामहे वृषे ॥ २ ॥ ४ ( यि ) ॥  
 [ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।६०।१० )
- ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ १५४० ] हे ( वृषण् अग्ने ) बलवान् अग्ने ! ( वृषण् घयं ) आहुति देनेवाले हम ( वृषणं दीधत् वृहत् ) बलवान्, तेजस्वी और महान् तुम अग्निहीने ( समिधीमहि ) प्रशंसित्वा करते हैं ॥ ३ ॥

[ १५४१ ] हे ( दीदिवः ) तेजस्वी अग्ने ! ( समिधानस्य ते ) प्रवीण होनेवाले तेरी ( वृहन्तः शुक्रासः ) महान् शुद्ध ( अर्चयः ) प्रवासायें ( उदीरते ) निकलती हैं ॥ १ ॥

[ १५४२ ] हे ( हर्षत अग्ने ) प्रशय अग्ने ! ( मम घृताधीः जुह्वेः ) मेरे दीते पूर्ण नरे हुए घषवे ( त्वा उप-यन्तु ) तेरे पास आये, ( नः हव्या जुपस्व ) हमारी हविका तु तेबल कर ॥ २ ॥

[ १५४३ ] ( मन्द्रं होतारं ) आनन्द देनेवाले, देवोंको बुलाकर समनेवाले ( मृत्विजं चित्रमानुं ) श्रुतिवजं चित्रमानुं श्रुतके अनुसार यज्ञ करनेवाले तेजस्वी ( विभावसुं आग्निमीडे ) प्रकृतमानु अग्निहीने म् स्तुति करता हूँ । ( सः श्रवत् उ ) वह उने सुने ॥ ३ ॥

[ १५४४ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नः एकया पाहि ) तु हमारा एक ऋचाकर रक्षण कर । ( उत द्वितीयया पाहि ) और दूसरी ऋचाके रक्षा कर । हे ( रुजां पते ) बलके पातक ! ( निरुभिः गीर्मिः पाहि ) तीन मंत्रोंने हमारा संरक्षण कर । हे ( वसो ) निवासक ! ( चतसृभिः पाहि ) चार मंत्रोंने रक्षण कर ॥ १ ॥

[ १५४५ ] हे अग्ने ! ( विश्वस्मात् रक्षसा अ-राव्याः ) सब राक्षसोंने और बाल न देनेवाले दायुजोंने ( नः पाहि ) हमारी रक्षा कर । तथा ( वाजेषु प्राध स्म ) युद्धमें हमारी रक्षा कर । ( हि ) क्योंकि ( नेदिष्ठं आपि त्वां हव् दि ) हमारा पासका आर्षि तू ही है । ( देवताभये वृषे नक्षामहे ) यज्ञको निद्रिके लिए और अग्ने संवर्धनेके लिए तेरी प्रशंसने आते हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ २ ]

- १५४६ इ० राजभरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुपुमा५ अदर्शि ।  
चिकिद्भि भाति भासा बृहतासिक्तीमिति कृशतीमपाजन् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।३।१ )
- १५४७ कृष्णां पदेनीमभि वर्षसाभूजनयन्पोषां बृहताः पितृजांम् ।  
ऊर्ष्व मातु५ ष्यस्य स्वभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।३।२ )
- १५४८ भद्रो भद्रया सचमान आमात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।  
सुप्रकैतैर्धुभिरधिवितिष्ठन्नृशङ्गिर्वर्णरभि राममस्वात् ॥ ३ ॥ ५ ( पो ) ॥  
[ धा० २०। ७० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ १०।३।३ )
- १५४९ कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जा नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ॥ १ ॥ ( ऋ ८।८।४ )
- १५५० दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यज्ञो । कदु बोच इदं नमः ॥ २ ॥ ( ऋ ८।८।५ )

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १५४६ ] हे अग्ने ! तू ( इतः ) सबका स्वामी है, ( भरतिः ) वेकैके पात जानेवाला ( समिद्धः ) प्रशंसित किया गया ( रौद्रः ) शत्रुओंकी भय दिखानेवाला ( सुपुमान् ) उपासकोंकी दृष्ट पदार्थ देनेवाला ( दक्षाय अदर्शि ) तू बल बढ़ानेवाला है यह देख लिया है । ( चिकिद् विभाति ) सर्वत सू प्रदीप्त होता है । ( कृशती अपाजन् ) तेजस्वी ज्वालामोंकी फैलाते हुए ( बृहता भासा ) महान् तेजसे ( अतिफर्ती एति ) रात्रीमें जाता है ॥ १ ॥

[ १५४७ ] यह अग्नि ( यत् ) जब ( बृहताः पितुः जां योषां ) महान् पितृते उत्पन्न हुई हुई स्वीरूपी उषाकी ( जनयन् ) प्रकट करके ( कृष्णां एनीं वर्षसा अभिभूत् ) काली रात्रीकी अपनी ज्वालामोंसे हराता है । तब ( भरतिः ) यह गतिमान् अग्नि ( दिवः वसुभिः ) धूलोकमें अपने तेजसे ( सूर्यस्य भातुं ) सूर्यके तेजकी ( ऊर्ष्व स्तभायन् ) ऊपर ही भागकर ( विभाति ) स्वयं प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

[ १५४८ ] ( भद्रः ) कल्याण करनेवाला अग्नि ( भद्रया सचमानः आमात् ) कल्याण करनेवाली उषाके द्वारा सेवित होता हुआ प्रशंसित होता है । ( पश्चात् जार- स्वसारं अभ्येति ) तब यामुका नाम करनेवाला अग्नि अपनी बहिन उषाकी प्राप्त होता है । ( सुप्रकैतैः धुभिः यितिष्ठन् ) अपने तेजसे सर्वत्र रहनेवाला यह ( अग्निः ) अग्नि ( उदाङ्गिः वर्णः ) तेजस्वी रणोंकी ज्वालामोंसे ( रामं अग्न्यस्थात् ) रात्रीके अथकारकी हराकर स्थिर रहता है ॥ ३ ॥

[ १५४९ ] हे ( अग्निः ) अग्निके प्रकाशक और ( ऊर्जाः न-पात् ) धल कन न करनेवाले ( देव अग्ने ) अग्नि देव ! ( वराय ) सबके द्वारा स्वीकृतनीय और ( मन्यवे ते ) शत्रु पर क्षीय करनेवाले तेरे लिए ( कया उप स्तुति ) कीनसी रीतिले मैं स्तुति करूँ ? ॥ १ ॥

[ १५५० ] ( सहसा यज्ञो ) हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! ( कस्य यज्ञस्य मनसा दाशेम ) कित्त यज्ञ करनेवालेके मनके समान हम हवि अर्पण करें ? ( इदं नमः कान बोचे उ ) ये हवि अथवा यह नमस्कार तुमो प्राप्त हों, यह हुए कब कहें ? ॥ २ ॥

१५५१ अथा त्वं हि नस्करौ विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसौ गिरः ॥२॥ ६ (ठ) ॥  
[ धा० १८।३० १। स्व० १ ] ( ऋ. ८।८४।९ )

१५५२ अग्नि आ यादाग्निभिर्होतारं त्वा पृणीमहे ।  
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं वहिरासदे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६०।१ )

१५५३ अच्छा हि स्वा सहसः सुनो अग्निरः सुचक्षरन्त्यध्वरे ।  
ऊनो नपातं घृतकेद्यमीमहेर्दामि यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ २ ॥ ७ ( या ) ॥  
( धा० १।०। ४० नारित । स्व० २ ) ( ऋ. ८।६०।१ )

१५५४ अच्छा नः शीरशोचिर्प गिरो यन्तु दर्शतम् ।  
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरुवसुं पुरुप्रशस्तमृतये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।१।० )

१५५५ अग्निं च सुनुं सहसो जातवेदसं दानाय वाप्याणाम् ।  
द्विता यो भूदमृतो मर्येषवा होता मन्द्रतमो विशि ॥ २ ॥ ८ ( टा ) ॥  
[ धा० ८।३० १। स्व० २ ] ( ऋ. ८।१०।१।१ )  
॥ इति त्रितीयः सर्गः ॥ २ ॥

[ १५५१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( अध ) इसके बाद ( त्वं हि अस्मभ्यं करः ) पू ही हमारो लिए ऐसा बर कि ( नः विश्वाः गिरः ) हमारी सब स्तुतियां ( सु-क्षितीः ) हमें सब खेल स्थानीके स्वामी और ( वाजद्रविणसः ) अथ अथवा पनसे युक्त करें ॥ ३ ॥

[ १५५२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( या होतारं पृणीमहे ) पू देवोंने बुलानेवाला है । ऐसा समसकर तेरो प्रार्थना हम करते हैं । ( आग्निभिः आयाहि ) अग्निबोकें मान यहाँ आ । ( यजिष्ठं र्वा ) पूतनीय सुने ( प्रयता हविष्मती ) तेव्हार हविष्मत् आहुति ( यज्ञिः आसदे ) आसन पर बैठनेके बाद ( अवनन्तु ) प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ १५५३ ] हे ( सहसः सुनो अग्निरः ) बलके पुत्र और सब जगह मनन करनेवाले अग्ने । ( स्वा अध्वरे अच्छ ) तुझे यतमें प्राप्त करनेके लिए ( सुचक्षरन्त्यध्वरे ) घनचे हलचल करते हैं । ( ऊनो नपातं घृतकेदी ) बल कम न करनेवाले और प्रथम कालमें घृत ( पूर्व्यं अग्नि ) मनीरय पूर्ण करनेवाले अग्निकी हम ( यज्ञेषु इमहे ) यतमें स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १५५४ ] ( नः गिरः ) हमारी स्तुतियां ( शीरशोचिर्प दर्शतं ) प्रखलित ब्रह्माश्रिते युक्त और बर्तनीय अग्निके पाग ( अच्छा यन्तु ) तीधी जावें । ( ऊतये ) हमारो रक्षार्थे लिए ( नमसा यज्ञासः ) धीमे युक्त होनेवाले हमारे पास ( पुरु-वसुं पुरु-प्रशस्तं अच्छ ) बहुत घनमे युक्त और बहुत प्रशस्तनीय अग्निकी प्राप्त हों ॥ १ ॥

[ १५५५ ] ( मर्येषु ) मनुष्योंमें ( यः अमृतः ) जो अमृत है, ( द्विता अमृत ) वह देवोंमें भी अमृत है, अर्थात् दोनों स्थानोंमें वह अमृत है, ( विशि होता मन्द्रतमः ) वह मनुष्योंमें हवन करनेवाला और आत्मन देवैवासा है । ( सहसः सुनुं ) बलमे उत्पन्न होनेवाले ( जात-वेदसं अग्निं ) सर्व ज्ञानो अग्निनी ( वाप्याणां दानाय ) पनके दानके लिए हम प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

[ ३ ]

१५५६ अदाभ्यः<sup>१ २</sup> पुरस्ता<sup>३ २ ३ २ ३ १ २ १ २</sup> विशामभिर्मानुपीणां<sup>२ ३ २ ३ २ ३ १ १</sup>। तूर्णां<sup>२ ३ २ ३ २ ३ १ १</sup> स्थः सदा नवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।१।१५ )

१५५७ अमि प्रया<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ऽसि वाहसा<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> दास्वा<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ऽअश्रोति<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मर्त्यः । क्षयं पाथकशोचिपः ॥२॥ ( ऋ. ३।१।१० )

१५५८ साह्वान्विश्वा<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अभियुजः<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ऋतुर्देवानाममृक्तः । अमिस्तुविश्रवस्तमः ॥ ३ ॥ ९ ( वि ) ॥  
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ । ( ऋ. ३।१।१६ )

१५५९ भद्रो<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> नो अभिराहुतो<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> भद्रा<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> रातिः सुमग<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> भद्रो<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अध्वरः । भद्रा<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> उत प्रश्नस्तयः ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।१९।१९ )

१५६० भद्रं<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मनः कृणुष्व<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> वृत्रतूर्यं<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> येना<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> समस्तु<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> सासहिः ।  
अव<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स्थिरा<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> तनुहि<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> भूरि<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> श्रधैर्वा<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> वनेमा<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ते अभिष्टये ॥ २ ॥ १० ( लि )  
[ धा० ४ । उ० नास्ति । स्व० ३ । ( ऋ. ८।१९।२० )

१५६१ अग्ने<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> वाजस्य<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> गोमत<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ईशानः सहसो<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यहो । अस्मे<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> देहि<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> जातवेदो<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> महि श्रवः ॥ १ ॥  
( ऋ. १।७९।४ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १५५६ ] ( मानुपीणां विशां पुर-पता ) मानवी प्रजाओंमें भागे रहनेवाला ( तूर्णाः ) शीघ्रतासे कार्य करने-वाला ( रथः ) रथके समान प्रगतिशील ( सदा नवः अग्निः ) सदा नवीन यह अग्नि ( अ-दाभ्यः ) किसीके द्वारा न बचाए जानेवाला है ॥ १ ॥

[ १५५७ ] ( दाश्वान् मर्त्यः ) दाता मनुष्य ( वाहसा ) हवि पहुंचानेवाले अग्निसे ( प्रयांसि अमि अश्रोति ) अग्रको प्राप्त करता है, तथा ( पाथकशोचिपः ) पवित्र प्रकाशवाले अग्निसे ( क्षयं ) निवृत्त योग्य घर प्राप्त करता है ॥ २ ॥

[ १५५८ ] ( अभियुजः विश्वाः साह्वान् ) चर्चा करनेवाले सब शत्रुको सेनाओंको हरानेवाला ( देवानां ऋतुः अग्निः ) देवोंका यज्ञ करनेवाला अग्नि ( तुयि-श्रवस्तमः ) बहुतता अग्र वेनेवाला है ॥ ३ ॥

[ १५५९ ] ( आहुताः अग्निः नः भद्रः ) आहुतियोंसे तृप्त हुआ हुआ अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला हो । हे ( सु-भग ) उत्तम भाष्यवान् आने ! ( भद्रा रातिः ) तेरे कल्याण करनेवाले दान हमें प्राप्त हों । ( अध्वरः भद्रः ) हमारा यज्ञ कल्याण करनेवाला हो । ( उत्तः प्रशस्तयः भद्राः ) और हमारे द्वारा की गई स्तुतियों हमारा कल्याण करने-वाली हों ॥ १ ॥

[ १५६० ] हे आने ! ( वृत्र-तूर्यं मनः भद्रं वृणुष्व ) युद्धमें हमारे मनको कल्याणमय विचार करनेवाला कर । ( येन समस्तु सासहिः ) जिससे युद्धमें शत्रुका पराभव तु करता है । ( श्रधैर्वा भूरि स्थिरा अवयतनुहि ) युद्ध करने-वाले शत्रुकी सुदृढ़ सेनाका भी तु पराभव कर, ( अभिष्टये ते वनेमा ) हम अपने कल्याणके लिए तेरी आराधना करते हैं ॥ २ ॥

[ १५६१ ] हे ( सहस्रः यहो ) बलके पुत्र आने ! ( गोमतः चाजस्य ईशानः ) गावोंके साथ होनेवाले अग्रका तु स्वामी है । हे ( जातवेदः ) सर्वज्ञ । ( अस्मे महि श्रवः देहि ) हमें बहुत सारा अग्र दे ॥ १ ॥

१५६२ स इधानो चसुष्कविराग्रीरिडिपो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ २ ॥

( ऋ. १।७२।९ )

१५६३ क्षपां राजन्नुत त्मनाभि वस्तोरुतोपसः । स तिमजम्म रक्षसो दह प्रति ॥३॥ ११ (टा)॥

[ धा० १३ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।७२।६ )

॥ इति ततीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१५६४ विशोविशो वो अतिरिथि वाज्यन्तः पुरुप्रियम् ।

अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुपे शूपस्य मम्ममिः ॥ १ ॥ ऋ. ८।७४।१ )

१५६५ ये जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सविंरासुतिम् । प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

( ऋ. ८।७४।२ )

१५६६ पन्यात्सं जातवेदसं यो देवतास्युद्यता । हव्यान्विरयाद्वि ॥ ३ ॥ १२ (टा) ॥

[ धा० ११ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।७४।३ )

१५६७ समिद्धमग्निं समिधा गिरा शृणुं शुक्तिं पावकं पुरो अश्वरे ध्रुवम् ।

विप्रश् होतारं पुरुवारमद्भुह कविश् सुन्नीरमदे जातवेदसम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।११।७ )

[ १५६२ ] ( सः अग्निः ) वह मग्नि ( इधानः चसुः ) प्रवीण हुआ हुआ और निवास करनेवाला ( कविः ) जानने ( गिरा इडेव्यः ) बाणोंके द्वारा स्तुति करने योग्य है । हे ( पुर-अग्नि ) अनेक क्वाला मुक्त अपने ! ( असभ्यं देवत् दीदिहि ) हमें चमकनेवाले धन दे ॥ २ ॥

[ १५६३ ] ( राजन् अग्ने ) हे प्रकानमान् अग्ने ! ( वस्तोः उत उपसः ) तब दिन और रातोंमें ( क्षपां ) तप्तभौका नाश कर । ( उत त्मना ) और स्वयं दू हे ( तिमज म्म ) तीक्ष्ण मुजवाले मन्ने । ( रक्षस्य प्रति दह ) राजतोंको जला दे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १५६४ ] हे याजको ! ( वाज्यन्तः घः ) मत्त न बलको इच्छा करनेवाले कुम ( विशः विशः अतिरिथि ) प्रत्येक प्रजाजनोंके पक्षमें अतिरिथिके समान पुत्रजोय और ( पुरुप्रियं अग्निं ) महतोंको धिय लगानेवाले अग्निको हवि अर्पित करो । ( घः शूपस्य मम्ममिः ) पुरुवारं बल बढ़ानेवाले स्तोत्रोंके द्वारा ( दुर्यं वचः स्तुपे ) स्फुटिलभमें रहनेवाले अग्निको हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १५६५ ] ( ये ) जितको ( हविष्मन्तः जनासः ) हवि रलनेवाले लोग ( मित्रं न ) मित्रके तमान ( सविं-रासुतिं ) धीके हवनके साथ ( प्रशस्तिभिः प्रशंसन्ति ) स्तोत्रोंके प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

[ १५६६ ] ( पन्यात्सं जातवेदसं ) अर्पण स्तुतिके योग्य तर्बतानी अग्निको हम स्तुति करते हैं, ( यः ) जो ( देवतासि ) देव यजमें ( उद्यता हव्यानि ) विद्य जानेवाले हविर्बन्ध ( विवि देरयत् ) सुनोकरनें पहुचता है ॥ ३ ॥

[ १५६७ ] ( समिधा समिद्धं अग्निं ) समिधाअग्निं प्रवर्तित हुए हुए अग्निको मैं ( गिरा शृणुं ) बाणोंके स्तुति करता हूँ । ( शुक्तिं ध्रुयं पावकं अश्वरे पुरः ) शूड, स्थिर और पवित्र करनेवाले अग्निको यजमें मैं आगे स्थापित करता हूँ । ( विप्रश् होतारं ) जानने तथा हवन करनेवाले ( पुरुवारं मद्भुह ) अनेकों द्वारा स्वीकार करने योग्य, होह न करनेवाले ( कवि जातवेदसं ) जानने और तर्बतानी अग्निको ( सुन्नीः इमदे ) धनके लिए हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

१५६८ त्वां दूतमग्रे अमृतं युगयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।

देवासश्च मर्तासश्च जागृवि विभुं विश्वपतिं नमसा नि पेदिरे ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१।८ )

१५६९ विभूपन्नम् उभयां अनु व्रता दूता देवानां रजसीं समीपसे ।

यथा भीतिं सुमतिमावृणीमहेऽथ स्म नक्षिर्वरुथः शिवो भव ॥ ३ ॥ १३ ( या ) ॥

[ धा० २२ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ६।१।९ )

१५७० उप त्वा जामया गिरा देदिद्यतीर्हिविष्कृतः । चापारानीके अस्थिरन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०२।३ )

१५७१ यस्य त्रिषास्त्ववृतं परिस्त्वस्थावसन्दिनम् । आपश्चिन्नि दषा पदम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१०२।४ )

१५७२ पदं देवस्य मीदुषोऽनाघृष्टामिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदक् ॥ ३ ॥ १४ ( इ ) ॥

[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. ८।१०२।५ )

॥ इति धतुयः लघः ॥ ४ ॥

॥ इति तप्तमन्त्रवाचके द्वितीयोऽधः ॥ ७-२ ॥

॥ इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

[ १५६८ ] हे ( अग्ने ) अने ! ( देवासः च मर्तासः च ) देव और मनुष्य ( अमृतं युगे युगे हव्यवाहं ) धरत और प्रत्येक यत्नमें हविकी वेधोंकी और पहुचानेवाले ( पायुं ईड्यं त्वां ) रसक और स्तनिके योग्य तुम ( दूतं दधिरे ) दूत बनाते है, तथा ( जागृवि विभुं विश्वपतिं ) जागृत, व्यापक और प्रजाके रसक मजिकी ( नमसा निपेदिरे ) नमन करते हुए उपासना करते हैं ॥ २ ॥

[ १५६९ ] हे अने ! ( उभयान् विभूपन् ) देव और मनुष्य इन दोनोंमे सुबोधित करनेवाला तू ( अनुव्रता देवानां दूतः ) अनुकूल नियमके समान चलनेवाले देवोंका दूत होकर ( रजसीं समीपसे ) दूबोक व इत लोकमें हवि पशुंधानेके लिए जाता है । ( यत् ते ) इतलिए तेरी तरफ ( धीतिं सुमतिं आवृणीमहे ) उतपन कर्ममें की गई स्तुति भेजते है, ( अथ ) इसके बाद ( त्रि-वरुथः ) तीन स्थानोंमें रहनेवाला तू ( अस्मान् शिवः भव ) हमें सुख देनेवाला हो ॥ ३ ॥

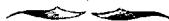
[ १५७० ] हे अने ! ( हविष्कृतः ) यत करनेवालेके लिए ( गिरः जामयाः ) स्तुतिवा बहिलके समान ( देदि-शतीः ) तेरा गुणगान करता हुई ( चायोः अनीके ) वायुके पात ( त्वां उपास्थिरन् ) तुम प्रबल करके स्थापित करते हैं ॥ १ ॥

[ १५७१ ] ( यस्य ) जिस अग्निके ( त्रिघातु अवृतं ) तीन पर्वोंवाले, बूले हुए ( अवसं दिनें यर्हिः तस्यै ) और न बंधे हुए आसन रखे हुए है । उस अग्निमें ( आपः चित् ) जल भी ( पदं निदधा ) अपना स्थान रखता है ॥ २ ॥  
जलका स्थान अन्तरिक्ष है । यहाँ अग्नि भी विद्युत् रूपमें है ।

[ १५७२ ] ( मीदुषः देवस्य पदं ) स्तुत्य और तेजस्वी अग्नि देवके स्थान ( अनाघृष्टाभिः ऊतिभिः ) शकु-भिके द्वारा बामा न पशुंधानेवाले संरक्षणसे युक्त है, उसकी ( उपदक् ) दृष्टि भी ( सूर्यः इव भद्रा ) सूर्यके समान कल्याण करनेवाली है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥



## पञ्चदश अध्याय

### अग्नि देवता

अग्नि देवको उपासना हवनते होनी है। इस सम्बन्धमें कहा है—

१ वृषः अभ्यः नः, देववाहनः आग्निः समिधयते, तं हविष्मन्तः ईडते [ १५३९ ]— वसवान् घोडा जिसपर राजाको डीकर ले जाता है, उसीप्रकार अग्नि साम्रतिके द्वारा प्रवर्धित किया जाता है। उस अग्निको स्तुति हवन करने-वाले करते हैं।

अग्नि देवोंको अपने रथमें यज्ञको जगह पर डीकर लाता है और हवि अर्पण करनेवाले यज्ञवाजा उसको स्तुति करते हैं।

२ वृषणः च य वृषणं दीपतं बृहत् समिधमिन्द्रि [ १५४० ]— मातृति देनेवाले हय वसवान् और तेजस्वी अग्निको समिधाजोति प्रवर्धित करते हैं।

३ समिधानस्य ते बृहत् शुक्रासः अचंयः उर्द्वरते [ १५४१ ]— हे जाने ! प्रबोध होनेवाली तेरी बड़ी-बड़ी सपनें जगत्कार्ये निरक्षरणी हैं।

४ हविष्मन्तः जनासः विप्रं न सर्षिरासुतिं प्रश-स्तिभिः प्रदोलन्ति [ १५४५ ]— हविको पासमें रखनेवाले यज्ञमान भित्तके समान घीके हवनके साथ अग्निको स्तुति करते हैं।

५ पश्यांसं जातवेदसं, यः देवताति उच्यतां हृष्यानि द्विवि वेदयत् [ १५६६ ]— अत्यन्त स्तुति करने योग्य सर्वत अग्निको हम स्तुति करते हैं, वह पशमें डाले जानेवाले हवि-इन्द्रियोंको दुष्टोक्तने देवोंके पास पहुंचाना है।

६ विशः विशः अतिथिं पुरु-प्रिये अग्निं, य दृष-स्य मन्मथिः दुर्वं यच्चः स्तुये [ १५६४ ]— प्रथमक प्रशान्तके घरमें अतिथिके सभान् पूजनीय और बहुजने लोगोंको प्रिय लगनेवाले अग्निको हवि अर्पित करो। तुम्हारे बल बढ़ानेवाले स्तोत्रोंके कुण्डमें रखे गए अग्निको हम स्तुति करते हैं।

प्रत्येक घरमें अग्नि स्थापित की हुई होती है और उसमें हवन होता है।

७ समिधा समिधं अग्निं धिरा मुणे [ १५६० ]—

३७ [ साम हिवो भा. २ ]

समिधाजोति प्रबोधा हुई हुई अग्निको मे अपनी धारोमें स्तुति करता हूँ।

इसमें समिधा डालकर अग्नि प्रवर्धित किया जाता है, यह कहा है।

८ शुक्वि ध्रुवं पावक बध्नरे पुरः [ १५६७ ]— घूट, स्थिर और परिवर्ध करनेवाले अग्निको यज्ञमें आगे स्थापित किया जाता है।

९ होतारं पुरुवारं अनुदं कथिं जातवेदसं सुभोः ईमहे [ १५६७ ]— हवन करनेवाले, बृहत्तों द्वारा स्वीकार करने योग्य, ब्रौह्म न करनेवाले, शान्ति और सर्वत अग्निको उत्तम करते हम स्तुति करते हैं।

१० देवासः प्रचांसः च अमृतं युगे युगे हृष्यवाहं पापुं ईड्यं रथां जापुर्वि विभुं विदपति नमसा निपे-दिरे [ १५६८ ]— देव और मनुष्य अमर, प्रत्येक यज्ञमें डाले गए हवनीय इन्द्रियोंके देवोंके पास पहुंचानेवाले, शरणा और स्तुत्य, जागृत, व्यापक और प्रजापक्षक जैसे अग्निको नमस्कार पूर्वक उपासना करते हैं।

११ अग्ने ! उभयान् विशुप्य अनुमता देवानां द्रुतः रजस्वी रत्नीयसे [ १५६९ ]— हे जाने ! देव और मनुष्य इन दोनोंकी ही सुशोभित करनेवाला तू नियमानुसार चलने-वाले देवोंका द्रुत होकर धूलोकमें और इस लोकमें हवि पहुंचानेके लिए जाता है।

१२ यत् ते धीर्ति सुमतिं आशुणीमहे [ १५६९ ]— इसलिये तेरी ओर उत्तम यज्ञकर्ममें की गई स्तुति भेजते हैं।

१३ त्रिवरुषः अस्मान् शिव भव [ १५६९ ]— तीन स्वर्गोंमें रहनेवाला तू हमें सुख देनेवाला हो।

१४ रथं जनानां जाभि मित्रः प्रियः ईक्ष्यः सखि-ध्वः सखा अखि [ १५३६ ]— तू लोगोंका भाई, मित्र, निधमं प्रिय मित्र है।

१५ देवान् यजः शतं बृहत् स्थं दमं यधि [ १५३७ ]— तू देवोंके लिए यज्ञ कर। यज्ञोंके लिए महान् यज्ञशालाओं प्रेष होकर तू पहुंच।

१६ तर्मांसि तिरः दर्शतः वृषा आग्निः इर्यते

[ १५३८ ]- अन्वकार दूर करनेवाला, वर्षाणीय और बलवान् अग्नि आहुति देकर प्रदीप्त किया जाता है।

१७ मन्द्रं होतारं ऋत्विजं चित्रमानुं विभावसुं अग्निं ईडे [ १५४३ ]- आनन्द देनेवाले, देवोंको बुलाकर लानेवाले, ऋत्विजोंके अनुसार यज्ञ करनेवाले, विशेष तेजस्वी प्रकाशमान् अग्निको हम स्तुति करते हैं।

१८ विश्वस्मान् अरावणः रक्षसः नः पाहि [ १५४५ ]- सब कजूस राक्षसोंसे हमारी रक्षा कर। अग्नि रोगबीजोंका नाश करता है। रोगबीज, रोगजन्य राक्षस हैं। क्योंकि वे प्राणियोंका नाश करते हैं।

१९ इतः अरतिः समिद्धः रौद्रः सुपुमान्, दक्षाय अद्वाशी [ १५४६ ]- अग्नि सबोंका स्वामी, वेदोंके पास जानेवाला, प्रदीप्त, शत्रुओंको मय खिलायेवाला, उपासकोंको इष्ट परायें देनेवाला और बल बढ़ानेवाला है, ऐसा विलाई दिया है।

२० चिकित्न् विमाति [ १५४६ ]-- यह ज्ञान बढ़ाते हुए प्रकाशता है।

२१ रुशर्ता अयाजन् धृष्टता भाषा असिक्नीं पति [ १५४७ ]- तेजस्वी उपासकोंको बाहर फेंके हुए महान् प्रकाशसे रातमें यह प्रकाशता है। प्रकाशित होकर आगे जाता है।

२२ भद्रः भद्रयाः सचमानः पश्चात् जारः स्वसारं अभ्येति [ १५४८ ]- कल्याण करनेवाला अग्नि उपाके द्वारा सेवित होता है। बादमें शत्रुओंका नाश करनेवाला यह अग्नि अपनी महिम्न उपाके पास जाता है।

यज्ञशासनमें उप कालमें अग्नि जलाई जाती है। घोड़ों वरके बाध दिन हो जाता है और उपाका नाश होता है। अग्नि ही उपाका नाश करता है। क्योंकि अग्निके प्रदीप्त होनेके घोड़ों वरके बाध ही उप काल समाप्त हो जाता है। उपा बहिन और अग्नि उपाका भाई है। पर यह अग्नि ही उपाका जार अर्थात् नाश करनेवाला है।

२३ नः विश्वाः गिरः सुक्षित्वीः धाजद्रविणसः [ १५४९ ]- हमारी सभी स्तुतियोंमें हमें उत्तम घरका स्वामी बनाकर जल और पनसे युक्त करें।

२४ ऊतये यज्ञासः पुरुषत्तुं पुरुप्रशस्तं अष्ट [ १५५४ ]- हमारे सख्तोंके लिए मैं यज्ञ बहुत सारा पन रखनेवाले, बहुतों द्वारा प्रशसनीय अग्निके पास पहुँचायें। अग्निमें यज्ञ करनेके कारण हमारा सरलण हो।

२५ अमृत-मर्येषु, विशि होता मन्दतमः [ १५५५ ]

प्रजाओंमें यह अग्नि अमर है, यह प्रजाओंमें हवन करनेवाला और आनन्द बढ़ानेवाला है। हवनसे रोगोंके दूर होनेके कारण लोगोंका आनन्द बढ़ता है।

२६ मानुरीणां विशां पुर-पता तूर्णाः रथः सदा नयः अग्निः अद्वाभ्यः [ १५५६ ]- मानवी प्रजाओंका यह नेता, शीघ्रतासे सब कार्य करनेवाला, रथके समान प्रगतिशील, हमेशा तर्षणोंके समान कार्य करनेवाला अग्नि किसीके द्वारा दबाया नहीं जा सकता।

२७ द्वाभ्यान् मर्येषुः घाहसा प्रयासि अभि अदनेति, पापकतोविषयः क्षयं [ १५५७ ]- बला मनुष्य अग्निसे बहुत अन्न और उत्तम घर पानेकी इच्छा करता है।

२८ अभियुजः विश्वाः साद्धान् अमृक्तः देवानां ऋतुः अग्निः तुयिश्चवस्तमः [ १५५८ ]- चढाई करनेवाले शत्रुओंको हरानेवाला, किसीसे भी न हारनेवाला, देवोंके लिए यह करनेवाला अग्नि बहुत सारा अन्न देनेवाला है।

२९ आहुतः अग्निः भद्रः। रातिः मद्राः। अश्चरः भद्रः। प्रशस्तयः मद्राः। [ १५५९ ]- आहुति दिया गया अग्नि कल्याण करनेवाला है। तेरे दान कल्याण करनेवाले हैं। यज्ञ कल्याण करनेवाला है। स्तुतियाँ कल्याण करनेवाली हैं।

३० वृत्रत्यूं मनः मद्रं कृणुष्व, येन सभस्तु सासिदिः [ १५६० ]- शत्रुके साथ युद्ध करनेके समय मनको कल्याणकारक विचारसे भरपूर कर, जिससे युद्धमें विजय मिल सके।

३१ शार्घतां भूरि स्थिरा अथ तनुहि [ १५६० ]- स्पर्श करनेवाले शत्रुके महान् और सुदृढ़ सेनाका तू पराभव कर।

३२ गोमताः वाजस्यः ईशानः [ १५६१ ]- गायके बृषके साथ होनेवाले अग्रका तू स्वामी है।

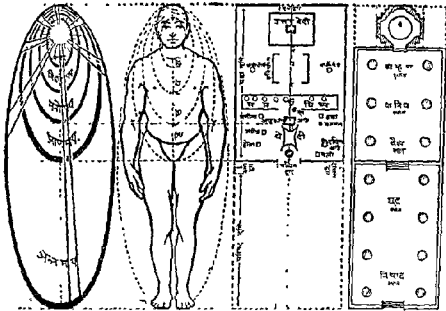
३३ हे जातयेदुः! अस्मे मदि श्रवः देहि [ १५६१ ] हे सर्वत! हमें बहुत अन्न दे।

३४ घसुः कविः गिरा ईडेन्यः, असभ्यं रेवत् वीदिहि [ १५६२ ]- निपात करानेवाला, आनी और घानीसे स्तुत्य तू घनकरनेवाले घन हमें दे।

३५ हे राजन् अग्ने! घस्तो उपसः क्षपः [ १५६३ ]- हे अग्नि राजन्! तू दिन रात शत्रुओंका नाश कर।

३६ हे तिग्मजम्भ! रक्षसः प्रति दृष्ट [ १५६३ ]- हे तीक्ष्ण प्रकाशयुक्त अग्ने! राक्षसोंको जला बाल।

यज्ञशालाका चित्र



इस प्रकार इस अग्निका वर्णन इस अध्यायमें आया है ।  
 आगे किसीका वर्णन यहाँ नहीं है । सिर्फ अकेले अग्निका ही  
 वर्णन है ।

अग्नि सनिषाओसे और धीकी आहुतियोंसे प्रदीप्त किया  
 जाता है । यह धी गायका ही होना चाहिए । गायके धीका  
 कोयला हवाके अन्दर रहनेवाले धिपकी सोख लेता है और हवा  
 शुद्ध करता है । अग्नि आहुतियों वाले पाएँ हविर्द्वियोंकी अर्थात्  
 वर्तुवना चाहिए वहाँ पहुँचा देता है । सनिषाओसे प्रज्वलित  
 यह अग्नि हविर्द्वियोंकी अतिवृत्त करके हवामें चारों ओर  
 फैला देता है । उसके कारण वायु शुद्ध होती है और मनुष्योंकी  
 निरीय और शीर्षजीवी बनाती है ।

अग्नि हवनके लिए पर परमें प्रदीप्त किया जाता है ।  
 उसमें श्वेतके अनुसार हविर्द्विय डालनेसे यह मनुष्योंका बल  
 बढ़ता है और उन्हें शीर्षीय करता है । यह अग्नि शीघ्र दूर  
 करनेवाला और पवित्रता करनेवाला है । उसकी उपासना  
 दिन रात हवनोय पराचं देकर करनी चाहिए ।

यह अग्नि मनुष्योंकी और वायु आदि देवोंकी पवित्रता करने-  
 वाला है, इसलिए वह श्रेय मित्र है । यह मनुष्योंका सखा  
 है । वह उत्तम रीतिले पूजित होने पर सबका कल्याण करता  
 है । कभी भी अकल्याण नहीं करता ।

सब राससोंका, जो रोग फैलाते हैं, यह नाम करता है ।  
 यह सब प्राणीमात्रका कल्याण करता है । यह प्रज्वलित होने  
 पर बहुत भयंकर दिखाई देता है । पर वह आरोग्यके शत्रु-  
 गोंका ही नाश करता है और मनुष्योंका बल बढ़ाता है ।

मनुष्योंकी देहमें सब देव अग्निके साथ ही आकार रहते हैं ।  
 मनुष्य शरीर एक दिव्य यज्ञशाला है । सब देव अग्ररूपसे  
 आकर इस यज्ञशालामें शतशतपरत्तरिक यज्ञ करते हैं । शरीरमें  
 गर्मी सत्य हुई कि सब अन्न देव भी यहलित निकल जाते हैं ।  
 शरीररूपी पर देहमें प्राप्त हो, ऐसी दृष्ट्या जो करते हैं, उन्हें  
 इस शरीररूपी यज्ञशालामें अग्नि आपत रहनी चाहिए ।

मत्स्य शरीरमें यह अमर्त्य अग्नि रहता है और उसके साथ  
 सब देव यह जीवन यज्ञ चलाते हैं ।

इसलिए यथाग्नि उत्तम अन्नधाममें रहे, ऐसी प्रयत्न प्रत्येक-  
 की करना चाहिए । शरीरमें यज्ञ किताप्रकार चल रहा है,  
 उसे यज्ञकी प्रक्रियासे दिखाया है । यह अन्नधामयान यज्ञके  
 वर्णनसे यहाँ बताया है । उसे पादक सप्तमें और इस भाग-  
 कारिकः इत्येवका ठीक अर्थ समझकर उसे अपने जीवनमें धरें ।



## सुभाषित

१ जनानां ते कः जाभिः [ १५३५ ]- लोगोंमेंसे तेरा भाई कौन है ?

२ दाशु अधरः कः [ १५३५ ]- कौन भला मुझे देकर बत करलेकी इच्छा करता है।

३ कस्मिन् ध्रितः असि [ १५३५ ]- तू किसके आश्रयों रहता है ?

४ हे अग्ने ! त्वं जनानां जाभिः मित्रः प्रियः असि [ १५३६ ]- हे अग्ने ! तू मनुष्योंका भाई और प्रिय मित्र है। मनुष्योंके शरीरके अन्तर उज्ज्वला रूपसे रहता है।

५ ईड्य सखिभ्यः सखा [ १५३६ ]- तू प्रदासनीय और मित्रोंका मित्र है।

६ ईडेभ्यः नमस्यः तमांसि तिर दशतः घृषा सं दृश्यते [ १५३८ ]- जो प्रदासनीय, नमस्कार करनेके योग्य, लयकार दूर करनेवाला, दशनीय और बलवान् है उसका तेज बढ़ता है।

७ घृषाः नयं घृषणं द्रीधतं वृहत् समिधीमहि [ १५४० ]- बलवान् हम बलवान् तेजस्वी महान् अग्निको प्रबलित करते हैं।

८ समिधानस्य ते वृहन्तः शुक्रासः अर्चय उदीरते [ १५४१ ]- प्रवीन्त होनेवाले तेरी बढी और सफेद उवालायें निकलती हैं।

९ विश्वस्मात् अराण्य रक्षस नः पाहि [ १५४५ ]- तब अनुवाद राक्षसोंसे हमारी रक्षा कर।

१० यालेषु प्राय रम [ १५४५ ]- मुझोंमें हमारी रक्षा कर।

११ नेदिष्ठं आपि र्वां इत् हि [ १५४५ ]- हमारे समीपका भाई तू ही है।

१२ देवतातयं ऋषे नक्षमहे [ १५४५ ]- पत्नकी सिद्धि और हमारे संबंधनके लिए हम तेरा सहारा लेते हैं।

१३ इनः अरतिः समिद्धः रौद्र वृक्षाय अदर्शि [ १५४६ ] तू स्वामी, प्रगतिशील, प्रदीप्त, शत्रुओंको भय दिशानेवाला और बल बढ़ानेवाला दिलाई देता है।

१४ चिन्ति चिमाति [ १५४६ ]- शान्तकृत तू प्रवीन्त होता है।

१५ वृशती अपाजन्, वृहता भासा अक्षिपर्ना पति [ १५४६ ]- तेजस्वी प्रकाश गिराते हुए अपने महान् तेजसे रात्रीमें बह आगे जाता है।

१६ नः गिरः सुक्षिती चाजप्रविणसः [ १५५१ ]- हमारी स्तुति हमें उत्तम परका स्वामी तथा अथ व धनसे युक्त करे।

१७ नः गिरः दािरशोचिपं दशतं अच्छ दग्तु [ १५५४ ]- हमारी स्तुतियां प्रबलित और वर्जनीय अग्निकी पट्टे।

१८ जातवेदसं अग्निं धार्याणां दानाय [ १५५५ ]- शान्त गिरसे उत्पन्न हुआ है, ऐसे अग्निकी धनके बानके लिए हम प्रार्थना करते हैं।

१९ मातृपीणां चिणां पुर-पता, तूर्णाः रथः सदा नयः अदाभ्यः [ १५५६ ]- पालनी प्रजाओंमें अग्रगामी, वीरतासे काय करनेवाला, रथके सजान आगे जानेवाला, सदा नया होकर काय करनेवाला अग्नि कभी हथिया नहीं जा सकता।

२० दाश्वान् मर्यः वाहसा प्रियांसि अभि वदन्तेति [ १५५८ ]- बला मनुष्य अग्निसे प्रिय अन्न प्राप्त करता है।

२१ पायक-शोचिपः क्षयं [ १५५७ ]- पवित्र प्रकाश-बालोंसे घर प्राप्त करता है।

२२ अभियुजः विश्वाः साहान् अनुक्तः देवासां फतुः अग्निः त्रिविध्रवस्तम [ १५५८ ]- चढाई करनेवाले शत्रुकी सब सेनाओंकी हारनेवाला, किसीसे न हारनेवाला, देवोंका पक्ष करनेवाला अग्नि बहुत अन्न देनेवाला है।

२३ व्याहुत अग्नि नः भद्रः [ १५५९ ]- आहुतियोंसे तुल हुआ हुआ अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला है।

२४ रातिः भद्रा [ १५५९ ]- दान कल्याण करने-वाले ही।

२५ अधरः भद्रः [ १५५९ ]- यह कल्याण करने-वाला ही।

२६ प्रशस्तयः भद्राः [ १५५९ ]- स्तुतियां कल्याण करनेवाली हैं।

२७ घृषत्यं मनः भद्रं शुशुष्य [ १५६० ]- घृषत्यं मनको कल्याणमय विचार करनेवाला कर।

२८ समस्तु खासहिः [ १५६० ]- मुझमें शत्रुका परा-भय करनेवाला हो।

२९ शार्धतां मूरि स्थिरा अयतनुहि [ १५६० ]- मुझ करनेवाले घृष्ट शत्रुपैनाको तू हथानेवाला हो।

३० अभिप्रये ते यनेम [ १५६० ]- कल्याणके लिए तेरी भक्ति करती है।

३१ शोमतः पाजस्य ईशानः असौ महि ध्रुवः वेदि [ १५६१ ] गार्गेषि साम भिन्ननेवाले अग्रकां नृ स्वामी है । ह्येनं महत काम दे ।

३२ अस्मभ्य रेवत् दीदिदि [ १५६२ ]- ह्येनं वनवन-वाले वन दे ।

३३ हे राजन् । वस्तोः उत उपस क्षपः, रक्षसः मति वृष्ट [ १५६३ ]- हे राजन् । रात्री और दिनमें मनुष्योंका पात्र बन, दासतांकी जला दे ।

३४ शुचि ध्रुव पायकं भवरे पुरः पुण्वार, अद्रुह कर्ष्य जातयेदस्य सुम्नेः ईमोः [ १५६७ ]- शुद्ध, स्थिर, पवित्र करनेवाला, हिसारहित पत्रमें आगे स्थापित किये गये, अनेकोंके द्वारा स्वीकार करने योग्य, द्रोह न करनेवाले, सामी सर्वत अग्निकी धनके लिए स्तोत्रोंमें प्राप्ति कराते हैं ।

३५ देवास्तः मर्तास अमृत, पायुः, ईश्वर त्वा दूत वृषिरे, आर्यावे चिसु विद्वपति नमसा निपेठिरे [ १५६७ ]- देव और मनुष्य अमर, रक्षक और स्तुतिके योग्य ऐसे मृत अग्निकी हृदिको देवोंकी और पुरुषोंनेवाले दूतके रूपमें स्वीकार करते हैं तथा आगत, व्यापक और प्रसारक अग्निकी मन्त्रकार करके उपासना करते हैं ।

३६ अस्मान् शिवः मय [ १५६९ ]- हमारा कल्याण करनेवाला हो ।

३७ मीन्द्रुयः श्वेदस्य पदं अनाधुष्टामिः ऊतिभिः [ १५७२ ]- स्तुत्य और शिव्य अग्निरा स्थान मनुष्यों द्वारा भाष्य न मनुष्याणके योग्य मंत्रक्षणके साधनेसे युक्त रहता है ।

३८ उपहृक् सूर्यः इव मद्रा [ १५७२ ]- उत्तकी दृष्टि सूर्यके समान कल्याण करनेवाली है ।

### उपमा

१ अभ्या न देवयाहन [ १५३९ ]- घोड़ेके समान देवीका वाहन वह अग्नि है ।

२ मनुषीणां विशा पुर म्ता नृणां रथ अग्निः [ १५५६ ]- मानवी प्रजाओंका नेता तथा क्षीप्रतामें दौड़नेवाले रथके समान यह अग्नि है ।

३ मित्र न [ १५६५ ]- मित्रके समान इम अग्नि [ प्रदासन्ति ] प्रणसा करते हैं ।

४ आययाः देदिशतीः [ १५७० ]- बहिर्ने जितप्रकार स्तुति करती हैं, उत्तकीप्रकार ( मिरा ) हमारी वाणियां तेरी स्तुति करती हैं ।

५ सूर्यः इव मद्रा उपहृक् [ १५७२ ]- सूर्यके समान कल्याण करनेवाली उत्तकी दृष्टि है ।

## पञ्चदशध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋष्येदस्यान	ऋषि	देवता	छन्द
१५३५	१।७।१३	गोतमो राहूगण	अग्नि	पायवी
१५३६	१।७।१४	गोतमो राहूगण	"	"
१५३७	१।७।१५	गोतमो राहूगण	"	"
१५३८	३।१७।१३	विश्वामित्रो गार्ग्य	"	"
१५३९	३।१७।१४	विश्वामित्रो गार्ग्य	"	"
१५४०	३।१७।१५	विश्वामित्रो गार्ग्य	"	"
१५४१	८।४।१४	विक्रप आगिरस	"	"
१५४२	८।४।१५	विक्रप आगिरस	"	"
१५४३	८।४।१६	विक्रप आगिरस	"	"
१५४४	८।६।०९	मर्ग प्रागाप	"	प्रथाप ( विवसा मूहती, समा सतीमूहती )
१५४५	८।६।१०	मर्ग प्रागाप	"	"

( १ )

संज्ञकशब्दा	श्रव्येदकस्थान	श्रव्यः	वेदता	छन्दः
		( २ )		
१५४६	१०३११	त्रित आस्य	शनिः	त्रिष्टुप्
१५४७	१०३१२	त्रित आस्यः	"	"
१५४८	१०३१३	त्रित आस्यः	"	"
१५४९	८१८४१४	उशना काव्य.	"	गायत्री
१५५०	८१८४१५	उशना काव्यः	"	"
१५५१	८१८४१६	उशना काव्य.	"	"
१५५२	८१६०११	भर्गः प्रागायः	"	प्रगायः- ( विषमा बृहती समा सतोबृहती )
१५५३	८१६०१२	भर्गः प्रागायः	"	"
१५५४	८१७१११०	सुदीति - पुदमीजूहावागिरसी	"	"
१५५५	८१७११११	सुदीति - पुदमीजूहावागिरसी	"	"
		( ३ )		
१५५६	३११११५	विश्वामित्रो गायिनः	"	गायत्री
१५५७	३११११७	विश्वामित्रो गायिनः	"	"
१५५८	३११११६	विश्वामित्रो गायिनः	"	"
१५५९	८११९११९	सोमरिः काव्य.	"	काकुषः प्रगायः- ( विश्वमा ककुषु, समा सतोबृहती )
१५६०	८११९१२०	सोमरिः काव्यः	"	"
१५६१	११७९१४	गोतमो राहूयणः	"	उष्णिक्
१५६२	११७९१५	गोतमो राहूयणः	"	"
१५६३	११७९१६	गोतमो राहूयणः	"	"
		( ४ )		
१५६४	८१७४११	गोपवन आत्रेय	"	अनुष्टुप्प्रगाय - ( अनुष्टुप्+गायत्री )
१५६५	८१७४१२	गोपवन आत्रेयः	"	"
१५६६	८१७४१३	गोपवन आत्रेयः	"	"
१५६७	६११५१७	भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहृद्य आगिरसी वा	"	जगती
१५६८	६११५१८	भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहृद्य आगिरसी वा	"	"
१५६९	६११५१९	भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहृद्य आगिरसी वा	"	"
१५७०	८१७०११३	प्रयोगो भार्गवः, पावकीनिर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपतिवियच्छे सप्तः पुत्रो वाप्यतरो वा	"	गायत्री
१५७१	८१७०११४	प्रयोगो भार्गवः, पावकीनिर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपतिवियच्छे सप्तः पुत्रो वाप्यतरो वा	"	"
१५७२	८१७०११५	प्रयोगो भार्गवः, पावकीनिर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपतिवियच्छे सप्तः पुत्रो वाप्यतरो वा	"	"

## अथ फोडशोऽध्यायः ।



अथ सप्तमपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ७-३ ॥

[ १ ]

( १-२१ ) १, ८, १८, मेष्पातिभिः काण्वः; २ विरवाभिन्नो गाविनः; ३-४ भगः प्रागायः; ५ सोमदिः काण्वः; ६, १५ सुन.गोष आशीर्गातिः; ७ सुकञ्ज आशिरसः; ९ विश्वकर्मा भीवनः; १० अनावतः पादन्डोभिः; ११ भरद्वाजो बाहुस्पत्यः; १२ गीतमो राहृगणः; १३ अजिन्वा मारुद्वाजः; १४ वामदेवो गीतमः; १६ हवीतः प्रागायः; १७ देवातिभिः काण्वः १९ बालभिर्यः ( धृष्टिपुः काण्वः ); २० पवैतवारदी; २१ अत्रिषोम. ॥ १, ३-४, ७-८, १५ १७-१९ इन्द्रः; २ इन्द्रानी; ५ अग्निः; ६ वरुणः; ९ विश्वकर्मा; १०, २०, २१ पवमानः सोमः; ११ प्रवा; १२ सवतः; १३ विरव देवाः; १४ धावापुमिधो; १६ अग्निः हवीति वा ॥ १, ३-५, ८, १७-१९ प्रगायः- ( विद्यमा बृहती, समा सतो बृहती ); २, ६-७, ११-१६ गायत्री; ९ भिन्दुपु; १० आर्यष्टिः; २० उष्णिग्; २१ अगती ॥

- १५७३ अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।  
 समीचीनास क्रमवः समस्वरद्भ्रा गृणन्त पूर्णम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३।७ )
- १५७४ असदिन्द्रो वासुधे मृष्ययश्वाो मदे सुतस्य विष्णवि ।  
 अद्या तमस महिमानमायवोऽनु ष्टुन्नन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥ १ ( रि ) ॥
- [ धा० १८ । ल० नास्ति । स्व ३ ] ( ऋ ८।३।८ )
- १५७५ प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥१॥ ( ऋ. ३।१२।५ )
- १५७६ इन्द्राग्नी नयति पुरो दासपत्नीरधुनुतम् । साकमेकैः कमेणा ॥ २ ॥ ( ऋ ३।१२।६ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १५७३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( आयवः ) जयासक मनुष्य ( पूर्वपीतये ) प्रथम रत्नपान करनेके लिए ( त्वा स्तोमेभिः अभि ) तेरो लोभते स्तुति करते हे । ( समीचीनासः क्रमवः ) योग्य बुद्धिवाले ऋषु ( समस्वरन् ) तेरो स्तुति करते हे, ( द्भ्राः पूर्णं गृणन्तः ) द्रष्टु पुरण सुख ऐसे तेरी स्तुति करते हे ॥ १ ॥

मातृक लोग, ऋषु और द्रष्टु ये सब इन्द्रके ही गुण गाते हे ।

[ १५७४ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( सुतस्य विष्णवि मदे ) सोमका व्यापक आनन्द प्राप्त होनेपर ( अस्य इत् पूर्णं शवः ) इस यजमानके शीर्ष और बलको धरता है । इत्सन्धि ( आयवः अद्य ) मनुष्य आज भी ( पूर्वथा ) पहलेके समान ही ( अस्य तं महिमानं अनुष्टुन्नन्ति ) इस इन्द्रकी वत्स महिमाका वर्णन करते हे ॥ २ ॥

[ १५७५ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! ( उक्थिनः ) यां प्रार्थन्ति ) देवपत्नी सुगृहरो मर्षण करते हे, ( नीथाविदः जरितारः ) सामगायक तेरो स्तुति करते हे, ( इषः आ वृणे ) अन्नके लिए ये सुगृहारी प्रार्थना करता हे ॥ १ ॥

[ १५७६ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! तुम ( दासपत्नीः नयति पुरो ) शत्रुओंकी नखे मगरियोंको ( यजेन्त कर्मणा साकं ) एक ही प्रयत्नसे एक ही समय ( अधुनुतं ) हिला देते हो ॥ २ ॥

- १५७७ इन्द्राग्नी अपसस्पथ्यु प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्याइ अनु ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१२।७ )
- १५७८ इन्द्राग्नी तविपाणि वाशसधस्थानि प्रयाशसि च । युबोरपुथ्यैधितम् ॥ ४ ॥ २ ( टा ) ॥  
[ धा० १३ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।१२।८ )
- १५७९ शग्ध्यूइ पु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरुविमिः ।  
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।९ )
- १५८० पौरौ अशस्य पुरुकृद्रवामस्युरसौ देव हिरण्ययः ।  
न किर्हि दानं परि मधिपत्त्रं यद्यद्यामि तदा भर ॥ २ ॥ ३ ( जु ) ॥  
[ धा० १७ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ८।६१।६ )
- १५८१ त्वश्वेहि चेरवे विदा भगं वसुचये ।  
उद्वायुपस्व मधवन्गविष्ट्य उदिन्द्राश्वमिष्ट्ये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।१० )
- १५८२ त्वं पुरु सहस्राणि शतानि च यूया दानाय मध्वमे  
आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ २ ॥ ४ ( फौ ) ॥  
[ धा० १५ । उ० २ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ८।६१।८ )

[ १५७७ ] ( इन्द्राग्नी ) हे इन्द्र और अग्ने ! ( धीतयः ) होता यावि ऋत्विज ( ऋतस्य पथ्या अनु ) धनके मागते ( अपस परि ) हमारे यज्ञके ( उप प्रयन्ति ) याकर बैठते हैं ॥ ३ ॥

[ १५७८ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( धां तविपाणि प्रयाशसि सधस्थानि ) तुम्हारे बल और मज्ज एकत्र ही रहते हैं । ( युबो हितं ) तुम्हारे बल ( अपुथ्यै ) शुभ कर्मोंकी प्रेरणा देनेवाले हैं ॥ ४ ॥

[ १५७९ ] हे ( शचीपते इन्द्र ) गस्तिमान् इन्द्र ! ( विश्वाभिः उविमिः ) सब प्रकारको सरक्षणकी शक्तिमेंसे ( उ सु शग्धि ) तू उत्तम रीतिसे तमय है । हे ( शूर ) शूर इन्द्र ! ( वसुविदं ) धन सम्पन्न ( यद्यस्तं ) यज्ञस्वी ( भगं म ) भाग्यवानके समान ( त्वा हि अनुचरामसि ) तेरे अनुकूल होकर हम चलते हैं ॥ १ ॥

[ १५८० ] हे इन्द्र ! तू ( अशस्य पौरः ) घोड़ोंको पुष्ट करनेवाला और ( यूयां पुरुकृत् अस्ति ) गायोंको पोषण करनेवाला है । हे ( देव ) देव ! ( हिरण्ययः उत्सः ) सोनेके समान जलका होज जैसे होता है, वैसा ही तू तुल्य करनेवाला है । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वे दानं ) तेरे दान ( न किः हि परमधिपत् ) कोई भी मज्ज नहीं कर सकता, ( यत् यत् यामि ) जो जो मे मंगता है, ( तत् आ भर ) वह मुझे भरपूर दे ॥ २ ॥

[ १५८१ ] ( त्वं वसुचये हि ष्धि ) तू धन देनेके लिए अवश्य ला, ( चेरवे भगं विदाः ) सवाधरण करनेवालेको भाग्य दे । हे ( मधवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( गविष्ट्ये उत्तं वायुपस्व ) गायोंको इच्छा करनेवाले मुझे गायें दे, तथा हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अश्वे इष्ट्ये ) घोड़ोंकी इच्छा करनेवाले मुझे ( उत्तं ) घोड़े दे ॥ १ ॥

[ १५८२ ] हे इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( पुरु सहस्राणि शतानि च ) बहुत हजार अथवा संकड़ों ( यूया दानाय मध्वमे ) गायोंके शुभ दान देनेवालेको देता है । ( पुरंदरं इन्द्रं ) दानके नगरोंको तो देनेवाले इन्द्रको ( अवसे ) अपने रक्षणके लिए ( गायन्तः विप्र-पचसः ) धाममान करनेवाले मान्यवत् धात करनेवाले हम ( आ ष्टम ) बुलाते हैं ॥ २ ॥

१५८३ या विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।

मघोनं पात्रा प्रथमान्धस्मं प्र स्तोमा यन्त्वप्रये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।३६ )

१५८४ अश्वे न गीर्भा रथ्यश्सुदानवो मर्मज्यन्ते देवयवः ।

उभे तौके तनये दस्म विदपते पवि राघो मघोनाम् ॥ २ ॥ ५ ( पु ) ॥  
[ धा० १५ । उ० १ । स्व० ५ ] ( ऋ. ८।१०।३७ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१५८५ इमं मे वरुण ध्रुवी ह्यमघा च मृडय । त्वामवस्पुरा चके ॥ १ ॥ ६ ( य ) ॥

[ धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।१५।१९ )

१५८६ कया श्वे न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥ ७ ( य ) ॥

[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१३।१९ )

१५८७ इन्द्रमिद्वतातय इन्द्रं प्रथत्पथरे ।

इन्द्रश्सर्माके वनिनो हवामहे इन्द्रं धनस्य सातये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।५ )

[ १५८३ ] ( होना मन्द्रः यः ) यज्ञमें देवीकी बुलानेवाला और आत्मन् देनेवाला जो अग्नि है, यह ( विश्वा वसु ) तब प्रकाशते पन ( जनानां दयते ) लोगोंको देता है । ( अस्मै अग्नये ) इस अग्निको ( मघोः न ) सोमरतके ( प्रथमाति पात्रा ) मुख्य पात्र और ( स्तोमाः प्रयन्तु ) स्तोत्र प्राप्त हों ॥ १ ॥

[ १५८४ ] ( दस्म विदपते ) हे सुन्दर और प्रजापालक बग्ने ! तेरी ( सुदानवः देवयवः ) उत्तम बाण देनेवाले और बेवला प्राप्त करनेवाले यज्ञमान ( रथ्यश्च न ) रथमें जोड़े जानेवाले घोड़ेके समान ( गीर्भाः मर्मज्यन्ते ) अपनी बाणसे क्षुति करते हैं । ऐसा ही यज्ञ करनेवालोंके ( तनये तौके उभे ) पुत्र और पौत्र इन बीनोंकी भी ( मघोनां राघः पवि ) पनवानोंके पन दे ॥ २ ॥

रथमें जोड़े जानेवाले घोड़ोंका उतारा महानेके लिए रथकी हांकनेवाले जनकी स्तुति करते हैं, उसीप्रकार यज्ञ करनेवाले लोग अग्निकी स्तुति करते हैं ।

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १५८५ ] हे ( वरुण ) वरुण ! ( मे इमं हवे ध्रुवि ) मेरी यह प्राप्यत सुन ( अथ मृडय च ) और आन हमें सुली कर । ( अवस्पुरा चके ) अपने संरक्षककी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं । १ ॥

[ १५८६ ] हे ( वृषन् ) इन्द्र कल देनेवाले इन्द्र ! ( कया ऊत्याः ) कौमतेरलापसामर्थ्यसे ( त्वं नः अभिप्रमन्दसे ) तू हमें अधिक आनन्द देता है ? ( कया स्तोतृभ्यः आ भर ) कौमती रसपथमिवासे तू स्तोताओंकी भरपूर भरण देता है ? ॥ १ ॥

[ १५८७ ] ( देवतातये ) यज्ञके लिए ( इन्द्रं हव हवामहे ) इन्द्रको ही हम बुलाते हैं ( अथपरे प्रथति इन्द्रं ) अहितसमय यज्ञके घुस होते ही हम इन्द्रकी बुलाते हैं । ( सर्माके वनिनः ) मुझमें भवतलोग ( इन्द्रं ) इन्द्रको ही बुलाते हैं और ( धनस्य सातये ) यज्ञके बान करनेके समय ( इन्द्रं ) इन्द्रको ही बुलाते हैं ॥ १ ॥

३८ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

- १५८८ इन्द्रो मद्गा रोदसी पप्रथच्छ्व इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।  
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे स्वानास इन्द्रवः ॥ २ ॥ ८ ( वा ) ॥  
[ धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१।६ )
- १५८९ विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वश्च स्वा हि ते ।  
शुक्लन्वन्वयं अभितो जनास इहासाकं मधवा सूरिस्तु ॥ १ ॥ ९ ( ला ) ॥  
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १०।८।६ )
- १५९० अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषाश्सि तरति सपुग्बभिः सूरौ न सपुग्बभिः ।  
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।  
विश्वा यद्रूपा परिपास्युक्रभिः सप्तास्येभिर्क्रभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११।१ )
- १५९१ प्राचीमनु प्रदिशं याति चैकित्तस्च रश्मिभिर्यत्ते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।  
अग्मन्नुक्थानि पौंस्पेन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।  
वज्रश्च यद्भवतो अनपच्युता समस्वनपच्युता ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११।३ )

[ १५८८ ] ( इन्द्रः शय मद्गा ) इन्दने अपनी शक्तिकी महिमासे ( रोदसी पप्रथत् ) तुलोक और पृथिवीका विस्तार किया । ( इन्द्रः सूर्यं अरोचयत् ) इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया, ( इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि ) इन्द्रमें ही सारे भुवन ( येमिरे ) रहते हैं । ( स्वानासः इन्द्रवः इन्द्रे ) छने हुए सोमरस इन्द्रको दिए जाते हैं ॥ २ ॥

[ १५८९ ] हे ( विश्वकर्मन् ) सब कर्म करनेवाले ईश्वर ! ( हविषा वावृधानः ) हविसे यदनेवाला ( स्वयं ) स्वयं तू ही ( तन्वं स्वा हि ते यजस्व ) अपने शरीरको स्वयं द्वारा किए जानेवाले विश्वरूपी यज्ञमें अर्पण कर । ( अन्ये जनासः अभितो मुह्यन्तु ) अन्य यत न करनेवाले जब धारों दिशाओंमें मूर्च्छित होकर गिर जाएं । ( इह ) यहाँ बड़े ( मधवा ) पनवान् इन्द्र ( सूरिः अस्माकं अस्तु ) तथा सब तानी हमारे होकर रहें ॥ १ ॥

[ १५९० ] ( पुनानः ) छाने जानेवाला सोम ( हरिण्या अया रुचा ) हरे रपके तेजसे ( सूरः सपुग्बभिः न ) जितप्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे अन्यकारका नाश करता है, जतोप्रकार ( विश्वा द्वेषाश्सि तरति ) सब शत्रुओंका नाश करता है । ( पुनानः हरिः अरुष ) पवित्र होनेवाला हरे रपका सोम चमकता है तथा ( पृष्ठस्य धारा रोचते ) छलनीकी पीठपर इसकी धारा भी चमकती है हे सोम । इ ( सप्तास्येभिः ) सात मूर्च्छित-तेजोंसे ( यद्रूपाभिः ) और किरणोंसे ( विश्वा रूपा परिपास्युः ) सब तेजस्वी पदार्थोंको अनेक श्रेष्ठ होकर जाता है ॥ १ ॥

[ १५९१ ] ( चैकित्तत् प्राचीं प्रदिशं अनुयाति ) सर्वज्ञानो सोम पूर्ण विशाकी जाता है, सब ( दैव्यो दर्शतो रथः रश्मिभि र्त्तं यतते ) दिव्य, और सुन्दर ऐसा तेरा रथ किरणोंके शास्त्र तेजस्वी पीलता है । ( पौंस्था उक्थानि यग्मन् ) पीठपरका यज्ञ करनेवाले स्तोत्र इन्द्रकी प्राप्त होते हैं । खोता उनसे ( जैत्राय इन्द्रं हर्षयन् ) विजयके लिए इन्द्रको प्राप्त करते हैं ( यत्नः च ) यज्ञ भी इन्द्रकी प्राप्त होता है, हे सोम और इन्द्र । ( यत् समस्तु अनपच्युता मधवाः ) तब तुम दोनों यज्ञमें नहीं क्षरते ॥ २ ॥

- १५९२ स्व॥ ह त्वत्पणीनां विदो वसु सं मातुर्मिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दो ।  
 परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।  
 त्रिधातुभिररुपीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ ३ ॥ १० ( छे ) ॥  
 [ धा० ४१ । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ १११११२ )
- ॥ इति त्रितीयः खण्डः ॥ २ ॥
- [ ३ ]
- १५९३ उत नो गोपाणि भियमश्वसां वाजसांश्रुतं नृवस्कृशुसूतये ॥ १ ॥ ११ ( यौ ) ॥  
 [ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।५३।१० )
- १५९४ शृशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यश्वसः । विदा कामस्य वेनतः ॥ १ ॥ १२ ( व ) ॥  
 [ धा० १ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।८६।८ )
- १५९५ उप नः सूनवो गिरः शृष्वन्त्वमृतस्य ये । सुमूढीका भवन्तु नः ॥ १ ॥ १३ ( रौ ) ॥  
 [ धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ १।१९।९ )
- १५९६ प्र वां महि घयी अभ्युपस्तुति भरामहे । शुची उप प्रश्रुतये ॥ १ ॥ ( ऋ ४।१६।५ )
- १५९७ पुनाने सन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजधः । उहार्थे सनाटतम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ४।१६।९ )

[ १५९२ ] हे सोम ! ( स्व० ह ) तूने ( पणीनां त्वत् घसु ) धर्मिणो उत पनवो ( विदः ) प्रजा किया । ( ऋतस्य धीतिभिः मातुभिः ) पत्नके आधार भूत जन्तिसि ( स्व० दधे सं मर्जयसि ) अपने पत्नके स्थानमें उतम प्रकारसे दू वृद्ध होता है । ( परावतो न साम तत् ) वृत्तसे वह सामगत तुननेमें जाता है ( यत्र धीतयः रणन्ति ) जहाँ पत्न करनेवाले दजमान जानविते हुए हुए योजते हैं, ( त्रिधातुभिः अरुपीभिः ) तीन स्थान पर प्रकृतनेवाले तेजोसे ( रोचमानः ) जमकनेवाला सोम ( वयः दधे वयः दधे ) क्षत्र देता है, निदचयते अथ देता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १५९३ ] हे पूवा वेद । ( उत ) और ( गो-पाणि अभ्य-सां वाजसां ) गाव, घोड़े और क्षत्र देनेवाली तप्य ( नृवत् ) दुष्ट अथवा शेरक देनेवाली ( भियं ) बुद्धिको ( नः ऊतये कृणुहि ) हमारे सरलकले लिए उपयोनी कर्ता ॥ १ ॥

[ १५९४ ] हे ( सत्य-श्वसः नरः ) तप्य बलसे युक्त गौर मरते । ( शृशमानस्य स्वेदस्य ) तुम्हारी स्तुति करनेके कारण पत्नीसे तर - व - तर और ( वेनतः ) फलकी इच्छा करनेवालीको ( कामस्य विदुः ) इष्ट फल दे ॥ १ ॥

[ १५९५ ] ( ये अमृतस्य सूनवः ) जो अमर प्रजापतिके पुत्र हूँ, वे ( नः गिरः उप शृष्वन्तु ) हमारी स्तुति सुनें और ( नः सुमूढीकाः भवन्तु ) हमें उतम सुभ देनेवाले हों ॥ १ ॥

[ १५९६ ] हे ( शुची ) पवित्र द्यावापृथिवी ! ( प्रश्रुतये उप ) स्तुति करनेके लिए तुम्हारे पास आकर ( घयी घां ) तैलासी तृण घोरनेको ( उपस्तुति महि अभि भरामहे ) स्तुति और स्तोत्र बड़े प्रमाणमें धरित करते हैं ॥ १ ॥

[ १५९७ ] हे देवियो ! ( सन्वा दक्षेण ) अपने शरीरसे और बलसे तुम ( मिथः पुनाने ) पत्न और यजमान इन दोनोंको युद्ध करते हुए ( राजधः ) प्रजापति होते हो और ( सनात् ऋतं उहार्थे ) हमेंया पत्न करते हो ॥ २ ॥



- १५९८ मही मित्रस्य साधयस्तरन्ती विप्रती ऋतम् । परि यज्ञं निषेदधुः ॥ ३ ॥ १४ ( का ) ॥  
 [ धा० ६ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ४।१६।७ )
- १५९९ अयस्य ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वसस्तस्मिन् ओहसे ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३०।४ )
- १६०० स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु स्रुता ॥ २ ॥ ( ऋ. १।३०।९ )
- १६०१ उर्ध्वस्तिष्ठान् न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतकवो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥ १५ ( ह ) ॥  
 [ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।३०।६ )
- १६०२ गाव उप वदावेटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा द्विरण्यया ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७२।१२ )
- १६०३ अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करं मधु । अवटस्य विसर्जने ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।७२।११ )
- १६०४ सिञ्चन्ति नमसावटमुचाचक्रं परिज्मानम् । नीचीनचारमक्षितम् ॥ ३ ॥ १६ ( रा ) ॥  
 [ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।७२।१० )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ १५९८ ] ( मही ) हे यज्ञो घायपुत्रिविधो ! तुम ( मित्रस्य साधयः ) अपने मित्रको, जो तुम्हारी स्तुति करता है, अभिलषित फल देती हो । ( कर्तं तरन्ती ) यज्ञका रक्षण करती हुई और ( विप्रती ) यज्ञको पूर्ण करती हुई ( यज्ञं परि निषेदधुः ) यज्ञको आभय देती हो ॥ ३ ॥

[ १५९९ ] हे इन्द्र ! ( अयं कपोतः ) यह कयूतर जिसप्रकार ( गर्भधि इव ) अपनी कबूतरोंके पास जाता है, उसीप्रकार ( ते समतसि ) यह तेरे पास आता है, इसलिये ( नः तवू चचः ) हमारी वह प्रार्थना ( ओहसे ) तू विचारपूर्वक सुनता है ॥ १ ॥

[ १६०० ] हे ( राधानां पते ) पत्नीके स्वामी और ( गिर्वाहः ) स्तुतिके बोध ( वीर ) गौर इन्द्र ! ( यस्य ते स्तोत्रं ) जिस तेरे हे स्तोत्र है, उस तेरी ( विभूतिः स्रुता अस्तु ) वैभवसम्पन्न और तरवारबहुत चागी सत्य हो ॥ २ ॥

[ १६०१ ] हे ( शतकवो ) सैकड़ों कार्य करनेवाले इन्द्र ! ( उर्ध्वस्तिष्ठान् वाजे ) इस धूम्रवं ( नः ऊतये ) हमारे सारक्षणके लिए तू ( उर्ध्वः तिष्ठ ) सेव्यार रह । हम तुमसे ( अन्येषु ) अन्य कार्योंके विषयमें ( सं ब्रवावहै ) मिलकर विचार करें ॥ ३ ॥

[ १६०२ ] हे ( गावः ) बायो ! ( अवटे उप वद ) यज्ञके स्थान पर आओ और अपना शपथ करो, तुम ( मही ) यज्ञस्य रप्सुदा ) महापू यज्ञके फल देनेवाली हो । ( उभा कर्णा द्विरण्यया ) तुम्हारे दोनों कान सोनेके आभूषणसे अलङ्कृत हैं ॥ १ ॥

[ १६०३ ] ( अद्रय ) आवरणीय अण्डयुं ( अभ्यारमित् ) यज्ञके पास आ गए हैं । ( निषिक्तं मधु ) घबे हुए दस मोठे सोमरसको ( अवटस्य विसर्जने ) महावीरके विसर्जन करनेके समय ( पुष्करं ) कलशमें रखा जाता है ॥ २ ॥

[ १६०४ ] ( उच्चा-चक्रं ) जिसके ऊपरके भागमें चक्र है ( परिज्मानं नीचीनचारं अक्षितम् ) और चारों ओरसे नीचे झुके हुए नीचेके द्वारके पास जो शीश गहाँ हुआ है, ऐसे ( अवटे समसा सिञ्चन्ति ) महावीरको नमस्कार करके यज्ञ करनेवाले हवन करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

- १६०५ मा भेम मा श्रमिष्मोऽस्य सरूपे तव ।  
<sup>३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup>  
 महचे वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पदयेम तुर्वशं यदुम् । ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१७ )
- १६०६ सव्यामनु स्त्रिफज्यं वावसे वषा न दानो अस्य रोषति ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup>  
 मध्वा संपृक्ताः सारथेण धेनवस्तुषमैहि द्रवा पिब । ॥ २ ॥ १७ (वी) ॥  
 [ धा० १० । उ० नास्ति । २३० ४ ] ( ऋ. ८।१८ )
- १६०७ इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup>  
 पावकवर्णाः शुचयो विपथितोऽभि स्तोमैरनुपत । ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१९ )
- १६०८ अयं सहस्रमापिभिः सहस्रकृतः समुद्र इव पमये ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup>  
 सत्याः सो अस्य महिमा गृणे श्रवो यज्ञेषु विप्रराज्ये । ॥ २ ॥ १८ (रि) ॥  
 [ धा० १८ । उ० नास्ति । २३० २ ] ( ऋ. ८।१४ )
- १६०९ यस्वार्यं विश्व आर्यो दासः शेषधिषा अरिः ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup>  
 तिरिधिदर्थं रुद्रमे पवीरवि तुभ्येस्तो अज्यते रथिः । ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१९ )

[ ४ ] चतुर्थोऽखण्डः ।

[ १६०५ ] हे इन्द्र ! ( उग्रस्य तव रूप्ये मा भेम । महान् वीर एते तेरो मित्रतामै रहकर ह्यम किलीतेष उरे । ( मा श्रमिष्म ) हम न थके । ( वृष्णः ते ) उपासकोंकी कामनातृप्त करनेवाले तेरे ( महत् कृतं अभि चक्ष्यं ) महान् कार्यं वर्णनीय हो गए हे । ( तुर्वशं यदु पदयेम ) हम तुर्वश और पशुकी आनन्दित अवस्थामें देखें ॥ १ ॥

[ १६०६ ] ( वृषा ) गलवान् इन्द्र । वृ ( सव्यां स्त्रिफज्य अनु ) अपने मांयें हाथके आपले ( वावसे ) सर्वांगी आपार बैता है । ( दानः अस्य न रोषति ) कान्दनेवाला हितक शत्रु इति कथ्य नहीं दे ताता । ( सारथेण संपृक्ताः धेनवः ) शहरकी मखलीके शहरके समान सीधे ब्रूवते युक्त पायोकि समान आनन्दवाचक सोम । ( गृणे पयि ) वृ पहा सीप्र जा । ( द्रव ) यतमैं सीप्र पशुष और हे इन्द्र । ( पिब ) सोम पी ॥ २ ॥

[ १६०७ ] हे ( पुरुव-सो ) बहुत पनवान् इन्द्र । ( मम याः इमाः गिरः ) पैरो जो ये स्तुतिमां हें, वे ( त्वा वर्धन्तु ) मुझे बढ़ावें । ( पावक-वर्णाः शुचयोः विपथिचतः ) अग्निके समान तेजस्वी और शुद्ध शानी ( स्तोमैः अभ्य-नूपत ) स्तोत्रैति तेरो स्तुति करते हें ॥ १ ॥

[ १६०८ ] ( अयं ) यह इन्द्र ( सहस्रं कृपिभिः सहस्रकृतः ) हजारों कृपिके द्वारा बलवान्के रूपमें प्रतिष्ठ किया गया है । वह ( समुद्रः इव पमये ) समुद्रके समान विस्तृत है । ( अस्य सत्याः साः महिमा श्रवः ) इस इन्द्रकी वह सत्य महिमा और वह बल प्रतिष्ठ है, ( यज्ञेषु विप्रराज्ये गृणे ) यतमैं और कान्दनेकी राज्यमें उसकी स्तुति होती है ॥ २ ॥

[ १६०९ ] ( विश्वः अरिः आर्यो अर्यं ) सब लोकोंका स्वामी तथा श्रेष्ठ यह इन्द्र भी ( दासः अस्य दीव चिप्रा ) शतके समान मित मत्तके लज्जानेकी रला करता है, ( स. ) यह पशु ( अर्यं शरामे पर्यारथि तिरः चिख् ) अर्य, दास और पवि इनमें गुप्त रहकर भी ( तुभ्या इत् अज्यते ) तुम ही हवि प्रदान करता है ॥ १ ॥



१६१५ <sup>३ १ ३ १ २</sup> विपाश्चिते पयमानाय गायत मही न धारात्पन्भो अर्पति ।  
<sup>१ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ ३ ३ ३</sup> अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमन्यो न क्रीडन्सरद्वेषा हरिः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८६।४४ )

१६१६ <sup>३ २ ३ २ ३ ३ १ ३ ३ ३ ३</sup> अग्नेरा राजाप्यस्तविष्पते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ ३</sup> हरिश्रुतस्तुः सुदशीको अर्णयो ज्योतीरथः पवते राय ओकयः ॥ ३ ॥ २१ ( ले ) ॥  
 [ या० ३२ । उ० नास्ति । स्व ७ ] ( ऋ. १।८६।४५ )

॥ इति षतुषः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमप्रपाठस्य तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सप्तम. प्रपाठस्य सप्तमः ॥ ७ ॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

[ १६१५ ] हे ऋत्विजो ! ( विपाश्चिते पयमानाय गायत ) जलो और छानेजानेवाले सोमकी स्तुतिका पात करो । ( मही धारा न अन्धः अत्यर्पति ) यह सोम बड़ी धारके समान प्रवाहके अत्र देता है । ( अहिः न ) सांपके समान ( जूर्ण त्वच इति सर्पति ) गली हुई चमचकी यह छोड़ता है । ( युवा हरिः ) बलवान् और हरे रंगका यह सोमरत्न ( अत्यः न ) छोड़के समान ( क्रीडन् अस्रत् ) क्रीडा करता हुआ कलशमें गिरता है ॥ २ ॥

[ १६१६ ] ( अग्नेराः राजा ) प्रगति करनेवाला राजा सोम ( अप्यप्यस्तविष्पते ) जलमें मिलाया जाता हुआ प्रगलित होता है । ( अह्नां विमानः ) दिक्की साफनेवाला सोम ( भुवनेषु अर्पितः ) जलमें रखा हुआ है । ( हरिः भ्रुतस्तुः ) हरे रंगका और पानीमें मिलाया गया ( सुदशीकः अर्णवः ) सुन्दरदानीय और पानीमें रहनेवाला ( ज्योतिरथः ) तेजस्वी रथ जिसका है, ऐसा ( रायः ओकयः ) यह सोम धनके परते रहनेवाला है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥



## षोडश अध्याय

### इन्द्र-देवता

- इस सोमके अध्यायमें अनेक देवताओंकी स्तुति है । उनमें इन्द्र देवताकी बड़ी स्तुति है । वह इत्थप्रकार है—

१ इन्द्रः सुतस्य विष्पवि मदे अस्य घृण्ये दायः  
 घाघुषे [ १५७४ ]- इन्द्र सोमरत्न धोनेके बाद विशेष मानव्य प्राप्त करनेके इस पत्रमानका सोम और बल बढ़ाता है ।

२ आपयः अद्य पूर्वथा अद्य ते महिमानं अनुमु-  
 दन्ति [ १५७५ ]- मनुष्य आज पहलेके समान इस इन्द्रकी महिमाना वर्धन करते हैं ।

३ हे शचीपते इन्द्र ! विश्वाभि ऊतिभिः सुशग्धि  
 [ १५७६ ]- हे शक्तिमान् इन्द्र ! त्वं संशक्ते सायनेतिभू  
 समये हुआ है ।

४ हे शूर ! यस्तुभिर्दं यशसं, भगं न, त्या अनु  
 चरामसि [ १५७७ ]- हे शूर इन्द्र ! धनते युक्त, यशसो  
 और भाग्यवान्के समान रहनेवाले तेरे अनुकूल होकर ही  
 हम आचरण करें ।

५ अश्वस्य यौर गयो पुरहृत् अस्ति [ १५८० ]- इन्द्र  
 घोड़ोंकी पुष्ट करनेवाला और गायोंका पोषण करनेवाला है ।

६ हे इन्द्र ! त्वे दानं नक्तिः परमर्धियम् । यत् यामि

तत् आभर [ १५८० ]- हे इन्द्र ! तेरे बान कोई भी नष्ट नहीं कर सकता । जो भी मानता है, वह मुझे भरपूर दे ।

७ हे देव ! हिरण्ययः उरसः [ १५८० ]- हे इन्द्र देव ! जैसे सोनेसे हीज भरा हुआ हो, वैसे ही तू सम्पत्तिसे भरा हुआ है ।

८ वसुन्तये पहि [ १५८० ]- धन देनेके लिए तू आ ।  
९ चेरवे भर्गं चिदाः [ १५८० ]- उत्तम आचरण करनेवालेको भाग्य दे ।

१० हे प्रधवन् ! गधिष्ठये वासुपस्य [ १५८० ]- हे धनवान् इन्द्र ! गायकी इच्छा करनेवाले मुझे गावें दे ।

११ अश्वं इष्टये उत् [ १५८० ]- घोड़ेको इच्छा करनेवालेको घोड़े दे ।

१२ त्वं पुरु सहस्राणि शतानि च यूया दानाय मंक्षे [ १५८२ ]- तू अनेक अर्थात् हजारों और सैकड़ों गायेंके झुण्ड बान करनेके लिए पासमें रखता है ।

१३ हे धृषन् ! कया जत्या त्वं नः अभि प्रमन्दसे [ १५८६ ]- हे इन्द्र ! तू कौनसे सरसण सामर्थ्यसे हमें अल्पक मानव्य देता है ।

१४ इन्द्रः मन्ना रोदसी प्रपयत् [ १५८८ ]- इन्द्रने अपनी क्षणितसे छत्रोक मोर पृथ्वीलोककी विलुत किया ।

१५ इन्द्रः स्यं अरोचयत् [ १५८८ ]- इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया ।

१६ इन्द्रे विभ्वा भुवनानि योमिरे [ १५८८ ]- इन्द्रमें सब भुवन रहते हैं ।

१७ हे राधागां पते ! गिर्वणः वीर ! यस्य ते स्तोत्रं विभूतिः सृष्ट्वा अस्तु [ १६०० ]- हे धनके अर्धपते ! हे सुव्य वीर इन्द्र ! जो तेरे ये स्तोत्र हम गाते हैं, वह तेरी मह विभूति सत्य हो ।

१८ हे शतक्रतो ! अस्मिन्वाजे नः उत्तये ऊर्ध्वः तिष्ठ [ १६०१ ]- हे संक्रांतं कर्म करनेवाले इन्द्र ! इस पुत्रमें हमारी रक्षा करनेके लिए तू उठकर तैयार हो और स्थिर रह ।

१९ उग्रस्य तव सख्ये साभेम, मा अभिष्म [ १६०५ ]- तेरे नमान शूरकी मित्रतामें हम न डरें और न पके ।

२० धृष्णाः ते महद् दृते अभिष्वस्य [ १६०५ ]- बल युक्त होने महान् प्रशस्तयोगी कार्य किए हैं ।

२१ दानः अस्व न रोहति [ १६०६ ]- कालनेवाला शत्रु इसे कप्य नहीं दे सकता ।

२२ पावकवर्णाः मुच्ययः विपादिघतः स्तोमैः अभ्य-  
नूपत [ १६०७ ]- अग्निके समान तेजस्वी ऐसे युद्ध शानो स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं ।

२३ अयं सहस्रं ऋषिभिः सहस्रकृतः समुद्रः इय प्रपये [ १६०८ ]- यह हजारों ऋषियों द्वारा बलवान्के रूपमें प्रशस्त किया गया इन्द्र समुद्रके समान विस्तृत है ।

२४ नुरण्ययो विप्रसः अर्कं आनुजुः [ १६१० ]- शीघ्रता करनेवाले शानो इन्द्रकी अर्चना करते हैं ।

इसप्रकार इन्द्रका वर्णन यहाँ किया गया है । इन्द्र बल-  
वान् है, उसकी महिमा शानो विद्वान् वर्णन करते हैं । सब सरसणके साधन उसके पास तैयार रहते हैं । वह इन्द्र सब प्रकारके धन अपने पास रखता है । वह पशुएवी और भाय-  
वान् है । घोड़े और गायिका वह उत्तम पालन करता है । वैसे हीज सोनेसे भरा हुआ हो, वैसे ही वह इन्द्र धनसे भरपूर है । सदाचारी मनुष्यको वह धन देता है । उसके पास देनेके लिए हजारों गावें और घोड़े हैं । उसके शौर्य इत धुलोक और भूलोकमें चारों ओर फैले हुए हैं । उसने सूर्यको तेजस्वी बना-  
कर आकाशमें स्थापित किया । भूमि भी उसीके आचार पर है । वह सब युद्धोंमें हमारी रक्षाके लिए तैयार और स्थिर रहें और चारों ओरसे हमारी रक्षा करे । इसके सरसणमें यदि हम रहें तो हमें किसीसे भी डर नहीं रहेगा । ऐसा वह इन्द्र है ।

### इन्द्र और अग्नि

इन्द्र और अग्निका वर्णन इसप्रकार है—

१ इन्द्राग्नी दासपत्नीः नवर्ति पुरः एकेन कर्मणा साकं अभ्युजुत [ १५७६ ]- इन्द्र और अग्निने दासके मन्त्रे नगरोंको एक आक्रमणसे हिला दिया ।

२ इन्द्राग्नी ! चां तविषाणि प्रयांसि सधस्यानि [ १५७८ ]- हे इन्द्र और अग्नि ! तुम्हारे बल और शक्ति एकत्र हैं, अर्थात् तुम मिलकर जो करना होता है, करते हो ।

३ अप्सुर्व्यं युषोः दितम् [ १५७८ ]- उत्तम कर्मोंको प्रेरणा देनेवाले तुम्हारे बल तुममें ही है ।

दासलोगोंकी नब्बे नगरियोंको एक ही आक्रमणसे हिला डाला, ऐसा युद्ध-कौशल्य इनका है ।

### अग्नि

अग्निका वर्णन इस अध्यायमें इस प्रकार है—

१ होता मन्द्रः यः विभ्वा वसु जनानां धृतो

[ १५८३ ]- देवीको बुलाकर लानेवाला और जानपद बधाने-  
वाला जो अग्नि है, वह हरप्रकारके धन लोगोंको देता है ।

२ दस्यु विदपते । सुदानयः देवयुवः गर्भिः समु-  
ज्यन्ते, तनये तोके च मधुमेमां राघः पर्वि [ १५८४ ]-  
है सुवच प्रजापालक जन्मे । उत्तम दान देनेवाले और देवत्व  
प्राप्त करनेवाले अपनी वाणीसे तेरी स्तुति करते हैं । ऐसा  
सू पुत्रपौत्रोंको धनवानेके पास रहनेवाला धन दे । अर्थात्  
स्तुति करनेवालोंको धन मिलता है और वह धन उन्हें अग्नि  
देता है ।

### सोम और इन्द्र

१ समस्तु अनपच्युता भवयः [ १५९१ ]- तुम  
दोनों मृद्धमें नहीं हारते, ऐसे ये दोनों सूरवीर हो ।

### पूषा

१ गोपाणि अयसां वाजसां नृपत् धियं नः ऊतये  
कृणुहि [ १५९३ ]- गाव देनेवाली, घोड़े देनेवाली, जम  
देनेवाली और पुत्र देनेवाली मृद्धको हमारे संरक्षणके लिए  
उपयोगी बना ।

### वरुण

१ हे वरुण । मे इमं हवं भुधि । अद्य मृडय ।  
अयस्तुः श्यां वा चजे [ १५९५ ]- हे वरुण । यह मेरी  
स्तुति सुन । आज मुझे मुझी कर । अपने संरक्षणको इच्छा  
करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं ।

वरुण लोगोंको सुखी और सुरक्षित करता है ।

### मरुत

१ हे सत्यदायसः नरः दाशामानस्य स्येद्रस्य वेनतः  
कामस्य विद् [ १५९४ ]- हे उत्तम बलसे युक्त मरुतो ।  
सैनिकी । तुम्हारी स्तुति करनेके कारण पत्नीसेते नहामें हुए  
समा फलकी इच्छा करनेवाले स्तोत्राओंकी इष्ट फल से ।

२ अमृतस्य खलवः नः गिरः उपमृष्टमस्तु, नः  
सुमृष्टीषाः भयस्तु [ १५९५ ]- ये जगर प्रजापतिके  
पुत्र मरुत वीर हमारी स्तुति सुनें और हमें सुख देनेवाले हों ।

मरुत वीर सैनिक हैं, ये सत्यकी रक्षा करनेवाले मरुत  
करते हैं ।

### द्यावापृथिवी

१ हे नुधी । प्रजास्ये उप, दधी धां, उपस्तुभिं  
३९ [ ताम. हिन्दो भा. २ ]

महि, अभि भयामहे [ १५९६ ]- हे पवित्र द्यावापृथिवी ।  
तुम्हारी स्तुति करनेके लिए तुम्हारे पास आकर, तेज युक्त  
तुम दोनोंको स्तुति स्तोत्र बड़े प्रमाणमें अर्पण करते हैं ।

यहां से और पृथिवीके देवता " सुवी " मृद्ध है और " दधी "  
तेजस्वी है, देता कहा है ।

२ तन्वा दक्षेण मिथः पुनाने राजया । सनात् प्रत  
ऊराधे [ १५९७ ]- तुम अपने पारोपते वीर अपने सामर्थ्यमें  
दोनों ध्रुलोक और पृथ्वीलोककी मृद्धि करके प्रकाशित होते  
हो और हमें सा सत्य-यत्न की सिद्ध करते हो ।

३ मही । मित्रस्य स्वाधया, प्रतं तरन्ती, विप्रती,  
यसं परि निपेदसुः [ १५९८ ]- हे महान् द्यावापृथिवी !  
तुम अपने मित्रका कार्य करती हो, सत्यका संरक्षण करती  
हो, कार्य पूर्ण करती हो और धनको सिद्ध करती हो ।

तुम्हारे अनुकूल व्यवहार करनेवालोंका तुम सन्धान करती  
हो । सत्यका संरक्षण करके उनका शोषण करती हो, और  
विश्वयस पूर्ण करती हो । विश्वमें एक प्रकारका महापन्न बान्धु  
है । उसे मयायीम्य रीतिसे ये सु वीर पृथिवी बनते हैं ।  
इस धरते सर्वोत्तम कल्याण होता है ।

### सौ

१ हे सौवः । अवते उपवद । मही यदस्य वस्तुदा ।  
उमा कर्णा हिरण्यया [ १६०२ ]- हे मायो । यत्के  
स्थानपर जाओ और शरद करो । तुम महान् यत्के कार्य  
करनेवाली हो । तुम्हारे दोनों बानोंमें सौनेके शत्रुकार हैं ।

यत् जिस जगह होता है, वहाँ मायों हों और उनका रक्षाना  
सुनाई दे । मायें अपने दूध से घोसे पतारें उत्तम रीतिसे सिद्ध  
करती हैं । मायें दूध और घीके अभावमें यत् सिद्ध होनेवाला  
हो नहीं है ।

२ सारधेण संगुक्ताः धेनवः [ १६०६ ]- गृहदत्ते  
समान मोटा दूध मायें भरपूर देती हैं । उनसे उत्तम घो  
मिलता है । ( हरधंधयानिं धूर्तं ) बरके दूधसे आज संसार  
विश्वे मायें प्रतका ह्यनने आशुति देनेके लिए उपयोग करना  
पारिपु ।

### सोम

१ पुनामः हरिण्या अया रुचा, सूरः स्वसुरभिः न,  
विभ्या देवसि संतरति [ १५९० ]- मृद्ध होनेवाला सोमस  
अपने हरे रणके तेजसे, सूर्यसे अपनी विजयोंके मयाकारका  
नाम करता है, उसीप्रकार सत्र द्वेष करनेवाले मनुष्योंका मया  
करता है ।

२ पुनानः हरिः अरवः [ १५९० ]- स्वच्छ होनेवाला सोम घमकता है ।

३ पथीनां वसु विदः [ १५९२ ]- पणि-व्यापारियों-ते धमकी तूने प्राप्त किया ।

४ ऋतस्य धीतिभिः मातृभिः क्वे, द्रुमे संमर्जयसि [ १५९२ ]- यहाको आधार देनेवाले पानीसे तू अपने प्यान पर छाना जाता है ।

सोमरसनं पानी मिलाकर उसे छानकर शुद्ध किया जाता है ।

५ परावतः साम तत् [ १५९२ ]- पत्रमें दूरते ही सामगायन सुननेमें आता है । उसी कारण वहाँ प्रज्ञ चालू है, और सोमरस छाना जाता है, यह जामा जा सकता है ।

६ हे इन्द्रो ! नः गोमत् अश्वमत् धनिव [ १६११ ]- हे सोम ! हमें गावों और घोड़ोंसे युक्त धन दे ।

७ हे सुदक्ष ! सुतः गोषु शुचिं वर्णं धारय [ १६११ ]- हे उत्तम बल बगानवाले सोम ! रस निबोड़े जानेंके बाद गौशुष्यके उत्तम रंगको धारण कर । गायके रूपमें मिल जा ।

८ हे हरीणां पते देव इन्द्रो ! एतरस्तमः नर्यः नः रुचे मय [ १६१२ ]- हे हरे रंगके वनस्पतिके स्वामी सोमदेव ! अत्यन्त तेजस्वी और मनुष्योंका हित करनेवाला तू हमारे तेज बढ़ा ।

९ साह्यान् वाघा परि, ययुं अप [ १६१३ ]- हे शत्रुको हरनेवाले सोम ! बाघा करनेवाले शत्रुओंका नाश कर और कुहरा व्यवहार करनेवाले बुद्धीका नाश कर ।

१० अहिः न, जीर्णां त्वर्चं अति सर्षति [ १६१५ ]- साप जैसे अपनी फेंचुली उतार देता है, उसीप्रकार सोम अपनी छालको दूर करता है । सोम कूटनेके बाद उसको छाल अलग हो जाती है ।

११ अग्नेः राजा आप्याः स्तोत्रेप्यते [ १६१६ ]- प्रगति करनेवाला, राजा कर्त्तव्य करनेवालोंके द्वारा प्रशंसित होता है । राजा सोम पानोमें मिलते समय प्रशंसित होता है ।

१२ हरिः घृतस्तुः सुदशीकः अर्णवः ज्योतीरथः रायः ओक्वयः [ १६१६ ]- हरे रंगका पानीमें मिलाया गया मुन्दर वर्तनीय और वेगस्वो रथ जिसका है, ऐसा यह सोम मार्गों सेबोंका घर हो है ऐसा बिछाई देता है ।

सोमका रस निकालनेके समय उसमें पानी मिलाया जाता है और उसे छाना जाता है । तब वह सोम घमकने लगता है ।

सूयं जैसे अपनी किरणोंसे घमकता है, उसीप्रकार यह सोम-रस घमकता है, उस समय वह छाना जाता है, उस समय सामगान मृग होता है । यह सामगान भड़ी भाषाजसे किए जानेके कारण दूरसे ही सुनाई देता है ।

बादमें उसमें गायका रूय मिलाकर उसका हवन करते हैं, फिर उसे पिया जाता है । इसप्रकार सोमका वर्णन है ।

इम वेवताओंका इस अव्यापमें वर्णन है ।

## सुभाषित

१ आययः अस्य महिमानं अनुष्टुषन्ति [ १५७४ ]- मनुष्य इस इन्द्रकी महिमाका वर्णन करते हैं ।

२ इयः आयुषो [ १५७५ ]- अस्य प्रातिके लिए मैं प्राणोंका करता हूँ ।

३ हे इन्द्राग्नी ! दासपत्नीः नर्घति पुरः एकेन कर्मणा साकं अध्युतम् [ १५७६ ]- हे इन्द्र और आने ! तुम शत्रुकी नस्बे नगरियोंको एक ही प्रयत्न-आक्रमण-से हिला डालते हो ।

४ धीतयः ऋतस्य पय्या अनु अपसः परि उप प्रयन्ति [ १५७७ ]- बुद्धिमत् प्रातिके सत्यके मार्गसे यज्ञके पास आकर बैठते हैं ।

५ वां तविपाणि प्रयांसि सघस्यानि, अप्त्स्यै युवोः हिसम् [ १५७८ ]- तुम्हारे बल युव कर्मोंको प्रेरणा देनेवाले हैं । तुम्हारे बल युव कर्मोंको प्रेरणा देनेवाले हैं ।

६ हे शचीपते इन्द्र ! विश्वाभिः ऊतिभिः सुशभिः [ १५७९ ]- हे शक्तिमान् इन्द्र ! सब सरस्वतीकी शक्तिबोधित युक्त होनेके कारण तू सामर्ष्यवान् है ।

७ वसुविदं यशसं अगं न त्वा अनु चरामसि [ १५७९ ]- धनवान् और यशस्वी तूने, विश्वप्रकार भागवान्को पीछे सब चलते हैं, उसीप्रकार हम अनुकूल हों ऐसा आचरण करते हैं ।

८ अश्वस्य पारः गवां पुरुष्टत् असि [ १५८० ]- घोड़ोंको पुष्ट करनेवाला और गावोंका पोषण करनेवाला है ।

९ हिरण्ययः उत्सः [ १५८० ]- तू सोनेका स्रोत है ।

१० त्वे दानं न किः परिधिपयत् [ १५८१ ]- तूने दान कोई भी नत्न नहीं करता ।

११ यत् यत् यामि तत् आभर [ १५८१ ]- मं जो भी मायता हूँ वह वह मुझे दे ।

१२ स्वं वसुचयं पति [ १५८१ ]- तू वन देनेके लिए आ ।

१३ सेम्ये भगं विदा [ १५८१ ]- सत्वाचरण करने-वालेको भाव्य दे ।

१४ हे मघवन् ! गविघ्ये उत् वायुपस्य [ १५८१ ] - भापको इच्छा करनेवालेको गावें दे ।

१५ हे इन्द्र ! अश्व इष्टये उत् [ १५८१ ]- हे इन्द्र ! घोड़ेको इच्छा करनेवालेको घोड़े दे ।

१६ त्वं पुरु सद्दक्षामि शतानि च यूया दानाय मंडुसे [ १५८२ ]- तू बहुतसे हत्तारों और संकर्मों गापीके शून्ध वानके लिए देता है ।

१७ पुर इन्द्रं अयले गायन्तः विप्रयचसः आचक्षुम [ १५८२ ]- शयूके नवरोंको सोइनेवाले इन्द्रको अपने रक्षण करनेके लिए ज्ञानयुक्त भाषण करनेवाले हम बुलाते हैं ।

१८ होता मन्द्रः यः विश्वा यतु जनानां द्यते [ १५८३ ]- देवोंको बुलानेवाला और आनन्द देनेवाला ज्ञान सब धन लोगोंको देता है ।

१९ दस्य विदपते ! सुदानवः देवयन्तः, रथयं अश्व नः, गीर्भिः मर्तृज्यन्ते [ १५८४ ]- हे वर्मानीय प्रजापालक ! उत्तम शान देनेवाले और देवत्व प्राप्त करनेवाले यानक, रथमें शूरे हुए घोड़ेयें समाज, अपनी वागीते तेरो स्तुति करते हैं ।

२० ततये तोफे उभे मघोनां राघः पतिं [ १५८४ ]- पुत्र और पौर दोनोंको पनपासने पास रहनेवाले धर दे ।

२१ अयस्तुः त्वां आ चफे । हे यशण ! मे इमं हयं धुषि, वस्य मृडय च [ १५८५ ]- अपना संरक्षण हो ऐसी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं ।

२२ हे घृणन् ! कथा ऊत्या त्वे नः अमि प्रमन्दसे [ १५८६ ]- हे बलवान् इन्द्र ! कौन्ते सरसक सामय्यते तू हमें अथिक् आतन्वित करता है ?

२३ कथा स्तेः(शून्धः) आ भर [ १५८६ ]- कौन्ते सरसकरो प्रसितो तू त्त्वोनां(अ) भरपूर अश्व देता है ?

२४ इन्द्रः दाय मदा रोदसी परधत् [ १५८८ ]- इन्द्र अपनी दक्षिणते धुनीक और वृषभोली(अ) पर देता है ।

२५ इन्द्रः मृत्यं अरोचसत् [ १५८८ ]- इन्द्रने मृत्यं(अ) तेजसो भवाया ।

२६ इन्द्रे ह विश्वा भुचनानि येमिरे [ १५८८ ]- इन्द्रने ही सब भुवन रहते हैं ।

२७ विश्वकर्मन् ! हविषा वायुधानः स्वयं तन्वं स्या हि ते यजस्व [ १५८९ ]- हे तव कर्म करनेवाले इन्द्र ! हविसे बढनेवाला तू स्वयं करनेवाले विश्वरूपो यज्ञके लिए स्वयको अर्पित कर ।

२८ अन्ये जनासः समितः मुह्यन्तु [ १५८९ ] अन्य यज्ञ न करनेवाले लोग चारों ओरसे मूर्च्छित होकर मिर जायें ।

२९ इह मघया सूरिः अस्तु [ १५८९ ]- वहा इन्द्र तव जाननेवाला हो ।

३० पुनान विश्वा हेपांसि तरति [ १५९० ]- वक्रिण वीर शयूजीका नाज करता है ।

३१ सूरः सयुगमिः [ १५९० ]- सूर्य अपनी किरणोंके अणकारण पात्र करता है ।

३२ द्यैव्यः दर्शतः रथः रदिममिः स्वयसते [ १५९१ ]- विष्य और बरनीय ऐसा यह रथ किरणोंके तेजसो हुमा हुआ घोषता है ।

३३ जंत्राय इन्द्रं हर्षयन् [ १५९१ ]- विजयने लिए इन्द्रको प्रसन्न करते हैं ।

३४ समस्तु अनप्युत्ता भवधः [ १५९१ ]- युद्धोंमें तुम दोनों नहीं हारते ।

३५ गोपतिं अश्वसां याजसां नृयत् धियं नः ऊतये कृष्णुदि [ १५९३ ]- गाप, घोड़े, अश्व और पुत्र देनेवाली बुद्धिको हमारे संरक्षणके लिए उपयोगी बना ।

३६ तन्वा दुशेण मिथाः पुनाने राजयः [ १५९७ ] - तारोद और बलते तुम दोनों परस्परको मुद्ध करते हुए तेजसवी होते हो ।

३७ मित्रस्य स्वाधयः [ १५९८ ]- तुम दोनों मित्रजी सहायता करते हो ।

३८ कृतं तरन्ती पिमती [ १५९८ ]- यन्त्री पूर्ण करते और यन्त्री पूर्ण करते हो ।

३९ नः तत् वचः सोहसे [ १५९९ ]- हमारी प्रार्थना प्यार देकर तू सुनता है ।

४० राधानां पने गिर्वाहः धीतः । ते स्तोत्रं विभूतिः मनुता अस्तु [ १६०० ]- हे धनीने स्वामी लुण्य वीर ! तेरे स्तोत्र वचन विधानेवाले और हाय हों ।

४१ हे शतवतो ! असिन् वात्रे नः ऊतये ऊर्ध्वं विष्टु [ १६०१ ]- हे संकर्मों कायें करनेवाले इन्द्र ! इस युद्धमें हमारे रक्षणके लिए तैयार होकर तैयार रह ।



४२ उग्रस्य तव सख्ये मा भेम [ १६०५ ]- उग्रवीर  
ऐसे तेरी निग्रतामे हृमं कोई भय नहीं हो ।

४३ मा भ्रमिषम [ १६०५ ]- हम न पके ।

४४ वृष्णः ते मद्वृष्टं अभिचक्ष्ये [ १६०५ ]-  
भस्वांशो इक्ष्वा त्वा करनेवाले तेरे महान् पर्जन्यके बोझ  
कृष्य हुए हैं ।

४५ युवा सख्यां रिफग्यं अनु वादसे [ १६०६ ]-  
वलवान् इन्द्र अपने साथे हावसे सबको आधार देता है ।

४६ दानः अस्य न रोपति [ १६०६ ]- काडनेवाला  
सन् इते कष्ट नहीं दे सकता । ( दानः- ' द्वा ' - काडना,  
' दानः ' - काडनेवाला )

४७ सारथेण संपृक्ताः धेनवः [ १६०६ ]- मधुर  
दूधसे युक्त ये गावें हैं ।

४८ पावकवर्णाः शुचया विपदिचतः स्तोमैः अभ्य-  
नृपत [ १६०७ ]- अंनिके समान तेजस्वी शुद्ध विद्वान्  
स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं ।

४९ अयं सहस्रं ऋषिभिः सहस्रकृतः समुद्रः इव  
पप्रथे [ १६०८ ]- यह इन्द्र हजारों ऋषियोंके द्वारा बलवान्के  
रूपमें प्रसिद्ध किया गया है । वह समुद्रके समान महान् हो  
गया है ।

५० अस्य सत्याः महिमा श्रयाः यज्ञेषु विप्रराज्ये  
शृणे [ १६०८ ]- इसकी बहु सत्य महिमा और सामर्थ्य  
वाङ्मणिके यज्ञके राज्यमें प्रशंसित होता है ।

५१ अयं अस्म्य विश्वः आर्यः शैवधिपा अरिः [ १६०९ ]  
- यह इस यतका और सब आवीरक निधि रक्षक है ।

५२ देवः सोमः पसरस्तमः नर्यः सः नः रचे भव  
[ १६११ ]- हे सोमदेव ! अत्यन्त तेजस्वी और मनुष्योंका  
हित करनेवाला तू हमारे तेज बढ़ानेवाला हो ।

५३ इन्द्रो साहजान् । याधः परि, ह्युं अप [ १६२३ ]  
- हे सन्तुने हरानेवाले सोम ! बाधा डालनेवाले और दुहरा  
ध्वजहार करनेवाले शत्रुओंको दूर कर ।

५४ अहिः न, जीर्णं त्यच् अति सर्षति [ १६१५ ]-  
सापके समान बहु गन्ती हुई चमड़ीकी निफाल फेंकता है ।

## उपमा

१ भगं न [ १५७९ ]- भाग्यके समान तेरे ( अनु  
चरामसि ) अनुकूल हम चलते हैं । जैसे भाग्य अनुकूल होता  
है, उसीप्रकार तेरे अनुकूल हम स्वयंहार करते हैं ।

२ हिरण्यवः उत्सः [ १५८० ]- नितप्रकार सोनेके  
बरा हुआ होना है, उसीप्रकार तू पनते बरा हुआ है ।

३ मधोः न प्रथमानि पात्रा [ १५८१ ]- मोठे सोम-  
रत्नके मुख्य पात्रके समान इस अन्निकी ( स्तोमाः प्रयन्तु )  
स्तुतिर्पा प्राप्त हो ।

४ रथ्यं बाध्वं न [ १५८४ ]- रथमें जुड़े हुए घोड़ोंके  
समान ( गीर्भिः मर्हृज्यस्ते ) अपनी बाणोंसे अन्निकी स्तुति  
करते हैं ।

५ सूरः सयुग्धभिः न [ १५९० ]- युग्ध अन्नो किरणोंसे  
जैसे अन्नकार दूर करता है, उसीप्रकार ( पुनानः रुचा  
विश्वो देपरसि तरति ) स्वच्छ होनेवाला सोम अपने  
प्रकाशसे सब शत्रुओंको दूर करता है ।

६ परावतः तव साम न [ १५९२ ]- दूधसे नितप्रकार  
यह सामगान सुनाई देता है ( यत्र धीतयः रणन्ति ) जहाँ  
ऋषिय गति हैं । यत्नासामं ऋषिय सामगान करते हैं,  
यह दूरसे ही सुनाई देता है, और उससे यहाँ यज्ञ चल रहा  
है, ऐसा शक्त होता है ।

७ कपोतः गर्मधि इव [ १५९९ ]- कबूतर नितप्रकार  
अपनी कबूतरोंकी तरह जाता है, उसीप्रकार ( ते समतसि )  
यह तेरे पास आता है ।

८ समुद्रः इव पप्रथे [ १६०८ ]- समुद्रने समान यह  
इन्द्र महान् है ।

९ सखा सख्ये इव [ १६१२ ]- मित्र निततरह  
अपने मित्रकी सहायता करता है, उसीतरह ( सः नः रुचे  
भव ) तू हमारा तेज बढ़ानेवाला हो ।

१० सिन्धोः उच्छ्रवासे पतयन्तं उक्षुणं [ १६१४ ]-  
नदीके पानीमें नितप्रकार बल डुबकी लगाता है, उसीतरह  
पानीमें सोमरस मिलाकर जाता है ।

११ महि धारा न अन्धः अत्यर्षति [ १६१५ ]- मोठो  
पारसै बल जैसे छाना जाता है, उसीप्रकार अन्नरथी सोम  
पारसै छाना जाता है ।

१२ अग्नेयः राजा [ १६१६ ]- प्रगति करनेवाला राजा  
नितप्रकार प्रशंसित होता है, उसीप्रकार ( आण्यः स्त विध्यते )  
जलमें मिलाया जानेवाला मोम प्रशंसित होता है ।

पोडशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

संज्ञकसंख्या	ऋग्वेदसंख्या	ऋषिः	देवता	छन्दः
		( १ )		
१५७३	८।३।७	मेघनातिभिः काण्वः	इन्द्रः	प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतीबृहती )
१५७४	८।३।८	मेघनातिभिः काण्वः	"	"
१५७५	३।१२।५	विश्वामित्रो गाथिनः	इन्द्राग्नी	वायवी
१५७६	३।१२।६	विश्वामित्रो गाथिनः	"	"
१५७७	३।१२।७	विश्वामित्रो गाथिनः	"	"
१५७८	३।१२।८	विश्वामित्रो गाथिनः	"	"
१५७९	८।६।१५	भग्नः प्रगाथः	इन्द्रः	प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतीबृहती )
१५८०	८।६।१६	भग्नः प्रगाथः	"	"
१५८१	८।६।१७	भग्नः प्रगाथः	"	"
१५८२	८।६।१८	भग्नः प्रगाथः	"	"
१५८३	८।१०।३।६	मोभरिः काण्वः	अग्निः	"
१५८४	८।१०।३।७	मोभरिः काण्वः	"	"
		( २ )		
१५८५	१।५।१।१९	धुम-सोप आग्नीगतिः	वदणः	गायत्री
१५८६	८।९।३।१९	मुक्ता आगिराः	इन्द्रः	"
१५८७	८।३।५	मेघनातिभिः काण्वः	"	प्रगाथः = ( विषमा बृहती, समा सतीबृहती )
१५८८	८।३।६	मेघनातिभिः काण्वः	"	"
१५८९	१।०।८।१।६	विश्वकर्मा भोवनः	विश्वकर्मा	प्रिलुप्
१५९०	९।११।१।१	अनाततः पारुच्छेभिः	पवमानः सोम	अन्वष्टिः
१५९१	९।११।१।२	अनाततः पारुच्छेभिः	"	"
१५९२	९।११।१।३	अनाततः पारुच्छेभिः	"	"
		( ३ )		
१५९३	६।५।३।१०	भरद्वाजो पार्श्वस्य	सूषा	वायवी
१५९४	१।८।६।८	गोतमो राष्ट्रगणः	मरुतः	"
१५९५	६।१२।९	ऋजिःश्वा भारद्वाजः	विश्वदेवाः	"
१५९६	४।१८।१	वामदेवो गोतमः	छायापुषिबी	"
१५९७	४।१८।२	वामदेवो गोतमः	"	"
१५९८	४।१८।३	वामदेवो गोतमः	"	"
१५९९	१।३।०।४	धुम-सोप आग्नीगतिः	इन्द्रः	"
१६००	१।३।०।५	धुम-सोप आग्नीगतिः	"	"

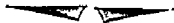
(३०८)

१८०

## सामवेदका सुबोध अनुवाद

उत्तरार्चिक

	वेदस्थान	श्रुति	देवता	छन्दः
	१।३०।३	शुन गेष आजोगति	इन्द्र	गायत्री
	८७०।१२	ह्यत प्रागाय	अग्नि हवीषि वा	"
	१।७९।११	ह्यत प्रागाय	"	"
१६०८	८।७९।१०	ह्यत प्रागाय	"	"
( ४ )				
१६०५	८।४।७	देवातिथि काण्व	इन्द्र	प्रगायः ( विषया बृहती, समा सतो बृहती )
१६०६	८।४।८	देवातिथि काण्व	"	"
१६०७	८।३।३	मेघ्यातिथि काण्व	"	"
१६०८	८।३।४	मेघ्यातिथिः काण्व	"	"
१६०९	८।५।१।९	वालखिल्य ( श्रुष्टिगु काण्व )	"	"
१६१०	८।५।१।१०	वालखिल्य ( श्रुष्टिगु काण्व )	"	"
१६११	९।१०।५।४	पवतनारदो	पयमान सोम	उष्णिक्
१६१२	९।१०।५।५	पवतनारदो	"	"
१६१३	९।१०।५।६	पवतनारदो	"	"
१६१४	९।८।६।४।३	अग्निर्भोम	"	जगती
१६१५	९।८।६।४।४	अग्निर्भोम	"	"
१६१६	९।८।६।४।५	अग्निर्भोम	"	"



## अथ सप्तदशोऽध्यायः ।



अष्टमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ८-१ ॥

[ १ ]

( १-१४ ) १, ७, १४ शुन शेष आजीर्णति, २ मयुन्त्रा संद्वानिव, ३ दापुर्बाहंस्यत्, ( तुषवाणि ) ४ पक्षिणो मंत्रा-  
वर्णि, ५ वामदेवो गेत्स, ६ देनयुन् कान्यपो, ८ नृमेघ आगिरस, ९, ११ गोपृथग्द्वयसूचितनो कान्यवयो, १०  
शुतकस मुक्लो वा आगिरस, १२ विरूप आगिरस, १३ वसस काण्व ॥ १, ३, ७, १२ अग्नि, २, ८-११,  
१३, १४ इन्द्रा, ४ विष्णु, ५ ( १ ) वायु, ५ ( २-३ ) इन्द्रवायु, ६ पवमान सोम ॥ १-३, ७, ९, १०, १२, १३,  
१४ गामग्री, ३, ८ प्रगायन् = ( विघना बृहती, समा सतो बृहती ), ४ त्रिऽपु, ५, ६ अनुऽपु, ११ उणिक् ।

१६१७ विश्वेभिरग्ने अग्निमिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥ १ ॥ ( ऋ १।२६।१० )

१६१८ यच्चिद्धि भ्रमता तना देवदेवं यजामहे । स्वे इन्द्रयते हविः ॥ २ ॥ ( ऋ १।२६।६ )

१६१९ प्रियो नो अस्तु विष्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वप्रयो वयम् ॥ ३ ॥ १ ( ही ) ॥  
[ धा० ११ ] उ० नास्ति । ए० ४ ] ( ऋ १।२६।७ )

१६२० इन्द्रं वो विश्वतरपरि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥ ( ऋ १।७।० )

१६२१ स नो वृषन्नम्रे चरुं सत्रादावन्नाप शुचि । अस्मभ्यमप्रतिभुक्तः ॥ २ ॥ ( ऋ १।७।६ )

[ १ ] प्रथम खण्डः ।

[ १६१७ ] हे ( सहस्रः यहो ) वलके पुत्र ! ( विश्वेभिः अग्निभिः ) सब अग्निभोजके साथ तू ( इमं वस ) इत  
वसनें वा ओर ( इदं वचः ) यह स्तुति तुन ओर ( चनः धा ) हमें अन्न दे ॥ १ ॥

[ १६१८ ] । पत् चित् द्वि ) यद्यपि ( शश्वता सना ) निश और विस्तृत हवि अन्न करके ( द्वेष द्वेष यज्ञा-  
महे ) प्रत्येक देवताके लिए हम यजन करते हैं, तो भी ( हविः त्वे इत् हयते ) हवि तुझमें ही जो जानो है ॥ २ ॥

[ १६१९ ] ( विष्पतिः होता ) प्रजाभोजका पालक हुवन करनेवाला ( मन्द्रः वरेण्यः ) आनन्द वरदानेवाला शब्द  
अग्नि ( नाः प्रियः अस्तु ) हमें प्रिय हो, तथा ( स्वप्रयः वयं प्रियाः ) उत्तम रीतिसे अग्निदेो रखनवाले हम उय अग्निके  
प्रिय हों ॥ ३ ॥

[ १६२० ] हे ऋषियज्ञो ! ( विश्वतः जनेभ्यः परि ) सब लोगोंमें श्रेष्ठ ऐसे ( इन्द्रं च हवामहे ) इन्द्रकी तुम  
सभके हितके लिए हम बुलाते हैं, यह इन्द्र ( अस्माकं केवलः अस्तु ) सिर्फ हम ही को अधिक लाभ देनेवाला होवे ॥ १ ॥

[ १६२१ ] हे ( सना-दावन् वृषन् ) एकवचन सब कल देनेवाले और बलवान् इन्द्र ! ( स ) यह तू ( नः अनु-  
चरं अपावृषि ) हमारे लिए इस सत्र सत्रकी शोकार कर और ( अस्मभ्यः अप्रतिभुक्तः ) हमारा प्रतीकार करनेवाला  
बल हो ॥ २ ॥

- १६२२ वृषा यूथेन वत्सराः कृष्टीरियत्सोऽजसा । ईशानो अप्रतिष्कृतः ॥ ३ ॥ २ ( र ) ॥  
[ धा० ट । उ० नास्ति । २०० १ ] ( ऋ १।७।८ )
- १६२३ त्व नश्चित्र ऊन्या वसा राधा वसि चोदय ।  
अस्य रायस्त्वमग्रे रथीरसि विदा गाधं तुच तु नः ॥ १ ॥ ( ऋ ६।४।९ )
- १६२४ पर्षि तोक तनय पर्तुमिष्टमदधैरप्रपुस्वभिः ।  
अम हडा वसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरा वमि च ॥ २ ॥ ३ ( की ) ॥  
[ धा० १ । उ० १ । २०० ४ ] ( ऋ ६।४।१० )
- १६२५ किमिच्छे विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्वक्त्रे शिपिविष्टो असि ।  
मा वषो अस्मदप गृह एतद्यदन्यरूपः समिधे बभूथ ॥ १ ॥ ( ऋ ७।१०।६ )
- १६२६ प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हृद्यमयैः श वसामि वयुनानि विद्वान् ।  
त स्वा गृणामि त्वसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ २ ॥ ( ऋ ७।१०।६ )

[ १६२२ ] ( ईशान अप्रतिष्कृत ) सबका ईश्वर और हमारा नियम न करनेवाला तथा ( वृषा ) बलवान् इन्द्र ( अजसा कृष्टी द्यति ) अपने बलसे अनुग्रह करनेके लिए मनुष्योंके पास जाता है ( वत्सरा यूथा इव ) जैसे बल गाधोंके श्रुद्धमें जाता है ॥ ३ ॥

[ १६२३ ] हे ( वसो ) निवासक अग्न ! ( चित्र त्व ) सुन्दर वज्रनीय एसा तू ( ऊन्या राधावसि न चोदय ) रक्षणसे युक्त धन हमें दे । हे ( अग्रे ) अग्न ! ( त्व अस्य राय रथी असि ) तू इन धनोंको रपते के जानेवाला है । ( न तुचे गाध तु विद ) हमारे युवोंको प्रतिष्ठाका स्थान प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ १६२४ ] हे ( अग्ने ) अग्न ! ( त्व ) तू ( अ प्रयुत्सुभि ) अविरोधी भावनाओंसे युक्त और ( अ दृद्य ) क्लेशोंके द्वारा न दवाये जानबाल ( पर्तुमि ) सरक्षणके साधनोंके द्वारा ( तोक तनय पर्षि ) हमारे पुत्र और पौत्रोंका पालन कर । ( दैव्या हेडासि न युयोधि ) देवोंके क्रोधको हमसे दूर कर । ( अ देवानि हडासि च ) मनुष्यों और राक्षसोंके क्रोधको भी हमसे दूर रख ।

[ १६२५ ] हे ( विष्णो ) व्यापक देव ! ( ते तत् नाम ) वह तेरा नाम ( किं परिचक्षि ) क्या प्रसिद्ध होने योग्य है ? ( यत् नाम ) जो नाम ( शिपिविष्ट असि इति प्र यद्वक्त्रे ) किरणोंसे व्याप्त में हूँ ऐसा अर्थ दिलाता है । इसलिए ( एतद् यपे अस्मद् मा अपगृह ) यह रूप हमसे दूर मत कर ( यत् ) क्योंकि ( समिधे ) संग्राममें ( अन्यरूप इत् ) दूसरा रूप धारण करके ही तू हमारा सहायक ( यभूत् ) होता है ॥ १ ॥

[ १६२६ ] हे ( शिपिविष्ट ) किरणोंसे व्याप्त हुए विष्णु ! ( ते हृद्य तद् ) तेरे उत पूजनिय नामको ( अयं वयुनानि विद्वान् ) अर्थ और सब कर्मोंको जानबाला विद्वान् म ( अद्य प्रशस्तामि ) आज प्रशंसा करता हूँ । ( त त्वस ) उत बलवान् तथा । ( अस्य रजस पराके क्षयन्त ) इस रजसोंकोते दूर रहनेवाले ( स्वा ) तेरा ( अ-तव्यान् ) छोटा भाई म ( गृणामि ) तेरी स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

१६२७ वपद् ते विष्णवांस आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरौ मे यूर्यं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ४ ( ते ) ॥

[ धा० ४४ । उ० १ । २७० ७ ] ( ऋ. ७।१००।७ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१६२८ वायो शुक्रा अयामि ते मध्वा अग्रं दिविष्टिषु ।

आ याहि सोमपीतये स्वाहो देव नियुत्वता ॥ १ ॥ ( ऋ ४।४७।१ )

१६२९ इन्द्रश्च वायवेषांसोमानां पीतिमर्हथाः ।

युवाश्हि यन्तीन्दवो निश्रमायो न सध्वक् ॥ २ ॥ ( ऋ ४।४७।२ )

१६३० वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथश्चवसस्पती ।

नियुत्वन्ता न ऊतये आ यातश्सोमपीतये ॥ ३ ॥ ५ ( ता ) ॥

[ धा० १९ । उ० १ । २७० २ ] ( ऋ. ४।४७।३ )

[ १६२७ ] हे ( विष्णो ) विष्णुदेव । ( ते आसः आ ) तेरे मुहके पास आकर ( वपद् कृणोमि ) वपद्कार-  
पूर्वक हृद्य वदायीका में हवन करता हूँ । हे ( शिपिविष्ट ) विरणीति व्याप्त हुए हुए देव । ( ताम् मे हव्यं जुषस्व ) तू  
मेरी उम हविशो स्वीकार कर । ( सुष्टुतयः मे गिरः ) उत्तम स्तुति करनेवाली मेरी वागिणी ( त्वा वर्धन्तु ) तेरी महिमा  
बढ़ाये । हे विष्णो ! ( यूर्यं ) तेरे साथ सब वेवता ( स्वस्तिभिः न सदा पात ) कल्याण करनेवाली शक्तियोंसे हमारी  
रक्षा करे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १६२८ ] हे ( वायो ) वायो ! ( शुक्रः ) निर्दोष मं ( दिविष्टिषु ) यज्ञमें ( ते ) तुम ( मध्वः ) सोमरस  
( अग्रं अयामि ) शमते प्रथम अर्धव करता हूँ । हे ( देव ) देव ! ( स्वाहोः ) प्रसन्ननीय ऐसा तू ( नियुत्वता ) निज  
मानक घोड़ेसे ( सोमपीतये आ याहि ) सोमपान करनेके लिए आ ॥ १ ॥

[ १६२९ ] हे ( वायो ) वायु ! तू ( इन्द्रः च ) और इन्द्र ( एषां सोमानां पीति मर्हथाः ) दोनों इस सोमके  
पीनेके योग्य हो । ( हि ) इत्थीलिये ( निश्रं आयः न ) निश्रमकार गोषेकी तरफ बालीका प्रवाह बहता है, उत्तमकार  
( सध्वक् ) एवम ( युवां इन्द्रयः यन्ति ) तुम्हारे पास सोमके प्रवाह जाते हैं ॥ २ ॥

[ १६३० ] हे ( वायो ) वायु ! तू ( इन्द्रः च ) और इन्द्र ( वायसः पती ) यज्ञके स्वामी और ( शुष्मिणा )  
बलवान् हो । ( नियुत्वन्ता ) निज मानक घोड़े रखनेवाले तुम दोनों ( नः ऊतये ) हमारे रक्षणके लिए और ( सोम-  
पीतये ) सोम पीनेके लिए ( सरथं आपातं ) एक पयसे आओ ॥ ३ ॥

- १६३१ अध क्षया परिष्कृता वाजा<sup>१</sup>अभि प्र गाहसे ।  
यदी विवस्वतो वियो हरि<sup>२</sup>हिन्वन्ति याववे ॥ १ ॥ ( ऋ १।९९।२ )
- १६३२ तमस्य मज्जयामसि मदा य इन्द्रपातमः ।  
यं गाव आसमिदेषुः पुरा नूनं च सूरयः ॥ २ ॥ ( ऋ १।९९।३ )
- १६३३ तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूयत ।  
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम विभ्रतीः ॥ ३ ॥ ६ ( छु ) ॥  
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ऋ १।९९।४ )
- १६३४ अर्धं न त्या वारवन्तं वन्द्या अपि नमोभिः । सभ्राजन्तमश्वराणाम् ॥ १ ॥  
( ऋ. १।९७।१ )
- १६३५ स पा नः सुसुः श्वसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मोढ्वा<sup>१</sup>अस्माकं वभूषात् ॥ २ ॥  
( ऋ. १।९७।२ )
- १६३६ स नो दूराबासाच नि मर्यादायोः । पाहि सदाभिद्विष्यायुः ॥ ३ ॥ ७ ( टि ) ॥  
[ धा० १३ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।९७।३ )

[ १६३१ ] ( क्षया अध ) रात बीत जाने पर प्रातः काल ( परिष्कृत- ) जलका मिश्रण करके मोक्षयमान हुआ सोम सेव्यार होता है, ऐसा हे सोम ! तू ( याजान् अभि प्रगाहसे ) अन्नको ओर जाता है । ( वियस्वतः धियः ) सस्कार करनेवालोंकी अगुन्या ( हरिं यातवे ) हरे रगके सोमको कलझने जानेके लिए ( यदि हिन्वन्ति ) जब प्रेरणा करती है, तब तू सभ्रजन्त होता है ॥ १ ॥

[ १६३२ ] ( अस्य तं मज्जयामसि ) इस सोमके उस रसको हम छाते हैं । ( यः मद्- इन्द्रपातमः ) जो भाग्य बढानेवाला सोमरस इन्द्रके पीनेके योग्य है । ( यं सूरयः पुरा च नूनं ) जिस सोमरसको विद्वान् सोम पहले ओर अब भी पीते हैं । ( गावः आसमिः दुषुः ) गावें अपने सुहृते उस सोमका भक्षण करती हैं ॥ २ ॥

[ १६३३ ] ( पुनानं ) छाने जानेवाले सोमको ( पुराण्या गाथया अभ्यनूयत ) पुनाने स्तोत्रते स्तुति की जाती है । ( उत उ ) और ( नाम विभ्रतीः धीतयो ) हविको धारण करनेवाली अगुन्या ( देवानां कृपन्त ) बेबेकिए लिए सोम अर्पण करनेमें समर्थ होती हैं ॥ ३ ॥

[ १६३४ ] ( अभ्यराणां सभ्राजन्तं श्वा अपि ) यहाँके सभ्राट् शुभ अग्निको ( नमोभिः धम्प्यै ) हवि अर्पण करके हम नमस्कार करते हैं ( वारवन्तं अर्धं न ) जिसप्रकार आवाकवाले घोड़ेने उस पर बैठनेवाले भ्रम करते हैं ॥ ४ ॥

[ १६३५ ] ( सः च नः सुशेवः ) वह अग्नि हमारे द्वारा उत्तम रीतिसे रोहित होता है । ( श्वसा सुसुं पृथुप्रगामा ) वह बभ्रका पुत्र सोमर गमन करनेवाला अग्नि ( अस्माकं मीद्वान् वभूषात् ) हवें शुभ देनेवाला हो ॥ २ ॥

[ १६३६ ] हे अग्नि ! ( विध्यायुः ) सब मनुष्योंका हित करनेवाला तू ( दूरात् च आसात् च ) दूरसे और पाससे ( भ्रमायोः मर्यादां ) पानी मनुष्योति ( नः सद्दं इत् निपाहि ) हमारी हविया रस कर ॥ ३ ॥

१६३७ त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वाभि विश्वा असि स्पृघः ।

अश्वस्तिहा जनिता घृत्रतरसि त्वं तूर्यं वरुण्यतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१९।१ )

१६३८ अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीपतुः क्षोणीं शिशुं न मातरा ।

विश्वास्ते स्पृघः श्रययन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वासि ॥ २ ॥ ८ ( टा ) ॥

[ धा० १८। उ० १। ख० २ ] ( ऋ. ८।१९।६ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१६३९ यज्ञ इन्द्रमवर्षयद्यद्धूमिं ज्यवर्तयत् । चक्राण ओषधं दिवि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१९।९ )

१६४० व्यरेन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१९।६ )

१६४१ उद्गा आजदक्षिरोम्य आविष्कृष्वन्गुहा सतीः । अवांश्चं जुनुदे वलम् ॥ ३ ॥ ९ ( पी ) ॥

[ धा० २०। उ० १। ख० ४ ] ( ऋ. ८।१९।८ )

१६४२ त्यस्य वः सत्रासाहं विश्वासु मीष्वायतम् । आ ज्यवयस्यूतये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१९।१० )

[ १६३७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( प्रतूर्तिषु ) पृथ्वीमें ( विश्वाः स्पृघः अभि आसि ) सब स्पर्श करनवाले धनुषोंको हराता है । हे ( तूर्यं ) धनुषोंको शीघ्र हो दूर करनेवाले इन्द्र ! ( त्वं अ-शस्तिहा ) तू विपत्तियोंको दूर करनेवाला ( जनिता ) सम्पत्तियोंका उत्पादक और ( घृत्र-तुः ) धनुषोंका नाश करनेवाला तथा ( वरुण्यतः ) व्याप्य करनेवालोंको दूर करनेवाला है ॥ १ ॥

[ १६३८ ] हे इन्द्र ! ( तुरयन्तं ते शुष्मं ) धनुषा नाश करनेवाले तेरे मत हैं । ( क्षोणीं ) घाघणुषियों लोक ( मातरा शिशुं न ) जिसप्रकार मातापिता अपने बच्चोंको पोषे करते हैं, उसीप्रकार तेरे पोषे करते हैं । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् वृत्रं तूर्वासि ) जब तू वृत्रका वध करता है, इस कारण ( ते मन्यवे ) तेरे शीपके आगे ( विश्वाः स्पृघः ) सब मुक्तावला करनेवाले शयु ( श्रययन्त ) डोलते दण्ड जाते हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १६३९ ] ( यज्ञः इन्द्रं अवर्षयत् ) यज्ञ इन्द्रको यज्ञता है, इसका कारण ( यत् ) वह है कि वह ( दिवि ओषधं चक्राणः ) अन्तरिक्षमें भेदको छिटा देता है और उतकी बदमासते ( धूमिं ज्यवर्तयत् ) धूमिको पोषण करनेवाली बनाता है ॥ १ ॥

[ १६४० ] ( सोमस्य मदे ) सोमपान करके हर्षित होनेके बाद ( इन्द्रः ) इन्द्र ( रोचना अन्तरिक्षं ) तेजस्वी अन्तरिक्षको ( वि आतिरन् ) विशीव तेजस्वी करता है ( यत् ) क्योंकि वह ( चले अभिनत् ) धारकोंको पारता है ॥ २ ॥

[ १६४१ ] ( गुहा सतीः ) गुहामें गुप्त रही हुई ( गाः ) गायोंको इन्द्र ( आविष्कृष्वन् ) बाहर लाता है और ( अंगिरोम्यः उद्गाजत् ) अंगिरा ऋषियोंको वह देता है, और ( चले अवांश्चं जुनुदे ) जब गायोंको पुराणर ले जानेवाले पत्तानुत्की मीचे मुह करके भागना पड़ता है ॥ ३ ॥

[ १६४२ ] ( सत्रा-साहं ) अनेक धनुषोंको हरा देनेवाले ( यः विश्वासु मीष्वायतं ) धनुषारे सब स्तोत्रोंमें वर्णित ( त्वं उ ) उस इन्द्रको ( उतये ) हमारे संरक्षणके लिए ( आप्यावयसिति ) हमारे पास आने के ॥ १ ॥



- १६४३ सुधमश्सन्तमनर्वाणश्सोमपामनपच्युतम् । नरमवाथेऋतुम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९।८ )
- १६४४ शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाश्ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥ ३ ॥ १० ( ता ) ॥  
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।९।९ )
- १६४५ तव त्यदिन्द्रियं बृहच्चव दक्षस्रुत क्रतुम् । वज्रश्शिक्षाति विषणा वरेष्यम् ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।९।१० )
- १६४६ तव द्यौरिन्द्र पौश्स्स्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च द्विन्विरे ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।९।११ )
- १६४७ त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।  
त्वां च द्वां मदत्यनु माहृतम् ॥ ३ ॥ ११ ( ठी ) ॥  
[ धा० ११ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९।१२ )

॥ इति तृतीय खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

- १६४८ नमस्ते अग्र ओजसे गृणन्ति देव ऋष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।१० )
- १६४९ कुविरसु नो गविरष्टयेऽग्रे संवेपिपो रयिम् । उरुक्रदुरु णस्कृधि ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१०।११ )

[ १६४३ ] ( सुधम सन्तं ) बृह करनेवाले होनेपर भी ( अनर्वाण ) कभी न हारनेवाले ( अनपच्युतं सोमपां ) न दबनेवाले और सोम पीनवाले ( अशार्प्यं क्रतुं नर ) जिसका कार्यक्रम कोई बवल नहीं सकता, ऐसे नेता इन्द्रको सहायताके लिए हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ १६४४ ] ( ऋचीषम इन्द्र ) हे धर्माधीन इन्द्र ! ( विद्वान् ) सब कुछ जाननेवाला तू ( राय आ ) धन लेकर ( नः पुरु शिक्षा ) हमें बड़े बड़त दे । ( पार्ये धने न अय ) शत्रूके पासते धन साकर उससे हमारा संरक्षण कर ॥ ३ ॥

[ १६४५ ] हे इन्द्र ! तेरी ( विषणा ) मुट्टि ( तव स्यन् बृहच्च इन्द्रियं ) तेरे जग महान् बलको, ( तव वज्रं ) तेरी बलताको ( उत क्रतुं ) और तेरे पराक्रमको और ( वरेष्यं वज्रं ) तेरे श्रेष्ठ बलको ( शिक्षाति ) तोषण करती है ॥ १ ॥

[ १६४६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( पौः तव पौश्स्यं ) तुमको तेरे पीरवकी ( पृथिवी श्रवः वर्धति ) और पृथ्वी तेरे धनको बढ़ाती है । ( त्वां आपः ) तेरे पास जलप्रवाह और ( पर्वतासः च ) पर्वत ( द्विन्विरे ) तुमसे त्वामो मानकर आते हैं ॥ २ ॥

[ १६४७ ] हे इन्द्र ! ( बृहत् क्षयः ) महान् धर देनेवाला कह करके ( विष्णुः मित्रः वरुणः ) विष्णु मित्र और वरुण ( त्वां गृणाति ) तेरी स्तुति करते हैं । ( माहृतं द्वां ) महर्तोका बल ( त्वां अनुमदाति ) तुमने आत्मधित करता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थ खण्डः ।

[ १६४८ ] हे ( अग्रो देव ) अग्र देव ! ( ऋष्टयः ) धर करनेवाले लोग ( ओजसे ते नमः गृणन्ति ) बल प्राप्त करनेके लिए तुमो नमस्कार करते तेरी स्तुति करते हैं । ( अमैः अमित्रं अर्दय ) अपने बलसे तू शत्रुओंका नाश कर ॥ १ ॥

[ १६४९ ] हे ( अग्रो ) अग्र ! ( नः गविरष्टये ) हमें धार्ये मिले इनलिए तू ( कुविरसु रयि संवेपिपि ) बड़त साथ धन हमें दे । ( उरुक्रदुर् ) महिमा धरनेवाला तू ( नः उरु कृधि ) हमें महान् कर ॥ २ ॥

- १६५० मा नो अग्ने महाधने परा वर्गारभृद्यथा । संवर्गैश्च स५ रथि जय ॥ ३ ॥ १२ (प) ॥  
 [ धा० १५ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।७५।१२ )
- १६५१ समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रापेव सिन्धवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।४ )
- १६५२ वि चिद्दुश्च्य दोषतः शिरो विमेद वृष्णिना । वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६।६ )
- १६५३ आजस्तदस्य तित्विप उमे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्मर्वे रोदसी ॥ ३ ॥ १३ (ती) ॥  
 [ धा० १४ । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ८।६।५ )
- १६५४ सुमन्मा वस्वी रन्ती स्मरी ॥ १ ॥
- १६५५ सरूप वृषन्ना गहीनी भद्रौ धुर्योवभि । तामिमा उप सर्पतः ॥ २ ॥
- १६५६ नीव श्रीर्पाणि मृद्वं मध्य आपस्य तिष्ठति । शुक्रेभिर्दद्याभिर्दिशन् ॥ ३ ॥ १४ (वि) ॥  
 [ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १ ]

॥ इति चतुर्थं खण्ड ॥ ४ ॥

॥ इत्यष्टम-प्रपाठकस्य प्रथमोऽर्थः ॥ ८-१ ॥

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

[ १६५० ] हे (अग्ने) अग्ने ! (मः महाधने) हमें समानमें (मा परावर्गैः) दूर मत कर । (यथा भारभृद्य) जिसप्रकार थीस होनेवाला भार पहचाना है, उसीप्रकार (संवर्गै रथि रीजय) एकत्र किए गये धन जीत कर ला, और उन्हें हर्ष दे ॥ ३ ॥

[ १६५१ ] ( विश्वाः विश्वाः कृष्टयः ) सब प्रजाजन (अस्य मन्यवे) इस इन्द्रके शोचके आगे (सं नमन्त) शुक कर रहते हैं, (समुद्रापेव सिन्धवः न) समुद्रके आगे जैसे नवियां झुकती हैं ॥ १ ॥

[ १६५२ ] (दोषतः शिरो विमेद) जगको कवनेवाले वृषके विरको (वृष्णिना) बलवान् इन्द्रने (शत-पर्वणा) वज्रेण वि विमेद) संकष्टों धारवाले बचते शीघ्र डाला ॥ २ ॥

[ १६५३ ] (अस्य तत् ओजः तित्विपे) इसका यह सामर्थ्य चमकने लग गया । (यत् इन्द्रः) जिस बलके इन्द्रने (उमे रोदसी) बीनों भूलोक और पुनलोकों (शर्म इव स्वमवर्तयत्) चमकके समान रूपकर अपने आपोप किया है ॥ ३ ॥

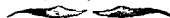
[ १६५४ ] हे इन्द्र ! तेरे घोड़े (सुमन्मा वस्वी) उत्तम समझावर और धनपुत्र हैं, तथा ये । रन्ती स्मरी) रत्नपीप और गुन्वर भी हैं ॥ १ ॥

[ १६५५ ] हे (सरूप वृषन्ना) वृषण और बलवान् कर । (भद्रौ इमौ धुर्यौ) उत्तम कववाण करनेवाले इस रथमें जोड़ेगानेवाले दोनों घोड़ोंको जोड़कर (अभि आगदि) हमारे यत्ने आ । (ती इमौ उप सर्पतः) तेरे वे दोनों घोड़े तेरी उत्तम सेवा करते हैं ॥ २ ॥

[ १६५६ ] हे ऋषियगो ! (दशभिः शुक्रेभिः) दशों अशुक्रियोंने (इव दिशन्) हमारे पहले हुए यत्नको देना हुआ इन्द्र (आपस्य मध्ये तिष्ठति) हमारे यत्नमें लडा हुआ है । (श्रीर्पाणि नि मृद्वं) अपने भिर गुनाकर उते देखो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥



## सप्तदश अध्याय

इत अग्न्यामने इन्द्र, अग्नि, विष्णु, वायु और सोम इन पांच देवताओंका वर्णन है । उनमें इन्द्रका वर्णन बड़ा है, इस-लिए उसे पहले देलें—

इन्द्र

१ विश्वतः जनेभ्यः परि इन्द्रं हवामहे [ १६२० ]—सब लोगोंको अपेक्षा श्रेष्ठ इन्द्रको तुम सबोंके हितके लिए हम बुलाते हैं ।

२ अस्माकं केवलः अस्तु [ १६२० ]— इन्द्र तिरफं हमें ही अधिक लाभ देनेवाला हो ।

३ सत्रा-दावन् वृषम् । सः नः अमुं स्रतं अवावृषधि, अस्मभ्यं अग्रतिष्कृत [ १६२१ ]— हे एक साप फाल देनेवाले बलवान् इन्द्र ! वह तू हमारे भद्रोंको खोशकार कर, हमसे बदला न ले, अगितु हमारा सहायक हो ।

४ ईशान अग्रतिष्कृतः पृषा ओजसा हृष्टीः इयति चंसगः यूया द्य [ १६२२ ]— सर्वोंका स्वामी, हमारे विरुद्ध कार्य न करनेवाला बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे उपकार करनेके लिए मनुष्योंके पास आता है, जैसे कि बेल गुच्छमें जाता है ।

५ हे इन्द्र ! प्रवृत्तिसु विश्वा स्तृष्यः अग्नि अस्ति [ १६३७ ]— हे इन्द्र ! तू मुझमें सब मुक्ताबला करनेवाले शत्रुओंको हराता है ।

६ हे त्वर्यं । त्व अशस्ति-हा, जनिता वृषद् तरुष्यतः अस्ति [ १६३७ ]— गीम्रतसे शत्रुओंको दूर करनेवाले हे इन्द्र ! तू विपत्तियोंको दूर करनेवाला, सम्पत्ति-यो-का निर्माता, शत्रुओंका नाश करनेवाला बाधा उलटनेवाले शत्रुओंको दूर करनेवाला है ।

७ तुरयन्त ते शुभ्रं [ १६३८ ]— शत्रुओंको नष्ट करनेवाले तेरे सामर्थ्य हैं ।

८ यत् वृष्यं त्वर्यमि, ते मन्स्ये विश्वाः स्तृष्य-आपयन्त [ १६३८ ]— हे इन्द्र ! जब तू वृषका वध करता है, तब तेरे क्रोधके आगे सब स्वर्ण करनेवाले शत्रु ढीले पड़ जाते हैं ।

९ यत् पलं अग्निनात्, इन्द्रः रोचना अग्निरिहं वि आतेरत् [ १६४० ]— इन्द्रने जब बलायुरको फाटा, तब उसने तेजस्वी अग्निरिहकी ओर अधिक तेजस्वी बनाया ।

१० गुहा खती गाः आचिष्कृण्वन् अंगिरोभ्य उदाजत् । अर्वाचं पलं जुनुवे [ १६४१ ] गुफामें छिपाकर रखी गई गायोंको इन्द्रने निकाला और अगिरा ऋषियोंको वे गायें दीं । तब उन गायोंको चुराकर ले जानेवाले बल राखसको मोधे धुह करके भागना पड़ा ।

११ सत्रासाहं वः विश्वात्सु गीषु आयतं त्यं ऊतये आच्यायपसि [ १६४२ ]— अनेक शत्रुओंको एक साथ हरानेवाले तथा तुम्हारे सभी शत्रुओंमें बगिना उस इन्द्रको अपने सरक्षणके लिए हम अपने पास बुलाते हैं ।

१२ युष्मं सन्ते अनवर्षाणि अनपच्युतं अवार्थकतुं नरं [ १६४३ ]— युद्ध करनेवाले, पर कभी भी न हारनेवाले, कित्तीकी भी भागे न हुकनेवाले, जिसका कार्यक्रम कोई बदल नहीं सकता ऐसे नेता इन्द्रको सरक्षणके लिए हम अपने पास बुलाते हैं ।

१३ हे ऋषीषिम इन्द्र ! विद्वान् रायः आ नः पुन शिष्य, पार्थे धने नः अय [ १६४४ ]— हे सर्वोत्तम इन्द्र ! तब जाननेवाला तू पन लेकर आ और हमें बहुत सारा धन दे । शत्रुके पासते पन लेकर उनसे हमारा सरक्षण कर ।

१४ पिपणा तव वृहत् इन्द्रियं वृक्षं कतुं घरेण्यं पञ्च शिशाति [ १६४५ ]— तेरी बुद्धि तेरे महान् बल, दक्षता, पराक्रम और श्रेष्ठ बल्लकी तीक्ष्ण करती है ।

१५ घौं तव पास्यं, पृथिवी अयः धर्षति [ १६४६ ]— तुलोक तेरे पीपको और पृथ्वी तेरे धरतीको बढ़ाती है ।

१६ वृहत् क्षयः गुणाति [ १६४७ ]— तू नहान् आश्रय देनेवाला है, इसलिये तेरी स्तुति होती है ।

१७ विश्वाः हृष्टयः विशः अस्य मन्स्ये सं नमन्त [ १६४१ ]— सारी प्रजायें इसके क्रोधके आगे मुकती हैं ।

१८ द्रोघतः वृषस्य शिरः शृष्णिना शतपर्वणा वजेण विभेद् [ १६४२ ]— सब जयत्की कफनेवाले वृषका शिर इन्द्रने बलवृषत तथा हनारों पारवाले बज्रसे काट डाला ।

१९ अस्य योजः तितिवये [ १६४३ ]— इत इन्द्रका सामर्थ्य बलके लय गया ।

२० सुमन्ना घस्वी रन्ती स्तरी [ १६४४ ]— हे इन्द्र ! तेरे शीर्षी मोधे बहृण ममसवार, घनवृषत, रमणीय और मुरर हैं ।

२१ सरुप घृणम् । भद्रं इमो धुर्यां, तां इमौ उप-  
सर्षतः, अभि आमाहे [१६५५]- हे सुलभ और बलवान्  
इन्द्र । ये उत्तम कल्याण करनेवाले दोनों घोड़े रथमें जोड़-  
कर उत्तम प्रकारसे आगे धाते हैं । उन्हें जोड़कर हमारे  
पथमें ला ।

२२ दशभिः श्रुंगेभिः दिशन् आपस्यमध्ये तिष्ठति,  
श्रीर्गीष्णि नि मृद्वयं [१६५६]- बत्तों अगुलियोंसे घन देता  
हुआ ह्मारे पथमें इन्द्र लडा हुआ है । अपने तिर मुकाकर  
उसे वेधो !

इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है, उससे बढ़कर सामर्थ्यवान् दूसरा कोई  
नहीं । वह हमारे सहोपगत करनेवाला है । वह एक ही साथ  
शत्रुओंको हराता है । वह हमारे द्वारा दिए गए अन्नको  
स्वीकार करके हमपर प्रसन्न हो । वह कभी भी व हारनेवाला  
इन्द्र पथमें हमारे पीछेमें आकर बैठे । पृथक् वह सब शत्रुओंको  
हराये । इन्द्र सब विपत्तियोंको दूर करनेवाला, सम्पत्ति उत्पन्न  
करनेवाला और शत्रुओंको दूर करनेवाला है ।

जब इन्द्र वृत्रको मारता है, उस समय सब शत्रु डीले पड़  
जाते हैं । जब भक्त राक्षसको उसने मारा तब अन्तरिक्षमें  
महान् प्रकाश पैदा हुआ । यज्ञमें गार्ग्योंको धुराकर मुकामें  
बान्ध कर दिया था । इन्द्रने उस मुकामको फोड़कर उन गार्ग्योंको  
बाहर निकाला तथा उन्हें अंधिरा श्रवणियोंको दे दी ।

वह सब शत्रुओंको एकदम हराता है ऐसा वह इन्द्र है ।  
उसको कोई भी नहीं हरा सकता और उसके कर्मफलमें कोई  
भी कंठ बचल नहीं कर सकता । इन्द्र शत्रुओंसे पन छीनकर  
हमें बांटता है । उसका सामर्थ्य बल, पौरुष इत्यादि सब  
सम्पूर्ण युक्त हैं । सब लोग उसके आगे तिर झुकते हैं । वृत्रने  
सब जगत्की भयभीत किया, पर यन्तमें इन्द्रने वृत्रको मार  
डाला । इस कारण इन्द्रका तेज सब जगह फँल गया ।

इन्द्रके दो घोड़े रथमें जोड़े जानेके लिए हैं । वे घोड़े उत्तम  
तुर्गिभित्त, समसवार, बहुत और देखनेमें सुन्दर हैं । उन्हें  
रथमें जोड़कर वह यज्ञके स्थान पर जाता है ।

### अग्नि

१ इतिः एये इत् ह्येत्ये [ १६१८ ]- हे अग्ने ! तुसमें  
हृदिर्गंधोका हवन किया जाता है ।

२ देवं देवं यजामहे [ १६१८ ]- प्रायक देवके लिए  
हम यज्ञ करते हैं ।

३ विश्वपतिः होता मन्द्रः वरेण्यः नः प्रियः अस्तु,  
स्वस्यः पर्व मिथाः [ १६१९ ]- प्रजापालक, नित्यमें हवन

होता है ऐसा मन्त्र देनेवाला श्रेष्ठ अग्नि हर्ष प्रिय हो और  
उत्तम रीतिसे अग्निको रखनेवाले हृष उत्तमस्विकके प्रिय हों ।  
अग्नि " विश्व-पतिः " प्रजापतिका पालन करनेवाला  
है, उन्हें गोरोपी बनाता है ।

४ हे यज्ञो ! विश्वः त्वं उत्स्य राधांसि नः चोद्व्य  
[ १६२३ ]- हे निवृत्तक माने ! तू बिलक्षण शक्तिवाला  
है, हमारी रक्षा कर और उसके साथ घन भी हमारे पास  
भेज ।

५ हे अग्ने ! त्वं अथ रायः रथीः अस्ति [ १६२३ ]-  
हे अग्ने ! तू इन यनोंको रथसे ले जानेवाला है ।

६ नः तुचे माधे विदः [ १६२३ ]- हमारे पुत्रपौत्रोंको  
प्रतिष्ठाका स्थान मिले ।

७ हे अग्ने ! त्वं अग्रयुज्यभिः अद्वयैः पत्नीभिः  
तोर्कं तनयं परिं [ १६२४ ]- हे अग्ने ! तू अग्रियोंको  
भाषणोंसे युक्त और नित्यसे ग वचनेवाला अपने संरक्षणके  
साधनेसे हमारे पुत्रपौत्रोंका पालन कर ।

८ देव्या हेडांसि नः युवोधि [ १६२४ ]- देवीप्रकोपों-  
को हमसे दूर कर ।

९ अदेवानि वृर्तांसि च [ १६२४ ]- मनुष्यों और  
राक्षसोंके क्रोधोंको भी हमसे दूर कर ।

१० अघ्यराणां सज्जानन्तं त्वा अर्षिं नमोभिः  
वन्द्यै [ १६२४ ]- यज्ञके सज्जान् सुम अग्निको हविष्यात्  
अर्पित करके वन्दन करते हैं ।

११ नः सुबोधः शयता सूनुः पुषुप्रगामा, अस्माकं  
मीद्वयान् भूयात् [ १६२५ ]- वह अग्नि हमारे द्वारा उत्तम  
रीतिसे सेवित होता है । वह बलका पुत्र, बहुत प्रगति करने-  
वाला हमें बहुत सुख देनेवाला होवे ।

१२ हं अग्ने ! विश्वयुः दृत्वात् व्यासात् च अघापोः  
मर्त्यात् नः खवे इत् परिहे [ १६२६ ]- हे अग्ने ! सब  
मनुष्योंका हित करनेवाला तू दूरके और पासके पापों मनुष्योंसे  
हमारी रक्षा हमेशा कर ।

१३ हे अग्ने देव ! कुष्टयः ओजसेते नमः रणन्ति ।  
अग्नेः अग्निर्गन् अद्वयै [ १६४८ ]- हे अग्नि देव ! तब प्रजापे  
बल प्राप्त करनेके लिए ममत्कार करनेके तेरी स्तुति करती  
हैं । अपने यज्ञसे तू शत्रुओंका नाश कर ।

१४ हे अग्ने ! गविष्टये कुवित् सुरार्थिं संवेणियः ।  
उरुद्वत् । नः उरु रुधि [ १६४९ ]- हे अग्ने ! हमें गाय  
मिले इतना लिए हमें बहुत पन दे । हे बहुत कार्य करनेवाले  
अग्ने ! तू हमें महान् कर ।

१५ हे अग्ने ! नः महाधमे मा परावर्ह । संसर्गं ह्यर्थं संजय [ १५५० ]- हे अग्ने ! हमें संप्रामर्श दूर मत कर । हकटके लिए हुए धन जीत कर ल ।

अग्निमें हविर्द्वयोका हवन ऋतुके अनुसार किया जाता है, इस कारण वायु आदि देव प्रसन्न होते हैं । यह अग्नि प्रजाका वासन उत्तम रीतिसे करनेवाला है । अतः लोगोंको ऋतुके अनुसार यज्ञ करने अग्निको प्रसन्न करना चाहिए । यह अग्नि सब रोगबीजोंको दूर करता है और सब मनुष्योंका आरोग्य बढ़ाता है । पुत्रपौत्रोका यह कल्याण करता है । दैवी, मानुषिक और राक्षसोंका प्रकोप यह दूर करता है । रोगादि दंभी प्रकोप है । चोरी, लूट और युद्ध आदि मानुषिक प्रकोप है । इन सभी भयोंको अग्नि दूर करता है । और लोगोंको सुखी करता है । पानी लोगोंका कष्ट यह दूर करता है । बल बढ़ाता है । इस कारण यह युद्धमें माया प्राप्त करता है ।

### विष्णु

१ हे विष्णो ! ते तत् नाम किं परिच्यक्षि [ १६२५ ] हे विष्णो ! तेरा वह नाम किजना उत्तम है ।

२ यत् नाम " शिपि-विष्टिः अस्मि " इति वचक्षे [ १६२५ ]- जो नाम " किरणोति व्याप्त है " ऐसा भाग बिसाता है ।

३ एतत् सर्वं अस्मत् मा अप गूह [ १६२५ ] यह रूप तू हमसे दूर मत रख ।

४ यत् समिधे अन्यरूपः इत् वभूव [ १६२५ ]- युद्धमें तू अन्यरूप धारण करके ही हमारी सहायता करता है ।

५ हे शिपि-विष्टि ! ते तत् अर्थः ययुनानि विद्वान् अद्य प्रशंसाभि [ १६२६ ]- हे किरणोति सबको व्यापनेवाले विष्णो ! तेरे उस नामका महत्व जाननेवाला विद्वान् में आज तेरी प्रशंसा करता हूँ ।

६ हे विष्णो ! ते आसः आ चपद् छणोमि । हे शिपिविष्टि ! तत् मे हृद्यं जुपस्व । मे सुन्दृतय गिरः त्वा वर्धन्तु [ १६२७ ]- हे विष्णो ! तेरे मुखमें मे बपट्टकार-पूर्वक हवि अर्पण करना हूँ । हे प्रकाशते व्याप्त देव ! मेरी हविको तू हटोकार कर । मेने उत्तम स्तुति तेरी महिमा बढ़ाये ।

विष्णुका नाम शिपिविष्टि है । क्योंकि वह चारों ओरके किरणोति व्याप्त करता है । चारों ओर उसको किरण फैलती है । पर वह अपने अनेक स्तोत्रों मनुष्योंका शिर करता है । किरणोति व्याप्तनेवाला आकाशमें घुस है, वेधोंमें विद्युत् है

और पृथ्वीपर अग्नि है । इस अग्निमें हवन किया जाता है । उन हवणोप पदार्थोंको नृपक्ष करके वह चारों दिशाओंमें फैलाता है, इस कारण चारों ओर आरोग्यका वातावरण उत्पन्न होता है । तब लोगोंका जीवन इस कारण सुख और आरोग्यका जीवन होता है ।

### वायु

१ हे वायो ! शुक्रः द्विविष्टिषु ते मध्वः अग्रं वयामि [ १६२८ ]- हे वायो ! मे निबोध होकर मत करता हूँ । उस यशमें तुझे सबसे प्रथम सोमरस देनेके लिए अर्पण करता हूँ ।

२ स्प्राहोः सोमपीतये ध्यायहि [ १६२८ ]- प्रवसनीय तू सोम पीनेके लिए आ ।

३ हे वायो ! इन्द्रः च एषां सोमानां पीति अर्धयः [ १६२९ ]- हे वायो ! तू और इन्द्र दोनों सोम पीनेके योग्य हो ।

४ युषां इन्द्रयः धग्ति [ १६२९ ]- तुम्हारे पास सोम रख रहता है ।

५ हे वायो ! इन्द्रः च दायसः पती शुक्तिमणा । नः उतये आयातं [ १६३० ]- हे वायो ! तू और इन्द्र दोनों बलके स्वामी और वीर्यवान् हो । हमारी रक्षाके लिए आओ ।

वायुकी प्रशंसा सब जगह होती है । वायु और इन्द्र दोनों देव बहुत सामर्थ्यवान् हैं, इसलिए उन्हें सर्वप्रथम सोमरस दिया जाता है । लोगोंकी रक्षा वायु करता है । वायु यदि न हो, तो कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता । श्वासो कल्याण करने ही मनुष्य जीवित रहता है । अतः मनुष्योंका जीवन वायु पर अवलम्बित है । इसलिए सब यज्ञमें वायुको प्रथम स्थान दिया जाता है और उसकी पूजा प्रथम होती है । वायु शुद्ध हो तो प्राणियोंका जीवन लम्बे समयतक ही सकता है । अन्न और पानीकी अपेक्षा वायुकी आवश्यकता ज्यादा होती है । यह आवश्यकता मनुष्योंको ही नहीं अग्नि तमो प्राणियों और वनस्पतियोंको भी होती है । यह वायुका महत्व ऊपरके मंत्रोंमें उत्तम प्रकारसे दिखाया है ।

### सोम

२ चिक्स्वत धियः हर्षि यातये हिन्यन्ति [ १६३१ ] - सत्कार करनेवालोंको अनुत्साह देकरके सोमको कलशमें जानेके लिए प्रेरित करती है ।

३ अस्वत् ते मर्जयामसि [ १६३२ ]- इस सोमके उस रसको हम शुद्ध करते हैं ।

३ यं सूर्यः पुरा च नूतं गायः वासभिः वधुः [ १६३२ ]- जिस सोमरसकी विद्वान् लोग जते पहले पीते थे, वैसे ही अब भी पीते हैं। पापों भी अपने मुलने सोमका भक्षण करती हैं।

४ पुनानं पुरारण्या गाथया अथयनूपत [ १६३३ ]- छाने जानेवाले सोमकी पुराने स्तोत्रोंसे स्तुति की जाती है।

५ नाम विभ्रतीः पीतयः देवाना कृपन्त [ १६३३ ]- हवि धारण करनेवाली अंगुलियाँ देवोंकी सोमरस अर्पण करनेमें समर्थ होती हैं।

सोम कूड़ा जाता है। अंगुलियोंसे इनाकर उसका रस निकाला जाता है और उसका रस कलशमें भरकर रखा जाता है। बादमें उसमें पानी मिलाकर वह छाना जाता है। विद्वान् लोग इस रसको पहलेके समान पीते हैं। सोमरसके छानने समय देवीके स्तोत्र सड़ी आवाजमें बोले जाते हैं। बादमें वह देवोंको दिया जाता है, फिर शरभमें यत करनेवाले भी सोमरस पीते हैं।

इस प्रकार सोमका चर्चन इस अध्यायमें आया है।

## सुभाषित

१ हे सहस्रः यशो ! विभ्येभिः अग्निभिः इमं यक्षे इत्थं यच्च, यतः धाम [ १६१७ ]- हे बलके पुत्र ! तप्य अग्नियोंके साथ इस यज्ञमें जा, यह स्तुति सुन और हमें अन्न दे।

२ यन् चित् हि न्यथ्यता तना देवं देवं यजामहे हविः त्वे इत्थं ह्यते [ १६१८ ]- जो कुछ भी हमेंना हवि अर्पण करके प्रार्थक देवताका यजन हम करते हैं, वे हवन सुभमें किय जाते हैं।

३ विद्वपतिः होता मन्द्रः धरेण्यः नः प्रियः अस्तु, रुद्रग्रायः धर्यं प्रियाः [ १६१९ ]- प्रजाओंका पालक, हवन करनेवाला और सुखदायी ऐसा श्रेष्ठ धर्मि हमें प्रिय हो। तथा उत्तम रीतिसे मानिकी अपने घरमें रखनेवाले हम भी उसे प्रिय हों।

४ विध्वतः जनेभ्यः परि इन्द्रं यः हवामहे, वासाकं फेधलः अस्तु [ १६२० ]- सब लोगोंमें श्रेष्ठ ऐसे इन्द्रको पुन्हूरे हितके लिय हम मुलाते हैं, वह इन्द्र श्रेयस हर्ष ही साथ देनेवाला हो।

४१ [ साम हियो भा २ ]

५ ईद्वानः अग्रतिष्कृतः धृषा ओजसा कृषीः इयति [ १६२१ ]- यह समका ईश्वर और हमारा प्रतिकार न करने-वाला धलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे अनुग्रह करनेके लिय मनुष्यके पास जाता है।

६ हे यशो ! विभ्रः त्वं ऊत्या राधांसि नः चोदय [ १६२३ ]- हे निवासक अग्ने ! सुन्दर और वर्धनीय ऐसा तू संरक्षणसे युक्त धन हमारी तरफ भेज।

७ त्वं अस्थ रायः रथीः व्यसि [ १६२३ ]- तू इस धनकी रथसे सानेवाला है।

८ नः तुचे गाथं विद्वः [ १६२४ ]- हमारे पुत्रोंकी प्रतिष्ठाका स्थान मिले।

९ अग्ने ! त्वं अग्रपुत्र्यभिः अदग्धैः पर्वभिः तोकं तनयं पर्यि [ १६२४ ]- हे अग्ने ! अविरोधी भावनाओंसे युक्त और किसीके द्वारा न दबाया जानेवाला तू अपने संरक्षणके साथनीति हमारे पुत्रियोंका पालन कर।

१० द्यैव्या हेडांसि नः सुयोधि [ १६२४ ]- देवके प्रोदको हमसे दूट कर।

११ अदेवानि ह्यरांसि च [ १६२४ ]- मनुष्यों और राक्षसोंके श्रेयको दूट कर।

१२ हे शिपि-विष्ट ! ते तद् अर्यः ययुनानि विद्वान् अथ प्रदोसामि [ १६२६ ]- हे किरणोंसे व्यापनेवाले विष्णो ! उस तेरे नामकी, श्रेष्ठ और सब धर्म जाननेवाला तू, आज प्रसादा करता हूँ।

१३ सुष्टुतयः मे गिरः त्ता धर्यन्तु [ १६२७ ]- मेरी उत्तम स्तुतियाँ तेरी महिमा बढ़ायें।

१४ धूर्यं स्वस्तिभिः नः सदा पात [ १६२७ ]- तुम कृपाय करनेवाले साथनीति हमारी तरा रक्षा न करो।

१५ दायसः पती शुष्मिणा [ १६३० ]- तुम दोनों बलके स्वामी और सामर्थ्यवान् हो।

१६ नः ऊतये आयातं [ १६३० ]- हमारी रक्षाके लिय आओ।

१७ दायसा स्तुतः असाकं मीद्वान् यभूयान् [ १६३१ ]- यह बलका पुत्र हमें सुख देनेवाला हो।

१८ विध्वायु दूराय च धासात् च अघायोः मर्त्याय नः सद् इत्थं निपादि [ १६३६ ]- सब मनुष्योंका हित करनेवाला तू दूरके और पासके पापी मनुष्योंका हमारी रक्षा कर।

१९ हे इन्द्र ! मृदूर्तिषु विभ्याः स्पृघः अग्नि अस्ति [ १६३७ ]- हे इन्द्र ! तू सप्त मृदूर्तिं सप्त भृकावला करनेवाले दानुओंको हरा ।

२० तूर्थ । त्वं अशस्तिहाजनिता वृत्र-त्-तरुप्यतः अस्ति [ १६३७ ]- हे सोमप्रति दानुओंको बुर करनेवाले इन्द्र ! तू विपत्तिपोंको बुर करनेवाला, सम्पत्तिका उत्पन्न करनेवाला, दानुओंका विनाशक और बाधा डालनेवाले दानु-ओंको बुर करनेवाला है ।

२१ तुरय-तं ते शुभ्रम् [ १६३८ ]- दानुओंको नष्ट करनेवाला तेरा बल है ।

२२ यत् वृत्रं तूर्वांसि, ते मन्यये विभ्याः स्पृघः श्राययन्त [ १६३८ ]- जब तू वृत्रका बध करता है, तब तेरे शीपके आगे सब भृकावला करनेवाले दानु सिपिल ही जाते हैं ।

२३ इन्द्रः यत् पलं अभिनत् रोचना अन्तरिक्षे वि मतिरत् [ १६४० ]- इन्द्रने जब बल राक्षसको फाड़ डाला, तब उसने तेजस्वी अन्तरिक्षको और अधिक तेजस्वी बनाया ।

२४ गुहा सर्वाः गाः आधिष्णवन् पलं अर्पांच मुञ्चे [ १६४१ ]- गुहामें रानी हुईं गायोंको इन्द्रने बाहर निकाला, तब गुहामें उनको रखनेवाले बल राक्षसको नीचे गूह करके भागना पड़ा ।

२५ सत्रासाहं विभ्यासु गीर्षु आपत त्वं ऊतये आ च्याययसि [ १६४२ ]- अनन्त दानुओंको एकबल करनेवाले सब स्त्रीयोंके द्वारा बणिज किए गए उस इन्द्रको हमारे सरलभके लिए हमारे पास आने दे ।

२६ शुभ्रं सन्तं अनर्षाणं अनयच्युतं अयार्थभक्तुं नरं [ १६४३ ]- मुष्ट करने पर भी कभी भी न हारनेवाले, न हबनेवाले, जिसने बर्षाकमकी कोई बदल नहीं सकता ऐसे और नेता इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२७ हे श्रचीयम् इन्द्र ! विद्यान् रायः नः पुराशिरः, पापे धने नः अथ [ १६४४ ]- हे सुन्दर इन्द्र ! तब जाननेवाला तू धन लेकर उसमें हमें बहुत सारा रे और दानुते धन लाकर उसमें हमारी रक्षा कर ।

२८ धियया ह्यत् वृहत् इन्द्रियं तप दक्षं उत क्रतुं परेष्वं यत्र सिद्धान्ति [ १६४५ ]- तेरी बुद्धि तेरे बलकी, तेरी इच्छताकी, तेरे कार्यकी और तेरे श्रेष्ठ बलकी तीव्र करनी है ।

२९ हे इन्द्र ! योः तप र्षीस्यं शुषियी अयः पर्षति

[ १६४६ ]- हे इन्द्र ! तुमको तेरे पौरवकी और दानुकी तेरे धनकी बधाती है ।

३० वृहत् शय वृणान्ति [ १६४७ ]- बड़े-बड़े घर देनेवालेके रूपमें तेरी स्तुति होती है ।

३१ हे अग्ने देव ! कृष्टयः ओजसे ते नमः वृणान्ति, अग्नेः अग्निं अर्धय [ १६४८ ]- हे अग्नि देव ! मनुष्य बल प्राप्त करनेके लिए तुझे नमन करके तेरी स्तुति करते हैं, अपने बलसे तू दानुओंका नाश कर ।

३२ हे अग्ने ! नः गविष्टये कुविन् सु-रयि सं-वेपिथः उरुकृत् नः उरुकृधि [ १६४९ ]- हे आने ! हमें बहुतसी गायें मिलें इसलिये तू हमें बहुत सारा धन दे । तू यज्ञ प्रधानवाला हमें महान् कर ।

३३ हे अग्ने ! नः मद्वाघने मा परावर्क् । सर्वार्थं रयि संजय [ १६५० ]- हे आने ! हमें संप्रामर्षें दूर मत कर । कष्टदा करने और बीतकर धन दे ।

३४ विभ्याः विद्याः कृष्टयः अथ मन्यये सं नमन्त [ १६५१ ]- सब प्रमाण इतके शीपके आगे हाककर रहते हैं ।

३५ दौघतः घृत्रस्य शिरः वृष्णिना शतपर्षया घग्नेय वि विभेद् [ १६५२ ]- जगत्की कर्पागेवाले वृत्रके तिरकी इन्द्रने तीकड़ों पारवाले बजसे कोड़ डाला ।

३६ अस्य तत् ओज तिरिविपे, यत् इन्द्रः उभे रोदसी चर्म इथ समघर्तयत् [ १६५३ ]- इसका वह सामर्थ्य बनकने लग गया, जिसके बलसे इन्द्रने धु और पुष्पिकी बमडके समान लपेट कर रख दिया ।

३७ द्यामिः मृंगेभिः इथ दिशन् आपस्य मध्ये तिष्ठति, शीर्षाणि निमृदयम् [ १६५६ ]- बतों बंगुलियोंने हमारे बाहे हुए धनकी देते हुए हमारे यज्ञमें इन्द्र सभा हुआ है । हे सोमो ! उसके आगे अपने तिरकी नीचे करो ।

## उपमा

१ धंसगः यूया इय [ १६२२ ]- जैसे बंस भुवर्षें जाता है, उसीप्रकार ( युवा भोजनका कृष्टीः इयर्ति ) बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे मानवी तप-यत्-नं जाता है ।

२ निम्नं बापा न [ १६२९ ]- जिसप्रकार नीची जगहपर पानीका प्रवाह चलता है, उसीप्रकार ( युवा इन्द्रः पन्ति ) सुन्हारी तरक सोमरत्न आते हैं ।

३ धारवन्तं धर्म्यं न [ १६३४ ]- अंते अयासवाले घोड़ेते उत्तर पर बैठनेवाले लोग प्रेम करते हैं, उत्तोरकार ( आभिः नमोभिः धन्दुष्ये ) अन्तिको वक्तकर्ता हृदि धर्म्यं कर्मः प्रेम करते हैं ।

४ मातरा विशुं न [ १६३८ ]- त्रिसप्तवार मातायै अयने बध्नेके पीछे चलती हैं, उत्तोरकार ( क्षौणी ) छाया-पृथिवी इन्द्रके अनुयाय चलते हैं ।

५ यथा भारवृत् [ १६५० ]- अंते बीस उठानेवाला

मज्जूर बीसको पपापान पशुवाता है, अंते हो ( रविं संजय ) वृ पन अंतकर सा ।

६ तसुत्राय सिन्धवः न [ १६५१ ]- अंते तसुत्रमें नदियां लक्ष होकर निकली हैं, अंते हो ( विश्वाः पिशाः अस्य मन्वये सं नमन्त ) सब प्रजायें इस इन्द्रके शीपके आगे लक्ष होकर रहती हैं ।

७ यमं इव [ १६५१ ]- यमकीके समान ( उमे रोदसी समवर्तयत् ) वृ मोर पृथ्वी बीसको इन्द्रने लपेट कर रख दिया ।

## सप्तदशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

संज्ञा	ऋषेयस्यायं	ऋषिः	देवता	छन्दः
		( १ )		
१६१७	१।१६।१०	धुन-सोप आशीर्षिः	अग्निः	पापमी
१६१८	१।१६।६	धुन-सोप आशीर्षिः	"	"
१६१९	१।१६।७	धुन-सोप आशीर्षिः	"	"
१६२०	१।७।१०	यमुष्यन्दा अंश्वामित्रः	इन्द्रः	"
१६२१	१।७।६	यमुष्यन्दा अंश्वामित्रः	"	"
१६२२	१।७।८	यमुष्यन्दा अंश्वामित्रः	"	"
१६२३	६।७।१६	धुमर्षिर्होपत्यः ( धुन-पाणिः )	अग्निः	प्रपावः-( विवमा बृहती, समा शनोबृहती )
१६२४	६।७।१०	धुमर्षिर्होपायः ( धुन-पाणिः )	"	"
१६२५	७।१०।६	वसिष्ठो यंश्वामित्रिः	विष्णुः	विष्णु
१६२६	७।१०।५	वसिष्ठो यंश्वामित्रिः	"	"
१६२७	७।१०।७	वसिष्ठो यंश्वामित्रिः	"	"
		( २ )		
१६२८	४।७।१	वामदेवो गौतमः	वायुः	अनुष्टुप्
१६२९	४।७।१	वामदेवो गौतमः	इन्द्रवाम्	"
१६३०	४।७।३	वामदेवो गौतमः	"	"
१६३१	५।७।१	वैश्वानुः वामदेवो	वश्यायः शीपः	"
१६३२	५।७।३	वैश्वानुः वामदेवो	"	"
१६३३	५।७।४	वैश्वानुः वामदेवो	"	"
१६३४	६।७।१	धुन-सोप आशीर्षिः	अग्निः	पापमी
१६३५	६।७।३	धुन-सोप आशीर्षिः	"	"
१६३६	६।७।३	धुन-सोप आशीर्षिः	"	"



मन्त्रमण्ड्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
१६३७	८।२९।५	सुमेध आंगिरसः	इन्द्रः	प्रगाथः=( विपना बृहती, समा सतोःबृहती )
१६३८	८।२९।६	सुमेध आंगिरसः	"	"
( ३ )				
१६३९	८।२९।५	गोपूषत्सवसूचितनी काण्वापनी	इन्द्रः	गायत्री
१६४०	८।२९।७	गोपूषत्सवसूचितनी काण्वापनी	"	"
१६४१	८।२९।८	गोपूषत्सवसूचितनी काण्वापनी	"	"
१६४२	८।२९।७	भृतरुसः सुकशो वा आंगिरसः	"	"
१६४३	८।२९।८	भृतरुसः सुकशो वा आंगिरसः	"	"
१६४४	८।२९।९	भृतरुसः सुकशो वा आंगिरसः	"	"
१६४५	८।२९।७	विरूप आंगिरसः	"	जष्पिक्
१६४६	८।२९।८	विरूप आंगिरसः	"	"
१६४७	८।२९।९	विरूप आंगिरसः	"	"

( ४ )

१६४८	८।७५।१०	विरूप आंगिरसः	अग्निः	गायत्री
१६४९	८।७५।११	विरूप आंगिरसः	"	"
१६५०	८।७५।१२	विरूप आंगिरसः	"	"
१६५१	८।६।४	वरसः काण्वः	इन्द्रः	"
१६५२	८।६।६	वरसः काण्वः	"	"
१६५३	८।६।५	वरसः काण्वः	"	"
१६५४	—	धुमन्तोष आशीर्षतिः	"	"
१६५५	—	धुमन्तोष आशीर्षतिः	"	"
१६५६	—	धुमन्तोष आशीर्षतिः	"	"

## अथाष्टादशोऽध्यायः ।



अथाष्टमप्रपाठके द्विसीयोऽर्घः ॥ ८-२ ॥

[ १ ]

( १-१९ ) १ मेधातिथिः काण्वः त्रियनेधरावागिरसः; २ श्रुतकवः मुक्को वा आगिरसः; ३ मूनःशोष शशीगतिः;  
४ दांपुर्वाहृत्स्वत्यः; ५ मेधातिथिः काण्वः; ६, ९ वसिष्ठो मंत्राववणिः; ७ बालविल्यन्म् ( आपुः काण्वः ); ८ अम्ब-  
रिवो वापागिरः, ऋजिदधा भारद्वाजदधः; १० विद्वजमना वेयस्यः; ११ सोमरिः काण्वः; १२ सत्यार्यमः ( १ भरद्वाजो  
वाहृत्स्वत्यः, २ काण्वो वापोः, ३ गोतमो राहृत्स्वत्यः; ४ अग्निमौमः, ५ विश्वामित्रो वापिनः, ६ जमदग्निमौगंधः,  
७ वसिष्ठो मंत्राववणिः ); १३ कलिः प्रागाथः; १४, १७ विश्वामित्रः प्रागाथः; १५ वेध्यातिथिः काण्वः,  
१६ निष्प्रुमिः काण्वथः; १८ भरद्वाजो वाहृत्स्वत्यः ॥ १-३, ४, ६-७, ९-१०, १३, १५ इत्यः; ३, ११,  
१८, १९ अग्निः; ५ विल्युः, ५ ( ६ ) देवो याः ८, १२, १६ पवमानः सोमः; १४, १७ इन्द्रानो ॥ १-५,  
१४, १५-१८, १९ वायव्योः; १, ७, ९, १३, १३ प्रगाथः- ( विषया बृहती, सता सतीबृहती );  
८ अनुष्टुप् १० उज्जितः, ११ क्रावुतः प्रगाथः= ( विषया कजुपु, सता सतीबृहती ); १५ बृहती ॥

१६५७ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> पन्थेपन्थमित्सोतार आ धावत मध्याय । सोमं वीराप झूराय ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।२९ )

१६५८ एह हरी मधुयुजा शम्भा वक्षतः सखायम् । इन्द्रं गीर्मिगिर्घणसम् ॥२॥ ( ऋ. ८।१।३० )

१६५९ पाता वृत्रहा सुतमा धा गमकारे असात् । नि यमते श्वतमूविः ॥ ३ ॥ १ ( ति ) ॥  
[ धा० १४ । उ १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।१।३६ )

१६६० आ त्वा विश्वन्विबन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्राति रिन्वत ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।१।३२ )

[ १ ] प्रथमा खण्डः ।

[ १६५७ ] हे ( सोतारः ) सोमरत निकलनेवाले पवनसतो ! ( मध्याय पीराय ) प्रग्वओट वराक्यो ( शूराय )  
धृत् इत्येके पात ( पन्थं पन्थं इत् सोमं ) अत्यन्त प्रसंतनोय सोमरतको ( आ धावत ) वृषुधाको ॥ १ ॥

[ १६५८ ] ( मधुयुजा शम्भा ) दार्योके इगारेते जुहू कानेवाले, मूल देनेवाले ( हरी ) इत्येके सो घोरे ( एह )  
हय मत्रमे ( सखायं गीर्मिः गिर्घणसं इन्द्रं ) मित्र और धानियेमे स्तुत्य इत्येको ( आवक्षतः ) लेकत आवे ॥ २ ॥

[ १६५९ ] ( सुतं पाता वृत्र-हा ) सोम पीनेवाला और वृत्रको मारनेवाला इत्र ( अस्मन् अरे ) हमारे पास  
( ध आगामसु ) भवषय भावे ( शतं उजितः ) संकडों साथनेसे संरक्षण करनेवाला इत्र ( नियमते ) दानुमौरो डूर  
करता है ॥ ३ ॥

[ १६६० ] हे ( इन्द्र ) इत्र ! ( इन्द्रयः त्वा धा विश्वान्नु ) सोमरत कुते प्राप्त हों । ( सिन्धवः समुद्रं इय )  
जंते नदियां सवृत्रको प्राप्त होती हैं, जलोत्पन्न इत्रको सोम प्राप्त हों । हे इत्र ! ( त्वां न अतिरिच्यते ) तेरी भयेसा  
और कोई क्षीय न पेटे नहीं है ॥ १ ॥

- १६६१ विव्यकथ महिना वृषन्भक्ष सोमस्य जागृवे । य इन्द्र जठरेषु ते ॥२॥ ( ऋ. ८९२।२१ )
- १६६२ अरं त इन्द्र कुक्ष्ये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इन्दवः ॥ ३ ॥ २ ( क ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ स्व० १ ] ( ऋ. ८।९२।१४ )
- १६६३ जराबोध तद्विबिद्धि विश्विये यज्ञियाय । स्वोमश्कद्राय दृशीकम् ॥१॥ ( ऋ. १।२७।१० )
- १६६४ स नो महा अनिमानो धूमकेतुः पुरुषन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ॥२॥ ( ऋ. १।२७।११ )
- १६६५ स रेवा इव विशपतिर्देव्यः फेतुः शृणोतु नः । उक्थेरभिष्टुहृद्भानुः ॥ ३ ॥ ३ ( ह ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।२७।१२ )
- १६६६ तद्वा गाय सुते सचा पुरुहृताय सत्वने । शं यद्रवै न शाकिने ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४९।२२ )
- १६६७ न चा वसुनि यमते दाने वाजस्य गोमतः । यत्सोमुपश्वद्विरः ॥२॥ ( ऋ. ६।४९।२३ )
- १६६८ कुवित्सस्य प्र हि वज गोमन्तं दस्पुहा गमत् । शचीभिरप नो ववत् ॥३॥ ४ ( फी ) ॥  
[ धा० १६ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. ६।४९।२४ )

॥ इति प्रथम खण्ड ॥ १ ॥

[ १६६१ ] हे ( वृषन् जागृवे ) बलवान् और जाग्रत रहनेवाले इन्द्र ! तू ( सोमस्य भक्षं ) सोम पीनेके लिए ( महिना विव्यकथ ) अपनी महिमासे सर्वत्र व्याप्त होकर रहता है । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यः ते जठरेषु ) जो सोम तेरे पेटमें जाता है, वह महान् है ॥ २ ॥

[ १६६२ ] हे ( वृत्रहन् इन्द्र ) वृत्रनाशक इन्द्र ! ( सोमः ते कुक्ष्ये अरं भवतु ) हमारे द्वारा दिए गए सोम तेरे पेटमें भर जाए, ( इन्दवः धामभ्यः अरं ) सोमरस सब देवताओंको भरपूर हो ॥ ३ ॥

[ १६६३ ] हे ( जराबोध ) स्तुतिसे जाग्रत होनेवाले शत्रु ! ( विश्वे विशे ) प्रत्येक प्रजाजनके हितार्थ ( याज्ञियाय ) यज्ञ सिद्ध करनेके लिए ( तत् विश्विद्धि ) उस यज्ञनाशकमें प्रवेश कर । ( दृश्याय दृशीकं स्वोमं ) यह स्वस्वी भूमिके लिए सुन्दर स्तोत्र योको ॥ १ ॥

[ १६६४ ] ( महान् अनिमानः ) महान् और न भापने योग्य ( धूमकेतुः पुरुषन्द्रः स्वः ) धूमके इवजावाला और बहुत आनन्द देनेवाला वह अग्नि ( नः धिये वाजाय हिन्वतु ) हमें ज्ञान और अन्न प्राप्त करनेके लिए प्रेरित करे ॥२॥

[ १६६५ ] ( दैव्यः विशपतिः ) विव्य प्रजापालक ( पुष्टद्भानुः फेतुः सः ) महान् प्रकाशमान् और स्वर्गके तप्तान् वह भूमि ( रेवा इव ) बसवान् रामाके समान ( न उक्थेः शृणोतु ) हमारे स्तोत्र सुने ॥ ३ ॥

[ १६६६ ] हे स्तुति करनेवालो ! ( सुते ) सोमका रस निकालनेके बाद ( वः ) तुम ( पुष्ट-हृताय सत्वने ) बहूतोंके द्वारा प्रशंसित और बलवान् ऐसे इन्द्रके लिए ( तत् सचा गाय ) उन स्तोत्रोंको एक जगह बैठकर गावो । ( यत् गये न ) जिसप्रकार गायोंको घास कुल देती है, उसीप्रकार ( शाकिने श ) शक्तिवान् इन्द्रको वे स्तोत्र आनन्ददायक होते हैं ॥ १ ॥

[ १६६७ ] ( यत् सीं ) यदि वह इन्द्र ( गिराः उप भवन् ) हमारी स्तुति सुनेगा तब ( वसुः ) सबोंके निवासक इन्द्रको ( गोमतं वाजस्य दान ) हर्षे गायोंके पुक्त अन्नका दान करनेसे ( न च नियमते ) कोई भी रोक नहीं सकता ॥२॥

[ १६६८ ] ( दस्पु-हा ) शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र ( कुवित्सस्य ) बहुत हिंसा करनेवाले असुरके ( गोमन्तं प्रज प्रागमत् ) गायोंके अरं हुए बाधे पर अधिकार करता है, तब ( हि शचीभिः ) अपनी शक्तियोंसे ( नः [ गाः ] अपववत् ) वह हमारी गायोंको प्राप्त करने देता है ॥ ३ ॥

॥ यद्वां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ]

१६६९ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रैवा नि दधे पदम् । समूढमस्य पाशसुले ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२।१७ )

१६७० श्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोवा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥ २ ॥  
( ऋ. १।२।१८ )

१६७१ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पश्यसे । इन्द्रस्य युज्यः सरा ॥ ३ ॥  
( ऋ. १।२।१९ )

१६७२ तद्विष्णोः परमे पदं सदा पश्यन्ति धरयः । दिवीव चक्षुरातवम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।२।२० )

१६७३ तदिप्राप्तो विपन्युवो जागृवाशंसः समिन्धते । विष्णोर्यदपरमं पदम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।२।२१ )

१६७४ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्या अधि सानवि ॥ ६ ॥ ५ ( ऋ. ॥ )  
[ पा० १३ । उ० २ । सू० ६ ] ( ऋ. १।२।१६ )

१६७५ भो पु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।  
आरात्तादा सधमादं न आ गद्दीह वा सन्नप भुधि ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।२।१ )

[ २ ] द्वितीयः सूत्रः ।

[ १६६९ ] ( विष्णुः इदं विचक्रमे ) विष्णुने अय इम जगमे पराक्रम किया, सब उसने ( त्रैवा पदं निदधे ) तीन प्रकारसे अपने पाशोंको वहाँ रखा । ( अस्य पाशसुले समूढम् ) इसके धूलियुक्त पाशोंके स्थान पर सब जगत् रह रहा है ॥ १ ॥

[ १६७० ] ( अ-दाभ्यः गोवाः विष्णुः ) न बबनेवाला उसका विष्णु ( अतः धर्माणि धारयन् ) बहाले सबके कर्तव्योंका पोषण करता हुआ ( श्रीणि पदा विचक्रमे ) अपने तीन पाशोंके सब जगत्को घेरता है ॥ २ ॥

[ १६७१ ] हे भन्व्यो ! ( विष्णोः कर्माणि पश्यत ) विष्णुके पुत्रपार्ष्णीको देखो, ( यतः व्रतानि पश्यसे ) जिसके कारण सब व्रत-कर्म चलते हैं । यह विष्णु ( इन्द्रस्य युज्यः सरा ) इन्द्रका पोष मित्र है ॥ ३ ॥

[ १६७२ ] ( सूरयः ) विद्वान् ( विष्णोः तत् परमं पदं ) विष्णुके उस श्रेष्ठ स्थानको ( सदा पश्यन्ति ) हमेशा देखते हैं । ( दिवि आततं चक्षुः इय ) आकाशमें फीले हुए नेत्ररूपी सूर्योंको देखनेके समान इस श्रेष्ठ स्थानको विद्वान् लोग देखते हैं ॥ ४ ॥

[ १६७३ ] ( विष्णोः नत् परमं पदं ) विष्णुके उस श्रेष्ठ स्थानको ( विप्रास्तः जागृवांसः विपन्ययः ) मानी, क्षाणुत और स्तुति करनेवाले ( यत् समिन्धते ) प्रवीण करते हैं ॥ ५ ॥

[ १६७४ ] ( विष्णुः पृथिव्याः अधिसानवि ) विष्णु पृथ्वीपरके अग्रज उच्च स्थानमें ( यतः विचक्रमे ) अहाले अपना विक्रम करता है, ( अतः ) उस स्थानसे ( देवाः नः अधन्तु ) सब देव हमारी रक्षा करें ॥ ६ ॥

[ १६७५ ] हे इन्द्र ! ( त्वा ) तुम ( याघतः च न ) स्तुति करनेवाले ( अस्मन्नि आरे ) हमसे हुए ( मा नि रीरमन् ) न रमायें । इतलिये तु ( आरात्ताद् वा ) हुए हो तो भी । नः सधमादं आगदि ) हमारे यत्नेके स्थानपर आ, लीर ( इह वा सन् ) वहाँ रहते हुए भी । उप भुधि ) हमारी स्तुति सुन ॥ १ ॥

- १६७६ <sup>३१ १२ १११ ३ २४ ३ २ ३ १४ ३ १ १</sup> हमे हि ते ब्रह्मकृताः सु ते सचा मधी न मक्ष आसते ।  
<sup>१३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ ३ १ २</sup> इन्द्रे कामं जरितारा वसुधयो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥ ६ ( ङी ) ॥  
 [ धा० १३ । उ० ४ । स्व० ४ ] ( ऋ ७३१२ । )
- १६७७ <sup>१ १ ३ १ २ ३ १ २</sup> अस्ताधि मन्म पूर्य ब्रह्मेन्द्राय धोचत ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> पूर्वोऽस्तस्य बृहतीरनूपत स्तोत्रमेधा अमुक्षत ॥ १ ॥ ( ऋ. ८१२१९ )
- १६७८ <sup>१४ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २</sup> समिन्द्रो रायो बृहतीरधुनुत सं क्षोणीं समु धर्मम् ।  
<sup>१ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २</sup> सञ्शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥ २ ॥ ७ ( ङा ) ॥  
 [ धा० १३ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ ८१२११० )
- १६७९ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्द्राय सोमं पातवे वृषभे परि विच्यसे । नरे च दक्षिणावते वीराय सदानासदे ॥ १ ॥  
 ( ऋ ९१२८१० )
- १६८० <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> तस्रसखायः पुरूरुचं वयं यूपं च सूरयः । अद्रयाम वाजगन्ध्वं सनेम वाजस्पत्यम् ॥ २ ॥  
 ( ऋ. ९१२८१२ )

[ १६७६ ] हे इन्द्र ! ( ते सुते ) तेरे लिए सोमरस विधोदनेके बाद ( ब्रह्म-वृत्तः ) स्तोत्र कहनेवाले ऋत्विज ( मधी मक्षः न ) गृहदके लिए मन्त्रियों जिसप्रकार एक जगह जमा होते हैं, उसीप्रकार ( सचा आसते ) एक जगह बैठते हैं । ( वसुधयः जरितारा ) धनकी इच्छा करनेवाले स्तोता ( कामं ) अपने इष्ट फलको ( रथे पादं न ) जित-प्रकार रथमें पांव रखते हैं, उसीप्रकार ( आदधुः ) धारण करते हैं ॥ २ ॥

[ १६७७ ] हमने ( अस्ताधि ) इन्द्रकी स्तुति की, हे ऋत्विजो ! उस ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( पूर्यं मन्म ब्रह्म धोचत ) पहलेके मननीय स्तोत्र रचो । तथा ( पूर्वोऽस्तस्य बृहतीः अनूपत ) पहलेके यशोंके बृहती छन्दमें ताम्रगान करो, ( स्तोत्रुः मेधाः अमुक्षत ) स्तुति करनेवालोंको ऐसी बुद्धियां दो ॥ १ ॥

[ १६७८ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( बृहतीः रायो ) बृहत धन ( सं अधुनुत ) हमें देवे । ( क्षोणीः सं ) भूमि हमें दे, ( सूर्यं सं ) सूर्यप्रकाश हमें प्राप्त हो, ( शुचयः शुक्रासः इन्द्रं सं ) शुद्ध किए गए सोम इन्द्रको प्राप्त हों । ( गवाशिरः सोमाः इन्द्रं अमन्दिषुः ) गो बुधमें मिलाये गए सोमरस इन्द्रको प्रसन्न करें ॥ २ ॥

[ १६७९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृषभे इन्द्राय पातवे ) वृषको मारनेवाले इन्द्रको पीनेको देनेके लिए ( परि-विच्यसे ) तू कलजमें भरता जाता है । ( दक्षिणावते ) दक्षिणा देनेवाले ( वीराय ) वीर इन्द्रको देनेके लिए ( सदाना-सदे ) यज्ञशास्त्रमें बैठनेवाले ( नरे ) नेता वज्रमन्त्रको प्राप्त होनेके लिए कलजमें भरता जाता है ॥ १ ॥

[ १६८० ] हे ( सखायः ) स्तुति करनेवालो ! ( यूपं सूरयः ) तुम षड्रिगु ( वयं च ) और हम ( तं पुरूरुचं वाजगन्ध्वं अद्रयाम ) उस अति तेजस्वी धेनु मुगन्धते युक्त सोमको पीयें, ( याजस्पत्यं सनेम ) यज्ञ बढानेवाले सोमको ॥ २ ॥

१६८१ परि त्यथ ह्यर्थथ हरिं वधुं पुनन्ति वारिण ।  
 यौ दैवान् विश्वाथ इत् परि मदेन सह गच्छति ॥ ३ ॥ ८ (हा) ॥  
 [ धा० १६ । उ० नास्ति । २०० २ ] ( ऋ. २।१८।७ )

१६८२ कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्षो दधर्षति ।  
 अद्वा इत् ते मधवन् पाथे दिवि वाजो वाजो सिपासति ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।१४ )

१६८३ मघोनः स्म वृत्रहृत्पु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।  
 तव प्रणीतो ह्यर्थश्च सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥ २ ॥ ९ (यि) ॥  
 [ धा० १७ । उ० नास्ति । २०० ३ ] ( ऋ. ७।३२।१५ )

॥ इति त्रितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१६८४ एदु मघोमिदिन्तरश्सिश्वाध्वपो अन्धसः । एवा हि वीर स्ववते सदावृधः ॥ १ ॥  
 ( ऋ. ८।१४।१६ )

१६८५ इन्द्र स्यातर्हीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानथ्य क्षयसा न भन्दना ॥ २ ॥  
 ( ऋ. ८।१४।१७ )

[ १६८१ ] ( ह्यर्थं हरिं वधुं त्वं ) मनोहर, दुष्पहरण करनेवाले और प्ररथपोषण करनेवाले उस सोमको ( वारिण परि पुनन्ति ) मत्नीये के छानते हैं । ( यः विश्वान् वेदान् ) जो सब वेदोंको ( मदेन सह इत् ) आत्मके साथ हो ( परि गच्छति ) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

[ १६८२ ] हे ( यसो इन्द्र ) निवासक इन्द्र । ( तं त्वा ) उस वृषे ( काः व्यादधर्षति ) कौन भला धमकी देता है ? हे ( मघवन् ) इन्द्र । ( ते अद्वा ) वृषपर जो अद्वा रहता है, वह ( वाजो ) बलवान् हृदि लेकर ( पाथे दिवि ) सोमस्य निकालनेके दिन ( वाजो सिपासति ) अन्नका वाण करनेकी इच्छा करता है ॥ १ ॥

[ १६८३ ] हे इन्द्र । ( मघोनः ) पनवान् ऐसे तेरे लिए ( प्रिया वसु ये ददति ) प्रिय पन-हवि-जी देते हैं उन्हें ( वृत्रहृत्पु चोदय ) वृत्रने जानेका उत्साह दे । हे ( ह्यर्थश्च ) उत्तम धोरे रहनेवाले इन्द्र । ( तव प्रणीतो ) तेरे प्रेरणाके ( सूरिभिः ) विद्वानोंके साथ ( विश्वा दुरिता तरेम ) सब धमोंके हन मुक्त हों ॥ ५ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १६८४ ] हे ( अध्वर्यो ) अध्वर्यु ! ( मघोः अन्धसः ) मीठे सोमका आनन्ददायक रस ( मदिन्तरे ) आनन्द हृत्को प्राप्त होनेवाले इन्द्रके पास ( आसिच्य ) रस । ( सदावृधः वीरः पय हि स्ववते ) अपने बलसे सदा अचूते रहने-वाला वीर इन्द्र ही स्तुत होता है ॥ १ ॥

[ १६८५ ] हे ( हरीणां स्यातः इन्द्र ) धोरे पासमें रहनेवाले इन्द्र । ( ते पूर्व्य-स्तुतिं ) तेरी पहलेकी गई स्तुति ( क्षयसा न किः उदानां ) अपने बलसे दूसरा कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता तथा ( भन्दना न ) तेज से धी कोई पर नहीं सकता ॥ २ ॥

४२ [ साम. त्रिजी भा. २ ]

- १६८६ तं वो बाजानां पतिमहमहि श्रवस्वयः । अप्रायुभिर्वहोभिर्वावृषेभ्यम् ॥३॥ १० (क) ॥  
[ धा० १६ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।२४।१८ )
- १६८७ तं गृध्या स्वर्णं देवासो देवमरति दधन्विरे । देवत्रा हृष्यमूहिषे ॥१॥ ऋ ८।१९।१ )
- १६८८ विभूतराति विप्र चित्रशोचिपमग्निमीडिष्व यन्तुरम् ।  
अस्य मेघस्य सोम्यस्व सोमरे प्रेमधराय पूर्यम् ॥ २ ॥ ११ ( या ) ॥  
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ ८।१९।२ )
- १६८९ आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।  
जनौ न पुरि चम्बोर्विशद्विरेः सदा वनेषु दधिषे ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१०७।१० )
- १६९० स माम्जुषे तिमो अण्वानि मेघ्यो मीद्वान्ससिर्न वाजयुः ।  
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेमिश्रकभिः ॥ २ ॥ १२ ( तु ) ॥  
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।१०७।११ )
- १६९१ पयमेनसिदा शोऽपीपेमिह वज्रिणम् । तस्मा उ अद्य सचने सुते भरा नूनं भूपत भुवे ॥१॥  
( ऋ. ८।६६।७ )

[ १६८६ ] ( अघसायः ) यशकी इच्छा करनेवाले हम ( बाजानां पति ) यकीं स्वामी ( अप्रायुभिः यसेभि घायुषेभ्यं ) प्रभावर्हित मनुष्योंके द्वारा किये जानेवाले यज्ञोंके बढनेवाले ( च० तं ) तुम्हारे उस इन्द्रको ( अहमदि ) हम सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ १६८७ ] ( स्व-नरं तं गृध्या ) स्वर्णके नेता उस अग्निकी स्तुति कर । ( देवासः देवं अरति दधन्विरे ) स्तुति करनेवाले ऋत्विज विष्य पनको प्राप्त करते हैं । हे अग्ने ! तू ( हृष्यं देव्या ऊहिषे ) हृषिके देवोंकी ओर पटुता है ॥ १ ॥

[ १६८८ ] हे ( सोमरे विप्र ) सोमरे ऋषि । ( विभूतराति चित्रशोचिप ) महत वान देनेवाले विषोव प्रकृतानाम् ( सोम्यस्य अस्य यन्तुरम् ) इस सोमयागके पातक ऐसे ( पूर्यं अग्निं ) प्राचीन अग्निकी ( अधधराय ई ईडिष्व ) दत्त करनेके लिए स्तुति कर ॥ २ ॥

[ १६८९ ] हे ( सोम ) सोम । ( अद्रिभिः स्वाना ) पत्थरोंके कूटकर रस निजोडा गया ( अण्वया घायणि तिर. आ ) भेडके बालोंकी छलनीसे छनकर ( हरिः चम्बोः विशात् ) हरे रत्नका सोम कलशमें जाता है । ( पुरि जन-न ) पगसमें जितप्रकार कोई मनुष्य जाता है, उतप्रकार यह सोम ( वनेषु सद्यः दधिषे ) लकड़ीके पात्रमें जपना स्थान बनता है ॥ १ ॥

[ १६९० ] ( वाजयुः ) बल बढानेवाला ( मीद्वान् सतिः न अनुमाद्यः ) बोधवान् घोड़ेके समान प्रेम करने योग्य ( सः पयमान सोम ) यह छात्रा जानेवाला सोम ( मनीषिभिः मेघ्यः अण्वानि तिरः ) विद्वानों द्वारा भेडके-बालोंकी बनी छलनीमेंसे छाया जाता हुआ ; ( अक्रियभिः विप्रेभिः माम्जुषे ) ऋत्विज विप्रां द्वारा स्तुत व प्रकृत होता है ॥ २ ॥

[ १६९१ ] ( यद्ये पन वज्रिणं ) हमने इस वज्रपायी इन्द्रको ( इदा हा इह ) इस समय भीर पहिले भी इस यज्ञमें ( अपीपेम ) सोमके तुल किया, ( तस्मा उ ) उसी इन्द्रके लिए ( अद्य स्वचने ) आजभी इस यज्ञमें ( सुते भरा ) सोमरस भरण करो । ( नूनं भुषे आम्पयत ) निरूपयते रसोपपाठ सुननेके लिए वह महा आये ॥ १ ॥

१६९२ युक्श्चिदस्य चारण उरामथिरा वयुनेषु भूपति ।  
 समं न स्तोमं जुजुपाण आ गहीन्द्र प्र चिन्वया धिया ॥ २ ॥ १३ (सा) ॥

[ धा० १६ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ ८।६६।८ )

१६९३ इन्द्रामी रोचना दिवः परि चाज्ञेषु भूपयः । तडां चैति प्र वीषयम् ॥ १ ॥ ( ऋ ३।१२।९ )

१६९४ इन्द्रामी अपसस्पथुप प्र यन्वि धीतयः । ऋतस्य पथ्याश् अनु ॥ २ ॥ ( ऋ ३।१२।७ )

१६९५ इन्द्रामी तवियाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोत्तृपै हितम् ॥ ३ ॥ १४ (क) ॥  
 [ धा० ६ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ ३।१२।८ )

१६९६ क ई वेद सुत सचा पिपन्त कद् वयो दधे ।  
 अयं यः पुरो विमिनस्योजसा मन्दानः शिष्यन्वसः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।१२।७ )

१६९७ दाना मृगो न वारणः पुरुषा च रथं दधे ।  
 न किष्ठा नि यमदा सुते गमो महाध्वरस्योजसा ॥ २ ॥ ( ऋ ८।१२।८ )

[ १६९२ ] ( अथ वयुनेषु ) इस इन्द्रके प्रायणें { उरामथिः चारणः युक्श्चिदस्य } कद् वेनेवाला और विज  
 बालनेवाला वयु ऋषिदेके समान कर भी हो तो भी ( आभूपति ) अनुकूल होकर उसकी सेवा करने लगता है । ( साः  
 इन्द्र ) यह वृ हें इन्द्र । ( नः इमं स्तोमं जुजुपाणः ) हमारे इस स्तोमकी स्वीकार करके ( चिन्वया धिया प्र आगति )  
 कल वेनेवाली बुद्धिके साथ यहाँ आ ॥ २ ॥

[ १६९३ ] हें ( इन्द्रामी ) इन्द्र और अपने । ( दिवः रोचना ) दुलोकको प्रकाशित करनेवाले सुम ( वाज्ञेषु  
 परिभूपयः ) युद्धमें विजय प्राप्त करके सुशोभित होते हो । ( चां तद् वीषयं प्र चैति ) तुम्हारा यह नीयें इस प्रकार प्रकट  
 होता है ॥ १ ॥

[ १६९४ ] हें ( इन्द्रामी ) इन्द्र और अपने । ( धीतयः ) ज्ञानी लोग ( ऋतस्य पथ्या अनु ) सत्य मार्गों  
 जाकर ( अपसः परि उप प्रयन्ति ) कर्मकी सिद्धिकी प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥  
 ज्ञानी लोग सत्यके मार्गसे जाकर कर्मकी सिद्धि प्राप्त करते हैं ।

[ १६९५ ] हें ( इन्द्रामी ) इन्द्र और अपने । ( वां तवियाणि ) तुम्हारे बस और ( प्रयांसि ) शान ( सध-  
 स्थानि ) एक साथ रहते हैं । ( युवोः अत्तृपै हितं ) तुममें शोभतासे काम करनेका सामर्थ्य स्थापित किया गया है ॥ ३ ॥

[ १६९६ ] ( सुते सचा पिपन्तं कं कः वेद ) सोमयज्ञमें सबके साथ बैठकर सोमरस पीनेवाले इस इन्द्रको भला  
 कौन जानता है ? ( कद् वयोः दधे ) उसकी कितनी आयु है, यह भी भला कौन जानता है ? ( अयं यः शिमी ) जो यह  
 तिरस्कार शिरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र है, यह ( अन्वसः मन्दानः ) शीघ्ररहते मानवित होकर ( ओजसा ) अपने  
 सामर्थ्यसे शत्रुके ( पुरः विभ्रामति ) नगरोंकी तोड़ डालता है ॥ १ ॥

[ १६९७ ] ( मृगः वारणः दाना न ) शत्रुका घोष करनेवाले मशोमत्त हाथीके समान ( पुरुषा च रथं दधे )  
 अनेक यत्नोंमें वृ अपना रथसे जाता है । ( त्वा न किः नियमत् ) तुझे कोई भी रोक नहीं सकता । हें इन्द्र । ( सुते आगमः )  
 सोम यत्नोंमें वृ आ । ( नः महान् ) हमारे लिए वृ महान् आदरणीय है, और वृ ( धीजसा चरति ) अपने सामर्थ्यसे  
 सर्वत्र संचार करता है ॥ २ ॥



१६९८ य उग्रः सन्नोनिष्टुतः स्थिरो रणाय सख्यकृतः ।

यदि स्तोत्रुर्मघवा भृणवद्भवं नेन्द्रो योपत्या गमत् ॥ ३ ॥ १५ ( डी ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । १५० ४ ] ( ऋ ८।१३।९ )

॥ इति तृतीय. खण्ड ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१६९९ पवमाना असुक्ष्वत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥ ( ऋ १।६३।२५ )

१७०० पवमाना दिवस्पयन्तरिक्षादसुक्ष्वत । पृथिव्या अभि सानवि ॥ २ ॥ ( ऋ १।६३।२७ )

१७०१ पवमानास आशवः शुभ्रा असुग्रमिन्दवः । प्रन्तो विश्वा अप द्विपः ॥ ३ ॥ १६ ( क ) ॥

[ धा० १९ । उ० २ । १७० १ ] ( ऋ ९।६३।२६ )

१७०२ तासा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापरोजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥ ( ऋ ३।१।२।४ )

१७०३ प्र वामर्षन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ २ ॥ ( ऋ ३।१।२।५ )

१७०४ इन्द्राग्नी नवर्ति पुरो दासपत्नीरधूसुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ ३ ॥ १७ ( र ) ॥

[ धा० ८ । उ० नास्ति । १७ १ ] ( ऋ ३।१।२।६ )

[ १६९८ ] ( य उग्र सख् ) जो उग्रबीर होनेके कारण ( अनिष्टुतः ) शत्रुओंके न हारते हुए ( स्थिरः ) स्थिर रहता है, और ( रणाय सख्यकृतः ) युद्धके लिए सन्नोनिष्ठ भूयित हुआ रहता है ऐसा वह ( मघवा इन्द्र ) घनवान् इन्द्र ( यदि स्तोत्रुः ह्ये भृणवत् ) यदि स्तोत्रकी प्रार्थना सुन ले तो वह ( न योपति ) इन्द्रकी तरफ जायगा नहीं और ( आमगत् ) यहीं यज्ञमें आयगा ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थ. खण्ड. ।

[ १६९९ ] ( शुक्रासः इन्दव' ) स्वच्छ और चमकनेवाले ( पवमाना' सोमाः ) छाने जानेवाले सोमरस ( विश्वानि काव्या ) सब वेदमंत्रोंकी स्तुतिके चलनेपर ( अभि असुक्ष्वत ) युद्ध किए जाते हैं ॥ १ ॥

[ १७०० ] ( पवमानाः ) युद्ध होनेवाले सोमरस ( दिव अन्तरिक्षात् ) पृथक्कते और अन्तरिक्षसे ( पृथिव्या अभि सानवि ) भूमिपरके ऊंचे पल स्थानमें ( पर्यसुक्ष्वत ) रहते हैं ॥ २ ॥

[ १७०१ ] ( आशव' शुभ्रा ) श्रेयवान् और शुभ ऐसे ( पवमानासः इन्दव' ) युद्ध होनेवाले सोमरस ( विश्व' द्विप अपचन्त' ) सब शत्रुओंकी विनष्ट करते हुए ( असुग्रम् ) कलशमें जाते हैं ॥ ३ ॥

[ १७०२ ] ( तासा ) शत्रुओं पर विघ्न डालनेवाले, ( वृत्रहणा ) शत्रुओंका नाश करनेवाले ( सजित्वाना अपराजिता ) शत्रुओंको जीतनेवाले और स्वयं अपराजित ऐसे ( वाजसातमा इन्द्राग्नी हुवे ) अन्न देनेवाले इन्द्र और अग्निकी ये प्रार्थना करता हूँ ॥ १ ॥

[ १७०३ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( उक्थिनः वा अर्चन्ति ) वेदपाठी तुम्हारी अर्चना करते हैं । ( नीथाविदो जरितार. ) सामभावक तुम्हारी स्तुति करते हैं ( इष. आ वृणे ) अन्न प्राप्तिके लिए मैं भी तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[ १७०४ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( दास पत्नी. नवर्ति पुरः ) वासंकि द्वारा रजित मन्त्रे नगरोंकी ( एकमेकैः कर्मणा साक अपसुत ) एक प्रयत्नसे एक साथ तुम्हारे हिला दिया ॥ ३ ॥

१७०५ उप त्वा रण्यसंदर्शं प्रयस्वन्तः सहस्रकृत । अग्ने समुज्जग्हे गिरः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।६।३७ )

१७०६ उप च्छायामिव घृणोरयन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंदर्शः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१।६।३८ )

१७०७ य उग्र इव श्रयंहा तिमभृष्टो न वत्सगः । अग्ने पुरो हरोजिथ ॥ ३ ॥ १८ ( य ) ॥  
[ धा० ७। उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ६।१।६।३९ )

१७०८ श्रुतावानं वैश्वानरमुतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं धर्ममीमहे ॥ १ ॥ ( अथ०. ६।१।६।४० )

१७०९ य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुचिरन् । ऋतुस्तुज्जवे वधी ॥ २ ॥

१७१० अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राट्को विराजति ॥ ३ ॥ १९ ( का ) ॥  
[ धा० ११। उ० १। १७० १ ]

॥ इति षतुर्षं खण्डः ॥ ५ ॥

॥ इत्यष्टमप्रायके द्वितीयोऽर्धः ॥ ८-२ ॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

[ १७०५ ] हे ( सहस्रकृत अग्ने ) यत्ने उत्पन्न विष्ट पाप आने ( प्रयस्वन्तः ) हृदि लेश्वर आनेवाले हम ( रण्यसंदर्शं त्वा उप ) रमणीय और बर्तनीय ऐसे तेरे पास रहकर ( गिरः समुज्जग्हे ) अपनी धानीसे तेरी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १७०६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( हिरण्यसंदर्शः घृणोः ते ) सुवर्णके समान तेजस्वी बोलनेवाले तेरे ( शर्म ) आश्रयमें आकर ( वयं उप अग्रम ) हम सुख प्राप्त करें ( छायामिव ) जिसप्रकार कोई धूपसे आकर छायामें सुख पाता है, उसीप्रकार हम भी तेरे आश्रयमें सुख प्राप्त करें ॥ २ ॥

[ १७०७ ] ( यः उग्र इव ) जो अग्नि उपधीर धनुर्धारी शूचीरके समान है, ( वत्सगः स तिमभृष्टाः ) वेगवान् बेल अंगे तेज लींगति युक्त रहता है, जैसे ही वह अपनी तीक्ष्ण उभालाओंसे युक्त रहता है । हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( पुरः हरोजिथ ) तुने शत्रुके नगर लोडे हैं ॥ ३ ॥

[ १७०८ ] हे अग्ने ! ( श्रुतावानं वैश्वानरं ) यज्ञ करनेवाला, मनुष्योंका हित करनेवाला ( ऋतस्य ज्योतिषः पतिं ) यज्ञकी अपने ते श्रेते रक्षा करनेवाला ( अजस्रं धर्मं ईमहे ) निरन्तर प्रवीक्ष्य होनेवाले अग्निकी हम उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[ १७०९ ] ( यः ) जो अग्नि ( इदं ) इस जगत्को सुखी करनेके लिए ( यज्ञस्य स्यः उत्तिरन् ) यज्ञके साथ विष्णोको दूर करता है, ऐसी ( प्रतिपप्रथे ) जिसकी प्रमिद्धि है । वह ( वधी ) सबकी अपने अधीन करके ( ऋतुस्तु उत्पृजते ) ऋतुओंकी उन्नयन करता है ॥ २ ॥

[ १७१० ] ( भूतस्य भव्यस्य कामः ) उत्पन्न हुए और आने उत्पन्न होनेवाले जितकी इच्छा करते हैं, ऐसा ( यज्ञः सम्राट् अग्निः ) अनेका सम्राट् अग्नि ( प्रियेषु धामसु विराजति ) प्रिय वश स्थानोंमें विराजता है ॥ ३ ॥

॥ यद्वां श्रीया खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः ॥



## अष्टादश अध्याय

इस अष्टारहवें अध्यायमें इन्द्र, अग्नि, इन्द्रजानी, विष्णु और सोम इन पांच देवताओंका वर्णन है। इसमें इन्द्र देवताका विस्तृत वर्णन है—

### इन्द्र

१ मध्याय वीराय शूराय पयं सोमं आधायत [ १६५७ ]- प्रसन्नचित्त और पराक्रमी शूर इन्द्रके पास प्रसन्ननीय सोम वीर्य पहुंचाओ। इन्द्र पराक्रमी और शूर है। सोम पीकर वह और अधिक पराक्रम करनेवाला हो जाता है।

२ वृषहा वससत् आरे आगमत्, शतं ऊतिः नियमते [ १६५९ ]- वृषको भारनेवाला इन्द्र हमारे पास आये। सैकड़ों संरक्षणके साधनोंसे युक्त दम्भ राजुओंको दूर करता है।

३ हे इन्द्र! त्वान् अतिरिच्यते [ १६६० ]- हे इन्द्र! तेरी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और कोई नहीं है। तू ही सबसे श्रेष्ठ है।

४ पुरुहताय स्वधने सचा गाय, शाकिने धां [ १६६६ ]- जिसे बहुतसे लोग सहायताके लिए बुलाते हैं, उस सत्यवान् इन्द्रके लिए एकत्र बैठकर स्तोत्रोंका गान करो। शक्तिमान् इन्द्रके लिए वे आत्मब्रह्मचर्यक हो।

५ वसुः गोमतः वाजस्य दानं न घ नियमते [ १६६७ ]- तमोंको बतानेवाले, गाय और अन्नका वाप करनेवाले इन्द्रको उसके दान करनेसे कोई रोक नहीं सकता।

६ दस्युहा कुविरसस्य गोमन्तं वजं प्रागमत्, दावीभिः नः [ माः ] अपवरत् [ १६६८ ]- शत्रुको मारनेवाला इन्द्र बहुत हिंसा करनेवाले असुरोंकी धांपोंके भाइयों पर अपना अधिकार करता है, सब अपनी शक्तिसे वह हमें गांधे देता है।

७ वाघतः भससत् आरे त्वा मा निरीरमत् । नः स्वधमार्द्रं आगदि इह उप श्रुधि [ १६७५ ]- वे स्तुति करनेवाले मनुष्य तुम हमसे दूर न कर। तू हमारे धनके रक्षण पर धा और धर्मा स्तुति मुन ।

८ ते सुते द्रष्टुकृतः सखा आसते [ १६७६ ]- तेरे लिए सोमरस निकालनेके बाद स्तोत्र पाठ करनेवाले एकन बैठते हैं और स्तोत्र बोलते हैं।

९ पूर्वीः ऋतस्य वृहतीः अनुपत् [ १६७७ ]- पहलेके पक्षमें बोले जाने योग्य वृहतीःऋतमें सामगान करो।

१० इन्द्रः वृहती रायः सं अधुनुत [ १६७९ ]- इन्द्र बहुत धन हमें देवे।

११ क्षोणी सं [ १६७९ ]- भूमि भी हमें देवे।

१२ गवाशिरः सोमाः अमन्दिषुः [ १६७९ ]- गो-दुग्धमें मिलाये गए सोमरस इन्द्रको आनंद देवे।

१३ युजमे इन्द्राय पातये परिपिच्यते [ १६७९ ]- वृषका वध करनेवाले इन्द्रको पीनेकी देनेके लिए हे सोम ! तुम कलशमें भरा जाता है।

१४ हे मधवन् ! ते अन्दा वाजी पायं द्विधि वाजं सिपासति [ १६८२ ]- हे धनवान् इन्द्र ! युत पर अन्दा रखनेवाला बलवान् होकर सोमरस निकालनेके दिन अन्न दान करनेकी इच्छा करता है।

१५ मघोनः तय मिया वासु ये वदति, युज-हृत्पेणु चोदय [ १६८१ ]- धनवान् इन्द्रको पिय वसु जो देता है, युद्धमें जानेका उसका उत्साह हे इन्द्र ! तू बढ़ा।

१६ हे हृद्यंभ ! तव प्रणीति स्वरिभिः विश्वा तुरिता तरेम [ १६८९ ]- हे उत्तम धोड़े पालनेवाले इन्द्र ! तेरी प्रेरणासे विद्वानोंके साथ रहकर हम तप पापोंसे मुक्त हो जायें।

१७ सदा वृधः वीरः स्वधते [ १६८५ ]- अपने बलसे सदा बढ़नेवाला वीर इन्द्र प्रशंसित होता है।

१८ हे हरीणां स्यातः इन्द्र ! ते पूर्व्य-स्तुति शकसा न कि उदानंश [ १६८५ ]- हे धोड़े पातमें रखनेवाले इन्द्र ! तेरी पहले की गई स्तुतिकी अपन बलसे दूसरा कोई प्राप्त नहीं कर सकता। तू ही ऐसा सामर्थ्यवान् है कि जिसकी ऐसी प्रशंसा होती है।

१९ अवरुष्यतः वाजानां पति अ-प्रायुभिः यक्षेभिः यायुधेभ्यं घा तं अहमदि [ १६८६ ]- यज्ञकी इच्छा करनेवाले हम बलके स्वामी और योगरहित भगोसे बड़ानेवाले तुम्हारे उस इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं।

२० वयं यं वशिष्णं इह अपीमि [ १६९१ ]- हम इस वज्रधारी इन्द्रको इस यज्ञमें सोमरससे वृत्त करते हैं।

२१ अस्य वयुनेषु उरामधिः वारणः वृकः चिद्व

आभूपति [ १६९२ ]- इस इन्द्रके इत्यर्थमें कष्ट देनेवाला और प्रतिशप्य करनेवाला अशुभ अन्ते ही भेड़ियेके समान क्रूर होतो भी वह उसके लक्ष्ण होकर सुषोभित होने लगता है ।

२२ दिग्भी अन्धसः मन्दानः ओजस्य पुरः विमिनत्ति [ १६९६ ]- इन्द्र सोमपानसे आनन्दित होकर अपने सामर्थ्यसे अशुभके नगरोंको तोड़ता है ।

२३ पुरुत्रा रथं दधे, त्या न किः नियमत् [ १६९७ ]- हे इन्द्र ! तू अपना रथ आगे चला । तुमो कोईभी रोक नहीं सकता ।

२४ हे घसो इन्द्र ! त्या का आवृषपति [ १६८२ ]- हे विधासक इन्द्र ! तुझे भय दिखानेमें भला कौन समर्थ है ?

२५ या उग्रः सन् अनिष्टातः, स्थिरः रणाय संस्तुताः मघवा इन्द्रः यदि स्तोतुः ह्यं ष्टण्यत्, न योपनि, आगामत् [ १६९८ ]- जो उग्रवीर होनेके कारण करी भी नहीं हारता, युद्धभूमि पर स्थिर रहकर युद्ध करनेके लिए तैय्यार रहता है, वह धनवान् इन्द्र यदि स्तुति करनेवालेकी प्रार्थना सुन ले, तो तूतरी तरक जायेगा ही नहीं, निश्चयसे यहीं घसने आयेगा ।

२६ मस्युत्रा शग्मा हरी इह सखायं इन्द्रं आवसतः [ १६९८ ]- माय कहते ही बुझ जानेवाले और सुल देनेवाले इन्द्रके छोड़े यज्ञ यज्ञमें मित्र और स्तुतिके योग इन्द्रको लेकर आते हैं ।

इन्द्र हमेशा आनन्दित, उसाहित और दूरवीर है । उसके पास संरक्षणके अनेक साधन हैं, उसके समान दूरवीर दूसरा कोई नहीं । वह जब पनाविका बन करता है तब उसे कोई रोक नहीं सकता । मार्गें घुसानेवाले असुरोंको हराकर वह मार्गें वापिस प्राप्त करता है । फिर उन मार्गोंको भस्मोंमें घाट देता है । इस इन्द्रके रास्ते पर चलनेवाले सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं । सप सोम इस इन्द्रको अमली सहायताके लिए बुलाते हैं, और वह इन्द्र उसकी मददके लिए जाता है । वह इतना बलवान् है कि एक ही आक्रमणसे शत्रुके संकड़ों नपराँकों सोझकर विजयी होकर घरायी होता है । ऐसा इन्द्र सभीके द्वारा प्रशंसित होने योग्य है ।

अग्नि

१ हे अग्रयोध ! विदो विदो जनय विदियाय तत् तत् विविदिद [ १६९३ ]- हे स्तुतिके आभूत होनेवाले अग्नि ! प्रमेक मनुष्यके हितके लिए जो यत् किया जाता है, उसे सिद्ध करनेके लिए तू यज्ञशालामें आ ।

यज्ञशालामें अग्नि जलाकर उसमें विशेष वस्तुओंका हवन किया जाता है और उस वस्तुसे सब मनुष्योंका कल्याण होता है ।

२ महान् अनिमानः धूमकेतुः पुरुदक्षन्द्रः स्वः नः धियो याजाय हिन्वतु [ १६६५ ]- महान् इसीलिए आपनेके अयोग्य, घुषां ही ध्वज है जिसका ऐसा बहुत आनन्द देनेवाला वह अग्नि हमें ज्ञान, बल और असक्तोंके प्रातिके लिए प्रेरणा देवे । उस रास्तेसे हमें से जाए कि जिस मार्गसे हमें ज्ञान और बल प्राप्त हो ।

३ वैश्वः विश्वपतिः बुद्ध भानुः स्वः रेवान् इय नः उफथैः ष्टणोतु [ १६६५ ]- यह विश्व पतितसे मुक्त प्रजाका पालन करनेवाला, महान् तेजस्वी वह अग्नि धनवान् राजाके समान हमारे स्तोत्र सुने । अग्निमें विश्व शक्ति है । अग्निमें जो यज्ञ होता है, उससे प्रजा मीरोगी होती है, और रोगोंसे रक्षा होती है । ऐसी यह अग्नि हमारी स्तुतिके स्तोत्र सुने ।

४ विभूतरातिं चित्रशोचिषं पूर्व्यं आरिं अश्वरथ इडिन्व [ १६८८ ]- बहुत दान देनेवाले, विशेष प्रकाशमान प्राचीन अग्निंको पश करनेके लिए स्तुति कर ।

५ हे सहस्रकृत अग्ने ! प्रयस्वन्तः रण्यसंदरो त्या उप गिरा ससुउमहे [ १७०५ ]- हे धस्तो उत्सन्न होनेवाले अग्ने ! अत्न लेकर आनेवाले हय रावणों वीखनेवाले तेरे पास आकर अपनी वाणीसे तेरो स्तुति करते हैं ।

६ हे अग्ने ! हिरण्यसंदशः पुणेः ते शर्म, छायां इव चयं उप आगम् [ १७०६ ]- हे अग्ने ! सोनेके समान तेजस्वी वीखनेवाले तेरे आश्रयमें आकर, जैसे कोई धूपसे आकर छायामें सुल प्राप्त करता है, उसीप्रकार हय सुल प्राप्त करें ।

७ य उग्र इद्य, यंसगः न तिमग्भृताः, पुरः दरोजिथ [ १७०७ ]- वह अग्नि महान् मनुष्योंके समान और है, वेगवान् तेज तीव्रोंवाले बलके समान भयकर वह अग्नि शत्रुओंके नगरोंको तोड़ता है ।

८ शतायानं वैश्वानरं, क्रतुर्य उयोतिव । पतिं अजर्षं धर्म ईमहे [ १७०८ ]- सत्य-यज्ञ मार्गसे जानेवाला सब मनुष्योंका हित करनेवाला, यज्ञके तेजसे रक्षा करनेवाला, अग्नि है । उस आश्रयहित प्रदीप अग्निंको हय शाराधना करते हैं ।

९ या इयं यक्ष्य स्वः उत्तरिज्, प्रति पमधे, वशीं दसुन् उरमुजते [ १७०९ ]- ओ अग्नि इस अज्ञानको

गुणो करनेके लिए यज्ञके तन्त्र विधियोंकी दूर करता है, ऐसी उसकी प्रतिदिष्टि है। यह सबकी अपनेआधीन करके श्रुत्योंको उत्पन्न करता है और उसके कारण सबको मुक्त देता है।

१० भूतस्य अन्वयस्य काम समाम एकं अग्नि-प्रियेषु धामसु विराजति [ १७१० ] - पहलेके तथा आगे होनेवाले जिसकी इच्छा करते हैं ऐसा अकेला ही सभ्यद् अग्नि अपने यज्ञके प्रिय स्थान-यज्ञकुण्ड-में विराजमान होता है।

अग्निना ऐसा घणन इत अघ्यायमें है। अग्निमें योष्य पदार्थोंका हवन करनेसे सब लोग रोगरहित होकर सुखी होते हैं।

### इन्द्र और अग्नि

१ हे इन्द्राग्नी ! दिव्य रोचना यामेषु पारिभूपध., या तव् वीर्यं प्रचेति [ १६९३ ] - हे इन्द्र और अग्ने ! तुलोकको प्रकाशित करनेवाले तुम युद्धमें विजय प्राप्त करके सुशोभित होते हो, तुम्हारा सामर्थ्य ऐसे प्रकट होता है।

२ हे इन्द्राग्नी ! यां तयिष्याणि प्रयासि सधस्यानि युवा आन्द्र्ये हितम् [ १६९५ ] - हे इन्द्र और अग्ने ! तुम्हारे यज्ञ और ज्ञान एक साथ रहते हैं। तुममें शीघ्रतासे कार्य करनेका सामर्थ्य है।

३ तोशा, वृत्रहृणा, सजिग्वाना, अपराजिता याजसातमा इन्द्राग्नी द्वेष [ १७०२ ] - शत्रुओंको बाधा पहुँचानेवाले, शत्रुओंको मारनेवाले, विजयी, पराजित न होनेवाले, अत्रका बान करनेवाले इन्द्र और अग्नि हैं, उनको अपनी सहायताके लिए मैं मूकता हूँ।

४ इन्द्राग्नी ! शसवली-नर्वाति पुरः एकेन कर्मणा साक अध्वनुतम् [ १७०५ ] - हे इन्द्र और अग्ने ! हासिके द्वार रक्षित नगरे नगटोंको एक ही आक्रमणसे तुम्हने हिला बिप्रा।

इस प्रकार इन्द्र और अग्निकी शूत्वीरता और पराक्रमका वर्णन इस अध्यायमें है। ये दूर कुशलतासे युद्ध करनेवाले, कभी भी न हारनेवाले होनेके कारण हमेशा विजयी ही रहते हैं।

### विष्णु

१ विष्णु इद विचक्रमे [ १६९९ ] - विष्णुका यह पराक्रम है।

२ अद्राम्यः गोषा निष्णु, धर्माणि धारयन्, प्रीणि पदा विचक्रमे [ १६७० ] - ग बचनेवाला, समक

संरक्षण करनेवाला विष्णु, सब धर्म-कर्मोंका पालन करने अपने तीन पाशोंसे सब जगत् व्यापता है।

३ त्रिणोः कर्माणि पश्यत, यतः धतानि परपशे, इन्द्रस्य युज्यः सखा [ १६७१ ] - विष्णुके पराक्रमके दर्शन करो, जिसके कारण सबके काम उत्तम रीतिसे चलते हैं। यह विष्णु उत्तम मित्र है।

इन्द्र और विष्णु ये दो देव हैं। विष्णु यह उपेन्द्र है। जैसे अघ्यक्ष और उपाध्यक्ष होते हैं, उसीप्रकार ये " इन्द्र और उपेन्द्र " हैं।

४ सूर्यः विष्णोः तत् परम पद, दिवि आतते चक्षुः इध, सदा पश्यन्ति [ १६७२ ] - ज्ञानी लोग विष्णुके उस परम पदको, तुलोकमें जगत्की आल सुषोंको देखनेके समान, देखते हैं।

५ विष्णो तत् परमं पदं धिप्राल विपन्ययः जागृ-यांसः समिन्धते [ १६७३ ] - विष्णुके उस परम पदको ज्ञानी और जागृत लोग प्रबोधित करके स्वयं देखते हैं।

६ विष्णुः पृथिव्याः अधि खानवि, यतः चिचक्रमे, अत देवाः ना अयन्तु [ १६७४ ] विष्णु पृथ्वीके ऊपर स्थान पर जहासे वह पराक्रम करता रहता है। उस स्थानसे सब देव हमारी रक्षा करें।

विष्णु " उपेन्द्र " ( उप-इन्द्र ) है, वह इन्द्रकी सहायता करता है। अघ्यक्ष उपाध्यक्षके समान ये दोनों एक दूसरेकी सहायता करते हैं। सर्वत्र दिव्यमें विष्णुका पराक्रम रीतिता है। ज्ञानी मनुष्य इसके पराक्रमको देखते हैं। लोग इसके पराक्रमको देखें और स्वयं भी पराक्रमी बनें।

### सोम

१ हे सखाय ! यूय सूर्यः चयं च त पुरुत्त वाजगंधर्व्य अद्ययाम, वाजस्यस्पर्धं स्नेम [ १६८० ] - हे मित्रो ! तुम विद्वान् और हम मिलकर उस बहुत चमकनेवाले तथा उत्तम सुगन्धसे युक्त सोमको पीते, बल बढ़ानेवाले सोमको पीते।

२ ह्येतं हरिं यष्टुं त्व धोरेण परि पुनस्ति, य विद्यान् देवान् गच्छति [ १६८१ ] - भगोहर, दु लहण करनेवाले, अरण्य घोषण करनेवाले उस सोमको छलनीसे छाते हैं। उसके बाद यह सोम देवोंकी ओर जाता है।

३ अद्रिमि स्वान, अन्वया चाराणि तिरः धा, हरिः चम्बोः विशत् धनेषु सदाः दधिषे [ १६८६ ] - परधरोंने बूटकर विजोडा गया तब भेड़के बालोंकी छलनीसे

छाना जाता है । यह हरे रंगका सोमरस कलत्रमें उतरता है । कर्पूरिके बर्तनमें अपना स्थान बनाता है ।

४ वाजसुः सद्भिद्यान् पचमानः सोमः प्रोष्यः अच्यवति तिरः विप्रैर्मिः प्रासृजे [ १६९० ]— यद्य यवानेवाला, पीयं यवानेवाला, योबेके ताम्र प्रेय करनेके योग्य, ऐसा यह छाना जानेवाला सोम भेङ्के बालोंकी छलनीसे छाना जाता है, तथा सानियों द्वारा प्रशंसित होता है ।

५ शुक्रानि इन्द्रयः पचमानाः सोमाः विश्वानि वाज्या अभि असृक्षत [ १६९१ ]— स्वच्छ और चमकनेवाले छाने जानेवाले सोमरस वेदमंत्रों द्वारा प्रशंसित होते हुए गूढ़ किए जाते हैं ।

६ पचमानाः दिव्यः पृथिव्याः अधि सानपि पर्य-सृक्षत [ १७०० ]— गूढ़ होनेवाला सोमरस धूलिकीसे पृथ्वीके ऊंचे भागमें फैल्यार बिचा जाता है ।

७ आशायः शुभ्रः पचमानासः इन्द्र्यः विश्वानि विष्यः अपग्रन्तः असृग्रम् [ १७०१ ]— बेगवान्, पुत्र और गूढ़ होनेवाले सोमरस सब प्राणुओंको मष्ट करते हुए कलत्रमें पाते हैं ।

सोमलता परपरसे कूटी जाती है । बाधमें उसका रस निकाला जाता है, फिर उसमें पानी मिलाकर भेङ्के बालोंकी छलनीसे छाना जाता है । यह छाना गया सोमरस कलत्रमें भरकर रखते हैं । इस समय वेदपाठ उच्च स्वरसे किया जाता है । यह सोम हिय पर्वसे पर ऊँचाई पर होता है । बहामें यह यज्ञ करनेके स्थान पर लाया जाता है, और उससे रस तैय्यार किया जाता है । छानकर इस रसके तैय्यार होनेके बाद उसे देवोंके लिए अर्पित किया जाता है, फिर यज्ञ करनेवाले स्वयं इस सोमरसकी पीते हैं । इसके पीनेसे शरीरमें शक्ति बढ़ती है और मनका उत्साह बढ़ता है, तथा सब प्राणुओंकी हृदयका सामर्थ्य मनके अन्दर पैदा होता है ।

### सुभाषित

१ शरीरय श्वाय पन्थं सोमं आधाघत [ १६५७ ]— नूरबीर इन्द्रकी प्रशंसनाय सोमरस पहुंचाओ ।

२ प्रहस्युजा शम्मा हरी इह सखायं निर्यपलं इन्द्रं आघधतः [ १६५८ ]— ताबके कहते ही रथमें बैठ जानेवाले, बुलबुली बो छोटे इस यज्ञमें नित्र और स्तुत्य इन्द्रकी तैकर आंमें ।

३३ [ ताम हिवी मा ५ ]

३ दाते ऊतिः दृमहा नियमते [ १६५९ ]— संकरो सामनेसे संरक्षण करनेवाला, पुत्रका पथ करनेवाला इन्द्र प्राणुओंको बुर करता है ।

४ त्वां न अतिरिच्यते [ १६६० ]— हे इन्द्र ! तेरी अपेक्षा और कोई भेङ्ग नहीं ।

५ हे दृपन् जायये ! भूहिना विन्यय [ १६६१ ]— हे बलवान् और जागृत रहनेवाले ! तू अपने महत्त्वसे सभको व्यापता है ।

६ हे जयशोध ! विशेषे विशेषे रुद्राय दुर्गाके [ १६६३ ]— हे जागृत रहकर सबको जाननेवाले जगने ! प्रत्येक मनुष्यके हित करनेवाले रुद्र बेभताके लिए सुन्दर स्तोत्र बोले ।

७ मः शिष्ये गाजाय हिन्दुतु [ १६६४ ]— हमें बुद्धि यज्ञसे व अन्न प्राप्त करनेके लिए प्रेरित कर ।

८ वैष्यः विद्वपातेः दृहङ्गायुः केतुः सः रेवान् इव नः उकथैः गृणोतु [ १६६५ ]— विष्य प्रजापालक महान् प्रकाशमान् और धनज्ञके समान प्रीणित होनेवाला धनवान् जनि राजाके समान हमारे स्तोत्र सुने ।

९ पुत्रहृत्विष्य सत्यने तत् सचा माय, तत् प्राकिने मां [ १६६६ ]— बहुत लीप जिसे सहायताके लिए बुलाते हैं, उसा बलवान् इन्द्रके लिए स्तोत्र एक गणह बंडकर पावो, उससे शक्तिमान् इन्द्रको आनन्द मिलता है ।

१० यस्तुः गोमतः वाजस्य दानं न घ नियमने [ १६६७ ]— सभको बसानेवाले इन्द्रको गायके रूपसे होनेवाले अन्नके दाप करनेसे कोई शोक नहीं सकता ।

११ वसु—हा सुवितरस्य गोमन्ते ब्रजं मा गमत्, हि दाचीभिः सः [ माः ] अपवरत् [ १६६८ ]— नानुओंको मारनेवाला इन्द्र जब बहुत हिंसा करनेवाले क्षत्रुओंकी मांसे भरे हुए वादेपर अपना अधिकार करता है, तब यह अपनी शक्तितो हमारे गायोंकी बूढ़कर हमें देता है ।

१२ विष्णुः इदं विचक्रमे [ १६६९ ]— विष्णुने यहां पराक्रम किया ।

१३ अदाभ्यः गोपाः विष्णुः धर्माणि धारयन् पदा विचक्रमे [ १६७० ]— न बननेवाला सरसक विष्णु सभके करने योग्य कर्मका पोषण करता हुआ अपने पौरुषसे सब जागृत पर आक्रमण करता है ।

१४ विष्णोः कर्माणि पदयत, यत यतानि पस्परो इन्द्रस्य सुत्रयः सखा [ १६७१ ]— विष्णुके कर्मोंको देखो ! मिलके कारण सबके कार्य उत्तम रीतिते चलते हैं । यह विष्णु इन्द्रका पोषण निज है ।

१५ सूर्यः विष्णोः तत् परमं पदं, दिवि धातवं चक्षुः इव, सदा पश्यन्ति [ १६७२ ]- शानी लोग विष्णुके उत अंध स्थानकी, जितप्रकार बाकाशर्म प्रकाशकी फंसाने-वाले विश्वके मंत्रहयी सूर्यकी लोग देखते हैं, उतप्रकार हमेशा देखते हैं ।

१६ विष्णोः तत् परम पदं विप्रासः जागृयांसः विपश्यवः यत् समिन्धते [ १६७३ ]- विष्णुके उत अंध स्थानकी शानी जाग्रत रहकर स्तुति करनेवाले प्रदीप्त करते हैं ।

१७ हे इन्द्रः ! घाघतः त्वा अस्त्व आरे मा निरीरमन् [ १६७५ ]- हे इन्द्र ! स्तुति करनेवाले मनुष्य तुझे हमसे दूर ले जाकर मानन्वित न करें ।

१८ आरास्ताव नः सधमार्दं आगहि [ १६७५ ]- भले ही तू दूर हो फिर भी बहूँसे हमारे यामें आ ।

१९ इह सन् उपश्रुधि [ १६७५ ]- यहां रहकर हमारी स्तुति सुन ।

२० इन्द्रः बृहतीः रायः सं अधुनुत [ १६७८ ]- इन्द्र बहुत सारा धन हमें देवे ।

२१ इन्द्रः क्षोणीं सं अधुनुत [ १६७८ ]- इन्द्र हमें भूमि देवे ।

२२ वृत्र-हत्येषु चोदय [ १६८१ ]- अपने भक्तोंकी शत्रुके बधकी प्रेरणा कर ।

२३ हे हर्षय ! सव प्रणीतीं स्तुरिभिः विभ्यां सुरिता तरेम [ १६८३ ]- हे उत्तम घोड़े चलनेवाले इन्द्र ! तेरी प्रेरणासे विद्वानोंके साथ हम सब पापोंसे मुक्त हों ।

२४ हे हरीणां स्वातः इन्द्र ! ते धूर्व्यस्तुतिं शयसा न किं उदानंदा, भन्दना न [ १६८५ ]- हे घोड़े चलने-वाले इन्द्र ! तेरी स्तुतिकी अपने बलसे कोई प्राप्त नहीं कर सकता ।

२५ अस्य वयुनेषु उरामधिः चारणः सुकञ्चित् आभूयति [ १६९१ ]- इस इन्द्रके मार्गमें कष्ट देनेवाला और विषम शालनेवाला कोई क्रूर भी हुआ तो वह भी इसके अनुकूल होकर इसकी सेवा करने लगता है ।

२६ हे इन्द्र ! चित्रया धिया प्र आगहि [ १६९२ ]- हे इन्द्र ! अपनी उत्तम बुद्धिके साथ तू बहूँ आ ।

२७ हे इन्द्राग्नी ! दिव रोचना चाजेषु परिभूयथः धीयं तात् प्रचेति [ १६९३ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! धुलोककी प्रशंसा करनेवाले तुम मुझमें विजयी होकर बोधित होते हो । तुम्हारा सामर्थ्य इस प्रकार प्रकट होता है ।

२८ धीतयः ऋतस्य पथ्या अनु अपसः परि उप प्रयन्ति [ १६९४ ]- शानी साथ मार्गसे जाकर कर्मकी सिद्धि-की प्राप्त करते हैं ।

२९ धां तवियाणि प्रयांसि सधस्थानि, युवो अन्दूर्यं हितम् [ १६९५ ]- बुम्हारे बल और ज्ञान एक साथ रहते हैं । तुममें शीघ्रतासे कार्यको समाप्त करनेका सामर्थ्य है ।

३० य शिमीं शोजसा पुरा विभिनसि [ १६९६ ]- जो इन्द्र अपने सामर्थ्यसे शत्रुके नगरोंको तोड़ता है ।

३१ त्या न किं नियामत् [ १६९७ ]- तुझे कोई भी रोक नहीं सकता ।

३२ नः महान् शोजसा वारसि [ १६९७ ]- हमारे लिए तू बहान् है, और अपने सामर्थ्यसे तू सब जगह विघ्नरता है ।

३३ यः उग्रः सन् अनिधृतः स्थिरः रणाय संस्कृतः [ १६९८ ] जो उग्रवीर है, और न हारता हुआ मुझमें जो स्थिर रहता है और मुझके लिए सदा सँघ्यार रहता है ।

३४ आशयः विभ्याः त्रिषा अपग्रन्तः [ १७०१ ]- घेगवान् वीर सब शत्रुओंका नाश करते हैं ।

३५ तोशा बृत्रहणा राजित्याना अपराजितां शत्रुं सातमा इन्द्राग्नीं हुवे [ १७०२ ]- शत्रुओंका नाश करने-वाले, शत्रुको मारनेवाले, शत्रुओंकी जीतनेवाले, स्वयं ध्वस्त गित, अन्न देनेवाले इन्द्र और अग्निकी में मुझता हूँ ।

३६ इयः आपुणे [ १७०३ ]- अन्न प्राणिके लिए मैं उनकी स्तुति करता हूँ ।

३७ हे इन्द्राग्नी ! दासपत्नीः नवतिं पुरः एकैक कर्मणा साकं अधुनुतम् [ १७०४ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! दासोंके द्वारा रक्षित नये नगरोंकी तुमने एक आक्रमणसे ही नष्ट कर दिया ।

३८ हे अग्ने ! पुरः रजोधि [ १७०३ ]- हे अग्ने ! तूने शत्रुओंके नगरोंको तोड़ा ।

३९ ऋतावानं वैभानर ऋतस्य ज्योतिषः पतिं अजस्रं धर्म ईमते [ १७०८ ]- यज्ञ करनेवाले, सब लोगोंका कल्याण करनेवाले, यज्ञकी सेवासे रक्षा करनेवाले, जिसे कोई धान्सा नहीं पहुँचा सकता ऐसे प्रयत्नित अग्निकी हम आराधना करते हैं ।

४० यः इदं यज्ञस्य स्वः उत्तरान् प्रतिपद्ये [ १७०९ ]

— जो यज्ञके स्वत्वका रक्षण करता है, यज्ञके विघ्नोंको दूर करता है, ऐसा यह अग्नि प्रसिद्ध है ।

४१ भूतस्य भव्यस्य कामः एकः सम्राट् अग्निः प्रियेषु धामसु विराजति [ १७१० ]— पूर्व उत्पन्न हुए और भागे होनेवाले, मित्रको इच्छा करते हैं, ऐसा अग्नितीय सम्राट् अग्नि अपने मिय ऐसे यज्ञके स्वत्वमें विराजता है ।

### उपमा

१ सिन्धवाः समुद्रं इव [ १६६० ]— जैसे नदियां समुद्रमें मिलती हैं, ( इन्द्रयः त्वा आविशन्तु ) वैसे ही वे नोमरत हे इन्द्र ! तुझमें प्रविष्ट हों ।

२ रेवान् इव [ १६६५ ]— यन्वान् राजाके समान ( वृषद् भानुः नः उपधेभिः शृणोतु ) विनोय प्रकाशमान अग्नि हमारे स्तुति सुने ।

३ तत् गवे न [ १६६६ ]— गावोंको जैसे घास ग्रिय होती है, उसीप्रकार ( शाकिने शं ) शाकितमान् इन्द्रको ये स्तोत्र ग्रिय लगते हैं ।

४ द्विवि आतर् चक्षुः इव [ १६७२ ]— आकाशमें जिसप्रकार प्रकाशमान सूर्य बोलता है, उसीप्रकार ( विष्णोः परमं पदं सूर्यः पश्यन्ति ) विष्णुके थोडे स्थानको सानी देखते हैं ।

५ मयी मशः न [ १६७६ ]— दाहकी मधुमक्षिणां जिसप्रकार इकट्ठी होती है, उसीप्रकार ( प्रसिद्धताः सच्चा आसते ) स्तुति करनेवाले एकत्र बँधकर स्तुति करते हैं ।

६ पुरिः जनः न [ १६८९ ]— नगरमें जैसे मनुष्य जाता है, उसीप्रकार ( घनेषुः सद्ः दधिषे ) लकड़ोंके बर्तनमें सोम अपना स्थान प्राप्त करता है ।

घनं— लकड़ोंके बर्तन, लकड़ोंके बगलमें रंधा होती है, और लकड़ोंसे धोमपाय बनता है अतः लकड़ोंके बर्तनको ' घने '—जगल कह दिया । अंशके लिए पूर्णका प्रयोग करना वेदकी शैली है ।

७ सासिः न [ १६९० ]— घोड़ोंके समान प्रेय करने लायक ( सः स्तोमः ) यह तोम है ।

८ मृगः वारुणः वानः न [ १६९५ ]— मनुको लीजनेवाले मरुमत्त हाथीके समान ( पुरुषा रथं दधे ) अपने रथको तू आगे सथावित करता है ।

९ छाया इव [ १७०६ ]— जैसे धूपसे तथा धुआ मनुष्य छायामें आकर आनन्दित होता है, उसीप्रकार ( ते शर्मं वर्धं उप गन्म ) तेरे आश्रयमें हम आनन्दित हों ।

१० घन्वी इव [ १७०७ ]— घनुर्धारी वीरके समान ( यः उग्रः ) जो उग्रवीर है ।

११ तिम्रमृगः धंसगः न [ १७०७ ]— तेज सीनोंवाले बँलके समान वह इन्द्र पराक्रमी है ।

### अष्टादशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदस्थान	ऋषिः	देवता	छन्द.
१६५७	८।१।१५	मेधातिथिः काण्वः प्रियमेयश्वागिरसः	इन्द्रः	गायत्री
१६५८	८।१।१७	मेधातिथिः काण्वः प्रियमेयश्वागिरसः	"	"
१६५९	८।१।१९	मेधातिथिः काण्वः प्रियमेयश्वागिरसः	"	"
१६६०	८।१।२१	श्वतकलः मुकली वा आगिरसः	"	"
१६६१	८।१।२३	श्वतकलः मुकली वा आगिरसः	"	"
१६६२	८।१।२४	श्वतकलः मुकली वा आगिरसः	"	"
१६६३	१।१७।१०	दुम श्रेष आजीर्गतिः	अग्नि	"



मंत्रसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
१६६४	१।१७।११	शुन.शेष आजीगतिः	अग्नि	गायत्री
१६६५	१।१७।१२	शुन.शेष आजीगतिः	"	"
१६६६	६।४।५।२२	शंयुर्वाहृत्स्वत्यः	इन्द्रः	"
१६६७	६।४।५।२३	शंयुर्वाहृत्स्वत्यः	"	"
१६६८	६।४।५।२४	शंयुर्वाहृत्स्वत्यः	"	"
( २ )				
१६६९	१।२२।१७	मेघातिथिः काण्वः	विष्णुः	"
१६७०	१।२२।१८	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१६७१	१।२२।१९	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१६७२	१।२२।२०	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१६७३	१।२२।२१	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१६७४	१।२२।२२	मेघातिथिः काण्वः	देवा वा	"
१६७५	७।३२।११	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	इन्द्रः	प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती )
१६७६	७।३२।१२	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
१६७७	८।१५।१९	बालविल्यम् ( आयुः काण्वः )	"	"
१६७८	५।५२।१।०	बालविल्यम् ( आयुः काण्वः )	"	"
१६७९	६।१८।१।०	अम्बरीषो वार्यागिरः ऋजिस्वा भारद्वाजश्च	पथमानः सोमः	अनुष्टुप्
१६८०	९।१८।१।२	अम्बरीषो वार्यागिरः ऋजिस्वा भारद्वाजश्च	"	"
१६८१	९।१८।३	अम्बरीषो वार्यागिरः ऋजिस्वा भारद्वाजश्च	"	"
१६८२	७।३२।१३	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	इन्द्रः	प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती )
१६८३	७।३२।१५	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
( ३ )				
१६८४	८।१९।१६	विश्वमना वैश्वर्यः	इन्द्रः	उत्थिग्व्
१६८५	८।१९।१७	विश्वमना वैश्वर्यः	"	"
१६८६	८।१९।१८	विश्वमना वैश्वर्यः	"	"
१६८७	८।१९।१९	सोमरो- काण्वः	अग्निः	कङ्कुभः प्रगाथः- ( विषमा कङ्कुभः समा सतोबृहती )
१६८८	८।१९।२०	सोमरो- काण्वः	"	"
१६८९	९।१०।७।१०	सुप्तर्वयः	पथमानः सोमः	प्रगाथ = ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती )
१६९०	९।१०।७।११	सुप्तर्वयः	"	"
१६९१	८।१६।३	कस्त्रिः प्रगाथः	इन्द्रः	"
१६९२	८।१६।४	कस्त्रिः प्रगाथः	"	"
१६९३	३।१२।१९	विश्वामित्रः प्रगाथः	इन्द्राग्नी	गायत्री
१६९४	३।१२।२०	विश्वामित्रः प्रगाथः	"	"
१६९५	३।१२।२१	विश्वामित्रः प्रगाथः	"	"

अष्टादश अध्याय ]

सामवेदका सुयोध अनुवाद

मन्त्रसंख्या	श्रव्येदस्थानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
१६९६	८।३३।७	मेध्यातिथिः काव्यः	इन्द्रः	बृहती
१६९७	८।३३।८	मेध्यातिथिः काव्यः	"	"
-१६९८	८।३३।९	मेध्यातिथिः वाक्वः	"	"

( ४ )

मन्त्रसंख्या	श्रव्येदस्थानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
१६९९	९।६३।१५	निधुकिः काश्यपः	पवमानः सोमः	गायत्री
१७००	९।६३।१७	निधुकिः काश्यपः	"	"
१७०१	९।६३।१६	निधुकिः काश्यपः	"	"
१७०२	१।१९।३	विश्वामित्रः प्रागापः	इन्द्राग्नी	"
१७०३	१।१९।५	विश्वामित्रः प्रागापः	"	"
१७०४	१।१९।६	विश्वामित्रः प्रागापः	"	"
१७०५	६।१६।७	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	अग्निः	"
१७०६	६।१६।८	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१७०७	६।१६।९	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१७०८	अपर्यं ६।३६।१	अपर्वा ( इवस्तपनकामः )	"	"
१७०९	—	—	"	"
१७१०	—	—	"	"



## अथैकोनविंशोऽध्यायः ।



भयाष्टमपाठके एतायोऽर्चः ॥ ८-३ ॥

[ १ ]

( १-१८ ) १ विरूप आगिरतः; २, १८ अक्षसारः काम्ययः; ३ विप्रथामिनो गायिनः; ४ देवातिथिः काण्यः; ५, ८, ९, १६ गौतमी बहूमयाः; ६ वामदेवो गौतमः; ७ प्रस्कण्यः काण्यः; १० वस्तुभूत आनेयः; ११ ततयथा आनेयः; १२ अक्षपुरात्रेयः; १३ वृषयविष्टिरायात्रेयो; १४ कुस्त आगिरतः; १५ अविनीमः, १७ दोषंतया औचम्यः ॥ १, १०, १३ अग्निः; २, १८ पबमानः सोमः; ३-५ इन्द्रः; ६, ८, ११, १४ ( १ उत्तरार्चः राविद्वय ), १६ उषाः; ७, ९, १२, १५, १७ अस्मिनी ॥ १-२, ६-७, १८ गायत्री; ३, १३-१५ विष्टयुः; ४-५ प्रगाथः- ( विप्रमा बृहती, सप्ता सतोबृहती ); ८-९ उष्णिकः; १०-१२ पट्टितः; १६, १७ जमती ॥

१७११ अग्निं प्रनेन जन्मना शुम्भानस्तन्व २५ स्वांम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१॥ ( ऋ. ८।४४।१२ )

१७१२ ऊर्जां नपातमा ह्रुवेऽग्निं पावकशोचिपम् । अस्मिन्पक्षे स्वध्वरे ॥२॥ ( ऋ. ८।४४।३ )

१७१३ स नो मित्रमहस्त्वमग्नें शुक्रेण शोचिषा । देवैरा ससिं वहिषि ॥३॥ १ ( जी ) ॥

[ धा० ९। उ० नासि । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।४४।१४ )

१७१४ उचै शुभ्रासो अस्पृ रक्षो भिन्दन्तो अद्रिषः । नुदस्व या परिरस्पृधः ॥१॥ ( ऋ. ९।५३।१ )

१७१५ अयां निज्जित्तिरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्ववा अविस्पुषा हृदा ॥२॥ ( ऋ. ९।५३।२ )

[ १ ] प्रथमा स्वरुणः ।

[ १७११ ] ( कविः अग्निः ) सानो अग्नि ( प्रनेन जन्मना ) प्राचीन स्तोत्रते ( स्वां तन्वं शुम्भानः ) अर्पते तेभ्योभ्य शरीरयो ह्युतोभित करते हृष्ट ( विप्रेण वावृधे ) ब्राह्मणैक द्वारा प्रकील किया जाता है ॥ १ ॥

[ १७१२ ] ( ऊर्जाः न-पातं ) बलको रूप न करनेवाले ( पावक-शोचिषं ) पवित्रता करनेवाले प्रकारसे युक्त ( अग्निं ) अग्निरु ( अस्मिन् स्वध्वरे यमे ) इस उत्तम हितारहित यज्ञमें ( आह्वये ) हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ १७१३ ] ( मित्र-महः अग्ने ) हे मित्रके द्वारा पूज्य अग्ने ! ( सः रथं ) यह दू ( शुक्रेण शोचिषा ) युद्ध यज्ञान्प्रति युक्त होकर ( देवैः वहिषि आसस्ति ) देवके साथ इस यज्ञमें आकर बँट ॥ ३ ॥

[ १७१४ ] हे ( अद्रिषः सोम ) पत्परीम बूटे जानेवाले सोम ! ( ते शुभ्रासः ) तेरे बल ( रक्षः भिन्दन्तः ) राजर्षीना नाश करते हृष्ट ( उदस्पृधः ) ऊपर आने हैं । ( याः परिरस्पृधः ) जो शुभ्रासना करनेवाले दानु हैं, उन्हें ( नुदस्व ) दूर कर ॥ १ ॥

[ १७१५ ] हे सोम ! दू ( अयां ओजसा निज्जितः ) इस बलसे दानुओंको मध्य करता है, ऐसे तेरी हय ( अविस्पुषा हृदा ) निर्मय बल करनेमें ( रथसंगे हिते ) रथके युद्धमें दानुओंके मध्य होनेपर ( धने स्वयं ) धनही भाजितके लिए ह्युति करते हैं ॥ २ ॥

१७१६ अस्थ व्रतानि नाभूयं पवमानस्य दृढया । रुज यस्या पृतन्याति ॥३॥ ( ऋ ९।६।३।३ )

१७१७ अ० द्विन्वति मदच्युत० हरिं नदीपु वाजिनम् । इन्द्रुमिन्द्राय मत्सरम् ॥४॥ २ ( पी ) ॥  
[ धा० २० । उ० १ । २०० ४ ] ( ऋ. ९।६।३।४ )

१७१८ आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्षोहि मपुरोमभिः ।  
मा त्वा के चिन्नि येषुरिन्द्र पाशिनोजति धन्वेव ता० इहि ॥१॥ ( ऋ. ३।४।१।१ )

१७१९ वृत्रादा वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।  
स्थाता रथस्य हयोरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदा रुजः ॥ २ ॥ ( ऋ ३।४।१।२ )

१७२० गम्भीरा० उदर्धो०रिव क्रतु पुष्यसि गा इव ।  
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा हृदं कुत्वा इवाशत ॥ ३ ॥ ३ ( छा ) ॥  
[ धा० १७ । उ० २ । २०० २ ] ( ऋ ३।४।१।३ )

१७२१ यथा गौरो अपा कृत्वं तुष्यन्त्यवोरिणम् ।  
आपित्वे नः प्रपित्वे तृपमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।३ )

[ १७१६ ] ( पवमानस्य अस्य व्रतानि ) छाने जानेवाले इस सोमके कर्षते ( दृढया न आभूये ) बृष्ट दासत प्रगति नहीं कर सकते । हे सोम ! ( य. त्वा पृतन्याति ) जो तुझ पर तेना भेजनेकी इच्छा करता है, उसे ( रुज ) नृ मत् करे ॥ ३ ॥

[ १७१७ ] ( मदच्युतं हरिं ) आनन्द देनेवाले हरे रथके ( वाजिनं मत्सरं ) बल और उत्साह बढ़ानेवाले ( सं हृदुं ) इस सोमको ( नदीपु ) पानीमें ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( द्विन्यति ) मिलाले है ॥ ४ ॥

[ १७१८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( मन्द्रैः मयूर रोमभिः हरिभिः ) आनन्द देनेवाले, मोरके पंखोंके समान बालोंवाले घोड़ोंके नृ ( आयाहि ) यहा यत्नमें आ । ( केचिन्नि त्वा ) कोई भी तुझे ( पाशिनः न ) जाल डालनेवाले शिकारी जितप्रकार पशियोंको बकजते हैं, उसीप्रकार ( मा निपेसु ) न बकटे । ( धन्वेव तान् अति इहि ) देमिस्तानके समान उन्हें छोड़कर महा आ ॥ १ ॥

[ १७१९ ] ( इन्द्रः ) वह इन्द्र ( वृत्र-दादः ) वृत्रका नाश करनेवाला ( वलं रुजः ) बल प्राप्तकी क्षमता करनेवाला ( पुरां दर्मः ) शत्रुके नगर तोड़नेवाला ( अपां अजः ) पत्नीको वृष्टि करनेवाला ( हयोरः अभिस्वरे रथस्य स्थाता ) घोड़ोंके रथमें बैठनेवाला ( दृढाचिद् आरुजः ) बलवान् शत्रुको भी हरानेवाला है ॥ २ ॥

[ १७२० ] हे इन्द्र ! नृ ( गम्भीरान् उदर्धान् इव ) गम्भीर समुद्रको पुष्ट करनेके समान ( क्रतु पुष्यसि ) यत्नका पोषण करता है । जितप्रकार ( सु-गोपाः ) उत्तम गोपालक ( गाः इव ) गायोंको उत्तम घास आदि देकर पुष्ट करता है, ( यथा धेनवः यवसं प्र ) जितप्रकार गायें घास खाती हैं, अथवा ( कुत्वा हृदं इव आशते ) मधिया जितप्रकार तालावमें मिलती हैं उसीप्रकार सोम तुझे प्राप्त होता है और पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

[ १७२१ ] ( गौरो तुष्यन् ) जैसे हिरण प्यासा होकर ( यथा अपाकृतं हरिषां पति ) पानीसे भरे हुए तालाबकी ओर जाता है, उसीप्रकार हे इन्द्र ! नृ ( नः नृसं ) हमारे पास वीरुहों ( आपित्वे प्रपित्वे आगहि ) मित्र भावनासे आ और ( कण्वेषु सचा सु पिब ) कण्वोंके पासमें बैठकर सोम पी ॥ १ ॥

१७२२ मन्दन्तु त्वा मघवस्त्रिन्द्रेन्द्यो राधादेयाय सुप्रते ।  
आष्टुष्या सोममपिचक्ष्म सुते ज्येष्ठे तदधिपे सहः ॥ २ ॥ ४ ( घ ) ॥  
[ धा० २१ । उ० ४ । स्व० १ ] ( ऋ ८४४४ )

१७२३ स्वमङ्ग प्र ऋधसिपो देवः श्विष्टि मर्त्यम् ।  
न त्वन्द्यो मघवस्तस्मिन्निन्द्रे अवीमि ते वचः ॥ १ ॥ ( ऋ १८४१९ )

१७२४ मा ते राधाधसि मा ते ऊतयो वसाऽसानकदा चना दमन् ।  
विश्वा च न उपमिमीहि मानुप वद्वनि चर्मणिभ्य आ ॥ २ ॥ ५ ( का ) ॥  
[ धा० २१ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ १८४१९० )  
॥ इति प्रथम खण्ड ॥ १ ॥

[ २ ]

१७२५ प्रति ष्या सुनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदधि दुहिता ॥ १ ॥ ( ऋ ४१९२१ )  
१७२६ अश्वेव चित्रारुषी माता भवामृतावरी । सखा भूदश्विनारुषाः ॥ २ ॥ ( ऋ ४१९२१२ )  
१७२७ उत सखाश्विनोऽरुष माता गवामसि । उतोषो वस्व ईश्विपो ॥ ३ ॥ ६ ( लि ) ॥  
[ धा० २१ । उ० नारि । स्व० ३ ] ( ऋ ४१९२१३ )

[ १७२२ ] हे ( मघवन् इन्द्र ) घनवान् इन्द्र ! ( सुन्वते राध, देयाय ) सोम याग करवानेको घन देनेके लिए ( इन्द्रचः त्वा मन्दन्तु ) सोमरस तुझे प्रसन्न करें । तू ( चक्ष्मसुते सोमं थासुष्य अपिचः ) कलशमें रखे गए सोम-रसको अलवीते लेकर पीता है । ( तद् ज्येष्ठे सहः दधिपे ) क्योंकि तू विशेष बल धारण करता है ॥ २ ॥

[ १७२३ ] ( अंग श्विष्टि ) हे मित्र और बलवान् इन्द्र ! ( देवः ) तेजस्वी ऐसा तू ( मर्त्यं प्रशंसिष्यः ) स्तुति करनेवाले मनुष्यकी प्रशंसा करता है । हे ( मघवन् इन्द्र ) घनवान् इन्द्र ! ( त्वद् अन्वयः मर्दिता न अस्ति ) तेरे सिवाय दूसरा कोई गुण देनेवाला नहीं, इसलिए ( ते वचः अवीमि ) मैं तेरी स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ १७२४ ] हे ( वसो ) निवासक इन्द्र ! ( ते राधाधसि ) तेरे घन ( असान् श्वान्कदा चना दमन् ) हर्म कभी नष्ट न करें । ( ते ऊतय मा ) तेरे सरक्षणके साधन हमारा नाम न करें । हे ( मानुप ) मनुष्योंका हित करनेवाले इन्द्र ! ( नः चर्मणिभ्य- ) हम प्रजाजनोंकी ( विश्वा वद्वनि आ उप मिमीहि ) सब घन लाकर दे ॥ २ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्ड ।

[ १७२५ ] ( श्या सुनरी ) उत उतम प्रेरणा देनेवाली ( जनी ) फल देनेवाली ( स्वसुः परि व्युच्छन्ती ) अपनी बहिष्के समान रात्रीके उत्तरभागमें प्रकाशित होनेवाली ( दिवः दुहिता ) सूर्यको पुत्री उद्य ( प्रत्यदर्शिनः ) दोसरे लग गई है ॥ १ ॥

[ १७२६ ] ( अश्व्या इय चित्रा ) घोड़ोंके समान सुन्दर ( अश्वरी गवां माता ) चमकनेवाली किरणोंको माता ( प्रतावरी उषा ) धन करनेवाली उषा ( श्विष्टिनोः सखा भूभूत् ) अश्विनो केबोंकी मित्र हो गई है ॥ २ ॥

[ १७२७ ] ( उत अश्विनोः सखा अस्ति ) और तू अश्विनो कुमारोंकी मित्र है । ( उत गवां माता अस्ति ) और किरणोंकी माता है ( उत ) इसलिए तू हे ( उषः ) उषे ! ( वस्यः ईश्विपो ) तू घन पर प्रभुता करती है ॥ ३ ॥

१७२८ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रियां दिवः । स्तुषे वामश्विना घृहत् ॥१॥ ( ऋ. १।४६।१ )

१७२९ या दत्ता सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥२॥ ( ऋ. १।४६।२ )

१७३० वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टयि । यद्वा रथो विमिष्वत् ॥३॥ ७ ( लि ) ॥  
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १।४६।३ )

१७३१ उपस्तश्चित्रमा भ्रासभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १ ॥  
( ऋ. १।९२।१३ )

१७३२ उषो अद्यह गोमत्पश्यावति विमावरि । रेवदस्मे व्युच्छ स्तुतावति ॥२॥ ( ऋ. १।९२।१४ )

१७३३ युक्ष्वा हि वाजिनीवत्पशा र्था अघारुणा र्था उपः ।  
अथा नो विश्वा सौमगान्या वह ॥ ३ ॥ ८ ( हि ) ॥  
[ धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १।९२।१५ )

१७३४ अश्विना चर्तितसदा गोमदत्ता हिरण्यवत् । अत्राप्रथ र्था समनसा नि यच्छतम् ॥ १ ॥  
( ऋ. १।९२।१६ )

१७३५ एह देवा मयौसुव दत्ता हिरण्यवर्तनी । उषुधो वहन्तु सौमपीतये ॥२॥ ( ऋ. १।९२।१८ )

[ १७२८ ] ( यषा प्रिया अपूर्व्या उषाः ) यह प्रिय अपूर्व उषा ( दिवः व्युच्छति ) घुलीकती प्रकाशित करती है । हे ( अश्विनी ) अश्विनीकुमारो ! ( यां घृहत् स्तुषे ) तुम्हारे बहुतसी स्तुति में करता हूँ ॥ १ ॥

[ १७२९ ] ( या देवा ) ओ अश्विनी देव ( दत्ता ) शत्रुका नाम करनेवाले ( सिन्धुमातरा ) नदियोंकी उपरत करनेवाले ( रयीणां मनोतरा ) पन देनेवाले ( धिया वसुविदा ) बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवालोंकी पन देनेवाले हूँ ॥ २ ॥

[ १७३० ] हे अश्विनी देवो ! ( वां रथ ) तुम्हारा रथ ( जूर्णायामधि विष्टयि ) प्रगल्भीय स्वयंलोकमें ( यत् विमिः पत्ता ) जब परिशोते ले जाया जाता है, उस समय ( वां ) तुम्हारे सिध ( ककुहासः वच्यन्ते ) स्तोत्र बोले जाते हूँ ॥ ३ ॥

[ १७३१ ] हे ( वाजिनीवति उपः ) हवनोंको प्रारम्भ करनेवाली उपे ! ( अश्वभ्यं तत् चित्र आभर ) हमें वह विलक्षण पन भरपूर दे, ( येन तोकं तनयं च धामहे ) जिसको सहायतासे पुत्रपौत्रोंका रक्षण हम कर सकें ॥ १ ॥

[ १७३२ ] ( गोमति ) गायेंति मुक्त, ( अश्यायति ) घोड़ेंति मुक्त, ( स्तुतावति विमावरि उपः ) पक्षी मुक्त और तेजस्विनी उपे ! ( अद्य इह ) आज यहाँ ( अस्मे रेवत् व्युच्छ ) हमें तू पनपुस्त कर ॥ २ ॥

[ १७३३ ] हे ( वाजिनीवति उपः ) पक्षोंकी मुक्त करनेवाली उपे ! ( अघारुणा अश्वान् ) लाल रणके घोड़ोंको ( अथा युक्ष्वा हि ) अपने रथमें आज जोड़ और ( विश्वा सौमगानि नः आघव ) सब सोनाप हमें दे ॥ ३ ॥

[ १७३४ ] हे ( अश्विना ) अश्विदेवो ! ( दत्ता ) शत्रुका नाम करनेवाले तुम ( वसुद्वं चर्तितं वा ) हमारे परकी तरह आशु-पतझालकी ओर आओ । ( गोमत् हिरण्यवत् रथ ) गाय और मुक्तये मुक्त रथको ( समनसा अघाक् नियच्छतम् ) पन पूर्वक हमारे पास लाओ ॥ १ ॥

[ १७३५ ] ( उपसुधुः ) उपे काल में जगनेवाले घोड़े ( एह सौमपीतये ) यह सौमपीतयेके सिध ( दत्ता मयौसुवा ) शत्रुका नाम करनेवाले और मुक्त देनेवाले ( हिरण्यवर्तनी देवा ) सोनेके रथोंवाले अश्विदेवोंकी ( आघवहन्तु ) लाते ॥ ३ ॥

१७३६ यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रधुः ।

आ न ऊर्जे वहतमग्निना युवम्

॥ ३ ॥ ९ (मा) ॥

[ धा० २० । उ० ४ । स्व० २ ] ( ऋ. १९३।१७ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१७३७ अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

अस्तमवेन्त आशुवोऽस्तं नित्यासा वाजिन इपं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥ ( ऋ. १।६।१ )

१७३८ अग्निं हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्यणिः ।

अग्नीं राये स्वाशुवं स प्रीतो याति धार्यमिपं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥ ( ऋ. १।६।१ )

१७३९ सो अग्नियो वसुगृणे सं यमायन्ति धेनवः ।

समर्वन्तो रघुद्रवः स सुजातासः सूरय इपं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ३ ॥ १० (घु) ॥

[ धा० १६ । उ० ४ । स्व० ९ ] ( ऋ. १।६।३ )

[ १७३६ ] हे ( अग्निना ) अग्निर्नाहुमारो ( यौ ) जो तुम ( दिवः श्लोकं ज्योतिः ) श्लोकसे प्रशस्तियों प्रकाश ( इत्या जनाय चक्रधुः ) इस तरह लोगोंके हितके लिए कामे हो, ( युवं ) ऐसे तुम ( नः ऊर्जे आ वहतं ) हमें बल दे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १७३७ ] ( तं अग्निं मन्ये ) उस अग्निको मैं स्तुति करता हूँ ( यः वसुः ) जो सबको यमानेवाला है । ( भस्तं यं धेनवः यन्ति ) जिसके आश्रयमें गायें जाती हैं, ( अस्तं आशुवः अर्घन्तः ) जिसके आश्रयमें घोड़े जाते हैं ( अस्तं नित्यासः वाजिनः ) जिसके आश्रयमें नित्यकर्म करनेवाले, हवि पासमें रखनेवाले यजमान जाते हैं, ऐसा घृ ( स्तोतृभ्यः इपं आभर ) स्तुति करनेवाले हमें भरपूर बल दे ॥ १ ॥

[ १७३८ ] ( अग्निः हि ) अग्नि निरवयवे ( विशे वाजिनं ददाति ) यजमानको पुत्र देता है । ( विश्वचर्यणिः सः अग्निः ) सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला यह अग्नि ( प्रीतः ) प्रसन्न होकर ( स्वाशुवं धार्यं ) स्वयं सज्जनानेवाले ( राये याति ) धन देनेके लिए पासमें जाता है । हे अग्ने ( स्तोतृभ्यः इपं आभर ) स्तुति करनेवालोंको भरपूर बल दे ॥ २ ॥

[ १७३९ ] ( यः वसुः ) जो सबको यमानेवाला है, ( यं धेनवः यमायन्ति ) जिसके पास गायें भिन्नकर जाती हैं । ( रघुद्रवः अवेन्तः सं ) यीश्र वीरनेवाले घोड़े जिसके पास जाते हैं । ( सु-जातासः सूरयः सं ) उत्तम प्रसिद्ध यजमान जिसके पास जाते हैं, ऐसा ( सः अग्निः ) वह अग्नि ( गृणे ) प्रशस्तित होता है । हे अग्ने ! ( स्तोतृभ्यः इपं आभर ) स्तुति करनेवालोंको भरपूर बल दे ॥ ३ ॥

- १७४० महं नां अद्य बोधयोषीं रापि दिवित्मती ।  
यथा चिन्ना अवाचयः सत्यश्रवसि वाग्ये सुजाते अश्वस्रुते ॥ १ ॥ ( ऋ. १/७९/१ )
- १७४१ या सुनीधे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।  
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाग्ये सुजाते अश्वस्रुते ॥ २ ॥ ( ऋ. १/७९/२ )
- १७४२ सा नो अद्याभरद्दसुव्युच्छा दुहितर्दिवः ।  
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाग्ये सुजाते अश्वस्रुते ॥ ३ ॥ ११ ( तु ) ॥  
[ धा० १९ । व० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. १/७९/१ )
- १७४३ प्रति प्रियतमश् रथं वृषणं वसुवाहनम् ।  
स्तोता वामश्विनापृषि स्तोमोभिर्भूपति प्रति माश्वी मम श्रुतश् हवम् ॥१॥ ( ऋ. १/७९/१ )
- १७४४ अत्यायातमश्विना तिरा विश्वा अहश् सना ।  
दसा हिरण्यवर्तनी सुपुण्या सिन्धुवाहसा माश्वी मम श्रुतश् हवम् ॥२॥ ( ऋ. १/७९/२ )

[ १७४० ] ( अद्य ) आज हे ( उप ) जवे ! दिवित्मती ) प्रकानुपकृत तु ( नः ) महे रापे बोधय ) हर्षं कृत धन प्राप्तिके लिए ज्ञानयुक्त कर । ( यथा चिन्ना अवाचयः ) जिसप्रकार पहले ज्ञानयुक्त करती थी, उसीप्रकार अब भी कर । हे ( सुजाते अ-श्व-स्रुते ) कुलीन और हमेशा सत्य बोलनेवाली जंबे ! ( वाग्ये सत्यश्रवसि ) बच्यके पुत्र सत्यश्रवणपर कृपा कर ॥ १ ॥

[ १७४१ ] हे ( दिवः ) दुहितः ) कुलीनकी कन्ये ! ( या ) जो तु ( सुनीधे शौचद्रथे व्यौच्छः ) सुनीध नामक शुचद्रथके पुत्रके लिए प्रकानित हर्ष, ( सा ) वह तु ( सहीयसि ) अत्यन्त बलवाली ( या व्यौच्छ ) जिस सून अन्धकारको दूर किया है, ऐसी हे ( सुजाते अ-श्व-स्रुते ) कुलीन और सदा सत्य बोलनेवाली जंबे ! ( वाग्ये सत्यश्रवसि ) बच्यके पुत्र सत्यश्रवण पर अनुग्रह कर ॥ २ ॥

[ १७४२ ] हे ( दिवः ) दुहितः ) कुलीनकी पुत्री ! ( सा यत्तु आभरद् ) वह तू हमें धन भरपूर दे, तथा ( नः ) जद्य व्युच्छ ) हमारे लिए आज प्रकानित हो । हे ( सहीयसि ) अत्यन्त बलवाली ( या व्यौच्छ ) जिस सून अन्धकारको दूर किया है, ऐसी हे ( सुजाते अ-श्व-स्रुते ) कुलीन और सदा सत्य बोलनेवाली जंबे ! ( वाग्ये सत्यश्रवसि ) बच्यके पुत्र सत्यश्रवण पर अनुग्रह कर ॥ ३ ॥

[ १७४३ ] ( अश्विनो ) अग्निदेवो ! ( स्तोता प्रापि ) स्तुति करनेवाला ऋषि ( वां ) सुहारे ( वृषणं यत्तु-वाहनं ) बलवान् और धन डोकर ले जानेवाले ( प्रियतमं रथं ) अत्यन्त शिव रथको ( स्तोमोभिः प्रतिभूपति ) स्तोत्रोत्तिसुसोमित करता है ; इस कारण हे ( माश्वी ) मधुविद्याको जाननेवाले ! ( मम हवं श्रुतं ) हमारी प्रार्थना सुनो ॥ १ ॥

[ १७४४ ] हे ( अश्विना ) अग्निदेवो ! ( अत्यायातं ) तुम सत्य यजमानोंके पार करके हमारी तरफ आओ । ( अहं विश्वाः सना तिरा ) मैं अपने सब शत्रुओंकी हारार्ज । हे ( दसा हिरण्यवर्तनी ) शत्रुका नाश करनेवाले और सोनेके रथवाले ( सुपुण्या सिन्धुवाहसा ) जलम धनके युक्त और नदियोंमें भी जानेवाले तथा ( माश्वी ) मधुविद्याको जाननेवाले अग्निदेवो ! ( मम हव श्रुतं ) हमारी प्रार्थना सुनो ॥ २ ॥



१७४५ आ नो रत्नानि विभ्रतावक्षिना गच्छतं युवम् ।  
 रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुपाणा वाजिनीवसू माध्वी भम श्रुतः हवम् ॥ ३ ॥ १२ ( वा ) ॥  
 [ पा० ३० । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।७५१३ )  
 ॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१७४६ अथोष्पमिः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवापतीषुपासम् ।  
 यद्वा इव प्र वषामुज्जिहानाः प्र भानवः सन्नतं नाकमच्छ ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१११ )  
 १७४७ अथोधि होता यजधाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।  
 समिद्रस्य रुयददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११२ )  
 १७४८ यदा गणस्य रथनामजीगः शुचिरहते शुचिमिर्गोभिरपिः ।  
 आहृक्षिणा युज्यते वाजयंत्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहुमिः ॥ ३ ॥ १३ ( लि ) ॥  
 [ पा० १९ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।११३ )

[ १७४५ ] हे ( अग्निना ) अग्निदेवो ! ( रुद्रा हिरण्यवर्तनी ) तुम ऋषियोंको पलने हारे तथा सोनेके रथमें बैठनेवाले ( रत्नानि विभ्रता ) रत्नोंको धारण करनेवाले ( वाजिनीवसू जुपाणा ) भ्रम और घनोंसे युक्त तथा यज्ञमें आनेवाले ( युवं श्रागच्छतं ) तुम हमारे पास आओ । ( माध्वी । भम हवं श्रुतं ) हे ऋषियोंके जाननेवालो ! मेरी आर्चना सुनो ॥ ३ ॥

॥ यदां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

- [ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १७४६ ] ( अग्निः जनानां समिधा अथोधि ) अग्नि याजकोंकी समिधाते प्रज्वलित हुआ है । ( धेनुं इव ) गायोंको जितप्रकार प्रातः काल उदाते है, उसीप्रकार अग्नि जागृत हुआ है । ( आपतीं लपासं प्रति ) आनेवाले उस कालमें ( भानवः ) अग्निकी ज्वालायें ( वषां प्रीतिजहानाः यद्वाः इव ) अपनी डालियोंको फैलानेवाले वृक्षके समान ( माकं अच्छ प्रलच्छते ) अन्तरिक्षको ओर फैलती हैं ॥ १ ॥

[ १७४७ ] ( होता अग्निः ) हवन करनेवाला अग्नि ( देवान् यजधाय अथोधि ) देवों द्वारा यज्ञ किए जानेके लिए प्रज्वलित हुआ है । यह अग्नि ( प्रातः सुमनाः ) प्रातः काल उतान बनते ( ऊर्ध्वः अस्थात् ) ऊपर उठ गया है । ( समिद्रस्य रुयान् ) प्रज्वलित हुए हुए अग्निका ( पाजो अदर्शि ) तेजस्वी बल दीजने लगा है । यह ( महान् देवः ) तमसः निरमोचि ) महान् वेध जगत्को अधकारते छुड़ता है ॥ २ ॥

[ १७४८ ] ( यदा ह ) जब यह अग्नि ( गणस्य रथानां अजीगः ) जन समूहके कार्योंमें बिज्ज झलनेवाले अधकारको प्रतिबन्धको निपल जाता है, तब ( शुचिः अग्निः ) शुद्ध तेजस्वी अग्नि ( शुचिमिः गोभिः ) शुद्ध किरणोंसे ( अंशुते ) जपत्की प्रकट करता है । ( आत् ) उत्तके घाघ ( घाजयन्ती वृक्षिणा ) बल देनेकी इच्छा करती हुई घीकी मोटी धारा ( जुहुमिः युज्यते ) पक्षपात्रसे संवृत होती है । तब ( उत्तानां ऊर्ध्वः अधयत् ) ऊपरसे आनेवाली घीकी उस धाराकी यह अग्नि ऊपर उठकर पीता है ॥ ३ ॥



१७५४ उवा यात संगवे प्रातरह्वा मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।

दिवा नक्तमवसा श्वन्तमेन नेदानी पीतिरक्षिना तवान ॥ ३ ॥ १५ ( लो ) ॥

[ धा० २४ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।७६।१ )

॥ इति षडुर्थं खण्ड ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१७५५ एवा उ त्या उपसः केतुमकत पूर्व अर्धे रजसो मानुमञ्जते ।

निकृष्णाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुपीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९२।१ )

१७५६ उदपत्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुपीर्गा अयुक्षत ।

अक्रुष्णाना वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं मानुमरुपीरग्निधयुः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९२।२ )

१७५७ अवेन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।

इयं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥ १६ ( कि ) ॥

[ धा० २६ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।९२।३ )

[ १७५४ ] हे ( अश्विना ) अश्विवेवो ! ( अन्नः संगवे ) दिनमे गाव दुहनेके समय ( प्रातः ) सबरे ( सूर्यस्य ) उदिता । सूर्यके उदय होनेपर ( मध्यन्दिने ) मध्याह्नमे ( दिवा ) दिनमे ( नक्तं ) रात्रौमे अर्थात् हनेशा ( श्वन्तमेन अवसा ) सुप्तवापव रत्नयोः सायनेति साय ( आयातं ) आभो । ( उत ) क्योंकि ( इदानीं ) पीतिः न तवान ) अभी तोम पीना मुख नहीं हुआ है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चम खण्डः ।

[ १७५५ ] ( स्या पत्ता उपसः ) मे ये उपायै ( केतु मकत ) प्रकाश करती है ; ( रजसो पूर्व अर्धे मानुं अञ्जते ) अन्तरिक्षके पूर्व अर्धमे प्रकाश हो गया है । ( धृष्णवः आयुधानि इव ) गौर लोच जैसे दाख लोचन करते हैं, उसीप्रकार ( निकृष्णानाः ) अपने प्रकाशके जगत्की प्रकाशित करते हुए ( सायः ) समय करनेवाली तथा ( मातरः अरुपीः ) जगत्की माता क्षेत्रपुरुष उपायै ( प्रति यन्ति ) प्रतिबिम्ब आती हैं ॥ १ ॥

[ १७५६ ] ( अरुणाः भानवः ) अरुण रगरी बिरलें ( वृथा उदपत्तन् ) सरलतासे ही ऊपर आगे हैं । ( स्वायुजः अरुपीः साः अयुक्षत ) स्वय ही जुड़नानेवाले बेल-बिरण-रसमें जोड़े गए हैं । ( उपासः पूर्वथा वयु नामि अमन् ) उपायै पहले सायन प्रसार करती हैं । आर्यमे ( अरुपीः रुशन्तं मानुं आदिधयुः ) प्रकाश करनेवाली उपायै क्षेत्रकी पूर्वकी सेवा करने लगीं ॥ २ ॥

[ १७५७ ] ( सुकृते सुदानये ) उत्तम बर्ण करनेवाले और उत्तम बान देनेवाले ( सुन्यते यजमानाय ) सोमरस दिवातनेवाले यजमानको ( विष्ट्या इत्थं अह इयं वहन्ती ) बहुत मात्र देनेवाली ( नारीः ) उपायको दिव्ये ( विष्टिभिः ) अपनी शिरयोति ( समानेन योजनेन ) समान योजनासे ( परायन् आ अवेन्ति ) दूर वेगसे आजासको सुबह बनाती है । ( अपतः न ) निगमवार युद्ध करनेवाले और अपने शत्रुओंके रक्तमूत्रिये सुबह बनाते हैं, उसीप्रकार उपायै आजासको सुबह बनाती है ॥ ३ ॥

- १७५८ अगोष्यादिर्जम् उदेति सूर्यो ज्युषेपाश्वन्द्रा मन्त्रावो अर्चिया ।  
 आधुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीदिवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१७७।१ )
- १७५९ यद्युजाथे वृषणमश्विना रथं धृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।  
 अस्माकं ब्रह्म प्रतनासु जिन्वते रथं धना शूरसावा भजेमहि ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१७७।२ )
- १७६० अर्वाङ् विचक्रो मधुवाहनो रथो जीराशो अश्विनोर्यात् सुपुतः ।  
 त्रिवन्धुरो मधवा विश्वसौभगः सं न आ वक्षद्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥ १७ ( छा ) ॥  
 [ धा० ११। उ२। २०० २ ] ( ऋ. १।१७७।२ )
- १७६१ प्र ते धारा असश्वतो दिवो न यन्ति वृष्टया । अच्छा धाजश् सहस्रिणम् ॥ १ ॥  
 ( ऋ. १।१७७।१ )
- १७६२ अभि श्रियाणि काश्या विश्वा चक्षाणो अर्पति । हरिस्तुजान आयुधा ॥ २ ॥  
 ( ऋ. १।१७७।२ )
- १७६३ स मर्मैजान आयुभिरिर्मो राजेव सुव्रतः । द्यैनो न वक्षसु पीदति ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१७७।३ )

[ १७५८ ] ( अग्निः जना अयोधि ) अग्नि अपनी वेदीमें प्रवीण हुआ है । ( मही उपाः अर्चिया श्वन्द्रा वि आयः ) वेदी उपा अपने तेजसे लोगोंको आत्मन् वेदी हुई प्रकट हुई है ; हे ( अश्विना ) अग्निवेदो ! ( यातवे रथं आयुक्षातां ) धामने जानेके लिए अपने रथको छोडो । ( सविता देवः ) सूर्य देव ( जगत् पृथक् प्रासावीत् ) जगत्के सब प्राणियोंको अपने-अपने कर्तव्यमें लगाता है ॥ १ ॥

[ १७५९ ] हे ( अश्विना ) अग्निबलीह्वारो ! ( यत् वृषणं रथं मुञ्जाथे ) जब सुम अपने बन्धान् रथको छोडते हो, तब ( नः क्षत्रं ) हमारे शत्रुओंको ( मधुना धृतेन उक्षतं ) मोठे पीसे घुट करो । ( अस्माकं प्रतनासु ब्रह्म जिन्वते ) हमारो प्रजाओंमें भालको बुद्धि करो । ( रथं शूरसावो धना भजेमहि ) और हम मुझमें मनको प्राप्त करें ॥ २ ॥

[ १७६० ] ( अश्विनो रथः सर्वाक् यातु ) अश्विनोका रथ हमारे पास आवे । ( विचक्रः मधुवाहनः ) शीन पहिलेवाला और मोठे अमृतको धारण करनेवाला ( जीराश्वः सुपुतः ) जल्दी चलनेवाले घोडे जिसमें भूते हुए हैं, और जिसको उत्तम खुट्टि होती है, ऐसा ( त्रिवन्धुरः मधवा विश्वसौभगः ) शीन घेडकमें बाला, मनते भरदुग्धमा तथा सब सोभाव्यते युक्त रथ ( नः विपदे चतुष्पदे वां आयुक्षात् ) हमारे दुग्धमें और सोपायोंके लिए सुख लेकर आवे ॥ ३ ॥

[ १७६१ ] हे गोम ! ( ते असश्वताः धाराः ) तेरी न बन्द होनेवाली धारमें ( सहस्रिणं धाजं अच्छ प्रयन्ति ) हजारों तरहके आस हमें बेती है । ( दिवः वृष्टय न ) जैसे दुल्लोकसे बुद्धि होती है, उसीप्रकार तेरी धारमें हम पर आतनी बुद्धि करता है ॥ १ ॥

[ १७६२ ] ( हरिः ) हरे रगका सोम ( विश्वा श्रियाणि काश्या चक्षाणः ) सब त्रिय कर्णोंको देखते हुए ( आयुधा तुजानः ) आयुओंको शत्रुओंपर केंडते हुए ( अभ्यर्पति ) आगे जाता है ॥ २ ॥

[ १७६३ ] ( सुव्रतः सः ) उत्तम कर्म करनेवाला यह सोम ( आयुभिः मर्मैजानः इयः राजा इव ) अश्विनो द्वारा नुद होता हुआ निर्भीक राजाके समान वीरता है और ( द्यैनो न ) अपने यकीके समान ( वंशु स्वीदति ) पानीमें मिलाया जाता है ॥ ३ ॥

१७६४ स नो विश्वा दिवो वद्धतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्द्रवा भर ॥ ४ ॥ १८ ( ती ) ॥  
[ धा० १४ । उ० १ । ख० ४ ] ( ऋ ९।७।४ )

॥ इति पञ्चम तण्ड. ॥ ५ ॥

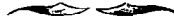
॥ इति अष्टमप्रपाठके तृतीयोऽर्थः ॥ ३ ॥ अष्टम प्रपाठकरच समाप्त ॥ ८ ॥

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

[ १७६४ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( पुनानः ) दृढ होनेवाला ( सः ) वह तू ( दिवः अधि ) धूलोरुमें ( उत पृथिव्याः ) और पृथिवीपर रहकर ( विश्वा वसु नः आभर ) सब धन हमें भरपूर दे ॥ ४ ॥

॥ यहाँ पाँचवाँ टण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥



## एकोनविंश अध्याय

इत अध्यायमें उषा, अग्निवती, इन्द्र और सोम देवताओंका वर्णन है । उनमेंसे उषा देवताका वर्णन इस प्रकार है—

उषा देवता

१ स्या सूनरी दिवः दुहिता प्रत्यर्द्धि, जनी रूपसुः परिव्युच्छन्ती [ १७२५ ]— वह उषा उत्सव प्रेरणा करनेवाली सूर्यकी पुत्री होकरने लग गई है, उसके प्रकाशकी वंशा करनेवाली रात्रिकी बहिन भायमें चारों ओरसे प्रकाशित होती है ।

२ अथ्वा इह चित्रा, अरुणी गद्यां माता, अतापरी उषा अग्निवतीः सखा अभूत् [ १७२६ ]— योहीके सपान सुन्दर, बचकरनेवाली निरभोरी माता, युक्तकी प्रेरक उषा अग्निवतीके भित्रके समान हो गई है । अग्निवती प्रातःकाल बोलते है, इसलिये उषा उनकी मित्र है ।

३ हे उषा ! यश्च ईशिये [ १७२७ ]— हे उषे ! तू धनकी स्वामिनी है ।

४ गद्यां माता अति [ १७२७ ]— प्रकाश निरभोरी उत्सव करनेवाली उनकी माता है ।

५ एषा प्रिया अपूर्वा उषा दिवः व्युच्छति [ १७२८ ]— यह प्रिय अपूर्व उषा धूलोरुकी प्रकाशित करती है ।

६ वाग्जिनीयति उषा ! अमर्यसे तू चित्र भा प्रद येन तौरः मनुवं च धामते [ १७२९ ]— हे अमर पागमें

रत्ननेवाली उषे ! हमें वह धेड़ धन दे, जिसकी सहायतासे हम पुत्रपौत्रोंका उत्सव योषण कर सकें ।

७ अथ्वायति गोमति सुरुतायति यिमायति उषा ! अथ इह अस्मे रेयत् व्युच्छ [ १७३२ ]— हे घोड़े और गाधोंके पुत्रन, यज्ञ करनेवाली प्रकाशमान् उषे ! आज यहाँ हमें धनसे धन करने प्रकाशित कर ।

८ हे वाग्जिनीयति उषा ! अरुणान् अथ्वायन् अथ सुंक्ष्त्र, विश्वा सौमगानि नः सा वह [ १७३३ ]— हे अमरको अरुने पास रहनेवाली उषे ! अरुने रथमें लात रंगरे घोड़े जोड़ और सब सोभाग्य हमें दे ।

९ हे सुजाते अ-अय सुजते ! दिविमती नः मोदे शये योधय यथा चित् नः अयोधयः [ १७४० ]— हे उत्सव कुसमें अय सेनेवाली, आज यज्ञके गृह करनेवाली उषे ! तू प्रकाशमान् होकर हमें बहुत धन प्राप्त करनेका धर्म बता, अंसा कि तुने पहले भी बताया था ।

१० हे दिवः दुहितः ! सा आमरन् वसु नः अथ व्युच्छ [ १७४२ ]— हे धूलोरुकी पुत्री उषे ! तू भरपूर धन देनेवाली होकर हमारे गण प्रकाश दे ।

११ ज्योतिर्गो इदं धेष्टं ज्योतिः धामान्, चित्रः प्रचेतः विश्वा अमनिय [ १७४९ ]— तेजसी वरधोर्में बिनेव तेजवाली उषा उत्सव होयै है, उतका प्रकाश सब अमरपर बँध गया है ।

१२ उपसां अनीकं अग्निः आभ्रमति, यिमाणां देयया घ्राचः उर्वस्वुः [ १७५२ ]- उपाका मुखको अग्नि प्रबोध हो गया है, आहूणोंका विषय संभ्र घोव शुरु हो गया है ।

१३ स्या उपाः उपसः केतुं अकल, रजसः पूर्वं अर्धे मानुं अंजते, निष्कृण्वानाः मातरः उपसः प्रति यन्ति [ १७५५ ]- यह वह उपाका प्रकाश फल रहा है अन्तरिक्षकी पूर्व दिशाके अर्धमें प्रकाश हो गया है । अपने प्रकाशसे जगत्को प्रकाशित करते हुए वह माता उपा प्रतिदिन आती है ।

उपा सुर्षकी अथवा सुलीचकी पुत्री है । उसकी पहिल रानी है । ये बीनों कमराः एकके पीछे दूसरी आती हैं । उपा बीजनेमें सुन्दर है, क्योंकि वह प्रकाशवाली है । प्रकाशके किरणोंकी यह माता है । उपाही प्रकाशकी किरणें निकलती है । आकाशकी पूर्व दिशाके आधे भागमें उसका लाल प्रकाश बीजने समतल है । वह उपा ही होती है । यज्ञ करनेवाले हविर्द्वेष और अन्न लेकर अग्निकी सेवा करनेके लिए सँपार होते हैं, उस समय उपा फल होता है ।

उपकाश होते ही गाय और घोड़े चरनेके लिए छोड़ दिए जाते हैं । घरशालामें पाकक घात करनेकी सँपारी करते हैं, वेदपाठियोंका वेदपाठ शुरु हो जाता है । अग्नि प्रदीप्त किया जाता है और हवन प्रारम्भ होते हैं ।

यह सुन्दर वर्णन उपाका इन बीनोंमें आया है । उप कालमें अग्निनी ( नक्षत्र ) उपव होती है, इसलिए उपाको अग्निनीकी सहेली बताया है ।

### अश्विनौ

१ उज्जा सिन्धु मातरा रयीनां मनोत्तरा धिया घलुधिदा [ १७२९ ]- ये अश्विनौ देव सन्धुका माता करनेवाले, नदियोंकी उत्पन्न करनेवाले और बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवालोंको धन देनेवाले हैं ।

२ यं रथः जूषायां अत्रि विष्टयि, यत् त्रिभिः पत्तात् यां ककुदासः घच्चयते [ १७३० ]- तुम्हारे रथ प्रसन्ननीय अन्तरिक्षमें जब पशियों द्वारा ले जायें जाते हैं, उस समय तुम्हारे लिए स्त्रीय बन्धे जाते हैं ।

३ हे अश्विना ! दुष्टा अस्मत् वार्ति, आ । गोमत् हिरण्यवत् रथं समनस्ता अर्वाक् नि घच्छतम् [ १७३४ ]- हे अश्विनौ ! सन्धुका माता करनेवाले तुम हमारी मत्तयावाली और आओ । गाय और सोनेसे युक्त अपने रथको बुद्धिपूर्वक हमारे पास ले आओ ।

५५ [ साम हिन्दी भा. २ ]

४ हे अश्विना ! यौ दिवाः श्लोकं ज्योतिः दृथा जनाय चक्रतुः, युधं न ऊजं आवहतम् [ १७३६ ]- हे अश्विनौ ! जो तुम आकाशसे प्रसन्ननीय प्रकाशकी इस प्रकार योगिके दृष्टके लिए लाते हो, ऐसे तुम हमें यज्ञ करनेवाले सभ्र से ।

५ हे दुष्टा हिरण्यवर्तनीं सुधुसा सिन्धुवाहसा माग्नीं । मम हयं धृतं [ १७४५ ]- हे सन्धुकेमाता चरनेवाले, सोनेके रथमें बँधनेवाले, उत्तम धन प्राप्तमें रखनेवाले, नदियोंसे आनेवाले और सधु धियाको जाननेवाले अश्विनौ देवो ! हमारी प्रार्थना सुनो ।

६ हे अश्विना । दग्ना हिरण्यवर्तनीं चाग्निर्घस्य जुपाया सुवं आगच्छतम् [ १७४५ ]- हे अश्विनौ देवो ! तुम सन्धुकी दलानेवाले, सोनेके रथ पर बँधनेवाले, अन्न और धन प्राप्तमें रखनेवाले और यज्ञमें आनेवाले हो । तुम हमारे यज्ञमें आओ ।

७ दिचाग्निपित्ये अयसा अयतिं प्रत्यागमिष्ठा, दानुपे शंसमिष्ठा [ १७५३ ]- अग्निके आरम्भ होते ही अग्निके साथ तुम आते हो । इसलिए धान देनेवालोंकी सुख देनेवाले तुम होओ ।

८ हे अश्विना । अग्ना सम्भ्ये प्रातः दिवा नक्तं शीतमेन अवसा आयातं [ १७५४ ]- हे अश्विनौ ! दिनमें गाय बुढ़नेके समय प्रातः काल दिनरात सुख देनेवाले तरुणाके साथमेंके साथ आओ ।

९ अश्विनोः रथः अर्वाक् यातु, त्रिचक्रमः मधुपादनः औराभ्यः सुष्णुता, त्रिवधुधुरः, मधघा, विध्वस्रीभ्याः नः द्विपदे चतुष्पदे शं आयक्षत् [ १७६० ]- अश्विनोका रथ हमारे पास आये । तीन पहियोंवाला, मोठे रथाको धारण करनेवाला, तेज दीपनेवाले घोड़ोंसे युक्त, जिसकी उत्तम प्रज्ञा होती है, ऐसे तीन बँधकोंवाला, धनसे भरा हुआ, सब सौभाग्यसे युक्त रथ हमारे द्विपद और चौपायोंकी तुल्य देवे ।

अश्विनौ सन्धुओंका वध करते हैं, धन देते हैं, मन लगाकर कार्य करनेवालोंकी ऐश्वर्य देते हैं । उनका विमान अन्तरिक्षमें भी जाता है, उस समय उस रथमें पक्षी जोड़े जाते हैं । गोरस-घी और हूप तथा सोना इनके रथमें होता है । क्योंकि यज्ञ यज्ञनेवाले पशयं इनके रथमें होते हैं । इनका यह रथ सोनेका अर्थात् सोनेसे सजा हुआ है । अपने पराक्रमसे सन्धुओंको बलाते हैं, अन्न और धनको अपने रथमें रखते हैं । ये

राबेरे गाय दुहनेके समय दिनरात अपने कल्याण करनेके साधनोंके साथ रीगियोंके पास जाते हैं और उनका इलाज करते हैं। इनके रूपमें तीन पहिए और तीन बँडनेके स्थान हैं। इनके पास सबके आरोग्य धरानेके साधन हैं।

### अग्नि

१ ऊर्जा-न-पार्त पात्रकशोचियं अग्निं अस्मिन् स्वध्वरे यस्मै आहुधे [ १७१२ ] - बल कम न करनेवाले, प्रकाशसे युक्त अग्निही उत्तम हिसारहित यत्नमें हम बुलाते हैं।

२ निग्रमह- अग्ने ! शुक्रेण शोचिष्या देवैः वहिषि व्यासिस्ति [ १७१३ ] - हे मित्रोंके द्वारा पूज्य होने ! यह तू शुद्ध ज्वालाओंसे युक्त होकर देवोंको अपने साथ लेकर आसन पर बैठ।

३ यः वसुः । अस्तं ये घेनयः दग्निः, अस्तं आशयः अर्घ्यन्तः [ १७१७ ] - अग्नि सबकी बसनेवाला है, उसके आश्रयमें गाय रहती हैं और उसके आश्रयमें घोड़े भी रहते हैं।

४ विश्वचर्षणिः अग्निः प्रीतः वधाभुयं चार्यं राये याति [ १७२८ ] - सब लोगोंका कल्याण करनेवाला अग्नि प्रसन्न होकर सततन करनेवाले धन देनेके लिए पक्षमें जाता है।

५ अग्निः जनानां सामिधा अपोधि [ १७५६ ] - अग्नि धानशौचो सामिधामिति प्रवीत हुमा है।

६ आयती उपासे प्रति भानयः चर्यां प्रोजिह्वाना यहाः इय नाके अच्छ प्र सचत्ते [ १७५६ ] - आनेवाले उप बालमें अग्नि, जितप्रकारपेड़ अपनी जालियोंको आकारामें फैलाना है उसीप्रकार अपनी ज्वालाओंको अन्तरिक्षमें फैलाना है। अग्निके अन्तरे ही पत्तकी ज्वालायें, वृक्षकी शाखाओंके समान, अन्तरिक्षमें फैली हैं।

७ अग्निः देवान् वज्रधाप्य अपोधि । प्रातः सुमनाः ऊर्ध्वः अस्थात् । समिद्धस्य रुद्रात् पात्रः अर्द्धिः । महान् देवैः तमसः निरमोधि [ १७५७ ] - अग्नि देवोंकी पूजा करनेके लिए प्रवीत हुमा है। सबरे सबरे उत्तम यत्नसे उपर उभा है। प्रखलित हुए हुए अग्निका तेजसी बल कोलने लग गया है। यह महान् देव अग्निको अन्धकारसे मुक्त करता है।

८ शुचिः अग्निः शुचिभिः गोभिः संकृते [ १७५८ ] - शुद्ध अग्नि शुद्ध किरणोंसे अग्निको प्रज्वालित करता है।

९ अग्निः उमः अपोधि [ १७५८ ] - अग्नि देवीमें प्रज्वालित हो गया है।

अग्नि बल कम न करनेवाला है। शरीरमें अग्नि उत्पत्ताके रूपमें रहता है। उसके रहने तक ही शरीरमें बल बढ़ता है। जीवन एक यज्ञ है उस जीवन यज्ञका आधार शरीरकी उत्पत्ता है। सब इन्द्रियोंमें देवोंके अन्न रहते हैं। उन देवोंके साथ अग्नि यहाँ रहता है, और शरीर चलता है। शरीरमें गर्मी कम हुई कि देव निकल जाते हैं और शरीर कार्य करनेमें असमर्थ हो जाता है।

यह अग्नि सब प्राणियोंका निवासक है। उत्तम गायका दूध और घीका हवन होता है। दूसरे हवनीय पदार्थ भी हवनके लिए सारे जाते हैं। सब मनुष्योंका कल्याण करने वाला अग्नि है।

यह अग्नि सामिधामिति जलाया जाता है और बारोंमें उत्तम हव्य पदार्थोंका हवन किया जाता है। यज्ञ स्थानमें सबरे सबरे अग्नि प्रवीण किया जाता है। वह प्रवीण होते ही अपनी ज्वालायें अन्तरिक्षमें फैलाने लगता है।

अग्नि महान् देव है। यह अन्धकार दूर करता है और प्रकाश फैलाना है। अपने प्रकाशसे सब अज्ञ मुद्धता करके सब मनुष्योंका कल्याण करता है।

### इन्द्र

१ हे इन्द्र ! मन्द्रैः मयूट रोमभिः क्षुरिभिः आयुधि [ १७१८ ] - हे इन्द्र ! मानव देनेवाले मोरके पक्षके समान रणक्षेप यज्ञोंसे युक्त घोड़ोंके इन्द्र तू पहाँ था।

२ केचित् रवा म नियेमुः धन्वेय तान् अति इधि [ १७१८ ] - कोई भी तुमों कोचर्च न रोके, जैसे मनुष्य रोग-स्तानकी जखोसे पार कर जाता है, उसीप्रकार तू भी उन्हें भीप्रतासे पार करने था।

३ इन्द्रः वृध्रपादाः, पल्लं गजाः, पुरां दर्मः, वृढा-चित् आयजाः, ह्योः अभिस्वरे रथस्य स्थिता [ १७१९ ] - इन्द्र वृक्षका नागव, बल राक्षसका विनासक, शत्रुके मारनेको सोचनेवाला, मजबूत शत्रुओंको हरानेवाला और घोड़ोंके रूपमें बँडनेवाला है।

४ क्रतुं पुष्यसि, सुगोपाः [ १७२० ] - तू यज्ञका पोषण करता है और तू पार्थिवो उत्तम पालन करनेवाला है।

५ हे मघयन् ! हे इन्द्र ! स्वत् अग्न्यः मंडिता नास्ति [ १७२१ ] - हे पणपण इय ! तेरे बिना अग्नि देने-वाला दूसरा और कोई नहीं है।

६ हे धसो ! ते राधोसि अस्मान् वदुचन मा द्मन् [ १७२५ ] - तेरे धन हमें अपनी भी मष्ट न करे।

७ ते उतयः मा दभन् [ १७२४ ]-तेरे सरक्षणके सामन हमार नास न करे ।

८ नः चर्मणिभयः विश्वा घसुनि वा उप मिमीहि [ १७२४ ]-हमारो प्रजाजोको तथ धन भरपूर लाकर दे ।

इन्द्र सुम्बर लयालते घुसत घोडोवाले रथमें बंधकर वसके स्थान पर आता है । इन्द्र सुम्बरक बध करता है, बल राक्षसको मारता है । शत्रुके नगरोंको तोड़ता है । जो सामर्थ्यवान् शत्रु हैं उन्हें वह हराता है । गाय और घोडोंका पालन करता है । इन्द्रके शिष्य दूतारा कोई भी सृष्ट देनेवाला नहीं । इन्द्र लोगोको अनेक प्रकारके धन देता है और उन्हें धन बनाता है । सबका वह संरक्षण करता है और सबको निर्भय बनाता है । इस प्रकार वह सब लोगोका कल्याण करता है ।

### सोम

१ हे अद्रिचः सोम ! ते ह्यभ्यासः रक्षः भिन्दन्तः उदस्युः, याः सृष्टः जुद्धस्य [ १७१४ ]- हे पत्थरोंके कूटे जानेवाले सोम ! तेरे सामर्थ्य राक्षसोंका नाश करते हुए ऊपर प्रकट होते हैं । मुकाबला करनेवाले ओ शत्रु हैं उन्हें हार कर ।

२ अया ओजसा निजधिः, अविभ्युया हृदा रथ-संगे हिते धने स्ववै [ १७१५ ]- जिस अपने बलसे तू शत्रुओंका नाश करता है, उस बलको निर्भय हृदयसे रथके युद्धमें दानुको मल्ल करनेके माद प्राप्त करनेके लिए मैं तेरी स्तुति करता हूँ ।

३ पयमानस्य अश्व प्रतानि दृक्ष्या न आधूपे, यः त्वा धृतन्याति, यज्ञ [ १७१६ ]- इस छाने जानेवाले सोमके कमंडि बुद्ध राक्षस प्रगति नहीं कर सकते । हे सोम ! जो तुम पर तेगा भेजनेकी इच्छा करता है उसका नाश कर ।

४ मदच्युते हरि वासिन् मत्स्वरं तं इन्दुं मदीषु इन्द्राय [ १७१७ ]- मानन्द देनेवाले हरे रथके, बल बढानेवाले और उत्साह बढानेवाले, धमकनेवाले सोमकी नवीके पानीमें मिलाओ और यह इस इन्द्रके दो ।

५ ते असद्वचत धाराः सहस्रिणं धाजं अन्ध्र प्रयान्ति [ १७११ ]- तेरी न पथको हुई बहनेवाली पाप हमारों प्रकारके धम हमें देतो हैं ।

६ हरिः विश्वा मियाणि काश्या अक्षराणः, आयुषा तुजानः अमर्थयति [ १७१२ ]- हरे रंगका सोम सर्वे शिष्य बत कर्मको देलता हुआ, स्तुति सुनता हुआ और शर्मोंको दानु पर कंकता हुआ भावे आता है ।

७ सुयुतः सः आयुषिः मर्त्युजानः ह्यमः राजा इव संसु सीदति [ १७११ ]- उत्तम कर्म करनेवाला वह सोम श्रुतिशक्ति द्वारा शुद्ध होता हुआ राजाके समान शीलता है, धारमें यह पानीमें मिलाया जाता है ।

८ हे इन्दो ! पुनातः दिवः अथि उत पृथिव्याः विश्वा घसु नः आमर [ १७१५ ]- हे सोम ! शुद्ध होता हुआ तू धुलीक और पृथ्वीको पर रहकर सब धन हमें भरपूर दे ।

सोम पत्थरोंके कूटा जाता है, फिर उसका रस निकाला जाता है । उस समय उसका प्रकाश बाहर पड़ता है और उससे पत्थरकार बूर होता है । यह सोम अपने सामर्थ्यसे वीरोंमें अपरिमित उत्साह उत्पन्न करता है । उसके द्वारा सब शत्रुओंको हार करता है । श्रेष्ठ करनेवालोंका माज करता है ।

सोमरसको पानीमें मिलाते हैं । इसको धारा अनेक प्रकारसे धम देती है । सोमरस अन्नका काम देता है । क्षमिप धोर इते पीते हैं और उत्साहित होकर धामुसे युद्ध करते हैं और अन्तमें विजयी होते हैं । सोमरसको पानीमें मिलानेके बाद घामने हैं । ऐसा तीमारा किया गया उस पृथ्वीपरके सब ऐश्वर्य देवोंमें सर्वथ है ।

“ सोम स्वयं दानुपर शस्त्र कंकता है ” ऐसा धर्षण धार्त-कारिक है । धोर सोमरस पीकर उत्साहित होकर दानु पर शस्त्र कंकते हैं और विजय प्राप्त करते हैं । सोमका यह आल-कारिक धर्षण समझना चाहिये, नहीं तो धर्षका अनर्थ होना सम्भव है ।

### सुभाषित

१ काचिः अग्निः प्रालो न जग्मना र्वां तन्नं शुभ्रमानः विप्रेण वाचुषे [ १७११ ]- ज्ञानी अग्नि पुराने त्वोक्ति अपने धारीकी शोभा यज्ञता पुत्रः बाह्योके द्वारा ही गई स्तुतिपति बढता है । बाह्य अग्निको प्रदीप करते हैं और त्वोत्र बोलकर हृदयके द्वारा उसे बढाते हैं ।

ज्ञानी पुत्र अपने धारीकी सुम्बर बनाकर मानवे अपनेको बढाता है ।

२ ऊर्जः नपातं पायकशोचिषं अग्निं अग्निम् एष-च्यरे यथे बाह्ये [ १७१२ ]- बल कमन करनेवाले,



सबरे गाय नुहनेके समय दिनरात अपने कल्याण करनेके साधनोंके साथ रोगियोंके पास जाते हैं और उनका इलाज करते हैं । इनके रथमें तीन पहिए और तीन बंदूनेके स्थान हैं । इनके पास सबके आरोग्य बढ़ानेके साधन हैं ।

### अग्नि

१ ऊर्जो-न-पात पायकशोचिपं अग्निं अस्मिन् स्वध्वरे यज्ञे आहुये [ १७१२ ]- बल कम न करनेवाले, प्रकाशते मुक्त अग्निकी उत्तम हिसारहित धममें हम बुलाते हैं ।

२ मिथमह अग्ने ! शुक्रेण शोचिपा देवैः यद्विपि आस्तिसि [ १७१३ ]- हे मिथोंके द्वारा पुण्य अपने ! वह तू शुद्ध ज्वालाओंमें मुक्त होकर देवोंको अपने साथ लेकर आसन पर बैठ ।

३ य. चसु. । अस्तं यं घेनवः यमि, अस्तं आशायः अयं-तः [ १७१७ ]- अग्नि सबकी बसनेवाला है, उसके आश्रयमें गाय रहती हैं और उसके आश्रयमें घोड़े भी रहते हैं ।

४ विश्वचर्षणिः अग्निः प्रीतः रथाभुयं चार्यो राये याति [ १७३८ ]- सब लोगोंका कल्याण करनेवाला अग्नि प्रसन्न होकर हानतन करनेवाले घन देवोंके लिए यज्ञमें जाता है ।

५ अग्निः जनानां समिधा अयोधि [ १७४१ ]- अग्नि याजकोंकी समिधाओंमें प्रदीप्त हुआ है ।

६ आयतीं उपारं प्रति मानयः चर्यां प्रोक्षिहाना यहाः इच नार्कं अचूट म सध्रते [ १७४६ ]- आनेवाले उप बालमें अग्नि, जिताप्रकार वेद्य अपनी कालियोंको आकाशमें फैलाना है उसीप्रकार अपनी ज्वालाओंको अन्तरिक्षमें फैलाना है । अग्निरे जलते ही उसकी ज्वालायें, बुझती जालाओंके समान, अन्तरिक्षमें फैलती हैं ।

७ अग्निः देवान् यजथाय अयोधि । मातः सुमना, ऊर्ध्वः अस्वाध् । रामिद्धस्य रुशद् पाजः अद्विः । महान् देवः तमराः निरमोदि [ १७४७ ]- अग्नि देवोंकी पूजा करनेके लिए प्रदीप्त हुआ है । सबरे सबरे उत्तम मनसे ऊपर उठा है । मरुतित हए हए अग्निका तेजस्वी बल बोलने लग गया है । यह महान् देव अयत्को अयकारसे मुक्त करता है ।

८ शुचिः अग्निः शुचिभिः गोभिः संपत्ते [ १७४८ ]- शुद्ध अग्नि शुद्ध किरणोंसे अयत्को प्रकाशित करता है ।

९ अग्निः उमा अयोधि [ १७५८ ]- अग्नि देवीमें प्रवर्धित हो गया है ।

अग्नि बल कमन करनेवाला है । शरीरमें अग्नि उष्णताके रूपमें रहता है । उसके रहने तक ही शरीरमें बल बढ़ता है । जीवन एक यज्ञ है उस जीवन यज्ञका आधार शरीरकी उष्णता है । सब इन्द्रियोंमें देवोंके अज्ञ रहते हैं । उन देवोंके साथ अग्नि यहाँ रहता है, और शरीर चलता है । शरीरमें गर्मी कम हुई कि देव निकल जाते हैं और शरीर कार्य करनेमें असमर्थ हो जाता है ।

यह अग्नि सब अस्तियोंका निवासक है । उसमें गायका बूध और घोडा हवन होता है । दूसरे हवनीय पशुओं भी हवनके लिए लाये जाते हैं । सब मनुष्योंका कल्याण करने वाला अग्नि है ।

यह अग्नि सनियामें अलम्पा जाता है और बादमें उसमें हृष्य पदार्थोंका हवन किया जाता है । यत स्थानमें सबरे सबरे अग्नि प्रदीप्त किया जाता है । वह प्रदीप्त होते ही अपनी ज्वालायें अन्तरिक्षमें फैलाने लगता है ।

अग्नि महान् देव है । यह अयकार दूर करता है और प्रकाश फैलाना है । अपने प्रकाशसे सब जगह शुद्धता करने सब मनुष्योंका कल्याण करता है ।

### इन्द्र

१ हे इन्द्र ! मन्द्रैः मयूर रोमभिः हरिभिः आयाहि [ १७१८ ]- हे इन्द्र ! आनन्द देनेवाले मोरके पंखके समान रगवाले बालोंमें युक्त घोड़ोंके द्वारा तू यहाँ आ ।

२ केचिद् देवा नित्येसुः धन्वेव तान् अति इहि [ १७१८ ]- कोई भी तुझे बोधमें न रोके, जेते मनुष्य रैगि-स्तानको जखीसे पार कर जाता है, उसीप्रकार तू भी उन्हें नीम्रतासे पार करके आ ।

३ इन्द्रः सुभ्रयादः, वलं रजः, पुरां धर्मं, दृढा चित् आरजः, ह्योः । अमिस्वरे रथस्य स्याता [ १७१९ ]- इन्द्र बुद्धका नायक, बल राक्षसका विनाशक, शत्रुके नगरोंको तोड़नेवाला, भयभूत शत्रुओंकी हरानेवाला और मोक्षके रथमें बंझनेवाला है ।

४ अतुं पुष्यसि, सुगोषाः [ १७२० ]- तू यज्ञका पीपण करता है और तू धार्थोंका उत्तम पासन करनेवाला है ।

५ हे मययन् ! हे इन्द्र ! स्वध् अयः मर्दिता नास्ति [ १७२१ ]- हे यवनान् इन्द्र ! तेरे बिना मुझ बने वाला इतर और कोई नहीं है ।

६ हे यसो ! ते राधांसि अस्मान् कदाचन मा दमन् [ १७२४ ]- तेरे पान हमें कभी भी नष्ट न करे ।

७ ते ऊतयः मा वमन् [ १७२४ ]- तेरे संरक्षणके सायन हमारा नाम न बरें ।

८ ताः सूर्यभिर्भयः विश्वा वसन्ति आ उप मिमीदि [ १७२४ ]- हमारी प्रजाओंको सब धन भरपूर लाकर दे ।

इन्द्र सुन्वर अयासते मुक्त घोड़ोंवाले रथमें बैठकर यत्नके स्थान पर आता है । इन्द्र मूत्रका वप करता है, बस राक्षसको मारता है । शत्रुके नगरोंको तोड़ता है । जो सामर्थ्यवान् शत्रु है उन्हें वधुं हटाता है । गाय और घोड़ोंका पालन करता है । इन्द्रके सिवाम इसरा बोई भी तुल्य देनेवाला नहीं । इन्द्र लोगोंको धनेत्र प्रकारसे धन देता है और उन्हें यज्ञ बनाता है । सबका यह संरक्षण करता है और सबको निर्भय बनाता है । इस प्रकार वह सब लोगोंका कल्याण करता है ।

### सोम

१ हे अद्रिव्यः सोम । ते शुष्मसः रश्मिः भिन्दन्तः उदस्युः, याः स्पृशः जुदस्य [ १७१४ ]- हे पर्वरोंसे कूटे जानेवाले सोम । तेरे सामर्थ्य राससोंका नाम बरते हुए ऊपर प्रकट होते हैं । मुकाबला करनेवाले ओ शत्रु हैं उन्हें रूर कर ।

२ अया ओजसा निजद्विः, अविभ्रमुया दृदा रथः खंगे द्विते धने सव्वे [ १७१५ ]- जिता अपने बलसे ए शत्रुओंका नाश करता है, उस बलकी निर्भय हृदयसे रथके युद्धमें शत्रुको नष्ट करनेके बाद प्राप्त करनेके लिए मैं तेरी स्तुति करता हूँ ।

३ पवमानस्य अश्व्य प्रतानि दृक्ष्या न आपूपे, यः त्वा पृतन्याति, रुज [ १७१६ ]- इस छाने जानेवाले सोमके कर्माति बुद्ध राक्षस प्रगति नहीं कर सकते । हे सोम । जो तुम पर सेवा करनेको इच्छा करता है उसका नाम कर ।

४ मद्रच्युतं हरिं याजिन्तं मरुसं तं इन्द्रुं नदीषु इन्द्राय [ १७१७ ]- आनन्द देनेवाले हेरे रथके, बल बढानेवाले और उरसाहू पवानेवाले, धनकनेवाले सोमको नवीके पानीमें गिलामे और यह इस इन्द्रको दो ।

५ ते असदन्वत धाराः सदक्षिणं पाजं अचच्छ प्रयतिं [ १७१९ ]- तेरी न धमती हुई बहनेवाली धारा हयारों प्रकारके शस्त्र हमें देती है ।

६ हरिः विश्वा विद्याणि काव्याणः, आयुषा तुजातः अश्वर्यपति [ १७२० ]- हेरे रणका सोम सब विषय पर कर्मकी देवता हुआ, स्तुति सुनता हुआ और शस्त्रोंकी शत्रु पर कोंकता हुआ आगे जाता है ।

\*

७ सुयतः सः आयुभिः मर्मुजानः इमः राजा इव चंतु सीदति [ १७१९ ]- उत्तम कर्म करनेवाला वह सोम श्राविकोंके द्वारा युद्ध होता हुआ राजाके समान बोसता है, बावमें वह पानीमें गिलाया जाता है ।

८ हे इन्द्रो ! पुनातः दिवः अधि उत पृथिव्याः विश्वा वसुतु नः आभर [ १७२४ ]- हे सोम ! युद्ध होता हुआ तू ध्रुवों और पृथ्वीलोक पर रहकर सब धन हमें भरपूर दे ।

सोम पर्वरोंसे कूटा जाता है, फिर उसका रस निकाला जाता है । उस समय उरका प्रकाश बाहर पड़ता है और उससे अश्वकार बूर होता है । यह सोम अपने सामर्थ्यसे धीरोंमें अपरिमित उरसाहू उत्पन्न करता है । उसके द्वारा सब शत्रुओंको बूर करता है । देव करनेवालोंका नाम करता है ।

सोमरसको पानीमें मिलाने है । इसकी धारा अनेक प्रकारसे बाध देती है । सोमरस अन्नका काम देता है । क्षत्रिय वीर इसे पीते हैं और उरसाहित होकर शत्रुसे युद्ध करते हैं और अल्पमें विजयी होते हैं । सोमरसको पानीमें मिलानेके बाद छात्रों है । ऐसा तैय्यार किया गया रस पृथ्वीपरके सब देवत्व देनेमें समर्थ है ।

“ सोम स्वयं शत्रुपर शस्त्र केंकता है ” ऐसा बर्णन आल-कारिक है । और सोमरस पीकर उरसाहित होकर शत्रु पर शस्त्र केंकते हैं और विजय प्राप्त करते हैं । सोमका यह आल-कारिक बर्णन समझना चाहिए, नहीं तो अर्थका धनयं होना सम्भव है ।

### सुभाषित

१ काविः अग्निः प्रत्नेन जन्मना स्यां तन्वं शुष्मानः विप्रेण वाचुषे [ १७११ ]- ज्ञानी अग्नि पुरातं स्तोमसि अपने शरीरकी शोभा बढ़ाता हुआ ब्राह्मणोंके द्वारा की गई स्तुतिमें बढता है । वासुध सतितको प्रदीप करते हैं और स्तोत्र शीलकर हवनके द्वारा उसे बढ़ाते हैं ।

शामो पुरष अपने शरीरको सुन्दर बनकर ज्ञानसे अपनेको बढ़ाता है ।

२ ऊर्जं नपातं पादकशोचिपं अग्निं अग्निम् स्व-रधरे यशे आहुषे [ १७१२ ]- बल कम न करनेवाले,

२५ हे अग्निना । नः ऊर्जनं आचवहतं [ १७३६ ]-हे मन्त्रिदेवो ! हमें बल बढ़ानेवाले जल दो ।

२६ ते आग्निं मन्येयः वसुः, अक्षतं यं घेनवः यगित्, अस्ते यं आशवः अर्ध्वन्तः [ १७३७ ]- उस अग्निको मैं स्तुति करता हूँ, जिसके आभयमें गाँवें जाती हैं, जिसने आभयमें घोड़े जाने हैं ।

२७ अग्निः हि विश्वे चाग्निं वदाति [ १७३८ ]- अग्नि विश्वघने मनुष्योंको पुत्र देता है ।

२८ विश्वर्चर्षणिः अग्निः प्रीतः स्वामुषं वार्यं राये याति [ १७३९ ]- सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला अग्नि मनुष्य होनेपर स्वयं ही खनखन करनेवाले पन देनेके लिए जाता है ।

२९ सः अग्निः लसुः [ १७३९ ]- वह अग्नि सबको बलानेवाला है ।

३० हे उपः । दिवितमती नः मदे राये घोषय [ १७४० ]- हे उपे ! तू प्रकाश युक्त होकर हमें बहुत पन मिले इसलिए हमें जाग्रत कर ।

३१ सु-जाते । अश्वसुनुते । यथा चित् नो अदो-धयाः [ १७४० ]- हे उत्तम कुलीन और आज सत्य बोलनेवाली उपे ! जिसप्रकार पहले भी तूने जगया वंसा ही जन जगा ।

३२ हे दिव्यः दुहितः सा अमरदसु । नः अद्य वसुच्छ [ १७४२ ]- हे दूलीककी पुत्री और भरपूर पन देनेवाली उपे ! हमारे लिए आज प्रकाशित हो ।

३३ अहं विश्वा रजना तिरः [ १७४४ ]- मैं सब विरोधिपोंका पराभव करता हूँ ।

३४ अग्निः जनानां समिधा अवोधि [ १७४५ ]- अग्नि लोगोंकी समिधाओंसे प्रदीप्त हुआ है ।

३५ आयतीं उपासं प्रति भानयः नाकं अचछ प्रसस्यते [ १७४६ ]- आनेवाली उपे कालकी जिरमें बल-रक्षणमें उत्तम रीतिसे दन्ती है ।

३६ होता अग्निः प्रातः सुमना ऊर्ध्वः व्यस्थात् [ १७४७ ]- हबल जिसमें होते हैं ऐसा अग्नि प्रातःकाल उत्तम मनसे उपर उठने लगता है, जलने लगता है ।

३७ समिद्धस्य दशव पाजः अर्ध्वि, महान् देवः तमसा निरमोचि [ १७४७ ]- प्रदीप्त हुए हुए अग्निना बल घोलने लगा है, उस महान् देवने जगत्की अन्धकारतो घटा दिया है ।

३८ यत् गणस्य रक्षानां अजीगः, शुचिः अग्निः, शुचिभिः गोभिः बन्धते [ १७४८ ]- जब समुदायमें बिल उलटनेवाला अन्धकार दूर हो गया, तब तेजस्वी शुद्ध अग्नि शुद्ध किरणोंसे जगत्को प्रकाशित करने लगा ।

३९ उप्योतिपां इदं श्रेष्ठं उप्योतिः आगात्, चित्रः प्रकैतः विश्वा अजनिष् [ १७४९ ]- तेजस्वी परापूर्वोंमें यह उपा सर्वाधिक तेजस्वी है, उसका प्रकाश धारों और फेला है ।

४० अस्ताक पृतनासु ब्रह्म जिन्वतं [ १७५१ ]- हमनें तान बडा ।

४१ वयं दूरसातो घना भजेमहि [ १७५१ ]- हम युद्धमें घन प्राप्त करें ।

४२ आयुषा तुञ्जानः अश्वर्षति [ १७६९ ]- वह वीर शस्त्र शत्रुपर फेंकता हुआ आगे जाता है ।

४३ पुनानः विश्वावलु नः आभर [ १७६४ ]- पवित्र होकर सब पन हमें भरपूर दे ।

## उपमा

१ पादिनः न [ १७८८ ]- जल फलानेवाले शिकारी जैसे पक्षियोंकी पकड़ते हैं, उसप्रकार इन्द्रकी छोई पकड़ नहीं सकता ।

२ सुगोषा गाः इव [ १७९० ]- उत्तम गोपाल पायोंन जिसप्रकार पालन करता है, उसीप्रकार इन्द्र (कतुं पुष्यति) यतका घोषण करता है ।

३ यथा घेनवः ययसं प्र [ १७९० ]- जिसप्रकार गाँव पास जाती है, उसीप्रकार इन्द्र घेनवस्त प्राप्त करता है ।

४ कुल्या इदं इव [ १७९० ]- जैसे नदियां सासाव व तपुशमें जाकर मिलती हैं, वैसे ही सोमरस इन्द्रकी निम्नते है ।

५ गोरः सृष्ट्यात् यथा अघाएतं इरिपं [ १७९१ ]- जैसे प्याता मूष पानीसे भरे बालाबने पास जाता है, वैसे ही (तूयं आगाहि वपुषेपु सत्वा सु पिद ) हे इन्द्र ! तू जल्दी आ और कबके मतमें बंधकर सबके साथ सोय पी ।

६ अग्ना इव चित्रा [ १७९६ ]- घोड़ोके समान सुन्दर ( अरुणी उपा ) तेजस्वी उपा है ।

७ येतुं इव [ १७९६ ]- गावें जैसे सबने जागरी हैं, वैसे ही ( अग्निः जनानां समिधा अवोधि ) अग्नि लोगोंकी समिधाओंसे सबने प्रदीप्त किया गया है ।

८ नाकं यद्वाः घर्वां प्रोज्झिहानाः इव [ १७४१ ]-  
जलरिसामे षंते वृक्षो शाखायै फलनी हे, उसीप्रकार  
( अग्निः भानवः ) अग्नि अपनी ज्वालामोको आकाशमें  
फंसाता है ।

९ अपसः न [ १७५७ ]- युद्ध करनेवाले घोर जित-  
प्रकार शस्त्रोंसे रणभूमिको सुदीर्घित करते हैं, उसीप्रकार  
( विष्टिभिः मारीः भा अर्चन्ति ) किरणोंसे ज्वालामुखी  
रिप्या आकाशको सुन्दर बनाती है ।

१० दिवः वृष्टयः न [ १७६१ ]- जितप्रकार झूलोको  
वृष्टि होती है, ( धाराः वाजं प्रयन्ति ) उसीप्रकार सोमरसकी  
धारायें अन्न देती हैं ।

११ राजा इव [ १७६३ ]- राजाके समान ( मर्मु-  
जानः ) युद्ध होनेवाला सोम दीखता है ।

१२ दधेनः न [ १७६३ ]- दधेन पत्नीके समान ( बंधु  
सीदति ) सोम पानीमें बँडता है, दुबको मारता है । पानीमें  
मिलाया जाता है ।



## एकोनविंशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋष्येवत्पराम	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १ )				
१७११	८।७७।११	विरूप आगिरसः	अग्निः	गायत्री
१७१०	८।७७।१३	विरूप आगिरसः	"	"
१७१३	८।७७।१४	विरूप आगिरसः	"	"
१७१४	९।५३।१	अवत्सारः काश्यपः	पवमानः सोमः	"
१७१५	९।५३।१	अवत्सारः काश्यपः	"	"
१७१६	९।५३।३	अवत्सारः काश्यपः	"	"
१७१७	९।५३।४	अवत्सारः काश्यपः	"	"
१७१८	३।४५।१	विश्वामित्रो गायित्वः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१७१९	३।४५।२	विश्वामित्रो गायित्वः	"	"
१७२०	३।४५।३	विश्वामित्रो गायित्वः	"	"
१७२१	८।७७।३	देवार्तिभिः काण्वः	"	प्रगाथः=( विषमा बृहती, समा सतो बृहती )
१७२४	८।७७।७	देवार्तिभिः काण्वः	"	"
१७२३	१।८७।११	गौतमो राष्ट्रगणः	"	"
१७२४	१।८७।१०	गौतमो राष्ट्रगणः	"	"
[ २ ]				
१७२५	४।५१।१	वामदेवो गौतमः	उषाः	गायत्री
१७२६	४।५१।३	वामदेवो गौतमः	"	"
१७२७	४।५१।३	वामदेवो गौतमः	"	"
१७२८	१।४६।१	प्रस्थग्धः काण्वः	अग्निः	"
१७२९	१।४६।१	प्रस्थग्धः काण्वः	"	"
१७३०	१।४६।१	प्रस्थग्धः काण्वः	"	"

मंत्रसंख्या	श्राव्येदस्यानं	श्राव्यः	वेद्यता	छन्दा
१७३१	१।१९२।१३	गोतमो राहूगणः	उषाः	उत्थिगृह्
१७३२	१।१९२।१४	गोतमो राहूगणः	"	"
१७३३	१।१९२।१५	गोतमो राहूगणः	"	"
१७३४	१।१९२।१६	गोतमो राहूगणः	अग्निः	"
१७३५	१।१९२।१८	गोतमो राहूगणः	"	"
१७३६	१।१९२।१७	गोतमो राहूगणः	"	"
( ३ )				
१७३७	५।६।१	वसुधृत आग्नेयः	अग्निः	पंक्तिः
१७३८	५।६।३	वसुधृत आग्नेयः	"	"
१७३९	५।६।५	वसुधृत आग्नेयः	"	"
१७४०	५।७।१।१	सत्यश्रवा आग्नेयः	उषाः	"
१७४१	५।७।१।२	सत्यश्रवा आग्नेयः	"	"
१७४२	५।७।१।३	सत्यश्रवा आग्नेयः	"	"
१७४३	५।७।५।१	वसुधृत आग्नेयः	अग्निः	"
१७४४	५।७।५।२	वसुधृत आग्नेयः	"	"
१७४५	५।७।५।३	वसुधृत आग्नेयः	"	"
( ४ )				
१७४६	५।१।१	सुधगविष्टिरावाग्नेयो	अग्निः	त्रिष्टुप्
१७४७	५।१।२	सुधगविष्टिरावाग्नेयो	"	"
१७४८	५।१।३	सुधगविष्टिरावाग्नेयो	"	"
१७४९	१।११३।१	कुस आगिरसः	उषाः	"
१७५०	१।११३।२	कुस आगिरसः	"	"
१७५१	१।११३।३	कुस आगिरसः	"	"
१७५२	५।७।६।१	अग्निर्भौमः	अग्निः	"
१७५३	५।७।६।२	अग्निर्भौमः	"	"
१७५४	५।७।६।३	अग्निर्भौमः	"	"
[ ५ ]				
१७५५	१।१९२।१	गोतमो राहूगणः	उषाः	सगती
१७५६	१।१९२।२	गोतमो राहूगणः	"	"
१७५७	१।१९२।३	गोतमो राहूगणः	"	"
१७५८	१।१९५।१	दीर्घतमा औषध्यः	अग्निः	"
१७५९	१।१९५।२	दीर्घतमा औषध्यः	"	"
१७६०	१।१९५।३	दीर्घतमा औषध्यः	"	"
१७६१	९।५।१	अवस्ताः कारयः	पृथ्व्याः सीमः	गायत्री
१७६२	९।५।२	अवस्ताः कारयः	"	"
१७६३	९।५।३	अवस्ताः कारयः	"	"
१७६४	९।५।४	अवस्ताः कारयः	"	"



## अथ किंशोऽध्यायः ।

अथ नवममपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ९-१ ॥

[ १ ]

( १-१८ ) १ नुमेष आगिरसः; २ ..३ प्रियेष आगिरसः; ४ दीर्घतमा औचप्यः; ५ वामदेवो गीतमः; ६ प्ररकण्यः काण्वः; ७ बृहदुच्यो वामदेव्यः; ८ बिम्बुः पूतवक्षो वा आगिरसः; ९, १७ जमदग्निर्भाविषः; १० युक्तस आगिरसः; ११-१३ वसिष्ठो मंत्रावरणिः; १४ सुदासः पंजवनः; १५ मेधातिथिः काण्वः; १६ नीपातिथिः काण्वः; १८ पदच्छेपो देवोवातिः ॥ १, १७ पवमानः सोमः; ३, ७, १०-१६ इन्द्रः; ४-६, १८ अग्निः; ८ मघतः; ९ शूर्यः; २.....४ १, ८, १०, १५-१७ गावत्री; ( १७ नियापवा ) २.....; ३ अनुषुम्बुजः प्रगायः- ( १ अनुषुम्बु+गावत्री ); ४, ११, १३ विराट्; ५ पदपतितः; ६, ९, १२ प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); ७ त्रिप्युः; १४ शवकरी; १८ अत्यष्टिः ॥

१७६५ प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्योजसः । देवाँ अनु प्रभूयतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१९।१ )

१७६६ सति मृजन्ति वेधसो मृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानसुक्थयस् ॥ २ ॥

( ऋ. ९।२९।२ )

१७६७ सुपहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूयसो । वर्षो समुद्रसुक्थय ॥ ३ ॥ १ ( यि ) ॥

[ धा० १९। उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।२९।३ )

१७६८ एष ब्रह्मा य ऋत्विष्य इन्द्रो नाम भ्रुवो मृणे ॥ १ ॥

१७६९ त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरा न सपसः ॥ २ ॥

१७७० वि सुतयो यथा वथः इन्द्र त्वघन्तु रातयः ॥ ३ ॥ २ ( य ) ॥

[ धा० ९। उ० १ । स्व० १ ]

[ १ ] प्रथमः श्लोकाः ।

[ १७६५ ] ( देवान् अनु प्रभूयतः ) देवों पर अपना अनुकूल प्रभाव फैलानेकी इच्छा करनेवाले, ( लुप्याः ) बल ब्रह्मनेवाले ( अस्य सुतस्य धाराः ) इस सोमरसकी धारायें ( ओजसः प्र अक्षरन् ) मेघसे बर्तनमें गिरने लग गयी हैं ॥ १ ॥

[ १७६६ ] ( वेधसः कारवः ) शानी धक्कड़ें ( गिरा मृणन्तः ) अपनी कान्धीतें स्तुति करते हुए ( ज्योतिः जज्ञानं ) तेज प्रकट करनेवाले ( उपस्थं सति ) स्तुत्य और घोड़ेके समान वेपवान् सोमको ( मृजन्ति ) शृद्ध करते हैं ॥ २ ॥

[ १७६७ ] ( प्रभूयसो उपस्थ्य सोम ) हे बहुत धनवान् और प्रतापीय सोम ! ( पुनानाय ते ) छाने जानेवाले तेरे ( तानि सुपहा ) वे तेज तेरी उत्तम रक्षा करते हैं ( समुद्रं वर्षं ) समुद्रके समान उस बर्तनको भर दे. ॥ ३ ॥

[ १७६८ ] ( यः इन्द्रः नाम भ्रुवः ) ओ इन्द्रके नामसे प्रतिबद्ध है, ( एषः ऋत्विष्यः ब्रह्मा ) यह ऋतुके अनुसारा ब्रह्मनेवाला ब्रह्मा - शानी - है, इसकी ( मृणे ) में स्तुति करता है ॥ १ ॥

[ १७६९ ] ( हे वायसः पते ) हे बलवान् इन्द्र ! ( संयतः न ) जितप्रकार लोग धीमी पुरुषको प्राप्त होते हैं, उसके बात आते हैं, उत्तीमवार ( गिरः ) श्रुतियां ( त्यां इव यन्ति ) तुमों ही प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥

[ १७७० ] ( हे इन्द्र ) इन्द्र ! ( यथा पथा मृणयः ) जितप्रकार बड़े रास्तेके धनेक छोटे - छोटे रास्ते निकलते हैं, उत्तीमवार ( त्वन् रातयः यि घन्तु ) तुमोंके धनेक प्रचारके क्षान उपचारकीनी और आते हैं ॥ ३ ॥

१७७१ आ त्वा रथं यथोतये सुभ्राय वतयामसि । त्विकूर्मिदृतीषहामिन्द्रं शविष्ठं सत्पवित्म् ॥१॥  
( ऋ ८।६।८।१ )

१७७२ त्विशिशुष्म त्विक्रतो यज्ञीषो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥ ( ऋ ८।६।८।२ )

१७७३ यम्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमौयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥ ३ ( व ) ॥  
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ ८।६।८।३ )

१७७४ आ यः पुरं नामिणीमदीदेदस्यः कविर्नमन्योरे नार्षा । श्रो न रुक्कां छवात्सा ॥ १ ॥  
( ऋ. १।१४९।३ )

१७७५ अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुश्रुचानो अस्याम् ।

होता यजिष्ठो अपां सघद्ये ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१४९।४ )

१७७६ अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे चापीणि श्रवस्या ।

मतां या असी सुतुको ददाश ॥ ३ ॥ ४ ( छ ) ॥

[ धा० १९ । उ० ९ । स्व० १ ] ( ऋ १।१४९।५ )

[ १७७१ ] हे इन्द्र ! हम ( जतये सुभ्राय ) स्वतःभ्रम और सुखकी प्राप्तिके लिए ( त्विकूर्मि ) अनेक कर्म करनेवाले और ( दृती-षहं ) हिसक धनुषोंकी नष्ट करनेवाले ( शविष्ठं सत्पवित्म् ) बलवान् और सज्जनोंके पासन करनेवाले ( त्वा इन्द्रं ) हुआ इन्द्रकी ( रथं यथा ) जिसप्रकार सोन रथकी उपासना करते हैं, उसीप्रकार ( जावतयामसि ) प्रदक्षिणा करते हैं, तैसी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[ १७७२ ] ( त्वि-शिशुष्म त्वि-क्रतो ) महान् बलवान् और बहुत कर्म करनेवाले ( शचीयः मते ) दक्षिणान् और पूजनयोग इन्द्र ! तू ( विश्वया महित्वना ) सब प्रकारके महाकृतो मुक्त होकर ( आ पप्राथ ) व्यापक होता है ॥ २ ॥

[ १७७३ ] ( यम्य महः ते हस्ता ) जिस महान् पुत्रके-द्वारे हाथ ( ज्मायन्तं हिरण्ययं यजं ) मुझको धर ताब जगह संभार करनेवाले सोनेके वस्त्रकी ( महिना परि ईयतुः ) दक्षिणपूर्वके धारण करते हैं ॥ ३ ॥

[ १७७४ ] ( यः ) जो अग्नि ( नामिणीं पुरं ) यजमानोंके द्वारा बनाये गए वेदोंकी रचानकी ( अदीदेत् ) प्रदीप्त करता है । ( यः शर्पां नमन्यः न ) जो दक्षिणान् घोड़े और बाणके समान ( अस्यः कविः ) गति करनेवाला और बुरवर्गी है । वह ( श्रोतात्मा श्रुः न ) अनेक कर्षोंमें रहनेवाला अग्नि धूमके समान ( रुक्कयान् ) तेजस्वी है ॥ १ ॥

[ १७७५ ] ( द्वि-जन्मा ) जो अद्वितीय जन्म हुआ हुआ, ( त्रि-रोचनानि ) गार्हपत्य भादि तीन रचानोंकी और ( विश्वा रजांसि शुश्रुचानः ) सब लोकोंकी प्रकाशित करते हुए ( होता यजिष्ठः ) वेदोंकी बुलाकर मानेवाला, पूज्य यह अग्नि ( अपां सघद्ये ) जलके रचानमें बलशाली ( अस्यात् ) रहता है ॥ २ ॥

[ १७७६ ] ( यः द्विजन्मा ) जो दो अद्वितीय जन्म हुआ हुआ ( नः होता ) वेदोंकी बुलाकर मानेवाला ( अयं ) यह अग्नि ( विश्वा चापीणि ) सब लोकोंके प्रकाशित करने योग्य बननेकी और ( श्रवस्या दधे ) गार्हपत्य कर्षोंकी भरल करता है । ( अयं यः मतेः ददाश ) हमें जो मनुष्य हवि देता है, वह ( सु-तुक् ) जगत् पुत्रोंके मुक्त होता है ॥ ३ ॥

१७७७ अग्ने तमघाश्च न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृष्टम् । भ्रष्ट्यामा त ओद्वैः ॥ १ ॥

( ऋ. ४।१।१ )

१७७८ अधा द्यमं क्रतोर्मद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीक्रतस्व पृहतो यभूथ ॥२॥ ( ऋ. ४।१।२ )

१७७९ एभिर्नो अर्कैर्मवा नो अर्वाङ्कस्वर्षेण ज्योतिः ।

अग्न विश्वेभिः सुमना अनीकैः

॥ ३ ॥ ५ ( चि ) ॥

[ धा० ७ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ४।१।३ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१७८० अग्ने विवस्वदुपसथिन्नं राधो अमर्त्यं ।

आ दाशुपे ज्ञातवेदो यद्वा स्वमघा देवां उपबुधः

॥ १ ॥ ( ऋ. १।४।१ )

१७८१ जुष्टो हि दृष्टो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।

सजूभिर्मग्न्यपसा सुवीर्यमस्मे वेदि श्रवो पृहव

॥ २ ॥ ६ ( ला ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । इ० २ । ( ऋ. १।४।२ )

[ १७७७ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( अघ ) आज ( ओद्वैः ते स्तोमैः ) इन्द्रादि देवैको पात पशुं चनेवाले तेरे स्तोत्रोति ( अर्धे न ) घोडेके समान हृदिरो ठीक स्थानपर पशुचानेवाले ( क्रतुं न भद्रं ) यत्के समान कल्याणकारक ( हृदि-स्पृष्टं ते भ्रष्ट्यामा ) हृदयको निय ऐसे उस तुम अग्निको हय बघाते हे ॥ १ ॥

[ १७७८ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( अधा हि ) अग्ने ( भद्रस्य दक्षस्य ) कल्याणकारक गोर बल ब्रह्मनेवाले ( साधोः प्रातस्य ) इष्ट फलको सिद्ध करनेवाले और सत्यस्वरूप ऐसे ( पृहतोः क्रतोः ) गहान् यत्का तु ( रथीः यभूथ ) ज्ञातक होता है ॥ २ ॥

[ १७७९ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( ज्योतिः श्वः न ) ज्योतिरूप सूर्यके समान ( विश्वेभिः अनीकैः सुमनाः ) सब तीनोंति मुक्त और उत्तम मन पारण करनेवाला तु ( नः पथिः अर्कैः ) हमारे इन पुरय देवोंके साथ ( नः अर्वाङ्क-अय ) हमारे पास आ ॥ ३ ॥

॥ यद्वा पदहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १७८० ] हे ( अमर्त्यं जातवेदः अग्ने ) अमर सर्वत्र अग्ने ! ( रथं ) तु ( उपबुधः ) जवा देवताते ( दाशुपे ) बाताको वेनेके सिपु ( विपस्वदुपसथिन्नं राधो ) उत्तम धर जिसके पास है ऐसे अनेक प्रकारके धन ( आयुह ) लेकर आ और ( अघ उपबुधः देवान् ) माग उप कालमें उठनेवाले देवोंको भी यत्के लेकर आ ॥ १ ॥

[ १७८१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! तु ( जुष्टः ) सेवा करने योग्य ( हव्यवाहनः वृतः ) देवोंको हवि पशुं चानेवाला वृत और ( अघराणां रथीः अग्निः ) यत्के देवोंको सानेवाले रथके समान है । ( अग्निर्मग्न्या उपसरा राजुः ) अग्निबली और जवाको साथमें लेकर ( अस्मे सुवीर्यं पृहवु धवः वेदिः ) हमें उत्तम वीर्यति मुक्त बहुत मत दे ॥ २ ॥



१७८२ विधुं दद्राणं समने वहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।

देवस्य पश्य कान्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१५।५ )

१७८३ क्षान्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः ।

यधिकेत सत्यमित्त्र मोघं वसु स्पाईष्टुव जेतोत दाता ॥ २ ॥ ( ऋ १०।१५।६ )

१७८४ ऐभिर्देवैः सुपर्णा पीडस्थानि योमिरोषुद्वज्रहत्याय वञ्ची ।

ये कर्मणः क्रियमाणस्य महः ऋते कर्मसुदजायन्त देवाः ॥ ३ ॥ ७ ( घे ) ॥

[ घा० ३१ । उ० ४ । स्व० ७ । ( ऋ. १०.१५।७ )

१७८५ अस्ति सोमो अयं सुतः पिवन्त्यस्य मरुता । उत स्वराजो अश्विना ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१४।४ )

१७८६ पिबन्ति मित्रो अयंमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिपद्यस्यस्य जायतः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१४।५ )

१७८७ उतो न्वस्य जायमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतव मरुसति ॥ ३ ॥ ८ ( ली ) ॥

[ घा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ ८।१४।६ )

[ १७८२ ] ( विधुं समने वहूनां दद्राणं ) अनेक कार्यं करनेवाले और युद्धमें बहुतसे शत्रुओंको मारनेवाले ( युवानं सन्तं पलितः जगार ) तदणको भी बूढ़ावस्था मिलल जाती है । ( देवस्य महित्वा कान्यं पश्य ) देवोंके बहुशक्ति परिपूर्ण इस कान्यको देख ( ममार स ह्यः समान ) जो भाग भरता है ( सः ह्यः समान ) वह ही कल प्रकट होता है ॥ १ ॥

[ १७८३ ] ( क्षान्मना शाकः ) शक्तिसे सामर्थ्यवान् ( अरुणः सुपर्णः आ ) अरण रंगका कोई पक्षी जाता है, ( यः महः शूरः ) जो बड़ा शूरवीर है पर ( सनादु स-नीडः ) अगलकालसे पीतला-घर-रहित है, ऐसा यह इन्द्र ( यत् चिकेत ) जो कर्मणके रूपमें विद्वित करता है ( तत् सत्यं इत् ) उसे सत्य करके बिचाता है । ( मोघं न ) वह कर्मों भी धनं काम नहीं करता । ( उत स्पाईं वसु जेता ) वह युवक चाहने योग्य धनको जीतकर लानेवाला ( उत दाता ) और स्तुति करनेवालेको पत्र देनेवाला है ॥ २ ॥

[ १७८४ ] यह इन्द्र ( यभिः सुपर्णा पीडस्थानि आन्दे ) इन मरुतोंके साथ रहकर बल युक्त युध्वायेंके कार्य करता है । ( येभिः सुपर्णमाय वञ्ची औशुव् ) जिसके साथ रहकर शत्रुको मारनेके लिए ब्रह्मधारी इन्द्र युद्धि करता है । ( ये देवाः ) जो मरुत् देव ( मद्रः क्रियमाणस्य कर्मणः ) महान् किये जानेवाले कर्मको ( ऋते कर्म उदजायन्त ) साथ कर्म करके दिखाते हैं ॥ ३ ॥

[ १७८५ ] ( अयं सोमः सुतः अस्ति ) यह सोमरत निचोड कर संभार किया गया है, ( अस्य स्वराजः मरुतः ) इतके स्वयंके तेजसे तेजस्वी हुए हुए मरुत् ( उत अभिजना ) और अश्विनी इति ( पिबन्ति ) पीते हैं ॥ १ ॥

[ १७८६ ] ( मित्र ) मित्र ( अयंमा पारुणः ) अयंमा और वरुण देव ( तना पूतस्य ) छलनीसे मुद्ध हुए हुए ( त्रिपद्यस्यस्य जायतः पिबन्ति ) तीन बर्तनों रले हुए स्तुत्य सोमको पीते हैं ॥ २ ॥

[ १७८७ ] ( उत उ इन्द्रः ) और इन्द्र ( सुतस्य गोमतः अस्य जायं ) रत निकले पर तथा पायके रूप मिलाने गए इस सोमको पीनेको ( प्रातः सु मरुसति ) प्रात काल इच्छा करता है, ( होता इय ) जितप्रकार होता स्तुति करनेकी इच्छा करता है, उसीप्रकार इन्द्र सोम पीनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥

१७८८ षण्महा५ अस्ति ध्रुव३ चडादित्य३ महा५ अस्ति ।  
महस्ते३ सता३ महिमा३ पनिष्टम३ महा५ देव३ महा५ अस्ति ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।१११ )

१७८९ बट्३ ध्रुव३ श्रवसा३ महा५ अस्ति सत्रा३ देव३ महा५ अस्ति ।  
महा३ देवानामध्रुवः३ पुरोहितो३ विभ्रु३ ज्योतिरिदाम्यम् ॥ २ ॥ ९ ( त ) ॥  
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१०।११२ )  
॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१७९० उप३ नो३ हरिभिः३ सुव३ यादि३ मदानां३ पते । उप३ नो३ हरिभिः३ सुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९३।३१ )

१७९१ द्विता३ यो३ वृत्रहन्तमो३ विद३ इन्द्रः३ श्रुतकृतुः । उप३ नो३ हरिभिः३ सुतम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९३।३२ )

१७९२ स्व५ हि३ वृत्रहृक्षेपां३ पाता३ सोमानामसि । उप३ नो३ हरिभिः३ सुतम् ॥ ३ ॥ १० ( री ) ॥

[ धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९३।३३ )

१७९३ प्र३ वो३ मह३ महवृषे३ भरष्वे३ प्रचेतसे३ प्र३ सुमतिं३ कृणुध्वम् ।  
विश्वः३ पूर्वाः३ प्र३ चर३ चर्यणिषाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।११।१० )

[ १७८८ ] हे ( सूर्ये ) ध्रुवं ! ( महान् अस्ति बट् ) तू निरुचयते महान् है, ( आदित्य ! महान् अस्ति यद् ) हे आदित्य ! तू महान् है यह सत्य है। हे ( पनिष्टम ) स्तुतिके योग्य ! ( ते महः सतः महिमा ) तुम जैसे महान्की महिमानी स्तुति की जाती है। ( पनिष्टम ! मद्रा महान् अस्ति ) हे प्रगतनीय ! तू अपने महत्वके कारण बड़ा है ॥ १ ॥

[ १७८९ ] हे ( सूर्ये ) ध्रुवं ! तू ( श्रवसा महान् अस्ति यद् ) तू अपने यज्ञके कारण महान् है। हे ( देव ) ध्रुवं देव ! तू ( देवानां मद्रा महान् अस्ति सत्रा ) देवोंके बीचमें महत्वके कारण महान् है, यह सत्य है। तू ( व्यसुधुः पुरोहितः ) असुरोंका नाश करनेवाला है, इसलिए देवोंने तुझे आगे स्थापित किया है। ( ज्योतिः विभुः अत्रार्च्यं ) तेरे तेज व्यापक और कितनी न बननेवाले हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १७९० ] हे ( मदानां पते ) सोमके स्वामी इन्द्र ! ( हरिभिः नः सुतं उप यादि ) घोड़ोंके द्वारा हमारे सोम-पतनं आ। ( हरिभिः नः सुतं उप ) घोड़ोंके हमारे सोमपतनं आ ॥ १ ॥

[ १७९१ ] ( वृत्रहन्तमः श्रुतकृतुः यः इन्द्रः ) धनुओंको मारनेवाला और सैकड़ों बंधं करनेवाला जो इन्द्र है वह ( द्विता यिदे ) री प्रकारके कर्म करनेवाला है, यह सबको मालूम है। ( हरिभिः नः सुतं उप ) घोड़ोंके हमारे सोमपतनके पास आ ॥ २ ॥

धनुओं मारना और आयेका खण्ड बट्ना ये दोनों काम बट् करता है।

[ १७९२ ] हे ( वृत्रहन् ) धनुको मारनेवाले इन्द्र ! ( हि न्ये पूर्वा सोमानां पाता अस्ति ) तू इन सोमपतनोंको पानेवाला है। इसलिए ( हरिभिः नः सुतं उप ) घोड़े बीरवार हमारे सोमपतनके पास आ ॥ ३ ॥

[ १७९३ ] हे धनुष्यो ! ( या महवृषे ) तुम अपने पतनके बजानेके लिए ( महे प्र भरष्वे ) महान् इन्द्रको सोम भंग करो। ( प्र चेतसे सुमतिं प्र कृणुध्वं ) हमको इन्द्रको स्तुति करो। हे इन्द्र ! ( चर्यणि-माः ) प्रजाओंका बीच करनेवाला तू ( पूर्वाः यिदा प्र चट ) हँसने तुम पूर्वं करनेवाली प्रजाओंके पास आ ॥ १ ॥

१७९४ उरुपचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।

तस्य प्रतानि न मिनन्ति घोरः

॥ २ ॥ ( ऋ. ७।२।१।१ )

१७९५ इन्द्रं वाणीरनुचमन्युभव सथा राजानं द्विधरे सहृष्यं ।

हर्षश्चाप बर्हया समापीन्

॥ ३ ॥ ११ ( हि ) ॥

[ धा० २६। उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ७।२।१।२ )

१७९६ षदिन्द्र यावत्स्वमेतावदहमीशीय ।

स्तोतारमिद्विधे रदावसो न पापत्वाय रक्षिषम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।२।१।८ )

१७९७ क्रिक्षेपमिन्महयते द्विधेदिवे राय आ कुड्चिद्विदे ।

न हि स्वदन्यन्मघवज आप्य वस्यो अस्ति पिता च न

॥ २ ॥ १२ ( ता )

[ धा० १४। उ० १। स्व० २ ] ( ऋ. ७।२।१।९ )

१७९८ भ्रुधी हव्यं विपिपानस्याद्रेषांषा विप्रस्याचरो मनीषाम् ।

कृथा दुवात्स्यन्तमा सचेमा

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।२।१४ )

[ १७९४ ] हे ( विप्राः ) ब्राह्मणो ! ( उरुपचसे महिने इन्द्राय ) विशेष स्वापक एते महान् इन्द्रको ( सुवृक्ति मन्त्र जनयन्त ) उत्तम स्तुति और अप्र मुम अर्पण करते हो, ( तस्य प्रतानि ) उस इन्द्रके प्रतीको ( घोरः न मिनन्ति ) घृष्टिनात् लोग नहीं तोड़ते ॥ २ ॥

[ १७९५ ] ( सथा राजानं ) सयके ईश्वर ( अनुचमन्युं इन्द्रं एव ) जितके शोषकेभागो कोई दिन नहीं गफता ऐसे इन्द्रको ही ( वाणीः सहृष्ये द्विधरे ) स्तुतिया शत्रुके पराभव करनेके लिए खाये स्थापित करती है। इसलिये हे स्तुति करनेवालो ! ( हर्षश्चाप व्यापिन् सं बर्हय ) इन्द्रको स्तुति करनेके लिए अपने मित्रोंको उत्तेजित करो ॥ ३ ॥

[ १७९६ ] हे ( इन्द्रः ) इन्द्र ! ( यावत् यावत् ) जितने घनका तु स्वामी है, ( एतावत् अहं ईशिय ) उतने ही घनका मैं भी स्वामी हूँ। हे ( रदावसो ) घन देनेवाले इन्द्र ! मैं ( स्तोतारं इत् द्विधे ) अपने स्तोतारको घन देकर उसका वीणम में कर सकूँ इतना ही घन मैं हूँगा । ( पापत्वाय न रक्षिष्यं ) पापी होनेके लिए उसे ज्यादा घन नहीं दूँगा । मैं निर्धन हो जाऊँ इतना घन नहीं दूँगा ॥ १ ॥

[ १७९७ ] ( कुड्चिद्विदे महयते ) कहीं भी रहकर स्तुति करनेवालेको ( द्विधे द्विधे रायः शिक्षेयं इत् ) प्रतिदिन घन देता हूँ । इन्द्रको यह बात सुनकर ज्यादा कहता है ( मय्यन् इत्यत् अम्यं नहि ) हे इन्द्र ! मेरे शिक्षाय और कोई मेरा भाई नहीं, और ( वस्यः पिता च न अस्ति ) प्रपतन्वीय रक्षक भी कोई दूसरा नहीं है ॥ २ ॥

[ १७९८ ] हे इन्द्र ! ( विपिपानस्य अद्रेः हव्यं भ्रुधी ) सोम करनेवाले मेरे पत्थरोंको आवाज सुन, ( मनीषतः विप्रस्य मनीषां योध ) स्तुति करनेवाले विद्वानोंको बाने सुन, ( इमा दुवात्सि ) इन भेषाजीरों ( अन्तमा सच्चा कृथा ) अपने सगीपके मित्रको सेवामें हूँ, ऐसा बानकर स्वीकार कर ॥ १ ॥

१७९९ न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।

सदा ते नाम स्वयशो विवक्षिम्

॥ २ ॥ ( ऋ. ७।२।१५ )

१८०० भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवसे त्वामित् ।

मारि असन्मघर्वं ज्योक्ताः

॥ ३ ॥ १३ ( वा ) ॥

[ धा० १५ । उ० ३ । स्व० २ ] ( ऋ. ७।२।१६ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१८०१ आं ध्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत । अभीके चिद्दु लोककृतसङ्गे समत्सु वृत्रहा ।

अस्माकं बोधि चोदिता नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि घन्वसु ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१३।१ )

१८०२ त्वं सिधूश् रवास्तुजोऽभराचो अहन्निहम् । अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।

तं त्वा परि ध्वजामहं नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि घन्वसु ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१३।२ )

[ १७९९ ] हे इन्द्र ! ( तुरस्य ते गिरः ) शत्रुको शीघ्रताते नष्ट करनेवाले तेरी स्तुतिको ( असुर्यस्य विद्वान् ) तेरे बलको जाननेके कारण ( न अपि मृष्ये ) में छीब नहीं सकता । ( स्वयशः ते नाम सदा विवक्षिम् ) अपने पण बढ़ानेवाले तेरे स्तोत्रोंको ही मैं हमेशा बोलता रहता हूँ ॥ २ ॥

[ १८०० ] हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! ( मानुषेषु ते भूरि सवना ) मनुष्योंमें तेरे लिए सोमयज्ञ बहुत होते हैं । ( मनीषी त्वां हव् भूरि हवसे ) बुद्धिमान् तेरे लिए बहुत हवन करते हैं, ( असम्त् आरे ) हमसे दूर ( ज्योक्त् मा फः ) बहुत समय मत रह ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १८०१ ] हे तृतीय पाठको ! ( अस्मै इन्द्राय ) इस इन्द्रके ( पुरो रथं शूषं ) रथके भागे रहनेवाले बलकी ( सु प्र अर्चत उ ) उत्तम प्रकारसे पूजा करो । ( समत्सु सगे अभीके चिद्दु ) युद्धमें शत्रुकी रीना हथ पर आक्रमण करतो हुई हमारे पास आजाय, तो ( लोककृत वृत्रहा ) लोकपालक और शत्रुको मारनेवाला इन्द्र ( अस्माकं चोदिता बोधि ) हमारा भेदक है यह तुम जानो । ( अन्यकेषां घन्वसु अधि ज्याका नमन्तां ) अन्य शत्रुओंके घन्वको डोरियां दूट जायँ ॥ १ ॥

[ १८०२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं त्वां सिधूश् अघराचः अवास्तुजः ) नदियोंकी नीची जगह पर बहाकर लानेवाले मेघोंको गिराता है, उन्हें बरसता है । ( अहं अहन् ) मेघोंको फोड़ता है, इसलिए है इन्द्र । त्वां ( अशत्रुः जज्ञिषे ) शत्रुहृत् होता है, त्वां ( विश्वं वार्यं पुष्यसि ) सब स्वीकार करने योग्य पण बढ़ाता है । ( तं त्वा परिध्वं-जामहे ) उस मुझे हम हवि देकर बर्षान् करते हैं । ( अन्यकेषां घन्वसु अधि ज्याका नमन्तां ) शत्रुओंके घन्वकी डोरियां दूट जायँ ॥ २ ॥

१८०३ विं पु विंश्वा अरातयोऽर्षो नशन्त नो धियः ।

अस्तासि शत्रवं वर्षं यो न इन्द्र जिषांसति ।

या ते रातिर्ददिवंसु नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥ १४ ( टि ) ॥

[ धा० ४३ । उ० ६ । स्व० ३ ] ( ऋ १०१३१३ )

१८०४ रेवाश् इद्रेवत् स्तोता साध्वावतो मघोनः । अद्दु हरिवः सुतस्य ॥ १ ॥ ( ऋ ८१११३ )

१८०५ उक्थं च न शस्यमानं नागां रषिरा चिकेत । न गायत्रे गीष्यमानम् ॥ २ ॥ ( ऋ ८१११४ )

१८०६ मा न इन्द्र पीयत्नवे मा श्रभते परा दाः । शिक्षा शचीचः शचीभिः ॥ ३ ॥ १५ ( वि ) ॥

[ धा० १४ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ ८१११५ )

१८०७ एन्द्रः याहि हरिगिरुष कण्वस्य सुष्टुतिम् ।

दिवा अमुष्य शासतो दिवं यय दिवाषसो ॥ १ ॥ ( ऋ ८१४११ )

१८०८ अत्रा वि नेमिरेषामुरा न धृत्तुते वृकाः ।

दिवा अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥ ( ऋ ८१४१२ )

[ १८०३ ] ( नः विंश्वाः अरातयः अर्ष्यः ) हमारे सब शत्रु जो हमपर चढाई करते हुए आते हैं, ये ( सु विन-शन्त ) उत्तम रीतिले नष्ट हो जाएं । हे इन्द्र ! ( यः नः जिषांसति ) जो हमारा वध करनेकी इच्छा करता है, उस ( शत्रुवेषे वर्षं अस्तासि ) शत्रुपर वृ शासन करता है । हे इन्द्र ! तेरे पास ( धियः ) हमारे बुद्धिपूर्वक किए गए कर्म पढ़ते हैं । ( ते या रातिः वसु ददिवः ) तेरे जो दान हैं, ये हमें पान दें । ( अन्यस्येषां धन्वसु अधि ज्याकाः नमन्तां ) शत्रुके शत्रुकी ओरियां दूट जाएं ॥ ३ ॥

[ १८०४ ] हे ( हरिवः ) घोषे रहनेवाले इन्द्र ! ( रेवातः स्तोता रेवान् इत् स्यात् ) तेरे समान धनवान्की स्तुति करनेवाला अवश्य धनी होगा । ( त्वावतः मघोनः सुतस्य अद्दु ) तेरे समान धनवान्की स्तुति करनेवाला अवश्य ऐश्वर्यवान् होता है ॥ १ ॥

[ १८०५ ] हे इन्द्र ! ( न ) इस समय ( अ-गोः रयिः आ चिकेत ) स्तुति व करनेवालोंका धन वृ जानता है, ( क्ष ) जब ( शास्यमानं उक्थं च ) बोले जानेवाले स्तोत्रको भी वृ जानता है । ( न ) जब ( गीष्यमानं गायत्रं ) गायनेवाले गायन सामको भी वृ जानता है ॥ २ ॥

[ १८०६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! वृ ( पीयत्नवे नः मा परादाः ) जिसके शत्रुओंके आधीन हमें मत कर ( श्रभते मा ) हमारा नाश करनेवालेके स्वाधीन हमें मत कर । हे ( शची-यः ) शक्तिवान् इन्द्र ! ( शचीभिः शिक्षा ) अपनी शक्तियोग्यि हमें पान दे ॥ ३ ॥

[ १८०७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( हरिगिः ) घोषोंकी सहायतासे ( कण्वस्य सुष्टुति उप याहि ) कण्वकी उत्तम स्तुतिके पास पहुंच ( अमुष्य दिव्य शासतः ) इस शूलोचके शासनमें हम मुझसे रहते हैं, हे ( विषावतो ) शूलोचके रहनेवाले इन्द्र ! ( दिवं यय ) शूलोचके जा ॥ १ ॥

[ १८०८ ] ( अत्र वेदां नेमिः ) धन इन तीनों करनेवाले पाषण्डोंकी धारें ( उरां वृकाः न ) भेड़को जितप्रकार भेदिया करता है, उतीप्रकार तीनोंकी ( विष्टुत्तुते ) कहेते हुए संघाती हैं । ( अमुष्य दिव्यः शासतः ) इस इन्द्रके शूलोच पर शासन करते हुए हम [ इसके शासनमें ] शूलोच रहते हैं । हे ( विषावतो ) तेजस्वी धनवान् इन्द्र ! ( दिवं यय ) शूलोचके जा ॥ २ ॥

- १८०९ आ त्वा ग्रावा वदन्निह सामी घोषेण वक्षतु ।  
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ ३ ॥ १६ ( व ) ॥  
 [ धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।३१२ )
- १८१० पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६७।६ )
- १८११ ते सुतासां विपश्चितः शुक्रा वाधुमसृक्षत ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६७।८ )
- १८१२ असुग्रं देवधीतये वाजयन्ता रया इव ॥ ३ ॥ १७ ( रौ ) ॥  
 [ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ९।६७।७ )  
 ॥ इति ऋषयः सप्तः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

- १८१३ अमि॒ह होतारं॑ मन्वे॒ दास्यन्ते॑ यसोः॒ घृत्नु॑ः सहसो॒ जातवे॑दसं॒ विप्रं॑ न जातवे॑दसम् ।  
 य ऊर्ध्वे॒या स्वध्वरो॑ देवो॒ देवा॒च्या कृ॒पा ।  
 घृत्स॒ वि॒आष्टि॑मनु॒ शुक्र॑र्शाचि॒प आजु॑ह्वानस्य॒ सर्पि॑णः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१२७।१ )

[ १८०९ ] हे इन्द्र ! ( इह सामी वदन् ग्रावा ) यह इस यज्ञमें सोम कृष्टनेके शब्द करनेवाला पत्थर ( घोषेण आवक्षतु ) शब्द करते हुए सोमको तेरे पास पहुंचावे । ( अमुष्य दिव्यः शासतः ) इस इन्द्रके छुलोकपर शासन करते हुए [ इतके शासनमें ] हम सुखते रहते हैं । ( दिवावसो ) हे तेजस्वी धनवान् इन्द्र ! ( दिव्यं यय ) तू छुलोकमें जा ॥ ३ ॥

[ १८१० ] हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमत्तमः मन्दयन् ) अत्यन्त मधुर ऐसा तू हवं उत्पन्न करता हुआ ( इन्द्राय पवस्व ) इन्द्रके लिए मृद हो ॥ १ ॥

[ १८११ ] ( विपश्चितः ) बुद्धिपर्यक्त ( सुतासः ) सोमरस ( शुक्राः ते ) शुद्ध होनेके बाद वे सोमरस ( वाधुं असृक्षत ) बाधुके लिए तैय्यार होते हैं ॥ २ ॥

[ १८१२ ] ये सोमरस ( वाजयन्ताः देवधीतये ) अन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले प्रजमान देवोंकी देनेके लिए ( असुग्रं ) तैय्यार करते हैं । ( रयाः इव ) जितप्रकार रथ तैय्यार करते हैं, उसीप्रकार सोमको तैय्यार करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १८१३ ] ( दास्यन्ते यसोः ) दान देनेवाला, सबको बसानेवाला ( सहस्रः सृत्नुं जातवेदसं ) बलके उत्पन्न होनेवाला, सब जाननेवाला, ( विप्रं न जातवेदसं ) ब्राह्मणके समान ज्ञानी ( यः देवः स्वध्वरः ) जो प्रथमतयावान् और उत्तम यह करनेवाला है, ऐसे ( ऊर्ध्वेया देवाच्या कृपा ) उच्च अर्थात् श्रेष्ठ देवी सामग्यमें युक्त, ( शुक्राश्चाधिप-आजुह्वानस्य ) उत्तम तेजस्वी और हवन किए जानेवाले ( सर्पिणः ) घृतस्थ विद्यार्थी अनु ) धीके तेजके अनुकूल ( अमि होतारं मन्वे ) ऐसे अग्निको मैं देवोंकी बुलानेवाला मानता हूँ ॥ १ ॥

१८१४ पजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विमं मन्मसिर्विभेभिः शुक्र मन्मभिः ।

परिजमानमिव धा० होतारं चर्षणीनाम् ।

शोचिष्केयां वृषणं यमिमां विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१२।७।२ )

१८१५ स हि पुरु चिदोजसा विरुक्मता दीधानो भवति द्रुहन्तरः परशुनं द्रुहन्तरः ।

वीडु चिधस्य समृती श्रवद्भनेव पस्विधरम् ।

निष्पहमाजो यमते नापते चन्वासहा नापते

॥ ३ ॥ १८ ( टी. ) ॥

[ धा० ४३ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।१२।७।३ )

॥ इति मन्मप्रपाठके प्रथमोऽर्घः ॥ ९-१ ॥

अथ नवमप्रपाठके द्वितीयोऽर्घः ॥ ९-२ ॥

( १-१३ ) १ अग्निः पायकः; २ शीतलः काण्डः; ३ अरुणो रंतहम्बः; ४ अग्निः प्रजापतिः; ५-६, ८ अद्वतारः कायपः; ७ मृगः; ९ गोबृहस्पदप्रवृत्तितो काण्डायतनः; १० त्रिशिरास्त्वायुः; तिग्मद्वीप आम्बरोपो वा; ११ उलो वातायनः;

१३ वेनो भागकः; ४, ७, ८, १२ १-४, ७-८, १२ अग्निः; ५-६ विरये वेवाः; ९ दन्त्र, १० आपः; ११ वायुः;

१३ वेनः १ ( १-२ ) विष्टारसंलिः; १ ( ३-५ ) सतोद्भूतो, १ ( ६ ) उपरिष्टाज्योतिः, २ काकुपः प्रगाथः-

( जियमा ककुप, सया सतोद्भूतो ); ३ जगती; ५-६, १३ त्रिद्वयः; ४, ७-१३, गायत्री ४, ७, ८, १२ ।

१८१६ अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्च्यो विभावसो ।

बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्याश्च दधासि दाशुयं कवे

॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१४।१ )

[ १८१४ ] हे ( विमं शुक्रं ) शानी और तेजस्वी अग्ने ! ( यजमानः ) हय यजमान ( विभेभिः मन्मभिः ) शानी विचारकोके और ( मन्मभिः ) मन्वीय मंत्रोंके कारण ( अंगिरसां ज्येष्ठं ) तेजस्वी लोगोंमें श्रेष्ठ हुए हुए ( यजिष्ठं त्वा हुवेम ) वृजनीय तुममें हयन अर्पण करते हैं । उतके बाद ( धां इव परिजमानं ) घूमके समान घूमनेवाले ( चर्षणीनां होतारं ) लोगोंके लिए हवन करनेवाले ( शोचिष्केयां वृषणं यं ) प्रवीण किरणोंसे युक्त अग्निका ( इमाः विशः ) ये प्रजायें ( जूतये मं अयन्तु ) इष्ट फलको प्राप्तिके लिए सरसग करती हैं ॥ २ ॥

[ १८१५ ] ( सः हि ) यह अग्नि ( विरुक्मता ओजसा ) तेजस्वी अग्ने ( पुरुचिद् दीधानः ) अर्वायक प्रकारमान ( द्रुहन्तरः परशुः न ) शत्रुओंको रूषानेवाले फलके समान ( द्रुहन्तरः श्रवति ) श्रेष्ठ करनेवालोंका नाश करनेवाला होता है । ( यस्व समृती ) जिसके साथ-साथ रहनेसे ( वीडु चिद्व शुवत् ) बलवान् शत्रु भी हार जाने है । ( यत् स्थिरं घना इव ) जो स्थिर होता है वह भी अलके समान छिद्यभिष हो जाता है । इस कारण यह अग्नि ( निः यहमापाः यमते ) शत्रुओंको हृषाकर सबका नियमन करता है । ( न अयते ) अपनी अगहसे भागता नहीं । ( चन्वासहा न अयते ) शत्रुको धारण करनेवाले शीरके समान अपनी जगहसे दूर नहीं होता ॥ ३ ॥

[ १८१६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( तव धयः श्रवः ) तेरे आश प्रशंसनीय हैं । हे ( विभावसो ) मति तेजस्वी अग्ने ! ( अर्च्यः महि भ्राजन्ते ) तेरे शकालयें बहुत प्रवीण हो गई हैं । हे ( बृहद् भानो कवे ) अर्वायक तेजस्वी शानी देव ! ( वाजमुक्थ्याश्च ) प्रशंसनीय अथवा वृ ( दाशुयं दधासि ) प्रत्येक दान देनेवाले देवक्योंको देता है ॥ १ ॥

७४ [ ताप. हिंसी भा. ५ ]

- १८१७ पावकचर्चाः शुक्रचर्चा अनूनचर्चा उदियार्पि मानुना ।  
पुनो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ २ ॥ ( ऋ १०।४०।२ )
- १८१८ ऊर्जा नपाज्ञातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।  
त्वे इयः सं दधुभूरिविषंसञ्चित्रातयो वामजाताः ॥ ३ ॥ ( ऋ १०।४०।३ )
- १८१९ इन्द्रयज्ञमे प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।  
स दर्शतस्य वपुषो वि राजमि पृणक्षि दर्शते क्रतुम् ॥ ४ ॥ ( ऋ १०।४०।४ )
- १८२० इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचतसं क्षयन्त राधसा महः ।  
राति वामस्य सुभर्गा महीमिप दधासि सानमि रयिम् ॥ ५ ॥ ( ऋ १०।४०।५ )
- १८२१ श्रतायानं महिषं विश्वदर्शतमाथि सुभ्राय दधिरे पुरा जनाः ।  
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तम त्वा गिरा दैन्यं मानुषा युगा ॥ ६ ॥ १ ( दि ) ॥

[ धा० ५९। उ० ३। स्व० ३ ] ( ऋ १०।४०।६ )

॥ इति पञ्चम खण्डः ॥ ५ ॥

[ १८१७ ] हे आने ! ( पावकचर्चाः ) पवित्रता करनेवाली किरणोंति युक्त ( शुक्रचर्चा ) निर्मल तेजसे युक्त ( अनूनचर्चा ) पूर्ण तेजस्वी वृ ( मानुना उदियार्पि ) अपने तेजसे उजय होता है। ( पुत्र ) पुत्ररूप अग्नि । मातरा विचरन् ) माताकृपी वो अग्निगोत्रे उत्पन्न होनेके बाद ( उपावसि ) समीप रहकर पत्न करनेवालोंकी रक्षा करता है। ( उभे रोदसी पृणक्षि ) दोनों द्यूलोक और पृथ्वीलोकको वह जोड़ता है अर्थात् हमारे स्वर्गको और बृष्टिसे पृथ्वीको वह पूण करता है ॥ २ ॥

[ १८१८ ] हे ( ऊर्जा नपाद् ) बलके पुत्र ! ( जातवेद् ) सबको जाननेवाले अग्नि देव । सुशस्तिभिर्मन्दस्व ) उत्तम स्तुतिगोत्रि वृ मानचित हो। ( धीतिभिर्हित ) हमारे द्वारा किए गए कर्मोंसे वृ नृप्य हो। ( भूरि विषंसं चित्रोतयः ) अनेक रूपोंसे युक्त और विलक्षण सरक्षण करनेवाले ( वामजाताः इयः ) उत्तम रीतिते उत्पन्न हुए भक्षका ( त्वे सद्दधु ) तुममें यजमान हवन करते हैं ॥ ३ ॥

[ १८१९ ] हे ( अमर्त्ये अग्ने ) अमर आने ! ( जन्तुभि इन्द्रयन्तु ) अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाला वृ ( अस्ये राय प्रथयस्व ) हमारे धनको बढ़ा । ( सः ) वह वृ ( दर्शतस्य वपुषु ) बर्गनीय शरीरसे ( विराजसि ) विद्योय घोभायमान होता है और ( दर्शते क्रतु पृणक्षि ) बर्गनीय यह कर्मको उत्तम फल देता है ॥ ४ ॥

[ १८२० ] ( अध्वरस्य इष्कर्तार ) उसके सहकार करनेवाले ( प्र चेतस ) विद्योय ज्ञानी ( महः राधसक्षयन्तं ) बहुतत घन घातमें रक्षनेवाले और ( धामस्य राति ) उत्तम धन देनेवाले ऐसे सुप्रहारी स्तुति हवन करते हैं। वृ ( सुभर्गा मही इय ) उत्तम भाग्य युक्त बहुत अन्न और ( सानमि रयिं ) सेवन करने योग्य धन ( दधासि ) देता है ॥ ५ ॥

[ १८२१ ] ( जनाः ) धन करनेवाले लोग ( श्रतायान महिष ) धन करनेवाले और पुत्र्य ( विश्वदर्शतमाथि ) तपश्च बर्गनीय अग्निगोत्रे ( सुन्माय पुरा दधिरे ) युक्त प्राप्त करनेके लिए अपने सामने स्थापित करते हैं। हे आने ! ( श्रुत्कर्णं ) उत्तम प्रकारसे श्रावणा सुननेवाले ( सप्रथस्तमं ) अत्यन्त प्रतिष्ठ ( दैन्यं त्वा ) विषययुक्त युक्त तेरी ( शुगा मानुषा ) पति और पत्नी मिलकर दोनों ही ( विद्या ) अपनी बाणोंसे स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

॥ यहाँ पाँचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ६ ]

१८२२ प्र सो अग्ने तयोतिभिः सुवीरामिस्तरति वाजकर्मभिः । यस्य स्वधं संख्यमाविष्य ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१९।३० )

१८२३ तव द्रुप्तो नीलवान्वाध ऋत्विष इन्धानः सिष्णवा ददे ।

त्वं महीनामुपसामसि प्रियः क्षपा वस्तुषु राजसि ॥ २ ॥ २ (यी) ॥

( धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४ ) ( ऋ. ८।१९।३१ )

१८२४ तमोपधीर्दधिरे गर्भमृत्विषं तमापो अयि जनयन्त मातरः ।

तमित्समानं वनिनश्च वीरुषोऽन्तवतीश्च सुवते च विश्वहा ॥ २ ॥ ३ (रि) ॥

( धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ३ ) ( ऋ. १०।९।६ )

१८२५ अग्निन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति । महिपीव वि जायते ॥ १ ॥ ४ (या) ॥

( धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० २ ।

१८२६ यो जागार तमुचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।

यो जागार तमयश्च सोम आह तवाहमस्मि संख्यं न्योकाः ॥ १ ॥ ५ (या) ॥

( धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० २ ) ( ऋ. ९।४।१४ )

[ ६ ] यष्टः खण्डः ।

[ १८२२ ] हे ( अग्ने ) जने ! ( त्वं यस्य स्वधं आ विष्य ) तू जितके साम मित्रता करता है, ( स्वः ) वह मजनाम ( सुवीरामिः ) उतम धीर पुनति मुक्त ( वाज-कर्मभिः ) और बलवर्धक वनति मुक्त ( तव ऊतिभिः ) ऐसे तेरे सरलपौको सहायतासे ( अस्तरति ) संकटसे पार हो जाता है ॥ २ ॥

[ १८२३ ] हे ( सिष्णो ) सोमकी आहुति जिसे धी जानी है ऐसे जाने ! ( द्रुप्तः नीलवान् ) प्रवाह रूप धीर वातसे रहनेवाला ( वादाः ऋत्विषयः ) खुल्य और ऋतुके अनुकूल वेदा ( इन्धानः आधुदे ) तेजस्वी सोम हवन करनेके लिए प्राप्त किया जाता है । ( त्वं महीनां उपसां प्रियः अयि ) तू महान् उपार्जोको प्रिय है । ( क्षपा वस्तुषु राजसि ) राश्रीके समय हवनोय पदार्थसे तू प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

[ १८२४ ] ( ऋत्विषं गर्भं तं ओपधीः दधिरे ) ऋतुके अनुकूल प्रदीप्त ऐसे अग्निको गर्भ रूपसे अरणिमाधारण करती है । ( तं अयि ) उस अग्निको ( मातरः आयः जनयन्त ) पालोक्षयी मातार्ये उत्पन्न करती है । ( वनिनः च समानं तं इत्सु ) वनस्पतियां गर्भ रूपमें रहनेवाले उस अग्निको उत्पन्न करती है । ( अन्तवतीः वीरुषा च ) गर्भ धारण करनेवाली वीरुषि उसे ( विश्वहा सुवते ) हमेशा उत्पन्न करती है ॥ ३ ॥

[ १८२५ ] ( अग्निः इन्द्राय पवते ) अग्नि इन्द्रके लिए प्रदीप्त होता है, वह ( शुक्रः दिवि विराजति ) प्रदीप्त होकर अन्तरिक्षमें प्रकाशित होता है । ( महिपी इव विजायते ) राश्रीके समान वह विशेष रूपसे सुतीभित होता है ॥ ४ ॥

[ १८२६ ] ( यः जागारः ) जो जागता है ( तं न्युचः कामयन्ते ) उसकी रूपामें इच्छा करती है, ( यः जागारः ) जो जागृत रहता है, ( तं उ सामानि यन्ति ) उसे साम प्राप्त होते है, ( यः जागार ) जो जागता है, ( तं अयं सोमः आह ) उतमे वह सोम कहता है, कि / तब संख्ये आहें अस्मि ) तेरी मित्रतामें मैं हूँ । ( अहं न्योकाः वरिसि ) मैं धरते मुक्त हूँ ॥ ५ ॥

- १८२७ अग्निर्जागार तमूचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।  
 अग्निर्जागार तमयः सोम आह तषाहमस्मि सरुये न्योकाः ॥ १ ॥ ६ ( वा ) ॥  
 [ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० २ ( ऋ. १।४४।१९ ) ]
- १८२८ नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकनिषेभ्यः । युञ्जे वाचः श्रवपदीम् । ॥ १ ॥
- १८२९ युञ्जे वाचः श्रवपदीं गाये सहस्रवर्तनि । गायत्रे त्रैष्टुभं जगत् ॥ २ ॥
- १८३० गायत्रे त्रैष्टुभं जगद्विद्या रूपाणि सम्भृता । देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ३ ॥ ७ ( पु ) ॥  
 [ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ९ ]
- १८३१ अग्निज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥
- १८३२ पुनरूर्वा नि वर्तस्व पुनरप इषायुषा । पुनर्नः पाक्षश्हसः ॥ २ ॥
- १८३३ मह इत्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वस्पत्या विश्वतस्परि ॥ ३ ॥ ८ ( डा ) ॥  
 [ धा० ८ । उ० २ । स्व० २ ]

॥ इति षष्ठा कण्ड ॥ ६ ॥

[ १८२७ ] ( अग्निर् जागार ) अग्नि जागता है, ( तं तमूचः कामयन्ते ) इसलिये त्वत्वायें उसकी कामना करते हैं । ( अग्निर् जागार ) अग्नि जागृत रहता है, इसलिये ( तं उ सामानि यन्ति ) उसके पास साम जाते हैं, ( अग्निः जागार ) अग्नि जागृत रहता है, इसलिये ( तं अयं सोम आह ) उससे यह सोम कहता है कि ( तव सख्ये ) तेरी मित्रतामें ( अहं न्योकाः अस्मि ) मैं गृह्णुष्व कहता हूँ ॥ १ ॥

[ १८२८ ] ( पूर्व-सद्भ्यः सखिभ्यः नमः ) पहलेसे पहले बँधनेवाले मित्ररूपी देवोंको नमस्कार करता हूँ । ( साकनिषेभ्यः नमः ) पास पास बँधनेवाले देवोंकी नमस्कार करता हूँ ( श्रवपदीं वाचं युञ्जे ) अर्वाक्ष प्रकारसे स्तुतिवाँकी मैं करता हूँ ॥ १ ॥

[ १८२९ ] ( श्रवपदीं वाचं युञ्जे ) अर्वाक्ष प्रकारसे बनाई गई स्तुतिवाँकी मैं बोलता हूँ । ( गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ) गायत्री त्रिष्टुप, जगती इन छत्रोंसे मुक्त तापीकी ( सहस्रवर्तनि ) हजारों प्रकारसे ( गाये ) मैं गाता हूँ ॥ २ ॥

[ १८३० ] ( गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ) गायत्री, त्रिष्टुप और जगतीके छत्रोंमें ( संभृता ) जो इष्टको ही गई है, ऐसे ( विश्वा रूपाणि ) अनेक रूपोंवाले उन तापीको ( देवाः ओकांसि चक्रिरे ) देवोंने अपने रहनेका स्थान बनाया है, [ उन तापीको मैं गाता हूँ ] ॥ १ ॥

[ १८३१ ] ( अग्निः ज्योतिः ) अग्नि स्वप्ता रूप है । ( ज्योतिः अग्निः ) और स्वप्ता भी अग्नि ही है । ( इन्द्रः ज्योतिः ) इन्द्र प्रकाशरूप है, ( ज्योतिः इन्द्रः ) और प्रकाश भी इन्द्र ही है । ( सूर्यः ज्योतिः ) सूर्य प्रकाश-रूप है, ( ज्योतिः सूर्यः ) ज्योतिः सूर्य है ॥ १ ॥

[ १८३२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( उर्वा पुनः नियतस्य ) अग्नेके साथ फिर हमारे पास आ । ( इषा आयुषा पुन ) अन्न और आयुषे साथ हमारे तरफ आ । ( बँधस्वः नः पुनः पारि ) पारसे हमारी पुन पुन रचना कर ॥ २ ॥

[ १८३३ ] हे अग्ने ! ( इत्या राह नियतस्य ) अन्न साथमें लेकर हमारे पास आ । ( विश्वतः पारि ) सबके बँध और ( विश्वस्पत्या धारया ) सबके लिये उपभोगके योग्य धाराने हर्षे ( पिन्वस्व ) मुक्त कर ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा कण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ]

१८३४ यदिन्द्राहं यथा त्वमीश्वरी वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥१॥ (ऋ. ८।१।४।१)

१८३५ शिष्यमस्मै दिक्षसेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्वाम् ॥२॥ (ऋ. ८।१।४।२)

१८३६ अनुष्ट इन्द्र स्रुता यजमानाय सुन्वते । गामस्य पिप्युषी दुहे ॥३॥ ९ (वि) ॥  
[ धा० १५ । उ० १ । स्व० २ ] (ऋ. ८।१।४।२)

१८३७ आपो हि ह्या मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महं रणाय चक्षसे ॥१॥ (ऋ. १०।१।१)

१८३८ यो वः शिवतमा रसस्तस्य भाजयतेह नः । उग्रशीरिष मातरः ॥२॥ (ऋ. १०।१९.२)

१८३९ तस्मा अरं गमाम वा यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३॥ १० (वा) ॥  
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० २ ] (ऋ. १०।१।२)

१८४० वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृद् । प्र न आयुंश्चि तारिपत् ॥१॥  
(ऋ. १०।१८।१)

१८४१ उत वात पितासि न उत भ्रातात नः सखा । स नो जीवाववे कृधि ॥२॥  
(ऋ. १०।१८।२)

[ ७ ] सतमः खण्डः ।

[ १८३४ ] हे इन्द्र ! ( यथा त्वं वस्वः एक इत् ) जैसा तू धनका भकेल हो स्वामी है, ( यत् अहं ईश्वरी ) बंता ही यदि मे भी धनका स्वामी हो गया तो ( मे स्तोता गोसखा स्यात् ) तेरी स्तुति करनेवाला गार्थीका मित्र हो, तो फिर तेरी स्तुति करनेवाला गार्थीका मित्र भला क्यों न होगा ? ॥ १ ॥

[ १८३५ ] हे ( शचीपते ) शक्तिमान् इन्द्र ! ( यत् अहं गोपतिः स्वाम् ) यदि मैं थायका स्वामी बन जाऊ तो मैं ( अस्मै मनीषिणे दिक्षसेयं ) इस बुद्धिमान्की मैं धन देनेकी इच्छा करू और उसे ( शिष्येयं ) धन भी दू ॥ २ ॥

[ १८३६ ] हे इन्द्र ! ( ते स्रुता येतु ) तेरी स्तुतिको बानी गायका हच पारण करके ( पिप्युषी ) पीयण करनेकी इच्छा करते हू ( सुन्वते यजमानाय ) सोम पत्र करनेवाले यजमानके लिए ( गामं अयं दुहे ) गाय और घोड़े दोनों है ॥ ३ ॥

[ १८३७ ] ( आपः हि मयोभुवः स्व ) जल निस्तम्बेह सुल देनेवाले है । ( ता न ऊर्जे दधातन ) वे हमारे धन और बल बढ़ानेवाले हैं । तथा ( महं रणाय चक्षसे ) महान् रक्षणोय तान प्राप्त करके देनेवाले हों ॥ १ ॥

[ १८३८ ] हे जलो ! ( इह वा यः रसः शिवतमः ) यहाँ जो तुम्हारा रस अत्यन्त सुल देनेवाला है, ( तस्य न भाजयत ) उसे हमें सेवन करनेके लिए दो । ( उग्रशीरिष मातरः इष ) बच्चेके पीयण करनेकी इच्छा करनेवाली माता ( जितातरहं प्रयना हृषको रस अयने बन्वेकी देवी है, उतौ तरह तुम हमें अपना रस दो ॥ २ ॥

[ १८३९ ] हे ( आपः ) जलो ! ( यस्य क्षयाय जिन्वथ ) शिकके निवातके लिए तुम मेरपा करते हो, ( तस्मै धर नः गमाम ) उसके लिए पूर्णरूपसे हम तुम्हारा उपयोग कर संके देता तुम करो । ( नः जनयथ च ) हम पुत्रपौत्र उत्पन्न कर संके देता हूँ सामर्थ्यशाली बनानो ॥ ३ ॥

[ १८४० ] ( वात नः ) वायु हमारी तरफ ( हृद् वांशु मयोभु भेषजं ) हृषको आनन्द देनेवाले और तुम्हारे शीष्य ( आ वातु ) सेकर भावे और ( नः आयुंश्चि प्रतारिपत् ) हमारी आयु बढ़ावे ॥ १ ॥

[ १८४१ ] हे ( वात ) वायो ! ( उत नः पिता असि ) तू हमारा पिता है, ( उत धाता ) और भाई है, ( उत नः सखा ) और हमारा मित्र भी है । ( सः नः जीवाववे कृधि ) यह तू हमारा जीवन जीव कर ॥ २ ॥

१८४२ यद्दो वाव ते गृहेऽऽमृतं निहितं गुहा । तस्य नो घंहि जीवसे ॥ ३ ॥ ११ (पौ) ॥

[ धा० १० । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ १०।१८६।१ )

१८४३ अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्यं विश्वदत्कं सुपर्णः ।

सूर्यस्य भानुमृतथा वसानः परि स्वयं मेधमृजो अजान ॥ १ ॥

१८४४ अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूप तेजः पृथिव्यामधि यस्तं यभूय ।

अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णा अश्वस्य रेतः ॥ २ ॥

१८४५ अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।

सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विशपतिः ॥ ३ ॥ १२ (पु) ॥

[ धा० २० । उ० १ । स्व० २ ]

१८४६ नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा येनन्तो अयचक्षत त्वा ।

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य धीनो शकुनं भुरण्युम् ॥ १ ॥ ( ऋ १०।१९३।६ )

[ १८४२ ] हे ( वाव ) बावो ! ( ते गृहे ) तेरे घरमें ( यद् यद्दः गुहा अमृतं निहितं ) जो गुप्त स्थानमें यह अमृत रखा हुआ है । हे ( यिमावसो ) तेजस्वी धन प्राप्तमें रखनेवाले बावो ! ( तस्य नः घंहि ) यह अमृत हमें दे ॥ ३ ॥

[ १८४३ ] ( सुपर्णः वाजी ) गरुड़के समान बलवान् ( विश्वरूपः ऋजः ) अनेक रूपोंमें युक्त और पापनाशक अग्नि ( जनित्रं अत्क ) अपने उत्पत्ति स्थान - अरुणियों - को अपने तेजसे स्थापित करता है और ( हिरण्यं विश्वदत्कं ) सोनेके समान तेज धारण करता है । ( सूर्यस्य भानुं ) सूर्यके तेजको ( क्रतुया वसानः ) ऋतुके अनुसार धारण करके ( मेध परि स्वयं अजान ) यज्ञको स्वयं समग्र करता है ॥ १ ॥

[ १८४४ ] ( रेतः शिश्रिये विश्वरूपं यत्तेज ) वीर्यके समान अत्यंत लचकाले ये तेज ( अप्सु शिश्रिये ) जलके माध्यमे रहते हैं । ( यद् पृथिव्यां अधि स्वं यभूय ) जो पृथ्वी पर है और ( अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः ) जो अन्तरिक्षमें अपने महिमाको फैलाता है ; ( वृष्णाः अश्वस्य रेतः कनिक्रन्ति ) बलवान् सौम्यका वीर्य शय्य करता हुआ सुते प्राप्त होता है ॥ २ ॥

[ १८४५ ] ( दिवः भुवनस्य धर्ता ) धृती और पृथ्वीलोकको धारण करनेवाला ( विशपतिः ) प्रजाओंका पालन करनेवाला ( सहस्रदाः शतदाः भूरिदावा ) यह करनेवालोंको हजारों, रोकनें तरहके बहुतसा धन देनेवाला ( यज्ञः अयं ) यज्ञ करनेवाला यह अग्नि ( युक्ता सहस्रा परि घलान ) अपने पास रखी हुई हजारों किरणोंको फैलाता हुआ ( सूर्यस्य भानुं वधाार ) सूर्यके तेजको धारण करता है ॥ ३ ॥

[ १८४६ ] हे वेन ! ( सुपर्णं पतन्तं ) गरुड़के समान उड़नेवाले ( हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं ) सोनेके समान रंगवाले बरुणके दूतको ( यमस्य धीनो शकुनं भुरण्युम् ) नियमन करनेवाले विदुन् रूप अग्निके स्थान अन्तरिक्षमें पक्षीके समान उड़नेवाले मध अगत्या पौषण करनेवाले ( त्या हृदा येनन्तः ) तुझे श्रत करणसे प्राप्त करनेकी इच्छा करते हुए स्तोता ( नाके यद् अयचक्षत ) अन्तरिक्षमें अय देखते हैं, मध ( उप ) तेरे पास आते हैं ॥ २ ॥

१८४७ ऊ३शो गन्धर्वो अ३धि नाके म३स्थात्वर३प३ह३चित्रा वि३भ्रद३ध्यायु३पानि ।

वसानो अत्क२ सुरमि दक्षे क२ स्वार्धे नाम जनत प्रियाणि ॥२॥ ( ऋ. १०।१२३।७ )

१८४८ वृ३प्तः स३मुद्र३ममि य३ज्जिगाति प३श्यन् मृ३धस्य च३क्षमा वि३धर्मन् ।

मानु शु३केण शो३चिया च३कानस्तृ३तीयं च३के र३जसि प्रियाणि ॥ ३ ॥ १३ ( खु ) ॥

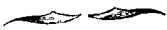
[ धा० २६ । उ० २ । ख० ९ ] ( ऋ. १०।१२३।८ )

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥  
 ॥ इति नवमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्ध ॥ ९-२ ॥  
 ॥ इति विंशोऽध्याय ॥ २० ॥

[ १८७ ] ( ऊ३र्ध्वः गन्धर्वः प्रत्यङ् ) ऊ३पर रहनेवाला जलोकी धारण करनेवाला वेन जब हमारे सामने आकर ( नाके अधि अस्यात् ) अन्तर्लभने स्थिर होता है, तब वह ( अस्य चित्रा आयुधानि विभ्रत् ) अपने विलक्षण शस्त्रोंकी धारण करके ( वृ३शे सुरमि अत्कं वसानः ) देवनेके लिए सुन्दर रूप धारण करते हुए ( स्वः न ) सूर्यके समान ( नाम प्रियाणि जनत ) प्रिय जलोंको उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

[ १८८ ] ( वि३धर्मन् द्र३प्सः ) जिसके गुणोंसे युग्म, प्रवाह युक्त ( मृ३धस्य च३क्षमा पश्यन् ) मृ३ध - सूर्य - के तेजसे तेजस्वी होकर देवनेवाला वेन ( यत् समुद्रं अमि जिगाति ) जम पानीसे भरे हुए मेघके पास जाता है, तब ( मानुः शु३केण शो३चिया ) सूर्य स्वल्ब तेजसे ( तृ३तीयं रजसि चकान ) तीसरे सूतीकर्म प्रकानित होकर ( प्रियाणि चके ) प्रिय जलोंको उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

॥ यदां सप्तमं खण्डं समाप्त हुआ ॥  
 ॥ विंशोऽध्यायः ॥



## विंश अध्याय

इस बीतने के अन्त्यमें इन्द्र, सोम, सूर्य, आप और सोम देवताओंका वर्णन है, उन्हें अब हमसे बोलिए —

इन्द्र

१ इन्द्रः नाम अस्ता, शक्तिव्ययः शक्ता [ १७५८ ] - यह इन्द्रके नामसे विख्यात है, यह ऋषुओंके अनुसार कार्य करनेवाला और उत्तम जानी है ।

२ हे शयसः मते ! तदा इत् स्वयंत न गिरः यन्ति [ १७६९ ] - हे बलके स्वामी इन्द्र ! संयोगी ऋषयकी भंसे स्तुति होती है, उत्तम प्रकार सेरी स्तुति होती है ।

३ हे इन्द्र ! यथा पथा श्रुतयः त्वम् रातयः यि यन्तु [ १७७० ] - हे इन्द्र ! जिसप्रकार बड़े मांगते अनेक छोटे मांग निकलते हैं, उसीप्रकार तुमने अनेक प्रकारके बल उत्पत्तियोंको घोर निकलते हैं ।

४ जतये सुम्नाय तुयिर्दुर्मि श्रुतीयहं दाधिष्ठं सत्पतिं त्वा इन्द्र आयतंयामरि [ १७७१ ] - शर्वरसण और गुरु प्रातिके लिए अनेक उपयोगी बर्ण करनेवाले, हिलक शत्रुओंको मर्द करनेवाले, बलवान् सज्जनोंका पालन करनेवाले तुम इन्द्रको हम अपने पास बुलाते हैं ।

५ तुयिन्नुष्म तुयिमो दाधीयः मते ! विभ्रया

महिषनाम्ना वा प्रमाथ [ १७७२ ]- महा बलवान्, बहुत कार्य करनेवाले शक्तिमान् और बुद्धिमान् इन्द्र । तू सब प्रकारकी महावृष्ण शक्तियोत्तु, युक्त होकर ध्यात होता है ।

६ यस्य महः ते हस्ता उमा-यश्ने द्विरुपयं वज्रं परि ईयतुः [ १७७३ ]- जिस महान् पुरुषके - तेरे - हाथ पृथ्वी पर संचार करनेवाले वज्रकी पारण करते हैं, वज्रका प्रयोग करते हैं ।

७ शाकमना शाकः महः दारः यत् चिकेत, तत् सत्यं इत् मोघं न [ १७८३ ]- अपनी शक्तिसे सातव्यं सम्पन्न ऐसा महान् दार इन्द्र भी करनेका निश्चय करता है, वह निश्चयसे करके दिखाता है, वह निष्फल नहीं होता ।

८ इवाहं वसु जेता, उत दाता [ १७८३ ]- स्पृहणीय पद वह जीतकर लाता है और उसका दान करता है ।

९ एभिः वृष्या पौंस्यानि व्या ददे [ १७८४ ]- इन मरुतोंके साथ रहकर वह इन्द्र सामर्थ्यसे होनेवाले कार्य करता है ।

१० येभिः वृषहस्याय घञी शौक्षत् [ १७८४ ]- इन मरुतोंके साथ रहकर वह वज्रधारी इन्द्र शत्रुको मारनेके लिए बृष्टि करता है, बाणोंकी वर्षा करता है ।

११ वृषहन्तमः दातकतुः इन्द्रः दिताविदे [ १७९१ ]- शत्रुको मारनेवाला, शंकरों कर्म करनेवाला इन्द्र दोनों ही तत्त्वके काम करता है ।

१२ महेशुभे महे प्रभरप्यम् [ १७९३ ]- महान् बुद्धि हो, इसलिए महान् इन्द्रको भरपूर हविर् अर्पण करो ।

१३ प्रचेतसे तुमतिं प्रष्टुण्ये [ १७९३ ]- तानो इन्द्रके बारेमें उत्तम भावना हृदयमें धारण करो ।

१४ चर्पणि-प्रा-विद्याः प्रचर [ १७९३ ] प्रजाओंका योग्य करनेवाला तू प्रजाओंकी सहृदयता कर ।

१५ हे विद्याः । उरुव्यचसे महिने इन्द्राय सुशुक्तिः प्रहा अनयत्, सस्य यतानि धीराः न भिनन्ति [ १७९४ ] हे विद्याओ ! बिदेव व्यापक महान् इन्द्रकी उत्तम स्तुति करो ।

१६ स्वरा राजानं वसुक्षमन्तुं इन्द्रं एष याणीः सहृदयं दधिरे [ १७९५ ]- सबका राजा, जिसके कोपके भागे कोई भी टिक नहीं सकता, ऐसे उता इन्द्रको शत्रुको हारनेके लिए स्तुति भागे करती है ।

१७ हे इन्द्र ! यत् पायता, यतायत् अहं ईदीयि [ १७९६ ]- हे इन्द्र ! जिसमें पयन तू स्वामी है, उसने पयन मे भी स्वामी होने ।

१८ पापत्याय न रंसिपम् [ १७९६ ]- पापी होनेके लिए मैं किसीको धन नहीं दूंगा ।

१९ हे प्रघवन् ! स्वत् अम्यत् आप्यं नहि, [ १७९७ ]- हे धनवान् इन्द्र ! तेरे सिवाय हमारा कोई दूसरा भाई नहीं है ।

२० वस्यः पिता च न अस्ति [ १७९७ ]- तेरे सिवाय प्रजासनीय सरक्षक भी दूसरा कोई नहीं ।

२१ अस्य इन्द्राय पुरो रथं शूचं सु प्र अर्घत् [ १८०१ ]- इस इन्द्रके रथके आगे जानेवाले बलकी स्तुति करो ।

२२ समस्तु सगे अमीके चित्तं लोककृत् वृषहा अस्माकं चोदित्वा योधि [ १८०१ ]- युद्धमें शत्रुके सिवाके अपने ऊपर चढ़ते हुए चले आने पर, लौंगीका कल्याण करने-वाला और शत्रुका नाश करनेवाला इन्द्र हमारा प्रेरक है, यह तू जान ।

२३ अम्यकेयां घञसु अधि ज्याकाः नमन्ताम् [ १८०१ ]- शत्रुके घञकी ओरियां दूट जायें ।

२४ हे इन्द्र ! अहिं अहन्, अदाशुः जज्ञिषे, विधं वार्यं पुण्यति [ १८०२ ]- हे इन्द्र ! तू अहिकी मारकर शत्रुहित हो गया है । तू सब एकीकार करने योग्य धन अपने पास बढाता है ।

२५ नः विभ्याः अरातयः अयं सु विनशन्त, यः नः जिघांसति, शत्रुघे घघं अस्ता अस्ति [ १८०३ ]- हमारे सब शत्रु भी हान पर चडाई करते हैं मूढ हो जायें । जो हमें मारना चाहता है, उस पर तू शत्रु रोक ।

इन्द्र मुप्रसिद्ध है । वह महान् तानो और लोक सम्य पर काम करनेवाला है । वह संयमी है । अनेक उपयोगी कार्य वह करता है । वह आयन्त सामर्थ्यवान् है । वह शत्रुओंका अन्धो तरह पालन करता है । वह हाथीमें वज्र पारण करता है और उनका उपयोग शत्रुके नाश करनेके लिए करता है । जो बरनेवा निश्चय करता है, वह कार्य वह करता ही है । सामर्थ्यसे होनेवाले महान् महान् कार्य वह करता है । वह शत्रुका नाश करके आर्योंकी रक्षा करता है । वह बोलों ही काम करता है । वह प्रजाओंका पावन अन्धो कर रहा करता है । इसलिए उस इन्द्रके बारेमें उत्तम विचार धारण करने-काहिए । वह इन्द्र सबका राजा है । उत्तम कोप जिता पर पकता है वह मूढ हो जाता है । इसलिए उसे प्रताप रखना काहिए । इन्द्रके सिवाय दूसरा कोई भी तपसा मित्र नहीं है । वह ही सबका बर्यापन करनेवाला है । युद्धमें वह ही सबका सरक्षक है । उनमें शत्रुओंको मार । इस कारण उत्तम कोई

भी शत्रु बना नहीं। हमारे शत्रुओंको भी इन्द्र मार दे और हमें भी शत्रु रहित करे।

अग्नि

अथ अग्निं का कर्णं वेदिमे—

१ या द्विजन्मा सः होता अयं विश्वा चार्थाणि श्रवस्या दधे [१७७६]— वो अरणिपोते उत्पन्न हुआ हुआ, देवोंको बुझाकर यज्ञस्थानमें लानेवाला यह अग्नि सब ब्राह्मणें पोष्य धर्मोंको और यज्ञस्वी कर्मोंको धारण करता है।

२ हे अग्ने ! भद्रस्य दक्षस्य साधोः ऋतस्य दृढतः प्रतोः रथीः धभूथ [१७७८]— हे अग्ने ! कल्याणकारक और बल बढ़ानेवाले उत्तम तस्य ऐसे महान् यज्ञका नू संघा-सक होता है। यज्ञ कल्याण करता है, बल बढ़ाता है ऐसा यह यज्ञ अग्निमें होता है।

३ हे अग्ने ! हृष्ययाहनः दूतः अध्वराणां रथीः असि। अस्मे सुवीर्यं दृढवत् अथः घेदि [१७८१]—हे अग्ने ! तू हृष्यनीय इन्द्र्य देवोंके पास पहुँचानेवाला दूत और अहितापूर्ण यज्ञका संघालक है। हमें उत्तम वीर्यसे दूत महान् यज्ञ दे। अग्निमें हवन किए गए पदार्थ अति शूभ्र हो जाते हैं और अग्नि उन्हें नष्ट। पहुँचाना होता है वहाँ पहुँचा देता है। यह अग्नि हिंसके बिना यज्ञ करता है। इस पदार्थ हिंसा नहीं होती। इन पदार्थों वीर्य बढ़ता है और यज्ञ भी बढ़ता है।

४ विद्यमत्ता भोजता पुनश्चित् वीधानः दृढन्तरः परन्तुः न दृढन्तरः भवति [१८१५]— विजित्य तैसाधी और बलसे अधिक प्रकाशमान होकर, शत्रुओंको काटनेवाले करनेके समान, मोड़ करनेवालोंका नाश करनेवाला होता है।

५ यस्य समृती यीडु चित् शुधत् [१८१५]— जिसके साथ रहनेसे शत्रुकी भी हराता आमान हो जाता है।

६ निःपह्म्राणः यमते [१८१५] शत्रुको हराकर उत्तम नियमन करता है।

७ पापकथर्चाः शुकथर्चाः अनूनकथर्चाः भानुना उद्विर्षि [१८१७]— शुद्धता कथनेवाली किरणोंसे मुक्त, निर्मल किरणोंसे मुक्त, पूर्ण तेजस्वी, ऐसा तू अपने तेजसे उदरको प्राप्त होता है।

८ अध्वरस्य इष्कृत्वाँरं प्रवेत्सलं महः राघसः क्षयन्तं पागस्य रथि [१८२०]— यज्ञ करनेवाले, सान्नी, बहुत धन प्राप्त करनेवाले ऐसे अग्निकी रूप स्तुति करते हैं।

४८ [ ताप. हिन्दू ]

९ सुभगां महौ इयं सान्ति रथि दधाति [१८२०]—अधिक भाग्ययुक्त अन्न और तेजस करने योग्य धन अग्नि देता है।

१० जनाः क्रतावानं महिषं विश्वदश्रौतं आग्निं सुम्नाय पुरः दधिरे [१८२१]— लोग यज्ञ करनेवाले, पूज्य, सर्वत्र दन्तनीय अग्निको धरने सुखकी प्राप्तिके लिए अपने आगे स्थापित करते हैं।

११ हे अग्ने ! त्वं यस्य सस्यं आविध, सः सु-वीराग्निः पात्रकर्मभिः तव ऊतिभिः प्रनरति [१८२२]—हे अग्ने ! तू जिसके साथ मित्रता करता है, यह उत्तम वीर पुष्टि और बल बढ़ानेवाले कर्मोंसे युक्त तेरे तरसपानि संकटोंसे पार हो जाता है।

१२ हे अग्ने ! ऊर्जा इया आयुषा निवर्तस्व। अंहसः नः पादि [१८२२]—हे अग्ने ! तू बल, अन्न और आयुके साथ हमारे पास आ। पापसे हमारी रक्षा कर।

१३ हे अग्ने ! रथ्या सह नियर्त्तस्व [१८२३]—हे अग्ने ! तू धनके साथ हमारे पास आ।

यह अग्नि वो अरणिवाँकी रणसे उत्पन्न होता है। यह कल्याण करनेवाले बल बढ़ाता है। यह हवनमें अग्नि गए पदार्थोंको जहाँ पहुँचाना होता है वहाँ पहुँचाना है और उत्तम वीर्य बढ़ाता है। जिसप्रकार करता सक्कीको काटता है, उसीप्रकार यह अग्नि रोगियोंको मृत्यु करती है। इसकी सहायतासे बलवान् रोगवीज भी मृत्यु हो जाते हैं। इसका प्रकाश पवित्रता करनेवाला है। यह अग्नि उत्तम बल बढ़ानेवाले अन्न और धन देता है। गुल और आरोग्यके लिए सान्नी योग इस अग्निकी स्थापना करते हैं। इस अग्निमें हवन करना बल बढ़ानेवाला कर्म है। अग्निसे तैय्यार किए गए अन्न मनुष्योंके बल, आरोग्य और आयु बढ़ाते हैं।

आपः ( जल )

१ आपः अयोभुयः, ताः नः ऊर्जे दधातुन, महो रणाय चक्षते [१८३७]— जल नि सादेह मुक्त बढ़ानेवाले हैं। वे हमारे बल बढ़ानेवाले हैं तथा वे महान् और सुन्दर वर्ण करानेवाले हैं।

२ इद यः यः दियतमः रसः तस्य नः भाजयाम [१८३८]— यहाँ जो सुभक्त मत्तन बरवान् करनेवाला रस है, उसका तेज हमारे पास हो, ऐसा कर।

३ हे आपः ! यस्य क्षयाय जिग्मथ, तस्य अंशं यः

गमाम [ १७३९ ]— हे जलो ! जिसको सुखसे निवास करानेके लिए तुम प्रयत्न करते हो, वे कार्य हम तुमसे पूर्णरूपसे कर्त्तव्य है।

पानी आरोग्य बढ़ानेवाले और सुख देनेवाले है। उससे शरीरका बल बढ़ता है, और शरीरकी सुन्दरता बढ़ती है। पानीमें जो रस है, वह कल्याण करनेवाला है। उसे पानेवाला मनुष्य निरोगी होकर सुखी होता है। इन मंत्रोंमें जल त्रिकित्ताका वर्णन है। पानी एक उत्तम औषधि है। जल-चिकित्सासे बहुत रोग दूर हो सकते हैं। इस प्रकार शुद्ध जल अत्यन्त उपयोगी है।

### वायु

१ वातः नः हृदये शंखु भयोरु भ्रुवजं आवातु, नः आर्युषि प्रतारिषत् [ १८४० ]— वायु हमारे हृदयका आनन्द बढ़ानेवाला और आरोग्य बढ़ानेवाला होकर बड़े और हमारी आयु बढ़ावे।

२ हे वात ! ते श्रुदे यत् अद् गृहा भ्रमृतं निहितं, तस्य नः घेहि [ १८४२ ]— हे वायो ! तेरे घरमें जो अमृत रखा हुआ है, उसे हमें दे।

३ हे वात ! नः पिता, भ्राता, सखा असि, नः जीवात्तवे कृषि [ १८४१ ]— हे वायो ! तू ही हमारा पिता, भाई और मित्र है, इसलिए तू हमारा जीवन दीर्घ कर।

वायुमें औषधिका गुण है, वायु उन पुरुषोंके लेकर हमारे पास आये और हमारी उमर बढ़ाये। वायुमें अमृत है। इसलिए वायुका ठीक तरह सेवण करनेसे मृत्यु दूर होकर आयु बढ़ती है।

### सोम

१ यः जागार ते अय सोम आह, तय सक्ये अहं असि [ १८२६ ]— जो जागता रहता है, उससे यह सोम कहता है कि तेरी मित्रतामें मैं हूँ। तेरा मैं मित्र हूँ।

जागृत रहनेवाले क्षीयति सोम मित्रता करनेवाला है। वह उत्तम कल्याण करनेवाला है। सोमका उपयोग जागृत रहकर करना चाहिए।

### सुभाषित

१ देवस्यः फारयः ज्योतिः ज्ञानं भ्रुजन्ति [ १७६६ ]— कार्य करनेवाले ज्ञानी तेजस्विता प्रकट करनेवालेकी मुद्र करते हैं।

२ पुनानाय ते तानि सुपहा [ १७६७ ]— शुद्ध होनेवाले सुखसे उत्तम प्रकारसे रक्षा करनेवाले बल प्राप्त होते हैं।

३ पथाः क्रतिययः ब्रह्मा गृणे [ १७६८ ]— यह ऋतुओंके अनुसार कार्य करनेवाला ज्ञानी प्रशंसित होता है।

४ हे शवसः पते ! संयतः न त्वां गिरः यन्ति [ १७६९ ]— हे बलके स्वाधी इन्द्र ! जैसे मनुष्य सपनी पुष्टको प्राप्त होते हैं, उसीप्रकार स्तुतियोंसे तुझे प्राप्त होती है।

५ हे इन्द्र ! यथा पथा स्तुतयः, त्वत् रातयः वि यन्तु [ १७७० ]— हे इन्द्र ! जैसे बड़े रातसे छोटे-छोटे राते निकलते हैं, उसीप्रकार तुमसे अनेक प्रकारके दान निकलते हैं।

६ ऊतये सुस्नाय तुषिकूर्मिः क्रतोर्पदं शक्तिं सत्पतिं त्वा इन्द्रे आवर्तयामसि [ १७७१ ]— त्वत्तरक्षण और सुख प्राप्तिके लिए अनेक कर्म करनेवाले हितक पाशुओंका नाम करनेवाले इन्द्रकी हम उपासना करते हैं।

७ तुषिकृष्ण तुषिक्रतो शचीयः मते ! विष्वया महित्यना आ प्रमाय [ १७७२ ]— हे महा बलवान् सनेक कर्म करनेवाले, शक्तिमान् और बुद्धिमान् इन्द्र ! तब प्रशारके महत्त्वपूर्ण शक्तियोंके साथ तू सर्वत्र व्याप्त है।

८ मद्रस्य दक्षस्य साधोः क्रतस्य बृहतः क्रतोः रथीः यभूय [ १७७८ ]— कल्याण करनेवाले, बल बढ़ानेवाले, उत्तम, सत्य और बड़े- बड़े कर्मोंका तू संचालक है।

९ ज्योतिः स्वः नः, विभ्येभिः अनीकिः सुमनः नः अर्घाक् भव [ १७७९ ]— ज्योति स्वल्प सुर्घके समान, सब तेजोंसे युक्त उत्तम मन धारण करनेवाला तू हमारे पास आ।

१० विचरयत् चिदं राधः आ वध, अद्य उपर्युधाः देयान् आ घह [ १७८० ]— तेरस्वी और बिलक्षण धन लेकर आ और आज सबेरे प्रातःकाल उठनेवाले विद्वानोंकी लेकर इस यज्ञमें आ।

११ अप्यरापां रथीः असि [ १७८१ ]— हितारहित कर्मोंका तू संचालक है।

१२ अस्से सुर्वीये बृहत् अयः घेहि [ १७८१ ]— हमें उत्तम पराक्रम करनेके सामर्थ्य और महान् धन दे।

१३ विष्णुं समने यद्नां द्वाणं युवानं समन्तं पलितं जगार [ १७८२ ]— अनेक कार्य करनेवाले, युद्धमें बहुतसे शत्रुओंकी मारनेवाले सधनकी ओ बुद्धावस्था निगल जाती है।

१४ देवस्य महित्यना कार्यं पद्य [ १७८२ ]— देवके महिमामें बड़े हुए इस कामकी देती।



१५ अद्य ममार स ह्यः समान [ १७८२ ]- आज जो घर गया वही कल प्रकट होता है। ' समान ' ( सं-आन ) उत्तम रीतिसे प्राण धारण करता है।

१६ यत् चिकेत, तत् सत्यं इत्, मोषं न [ १७८३ ]- इन्द्र जो कर्मव्य कर्तव्यका निरूपण करता है, उसे सत्य करके दिखाता है, उसे धर्म नहीं जाने देता।

१७ स्वाहं यत्तु जेता उत दाता [ १७८३ ]- यह चाहने योग्य धनको जीतकर लाता है और उसका दान करता है।

१८ वृण्वया पौत्रानि आ द्ये [ १७८४ ]- वह बल बटानेवाले पौरुषके काम करता है।

१९ ये देव्याः मद्राः त्रियमापास्य कर्मणः क्रमे कर्म उद्वजायन्त [ १७८४ ]- जो देव महत्वके बटाने योग्य कार्योंमें सत्य धर्म ही करके दिखाते हैं।

२० हे सूर्य ! महान् अस्ति नर [ १७८८ ]- हे सूर्य ! तू निरुपमसे महान् है।

२१ आदित्य ! महान् अस्ति यद् [ १७८८ ]- है सूर्य ! तू महान् है, यह सत्य है।

२२ ते स्वताः मद्राः मणिमा [ १७८८ ]- तेरे जैसे महान्-की महिमा भी महान् है।

२३ पनिष्ठम ! मद्रा महान् अस्ति [ १७८८ ]- है रुण्य ! तू अपने महिमासे महान् है।

२४ हे सूर्य ! अथवा महान् अस्ति यद् [ १७८९ ]- है सूर्य ! तू अपने महान् यगते महान् है। वह सत्य है।

२५ देवानां मद्रा महान् अस्ति [ १७८९ ]- तू देवोंके महत्वके कारण मद्रा है।

२६ असुर्यः पुरोहितः [ १७८९ ]- तू असुरोंका नाम करनेवाला है इसलिए तुझे आगे स्थापित किया है।

२७ ज्योतिः त्रिभुः क्षत्र्यस्य [ १७८९ ]- तेरे तीव्र श्रापक और न बचनेवाले हैं।

२८ वृषहस्तमः शतप्रभुः इन्द्रः द्विता विदे [ १७९१ ]- वृषको मारनेवाला, तीक्ष्णों कर्म करनेवाला इन्द्र दोनों प्रकारके कार्य करता है। आर्योंका संरक्षण और दुष्टोंका नाश ये दोनों उसके काम हैं।

२९ वाः महेष्टुधे महे ममरपयम् [ १७९३ ]- अपने महान् संवर्धनके लिए महान् धीरका विशेष सम्मान करो। उसे जो देना हो, भरपूर दो।

३० प्र चेतसे सुमतिं प्रकृषुष्यं [ १७९३ ]- विशेष बुद्धिमान्के विषयमें अपने उत्तम विचार बना।

३१ चर्याणिप्राः चिदा प्रचर [ १७९३ ]- प्रजाओंका पोषण कर।

३२ हे विप्राः ! उरुव्यचसे मद्रिणे इन्द्राय सुमुक्तिं ब्रह्म जनयन्त, तस्य प्रतानि धीरा न भिनन्ति [ १७९४ ]- हे ब्राह्मणों ! विशेष व्यापक इन्द्रके लिए उत्तम स्तुतिके स्तोत्र करो। उसके कार्य बुद्धिमान लोग बिनट नहीं कर सकते।

३३ सत्रा राजानं अनुत्तमस्युं इन्द्रं एव वाणीः सद्युधे दधिरे [ १७९५ ]- सबका एक ही समग्रसे राजा होनेवाले, जिसके क्रोधके आगे कोई डर नहीं सकता, ऐसे इन्द्रको ही हमारा वाणी समग्रजनोंके हृदयसे लिए आने करती है।

३४ हर्यंश्वाय आपीन् सं चर्षय [ १७९५ ]- इन्द्रको स्तुति करनेके लिए निम्नको प्रोत्साहन दो।

३५ हे इन्द्र ! यत् वायता, पतानत् अहं ईशाय [ १७९६ ]- हे इन्द्र ! जितने धनका तू स्वामी है, उतनेका ही मैं स्वामी होऊँ।

३६ स्तोतारं इत् दधिरे, पापत्याय न रंसिन्म् [ १७८६ ]- स्तोतारों में घन देकर उसका धारण करूँगा, पर उसे पापमें प्रवृत्त नहीं होने दूँगा। पाप करनेमें वह आनन्द माने ऐसा उसे अवगत नहीं होने दूँगा।

३७ कुहचिद् विदे महयते दिवे दिवे रायः शिश्रेयं इत् [ १७९७ ]- इन्द्र कहला है जो कहीं पर भी रहकर महत्वके कार्य करनेवालेको में घन देता है।

३८ हे मघवन् ! न्यत् अग्न्यद् आर्यं नदि, वस्यः पिता च न अस्ति [ १७९७ ]- हे इन्द्र ! तेरे पिताय हमारा दूसरा कोई भाई नहीं है, और प्रसंगीय पिता भी दूसरा कोई नहीं।

३९ अर्चतः चिप्रस्य मनीषां बोध [ १७९७ ]- अर्चना करनेवाले ब्राह्मणोंके मन तू जान।

४० अन्तमा सचा इमा दुर्पोति रुष्य [ १७९८ ]- मैं बहुत निरुपमतामिण हूँ ऐसी भावनासे इन तैवामोंको स्वीकार कर।

४१ नुरदय ते गिरः असुर्यस्य विद्वान् न अवि मुष्ये [ १७९९ ]- धीमताते वानुओंका पाग करनेवाले तेरी स्तुतिमेंको तेरे बलकी जाननेवाला मैं डर नहीं कर सकूँगा। तेरी स्तुति में अघट्य करूँगा।

४२ स्वयदाः से नाम सदा चिद्यकिम् [ १७९९ ]-  
अपने दशको बढानेवाले तेरे नामकी में सदा लेता रहूगा ।

४३ मनीषी त्वां इत् भूरि ह्यते [ १८०० ]-बुद्धिमान्  
तेरे लिये बहुत हवन करता है ।

४४ अस्मत् आरे ज्योक् मा कः [ १८०० ]-हमसे  
दूर तू बहुत क्याता समय तक न रहे ।

४५ असे इन्द्राय पुरोरव शर्पं सु म अर्चत [ १८०१ ]  
इस इन्द्रके रचके भागें रहनेवाले सामर्थ्यका अच्छी तरह  
पूजन करे ।

४६ समस्तसु संगे अग्नीके चित् लोफहत् घृत्रहा  
अस्माक चोदिता घोषि [ १८०१ ]-यदि युद्धमें शत्रुको  
सेना हम पर घडती हुई पास आ जावे, तो लोषीका पालन  
करनेवाला और घृत्रको मारनेवाला इन्द्र हमारा उस्माह  
बढानेवाला है, यह तुम जानो ।

४७ अन्यकेयां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्तां [ १८०१ ]  
-अन्य दायकीं धन्वकीं ओरियो दृष्ट जायें ।

४८ अहिं अहन् अदायुः जग्निरे [ १८०२ ]-वाहको  
मारकर तू नमुरहित होता है ।

४९ धिभ्यं वार्यं पुष्यसि [ १८०२ ]- तब चाहते योग्य  
धनको तू बढाता है ।

५० तं त्वा परिप्यजामहे [ १८०२ ]- उस तुझे हम  
यज्ञमें करते हैं ।

५१ नःविभ्याः अरातयः वर्यः सुयिज्ञान्त [ १८०३ ]  
-तम पर चडकर चले आनेवाले तब शत्रु उत्तम रीतिसे नष्ट  
हो जायें ।

५२ यः नः जिघांसति शत्रवे घघं अस्ता अक्षि  
[ १८०३ ]- जो हमारा वध करनेकी इच्छा करता है, उस  
शत्रुपर तू मारक अस्त्र फेंकता है ।

५३ ते या रातिः वसु द्दिः [ १८०३ ]- तेरे वे  
दान हवें वन देखें ।

५४ हे हारिवः ! रेवतः स्तोना रेवान् स्वार्त् [ १८०४ ]  
-हे जोड़े वासमें रहनेवाले इन्द्र ! तेरे समान धनवान्की  
स्तुति करनेवाला धनवान् होगा ही ।

५५ त्वायत मघेनः सुतस्य प्रेदुः [ १८०४ ]- तेरे  
जैसे धनवालेकी स्तुति करनेवाला अवाय धनवान् होगा ही ।

५६ अ-योः रयिः मा चिनेत [ १८०५ ]- गाय न  
पालनेवालेके धन नू जानता है ।

५७ पांयान्ये नः मा पर दाः [ १८०६ ]- हिमक  
शत्रुओंके आघात हमें न कर ।

५८ शर्षते मा [ १८०६ ]- नाश करनेवालोंके सपना  
हमें मत कर ।

५९ हे शर्षावः ! शर्षाभिः शिक्ष [ १८०६ ] है  
शक्तिमान् इन्द्र ! अपनी शक्तिसे हमें घन दे ।

६० सः विदक्षमता ओजसा पुरचिस् दीधानः  
दुहन्तरः भवाते [ १८१५ ] यह अपने तेजस्वी बलसे  
अत्यन्त तेजस्वी होकर शत्रुका नाश करनेवाला होता है ।

६१ पस्य समृतौ सीदु चिद् ध्रुयत् [ १८१५ ]-  
जिसके साथ रहनेसे बलवान् शत्रु भी हार जाता है ।

६२ धन्वास्तहा न अयते [ १८१५ ]- धन्वधारी भीर  
अपनी जगहसे नहीं हटता ।

६३ निःपहमाणः यमते [ १८१५ ]- शत्रुको हारने-  
वाला सबका नियमन करता है ।

६४ वय वयः ध्रुव [ १८१६ ]- तेरा अन्न प्रशस्तनीय है ।

६५ हे विवावसो ! अर्चयः मदि भ्राजन्ते [ १८१६ ]  
-हे तेजस्वी भग्ने ! तेने उवालायें बहुत प्रदीप्त हो चुकी हैं ।

६६ पायकचर्चाः, नुफचर्चाः, अनुनचर्चाः भातुना  
उदियरिं [ १८१७ ]- शूद्र करनेवाली किरकोसि मुक्त,  
निर्मल तेजसे मुक्त, पूर्ण तेजस्वी ऐसा तू अपने तेजसे उदयको  
प्राप्त होता है ।

६७ हे अमर्त्य अग्ने ! जगन्भिः इरज्यन् अस्मे  
रायः प्रथयस्व [ १८१९ ]- हे अमर भग्ने ! अपने तेजसे  
तेजस्वी हुआ हुआ तू हमारे घन बढा ।

६८ दूर्वातस्य धनुषः विराजसि [ १८१९ ] तू सुन्दर  
शरीरसे सुनोमित होता है ।

६९ दूर्वातं फ्रतुं पूषसि [ १८१९ ]- वसुनीय सुन्दर  
यज्ञकर्मको उत्तम फल देता है ।

७० अच्यरस्य इफकर्त्तारं प्रथेतसं, मद्दः राघसः  
क्षयन्तं, धामस्य रातिं सुमगां मदीं हयं, स्वान्तिरार्ये  
दुधसि [ १८२० ]- अहिंवायुर्षं यज्ञकेः संस्कार करनेवाले,  
विशेष जानी, बहुत धन वासमें रहनेवाले और उत्तम धन  
देनेवाले तेरी मैं स्तुति करता हूँ । तू उत्तम भाग्य मुक्त बहुत  
अन्न और तेजनीय धन हवें देता है ।

७१ जनाः अतपानं महिषं विभ्वदूर्वातं अग्निं  
सुम्नाय पुरः दधिरे [ १८२१ ]-- याज्ञक यज्ञ करनेवाले  
पूष्य, सब प्रकृष्टको दर्शनके अन्तर्को मूल ही, इसलिये अपने  
भाग्य स्थापित करते हैं ।

७२ त्वं वस्य सखं आपिय, सः सुधीरामिः वाज

कर्माभिः तव ऊतिभिः प्र तरति [ १८२२ ]- तू जितके साथ मित्रता करता है, वह धीर पुत्रोंति और बलवर्धक कर्मोंति मुख होता है और तेरे तरसर्वाँति मुखत होकर सकटोंति पार हो जाता है ।

७३ शुक्र विधि चिराजति, महिषीय विजायते [ १८२५ ]- अग्नि प्रवीण होकर आकाशमें प्रकाशित होता है, रात्रीके समान वह सुबोधित होता है ।

७४ यो जागार तं क्लः कामयन्ते [ १८२६ ]- जो जागता है, उसकी इच्छा श्रेष्ठायें करती है ।

७५ यो जागार तं उ सामानि यति [ १८२६ ]- जो जागता रहता है उसे साथ प्राप्त होता है ।

७६ यः जागार तं अयं सौम आह, तय सख्ये अहं अस्मि [ १८२६ ]- जो जागूक रहता है, उससे यह तोम रहता है कि मैं तेरा मित्र होकर रहता हूँ ।

७७ अहं न्योयताः वसि [ १८२६ ]- मैं घर बनाकर नहीं रहता ।

७८ पूर्वसद्भ्यः सखिभ्यः नमः [ १८२८ ]- पहलेसे यज्ञमें बैठनेवाले मित्रोंको मैं नमस्कार करता हूँ ।

७९ साकेनियेभ्यः नमः [ १८२८ ]- पास पास बैठनेवालोंको नमस्कार करता हूँ ।

८० विध्वा रूपाणि ओकांसि देवाः अक्रिरे [ १८३० ]- धनेक रूपोंति घर देवोंनि बनाये हैं ।

८१ हे अग्ने ! ऊर्जा इया आयुषा पुनः निवर्तस्य [ १८३१ ]- तू बल, अन्न और आयुके साथ हमारे पास आ ।

८२ अहंसाः नः पुनः पाहि [ १८३२ ]- पाससे हमारी बार बार रक्षा कर ।

८३ अग्ने ! ख्या सह नियर्चस्य [ १८३३ ]- हे अग्ने ! धनेके साथ तू हमारे पास आ ।

८४ हे इन्द्र ! यथा त्वं गस्वः एकः इव, यत् अहं ईदीय, मे स्तोता गोसखा स्यात् [ १८३४ ]- हे इन्द्र ! मैंसा तू धकेला ही धरका स्वामी हूँ, वंता ही मैं धनका स्वामी यदि हो जाऊ, तो मेरी स्तुति करनेवाला पावोंधर मित्र हो ।

८५ आषा मयोमुचः स्य, ताः न ऊर्जे दधातव, माहे रणाप चक्षसे [ १८३७ ]- नाल निस्सन्नेह मुख देने-वाले हूँ, वे हमारे बल बढ़ानेवाले हों, वे महान और सुबधर हालको देनेवाले हों ।

८६ इह यः य शिद्यतमा रस, तस्य नः भाजयत [ १८३८ ]- हे जलो ! यहाँ जो सुगन्हा अमृत मुख देने-वाला रस है, उसे हमें सेवन करनेके लिए दो ।

८७ हे आषः ! यस्य क्षयाय जिन्वथ, तस्य अरं गमाम [ १८३९ ]- हे जलो ! जिसका यहाँ निघात हो, ऐसी इच्छा करते हो, उसके लिए हन पूर्ण रूपसे उपवीणी हों, ऐसा मुख करो ।

८८ घातः नः हृदे शम्भु मयोभु भेषजं आ घातु, नः आयूषि प्रतरिषन् [ १८४० ]- बापु हमारी तरफ हृदयको आनव देनेवाले और मुखकारक औषध लेकर आवे, और हमारी आयु बढ़ाये ।

८९ हे वात ! नः पिता, आता, सखा वसि, सः न जीवातेवे वृषि [ १८४१ ]- हे वायो ! तू हमारा पिता, भाई और मित्र है, वह तू हमारी आयु दीर्घ कर ।

९० हे वात ! ते गृहे गृहा अमृतं निहितं, हे विभा- यतो ! तस्य नः श्रेहि [ १८४२ ]- हे वायो ! तेरे घरमें गुप्त स्थान पर अमृत रखा हुआ है । हे धन पातमें रहने-वाले वायो ! ये धन हमें दे ।

## उपमा

१ समुद्र वर्षे [ १७६७ ]- समुद्रने समान पावोंको भर दे ।

२ संपतः न [ १७६९ ]- तयमी मुखसे समान ( गिरः यन्तिः ) स्तुतियोंको प्राप्त होती हैं ।

३ यथा पथा कृतयः [ १७७० ]- जैसे बड़े रातलेसे धनेक छोटे रातले फूटते हैं, (स्वयं रातय धियन्तु) जसी-प्रकार पुत्रसे अनेक शत्रु निकलते हैं ।

४ यः धर्यां नभन्तः न [ १७७४ ]- जो ( भनि ) गतिमान् वायुके समान वेगवाला होता है ।

५ अश्वे न [ १७७७ ]- जितप्रकार घोड़ा मनुष्यको यथास्थान बहुवाता है, जसीप्रकार वह भनि ( भद्रं वन्तु ) कल्याण करनेवाले यज्ञको बढ़ाता है ।

६ होता इय [ १७८७ ]- जितप्रकार होता स्तुति करता है, जसीप्रकार ( प्रातः अत्यन्ति ) वह प्रातः काम सोमलोकमें बढ़ा करता है ।

७ उरां छुकः न [ १८०८ ]- भेडको जितप्रकार भेडिया कपाता है, डसीप्रकार ( एयां नेमिः विधुनुते ) ये परवरोंकी धारें सोमलताको कूटते हुए कपाती हैं ।

८ रथाः इव [ १८१२ ]- जितप्रकार रथोंको तैय्यार करते हैं, जसीप्रकार ( असुप्रन् ) अथ तैय्यार करते हैं ।

९ विप्रं न जातयेदसौ [ १८१३ ]- विप्रके समान शानो अन्तिके समान तेजस्वी होता है ।

१० धां इव परिजमानं [ १८१४ ]- धूपके समान धूमनेवाला ।

११ द्रुहन्तरः परद्रुः न [ १८१५ ]- सक्कीको काटने-वाले करनेके समान वह अग्नि ( द्रुहन्तरः भयाति ) धारुओंको काटनेवाला होता है ।

१२ महिषी इव विजायते [ १८२५ ]- रानीके समान वह अग्नि सुशीभित होता है ।

१३ स्वः न [ १८४७ ]- धूपके समान ( द्रुदो सुरभि अत्कं वस्तानः ) दीकनेमें सुन्दर लगनेवाले रूपको धारण करता है ।

## विंशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

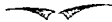
संज्ञकसंख्या	ऋष्येवत्स्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १ )				
१७६५	१।१९।१	नृमेघ आंगिरसः	पथमानः सोमः	गायत्री
१७६६	१।१९।१	नृमेघ आंगिरसः	"	"
१७६७	१।१९।३	नृमेघ आंगिरसः	"	"
१७६८	—	नृमेघः वामदेवो वा	इन्द्रः	द्विषया पंक्तिः
१७६९	—	नृमेघः वामदेवो वा	"	"
१७७०	—	नृमेघः वामदेवो वा	"	"
१७७१	८।६।८।१	प्रियमेघः आंगिरसः	"	अमृष्ट्यु
१७७२	८।६।८।१	प्रियमेघः आंगिरसः	"	गायत्री
१७७३	८।६।८।३	प्रियमेघः आंगिरसः	"	"
१७७४	१।१४९।३	दीर्घतमा औषध्यः	शनिः	विंशत्
१७७५	१।१४९।४	दीर्घतमा औषध्यः	"	"
१७७६	१।१४९।५	दीर्घतमा औषध्यः	"	"
१७७७	४।१०।१	वामदेवो गीतमः	"	पदपंक्तिः
१७७८	४।१०।१	वामदेवो गीतमः	"	"
१७७९	४।१०।३	वामदेवो गीतमः	"	"
( २ )				
१७८०	१।४४।१	प्रत्कण्वः काण्वः	"	प्रगाथः- ( विषया बहुती, तमा सतीमृहती )
१७८१	१।४४।२	प्रत्कण्वः काण्वः	"	"
१७८२	१।०।५।५।५	बृहदुवषो वामदेव्यः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१७८३	१।०।५।५।६	बृहदुवषो वामदेव्यः	"	"
१७८४	१।०।५।५।७	बृहदुवषो वामदेव्यः	"	"

संस्कृत्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋचिः	त्रेयता	छन्दः
१७८५	८।१७।४	विन्दुः पूतबधो वा आगिरसः	महत.	गायत्री
१७८६	८।१७।५	विन्दुः पूतबधो वा आगिरसः	"	"
१७८७	८।१७।६	विन्दुः पूतबधो वा आगिरसः	सूर्यः	प्रगायः= ( विषमा बृहती, समा सतीबृहती )
१७८८	८।१०।१।११	जमदग्निर्भागवः	"	"
१७८९	८।१०।१।१२	जमदग्निर्भागवः	"	"
( ३ )				
१७९०	८।१७।३।१	सुकक्ष आगिरसः	द्वन्द्व.	गायत्री
१७९१	८।१७।३।२	सुकक्ष आगिरसः	"	"
१७९२	८।१७।३।३	सुकक्ष आगिरसः	"	विराट्
१७९३	७।३।१।१०	वसिष्ठो मंत्रायवधि.	"	"
१७९४	७।३।१।११	वसिष्ठो मंत्रायवधि	"	"
१७९५	७।३।१।१२	वसिष्ठो मंत्रायवधिः	"	प्रगायः=( विषमा बृहती, समा सतीबृहती, )
१७९६	७।३।१।१८	वसिष्ठो मंत्रायवधिः	"	"
१७९७	७।३।१।१९	वसिष्ठो मंत्रायवधिः	"	"
१७९८	७।३।१।१४	वसिष्ठो मंत्रायवधिः	"	विराट्
१७९९	७।३।१।५	वसिष्ठो मंत्रायवधिः	"	"
१८००	७।३।१।६	वसिष्ठो मंत्रायवधिः	"	"
( ४ )				
१८०१	१०।१३।३।१	सुदासः वैजवनः	"	राजवरी
१८०२	१०।१३।३।२	सुदासः वैजवनः	"	"
१८०३	१०।१३।३।३	सुदासाः वैजवनः	"	गायत्री
१८०४	८।१।१।३	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१८०५	८।१।१।४	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१८०६	८।१।१।५	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१८०७	८।३।४।१	नीपातिथिः काण्वः	"	"
१८०८	८।३।४।२	नीपातिथिः काण्वः	"	"
१८०९	८।३।४।३	नीपातिथिः काण्वः	"	"
१८१०	९।६।७।१६	जमदग्निर्भागवः	पवमानः सोम.	"
१८११	९।६।७।१८	जमदग्निर्भागवः	"	"
१८१२	९।६।७।१७	जमदग्निर्भागवः	"	"
( ५ )				
१८१३	१।११।७।१	परुच्छेपो बंबोडातिः	अग्निः	अपचष्टिः
१८१४	१।११।७।२	परुच्छेपो बंबोडातिः	"	"
१८१५	१।११।७।३	परुच्छेपो बंबोडातिः	अग्निः	चिच्छासंपत्तिः
१८१६	१०।१४।०।१	अग्निः पावकाः	"	"
१८१७	१०।१४।०।५	अग्निः पावकाः	"	"

सप्तसंख्या	श्रुत्वेदस्थान	श्रुतिः	वेषता	छन्दः
१८१८	१०।१४०।३	अग्निः पायकः	अग्निः	सतोम्हती
१८१९	१०।१४०।४	अग्निः पायकः	"	"
१८२०	१०।१४०।५	अग्निः पायकः	"	"
१८२१	१०।१४०।६	क्षन्तिः पायकः	"	उपरिष्टाभ्ययोतिः
( ६ )				
१८२२	८।१९।३०	सोमभिः काण्वः	"	काकुभः प्रगाथः ( वियमा ककुपु, सया सतोम्हती
१८२३	८।१९।३१	सोमभिः काण्वः	"	"
१८२४	१०।१९।३	अरण्यो बँतहृष्यः	"	जगती
१८२५	—	अग्निः प्रजापतिः	"	गायत्री
१८२६	५।४४।१४	अयत्सारः काश्यपः	विश्वे वेदाः	त्रिष्टुप्
१८२७	५।४४।१५	अयत्सारः काश्यपः	"	"
१८२८	—	मुगः	अग्निः	गायत्री
१८२९	—	मुगः	"	"
१८३०	—	मुगः	"	"
१८३१	—	अयत्सारः काश्यपः	"	"
१८३२	—	अयत्सारः काश्यपः	"	"
१८३३	—	अयत्सारः काश्यपः	"	"
( ७ )				
१८३४	८।१४।१	सोमस्यस्यसूक्तितो काण्वायनो	इन्द्रः	"
१८३५	८।१४।२	सोमस्यस्यसूक्तितो काण्वायनो	"	"
१८३६	८।१४।३	सोमस्यस्यसूक्तितो काण्वायनो	"	"
१८३७	१०।१९।१	त्रिसिरस्स्वाष्टुः, तिम्युद्धीषो आम्बरीषो वा	आपः	"
१८३८	१०।१९।२	त्रिसिरस्स्वाष्टुः, तिम्युद्धीषो आम्बरीषो वा	"	"
१८३९	१०।१९।३	त्रिसिरस्स्वाष्टुः, तिम्युद्धीषो आम्बरीषो वा	"	"
१८४०	१०।१८६।१	उलो धातायनः	वायुः	"
१८४१	१०।१८६।२	उलो धातायनः	"	"
१८४२	१०।१८६।३	उलो धातायनः	"	"
१८४३	—	सुपर्णः	अग्निः	त्रिष्टुप्
१८४४	—	सुपर्णः	"	"
१८४५	—	सुपर्णः	"	"
१८४६	१०।१९३।६	वेनो भार्गवः	वेनः	"
१८४७	१०।१९३।७	वेनो भार्गवः	"	"
१८४८	१०।१९३।८	वेनो भार्गवः	"	"



अथैकैकिकिशोऽहफायः ।



अथ नवमप्रपाठके तृतीयोऽर्घः ॥ ९-३ ॥

( १-९ ) १-४, ५ ( १-२ ) अथतिरय ऐंशः ; ५ ( ३ ), ६ ( ३ ), ८ ( १, ३ ) पायुर्भरंशः ; ७ ( १-२ ) गातो  
भाद्याः ; ९ ( १ ) जय ऐंशः ; ९ ( २-३ ) गोतमो राहूयः ; ४ ( ३ ) ६ ( १-२ )-७ ७ ( ३ )-८ ( २ )...

॥ १, २ ( २-२ ), ३-४, ५ ( २ ), ६, ७, ९ ( १ ) इन्द्रः ; ५ ( २ ) इन्द्रो मयतो वा ; २ ( १ ) बृहस्पति ;

५ ( १ ) जन्वा देवो, ५ ( ३ ) इषयः ; ६ ( ३ ) ( संभ्रामाशिय ) युद्धभूमि - कवच - बह्मयस्परवादिभ्यः ;

८ ( १, ३ ) [ संभ्रामाशियः १ शर्व - रोम - परणा, ३ वैश्वहाणि ] ; ९ शीमावधो ( २-२ ) विच्छे

देवाः ; ८ ( ३ )... ॥ ३ ॥ १-४, ५ ( १ ), ६ ( १ ) ८ ( १ ) ९ ( १-२ ) निष्पृ,

५ ( २ २ ), ६ ( २ ) ७ ( १-२ ), ८ ( २ ) अनुत्सुः ; ६ ( ३ ) पितः ;

९ ( ३ ) विराट्त्वानाः ; ७ ( ३ ) विराट् जगती ८ ( ३ )... ॥

- १८४९ आशुः शिखानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभेणक्षर्षणीनाम् ।  
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्सकामिन्द्रः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१३।१ )
- १८५० सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युस्कारेण दुश्चयवनेन धृष्णुना ।  
तदिन्द्रेण जयत तरसदृष्वे युधो नर इषुहस्तेन धृष्णा ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१३।२ )
- १८५१ स इषुहस्तैः स निषदृग्भिर्विशी सञ्चष्टा स युष इन्द्रो गणेन ।  
सञ्चष्टित्सोमपा वाहुशुशुभ्रप्रघन्वा प्रतिहिताभिरैवा ॥ ३ ॥ ( फे. ११ )

[ धा० ४०।३० स् स्वं ७ ] ( ऋ. १०।१३।३ )

[ १८४९ ] ( आशुः भीमः ) शीघ्रता कर्त्तव्यता और शयकर ( वृषभः न शिखानः ) शतके समान शत्रुको मारनेवाला ( घनाघनः ) शत्रुका गाथा करनेवाला ( क्षर्षणीनां क्षोभणः ) श्रेय करनेवाले दुष्प्रायः क्षोभ उत्पन्न करनेवाला ( संक्रन्दन. अनिमिषः ) शत्रुओंको बलनेवाला और मातृत्व न करनेवाला ( एकवीर. इन्द्रः ) ऐसा अद्वितीय वीर इन्द्र ( शतं सेनाः सार्क अजयत् ) शत्रुओं शत्रुओंकी सेनाको एक ही साथ भोतकर हराता है ॥ १ ॥

[ १८५० ] ( युधः नरः ) है युद्ध करनेवाले नेताओ । ( सं क्रन्दनेन ) शत्रुओंको बलनेवाले ( अनिमिषेण ) मातृत्व न करनेवाले ( जिष्णुना ) जय प्राप्त करनेवाले ( युस्कारेण ) युद्ध करनेमें निपुण ( दुश्चयवनेन ) शत्रुने स्थान पर स्थिर रहनेवाले ( धृष्णुना ) शत्रुओंकी पराजित करनेवाले ( इषु-हस्तेन धृष्णा इन्द्रेण ) बाण हाथमें धारण करनेवाले बलवान् इन्द्रको सहायतासे ( तत् जयत ) यह युद्ध जीतो, और ( तत् सदृष्वे ) जामें शत्रुको हराओ ॥ २ ॥

[ १८५१ ] ( सः इषुहस्तैः पशो ) वह इन्द्र बाण हाथमें धारण करनेवाले घोषाओंकी सहायतासे सब शत्रुओं पर शयः अधिकार करता है, ( सः निषदृग्भिः ) वह तलवारधारी घोषाओंकी सहायतासे सब शत्रुओंकी हारता है । ( सः इन्द्रः ) वह इन्द्र ( युधः ) युद्ध करनेमें प्रवीण ( गणेन सञ्चष्टा ) शत्रु शत्रुशयने साथ युद्ध करता है । ( सं-चष्टित् ) युद्ध जीतनेवाला ( सोमपाः ) सोम पीनेवाला, ( वाहु-शुशुभ्र ) वाहुबलसे युक्त ( उग्र-घन्वा ) शत्रु बलनेमें कुशल ( प्रतिहिताभिः गस्ता ) छोरे हुए शत्रुओंको मारनेवाला ॥ ३ ॥

४९ [ साम हिषी भा. २ ]

- १८५२ वृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामिश्रा अपवाधमानः ।  
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणा युधा जयन्नस्माकमेध्वविता रथानाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१०१४ )
- १८५३ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।  
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥ २ ॥ ( ऋ १०।१०३५ )
- १८५४ गोत्रमिदं गोविदं यज्ञबाहुं जयन्तमज्म प्रमणन्तमोजसा ।  
इमं सजाता अनु वीरयधमिन्द्रं सखाया अनु सध रमध्वम् । ३ ॥ २ ( हे ) ॥  
[ धा० ३६ । उ० नास्ति । स्व० ७ ] ( ऋ. १०।१०३६ )
- १८५५ अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।  
दुदृच्यवनः पृतनापाडयुधोऽस्माकं सेना प्रवत् प्र युत्सु ॥ १ ॥ ( ऋ १०।१०३७ )
- १८५६ इन्द्र आसां नेता वृहस्पतिदक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।  
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां महतो यन्त्वग्रम् ॥ २ ॥ ( ऋ १०।१०३८ )

[ १८५२ ] हे ( वृहस्पते ) बहूतोंका पालन करनेवाले इन्द्र ! ( रथेन परिदीय ) रथसे यहाँजा । ( रक्षो-हा ) रक्षसोंकी मारनेवाला और ( अमिश्रान् अपवाधमानः ) शत्रुओंको बाधा पहुचानेवाला ( सेनाः प्रभञ्जन् प्रमृण ) शत्रुको सेनाको छिन्नभिन्न करने उनका नाश कर । ( युधा जयत् ) युद्धमें जय प्राप्त कर, ( अस्माकं रथानां सविता पृथि ) हमारे रथोंका रक्षक होकर तू बह ॥ १ ॥

[ १८५३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( बल-विज्ञायः ) सबके बल जाननेवाला ( स्थविरः ) बडा ( प्र-वीरः सह-स्वान् ) विजय खोरता बिसानेवाला, शत्रु को हटानेमें तमर्ष ( याजी सहमानः ) बलवान् और साहस बिलानेवाला ( उग्रः अभिवीरः ) उग्र, महावीर ( अभि सत्वा सहोजाः ) बलवान् और बलके साथ उत्पन्न हुआ हुआ ( गोवित् ) गायोंका पालन करनेवाला तू ( जैत्रं रथं आ तिष्ठ ) विजयी रथ पर बैठ ॥ २ ॥

[ १८५४ ] हे ( सजाताः ) एक स्थानमें रहनेवाले योद्धाओं ! ( गोत्रमिदं ) शत्रुके किलोंको तोड़नेवाले ( गो विदं ) शत्रु पालनेवाले ( यज्ञबाहुं ) पृथक्के तमाल मजबूत नुजाओंवाले ( अज्म जयन्तं ) युद्ध जीतनेवाले ( ओजसा प्रमृणन्तं ) बलसे शत्रुका नाश करनेवाले ( इमं ) इस इन्द्रकी आगे करके ( अनुवीरयध्वं ) उसके अनुकूल रहकर खोरता बिलानेवाले हे ( सखाय ) मित्रों ! ( अनु स्तंभध्वम् ) इस इन्द्रके अनुकूल रहकर शत्रु पर क्रोध करो ॥ ३ ॥

[ १८५५ ] ( गोत्राणि सहसा अभि गाहमानः ) शत्रुके किलोंमें अपनी शक्तिसे प्रवेश करनेवाला ( अ-दयो वीरः ) शत्रु पर बया न बिलानेवाला और ( शत-मन्युः ) बहुत शत्रुओं पर क्रोध करनेवाला ( दुदृच्यवनः ) जो अपने स्थानसे हिलाने नहीं आ सकता ( पृतना-पाडः ) शत्रुको सेनाकी हटानेवाला, ( अयुधयः इन्द्रः ) जिसके साथ कोई भी शत्रु युद्ध नहीं कर सकता, ऐसा इन्द्र ( युत्सु ) युद्धमें ( अस्माकं सेनाः प्र अयत् ) हमारी सेनाका सरक्षण करे ॥ १ ॥

[ १८५६ ] ( आसां नेता इन्द्रः ) हमारी इन सेनाओंका नेता इन्द्र है । ( वृहस्पतिः पुरः एतु ) वृहस्पति तमर्ष आगे जावे । ( दक्षिणा यज्ञः सोमः ) चतुरतासे युद्धरूप यत् बलानेवाला सोम भी आगे जावे, ( महतो ) महतवी ( अभिभञ्जतीनां ) शत्रुओंकी मारनेवाले ( जयन्तीनां देवसेनानां ) विजयी देवोंकी सेनाके आगे चले ॥ २ ॥



- १८५७ इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य रात्रा आदित्यानां भरुताश्च अर्षे उग्रम् ।  
 महामनसां भुवनरूपवानां घोषा देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ३ ॥ ३ ॥ ( च ) ॥  
 [ धा० २७ । उ० १ । २०० १ । ( ऋ १० । १०३ । ९ )
- १८५८ उद्धर्षय मधवन्नायुषान्युत्तमत्वेनां मामकानां मनांसि ।  
 उद्ध्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्ध्रयानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ १ ॥ ( ऋ १० । १०३ । १० )
- १८५९ अस्माकमिन्द्रः समतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।  
 अस्माकं वीरा उत्तरं भयन्वस्माश्च उ देवा अवतां हवेषु ॥ २ ॥ ( ऋ १० । १०३ । ११ )
- १८६० असीं या सेना भरतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पृधमाना ।  
 तां गृह्य तमसापत्रतेन यथेतपामन्यो अन्यं न जानात् ॥ ३ ॥ ४ ( जु ) ॥  
 [ धा ३२ । उ० १ । २५० ५ ] ( अर्षे ३ । १ । ६ )
- १८६१ असीषां चित्तं प्रतिशोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्ये परेहि ।  
 अभि प्रेहि निर्दद हस्तु ओंकरन्धेनाभिप्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ १ ॥ ( ऋ १० । १०३ । १२ )

[ १८५७ ] ( वृष्णः इन्द्रस्य ) वरुणान् इन्द्रके ( रात्राः वरुणस्य ) रात्रा वरुणके ( आदित्यानां भरुतां ) आदित्योके और भरुतके ( उग्रं अर्षेः ) उग्र मल हमारे तहायक हों । ( महामनसां ) बिराल हृषयवाले ( भुवनरूपवानां ) शत्रुके क्षीणोकी हिला केनेशते ( जयतां देवानां घोषः ) विजयी देवोंकी अग्रजकार ( उदस्थात् ) गुनाई वेती है ॥ ३ ॥

[ १८५८ ] हे ( सप्तयन् ) यनवान् इन्द्र ! हमारे ( आयुषानि उद् हर्षय ) सप्तयारी घोरीका उरवाह बडा, ( मामकानां सत्यनां मनांसि उत् ) हमारे बलवान् सैनिकोंका मन उत्साहित कर । हे ( उद्ध्रहन् ) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! ( वाजिनां वाजिनानि उत् ) हमारे घोड़ोंकी गति बडा, तथा ( जयतां द्यानां घोषाः उत् यन्तु ) विजयी होकर मानेवाले हमारे स्वयं गुनाई देवें ॥ १ ॥

[ १८५९ ] ( अस्माकं समतेषु ध्वजेषु ) हमारे बध्नायारी सैनिकोंका रक्षण ( इन्द्रः ) इन्द्र करे । ( अस्माकं याः इषयाः जयन्तु ) हमारे जो माण है, वे विजयी हों । ( अस्माकं वीराः उत्तरं भयन्तु ) हमारे और भेद हों । हे ( देवा ) देवो ! ( अस्मान् उ ह्येषु अथत ) मुझमें हमारी रक्षा करो ॥ २ ॥

[ १८६० ] हे ( भरतः ) मलतो ! ( या असीं ) जो यह ( ओजसा स्पृधमाना ) अपने सामर्थ्यो हमारे साथ-साथमाना करती हुई परेषां सेना नः अभ्येति ) शत्रुको सेना हम पर आक्रमण करती हुई माती है । ( तां अप-यतेन तमसा गृह्य ) उन सेनाकी, जितमें कुछ भी काय नहीं बिना वा तपता ऐसे, गृह्ये मन्पकारते ढक दे, ( यथा पतेषां अन्यः अन्यं न जानात् ) जितने बि शत्रु सेनाके लोग शत्रु-विपश्ये म पक्षान सके और आपतयें ही बट मरे ॥ ३ ॥

[ १८६१ ] हे ( अध्ये ) पापके देवते ! ( परा इहि ) दू गुनाते दूर हो जा, ( असीषां चित्तं प्रतिशोभयन्ती ) अपने शत्रुओंके चित्तको मोहित कर और ( अमानि गृहाण ) अपने अर्णोंको जकट दे । ( अभि प्र इहि ) उन शत्रुओं पर आक्रमण कर । ( हस्तु शोकं निर्दद ) उनके हृषयोंको शोकते जमा दे । ( अभिप्राः अग्धेन तमसा सचन्तां ) हमारे शत्रु गृह्ये अथकारके कारण शत्रुको ही जायें ॥ १ ॥

- १८६२ प्रेता जपता नर इन्द्रो वः शुर्मं यच्छतु ।  
उग्रा वः सन्तु वाहवाऽनाधुष्या यथासथ ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१०१।११ )
- १८६३ अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंश्रिते ।  
गच्छामित्रान् पथस्य मामीषां कं च नाच्छिषः ॥ ३ ॥ ५ ( ठा ) ॥  
[ धा० १८। ७० २। १२०-२ ] ( ऋ ६।७२।६ )
- १८६४ कङ्काः सुपर्णा अनु घन्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।  
मेषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयाश्स्येनाननुपंयन्तु सवात्र ॥ १ ॥
- १८६५ अमित्रसेनां मघवन्नस्मां छुन्नयतीममि । उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्मिथ्य दहतं प्रति ॥ २ ॥
- १८६६ यत्र वाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।  
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शुर्मं यच्छतु विश्वाहा शुर्मं यच्छतु ॥ ३ ॥ ६ ( या ) ॥  
[ धा० २७। ७० नास्ति । स्व० १ ] ऋ. ६।७२।१७ )
- १८६७ वि रक्षो वि मृषो जाहि वि वृत्रस्य हन् रुज ।  
वि मन्मुमिन्द्र वृत्रहन्मित्रस्याभिदासतः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१६२।३ )

[ १८६२ ] हे ( नरः ) वीरो । ( प्र इत, जयत ) शत्रु पर घटाई करो और विजय प्राप्त करो । ( इन्द्रः वा शुर्मं यच्छतु ) इन्द्र तुम्हें मुक्त देवे । ( वः वाहवः उग्राः सन्तु ) तुम्हारी भुजाएँ मोरता मुक्त हों । ( यथा अनाधुष्याः आसथ ) जिसके कारण तुम पर शत्रु आक्रमण न कर सके ॥ २ ॥

[ १८६३ ] हे ( ब्रह्मसंश्रिते शरव्ये ) जगत्से प्रेरित किये गए भाग्य ! ( अवसृष्टा परा पत ) छोड़ें आनेके बाद तू बुर जाकर गिर और ( अमित्रान् ) शत्रु पर ( प्र पथस्य ) जाकर गिर । ( मामीषां कंचन मा उच्छिषः ) जगत्से कोई भी जोचित न रहे ॥ ३ ॥

[ १८६४ ] ( सुपर्णाः कङ्काः ) उत्तम बलवाले मांस भक्षक पक्षी [ वाण ] ( एनान् अनु यन्तु ) इन शत्रुओंका पीछा करे । ( असी सेना ) यह शत्रुकी सेना ( गृध्राणां अन्न अस्तु ) गिद्धोंका अन्न बने । ( एषां मा अमोचि ) इनमेंसे कोई भी न बचे । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अघहारः च न ) जो अधिक पापों न हो वह शत्रु भी न छूटे, ( यथासि एनान् स्वर्गान् अनु संयन्तु ) मांसभक्षक पक्षी इन सबका पीछा करें ॥ १ ॥

[ १८६५ ] हे ( मघवन् वृत्रहन् इन्द्र ) धनवान् और शत्रुके वध करनेवाले इन्द्र ! तू ( अमि, च ) और अमि ( उभौ ) दोनों ( अस्मान् तां अभि शत्रुपतीं ) हमसे शत्रुता करनेवाले ( अमित्रसेनां प्रति दहतं ) शत्रुकी सेनाको जला जावे ॥ २ ॥

[ १८६६ ] ( यत्र ) जिस समयमें ( विशिखाः कुमारा इव ) जिसारहित लक्ष्मीके समान ( वाणाः संपतन्ति ) वाण गिरते हैं, ( तत्र नः ) वहाँ हमें ( ब्रह्मणस्पतिः अदितिः ) ब्रह्मणस्पति और अदिति ( शुर्मं यच्छतु ) मुक्त देवें । ( विश्वाहा शुर्मं यच्छतु ) हमेशा मुक्त देवें ॥ ३ ॥

[ १८६७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( रक्षः विजहि ) राक्षसोंका नाश कर, ( मृषः विजाहि ) हितक शत्रुओंका नाश कर । ( वृत्रस्य हन् रुज ) वृत्रकी शरीर तोड़ दे । हे ( वृत्रहन् ) वृत्रका नाश करनेवाले इन्द्र ! ( अभिदासतः अमित्रस्य मन्मु ) हमारी हानि करनेवाले शत्रुके क्रोधको समाप्त कर ॥ १ ॥

१८६८ वि न इन्द्र मृषा जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।

यो अस्मा॑ अमिदासत्यधरं गमया तमः

॥ २ ॥ ( ऋ. १०।५२।४ )

१८६९ इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनापृष्यौ सुप्रतीकावसत्रौ ।

तौ युञ्जीत प्रथमो योग आगते याम्यां जितमसुराणां सहो महव ॥ ३ ॥ ७ ( यि ) ॥

[ पा० २९ । उ० २ । स्व० ३ ]

१८७० मर्माणि चै वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।

उरोर्वीरौ वरुणस्ते कृणोतु जयन्त स्वानु देवा मदन्तु

॥ १ ॥ ( ऋ. ६।७९।१८ )

१८७१ अन्वा अमित्रा भवताशीर्षाणांऽहय इव ।

तेषां वो अमिनुभानामिन्द्रो इन्तु वरवरम्

॥ २ ॥ ( अथ०. ६।६७।२ )

१८७२ यो नः स्वोऽरणा यश्च निष्ठयो जिघांशमि ।

देवास्तश्च सर्वं धूर्वन्तु मद्य वर्म ममान्तरम् ॥ ३ ॥ ८ ( वी ) ॥

[ पा० २९ । उ० नास्ति । ख० ४ ] ( ऋ. ६।७९।१९ )

[ १८६८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः मृषाः विजहि ) हमारे मनुष्योंका नाश कर, ( पृतन्यतः नीचा यच्छ ) हथ पर तेना भेतनेवाले मनुष्योंको नीचे गिरा । ( य. अस्मात् अमिदासति ) जो हमें बात बतानेकी इच्छा करता है, उसे ( अधरं तमः गमय ) गहरे अन्धरेमें बाल दे ॥ २ ॥

[ १८६९ ] ( याम्या असुराणां महव सहः जिते ) जिनके द्वारा असुरोंके पहानू बलको जीता, ( तौ इन्द्रस्य ) वे इन्द्रके ( स्थविरौ युवानौ ) बड़े और तवण ( अनापृष्यौ सु प्रतीका ) जिनपर किनका आक्रमण नहीं हो सकता, ऐसे हाथोंकी सूटके समान ( अस्तहो वाह ) न रहने योग्य मूत्राण ( योगे आगते ) युद्धके समयमें ( प्रथमो युञ्जीत ) सबसे पहले उपयोगमें आती है ॥ ३ ॥

[ १८७० ] हे राजन् ! ( ते मर्माणि ) तेरे मर्मस्थानोंकी ( वर्मणा च्छादयामि ) कवचसे ढक देता हूँ । उतने बाद ( सोम राजा त्वा ) सोम राजा तुझे ( अमृतेन अनु वस्तां ) अमृतसे ढक देवे । ( वरुणः ते उरोः वीर्यः कृणोतु ) वरुण तुझे अधिक सुख देवे । ( देवाः जयन्त त्वा अनु मदन्तु ) सब देव विजय प्राप्त करनेवाले तुझे भागवित करें ॥ १ ॥

[ १८७१ ] ( अमित्रा ) शत्रु ( अशीर्षाणाः अहयः इव ) कटे हुए तिरवाले सोंबकि समान ( अन्वा ) अन्धण अन्धे हो जाए । ( तेषां अमिनुभानां य. ) अग्निसे जकनेसे कचे हुए सुण शत्रुओं में से ( वरं वरं इन्द्रः इन्द्र ) श्रेष्ठ श्रेष्ठ शत्रुकी इन्द्र मारे ॥ २ ॥

[ १८७२ ] ( यः नः अरणः ) जो अपना होते हुए भी शत्रुणा करता है, ( यः च निष्ठयः ) जो गुण रहकर ( नः जिघांसति ) हमें मारना चाहता है, ( त सर्वं देवाः धूर्वन्तु ) उसे सब देव मट्ट करें । ( मद्य मम अमान्तरं पत्नं ) तान मेरे अन्धरना कवच है । ( शर्मं वर्मं मम अन्तरं अस्तु ) बरवान भी मेरा भागवित कवच हो ॥ ३ ॥

- १८७३ मगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।  
 सुकं संशाप पविभिन्द्र विग्मं वि शत्रू तादि विमृधो नुदस्व ॥ १ ॥ ( ऋ १०१८०२ )
- १८७४ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।  
 स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाच सस्तनूभिर्घृशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २ ॥ ( ऋ १०१८०३ )
- १८७५ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।  
 स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥  
 ॐ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ३ ॥ ९ ( ऋ ) ॥

[ धा० २६ । उ० १ । सू० ६ ] । ऋ १०१८०३

॥ इति नवमप्रपाठके तृतीयोऽर्थः ॥ १-३ ॥ नवमप्रपाठकस्य समाप्त ॥ १ ॥

॥ श्रव्यैर्कविशोऽध्याय ॥ २१ ॥

॥ इत्युत्तरार्चिक समाप्त ॥

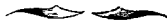
॥ इति सामवेदसंहिता समाप्ता ॥

[ १८७३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( कुचरः गिरिष्ठाः सृगः न भीम ) पर्वतपर रहनेवाले हितक विह्वके समान भयकर है । ( परस्याः परावत आ जगन्थ ) बहुत दूरके स्थानसे भी तू यहाँ आ ( सुकं तिग्म पवि संशाप्य ) दूर पहुचनेवाले तीक्ष्ण वस्त्रको और अधिक तीक्ष्ण करके ( शत्रून् वित्तादि ) शत्रुओंको नष्ट कर । ( वि मृधः नुदस्व ) सत्राम करनेवाले शत्रुओंको हार कर ॥ १ ॥

[ १८७४ ] हे ( देवा ) देवो ! ( कर्णेभिः शृणुयाम ) जानोति हम कल्याण करनेवाली बातें सुनें । हे ( यजत्राः ) यज्ञको ! ( अक्षभिः भद्रं पश्येम ) आक्षोति हितकारी वृष्य ही देखें, ( स्थिरैः अङ्गैः तनूभिः ) मजबूत अक्षय्योवाले शरीरसे ( तुष्टुवाच ) तुम्हारे स्तुति करते हुए ( यत् देवहितं आयुः ) देवोंके द्वारा नियत की गई आयुको ( घृशेमहि ) हम प्राप्त करके अन्त तक ह्य कार्य करते रहे ॥ २ ॥

[ १८७५ ] ( वृद्धश्रवा इन्द्र न स्वस्ति ) बहुत प्रशंसित इन्द्र हमारा कल्याण करनेवाला हो, ( विश्ववेदाः पूषा न स्वस्ति ) सबत पूषा हमारा कल्याण करनेवाला हो ( अरिष्टनेमि तार्क्ष्यं न स्वस्ति ) अहितक शस्त्रोंको पातमें रखनेवाला सुपण हमारा हित करनेवाला हो । ( बृहस्पति न स्वस्ति विद्मधातु ) ज्ञानका स्वामी हमारा कल्याण करे ॥ ३ ॥

॥ इति पञ्चविंशोऽध्यायः ॥



# एकविंश अध्याय

## सुभाषित

१ वायुः भीमः वृषभः न शिशानः घनाघनः चर्य-  
णानि शोभणः, संक्रन्दनः अनिमिषः एकवीरः इन्द्रः  
शतं स्नेहः साके अजयत् [ १८४९ ]- लीप्र कामं  
करनेवाला, भयंकर धार, बलके समान शत्रुको मारनेवाला,  
शत्रुका समूल नाश करनेवाला, द्वेष करनेवाले शूद्रोंमें शोभ  
उत्पन्न करनेवाला, शत्रुओंको बलानेवाला, आत्मस्य न करने-  
वाला अद्वितीय वीर इन्द्र सैकड़ों शत्रुओंकी सेनाओंको जीतकर  
हृषता है ।

२ हे युधः नरः ! संक्रन्दनेन अनिमिषेण जिष्णुना  
युत्कारेण दुद्रुच्ययनेन धृष्णुना इयुहस्तेन वृष्णा  
इन्द्रेण तत् जयत, सहध्वं [ १८५० ]- हे युद्ध करनेवाले  
नेताओ ! शत्रुओंको बलानेवाले, आत्मस्य न करनेवाले, विजयी,  
युद्धमें प्रवीण, युद्धमें अपने स्थानपर स्थिर रहनेवाले, शत्रु-  
ओंको हरा देनेवाले, बाणोंको हाथोंमें धारण करनेवाले बलवान्  
इन्द्रकी सहायतासे युद्ध जीतो और शत्रुओंको हटाओ ।

३ सः इयुहस्तेः वशी, सः निपक्षिभिः सः इन्द्रः  
युधः यणेन संघृष्टा, संघृष्टजित्, यादुर्धर्षी उप्रधन्वा  
प्रहितामिः अस्ता [ १८५१ ]- वह इन्द्र बाण हाथमें  
धारण करनेवाले योधाओंकी सहायतासे सब शत्रुओंको अपने  
अधिकारमें रखता है । वह तुलवार हाथमें रखनेवाले योधाओं  
की सहायतासे शत्रुओंको वधमें करता है । वह इन्द्र युद्ध  
करनेमें प्रवीण शत्रुओंके समूहके साथ एकदम युद्ध करता है ।  
वह युद्ध जीतनेवाला, बाहुबलसे सामर्थ्यवान्, धनुष चलानेमें  
कुशल और छोड़े हुए बाणोंकी शक्ति का प्रयुक्त करनेवाला है ।

४ हे इहस्वप्ते ! रथेन परिवीर्य, रथोद्देश, अभिप्राय  
अपवाधमानः, सेनाः प्रसंजन् प्रभृण, युधा जयन्  
अस्माकं रथानां अथिता पथि [ १८५२ ]- हे बहुतांका  
पालन करनेवाले इन्द्र ! रथोंमें यहाँ आ, राक्षसोंको मारने-  
वाला, शत्रुओंको रोकनेवाला, तू शत्रुकी सेनाकी छिप्रनिज  
करके उनको नष्ट कर । युद्धमें अप प्राय कर और हमारे  
रथका रक्षा हो ।

५ हे इन्द्र ! बलविशालः स्थविरः प्रवीरः सह  
स्वान् पात्री सहमानः उग्र अभिवीरः गमिभरया,

सहोजाः गोवित्, जैत्रं रथं आतिष्ठ [ १८५३ ] हे  
इन्द्र ! तू सबका बल जानता है । महान् विजय सामर्थ्यवान्  
वीर, शत्रुकी हारानेवाला, बलवान् और साहस विलानेवाला,  
उग्र महावीर, प्रभाव हासनेवाले सामर्थ्यसे युक्त, गार्भोंको  
पालनेवाला तू विजयी रूप पर बैठ ।

६ हे सजाता ! गोप्रभिक्षं गोविदं वज्रयातुं अग्र  
जयन्तं ओजसा प्रमृणन्तं इमं इन्द्रं अनुवीर्यध्वं अनु-  
संरम्भध्वम् [ १८५४ ]- हे युद्ध करनेवाले वीरो ! शत्रुओंके  
किले तोड़नेवाले, भाव पालनेवाले, वज्रके समान कठोर  
वाहूओंवाले, युद्ध जीतनेवाले, अपने बलसे शत्रुओंको नष्ट  
करनेवाले इस इन्द्रको आगे करके धीरता दिखाओ, शत्रु  
पर क्रोध दिखाओ ।

७ गोप्राणि सहसा अभिगाहमानः अद्यः धीरः  
शतमन्युः दुद्रुच्ययनः, घृतापायद् अयुधयः इन्द्रः  
युस्तु अस्माकं सेनाः प्र जयतु [ १८५५ ]- शत्रुके किलेमें  
युस्तु अस्माकं सेनाः प्र जयतु [ १८५५ ]- शत्रुके किलेमें  
अपनी शक्तिसे प्रवेश करनेवाला, शत्रु पर दया न करनेवाला,  
सैकड़ों प्रकारोंके शत्रुपर क्रोध करनेवाला, जो अपने स्थानसे  
हिलाया नहीं जाता, शत्रुकी सेनाको हारानेवाला, जिसके  
साथ कोई भी युद्ध नहीं कर सकता ऐसा इन्द्र हमारी सेनाकी  
रक्षा करे ।

८ मरतः अभिभंजनीनां जयन्तीनां देघ-खेनानां  
अग्रं यन्तु [ १८५६ ] मरत वीर शत्रुओंकी मारनेवाले  
विजयी देवसेनाके आगे चले ।

९ उग्रं शर्घः महामानसं भुवन्च्यवानां जयतां  
देवानां घोषः उदस्वात् [ १८५७ ]- उग्र मनके, शत्रुके  
धीरोंको स्थान अष्ट करनेवाले विजयी देवोंके उग्र बलके  
कारण होनेवाले जयघोष सुनाई देते हैं ।

१० हे मघवन् ! आयुधानि उरुर्षय [ १८५८ ]  
- हे इन्द्र ! हमारे शत्रुपारों वीरोंका उत्साह बड़ा ।

११ मामकानां सत्वनां मनांसि उच्च हृष्य  
[ १८५८ ]- हमारे बलवान् वीरोंका मन हँसित उच्च ।

१२ घाजिनां घाजिनानि उच्च जयतां रथानां  
घोषाः उच्च यन्तु [ १८५८ ]- हमारे घोड़ोंके घेव बड़ा ।  
हमारे विजयी रथोंका शब्द सुनाई दे

१३ अस्माकं समृतेषु ध्वजेषु इन्द्रः [ १८५९ ]-  
हमारे ध्वजाधारो संनिर्वाणी इन्द्र रक्षा करे ।

१४ अस्माकं इषयः जयन्तु [ १८५९ ]-हमारे बाण  
विजयी हों ।

१५ अस्माकं वीराः उत्तरे भयन्तु [ १८५९ ]-  
हमारे वीर विजयी हों ।

१६ देवाः ! अस्मान् हवेषु अघत [ १८५९ ]- हे देवो !  
हमें युद्धमें सुरक्षित रखो ।

१७ या असौ ओजसा स्पर्धमाना परेषां सेना नः  
अभ्येति, तां अपमतेन तमसा गृह्णत, यथा एतेषां  
अन्धः अर्घ्यं न जानात् [ १८६० ]- जो यह अपने  
सामर्थ्यसे हमसे चुकाबला करती हुई शत्रुकी सेना हम पर  
चढाई करती हुई आती है, उस शत्रुकी सेना पर अन्धकार  
छा जाए ऐसा कर, जिससे कि वे एक दूसरेको पहचान न सकें ।

“ अपमत्त तमसात्त्र ” नामका अत्र प्रयोग युद्धमें  
होता था, उससे शत्रुके घोर अन्धेरेके कारण अन्धते हो जाते  
थे और आपसमें एक दूसरेको पहचान भी नहीं सकते थे ।

१८ अये ! परा इहि, अर्माषां चित्तं प्रतिलो-  
भयन्ती अंगानि गृहाण [ १८६१ ]- हे पाव ! हमसे  
दूर हो, इन शत्रुओंके चित्तोंकी मोहित कर और उनके  
शरीरके अंग लकड़ दे ।

१९ अग्नि मेहि, हृत्सु शोकैः निर्दह [ १८६१ ]-  
शत्रु पर आक्रमण कर, उनके हृदय शोकसे जला दे ।

२० अग्नित्राः अग्नेन तमसा सञ्चन्ताम् [ १८६१ ]  
-हमारे शत्रु घोर अन्धकारसे ध्याकुल हों ।

२१ नरः प्र इत, जयत, इन्द्रः सः शर्म यच्छतु  
[ १८६२ ]- हे वीरो ! शत्रु पर आक्रमण करो, विजय  
प्राप्त करो, इन्द्र सुहृदात् रक्षणा करे ।

२२ सः वाहयः उग्रयः सन्तु, यथा अनाधुष्याः  
आस्थय [ १८६२ ] तुम्हारी भुजायें बोरभाव बिलानेवाली  
हों, जिनके कारण तुम पर शत्रु आक्रमण न कर सकें ।

२३ हे अस्मत्संहिते शरव्ये ! अवच्छेदा परा पत,  
अग्निदान् प्र पद्यस्व, अर्माषां कंचन मा उच्छ्रियः  
[ १८६३ ]- हे मानपूर्वक छोटे गण बाण ! ध्रु दूर जाकर  
शत्रु पर गिर । उनमें कोई भी निन्दा न रहे ।

२४ सुषर्णाः कंचाः एनान् अनु यन्तु [ १८६४ ]- उत्तम  
गणवले मांसमसक पक्षी ( बाण ) इन शत्रुओंका पीछा करें ।

२१ असौ सेना गृधानां अन्नं अस्तु [ १८६४ ]-  
यह शत्रुकी सेना गिद्धोंका अन्न बने ।

२६ पर्यां मा अमोचि, अघहारः च न, चर्यासि  
एनान् सर्वान् अनु संयन्तु [ १८६४ ]- इन शत्रुओंमेंसे  
कोई भी न बचे । अत्यधिक पापी न होनेवाला शत्रु भी न  
बचे, मानभक्षक पक्षी इन शत्रुओंका पीछा करें ।

२७ अस्मान् तां अग्नि शत्रुयतां अग्नित्रसेनां प्रति-  
दहते [ १८६५ ]- हम पर चतकर आनेवाले उस शत्रुकी  
सेनाको जला दे ।

२८ यत्र याणाः सम्पन्नति, तत्र नः शर्म यच्छतु  
[ १८६५ ]- जहाँ बाण शत्रुकी शरीरसे आकर हम पर गिरते  
हैं, उस युद्धमें हमें सुख मिले ।

२९ हे इन्द्र ! ररुः सृधः विजहि, अग्निदासतः  
अग्नित्रस्य मन्व्यु [ १८६७ ]- हे इन्द्र ! राक्षसों और  
हिंसकोंकी मार, हमारी हानि करनेवाले शत्रुओंके शोषको  
समाप्त कर ।

३० हे इन्द्र ! नः सृधः विजहि, घृतन्वतः नीचा  
यच्छ, यः अस्मान् अग्निदासति, अघरं तमः गमय  
[ १८६८ ]- हे इन्द्र ! हमारे हितक शत्रुओंको हरा, हम पर  
सेना भंजनवालोंको नीचे गिरा । जो हर्षं दास बनानेको  
इच्छा करता है उसे गहरे अन्धकारमें डाल दे ।

३१ पाग्यां असुराणां महत् सद्ः जिते, तौ इन्द्रस्य  
स्थविरौ युवानौ अनाधुष्या सुमतीकौ असहौ याह  
योगे आसते प्रथमौ युञ्जीत [ १८६९ ]- जितने असुरोंके  
महान् बलको जीता, उन इन्द्रकी बड़ी, तरण, आक्रमण किए  
जानेके अयोग्य, उत्तम प्रतीक, शत्रुके लिए अतृण ऐसी दोनों  
हो भुजायें युद्धमें सभय उपयोगमें आती हैं ।

३२ हे राजन् ! ते मर्माणि चर्मणा छाद्यमि  
[ १८७० ]- हे राजन् ! तेरे मर्मस्थान कवचसे ढं दकता हूँ ।

३३ देवाः जयन्ते त्वा अनुमदन्तु [ १८७० ]- देव  
जीतनेवाले तुम्हें आनन्दित करें ।

३४ अग्नित्राः अर्माषाणः अहयः इय अग्धाः अघत  
[ १८७१ ]- शत्रु कटे हुए तिरवाले सारोंके समान अन्ध हो  
जाए ।

३५ तेषां चरं चरं इन्द्रः हन्तु [ १८७१ ]- शत्रुओंके  
मृथ्य - मृथ्य वीरोंको इन्द्र मारे ।

३६ यः क्वः अरणाः यः न निधुयः नः जिघांसति  
तं सचं देयाः धूर्वन्तु [ १८७२ ]- जो अपना हीते हुए भी

एकविंश अध्याय ]

सामवेदका सुप्तोप अनुपाद्य

देव करता है और जो गुप्त रह करके हमें मारना चाहता है। उसे हाथ बेध नष्ट करें।

३७ अन्न मम अन्तरं यमं [ १८७२ ]- शाल मेरे अन्तरका कवच है।

३८ हे इन्द्र! कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न भीमः [ १८७३ ]- हे इन्द्र! पर्वत पर रहनेवाले तिहके समान तु तनुमन्ति त्पि मयंकर है।

३९ परस्याः परावतः आजगन्ध [ १८७३ ]- बहुत दूरेके स्थानसे भी तु हमारे पास आ।

४० सूक्तं तिम्रं पवि संशाय शत्रुन्धित्ताडि, मृघाः पि सुवस्व [ १८७३ ]- दूर, पर्वतनेवाले तीक्ष्ण शस्त्रकी और अधिक तीक्ष्ण करके शत्रु पर फेंक व कुट्टोंको मार।

४१ हे देवा! कर्णेभिः भद्रं श्रुणुयाम [ १८७४ ]- हे देवो! कानोंसे हम कल्पान करनेवाली बात सुनें।

४२ अक्षभिः भद्रं पश्येम [ १८७४ ]- आँसोंसे कल्याण-कारक वृत्त देखें।

४३ स्थिरैः अंगैः तनुमिः तुष्टुवांसः यत् वेयदितं

आयुः व्यशेमहि [ १८७४ ]- स्थिर अंगोंसे युक्त धरीरोंसे ईश्वरकी स्तुति करते हुए देवों द्वारा की हुई आयुका उपभोग करें।

४४ इन्द्रः पूषा गृहस्पतिः नः स्वस्ति दधत्तु [ १८७५ ]- इन्द्र, पूषा, गृहस्पति आदि देव हमारा कल्याण करें।

उपमा

१ शृपमः निशानः न [ १८४९ ]- बंलके समान शत्रुको टक्कर देनेवाला।

२ विशिष्याः कुमारः इच [ १८६६ ]- शिलासे रहित कुमारोंके समान तीक्ष्ण ( याणाः ) बाण होते हैं।

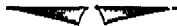
३ अशीर्षाणः अहयः इच [ १८७१ ]- कटे हुए तिर-वाले तीर्थोंके समान ( अशिर्षाः अन्घाः भवत ) शत्रु शत्रुओं को जापूं।

४ कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न [ १८७३ ]- पर्वत पर रहनेवाले तिहके समान ( इन्द्रः भीमः ) दन्त्र भयकर है।

एकविंश अध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
१८४९	१०।१०।१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१८५०	१०।१०।१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५१	१०।१०।१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५२	१०।१०।१।३	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	गृहस्पतिः	"
१८५३	१०।१०।१।५	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	इन्द्रः	"
१८५४	१०।१०।१।६	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५५	१०।१०।१।७	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५६	१०।१०।१।८	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५७	१०।१०।१।९	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५८	१०।१०।१।१०	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५९	१०।१०।१।११	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	मयताः	"
१८६०	अथर्व. १।१।१	अथर्व	अथर्व	"
१८६१	१०।१०।१।१२	अप्रतिरथ ऐन्द्रः		

मन्त्रसंख्या	श्रुत्येवस्थान	श्रुतिः	वेदान्तः	छन्दः
१८६६	१०।१०३।१३	भप्रतिरप ऐग्र	इन्द्रो मरुतो वा	धनुष्टुप्
१८६७	६।१५।१७	पायुर्भारिष्ठाजः	इन्द्र	"
१८६८	—	—	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१८६९	—	—	"	धनुष्टुप्
१८६६	६।७५।१७	पायुर्भारिष्ठाजः	सधामासिधः	पंक्तिः
१८६७	१०।१५।१३	सातो भारिष्ठाजः	इन्द्रः	धनुष्टुप्
१८६८	१०।१५।१७	सातो भारिष्ठाजः	"	"
१८६९	—	—	"	विराट् जगती
१८७०	६।७५।१८	पायुर्भारिष्ठाजः	धर्मं सोमवधनाः	त्रिष्टुप्
१८७१	अथर्व. ६।७७।१	धयर्वा	इन्द्रः	धनुष्टुप्
१८७२	६।७५।१९	पायुर्भारिष्ठाजः	धर्मं सोमवधना	"
१८७३	१०।१८०।१	जय ऐग्रः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१८७४	१।८६।८	गोतमो राहूगण	विदमवेवाः	"
१८७५	१।८६।६	गोतमो राहूगण	"	विराट्स्थाना





# सामवेदमन्त्राणां वर्णानुक्रमसूची ।

अकारसमुदाः प्रथम	५१९; ८२२३	अथो जरितरिदरतीः	३९	अथा विद्याना न	११९१
अक्षरणीयवन्त	४१५	अग्नि तमदारवं	४४४; १७७७	अथा विनेतिरेकानुता	१८०८
अक्षय महाः नमश्च	१३०४	अग्ने तर प्रथो वयो	१८१६	अथ ह योरमन्वत	१४७; ९१५
अक्षय वृषहन्तमं	८९	अग्ने रवं यो अग्रतम	४४८; १२०७	अथा ते अग्रमना	१०८९
अम आ वादि वीगये	१; ६६०	अग्नि देवा इहा	७७५	अग्नेर्देवसमस्तमं	३१५
अम आ वादाभिर्देवा	१५५१	अग्ने वसुप्रमजना	१५३०	अदत्ते गात्रावतमो	४७; १५५६
अम आर्गुवि पवम	६२७; १४६४; १५१८	अग्ने पवस्व स्वना	१५१०	अदत्तः पुराणा	१५५६
		अग्ने पावक रोचिया	१५११	अदत्तस्य केतवो	६२४
अम ओजिष्ठमा अर	८१	अग्ने मृच महो अरयय	२३	अदाया यः ष इन्द्र	१४५८
अग्निः प्रत्येद जन्मना	१७११	अग्ने दक्षिणे अश्वरे	१००	अदा मो देव सविता	१४१
अग्निः प्रियेषु धामसु	१७१०	अग्नि मृदा दि ये तर	१५, १३८६	अथ धवा परिष्कृते	१६३१
अग्नि तं मन्ये	४१५; १७३७	अग्ने रक्षा गो अहसः	१४	अथ उजो अथ वा द्विवो	५१
अग्निं दृष्टं वृषोमहे	१; ७९०	अग्ने वाजरथ गोमत	९९; १५६१	अथ शिवीमो अग्नेऽत्राण	१४८८
अग्निं नरो दीधितिनिः	७१; १३७३	अग्ने विवस्वदा	१०	अथ धारवा मन्वा	१०५१
अग्निं वे देवताभिः भेः	१११९	अग्ने विश्वरुद्रपथ	४०; १७८०	अथ यदग्ने पवमान	१४९६
अग्निं वो वृषमन्तम्	११; ९४३	अग्ने विश्वेभिराग्निर्बोधि	१५०३	अथा रव दि नरहरो	१५५१
अग्निं सृष्टे सद्यो	१५५५	अग्ने सुखन्ते रथे	१३५०	अथा दिनाना दग्निर्बं	८३९
अग्निं दिव्यन्तु नो	१५५७	अग्ने हवीमं मनामहे	१४०५	अथा हीन्द्र गिर्वेण	४०९; ७१०
अग्निं होतारं मन्ये	४६५; १८१३	अग्ने होतारं राजावहनमिन्द्रते	१६१६	अथा ह्यग्ने कर्णो	१७७८
अग्निनाभिः समिप्यते	१४४	अग्ने विष्मन्तां पवमानो	१०३३	अग्निं यदग्नेमन्वाग्निो	५३९
अग्निनाभिं दधोमभिः	७९१	अग्निं कर्द्वेषु हरिः	४९७; १०४१	अनुसृत विर्यं मनु	१०३९
अग्निभिर्वाजो म्रमथा	१९	अचल क्रियं किला	४४७	अथयो अग्निभिः	४९१; १०५५
अमनीद्विष्णायते	४९	अचोदधो मो धन्वनिश्रयवः	५५५	अथयो अग्निः	३०८
अग्निदीपे पुरोहितं	६०५	अच्यता कीमं मधुश्चत	६५८	अथयो हावया रवं	४४०
अग्निं रश्मि जन्मना	६१३	अच्यत नः श्रीरामोपिषं	१५५४	अनु ते ह्यग्नें तुर्वन्वागभिः	१६३८
अग्निं रश्मि पवते	१८१२	अच्यत नो याहा	१३८४	अनु रवा राधवी उमे	९८९
अग्निं रश्मि पुरोहितो	४८	अच्यत नो याहा	१७५	अनु पवस्वरोकथो	७४४
अग्निं रश्मिः पवमानाः	१५१९	अच्यत व इन्द्र मलयः	१७५	अनु प्रताप भाववः	५००
अग्निं रश्मि र तमूदः	१८१७	अच्यत सप्तमिन्द्रवो	६५५	अनु रि स्वा सुतं	४३१; १३६०
अग्निं रश्मि नो तिष्ठे	१४०६	अच्यत दि स्वा सद्यवः	१५५३	अग्ने गोमान्म गोभिः	९२८
अग्निं रश्मि नो तिष्ठे	१८३१	अग्नीजनो अमृत	१५५८	अनतखरति रोचनान्य	६३१; १३७७
अग्निं रश्मि नो तिष्ठे	१८३१	अग्नीजनो दि पवमान	१३६५	अनवा अग्निा मवना	१८७१
अग्निं रश्मि नो तिष्ठे	१८३१	अग्नेते वषजते धर्मजते	५६४; १६१४	अनन्ततो अराधना	११९५
अग्निं रश्मि नो तिष्ठे	१८३१	अतविधिन्द्र न उवा	११५	अनन्ततो अराधना	५१०; १११३
अग्निं रश्मि नो तिष्ठे	१८३१	अतशरवायिः	८२८	अनन्ततो अराधना	७११; ११३७
अग्निं रश्मि नो तिष्ठे	१८३१	अतोहि अष्टुकाणि	२२३	अनन्ततो अराधना	१०५
अग्निं रश्मि नो तिष्ठे	१८३१	अतो देवा अवन्तु नो	१६७४	अनन्ततो अराधना	६३३
अग्निं रश्मि नो तिष्ठे	१८३१	अथावायतामथिना तिष्ठे	१७४४		

अप द्वारा मतीनी	११२४	अभि मरति पवते	१०२१	अया निजनिरोहण	१७१५
अर्वा न्यात सुभय	१४११	अभि सामात आयवः	५१८; ८५६	अया पवत्य देवयु	७७१
अर्वा कनेन ननुषेः	५२१	अभि हि मय्य सोमया	११४८	अया पवत्य पारया	४९३; १११६
अपरायु शिल्पकथयः	१४५	अभी नकते अद्भुतः	५५०	अया पवा पवत्वेना	५४१; ११०४
अपारानिवापपरिचयः	३७७	अभी मो अर्पे दिग्भाः	१४१८	अया दवा हरिण्या	४६३; १५९०
अपानिचे दुर्मन्तरुत्तराणा.	५४४	अभी मो वाजघातमं	५४९; ११३८	अया वार्धं देवहितं	४५४
अपिनकमुनः	१३१	अभीपतरुतदा	३०९	अयावीती परिखर	४९५; १११०
अपुर्णो पुरहमा	३११	अभी पु णः सखीनाम्	६८४	अया सोम मुकल्याया	५०७
अरुा इन्द्राय वायव	९९५	अभ्याभि दि धवरा	१५०७	अयुक्त सप्त शम्भुम्	६३३
असु रैः विधिषु	१८४४	अभ्यर्थ वृष्टपयो	९७१	अयुक्त सुर पतयं	१२१७
असौषि हाता यत्रयाय	१७४७	अभ्यर्थे स्नायुध	१०५३	अयुक्त इत्युपाङ्गतं	१३४०
असौष्यमि. समिवा	७३; १७४६	अभ्यर्थेनपद्युयो	१०५३	अरं त इन्द्र कुक्षये	१६६१
असौष्यमिजमं तदेति	१७५८	अभ्यामिदयो	१६०३	अरं त इन्द्र भवसे	१०९
अभिचक्रन्दन्	१०३१	अभ्यासुयो अनां	३९९; १३०३	अरयोर्मिहितो जतोयदा	७७
अभि गयमानि वीतये	१०६२	अभिप्र सेनां मयवत्	१८६५	अरमन्नाय गायत	११८
अभि गावो अग्निपुरावो	९६१	अभिप्रदा निचयेभिः	१४४७	अरुक्तधनुषः युधिः	५९६; ८७७
अभिषोऽपि अरुदा	१८५५	अभी वे देवाः	३६८	अरुत प्रायत	१६१
अभि ते मनुना	६५१	अभीषो क्तिर् प्रथि	१८६१	अरुते नारीरक्थो	१७५५
अभिर्न्ये देवं समिता	४६६४	अभं त इन्द्र सोमो	१५९; ७३५	अरुतेनै मरुताः	४४५; १११४
अभि र्पे मेव	३०६	अभ्ये म्नाय छाद्येऽभं	११००	अरुतेनै निचक्रो	१७१०
अभि मिष्टुष्ट दृषयो	५४८; १४०८	अभ्ये पुनाम जपयो	८११	अर्वा गः सोम यो मवे	११३७
अभि र्वाः पूर्णवीर्य	३५६; १५७३	अभ्य पूषा रथिर्भग	५४६; ८१८	अर्वा सोम कुमतामो	५०१; ९९४
अभि र्वा दृषभाः सुते	१६१; ७३१	अभ्य मराय सामसिः	६९५	अरुयिमानि बहुदाऽमुप	१२३१
अभि र्वा दृष्ट नोनुमो	३३३; ६८०	अभ्ये यथा न आमुवय	९४७	अरुयकश्चिमे दृषमं	१३६१
अभि सुभ्र मृदया	५७२; १०११	अभ्ये वां मय्यमत्तयो	१०६	अरुय यतानः कलशो	७०१
अभि सुगामि कनरः	७६५	अभ्ये वा मिथावहना	९९०	अरुयदोऽं शंयुगी	१११
अभि सुगामा श्री	१०७५	अभ्ये विचयेभिर्हितः	५८८	अरुयदया पराभन	१८६३
अभि प्र वीरिणि	१६८; १४८९	अभ्ये विथा अभि	९४८	अरुय दम दुर्दृष्टायतो	१०९४
अभि प्रयाति वाहवा	१५५७	अभ्ये विथानि शिष्टिणि	७५७	अरुया नो अरुन कतिभिः	१५४४
अभि प्र वः ह्रावधं	०३५; ८११	अभ्ये व यो दिवद्वरि	९००	अरुया वारि. परि	११३३
अभि प्रिये दिवेपदम्	१११७	अभ्ये सहायनयो	४५८	अरुय न मीभि रथ्यं	१५८४
अभिप्रियाणि काऽया	१७६३	अभ्ये सहस्रमृषिभिः	१६०८	अरुय न हा. वातवर्धं	१७; १६३४
अभि प्रिये सि पदमे	५५४; ७००	अभ्ये सहस्रा परि मुष्ठा	१८४५	अरुय वा वितिरुदमा	७७३
अभि प्रिया दिव	११०४	अभ्ये स होता यो	१७३६	अरुय रथी सुहय	१७७
अभि प्रदीरमुवत	८७०	अभ्ये सुभ्ये हवीपदमयं	७५३	अरुय विप्रारथी	१७१६
अभि वरुा सुवसत नवर्वाभि	१४६७	अभ्ये सोम इन्द्र	१७७१	अरुयः न वक्रदो युवा	७८३
अभि वार्धो विषयवो	१८४४	अभय मः सुर्वाभय	६०	अरुयामुप वृतावात्र	११५६
अभि वस्तु विषयवो	१४३६	अभयु ते समतपि	१८३; १५९९	अरुयानि कलशो अभि	९७२
अभि विरा अन्वृत्त	१११७	अया विनीतो विधानवा	८०५	अरुयानि रथयो मया	४९०
अभि वां वीरमन्थो	३६५	अया विवा च नभयमा	१८८	अरुयानि वक्त्रा रथ्ये	५४३

असाधि देवं	३१३	आ ते दक्षं मयोमुव	४१८; ११३३	आपासाधो विवरक्तो	११२३
असाधि सोम इन्द्र	३४७; १०९८	आ ते वरुणो मनो	८; ११६६	आपो हि धा मयोभुवः	१०६७
असाधि सोमो अशयो	५६०; १३१६	आ त्वा गिरो	३०९	आ प्रागाद्भद्रा	६०८
असाधयंशुर्दद्यात्सु	४७३; १००८	आ त्वा प्रावा वृषाधि	१८०९	आ सु-र्दं वृषभा इदे	०१६
असि हि वीर्यो	१००१	आ त्वा ३२२ घषुर्धो	२९५	आ आर्यमिश्रवर्षा	१७५१
अशुस्रत प्र काजिनो	४८२; १०३४	आ त्वा मद्रागुसा इती	६६७	आग्निद्वयमग्निष्टिमि	६४२
अशुप वेववीतये	१८६१	आ त्वा रथं यथो	३५४; १७३१	आ मन्त्रमा बरेण्यमा	११३८
अशुप्रमिन्दुषः पया	१११२८	आ त्वा रथे हिण्यये	१३१२	आ मन्त्रेन्द्र हरिणिः	०४४; १७१८
अशुप्रमिन्दु ते गिरः	२०५	आ त्वा विशागिण्यवः	१९७; १६६०	आमभु पक्षमेव	१४३१
अशो या शेना मरुतः	१८६०	आ त्वा सखा-	३४०	आ मित्रं वरुणे मगे	११३५
अशुतवि मन्म दुष्ये	१६७७	आ त्वा सखा-	२४५; १३११	आ यः पुरे नार्भेगीम्	१७७४
अशित वीर्यो अयं सुतः	१७७५	आ त्वा सोमस्य	३७७	आ यः पुदिनरकर्मिर्	६३०; १३७६
अशुत् श्रौपु सुरो	४६१	आ त्वा ता नि धादते	१६४; ७४०	आ यः सुवः शापनया	१०८६
अशुमन्वे त्वा वदु विदममि	५७५	आशुर्द रवधामदु	८५१	आ योऽङ्गितं	१०६०
अशुमन्वे रोदसी	११३६	आशिरमजलस्य रेतसो	२०	आ याहि वनद्या	४४३
अशुमन्मिन्दुकिन्दुयं	१०४६	आशिर्यैरिन्द्र- सगण्ये	११११	आ याहि सुयुवा दि त	१११६; ६६६
अशुमाशरमा इन्द्रमवी	१४४३	आशो हर्षो यथा षण	७७०	आ यावयमिन्दये	४०१
अशुमन्मिन्द्रा उयुतेषु	१८५९	आशो वैचित्र्यवमानास	१४७५	आ यापुप नः सुत	९९७
अशुम प्रनामदुवृत्तौ	७५५	आशो विरस्य घोषयो	७७१	आ योमिभयो	९१५
आशु त्रेया हेमना	५१६; १३७७	आशीमध न	१०१०	आ यमिमा सुचेदुवमा	११३९
आशु त्रगानि पूये	१७१३	आ न इन्द्रो आतामिवन	८२५	आ न इन्द्रं हृदि यथा	११४
आशुवेन्द्रो मदेध्वा	६९६	आ नः सुतास	१३१८	आ नैवते मयथा	८७७
आशुवेन्द्रो वाधुधे	१५७४	आ नः शीम सवत	१५४१	आ वरुणस्य मदि	१०१८
अशु प्रलेन अशुमना	१५०१	आ न- शीम सतः	८०४	आ वरुणस्य सुपत	१०११
अशुमरिम प्रथमना	५९४	आ नरते मद्रु मरुशो	१४३३	आशुर्वर्षा आ वार्ष	४३५
अशुमिदि पिनुष्वरि	१५१; १५००	आ नो अने रवि	१५१५	आशुवाधुम्यरावतो अयो	९००
आ मन्ता मा विण्यत	४०१	आ नो अने वयोवृष	४३	आशुस्रकलश मुतो	४८५
आमि न हवृष्टिमि	४१०	आ नो अने सुचन्द्रना	१५६६	आ नो राजानमपररव	६९
आग्नि स्युरे रवि	१५१९	आ नो मत्र परमेध्या	१६९९	आग्नाः शिवागो पृथगा	१८०९
आ या गानयदि धवर्	७०५	आ नो मिशावध्या	२००१; ६६३	आग्नेर्दे वरुमते	८९८
आ या त्वावान् रमना	१०८५	आ नो रनानि विजयो	१७७५	आ मुने शिमत शिव	१४८०
आ या ये क्रमिमिधते	११३; १३३८	आ नो वयो वय	३५३	आ नोता परि	५८०; १३१५
आ यापुमिधिमि न्त	१३५०	आ नो विश्वानु इणमिन्द्र	२०९; १४९२	आ शीम स्वानो	५१३; १६८७
आ यापिररुके अश्वप	१३८७	आ पश्या मदिना	८६३	आ इरवाः सदाज्ञरे	१४९७
आ जुहोता इविवा	६३	आ पवमान धाय	१०३	आ इरवाय पुण्ये	५५३
आ रिष्ठ पृथुहमथं	१०९९	आ पवमान सुपुनि	९०६	आ इरवो अर्धयो	७४८
आ रू न इन्द्रं सुमन्तं	१६७; ७९८	आ पवर्ष सुवीर्यं	७८६	इण्यस्यम्य मरिचत	७१४
आ रू न इन्द्रं पृथुहन्	१८१	आ पवर्ष मदिन्दन	१३०८	इण्यस्ये पुण्ये	७८
आ ते आन इवीमिदि	४१९; १०२१	आ पवर्ष मर्धोपिर्व	८९५	इण्यस्ये पुण्ये	७८
आ ते आन नया इविः	१०३३	आ पवर्ष सहरिणं	५०१	इण्यस्ये पुण्ये	७८

इत एत उदाहृतम्	१०	इन्द्रभेदती बहसो	१०३०	इन्द्रो मरुत्वन्धसो	१८०
इत्था द्वि सोम	४१०	इन्द्रमीशानसोऽसामि	११५१	इन्द्रो अग मरुद्रयम्	१००
इदं त एकं पर उ त	६५	इन्द्र वज्रेण नोऽव	५१८७७८	इन्द्रो वर्षावी अरुधमिः	१७९; १११
इदं मयो सुतमन्धः	११४; ७३४	इन्द्र सुतो न आगति	१४०३	इन्द्रो वीर्याय चक्षुः	७५९
इदं वां मदिरे	१०७५	इन्द्र शुक्रो हि नो	१४०४	इन्द्रो मवाय वाजुवे	४११; १००१
इदं विष्णुर्विक्रमे	११११; १६६९	इन्द्रश्च वायवेदा	१६१५	इन्द्रो महा रोदसी	१५८८
इदं श्रेष्ठ वयोतिषा	१७४९	इन्द्र सुतेषु सोमेषु	१८१; ७४६	इन्द्रो राधा अगतः	५८७
इदं श्रेष्ठ उयोतिषा	१४५५	इन्द्रस्तुराषाग्निप्रो	१५४	इन्द्रो विष्णव्य	४५५
इदं ह्यमोन्नतः सुतं	१६५; ७१७	इन्द्रतो सोम सुतव्य	१३६५	इन्धे राजा समर्थो	७०
इनो राजवरतिः समिद्धो	१५४६	इन्द्र रगतर्हीरां	१६८१	इम इन्द्र मदाय ते	१२५
इन्द्रः पवित्र	४३१	इन्द्रव्य तु वीर्याणि	६११	इम इन्द्राय सुविरे	१२३
इन्द्रो गमिष्ठ चेतनः	४८१	इन्द्रश्च बाहू स्वयिषी	१८६५	इमा उ त्वा पुत्रयो	१४६
इन्द्रुनिनाय पवनत	८७३	इन्द्रश्च वृष्णो वरुणस्य	१८५७	इम उ त्वा विचक्षत	१३६
इन्द्रुर्वागी पवते	५८०; १०१९	इन्द्रश्च सोम पवनात्	१२३०	इमं स्तोममहते	६६; १०६४
इन्द्रो यथा तव	१७६	इन्द्रश्च सोम राशये	११८०	इममिन्द्र सुतं विव	३४४; १४९
इन्द्रो यद्विभिः	१६४	इन्द्राग्री अपवस्युर्वुव	१५७७; १६१४	इमम् उ स्वमरणाकं	१८; १४७७
इन्द्र आघो नेता	१८५६	इन्द्राग्नी अथादिव	१८१	इमं मे वरण धृष्टी	१५८५
इन्द्र इन्द्रोऽयं अवा	५२७; ७७७	इन्द्राग्नी अगतं सुतं	६६५	इमं वृषणं वृष्णोऽग्निनाम्	५२१
इन्द्र इतो महोना	७१५	इन्द्राग्नी अत्रितुः अवा	६७०	इमा उ त्वा पुत्रयो वितो	१५०; १६०७
इन्द्र इवे वरासु	११५	इन्द्राग्नी तमिवाणि वा	१५०८; १६१५	इमा उ त्वा सुतोऽग	१०१
इन्द्रो अथमिर्मिन्दो	११६	इन्द्राग्नी नराणि पुत्रो	१५७६; १७०४	इमा उ वा दिवितय	३७४; ७५५
इन्द्रः स दासते	११३	इन्द्राग्नी युषामिवे	१११	इमा तु कं सुववा	४५१; १११०
इन्द्रं वयं महापत	१३०	इन्द्राग्नी रोचना विषः	१६१३	इमास्त इन्द्र वृषयो	१८७
इन्द्रं वाणीरनुत्तमस्तु	१७१५	इन्द्रा तु पुवना वयं	१०१	इमे त इन्द्र ते वयं	३७३
इन्द्रं विधा अनी	३३३; ८१७	इन्द्रावर्षता मृहता	३३८	इमे त इन्द्र सोमः	१११
इन्द्र वो विष्णुत्तरपति	१६१०	इन्द्र व गाव आधिरे	१४११	इमे हि ते प्रकृष्टतः	१६७६
इन्द्र मनुं न आ भर	१५१; १४५६	इन्द्राय मिदो अगितत	१३१	इमं धामरय मन्त	११६
इन्द्र उदरं मयः	१५३	इन्द्राय मूलमर्षत	१५१	इन्द्रमन्ते धववसव	१८१
इन्द्र प्रवसव न बहा	१५७	इन्द्राय पवते मदा	५१०	इन्द्रं तोकाय नो वधत्	१२६
इन्द्र अथैष्टं न आ मर	५८६	इन्द्राय मन्ते सुतं	१५८; ७१०	इवे ववसव धारजा	५०५; ८४१
इन्द्र सुवमिन्द्रिदो	४११	इन्द्राय वृष म यव	३८८; १०१५	इन्द्रोऽग्निवसवसव	१८०
इन्द्र विष्णुस्तु तावत्	५६६	इन्द्राय सोम वृषुणः	५६१	इन्द्रो होरा अयुयग	१५१
इन्द्र मेधी एदिहि	१८०	इन्द्राय सोम वृषुणः	१४४८	इन्द्र एवा गोपरीणं	७३३
इन्द्र तं ह्यम्न पुत्रहृत्	१३४	इन्द्राय सोम गतये मदाय	१४४८	इन्द्रे व मृग्य एवा	१३५
इन्द्रं मरो मेवाभिता	३१८	इन्द्राय सोम वानवे वृषते	१३३१; १६७१	इन्द्रिथा द्वि वसोमवा	१०३
इन्द्रं धमश्च आतये	६४७	इन्द्रा वाहि विप्रमानो	११४६	इन्द्रिथा द्वि वसोमवा	१०३
इन्द्रमग्नी ह्यमिन्द्रा	६७१	इन्द्रा वाहि वृष्णानः	११४८	इन्द्रिथीवेवसुव	१७५
इन्द्रमन्त्र सुता	५६६; ६१४	इन्द्रा वाहि विप्रवितो	११४७	इन्द्रिथो ममरयतिरुत्तरमाग्नि	१५१८
इन्द्रमिन्द्रिकेनो वृहद	११८; ७१६	इन्द्राय सोम मदायते	५७१; १०७६	इन्द्रोऽग्नो अयुमानि	१५१७
इन्द्रमिन्द्रेणाय	१५१; १५८७	इन्द्र आमा वनो वृहद	८००	इन्द्रिथे वारुण्य द्वि	१५१३
		इन्द्रे वं हि एवमे	८५०	इन्द्रे हि वावृ	६४६



एष मन्मथचिह्नदत्त	१०८९	और्वेयुवतारुणियम्	१८	गन्मोर्त्तौ उदभोरिव	१७९०
एष दिवं त्रि पावति	१०९०	क इमे माधुरीषवा	१९०	गभे मातुः पिङ्गापिता	१९९७
एष दिवं व्वाधरतिपे	१०९३	क ई वेद छते सवा	१९७	गभी सु णी यथा पुा	१८६
एष देवः शुभायते	१२८२	क ई स्वधा नः	४३३	गाद्यत्रे त्रैशुभं जगत्	१८३०
एष देवो अमल्ले	१२५६	कङ्काः सुपगो अतु	१८६४	गासन्ति तः गावादिभं	३४१, ३३४
एष देवो रथमति	१२५७	कण्ठा इन्द्र यदकत	१३०८	गाव उप भदावते	११७; १६०९
एष देवो विगन्धुभिः	१२६०	कण्ठा इव मृगवः	१३६३	गावसिद् वा समन्ववः	४०४
एष देवो विद्या कृती	१२६१	कण्ठमिन्वृणवा धृपद्	८६६	गिरस्त इन्द्र ओजघा	१०४३
एष विद्या वास्यका	१२६६	कथा चत रतरीरति	३००	गिरा वप्रो न सम्भूतः	१२२४
एष सुमिर्त्त नीयते	१२८८	कथा मर्त्तमहापथं	३३४३	गिर्यगः पादि नः सुतं	१५५
एष विप्रैः अज्ञातोमो	१२८९	कथा वधो रतोत्रं हयंत	२२८	गृणाना जभदमिना	६६५
एष पुरु विद्यावते	१२६७	कतु प्रचतये महे	२४०	गृणे तदिन्द्र ते वाव	३५१
एष प्र कीदर कृष्णो	५५६	कनिष्कपिठ हरिया	५३०	गोत्रमिदं बोधितं	१८५४
एष प्रलेन अमना	७५८; ११६४	कथा ते अग्ने अत्रिर	१५४९	गोमल इन्द्रो अश्वत्त्	५७४; १६११
एष प्रलेन मन्मना	७५९	कथा रं न ऊष्यागि	१५८६	गोविन्दवत्स वल्लुपिद्	७५५
एष प्रसादा मश्रिवव	४३८; १०६८	कथा नक्षिद्र आ	१६९; ६८१	गोवा इन्द्रो नृवा	१०४५
एष कृष्णमितीवते	१२७०	कविमन्मिमुष वदुष्टि	३९	गोधयति मरुता	१४३
एष कृष्णि पिबन्धनः	१२७२	कविमिव प्रतोरथं	११४५	घृत्तं पणल धारया	१४३७
एष गामी द्वितो	१२८०	कविर्त्तयश्वा पयंति	१३१८	घृन्वती सुवनागाम्	१७८
एष विप्रैः सिद्धोते	१२५७	कवी नो मित्रावकृणा	८४७	नर्त्तं यदस्थाः ताः	३३३
एष सिद्धानि भाना	१२५८	कन्दपथय रवर्षी	३६१	चन्द्रया अर्वा	४३७
एष कृष्या कनिश्चद्	१०८३	कन्दमिन्द्र त्वा वसवा	२८०; १६८२	चन्द्रयच्छेपेनः शक्रुनो	११७७
एष शुभयदामयः	१२९१	कन्दे त्रिगिर्त्तानामः प्रजे	१५३५	चन्द्रीधुतं मयवानं	३०४
एष शुभयदिव्यवद्	१२९०	कन्दरवा घत्यो मदानो	६८३	चिमे देवानामुदपादनीकं	६६७
एष मृश्रानि सोपुनविष्णुतीते	१५७३	कदाच नूतं परीणधि	३४	चित्र विष्टशोकापणस्य	६४
एष सूर्यनाराचवन्	१२८४	कदाचान्ति वना र्त्तं	५३	जगृथा ते दक्षिणम्	३१७
एष सूर्येण दाघते	१२८५	कियिते विष्णो गदिवसि	१६२५	जग्निप्रममिन्निव	८१६
एष सव ते मधुतो	५३१	कुत्रिधरय प्र हि	१६६८	जहानः छत मारुतिः	१०१
एष सव पारथा	५८४	कुशियम् नो गविष्ठये	१६६७	जहलो वाष्मिन्वति	९६०
एष स्य पीरये सुो	१२७८	कुतो नो वापधिता	३०५	जवस्य गोवा अजनिष्ट	९०७
एष सव मयो रवेऽव	१२७७	कृष्णतो वरियो गवे	८३३	जनीवन्तो न्मप्रथः	१४६०
एष सव मातुषोऽवा	१२७६	कृष्णा वदेनीमनि	२५४७	जवायो व तदिदिन्नु	१५; १६६३
एष हिणो वि नीवते	१२६९	केतुं कृष्णं दिवस्परि	२५९	जवाः परेण वपेण	९०
एतो तथा अदृशो	१७८; १७२८	केतुं कृष्णमकेतवे	१४७०	जुष्ट यन्व्य सासरः	११२४
एत देवा मवेऽशुवा	१७१५	को अय मुक्ते	३४१	जुष्टो हि द्रुतो अति	१७८१
एत इती मन्मथुवा	१६५८	कथा मर्त्त अतुन्ववं	४३३	जतिर्त्तैश्चस्य पवने	१०११
एतुपु मवाणि तेषाम	७; ७०५	कोदुमेषो न मंशुः	७७४	सं वाः सखायो मयाय	५६९; १०९८
दिमिर्दे न्मन्वा	१७८४	कवा इव इवयो	१४४	तं वो दरमशुर्त्तवर्	१३६७; १८५
ओजस्तदश्च विरियव	१८१; १६५१	कं वय कं वदति	१७१	तं वाः शशायो वति	१६८६
ओमं सुवन्ध विराने	१०९४	कथा रामन्नुग मनामे	१५६३	तं शखाया पुवर्त्तव	१६८०

सामवेदमन्त्राणां वर्णानुक्रमसूची

( ४०१ )

स हिमन्वित मदन्युत	१७१७	तारगिरिरेवपाद्यति	१३८; ८६७	ते मन्वत शयप	६०६
तं हि स्वराज्य ध्रुवमे	१९३४	तरगिरिर्धरशोते	६३५	ते विद्या दाद्ये	१०३६
स दीतामध्वरस्य	१५१४	सरस्य मन्वी चावति	५००; १०२७	ते सुतासो विपथिताः	१८११
तपुयवी मनवो	५०७	सरसमुदं पववान	८५७	ते स्वाभ देवर्षिभ्यः	१०६९
सं गायमा पुत्रायय	१६६३	सरोमिषे विरद्वमुमिन्द्र	१३७, ६८३	तोसा इन्द्रणा हुवे	१७०१
त गुर्पया स्वर्णरं	१०९; १६८७	सव क्वा लोसिमिः	१०५१	तोशया रयवाधाना	१८७४
ततो विधुञ्जामत	६६१	सव इय इन्दो अन्वयो	१११३	यमु यः यश्रासं	१७०; १६४३
सतो यशो अजायत	१४३०	सव इयिन्द्रिय बृहता	१६६५	यमु यो अयवयं	१५७
सर्वविश्वैरेव्यं	१४६१	सव इययं नूनोऽव	४६६	यमु य्वा यजिरे	१३३
सदमे सुम्नसा मर	११३	सव योदिन्द्र योत्यं	१६४६	यं सु मेवे महया	१७७
सदया चित उक्थिनो	८८१	सत इया उरुत	१८१७	प्राताःविन्द्र	१३३
सदिदाश् सुबन्धु	१४८३	सव इयो नीलशान्	१८३३	मिनाम वि रजति	६३३; १३७८
सदिधातो विवन्धयो	१६७३	सव इयो लव्यंस्वैव	९८२	मि ब्रुवुषु चैतम	७७१
सदिधोः परम परं	१६७१	सव इयो भक्त्युत योम	९९३	मि ब्रुवुषु मदिषो	४५७; १४८६
सद्वो माय सुते घवा	११५; १६६६	सव इयो योनि राणः	५११; १११	मिवायुर्दे सदैरुतया	६१८
सं ते अदं शुगीमति	३८३; ८८०	सवेमिन्द्रायं यमु	१७०	मिरे सत येनयो	५६०; १४९३
सं ते यवं यथा गोभिः	७३६	सवसा भूर्त्त ममसा यो	१८३९	मिरे मित्रस्य धारया	१०१५
सं त्वा गोयवतो	१५१	ता अत्य नमसा यद्यः	१००७	मिरे यवा वि चक्रिरे	१६७०
सं त्वा सुतमजीघ्रो	१५६१	ता अत्य सुमानुयाः	१००६	सं यदियं कानुपो	१६४६
सं त्वा यतारोमोषो	८०४	ता न शक वाभिन्नस्य	११४५; १४६५	स राजेव सुप्रता	९०१
सं त्वा मृज्यानि विधत्	८३६	ता यो वाजवतीरिव	११५१	स्य यद्य उत मित्रो	१३०६
सं त्वा मदाय ध्रुवय	१०४४	तामिहा मयसत	११६३	स्य बभरव गोमयो	११५१
सं त्वा विद्या मनोसिद	१०७७	ता यो सम्यगनुद्गण	११६६	स्य विररावं कविम्यु	१०५४
सं त्वा योचिष्ठीविद्यः	११०९	ता यो गोभिर्विद्यमुव	८०१	सं यमु रिया स्यो	७७६
सं त्वा यामिन्द्रिगिरेः	६६१	तायानत्य मरिमा	६१०	सं यिष्ठीराद्यो	१८०९
सं सुरेवमनी नरः	६९९	ता यनाया युतामो	११११	सं सुतो मरिगतयो	१३४४
सं सुतोवाविर्भं वितसं	८७६	ता हि यद्यत् ईडत	८०१	स्य सुभयो अदिभे	१३४५
समनिमलते बभ्रवो	१३७४	ता हुवे योसिद	८५३	सं सुते न भा मज	१०५१
समस्य सर्वयामसि	१६३३	तिर्यो वाव ईरयति	५२५; ८५९	सं यो म युतायना	१६५
समिद्धर्षेणु यो गिरो	४६०	तिर्यो वाव उठीरते	४७१; ८६९	सं योम परि सव	१८१
समिन्त्रं कोहीमि	४६०	सुवे सुनाय तानु यो	११५	सं योम वि चारमुनेन्द्र	१३१३
समिन्त्रं वाजयामसि	१११; ११११	सुवे सुताया योम	११३	सं इ सत्यमीना	१५११
समीचित्रं यो अविदा	११११	सुयैमा मुनवा इवे	७७७	सं इ स्यात्तम्यो	१०६
समु आमे प्रयायत	१०१	सुयैवो मधुवगत	१६१०	स्य वि ऐक्यययो	८४
समु इवा युनमुर	१४११	सुयिन्द्राव सुवेकयो	१७७१	सं दि नाः पितृ यो	११३०
समु प्रथम रं गिर	८८५	ते अत्य कानु केतयो	१४१५	सं दि राधशरति	१३४१
समु हुवे वाजवाता	७४८	ते आता स्वयोक्वीरे	१४८१	सं दि इन्द्रदेवो	१७९१
सयोवपीरिरे	८८१८	ते ना सइरिये	११११	सं दि इत्यं नामिन्द्र	१४१४
सयो वधव्यं चारयो	१४३६	ते मो युि सिरवति	१११५	सं दि इत्यं वमिन्द्र	१४१४
सासि यो अनाया	१०४	ते युगो विपथिताः	११०१	सं दि इत्यं देवै	५८३; १३८

सर्वं ह्येति चेतरे	२४०; १५८१
स्य वासिर्जनानामने	१५३६
स्य दाता प्रथमो राघवा	१४७३
सर्वं तां च मरिचक	२०१८
स्य न इन्द्र बाणमुत्सवं	७१८
सर्वं न इन्द्र भर	४०५; १६६९
सर्वं मधिर उत्या	४१; १६६३
सर्वं श्रुषथा अति सोम	९५६
सर्वं नो अम आमिर्मिन्द्र	१५०५
सर्वं नो अने मङ्गमिः	६
सर्वमने श्रुषतिसर्वं	६१
सर्वमने यज्ञानां हंता	२; १४७४; १४७५
सर्वमने वसुदेव	९६
सर्वमने सप्रथा अति	१४०७
सर्वमने प्र कसिवो देवः	१४७; १७१३
सर्वमिधमया अश्वमे	४२
सर्वमिन्द्र प्रभृतिभिः	३११; १६३७
सर्वमिन्द्र यत्नादधि	११०
सर्वमिन्द्र यथा अश्वमी	२४८; १४११
सर्वमिन्द्रमिभूमि	१०२६
सर्वमिना कोपनीः	६०४
सर्वमिधिवि धुमानमिन्द्र	१३५६
सर्वं पुत्र सूर्याणि	१५८२
सर्वमिन्द्रप्रथमः कुन्त्याशु	५९५
सर्वथा वर्षं पयमानेन	५९०
सर्वथा ह रिवयुसा	४०३
सर्वथा नो देभ्यं वचः	१९९
सर्वथो योरीषीषन्	१०५५
सर्वथो रिदन्ति धीरवी	१०१७
सर्वथो विवे अयुत कायमानं	११४१
सर्वथो विष्णुर्दन्त्यथो	१६४७
सर्वथो द्युमन्शुश्रुत	११७१
सर्वथो द्युमन् अयुतं	१५६८
सर्वथो अग्निधो गुहा	९०८
सर्वथोने सुषदात्स्य	९
सर्वथोनेष्वस्यस्यते	१७६९
सर्वथिना को भरो	१०९; ८१३
सर्वथिन्द्र इवमरे	१३४; ८०९
सर्वथोः सुकण्ठो	१९३
सर्वो अने रवश्रुत	१८

सर्वं कुरुमि वृत्रजित	१४८५
सर्वं विवे अर्वावधो	१०९५
सर्वेयस्ते धूम श्रुषति	८२
सर्वे सोम प्रथमा	१५०६
सर्वयन् वा यधीमनु	९४
सर्विकण्ठोः अकारिषे	३५८
सर्विषतया रुचा	६५४
सर्वानां युगे न वारणाः	१६७७
सर्वोमे कथम मनवा	१५५०
सर्वोः धीयुषुसुगामं	१११७
सर्वोः पतार्त्तं शुक्रः	११४३
सर्वोः सामा विचक्षुणो	११९९
सर्वोः श्रुषकुषं यथा	१०९१
सर्वानां कथदिभ्यं	६७६
सर्वानां प्रत्यामित्यमः	७२०
सर्वो नो निष्वेदं	११
सर्वोः श्रुषिभ्यः यदतो	- २१९
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	१३८
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	११८९
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	५५; १५१३
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	१७७
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	६८६
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	१८४८
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	१७९१
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	१३१०
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	५५८; ११९८
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	११०
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	१४७९
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	९४१
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	१८१६
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	१०५९
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	१०३
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	१७६
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	१४१६
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	११५५
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	११५०
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	११९०
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	११६९
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	७२०
सर्वोः श्रुषिभ्यो मरुतः	४१६

सर्वथो मायया च	१०४
सर्वथो गिरी अवि श्रुष्ये	१७९९
सर्वथो बुधन्तो अश्वमे	२९६
सर्वथो अश्वमे	६८१
सर्वथो अश्वमे	१२१५
सर्वथो अश्वमे	१५११
सर्वथो अश्वमे	८६८
सर्वथो अश्वमे	१८२८
सर्वथो अश्वमे	१४४६
सर्वथो अश्वमे	११; १६४८
सर्वथो अश्वमे	६८८
सर्वथो अश्वमे	१३०९
सर्वथो अश्वमे	१४५१
सर्वथो अश्वमे	१७५३
सर्वथो अश्वमे	१५८
सर्वथो अश्वमे	७०७
सर्वथो अश्वमे	७१०
सर्वथो अश्वमे	१४१
सर्वथो अश्वमे	१५११
सर्वथो अश्वमे	११०; १८४६
सर्वथो अश्वमे	११५६
सर्वथो अश्वमे	११४१
सर्वथो अश्वमे	११८१
सर्वथो अश्वमे	१६
सर्वथो अश्वमे	५४
सर्वथो अश्वमे	६००
सर्वथो अश्वमे	१६१६
सर्वथो अश्वमे	१३१४
सर्वथो अश्वमे	९९१
सर्वथो अश्वमे	११८५
सर्वथो अश्वमे	८५५
सर्वथो अश्वमे	१५५७
सर्वथो अश्वमे	१५६६
सर्वथो अश्वमे	५७७
सर्वथो अश्वमे	१५११; ११६९; ११८१





प्रस्तु अदर्यावत् ३०३, ७५१  
 प्रथम यद्वत् प्रथमय ५९९  
 प्र देवमन्त्रा मनुमन्त्र ५६३  
 प्र दैवोदासी ५१, १५१७  
 प्र धन्वा घाम जागृषि ५६७  
 प्र वारा मधो अग्निषो ११९९  
 प्र न इन्द्रो महे तु न ५०९  
 प्र पवमान पन्वसि ९६३  
 प्र पुमानाय वैषवे ५७३  
 प्रप्र अथाप पन्वसे ९३७  
 प्रप्र वसिष्ठमभिय ३६०  
 प्रमना शो मयवा १४५९  
 प्र भूर्भुवः त महो ७४  
 प्रयो वनश्च वृषद्भन् ६४९  
 प्र न देहाय गायत १०६, ८७८  
 प्र मरिचे विदुमदर्वता १८०  
 प्र मिश्रा गायत्र्यो २५५  
 प्र यद्वाको न भूर्भुव ४९१, ८२९  
 प्र युगा व षो अग्निषो ११३०  
 प्र यो शो निनीवति ५८  
 प्र वा निष्ठ औष्रवा ३११  
 प्र व इन्द्राय ब्रह्मते २५७  
 प्र व इन्द्र व मादन १५६, ७१६  
 प्र व इन्द्राय बुधहन्तमा प्रुष्टुः १११३  
 प्र वामर्ष-यु वयनो १५७५, १७०३  
 प्र वां मदि सुवी १५९६  
 प्र वावमिन्द्रुर्विधति १९०१  
 प्र वाङ्मन्त्राः महिषापरितर ११६०  
 प्र वे चिमे ऋ-ऋवो ११५३  
 प्र वो महे मतनो ४६९  
 प्र वा महे मह ३१८, १७९३  
 प्र वो मिश्राय गायत ११४३  
 प्र वे ऋष्ट पुष्पम् ५९  
 प्र ह्यप्रममममम ७८  
 प्र ह्यप्रम चर्षणीतम् १४४  
 प्र घ मिश्रासासाभिर भः १५०४  
 प्र ह्यते त इवीरते ११०१  
 प्र गुणव नान्वतो ५५३, ७७४, १३८६  
 प्र गुणानां सुवो ५३३  
 प्र वो महे तव वि मे १०८, १८९३

प्र वोम देवधीतये ५१४, ७६७  
 प्र वोम यहीन्द्रस्य कुशा ११६९  
 प्र वोमासो अयन्विषुः ९६१  
 प्र वोमासो मदरयुतः ४७८, ७६९  
 प्र वोमासो विरग्यतो ४७८, ७६४  
 प्र स्वानापो रथा इव १११९  
 प्र ह्यघाघन्त्यन् १११७  
 प्र हिन्वानो जनिता ५३६  
 प्र होता जातो महान् ७७  
 प्र होत्रे सुवर्षे वचो ९८  
 प्राथीमन्त्रु मादेष याति १५९१  
 प्राणा पिशुनीहीनां ५७०, १०१३  
 प्रातरामि पुह्रिषो ८५  
 प्राथी विवद्वाच कामि ९७५  
 प्राथय चारा अथान् १७६५  
 त्रियो नो अस्तु विवर्षति १४१९  
 त्रेता जयता नर १८६९  
 त्रेतो अम सीमिदि १७७१  
 त्रेष्ठ वा आत यि ५, १९४४  
 त्रेष्ठमिन्द्रो वृष्णुदि ४१३  
 त्रेष्ठु मद्गाएषतिः ५६  
 अथसी दिन्द्रुन्द्रस्य ५५७, ११५९  
 त्रियद्वयो न यवसे १९१०  
 त्रि वरुणे पुर्वोरथ १८०१  
 वद सुर्वे प्रवसा महो १७९८  
 वषट्हां अति सुर्वे ९७६, १७८८  
 वषट् व सु स्वतस्ये १४४४  
 वसविश्रवाः स्वविरः १८५३  
 वसवुश्च ह्यमहे २७७  
 वृहाहन्त्या गायत ९५८  
 वृहद्भवा हि मानवा ८८  
 वृहद्भवा हि मानवा १३३९  
 वृहद्भवा परि वीवा रवेन १८५३  
 वाङ्मनाना इरेस्तु ना १४०  
 वं वा सु म यवद्भन् ९६९  
 वस्य वस्यं प्रथम ३९१  
 वस्य वस्यं प्रथम ३३९८  
 वस्यो वैशानो वदवीः ९४४  
 वस्यो वद ४१९

मद्गाएस्तवा पुजा वय ६६८  
 मद्गाणादिद्र रावच २९९  
 मगो म वित्रो ४४४  
 मद्र कर्णोभि-ः शृणुयाम देवा १८७४  
 मद्र नो अपि वातय ४४९  
 मद्रमै न क्षा भरे १७३  
 मद्रं मनः कृणुव १५६०  
 मद्रावक्षा वमन्वा ३ वसानो १४००  
 मद्रो ना अगिराहुतो १११, १५५९  
 मद्रो भद्रवा एषमात १५४८  
 मद्रोभेयम कृणवामा १०६५  
 मित्रिय विश्वा अप द्विष १३४, १०७०  
 भूयाम ते सुमतो १४१९  
 भूरी छि ते वना १८००  
 भ्रजान्ययने सविधात ६११  
 भूयते आ पवस्व ११८४  
 भृषे नः स्म वृत्रहृष्येयु १६८३  
 भरिष वायुमिष्टये १३५४  
 भस्वपायि ते मह १४३१  
 भस्वता प्रुष्मिन्द्र ८१४  
 भस्वपुष्मति धावने ११९१  
 भस्वमत तनुनशाद्यत १३४८  
 भर्गवितिः पवते ८९९  
 भन्द्गत्वा मयवन् १७९९  
 भ ह्येतास्वरेवत्र १५४३  
 भन्द्वा मे म चारवा ५०६  
 भ-ये वां वावागृषिषी ६९९  
 भदि वयो अयो वयो ९०१  
 भर्गविति ते वर्मणा १८७७  
 भस्वत्प्रामो महिषयक्षापा/५४९, ११५५  
 महो इन्द्र पुण्यनो २६५  
 महो इन्द्रो य आश्रवा १३०४  
 महान्त एवा महीरु १०४०  
 महि प्रीणामवस्तु १९९१  
 मही मिणस्व वाचयाः १५९८  
 महीमे अस्तु वृष नाम ११०६  
 महं व न एवा त्र २९१  
 महे वो अथ बोधवो/४२१, १७४४  
 महो नो राय क्षा मर १११४  
 मा विदवति धावत १४३, १३६०

मा ते रावांसि मा त	१७१४	यमा नो मिशावक्ष्या	१५३७	यद्वा ह्ये सद्यमे	११३१
मा त्वा मृगा क्षत्रिभ्यो	७३१	यनाम इ इन्द्रं वज्र दक्षिणं	३३४	यदाहिंष्टं तदमयि	८६
मा न इन्द्र परा वृणुम्	२६०	यजिष्ठं त्वा यजमाणा	१८१४	यदीकानिन्द्र यादिरपरे	२०७, १०३०
मा न इन्द्र पीयानवे	२८०६	यजिष्ठं त्वा वृषभे	११२; १४११	यममन्वते वरेण्यमिन्द्र	११७३
मा न इन्द्राग्ना इ दिशः	१०८	यज्जायया अणुर्यम्	६०१; १४१७	यममं शूरश मन्वमवा	१४१५
मा नो अग्ने महापते	१६५०	यज्ञ इन्द्रमघमयद्	११११	यथा या आहाराभे	१५२८
मा नो अग्नाऽऽ यजमा	१४५७	यज्ञं च नस्तन्मं च	११११	यवैवमं नो मन्वया	७७५
मा नो ह्यनीया अतिथि	११०	यज्ञे च नस्तन्मं च	११११	यथो मा यावाऽऽपिबी	६११
मा पापरवाय नो	७१८	यज्ञस्य हेतुं प्रथमं	१०७३	यथिदि त्वा बहुभ्य आ	११४४
मा भेम मा श्रियमोऽमरय	१६०५	यज्ञस्य हि स्य जातिवजा	१०७३	यत् इन्द्र नदीयसी	८८४
मित्रं वयं हवामहे	७३३	यज्ञायशां वो अमये	३५, ७०३	यस्ते शत्रु स्वपामघत्	७३८
मित्रं ह्ये वृत्तसं	८४७	यं जनाऽऽ हविमन्तो	१५६५	यस्ते मूर्धं शतक्रानिद्र	११६
मूर्धानं दिवो भरति	६७, ११४०	यत् इन्द्र मयामहे	१०४४	यस्ते मदीं पुत्रयथाऽऽ	११९८
मृगो न भीम कुबरो	१८७३	यतो निरु प्रार्थ्यं मनो	१०४४	यस्ते मदीं वरेषः	४७०, ८१५
मृशन्ति त्वा दश सिरो	११८१	यत् वच च ते मनो	७०६	यस्ते अश्रुतो नयात्	७४७
मृशयमानः सुदशरथा	५१७; १०७३	यत् वजायाः संपतन्ति	१८६६	यस्यामोमे हविण्यतिः	८४७
मृदि न त्वा क्षिप्र	३२७	नरशोऽऽ घान्वाऽऽ	१३४५	यस्यामन्त कृष्टयथाऽऽस्यानि	१५१६
मेधाकारं विदवश्य	७८४	पशोमं चित्रधुक्च	१३४५	यस्मिन्विधा अपि	७२३
मो तु स्या वापतस्य	२८४; १६७५	पशोमिन्द्रं सिन्धुभि	१८४	यस्य त इन्द्रः पिशाचाय	१०७७
मो तु नरो न तन्पुः	८२६	यथा गीतो अया कृतं	२५२; १७३१	यस्य ते पी-हा इषभो	६७३
य आत्रव्यराशिताः	११७	यद्वो वात ते शूरे	१८४२	यस्य ते महिना मयः	१७७५
य आर्जकेषु कृत्वस्य	११६६	यद्यद्भिः परिचिष्यते	७८५	यस्य ते विश्वानुवर्गमूर्धैरतस्य	१०७१
य ह्ये प्रतिपश्ये	३७०५	यदप कचन वृषहन्	११६	यस्य ते शर्यो वरी	७७७
य इव आभिवासति	११५०	यदथ ह्य उचिते	११५१	यस्य त्वच्छन्दरं	३११
य इन्द्र अगष्टेभवा	१६१	यदा कदा च सोऽनुपे	१८८	यस्य त्रिषालवर्तं	१५०१
य इन्द्र घोमरातमो	३७७४	यदिन्द्र चित्र म इह	३४५; १७७२	यस्यायं विश्वं आर्षो	१६०१
य उम इव शर्वहा	१०७४	यदिन्द्र नाहुषीभ्या	३६२	यस्मिन्नाऽऽत्रुषस्तुभे	५८८
य उमः सप्तानेष्टुः	१६१८	यदिन्द्र प्राणयागुदान्यमवा	२७२; १२३१	या इन्द्र भुज आभरः	२५४
य उदिया अपि या	५८५	यदिन्द्र मासतस्यभेना	३१०; १७७६	या ते कौमानानुवा	७८०
य प्रापे विश्वमिधियः	२४४	यदिन्द्र मासतस्यभेना	३१०; १७७६	या ददा सिन्धुमातरा	१७१५
य ऐक इन्द्रियते	३८३; १३४१	यदिन्द्र षाषो अग्रतं	११०	या वा घन्ति	१११
य अजिष्टस्तमा मर	८२१	यदिन्द्राहं यथा त्वे	१४८	याश्चिन्ना ओदना दिवो	१०६६
यः पापमानीरभेति	१११८	यदिन्द्रो अन्नमिन्द्रो	८१	या ह्यनीये कौचरेष	१७३१
यः शत्राहा क्षिप्रगिः	१८६	यदि वीरो अन्नम्याद्	७४	यान्ते आऽऽ अश्रुतुनो	१३४६
यः घोमाः स्तशोऽत्रा	११००	यदीं वगस्य रसानाम्	१४४२	युक्ता हि केतिना	१७३३
यः र्नाहिंतीतु वृषैः	१३८०	यदीं बह्वनयाशरी	१४४२	युक्ता हि क्षत्रिनीभोः	३०१
यं शस्तिन्तं भवेत्तवो	१८५	यदीं सुतेभिमिन्द्रुभिः	१४४२	युक्ता हि वृषस्तम	१४६८
यं श्रेतेषु सिन्धय	३३७	यद्वीरत आश्रयो	४१४; १००४	युक्तेषु री हविरस्य	७३१
यथेन्द्रि शशताः	१६१८	यद्यं पाश इन्द्र ते शतं	७७८; ८६३	युक्तेषु क्रमस्य	७३१
यथेन्द्रि पशवति	३६४	यद्युक्तो वृणुम्	१७५१	युक्तेषु री हविरस्य	१४६५
		यद्युक्तं हिरण्यस्य	६२४		
		यद्वा च विरतिः	१२४		

प्रस्तु अदरवीयत ३०३; ७११  
 प्रथम बन्धु च प्रथम ५२९  
 प्र देवमन्त्रा मनुजन्त ५६३  
 प्र देवोदायो ५१; १५१७  
 प्र भवा सोम आरुचिः ५६७  
 प्र धारा मधो अग्निवो ११२२  
 प्र न इन्द्रो महे द्यु म ५०९  
 प्र पवमान मन्ववति ९६३  
 प्र पुनानाय वेधसे ५७३  
 प्रप्र धृताय पन्वये ९३७  
 प्रप्र वसिष्ठमभिर्य ३६०  
 प्रमहो ह्यो मयवा १४५९  
 प्र भूर्नेपन्त मदी ७४  
 प्रमो जनस्य पुत्रहन ६६९  
 प्र मंदिष्टाय गायत १०६; १०७८  
 प्र मरिदने विनुमदवता ३८०  
 प्र मित्राय प्रथम्ये २५५  
 प्र यद्वायो न भूर्णयः ४९१; १०१९  
 प्र युक्त वाचो अग्निवो ११३८  
 प्र यो राधे विनीपति ५८  
 प्र यो रीरिष ओजसा ३११  
 प्र य इन्द्राय वृष्टते २५७  
 प्र य इन्द्राय मादनं १५६; ७११६  
 प्र य इन्द्राय वृन्दस्तमाथ ४४६; १११३  
 प्र यामर्षेन्दु विषयो १५७५; १७०३  
 प्र वां मदि वाची १५९६  
 प्र वानमिन्दु विषयति १२०१  
 प्र वाजस्यो म्पृष्टाकारितर ११६०  
 प्र वो पिबो मन्त्रयुवो ११५३  
 प्र वो महे मतो ४६१  
 प्र वो महे महे ३१८; १०९३  
 प्र वो मित्राय गायत ११४३  
 प्र वो मह पुत्रकाण् ५९  
 प्र उद्राजमसुरस्य ७८  
 प्र सप्तान् वर्षणीनाम् १४४  
 प्र स विद्यो मारामिनिरामः १५०४  
 प्रसवे त उदीरते १००६  
 प्र सुम्नामायां चो ५५३; ७७३; १३८६  
 प्र सीमानो सुवो ५१३  
 प्र वो अमे तवाग्निमिः १०८; १८११

प्र सोम देववीतये ५१४; ७६७  
 प्र सोम वाहीन्द्रस्य कृष्ण ११६५  
 प्र सोमासो अयन्विपुः ९६१  
 प्र सोमासो मदनपुतः ४७७; ७६९  
 प्र सोमासो विगन्धितो ४७८; ७६४  
 प्र स्वानासो रया इव १११९  
 प्र ईसाधस्तपुता १११७  
 प्र द्विजानो जनिता ५३६  
 प्र हुता जातो महान् ७७  
 प्र ह्येते पूर्वो वचो ९८  
 प्राचीमसु प्रदिवो याति १५६१  
 प्राणा पिष्टुर्महीना ५७०; १०१३  
 प्रातराग्निः पुत्रमियो ८५  
 प्राथिविष्ठाव ऋमि ९७५  
 प्राथम भारा अक्षरन् १७६५  
 प्रियो मो अस्तु विषपतिः १६६९  
 प्रेता जयता नर १८६२  
 प्रेता अम सीमिदि १३५५  
 प्रेष्ठ वो आतये ५; १२४४  
 प्रेष्टा मदि वृष्णदि ४११  
 प्रेतु म्प्राणपतिः ५६  
 शकासीविन्दुरिन्द्रस्य ५५७; ११५३  
 शोयदक्षी न यवते १२२०  
 शो अस्मि पुरोरथे १८०१  
 श्वं एवं अयता महो १७८९  
 श्वमहो अग्नि युग् ५७६; १७८८  
 श्वनेषु सु स्वतवसे १४४४  
 श्वनेभिर्वायः स्वविरः १८५३  
 श्वस्तुवय हवामहे १७७  
 श्वदावन्मस्य गायत २५८  
 श्वान्नामो अर्कमिः ३७  
 श्वद्वया डि आनवो ८८  
 श्वद्वेदेभ्य एदा १३३१  
 श्वद्वेदे परि वीषा रथेन १८५२  
 श्वेयमना ददस्तु नो १४०  
 शोधा सु मे मयवन् ९६९  
 श्वस्य जज्ञाने प्रथम ३११  
 श्वस्य मजावदा गर ११२८  
 श्वस्य देवानां वद्वीः ९४४  
 श्वस्य इन् ४१६

मद्गालस्तो दुग्धा वयं ६६८  
 मद्गामादिन्द्र राषवः २४९  
 मगो न चित्रो ४४४  
 मदे कर्णोभिः शत्रुवायम वेताः १८७४  
 मदे वो अयि वातय ४२१  
 मदेमदे न का अरे १७३  
 मदे मनः कृष्णव १५६०  
 मद्रावरा घमन्मा ३ वधानो १४००  
 मद्रो वो अमिराकुतो १११; १५५९  
 मद्रो मद्रथा एचमाम १५४८  
 मद्रमिमेभं कृष्णवामा १०६५  
 मिन्धि विद्या अप द्विपः १३४; १७७७  
 म्युयाम ते हुयतो १४२१  
 मूरि दि ते खवना १८००  
 म्रजान्मयमे छमिवाय ६१५  
 म्रयो न भा पवस्व ११८४  
 मयो नः रस वृत्रहरेषु १६८३  
 मरिष कशुमिष्टये १४४४  
 मन्मयपामि ते महः १४११  
 मरुत्वा छमिष्णह ८१४  
 मरुच्युष्मति छादने ११९८  
 मरुच्युष्मते तन्मवापस्य १३४८  
 मनीषिमिः पवते ८११  
 मरुन्दन्त्वा मयवन् १७११  
 मन्दं होतारमृतिवमं १५४३  
 मन्द्रमा सोम आरया ५०६  
 मन्ये वो वावापुषिषी ६२१  
 मयि वचो अयो यशो ६०८  
 मर्मोग्नि ते वर्मणा १८७७  
 मरुत्सोमो मदिषय करा ५४५; १२५५  
 मही इन्द्रः पुरखनो १६६  
 मही इन्द्रो य अंकासा १२०७  
 मरुतं रया महीरु १०४४  
 मदि श्रीणामवररु १७९  
 मही मिशरय धापथा १५९८  
 महीमे अस्व ह्य मम ११०६  
 महं व न त्वाग्निः १२११  
 महे नो अथ सोधवीषो २२१; १७४०  
 महो मो राम आ मर ११११  
 मा विद्वन्मदि सोमन २४२; १३६०

मा ते राधाधि मा त	१७०४	यज्ञा नो मित्रावरणा	१५३७	यद्वा एते एवमे	१५३९
मा एवा गृहा भविष्यते	७३१	यज्ञामह इन्द्रं यज्ञ वक्षिणं	३३४	यद्वाहित तदमये	८६
मा न इन्द्र वरा वृणा	२६०	यज्ञिष्ठ एवा यज्ञमावा	१८३४	यद्वाकामिन्द्र परिषरे	१०३, १०४
मा न इन्द्र पीयानसे	१८०६	यज्ञिष्ठ एवा यज्ञमहे	११२, १४१३	यन्मन्वते परेभ्यमिन्द्र	११७३
मा न इन्द्रान्मा ३ दिशः	१०८	यज्ञायवा अपूरुषं	६०१, १३१९	यमनो शुभ्र मन्वमवा	१४१५
मा नो अग्ने महाधने	१६५०	या इन्द्रमवर्षेयम्	१२१, १६३९	यवा वा आकरामहे	१५४८
मा नो अज्ञाता वृजना	१४५७	यज्ञे च नरतन्वं च	११११	यसंभवं नो अन्वष्टा	९७५
मा नो हृषीमा अतिथि	११०	यज्ञस्य केषु प्रथम	९०९	यतो मा यावापुत्रिणी	६११
मा पापस्वाय नो	९१८	यज्ञस्य हि स्य नातिवजा	१०७३	यथिदि वा बहुमय आ	१३४२
मा मेम मा अग्निमोप्रथम	१६०५	यज्ञागशा यो अमये	३५, ७०३	यस्त इन्द्र नवीयती	८८४
मित्र वयं हवामहे	७३३	य जनायो हविष्मन्तो	१५६५	यस्ते अन्व स्वधामधय	७३८
मित्रं ह्रुवे पूतवशं	८४७	यत इन्द्र भवामहे	२७४, १३११	यस्ते नून सातकान्विद	११६
मूर्धान दिवो अरति	६७, ११४०	यते विष्णु प्रराध्य मनो	११७४	यस्ते मदीं मुञ्जयथाः	९९८
मृगो न गीम क्रुचरो	१८७३	यते अत्र च ते मनो	७०६	यस्ते मदीं वरेणः	४७०, ८१५
मृजमित एवा इशो	११८१	यत्र वाणाः संघतन्ति	१८६६	यस्ते शूद्राणो जपान्	७२७
मृजयमानाः सुहरथा	५१७, १०७३	यशमनो याम्नाकर्षा	१३४५	यश्वामनो हविष्यति	८४५
मेदि न एवा यज्ञिग	३३७	यत्सोम विष्णुकथ्य	९९९	यश्वामिन्द्र कृष्टयवर्क्याणि	१५१६
मेधाकारे विदवस्य	९८४	यशोमामिन्द्र विष्णवि	१८४	यश्वमिन्द्रा अपि	७३३
मो पु एवा वापतव्य	२८४, १६७५	यथा गोरो अया कृतं	१५१, १७३१	यस्य त इन्द्रः विवाधाय	१०९७
मोः पु मद्रोः सन्वृषुः	८२६	यदने वात ते एहे	१८४०	यस्य ते पी वा वृषभो	६९३
य आग्निवरापतता	१२७	यदग्निं परिषिष्यते	७८५	यस्य ते मदिता यद्वा	१७७१
य आञ्जिकेपु कृत्वष्ट	११६४	यदव कृत्व वृषहन्	१५६	यस्य ते विष्णुःपुत्राग्नेर्यतम	१०७१
य इह मणिप्रभो	१७०५	यदव धृर उदिते	१३११	यस्य ते एते वयं	७७९
य इन्द्र आग्निवापति	११५०	यदा कृवा न वादुये	१८८	यस्य सप्तपञ्चनरं	३९९
य इन्द्र अमरेणवा	१६१	यदिन्द्र पित्र अ इह	३४५, ११७१	यस्य त्रिपालहंतं	१५४१
य इन्द्र सोमवाप्तो	३९४	यदिन्द्र मातृपीयवा	१६१	यस्याय विष्णु कायो	१६०९
य एत इव शर्महा	१००७	यदिन्द्र प्राणपुत्रमन्वरा	५७२, ११३१	यस्येयवाः प्रोःदुःकस्तुमे	५८८
य एतम. एतानेपुनः	१६९८	यदिन्द्र सावतरवधेना	३१०, १७३६	या इन्द्रं भुज आकारः	३५४
य उरिषा अपि या	५८५	यदिन्द्र छाद्यो अगत	१९८	या ते अमान्यःपुत्रा	७८०
य सप्तने विदमिधियः	१४४	यदिन्द्राहं यथा त्वं	१२९, १८३४	या दद्या सिन्धुमातरा	१७२९
य ऐक इन्द्रवते	३८३, १३४१	यदिन्द्रो अमवदितो	१४८	या वां उदित	९९१
य ओजिष्ठस्तवा आ	८१०	यदि कीरो अत्रुपाद्	८१	याभिष्या ओऽपदा दिवो	१७३६
यः वागमातीःरधेति	११९८	यदीं गमस्य इजागम्	१७४८	या सुनीमे पीत्रधे	१७३१
यः एतदा विषर्षणिः	१८६	यदीं बहुन्यथाद्यो	३५६	यासे यासाः वसुसुयो	९७१
यः सोमः क्लतोष्वा	१२००	यदीं सुतेभिःसुनिः	१४४५	युंका हि केदिना	११४६
याः स्वीदितीपु पूरुषः	१३८५	यदीं सुतेभिःसुनिः	४१४, १००४	युक्ताः हि वादिनीवनी	१७३१
ये रशमित प्रचेतधी	१८५	यदीं रीत आशयो	२७८, ८६२	युक्ताः हि वृजत्पुन	३०८
ये रीपु सितव	३३७	यदीं एव इन्द्र ते शनं	१७५, ९	युक्ताः हि प्रथमवर्षं	१४८
यैः पु सितव	१६१८	यद्रुषो हिरण्यम्	६२४	युक्ताः हि हिरण्यम्	७३१
यैः पु सितव	१६४	यद्वा अ विरतिः	११४	युक्ताः वरस्य कामया	१४९

सुखे वाचं ज्ञातवरी	१८१९
सुभं वनतममवांशं	१६४३
सुवं चित्रं वदसुभोजन	७५५
सुवे हि स्वाः स्वावतीः	१००१
मे ते वपथा अथो द्विवो	१७५
वे ते पवित्रसुभयो	७८८
ये त्वामिन्द्र न वृष्टसुः	१५०९
येन ज्योतिष्यायवे	८८१
येन देवाः पवित्रेणात्मानं	१३०५
येना नमस्या दध्यच्छ	९१९
येना पावकं चक्षसा	६३३
ये घोमासः परावति	११६३
यो अग्निं देववीतये	८४६
योगेयोगे तनवस्तरे	१६३३; ७४३
यो आगारं तमृचः	१८१६
यो जिनाति न जीयते	९७८
यो धारया व वरुया	६९८
यो न इदमिदं पुरा	४००
यो नः श्वोऽश्वो यश्च	१७१
योनिश्च इन्द्र उदने	३१४
यो नो ननु च्छन्दः	३३६
यो भक्षिष्ठा मघोनाम्	६४५
यो रमि नो रयिन्तमो	३५१
यो राज्ञः चर्षमोर्ना	१७३; ९३३
यो वः क्षिप्रतमो रथः	१८३८
यो विश्वा दमते वसु	४४४; १५८३
इत्थोहा विश्वचर्षिणश्चि	६९०
श्चि नक्षिप्रमश्चिन्मृ	१०५६
रक्षंते भिन्नो अर्थमा	१०७८
इक्षयः पयसा	८७७
राजानावन्तमिन्द्रा	९११
राजानो न प्रद्योशितभिः	११११
राजा मेधाभिरीमते	८३३
रायः छमुद्राश्चदुरो	८७१
राया हिरण्यवा	१०६८
राये अर्धे मदे	९३
वशदरावरा वराती	१७१०
रेवतीर्न-सद्यमाद्	१५३; १०८४
रेवीं इत्येत ततोता	१८०४
द्वयवधो वा षड्रहापो	१७३०

वयः सुतर्णा वय	३१९
वयं व एवा सुतावन्तः	१६१; ८६४
वयं वा ते अपि रमति	१३३
वय ते अक्षय राधधो	११३०
वयमिन्द्र स्वावयो	१३१
वयसु रथामध्वर्यं .	४०८; ७०८
वयसु स्वा तदिन्द्रा	१५७; ७१९
वयमेवमिन्द्रा	१७१; १६२१
वयश्चिते पवत्रिणो	१६७
वरिचोऽथातयो भुवो	६९१
वरुणाः प्राविता भुवन्मिमो	७३५
वयसु ते विष्णवाश्च	१६६७
वसन्ते इन्दु रत्नो	६१६
वसुभिर्वसुध्रिया	११०८
वसता इन्द्रास्त्रि मे	१२२
वाचमण्डपधीमदं	९९०
वासी वाजिपु धीयते	१४७८
वात आ वासु भेजन्	१८४; १८४०
वातोपश्रुत इयितो	९८३
वायविन्दुश्च सुविष्णवा	१६३०
वायो शुक्रो अयायि	३६५८
वायो स्वा सम्मानिर्वर्षति	७११
वायुध्यानः शवसा	१४८४
वासा अर्षवतीन्द्रो	११३३
वास्तोवतो ध्रुवा	१७५
विभन्तो दुरिता	८३१
वि विश्वं वृत्रस्य दोधतः	१६५२
वि स्वदागो न पर्वतस्य	६८
विदा मयवद् विदा	६४१
विदा रमि सुवीडे	६४४
विद्या हि एवा सुविकृति	७२९
विदुं ददां समने	३१५; १७८२
वि न इन्द्रं सुधो जज्ञे	१८६९
विचक्षिते पवमानाय	१६१५
विमथासि चित्रमावो	१४५८
विमन्तसि विव	१६८८
विमृशप्रम उमथो	११६६
विमोष्ठ इन्द्र राधधो	३६६
विमानं ज्योतिवा	१०६७
विम्राद् वृहत्विषद्	६१८; १४५३

विम्राद् वृहत्सुभर्तो	१४५४
वि रथो विमृधो वदि	१८६७
विमृशय मदिना	१६६१
विशो विशो वो अतिथि ८७; १५६४	
विश्वकर्मान्द्रविद्या वायुध्यानः	१५८१
विश्वतोवावन्विषतो	४३७
विश्वत्सा इ रव इतो	८४०
विश्वस्य अ स्तोम पुरो	४१०
विश्वः पृतना अग्निभूतः ३७०; ९१०	
विश्वः धामानि विश्वचक्ष	८८८
विधानरक्ष वरुणामि	३६४
विश्वे देवा मम श्युजन्तु	६१०
विश्वोमरश्चो अग्निमिरिर्म	१६१७
वि सु विश्वा आरातयो	१८०३
विष्णोः कर्मानि पश्यत	१६७१
वि सुतयो वयाः पया ४५३; १७७०	
वीडु विदावन्तुभिः	८५१
वीडुवोर्णं स्वा कवे	१५९३
वृकाविरस्य वारण	१६२६
वृत्रशादो वलं रुजः	१७१९
वृत्रस्य स्वा श्वघवा	३२४
वृत्रयं स्वा वयं	१५४०
वृथा पवस्व धारया	४६९; ८०३
वृथा पुनान आमुषि	१०००
वृथा मतीनां पवते	५५९; ८११
वृथा युधिष वंसयाः	१६२९
वृथा योनी आग्नि	८०६
वृथा योम सुमो	५०४; ७८१
वृथा श्चि माजुवा	४८०; ७८४
वृथो अग्निः स्यामिपते	१५३९
वृथं दिनः परि क्व	११८६
वृथिवाजा वीलाविरस्यतो	१४६७
वृथ्यते वृथ्यं वावो	७८९
वे या हि निरक्षतीना	३९६
वेथा हि वेथो	१४७६
व्यन्तविरस्यविरस्यदे	१६४०
व्यन्तुसुभं सुदानव	७१७
व्यो नो देवीभिश्चिदे	३३
व्यं पदं मथं	४४१
व्यथेव स्वा वसिधं	१०६६

सामयुक्तु घोषीपत	१५३; १५७९	सथामस्ता वनूमे	६२	स वधिरे विनक्ष्णो	१२९२
घोषीमिनेः घोषीवसू	१८७	सवने स इन्द्र वाजिनो	८२८	उ पुनाम उप दूरे	१३५८
घातानीकेव प्र जिगिति	८१२	स मा तौ वृषणं	४२४	उ पृथ्वीं महोना	१३५५
घासामानस्य वा नरः	१५९४	स घा नाः सूनुः	१६३५	उत त्वा हरितो रणे	६४०
घाकमना घोषो अरुणः	१७८३	स घा नो योग आ	७४९	घातिं मृशन्ति वैषधो	१७६६
घात्विगो घात्विपूजनायै	७२६	स घा नरते शिवी	३६५	स प्रपमे ऋगमनि देवानां	७४७
घिष्ठा य इन्द्र राय	१६४४	संस्कन्देनागिमियेण	१८५०	स असमाणो अगृतद्वय	१४२४
घिक्षेवमस्मे दिःसैयं	१८३५	सखामित्या वृषेद्वि	२६३	समाःस्वमिमवसे	११६८
घिक्षेवमिन्नाद्वरे	१७९७	सत्राहणं वाधुयिं	३३५	समन्या वस्तुपञ्चमन्याः	६०७
घिक्षुं अहानं द्वरि	१३३४	स नितरयाधि सखनि	१३९५	स मर्द्वान आधुमि	१०६३
घिक्षुं अहानं ह्येतं	११७५	स त्वं नखिन वज्रदस्त	८१०	समस्य मन्मथे विधो	११७, १६५१
घुक्कः पवस्व देवैभ्यः	१२४२	सदा पावः शुभयो	४४१	स मत्ता विद्या	१३०५
घुक्तं वे अन्वयमत	७५	सदा व इन्द्रवर्च्यदा	१९६	भमानो अभा रावणाः	१७५१
घुक्तिः पावक उच्यते	९६७	स द्याः कनिषितो	१९५७	स मायुजे षी	१६९०
घुन हुवेम मपवानं	३१९	स न इन्द्रः शिवः	१४५३	समिद्धमग्निं समिषा	१७६७
घुप्रमन्मो देवघातमन्सु	१००९	स न इन्द्राय वक्तव्ये	५९२; ६७३	समिद्धोत् वायुना	१०८१
घुप्रममाना श्वातागुभिः	१०३५	स न ऊर्ध्वं स्या रव्यरे	१४२८	समिद्धो राधो दृष्टी-	१६७८
घुष्णी घोषो न माहतं	१४७३	स न वरस्व वां गवे	६५३	समो वषं न मातृभिः	११५८
घुष्णामाः सर्वैरीः	१४०९	स नः पुनाम आ मर	७८९	समीचीना अन्वृत	१०३
घुष्ो न घत्त आधुषा	१९२९	स नः धृष्ट अश्वममन्त्रा	६६६	समीचीनाप आगत	११२५
घृणुतं वरिष्ठः	९१७	सना च सोम जैषि	१०४७	समुद्रो आन्सु मायुजे	१०४१
घृषेते वृष्टेरिव स्वनः	८९४	सना जयैति सना	१०४८	ससु शिवा अन्वृत	८१९
घोषे घनेषु मायुषु	४६	सता दस्युत	१०४८	ससु शिवो मृश्वरते घाने	१४०१
घ्रते दधामि प्रथमाय	३७१	सनादमे मृषकि	१०	ससु रेमाषो अश्वरत्न	९३१
अयन्त इव सूर्यं	२६७, १३१९	सनेमि अमरमदा	१६१३	समेत विषा ओजवा	३७१
घुप्तं नो मृश्रद्वतमं	२०८	स नो दशषाठवच	१६३६	सं मातृभिर्न शिशुर्वावसानो	१४११
घुष्णि श्रुक्णं वहिषिः	५०	स नो अयाय वायवे	१०८३	सामिन्धो अरयो भुवः	८१७
घुष्णी हवं शिस्वया	३४६; ८८३	स नो मन्त्रामिष्वरे	१४७५	समाजा वा सुदयोनी	११४४
घुष्णी हवं विषिपानस्य	१७९८	स नो महौ अमिमानो	१६६६	स योऽपत उषणामस्य	१११८
घुष्ण्यन्ते अयस्य मे	१०६	स नो मिश्रमद-	१७१३	स योऽने जयदा	७५०
स द्यभो मह्यकविः	१५६२	स नो विव्रा शिवो	१७६१	स योऽने जयदा	१६५५
घ इष्टवस्तैः स निरात्रिमि	१८५१	स नो वृषप्रभं वच	१७६१	स योऽने जयदा	१६६५
घ ई रथो न	१४७१	स नो वेदो अमात्यमग्नी	१६११	स योऽने जयदा	१६६५
घं नै यवाति ससु	६०३	स नो हरीणा पत	१६१२	स योऽने जयदा	१६६५
घं वास इव मातृभिः	१०९९	स देवो योमते	९९०	स योऽने जयदा	१६६५
घं वृक्षशृणुषुवच्यं	८३७	स वस्वस मदिन्धम	१६०९	स योऽने जयदा	१६६५
सताय आ ति	५६८; ११५०	स पवस्व व आविनेन्द्रं	४९४	स योऽने जयदा	१६६५
सक्षाय आ शिपामवे	३९०			स योऽने जयदा	१६६५

सुख वाच शतपदी	१८१९	वय सुवर्णा वय	३१९	विश्राज् सुहरसुभर्त	१४५४
सुखम अन्तममर्वाण	१६४३	वय व रथ सुतायन्ताः	२६१, ८६४	वि रथो वि सुधो जहि	१८६७
सुय चित्र द्रवधुमोजन	७५४	वय वा ते अयि रमसि	६००	विश्वकथय मदिना	१६६१
सुय हि स्थ रवापताः	१००१	वय ते अश्व रापधो	१२३९	विशो विशो वो अतिथि ८७;	१५६४
ये ते पन्था अधो विशो	१७१	वयमिन्द्र त्वावयो	१३२	विश्वकर्म्म-हविषा वायुमान	१५८९
ये ते पवित्रपूर्वो	७८८	वयसु रवामपूर्व .	४०८, ७०८	विश्वतोदाविश्वत्रतो	४३७
ये रवामिन्द्र न सुदुसुः	१५०९	वयसु रवा तदिदया	१५७; ७१९	विश्वरमा इ रवर्दशो	८४०
येन ज्वातिध्यायणे	८८१	वयमेतमिदा	२७१, १६२१	विश्वस्य प्र स्तोम सुरो	४५०
येन देवाः पवित्रधारयान	१३०६	वयसिते पत्रिणो	३६७	विश्वो वृतता अभिभूतर् ३७०, ९३०	८८८
येना नवगवा दग्मसु	२९९	वदिवीपातमो सुवो	६७१	विश्वो पागानि विश्वस्य	३६४
येना पावक चक्षुषा	६३७	वक्ष्य प्राथिताः सुवन्मिषो	७९५	विश्वानरस्य वस्यतिम्	३६४
ये सोमास परावति	११६३	वयसु ते विष्णवाश्च	१६२७	विश्वे देवा मम शृण्वन्तु	६१०
यो अग्नि देववीतये	८४६	वयसु ते विष्णवाश्च	६११	विश्वेभिरमे नामिभिरिम	१६१७
योगेदोमो सवस्तार	१६३, ७४३	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	विश्वो विश्वा भरतयो	१८०३
यो जाणार तद्वच	१८९६	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	विष्णोः कर्माणि वदवत	१६७१
यो जिनाति न जीयते	९७८	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	वि द्युतयो गया गया ४५३;	१७७०
यो धारया प वक्त्राः	६९८	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	वीडु विदारजत्तुमि	८५९
यो न इदमिद युता	४००	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	वीतिदोय त्वा कवे	१५१३
यो न स्त्रोऽरगो मय	१८७१	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	शुक्रविदरस्य वारण	१६९२
योनिसिद्ध इ द सन्ते	३१४४	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रसादो वल नम.	१७१९
यो नो वसुध्वन्	३३६	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रस्य तथा सुप्रथा	३९४
यो महिष्ठो मघोऽमासु	६४५	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथ तथा वय	१५४०
यो रयि वो रथिन्तमो	३५१	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा पवस्व चारया	४६९, ८०३
यो राजा चर्षणीना	२७३, ९३३	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा सुमान कायुषि	८००
यो व शिवरमो रथ	१८३८	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा मतीनां पवते	५५९, ८११
यो विश्वा दयते नसु	४४, १५८३	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा सुधेव वरुण	१६५२
रथोऽश विश्वचर्मणिभि	६९०	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा सोमो अग्नि	८०६
रथि मथिप्रम धिनम्	१०५६	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा सोम शुर्वा	५०४, ७८१
रथ ते भिवो अर्धमा	१०७८	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा शोभि मासुना	४८०, ७८४
रथस्य पयसा	८५७	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा शोभि सभिवते	१५३९
रथस्यानवनभिदुदा	९९१	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा दिवाः परि सव	११८६
रथानो न प्रशस्तिति	११६१	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथाद्यावा वीज्ञायेवस्वतो	१४६७
रथाना मेपाभिधिवते	८३३	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथाते शुक्ल सवो	७८९
रथ ससुद्राशुद्धरो	८०१	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा वा हि विश्वतीना	३९९
रथासि रथ्यावा	१०६८	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा वा हि विश्वो	१४७६
राये अरते महि	२३०	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा नरिभानवितन्मवे	१६४०
रथद्रासा रथती	१७२५	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथादेवुर्कथे सुदानव	७१७
रथतीने सपमाद	१५३, १०८४	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा वा नो देवीभिधये	४४१
रथोऽईधेव रथोता	१८०४	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा व मय	४४१
रथन्ते वा वक्ष्यापो	१७३०	वयसु ते विस्रवाश्च	११८	सुप्रथा तथा सपिथ	१०६६





स वीर्यं दसस्राधनो	१३८८	सुत एति पवित्र आ	१०१	सोमः पूषा च	१५४
स वृत्रहा वृषा	१२९६	सुता इन्द्राय वायवे	७६६	सोमं गावो धेनुवो	८६०
सम्यामनु शिफाय वावृषे	१६०६	सुतायो मधुमसमाः	५४७, ८७९	सोमं राजानं वदन्तं	११
स सुतः पीतये	१२९२	सुर्यो यो वा स पर्यो	२०६	सोमा भस्ममिन्द्रवः	११६६
स सुन्वे यो वसुता	५८२, १०९६	सुनोता सोमपात्रे	२८५	सोमाः पवन्त इन्दवो	५४८, ११०१
स सुनुमातरा	२३६	सुवावीरशतु स सय-	१३५२	सोमानी स्वराणं	१३९, १४६३
घह रम्या नि वर्तस्व	१८३३	सुमन्या वरवी	१६५४	सोमं राधाजानं पते	१६००
घर्षमाः सवृषाः	६२६	सुसुक्कानुसूतये	१६०, १०८७	स्वरान्ति त्वा सुते	८६५
घदध्याः पवते	८७४	सुवितस्य वनामहे	८९३	स्वस्ति न इन्द्रे वृद्धधराः	१८७२
घदस्यारं वृषमं	१३९५	सुयमिदो न आ वह	१३४७	स्वादिष्टवा मदिष्टया	४६८, ६८९
घदस्तस्य इन्द्र	६२५	सुवदा सोम तानि ते	१७६७	स्वादिष्टिवा विद्वृत्तो	४०९, १००५
सहस्रदीर्घाः पुङ्गवः	६१७	सुववाणाद्य इन्द्र	३१६	स्व युवः पवते देव	६७८
स हि युक्त चिदोजसा	१८१५	सुववाणाद्यो ध्याद्रमिदिताना	११०३	सुयो वनाग्यार्या	८५५
स हि य्मा करिदुम्य	९६९	सुवैस्वैव इन्द्रयो	१३७०	सुरो न इन्द्र इमभृग्युतो	६२३
साकं जातः ऋतुना	१४८७	सो अग्निर्षो वसुर्गणे	१७३९	सुक्ताप्युतेभिरग्निभिः	१४४१
साकमुक्षो मर्जशत	५३८, १४१८	सो अर्धेन्द्राय पीतये	२८०	सुवन्ति सूरमुखवः	९०४
सा नो अद्याभरद्गुः	१७४९	सोम वरुवासः सोमिभिधि	५१५, १९७	सुवन्तायो रथा	१११०
साहामिषथा अमिपुत्रः	१५५८	सोमः पवते जनिता	५२७, २४३	सुवन्तो देतुभिः	६५५
सिधति नमसावटमुवाचकं	१६०४	सोमः पुतान ऊर्षिगाम्यं	५७२, ६४०	सुता देवो अमर्यो	१४७७
सोदन्तस्ते वयो	४०७	सोमः पुतासो अर्षति	११८७		

